प्रकाशक— गोविन्द भवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

संवत् २०४३ प्रथम संस्करण, १०,०००

मूल्य पच्चीस रुपये

मुद्रक- गीताप्रेस, गोरखपुर

मिलनेका पता—गीताप्रेस पो० गीताप्रेस, (गोरखपुर)

नम्र निवेदन

शास्त्रोंमें पुराणोंकी बड़ी महिमा है। उन्हें साक्षात् श्रीहरिका रूप बताया गया है। जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत्को आलोकित करनेके लिये भगवान् सूर्यरूपमें प्रकट होकर हमारे बाहरी अन्धकारको नष्ट करते हैं, उसी प्रकार हमारे हृदयान्धकार—भीतरी अन्धकारको दूर करनेके लिये श्रीहरि ही पुराण-विग्रह धारण करते हैं।* जिस प्रकार त्रैवर्णिकोंके लिये वेदोंका स्वाध्याय नित्य करनेकी विधि है, उसी प्रकार पुराणोंका श्रवण भी सबको नित्य करना चाहिये—'पुराणं शृणुयान्नित्यम्'। पुराणोंमें अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—चारोंका बहुत ही सुन्दर निरूपण हुआ है और चारोंका एक-दूसरेके साथ क्या सम्बन्ध है—इसे भी भलीभाँति समझाया गया है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः॥
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥

(१।२।९-१०)

'धर्मका फल है—संसारके बन्धनोंसे मुक्ति, भगवान्की प्राप्ति। उससे यदि कुछ सांसारिक सम्पत्ति उपार्जन कर ली तो यह उसकी कोई सफलता नहीं है। इसी प्रकार धनका फल है—एकमात्र धर्मका अनुष्ठान; वह न करके यदि कुछ भोगकी सामग्रियाँ एकत्र कर ली तो यह कोई लाभकी बात नहीं है। भोगकी सामग्रियोंका भी यह लाभ नहीं है कि उनसे इन्द्रियोंको तृप्त किया जाय; जितने भोगोंसे जीवन-निर्वाह हो जाय, उतने ही भोग हमारे लिये पर्याप्त हैं तथा जीवन-निर्वाहका—जीवित रहनेका फल यह नहीं है कि अनेक प्रकारके कर्मोंके पचड़ेमें पड़कर इस लोक या परलोकका सांसारिक सुख प्राप्त किया जाय। उसका परम लाभ तो यह है कि वास्तविक तत्त्वको—भगवत्तत्त्वको जाननेकी शुद्ध इच्छा हो।'

यह तत्त्व-जिज्ञासा पुराणोंके श्रवणसे भलीभाँति जगायी जा सकती है। इतना ही नहीं, सारे साधनोंका फल है—भगवान्की प्रसन्नता प्राप्त करना। यह भगवत्प्रीति भी पुराणोंके श्रवणसे सहजमें ही प्राप्त की जा सकती है। पद्मपुराणमें लिखा है—

तस्माद्यदि हरेः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः।
श्रोतव्यमनिशं पुम्भिः पुराणं कृष्णरूपिणः॥

(पद्म० स्वर्ग० ६२।६२)

'इसलिये यदि भगवान्को प्रसन्न करनेका मनमें सङ्कल्प हो तो सभी मनुष्योंको निरन्तर श्रीकृष्णके अङ्गभूत पुराणोंका श्रवण करना चाहिये।' इसीलिये पुराणोंका हमारे यहाँ इतना आदर रहा है।

वेदोंकी भाँति पुराण भी हमारे यहाँ अनादि माने गये हैं। उनका रचयिता कोई नहीं है। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी

* यथा सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः।
सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे॥
तथैवान्तःप्रकाशाय पुराणावयवो हरिः।
विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम्॥

(पद्म० स्वर्ग० ६२।६०-६१)

भी उनका स्मरण ही करते हैं। पद्मपुराणमें लिखा है—'पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।' इनका विस्तार सौ करोड़ (एक अरब) श्लोकोंका माना गया है—'शतकोटि प्रविस्तरम् ।' उसी प्रसङ्गमें यह भी कहा गया है कि समयके परिवर्तनसे जब मनुष्यकी आयु कम हो जाती है और इतने बड़े पुराणोंका श्रवण और पठन एक जीवनमें मनुष्योंके लिये असम्भव हो जाता है, तब उनका संक्षेप करनेके लिये स्वयं भगवान् प्रत्येक द्वापर युगमें व्यासरूपसे अवतीर्ण होते हैं और उन्हें अठारह भागोंमें बाँटकर चार लाख श्लोकोंमें सीमित कर देते हैं। पुराणोंका यह संक्षिप्त संस्करण ही भूलोकमें प्रकाशित होता है। कहते हैं स्वर्गादि लोकोंमें आज भी एक अरब श्लोकोंका विस्तृत पुराण विद्यमान है।* इस प्रकार भगवान् वेदव्यास भी पुराणोंके रचयिता नहीं, अपितु संक्षेपक अथवा संग्राहक ही सिद्ध होते हैं। इसीलिये पुराणोंको 'पञ्चम वेद' कहा गया है—'इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्' (छान्दोग्य उपनिषद् ७ । १ । २)। उपर्युक्त उपनिषद्वाक्यके अनुसार यद्यपि इतिहास-पुराण दोनोंको ही 'पञ्चम वेद' की गौरवपूर्ण उपाधि दी गयी है, फिर भी वाल्मीकीय रामायण और महाभारत जिनकी इतिहास संज्ञा है, क्रमशः महर्षि वाल्मीकि तथा वेदव्यासद्वारा प्रणीत होनेके कारण पुराणोंकी अपेक्षा अर्वाचीन ही है। इस प्रकार पुराणोंकी पुराणता सर्वापेक्षया प्राचीनता सुतरां सिद्ध हो जाती है। इसीलिये वेदोंके बाद पुराणोंका ही हमारे यहाँ सबसे अधिक सम्मान है। बल्कि कहीं-कहीं तो उन्हे वेदोसे भी अधिक गौरव दिया गया है। पद्मपुराणमें ही लिखा है—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः ।
पुराणं च विजानाति यः स तस्माद्विचक्षणः ॥

(सृष्टि० २ । ५०-५१)

'जो ब्राह्मण अङ्गों एवं उपनिषदोंसहित चारों वेदोंका ज्ञान रखता है; उससे भी बड़ा विद्वान् वह है जो पुराणोंका विशेष ज्ञाता है।' यहाँ श्रद्धालुओंके मनमें स्वाभाविक ही यह शङ्का हो सकती है कि उपर्युक्त श्लोकोंमें वेदोंकी अपेक्षा भी पुराणोंके ज्ञानको श्रेष्ठ क्यों बतलाया है। इस शङ्काका दो प्रकारसे समाधान किया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि उपर्युक्त श्लोकके 'विद्यात्' और 'विजानाति'—इन दो क्रियापदोंपर विचार करनेसे यह शङ्का निर्मूल हो जाती है। बात यह है कि ऊपरके वचनमें वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका वैशिष्ट्य बताया गया है, न कि वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके सामान्य ज्ञानका अथवा वेदोंके विशिष्ट ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका। पुराणोंमें जो कुछ है, वह वेदोंका ही तो विस्तार—विशदीकरण है। ऐसी दशामें पुराणोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंका ही विशिष्ट ज्ञान है और वेदोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंके सामान्य ज्ञानसे ऊँचा होना ही चाहिये। दूसरी बात यह है कि जो बात वेदोंमें सूत्ररूपसे कही गयी है, वही पुराणोंमें विस्तारसे वर्णित है। उदाहरणके लिये परम तत्त्वके निर्गुण-निराकार रूपका तो वेदों (उपनिषदों) में विशद वर्णन मिलता है, परन्तु सगुण-साकार तत्त्वका बहुत ही संक्षेपमें कहीं-कहीं वर्णन मिलता है। ऐसी दशामें जहाँ पुराणोंके विशिष्ट ज्ञाताको सगुण-निर्गुण दोनों तत्त्वोंका विशिष्ट ज्ञान होगा, वेदोंके सामान्य ज्ञाताको केवल निर्गुण-निराकारका ही सामान्य ज्ञान होगा। इस प्रकार उपर्युक्त श्लोककी संगति भलीभाँति बैठ जाती है और पुराणोंकी जो महिमा शास्त्रोंमें वर्णित है, वह अच्छी तरह समझमें आ जाती है। अस्तु,

पुराणोंमें पद्मपुराणका स्थान बहुत ऊँचा है। इसे श्रीभगवान्‌के पुराणरूप विग्रहका हृदयस्थानीय माना गया है—'हृदयं पद्मसंज्ञकम् ।' वैष्णवोंका तो यह सर्वस्व ही है। इसमे भगवान् विष्णुका माहात्म्य विशेषरूपसे वर्णित होनेके कारण ही यह वैष्णवोंको अधिक प्रिय है। परन्तु पद्मपुराणके अनुसार सर्वोपरि देवता भगवान् विष्णु होनेपर भी उनका ब्रह्माजी तथा भगवान् शङ्करके साथ अभेद प्रतिपादित हुआ है। उसके अनुसार स्वयं भगवान् विष्णु ही ब्रह्मा होकर संसारकी सृष्टिमें प्रवृत्त होते हैं तथा जबतक कल्पकी स्थिति बनी रहती है, तबतक वे भगवान् विष्णु ही युग-युगमें अवतार धारण करके समूची सृष्टिकी रक्षा करते हैं। पुनः कल्पका अन्त होनेपर वे ही अपना तमःप्रधान रुद्ररूप प्रकट करते हैं और अत्यन्त भयानक आकार धारण करके सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार करते हैं। इस प्रकार

* कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः ।
व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे ॥
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ ।
तदाष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाशितम् ॥
अद्यापि देवलोकेषु शतकोटिप्रविस्तरम् ।
(पद्म० सृष्टि० १ । ५१–५३)

सब भूतोंका नाश करके संसारको एकार्णवके जलमें निमग्न कर वे सर्वरूपधारी भगवान् स्वयं शेषनागकी शय्यापर शयन करते हैं। पुनः जागनेपर ब्रह्माका रूप धारण करके वे नये सिरेसे संसारकी सृष्टि करने लगते हैं। इस तरह एक ही भगवान् जनार्दन सृष्टि, पालन और संहार करनेके कारण ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव नाम धारण करते हैं।* पद्मपुराणमें तो भगवान् श्रीकृष्णके यहाँतक वचन हैं—सूर्य, शिव, गणेश, विष्णु और शक्तिके उपासक सभी मुझको ही प्राप्त होते हैं। जैसे वर्षाका जल सब ओरसे समुद्रमें ही जाता है, वैसे ही इन पाँचों रूपोंके उपासक मेरे ही पास आते हैं। वस्तुतः मैं एक ही हूँ। लीलाके अनुसार विभिन्न नाम धारण कर पाँच रूपोंमें प्रकट हूँ। जैसे एक ही देवदत्त नामक व्यक्ति पुत्र-पिता आदि अनेक नामोंसे पुकारा जाता है, वैसे ही मुझको भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारते हैं।† ऐसी ही बातें अन्यान्य पुराणोंमें भी पायी जाती हैं। वैष्णवपुराणोंमें शिव और ब्रह्माजीको विष्णुसे तथा शैवपुराणोंमें भगवान् विष्णु एवं ब्रह्माजीको शङ्करजीसे अभिन्न माना गया है। अतएव जो लोग पुराणोंमें साम्प्रदायिकताका गन्ध पाते हैं, वे वास्तवमें भूल करते हैं—यही प्रमाणित होता है।

पद्मपुराणमें भगवान् विष्णुके माहात्म्यके साथ-साथ भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णके अवतार-चरित्रों तथा उनके परात्पर रूपोंका भी विशदरूपसे वर्णन हुआ है। पाताल-खण्डमे भगवान् श्रीरामके अश्वमेध यज्ञकी कथाका तो बहुत ही विस्तृत और अद्भुत वर्णन है। इतना ही नहीं, उसमें श्रीअयोध्या और श्रीधाम वृन्दावनका माहात्म्य, श्रीराधा-कृष्ण एवं उनके पार्षदोंका वर्णन, वैष्णवोंकी द्वादशशुद्धि, पाँच प्रकारकी पूजा, शालग्रामके स्वरूप और महिमाका वर्णन, तिलककी विधि, भगवत्सेवा-अपराध और उनसे छूटनेके उपाय, तुलसीके वृक्ष तथा भगवन्नाम-कीर्तनकी महिमा, भगवान्के चरण-चिह्नोंका परिचय तथा प्रत्येक मासमें भगवान्की विशेष आराधनाका वर्णन, मन्त्रचिन्तामणिका उपदेश तथा उसके ध्यान आदिका वर्णन, दीक्षा-विधि, निर्गुण एवं सगुण-ध्यानका वर्णन, भगवद्भक्तिके लक्षण, वैशाख-मासमें माधव-पूजनकी महिमा, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़में जलस्थ श्रीहरिके पूजनका माहात्म्य, अश्वत्थकी महिमा, भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान, पवित्रारोपणकी विधि, महिमा तथा भिन्न-भिन्न मासोंमें श्रीहरिकी पूजामें काम आनेवाले विविध पुष्पोंका वर्णन, बदरिकाश्रम तथा नारायणकी महिमा, गङ्गाकी महिमा, त्रिरात्र तुलसीव्रतकी विधि और महिमा, गोपीचन्दनके तिलककी महिमा, जन्माष्टमी-व्रतकी महिमा, बारह महीनोंकी एकादशियोंके नाम तथा माहात्म्य, एकादशीकी विधि, उत्पत्ति-कथा और महिमाका वर्णन, भगवद्भक्तिकी श्रेष्ठता, वैष्णवोंके लक्षण और महिमा, भगवान् विष्णुके दसों अवतारोंकी कथा, श्रीनृसिंहचतुर्दशीके व्रतकी महिमा, श्रीमद्भगवद्गीताके अठारहों अध्यायोंका अलग-अलग माहात्म्य, श्रीमद्भागवतका माहात्म्य तथा श्रीमद्भागवतके सप्ताह-पारायणकी विधि, नीलाचलनिवासी भगवान् पुरुषोत्तमकी महिमा आदि-आदि ऐसे अनेकों विषयोंका समावेश हुआ है, जो वैष्णवोंके लिये बड़े ही महत्त्वके हैं। इसीलिये वैष्णवोंमें पद्मपुराणका विशेष समादर है।

इनके अतिरिक्त सृष्टिक्रमका वर्णन, युग आदिका काल-मान, ब्रह्माजीके द्वारा रचे हुए विविध सर्गोंका वर्णन, मरीचि आदि प्रजापति, रुद्र तथा स्वायम्भुव मनु आदिकी उत्पत्ति और उनकी सन्तान-परम्पराका वर्णन, देवता, दानव, गन्धर्व, नाग और राक्षसोंकी उत्पत्तिका वर्णन, मरुद्गणोंकी उत्पत्ति तथा चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन, पृथुके चरित्र तथा सूर्यवंशका वर्णन, पितरो तथा श्राद्धके विभिन्न अङ्गोंका वर्णन, श्राद्धोपयोगी तीर्थोंका वर्णन, विविध श्राद्धोंकी विधि, चन्द्रमाकी उत्पत्ति, पुष्कर आदि विविध तीर्थोंकी महिमा तथा उन तीर्थोंमें वास करनेवालोंके द्वारा पालनीय नियम, आश्रमधर्मका निरूपण, अन्नदान एवं दम आदि धर्मोंकी प्रशंसा, नाना प्रकारके व्रत, स्नान और तर्पणकी विधि, तालाबोंकी प्रतिष्ठा, वृक्षारोपणकी विधि, सत्सङ्गकी महिमा, उत्तम ब्राह्मण तथा गायत्री-मन्त्रकी महिमा, अधम ब्राह्मणोंका वर्णन, ब्राह्मणोंके जीविकोपयोगी कर्म और उनका महत्त्व तथा गौओंकी महिमा और गोदानका फल, द्विजोचित आचार तथा शिष्टाचारका वर्णन, पितृभक्ति, पातिव्रत्य, समता, अद्रोह

---

* सृष्टिस्थित्यन्तकरणाद् ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥
(पद्म० सृष्टि० २। ११४)

† सौराश्च शैवा गाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
मामेव प्राप्नुवन्तीह वर्षापः सागरं यथा॥
एकोऽहं पञ्चधा जातः क्रीडया नामभिः किल।
देवदत्तो यथा कश्चित् पुत्राद्याह्वाननामभिः॥
(पद्म० उत्तर० ९०। ६३-६४)

और विष्णु-भक्तिरूप पाँच महायशोंके विषयमें पाँच आख्यान, पतिव्रताकी महिमा और कन्यादानका फल, सत्यभाषणकी महिमा, पोखरे खुदाने, वृक्ष लगाने, पीपलकी पूजा करने, पौंसले चलाने, गोचरभूमि छोड़ने, देवालय बनवाने और देवताओंकी पूजा करनेका माहात्म्य, रुद्राक्षकी उत्पत्ति और महिमा, श्रीगङ्गाजीकी उत्पत्ति, गणेशजीकी महिमा और उनकी स्तुति एवं पूजाका फल, मनुष्ययोनिमें उत्पन्न हुए दैत्य एवं देवताओंके लक्षण, भगवान् सूर्यका तथा संक्रान्तिमें दानका माहात्म्य, भगवान् सूर्यकी उपासना और उसका फल, विविध प्रकारके पुत्रोंका वर्णन, ब्रह्मचर्य, साङ्गोपाङ्गधर्म तथा धर्मात्मा एवं पापियोंकी मृत्युका वर्णन, नैमित्तिक तथा आभ्युदयिक आदि दानोंका वर्णन, देहकी उत्पत्ति, उसकी अपवित्रता, जन्म-मरण और जीवनके कष्ट तथा संसारकी दुःखरूपताका वर्णन, पापों और पुण्योंके फलोंका वर्णन, नरक और स्वर्गमें जानेवाले पुरुषोंका वर्णन, ब्रह्मचारीके पालन करने योग्य नियम, ब्रह्मचारी शिष्यके धर्म, स्नातक एवं गृहस्थके धर्मोंका वर्णन, गृहस्थधर्ममें भक्ष्याभक्ष्यका विचार तथा दानधर्मका वर्णन, वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रमोंके धर्मोंका वर्णन, संन्यासीके नियम, स्त्री-सङ्गकी निन्दा, भजनकी महिमा, ब्राह्मण, पुराण और गङ्गाकी महत्ता, जन्म आदिके दुःख तथा हरिभजनकी आवश्यकता, तीर्थयात्राकी विधि, माघ, वैशाख तथा कार्तिक मासोंका माहात्म्य, यमराजकी आराधना, गृहस्थाश्रमकी प्रशंसा, दीपावली-कृत्य, गोवर्धन-पूजा तथा यमद्वितीयाके दिन करने योग्य कृत्योंका वर्णन, वैराग्यसे भगवद्भजनमें प्रवृत्ति आदि-आदि अनेकों सर्वोपयोगी तथा सबके लिये ज्ञातव्य एवं धारण करने योग्य धार्मिक विषयोंका वर्णन हुआ है, जिनके कारण पद्मपुराण आस्तिक हिंदूमात्रके लिये परम आदरकी वस्तु है।

पद्मपुराणकी इस सर्वोपयोगिताको लक्ष्यमें रखकर ही 'कल्याण' में इसका संक्षिप्त अनुवाद छापनेकी आयोजना की गयी थी। इससे भारतकी धार्मिक जनताका यदि कुछ भी उपकार हुआ होगा तो हम अपने प्रयासको सफल तथा अपनेको धन्य मानेंगे। अनुवादका कार्य आदिसे अन्ततक पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्रीने बड़े परिश्रम एवं मनोयोग-के साथ किया है तथा अनुवादकी आवृत्ति तथा सम्पादन करने एवं प्रूफ-संशोधन आदि करनेमें सम्पादकीय विभागके सभी बन्धुओं तथा अन्य कई प्रेमी महानुभावोंका प्रेमपूर्ण एवं बहुमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है, जिसके लिये उन्हें धन्यवाद देना तो उनके कार्यके महत्त्वको घटाना होगा। ये सभी महानुभाव अपने ही हैं; ऐसी दशामें उनकी बड़ाई अपनी ही बड़ाई होगी। अन्तमें हम अपना यह क्षुद्र प्रयास श्रीभगवान्के पावन चरणोंमें अर्पित करते हैं और अपनी त्रुटियोंके लिये पुनः सबसे हाथ जोड़कर क्षमा माँगते हैं। हरिः ॐ तत्सत् ॥

विनीत — **जयदयाल गोयन्दका**



विषय	पृष्ठ-संख्या

सृष्टि-खण्ड

विषय	पृष्ठ-संख्या

भूमि-खण्ड

विषय पृष्ठ-संख्या

स्वर्ग-खण्ड

विषय पृष्ठ-संख्या

पाताल-खण्ड

विषय पृष्ठ-संख्या

उत्तरखण्ड

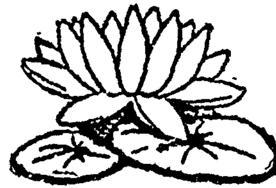
दर्शन-सुख

धन्या अभूवन् बत भिल्लकन्या वनेषु या राममुखारविन्दम् ।
स्वलोचनेन्दीवरकैरथापिबन् स्वभाग्यसंजातमहोदया इमाः ॥
धन्या मुखं पश्यत वीरधाम्नः श्रीरामदेवस्य पयोजनेत्रम् ।
यद्दर्शनं धातृमुखाः सुरा अपि नापुर्महाभाग्ययुता वयं त्वहो ॥
एतन्मुखं पश्यत चारुहासं किरीटसंशोभिनिजोत्तमाङ्गम् ।
बन्धूकधिक्काररलसच्छविप्रदं दन्तच्छदं बिभ्रतमुच्चनासम् ॥

(पद्म० पाताल० २ । ७१–७३)

वे भीलोंकी कुमारियाँ निश्चय ही बड़ी भाग्यवती थीं, जिन्होंने अपने नेत्र-कमलोंके दोने बनाकर वनोंमें विचरते हुए श्रीरामके मुख-कमलकी छविका पान किया था । उन्हें महान् पुण्योंसे ही इस प्रकारका अनुपम सौभाग्य प्राप्त हुआ था । अहा ! ब्रह्मादि देवगण भी जिनका दर्शन सहजमें नहीं पाते तथा जिनके कमल-सदृश नेत्र हैं, उन वीरोचित तेजसे सम्पन्न भगवान् श्रीरामके मुखारविन्दको निहारकर निहाल हो जाओ । हमलोग सचमुच महाभाग्यवती हैं, जिन्हें यह सुअवसर प्राप्त हुआ है । देखो तो इनके मुखपर कैसी मधुर मुसुकान है ! मस्तकपर मुकुट शोभायमान है, इनके लाल-लाल ओठोंकी शोभा बन्धूक-पुष्पका तिरस्कार कर रही है तथा इनकी उभरी हुई नासिका कैसी भली मालूम होती है ।

(वनसे लौटे हुए श्रीरामके प्रति अयोध्यावासिनी ललनाओंकी उक्ति)




बी.के.मित्रा

|| ॐ श्रीपरमात्मने नमः ||

संक्षिप्त पद्मपुराण

सृष्टिखण्ड

ग्रन्थका उपक्रम तथा इसके स्वरूपका परिचय

स्वच्छं चन्द्रावदातं करिकरमकरक्षोभसंजातफेनं
ब्रह्मोद्भूतिप्रसक्तैर्व्रतनियमपरैः सेवितं विप्रमुख्यैः ।
ॐकारालङ्कृतेन त्रिभुवनगुरुणा ब्रह्मणा दृष्टिपूतं
संभोगाभोगरम्यं जलमशुभहरं पौष्करं नः पुनातु ॥*

श्रीव्यासजीके शिष्य परम बुद्धिमान् लोमहर्षणजीने एकान्तमे बैठे हुए [अपने पुत्र] उग्रश्रवा नामक सूतसे कहा—"बेटा ! तुम ऋषियोंके आश्रमोपर जाओ और उनके पूछनेपर सम्पूर्ण धर्मोंका वर्णन करो । तुमने मुझसे जो संक्षेपमें सुना है, वह उन्हे विस्तारपूर्वक सुनाओ । मैंने महर्षि वेदव्यासजीके मुखसे समस्त पुराणोका ज्ञान प्राप्त किया है और वह सब तुम्हें बता दिया है; अतः अब मुनियोंके समक्ष तुम उसका विस्तारके साथ वर्णन करो । प्रयागमें कुछ महर्षियोने, जो उत्तम कुलोंमे उत्पन्न हुए थे, साक्षात् भगवान्से प्रश्न किया था । वे [यज्ञ करनेके योग्य] किसी पावन प्रदेशको जानना चाहते थे । भगवान् नारायण ही सबके हितैषी हैं, वे धर्मानुष्ठानकी इच्छा रखनेवाले उन महर्षियोके पूछनेपर बोले—'मुनिवरो ! यह सामने जो चक्र दिखायी दे रहा है, इसकी कही तुलना नहीं है । इसकी नाभि सुन्दर और स्वरूप दिव्य है । यह सत्यकी ओर जानेवाला है । इसकी गति सुन्दर एवं कल्याणमयी है । तुमलोग सावधान होकर नियमपूर्वक इसके पीछे-पीछे जाओ । तुम्हें अपने लिये हितकारी स्थानकी प्राप्ति होगी । यह धर्ममय चक्र यहाँसे जा रहा है । जाते-जाते जिस स्थानपर इसकी नेमि जीर्ण-शीर्ण होकर गिर पड़े, उसीको पुण्यमय प्रदेश समझना ।' उन सभी महर्षियोसे ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और वह धर्म-चक्र नैमिषारण्यके गङ्गावर्तनामक स्थानपर गिरा । तब ऋषियोने निमि शीर्ण होनेके कारण उस स्थानका नाम 'नैमिष' रखा और नैमिषारण्यमें दीर्घकाल-तक चालू रहनेवाले यज्ञोंका अनुष्ठान आरम्भ कर दिया । वहीं तुम भी जाओ और ऋषियोके पूछनेपर उनके धर्म-विषयक संशयोंका निवारण करो ।"

तदनन्तर ज्ञानी उग्रश्रवा पिताकी आज्ञा मानकर उन मुनीश्वरोंके पास गये तथा उनके चरण पकड़कर हाथ जोड़कर उन्होंने प्रणाम किया । सूतजी बड़े बुद्धिमान् थे,



उन्होंने अपनी नम्रता और प्रणाम आदिके द्वारा महर्षियोंको

* जो चन्द्रमाके समान उज्ज्वल और स्वच्छ है, जिसमे हाथीकी सूँडके समान आकारवाले नाकोंके इधर-उधर वेगपूर्वक चलने-फिरनेसे फेन पैदा होता रहता है, ब्रह्माजीके प्रादुर्भावकी कथा-वार्तामें लगे हुए व्रत-नियम-परायण श्रेष्ठ ब्राह्मण जिसका सदा सेवन करते हैं, ॐकार-जपसे विभूषित त्रिभुवनगुरु ब्रह्माजीने जिसे अपनी दृष्टिसे पवित्र किया है, जो पीनेमें स्वादिष्ट है और अपनी विशालताके कारण रमणीय जान पड़ता है, वह पुष्करतीर्थका पापहारी जल हमलोगोंको पवित्र करे ।

सन्तुष्ट किया । वे यज्ञमें भाग लेनेवाले महर्षि भी सदस्योंसहित बहुत प्रसन्न हुए तथा सबने एकत्रित होकर सूतजीका यथायोग्य आदर-सत्कार किया ।

ऋषि बोले—देवताओंके समान तेजस्वी सूतजी ! आप कैसे और किस देशसे यहाँ आये हैं ? अपने आनेका कारण बतलाइये ।

सूतजीने कहा—महर्षियो ! मेरे बुद्धिमान् पिता व्यास-शिष्य लोमहर्षणजीने मुझे यह आज्ञा दी है कि 'तुम मुनियोंके पास जाकर उनकी सेवामें रहो और वे जो कुछ पूछें, उसे बताओ ।' आपलोग मेरे पूज्य है । बताइये, मैं कौन-सी कथा कहूँ ? पुराण, इतिहास अथवा भिन्न-भिन्न प्रकारके धर्म—जो आज्ञा दीजिये, वही सुनाऊँ ।

सूतजीका यह मधुर वचन सुनकर वे श्रेष्ठ महर्षि बहुत प्रसन्न हुए । अत्यन्त विश्वसनीय, विद्वान् लोमहर्षण-पुत्र उग्रश्रवाको उपस्थित देख उनके हृदयमे पुराण सुननेकी इच्छा जाग्रत् हुई । उस यज्ञमें यजमान थे महर्षि शौनक, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशेषज्ञ, मेधावी तथा [वेदके] विज्ञानमय आरण्यक-भागके आचार्य थे । वे सब महर्षियोंके साथ श्रद्धाका आश्रय लेकर धर्म सुननेकी इच्छासे बोले ।

शौनकने कहा—महाबुद्धिमान् सूतजी ! आपने इतिहास और पुराणोका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भगवान् व्यासजीकी भलीभाँति आराधना की है । उनकी पुराण-विषयक श्रेष्ठ बुद्धिसे आपने अच्छी तरह लाभ उठाया है । महामते ! यहाँ जो ये श्रेष्ठ ब्राह्मण विराजमान है, इनका मन पुराणोंमे लग रहा है । ये पुराण सुनना चाहते हैं । अतः आप इन्हे पुराण सुनानेकी ही कृपा करे । ये सभी श्रोता, जो यहाँ एकत्रित हुए है, बहुत ही श्रेष्ठ है । भिन्न-भिन्न गोत्रोंमें इनका जन्म हुआ है । ये वेदवादी ब्राह्मण अपने-अपने वंशका पौराणिक वर्णन सुने । इस दीर्घकालीन यज्ञके पूर्ण होनेतक आप मुनियोको पुराण सुनाइये । महाप्राज्ञ ! आप इन सब लोगोसे पद्मपुराणकी कथा कहिये । पद्मकी उत्पत्ति कैसे हुई, उससे ब्रह्माजीका आविर्भाव किस प्रकार हुआ तथा कमलसे प्रकट हुए ब्रह्माजीने किस तरह जगत्की सृष्टि की—ये सब बातें इन्हे बताइये ।

उनके इस प्रकार पूछनेपर लोमहर्षण-कुमार सूतजीने सुन्दर वाणीमें सूक्ष्म अर्थसे भरा हुआ न्याययुक्त वचन कहा—'महर्षियो ! आपलोगोंने जो मुझे पुराण सुनानेकी आज्ञा दी है, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है; यह मुझपर आपका महान् अनुग्रह है । सम्पूर्ण धर्मोंके पालनमें लगे रहनेवाले पुराणवेत्ता विद्वानोंने जिनकी भलीभाँति व्याख्या की है, उन पुराणोक्त विषयोंको मैंने जैसा सुना है, उसी रूपमें वह सब आपको सुनाऊँगा । सत्पुरुषोंकी दृष्टिमें सूत जातिका सनातन धर्म यही है कि वह देवताओं, ऋषियों तथा अमिततेजस्वी राजाओंकी वंश-परम्पराको धारण करे—उसे याद रखे, तथा इतिहास और पुराणोंमे जिन ब्रह्मवादी महात्माओंका वर्णन किया गया है, उनकी स्तुति करे; क्योंकि जब वेनकुमार राजा पृथुका यज्ञ हो रहा था, उस समय सूत और मागधने पहले-पहल उन महाराजकी स्तुति ही की थी । उस स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर महात्मा पृथुने उन दोनोंको वरदान दिया । वरदानमें उन्होंने सूतको सूत नामक देश और मागधको मगधका राज्य प्रदान किया था । क्षत्रियके वीर्य और ब्राह्मणीके गर्भसे जिसका जन्म होता है, वह सूत कहलाता है । ब्राह्मणोने मुझे पुराण सुनानेका अधिकार दिया है । आपने धर्मका विचार करके ही मुझसे पुराणकी बातें पूछी है; इसलिये इस भूमण्डलमे जो सबसे उत्तम एवं ऋषियोंद्वारा सम्मानित पद्मपुराण है, उसकी कथा आरम्भ करता हूँ । श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी साक्षात् भगवान् नारायणके स्वरूप हैं । वे ब्रह्मवादी, सर्वज्ञ, सम्पूर्ण लोकोंमे पूजित तथा अत्यन्त तेजस्वी हैं । उन्हींसे प्रकट हुए पुराणोंका मैंने अपने पिताजीके पास रहकर अध्ययन किया है । पुराण सब शास्त्रोंके पहलेसे विद्यमान हैं । ब्रह्माजीने [कल्पके आदिमें] सबसे पहले पुराणोका ही स्मरण किया था । पुराण त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और कामके साधक एवं परम पवित्र हैं । उनकी रचना सौ करोड़ श्लोकोंमें हुई है ।* समयके अनुसार इतने बड़े पुराणोका श्रवण और पठन असम्भव देखकर स्वयं भगवान् उनका संक्षेप करनेके लिये प्रत्येक द्वापरयुगमे व्यासरूपसे अवतार लेते हैं और पुराणोको अठारह भागोमे बाँटकर उन्हे चार लाख श्लोकोंमे सीमित कर देते हैं । पुराणोंका यह संक्षिप्त संस्करण ही इस भूमण्डलमें प्रकाशित होता है । देवलोकोमे आज भी सौ करोड़ श्लोकोंका विस्तृत पुराण मौजूद है ।

* पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ (१ । ५३)

अब मैं परम पवित्र पद्मपुराणका वर्णन आरम्भ करता हूँ। उसमें पाँच खण्ड और पचपन हजार श्लोक हैं। पद्मपुराणमें सबसे पहले सृष्टिखण्ड है। उसके बाद भूमिखण्ड आता है। फिर स्वर्गखण्ड और उसके पश्चात् पातालखण्ड है। तदनन्तर परम उत्तम उत्तर-खण्डका वर्णन आया है। इतना ही पद्मपुराण है। भगवान्‌की नाभिसे जो महान् पद्म (कमल) प्रकट हुआ था, जिससे इस जगत्‌की उत्पत्ति हुई है, उसीके वृत्तान्तका आश्रय लेकर यह पुराण प्रकट हुआ है; इसलिये इसे पद्मपुराण कहते हैं। यह पुराण स्वभावसे ही निर्मल है, उसपर भी इसमें श्रीविष्णुभगवान्‌के माहात्म्यका वर्णन होनेसे इसकी निर्मलता और भी बढ़ गयी है। देवाधिदेव भगवान् विष्णुने पूर्वकालमें ब्रह्माजीके प्रति जिसका उपदेश किया था तथा ब्रह्माजीने जिसे अपने पुत्र मरीचिको सुनाया था वही यह पद्मपुराण है। ब्रह्माजीने ही इसे इस जगत्‌में प्रचलित किया है।

भीष्म और पुलस्त्यका संवाद—सृष्टि-क्रमका वर्णन तथा भगवान् विष्णुकी महिमा

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! जो सृष्टिरूप मूल प्रकृतिके ज्ञाता तथा इन भावात्मक पदार्थोंके द्रष्टा हैं, जिन्होंने इस लोककी रचना की है, जो लोकतत्त्वके ज्ञाता तथा योग-वेत्ता हैं, जिन्होंने योगका आश्रय लेकर सम्पूर्ण चराचर जीवोंकी सृष्टि की है और जो समस्त भूतों तथा अखिल विश्वके स्वामी हैं, उन सच्चिदानन्द परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। फिर ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र, अन्य लोकपाल तथा सूर्यदेवको एकाग्रचित्तसे नमस्कार करके ब्रह्मस्वरूप वेदव्यासजीको प्रणाम करता हूँ। उन्हींसे इस पुराण-विद्याको प्राप्त करके मैं आपके समक्ष प्रकाशित करता हूँ। जो नित्य, सदसत्स्वरूप, अव्यक्त एवं सबका कारण है, वह ब्रह्म ही महत्तत्त्वसे लेकर विशेष-पर्यन्त विशाल ब्रह्माण्डकी सृष्टि करता है। यह विद्वानोंका निश्चित सिद्धान्त है। सबसे पहले हिरण्यमय (तेजोमय) अण्डमें ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ। वह अण्ड सब ओर जलसे घिरा है। जलके बाहर तेजका घेरा और तेजके बाहर वायुका आवरण है। वायु आकाशसे और आकाश भूतादि (तामस अहंकार) से घिरा है। अहंकारको महत्तत्त्वने घेर रखा है और महत्तत्त्व अव्यक्त—मूल प्रकृतिसे घिरा है। उक्त अण्डको ही सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्तिका आश्रय बताया गया है। इसके सिवा, इस पुराणमें नदियों और पर्वतोंकी उत्पत्तिका बारंबार वर्णन आया है। मन्वन्तरों और कल्पोंका भी संक्षेपमें वर्णन है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने महात्मा पुलस्त्य-को इस पुराणका उपदेश दिया था। फिर पुलस्त्यने इसे गङ्गाद्वार (हरिद्वार) में भीष्मजीको सुनाया था। इस पुराणका पठन, श्रवण तथा विशेषतः स्मरण धन, यश और आयुको बढ़ानेवाला एवं सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। जो द्विज अङ्गों और उपनिषदोंसहित चारों वेदोंका ज्ञान रखता है, उसकी अपेक्षा वह अधिक विद्वान् है जो केवल इस पुराणका ज्ञाता है।* इतिहास और पुराणोंके सहारे ही वेदकी व्याख्या करनी चाहिये; क्योंकि वेद अल्पज्ञ विद्वान्‌से यह सोचकर डरता रहता है कि कहीं यह मुझपर प्रहार न कर बैठे—अर्थका अनर्थ न कर बैठे। [तात्पर्य यह कि पुराणोंका अध्ययन किये बिना वेदार्थका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता।] †

यह सुनकर ऋषियोंने सूतजीसे पूछा—'मुने ! भीष्मजी-के साथ पुलस्त्य ऋषिका समागम कैसे हुआ ? पुलस्त्यमुनि तो ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। मनुष्योंको उनका दर्शन होना दुर्लभ है। महाभाग ! भीष्मजीको जिस स्थानपर और जिस प्रकार पुलस्त्यजीका दर्शन हुआ, वह सब हमें बतलाइये।'

सूतजीने कहा—महात्माओ ! साधुओंका हित करने-वाली विश्वपावनी महाभागा गङ्गाजी जहाँ पर्वत-मालाओंको भेदकर बड़े वेगसे बाहर निकली हैं, वह महान् तीर्थ गङ्गाद्वारके नामसे विख्यात है। पितृभक्त भीष्मजी वहीं निवास करते थे। वे ज्ञानोपदेश सुननेकी इच्छासे बहुत दिनोंसे महापुरुषोंके नियमका पालन करते थे। स्वाध्याय और तर्पणके द्वारा देवताओं और पितरोंकी तृप्ति तथा अपने शरीरका शोषण करते हुए भीष्मजीके ऊपर भगवान् ब्रह्मा

---

* यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
पुराणं च विजानाति यः स तस्माद् विचक्षणः॥ (२। ५०-५१)

† इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥ (२। ५१-५२)

बहुत प्रसन्न हुए। वे अपने पुत्र मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यजीसे इस प्रकार बोले—'बेटा ! तुम कुरुवंशका भार वहन करनेवाले वीरवर देवव्रतके, जिन्हें भीष्म भी कहते हैं, समीप जाओ। उन्हें तपस्यासे निवृत्त करो और इसका कारण भी बतलाओ। महाभाग भीष्म अपनी पितृभक्तिके कारण भगवान्‌का ध्यान करते हुए गङ्गाद्वारमें निवास करते हैं। उनके मनमें जो-जो कामना हो, उसे शीघ्र पूर्ण करो; विलम्ब नहीं होना चाहिये।'

पितामहका वचन सुनकर मुनिवर पुलस्त्यजी गङ्गाद्वारमें आये और भीष्मजीसे इस प्रकार बोले—'वीर ! तुम्हारा कल्याण हो; तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार कोई वर माँगो। तुम्हारी तपस्यासे साक्षात् भगवान् ब्रह्माजी प्रसन्न हुए हैं। उन्होंने ही मुझे यहाँ भेजा है। मैं तुम्हें मनोवाञ्छित वरदान दूँगा।' पुलस्त्यजीका वचन मन और कानोंको सुख पहुँचानेवाला था। उसे सुनकर भीष्मने आँखें खोल दीं और देखा पुलस्त्यजी सामने खड़े हैं। उन्हें देखते ही भीष्मजी उनके चरणोंपर गिर पड़े। उन्होंने अपने सम्पूर्ण शरीरसे पृथ्वीका स्पर्श करते हुए उन मुनिश्रेष्ठको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—'भगवन् ! आज मेरा जन्म सफल हो गया। यह दिन बहुत ही सुन्दर है; क्योंकि आज आपके विश्ववन्द्य चरणोंका मुझे दर्शन प्राप्त हुआ है। आज आपने दर्शन दिया और विशेषतः मुझे वरदान देनेके लिये गङ्गाजीके तटपर पदार्पण किया: इतनेसे ही मुझे अपनी तपस्याका सारा फल मिल गया। यह कुशकी चटाई है, इसे मैंने अपने हाथों बनाया है और [जहाँतक हो सका है] इस बातका भी प्रयत्न किया है कि यह बैठनेवालेके लिये आराम देनेवाली हो; अतः आप इसपर विराजमान हों। यह पलाशके दोनेमें अर्घ्य प्रस्तुत किया गया है; इसमें दूब, चावल, फूल, कुश, सरसों, दही, शहद, जौ और दूध भी मिले हुए हैं। प्राचीन कालके ऋषियोंने यह अष्टाङ्ग अर्घ्य ही अतिथिको अर्पण करनेयोग्य बतलाया है।'

अमिततेजस्वी भीष्मके ये वचन सुनकर ब्रह्माजीके पुत्र पुलस्त्यमुनि कुशासनपर बैठ गये। उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ पाद्य और अर्घ्य स्वीकार किया। भीष्मजीके शिष्टाचारसे उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ। वे प्रसन्न होकर बोले—'महाभाग ! तुम सत्यवादी, दानशील और सत्यप्रतिज्ञ राजा हो। तुम्हारे अंदर लज्जा, मैत्री और क्षमा आदि सद्गुण शोभा पा रहे हैं। तुम अपने पराक्रमसे शत्रुओंको



दमन करनेमें समर्थ हो। साथ ही धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दयालु, मधुरभाषी, सम्मानके योग्य पुरुषोंको सम्मान देनेवाले, विद्वान्, ब्राह्मणभक्त तथा साधुओंपर स्नेह रखनेवाले हो। वत्स ! तुम प्रणामपूर्वक मेरी शरण आये हो; अतः मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहो, पूछो; मैं तुम्हारे प्रत्येक प्रश्नका उत्तर दूँगा।'

भीष्मजीने कहा—भगवन् ! पूर्वकालमें भगवान् ब्रह्माजीने किस स्थानपर रहकर देवताओं आदिकी सृष्टि की थी, यह मुझे बताइये। उन महात्माने कैसे ऋषियों तथा देवताओंको उत्पन्न किया ? कैसे पृथ्वी बनायी ? किस तरह आकाशकी रचना की और किस प्रकार इन समुद्रोंको प्रकट किया ? भयङ्कर पर्वत, वन और नगर कैसे बनाये ! मुनियों, प्रजापतियों, श्रेष्ठ सप्तर्षियों और भिन्न-भिन्न वर्णोंको, वायुको, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों, तीर्थों, नदियों, सूर्यादि ग्रहों तथा तारोंको भगवान् ब्रह्माने किस तरह उत्पन्न किया ? इन सब बातोंका वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजीने कहा—पुरुषश्रेष्ठ ! भगवान् ब्रह्मा साक्षात् परमात्मा हैं। वे परसे भी पर तथा अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। उनमें रूप और वर्ण आदिका अभाव है। वे यद्यपि सर्वत्र व्याप्त हैं, तथापि ब्रह्मरूपसे इस विश्वकी उत्पत्ति करनेके

कारण विद्वानोंके द्वारा ब्रह्मा कहलाते है। उन्होंने पूर्वकालमें जिस प्रकार सृष्टि-रचना की, वह सब मै बता रहा हूँ। सुनो, सृष्टिके प्रारम्भकालमें जब जगत्के स्वामी ब्रह्माजी कमलके आसनसे उठे, तब सबसे पहले उन्होंने महत्तत्त्वको प्रकट किया; फिर महत्तत्त्वसे वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) तथा भूतादिरूप तामस—तीन प्रकारका अहङ्कार उत्पन्न हुआ, जो कर्मेन्द्रियोंसहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियो तथा पञ्चभूतोंका कारण है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच भूत हैं। इनमेंसे एक-एकके स्वरूपका क्रमशः वर्णन करता हूँ। [भूतादि नामक तामस अहङ्कारने विकृत होकर शब्द-तन्मात्राको उत्पन्न किया, उससे शब्द गुणवाले आकाशका प्रादुर्भाव हुआ।] भूतादि (तामस अहङ्कार) ने शब्द-तन्मात्रारूप आकाशको सब ओरसे आच्छादित किया। [तब शब्द-तन्मात्रारूप आकाशने विकृत होकर स्पर्श-तन्मात्राकी रचना की।] उससे अत्यन्त बलवान् वायुका प्राकट्य हुआ, जिसका गुण स्पर्श माना गया है। तदनन्तर आकाशसे आच्छादित होनेपर वायु-तत्त्वमें विकार आया और उसने रूप-तन्मात्राकी सृष्टि की। वह वायुसे अग्निके रूपमें प्रकट हुई। रूप उसका गुण कहलाता है। तत्पश्चात् स्पर्श-तन्मात्रावाले वायुने रूप-तन्मात्रावाले तेजको सब ओरसे आवृत किया। इससे अग्नि-तत्त्वने विकार-को प्राप्त होकर रस-तन्मात्राको उत्पन्न किया। उससे जलकी उत्पत्ति हुई, जिसका गुण रस माना गया है। फिर रूप-तन्मात्रावाले तेजने रस-तन्मात्रारूप जल-तत्त्वको सब ओरसे आच्छादित किया। इससे विकृत होकर जलतत्त्वने गन्ध-तन्मात्राकी सृष्टि की, जिससे यह पृथ्वी उत्पन्न हुई। पृथ्वी-का गुण गन्ध माना गया है। इन्द्रियाँ तैजस कहलाती हैं [क्योंकि वे राजस अहङ्कारसे प्रकट हुई हैं]। इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता वैकारिक कहे गये हैं [क्योंकि उनकी उत्पत्ति सात्त्विक अहङ्कारसे हुई है]। इस प्रकार इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता और ग्यारहवाँ मन—ये वैकारिक माने गये हैं। त्वचा, चक्षु, नासिका, जिह्वा और श्रोत्र—ये पाँच इन्द्रियाँ शब्दादि विषयोंका अनुभव करानेके साधन हैं। अतः इन पाँचोंको बुद्धियुक्त अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं। गुदा, उपस्थ, हाथ, पैर और वाक्—ये क्रमशः मलत्याग, मैथुनजनित सुख, शिल्पनिर्माण (हस्तकौशल), गमन और शब्दोच्चारण—इन कर्मोंमें सहायक हैं। इसलिये इन्हें कर्मेन्द्रिय माना गया है।

वीर! आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये क्रमशः शब्दादि उत्तरोत्तर गुणोंसे युक्त हैं अर्थात् आकाशका गुण शब्द; वायुके गुण शब्द और स्पर्श; तेजके गुण शब्द, स्पर्श और रूप; जलके शब्द, स्पर्श, रूप और रस तथा पृथ्वीके शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध—ये सभी गुण हैं। उक्त पाँचों भूत शान्त, घोर और मूढ़ हैं*। अर्थात् सुख, दुःख और मोहसे युक्त हैं। अतः ये विशेष कहलाते हैं। ये पाँचों भूत अलग-अलग रहनेपर भिन्न-भिन्न प्रकारकी शक्तियों-से सम्पन्न हैं। अतः परस्पर संगठित हुए बिना—पूर्णतया मिले बिना ये प्रजाकी सृष्टि करनेमें समर्थ न हो सके। इसलिये [परमपुरुष परमात्माने संकल्पके द्वारा इनमें प्रवेश किया। फिर तो] महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सभी तत्त्व पुरुषद्वारा अधिष्ठित होनेके कारण पूर्णरूपसे एकत्वको प्राप्त हुए। इस प्रकार परस्पर मिलकर तथा एक दूसरेका आश्रय ले उन्होंने अण्डकी उत्पत्ति की। भीष्मजी! उस अण्डमें ही पर्वत और द्वीप आदिके सहित समुद्र, ग्रहों और तारोंसहित सम्पूर्ण लोक तथा देवता, असुर और मनुष्योंसहित समस्त प्राणी उत्पन्न हुए हैं। वह अण्ड पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा दसगुने अधिक जल, अग्नि, वायु, आकाश और भूतादि अर्थात् तामस अहङ्कारसे आवृत है। भूतादि महत्तत्त्वसे घिरा है। तथा इन सबके सहित महत्तत्त्व भी अव्यक्त (प्रधान या मूल प्रकृति) के द्वारा आवृत है।

भगवान् विष्णु स्वयं ही ब्रह्मा होकर संसारकी सृष्टिमें प्रवृत्त होते हैं तथा जबतक कल्पकी स्थिति बनी रहती है, तबतक वे ही युग-युगमें अवतार धारण करके समूची सृष्टिकी रक्षा करते हैं। वे विष्णु सत्त्वगुण धारण किये रहते हैं; उनके पराक्रमकी कोई सीमा नहीं है। राजेन्द्र! जब कल्पका अन्त होता है, तब वे ही अपना तमःप्रधान रौद्र रूप प्रकट करते हैं और अत्यन्त भयानक आकार धारण करके सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार करते हैं। इस प्रकार सब भूतोका नाश करके संसारको एकार्णवके जलमे निमग्न कर वे सर्वरूपधारी भगवान् स्वयं शेषनागकी शय्यापर शयन करते हैं। फिर जागनेपर ब्रह्माका रूप धारण करके वे नये सिरेसे संसारकी सृष्टि करने लगते हैं। इस तरह एक ही भगवान् जनार्दन सृष्टि, पालन

* एक-दूसरेसे मिलनेपर सभी भूत शान्त, घोर और मूढ़ प्रतीत होते हैं। पृथक्-पृथक् देखनेपर तो पृथ्वी और जल शान्त हैं, तेज और वायु घोर हैं तथा आकाश मूढ़ है।

और संहार करनेके कारण ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव नाम धारण करते हैं।* वे प्रभु स्रष्टा होकर स्वयं अपनी ही सृष्टि करते हैं, पालक होकर पालनीय रूपसे अपना ही पालन करते हैं और संहारकारी होकर स्वयं अपना ही संहार करते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—सब वे ही हैं; क्योंकि अविनाशी विष्णु ही सब भूतोंके ईश्वर और विश्वरूप हैं। इसलिये प्राणियोंमें स्थित सर्ग आदि भी उन्हींके सहायक हैं।

ब्रह्माजीकी आयु तथा युग आदिका कालमान, भगवान् वराहद्वारा पृथ्वीका रसातलसे उद्धार और ब्रह्माजीके द्वारा रचे हुए विविध सर्गोंका वर्णन

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! ब्रह्माजी सर्वज्ञ एवं साक्षात् नारायणके स्वरूप हैं। वे उपचारसे—आरोपद्वारा ही 'उत्पन्न हुए' कहलाते हैं। वास्तवमें तो वे नित्य ही हैं। अपने निजी मानसे उनकी आयु सौ वर्षकी मानी गयी है। वह ब्रह्माजीकी आयु 'पर' कहलाती है, उसके आधे भागको परार्ध कहते हैं। पंद्रह निमेषकी एक काष्ठा होती है। तीस काष्ठाओंकी एक कला और तीस कलाओंका एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्तोंके कालको मनुष्यका एक दिन-रात माना गया है। तीस दिन-रातका एक मास होता है। एक मासमें दो पक्ष होते हैं। छः महीनोंका एक अयन और दो अयनोंका एक वर्ष होता है। अयन दो है, दक्षिणायन और उत्तरायण। दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि है और उत्तरायण उनका दिन है। देवताओंके बारह हजार वर्षोंके चार युग होते हैं, जो क्रमशः सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगके नामसे प्रसिद्ध हैं। अब इन युगोंका वर्ष-विभाग सुनो। पुरातत्त्वके ज्ञाता विद्वान् पुरुष कहते हैं कि सत्ययुग आदिका परिमाण क्रमशः चार, तीन, दो और एक हजार दिव्य वर्ष हैं। प्रत्येक युगके आरम्भमें उतने ही सौ वर्षोंकी सन्ध्या कही जाती है और युगके अन्तमें सन्ध्यांश होता है। सन्ध्यांशका मान भी उतना ही है, जितना सन्ध्याका। नृपश्रेष्ठ! सन्ध्या और सन्ध्यांशके बीचका जो समय है, उसीको युग समझना चाहिये। वही सत्ययुग और त्रेता आदिके नामसे प्रसिद्ध है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये सब मिलकर चतुर्युग कहलाते हैं। ऐसे एक हजार चतुर्युगोंको ब्रह्माका एक दिन कहा जाता है।†

राजन्! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं। उनके समयका परिमाण सुनो। सप्तर्षि, देवता, इन्द्र, मनु और मनुके पुत्र—ये एक ही समयमें उत्पन्न होते हैं तथा अन्तमें साथ-ही-साथ इनका संहार भी होता है। इकहत्तर चतुर्युगसे कुछ अधिक कालका एक मन्वन्तर होता है।‡ यही मनु और देवताओं आदिका समय है। इस प्रकार दिव्य वर्षगणनाके अनुसार आठ लाख, बावन हजार वर्षोंका एक मन्वन्तर होता है।

* सृष्टिस्थित्यन्तकरणाद् ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः। स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥ (२।११४)

† युगों तथा ब्रह्माके दिनकी वर्ष-संख्या इस प्रकार समझनी चाहिये। सत्ययुगका मान चार हजार दिव्य वर्ष है, उसके आरम्भमें चार सौ वर्षोंकी सन्ध्या और अन्तमें चार सौ वर्षोंका सन्ध्यांश होता है; इस प्रकार सन्ध्या और सन्ध्यांशसहित सत्ययुगकी अवधि चार हजार आठ सौ (४८००) दिव्य वर्षोंकी है। इसी तरह त्रेताका युगमान ३००० दिव्य वर्ष, सन्ध्या-मान ३०० वर्ष और सन्ध्यांश-मान ३०० वर्ष है: अतः उसकी पूरी अवधि ३६०० दिव्य वर्षोंकी हुई। द्वापरका युगमान २००० वर्ष, सन्ध्या-मान २०० वर्ष और सन्ध्यांश-मान २०० वर्ष है; अतः उसका मान २४०० दिव्य वर्षोंका हुआ। कलियुगका युगमान १००० वर्ष, सन्ध्या-मान १०० वर्ष और सन्ध्यांश-मान १०० वर्ष है; इसलिये उसकी आयु १२०० दिव्य वर्षोंकी हुई। देवताओंका वर्ष मानव-वर्षसे ३६० गुना अधिक होता है; अतः मानववर्षके अनुसार कलियुगकी आयु ४, ३२, ००० वर्षोंकी, द्वापरकी ८, ६४, ०००, वर्षोंकी, त्रेताकी १२, ९६, ००० वर्षोंकी तथा सत्ययुगकी आयु १७, २८, ००० वर्षोंकी है। इनका कुल योग ४३, २०, ००० वर्ष हुआ। यह एक चतुर्युगका मान है। ऐसे एक हजार चतुर्युगोंका अर्थात् हमारे ४, ३२, ००, ००, ००० (चार अरब बत्तीस करोड़) वर्षोंका ब्रह्माका एक दिन होता है।

‡ ब्रह्माजीके एक दिनमें चौदह मन्वन्तर होते हैं; इकहत्तर चतुर्युगोंके हिसाबसे चौदह मन्वन्तरोंमें ९९४ चतुर्युग होते हैं। परन्तु ब्रह्माका दिन एक हजार चतुर्युगोंका माना गया है; अतः छः चतुर्युग और बचे। छः चतुर्युगका चौदहवाँ भाग कुछ कम पाँच हजार एक सौ तीन दिव्य वर्षोंका होता है। इस प्रकार एक मन्वन्तरमें इकहत्तर चतुर्युगके अतिरिक्त इतने दिव्य वर्ष और अधिक होते हैं।

महामते ! मानव-वर्षोंसे गणना करनेपर मन्वन्तरका कालमान पूरे तीस करोड़, सरसठ लाख, बीस हजार वर्ष होता है। इससे अधिक नहीं।* इस कालको चौदह गुना करनेपर ब्रह्माके एक दिनका मान होता है। उसके अन्तमें नैमित्तिक नामवाला ब्राह्म-प्रलय होता है। उस समय भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक—सम्पूर्ण त्रिलोकी दग्ध होने लगती है और महर्लोकमें निवास करनेवाले पुरुष आँचसे सन्तप्त होकर जनलोकमें चले जाते हैं। दिनके बराबर ही अपनी रात बीत जानेपर ब्रह्माजी पुनः संसारकी सृष्टि करते हैं। इस प्रकार [पक्ष, मास आदिके क्रमसे धीरे-धीरे] ब्रह्माजीका एक वर्ष व्यतीत होता है तथा इसी क्रमसे उनके सौ वर्ष भी पूरे हो जाते हैं। सौ वर्ष ही उन महात्माकी पूरी आयु है।

भीष्मजीने कहा—महामुने ! कल्पके आदिमें नारायण-संज्ञक भगवान् ब्रह्माने जिस प्रकार सम्पूर्ण भूतोंकी सृष्टि की, उसका आप वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन् ! सबकी उत्पत्तिके कारण और अनादि भगवान् ब्रह्माजीने जिस प्रकार प्रजावर्गकी सृष्टि की, वह बताता हूँ; सुनो। जब पिछले कल्पका अन्त हुआ, उस समय रात्रिमें सोकर उठनेपर सत्त्वगुणके उद्रेकसे युक्त प्रभु ब्रह्माजीने देखा कि सम्पूर्ण लोक सूना हो रहा है। तब उन्होंने यह जानकर कि पृथ्वी एकार्णवके जलमें डूब गयी है और इस समय पानीके भीतर ही स्थित है, उसको निकालनेकी इच्छासे कुछ देरतक विचार किया। फिर वे यज्ञमय वाराहका स्वरूप धारणकर जलके भीतर प्रविष्ट हुए। भगवान्‌को पाताललोकमें आया देख पृथ्वीदेवी भक्तिसे विनम्र हो गयीं और उनकी स्तुति करने लगीं।

पृथ्वी बोलीं—भगवन् ! आप सर्वभूतस्वरूप परमात्मा हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप इस पाताललोकसे मेरा उद्धार कीजिये। पूर्वकालमें मैं आपसे ही उत्पन्न हुई थी। परमात्मन् ! आपको नमस्कार है। आप सबके अन्तर्यामी हैं, आपको प्रणाम है। प्रधान (कारण) और व्यक्त (कार्य) आपके ही स्वरूप हैं। काल भी आप ही हैं, आपको नमस्कार है। प्रभो ! जगत्‌की सृष्टि आदिके समय आप ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप धारण करके सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं, यद्यपि आप इन सबसे परे हैं। मुमुक्षु पुरुष आपकी आराधना करके मुक्त हो परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो गये हैं। भला, आप वासुदेवकी आराधना किये बिना कौन मोक्ष पा सकता है। जो मनसे ग्रहण करने योग्य, नेत्र आदि इन्द्रियोंद्वारा अनुभव करने योग्य तथा बुद्धिके द्वारा विचारणीय है, वह सब आपहीका रूप है। नाथ ! आप ही मेरे उपादान हैं, आप ही आधार हैं, आपने ही मेरी सृष्टि की है तथा मैं आपहीकी शरणमें हूँ; इसीलिये इस जगत्‌के लोग मुझे 'माधवी' कहते हैं।

पृथ्वीने जब इस प्रकार स्तुति की, तब उन परम कान्तिमान् भगवान् धरणीधरने घर्घर स्वरमें गर्जना की। सामवेद ही उनकी उस ध्वनिके रूपमें प्रकट हुआ। उनके नेत्र खिले



* यह वर्ष-संख्या पूरे इकहत्तर चतुर्युगोंका मन्वन्तर मानकर निकाली गयी है; इस हिसाबसे ब्रह्माजीके दिनका मान ४, २९, ४०, ८०, ००० (चार अरब, उनतीस करोड़, चालीस लाख, अस्सी हजार) मानव-वर्ष होता है। परन्तु पहले बता आये हैं कि इकहत्तर चतुर्युगसे कुछ अधिक कालका मन्वन्तर होता है। वह अधिक काल है—छः चतुर्युगका चौदहवाँ भाग। उसको भी जोड़ लेनेपर मन्वन्तरका काल ऊपर दी हुई संख्यासे अधिक होगा और उस हिसाबसे ब्रह्माजीका दिनमान चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्षोंका ही होगा।

हुए कमलके समान शोभा पा रहे थे तथा शरीर कमलके पत्तेके समान श्याम रंगका था। उन महावराहरूपधारी भगवान्‌ने पृथ्वीको अपनी दाढ़ोंपर उठा लिया और रसातलसे वे ऊपरकी ओर उठे। उस समय उनके मुखसे निकली हुई साँसके आघातसे उछले हुए उस प्रलयकालीन जलने जनलोकमें रहनेवाले सनन्दन आदि मुनियोंको भिगोकर निष्पाप कर दिया। [निष्पाप तो वे थे ही, उन्हें और भी पवित्र बना दिया।] भगवान् महावराहका उदर जलसे भीगा हुआ था। जिस समय वे अपने वेदमय शरीरको कँपाते हुए पृथ्वीको लेकर उठने लगे, उस समय आकाशमें स्थित महर्षिगण उनकी स्तुति करने लगे।

ऋषियोंने कहा—जनेश्वरोंके भी परमेश्वर केशव! आप सबके प्रभु हैं। गदा, शङ्ख, उत्तम खड्ग और चक्र धारण करनेवाले हैं। सृष्टि, पालन और संहारके कारण तथा ईश्वर भी आप ही हैं। जिसे परमपद कहते हैं, वह भी आपसे भिन्न नहीं है। प्रभो! आपका प्रभाव अतुलनीय है। पृथ्वी और आकाशके बीच जितना अन्तर है, वह सब आपके ही शरीरसे व्याप्त है। इतना ही नहीं, यह सम्पूर्ण जगत् भी आपसे व्याप्त है। भगवन्! आप इस विश्वका हित-साधन कीजिये। जगदीश्वर! एकमात्र आप ही परमात्मा हैं, आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। आपकी ही महिमा है, जिससे यह चराचर जगत् व्याप्त हो रहा है। यह सारा जगत् ज्ञानस्वरूप है, तो भी अज्ञानी मनुष्य इसे पदार्थ-रूप देखते हैं; इसीलिये उन्हे संसार-समुद्रमें भटकना पड़ता है। परन्तु परमेश्वर! जो लोग विज्ञानवेत्ता हैं, जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, वे समस्त संसारको ज्ञानमय ही देखते हैं, आपका स्वरूप ही समझते हैं। सर्वभूतस्वरूप परमात्मन्! आप प्रसन्न होइये। आपका स्वरूप अप्रमेय है। प्रभो! भगवन्! आप सबके उद्भवके लिये इस पृथ्वीका उद्धार एवं सम्पूर्ण जगत्‌का कल्याण कीजिये।

राजन्! सनकादि मुनि जब इस प्रकार स्तुति कर रहे थे, उस समय पृथ्वीको धारण करनेवाले परमात्मा महावराह शीघ्र ही इस वसुन्धराको ऊपर उठा लाये और उसे महासागरके जलपर स्थापित किया। उस जलराशिके ऊपर यह पृथ्वी एक बहुत बड़ी नौकाकी भाँति स्थित हुई। तत्पश्चात् भगवान्‌ने पृथ्वीके कई विभाग करके सात द्वीपोंका निर्माण किया तथा भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक और महर्लोक—इन चारों लोकोंकी पूर्ववत् कल्पना की। तदनन्तर ब्रह्माजीने भगवान्‌से कहा, 'प्रभो! मैंने इस समय जिन प्रधान-प्रधान असुरोंको वरदान दिया है, उनको देवताओंकी भलाईके लिये आप मार डालें। मैं जो सृष्टि रचूँगा, उसका आप पालन करें।' उनके ऐसा कहनेपर भगवान् विष्णु 'तथास्तु' कहकर चले गये और ब्रह्माजीने देवता आदि प्राणियोंकी सृष्टि आरम्भ की। महत्तत्त्वकी उत्पत्तिको ही ब्रह्माकी प्रथम सृष्टि समझना चाहिये। तन्मात्राओंका आविर्भाव दूसरी सृष्टि है, उसे भूतसर्ग भी कहते हैं। वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहङ्कारसे जो इन्द्रियोंकी उत्पत्ति हुई है, वह तीसरी सृष्टि है; उसीका दूसरा नाम ऐन्द्रिय सर्ग है। इस प्रकार यह प्राकृत सर्ग है, जो अबुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुआ है। चौथी सृष्टिका नाम है मुख्य सर्ग। पर्वत और वृक्ष आदि स्थावर वस्तुओंको मुख्य कहते हैं। तिर्यक्स्रोत कहकर जिनका वर्णन किया गया है, वे (पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग आदि) ही पाँचवीं सृष्टिके अन्तर्गत हैं; उन्हें तिर्यक् योनि भी कहते हैं। तत्पश्चात् ऊर्ध्वरेता देवताओंका सर्ग है, वही छठी सृष्टि है और उसीको देवसर्ग भी कहते हैं। तदनन्तर सातवीं सृष्टि अर्वाक्स्रोताओंकी है, वही मानव-सर्ग कहलाता है। आठवाँ अनुग्रह-सर्ग है, वह सात्त्विक भी है और तामस भी। इन आठ सर्गोंमेंसे अन्तिम पाँच वैकृत-सर्ग माने गये हैं तथा आरम्भके तीन सर्ग प्राकृत बताये गये हैं। नवाँ कौमार सर्ग है, वह प्राकृत भी है वैकृत भी। इस प्रकार जगत्‌की रचनामें प्रवृत्त हुए जगदीश्वर प्रजापतिके ये प्राकृत और वैकृत नामक नौ सर्ग तुम्हें बतलाये गये; जो जगत्‌के मूल कारण हैं। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?

भीष्मजीने कहा—गुरुदेव! आपने देवताओं आदिकी सृष्टि थोड़ेमें ही बतायी है। मुनिश्रेष्ठ! अब मैं उसे आपके मुखसे विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! सम्पूर्ण प्रजा अपने पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंसे प्रभावित रहती है; अतः प्रलयकालमें सबका संहार हो जानेपर भी वह उन कर्मोंके संस्कारसे मुक्त नहीं हो पाती। जब ब्रह्माजी सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त हुए, उस समय उनसे देवताओंसे लेकर स्थावरपर्यन्त चार प्रकारकी प्रजा उत्पन्न हुई; वे चारों [ब्रह्माजीके मानसिक संकल्पसे प्रकट होनेके कारण] मानसी प्रजा कहलायीं। तदनन्तर प्रजापतिने देवता, असुर, पितर और मनुष्य—इन चार प्रकारके प्राणियोंकी तथा जलकी भी सृष्टि करनेकी इच्छासे अपने शरीरका उपयोग किया। उस समय सृष्टिकी इच्छावाले

मुक्तात्मा प्रजापतिकी जङ्घासे पहले दुरात्मा असुरोंकी उत्पत्ति हुई। उनकी सृष्टिके पश्चात् भगवान् ब्रह्माने अपनी वयस् (आयु) से इच्छानुसार वयों (पक्षियों)को उत्पन्न किया। फिर अपनी भुजाओंसे भेड़ों और मुखसे बकरोंकी रचना की। इसी प्रकार अपने पेटसे गायों और भैंसोंको तथा पैरोंसे घोड़े, हाथी, गदहे, नीलगाय, हरिन, ऊँट, खच्चर तथा दूसरे-दूसरे पशुओंकी सृष्टि की। ब्रह्माजीकी रोमावलियोंसे फल, मूल तथा भाँति-भाँतिके अन्नोंका प्रादुर्भाव हुआ। गायत्री छन्द, ऋग्वेद, त्रिवृत्स्तोम, रथन्तर तथा अग्निष्टोम यज्ञको प्रजापतिने अपने पूर्ववर्ती मुखसे प्रकट किया। यजुर्वेद, त्रिष्टुप् छन्द, पञ्चदशस्तोम, बृहत्साम और उक्थकी दक्षिणवाले मुखसे रचना की। सामवेद जगती छन्द, सप्तदशस्तोम, वैरूप और अतिरात्रभागकी सृष्टि पश्चिम मुखसे की तथा एकविंशस्तोम, अथर्ववेद, आप्तोर्याम, अनुष्टुप् छन्द और वैराजको उत्तरवर्ती मुखसे उत्पन्न किया। छोटे-बड़े जितने भी प्राणी हैं, सब प्रजापतिके विभिन्न अङ्गोंसे उत्पन्न हुए। कल्पके आदिमें प्रजापति ब्रह्माने देवताओं, असुरों, पितरों और मनुष्योंकी सृष्टि करके फिर यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, किन्नर, राक्षस, सिंह, पक्षी, मृग और सर्पोंको उत्पन्न किया। नित्य और अनित्य जितना भी यह चराचर जगत् है, सबको आदिकर्ता भगवान् ब्रह्माने उत्पन्न किया। उन उत्पन्न हुए प्राणियोंमेंसे जिन्होंने पूर्वकल्पमें जैसे कर्म किये थे, वे पुनः बारंबार जन्म लेकर वैसे ही कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार भगवान् विधाताने ही इन्द्रियोंके विषयों, भूतों और शरीरोंमें विभिन्नता एवं पृथक्-पृथक् व्यवहार उत्पन्न किया। उन्होंने कल्पके आरम्भमें वेदके अनुसार देवता आदि प्राणियोंके नाम, रूप और कर्तव्यका विस्तार किया। ऋषियों तथा अन्यान्य प्राणियोंके भी वेदानुकूल नाम और उनके यथायोग्य कर्मोंको भी ब्रह्माजीने ही निश्चित किया। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न ऋतुओंके बारंबार आनेपर उनके विभिन्न प्रकारके चिह्न पहलेके समान ही प्रकट होते हैं, उसी प्रकार सृष्टिके आरम्भमें सारे पदार्थ पूर्व कल्पके अनुसार ही दृष्टिगोचर होते हैं। सृष्टिके लिये इच्छुक तथा सृष्टिकी शक्तिसे युक्त ब्रह्माजी कल्पके आदिमें बारंबार ऐसी ही सृष्टि किया करते हैं।

यज्ञके लिये ब्राह्मणादि वर्णों तथा अन्नकी सृष्टि, मरीचि आदि प्रजापति, रुद्र तथा स्वायम्भुव मनु आदिकी उत्पत्ति और उनकी संतान-परम्पराका वर्णन

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! आपने अर्वाक्स्रोत नामक सर्गका जो मानव सर्गके नामसे भी प्रसिद्ध है, संक्षेपसे वर्णन किया; अब उसीको विस्तारके साथ कहिये। ब्रह्माजीने मनुष्योंकी सृष्टि किस प्रकार की? महामुने! प्रजापतिने चारों वर्णों तथा उनके गुणोंको कैसे उत्पन्न किया? और ब्राह्मणादि वर्णोंके कौन-कौन-से कर्म माने गये हैं? इन सब बातोंका वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—कुरुश्रेष्ठ! सृष्टिकी इच्छा रखनेवाले ब्रह्माजीने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णोंको उत्पन्न किया। इनमें ब्राह्मण मुखसे, क्षत्रिय वक्षःस्थलसे, वैश्य जाँघोंसे और शूद्र ब्रह्माजीके पैरोंसे उत्पन्न हुए। महाराज! ये चारों वर्ण यज्ञके उत्तम साधन हैं; अतः ब्रह्माजीने यज्ञानुष्ठानकी सिद्धिके लिये ही इन सबकी सृष्टि की। यज्ञसे तृप्त होकर देवतालोग जलकी वृष्टि करते हैं, जिससे मनुष्योंकी भी तृप्ति होती है; अतः धर्ममय यज्ञ सदा ही कल्याणका हेतु है। जो लोग सदा अपने वर्णोचित कर्ममें लगे रहते हैं, जिन्होंने धर्म-विरुद्ध आचरणोंका परित्याग कर दिया है तथा जो सन्मार्गपर चलनेवाले हैं, वे श्रेष्ठ मनुष्य ही यज्ञका यथावत् अनुष्ठान करते हैं। राजन्! [यज्ञके द्वारा] मनुष्य इस मानव देहके त्यागके पश्चात् स्वर्ग और अपवर्ग भी प्राप्त कर सकते हैं तथा और भी जिस-जिस स्थानको पानेकी उन्हें इच्छा हो, उसी-उसीमें वे जा सकते हैं। नृपश्रेष्ठ! ब्रह्माजीके द्वारा चातुर्वर्ण्य-व्यवस्थाके अनुसार रची हुई प्रजा उत्तम श्रद्धाके साथ श्रेष्ठ आचारका पालन करने लगी। वह इच्छानुसार जहाँ चाहती, रहती थी। उसे किसी प्रकारकी बाधा नहीं सताती थी। समस्त प्रजाका अन्तःकरण शुद्ध था। वह स्वभावसे ही परम पवित्र थी। धर्मानुष्ठानके कारण उनकी पवित्रता और भी बढ़ गयी थी। प्रजाओंके पवित्र अन्तःकरणमें भगवान् श्रीहरिका निवास होनेके कारण सबको शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता था, जिससे सब लोग श्रीहरिके 'परब्रह्म' नामक परमपदका साक्षात्कार कर लेते थे।

तदनन्तर प्रजा जीविकाके साधन उद्योग-धंधे और खेती आदिका काम करने लगी। राजन्! धान, जौ, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, कँगनी, ज्वार, कोदो, चेना, उड़द, मूँग, मसूर, मटर, कुलथी, अरहर, चना और सन—ये सत्रह ग्रामीण अन्नोंकी जातियाँ हैं। ग्रामीण और जंगली दोनों प्रकारके मिलाकर चौदह अन्न यज्ञके उपयोगमें आनेवाले माने गये हैं। उनके नाम ये हैं—धान, जौ, उड़द, गेहूँ, महीन धान्य, तिल, सातवीं कँगनी और आठवीं कुलथी—ये ग्रामीण अन्न हैं तथा साँवाँ, तिन्नीका चावल, जर्तिल (वनतिल), गवेधु, वेणुयव और मक्का—ये छः जंगली अन्न हैं। ये चौदह अन्न यज्ञानुष्ठानकी सामग्री हैं तथा यज्ञ ही इनकी उत्पत्तिका प्रधान हेतु है। यज्ञके साथ ये अन्न प्रजाकी उत्पत्ति और वृद्धिके परम कारण हैं; इसलिये इहलोक और परलोकके ज्ञाता विद्वान् पुरुष इन्हींके द्वारा यज्ञोंका अनुष्ठान करते रहते हैं। नृपश्रेष्ठ! प्रतिदिन किया जानेवाला यज्ञानुष्ठान मनुष्योंका परम उपकारक तथा उन्हें शान्ति प्रदान करनेवाला होता है। [कृषि आदि जीविकाके साधनोंके सिद्ध हो जानेपर] प्रजापतिने प्रजाके स्थान और गुणोंके अनुसार उनमें धर्म-मर्यादाकी स्थापना की। फिर वर्ण और आश्रमोंके पृथक्-पृथक् धर्म निश्चित किये तथा स्वधर्मका भलीभाँति पालन करनेवाले सभी वर्णोंके लिये पुण्यमय लोकोंकी रचना की।

योगियोंको अमृतस्वरूप ब्रह्मधामकी प्राप्ति होती है, जो परम पद माना गया है। जो योगी सदा एकान्तमें रहकर यत्नपूर्वक ध्यानमें लगे रहते हैं, उन्हें वह उत्कृष्ट पद प्राप्त होता है, जिसका ज्ञानीजन ही साक्षात्कार कर पाते हैं। तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, घोर, असिपत्रवन, कालसूत्र और अवीचिमान् आदि जो नरक हैं, वे वेदोंकी निन्दा, यज्ञोंका उच्छेद तथा अपने धर्मका परित्याग करनेवाले पुरुषोंके स्थान बताये गये हैं।

ब्रह्माजीने पहले मनके संकल्पसे ही चराचर प्राणियोंकी सृष्टि की; किन्तु जब इस प्रकार उनकी सारी प्रजा [पुत्र, पौत्र आदिके क्रमसे] अधिक न बढ़ सकी, तब उन्होंने अपने ही सदृश अन्य मानस पुत्रोंको उत्पन्न किया। उनके नाम हैं—भृगु, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ। पुराणमें ये नौ* ब्रह्मा निश्चित किये गये हैं। इन भृगु आदिके भी पहले जिन सनन्दन आदि पुत्रोंको ब्रह्माजीने जन्म दिया था, उनके मनमें पुत्र उत्पन्न करनेकी इच्छा नहीं हुई; इसलिये वे सृष्टि-रचनाके कार्यमें नहीं फँसे। उन सबको स्वभावतः विज्ञानकी प्राप्ति हो गयी थी। वे मात्सर्य आदि दोषोंसे रहित और वीतराग थे। इस प्रकार संसारकी सृष्टिके कार्यसे उनके उदासीन हो जानेपर महात्मा ब्रह्माजीको महान् क्रोध हुआ, उनकी भौंहें तन गयीं और ललाट क्रोधसे उद्दीप्त हो उठा। इसी समय उनके ललाटसे मध्याह्नकालीन सूर्यके समान तेजस्वी रुद्र प्रकट हुए। उनका आधा शरीर स्त्रीका था और आधा पुरुषका। वे बड़े प्रचण्ड थे और उनका शरीर बड़ा विशाल था। तब ब्रह्माजी उन्हें यह आदेश देकर कि 'तुम अपने शरीरके दो भाग करो' वहाँसे अन्तर्धान हो गये। उनके ऐसा कहनेपर रुद्रने अपने शरीरके स्त्री और पुरुषरूप दोनों भागोंको पृथक्-पृथक् कर दिया और फिर पुरुष भागको ग्यारह रूपोंमें विभक्त किया। इसी प्रकार स्त्रीभागको भी अनेकों रूपोंमें प्रकट किया। स्त्री और पुरुष दोनों भागोंके वे भिन्न-भिन्न रूप, सौम्य, क्रूर, शान्त, श्याम और गौर आदि नाना प्रकारके थे।

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने अपनेसे उत्पन्न, अपने ही स्वरूपभूत स्वायम्भुवको प्रजापालनके लिये प्रथम मनु बनाया। स्वायम्भुव मनुने शतरूपा नामकी स्त्रीको, जो तपस्याके कारण पापरहित थी, अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार किया। देवी शतरूपाने स्वायम्भुव मनुसे दो पुत्र और दो कन्याओंको जन्म दिया। पुत्रोंके नाम थे—प्रियव्रत और उत्तानपाद तथा कन्याएँ प्रसूति और आकूतिके नामसे प्रसिद्ध हुईं। मनुने प्रसूतिका विवाह दक्षके साथ और आकूतिका रुचि प्रजापतिके साथ कर दिया। दक्षने प्रसूतिके गर्भसे चौबीस कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनके नाम हैं—श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, तुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और तेरहवीं कीर्ति। इन दक्ष-कन्याओंको भगवान् धर्मने अपनी पत्नियोंके रूपमें ग्रहण किया। इनसे छोटी ग्यारह कन्याएँ और थीं, जो ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा नामसे प्रसिद्ध हुईं। नृपश्रेष्ठ! इन ख्याति आदि कन्याओंको क्रमशः भृगु, शिव, मरीचि, अङ्गिरा और मुने (पुलस्त्य) तथा पुलह, क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ, अग्नि तथा पितरोंने ग्रहण किया। श्रद्धाने कामको, लक्ष्मीने दर्पको, धृतिने नियमको, तुष्टिने सन्तोषको और पुष्टिने लोभको जन्म दिया।

* संभवतः पुलस्त्यजीको मिलाकर ही नौ ब्रह्मा माने गये हैं।

मेधाने श्रुतको, क्रियाने दण्ड, नय और विनयको, बुद्धिने बोधको, लज्जाने विनयको, वपुने अपने पुत्र व्यवसायको, शान्तिने क्षेमको, सिद्धिने सुखको और कीर्तिने यशको उत्पन्न किया। ये ही धर्मके पुत्र हैं। कामसे उसकी पत्नी नन्दीने हर्ष नामक पुत्रको जन्म दिया, यह धर्मका पौत्र था। भृगुकी पत्नी ख्यातिने लक्ष्मीको जन्म दिया, जो देवाधिदेव भगवान् नारायणकी पत्नी हैं। भगवान् रुद्रने दक्षसुता सतीको पत्नीरूपमें ग्रहण किया, जिन्होंने अपने पितापर खीझकर शरीर त्याग दिया।

अधर्मकी स्त्रीका नाम हिंसा है। उससे अनृत नामक पुत्र और निकृति नामवाली कन्याकी उत्पत्ति हुई। फिर उन दोनोंने भय और नरक नामक पुत्र और माया तथा वेदना नामकी कन्याओंको उत्पन्न किया। माया भयकी और वेदना नरककी पत्नी हुई। उनमेंसे मायाने समस्त प्राणियोंका संहार करनेवाले मृत्यु नामक पुत्रको जन्म दिया और वेदनासे नरकके अंशसे दुःखकी उत्पत्ति हुई। फिर मृत्युसे व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोधका जन्म हुआ। ये सभी अधर्मस्वरूप हैं और दुःखोत्तर नामसे प्रसिद्ध हैं। इनके न कोई स्त्री है न पुत्र। ये सब-के-सब नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। राजकुमार भीष्म! ये ब्रह्माजीके रौद्र रूप हैं और ये ही संसारके नित्य प्रलयमें कारण होते हैं।

लक्ष्मीजीके प्रादुर्भावकी कथा, समुद्र-मन्थन और अमृत-प्राप्ति

भीष्मजीने कहा—मुने! मैंने तो सुना था लक्ष्मीजी क्षीर-समुद्रसे प्रकट हुई हैं; फिर आपने यह कैसे कहा कि वे भृगुकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे उत्पन्न हुई?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! तुमने मुझसे जो प्रश्न किया है, उसका उत्तर सुनो। लक्ष्मीजीके जन्मका सम्बन्ध समुद्रसे है, यह बात मैंने भी ब्रह्माजीके मुखसे सुन रखी है। एक समयकी बात है, दैत्यों और दानवोंने बड़ी भारी सेना लेकर देवताओंपर चढ़ाई की। उस युद्धमें दैत्योंके सामने देवता परास्त हो गये। तब इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता अग्निको आगे करके ब्रह्माजीकी शरणमें गये। वहाँ उन्होंने अपना सारा हाल ठीक-ठीक कह सुनाया। ब्रह्माजीने कहा—'तुमलोग मेरे साथ भगवान्‌की शरणमें चलो।' यह कहकर वे सम्पूर्ण देवताओंको साथ ले क्षीर-सागरके उत्तर-तटपर गये और भगवान् वासुदेवको सम्बोधित करके बोले—'विष्णो! शीघ्र उठिये और इन देवताओंका कल्याण कीजिये। आपकी सहायता न मिलनेसे दानव इन्हें बारंबार परास्त करते हैं।' उनके ऐसा कहनेपर कमलके समान नेत्रवाले भगवान् अन्तर्यामी पुरुषोत्तमने देवताओंके शरीरकी अपूर्व अवस्था देखकर कहा—'देवगण! मैं तुम्हारे तेजकी वृद्धि करूँगा। मैं जो उपाय बतलाता हूँ, उसे तुमलोग करो। दैत्योंके साथ मिलकर सब प्रकारकी ओषधियाँ ले आओ और उन्हें क्षीर-सागरमें डाल दो। फिर मन्दराचलको मथानी और वासुकि नागको नेती (रस्सी) बनाकर समुद्रका मन्थन करते हुए उससे अमृत निकालो। इस कार्यमें मैं तुमलोगोंकी सहायता करूँगा। समुद्रका मन्थन करनेपर जो अमृत निकलेगा, उसका पान करनेसे तुमलोग बलवान् और अमर हो जाओगे।'

देवाधिदेव भगवान्‌के ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण देवता दैत्योंके साथ सन्धि करके अमृत निकालनेके यत्नमें लग गये। देव, दानव और दैत्य सब मिलकर सब प्रकारकी ओषधियाँ ले आये और उन्हें क्षीर-सागरमें डालकर मन्दराचलको मथानी एवं वासुकि नागको नेती बनाकर बड़े वेगसे मन्थन करने लगे। भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे सब देवता एक साथ



रहकर वासुकिकी पूँछकी ओर हो गये और दैत्योंको उन्होंने वासुकिके सिरकी ओर खड़ा कर दिया। भीष्मजी! वासुकिके मुखकी साँस तथा विषाग्निसे झुलस जानेके कारण सब दैत्य

निस्तेज हो गये । क्षीर-समुद्रके बीचमें ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवान् ब्रह्मा तथा महातेजस्वी महादेवजी कच्छप रूपधारी श्रीविष्णुभगवान्‌की पीठपर खड़े हो अपनी भुजाओंसे कमलकी भाँति मन्दराचलको पकड़े हुए थे तथा स्वयं भगवान् श्रीहरि कूर्मरूप धारण करके क्षीर-सागरके भीतर देवताओं और दैत्योंके बीचमें स्थित थे । [वे मन्दराचलको अपनी पीठपर लिये डूबनेसे बचाते थे ।] तदनन्तर जब देवता और दानवोंने क्षीर-समुद्रका मन्थन आरम्भ किया, तब पहले-पहल उससे देवपूजित सुरभि (कामधेनु) का आविर्भाव हुआ, जो हविष्य (घी-दूध) की उत्पत्तिका स्थान मानी गयी है । तत्पश्चात् वारुणी (मदिरा) देवी प्रकट हुई, जिसके मदभरे नेत्र घूम रहे थे । वह पग-पगपर लड़खड़ाती चलती थी । उसे अपवित्र मानकर देवताओंने त्याग दिया । तब वह असुरोंके पास जाकर बोली—‘दानवो ! मैं बल प्रदान करनेवाली देवी हूँ, तुम मुझे ग्रहण करो ।’ दैत्योंने उसे ग्रहण कर लिया । इसके बाद पुनः मन्थन आरम्भ होनेपर पारिजात (कल्पवृक्ष) उत्पन्न हुआ, जो अपनी शोभासे देवताओंका आनन्द बढ़ानेवाला था । तदनन्तर साठ करोड़ अप्सराएँ प्रकट हुईं, जो देवता और दानवोंकी सामान्यरूपसे भोग्या हैं । जो लोग पुण्यकर्म करके देवलोकमें जाते हैं, उनका भी उनके ऊपर समान अधिकार होता है । अप्सराओंके बाद शीतल किरणोंवाले चन्द्रमाका प्रादुर्भाव हुआ, जो देवताओंको आनन्द प्रदान करनेवाले थे । उन्हें भगवान् शङ्करने अपने लिये माँगते हुए कहा—‘देवताओ ! ये चन्द्रमा मेरी जटाओंके आभूषण होंगे, अतः मैंने इन्हें ले लिया ।’ ब्रह्माजीने ‘बहुत अच्छा’ कहकर शङ्करजीकी बातका अनुमोदन किया । तत्पश्चात् कालकूट नामक भयङ्कर विष प्रकट हुआ, उससे देवता और दानव सबको बड़ी पीड़ा हुई । तब महादेवजीने स्वेच्छासे उस विषको लेकर पी लिया । उसके पीनेसे उनके कण्ठमें काला दाग पड़ गया, तभीसे वे महेश्वर नीलकण्ठ कहलाने लगे । क्षीर-सागरसे निकले हुए उस विषका जो अंश पीनेसे बच गया था, उसे नागों (सर्पों) ने ग्रहण कर लिया ।

तदनन्तर अपने हाथमें अमृतसे भरा हुआ कमण्डलु लिये धन्वन्तरिजी प्रकट हुए । वे श्वेतवस्त्र धारण किये हुए थे । वैद्यराजके दर्शनसे सबका मन स्वस्थ एवं प्रसन्न हो गया । इसके बाद उस समुद्रसे उच्चैःश्रवा घोड़ा और ऐरावत नामका हाथी—ये दोनों क्रमशः प्रकट हुए । इसके पश्चात् क्षीरसागरसे लक्ष्मीदेवीका प्रादुर्भाव हुआ, जो खिले हुए कमलपर विराजमान थीं और हाथमें कमल लिये थीं । उनकी प्रभा चारों ओर छिटक रही थी । उस समय महर्षियोंने श्रीसूक्तका पाठ करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ उनका स्तवन किया । साक्षात् क्षीर-समुद्रने [दिव्य पुरुषके रूपमें] प्रकट होकर लक्ष्मीजीको एक सुन्दर माला भेंट की, जिसके कमल कभी मुरझाते नहीं थे । विश्वकर्माने उनके समस्त अङ्गोंमें आभूषण पहना दिये । स्नानके पश्चात् दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण करके जब वे सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हुईं, तब इन्द्र आदि देवता तथा विद्याधर आदिने भी उन्हें प्राप्त करनेकी इच्छा की । तब ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुसे कहा—‘वासुदेव ! मेरे द्वारा दी हुई इस लक्ष्मीदेवीको आप ही ग्रहण करें । मैंने देवताओं और दानवोंको मना कर दिया है—वे इन्हें पानेकी इच्छा नहीं करेंगे । आपने जो स्थिरतापूर्वक इस समुद्र-मन्थनके कार्यको सम्पन्न किया है, इससे आपपर मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ ।’ यों कहकर ब्रह्माजी लक्ष्मीजीसे बोले—‘देवि ! तुम भगवान् केशवके पास जाओ । मेरे दिये हुए पतिको पाकर अनन्त वर्षोंतक आनन्दका उपभोग करो ।’

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर लक्ष्मीजी समस्त देवताओंके देखते-देखते श्रीहरिके वक्षःस्थलमें चली गयीं और भगवान्‌से बोलीं—‘देव ! आप कभी मेरा परित्याग न करें । सम्पूर्ण जगत्‌के प्रियतम ! मैं सदा आपके आदेशका पालन करती हुई आपके वक्षःस्थलमें निवास करूँगी ।’ यह कहकर लक्ष्मीजीने कृपापूर्ण दृष्टिसे देवताओंकी ओर देखा, इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई । इधर लक्ष्मीसे परित्यक्त होनेपर दैत्योंको बड़ा उद्वेग हुआ । उन्होंने झपटकर धन्वन्तरिके हाथसे अमृतका पात्र छीन लिया । तब विष्णुने मायासे सुन्दरी स्त्रीका रूप धारण करके दैत्योंको लुभाया और उनके निकट जाकर कहा—‘यह अमृतका कमण्डलु मुझे दे दो ।’ उस त्रिभुवनसुन्दरी रूपवती नारीको देखकर दैत्योंका चित्त कामके वशीभूत हो गया । उन्होंने चुपचाप वह अमृत उस सुन्दरीके हाथमें दे दिया और स्वयं उसका मुँह ताकने लगे । दानवोंसे अमृत लेकर भगवान्‌ने देवताओंको दे दिया, और इन्द्र आदि देवता तत्काल उस अमृतको पी गये । यह देख दैत्यगण भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र और

तलवारें हाथमें लेकर देवताओंपर टूट पड़े; परन्तु देवता अमृत पीकर बलवान् हो चुके थे, उन्होंने दैत्य-सेनाको परास्त कर दिया। देवताओंकी मार पड़नेपर दैत्योंने भागकर चारों दिशाओंकी शरण ली और कितने ही पातालमें घुस गये। तब सम्पूर्ण देवता आनन्दमग्न हो शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुको प्रणाम करके स्वर्गलोकको चले गये।

तबसे सूर्यदेवकी प्रभा स्वच्छ हो गयी। वे अपने मार्गसे चलने लगे। भगवान् अग्निदेव भी मनोहर दीप्तिसे युक्त हो प्रज्वलित होने लगे तथा सब प्राणियोंका मन धर्ममें संलग्न रहने लगा। भगवान् विष्णुसे सुरक्षित होकर समस्त त्रिलोकी श्रीसम्पन्न हो गयी। उस समय समस्त लोकोंको धारण करनेवाले ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—'देवगण! मैंने तुम्हारी रक्षाके लिये भगवान् श्रीविष्णुको तथा देवताओंके स्वामी उमापति महादेवजीको नियत किया है; वे दोनों तुम्हारे योगक्षेमका निर्वाह करेंगे। तुम सदा उनकी उपासना करते रहना; क्योंकि वे तुम्हारा कल्याण करनेवाले हैं। उपासना करनेसे ये दोनों महानुभाव सदा तुम्हारे क्षेमके साधक और वरदायक होंगे।' यों कहकर भगवान् ब्रह्मा अपने धामको चले गये। उनके जानेके बाद इन्द्रने देवलोककी राह ली। तत्पश्चात् श्रीहरि और शङ्करजी भी अपने-अपने धाम—वैकुण्ठ एवं कैलासमें जा पहुँचे। तदनन्तर देवराज इन्द्र तीनों लोकोंकी रक्षा करने लगे। महाभाग! इस प्रकार लक्ष्मीजी क्षीरसागरसे प्रकट हुई थीं। यद्यपि वे सनातनी देवी हैं, तो भी एक समय भृगुकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे भी उन्होंने जन्म ग्रहण किया था।

सतीका देहत्याग और दक्ष-यज्ञ-विध्वंस

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! दक्षकन्या सती तो बड़ी शुभलक्षणा थीं, उन्होंने अपने शरीरका त्याग क्यों किया? तथा भगवान् रुद्रने किस कारणसे दक्षके यज्ञका विध्वंस किया?

पुलस्त्यजीने कहा—भीष्म! प्राचीन कालकी बात है, दक्षने गङ्गाद्वारमें यज्ञ किया। उसमें देवता, असुर, पितर और महर्षि सब बड़ी प्रसन्नताके साथ पधारे। इन्द्रसहित देवता, नाग, यक्ष, गरुड, लताएँ, ओषधियाँ, कश्यप, भगवान् अत्रि, मैं, पुलह, क्रतु, प्राचेतस, अङ्गिरा तथा महातपस्वी वसिष्ठजी भी उपस्थित हुए। वहाँ सब ओरसे बराबर वेदी बनाकर उसके ऊपर चातुर्होत्रकी* स्थापना हुई। उस यज्ञमें महर्षि वसिष्ठ होता, अङ्गिरा अध्वर्यु, बृहस्पति उद्गाता तथा नारदजी ब्रह्मा हुए। जब यज्ञकर्म आरम्भ हुआ और अग्निमें हवन होने लगा, उस समयतक देवताओंके आनेका क्रम जारी रहा। स्थावर और जङ्गम—सभी प्रकारके प्राणी वहाँ उपस्थित थे। इसी समय ब्रह्माजी अपने पुत्रोंके साथ आकर यज्ञके सभासद् हुए तथा साक्षात् भगवान् श्रीविष्णु भी यज्ञकी रक्षाके लिये वहाँ पधारे। आठो वसु, बारहो आदित्य, दोनो अश्विनीकुमार, उनचासो मरुद्गण तथा चौदहो मनु भी वहाँ आये थे। इस प्रकार यज्ञ होने लगा, अग्निमें आहुतियाँ पड़ने लगीं। वहाँ भक्ष्य-भोज्य सामग्रीका बहुत ही सुन्दर और भारी ठाट-बाट था। ऐश्वर्यकी पराकाष्ठा दिखायी देती थी। चारो ओरसे दस योजन भूमि यज्ञके समारोहसे पूर्ण थी। वहाँ एक विशाल वेदी बनायी गयी थी, जहाँ सब लोग एकत्रित थे। शुभलक्षणा सतीने इन सारे आयोजनोंको देखा और यज्ञमें आये हुए इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंको लक्ष्य किया। इसके बाद वे अपने पितासे विनययुक्त वचन बोलीं।

सतीने कहा—पिताजी! आपके यज्ञमें सम्पूर्ण देवता और ऋषि पधारे हैं। देवराज इन्द्र अपनी धर्मपत्नी शचीके साथ ऐरावतपर चढ़कर आये हैं। पापियोंका दमन करनेवाले तथा धर्मात्माओंके रक्षक परमधर्मिष्ठ यमराज भी धूमोर्णाके साथ दृष्टिगोचर हो रहे हैं। जल-जन्तुओंके स्वामी वरुणदेव अपनी पत्नी गौरीके साथ इस यज्ञमण्डपमें सुशोभित हैं। यक्षोंके राजा कुबेर भी अपनी पत्नीके साथ आये हैं। देवताओंके मुखस्वरूप अग्निदेवने भी यज्ञ-मण्डपमें पदार्पण किया है। वायु देवता अपने उनचास गणोंके साथ और लोकपावन सूर्यदेव अपनी भार्या संज्ञाके साथ पधारे हैं। महान् यशस्वी चन्द्रमा भी सपत्नीक आये हैं। आठों वसु और दोनों अश्विनीकुमार भी उपस्थित हैं। इनके सिवा वृक्ष, वनस्पति, गन्धर्व, अप्सराएँ, विद्याधर, भूतोंके समुदाय, वेताल, यक्ष, राक्षस, भयङ्कर कर्म करनेवाले पिशाच तथा दूसरे-दूसरे प्राणधारी जीव भी वहाँ मौजूद हैं। भगवान् कश्यप, शिष्यों-

* होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा—इन चारोंके द्वारा सम्पन्न होनेवाले यज्ञको चातुर्होत्र कहते हैं।

सहित वसिष्ठजी, पुलस्त्य, पुलह, सनकादि महर्षि तथा भूमण्डलके समस्त पुण्यात्मा राजा यहाँ पधारे हैं। अधिक क्या कहूँ, ब्रह्माजीकी बनायी हुई सारी सृष्टि ही यहाँ आ पहुँची है। ये हमारी बहिनें हैं, ये भानजे हैं और ये बहनोई हैं। ये सब-के-सब अपनी-अपनी स्त्री, पुत्र और बान्धवोंके साथ यहाँ उपस्थित दिखायी देते हैं। आपने दान-मानादिके द्वारा इन सबका यथावत् सत्कार किया है। केवल मेरे पति भगवान् शङ्कर ही इस यज्ञमण्डपमें नहीं पधारे हैं; उनके बिना यह सारा आयोजन मुझे सूना-सा ही जान पड़ता है। मैं समझती हूँ आपने मेरे पतिको निमन्त्रित नहीं किया है; निश्चय ही आप उन्हें भूल गये हैं। इसका क्या कारण है? मुझे सब बातें बताइये।

पुलस्त्यजी कहते हैं—प्रजापति दक्षने सतीके वचन सुने। सती उन्हें प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय थीं। उन्होंने पतिके स्नेहमें डूबी हुई परम सौभाग्यवती पतिव्रता सतीको गोदमें बिठा लिया और गम्भीर होकर कहा—'बेटी! सुनो; जिस कारणसे आज मैंने तुम्हारे पतिको निमन्त्रित नहीं किया है, वह सब ठीक-ठीक बताता हूँ। वे अपने शरीरमें राख लपेटे रहते हैं। त्रिशूल और दण्ड लिये नंग-धड़ंग सदा श्मशानभूमिमें ही विचरा करते हैं। व्याघ्रचर्म पहनते और हाथीका चमड़ा ओढ़ते हैं। कंधेपर नरमुण्डोंकी माला और हाथमें खट्वाङ्ग—यही उनके आभूषण हैं। वे नागराज वासुकिको यज्ञोपवीतके रूपमें धारण किये रहते हैं और इसी रूपमें वे सदा इस पृथ्वीपर भ्रमण करते हैं। इसके सिवा और भी बहुत-से घृणित कार्य तुम्हारे पति-देवता करते रहते हैं। यह सब मेरे लिये बड़ी लज्जाकी बात है। भला, इन देवताओंके निकट वे उस अभद्र वेषमें कैसे बैठ सकते हैं। जैसा उनका वस्त्र है, उसे पहनकर वे इस यज्ञमण्डपमें आने योग्य नहीं हैं। बेटी! इन्हीं दोषोंके कारण तथा लोक-लज्जाके भयसे मैंने उन्हें नहीं बुलाया। जब यज्ञ समाप्त हो जायगा, तब मैं तुम्हारे पतिको ले आऊँगा और त्रिलोकीमें सबसे बढ़-चढ़कर उनकी पूजा करूँगा; साथ ही तुम्हारा भी यथावत् सत्कार करूँगा। अतः इसके लिये तुम्हें खेद या क्रोध नहीं करना चाहिये।'

भीष्म! प्रजापति दक्षके ऐसा कहनेपर सतीको बड़ा शोक हुआ, उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। वे पिताकी निन्दा करती हुई बोलीं—तात! भगवान् शङ्कर ही सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं, वे ही सबसे श्रेष्ठ माने गये हैं। समस्त देवताओंको जो ये उत्तमोत्तम स्थान प्राप्त हुए हैं, ये सब परम बुद्धिमान् महादेवजीके ही दिये हुए हैं। भगवान् शिवमें जितने गुण हैं, उनका पूर्णतया वर्णन करनेमें ब्रह्माजीकी जिह्वा भी समर्थ नहीं है। वे ही सबके धाता (धारण करनेवाले) और विधाता (नियामक) हैं। वे ही दिशाओंके पालक हैं। भगवान् रुद्रके प्रसादसे ही इन्द्रको स्वर्गका आधिपत्य प्राप्त हुआ है। यदि रुद्रमें देवत्व है, यदि वे सर्वत्र व्यापक और कल्याणस्वरूप हैं, तो इस सत्यके प्रभावसे शङ्करजी आपके यज्ञका विध्वंस कर डालें।

इतना कहकर सती योगस्थ हो गयीं—उन्होंने ध्यान लगाया और अपने ही शरीरसे प्रकट हुई अग्निके द्वारा



अपनेको भस्म कर दिया। उस समय देवता, असुर, नाग, गन्धर्व और गुह्यक 'यह क्या! यह क्या!' कहते ही रह गये; किन्तु क्रोधमें भरी हुई सतीने गङ्गाके तटपर अपने देहका त्याग कर दिया। गङ्गाजीके पश्चिमी तटपर वह स्थान आज भी 'सौनक तीर्थ' के नामसे प्रसिद्ध है। भगवान् रुद्रने जब यह समाचार सुना, तब अपनी पत्नीकी मृत्युसे उन्हें बड़ा दुःख हुआ और उनके मनमें समस्त देवताओंके देखते-देखते उस यज्ञको नष्ट कर डालनेका विचार उत्पन्न हुआ। फिर तो उन्होंने दक्षयज्ञका विनाश करनेके लिये करोड़ों गणोंको आज्ञा दी। उनमें विनायक-सम्बन्धी ग्रह, भूत, प्रेत तथा

पिशाच—सब थे। यज्ञमण्डपमें पहुँचकर उन्होंने सब देवताओंको परास्त किया और उन्हें भगाकर उस यज्ञको तहस-नहस कर डाला। यज्ञ नष्ट हो जानेसे दक्षका सारा उत्साह जाता रहा। वे उद्योगशून्य होकर देवाधिदेव पिनाकधारी भगवान् शिवके पास डरते-डरते गये और इस प्रकार बोले—'देव! मैं आपके प्रभावको नहीं जानता था; आप देवताओंके प्रभु और ईश्वर हैं। इस जगत्के अधीश्वर भी आप ही हैं; आपने सम्पूर्ण देवताओंको जीत लिया। महेश्वर! अब मुझपर कृपा कीजिये और अपने सब गणोंको लौटाइये।'

दक्ष प्रजापतिने भगवान् शङ्करकी शरणमें जाकर जब इस प्रकार उनकी स्तुति और आराधना की, तब भगवान्ने कहा—'प्रजापते! मैंने तुम्हे यज्ञका पूरा-पूरा फल दे दिया। तुम अपनी सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये यज्ञका उत्तम फल प्राप्त करोगे।' भगवान्के ऐसा कहनेपर दक्षने उन्हें प्रणाम किया और सब गणोंके देखते-देखते वे अपने निवास-स्थानको चले गये। उस समय भगवान् शिव अपनी पत्नीके वियोगसे गङ्गाद्वारमें ही जाकर रहने लगे। 'हाय! मेरी प्रिया कहाँ चली गयी!' इस प्रकार कहते हुए वे सदा सतीके चिन्तनमें लगे रहते थे। तदनन्तर एक दिन देवर्षि नारद महादेवजीके समीप आये और इस प्रकार बोले—'देवेश्वर! आपकी पत्नी सती देवी, जो आपको प्राणोंके समान प्रिय थीं, देहत्यागके पश्चात् इस समय हिमवान्की कन्या होकर प्रकट हुई हैं। मेनाके गर्भसे उनका आविर्भाव हुआ है। वे लोकके तात्त्विक अर्थको जाननेवाली थीं। उन्होंने इस समय दूसरा शरीर धारण किया है।'

नारदजीकी बात सुनकर महादेवजीने ध्यानस्थ हो देखा कि सती अवतार ले चुकी हैं। इससे उन्होंने अपनेको कृत-कृत्य माना और स्वस्थचित्त होकर रहने लगे। फिर जब पार्वतीदेवी यौवनावस्थाको प्राप्त हुईं, तब शिवजीने पुनः उनके साथ विवाह किया। भीष्म! पूर्वकालमें जिस प्रकार दक्षका यज्ञ नष्ट हुआ था, उसका इस रूपमें मैंने तुमसे वर्णन किया है।

देवता, दानव, गन्धर्व, नाग और राक्षसोंकी उत्पत्तिका वर्णन

भीष्मजीने कहा—गुरुदेव! देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, नागों और राक्षसोंकी उत्पत्तिका आप विस्तारके साथ वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—कुरुनन्दन! कहते हैं पहलेके प्रजा-वर्गकी सृष्टि संकल्पसे, दर्शनसे तथा स्पर्श करनेसे होती थी; किन्तु प्रचेताओंके पुत्र दक्ष प्रजापतिके बाद मैथुनसे प्रजाकी उत्पत्ति होने लगी। दक्षने आदिमें जिस प्रकार प्रजाकी सृष्टि की, उसका वर्णन सुनो। जब वे [पहलेके नियमानुसार सङ्कल्प आदिसे] देवता, ऋषि और नागोंकी सृष्टि करने लगे किन्तु प्रजाकी वृद्धि नहीं हुई, तब उन्होंने मैथुनके द्वारा अपनी पत्नी वीरिणीके गर्भसे साठ कन्याओंको जन्म दिया। उनमेंसे उन्होंने दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, चार अरिष्टनेमिको, दो भृगुपुत्रको, दो बुद्धिमान् कृशाश्वको तथा दो महर्षि अङ्गिराको ब्याह दीं। वे सब देवताओंकी जननी हुईं। उनके वंश-विस्तारका आरम्भसे ही वर्णन करता हूँ, सुनो। अरुन्धती, वसु, जामी लंबा, भानु, मरुत्वती, सङ्कल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ बतायी गयी हैं। इनके पुत्रोंके नाम सुनो। विश्वाके गर्भसे विश्वेदेव हुए। साध्याने साध्य नामक देवताओंको जन्म दिया। मरुत्वतीसे मरुत्वान् नामक देवताओंकी उत्पत्ति हुई। वसुके पुत्र आठ वसु कहलाये। भानुसे भानु और मुहूर्तासे मुहूर्ताभिमानी देवता उत्पन्न हुए। लंबासे घोष, जामीसे नागवीथी नामकी कन्या तथा अरुन्धतीके गर्भसे पृथ्वीपर होनेवाले समस्त प्राणी उत्पन्न हुए। सङ्कल्पासे सङ्कल्पोंका जन्म हुआ। अब वसुकी सृष्टिका वर्णन सुनो। जो देवगण अत्यन्त प्रकाशमान और सम्पूर्ण दिशाओंमें व्यापक हैं, वे वसु कहलाते हैं; उनके नाम सुनो। आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु हैं। 'आप' के चार पुत्र हैं—शान्त, वैतण्ड, साम्ब और मुनिबभ्रु। ये सब यज्ञरक्षाके अधिकारी हैं। ध्रुवके पुत्र काल और सोमके पुत्र वर्चा हुए। धरके दो पुत्र हुए—द्रविण और हव्यवाह। अनिलके पुत्र प्राण, रमण और शिशिर थे। अनलके कई पुत्र हुए, जो प्रायः अग्निके समान गुणवाले थे। अग्निपुत्र कुमारका जन्म सरकंडोंमें हुआ। उनके शाख, उपशाख और नैगमेय—ये तीन पुत्र हुए। कृत्तिकाओंकी सन्तान होनेके कारण

कुमारको कार्तिकेय भी कहते हैं। प्रत्यूषके पुत्र देवल नामके मुनि हुए। प्रभाससे प्रजापति विश्वकर्माका जन्म हुआ, जो शिल्पकलाके ज्ञाता हैं। वे महल, घर, उद्यान, प्रतिमा, आभूषण, तालाब, उपवन और कूप आदिका निर्माण करनेवाले हैं। देवताओंके कारीगर वे ही हैं।

अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, सावित्र, जयन्त, पिनाकी और अपराजित—ये ग्यारह रुद्र कहे गये हैं; ये गणोंके स्वामी हैं। इनके मानस सङ्कल्पसे उत्पन्न चौरासी करोड़ पुत्र हैं, जो रुद्रगण कहलाते हैं। वे श्रेष्ठ त्रिशूल धारण किये रहते हैं। उन सबको अविनाशी माना गया है। जो गणेश्वर सम्पूर्ण दिशाओंमें रहकर सबकी रक्षा करते हैं, वे सब सुरभिके गर्भसे उत्पन्न उन्हींके पुत्र-पौत्रादि हैं। अब मैं कश्यपजीकी स्त्रियोंसे उत्पन्न पुत्र-पौत्रोंका वर्णन करूँगा। अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू, खसा और मुनि—ये कश्यपजीकी पत्नियोंके नाम हैं। इनके पुत्रोंका वर्णन सुनो। चाक्षुष मन्वन्तरमें जो तुषित नामसे प्रसिद्ध देवता थे, वे ही वैवस्वत मन्वन्तरमें बारह आदित्य हुए। उनके नाम हैं—इन्द्र, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, सविता, पूषा, अंशुमान् और विष्णु। ये सहस्रों किरणोंसे सुशोभित बारह आदित्य माने गये हैं। इन श्रेष्ठ पुत्रोंको देवी अदितिने मरीचिनन्दन कश्यपके अंशसे उत्पन्न किया था। कृशाश्व नामक ऋषिसे जो पुत्र हुए, उन्हें देव-प्रहरण कहते हैं। ये देवगण प्रत्येक मन्वन्तर और प्रत्येक कल्पमें उत्पन्न एवं विलीन होते रहते हैं।

भीष्म! हमारे सुननेमें आया है कि दितिने कश्यपजीसे दो पुत्र प्राप्त किये, जिनके नाम थे—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष। हिरण्यकशिपुसे चार पुत्र उत्पन्न हुए—प्रह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद और ह्राद। प्रह्लादके चार पुत्र हुए—आयुष्मान्, शिबि, वाष्कलि और चौथा विरोचन। विरोचनको बलि नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई। बलिके सौ पुत्र हुए। उनमें बाण जेठा था। गुणोंमें भी वह सबसे बढ़ा-चढ़ा था। बाणके एक हजार बाँहें थीं तथा वह सब प्रकारके अस्त्र चलानेकी कलामें भी पूरा प्रवीण था। त्रिशूलधारी भगवान् शङ्कर उसकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर उसके नगरमें निवास करते थे। बाणासुरको 'महाकाल'की पदवी तथा साक्षात् पिनाकपाणि भगवान् शिवकी समानता प्राप्त हुई—वह महादेवजीका सहचर हुआ। हिरण्याक्षके उलूक, शकुनि, भूतसन्तापन और महाभीम—ये चार पुत्र थे। इनसे सत्ताईस करोड़ पुत्र-पौत्रोंका विस्तार हुआ। वे सभी महाबली, अनेक-रूपधारी तथा अत्यन्त तेजस्वी थे। दनुने कश्यपजीसे सौ पुत्र प्राप्त किये। वे सभी वरदान पाकर उन्मत्त थे। उनमें सबसे ज्येष्ठ और अधिक बलवान् विप्रचित्ति था। दनुके शेष पुत्रोंके नाम स्वर्भानु और वृषपर्वा आदि थे। स्वर्भानुसे सुप्रभा और पुलोमा नामक दानवसे शची नामकी कन्या हुई। मयके तीन कन्याएँ हुईं—उपदानवी, मन्दोदरी और कुहू। वृषपर्वाके दो कन्याएँ थीं—सुन्दरी शर्मिष्ठा और चन्द्रा। वैश्वानरके भी दो पुत्रियाँ थीं—पुलोमा और कालका। ये दोनों ही बड़ी शक्तिशालिनी तथा अधिक सन्तानोंकी जननी हुईं। इन दोनोंसे साठ हजार दानवोंकी उत्पत्ति हुई। पुलोमाके पुत्र पौलोम और कालकाके कालखञ्ज (या कालकेय) कहलाये। ब्रह्माजीसे वरदान पाकर ये मनुष्योंके लिये अवध्य हो गये थे और हिरण्यपुरमें निवास करते थे; फिर भी ये अर्जुनके हाथसे मारे गये।*

विप्रचित्तिने सिंहिकाके गर्भसे एक भयङ्कर पुत्रको जन्म दिया, जो सैंहिकेय (राहु) के नामसे प्रसिद्ध था। हिरण्यकशिपुकी बहिन सिंहिकाके कुल तेरह पुत्र थे, जिनके नाम ये हैं—कंस, शङ्ख, नल, वातापि, इल्वल, नमुचि, खसृम, अञ्जन, नरक, कालनाभ, परमाणु, कल्पवीर्य तथा दनुवंशविवर्धन। संह्राद दैत्यके वंशमें निवातकवचोंका जन्म हुआ। वे गन्धर्व, नाग, राक्षस एवं सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये अवध्य थे। परन्तु वीरवर अर्जुनने संग्राम-भूमिमें उन्हें भी बलपूर्वक मार डाला। ताम्राने कश्यपजीके वीर्यसे छः कन्याओंको जन्म दिया, जिनके नाम हैं—शुकी, श्येनी, भासी, सुगृध्री, गृध्रिका और शुचि। शुकीने शुक और उल्लू नामवाले पक्षियोंको उत्पन्न किया। श्येनीने श्येनों (बाजों) को तथा भासीने कुरर नामक पक्षियोंको जन्म दिया। गृध्रीसे गृध्र और सुगृध्रीसे कबूतर उत्पन्न हुए तथा शुचिने हंस, सारस, कारण्ड एवं प्लव नामके पक्षियोंको जन्म दिया। यह ताम्राके वंशका वर्णन हुआ। अब विनताकी सन्तानोंका वर्णन सुनो। पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड और अरुण विनताके पुत्र हैं तथा उनके एक सौदामनी नामकी कन्या भी है, जो यह आकाशमें चमकती दिखायी देती है। अरुणके दो पुत्र हुए—सम्पाति और जटायु। सम्पातिके पुत्रोंका नाम बभ्रु और शीघ्रग हैं। इनमें शीघ्रग

* यहाँ तथा आगेके प्रसङ्गोंमें भी पुलस्त्यजी भविष्यकी बात भूतकालकी भाँति कह रहे हैं—यही समझना चाहिये।

विख्यात हैं। जटायुके भी दो पुत्र हुए—कर्णिकार और शतगामी। वे दोनों ही प्रसिद्ध थे। इन पक्षियोंके असंख्य पुत्र-पौत्र हुए।

सुरसाके गर्भसे एक हजार सर्पोंकी उत्पत्ति हुई तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाली कद्रूने हजार मस्तकवाले एक सहस्र नागोंको पुत्रके रूपमें प्राप्त किया। उनमें छब्बीस नाग प्रधान एवं विख्यात हैं—शेष, वासुकि, कर्कोटक, शङ्ख, ऐरावत, कम्बल, धनञ्जय, महानील, पद्म, अश्वतर, तक्षक, एलापत्र, महापद्म, धृतराष्ट्र, बलाहक, शङ्खपाल, महाशङ्ख, पुष्पदन्त, सुभावन, शङ्खरोमा, नहुष, रमण, पाणिनि, कपिल, दुर्मुख तथा पतञ्जलिमुख। इन सबके पुत्र-पौत्रोंकी संख्याका अन्त नहीं है। इनमेंसे अधिकांश नाग पूर्वकालमें राजा जनमेजयके यज्ञ-मण्डपमें जला दिये गये। क्रोधवशाने अपने ही नामके क्रोधवशसंज्ञक राक्षससमूहको उत्पन्न किया। उनकी बड़ी-बड़ी दाढ़ें थीं। उनमेंसे दस लाख क्रोधवश भीमसेनके हाथसे मारे गये। सुरभिने कश्यपजीके अंशसे रुद्रगण, गाय, भैंस तथा सुन्दरी स्त्रियोंको जन्म दिया। मुनिसे मुनियोंका समुदाय तथा अप्सराएँ प्रकट हुईं। अरिष्टाने बहुत-से किन्नरों और गन्धर्वोंको जन्म दिया। इरासे तृण, वृक्ष, लताएँ और झाड़ियाँ—इन सबकी उत्पत्ति हुई। खसाने करोड़ों राक्षसों और यक्षोंको जन्म दिया। भीष्म! ये सैकड़ों और हजारों कोटियाँ कश्यपजीकी सन्तानोंकी हैं। यह स्वारोचिष मन्वन्तरकी सृष्टि बतायी गयी है। सबसे पीछे दितिने कश्यपजीसे उनचास मरुद्गणोंको उत्पन्न किया, जो सब-के-सब धर्मके ज्ञाता और देवताओंके प्रिय हैं।

मरुद्गणोंकी उत्पत्ति, भिन्न-भिन्न समुदायके राजाओं तथा चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! दितिके पुत्र मरुद्गणोंकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई? वे देवताओंके प्रिय कैसे हो गये? देवता तो दैत्योंके शत्रु हैं, फिर उनके साथ मरुद्गणोंकी मैत्री क्योंकर सम्भव हुई?

पुलस्त्यजीने कहा—भीष्म! पहले देवासुर-संग्राममें भगवान् श्रीविष्णु और देवताओंके द्वारा अपने पुत्र-पौत्रोंके मारे जानेपर दितिको बड़ा शोक हुआ। वे आर्त्त होकर परम उत्तम भूलोकमें आयीं और सरस्वतीके तटपर पुष्कर नामके शुभ एवं महान् तीर्थमें रहकर सूर्यदेवकी आराधना करने लगीं। उन्होंने बड़ी उग्र तपस्या की। दैत्य-माता दिति ऋषियोंके नियमोंका पालन करतीं और फल खाकर रहती थीं। वे कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि कठोर व्रतोंके पालन-द्वारा तपस्या करने लगीं। जरा और शोकसे व्याकुल होकर उन्होंने सौ वर्षोंसे कुछ अधिक कालतक तप किया। उसके बाद वसिष्ठ आदि महर्षियोंसे पूछा—'मुनिवरो! क्या कोई ऐसा भी व्रत है, जो मेरे पुत्रशोकको नष्ट करनेवाला तथा इहलोक और परलोकमें भी सौभाग्यरूप फल प्रदान करनेवाला हो? यदि हो तो, बताइये।' वसिष्ठ आदि महर्षियोंने ज्येष्ठकी पूर्णिमाका व्रत बताया तथा दितिने भी उस व्रतका साङ्गोपाङ्ग वर्णन सुनकर उसका यथावत् अनुष्ठान किया। उस व्रतके माहात्म्यसे प्रभावित होकर कश्यपजी बड़ी प्रसन्नताके साथ दितिके आश्रमपर आये। दितिका शरीर तपस्यासे कठोर हो गया था। किन्तु कश्यपजीने उन्हें पुनः रूप और लावण्यसे युक्त कर दिया और उनसे वर माँगनेका अनुरोध किया। तब दितिने वर माँगते हुए कहा—'भगवन्! मैं इन्द्रका वध करनेके लिये एक ऐसे पुत्रकी याचना करती हूँ, जो समृद्धिशाली, अत्यन्त तेजस्वी तथा समस्त देवताओंका संहार करनेवाला हो।'

कश्यपने कहा—'शुभे! मैं तुम्हें इन्द्रका घातक एवं बलिष्ठ पुत्र प्रदान करूँगा।' तत्पश्चात् कश्यपने दितिके उदरमें गर्भ स्थापित किया और कहा—'देवि! तुम्हे सौ वर्षोंतक इसी तपोवनमें रहकर इस गर्भकी रक्षाके लिये यत्न करना चाहिये। गर्भिणीको सन्ध्याके समय भोजन नहीं करना चाहिये तथा वृक्षकी जड़के पास न तो कभी जाना चाहिये और न ठहरना ही चाहिये। वह जलके भीतर न घुसे, सूने घरमें न प्रवेश करे। बाँबीपर खड़ी न हो। कभी मनमें उद्वेग न लाये। सूने घरमें बैठकर नख अथवा राखसे भूमिपर रेखा न खींचे, न तो सदा अलसाकर पड़ी रहे और न अधिक परिश्रम ही करे। भूसी, कोयले, राख, हड्डी और खपड़ेपर न बैठे। लोगोंसे कलह करना छोड़ दे, अँगड़ाई न ले, बाल खोलकर खड़ी न हो और कभी भी अपवित्र न रहे। उत्तरकी ओर अथवा नीचे सिर करके कभी न सोये। नंगी होकर, उद्वेगमें पड़कर और बिना पैर

धोये भी शयन करना मना है। अमङ्गलयुक्त वचन मुँहसे न निकाले, अधिक हँसी-मजाक भी न करे। गुरुजनोंके साथ सदा आदरका बर्ताव करे, माङ्गलिक कार्योंमें लगी रहे, सर्वौषधियोंसे युक्त जलके द्वारा स्नान करे। अपनी रक्षाका प्रबन्ध रखे। गुरुजनोंकी सेवा करे और वाणीसे सबका सत्कार करती रहे। स्वामीके प्रिय और हितमें तत्पर रहकर सदा प्रसन्नमुखी बनी रहे। किसी भी अवस्थामें कभी पतिकी निन्दा न करे।'

यह कहकर कश्यपजी सब प्राणियोंके देखते-देखते वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर, पतिकी बातें सुनकर दिति विधि-पूर्वक उनका पालन करने लगीं। इससे इन्द्रको बड़ा भय हुआ। वे देवलोक छोड़कर दितिके पास आये और उनकी सेवाकी इच्छासे वहाँ रहने लगे। इन्द्रका भाव विपरीत था, वे दितिका छिद्र ढूँढ़ रहे थे। बाहरसे तो उनका मुख प्रसन्न था, किन्तु भीतरसे वे भयके मारे विकल थे। वे ऊपरसे ऐसा भाव जताते थे, मानो दितिके कार्य और अभिप्रायको जानते ही न हों। परन्तु वास्तवमें अपना काम बनाना चाहते थे। तदनन्तर, जब सौ वर्षकी समाप्तिमें तीन ही दिन बाकी रह गये, तब दितिको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपनेको कृतार्थ मानने लगीं तथा उनका हृदय विस्मयविमुग्ध रहने लगा। उस दिन वे पैर धोना भूल गयीं और बाल खोले हुए ही सो गयीं। इतना ही नहीं, निद्राके भारसे दबी होनेके कारण दिनमें उनका सिर कभी नीचेकी ओर हो गया। यह अवसर पाकर शचीपति इन्द्र दितिके गर्भमें प्रवेश कर गये और अपने वज्रके द्वारा उन्होंने उस गर्भस्थ बालकके सात टुकड़े कर डाले। तब वे सातों टुकड़े सूर्यके समान तेजस्वी सात कुमारोंके रूपमें परिणत हो गये और रोने लगे। उस समय दानवशत्रु इन्द्रने उन्हें रोनेसे मना किया तथा पुनः उनमेंसे एक-एकके सात-सात टुकड़े कर दिये। इस प्रकार उनचास कुमारोंके रूपमें होकर वे जोर-जोरसे रोने लगे। तब इन्द्रने 'मा रुदध्वम्' (मत रोओ) ऐसा कहकर उन्हें बारंबार रोनेसे रोका और मन-ही-मन सोचा कि ये बालक धर्म और ब्रह्माजीके प्रभावसे पुनः जीवित हो गये हैं। इस पुण्यके योगसे ही इन्हें जीवन मिला है, ऐसा जानकर वे इस निश्चयपर पहुँचे कि 'यह पौर्णमासी व्रतका फल है। निश्चय ही इस व्रतका अथवा ब्रह्माजीकी पूजाका यह परिणाम है कि वज्रसे मारे जानेपर भी इनका विनाश नहीं हुआ। ये एकसे अनेक हो गये, फिर भी उदरकी रक्षा हो रही है। इसमें सन्देह नहीं कि ये अवध्य हैं, इसलिये ये देवता हो जायँ। जब ये रो रहे थे, उस समय मैंने इन गर्भके बालकोंको 'मा रुदः' कहकर चुप कराया है, इसलिये ये 'मरुत्' नामसे प्रसिद्ध होकर कल्याणके भागी बनें।'

ऐसा विचार कर इन्द्रने दितिसे कहा—'माँ ! मेरा अपराध क्षमा करो, मैंने अर्थशास्त्रका सहारा लेकर यह दुष्कर्म किया है।' इस प्रकार बारंबार कहकर उन्होंने दितिको प्रसन्न किया और मरुद्गणोंको देवताओंके समान बना दिया। तत्पश्चात् देवराजने पुत्रोंसहित दितिको विमानपर बिठाया और उनको साथ लेकर वे स्वर्गको चले गये। मरुद्गण यज्ञ-भागके अधिकारी हुए; उन्होंने असुरोंसे मेल नहीं किया, इसलिये वे देवताओंके प्रिय हुए।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन् ! आपने आदिसर्ग और प्रतिसर्गका विस्तारके साथ वर्णन किया। अब जिनके जो स्वामी हों, उनका वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—राजन् ! जब पृथु इस पृथ्वीके सम्पूर्ण राज्यपर अभिषिक्त होकर सबके राजा हुए, उस समय ब्रह्माजीने चन्द्रमाको अन्न, ब्राह्मण, व्रत और तपस्याका अधिपति बनाया। हिरण्यगर्भको नक्षत्र, तारे, पक्षी, वृक्ष, झाड़ी और लता आदिका स्वामी बनाया। वरुणको जलका, कुबेरको धनका, विष्णुको आदित्योंका और अग्निको वसुओंका अधिपति बनाया। दक्षको प्रजापतियोंका, इन्द्रको देवताओंका, प्रह्लादको दैत्यों और दानवोंका, यमराजको पितरोंका, शूलपाणि भगवान् शङ्करको पिशाच, राक्षस, पशु, भूत, यक्ष और वेतालराजोंका, हिमालयको पर्वतोंका, समुद्रको नदियोंका, चित्ररथको गन्धर्व, विद्याधर और किन्नरोंका, भयङ्कर पराक्रमी वासुकिको नागोंका, तक्षकको सर्पोंका, गजराज ऐरावतको दिग्गजोंका, गरुड़को पक्षियोंका, उच्चैःश्रवाको घोड़ोंका, सिंहको मृगोंका, साँड़को गौओंका तथा प्लक्ष (पाकर) को सम्पूर्ण वनस्पतियोंका अधीश्वर बनाया। इस प्रकार पूर्वकालमें ब्रह्माजीने इन सभी अधिपतियोंको भिन्न-भिन्न वर्गके राजपदपर अभिषिक्त किया था।

कौरवनन्दन ! पहले स्वायम्भुव मन्वन्तरमें याम्य नामसे प्रसिद्ध देवता थे। मरीचि आदि मुनि ही सप्तर्षि माने जाते थे। आग्नीध्र, अग्निबाहु, विभु, सवन, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, मेधा, मेधातिथि और वसु—ये दस स्वायम्भुव मनुके पुत्र हुए, जिन्होंने अपने वंशका विस्तार किया। ये प्रतिसर्गकी सृष्टि करके परमपदको प्राप्त हुए। यह स्वायम्भुव

मन्वन्तरका वर्णन हुआ। इसके बाद स्वारोचिष मन्वन्तर आया। स्वारोचिष मनुके चार पुत्र हुए, जो देवताओंके समान तेजस्वी थे। उनके नाम हैं—नभ, नभस्य, प्रसृति और भावन। इनमेंसे भावन अपनी कीर्तिका विस्तार करनेवाला था। दत्तात्रेय, अत्रि, च्यवन, स्तम्ब, प्राण, कश्यप तथा बृहस्पति—ये सात सप्तर्षि हुए। उस समय तुषित नामके देवता थे। हवीन्द्र, सुकृत, मूर्ति, आप और ज्योतीरथ—ये वसिष्ठके पाँच पुत्र ही स्वारोचिष मन्वन्तरमें प्रजापति थे। यह द्वितीय मन्वन्तरका वर्णन हुआ। इसके बाद औत्तम मन्वन्तरका वर्णन करूँगा। तीसरे मनुका नाम था औत्तमि। उन्होंने दस पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम हैं—ईष, ऊर्ज, तनूज, शुचि, शुक्र, मधु, माधव, नभस्य, नभ तथा सह। इनमें सह सबसे छोटा था। ये सब-के-सब उदार और यशस्वी थे। उस समय भानुसंज्ञक देवता और ऊर्ज नामके सप्तर्षि थे। कौकिभिण्डि, कुतुण्ड, दाल्भ्य, शङ्ख, प्रवाहित, मित और सम्मित—ये सात योगवर्धन ऋषि थे। चौथा मन्वन्तर तामसके नामसे प्रसिद्ध है। उसमें कवि, पृथु, अग्नि, अकपि, कपि, जन्य तथा धामा—ये सात मुनि ही सप्तर्षि थे। साध्यगण देवता थे। अकल्मष, तपोधन्वा, तपोमूल, तपोधन, तपोराशि, तपस्य, सुतपस्य, परन्तप, तपोभागी और तपोयोगी—ये दस तामस मनुके पुत्र थे, जो धर्म और सदाचारमें तत्पर तथा अपने वंशका विस्तार करनेवाले थे। अब पाँचवें रैवत मन्वन्तरका वृत्तान्त श्रवण करो। देवबाहु, सुबाहु, पर्जन्य, सोमप, मुनि, हिरण्यरोमा और सप्ताश्व—ये सात रैवत मन्वन्तरके सप्तर्षि माने गये हैं। भूतरजा तथा प्रकृति नामवाले देवता थे तथा वरुण, तत्त्वदर्शी, चितिमान्, हव्यप, कवि, मुक्त, निरुत्सुक, सत्त्व, विमोह और प्रकाशक—ये दस रैवत मनुके पुत्र हुए, जो धर्म, पराक्रम और बलसे सम्पन्न थे। इसके बाद चाक्षुष मन्वन्तरमें भृगु, सुधामा, विरज, विष्णु, नारद, विवस्वान् और अभिमानी—ये सात सप्तर्षि हुए। उस समय लेख नामसे प्रसिद्ध देवता थे। इनके सिवा ऋभु, पृथग्भूत, वारिमूल और दिवौका नामके देवता भी थे। इस प्रकार चाक्षुष मन्वन्तरमें देवताओंकी पाँच योनियाँ थीं। चाक्षुष मनुके दस पुत्र हुए, जो रुरु आदि नामसे प्रसिद्ध थे।

अब सातवें मन्वन्तरका वर्णन करूँगा, जिसे वैवस्वत मन्वन्तर कहते हैं। इस समय [वैवस्वत मन्वन्तर ही चल रहा है, इसमें] अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, योगी भरद्वाज, विश्वामित्र और जमदग्नि—ये सात ऋषि ही सप्तर्षि हैं। ये धर्मकी व्यवस्था करके परमपदको प्राप्त होते हैं। अब भविष्यमें होनेवाले सावर्ण्य मन्वन्तरका वर्णन किया जाता है। उस समय अश्वत्थामा, ऋष्यशृङ्ग, कौशिक्य, गालव, शतानन्द, काश्यप तथा परशुराम—ये सप्तर्षि होंगे। धृति, वरीयान्, यवसु, सुवर्ण, धृष्टि, चरिष्णु, आद्य, सुमति, वसु तथा पराक्रमी शुक्र—ये भविष्यमें होनेवाले सावर्णि मनुके पुत्र बतलाये गये हैं। इसके सिवा रौच्य आदि दूसरे-दूसरे मनुओंके भी नाम आते है। प्रजापति रुचिके पुत्रका नाम रौच्य होगा। इसी प्रकार भूतिके पुत्र भौत्य नामके मनु कहलायेंगे। तदनन्तर मेरुसावर्णि नामक मनुका अधिकार होगा। वे ब्रह्माके पुत्र माने गये हैं। मेरुसावर्णिके बाद क्रमशः ऋभु, वीतधामा और विष्वक्सेन नामक मनु होंगे। राजन्! इस प्रकार मैंने तुम्हे भूत और भविष्य मनुओंका परिचय दिया है। इन चौदह मनुओंका अधिकार कुल मिलाकर एक हजार चतुर्युगतक रहता है। अपने-अपने मन्वन्तरमें इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को उत्पन्न करके कल्पका संहार होनेपर ये ब्रह्माजीके साथ मुक्त हो जाते हैं। ये मनु प्रति एक सहस्र चतुर्युगीके बाद नष्ट होते रहते हैं तथा ब्रह्मा आदि विष्णुका सायुज्य प्राप्त करते हैं।

पृथुके चरित्र तथा सूर्यवंशका वर्णन

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! सुना जाता है, पूर्वकालमें बहुत-से राजा इस पृथ्वीका उपभोग कर चुके हैं। पृथ्वीके सम्बन्धसे ही राजाओंको पार्थिव या पृथ्वीपति कहते हैं। परन्तु इस भूमिकी जो 'पृथ्वी' संज्ञा है, वह किसके सम्बन्धसे हुई है? भूमिको यह पारिभाषिक संज्ञा किसलिये दी गयी अथवा उसका 'गौ' नाम भी क्यों पड़ा, यह मुझे बताइये।

पुलस्त्यजीने कहा—स्वायम्भुव मनुके वंशमें एक अङ्ग नामके प्रजापति थे। उन्होंने मृत्युकी कन्या सुनीथाके साथ विवाह किया था। सुनीथाका मुख बड़ा कुरूप था। उससे वेन नामक पुत्र हुआ, जो सदा अधर्ममें ही लगा रहता था। वह लोगोंकी बुराई करता और परायी स्त्रियोंको हड़प लेता था। एक दिन महर्षियोंने उसकी भलाई और जगत्के उपकारके लिये उसे बहुत कुछ समझाया-बुझाया;

परन्तु उसका अन्तःकरण अशुद्ध होनेके कारण उसने उनकी बात नहीं मानी, प्रजाको अभयदान नहीं दिया। तब ऋषियोंने शाप देकर उसे मार डाला। फिर अराजकताके भयसे पीड़ित होकर पापरहित ब्राह्मणोंने वेनके शरीरका बलपूर्वक मन्थन किया। मन्थन करनेपर उसके शरीरसे पहले म्लेच्छ जातियाँ उत्पन्न हुईं, जिनका रङ्ग काले अञ्जनके समान था। तत्पश्चात् उसके दाहिने हाथसे एक दिव्य तेजोमय शरीरधारी धर्मात्मा पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ, जो धनुष, बाण और गदा धारण किये हुए थे तथा रत्नमय कवच एवं अङ्गदादि आभूषणोंसे विभूषित थे। वे पृथुके नामसे प्रसिद्ध हुए। उनके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही अवतीर्ण हुए थे। ब्राह्मणोंने उन्हें राज्यपर अभिषिक्त किया। राजा होनेपर उन्होंने देखा कि इस भूतलसे धर्म उठ गया है। न कहीं स्वाध्याय होता है, न वषट्कार (यज्ञादि)। तब वे क्रोध करके अपने बाणसे पृथ्वीको विदीर्ण कर डालनेके लिये उद्यत हो गये। यह देख पृथ्वी गौका रूप धारण करके भाग खड़ी हुई। उसे भागते देख पृथुने भी उसका पीछा किया। तब वह एक स्थानपर खड़ी होकर बोली—'राजन्! मेरे लिये क्या आज्ञा होती है?' पृथुने कहा—'सुव्रते! सम्पूर्ण चराचर जगत्के लिये जो अभीष्ट वस्तु है, उसे शीघ्र प्रस्तुत करो।'

पृथ्वीने 'बहुत अच्छा' कहकर स्वीकृति दे दी। तब राजाने स्वायम्भुव मनुको बछड़ा बनाकर अपने हाथमें पृथ्वीका दूध दुहा। वही दूध अन्न हुआ, जिससे सारी प्रजा जीवन धारण करती है। तत्पश्चात् ऋषियोंने भी भूमिरूपिणी गौका दोहन किया। उस समय चन्द्रमा ही बछड़ा बने थे। दुहनेवाले थे वनस्पति, दुग्धका पात्र था वेद और तपस्या ही दूध थी। फिर देवताओंने भी वसुधाको दुहा। उस समय मित्र देवता दोग्धा हुए, इन्द्र बछड़ा बने तथा ओज और बल ही दूधके रूपमें प्रकट हुआ। देवताओंका दोहनपात्र सुवर्णका था और पितरोंका चाँदीका। पितरोंकी ओरसे अन्तकने दुहनेका काम किया, यमराज बछड़ा बने और स्वधा ही दूधके रूपमें प्राप्त हुई। नागोंने तूँबीको पात्र बनाया और तक्षकको बछड़ा। धृतराष्ट्रनामक नागने दोग्धा बनकर विषरूपी दुग्धका दोहन किया। असुरोंने लोहेके बर्तनमें इस पृथ्वीसे मायारूप दूध दुहा। उस समय प्रह्लादकुमार विरोचन बछड़ा बने थे और त्रिमूर्धाने दुहनेका काम किया था। यक्ष अन्तर्धान होनेकी विद्या प्राप्त करना चाहते थे; इसलिये उन्होंने कुबेरको बछड़ा बनाकर कच्चे बर्तनमें उस अन्तर्धान-विद्याको ही वसुधासे दुग्धके रूपमें दुहा। गन्धर्वों और अप्सराओंने चित्ररथको बछड़ा बनाकर कमलके पत्तेमें पृथ्वीसे सुगन्धोंका दोहन किया। उनकी ओरसे अथर्ववेदके पारगामी विद्वान् सुरुचिने दूध दुहनेका कार्य किया था। इस प्रकार दूसरे लोगोंने भी अपनी-अपनी रुचिके अनुसार पृथ्वीसे आयु, धन और सुखका दोहन किया। पृथुके शासन-कालमें कोई भी मनुष्य न दरिद्र था न रोगी, न निर्धन था न पापी तथा न कोई उपद्रव था न पीडा। सब सदा प्रसन्न रहते थे। किसीको दुःख या शोक नहीं था। महाबली पृथुने लोगोंके हितकी इच्छासे अपने धनुषकी नोकसे बड़े-बड़े पर्वतोंको उखाड़कर हटा दिया और पृथ्वीको समतल बनाया। पृथुके राज्यमें गाँव बसाने या किले बनवानेकी आवश्यकता नहीं थी। किसीको शस्त्र-धारण करनेका भी कोई प्रयोजन नहीं था। मनुष्योंको विनाश एवं वैषम्यका दुःख नहीं देखना पड़ता था। अर्थ-शास्त्रमें किसीका आदर नहीं था। सब लोग धर्ममें ही संलग्न रहते थे। इस प्रकार मैंने तुमसे पृथ्वीके दोहन-पात्रोंका वर्णन किया तथा जैसा-जैसा दूध दुहा गया था, वह भी बता दिया। राजा पृथु बड़े विज्ञ थे; जिनकी जैसी रुचि थी, उसीके अनुसार उन्होंने सबको दूध प्रदान किया। यह प्रसङ्ग यज्ञ और श्राद्ध सभी अवसरोंपर सुनानेके योग्य है; इसे मैंने तुम्हें सुना दिया। यह भूमि धर्मात्मा पृथुकी कन्या मानी गयी; इसीसे विद्वान् पुरुष 'पृथ्वी' कहकर इसकी स्तुति करते हैं।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! आप तत्त्वके ज्ञाता हैं; अब क्रमशः सूर्यवंश और चन्द्रवंशका पूरा-पूरा एवं यथार्थ वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें कश्यपजीसे अदितिके गर्भसे विवस्वान् नामक पुत्र हुए। विवस्वान्के तीन स्त्रियाँ थीं—संज्ञा, राज्ञी और प्रभा। राज्ञीने रैवत नामक पुत्र उत्पन्न किया। प्रभासे प्रभातकी उत्पत्ति हुई। संज्ञा विश्वकर्माकी पुत्री थी। उसने वैवस्वत मनुको जन्म दिया। कुछ काल पश्चात् संज्ञाके गर्भसे यम और यमुना नामक दो जुड़वी सन्तानें पैदा हुईं। तदनन्तर वह विवस्वान् (सूर्य) के तेजोमय स्वरूपको न सह सकी, अतः उसने अपने शरीरसे अपने ही समान रूपवाली एक नारीको प्रकट किया। उसका नाम छाया हुआ। छाया सामने खड़ी होकर बोली—'देवि! मेरे लिये क्या आज्ञा है?' संज्ञाने कहा—'छाया! तुम मेरे स्वामीकी सेवा करो, साथ

ही मेरे बच्चोंका भी माताकी भाँति स्नेहपूर्वक पालन करना।' 'तथास्तु' कहकर छाया भगवान् सूर्यके पास गयी। वह उनसे अपनी कामना पूर्ण करना चाहती थी। सूर्यने भी यह समझकर कि यह उत्तम व्रतका पालन करनेवाली संज्ञा ही है, बड़े आदरके साथ उसकी कामना की। छायाने सूर्यसे सावर्ण मनुको उत्पन्न किया। उनका वर्ण भी वैवस्वत मनुके समान होनेके कारण उनका नाम सावर्ण मनु पड़ गया। तत्पश्चात् भगवान् भास्करने छायाके गर्भसे क्रमशः शनैश्चर नामक पुत्र तथा तपती और विष्टि नामकी कन्याओंको जन्म दिया।

एक समय महायशस्वी यमराज वैराग्यके कारण पुष्कर तीर्थमें गये और वहाँ फल, फेन एवं वायुका आहार करते हुए कठोर तपस्या करने लगे। उन्होंने सौ वर्षोंतक तपस्याके द्वारा ब्रह्माजीकी आराधना की। उनके तपके प्रभावसे देवेश्वर ब्रह्माजी सन्तुष्ट हो गये; तब यमराजने उनसे लोकपालका पद, अक्षय पितृलोकका राज्य तथा धर्माधर्ममय जगत्की देख-रेखका अधिकार माँगा। इस प्रकार उन्हें ब्रह्माजीसे लोकपाल-पदवी प्राप्त हुई। साथ ही उन्हें पितृलोकका राज्य और धर्माधर्मके निर्णयका अधिकार भी मिल गया।

छायाके पुत्र शनैश्चर भी तपके प्रभावसे ग्रहोंकी समानताको प्राप्त हुए। यमुना और तपती—ये दोनों सूर्य-कन्याएँ नदी हो गयीं। विष्टिका स्वरूप बड़ा भयंकर था; वह कालरूपसे स्थित हुई। वैवस्वत मनुके दस महाबली पुत्र हुए, उन सबमें 'इल' ज्येष्ठ थे। शेष पुत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—इक्ष्वाकु, कुशनाभ, अरिष्ट, धृष्ट, नरिष्यन्त, करूष, महाबली शर्याति, पृषध्र तथा नाभाग। ये सभी दिव्य मनुष्य थे। राजा मनु अपने ज्येष्ठ और धर्मात्मा पुत्र 'इल' को राज्यपर अभिषिक्त करके स्वयं पुष्करके तपोवनमें तपस्या करनेके लिये चले गये। तदनन्तर उनकी तपस्याको सफल करनेके लिये वरदाता ब्रह्माजी आये और बोले—'मनो! तुम्हारा कल्याण हो, तुम अपनी इच्छाके अनुसार वर माँगो।'

मनुने कहा—स्वामिन्! आपकी कृपासे पृथ्वीके सम्पूर्ण राजा धर्मपरायण, ऐश्वर्यशाली तथा मेरे अधीन हों। 'तथास्तु' कहकर देवेश्वर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर, मनु अपनी राजधानीमें आकर पूर्ववत् रहने लगे। इसके बाद राजा इल अर्थसिद्धिके लिये इस भूमण्डलपर विचरने लगे। वे सम्पूर्ण द्वीपोंमें घूम-घूमकर वहाँके राजाओंको अपने वशमें करते थे। एक दिन प्रतापी इल रथमें बैठकर भगवान् शङ्करके महान् उपवनमें गये, जो कल्पवृक्षकी लताओंसे व्याप्त एवं 'शरवण'के नामसे प्रसिद्ध था। उसमें देवाधिदेव चन्द्रार्धशेखर भगवान् शिव पार्वतीजीके साथ क्रीडा करते हैं। पूर्वकालमें महादेवजीने उमाके साथ 'शरवण' के भीतर प्रतिज्ञापूर्वक यह बात कही थी कि 'पुरुष नामधारी जो कोई भी जीव हमारे वनमें आ जायेगा, वह इस दस योजनके घेरेमें पैर रखते ही स्त्रीरूप हो जायगा।' राजा इल इस प्रतिज्ञाको नहीं जानते थे, इसीलिये 'शरवण' में चले गये। वहाँ पहुँचनेपर वे सहसा स्त्री हो गये तथा उनका घोड़ा भी उसी समय घोड़ी बन गया। राजाके जो-जो पुरुषोचित अङ्ग थे, वे सभी स्त्रीके आकारमें परिणत हो गये। इससे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। अब वे 'इला' नामकी स्त्री थे।

इला उस वनमें घूमती हुई सोचने लगी, 'मेरे माता-पिता और भ्राता कौन हैं?' वह इसी उधेड़-बुनमें पड़ी थी, इतनेमें ही चन्द्रमाके पुत्र बुधने उसे देखा। [इलाकी दृष्टि भी बुधके ऊपर पड़ी।] सुन्दरी इलाका मन बुधके रूपपर मोहित हो गया; उधर बुध भी उसे देखकर कामपीड़ित हो गये और उसकी प्राप्तिके लिये यत्न करने लगे। उस समय बुध ब्रह्मचारीके वेषमें थे। वे वनके बाहर पेड़ोंके झुरमुटमें छिपकर इलाको बुलाने लगे—'सुन्दरी! यह साँझका समय, विहारकी वेला है जो बीती जा रही है; आओ, मेरे घरको लीप-पोतकर फूलोंसे सजा दो।' इला बोली—'तपोधन! मैं यह सब कुछ भूल गयी हूँ। बताओ, मैं कौन हूँ? तुम कौन हो? मेरे स्वामी कौन हैं तथा मेरे कुलका परिचय क्या है?' बुधने कहा—'सुन्दरी! तुम इला हो, मैं तुम्हे चाहनेवाला बुध हूँ। मैंने बहुत विद्या पढ़ी है। तेजस्वीके कुलमें मेरा जन्म हुआ है। मेरे पिता ब्राह्मणोंके राजा चन्द्रमा हैं।'

बुधकी यह बात सुनकर इलाने उनके घरमें प्रवेश किया। वह सब प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न था और अपने वैभवसे इन्द्रभवनको मात कर रहा था। वहाँ रहकर इला बहुत समयतक बुधके साथ वनमें रमण करती रही। उधर इलके भाई इक्ष्वाकु आदि मनुकुमार अपने राजाकी खोज करते हुए उस शरवणके निकट आ पहुँचे। उन्होंने नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे पार्वती और महादेवजीका स्तवन किया। तब वे दोनों प्रकट होकर बोले—'राजकुमारो! मेरी यह प्रतिज्ञा तो टल नहीं सकती; किन्तु इस समय एक उपाय हो सकता है। इक्ष्वाकु अश्वमेध यज्ञ करें और उसका फल हम दोनोंको

अर्पण कर दें। ऐसा करनेमें वीरवर इल 'किम्पुरुष' हो जायँगे, इसमें तनिक भी सन्देहकी बात नहीं है।'

'बहुत अच्छा, प्रभो!' यह कहकर मनुकुमार लौट गये। फिर इक्ष्वाकुने अश्वमेध यज्ञ किया। इससे इला 'किम्पुरुष' हो गयी। वे एक महीने पुरुष और एक महीने स्त्रीके रूपमें रहने लगे। बुधके भवनमें [स्त्रीरूपसे] रहते समय इलने गर्भ धारण किया था। उस गर्भसे उन्होंने अनेक गुणोंसे युक्त पुत्रको जन्म दिया। उस पुत्रको उत्पन्न करके बुध स्वर्गलोकको चले गये। वह प्रदेश इलके नामपर 'इलावृतवर्ष' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। ऐल चन्द्रमाके वंशज तथा चन्द्रवंशका विस्तार करनेवाले राजा हुए। इस प्रकार इला-कुमार पुरूरवा चन्द्रवंशकी तथा राजा इक्ष्वाकु सूर्यवंशकी वृद्धि करनेवाले बताये गये हैं। 'इल' किम्पुरुष-अवस्थामें 'सुद्युम्न' भी कहलाते थे। तदनन्तर सुद्युम्नसे तीन पुत्र और हुए, जो किसीसे परास्त होनेवाले नहीं थे। उनके नाम उत्कल, गय तथा हरिताश्व थे। हरिताश्व बड़े पराक्रमी थे। उत्कलकी राजधानी उत्कला (उड़ीसा) हुई और गयकी राजधानी गया मानी गयी है। इसी प्रकार हरिताश्वको कुरु प्रदेशके साथ-ही-साथ दक्षिण दिशाका राज्य दिया गया। सुद्युम्न अपने पुत्र पुरूरवाको प्रतिष्ठानपुर (पैठन) के राज्यपर अभिषिक्त करके स्वयं दिव्य वर्षके फलोंका उपभोग करनेके लिये इलावृतवर्षमें चले गये।

[सुद्युम्नके बाद] इक्ष्वाकु ही मनुके सबसे बड़े पुत्र थे। उन्हें मध्यदेशका राज्य प्राप्त हुआ। इक्ष्वाकुके सौ पुत्रोंमें पंद्रह श्रेष्ठ थे। वे मेरुके उत्तरीय प्रदेशमें राजा हुए। उनके सिवा एक सौ चौदह पुत्र और हुए, जो मेरुके दक्षिणवर्ती देशोंके राजा बताये गये हैं। इक्ष्वाकुके ज्येष्ठ पुत्रसे ककुत्स्थ नामक पुत्र हुआ। ककुत्स्थका पुत्र सुयोधन था। सुयोधनका पुत्र पृथु और पृथुका विश्वावसु हुआ। उसका पुत्र आर्द्र तथा आर्द्रका पुत्र युवनाश्व हुआ। युवनाश्वका पुत्र महापराक्रमी शावस्त हुआ, जिसने अङ्गदेशमें शावस्ती नामकी पुरी बसायी। शावस्तसे बृहदश्व और बृहदश्वसे कुवलाश्वका जन्म हुआ। कुवलाश्व धुन्धु नामक दैत्यका विनाश करके धुन्धुमारके नामसे विख्यात हुए। उनके तीन पुत्र हुए—दृढाश्व, दण्ड तथा कपिलाश्व। धुन्धुमारके पुत्रोंमें प्रतापी कपिलाश्व अधिक प्रसिद्ध थे। दृढाश्वका प्रमोद और प्रमोदका पुत्र हर्यश्व। हर्यश्वसे निकुम्भ और निकुम्भसे संहताश्वका जन्म हुआ। संहताश्वके दो पुत्र हुए—अकृताश्व तथा रणाश्व। रणाश्वके पुत्र युवनाश्व और युवनाश्वके मान्धाता थे। मान्धाताके तीन पुत्र हुए—पुरुकुत्स, धर्मसेतु तथा मुचुकुन्द। इनमें मुचुकुन्दकी ख्याति विशेष थी। वे इन्द्रके मित्र और प्रतापी राजा थे। पुरुकुत्सका पुत्र सम्भूत था, जिसका विवाह नर्मदाके साथ हुआ था। सम्भूतसे सम्भूति और सम्भूतिसे त्रिधन्वाका जन्म हुआ। त्रिधन्वाका पुत्र त्रैधारुण नामसे विख्यात हुआ। उसके पुत्रका नाम सत्यव्रत था। उससे सत्यरथका जन्म हुआ। सत्यरथके पुत्र हरिश्चन्द्र थे। हरिश्चन्द्रसे रोहित हुआ। रोहितसे वृक और वृकसे बाहुकी उत्पत्ति हुई। बाहुके पुत्र परम धर्मात्मा राजा सगर हुए। सगरकी दो स्त्रियाँ थीं—प्रभा और भानुमती। इन दोनोंने पुत्रकी इच्छासे और्व नामक अग्निकी आराधना की। इससे सन्तुष्ट होकर और्वने उन दोनोंको इच्छानुसार वरदान देते हुए कहा—'एक रानी साठ हजार पुत्र पा सकती है और दूसरीको एक ही पुत्र मिलेगा, जो वंशकी रक्षा करनेवाला होगा [इन दो वरोंमेंसे जिसको जो पसंद आवे, वह उसे ले ले]!' प्रभाने बहुत-से पुत्रोंको लेना स्वीकार किया तथा भानुमतीको एक ही पुत्र—असमंजसकी प्राप्ति हुई। तदनन्तर प्रभाने, जो यदुकुलकी कन्या थी, साठ हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया, जो अश्वकी खोजके लिये पृथ्वीको खोदते समय भगवान् विष्णुके अवतार महात्मा कपिलके कोपसे दग्ध हो गये। असमंजसका पुत्र अंशुमान्‌के नामसे विख्यात हुआ। उसका पुत्र दिलीप था। दिलीपसे भगीरथका जन्म हुआ, जिन्होंने तपस्या करके भागीरथी गङ्गाको इस पृथ्वीपर उतारा था। भगीरथके पुत्रका नाम नाभाग हुआ। नाभागके अम्बरीष और अम्बरीषके पुत्र सिन्धुद्वीप हुए। सिन्धुद्वीपसे अयुतायु और अयुतायुसे ऋतुपर्णका जन्म हुआ। ऋतुपर्णसे कल्माषपाद और कल्माषपादसे सर्वकर्माकी उत्पत्ति हुई। सर्वकर्माका आरण्य और आरण्यका पुत्र निघ्न हुआ। निघ्नके दो उत्तम पुत्र हुए—अनुमित्र और रघु। अनुमित्र शत्रुओंका नाश करनेके लिये वनमें चला गया। रघुसे दिलीप और दिलीपसे अज हुए। अजसे दीर्घबाहु और दीर्घबाहुसे प्रजापालकी उत्पत्ति हुई। प्रजापालसे दशरथका जन्म हुआ। उनके चार पुत्र हुए। वे सब-के-सब भगवान् नारायणके स्वरूप थे। उनमें राम सबसे बड़े थे, जिन्होंने रावणको मारा और रघुवंशका विस्तार किया तथा भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ वाल्मीकिने रामायणके रूपमें जिनके चरित्रका चित्रण किया। रामके

दो पुत्र हुए—कुश और लव। ये दोनो ही इक्ष्वाकु-वंशका विस्तार करनेवाले थे। कुशसे अतिथि और अतिथिसे निषधका जन्म हुआ। निषधसे नल, नलसे नभा, नभासे पुण्डरीक और पुण्डरीकसे क्षेमधन्वाकी उत्पत्ति हुई। क्षेमधन्वाका पुत्र देवानीक हुआ। वह वीर और प्रतापी था। उसका पुत्र अहीनगु हुआ। अहीनगुसे सहस्राश्वका जन्म हुआ। सहस्राश्वसे चन्द्रावलोक, चन्द्रावलोकसे तारापीड, तारापीडसे चन्द्रगिरि, चन्द्रगिरिसे चन्द्र तथा चन्द्रसे श्रुतायु हुए, जो महाभारत-युद्धमें मारे गये। नल नामके दो राजा प्रसिद्ध हैं—एक तो वीरसेनके पुत्र थे और दूसरे निषधके। इस प्रकार इक्ष्वाकुवंशके प्रधान-प्रधान राजाओंका वर्णन किया गया।

पितरों तथा श्राद्धके विभिन्न अङ्गोंका वर्णन

भीष्मजीने कहा—भगवन्! अब मैं पितरोंके उत्तम वंशका वर्णन सुनना चाहता हूँ।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! बड़े हर्षकी बात है; मैं तुम्हे आरम्भसे ही पितरोंके वंशका वर्णन सुनाता हूँ, सुनो। स्वर्गमें पितरोंके सात गण हैं। उनमें तीन तो मूर्ति-रहित हैं और चार मूर्तिमान्। ये सब-के-सब अमिततेजस्वी है। इनमे जो मूर्तिरहित पितृगण हैं, वे वैराज प्रजापतिकी सन्तान हैं; अतः वैराज नामसे प्रसिद्ध हैं। देवगण उनका यजन करते है। अब पितरोंकी लोक-सृष्टिका वर्णन करता हूँ, श्रवण करो। सोमपथ नामसे प्रसिद्ध कुछ लोक है, जहाँ कश्यपके पुत्र पितृगण निवास करते हैं। देवतालोग सदा उनका सम्मान किया करते हैं। अग्निष्वात्त नामसे प्रसिद्ध यज्वा पितृगण उन्ही लोकोंमे निवास करते है। स्वर्गमें विभ्राज नामके जो दूसरे तेजस्वी लोक हैं, उनमें बर्हिषद्-संज्ञक पितृगण निवास करते है। वहाँ मोरोंसे जुते हुए हजारो विमान हैं तथा संकल्पमय वृक्ष भी है, जो संकल्पके अनुसार फल प्रदान करनेवाले हैं। जो लोग इस लोकमें अपने पितरोंके लिये श्राद्ध करते है, वे उन विभ्राज नामके लोकोंमे जाकर समृद्धिशाली भवनोमे आनन्द भोगते है तथा वहाँ मेरे सैकड़ो पुत्र विद्यमान रहते हैं, जो तपस्या और योगबलसे सम्पन्न, महात्मा, महान् सौभाग्यशाली और भक्तोको अभयदान देनेवाले है। मार्तण्डमण्डल नामक लोकमें मरीचिगर्भ नामके पितृगण निवास करते हैं। वे अङ्गिरा मुनिके पुत्र है और लोकमें हविष्मान् नामसे विख्यात हैं; वे राजाओंके पितर हैं और स्वर्ग तथा मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाले हैं। तीर्थोंमे श्राद्ध करनेवाले श्रेष्ठ क्षत्रिय उन्हींके लोकमें जाते हैं। कामदुघ नामसे प्रसिद्ध जो लोक हैं, वे इच्छानुसार भोगकी प्राप्ति करानेवाले हैं। उनमें सुस्वध नामके पितर निवास करते है। लोकमें वे आज्यप नामसे विख्यात हैं और प्रजापति कर्दमके पुत्र हैं। पुलहके बड़े भाईसे उत्पन्न वैश्यगण उन पितरोंकी पूजा करते हैं। श्राद्ध करनेवाले पुरुष उस लोकमे पहुँचनेपर एक ही साथ हजारों जन्मोंके परिचित माता, भाई, पिता, सास, मित्र, सम्बन्धी तथा बन्धुओका दर्शन करते हैं। इस प्रकार पितरोके तीन गण बताये गये। अब चौथे गणका वर्णन करता हूँ। ब्रह्मलोकके ऊपर सुमानस नामके लोक स्थित हैं, जहाँ सोमप नामसे प्रसिद्ध सनातन पितरोंका निवास है। वे सब-के-सब धर्ममय स्वरूप धारण करनेवाले तथा ब्रह्माजीसे भी श्रेष्ठ हैं। स्वधासे उनकी उत्पत्ति हुई है। वे योगी हैं; अतः ब्रह्मभावको प्राप्त होकर सृष्टि आदि करके सब इस समय मानसरोवरमे स्थित हैं। इन पितरोकी कन्या नर्मदा नामकी नदी है, जो अपने जलसे समस्त प्राणियोको पवित्र करती हुई पश्चिम समुद्रमें जा मिलती है। उन सोमप नामवाले पितरोसे ही सम्पूर्ण प्रजासृष्टिका विस्तार हुआ है, ऐसा जानकर मनुष्य सदा धर्मभावसे उनका श्राद्ध करते है। उन्हींके प्रसादसे योगका विस्तार होता है।

आदि सृष्टिके समय इस प्रकार पितरोंका श्राद्ध प्रचलित हुआ। श्राद्धमे उन सबके लिये चाँदीके पात्र अथवा चाँदीसे युक्त पात्रका उपयोग होना चाहिये। 'स्वधा' शब्दके उच्चारण-पूर्वक पितरोके उद्देश्यसे किया हुआ श्राद्ध-दान पितरोंको सर्वदा सन्तुष्ट करता है। विद्वान् पुरुषोंको चाहिये कि वे अग्निहोत्री एवं सोमपायी ब्राह्मणोके द्वारा अग्निमें हवन कराकर पितरोंको तृप्त करें। अग्निके अभावमें ब्राह्मणके हाथमें अथवा जलमे या शिवजीके स्थानके समीप पितरोके निमित्त दान करे; ये ही पितरोंके लिये निर्मल स्थान हैं।

पितृकार्यमें दक्षिण दिशा उत्तम मानी गयी है। यज्ञोपवीतको अपसव्य अर्थात् दाहिने कंधेपर करके किया हुआ तर्पण, तिलदान तथा 'स्वधा' के उच्चारणपूर्वक किया हुआ श्राद्ध—ये सदा पितरोंको तृप्त करते हैं। कुश, उड़द, साठी धानका चावल, गायका दूध, मधु, गायका घी, सावाँ, अगहनीका चावल, जौ, तीनाका चावल, मूँग, गन्ना और सफेद फूल—ये सब वस्तुएँ पितरोंको सदा प्रिय हैं।

अब ऐसे पदार्थ बताता हूँ, जो श्राद्धमें सर्वदा वर्जित हैं। मसूर, सन, मटर, राजमाष, कुलथी, कमल, बिल्व, मदार, धतूरा, पारिभद्राट, रूषक, भेड़-बकरीका दूध, कोदो, दारवरट, कैथ, महुआ और अलसी—ये सब निषिद्ध हैं। अपनी उन्नति चाहनेवाले पुरुषको श्राद्धमें इन वस्तुओंका उपयोग कभी नहीं करना चाहिये। जो भक्तिभावसे पितरोंको प्रसन्न करता है, उसे पितर भी सन्तुष्ट करते हैं। वे पुष्टि, आरोग्य, सन्तान एवं स्वर्ग प्रदान करते हैं। पितृकार्य देवकार्यसे भी बढ़कर है; अतः देवताओंको तृप्त करनेसे पहले पितरोंको ही सन्तुष्ट करना श्रेष्ठ माना गया है। कारण, पितृगण शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं, सदा प्रिय वचन बोलते हैं, भक्तोंपर प्रेम रखते हैं और उन्हें सुख देते हैं। पितर पर्वोंके देवता हैं अर्थात् प्रत्येक पर्वपर पितरोंका पूजन करना उचित है। हविष्मान्संज्ञक पितरोंके अधिपति सूर्यदेव ही श्राद्धके देवता माने गये हैं।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ पुलस्त्यजी! आपके मुँहसे यह सारा विषय सुनकर मेरी इसमें बड़ी भक्ति हो गयी है; अतः अब मुझे श्राद्धका समय, उसकी विधि तथा श्राद्धका स्वरूप बतलाइये। श्राद्धमें कैसे ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये? तथा किनको छोड़ना चाहिये? श्राद्धमें दिया हुआ अन्न पितरोंके पास कैसे पहुँचता है? किस विधिसे श्राद्ध करना उचित है? और वह किस तरह उन पितरोंको तृप्त करता है?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! अन्न और जलसे अथवा दूध एवं फल-मूल आदिसे पितरोंको सन्तुष्ट करते हुए प्रतिदिन श्राद्ध करना चाहिये। श्राद्ध तीन प्रकारका होता है—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। पहले नित्य श्राद्धका वर्णन करता हूँ। उसमें अर्घ्य और आवाहनकी क्रिया नहीं होती। उसे अदैव समझना चाहिये—उसमें विश्वदेवोंको भाग नहीं दिया जाता। पर्वके दिन जो श्राद्ध किया जाता है, उसे पार्वण कहते हैं। पार्वण-श्राद्धमें जो ब्राह्मण निमन्त्रित करने योग्य हैं, उनका वर्णन करता हूँ; श्रवण करो। जो पञ्चाग्निका सेवन करनेवाला, स्नातक, त्रिसौपर्ण[1], वेदके व्याकरण आदि छहों अङ्गोंका ज्ञाता, श्रोत्रिय (वेदज्ञ), श्रोत्रियका पुत्र, वेदके विधिवाक्योंका विशेषज्ञ, सर्वज्ञ (सब विषयोंका ज्ञाता), वेदका स्वाध्यायी, मन्त्र जपनेवाला, ज्ञानवान्, त्रिणाचिकेत[2], त्रिमधु[3], अन्य शास्त्रोंमें भी परिनिष्ठित, पुराणोंका विद्वान्, स्वाध्यायशील, ब्राह्मणभक्त, पिताकी सेवा करनेवाला, सूर्यदेवताका भक्त, वैष्णव, ब्रह्मवेत्ता, योगशास्त्रका ज्ञाता, शान्त, आत्मज्ञ, अत्यन्त शीलवान् तथा शिवभक्तिपरायण हो, ऐसा ब्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रण पानेका अधिकारी है। ऐसे ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक श्राद्धमें भोजन कराना चाहिये। अब जो लोग श्राद्धमें वर्जनीय हैं, उनका वर्णन सुनो। पतित, पतितका पुत्र, नपुंसक, चुगलखोर और अत्यन्त रोगी—ये सब श्राद्धके समय धर्मज्ञ पुरुषोंद्वारा त्याग देने योग्य हैं। श्राद्धके पहले दिन अथवा श्राद्धके ही दिन विनयशील ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। निमन्त्रण दिये हुए ब्राह्मणोंके शरीरमें पितरोंका आवेश हो जाता है। वे वायुरूपसे उनके भीतर प्रवेश करते हैं और ब्राह्मणोंके बैठनेपर स्वयं भी उनके साथ बैठे रहते हैं।

किसी ऐसे स्थानको, जो दक्षिण दिशाकी ओर नीचा हो, गोबरसे लीपकर वहाँ श्राद्ध आरम्भ करे अथवा गोशालामें या जलके समीप श्राद्ध करे। आहिताग्नि पुरुष पितरोंके लिये चरु (खीर) बनाये और यह कहकर कि इससे पितरोंका श्राद्ध करूँगा, वह सब दक्षिण दिशामें रख दे। तदनन्तर उसमें घृत और मधु आदि मिलाकर अपने सामनेकी ओर तीन निर्वापस्थान (पिण्डदानकी वेदियाँ) बनाये। उनकी लंबाई एक बित्ता और चौड़ाई चार अङ्गुलकी होनी चाहिये। साथ ही, खैरकी तीन दर्वी

---

१. 'ब्रह्ममेतु माम्' इत्यादि तीन अनुवाकोंका नियमपूर्वक अध्ययन करनेवाला त्रिसौपर्ण कहलाता है।

२. द्वितीय कठके अन्तर्गत 'अयं वाव यः पवते' इत्यादि तीन अनुवाकोंको त्रिणाचिकेत कहते हैं। उसका स्वाध्याय अथवा अनुष्ठान करनेवाला पुरुष भी त्रिणाचिकेत कहलाता है।

३. 'मधु वाता ऋतायते' इत्यादि तीनों ऋचाओंका पाठ और अनुगमन करनेवालेको त्रिमधु कहते हैं।

(कलछुल) बनवावे, जो चिकनी हों तथा जिनमे चाँदीका संसर्ग हो। उनकी लंबाई एक-एक रत्निकी और आकार हाथके समान सुन्दर होना उचित है। जलपात्र, कांस्यपात्र, प्रोक्षण, समिधा, कुश, तिलपात्र, उत्तम वस्त्र, गन्ध, धूप, चन्दन— ये सब वस्तुएँ धीरे-धीरे दक्षिण दिशामें रखे। उस समय जनेऊ दाहिने कंधेपर होना चाहिये। इस प्रकार सब सामान एकत्रित करके घरके पूर्व गोबरसे लिपी हुई पृथ्वीपर गोमूत्रसे मण्डल बनावे और अक्षत तथा फूलसहित जल लेकर तथा जनेऊको क्रमशः बायें एवं दाहिने कंधेपर छोड़कर ब्राह्मणोंके पैर धोये तथा बारंबार उन्हें प्रणाम करे। तदनन्तर, विधिपूर्वक आचमन कराकर उन्हें बिछाये हुए दर्भयुक्त आसनोपर बिठावे और उनसे मन्त्रोच्चारण करावे। सामर्थ्यशाली पुरुष भी देवकार्य (वैश्वदेव श्राद्ध) में दो और पितृकार्यमें तीन ब्राह्मणोंको ही भोजन कराये अथवा दोनों श्राद्धोमे एक-एक ब्राह्मणको ही जिमाये। विद्वान् पुरुषको श्राद्धमे अधिक विस्तार नहीं करना चाहिये। पहले विश्वेदेव-सम्बन्धी और फिर पितृ-सम्बन्धी विद्वान् ब्राह्मणोकी अर्घ्य आदिसे विधिवत् पूजा करे तथा उनकी आज्ञा लेकर अग्निमें यथाविधि हवन करे। विद्वान् पुरुष गृह्यसूत्रमे बतायी हुई विधिके अनुसार घृतयुक्त चरुका अग्नि और सोमकी तृप्तिके उद्देश्यसे समयपर हवन करे। इस प्रकार देवताओकी तृप्ति करके वह श्राद्धकर्ता श्रेष्ठ ब्राह्मण साक्षात् अग्निका स्वरूप माना जाता है। देवताके उद्देश्यसे किया जानेवाला हवन आदि प्रत्येक कार्य जनेऊको बायें कंधेपर रखकर ही करना चाहिये। तत्पश्चात् पितरोके निमित्त करनेयोग्य पर्युक्षण (सेचन) आदि सारा कार्य विज्ञ पुरुषको जनेऊको दायें कंधेपर करके—अपसव्य भावसे करना उचित है। हवन तथा विश्वेदेवोको अर्पण करनेसे बचे हुए अन्नको लेकर उसके कई पिण्ड बनावे और एक-एक पिण्डको दाहिने हाथमे लेकर तिल और जलके साथ उसका दान करना चाहिये। संकल्पके समय जल-पात्रमे रखे हुए जलको बायें हाथकी सहायतासे दाये हाथमे ढाल लेना चाहिये। श्राद्धकालमें पूर्ण प्रयत्नके साथ अपने मन और इन्द्रियोको काबूमें रखे और मात्सर्यका त्याग कर दे। [पिण्डदानकी विधि इस प्रकार है—] पिण्ड देनेके लिये बनायी हुई वेदियोपर यत्नपूर्वक रेखा बनावे। इसके बाद अवनेजन-पात्रमें जल लेकर उसे रेखाङ्कित वेदीपर गिरावे। [यह अवनेजन अर्थात् स्थान-शोधनकी क्रिया है।] फिर दक्षिणाभिमुख होकर वेदीपर कुश बिछावे और एक-एक करके सब पिण्डोंको क्रमशः उन कुशोंपर रखे। उस समय [पिता-पितामह आदिमेसे जिस-जिसके उद्देश्यसे पिण्ड दिया जाता हो, उस-उस] पितरके नाम-गोत्र आदिका उच्चारण करते हुए संकल्प पढ़ना चाहिये। पिण्डदानके पश्चात् अपने दायें हाथको पिण्डाधारभूत कुशोंपर पोंछना चाहिये। यह लेपभागभोजी पितरोंका भाग है। उस समय ऐसे ही मन्त्रका जप अर्थात् 'लेपभागभुजः पितरस्तृप्यन्तु' इत्यादि वाक्योंका उच्चारण करना उचित है। इसके बाद पुनः प्रत्यवनेजन करे अर्थात् अवनेजनपात्रमें जल लेकर उससे प्रत्येक पिण्डको नहलावे। फिर जलयुक्त पिण्डोंको नमस्कार करके श्राद्धकल्पोक्त वेद-मन्त्रोंके द्वारा पिण्डोपर पितरोका आवाहन करे और चन्दन, धूप आदि पूजन-सामग्रियोंके द्वारा उनकी पूजा करे। तत्पश्चात् आहवनीयादि अग्नियोके प्रतिनिधिभूत एक-एक ब्राह्मणको जलके साथ एक-एक दर्वी[1] प्रदान करे। फिर विद्वान् पुरुष पितरोके उद्देश्यसे पिण्डोके ऊपर कुश रखे तथा पितरोका विसर्जन करे। तदनन्तर, क्रमशः सभी पिण्डोमेसे थोड़ा-थोड़ा अंश निकालकर सबको एकत्र करे और ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक पहले वही भोजन करावे; क्योंकि उन पिण्डोंका अंश ब्राह्मण-लोग ही भोजन करते हैं। इसीलिये अमावास्याके दिन किये हुए पार्वण श्राद्धको 'अन्वाहार्य' कहा गया है। पहले अपने हाथमे पवित्रीसहित तिल और जल लेकर पिण्डोके आगे छोड़ दे और कहे—'एषा स्वधा अस्तु' (ये पिण्ड स्वधा-स्वरूप हो जायँ)। इसके बाद परम पवित्र और उत्तम अन्न परोसकर उसकी प्रशंसा करते हुए उन ब्राह्मणोको भोजन करावे। उस समय भगवान् श्रीनारायणका स्मरण करता रहे और क्रोधी स्वभावको सर्वथा त्याग दे। ब्राह्मणोंको तृप्त जानकर विकिरान्न दान करे; यह सब वर्णोके लिये उचित है। विकिरान्न-दानकी विधि यह है। तिलसहित अन्न और जल लेकर उसे कुशके ऊपर पृथ्वीपर रख दे। जब ब्राह्मण आचमन कर लें तो पुनः पिण्डोंपर जल गिरावे। फूल, अक्षत, जल छोड़ना और स्वधावाचन आदि सारा कार्य पिण्डके ऊपर करे।' पहले देवश्राद्धकी समाप्ति करके फिर पितृश्राद्धकी समाप्ति करे, अन्यथा श्राद्धका नाश हो जाता है। इसके बाद नतमस्तक होकर ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा करके उनका विसर्जन करे।

यह आहिताग्नि पुरुषोंके लिये अन्वाहार्य पार्वण श्राद्ध

१. मुट्ठी बँधे हुए हाथकी लंबाईको रत्नि कहते हैं।

१. खदिर (खैर) की बनी हुई कलछुल।

बतलाया गया। अमावास्याके पर्वपर किये जानेके कारण यह पार्वण कहलाता है। यही नैमित्तिक श्राद्ध है। श्राद्धके पिण्ड गाय या बकरीको खिला दे अथवा ब्राह्मणोंको दे दे अथवा अग्नि या जलमें छोड़ दे। यह भी न हो तो खेतमें बिखेर दे अथवा जलकी धारामें बहा दे। [सन्तानकी इच्छा रखनेवाली] पत्नी विनीत भावसे आकर मध्यम अर्थात् पितामहके पिण्डको ग्रहण करे और उसे खा जाय। उस समय 'आधत्त पितरो गर्भम्' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। श्राद्ध और पिण्डदान आदिकी स्थिति तभीतक रहती है, जबतक ब्राह्मणोंका विसर्जन नहीं हो जाता। इनके विसर्जनके पश्चात् पितृकार्य समाप्त हो जाता है। उसके बाद बलिवैश्वदेव करना चाहिये। तदनन्तर अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ पितरोंद्वारा सेवित प्रसादस्वरूप अन्न भोजन करे। श्राद्ध करनेवाले यजमान तथा श्राद्धभोजी ब्राह्मण दोनोंको उचित है कि वे दुबारा भोजन न करें, राह न चलें, मैथुन न करें; साथ ही उस दिन स्वाध्याय, कलह और दिनमें शयन—इन सबको सर्वथा त्याग दें। इस विधिसे किया हुआ श्राद्ध धर्म, अर्थ और काम—तीनोंकी सिद्धि करनेवाला होता है। कन्या, कुम्भ और वृष राशिपर सूर्यके रहते कृष्णपक्षमें प्रतिदिन श्राद्ध करना चाहिये। जहाँ-जहाँ सपिण्डीकरणरूप श्राद्ध करना हो, वहाँ अग्निहोत्र करनेवाले पुरुषको सदा इसी विधिसे करना चाहिये।

अब मैं ब्रह्माजीके बताये हुए साधारण श्राद्धका वर्णन करूँगा, जो भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाला है। उत्तरायण और दक्षिणायनके प्रारम्भके दिन, विषुव नामक योग (तुला और मेषकी संक्रान्ति) में [जब कि दिन और रात बराबर होते हैं], प्रत्येक अमावास्याको, प्रतिसंक्रान्तिके दिन, अष्टका (पौष, माघ, फाल्गुन तथा आश्विन मासके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथि) में, पूर्णिमाको, आर्द्रा, मघा और रोहिणी—इन नक्षत्रोंमें, श्राद्धके योग्य उत्तम पदार्थ और सुपात्र ब्राह्मणके प्राप्त होनेपर, व्यतीपात, विष्टि और वैधृति योगके दिन, वैशाखकी तृतीयाको, कार्तिककी नवमीको, माघकी पूर्णिमा तथा भाद्रपदकी त्रयोदशी तिथिको भी श्राद्धका अनुष्ठान करना चाहिये। उपर्युक्त तिथियाँ युगादि कहलाती हैं। ये पितरोंका उपकार करनेवाली हैं। इसी प्रकार मन्वन्तरादि तिथियोंमें भी विद्वान् पुरुष श्राद्धका अनुष्ठान करे। आश्विन शुक्ला नवमी, कार्तिक शुक्ला द्वादशी, चैत्र तथा भाद्रपदकी शुक्ला तृतीया, फाल्गुनकी अमावास्या, पौषकी शुक्ला एकादशी, आषाढ़ शुक्ला दशमी, माघ शुक्ला सप्तमी, श्रावण कृष्णा अष्टमी, आषाढ़, कार्तिक, फाल्गुन और ज्येष्ठकी पूर्णिमा—इन तिथियोंको मन्वन्तरादि कहते हैं। ये दिये हुए दानको अक्षय कर देनेवाली हैं। विज्ञ पुरुषको चाहिये कि वैशाखकी पूर्णिमाको, ग्रहणके दिन, किसी उत्सवके अवसरपर और महालय (आश्विन कृष्णपक्ष) में तीर्थ, मन्दिर, गोशाला, द्वीप, उद्यान तथा घर आदिमें लिपे-पुते एकान्त स्थानमें श्राद्ध करे।'

[अब श्राद्धके क्रमका वर्णन किया जाता है—] पहले विश्वेदेवोंके लिये आसन देकर जौ और पुष्पोंसे उनकी पूजा करे। [विश्वेदेवोंके दो आसन होते हैं; एकपर पिता-पितामहादिसम्बन्धी विश्वेदेवोंका आवाहन होता है और दूसरेपर मातामहादिसम्बन्धी विश्वेदेवोंका।] उनके लिये दो अर्घ्य-पात्र (सिकोरे या दोने) जौ और जल आदिसे भर दे और उन्हें कुशाकी पवित्रीपर रखे। 'शन्नोदेवीरभीष्टये' इत्यादि मन्त्रसे जल तथा 'यवोऽसि—' इत्यादिके द्वारा जौके दोनोंको उन पात्रोंमें छोड़ना चाहिये। फिर गन्ध-पुष्प आदिसे पूजा करके वहाँ विश्वेदेवोंकी स्थापना करे और 'विश्वे देवास—' इत्यादि दो मन्त्रोंसे विश्वेदेवोंका आवाहन करके उनके ऊपर जौ छोड़े। जौ छोड़ते समय इस प्रकार कहे—'जौ! तुम सब अन्नोंके राजा हो। तुम्हारे देवता वरुण हैं—वरुणसे ही तुम्हारी उत्पत्ति हुई है; तुम्हारे अंदर मधुका मेल है। तुम सम्पूर्ण पापोंको दूर करनेवाले, पवित्र एवं मुनियोंद्वारा प्रशंसित अन्न हो।'* फिर अर्घ्यपात्रको चन्दन और फूलोंसे सजाकर 'या दिव्या आपः—' इस मन्त्रको पढ़ते हुए विश्वेदेवोंको अर्घ्य दे। इसके बाद उनकी पूजा करके गन्ध आदि निवेदन कर पितृयज्ञ (पितृश्राद्ध) आरम्भ करे। पहले पिता आदिके लिये कुशाके तीन आसनोंकी कल्पना करके फिर तीन अर्घ्यपात्रोंका पूजन करे—उन्हें पुष्प आदिसे सजावे। प्रत्येक अर्घ्यपात्रको कुशाकी पवित्रीसे युक्त करके 'शन्नोदेवीरभीष्टये—' इस मन्त्रसे सबमें जल छोड़े। फिर 'तिलोऽसि सोमदेवत्यो—' इस मन्त्रसे तिल छोड़कर [बिना मन्त्रके ही] चन्दन और पुष्प आदि भी छोड़े। अर्घ्यपात्र पीपल आदिकी लकड़ीका, पत्तेका या चाँदीका बनवावे अथवा समुद्रसे निकले हुए शङ्ख आदिसे अर्घ्यपात्रका काम ले। सोने, चाँदी और ताँबेका पात्र पितरोंको अभीष्ट

* यवोऽसि धान्यराजस्तु वारुणो मधुमिश्रितः।
निर्णोदः सर्वपापानां पवित्रमृषिसंस्तुतम्॥

होता है। चाँदीकी तो चर्चा सुनकर भी पितर प्रसन्न हो जाते हैं। चाँदीका दर्शन अथवा चाँदीका दान उन्हें प्रिय है। यदि चाँदीके बने हुए अथवा चाँदीसे युक्त पात्रमें जल भी रखकर पितरोंको श्रद्धापूर्वक दिया जाय तो वह अक्षय हो जाता है। इसलिये पितरोंके पिण्डोंपर अर्घ्य चढ़ानेके लिये चाँदीका ही पात्र उत्तम माना गया है। चाँदी भगवान् श्रीशङ्करके नेत्रसे प्रकट हुई है, इसलिये वह पितरोंको अधिक प्रिय है।

इस प्रकार उपर्युक्त वस्तुओंमेंसे जो सुलभ हो, उसके अर्घ्यपात्र बनाकर उन्हें ऊपर बताये अनुसार जल, तिल और गन्ध-पुष्प आदिसे सुसज्जित करे; तत्पश्चात् 'या दिव्या आपः' इस मन्त्रको पढ़कर पिताके नाम और गोत्र आदिका उच्चारण करके अपने हाथमें कुश ले ले। फिर इस प्रकार कहे—'पितॄन् आवाहयिष्यामि'—'पितरोंका आवाहन करूँगा।' तब निमन्त्रणमें आये हुए ब्राह्मण 'तथास्तु' कहकर श्राद्धकर्ताको आवाहनके लिये आज्ञा प्रदान करें। इस प्रकार ब्राह्मणोंकी अनुमति लेकर 'उशन्तस्त्वा निधीमहि—' 'आयन्तु नः पितरः—' इन दो ऋचाओंका पाठ करते हुए वह पितरोंका आवाहन करे। तदनन्तर, 'या दिव्या आपः—' इन मन्त्रसे पितरोंको अर्घ्य देकर प्रत्येकके लिये गन्ध-पुष्प आदि पूजोपचार एवं वस्त्र चढ़ावे तथा पृथक्-पृथक् संकल्प पढ़कर उन्हें समर्पित करे। [अर्घ्यदानकी प्रक्रिया इस प्रकार है—] पहले अनुलोम-क्रमसे अर्थात् पिताके उद्देश्यसे दिये हुए अर्घ्यपात्रका जल पितामहके अर्घ्यपात्रमें डाले और फिर पितामहके अर्घ्यपात्रका सारा जल प्रपितामहके अर्घ्यपात्रमे डाल दे, फिर विलोमक्रमसे अर्थात् प्रपितामहके अर्घ्यपात्रको पितामहके अर्घ्यपात्रमें रखे और उन दोनो पात्रोंको उठाकर पिताके अर्घ्यपात्रमें रखे। इस प्रकार तीनों अर्घ्यपात्रोंको एक-दूसरेके ऊपर करके पिताके आसनके उत्तर भागमें 'पितृभ्यः स्थानमसि' ऐसा कहकर उन्हें ढुलका दे—उलटकर रख दे। ऐसा करके अन्न परोसनेका कार्य करे।

परोसनेके समय भी पहले अग्निकार्य करना चाहिये अर्थात् थोड़ा-सा अन्न निकालकर 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' और 'सोमाय पितृमते स्वाहा'—इन दो मन्त्रोंसे अग्नि और सोम देवताके लिये अग्निमें दो बार आहुति डाले। इसके बाद दोनो हाथोंसे अन्न निकालकर परोसे। परोसते समय 'उशन्तस्त्वा निधीमहि—' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करता रहे। उत्तम, गुणकारी शाक आदि तथा नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंके साथ दही, दूध, गौका घृत और शक्कर आदिसे युक्त अन्न पितरोंके लिये तृप्तिकारक होता है। मधु मिलाकर तैयार किया हुआ कोई भी पदार्थ तथा गायका दूध और घी मिलायी हुई खीर आदि पितरोंके लिये दी जाय तो वह अक्षय होती है—ऐसा आदि देवता पितरोंने स्वयं अपने ही मुखसे कहा है। इस प्रकार अन्न परोसकर पितृसम्बन्धी ऋचाओंका पाठ सुनावे। इसके सिवा सभी तरहके पुराण; ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्र-सम्बन्धी भाँति-भाँतिके स्तोत्र; इन्द्र, रुद्र और सोमदेवताके सूक्त; पावमानी ऋचाएँ; बृहद्रथन्तर; ज्येष्ठसामका गौरव-गान; शान्तिकाध्याय, मधुब्राह्मण, मण्डलब्राह्मण तथा और भी जो कुछ ब्राह्मणोंको तथा अपनेको प्रिय लगे वह सब सुनाना चाहिये। महाभारतका भी पाठ करना चाहिये; क्योंकि वह पितरोंको अत्यन्त प्रिय है। ब्राह्मणोंके भोजन कर लेनेपर जो अन्न और जल आदि शेष रहे, उसे उनके आगे जमीनपर बिखेर दे। यह उन जीवोंका भाग है, जो संस्कार आदिसे हीन होनेके कारण अधम गतिको प्राप्त हुए हैं।

ब्राह्मणोंको तृप्त जानकर उन्हे हाथ-मुँह धोनेके लिये जल प्रदान करे। इसके बाद गायके गोबर और गोमूत्रसे लिपी हुई भूमिपर दक्षिणाग्र कुश बिछाकर उनके ऊपर यत्नपूर्वक पितृयज्ञकी भाँति विधिवत् पिण्डदान करे। पिण्डदानके पहले पितरोंके नाम-गोत्रका उच्चारण करके उन्हें अवनेजनके लिये जल देना चाहिये। फिर पिण्ड देनेके बाद पिण्डोंपर प्रत्यवनेजनका जल गिराकर उनपर पुष्प आदि चढ़ाना चाहिये। सव्यापसव्यका विचार करके प्रत्येक कार्यका सम्पादन करना उचित है। पिताके श्राद्धकी भाँति माताका श्राद्ध भी हाथमें कुश लेकर विधिवत् सम्पन्न करे। दीप जलावे, पुष्प आदिसे पूजा करे। ब्राह्मणोंके आचमन कर लेनेपर स्वयं भी आचमन करके एक-एक बार सबको जल दे। फिर फूल और अक्षत देकर तिलसहित अक्षय्योदक दान करे। फिर नाम और गोत्रका उच्चारण करते हुए शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे। गौ, भूमि, सोना, वस्त्र और अच्छे-अच्छे बिछौने दे। कृपणता छोड़कर पितरोंकी प्रसन्नताका सम्पादन करते हुए जो-जो वस्तु ब्राह्मणोंको, अपनेको तथा पिताको भी प्रिय हो, वही-वही वस्तु दान करे। तत्पश्चात् स्वधावाचन करके विश्वेदेवोंको जल अर्पण करे और ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद ले। विद्वान् पुरुष पूर्वाभिमुख होकर कहे—'अघोराः पितरः सन्तु (मेरे पितर शान्त एवं मङ्गलमय हों)।' यजमानके ऐसा कहनेपर ब्राह्मणलोग

'तथा सन्तु (तुम्हारे पितर ऐसे ही हों)'--ऐसा कहकर अनुमोदन करें। फिर श्राद्धकर्ता कहे--'गोत्रं नो वर्धताम्' (हमारा गोत्र बढ़े)। यह सुनकर ब्राह्मणोंको 'तथास्तु' (ऐसा ही हो) इस प्रकार उत्तर देना चाहिये। फिर यजमान कहे--'दातारो मेऽभिवर्धन्ताम्' 'वेदाः सन्ततिरेव च--एताः सत्या आशिषः सन्तु (मेरे दाता बढ़ें, साथ ही मेरे कुलमें वेदोंके अध्ययन और सुयोग्य सन्तानकी वृद्धि हो--ये सारे आशीर्वाद सत्य हों)'। यह सुनकर ब्राह्मण कहे--'सन्तु सत्या आशिषः (ये आशीर्वाद सत्य हों)'। इसके बाद भक्तिपूर्वक पिण्डोंको उठाकर सूँघे और स्वस्तिवाचन करे। फिर भाई-बन्धु और स्त्री-पुत्रके साथ प्रदक्षिणा करके आठ पग चले। तदनन्तर लौटकर प्रणाम करे। इस प्रकार श्राद्धकी विधि पूरी करके मन्त्रवेत्ता पुरुष अग्नि प्रज्वलित करनेके पश्चात् बलिवैश्वदेव तथा नैत्यिक बलि अर्पण करे। तदनन्तर भृत्य, पुत्र, बान्धव तथा अतिथियोंके साथ बैठकर वही अन्न भोजन करे, जो पितरोंको अर्पण किया गया हो। जिसका यज्ञोपवीत नहीं हुआ है, ऐसा पुरुष भी इस श्राद्धको प्रत्येक पर्वपर कर सकता है। इसे साधारण [या नैमित्तिक] श्राद्ध कहते हैं। यह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। राजन्! स्त्रीरहित या विदेशस्थित मनुष्य भी भक्तिपूर्ण हृदयसे इस श्राद्धका अनुष्ठान करनेका अधिकारी है। यही नहीं, शूद्र भी इसी विधिसे श्राद्ध कर सकता है; अन्तर इतना ही है कि वह वेदमन्त्रोंका उच्चारण नहीं कर सकता।

तीसरा अर्थात् काम्य श्राद्ध आभ्युदयिक है; इसे वृद्धि-श्राद्ध भी कहते हैं। उत्सव और आनन्दके अवसरपर, संस्कारके समय, यज्ञमें तथा विवाह आदि माङ्गलिक कार्योंमें यह श्राद्ध किया जाता है। इसमें पहले माताओंकी अर्थात् माता, पितामही और प्रपितामहीकी पूजा होती है। इनके बाद पितरों—पिता, पितामह और प्रपितामहका पूजन किया जाता है। अन्तमें मातामह आदिकी पूजा होती है। अन्य श्राद्धोंकी भाँति इसमें भी विश्वेदेवोंकी पूजा आवश्यक है। दक्षिणावर्तक क्रमसे पूजोपचार चढ़ाना चाहिये। आभ्युदयिक श्राद्धमें दही, अक्षत, फल और जलसे ही पूर्वाभिमुख होकर पितरोंको पिण्डदान दिया जाता है। 'सम्पन्नम्' का उच्चारण करके अर्घ्य और पिण्डदान देना चाहिये। इसमें युगल ब्राह्मणोंको अर्घ्य दान दे तथा युगल (सपत्नीक) ब्राह्मणोंकी ही वस्त्र और सुवर्ण आदिके द्वारा पूजा करे। तिलका काम जौसे लेना चाहिये तथा सारा कार्य पूर्ववत् करना चाहिये। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके द्वारा सब प्रकारके मङ्गलपाठ करावे। इस प्रकार शूद्र भी कर सकता है। यह वृद्धिश्राद्ध सबके लिये सामान्य है। बुद्धिमान् शूद्र 'पित्रे नमः' इत्यादि नमस्कार-मन्त्रके द्वारा ही दान आदि कार्य करे। भगवान्का कथन है कि शूद्रके लिये दान ही प्रधान है; क्योंकि दानसे उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

एकोद्दिष्ट आदि श्राद्धोंकी विधि तथा श्राद्धोपयोगी तीर्थोंका वर्णन

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! अब मैं एकोद्दिष्ट श्राद्धका वर्णन करूँगा, जिसे पूर्वकालमें ब्रह्माजीने बतलाया था। साथ ही यह भी बताऊँगा कि पिताके मरनेपर पुत्रोंको किस प्रकार अशौचका पालन करना चाहिये। ब्राह्मणोंमें मरणाशौच दस दिनतक रखनेकी आज्ञा है, क्षत्रियोंमें बारह दिन, वैश्योंमें पंद्रह दिन तथा शूद्रोंमें एक महीनेका विधान है। यह अशौच सपिण्ड (सात पीढ़ीतक) के प्रत्येक मनुष्यपर लागू होता है। यदि किसी बालककी मृत्यु चूडाकरणके पहले हो जाय तो उसका अशौच एक रातका कहा गया है। उसके बाद उपनयनके पहलेतक तीन राततक अशौच रहता है। जननाशौचमें भी सब वर्णोंके लिये यही व्यवस्था है। अस्थि-सञ्चयनके बाद अशौचग्रस्त पुरुषके शरीरका स्पर्श किया जा सकता है। प्रेतके लिये बारह दिनोंतक प्रतिदिन पिण्ड-दान करना चाहिये; क्योंकि वह उसके लिये पाथेय (राहखर्च) है, इसलिये उसे पाकर प्रेतको बड़ी प्रसन्नता होती है। द्वादशाहके बाद ही प्रेतको यमपुरीमें ले जाया जाता है; तबतक वह घरपर ही रहता है। अतः दस राततक प्रतिदिन उसके लिये आकाशमें दूध देना चाहिये; इससे सब प्रकारके दाहकी शान्ति होती है तथा मार्गके परिश्रमका भी निवारण होता है। दशाहके बाद ग्यारहवें दिन, जब कि सूतक निवृत्त हो जाता है, अपने गोत्रके ग्यारह ब्राह्मणोंको ही बुलाकर भोजन कराना चाहिये। अशौचकी समाप्तिके दूसरे दिन एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे। इसमें न तो आवाहन होता है न अग्नौकरण (अग्निमें हवन)। विश्वे-

देवोंका पूजन आदि भी नहीं होता। एक ही पवित्री, एक ही अर्घ और एक ही पिण्ड देनेका विधान है। अर्घ और पिण्ड आदि देते समय प्रेतका नाम लेकर 'तत्रोपतिष्ठताम्, (तुम्हें प्राप्त हो) ऐसा कहना चाहिये। तत्पश्चात् तिल और जल छोड़ना चाहिये। अपने किये हुए दानका जल ब्राह्मणके हाथमें देना चाहिये तथा विसर्जनके समय 'अभिरम्यताम्' कहना चाहिये। शेष कार्य अन्य श्राद्धोंकी ही भाँति जानना चाहिये। उस दिन विधिपूर्वक शय्यादान, फल-वस्त्रसमन्वित काञ्चनपुरुषकी पूजा तथा द्विज-दम्पतिका पूजन भी करना आवश्यक है।

एकादशाह श्राद्धमें कभी भोजन नहीं करना चाहिये। यदि भोजन कर ले तो चान्द्रायण व्रत करना उचित है। सुयोग्य पुत्रको पिताकी भक्तिसे प्रेरित होकर सदा ही एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। एकादशाहके दिन वृषोत्सर्ग करे, उत्तम कपिला गौ दान दे और उसी दिनसे आरम्भ करके एक वर्षतक प्रतिदिन भक्ष्य-भोज्यके साथ तिल और जलसे भरा हुआ घड़ा दान करना चाहिये। [इसीको कुम्भदान कहते हैं।] तदनन्तर, वर्ष पूरा होनेपर सपिण्डीकरण श्राद्ध होना चाहिये। सपिण्डीकरणके बाद प्रेत [प्रेतत्वसे मुक्त होकर] पार्वणश्राद्धका अधिकारी होता है तथा गृहस्थके वृद्धिसम्बन्धी कार्योंमे आभ्युदयिक श्राद्धका भागी होता है। सपिण्डीकरण श्राद्ध देवश्राद्धपूर्वक करना चाहिये अर्थात् उसमे पहले विश्वेदेवोकी, फिर पितरोंकी पूजा होती है। सपिण्डीकरणमे जब पितरोका आवाहन करे तो प्रेतका आसन उनसे अलग रखे। फिर चन्दन, जल और तिलसे युक्त चार अर्घ्यपात्र बनावे तथा प्रेतके अर्घ्यपात्रका जल तीन भागोमे विभक्त करके पितरोंके अर्घ्य-पात्रोंमे डाले। इसी प्रकार पिण्डदान करनेवाला पुरुष चार पिण्ड बनाकर 'ये समानाः–, इत्यादि दो मन्त्रोंके द्वारा प्रेतके पिण्डको तीन भागोमें विभक्त करे [और एक-एक भागको पितरोंके तीन पिण्डोमे मिला दे]। इसी विधिसे पहले अर्घ्यको और फिर पिण्डोको सङ्कल्पपूर्वक समर्पित करे। तदनन्तर, वह चतुर्थ व्यक्ति अर्थात् प्रेत पितरोंकी श्रेणीमे सम्मिलित हो जाता है और अग्निष्वात्त आदि पितरोंके बीचमे बैठकर उत्तम अमृतका उपभोग करता है। इसलिये सपिण्डीकरण श्राद्धके बाद उस (प्रेत) को पृथक् कुछ नही दिया जाता। पितरोमे ही उसका भाग भी देना चाहिये तथा उन्हींके पिण्डोंमें स्थित होकर वह अपना भाग ग्रहण करता है। तबसे लेकर जब-जब संक्रान्ति और ग्रहण आदि पर्व आवें, तब-तब तीन पिण्डोंका ही श्राद्ध करना चाहिये। केवल मृत्यु-तिथिको केवल उसीके लिये एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना उचित है। पिताके क्षयाहके दिन जो एकोद्दिष्ट नहीं करता, वह सदाके लिये पिताका हत्यारा और भाईका विनाश करनेवाला माना गया है। क्षयाह-तिथिको [एकोद्दिष्ट न करके] पार्वणश्राद्ध करनेवाला मनुष्य नरकगामी होता है। मृत व्यक्तिको जिस प्रकार प्रेतयोनिसे छुटकारा मिले और उसे स्वर्गादि उत्तम लोकोंकी प्राप्ति हो, इसके लिये विधिपूर्वक आमश्राद्ध[1] करना चाहिये। कच्चे अन्नसे ही अग्नौ-करणकी क्रिया करे और उसीसे पिण्ड भी दे। पहले या तीसरे महीनेमें भी जब मृत व्यक्तिका पिता आदि तीन पुरुषोंके साथ सपिण्डीकरण हो जाता है, तब प्रेतत्वके बन्धनसे उसकी मुक्ति हो जाती है। मुक्त होनेपर उससे लेकर तीन पीढ़ीतकके पितर सपिण्ड कहलाते हैं, तथा चौथा सपिण्डकी श्रेणीसे निकलकर लेपभागी हो जाता है। कुशमें हाथ पोंछनेसे जो अंश प्राप्त होता है, वही उसके उपभोगमें आता है। पिता, पितामह और प्रपितामह—ये तीन पिण्डभागी होते हैं; और इनसे ऊपर चतुर्थ व्यक्ति अर्थात् वृद्धप्रपितामहसे लेकर तीन पीढ़ीतकके पूर्वज लेपभागभोजी माने जाते हैं। [छः तो ये हुए,] इनमे सातवाँ है स्वयं पिण्ड देनेवाला पुरुष। ये ही सात पुरुष सपिण्ड कहलाते हैं।

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! हव्य और कव्यका दान मनुष्योंको किस प्रकार करना चाहिये? पितृलोकमें उन्हें कौन ग्रहण करते हैं? यदि इस मर्त्यलोकमें ब्राह्मण श्राद्धके अन्नको खा जाते हैं अथवा अग्निमें उसका हवन कर दिया जाता है तो शुभ और अशुभ योनियोमें पड़े हुए प्रेत उस अन्नको कैसे खाते हैं—उन्हें वह किस प्रकार मिल पाता है?

पुलस्त्यजी बोले— राजन्! पिता वसुके, पितामह रुद्रके तथा प्रपितामह आदित्यके स्वरूप हैं—ऐसी वेदकी श्रुति है। पितरोंके नाम और गोत्र ही उनके पास हव्य और कव्य पहुँचानेवाले हैं। मन्त्रकी शक्ति तथा हृदयकी भक्तिसे श्राद्ध-का सार-भाग पितरोंको प्राप्त होता है। अग्निष्वात्त आदि दिव्य पितर पिता-पितामह आदिके अधिपति हैं—वे ही उनके पास श्राद्धका अन्न पहुँचानेकी व्यवस्था करते हैं। पितरोंमेंसे जो लोग कहीं जन्म ग्रहण कर लेते हैं, उनके भी

१. कच्चे अन्नके द्वारा श्राद्ध।

कुछ-न-कुछ नाम, गोत्र तथा देश आदि तो होते ही हैं; [दिव्य पितरोंको उनका ज्ञान होता है और वे उसी पतेपर सभी वस्तुएँ पहुँचा देते हैं।] अतः यह भेंट-पूजा आदिके रूपमें दिया हुआ सब सामान प्राणियोंके पास पहुँचकर उन्हें तृप्त करता है। यदि शुभ कर्मोंके योगसे पिता और माता दिव्ययोनिको प्राप्त हुए हों तो श्राद्धमें दिया हुआ अन्न अमृत होकर उस अवस्थामें भी उन्हें प्राप्त होता है। वही दैत्ययोनिमें भोगरूपसे, पशुयोनिमें तृणरूपसे, सर्पयोनिमें वायुरूपसे तथा यक्षयोनिमें पानरूपसे उपस्थित होता है। इसी प्रकार यदि माता-पिता मनुष्य-योनिमें हों तो उन्हें अन्न-पान आदि अनेक रूपोंमें श्राद्धान्नकी प्राप्ति होती है। यह श्राद्ध-कर्म पुष्प कहा गया है, इसका फल है ब्रह्मकी प्राप्ति। राजन्! श्राद्धसे प्रसन्न हुए पितर आयु, पुत्र, धन, विद्या, राज्य, लौकिक सुख, स्वर्ग तथा मोक्ष भी प्रदान करते हैं।

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! श्राद्धकर्ता पुरुष दिनके किस भागमें श्राद्धका अनुष्ठान करे तथा किन तीर्थोंमें किया हुआ श्राद्ध अधिक फल देनेवाला होता है?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! पुष्कर नामका तीर्थ सब तीर्थोंमें श्रेष्ठतम माना गया है। वहाँ किया हुआ दान, होम, [श्राद्ध] और जप निश्चय ही अक्षय फल प्रदान करनेवाला होता है। वह तीर्थ पितरों और ऋषियोंको सदा ही परम प्रिय है। इसके सिवा नन्दा, ललिता तथा मायापुरी (हरिद्वार) भी पुष्करके ही समान उत्तम तीर्थ हैं। मित्रपद और केदार-तीर्थ भी श्रेष्ठ हैं। गङ्गासागर नामक तीर्थको परम शुभदायक और सर्वतीर्थमय बतलाया जाता है। ब्रह्मसर तीर्थ और शतद्रु (सतलज) नदीका जल भी शुभ है। नैमिषारण्य नामक तीर्थ तो सब तीर्थोंका फल देनेवाला है। वहाँ गोमतीमें गङ्गाका सनातन स्रोत प्रकट हुआ है। नैमिषारण्यमें भगवान् यज्ञ-वराह और देवाधिदेव शूलपाणि विराजते हैं। जहाँ सोनेका दान दिया जाता है, वहाँ महादेवजीकी अठारह भुजावाली मूर्ति है। पूर्वकालमें जहाँ धर्मचक्रकी नेमि जीर्ण-शीर्ण होकर गिरी थी, वही स्थान नैमिषारण्यके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वहाँ सब तीर्थोंका निवास है। जो वहाँ जाकर देवाधिदेव वराहका दर्शन करता है, वह धर्मात्मा पुरुष भगवान् श्रीनारायणके धाममें जाता है। कोकामुख नामक क्षेत्र भी एक प्रधान तीर्थ है। यह इन्द्रलोकका मार्ग है। यहाँ भी ब्रह्माजीके पितृतीर्थका दर्शन होता है। वहाँ भगवान् ब्रह्माजी पुष्करारण्यमें विराजमान हैं। ब्रह्माजीका दर्शन अत्यन्त उत्तम एवं मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाला है। कृत नामक महान् पुण्यमय तीर्थ सब पापोंका नाशक है। वहाँ आदिपुरुष नरसिंहस्वरूप भगवान् जनार्दन स्वयं ही स्थित हैं। इक्षुमती नामक तीर्थ पितरोंको सदा प्रिय है। गङ्गा और यमुनाके सङ्गम (प्रयाग) में भी पितर सदा सन्तुष्ट रहते हैं। कुरुक्षेत्र अत्यन्त पुण्यमय तीर्थ है। वहाँका पितृ-तीर्थ सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाला है।

राजन्! नीलकण्ठ नामसे विख्यात तीर्थ भी पितरोंका तीर्थ है। इसी प्रकार परम पवित्र भद्रसर तीर्थ, मानसरोवर, मन्दाकिनी, अच्छोदा, विपाशा (व्यास नदी), पुण्यसलिला सरस्वती, सर्वमित्रपद, महाफलदायक वैद्यनाथ, अत्यन्त पावन क्षिप्रानदी, कालिञ्जर गिरि, तीर्थोद्भेद, हरोद्भेद, गर्भभेद, महालय, भद्रेश्वर, विष्णुपद, नर्मदाद्वार तथा गयातीर्थ—ये सब पितृतीर्थ हैं। महर्षियोंका कथन है कि इन तीर्थोंमें पिण्डदान करनेसे समान फलकी प्राप्ति होती है। ये स्मरण करने मात्रसे लोगोंके सारे पाप हर लेते हैं; फिर जो इनमें पिण्डदान करते हैं, उनकी तो बात ही क्या है। ओङ्कारतीर्थ, कावेरी नदी, कपिलाका जल, चण्डवेगा नदीमें मिली हुई नदियोंके सङ्गम तथा अमरकण्टक—ये सब पितृतीर्थ हैं। अमरकण्टकमें किये हुए स्नान आदि पुण्यकार्य कुरुक्षेत्रकी अपेक्षा दसगुना उत्तम फल देनेवाले हैं। विख्यात शुक्लतीर्थ एवं उत्तम सोमेश्वरतीर्थ अत्यन्त पवित्र और सम्पूर्ण व्याधियोंको हरनेवाले हैं। वहाँ श्राद्ध करने, दान देने तथा होम, स्वाध्याय, जप और निवास करनेसे अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा कोटिगुना अधिक फल होता है।

इनके अतिरिक्त एक कायावरोहण नामक तीर्थ है, जहाँ किसी ब्राह्मणके उत्तम भवनमें देवाधिदेव त्रिशूलधारी भगवान् शङ्करका तेजस्वी अवतार हुआ था। इसीलिये वह स्थान परम पुण्यमय तीर्थ बन गया। चर्मण्वती नदी, शूलतापी, पयोष्णी, पयोष्णी-सङ्गम, महौषधी, चारणा, नागतीर्थप्रवर्तिनी, पुण्यसलिला महावेणा नदी, महाशाल तीर्थ, गोमती, वरुणा, अग्नितीर्थ, भैरवतीर्थ, भृगुतीर्थ, गौरीतीर्थ, वैनायकतीर्थ, वस्त्रेश्वरतीर्थ, पापहरतीर्थ, पावनसलिला वेत्रवती (बेतवा) नदी, महारुद्रतीर्थ, महालिङ्गतीर्थ, दशार्णा, महानदी, शतरुद्रा, शताह्वा, पितृपदपुर, अङ्गारवाहिका नदी, शोण (सोन) और घर्घर (घाघरा) नामवाले दो नद, परम-पावन कालिका नदी और शुभदायिनी पितरा नदी—ये

समस्त पितृतीर्थ स्नान और दानके लिये उत्तम माने गये हैं। इन तीर्थोंमें जो पिण्ड आदि दिया जाता है, वह अनन्त फल देनेवाला माना गया है। शतवटा नदी, ज्वाला, शरद्वी नदी, श्रीकृष्णतीर्थ—द्वारकापुरी, उदक्सरस्वती, मालवती नदी, गिरिकर्णिका, दक्षिण-समुद्रके तटपर विद्यमान भूतपापतीर्थ, गोकर्णतीर्थ, गजकर्णतीर्थ, परम उत्तम चक्रनदी, श्रीशैल, शाकतीर्थ, नारसिंहतीर्थ, महेन्द्र पर्वत तथा पावन-सलिला महानदी—इन सब तीर्थोंमें किया हुआ श्राद्ध भी सदा अक्षय फल प्रदान करनेवाला माना गया है। ये दर्शन-मात्रसे पुण्य उत्पन्न करनेवाले तथा तत्काल समस्त पापोंको हर लेनेवाले हैं।

पुण्यमयी तुङ्गभद्रा, चक्ररथी, भीमेश्वरतीर्थ, कृष्णवेणा, कावेरी, अञ्जना, पावनसलिला गोदावरी, उत्तम त्रिसन्ध्या-तीर्थ और समस्त तीर्थोंसे नमस्कृत त्र्यम्बकतीर्थ, जहाँ 'भीम' नामसे प्रसिद्ध भगवान् शङ्कर स्वयं विराजमान हैं, अत्यन्त उत्तम है। इन सबमें दिया हुआ दान कोटिगुना अधिक फल देनेवाला है। इनके स्मरण करने मात्रसे पापोंके सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं। परम पावन श्रीपर्णा नदी, अत्यन्त उत्तम व्यास-तीर्थ, मत्स्यनदी, राका, शिवधारा, विख्यात भवतीर्थ, सनातन पुण्यतीर्थ, पुण्यमय रामेश्वरतीर्थ, वेणायु, अमलपुर, प्रसिद्ध मङ्गलतीर्थ, आत्मदर्शतीर्थ, अलम्बुषतीर्थ, वत्सत्रातेश्वर-तीर्थ, गोकामुखतीर्थ, गोवर्धन, हरिश्चन्द्र, पुरश्चन्द्र, पृथूदक, सहस्राक्ष, हिरण्याक्ष, कदली नदी, नामधेयतीर्थ, सौमित्रिसङ्गम-तीर्थ, इन्द्रनील, महानाद तथा प्रियमेलक—ये भी श्राद्धके लिये अत्यन्त उत्तम माने गये हैं; इनमें सम्पूर्ण देवताओंका निवास बताया जाता है। इन सबमें दिया हुआ दान कोटिगुना अधिक फल देनेवाला होता है। पावन नदी बाहुदा, शुभकारी सिद्धवट, पाशुपततीर्थ, पर्यटिका नदी—इन सबमें किया हुआ श्राद्ध भी सौ करोड़ गुना फल देता है। इसी प्रकार पञ्चतीर्थ और गोदावरी नदी भी पवित्र तीर्थ हैं। गोदावरी दक्षिण-वाहिनी नदी है। उसके तटपर हजारों शिवलिङ्ग हैं। वहीं जामदग्न्यतीर्थ और उत्तम मोदायतनतीर्थ हैं, जहाँ गोदावरी नदी प्रतीकके भयसे सदा प्रवाहित होती रहती है। इसके सिवा हव्य-कव्य नामका तीर्थ भी है। वहाँ किये हुए श्राद्ध, होम और दान सौ करोड़ गुना अधिक फल देनेवाले होते हैं। सहस्रलिङ्ग और राघवेश्वर नामक तीर्थका माहात्म्य भी ऐसा ही है। वहाँ किया हुआ श्राद्ध अनन्तगुना फल देता है। शालग्रामतीर्थ, प्रसिद्ध शोणपात (सोनरत)-तीर्थ, वैश्वानरालयतीर्थ, सारस्वततीर्थ स्वामितीर्थ मलंदरा नदी, पुण्यसलिला कौशिकी, चन्द्रका, विदर्भा, वेगा, प्राङ्मुखा, कावेरी, उत्तराङ्गा और जालन्धर गिरि—इन तीर्थोंमें किया हुआ श्राद्ध अक्षय हो जाता है। लोहदण्ड-तीर्थ, चित्रकूट, सभी स्थानोंमें गङ्गानदीके दिव्य एवं कल्याणमय तट, कुब्जाम्रक, उर्वशी-पुलिन, संसारमोचन और ऋणमोचन तीर्थ—इनमें किया हुआ श्राद्ध अनन्त हो जाता है। अट्टहासतीर्थ, गौतमेश्वरतीर्थ, वसिष्ठतीर्थ, भारततीर्थ- ब्रह्मावर्त, कुशावर्त, हंसतीर्थ, प्रसिद्ध पिण्डारकतीर्थ, शङ्खोद्धारतीर्थ, भाण्डेश्वरतीर्थ, बिल्वकतीर्थ, नीलपर्वत, सब तीर्थोंका राजाधिराज बदरीतीर्थ, वसुधारातीर्थ, रामतीर्थ, जयन्ती, विजय तथा शुक्रतीर्थ—इनमें पिण्डदान करनेवाले पुरुष परम पदको प्राप्त होते हैं।

मातृगृहतीर्थ, करवीरपुर तथा सब तीर्थोंका स्वामी सप्त-गोदावरी नामक तीर्थ भी अत्यन्त पावन हैं। जिन्हें अनन्त फल प्राप्त करनेकी इच्छा हो, उन पुरुषोंको इन तीर्थोंमें पिण्डदान करना चाहिये। मगध देशमें गया नामकी पुरी तथा राजगृह नामक वन पावन तीर्थ हैं। वहीं च्यवन मुनिका आश्रम, पुनःपुना (पुनपुन) नदी और विषयाराधन-तीर्थ—ये सभी पुण्यमय स्थान हैं। राजेन्द्र! लोगोंमें यह किंवदन्ती प्रचलित है कि एक समय सब मनुष्य यही कहते हुए तीर्थों और मन्दिरोंमें आये थे कि 'क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा, जो गयाकी यात्रा करेगा? जो वहाँ जायगा, वह सात पीढ़ीतकके पूर्वजोंको और सात पीढ़ीतककी होनेवाली सन्तानोंको तार देगा।' मातामह आदिके सम्बन्धमें भी यह सनातन श्रुति चिरकालसे प्रसिद्ध है; वे कहते हैं—'क्या हमारे वंशमें एक भी ऐसा पुत्र होगा, जो अपने पितरोंकी हड्डियोंको ले जाकर गङ्गामें डाले, सात-आठ तिलोंसे भी जलाञ्जलि दे तथा पुष्करारण्य, नैमिषारण्य और धर्मारण्यमें पहुँचकर भक्तिपूर्वक श्राद्ध एवं पिण्डदान करे?' गया क्षेत्रके भीतर जो धर्मपृष्ठ, ब्रह्मसर तथा गयाशीर्ष-वट नामक तीर्थोंमें पितरोंको पिण्डदान किया जाता है, वह अक्षय होता है। जो घरपर श्राद्ध करके गया-तीर्थकी यात्रा करता है, वह मार्गमें पैर रखते ही नरकमें पड़े हुए पितरोंको तुरंत स्वर्गमें पहुँचा देता है। उसके कुलमें कोई प्रेत नहीं होता। गयामें पिण्डदानके प्रभावसे प्रेतत्वसे छुटकारा मिल जाता है। [गयामें] एक मुनि थे, जो अपने दोनों हाथोंके अग्रभागमें भरा हुआ ताम्रपात्र लेकर आमोंकी जड़में

पानी देते थे; इससे आमोंकी सिंचाई भी होती थी और उनके पितर भी तृप्त होते थे। इस प्रकार एक ही क्रिया दो प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाली हुई। गयामें पिण्डदानसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है; क्योंकि वहाँ एक ही पिण्ड देनेसे पितर तृप्त होकर मोक्षको प्राप्त होते हैं। कोई-कोई मुनीश्वर अन्नदानको श्रेष्ठ बतलाते हैं और कोई वस्त्रदानको उत्तम कहते हैं। वस्तुतः गयाके उत्तम तीर्थोंमें मनुष्य जो कुछ भी दान करते हैं, वह धर्मका हेतु और श्रेष्ठ कहा गया है।

यह तीर्थोंका संग्रह मैंने संक्षेपमें बतलाया है; विस्तारसे तो इसे बृहस्पतिजी भी नहीं कह सकते, फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है। सत्य तीर्थ है, दया तीर्थ है और इन्द्रियोंका निग्रह भी तीर्थ है। मनोनिग्रहको भी तीर्थ कहा गया है। सवेरे तीन मुहूर्त (छः घड़ी) तक प्रातःकाल रहता है। उसके बाद तीन मुहूर्ततकका समय सङ्गव कहलाता है। तत्पश्चात् तीन मुहूर्ततक मध्याह्न होता है। उसके बाद उतने ही समयतक अपराह्न रहता है। फिर तीन मुहूर्ततक सायाह्न होता है। सायाह्न-कालमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह राक्षसी वेला है, अतः सभी कर्मोंके लिये निन्दित है। दिनके पंद्रह मुहूर्त बतलाये गये हैं। उनमें आठवाँ मुहूर्त, जो दोपहरके बाद पड़ता है, 'कुतप' कहलाता है। उस समयसे धीरे-धीरे सूर्यका ताप मन्द पड़ता जाता है। वह अनन्त फल देनेवाला काल है। उसीमें श्राद्धका आरम्भ उत्तम माना जाता है। खड्गपात्र, कुतप, नेपालदेशीय कम्बल, सुवर्ण, कुश, तिल तथा आठवाँ दौहित्र (पुत्रीका पुत्र)—ये कुत्सित अर्थात् पापको सन्ताप देनेवाले हैं; इसलिये इन आठोंको 'कुतप' कहते हैं। कुतप मुहूर्तके बाद चार मुहूर्ततक अर्थात् कुल पाँच मुहूर्त स्वधा-वाचन (श्राद्ध) के लिये उत्तम काल है। कुश और काले तिल भगवान् श्रीविष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुए हैं। मनीषी पुरुषोंने श्राद्धका लक्षण और काल इसी प्रकार बताया है। तीर्थवासियोंको तीर्थके जलमें प्रवेश करके पितरोंके लिये तिल और जलकी अञ्जलि देनी चाहिये। एक हाथमें कुश लेकर घरमें श्राद्ध करना चाहिये। यह तीर्थश्राद्धका विवरण पुण्यदायक, पवित्र, आयु बढ़ानेवाला तथा समस्त पापोंका निवारण करनेवाला है। इसे स्वयं ब्रह्माजीने अपने श्रीमुखसे कहा है। तीर्थनिवासियोंको श्राद्धके समय इस अध्यायका पाठ करना चाहिये। यह सब पापोंकी शान्तिका साधन और दरिद्रताका नाशक है।

चन्द्रमाकी उत्पत्ति तथा यदुवंश एवं सहस्रार्जुनके प्रभावका वर्णन

भीष्मजीने पूछा—समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता पुलस्त्यजी! चन्द्रवंशकी उत्पत्ति कैसे हुई? उस वंशमें कौन-कौन-से राजा अपनी कीर्तिका विस्तार करनेवाले हुए?

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने महर्षि अत्रिको सृष्टिके लिये आज्ञा दी। तब उन्होंने सृष्टिकी शक्ति प्राप्त करनेके लिये अनुत्तर[1] नामका तप किया। वे अपने मन और इन्द्रियोंके संयममें तत्पर होकर परमानन्दमय ब्रह्मका चिन्तन करने लगे। एक दिन महर्षिके नेत्रोंसे कुछ जलकी बूँदें टपकने लगीं, जो अपने प्रकाशसे सम्पूर्ण चराचर जगत्को प्रकाशित कर रही थीं। दिशाओं [की अधिष्ठात्री देवियों] ने स्त्रीरूपमें आकर पुत्र पानेकी इच्छासे उस जलको ग्रहण कर लिया। उनके उदरमें वह जल गर्भरूपसे स्थित हुआ। दिशाएँ उसे धारण करनेमें असमर्थ हो गयीं; अतः उन्होंने उस गर्भको त्याग दिया। तब ब्रह्माजीने उनके छोड़े हुए गर्भको एकत्रित करके उसे एक तरुण पुरुषके रूपमें प्रकट किया, जो सब प्रकारके आयुधोंको धारण करनेवाला था। फिर वे उस तरुण पुरुषको देवशक्ति-सम्पन्न सहस्र नामक रथपर बिठाकर अपने लोकमें ले गये। तब ब्रह्मर्षियोंने कहा—'ये हमारे स्वामी हैं।' तदनन्तर ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सराएँ उनकी स्तुति करने लगीं। उस समय उनका तेज बहुत बढ़ गया। उस तेजके विस्तारसे इस पृथ्वीपर दिव्य ओषधियाँ उत्पन्न हुईं। इसीसे चन्द्रमा ओषधियोंके स्वामी हुए तथा द्विजोंमें भी उनकी गणना हुई। वे शुक्लपक्षमें बढ़ते और कृष्णपक्षमें सदा क्षीण होते रहते हैं। कुछ कालके बाद प्रचेताओंके पुत्र प्रजापति दक्षने अपनी सत्ताईस कन्याएँ, जो रूप और लावण्यसे युक्त तथा अत्यन्त तेजस्विनी थीं, चन्द्रमाको पत्नीरूपमें अर्पण कीं। तत्पश्चात् चन्द्रमाने केवल श्रीविष्णुके ध्यानमें तत्पर होकर चिरकालतक बड़ी भारी तपस्या की। इससे प्रसन्न

१. जिससे बड़ा दूसरा कोई तप न हो, वह लोकोत्तर तपस्या ही 'अनुत्तर' तपके नामसे कही गयी है।

होकर परमात्मा श्रीनारायणदेवने उनसे वर माँगनेको कहा। तब चन्द्रमाने यह वर माँगा—'मैं इन्द्रलोकमें राजसूय यज्ञ करूँगा। उसमें आपके साथ ही सम्पूर्ण देवता मेरे मन्दिरमें प्रत्यक्ष प्रकट होकर यज्ञभाग ग्रहण करें। शूलधारी भगवान् श्रीशङ्कर मेरे यज्ञकी रक्षा करें।' 'तथास्तु' कहकर भगवान् श्रीविष्णुने स्वयं ही राजसूय यज्ञका समारोह किया। उसमें अत्रि होता, भृगु अध्वर्यु और ब्रह्माजी उद्गाता हुए। साक्षात् भगवान् श्रीहरि ब्रह्मा बनकर यज्ञके द्रष्टा हुए तथा सम्पूर्ण देवताओंने सदस्यका काम सँभाला। यज्ञ पूर्ण होनेपर चन्द्रमाको दुर्लभ ऐश्वर्य मिला और वे अपनी तपस्याके प्रभावसे सातों लोकोंके स्वामी हुए।

चन्द्रमासे बुधकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्मर्षियोंके साथ ब्रह्माजीने बुधको भूमण्डलके राज्यपर अभिषिक्त करके उन्हें ग्रहोंकी समानता प्रदान की। बुधने इलाके गर्भसे एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न किया, जिसने सौसे भी अधिक अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया। वह पुरूरवाके नामसे विख्यात हुआ। सम्पूर्ण जगत्के लोगोंने उसके सामने मस्तक झुकाया। पुरूरवाने हिमालयके रमणीय शिखरपर ब्रह्माजीकी आराधना करके लोकेश्वरका पद प्राप्त किया। वे सातों द्वीपोंके स्वामी हुए। केशी आदि दैत्योंने उनकी दासता स्वीकार की। उर्वशी नामकी अप्सरा उनके रूपपर मोहित होकर उनकी पत्नी हो गयी। राजा पुरूरवा सम्पूर्ण लोकोंके हितैषी राजा थे; उन्होंने सातों द्वीप, वन, पर्वत और काननोंसहित समस्त भूमण्डलका धर्मपूर्वक पालन किया। उर्वशीने पुरूरवाके वीर्यसे आठ पुत्रोंको जन्म दिया। उनके नाम ये हैं—आयु, दृढायु, वश्यायु, धनायु, धृतिमान्, वसु, दिविजात और सुबाहु—ये सभी दिव्य बल और पराक्रमसे सम्पन्न थे। इनमेंसे आयुके पाँच पुत्र हुए—नहुष, वृद्धशर्मा, रजि, दम्भ और विपाप्मा। ये पाँचों वीर महारथी थे। रजिके सौ पुत्र हुए, जो राजेयके नामसे विख्यात थे। राजन्! रजिने तपस्याद्वारा पापके सम्पर्कसे रहित भगवान् श्रीनारायणकी आराधना की। इससे सन्तुष्ट होकर श्रीविष्णुने उन्हें वरदान दिया, जिससे रजिने देवता, असुर और मनुष्योंको जीत लिया।

अब मैं नहुषके पुत्रोंका परिचय देता हूँ। उनके सात पुत्र हुए और वे सब-के-सब धर्मात्मा थे। उनके नाम ये हैं—यति, ययाति, संयाति, उद्भव, पर, वियति और विश्वसाति। ये सातों अपने वंशका यश बढ़ानेवाले थे। उनमें यति कुमारावस्थामें ही वानप्रस्थ योगी हो गये। ययाति राज्यका पालन करने लगे। उन्होंने एकमात्र धर्मकी ही शरण ले रखी थी। दानवराज वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठा तथा शुक्राचार्यकी पुत्री सती देवयानी—ये दोनों उनकी पत्नियाँ थीं। ययातिके पाँच पुत्र थे। देवयानीने यदु और तुर्वसु नामके दो पुत्रोंको जन्म दिया तथा शर्मिष्ठाने द्रुह्यु, अनु और पूरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये। उनमें यदु और पूरु—ये दोनों अपने वंशका विस्तार करनेवाले हुए। यदुसे यादवोंकी उत्पत्ति हुई, जिनमें पृथ्वीका भार उतारने और पाण्डवोंका हित करनेके लिये भगवान् बलराम और श्रीकृष्ण प्रकट हुए हैं। यदुके पाँच पुत्र हुए, जो देवकुमारोंके समान थे। उनके नाम थे—सहस्रजित्, क्रोष्टु, नील, अञ्जिक और रघु। इनमें सहस्रजित् ज्येष्ठ थे। उनके पुत्र राजा शतजित् हुए। शतजित्के हैहय, हय और उत्तालहय—ये तीन पुत्र हुए, जो बड़े धर्मात्मा थे। हैहयका पुत्र धर्मनेत्रके नामसे विख्यात हुआ। धर्मनेत्रके कुम्भि, कुम्भिके संहत और संहतके महिष्मान् नामक पुत्र हुआ। महिष्मान्से भद्रसेन नामक पुत्रका जन्म हुआ, जो बड़ा प्रतापी था। वह काशीपुरीका राजा था। भद्रसेनके पुत्र राजा दुर्दर्श हुए। दुर्दर्शके पुत्र भीम और भीमके बुद्धिमान् कनक हुए। कनकके कृताग्नि, कृतवीर्य, कृतधर्मा और कृतौजा—ये चार पुत्र हुए, जो संसारमें विख्यात थे। कृतवीर्यका पुत्र अर्जुन हुआ, जो एक हजार भुजाओंसे सुशोभित एवं सातों द्वीपोंका राजा था। राजा कार्तवीर्यने दस हजार वर्षोंतक दुष्कर तपस्या करके भगवान् दत्तात्रेयजीकी आराधना की। पुरुषोत्तम दत्तात्रेयजीने उन्हें चार वरदान दिये। राजाओंमें श्रेष्ठ अर्जुनने पहले तो अपने लिये एक हजार भुजाएँ माँगी। दूसरे वरके द्वारा उन्होंने यह प्रार्थना की कि 'मेरे राज्यमें लोगोंको अधर्मकी बात सोचते हुए भी मुझसे भय हो और वे अधर्मके मार्गसे हट जायँ।' तीसरा वरदान इस प्रकार था—'मैं युद्धमें पृथ्वीको जीतकर धर्मपूर्वक बलका संग्रह करूँ।' चौथे वरके रूपमें उन्होंने यह माँगा कि 'संग्राममें लड़ते-लड़ते मैं अपनी अपेक्षा श्रेष्ठ वीरके हाथसे मारा जाऊँ।' राजा अर्जुनने सातों द्वीप और नगरोंसे युक्त तथा सातों समुद्रोंसे घिरी हुई इस सारी पृथ्वीको क्षात्रधर्मके अनुसार जीत लिया था। उस बुद्धिमान् नरेशके इच्छा करते ही हजार भुजाएँ प्रकट हो जाती थीं। महाबाहु अर्जुनके सभी यज्ञोंमें पर्याप्त दक्षिणा बाँटी जाती थी। सबमें सुवर्णमय यूप (स्तम्भ) और सोनेकी ही वेदियाँ बनायी जाती थीं। उन यज्ञोंमें सम्पूर्ण देवता सज-

धजकर विमानोंपर बैठकर प्रत्यक्ष दर्शन देते थे । महाराज कार्तवीर्यने पचासी हजार वर्षोंतक एकछत्र राज्य किया । वे चक्रवर्ती राजा थे । योगी होनेके कारण अर्जुन समय-समयपर मेघके रूपमें प्रकट हो वृष्टिके द्वारा प्रजाको सुख पहुँचाते थे । प्रत्यञ्चाके आघातसे उनकी भुजाओंकी त्वचा कठोर हो गयी थी । जब वे अपनी हजारों भुजाओंके साथ संग्राममें खड़े होते थे, उस समय सहस्रों किरणोंसे सुशोभित शरत्कालीन सूर्यके समान तेजस्वी जान पड़ते थे । परम कान्तिमान् महाराज अर्जुन माहिष्मतीपुरीमें निवास करते थे और वर्षाकालमें समुद्रका वेग भी रोक देते थे । उनकी हजारों भुजाओंके आलोडनसे समुद्र क्षुब्ध हो उठता था और उस समय पातालवासी महान् असुर लुक-छिपकर निश्चेष्ट हो जाते थे।

एक समयकी बात है, वे अपने पाँच बाणोंसे अभिमानी रावणको सेनासहित मूर्छित करके माहिष्मतीपुरीमें ले आये । वहाँ ले जाकर उन्होंने रावणको कैदमें डाल दिया । तब मैं (पुलस्त्य) अर्जुनको प्रसन्न करनेके लिये गया । राजन् ! मेरी बात मानकर उन्होंने मेरे पौत्रको छोड़ दिया और उसके साथ मित्रता कर ली । किन्तु विधाताका बल और पराक्रम अद्भुत है, जिसके प्रभावसे भृगुनन्दन परशुरामजीने राजा कार्तवीर्यकी हजारों भुजाओंको सोनेके तालवनकी भाँति संग्राममें काट डाला । कार्तवीर्य अर्जुनके सौ पुत्र थे; किन्तु उनमें पाँच महारथी, अस्त्रविद्यामें निपुण, बलवान्, शूर, धर्मात्मा और महान् व्रतका पालन करनेवाले थे । उनके नाम थे—शूरसेन, शूर, धृष्ट, कृष्ण और जयध्वज । जयध्वजका पुत्र महाबली तालजङ्घ हुआ । तालजङ्घके सौ पुत्र हुए, जिनकी तालजङ्घके नामसे ही प्रसिद्धि हुई । उन हैहयवंशीय राजाओंके पाँच कुल हुए—वीतिहोत्र, भोज, अवन्ति, तुण्डकेर और विक्रान्त । ये सब-के-सब तालजङ्घ ही कहलाये । वीतिहोत्रका पुत्र अनन्त हुआ, जो बड़ा पराक्रमी था । उसके दुर्जय नामक पुत्र हुआ, जो शत्रुओंका संहार करनेवाला था ।

यदुवंशके अन्तर्गत क्रोष्टु आदिके वंश तथा श्रीकृष्णावतारका वर्णन

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजेन्द्र ! अब यदुपुत्र क्रोष्टुके वंशका, जिसमें श्रेष्ठ पुरुषोंने जन्म लिया था, वर्णन सुनो । क्रोष्टुके ही कुलमें वृष्णिवंशावतंस भगवान् श्रीकृष्णका अवतार हुआ है । क्रोष्टुके पुत्र महामना वृजिनीवान् हुए । उनके पुत्रका नाम स्वाति था । स्वातिसे कुशङ्कुका जन्म हुआ । कुशङ्कुसे चित्ररथ उत्पन्न हुए, जो शशविन्दु नामसे विख्यात चक्रवर्ती राजा हुए । शशविन्दुके दस हजार पुत्र हुए । वे बुद्धिमान्, सुन्दर, प्रचुर वैभवशाली और तेजस्वी थे । उनमें भी सौ प्रधान थे । उन सौ पुत्रोंमें भी, जिनके नामके साथ 'पृथु' शब्द जुड़ा था, वे महान् बलवान् थे । उनके पूरे नाम इस प्रकार हैं—पृथुश्रवा, पृथुयशा, पृथुतेजा, पृथूद्भव, पृथुकीर्ति और पृथुमति । पुराणोंके ज्ञाता पुरुष उन सबमें पृथुश्रवाको श्रेष्ठ बतलाते हैं । पृथुश्रवासे उशना नामक पुत्र हुआ, जो शत्रुओंको सन्ताप देनेवाला था । उशनाका पुत्र शिनेयु हुआ, जो सज्जनोंमें श्रेष्ठ था । शिनेयुका पुत्र रुक्मकवच नामसे प्रसिद्ध हुआ, वह शत्रुसेनाका विनाश करनेवाला था । राजा रुक्मकवचने एक बार अश्वमेध यज्ञका आयोजन किया और उसमें दक्षिणाके रूपमें यह सारी पृथ्वी ब्राह्मणोंको दे दी । उसके रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ और हरि—ये पाँच पुत्र उत्पन्न हुए, जो महान् बलवान् और पराक्रमी थे । उनमेंसे परिघ और हरिको उनके पिताने विदेह देशके राज्यपर स्थापित किया । रुक्मेषु राजा हुआ और पृथुरुक्म उसके अधीन होकर रहने लगा । उन दोनोंने मिलकर अपने भाई ज्यामघको घरसे निकाल दिया । ज्यामघ ऋक्षवान् पर्वतपर जाकर जंगली फल-मूलोंसे जीवन-निर्वाह करते हुए वहाँ रहने लगे । ज्यामघकी स्त्री शैब्या बड़ी सती-साध्वी स्त्री थी । उससे विदर्भ नामक पुत्र हुआ । विदर्भसे तीन पुत्र हुए—क्रथ, कैशिक और लोमपाद । राजकुमार क्रथ और कैशिक बड़े विद्वान् थे तथा लोमपाद परम धर्मात्मा थे । तत्पश्चात् राजा विदर्भने और भी अनेकों पुत्र उत्पन्न किये, जो युद्ध-कर्ममें कुशल तथा शूरवीर थे । लोमपादका पुत्र बभ्रु और बभ्रुका पुत्र हेति हुआ । कैशिकके चिदि नामक पुत्र हुआ, जिससे चैद्य राजाओंकी उत्पत्ति बतलायी जाती है ।

विदर्भका जो क्रथ नामक पुत्र था, उससे कुन्तिका जन्म हुआ, कुन्तिसे धृष्ट और धृष्टसे पृष्टकी उत्पत्ति हुई । पृष्ट प्रतापी राजा था । उसके पुत्रका नाम निर्वृति था । वह परम धर्मात्मा और शत्रुवीरोंका नाशक था । निर्वृतिके दाशार्ह नामक पुत्र हुआ, जिसका दूसरा नाम विदूरथ था । दाशार्हका पुत्र भीम और भीमका जीमूत हुआ । जीमूतके पुत्रका नाम

विकल था। विकलसे भीमरथ नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। भीमरथका पुत्र नवरथ, नवरथका दृढरथ और दृढरथका पुत्र शकुनि हुआ। शकुनिसे करम्भ और करम्भसे देवरातका जन्म हुआ। देवरातके पुत्र महायशस्वी राजा देवक्षत्र हुए। देवक्षत्रका पुत्र देवकुमारके समान अत्यन्त तेजस्वी हुआ। उसका नाम मधु था। मधुसे कुरुवशका जन्म हुआ। कुरुवशके पुत्रका नाम पुरुष था। वह पुरुषोंमें श्रेष्ठ हुआ। उससे विदर्भकुमारी भद्रवतीके गर्भसे जन्तुका जन्म हुआ। जन्तुका दूसरा नाम पुरुद्वसु था। जन्तुकी पत्नीका नाम वेत्रकी था। उसके गर्भसे सत्त्वगुणसम्पन्न सात्वतकी उत्पत्ति हुई। जो सात्वतवंशकी कीर्तिका विस्तार करनेवाले थे। सत्त्वगुण-सम्पन्न सात्वतसे उनकी रानी कौसल्याने भजिन, भजमान, दिव्य राजा देवावृध, अन्धक, महाभोज और वृष्णि नामके पुत्रोंको उत्पन्न किया। इनसे चार वंशोंका विस्तार हुआ। उनका वर्णन सुनो। भजमानकी पत्नी सृञ्जयकुमारी सृञ्जयीके गर्भसे भाज नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। भाजसे भाजकोंका जन्म हुआ। भाजकी दो स्त्रियाँ थीं। उन दोनोंने बहुत-से पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम हैं—विनय, करुण और वृष्णि। इनमें वृष्णि शत्रुके नगरोंपर विजय पानेवाले थे। भाज और उनके पुत्र—सभी भाजक नामसे प्रसिद्ध हुए; क्योंकि भजमानसे इनकी उत्पत्ति हुई थी।

देवावृधसे बभ्रुनामक पुत्रका जन्म हुआ, जो सभी उत्तम गुणोंसे सम्पन्न था। पुराणोंके ज्ञाता विद्वान् पुरुष महात्मा देवावृधके गुणोंका बखान करते हुए इस वंशके विषयमें इस प्रकार अपना उद्गार प्रकट करते हैं—'देवावृध देवताओंके समान हैं और बभ्रु समस्त मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं। देवावृध और बभ्रुके उपदेशसे छिहत्तर हजार मनुष्य मोक्षको प्राप्त हो चुके हैं।' बभ्रुसे भोजका जन्म हुआ, जो यज्ञ, दान और तपस्यामें धीर, ब्राह्मणभक्त, उत्तम व्रतोंका दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाले, रूपवान् तथा महातेजस्वी थे। शरकान्तकी कन्या मृतकावती भोजकी पत्नी हुई। उसने भोजसे कुकुर, भजमान, समीक और बलबर्हिष—ये चार पुत्र उत्पन्न किये। कुकुरके पुत्र धृष्णुके धृति, धृतिके कपोतरोमा, कपोतरोमाके नैमित्ति, नैमित्तिके सुसुत और सुसुतके पुत्र नरि हुए। नरि बड़े विद्वान् थे। उनका दूसरा नाम चन्दनोदक दुन्दुभि बतलाया जाता है। उनसे अभिजित् और अभिजित्से पुनर्वसु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। शत्रुविजयी पुनर्वसुसे दो सन्तानें हुईं; एक पुत्र और एक कन्या। पुत्रका नाम आहुक था और कन्याका आहुकी। भोजवंशमें कोई असत्यवादी, तेजहीन, यज्ञ न करनेवाला, हजारसे कम दान करनेवाला, अपवित्र और मूर्ख नहीं था। भोजसे बढ़कर कोई हुआ ही नहीं। यह भोजवंश आहुकतक आकर समाप्त हो गया।

आहुकने अपनी बहिन आहुकीका ब्याह अवन्ती देशमें किया था। आहुककी एक पुत्री भी थी, जिसने दो पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम हैं—देवक और उग्रसेन। वे दोनों देवकुमारों-केसमान तेजस्वी हैं। देवकके चार पुत्र हुए, जो देवताओंके समान सुन्दर और वीर हैं। उनके नाम हैं—देववान्, उपदेव, सुदेव और देवरक्षक। उनके सात बहिनें थीं, जिनका ब्याह देवकने वसुदेवजीके साथ कर दिया। उन सातोंके नाम इस प्रकार हैं—देवकी, श्रुतदेवा, यशोदा, श्रुतिश्रवा, श्रीदेवा, उपदेवा और सुरूपा। उग्रसेनके नौ पुत्र हुए। उनमें कंस सबसे बड़ा था। शेषके नाम इस प्रकार हैं—न्यग्रोध, सुनामा, कङ्क, शङ्कु, सुभू, राष्ट्रपाल, बद्धमुष्टि और सुमुष्टिक। उनके पाँच बहिनें थीं—कंसा, कंसवती, सुरभी, राष्ट्रपाली और कङ्का। ये सब-की-सब बड़ी सुन्दरी थीं। इस प्रकार सन्तानों-सहित उग्रसेनतक कुकुर-वंशका वर्णन किया गया।

[भोजके दूसरे पुत्र] भजमानके विदूरथ हुआ, वह रथियोंमें प्रधान था। उसके दो पुत्र हुए—राजाधिदेव और शूर। राजाधिदेवके भी दो पुत्र हुए—शोणाश्व और श्वेतवाहन। वे दोनों वीर पुरुषोंके सम्माननीय और क्षत्रिय-धर्मका पालन करनेवाले थे। शोणाश्वके पाँच पुत्र हुए। वे सभी शूरवीर और युद्धकर्ममें कुशल थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—शमी, गदवर्मा, निमूर्त, चक्रजित् और शुचि। शमीके पुत्र प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्रके भोज और भोजके हृदिक हुए। हृदिकके दस पुत्र हुए, जो भयानक पराक्रम दिखानेवाले थे। उनमें कृतवर्मा सबसे बड़ा था। उससे छोटोंके नाम शतधन्वा, देवार्ह, सुभानु, भीषण, महाबल, अजात, विजात, कारक और करम्भक है। देवार्हका पुत्र कम्बलबर्हिष हुआ, वह विद्वान् पुरुष था। उसके दो पुत्र हुए—समौजा और असमौजा। अजातके पुत्रसे भी समौजा नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए। समौजाके तीन पुत्र हुए, जो परम धार्मिक और पराक्रमी थे। उनके नाम हैं—सुदंश, सुरांश और कृष्ण।

[सात्वतके कनिष्ठ पुत्र]वृष्णिके वंशमें अनमित्र नामके प्रसिद्ध राजा हो गये हैं, वे अपने पिताके कनिष्ठ पुत्र थे। उनसे शिनि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। अनमित्रसे वृष्णिवीर युधाजित्का

भी जन्म हुआ । उनके सिवा दो वीर पुत्र और हुए, जो ऋषभ और क्षत्रके नामसे विख्यात हुए । उनमेंसे ऋषभने काशिराजकी पुत्रीको पत्नीके रूपमें ग्रहण किया । उससे जयन्तकी उत्पत्ति हुई । जयन्तने जयन्ती नामकी सुन्दरी भार्याके साथ विवाह किया । उसके गर्भसे एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सदा यज्ञ करनेवाला, अत्यन्त धैर्यवान्, शास्त्रज्ञ और अतिथियोंका प्रेमी था । उसका नाम अक्रूर था । अक्रूर यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करनेवाले और बहुत-सी दक्षिणा देनेवाले थे । उन्होंने रत्नकुमारी शैब्याके साथ विवाह किया और उसके गर्भसे ग्यारह महाबली पुत्रोंको उत्पन्न किया । अक्रूरने पुनः शूरसेना नामकी पत्नीके गर्भसे देववान् और उपदेव नामक दो और पुत्रोंको जन्म दिया । इसी प्रकार उन्होंने अश्विनी नामकी पत्नीसे भी कई पुत्र उत्पन्न किये ।

[विदूरथकी पत्नी] ऐक्ष्वाकीने मीढुष नामक पुत्रको जन्म दिया । उनका दूसरा नाम शूर भी था । शूरने भोजाके गर्भसे दस पुत्र उत्पन्न किये । उनमें आनकदुन्दुभि नामसे प्रसिद्ध महाबाहु वसुदेव ज्येष्ठ थे । उनके सिवा शेष पुत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—देवभाग, देवश्रवा, अनाधृष्टि, कुनि, नन्दि, सकृद्यशाः, श्याम, समीक और शंमस्यु । शूरसे पाँच सुन्दरी कन्याएँ भी उत्पन्न हुईं, जिनके नाम हैं—श्रुतिकीर्ति, पृथा, श्रुतदेवी, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी । ये पाँचों वीर पुत्रोंकी जननी थीं । श्रुतदेवीका विवाह वृद्ध नामक राजाके साथ हुआ । उसने करूष नामक पुत्र उत्पन्न किया । श्रुतिकीर्तिने केकयनरेशके अंशसे सन्तर्दनको जन्म दिया । श्रुतश्रवा चेदिराजकी पत्नी थी । उसके गर्भसे सुनीथ (शिशुपाल) का जन्म हुआ । राजाधिदेवीके गर्भसे धर्मकी भार्या अभिमर्दिताने जन्म ग्रहण किया । शूरकी राजा कुन्तिभोजके साथ मैत्री थी; अतः उन्होंने अपनी कन्या पृथाको उन्हें गोद दे दिया । इस प्रकार वसुदेवकी बहिन पृथा कुन्तिभोजकी कन्या होनेके कारण कुन्तीके नामसे प्रसिद्ध हुई । कुन्तिभोजने महाराज पाण्डुके साथ कुन्तीका विवाह किया । कुन्तीसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए—युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन । अर्जुन इन्द्रके समान पराक्रमी हैं । वे देवताओंके कार्य सिद्ध करनेवाले; सम्पूर्ण दानवोंके नाशक तथा इन्द्रके लिये भी अवध्य हैं । उन्होंने दानवोंका संहार किया है । पाण्डुकी दूसरी रानी माद्रवती (माद्री)के गर्भसे दो पुत्रोंकी उत्पत्ति सुनी गयी है, जो नकुल और सहदेव नामसे प्रसिद्ध हैं । वे दोनों रूपवान् और सत्त्वगुणी हैं । वसुदेवजीकी दूसरी पत्नी रोहिणीने, जो पुरुवंशकी कन्या है, ज्येष्ठ पुत्रके रूपमें बलरामको उत्पन्न किया । तत्पश्चात् उनके गर्भसे रणप्रेमी सारण, दुर्धर, दमन और लंबी ठोढ़ीवाले पिण्डारक उत्पन्न हुए । वसुदेवजीकी पत्नी जो देवकी देवी हैं, उनके गर्भसे पहले तो महाबाहु प्रजापतिके अंशभूत बालक उत्पन्न हुए । फिर [कंसके द्वारा उनके मारे जानेपर] श्रीकृष्णका अवतार हुआ । विजय, रोचमान, वर्द्धमान और देवल—ये सभी महात्मा उपदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं । श्रुतदेवीने महाभाग गवेषणको जन्म दिया, जो संग्राममें पराजित होनेवाले नहीं थे ।

[अब श्रीकृष्णके प्रादुर्भावकी कथा कही जाती है ।] जो श्रीकृष्णके जन्म और वृद्धिकी कथाका प्रतिदिन पाठ या श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ।* पूर्वकालमें जो प्रजाओंके स्वामी थे, वे ही महादेव श्रीकृष्ण लीलाके लिये इस समय मनुष्योंमें अवतीर्ण हुए हैं । पूर्वजन्ममें देवकी और वसुदेवजीने तपस्या की थी; उसीके प्रभावसे वसुदेवजीके द्वारा देवकीके गर्भसे भगवान्का प्रादुर्भाव हुआ । उस समय उनके नेत्र कमलके समान शोभा पा रहे थे । उनके चार भुजाएँ थीं । उनका दिव्य रूप



मनुष्योंका मन मोहनेवाला था । श्रीवत्सके चिह्नित एवं सुन्द-

* कृष्णस्य जन्माभ्युदयं यः कीर्तयति नित्यशः ।
शृणोति वा नरो नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
(१३ । १३८)

चक्र आदि लक्षणोंसे युक्त भगवान्‌के दिव्य विग्रहको देखकर वसुदेवजी बोले—'प्रभो! इस रूपको छिपा लीजिये। मैं कंससे डरा हुआ हूँ, इसीलिये ऐसा कहता हूँ। उसने मेरे छः पुत्रोंको, जो देखनेमें बहुत ही सुन्दर थे, मार डाला है।' वसुदेवजीकी बात सुनकर भगवान्‌ने अपने दिव्यरूपको छिपा लिया। फिर भगवान्‌की आज्ञा लेकर वसुदेवजी उन्हें नन्दके घर ले गये और नन्द गोपको देकर बोले—'आप इस बालककी रक्षा करें; क्योंकि इससे सम्पूर्ण यादवोंका कल्याण होगा। देवकीका यह बालक जबतक कंसका वध नहीं करेगा, तबतक इस पृथ्वीपर भार बढ़ानेवाले अमङ्गलमय उपद्रव होते रहेंगे। भूतलपर जितने दुष्ट राजा हैं, उन सबका यह संहार करेगा। यह बालक साक्षात् भगवान् है। ये भगवान् कौरव-पाण्डवोंके युद्धमें सम्पूर्ण क्षत्रियोंके एकत्रित होनेपर अर्जुनके सारथिका काम करेंगे और पृथ्वीको क्षत्रिय-हीन करके उसका उपभोग एवं पालन करेंगे और अन्तमें समस्त यदुवंशको देवलोकमें पहुँचायेंगे।

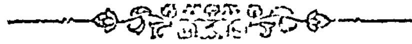
भीष्मने पूछा—ब्रह्मन्! ये वसुदेव कौन थे? यशस्विनी देवकीदेवी कौन थीं तथा ये नन्दगोप और उनकी पत्नी महाव्रता यशोदा कौन थीं? जिसने बालकरूपमें भगवान्‌को जन्म दिया और जिसने उनका पालन-पोषण किया, उन दोनों स्त्रियोंका परिचय दीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! पुरुष वसुदेवजी कश्यप हैं और उनकी प्रिया देवकी अदिति कही गयी हैं। कश्यप ब्रह्माजीके अंश हैं और अदिति पृथ्वीका। इसी प्रकार द्रोण-नामक वसु ही नन्दगोपके नामसे विख्यात हुए हैं तथा उनकी पत्नी धरा यशोदा है। देवी देवकीने पूर्वजन्ममें अजन्मा परमेश्वरसे जो कामना की थी, उसकी वह कामना महाबाहु श्रीकृष्णने पूर्ण कर दी। यज्ञानुष्ठान बंद हो गया था, धर्मका उच्छेद हो रहा था; ऐसी अवस्थामें धर्मकी स्थापना और पापी असुरोंका संहार करनेके लिये भगवान् श्रीविष्णु वृष्णि-कुलमें प्रकट हुए हैं। रुक्मिणी, सत्यभामा, नग्नजित्‌की पुत्री सत्या, सुमित्रा, शैब्या, गान्धार-राजकुमारी लक्ष्मणा, सुभीमा, मद्रराजकुमारी कौसल्या और विरजा आदि सोलह हजार देवियाँ श्रीकृष्णकी पत्नियाँ हैं। रुक्मिणीने दस पुत्र उत्पन्न किये; वे सभी युद्धकर्ममें कुशल हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—महाबली प्रद्युम्न, रणशूर चारुदेष्ण, सुचारु, चारुभद्र, सदश्व, ह्रस्व, चारुगुप्त, चारुभद्र, चारुक और चारुहास। इनमें प्रद्युम्न सबसे बड़े और चारुहास सबसे छोटे हैं। रुक्मिणीने एक कन्याको भी जन्म दिया, जिसका नाम चारुमती है। सत्यभामासे भानु, भीमरथ, क्षण, रोहित, दीप्तिमान्, ताम्रबन्ध और जलन्धम—ये सात पुत्र उत्पन्न हुए। इन सातोंके एक छोटी बहिन भी है। जाम्बवतीके पुत्र साम्ब हुए, जो बड़े ही सुन्दर हैं। ये सौर-शास्त्रके प्रणेता तथा प्रतिमा एवं मन्दिरके निर्माता हैं। मित्रविन्दाने सुमित्र, चारुमित्र और मित्रविन्दको जन्म दिया। मित्रबाहु और सुनीथ आदि सत्याके पुत्र हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण-के हजारों पुत्र हुए। प्रद्युम्नके विदर्भकुमारी रुक्मवती-के गर्भसे अनिरुद्ध नामक परम बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ। अनिरुद्ध संग्राममें उत्साहपूर्वक युद्ध करनेवाले वीर हैं। अनिरुद्धसे मृगकेतनका जन्म हुआ। राजा सुपार्श्वकी पुत्री काम्याने साम्बसे तरस्वी नामक पुत्र प्राप्त किया। प्रमुख वीर एवं महात्मा यादवोंकी संख्या तीन करोड़ साठ लाखके लगभग है। वे सभी अत्यन्त पराक्रमी और महाबली हैं। उन सबकी देवताओंके अंशसे उत्पत्ति हुई है। देवासुर-संग्राममें जो महाबली असुर मारे गये थे, वे इस मनुष्यलोकमें उत्पन्न होकर सबको कष्ट दे रहे थे; उन्हींका संहार करनेके लिये भगवान् यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं। महात्मा यादवोंके एक सौ एक कुल हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ही उन सबके नेता और स्वामी हैं तथा सम्पूर्ण यादव भी भगवान्‌की आज्ञाके अधीन रहकर ऋद्धि-सिद्धिसे सम्पन्न हो रहे हैं।*



* भीष्मजी भगवान् श्रीकृष्णसे अवस्थामें बहुत बड़े थे। ऐसी दशामें जिस समय उनके साथ पुलस्त्यजीका संवाद हो रहा था, उस समय सम्भवतः श्रीकृष्णका जन्म न हुआ हो। फिर भी पुलस्त्यजी त्रिकालदर्शी ऋषि हैं, इसलिये उनके लिये भावी घटनाओंका भी वर्तमान अथवा भूतकी भाँति वर्णन करना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

पुष्कर तीर्थकी महिमा, वहाँ वास करनेवाले लोगोंके लिये नियम तथा आश्रम-धर्मका निरूपण



पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! मेरु-गिरिके शिखरपर श्रीनिधान नामक एक नगर है, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित, अनेक आश्चर्योंका घर तथा बहुतेरे वृक्षोंसे हरा-भरा है। भाँति-भाँतिकी अद्भुत धातुओंसे उसकी बड़ी विचित्र शोभा होती है। वह स्वच्छ स्फटिक मणिके समान निर्मल दिखायी देता है। वहाँ ब्रह्माजीका वैराज नामक भवन है, जहाँ देवताओंको सुख देनेवाली कान्तिमती नामकी सभा है। वह मुनिसमुदायसे सेवित तथा ऋषि-महर्षियोंसे भरी रहती है। एक दिन देवेश्वर ब्रह्माजी उसी सभामें बैठकर



जगत्‌का निर्माण करनेवाले परमेश्वरका ध्यान कर रहे थे। ध्यान करते करते उनके मनमें यह विचार उठा कि 'मैं किस प्रकार यज्ञ करूँ? भूतलपर कहाँ और किस स्थानपर मुझे यज्ञ करना चाहिये? काशी, प्रयाग, तुङ्गा (तुङ्गभद्रा), नैमिषारण्य, पुष्कर, काञ्ची भद्रा, देविका, कुरुक्षेत्र, सरस्वती और प्रभास आदि बहुत-से तीर्थ हैं। भूमण्डलमें चारों ओर जितने पुण्य तीर्थ और क्षेत्र हैं, उन सबको मेरी आज्ञासे रुद्रने प्रकट किया है। जिसमें मेरी उत्पत्ति हुई है, भगवान् श्रीविष्णुकी नाभिसे प्रकट हुए उस कमलको ही वेदपाठी ऋषि पुष्कर तीर्थ कहते हैं (पुष्कर तीर्थ उसीका व्यक्तरूप है)। इस प्रकार विचार करते-करते प्रजापति ब्रह्माके मनमें यह बात आयी कि अब मैं पृथ्वीपर चलूँ। यह सोचकर वे अपनी उत्पत्तिके प्राचीन स्थानपर आये और वहाँके उत्तम वनमें प्रविष्ट हुए, जो नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त एवं भाँति-भाँतिके फूलोंसे सुशोभित था। वहाँ पहुँचकर उन्होंने क्षेत्रकी स्थापना की, जिसका यथार्थरूपसे वर्णन करता हूँ। चन्द्रनदीके उत्तर प्राची सरस्वतीतक और नन्दन नामक स्थानसे पूर्व कम्य या कल्पनामक स्थानतक जितनी भूमि है, वह सब पुष्कर तीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें लोककर्ता ब्रह्माजीने यज्ञ करनेके निमित्त वेदी बनायी। ब्रह्माजीने वहाँ तीन पुष्करोंकी कल्पना की। प्रथम ज्येष्ठ पुष्कर तीर्थ समझना चाहिये, जो तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाला और विख्यात है, उसके देवता साक्षात् ब्रह्माजी हैं। दूसरा मध्यम पुष्कर है, जिसके देवता विष्णु हैं तथा तीसरा कनिष्ठ पुष्कर है, जिसके देवता भगवान् रुद्र हैं। यह पुष्कर नामक वन आदि, प्रधान एवं गुह्य क्षेत्र है। वेदमें भी इसका वर्णन आता है। इस तीर्थमें भगवान् ब्रह्मा सदा निवास करते हैं। उन्होंने भूमण्डलके इस भागपर बड़ा अनुग्रह किया है। पृथ्वीपर विचरनेवाले सम्पूर्ण जीवोंपर कृपा करनेके लिये ही ब्रह्माजीने इस तीर्थको प्रकट किया है। यहाँकी यज्ञवेदीको उन्होंने सुवर्ण और हीरेसे मढ़ा दिया तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे सुसज्जित करके उसके फर्शको सब प्रकारसे सुशोभित एवं विचित्र बना दिया। तत्पश्चात् लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगे। साथ ही भगवान् श्रीविष्णु, रुद्र, आठों वसु, दोनों अश्विनीकुमार, मरुद्गण तथा स्वर्गवासी देवता भी देवराज इन्द्रके साथ वहाँ आकर विहार करने लगे। यह तीर्थ सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह करनेवाला है। मैंने इसकी यथार्थ महिमाका तुमसे वर्णन किया है। जो ब्राह्मण अग्निहोत्र-परायण होकर संहिताके क्रमसे विधिपूर्वक मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए इस तीर्थमें वेदोंका पाठ करते हैं, वे सब लोग ब्रह्माजीके कृपापात्र होकर उन्हींके समीप निवास करते हैं।

भीष्मजीने पूछा—भगवन्! तीर्थनिवासी मनुष्योंको पुष्कर वनमें किस विधिसे रहना चाहिये? क्या केवल

पुरुषोंको ही वहाँ निवास करना चाहिये या स्त्रियोंको भी ? अथवा सभी वर्णों एवं आश्रमोंके लोग वहाँ निवास कर सकते हैं ?

पुलस्त्यजी बोले—राजन् ! सभी वर्णों एवं आश्रमोंके पुरुषों और स्त्रियोंको भी उस तीर्थमें निवास करना चाहिये। सबको अपने-अपने धर्म और आचारका पालन करते हुए दम्भ और मोहका परित्याग करके रहना उचित है। सभी मन, वाणी और कर्मसे ब्रह्माजीके भक्त एवं जितेन्द्रिय हों। कोई किसीके प्रति दोष-दृष्टि न करे। सब मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियोंके हितैषी हों; किसीके भी हृदयमें खोटा भाव नहीं रहना चाहिये।

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन् ! क्या करनेसे मनुष्य इस लोकमें ब्रह्माजीका भक्त कहलाता है ? मनुष्योंमें कैसे लोग ब्रह्मभक्त माने गये हैं ? यह मुझे बताइये।

पुलस्त्यजी बोले—राजन् ! भक्ति तीन प्रकारकी कही गयी है—मानस, वाचिक और कायिक। इसके सिवा भक्तिके तीन भेद और है—लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक। ध्यान-धारणापूर्वक बुद्धिके द्वारा वेदार्थका जो विचार किया जाता है, उसे मानस भक्ति कहते हैं। यह ब्रह्माजीकी प्रसन्नता बढ़ानेवाली है। मन्त्र-जप, वेदपाठ तथा आरण्यकोंके जपसे होनेवाली भक्ति वाचिक कहलाती है। मन और इन्द्रियोंको रोकनेवाले व्रत, उपवास, नियम, कृच्छ्र, सान्तपन तथा चान्द्रायण आदि भिन्न-भिन्न व्रतोंसे, ब्रह्मकृच्छ्रनामक उपवाससे एवं अन्यान्य शुभ नियमोंके अनुष्ठानसे जो भगवान्‌की आराधना की जाती है, उसको कायिक भक्ति कहते हैं। यह द्विजातियोंकी त्रिविध भक्ति बतायी गयी। गायके घी, दूध और दही, रत्न, दीप, कुश, जल, चन्दन, माला, विविध धातुओं तथा पदार्थ; काले अगरकी सुगन्धसे युक्त एवं घी और गूगलसे बने हुए धूप, आभूषण, सुवर्ण और रत्न आदिसे निर्मित विचित्र-विचित्र हार, नृत्य, वाद्य, संगीत, सब प्रकारके जंगली फल-मूलोंके उपहार तथा भक्ष्य-भोज्य आदि नैवेद्य अर्पण करके मनुष्य ब्रह्माजीके उद्देश्यसे जो पूजा करते हैं, वह लौकिक भक्ति मानी गयी है। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके मन्त्रोंका जप और संहिताओंका अध्यापन आदि कर्म यदि ब्रह्माजीके उद्देश्यसे किये जाते है, तो वह वैदिक भक्ति कहलाती है। वेद-मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक हविष्यकी आहुति देकर जो क्रिया सम्पन्न की जाती है, वह भी वैदिक भक्ति मानी गयी है। अमावास्या अथवा पूर्णिमाको जो अग्निहोत्र किया जाता है, यज्ञोंमें जो उत्तम दक्षिणा दी जाती है, तथा देवताओंको जो पुरोडाश और चरु अर्पण किये जाते हैं—ये सब वैदिक भक्तिके अन्तर्गत हैं। इष्टि, धृति, यज्ञ-सम्बन्धी सोमपान तथा अग्नि, पृथ्वी, वायु, आकाश, चन्द्रमा, मेघ और सूर्यके उद्देश्यसे किये हुए जितने कर्म हैं, उन सबके देवता ब्रह्माजी ही हैं।

राजन् ! ब्रह्माजीकी आध्यात्मिक भक्ति दो प्रकारकी मानी गयी है—एक सांख्यज और दूसरी योगज। इन दोनोंका भेद सुनो। प्रधान (मूल प्रकृति) आदि प्राकृत तत्त्व संख्यामें चौबीस हैं। वे सब-के-सब जड एवं भोग्य है। उनका भोक्ता पुरुष पचीसवाँ तत्त्व है; वह चेतन है। इस प्रकार संख्यापूर्वक प्रकृति और पुरुषके तत्त्वको ठीक-ठीक जानना सांख्यज भक्ति है। इसे सत्पुरुषोंने सांख्य-शास्त्रके अनुसार आध्यात्मिक भक्ति माना है। अब ब्रह्माजीकी योगज भक्तिका वर्णन सुनो। प्रतिदिन प्राणायामपूर्वक ध्यान लगाये, इन्द्रियोंका संयम करे और समस्त इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे खींचकर हृदयमें धारण करके प्रजानाथ ब्रह्माजीका इस प्रकार ध्यान करे। हृदयके भीतर कमल है, उसकी कर्णिकापर ब्रह्माजी विराजमान हैं। वे रक्त वस्त्र धारण किये हुए हैं, उनके नेत्र सुन्दर हैं। सब ओर उनके मुख प्रकाशित हो रहे हैं। ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) कमरके ऊपरतक लटका हुआ है, उनके शरीरका वर्ण लाल है, चार भुजाएँ शोभा पा रही हैं तथा हाथोंमें वरद और अभयकी मुद्राएँ हैं। इस प्रकारके ध्यानकी स्थिरता योगजन्य मानस सिद्धि है; यही ब्रह्माजीके प्रति होनेवाली पराभक्ति मानी गयी है। जो भगवान् ब्रह्माजीमें ऐसी भक्ति रखता है, वह ब्रह्मभक्त कहलाता है।

राजन् ! अब पुष्कर क्षेत्रमें निवास करनेवाले पुरुषोंके पालन करने योग्य आचारका वर्णन सुनो। पूर्वकालमें जब विष्णु आदि देवताओंका वहाँ समागम हुआ था, उस समय सबकी उपस्थितिमें ब्रह्माजीने स्वयं ही क्षेत्रनिवासियोंके कर्तव्यको विस्तारके साथ बतलाया था। पुष्कर क्षेत्रमें निवास करनेवालोंको उचित है कि वे ममता और अहंकारको पास न आने दें। आसक्ति और संग्रहकी वृत्तिका परित्याग करें। बन्धु-बान्धवोंके प्रति भी उनके मनमें आसक्ति नहीं रहनी चाहिये। वे ढेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझें।

प्रतिदिन नाना प्रकारके शुभ कर्म करते हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय-दान दें। नित्य प्राणायाम और परमेश्वरका ध्यान करें। जपके द्वारा अपने अन्तःकरणको शुद्ध बनायें। यति-धर्मके कर्तव्योंका पालन करें। सांख्ययोगकी विधिको जानें तथा सम्पूर्ण संशयोंका उच्छेद करके ब्रह्मका बोध प्राप्त करें। क्षेत्रनिवासी ब्राह्मण इसी नियमसे रहकर वहाँ यज्ञ करते हैं।

अब पुष्कर वनमें मृत्युको प्राप्त होनेवाले लोगोंको जो फल मिलता है, उसे सुनो। वे लोग अक्षय ब्रह्म-सायुज्यको प्राप्त होते हैं, जो दूसरोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है। उन्हें उस पदकी प्राप्ति होती है, जहाँ जानेपर पुनः मृत्यु प्रदान करनेवाला जन्म नहीं ग्रहण करना पड़ता। वे पुनरावृत्तिके पथका परित्याग करके ब्रह्मसम्बन्धिनी परा विद्यामें स्थित हो जाते हैं।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! पुष्कर तीर्थमें निवास करनेवाली स्त्रियाँ, म्लेच्छ, शूद्र, पशु-पक्षी, मृग, गूँगे, जड, अंधे तथा बहरे प्राणी, जो तपस्या और नियमोंसे दूर हैं, किस गतिको प्राप्त होते हैं—यह बतानेकी कृपा करें।

पुलस्त्यजी बोले—भीष्म! पुष्कर क्षेत्रमें मरनेवाले म्लेच्छ, शूद्र, स्त्री, पशु, पक्षी और मृग आदि सभी प्राणी ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं। वे दिव्य शरीर धारण करके सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंपर बैठकर ब्रह्मलोककी यात्रा करते हैं। तिर्यग्योनिमें पड़े हुए—पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, चींटियाँ, थलचर, जलचर, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज और जरायुज आदि प्राणी यदि पुष्कर वनमें प्राण-त्याग करते हैं तो सूर्यके समान कान्तिमान् विमानोंपर बैठकर ब्रह्मलोकमें जाते हैं! जैसे समुद्रके समान दूसरा कोई जलाशय नहीं है, वैसे ही पुष्करके समान दूसरा कोई तीर्थ नहीं है।* अब मैं तुम्हें अन्य देवताओंका परिचय देता हूँ, जो इस पुष्कर क्षेत्रमें सदा विद्यमान रहते हैं। भगवान् श्रीविष्णुके साथ इन्द्रादि सम्पूर्ण देवता, गणेश, कार्तिकेय, चन्द्रमा, सूर्य और देवी—ये सब सम्पूर्ण जगत्का हित करनेके लिये ब्रह्माजीके निवास-स्थान पुष्कर क्षेत्रमें सदा विद्यमान रहते हैं। इस तीर्थमें निवास करनेवाले लोग सत्ययुगमें बारह वर्षोंतक, त्रेतामें एक वर्षतक तथा द्वापरमें एक मासतक तीर्थ-सेवन करनेसे जिस फलको पाते थे, उसे कलियुगमें एक दिन-रातके तीर्थ-सेवनसे ही प्राप्त कर लेते हैं।† यह बात देवाधिदेव ब्रह्माजीने पूर्वकालमें मुझसे (पुलस्त्यजीसे) स्वयं ही कही थी। पुष्करसे बढ़कर इस पृथ्वीपर दूसरा कोई क्षेत्र नहीं है; इसलिये पूरा प्रयत्न करके मनुष्यको इस पुष्कर वनका सेवन करना चाहिये। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—ये सब लोग अपने-अपने शास्त्रोक्त धर्मका पालन करते हुए इस क्षेत्रमें परम गतिको प्राप्त करते हैं।

धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले पुरुषको चाहिये कि वह अपनी आयुके एक चौथाई भागतक दूसरेकी निन्दासे बचकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए गुरु अथवा गुरुपुत्रके समीप निवास करे तथा गुरुकी सेवासे जो समय बचे, उसमें अध्ययन करे, श्रद्धा और आदरपूर्वक गुरुका आश्रय ले। गुरुके घरमें रहते समय गुरुके सोनेके पश्चात् शयन करे और उनके उठनेसे पहले उठ जाय। शिष्यके करनेयोग्य जो कुछ सेवा आदि कार्य हो, वह सब पूरा करके ही शिष्यको गुरुके पास खड़ा होना चाहिये। वह सदा गुरुका किङ्कर होकर सब प्रकारकी सेवाएँ करे। सब कार्योंमें कुशल हो। पवित्र, कार्यदक्ष और गुणवान् बने। गुरुको प्रिय लगनेवाला उत्तर दे। इन्द्रियोंको जीतकर शान्तभावसे गुरुकी ओर देखे। गुरुके भोजन करनेसे पहले भोजन और जलपान करनेसे पहले जलपान न करे। गुरु खड़े हों तो स्वयं भी बैठे नहीं। उनके सोये बिना शयन भी न करे। उत्तान हाथोंके द्वारा गुरुके चरणोंका स्पर्श करे। गुरुके दाहिने पैरको अपने दाहिने हाथसे और बायें पैरको बायें हाथसे धीरे-धीरे दबाये और इस प्रकार प्रणाम करके गुरुसे कहे—'भगवन्! मुझे पढ़ाइये। प्रभो! यह कार्य मैंने पूरा कर लिया है और इस कार्यको मैं अभी करूँगा।' इस प्रकार पहले कार्य करे और फिर किया हुआ सारा काम गुरुको बता दे। मैंने ब्रह्मचारीके नियमोंका यहाँ विस्तारके साथ वर्णन किया है; गुरुभक्त शिष्यको इन सभी नियमोंका पालन करना चाहिये। इस प्रकार अपनी शक्तिके अनुसार गुरुकी प्रसन्नताका सम्पादन करते हुए शिष्यको कर्तव्यकर्ममें लगे रहना उचित है। वह एक, दो, तीन या चारों वेदोंको

* यथा महोदधेस्तुल्यो न चान्योऽस्ति जलाशयः।
तथा वै पुष्करस्यापि समं तीर्थं न विद्यते॥ (१५। २७३-२७४)

† कृते तु द्वादशवर्षैस्त्रेतायां हायनेन तु।
मासेन द्वापरे भीष्म अहोरात्रेण तत्कलौ॥ (१५। २८०-८१)

अर्थसहित गुरुमुखसे अध्ययन करे। भिक्षाके अन्नसे जीविका चलाये और धरतीपर शयन करे। वेदोक्त व्रतोंका पालन करता रहे और गुरु-दक्षिणा देकर विधिपूर्वक अपना समावर्तन-संस्कार करे। फिर धर्मपूर्वक प्राप्त हुई स्त्रीके साथ गार्हपत्यादि अग्नियोंकी स्थापना करके प्रतिदिन हवनादिके द्वारा उनका पूजन करे।

आयुका [प्रथम भाग ब्रह्मचर्याश्रममें बितानेके पश्चात्] दूसरा भाग गृहस्थ आश्रममें रहकर व्यतीत करे। गृहस्थ ब्राह्मण यज्ञ करना, यज्ञ कराना, वेद पढ़ना, वेद पढ़ाना तथा दान देना और दान लेना—इन छः कर्मोंका अनुष्ठान करे। उससे भिन्न वानप्रस्थी विप्र केवल यजन, अध्ययन और दान—इन तीन कर्मोंका ही अनुष्ठान करे तथा चतुर्थ आश्रममें रहनेवाला ब्रह्मनिष्ठ संन्यासी जपयज्ञ और अध्ययन—इन दो ही कर्मोंसे सम्बन्ध रखे। गृहस्थके व्रतसे बढ़कर दूसरा कोई महान् तीर्थ नहीं बताया गया है। गृहस्थ पुरुष कभी केवल अपने खानेके लिये भोजन न बनाये [देवता और अतिथियोंके उद्देश्यसे ही रसोई करे]। पशुओंकी हिंसा न करे। दिनमें कभी नींद न ले। रातके पहले और पिछले भागमें भी न सोये। दिन और रात्रिकी सन्धिमें (सूर्योदय एवं सूर्यास्तके समय) भोजन न करे। झूठ न बोले गृहस्थके घरमें कभी ऐसा नहीं होना चाहिये कि कोई ब्राह्मण अतिथि आकर भूखा रह जाय और उसका यथावत् सत्कार न हो। अतिथिको भोजन करानेसे देवता और पितर संतुष्ट होते हैं; अतः गृहस्थ पुरुष सदा ही अतिथियोंका सत्कार करे। जो वेद-विद्या और व्रतमें निष्णात, श्रोत्रिय, वेदोंके पारगामी, अपने कर्मसे जीविका चलानेवाले, जितेन्द्रिय, क्रियावान् और तपस्वी हैं, उन्हीं श्रेष्ठ पुरुषोंके सत्कारके लिये हव्य और कव्यका विधान किया गया है। जो नश्वर पदार्थोंके प्रति आसक्त है, अपने कर्मसे भ्रष्ट हो गया है, अग्निहोत्र छोड़ चुका है, गुरुकी झूठी निन्दा करता है और असत्यभाषणमें आग्रह रखता है, वह देवताओं और पितरोंको अर्पण करनेयोग्य अन्नके पानेका अधिकारी नहीं है। गृहस्थकी सम्पत्तिमें सभी प्राणियोंका भाग होता है। जो भोजन नहीं बनाते, उन्हें भी गृहस्थ पुरुष अन्न दे। वह प्रतिदिन 'विघस' और 'अमृत' भोजन करे। यज्ञसे (देवताओं और पितर आदिको अर्पण करनेसे) बचा हुआ अन्न हविष्यके समान एवं अमृत माना गया है। तथा जो कुटुम्बके सभी मनुष्योंके भोजन कर लेनेके पश्चात् उनसे बचा हुआ अन्न ग्रहण करता है; उसे 'विघसाशी' ('विघस' अन्न भोजन करनेवाला) कहा गया है।

गृहस्थ पुरुषको केवल अपनी ही स्त्रीसे अनुराग रखना चाहिये। वह मनको अपने वशमें रखे, किसीके गुणोंमें दोष न देखे और अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियोंको काबूमें रखे। ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, शरणागत, वृद्ध, बालक, रोगी, वैद्य, कुटुम्बी, सम्बन्धी, बान्धव, माता, पिता, दामाद, भाई, पुत्र, स्त्री, बेटी तथा दास-दासियोंके साथ विवाद नहीं करना चाहिये। जो इनसे विवाद नहीं करता, वह सब प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो अनुकूल बर्तावके द्वारा इन्हें अपने वशमें कर लेता है, वह सम्पूर्ण लोकोंपर विजय पा जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। आचार्य ब्रह्मलोकका स्वामी है, पिता प्रजापति-लोकका प्रभु है, अतिथि सम्पूर्ण लोकोंका ईश्वर है, ऋत्विक् वेदोंका अधिष्ठान और प्रभु होता है। दामाद अप्सराओंके लोकका अधिपति है। कुटुम्बी विश्वेदेवसम्बन्धी लोकोंके अधिष्ठाता हैं। सम्बन्धी और बान्धव दिशाओंके तथा माता और मामा भूलोकके स्वामी हैं। वृद्ध, बालक और रोगी मनुष्य आकाशके प्रभु हैं। पुरोहित ऋषिलोकके और शरणागत साध्यलोकोंके अधिपति हैं। वैद्य अश्विनीकुमारोंके लोकका तथा भाई वसुलोकका स्वामी है। पत्नी वायुलोककी ईश्वरी तथा कन्या अप्सराओंके घरकी स्वामिनी है। बड़ा भाई पिताके समान होता है। पत्नी और पुत्र अपने ही शरीर हैं। दासवर्ग परछाईंके समान है तथा कन्या अत्यन्त दीन—दयाके योग्य मानी गयी है। इसलिये उपर्युक्त व्यक्ति कोई अपमानजनक बात भी कह दे तो उसे चुपचाप सह लेना चाहिये। कभी क्रोध या दुःख नहीं करना चाहिये। गृहस्थ-धर्मपरायण विद्वान् पुरुषको एक ही साथ बहुत-से काम नहीं आरम्भ करने चाहिये। धर्मज्ञको उचित है कि वह किसी एक ही काममें लगकर उसे पूरा करे।

गृहस्थ ब्राह्मणकी तीन जीविकाएँ हैं, उनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ एवं कल्याणकारक हैं। पहली है—कुम्भधान्य वृत्ति, जिसमें एक घड़ेसे अधिक धान्यका संग्रह न करके जीवन-निर्वाह किया जाता है। दूसरी उञ्छशिल वृत्ति है, जिसमें खेती कट जानेपर खेतोंमें गिरी हुई अनाजकी बालें चुनकर लायी जाती हैं और उन्हींसे जीवन-निर्वाह किया जाता है। तीसरी कापोती वृत्ति है, जिसमें खलिहान और बाजारसे अन्नके बिखरे हुए दाने चुनकर लाये जाते हैं तथा उन्हींसे

जीविका चलायी जाती है । जहाँ इन तीन वृत्तियोंसे जीविका चलानेवाले पूजनीय ब्राह्मण निवास करते हैं, उस राष्ट्रकी वृद्धि होती है । जो ब्राह्मण गृहस्थकी इन तीन वृत्तियोसे जीवन-निर्वाह करता है और मनमें कष्टका अनुभव नहीं करता, वह दस पीढ़ीतकके पूर्वजोंको तथा आगे होनेवाली सन्तानोकी भी दस पीढियोको पवित्र कर देता है ।

अब तीसरे आश्रम—वानप्रस्थका वर्णन करता हूँ, सुनो । गृहस्थ पुरुष जब यह देख ले कि मेरे शरीरमे झुर्रियाँ पड़ गयी हैं, सिरके बाल सफेद हो गये हैं और पुत्रके भी पुत्र हो गया है, तब वह वनमें चला जाय । जिन्हे गृहस्थ-आश्रमके नियमोसे निर्वेद हो गया है, अतएव जो वानप्रस्थकी दीक्षा लेकर गृहस्थ-आश्रमका त्याग कर चुकते है, पवित्र स्थानमें निवास करते हैं, जो बुद्धि-बलसे सम्पन्न तथा सत्य, शौच और क्षमा आदि सद्गुणोसे युक्त है, उन पुरुषोके कल्याणमय नियमोका वर्णन सुनो । प्रत्येक द्विजको अपनी आयुका तीसरा भाग वानप्रस्थ-आश्रममें रहकर व्यतीत करना चाहिये । वानप्रस्थ-आश्रममें भी वह उन्हीं अग्नियोका सेवन करे, जिनका गृहस्थ-आश्रममें सेवन करता था । देवताओका पूजन करे, नियमपूर्वक रहे, नियमित भोजन करे, भगवान् श्रीविष्णुमे भक्ति रखे तथा यज्ञके सम्पूर्ण अङ्गोका पालन करते हुए प्रतिदिन अग्निहोत्रका अनुष्ठान करे । धान और जौ वही ग्रहण करे, जो बिना जोती हुई जमीनमे अपने-आप पैदा हुआ हो । इसके सिवा नीवार (तीना) और विघस अन्नको भी वह पा सकता है । उसे अग्निमे देवताओके निमित्त हविष्य भी अर्पण करना चाहिये । वानप्रस्थी लोग वर्षाके समय खुले मैदानमें आकाशके नीचे बैठते है, हेमन्त ऋतुमें जलका आश्रय लेते हैं और ग्रीष्ममे पञ्चाग्नि-सेवनरूप तपस्या करते हैं । उनमेसे कोई तो धरतीपर लोटते हैं, कोई पंजोके बल खड़े रहते हैं और कोई-कोई एक स्थानपर एक आसनसे बैठे रह जाते हैं । कोई दाँतोंसे ही ऊखलका काम लेते है—दूसरे किसी साधनद्वारा फोड़ी हुई वस्तु नहीं ग्रहण करते । कोई पत्थरसे कूटकर खाते हैं, कोई जौके आटेको पानीमे उबालकर उसीको शुक्लपक्ष या कृष्णपक्षमे एक बार पी लेते हैं । कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो समयपर अपने-आप प्राप्त हुई वस्तुको ही भक्षण करते हैं । कोई मूल, कोई फल और कोई फूल खाकर ही नियमित जीवन व्यतीत करते हैं । इस प्रकार वे न्यायपूर्वक वैखानसों (वानप्रस्थियो) के नियमोंका दृढ़तापूर्वक पालन करते हैं । वे मनीषी पुरुष ऊपर बताये हुए तथा अन्यान्य नाना प्रकारके नियमोंकी दीक्षा लेते हैं ।

चौथा आश्रम संन्यास है । यह उपनिषदोंद्वारा प्रतिपादित धर्म है । गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम प्रायः साधारण—मिलते-जुलते माने गये हैं; किन्तु संन्यास इनसे भिन्न—विलक्षण होता है । तात ! प्राचीन युगमें सर्वार्थदर्शी ब्राह्मणोंने संन्यास-धर्मका आश्रय लिया था । अगस्त्य, सप्तर्षि, मधुच्छन्दा, गवेषण, साङ्कृति, सुदिव, भाण्डि, यवप्रोथ, कृतश्रम, अहोवीर्य, काम्य, स्थाणु, मेधातिथि, बुध, मनोवाक, शिनीवाक, शून्यपाल और अकृतश्रम—ये धर्म-तत्त्वके यथार्थ ज्ञाता थे । इन्हे धर्मके स्वरूपका साक्षात्कार हो गया था । इनके सिवा, धर्मकी निपुणताका ज्ञान रखनेवाले, उग्रतपस्वी ऋषियोंके जो यायावर नामसे प्रसिद्ध गण हैं, वे सभी विषयोंसे उपरत हो मायाके बन्धनको तोड़कर वनमें चले गये थे । मुमुक्षुको उचित है कि वह सर्वस्व-दक्षिणा देकर—सबका त्याग करके सद्यस्कारी (तत्काल आत्मकल्याण करनेवाला) बने । आत्माका ही यजन करे, विषयोसे उपरत हो आत्मामें ही रमण करे तथा आत्मापर ही निर्भर करे । सब प्रकारके संग्रहका परित्याग करके भावनाके द्वारा गार्हपत्यादि अग्नियोंकी आत्मामें स्थापना करे और उसमे तदनुरूप यज्ञोका सर्वदा अनुष्ठान करता रहे ।

चतुर्थ आश्रम सबसे श्रेष्ठ बताया गया है । वह तीनों आश्रमोंके ऊपर है । उसमें अनेक प्रकारके उत्तम गुणोका निवास है । वही सबकी चरम सीमा—परम आधार है । ब्रह्मचर्य आदि तीन आश्रमोंमें क्रमशः रहनेके पश्चात् काषाय-वस्त्र धारण करके संन्यास ले ले । सर्वस्व-त्यागरूप संन्यास सबसे उत्तम आश्रम है । संन्यासीको चाहिये कि वह मोक्षकी सिद्धिके लिये अकेले ही धर्मका अनुष्ठान करे, किसीको साथ न रखे । जो ज्ञानवान् पुरुष अकेला विचरता है, वह सबका त्याग कर देता है; उसे स्वयं कोई हानि नहीं उठानी पड़ती । संन्यासी अग्निहोत्रके लिये अग्निका चयन न करे, अपने रहनेके लिये कोई घर न बनाये, केवल भिक्षा लेनेके लिये ही गाँवमे प्रवेश करे, कलके लिये किसी वस्तुका संग्रह न करे, मौन होकर शुद्धभावसे रहे तथा थोड़ा और नियमित भोजन करे । प्रतिदिन एक ही बार भोजन करे । भोजन करने और पानी पीनेके लिये कपाल (काठ या

नारियल आदिका पात्रविशेष) रखना, वृक्षकी जड़मे निवास करना, मलिन वस्त्र धारण करना, अकेले रहना तथा सब प्राणियोकी ओरसे उदासीनता रखना—ये भिक्षु (संन्यासी) के लक्षण हैं! जिस पुरुषके भीतर सबकी बातें समा जाती हैं—जो सबकी सह लेता है तथा जिसके पाससे कोई बात लौटकर पुनः वक्ताके पास नहीं जाती—जो कटु वचन कहनेवालेको भी कटु उत्तर नहीं देता, वही संन्यासाश्रममे रहनेका अधिकारी है। कभी किसीकी भी निन्दाको न तो करे और न सुने ही। विशेषतः ब्राह्मणोकी निन्दा तो किसी तरह न करे। ब्राह्मणका जो शुभकर्म हो, उसीकी सदा चर्चा करनी चाहिये। जो उसके लिये निन्दाकी बात हो, उसके विषयमें मौन रहना चाहिये। यही आत्मशुद्धिकी दवा है।

जो जिस किसी भी वस्तुसे अपना शरीर ढक लेता है, जो कुछ मिल जाय उसीको खाकर भूख मिटा लेता है तथा जहाँ कहीं भी सो रहता है, उसे देवता ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) समझते हैं। जो जन-समुदायको साँप समझकर, स्नेह-सम्बन्धको नरक जानकर तथा स्त्रियोंको मुर्दा समझकर उन सबसे डरता रहता है; उसे देवतालोग ब्राह्मण कहते हैं। जो मान या अपमान होनेपर स्वयं हर्ष अथवा क्रोधके वशीभूत नहीं होता, उसे देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं। जो जीवन और मरणका अभिनन्दन न करके सदा कालकी ही प्रतीक्षा करता रहता है, उसे देवता ब्राह्मण मानते हैं। जिसका चित्त राग-द्वेषादिके वशीभूत नहीं होता, जो इन्द्रियोंको वशमें रखता है तथा जिसकी बुद्धि भी दूषित नहीं होती, वह मनुष्य सब पापोसे मुक्त हो जाता है। जो सम्पूर्ण प्राणियोसे निर्भय है तथा समस्त प्राणी जिससे भय नहीं मानते, उस देहाभिमानसे मुक्त पुरुषको कहीं भी भय नहीं होता। जैसे हाथीके पदचिह्नमे अन्य समस्त पादचारी जीवोके पदचिह्न समा जाते हैं, तथा जिस प्रकार सम्पूर्ण ज्ञान चित्तमें लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार सारे धर्म और अर्थ अहिंसामे लीन रहते हैं। राजन्! जो हिंसाका आश्रय लेता है वह सदा ही मृतकके समान है।

इस प्रकार जो सबके प्रति समान भाव रखता है, भलीभाँति धैर्य धारण किये रहता है, इन्द्रियोंको अपने वशमें रखता है तथा सम्पूर्ण भूतोको त्राण देता है, वह ज्ञानी पुरुष उत्तम गतिको प्राप्त होता है। जिसका अन्तःकरण उत्तम ज्ञानसे परितृप्त है तथा जिसमे ममताका सर्वथा अभाव है, उस मनीषी पुरुषकी मृत्यु नहीं होती; वह अमृतत्वको प्राप्त हो जाता है। ज्ञानी मुनि सब प्रकारकी आसक्तियोमे मुक्त होकर आकाशकी भाँति स्थित होता है। जो सबमे विष्णुकी भावना करनेवाला और शान्त होता है, उसे ही देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं। जिसका जीवन धर्मके लिये, धर्म आत्मसन्तोषके लिये तथा दिन-रात पुण्यके लिये हैं, उसे देवतालोग ब्राह्मण समझते हैं। जिसके मनमे कोई कामना नहीं होती, जो कर्मोंके आरम्भका कोई संकल्प नहीं करता तथा नमस्कार और स्तुतिसे दूर रहता है, जिसने योगके द्वारा कर्मोंको क्षीण कर दिया है, उसे देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयकी दक्षिणा देना संसारमे समस्त दानोसे बढ़कर है। जो किसीकी निन्दाका पात्र नहीं है तथा जो स्वयं भी दूसरोकी निन्दा नहीं करता, वही ब्राह्मण परमात्माका साक्षात्कार कर पाता है। जिसके समस्त पाप नष्ट हो गये है, जो इहलोक और परलोकमे भी किसी वस्तुको पानेकी इच्छा नहीं करता, जिसका मोह दूर हो गया है, जो मिट्टीके ढेले और सुवर्णको समान दृष्टिसे देखता है, जिसने रोषको त्याग दिया है, जो निन्दा-स्तुति और प्रिय-अप्रियसे रहित होकर सदा उदासीनकी भाँति विचरता रहता है, वही वास्तवमे संन्यासी है।

पुष्कर क्षेत्रमें ब्रह्माजीका यज्ञ और सरस्वतीका प्राकट्य

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! आपके मुखसे यह सब प्रसङ्ग मैंने सुना; अब पुष्कर क्षेत्रमे जो ब्रह्माजीका यज्ञ हुआ था, उसका वृत्तान्त सुनाइये। क्योंकि इसका श्रवण करनेसे मेरे शरीर [और मन] की शुद्धि होगी।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! भगवान् ब्रह्माजी पुष्कर क्षेत्रमें जब यज्ञ कर रहे थे, उस समय जो-जो बातें हुई उन्हें बतलाता हूँ; सुनो। पितामहका यज्ञ आदि कृतयुगमे प्रारम्भ हुआ था। उस समय मरीचि, अङ्गिरा, मैं, पुलह, क्रतु और प्रजापति दक्षने ब्रह्माजीके पास जाकर उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया। धाता, अर्यमा, सविता, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा और पर्जन्य—आदि बारहो आदित्य भी वहाँ उपस्थित हो अपने

२१८ दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रा ऽसुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम् ।
अहिं यद् वृत्रमपो वव्रिवांसं हन्नृजीषिन् विष्णुना सचानः ॥ २ ॥
२१९ तूर्वन्नोजीयान् तवसस्तवीयान् कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः ।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत् पुरां दर्त्नुमावत् ॥ ३ ॥
२२० शतैरपद्रन् पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ ।
वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत् किं चन प्र ॥ ४ ॥

अर्थ— [२१८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (दिवः न) आकाशकी तरह (तुभ्यं सत्रा विश्वं असुर्यं) तुम्हारे साथ सब प्रकारका सामर्थ्य रहता है। हे (ऋजीषिन्) शत्रुको पकडनेवाले या सोम पीनेवाले इन्द्र ! (विष्णुना सचानः) विष्णुके साथ रहकर (यत्) इसी बलसे (अपः वव्रिवांसं) जलोंको रोकनेवाले, (अहिं वृत्रं) बढनेवाले और घेरनेवाले शत्रुको तूने (हन्) मारा ॥ २ ॥

१ दिवः न तुभ्यं सत्रा विश्वं असुर्यं— आकाशके समान विशाल अनेक सामर्थ्य प्रभुके पास हैं।
' असु-र्य '– असु नाम प्राणशक्तिका है, उसका जो सामर्थ्य है वह ' असुर्य ' कहलाता है।

[२१९] (यत्) जब (इन्द्रः) इन्द्रने (विश्वासां पुरां) शत्रुकी सब पुरियोंको, सब नागरिक किलोंको (दर्त्नुं) नाश करनेवाला वज्र (आवत्) प्राप्त किया, तब (तूर्वन् ओजीयान्) शत्रुओंकी हिंसा करनेवाला, अतिशय ओजस्वी (तवसः तवीयान्) बलवान्से भी अत्यन्त बलवान् (कृतब्रह्मा वृद्धमहाः) स्तोत्र जिसके बनाये जाते हैं। विशेष तेजवाला वह इन्द्र (सोम्यस्य मधुनः) सोमके मधुररसका (राजा अभवत्) राजा हुआ। स्वामी हुआ। सोमरस देने योग्य हुआ ॥ ३ ॥

[२२०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अत्र अर्कसातौ) इस अन्न प्राप्तिके युद्धमें (दशोणये कवये) सोमके दस पात्र तैयार करनेवाले, कविसे डरनेवाले (पणयः) असुर लोग (शतैः अपद्रन्) सैकडों अनुयायियोंके साथ भाग गये। (अशुषस्य शुष्णस्य मायाः) अशुष्क अर्थात् बलवान् शुष्ण नामक शोषक शत्रुके कपटोंका नाश करनेके (वधैः) आयुधोंसे (पित्वः किं चन न प्र अरिरेचीत्) अन्नका थोडा भी भाग वहां रहने न दिया, शत्रुका सब अन्न हरण कर लिया ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जो पुत्र अपने सामर्थ्यके कारण, युद्धोंमें निःसन्देह विजय प्राप्त करता है, और द्युलोकके समान विशाल सामर्थ्यवाला होता है। जो अपने बलके कारण शत्रुके सैनिकोंपर आक्रमण करता है। उस सहस्रों प्रकारके धन लाकर घरमें भरनेवाले, भूमिको उपजाऊ बनानेवाले, घेरनेवाले शत्रुको त्वरासे नष्टभ्रष्ट करनेवाले, शूरवीर पुत्रको हमें दे दो। ऐसा पुत्र हमें हो। उक्त लक्षणोंवाला पुत्र ही सच्चा धन है, सच्चा ऐश्वर्य और वैभव है ॥ १ ॥

इस इन्द्रके पास प्राणोंको बल देनेवाली शक्ति है। उसका सामर्थ्य असुर्य अर्थात् प्राणोंको बलवान् बनानेवाला है। ऐसा बलशाली इन्द्र विष्णुके साथ मिलकर जलोंको रोकनेवाले असुरको मारता है ॥ २ ॥

इन्द्रने शत्रुके किलोंको तोडनेवाला वज्र जब हाथमें लिया, तब शत्रुनाशक, बलवान्, सामर्थ्यवानोंमें विशेष शक्तिमान्, जिसके लिये स्तोत्र गाये जाते हैं और जिसका यश बडा है ऐसा इन्द्र सोमरसका स्वामी हुआ। जो शक्तिमान् है, जो शत्रुके किलोंको तोडता है, जिसके काव्य गाये जाते हैं, उसको मीठा सोमरस प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

इस अन्न प्राप्ति करनेके लिये चलाये युद्धमें, जो सोमरसके दस कलश भरकर रखता है ऐसे बुद्धिमान् कविसे पणि नामक शत्रु डरते हैं और अपने सैकडों अनुयायियोंके साथ वहांसे वे भाग जाते हैं। जहाँ सोमरस इन्द्रके लिये तैयार करनेवाले होते हैं, वहाँ इन्द्र आता है, इसलिये वे इन्द्रसे डरते हैं। अशुष्क अर्थात् हरसादी बलवाले शक्तिमान् असुर शत्रुके कपट प्रयोगोंको हटानेके लिये, प्रयुक्त किये घातक शस्त्रोंसे, इन शत्रुओंका वध किया और उनका अन्न कुछ भी वहाँ रहने नहीं दिया। शत्रुको मारा और उसके पासका सब अन्न लाया गया ॥ ४ ॥

२२१ महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत् पतने पादि शुष्णः ।
उरु ष सरथं सारथये करिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ ॥ ५ ॥
२२२ प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति ॥ ६ ॥
२२३ वि पिप्रोरहिमायस्य दृळहाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः ।
सुदामन् तद् रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ॥ ७ ॥
२२४ स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः ।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ॥ ८ ॥

अर्थ — [२२१] (यत्) जब (शुष्णः) शुष्ण नामका असुर (वज्रस्य पतने) वज्रके गिरनेसे (पादि) मृत्युको प्राप्त हुआ। तब जिसने (महः द्रुहः) उस महान् द्रोह करनेवाले शत्रुके (विश्वायुः) संपूर्ण बलको (अप धायि) परास्त किया। (सः इन्द्रः) उस इन्द्रने (सारथये कुत्साय) कुत्स सारथिको (सरथं) अपने रथपर लेकर (सूर्यस्य सातौ) सूर्यके प्रकाशमें उसको (उरु कः) विशेष सामर्थ्यवान् बना दिया ॥ ५ ॥

[२२२] जब इन्द्रने (दासस्य नमुचेः) दुष्ट नमुचिके (शिरः) सिरको (मथायन्) काटा और (ससन्तं साप्यं नमीं) सोनेवाले साप्य नमीकी (प्रावत्) रक्षा की, तब उस इन्द्रने (स्वस्ति राया इषा सं पृणक्) कल्याण करनेके लिये उसे धन और अन्न भर दिया, तब उसने (श्येनः न) श्येन पक्षीके समान (अस्मै) उस इन्द्रको (मदिरं अंशुं) आनन्द देनेवाले सोमरसको (प्र) प्रदान किया ॥ ६ ॥

[२२३] हे (वज्रिन्) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र! तूने (अहिमायस्य पिप्रोः) भयंकर मायाजाल फैलानेवाले पिप्रु राक्षसके (दृळहाः पुरः) बलवान् दुर्गोंको (शवसा) अपने बलसे (वि दर्दः) विदीर्ण किया, नष्ट किया, तोड दिया। हे (सुदामन्) सुन्दर दान देनेवाले वीर! तूने ही ((दात्रं) दान (दाशुषे ऋजिश्वने) देनेवाले ऋजिश्वाको (अप्रमृष्यं तत् रेक्णः) अजिक्य वह धन (दाः) दिया ॥ ७ ॥

[२२४] (स्वभिष्टिसुम्नः सः इन्द्रः) इच्छित सुख देनेवाले उस इन्द्रने (दशमायं वेतसुं, दशोणिं, तूतुजिं तुग्रं इभं) कपटी वेतसु, दशोणि, तूतुजि, तुग्र और इभ नामक दुष्टोंको (द्योतनाय) द्योतन नामक वीरके पास (शश्वत्) निरन्तर (इयध्यै) जानेके लिये उस प्रकार (उप आ सृज) वश किया, जिस प्रकार (मातुः न) माता पुत्रको वशमें करती है ॥ ८ ॥

भावार्थ— जब शुष्ण शोषक शत्रुका वज्रपातसे वध हुआ, तब बडे द्रोही उस शुष्णके सब सैन्यका वीरने पराभव किया। उस इन्द्रने कुत्स नामक सारथिको अपने रथपर लेकर सूर्य प्रकाशमें उसे लाकर विशेष बलशाली बना दिया। इन्द्रने अपने वज्रसे शुष्ण नामक शोषक शत्रुको मारा, उसकी सेनाको परास्त किया, भगा दिया। उस समय इन्द्रका सारथि कुत्स था, उसको अपने पास रथमें लेकर सूर्यके प्रकाशमें उसे लाकर, हृष्टपुष्ट तथा बलवान् किया ॥ ५ ॥

इन्द्रने दुष्ट नमुचिके सिरको काटा, तथा असावधान या असुरक्षित विनम्रतासे पूर्ण योग्य मनुष्यकी रक्षा की और उसे उसका कल्याण करनेके लिए धन और अन्न भरपूर दिया, तब उस योग्य मनुष्यने प्रसन्न होकर इन्द्रका सत्कार किया ॥ ६ ॥

हे वज्रधारी वीर! तूने कपटी मायाजाल फैलानेवाले पिप्रु राक्षसके सुदृढ किलोंको अपने बलसे तोड दिया। हे दान देनेवाले वीर! तूने दान देनेवाले ऋजिश्वा अर्थात् सरल मार्गसे जानेवाले ऋषिको अजिक्य धन दिया। जो धन शत्रु लूट नहीं सकता ऐसा धन तूने दिया था। अर्थात् धन भी दिया और उसके साथ संरक्षणका सामर्थ्य भी दिया। ॥ ७ ॥

२२५ म ई स्पृधो वनते अप्रतीतो बिभ्रद् वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम् । ॥ ९ ॥
२२६ सनेम तेऽवसा नव्य इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः ।
सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्द्र्दन् दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥ १० ॥
२२७ त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नुशने काव्याय ।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम् ॥ ११ ॥

अर्थ—[२२५] (गभस्तौ) हाथमें (वृत्रहणं वज्र) शत्रुओंका नाश करनेवाले वज्रको (बिभ्रत्) धारण करनेवाला (अप्रतीत सः) अपराजित ऐसा वह इन्द्र (स्पृधः ई) स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका (वनते) नाश करता है। (अस्ता इव गर्ते) शूर जिस प्रकार रथपर आरूढ होता है उस प्रकार (हरी अधि तिष्ठत्) वह अपने अश्वोंवाले रथ पर आरूढ होता है। (वचोयुजा ऋष्वं इन्द्रं वहतः) वे अश्व वचनमात्रसे जोते जाकर सामर्थ्यवान् इन्द्रको इष्ट स्थानपर ले जाते हैं ॥ ९ ॥

[२२६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते अवसा) तेरे रक्षणसे हम सुरक्षित होकर (नव्यः सनेम) अपूर्व धनका उपभोग करें। (पूरवः) सब मनुष्य (एना यज्ञैः) इन स्तोत्रोंसे प्रभुकी (प्र स्तवन्ते) स्तुति करते हैं। हे इन्द्र ! (यत्) जब (दासीः) शत्रुकी प्रजाका तू (दृन्) नाश करता है, तब (पुरुकुत्साय शिक्षन्) पुरुकुत्सको धन देता है। और (शारदीः सप्त पुरः) हिंसक शत्रुकी सात पुरियोंको (शर्म दर्त) वज्रसे विदारित करता है ॥ १० ॥

[२२७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं पूर्व्यः) तू पुराणपुरुष है, (काव्याय उशने) कविपुत्र उशनाको (वरिवस्यन्) धन देकर उसका तूने (वृधः भूः) उत्कर्ष किया। (स्वं न–पातं नववास्त्वं अनुदेयं) अपने न गिरनेवाले अर्थात् पक्के देने योग्य नवीन घरको (महे पित्रे) महान् पिताके पास (परा ददाथ) वापस लौटा दिया ॥ ११ ॥

भावार्थ— इष्ट सुख देनेवाला उस इन्द्रने अनेक कपटजाल फैलानेवाले वेतसु आदि असुरोंको द्योतमान राजाके पास जानेके लिये और उसके आधीन सतत रहनेके लिये उसी तरह वशमें किया, जिस तरह माता पुत्रको वशमें करती है ॥ ८ ॥

इन्द्र हाथमें शत्रुका वध करनेके लिये वज्र धारण करता है। वह इन्द्र पीछे न हटता हुआ सब स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका नाश करता है। शत्रुपर अस्त्र फेंकनेवाला वीर रथमें घोडे जोते जानेपर उस रथपर चढता है। वीर अपने रथमें चढकर बैठे और शत्रुका नाश करनेके लिये यत्न करे। शब्दका संकेत होते ही अपने स्थानपर जाकर रहनेवाले, और इशारेसे चलनेवाले घोडे महान् शूर इन्द्रको—इन्द्रके रथको इष्ट स्थानपर पहुंचा देते हैं ॥ ९ ॥

हे प्रभो ! तेरे संरक्षणसे हम सुरक्षित होकर अपूर्व धन प्राप्त करें और उसका भोग लें। पुरवासी नागरिक लोग यज्ञोंसे इन देवताओंकी स्तुति करते हैं, प्रसन्नता संपादन करते हैं। शत्रुकी सेनाको हमारे वीर नष्ट–भ्रष्ट करते हैं। पूर्वोक्त प्रकार यज्ञोंसे संगठित होकर, सामर्थ्य प्राप्त करके वे शत्रुका नाश करते हैं ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तू पुराण पुरुष है, तू सबका प्राचीन गुरु है। इसलिये तूने ज्ञानी तथा ज्ञान प्राप्तिकी इच्छा करनेवालेको धन देकर उसका उत्कर्ष किया। तूने ही नये जन्मे हुए पुत्रको उसके पिताके पास पहुंचाया। इस मंत्रके उत्तरार्धमें दत्तकका विधान प्रतीत होता है। जो अपने नये जन्मे बच्चेका उचित रीतिसे पालन पोषण न कर सके, वह अपने बच्चेको (महे पित्रे) जो महान् पालक हो अर्थात् जो उसका पालन पोषण अच्छी तरह कर सके, उसे दे दे। ऐसे बालकको दत्तक दिलवानेके लिए राजा समुचित व्यवस्था करे ॥ ११ ॥

२२८ त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत् समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ १२ ॥

२२९ तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनीचुमुरी या ह सिष्वप् ।
दीदयदित् तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन् दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्य१र्कैः ॥ १३ ॥

[२१]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः; ९, ११ विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२३० इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीर हव्या हवन्ते ।
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या ॥ १ ॥

अर्थ— [२२८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (धुनिः) शत्रुओंको कंपानेवाला (त्वं) तू (धुनिमतीः अपः) चलनेवाले पानीको (सीरा न स्रवन्तीः ऋणोः) नदीकी तरह बहा । हे (शूर) शूरवीर ! (यत्) जब (समुद्रं अति) समुद्रको अतिक्रमण करके तू (प्र पर्षि) पार होता है, तब (तुर्वशं यदुं) तुर्वश और यदुको (स्वस्ति पारय) कल्याणपूर्वक पार करा दो ॥ १२ ॥

[२२९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (आजौ) संग्राममें (तव ह) तेरा ही (विश्वं त्यत्) सब कार्य होता है। (या धुनीचुमुरी) जो धुनी और चुमुरीको (सिष्वप् सस्तः) संग्राममें तूने सुलाया अर्थात् मार डाला । हे इन्द्र ! (तुभ्यं) तेरे लिये (सुन्वन्) सोमरस निकालनेवाले और (पक्थी) अन्नको पकानेवाले, (इध्मभृतिः) समिधाओंको लानेवाले (दभीतिः सोमेभिः अर्कैः) दभीतिने सोमरससे और स्तोत्रोंसे तेरा (दीदयत् इत्) सत्कार किया है । ॥ १३ ॥

[२१]

[२३०] हे (वीर) शूर इन्द्र ! (पुरुतमस्य कारोः) बहुत कार्य करनेकी इच्छा करनेवाले पुरुषार्थ प्रयत्न करनेवालेकी (इमाः हव्याः धियः) ये प्रशंसनीय बुद्धियाँ (हव्यं) प्रार्थनाके योग्य (रथे-स्थां अजरं नवीयः) रथपर बैठे हुए, जरारहित, अत्यन्त तरुण ऐसे (त्वा हवन्ते) तुझको बुलाती हैं । कारण कि, (वचस्या वि-भूतिः रयिः) वर्णनीय विशेष श्रेष्ठ ऐश्वर्य तेरी आज्ञासे ही (ईयते प्राप्त होता है । ॥ १

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू शत्रुओंको कंपाता है तथा तू ही पानीसे भरकर नदियोंको बहाता है । तू ही संयमशील और प्रयत्नशील लोगोंको हर संकटोंसे पार करता है ॥ १२ ॥

यह इन्द्र धुनि अर्थात् हिलानेवाले अथवा उपद्रव करके प्रजाओंको कष्ट देनेवाले तथा चुमुरिः अर्थात् स्वयं ही सब कुछ भक्षण कर जाने वाले दुष्टोंको मारता है, पर जो दभीति अर्थात् किसीसे न दबने वाला शूरवीर इसके लिए सोमरस निकालता है, अन्न पकाता है और समिधा आदि लाकर इसकी अच्छी तरह सेवा करता है, उसकी यह रक्षा करता है । ॥ १३ ॥

हे शूरवीर ! बहुत शुभ कर्म करनेकी इच्छा करनेवाले कुशल कर्मचारी–क्रान्तदर्शीकी–प्रशंसनीय बुद्धियोंसे मननपूर्वक किये ये काव्य वर्णनीय रथमें बैठे हुए जरारहित तुझ तरुण वीरको अपने सहायार्थ अपने पास लानेके लिये गाये जा रहे हैं । इनको श्रवण करके तू यहाँ आ और हमारा सहायक हो । वर्णनीय वैभवयुक्त ऐश्वर्य तेरी प्रेरणासे ही प्राप्त होता है, इस लिये सब कवि तेरी प्रार्थना करते हैं । ॥ १ ॥

२३१ तमु॑ ष्टुष॒ इन्द्रं॒ यो विदा॑नो॒ गिर्वा॑हसं गी॒र्भिर्य॒ज्ञवृ॑द्धम् ।
यस्य॒ दिव॒मति॑ म॒ह्ना पृ॑थि॒व्याः पु॑रु॒माय॑स्य रिरि॒चे म॑हि॒त्वम् ॥ २ ॥

२३२ स इत् तमो॑ऽवयु॒नं त॑त॒न्वत् सूर्ये॑ण व॒युन॑वच्चकार ।
क॒दा ते॒ मर्ता॑ अ॒मृत॑स्य॒ धामे॒य॑क्षन्तो॒ न मि॑नन्ति स्वधावः ॥ ३ ॥

२३३ यस्ता च॒कार॒ स कुह॑ स्वि॒दिन्द्रः॒ कमा जनं॑ चरति॒ कासु॑ वि॒क्षु ।
कस्ते॑ य॒ज्ञो मन॑से॒ शं वरा॑य॒ को अ॒र्क इ॑न्द्र कत॒मः स होता॑ ॥ ४ ॥

अर्थ— [२३१] (यः विद्वानः) जो सर्वज्ञ है, उस (गिर्वाहसं यज्ञप्रवृद्धं) वाणियों द्वारा वर्णनीय और यज्ञोंसे जिसका यश बढता है, (तं उ इन्द्रं) उस इन्द्रकी (स्तुषे) मैं स्तुति करता हूं । (पुरुमायस्य) बहुत बुद्धिमान् (यस्य) इस इन्द्रकी (महित्वं) महिमा (दिवं पृथिव्याः) द्युलोक और पृथिवीके (मह्ना) विस्तारसे (अति रिरिचे) बहुत ही विस्तीर्ण है ॥ २ ॥

[२३२] (सः इत्) उस इन्द्रने (अ-वयुनं) अज्ञानमय (ततन्वत् तमः) फैले हुए अन्धकारको (सूर्येण) सूर्यके प्रकाशसे (वयुनवत् चकार) प्रकाशमय किया । हे (स्वधावः) अपनी निजधारक शक्तिसे युक्त इन्द्र ! (मर्ताः) मनुष्य (अमृतस्य ते धाम) तेरे अमरस्थानको (इयक्षन्तः कदा न मिनन्ति) यज्ञ करनेकी इच्छा करनेके कारण कभी भी नष्ट नहीं करते हैं । उसको बढाते रहते हैं ॥ ३ ॥

१ इयक्षन्तः मर्ताः ते अमृतस्य धाम कदा न मिनन्ति— यज्ञ करनेवाले मनुष्य प्रभुके धामका नाश नहीं करते । वे प्रभुके यशका संवर्धन करते हैं ।

[२३३] (यः ता चकार) जिसने वे कर्म किये, (सः इन्द्रः कुह स्वित्) वह इन्द्र इस समय कहाँ है ? (कं जनं, कासु विक्षु आचरति) किस लोकमें और किन प्रजाओंके बीच वह घूमता है ? हे (इन्द्र) इन्द्र ! (कः यज्ञः ते मनसे शं) कौनसा यज्ञ तेरे मनको सुख देता है ? (वराय कः अर्कः) तेरे वरणके लिये कौनसा मन्त्र समर्थ है ? (होता सः कतमः) कौनसा वह होता है कि जो तुझे बुलानेमें समर्थ है ॥ ४ ॥

भावार्थ— अपनी वाणी द्वारा उस प्रभुका ही वर्णन होने योग्य है, वह प्रभु प्रशस्त यज्ञकर्म करनेसे प्रसन्न होता है । श्रेष्ठोंका सत्कार, आपसकी संघटना और दीनोंका उद्धार जिससे होता है वह प्रशस्त यज्ञ कर्म है, इससे प्रभुका यश बढता है । जिससे वह प्रसन्न होता है । इस श्रेष्ठ बुद्धिमान् कर्ममें कुशल प्रभुकी महिमा द्युलोक और भूलोकके विस्तारसे भी बहुत ही बडी विस्तृत है ॥ २ ॥

जिसमें मार्गका पता नहीं चलता, ऐसे गाढ अन्धकारको सूर्यके प्रकाश द्वारा इसी इन्द्रने दूर किया । जो मनुष्य यज्ञ करते हैं, वे इस इन्द्रके अमर स्थान कभी भी नष्ट नहीं करते तथा इस इन्द्रकी उपासनासे वे अपनी धारणा शक्तिको बढाते हैं ॥ ३ ॥

इस संसारमें जो गति हो रही है, सभी पदार्थ जो अपना अपना कार्य कर रहे हैं, वे सब कर्म इसी ईश्वरके हैं, पर वह ईश्वर स्वयं कहां है, यह नहीं पता चलता । वह स्वयं अज्ञात रहकर यह सब कुछ कार्य कर रहा है । वह कहां और किस स्थान पर रहता है और किन प्रजाओंमें रहता है, यह सभी कुछ अज्ञात है । इसलिए कौन सा काम ईश्वरको प्रसन्न कर सकता है, यह भी अज्ञात ही है तथा किस मंत्र या ज्ञानसे उसका वरण किया जा सकता है, यह भी अज्ञेय है । पर जो इस ज्ञानको जान लेता है, वह इस ईश्वरको प्राप्त करनेमें सफल हो जाता है ॥ ४ ॥

२३४ इदा हि ते वेविषतः पुराजाः प्रत्नास आसुः पुरुकृत् सखायः ।
ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥ ५ ॥

२३५ तं पृच्छन्तोऽवरासः पराणि प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः ।
अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो यादेव विद्म तात् त्वा महान्तम् ॥ ६ ॥

२३६ अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत् सु तिष्ठ ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व ॥ ७ ॥

अर्थ— [२३४] हे (पुरु - कृत्) बहुत कार्य करनेवाले ! हे (पुरु - हूत) बहुतों द्वारा प्रशंसित ! (पुराजाः प्रत्नासः) पूर्व कालमें उत्पन्न प्राचीन तथा (इदा हि) इस समयके (वेविषतः ते सखायः आसुः) तेरी उपासना करनेवाले तेरे मित्र बनकर रहे थे, वे भक्त तथा (ये मध्यमासः उत नूतनासः) जो मध्यकालके और जो नवीन हैं (उत अवमस्य) और जो उनका नवीन स्तोत्र है उसको (बोधि) तुम जानो ॥ ५ ॥

[२३५] हे (वीर) शूरवीर ! (ब्रह्मवाहः इन्द्र) मन्त्रोंसे वर्णित इन्द्र ! (अवरासः तं पृच्छन्तः) आधुनिक मनुष्य तुझे पूछते हुए (ते पराणि प्रत्ना श्रुत्या) तेरे श्रेष्ठ पुराने पराक्रमोंको श्रुतिमें (अनु येमुः) ग्रथित करते हैं, वर्णन करते हैं । (महान्तं त्वा अर्चामसि) हम तुझ महान्‌की पूजा करते हैं और (यात् एव विद्म तात्) जितना हम जानते हैं उतनेसे तुम्हारा सत्कार करते हैं ॥ ६ ॥

१ अवरासः तं पृच्छन्तः— छोटे लोग उसके गुण पूछते हैं, प्रभुके गुण जानना चाहते हैं ।
२ ते पराणि प्रत्ना श्रुत्या अनु येमुः— तेरे श्रेष्ठ पुरातन कर्मोंका वर्णन सुनते हैं और तदनुसार वर्णन करते हैं ।
३ त्वा महान्तं अर्चामसि— तुझ जैसे महान्‌की हम पूजा करते हैं ।
४ यात् एव विद्म तात् अर्चामसि— जितना हमें विदित है उतना हम आपका आदर करते हैं ।

[२३६] हे इन्द्र ! (रक्षसः पाजः) राक्षसोंका बल (त्वा अभि वि तस्थे) तेरे सामने चारों ओर बढ रहा है, (महि जज्ञानं तत् अभि सु तिष्ठ) तू भी शत्रुके उस बडे बलको जानकर उसका प्रतिकार कर । हे (धृष्णो) शत्रुओंका धर्षण करनेवाले इन्द्र ! (तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण) तेरे पुराने सुयोग्य, नित्यसहायक वज्रसे (ता अप नुदस्व) उस शत्रुसेनाको दूर कर ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे बहुत कर्मोंको करनेवाले और बहुत द्वारा प्रार्थित प्रभो ! मनुष्य बहुत उत्तम कर्म करे और अनेकोंकी प्रशंसा प्राप्त करे । प्राचीन पूर्वज, अब जो तेरी सेवा मित्र बनकर कर रहे हैं, जो मध्यकालके तथा जो नवीन हैं, उन सबके स्तोत्र तू सुन । ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! जो छोटे अर्थात् तेरे पराक्रम एवं गुणोंसे अभी अपरिचित ही हैं, वे तेरे गुण जानना चाहते हैं । वे तेरे श्रेष्ठ पुरातन कर्मोंका वर्णन सुनते हैं और तदनुसार वर्णन करते हैं । हम भी तुझ जैसे महान्‌की पूजा करते हैं तथा तेरे जितने गुण हमें विदित हैं उतना हम आपका आदर करते हैं ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! असुरोंका बल तेरे चारों ओर बढ रहा है अतः तू भी उनका अच्छी तरह प्रतिकार कर, तथा अपने श्रेष्ठ, बलशाली वज्रसे उस शत्रुसेनाको दूर कर ॥ ७ ॥

×

२३७ स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः ।
त्वं ह्यापिः प्रदिवि पितृणां शश्वद् बभूथ सुहव एष्टौ ॥ ८ ॥
२३८ प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य ।
प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरंधिं सवितारमोषधीः पर्वतांश्च ॥ ९ ॥
२३९ इम उ त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति ॥ १० ॥
२४० नू म आ वाचमुप याहि विद्वान् विश्वेभिः सूनो सहसो यजत्रैः ।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनुं चक्रुरुपरं दसाय ॥ ११ ॥

अर्थ— [२३७] हे (कारुधायः वीर इन्द्र) कविको धारण करनेवाले, वीर इन्द्र ! (सः) वह तू (नूतनस्य ब्रह्मण्यतः) इस नवीन ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेवालेका कथन (तु श्रुधि) श्रवण कर। (त्वं इष्टौ आ सुहवः) तू यज्ञमें सहज ही से बुलाने योग्य है। और (प्रदिवि पितृणां आपिः) हमारे पूर्व पितरोंका तू बन्धु होकर (शश्वत् बभूथ) चिरकाल तक रहा था। इसलिये तू इन स्तोत्रोंको सुन ॥ ८ ॥

[२३८] हे इन्द्र ! (अद्य) आज (वरुणं, मित्रं, इन्द्रं, मरुतः) वरुण, मित्र, इन्द्र, मरुत्, (पूषणं, विष्णुं, पुरंधिं, अग्निं, सवितारं, ओषधीः च पर्वतान्) पूषा, विष्णु, पुरंधी, अग्नि, सविता, औषधियां और पर्वतादि देवोंको (नः ऊतये अवसे) हमारी सुरक्षाके लिये तथा प्रगतिके लिये सहायक (प्रकृष्व) करो ॥ ९ ॥

[२३९] हे (पुरु-शाक-प्र-यज्यो) बहुत शक्तिमान्, उत्कृष्ट यजमानीय इन्द्र ! (त्वा इमे जरितारः) तेरी ये स्तोता लोग (अर्कैः अभ्यर्चन्ति) स्तोत्रोंसे अर्चना करते हैं। हे (अमृत) अमर ! (हुवानः) प्रशंसित होकर तू (आ हुवतः हवं श्रुधि) स्तुति करनेवालेके स्तोत्रको सुन। (त्वावान् त्वत् अन्यः न अस्ति) तेरे समान तेरेसे भिन्न दूसरा कोई नहीं है ॥ १० ॥

[२४०] हे (सहसः सुनो) बलपुत्र इन्द्र ! (विद्वान्) तू सर्वज्ञ है इसलिये (विश्वेभिः यजत्रैः) सब यजनीय देवताओंके साथ (नु मे उप आ याहि) शीघ्र मेरे पास आ। (ये अग्नि-जिह्वाः ऋत-सापः आसुः) जो अग्नि रूप जिह्वावाले अर्थात् ज्ञानी हैं तथा जो सत्यके उपासक हैं. और (ये दसाय) जिन्होंने शत्रुओंका नाश करनेके लिये (मनुं) मननशील वीरको (उपरं चक्रुः तैः) ऊपर निर्माण करके रख दिया था, उनके साथ भी आ। ॥ ११ ॥

भावार्थ— हे ज्ञानको धारण करनेवाले तथा ज्ञानीयोंका भरण पोषण करनेवाले इन्द्र ! तू ज्ञानीकी प्रार्थना सुन। तू यज्ञमें आसानीसे बुलाये जाने योग्य है। तू हमारा तथा पूर्वजोंका भी पालन करनेवाला है ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! तू वरुण, मित्र, इन्द्र, मरुत, अग्नि, सविता आदि देवोंको हमारी सुरक्षा करनेके लिए प्रेरित कर, ताकि हम अपनी उन्नति कर सके ॥ ९ ॥

हे अत्यन्त शक्तिशाली इन्द्र ! ये स्तोतागण तेरी स्तुति करते हैं अतः तू प्रसन्न होकर इन स्तुतियोंको सुन। तेरे समान तेरे अलावा और कोई नहीं है ॥ १० ॥

हे बलके लिये प्रसिद्ध वीर ! तू सब जानता है, इसलिये सब पूजनीय ज्ञानियोंके साथ मेरे पास आ। बलवान् और ज्ञानियोंके साथ मेरे सहायक हो। जो अग्निके समान तेजस्वी जिह्वावाले हैं अर्थात् उत्तम ज्ञानी वक्ता हैं और सनातन सत्य कर्मका ही जो आचरण करते हैं, तथा जिन्होंने दस्युओंका नाश करनेके लिये मननशील वीरको निर्माण करके शासकके स्थानपर बिठला दिया, उनके साथ तू मेरे पास आ। उत्तम ज्ञानी वक्ता, सत्यधर्मके पालक तथा शत्रुका नाश करनेवाले जो मननशील वीर हैं उनकी हमें सहायता हो ॥ ११ ॥

२४१ स नो॑ बोधि पुरए॒ता सु॒गेषू॒ त दु॒र्गेषु॑ पथि॒कृद् वि॒दानः॑ ।
ये अश्र॑मास उ॒रवो॒ वहि॑ष्ठा॒स्तेभि॑र्न इन्द्रा॒भि व॑क्षि॒ वाज॑म् ॥ १२ ॥

[२२]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२४२ य एक॒ इद्धव्य॑श्चर्षणी॒नामिन्द्रं॒ तं गी॒र्भिर॒भ्य॑र्च आ॒भिः ।
यः पत्य॑ते वृष॒भो वृष्ण्या॑वान् त्स॒त्यः सत्वा॑ पुरु॒मा॒यः सह॑स्वान् ॥ १ ॥

२४३ तमु॑ नः॒ पूर्वे॑ पि॒तरो॒ नव॑ग्वाः स॒प्त विप्रा॑सो अ॒भि वा॒जय॑न्तः ।
न॒क्ष॒द्दा॒भं तत॑ुरिं पर्वते॒ष्ठामद्रो॑घवाचं म॒तिभिः॒ शवि॑ष्ठम् ॥ २ ॥

अर्थ— [२४१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पथिकृत् विदानः सः) मार्ग बनानेवाला, सर्वज्ञ वह तू (सुगेषु उत दुर्गेषु) सुखसे जाने योग्य और दुःखसे जाने योग्य मार्गोंमें (नः पुरएता बोधि) हमारा नेता हो । (अश्रमासः उरवः वहिष्ठाः ये) न थकनेवाले बडे और अत्यन्त वेगसे चलनेवाले जो तेरे घोडे हैं (तेभिः नः) उनसे हमारे लिये (वाजं अभि वक्षि) बलवर्धक अन्न ले आ ।॥ १२ ॥

[२२]

[२४२] (यः इन्द्रः) जो इन्द्र (एक इत् आभिः गीर्भिः हव्यः) एक ही निश्चयसे इन स्तुतियोंसे प्रार्थना करने योग्य है । (तं इन्द्रं अभ्यर्चे) उस इन्द्रकी अर्चना करता हूँ । (यः वृषभः वृष्ण्यावान् सत्यः) जो बल देनेवाला, स्वयं बलवान् और सत्यनिष्ठ है और (सत्वा पुरुमायः सहस्वान् पत्यते) अपने बलसे अनेक कौशलसे कर्म करनेवाला और शत्रुओंका पराजय करनेवाला है उस इन्द्रकी स्तुति की जाती है । ॥ १ ॥

१ एकः इन्द्रः इत् आभिः गीर्भिः हव्यः— एक ही प्रभु इन स्तुतियोंसे प्रार्थना करने योग्य है ।

२ यः वृषभः वृष्ण्यावान् सत्यः— वही अद्वितीय बलवान् तथा सामर्थ्यशाली है और वही सत्य है ।

३ सत्वा पुरु-मायः सहस्वान् पत्यते— सत्त्ववान्, अनेक कौशल्योंसे युक्त, शत्रुका पराभव करनेवाला ही सबका स्वामी हो सकता है ।

[२४३] (पूर्वे नव-ग्वाः) पुरातन नव महिनेका यज्ञ करनेवाले (सप्त विप्रासः) सात बुद्धिमान् ज्ञानी (वाजयन्तः) हविष्यान्न सिद्ध करनेवाले (नः पितरः) हमारे पितरोंने (नक्षत्-दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठां) शत्रुनाशक, तारक और पर्वतोंपर रहनेवाले, (अद्रोघ-वाचं शविष्ठं तं उ) द्रोहरहित भाषण करनेवाले, अतिशय बलवान् ऐसे उस इन्द्रकी (मतिभिः अभि) बुद्धिपूर्वक स्तुति की थी ॥ २ ॥

भावार्थ— मार्ग बनानेवाला ज्ञानी सुगम तथा दुर्गम मार्गोंमें लोगोंका अग्रगामी नेता होकर मार्ग दर्शन करे और ज्ञानपूर्वक योग्य रीतिसे उन अनुयायियोंको चलावे और इष्ट स्थानतक पहुंचावे । न थकनेवाले बडे वाहक जो हैं उनसे हमें अन्न और बलकी प्राप्ति हो । हमारे सहायक न थकनेवाले हों ॥ १२ ॥

जो इन्द्र अकेला होते हुए भी अनेकोंके द्वारा स्तुतिके योग्य होता है, उस इन्द्रकी मैं अर्चना और स्तुति करता हूँ, क्योंकि वही अद्वितीय बलशाली और सामर्थ्यशाली है और वही सत्य तथा अविनाशी है । वह इन्द्र सत्त्ववान् तथा अनेक कुशलताओंसे युक्त तथा शत्रुका पराभव करनेवाला होनेके कारण सबका स्वामी है, अतः वही सबके लिए स्तुति करने योग्य है ॥ १ ॥

शत्रुको दबानेवाले, सबको संकटोंसे तारनेवाले, पर्वतपर रहनेवाले, द्रोहरहित भाषण करनेवाले, बलिष्ठ तथा वीरकी बुद्धिपूर्वक उपासना करनी चाहिए, ऐसे वीरका सत्कार करना चाहिए । जो नवग्व अर्थात् नौ मासतक यज्ञ करनेवाले तथा दशग्व अर्थात् दस मासतक यज्ञ करनेवाले हैं, उन ज्ञानियोंकी भी स्तुति करनी चाहिए ॥ २ ॥

२४४ तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान् तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥ ३ ॥

२४५ तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥ ४ ॥

२४६ तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥ ५ ॥

अर्थ— [२४४] (पुरु-वीरस्य नृ-वतः पुरु-क्षोः अस्य) बहुत वीरोंसे युक्त, बहुत सहायकोंसे युक्त, बहुत अन्नसे युक्त इस (रायः) धनको (तं इन्द्रं ईमहे) उस इन्द्रके पास हम मांगते हैं। हे (हरिवः) अश्वयुक्त इन्द्र ! (यः अस्कृधोयुः अजरः स्वर्वान्) जो धन अविनाशी, क्षीण न होनेवाला और सुख देनेवाला है, (तं मादयध्यै आ भर) वह धन हमें उपभोगके लिये भरपूर भर दे ॥ ३ ॥

[२४५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यदि ते जरितारः पुरा चित्) जो तेरे स्तोताओंने पहिले समयमें (सुम्नं आनशुः) सुख प्राप्त किया था (तत् नः वि वोचः) तो वह सुखका मार्ग हमें बता। हे (दुध्र) दुर्धर (खिद्वः) शत्रुओंका नाश करनेवाले (पुरु-हूत) बहुतोंसे बुलाये जानेवाले (पुरु-वसो) बहुत ऐश्वर्यवाले इन्द्र ! (असुर-घ्नः ते) असुरोंका नाश करनेवाला तेरा (कः भागः, वयः किं) कर्तव्यका कौनसा भाग है तथा सामर्थ्यका भाग भी कौन-सा है, वह भी बता ॥ ४ ॥

[२४६] (वज्रहस्तं रथेष्ठां तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां तं इन्द्रं) हाथमें वज्र धारण करनेवाले, रथारूढ बहुत शत्रुओंको पकडनेवाले, बहुत कर्म करनेवाले, बल देनेवाले उस इन्द्रकी (पृच्छन्ती वेपी) अर्चना करनेवाली यागादि कर्म करनेवाली (वक्करी गीः) गुणोंका वर्णन करनेवाली इस प्रकार स्तुति (यस्य) जिस यजमानकी होती है। वह (गातुं इषे) सुखको प्राप्त होता है और (तुम्रं अच्छ नक्षते) शत्रुका सामना करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— उस प्रभुके पास हम ऐसा धन मांगते हैं कि जिसके साथ बहुत वीर रक्षणके लिये रहते हों, जो अनेक सहायकोंको अपने पास रखता है और जिसके साथ पर्याप्त अन्न होता है, अर्थात् हमें धन चाहिये, अन्न चाहिये, सहायक चाहिये और इनके संरक्षणके लिये संरक्षक वीर भी चाहिये। वह धन विनष्ट न होनेवाला, क्षीण न होनेवाला और सुख बढानेवाला हो। इस धनसे (मादयध्यै) हमारा आनन्द बढता जाये। हमें किसी तरह दुःख न हो। ऐसा धन हमें चाहिये ॥ ३ ॥

इन्द्रके स्तोतागण उत्तम मन प्राप्त करते हैं। प्रभुकी स्तुति गानेसे शोभन विचारवाला मन होता है। शत्रुके लिये असह्य, शत्रुनाशक, बहुतोंसे प्रशंसित, बहुत धनवाले वीर ! तेरे पास जो असुरोंका नाश करनेवाला शौर्यका भाग है वह कौन सा है ? तू जिस सामर्थ्यसे असुरोंका नाश करता है वह तेरा सामर्थ्य कौन सा है ? तेरी आयु क्या थी, तेरा सामर्थ्य कौन-सा था, जिससे तू शत्रुका नाश करता हो ? ॥ ४ ॥

वज्र हाथमें धारण करनेवाला, रथपर आरूढ होकर लडनेवाला, अनेक शत्रुओंको एक ही समयमें पकडनेवाला, अनेक प्रकारके कर्म करनेवाला, बल बढानेवाला वह इन्द्र है, इस तरह उस इन्द्रकी अर्चना जो करती है, तथा साथ साथ यज्ञ कर्मोंको करती है, ऐसी स्तुति जिसकी वाणी करती है, वह सुख प्राप्तिके मार्गसे जाता है और सुख प्राप्त करता है, और शत्रुका पराभव करनेका मार्ग भी ठीक तरह जानता है। तथा शत्रुका पराभव भी करता है ॥ ५ ॥

२४७ अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद् वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ॥ ६ ॥
२४८ तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मे-न्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७ ॥
२४९ आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥ ८ ॥
२५० भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥ ९ ॥

अर्थ— [२४७] हे (स्व-तवः) अपने निज बलसे युक्त इन्द्र ! (मनोजुवा पर्वतेन) मनोवेगी अपने आयुध वज्रसे (अया मायया ववृधानं त्यं) अपने कपट जालसे बढनेवाले उस शत्रुका तूने (वि रुजः) विशेष प्रकारसे वध किया। हे (स्वोजः) अपनी शक्तिसे बलवान् (विरप्शिन्) महान् सामर्थ्यवान् इन्द्र ! तूने (अच्युता चित् वीळिता दळ्हा) न हिलने वाली, बलवाली और दृढ शत्रुकी पुरियोंको (धृषता) धर्षक शक्तिसे भग्न किया, तोड डाला ॥ ६ ॥

[२४८] (नव्यस्य धिया) इस अपूर्व बुद्धिपूर्वक की गई स्तुति द्वारा (शविष्ठं प्रत्नं वः तं) अत्यन्त बलवान् पुरातन उस इन्द्रका (प्रत्नवत् परितंसयध्यै) प्राचीन रीतिसे अनुसार और यशका विस्तार करनेके लिये मैं प्रयत्न करता हूँ, इसको सुन कर (अनिमानः सुवम्हा) अपार महिमावाला, सुन्दर वाहनवाला (सः इन्द्रः) वह इन्द्र (विश्वानि दुर्गहाणि) समस्त संकटोंसे (नः अति वक्षत्) हमें पार ले जावे ॥ ७ ॥

[२४९] हे इन्द्र ! (द्रुह्वणे जनाय) सज्जनोंका द्रोह करनेवाला दुष्टोंको हटानेके लिये (पार्थिवानि दिव्यानि) पृथिवी और द्युलोक (अन्तरिक्षा) और अन्तरिक्षके स्थानोंको (आ दीपयः) अत्यन्त तप्त कर । हे (वृषन्) बलवान् देव ! (विश्वतः तान्) चारों ओरसे उन दुष्टोंको (शोचिषा तप) अपने तेजसे तपा । (ब्रह्मद्विषे क्षां च अपः) ज्ञानके द्वेषियोंको दग्ध करनेके लिये पृथिवी और जलोंको भी तपा ॥ ८ ॥

[२५०] (त्वेषसंदृक् अ-जुर्य इन्द्र) दीप्तिमान्, जरारहित इन्द्र ! (दिव्यस्य जनस्य) दिव्य लोगोंका और (पार्थिवस्य जगतः) पृथ्वीपरके लोगोंका भी (राजा भुवः) तू राजा है । (दक्षिणे हस्ते वज्रं धिष्व) दाहिने हाथमें वज्रको धारण कर । और (विश्वाः मायाः वि दयसे) सब दुष्टोंके कपटजालोंका नाश कर ॥ ९ ॥

१ त्वेषसंदृक् अजुर्य इन्द्र— तेजःपुञ्ज दीखनेवाला जरा-क्षय आदि रहित इन्द्र है ।

२ दिव्यस्य जनस्य, पार्थिवस्य जगतः राजा भुवः— द्युलोकमें तथा भूलोकमें रहनेवाले लोगोंका वह ही राजा हुआ है ।

भावार्थ— अपने ही बलसे बलवान् इस इन्द्रने अपने मनके समान वेगवान् तथा अत्यन्त दृढ एवं शक्तिशाली शस्त्र अस्त्रसे कपटी और मायावी होकर बढनेवाले अपने शत्रुको नष्ट किया । तथा उसकी मजबूतसे मजबूत नगरियोंको भी नष्ट किया ॥ ६ ॥

अपूर्व और बुद्धिपूर्वक किये इस स्तोत्रसे उस बलवान् पुराणपुरुष इन्द्रका प्राचीनों जैसा यश फैलानेके लिये मैं कामगार करता हूँ । इस स्तोत्रको सुनकर अपार महिमावाला और सुन्दर रथवाला वह इन्द्र सब प्रकारके संकटोंसे हमें बचाकर पार ले जावे ॥ ७ ॥

सज्जनोंसे जो द्रोह करते हैं, उन दुष्टोंको हटाना चाहिए । प्रभु इन्द्रभी इस काममें हमारा सहायक हो । वह पृथिवी, द्यु और अन्तरिक्षके स्थानोंको चारों ओरसे तप्त करे, ताकि इन सभी स्थानोंसे दुष्ट नष्ट हो जाएं । वह अपने तेजसे इन दुष्टोंको चारों ओरसे तपाये तथा ज्ञानसे द्वेष करनेवालोंको दग्ध करनेके लिए पृथिवी और जलोंको भी तप्त करे ॥ ८ ॥

२५१ आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन् सुतुका नाहुषाणि ॥ १० ॥

२५२ स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥ ११ ॥

[२३]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२५३ सुत इत् त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे ।
यद् वा युक्ताभ्यां मघवन् हरिभ्यां बिभ्रद् वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि ॥ १ ॥

अर्थ— [२५१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (शत्रु-तुर्याय) शत्रुओंके नाश करनेके लिये (बृहतीं अ-मृध्रां) बडी, अविनाशी, (संयतं स्वस्ति) संयममें रहनेवाली और कल्याण करनेवाली संपत्ति (नः आ भर) हमें दे। हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! (यया दासानि आर्याणि करः) जिससे दासोंको आर्य बनाया जाता है और (नाहुषाणि) मनुष्योंके (वृत्रा) घेरनेवाले शत्रुओंको (सुतुका) सहज ही से नष्ट-भ्रष्ट किया जाता है ॥ १० ॥

१ शत्रुतुर्याय बृहतीं अमृध्रां संयतं स्वस्ति नः आ भर— शत्रुओंका नाश करनेके लिये विशाल, अविनाशी, स्वाधीन रहनेवाली और कल्याण करनेवाली संपत्ति हमें दे ।

२ यया दासानि आर्याणि करः— इससे दासोंके आर्य किये जाएं ।

[२५२] हे (पुरुहूत) बहुत लोगोंसे बुलाने योग्य, (वेधः) विधाता (प्रयज्यो) विशेष पूजनीय इन्द्र ! (सः) तू (विश्वावाराभिः नियुद्भिः) सब लोगोंसे प्रशंसित अश्वोंसे (नः आ गहि) हमारे पास आ (अदेवः) असुर (याः न वरते) जिन घोडोंको रोक नहीं सकता, (देवः न) और देव भी नहीं रोक सकता, (आभिः तूयं आ) इन घोडोंसे शीघ्र ही (मद्र्यद्रिक् आ याहि) मेरे पास आ ॥ ११ ॥

[२३]

[२५३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सोमे सुते इत्) सोमका रस निकालने पर (ब्रह्मणि स्तोमे) स्तोत्रोंको पढनेके पश्चात् (उक्थे शस्यमाने) उक्थका गान होनेपर (त्वं) तू (निमिश्लः) तल्लीन होता है । और हे (मघवन् इन्द्र धनवान् इन्द्र ! (बाह्वोः बिभ्रत्) हाथमें वज्र धारण करता हुआ (यत् वा युक्ताभ्यां हरिभ्यां यासि) तथा जोडे हुए अश्वोंको रथसे गमन करता है ॥ १ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र तेजस्वी और वृद्धावस्था रहित है, तथा दिव्य तथा पृथ्वीपरके लोगोंका भी यह राजा है । यह इन्द्र दाहिने हाथमें वज्र धारण करके शत्रुओंके कपटजालोंका नाश करता है ॥ ९ ॥

यह इन्द्र हमें शत्रुओंका नाश करनेके लिए विशाल, अविनाशी और स्वाधीन रहनेवाली तथा कल्याण करनेवाली सम्पत्ति हमें दे । राष्ट्रमें जो दास या दुष्टजन हों उन्हें श्रेष्ठ और आर्य नागरिक बनाया जाए, राज्यशासनकी व्यवस्था तथा समाजकी व्यवस्था ऐसी हो कि जिससे दुष्ट मनुष्य श्रेष्ठ नागरिक बन सकें । मनुष्योंको घेरकर उन्हें कष्ट देनेवाले शत्रु दूर किए जाएं ।

हे इन्द्र ! तू बहुतसे लोगोंके द्वारा बुलाये जाने योग्य और विशेष पूजनीय है । तू सब लोगोंसे प्रशंसित अश्वोंसे हमारे पास आ ! असुर भी जिन घोडोंको रोक नहीं सकते और देव भी रोक नहीं सकते, उन घोडोंसे तू हमारे पास आ ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! सोमका रस निकाले जानेपर, स्तोत्रोंके पढे जानेपर तथा स्तुतिका गान होने पर तू उन स्तुतियोंमें तल्लीन हो जाता है । हे धनवान् इन्द्र ! तू हाथमें वज्र धारण करके रथोंसे शत्रुओं पर आक्रमण कर ॥ १ ॥

२५४ यद् वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ ।
यद् वा दक्षस्य बिभ्युषो अबिभ्य- दरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून् ॥ २ ॥
२५५ पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती ।
कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित् ॥ ३ ॥
२५६ गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः ।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ॥ ४ ॥
२५७ अस्मै वयं यद् वावान तद् विविष्म इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः ।
सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्थे- न्द्राय ब्रह्म वर्धनं यथासत् ॥ ५ ॥

अर्थ— [२५४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (दिवि स्वर्गमें (शूरसातौ वृत्रहत्ये पार्ये) योद्धाओंसे चलाये जानेवाले शत्रुका वध करनेके युद्धमें दुःखसे पार होनेके लिये (सुष्विं) सोमयाजी मनुष्यकी (अवसि) रक्षा करता है । (यत् वा) अथवा (दक्षस्य बिभ्युषः) यज्ञादिमें दक्ष रहनेवाले परन्तु शत्रुसे डरनेवाले मनुष्यको (अबिभ्यत्) भयरहित करता है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (यत् वा शर्धतः दस्यून्) तथा स्पर्धामें शत्रुओंको (अरन्धयः) तू विनष्ट करता है ॥ २ ॥

[२५५] (इन्द्रः सुतं सोमं पाता अस्तु) इन्द्र सोमरस पीनेवाला है । (ऊती जरितारं प्रणेनीः) अपने रक्षक साधनोंसे स्तोताओंको ठीक स्थान तक पहुँचानेवाला, (उग्रः सुष्वये वीराय लोकं कर्ता) उग्र इन्द्र सोमरसका अर्पण करनेवाले वीरके लिये विस्तृत स्थान देनेवाला, और (स्तुवते कीरये चित् वसु दाता) स्तुति करनेवाले कविको धन देनेवाला है । ॥ ३ ॥

[२५६] इन्द्र (हरिभ्यां इयन्ति सवना) अपने अश्वोंसे इतने तीनों सवनोंमें जाता है, (वज्रं बभ्रिः, सोमं पपिः) वज्र धारण करता है, सोमपान करता है, (गाः ददिः) गौएं देता है (नर्यं सर्ववीरं कर्ता) मनुष्योंका हित करनेवाले, वीरोंके साथ रहनेवाले, वीर पुत्र देता है (गृणतः हवं श्रोता) कवियोंके स्तोत्र सुनता है और (स्तोमवाहाः गन्ता) स्तोत्रोंका पाठ जहाँ होता है ऐसे यज्ञ स्थानके पास जाता है ॥ ४ ॥

[२५७] (प्रदिवः यः नः अपः कः) दिव्य इन्द्र जो हमारे लिये पोषणादि कर्म करता है । (अस्मै इन्द्राय यत् वावान) इस इन्द्रके लिये जो चाहिये, (वयं तत् वि विष्मः) हम वह करते हैं । (सोमे सुते स्तुमसि) सोमरस निकालने पर हम स्तुति करते हैं । (उक्था शंसत्) मन्त्रोंका गान करते हैं । (ब्रह्म इन्द्राय वर्धनं यथा असत्) वह स्तोत्र इन्द्रके यशको बढानेवाला होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ — यह इन्द्र योद्धा वीर जिसमें भाग लेते हैं, शत्रुको जहां मारा जाता है, शत्रुसे पार होनेका जिसमें यत्न होता है, ऐसे युद्धमें संरक्षण करता है । डरनेवाले परंतु दक्ष पुरुषको वह निर्भय करता है । स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका नाश करता है ॥ २ ॥

यह इन्द्र सोमरस प्रदान करनेवालोंको हर तरहसे सुरक्षित रखता है, और उन्हें अपने शस्त्रोंकी सहायतासे उत्तम स्थान पर पहुंचाता है । सोमरस अर्पण करनेवालेको यह इन्द्र विस्तृतस्थान देता है तथा स्तुति करनेवाले ज्ञानीको यह धन देता है ॥ ३ ॥

यह इन्द्र अपने अश्वोंसे तीनों सवनोंमें जाता है, वज्र धारण करता है, सोमपान करता है, सोम अर्पण करनेवालोंको गायें देता है । मनुष्योंका हित करनेवाला, वीरोंके साथ रहनेवाला वीर पुत्र देता है । ज्ञानियों द्वारा गाये हुए स्तोत्रोंको सुनता है तथा स्तोत्रोंका पाठ जहां होता है, ऐसे यज्ञस्थानोंको जाता है ॥ ४ ॥

यह इन्द्र हमारे लिए पोषणादि कर्म करता है, इसलिए इस इन्द्रके लिए हम जो वह मांगता है, वह देते हैं । उसकी हम स्तुति करते हैं, तथा उसके लिए हम मंत्रोंका गान करते हैं । हम जिन स्तोत्रोंका गान करते हैं, वे स्तोत्र इन्द्रके यशको बढानेवाले होते हैं । ॥ ५ ॥

२५८ ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत् त इन्द्र मतिभिर्विविष्मः ।
सुते सोमे सुतपाः शंतमानि रान्द्र्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः ॥ ६ ॥
२५९ स नो बोधि पुरोळाशं रराणः पिबा तु सोमं गोऋजीकमिन्द्र ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदो- रुं कृधि त्वायत उं लोकम् ॥ ७ ॥
२६० स मन्दस्वा ह्यनु जोषमुग्र प्र त्वा यज्ञास इमे अश्नुवन्तु ।
प्रेमे हवासः पुरुहूतमस्मे आ त्वेयं धीरवस इन्द्र यम्याः ॥ ८ ॥
२६१ तं वः सखायः सं यथा सुतेषु सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
कुवित् तस्मा असति नो भराय न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति ॥ ९ ॥

अर्थ— [२५८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (हि) जिस कारण (ब्रह्माणि वर्धनानि चकृषे) ये स्तोत्र उत्कर्ष बढानेवाले किये गये हैं, उस कारण (तावत् ते मतिभिः विविष्मः) वे स्तोत्र तेरे लिये हम बुद्धिपूर्वक अर्पण करते हैं। हे (सुतपाः) सोमपान करनेवाले इन्द्र ! (सुते सोमे) सोम तैयार होनेपर (शंतमानि रान्द्र्या) अतिशय सुख देनेवाले, रमणीय और (यज्ञैः वक्षणानि) यज्ञोंके साथ गाये जानेवाले स्तोत्र (क्रियास्मः) हम करते हैं। हम गाते हैं ॥ ६ ॥

[२५९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (रराणः सः) आनन्दसे सुप्रसन्न होनेवाला तू (नः पुरोडाशं बोधि) हमारे हविष्यान्नको स्वीकार कर, (गोऋजीकं सोमं तु पिब) गौका दूध दही आदि मिलाया हुआ वह सोमरस पी। (यजमानस्य इदं बर्हिः आ सीद) यजमानके लिये इस आसनपर बैठ। (त्वायत लोकं उरुं कृधि) तेरे अनुगामी हम लोगोंके लिये विस्तृत स्थान दे। हमारा उत्कर्ष कर ॥ ७ ॥

[२६०] हे (उग्र) उग्रबलशाली इन्द्र ! (स. अनु जोषं मन्दस्व) तू अपनी इच्छाके अनुसार आनंद कर। (इमे यज्ञासः त्वा प्र अश्नुवन्तु) ये यज्ञ तुझे प्राप्त हों। हे इन्द्र ! (अस्मे इमे हवासः पुरुहूतं) हमारे ये स्तोत्र तुझ अनेकों द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्रको प्राप्त हों। (इयं धीः) यह स्तुति (त्वा अवसे आ यम्याः) तुझे हमारा रक्षण करनेके लिये हमारे पास ले आवे ॥ ८ ॥

१ इयं धीः अवसे त्वा आ यम्याः— यह बुद्धि रक्षणके लिये तुझे यहां ले आवे।

[२६१] हे (सखायः) मित्रों ! (वः सुतेषु) तुम्हारा सोमरस तैयार होनेपर (भोजं तं ईं इन्द्रं) भोजन देनेवाले उस इन्द्रकी (सोमेभिः संपृणत) सोमरससे तृप्ति करो। (तस्मै कुवित् असति उस इन्द्रके लिये यह हमारी सहायता करनेके लिये बहुत उत्तम साधन होगा। हे इन्द्र (नः भराय) हमारे पोषणके लिये प्रयत्नशील हो। (इन्द्रः सुष्विं अवसे न मृधाति) इन्द्र सोमरस अर्पण करनेवालेकी सुरक्षा करनेसे पीछे नहीं हटता ॥ ९ ॥

१ भोजं तं इन्द्रं संपृणत— भोजन देनेवाले उस इन्द्रको तृप्त करो।

भावार्थ— हमारे द्वारा किए गए स्तोत्र इन्द्रका उत्कर्ष बढानेवाले हैं, इसलिए हम ये स्तोत्र उत्तम बुद्धिसे इन्द्रको समर्पित करते हैं। सोम तैयार होने पर हम अत्यन्त सुख देनेवाले और रमणीय स्तोत्रोंका गान करते हैं ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! अत्यधिक आनन्द अनुभव करनेवाला है, अतः हमारे हविष्यान्नको स्वीकार करके तू आनन्दित हो, तथा हमारे द्वारा अर्पित किए गए सोमरसको तू पी। यजमानके द्वारा दिए गए आसन पर तू प्रेमसे बैठ तथा जो तेरे अनुयायी हैं, उनके लिए विस्तृत स्थान प्रदान कर ॥ ७ ॥

हे बलशाली इन्द्र ! तू अपनी इच्छाके अनुसार आनन्द कर। ये यज्ञ जो हम कर रहे हैं, तुझे प्राप्त हों। हम जो स्तुति करते हैं, वे स्तुतियां हमारी रक्षा करनेके लिए तुझे हमारे पास ले आवें ॥ ८ ॥

वह इन्द्र हम सबको भोजन देता है, अतः उसे भी सोमरस देकर तृप्त करना चाहिए। उसको तृप्त तथा आनन्दित करनेके लिए सोमरस एक सर्वोत्तम साधन है। इससे तृप्त होकर वह हमारे पोषणके लिए प्रयत्नशील हो, क्योंकि जो उसे सोमरस अर्पित करता है, उसकी सुरक्षा करनेसे वह इन्द्र कभी पीछे नहीं हटता ॥ ९ ॥

२६२ एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।
अस॒द् यथा जरित्र उत सूरि- रिन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता ॥ १० ॥

[२४]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२६३ वृषा मद इन्द्रे श्लोक उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी ।
अर्चत्र्यो मघवा नृभ्य उक्थै- र्द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः ॥ १ ॥

२६४ ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः ।
वसुः शंसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् ॥ २ ॥

अर्थ— [२६२] (मघोनः क्षयत्) धनवाले यजमानका प्रभु (इन्द्रः) इन्द्र है, वह (सोमे सुते) सोमरस तैयार होनेपर (जरित्रे सूरिः यथा असत्) स्तोताको ज्ञानी बनाता है, (उत विश्ववारस्य रायः दाता) और सबसे अधिक प्रशंसनीय धन देता है, इस इन्द्रकी (भरद्वाजेषु एव अस्तावि) भरद्वाजोंमें स्तुति हुई है ॥ १० ॥

[२४]

[२६३] (सोमेषु इन्द्रे) सोमयागमें इन्द्रको होनेवाला (मदः) हर्ष (वृषा) बल बढानेवाला होता है। (उक्था सचा श्लोकः) सामगानके मंत्र प्रशंसनीय होते हैं। (सुतपाः ऋजीषी मघवा) सोमरस पीनेवाला वेगवान् तथा धनवान् इन्द्र (नृभ्यः उक्थैः अर्चत्र्यः) मनुष्योंके लिये स्तोत्रों द्वारा अर्चनीय होता है। तथा (द्युक्षः गिरां राजा अक्षितोतिः) द्युलोकनिवासी स्तुतियोंका स्वामी इन्द्र सदाके लिये भक्तोंका संरक्षक होता है ॥ १ ॥

[२६४] (ततुरिः वीरः नर्यः) शत्रुओंका त्वरासे संहार करनेवाला शूरवीर, मनुष्योंका हित करनेवाला (विचेताः हवं श्रोता) विशेष ज्ञानी, स्तुति सुननेवाला (गृणतः उर्व्यूतिः) भक्तजनोंका उत्तमरक्षक (वसुः नरां शंसः) विपुल धनवान्, मनुष्योंको प्रशंसनीय (कारुधायाः वाजी) शिल्पियोंको धारण करनेवाला, बलवान् वा अन्नवान् वह इन्द्र (विदथेस्तुतः सन्) यज्ञमें प्रशंसित होकर (वाजं दाति) अन्न देता है ॥ २ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र धनीसे भी धनी मनुष्यका स्वामी है और सोमरसके तैय्यार होने पर या सोमरस पीकर आनन्दित होने पर वह स्तोताको ज्ञानी बनाता है, उसे वह सबसे अधिक प्रशंसनीय धन देता है। इसी कारण जो भी देव अन्नादिके द्वारा प्राणियोंका भरणपोषण करते हैं, उन सबमें यह इन्द्र सर्वाधिक प्रशंसनीय है। ॥ १० ॥

सोमपीनेके बाद इन्द्रको जो हर्ष होता है, वह उसका बल बढानेवाला होता है। उसके सोमपीनेके समय जो साम-मंत्र बोले जाते हैं, वे बहुत प्रशंसनीय होते हैं। वेगवान् और धनवान् यह इन्द्र मनुष्योंके लिये स्तोत्रोंके द्वारा अर्चनीय होता है और वह स्तुतियोंका स्वामी इन्द्र सदाके लिए भक्तोंका संरक्षक होता है।

यह इन्द्र सत्वर शत्रुका नाश करनेवाला, मानवोंका हित करनेवाला विशेष उत्तम ज्ञानी, भक्तकी प्रार्थना सुननेवाला उत्तम संरक्षण करनेवाला, प्रजाओंका निवासक प्रजाओं द्वारा प्रशंसनीय, शिल्पियोंका भरणपोषण करनेवाला, बलवान् युद्धमें प्रशंसनीय यश प्राप्त करनेवाला और अन्नादि प्रदान करनेवाला है। ये सब वीरके लक्षण हैं। मनुष्य ये गुण अपनेमें धारण करें ॥ २ ॥

×

२६५ अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन् प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः ।
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यूतयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥ ३ ॥

२६६ शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः संचरणीः ।
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥ ४ ॥

२६७ अन्यदद्य कर्वरमन्यदु श्वो ऽसच्च सन्मुहुराचक्रिरिन्द्रः ।
मित्रो नो अत्र वरुणश्च पूषा ऽर्यो वशस्य पर्येतास्ति ॥ ५ ॥

अर्थ—[२६५] हे (शूर) वीर इन्द्र ! (चक्र्योः अक्षः न) आटा पीसनेके दोनों चक्रोंके अक्षकी तरह (ते मह्ना बृहन्) तेरी महिमा है वह (रोदस्योः प्ररिरिचे) द्यावापृथिवीके भी बाहर फैली है। हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा प्रार्थित (इन्द्र) इन्द्र ! (वृक्षस्य नु वयाः) वृक्षकी शाखाओंकी तरह तुझसे (पूर्वीः ऊतयः वि रुरुहुः) बहुत संरक्षक शक्तियां फैल रही हैं। अर्थात् तू बहुत प्रकारसे मनुष्योंकी रक्षा करता है ॥ ३ ॥

[२६६] हे (पुरुशाक) बहुत शक्तिमान् इन्द्र ! (गवां स्रुतयः संचरणीः इव) जिस तरह गौओंके मार्ग सर्वत्र संचारी होते हैं, उस तरह (शचीवतः ते शाकाः) तुझ शक्तिमान्‌की शक्तियां सब जगह कार्य करती हैं। हे (सुदामन्) शोभन दान देनेवाले (इन्द्र) इन्द्र ! (वत्सानां तन्तयः न) गोवत्सोंको बांधनेवाली रस्सीकी तरह (ते दामन्वन्तः अदामानः) तेरी बन्धकी रश्मियां सचमुच बंधन करनेवाली नहीं हैं ॥ ४ ॥

[२६७] (अद्य अन्यत् कर्वरं) आज कोई एक कार्य किया, तो (अन्यत् उ श्वः) दूसरे दिन कोई दूसरा विलक्षण ही कार्य करता है। (असत् च सत्) बाहर फेंकनेका कर्म और अस्तित्वके लिये आवश्यक कर्म, (मुहुः इन्द्रः आचक्रिः) बारबार इन्द्र करता रहता है। (अत्र नः वशस्य) यहां हमारे इष्ट मनोरथको (पर्येता अस्ति) पूर्ण करनेवाला वह है। (मित्रः वरुणः पूषा च अर्यः) मित्र, वरुण, पूषा और प्रेरक सविता भी हमारे मनोरथको पूर्ण करनेवाले हों ॥ ५ ॥

भावार्थ— तेरी विशाल महिमा आटा पीसनेके चक्रोंके अक्षकी तरह, दोनों द्यावापृथिवीसे भी बाहर फैली है। जिस तरह आटा पीसनेवाले चक्रोंका अक्ष दोनों चक्रोंसे भी बाहर रहता है, उस तरह प्रभुकी महिमा पृथ्वी और द्युलोकके भी बाहर फैली है। इन दोनों चक्रोंके समान पृथ्वी और द्युलोक हैं। वृक्षकी शाखाओंकी तरह प्रभुके संरक्षण उसके चारों ओर फैले रहे हैं। जिनसे सब जनोंका संरक्षण होता है ॥ ३ ॥

प्रभु अतुल सामर्थ्यवान् है। उसकी शक्तियां सब विश्वभरमें कार्य करती हैं, जिस तरह गौवें अथवा किरणें सर्वत्र संचार करती हैं, बछडोंकी बंधनकी रस्सी जैसी खुली होती है, उस तरह प्रभुके बंधन उन्नति करनेवाले होते हैं। वे बन्धन वास्तविक बंधन नहीं होते ॥ ४ ॥

ईश्वर आज एक कार्य करता है और कल दूसरा कार्य करता रहता है। कभी चुप नहीं रहता। मनुष्य भी इसी तरह सतत कर्म करता रहे। सत् असत् कार्य यह बारंबार करता है। अच्छे कार्य मानवोंके उत्कर्षके लिये और शत्रुके नाशके कार्य उनके लिये असद् भी होते हैं। हमारे लिये इष्ट कर्म भी वह चारों ओरसे करता रहता है ॥ ५ ॥

२६८ वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः ।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जंग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ॥ ६ ॥
२६९ न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति ।
वृद्धस्य चिद् वर्धतामस्य तनूः स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥ ७ ॥
२७० न वीळवे नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युजूताय स्तवान् ।
अज्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृष्वा गम्भीरे चिद् भवति गाधमस्मै ॥ ८ ॥

अर्थ— [२६८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पर्वतस्य पृष्ठात् आपः न) पर्वतके पृष्ठसे जिस प्रकार पानीके प्रवाह चलते हैं, (त्वत् उक्थेभिः यज्ञैः) उस प्रकार तेरे पाससे सामगान और यज्ञके द्वारा (वि अनयन्त) मनोभिलषित फल मनुष्यके पास जाते हैं। हे (गिर्वाहः) स्तुतियों द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! (अश्वाः आजिं न) घोडे जिस प्रकार संग्राममें जाते हैं, उस प्रकार (वाजयन्तः आभिः सुष्टुतिभिः) अन्नका यज्ञ करनेवाले लोग इन उत्तम स्तुतियोंके साथ (तं त्वा जग्मुः) तेरे समीप जाते हैं ॥ ६ ॥

[२६९] (शरदः यं न जरन्ति) संवत्सर इस इन्द्रको क्षीण नहीं कर सकते, वैसे (मासाः) महीने भी क्षीण नहीं कर सकते। (द्यावः इन्द्रं न अवकर्शयन्ति) वैसे दिन भी इन्द्रको कृश नहीं करते। (वृद्धस्य चित् अस्य तनूः) इस पुराणपुरुष इन्द्रका शरीर (स्तोमेभिः उक्थैः) स्तोत्रों और सामगानोंसे (शस्यमाना वर्धतां) प्रशंसित होनेसे बढता जावे ॥ ७ ॥

१ शरदः यं न जरन्ति— वर्ष इसको वृद्ध नहीं करता।
२ मासाः द्यावः न अवकर्शयन्ति— महीने और दिन भी इसको कृश नहीं बनाते।
३ वृद्धस्य अस्य तनूः शस्यमाना वर्धतां— इस वृद्धका शरीर होकर बढता है।

[२७०] (स्तवान्) स्तुति होनेपर इन्द्र (वीळवे न नमते) सुदृढ गात्रवालेके सामने भी नमता नहीं (स्थिराय न) युद्धमें स्थिर रहनेवालेके सामने भी नम्र नहीं होता (शर्धते दस्युजूताय न) हिंसा करनेवाले डाकुओंके मुखियाके सामने भी नम्र नहीं होता और (ऋष्वाः गिरयः) महान् पर्वत भी (इन्द्रस्य अज्राः) इन्द्रके गमन करनेके समय सुगम होते हैं। (गम्भीरे चित् अस्मै गाधं भवति) अगाध जल स्थान भी इस इन्द्रके लिये सहज जानने योग्य होते हैं ॥ ८ ॥

१ वीळवे न नमते— वीर सामर्थ्यवान्के आगे भी नही नमता
२ स्थिराय न नमते— स्थिरके सामने भी नहीं नमता।
३ शर्धते दस्युजूताय न नमते— हिंसक क्रूरके सामने भी नहीं नमता।
४ ऋष्वा गिरयः अज्राः— बडे पहाड भी इस वीरके लिये सुगम हैं।
५ गंभीरे चित् अस्मै गाधं भवति— अगाध जल भी इसके लिये सहज लांघने योग्य होता है।

भावार्थ— हे इन्द्र ! पर्वतकी चोटीसे जिसतरह पानीके प्रवाह बहते हैं, उसी तरह तेरी तरफ सामगानके प्रवाह चलते हैं और यज्ञसे मनुष्यको मनोभिलषित वस्तुयें प्राप्त होती हैं। जिसप्रकार घोडे संग्राममें जाते हैं, उसी तरह अन्नका यज्ञ करनेवाले लोग उत्तम स्तुतियोंके साथ तेरे समीप जाते हैं ॥ ६ ॥

वर्ष, मास और दिन इस इन्द्रको वृद्ध नहीं बना सकते। यह इन्द्र कालातीत होनेसे इस पर समयका जरासाभी, प्रभाव नहीं पडता और समयके कारण होनेवाले परिणामोंसे यह क्षीण ही होता है। यह प्राचीनतम पुरुष है। इसकी प्राचीनताका पता लगाना असंभव है, क्योंकि स्तोत्रों और सामगानोंसे इसका यश बढता जाता है, और यह परिपुष्ट होता जाता है ॥ ७ ॥

२७१ गम्भीरेण न उरुणामत्रिन् प्रेषो यन्धि सुतपावन् वाजान् ।
स्था ऊ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्यन्नक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम् ॥ ९ ॥
२७२ सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १० ॥

[२५]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्]

२७३ या त ऊतिरवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति ।
ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न एभिश्च वाजैर्महान् न उग्र ॥ १ ॥

अर्थ— [२७१] हे (अमत्रिन्) बलवान् (सुतपावन्) सोमपान करनेवाले इन्द्र ! (गम्भीरेण उरुणा) गम्भीर तथा विस्तीर्ण मनसे (नः इषः वाजान् प्र यन्धि) हमें अन्न और बल दे । (अक्तोः व्युष्टौ, परितक्म्यायां) दिनमें और रात्रिमें तू (ऊती अरिषण्यन्) हमारी सुरक्षाके लिये हिंसा न करता हुआ (ऊर्ध्वः स्था ऊषु) उद्युक्त तथा तत्पर रह ॥ ९ ॥

१ ऊती अरिषण्यन् ऊर्ध्वः स्थाः— वीर संरक्षण करनेके लिये सदा उद्यत रहे ।

[२७२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नायं अभीके अवसे सचस्व) हमारे नेताका संग्राममें संरक्षण करनेके लिये तत्पर रह । (इतः वा रिषः) इस शत्रुसे (तं पाहि) उसकी रक्षा कर । और (अमा च अरण्ये) घरमें और वनमें (रिषः पाहि) उसकी शत्रुसे रक्षा कर । (सुवीराः शतहिमाः मदेम) उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर हम सौ वर्षतक आनन्द करते रहेंगे ॥ १० ॥

१ नायं अभीके अवसे सचस्व— युद्धमें रक्षणके लिये तैयार रह ।

२ रिषः पाहि— शत्रुसे रक्षा कर ।

३ अमा च अरण्ये रिषः पाहि— घरमें तथा अरण्यमें शत्रुसे रक्षण कर ।

[२५]

[२७३] हे (शुष्मिन्) बलवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (ते या ऊतिः अवमा अस्ति) तेरे जो रक्षा साधन कनिष्ठ हैं, (या परमा) जो उत्तम हैं, (या मध्यमा) और जो मध्यम है (ताभिः वृत्रहत्ये) उन रक्षा साधनोंसे वृत्रके संग्राममें (नः सु अवीः) हमारी उत्तम प्रकारसे रक्षा कर । हे (उग्र) उग्र इन्द्र ! (महान्) तू महान् है । (एभिः वाजैः) इन बलोंसे (नः) हमें युक्त कर ॥ १ ॥

भावार्थ— स्तुतिसे यह इन्द्र इतना पुष्ट हो जाता है कि यह मजबूत शरीरवालेके सामने भी नहीं झुकता, युद्धमें स्थिर रहनेवालेके सामने भी नहीं झुकता तथा हिंसा करनेवालोंके मुखियाके सामने भी वह नम्र नहीं होता । जब इन्द्र चलता है तब पर्वत भी इसके लिए सुगम्य हो जाते हैं और अगाध जल भी इसके लिए आसानीसे पार करनेवाले हो जाते हैं । ऐसा ही वीर भी हो ! ॥ ८ ॥

हे बलवान् तथा सोमपान करनेवाले इन्द्र ! तू गंभीर तथा विशाल मनसे हमें अन्न और बल दे । तू हमारी हिंसा न करता हुआ दिन रात सावधान रहकर हमारी रक्षाके लिए उद्यत रह । वीर बलवान् राष्ट्रका संरक्षक भी अपनी प्रजाकी रक्षा करनेके लिए सदा तैयार रहे ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! हमारे नेताकी संग्राममें रक्षा करनेके लिए सदा तत्पर रह । शत्रुओंसे उसकी रक्षा कर । घर और वनमें अर्थात् सर्वत्र उसकी रक्षा कर । ताकि वह सौ वर्षतक वीर पुत्रपौत्रोंसे युक्त होकर आनन्दसे रहे ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! जो तेरे पास साधारण, मध्यम और उत्तम तरहके रक्षाके साधन हैं, उन सभी साधनोंसे तू हमारी अच्छी तरह रक्षा कर । तू स्वयं महान् होकर हमें भी महान् बना ॥ १ ॥

२७४ आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्य—न्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र ।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूची—रार्याय विशोऽव तारीर्दासीः ॥ २ ॥
२७५ इन्द्र जामय उत येऽजामयो ऽर्वाचीनासो वनुषो युयुज्रे ।
त्वमेषां विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः ॥ ३ ॥
२७६ शूरो वा शूरं वनते शरीरै—स्तनूरुचा तरुषि यत् कृण्वैते ।
तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते ॥ ४ ॥

अर्थ— [२७४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (आभिः) इनसे (मिथतीः स्पृधः अरिषण्यन्) शत्रुसेनाका नाश करनेवाली हमारी सेनाकी रक्षा करते हुए (अमित्रस्य मन्युं व्यथय) शत्रुके क्रोधका नाश कर । (आभिः) इनसे ही (अभियुजः विषूचीः दासीः विश्वाः विशः) स्पर्धा करनेवाली, सब जगह विद्यमान्, शत्रुकी सब दास होने योग्य प्रजाओंका (आर्याय अव तारीः) आर्योंके हित करनेके लिये नाश कर ॥ २ ॥

[२७५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ये जामयः उत अजामयः) जो हमारे संबंधी हों अथवा बाहरके दूसरे शत्रु हों (अर्वाचीनासः वनुषः) जो हमारे सन्मुख आकर हमारा नाश करनेको उद्यत होते हैं । (एषां शवांसि त्वं विथुरा) इन दोनों प्रकारके शत्रुओंके बलोंको तू नष्ट कर । तथा (वृष्ण्यानि जहि) उनके बलोंको पराभूत कर । (पराचः कृणुहि) दोनों प्रकारके शत्रुओंको भगा ॥ ३ ॥

१ जामयः अजामयः अर्वाचीनासः वनुषः एषां शवांसि विथुरा— अपने जातिवाले अथवा पराये जो भी शत्रु हमारे ऊपर हमला करके हमारा नाश करनेके इच्छुक हैं, उनके बलोंको सत्वहीन निष्फल करना चाहिए, उनका नाश करना चाहिए, उनको परास्त करना चाहिए ।

[२७६] (तनूरुचा तरुषि) जब शरीरसे तेजस्वी वीर परस्पर विरोधी होकर संग्राममें (यत् कृण्वैते) युद्ध करते हैं, (शूरः शरीरैः शूरं वा वनते) तब वीर अपने शरीरके अवयवोंके बलसे शत्रुके वीरका नाश करता है । (यत् तोके तनये वा गोषु अप्सु उर्वरासु) जब पुत्र, पौत्र, गौ, पानी तथा उपजाऊ भूमिके लिये (क्रन्दसी) परस्पर विवाद करते हुए (विब्रवैते) झगडा करते हैं, तब युद्ध होते हैं ॥ ४ ॥

१ तनूरुचा तरुषि यत् कृण्वैते, शूर शरीरैः शूरं वनते— शरीरसे तेजस्वी वीर जब युद्ध करते हैं, तब एक शूर अपने शरीरके अवयवोंके सामर्थ्योंसे दूसरे पक्षके वीरका नाश करता है ।

२ तोके तनये गोषु अप्सु उर्वरासु क्रन्दसी वि ब्रवैते— बालबच्चों, गौवों, जलप्रवाहों और उर्वरा भूमिके लिये विवाद बढता है, तब झगडे होते हैं ।

भावार्थ— हे इन्द्र ! इन रक्षाके साधनोंसे शत्रुकी सेनाका नाश करनेवाली हमारी सेनाका नाश करते हुए शत्रुके क्रोधको नष्ट कर । तथा आर्योंका हित करनेके लिए युद्ध करनेवाली सब प्रजाओंका नाश कर ॥ २ ॥

जो हमारे सम्बन्धी होते हुए भी हमसे शत्रुताका व्यवहार करते हैं तथा जो शत्रु हमारे अपने सम्बन्धी नहीं हैं, उन सबका नाश करना चाहिए । अथवा जो छिपकर या जो प्रकट रूपसे सामने आकर हमारा नाश करना चाहते हैं, उन शत्रुओंकी शक्तिका भी नाश करना चाहिए । इसप्रकार हर तरहके शत्रुओंको भगाना चाहिए ॥ ३ ॥

जब दो वीर परस्पर विरोधी होकर संग्राममें युद्ध करते हैं, तब उनमें जो अधिक तेजस्वी होता है, वह वीर विजयी होता है । जब दो मनुष्योंके बीचमें पुत्र, पौत्र, गौ, जल तथा भूमि आदिके लिए परस्पर विवाद होता है, तब उन दोनोंमें झगडा पैदा होता है । विवाद या कलहके ये कारण हैं । एक बार जब इनके कारण विवाद उत्पन्न होता है, तब उसकी समाप्ति युद्धके बाद ही होती है । अतः प्रथम इसी बातका प्रयत्न करना चाहिए कि शाब्दिक विवाद ही उत्पन्न न हो ॥ ४ ॥

२७७ नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णु-र्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध ।
इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि ॥ ५ ॥
२७८ स पत्यत उभयोर्नृम्णमयो-र्यदी वेधसः समिथे हवन्ते ।
वृते वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते ॥ ६ ॥
२७९ अध स्मा ते चर्षणयो यदेजा-निन्द्र त्रातोत भवा वरूता ।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः ॥ ७ ॥

अर्थ— [२७७] हे इन्द्र ! (त्वा शूरः नहि युयोधः) तेरे साथ शूरवीर युद्ध नहीं करता । (तुरः न) दूसरे शत्रुओंका नाश करनेवाला भी तेरे साथ नहीं लडता । (धृष्णुः न) शत्रुओंका धर्षक वीर भी तुझसे नहीं युद्ध करता, (मन्यमानः योधः त्वा न) युद्धमें घमंडी योद्धा भी तेरे साथ नहीं लडता । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (एषां त्वा नकिः प्रत्यस्ति) इन योद्धाओंमें कोई भी तेरा प्रतिस्पर्धी नहीं है । (विश्वा जातानि तानि अभ्यासि) सब उत्पन्न हुए सामर्थ्योंका तू पराभव करता है । सबसे अधिक सामर्थ्य तुझमें ही है ॥ ५ ॥

१ त्वा शूरः न युयोध— शूर इस इन्द्रसे युद्ध नहीं कर सकता ।
२ त्वा तुरः न युयोध— त्वरासे शत्रुनाश करनेवाला इस इन्द्रसे युद्ध नहीं कर सकता ।
३ धृष्णुः त्वा न युयोध— शत्रुका धर्षण करनेवाला इस इन्द्रसे युद्ध नहीं कर सकता ।
४ मन्यमानः योधः त्वा न युयोध— घमंडी योद्धा भी इस इन्द्रसे युद्ध नहीं कर सकता ।
५ एषां नकिः त्वा प्रत्यस्ति— इनमेंसे कोई भी इस इन्द्रका प्रतिस्पर्धी नहीं है ।
६ विश्वा जातानि तानि अभ्यसि— सब शत्रुके सामर्थ्योंका यह पराभव कर सकता है ।

[२७८] (महः वृत्रे वा नृवति क्षये वा) महान् शत्रुको रोकनेके युद्धमें, अथवा नेता लोगोंसे युक्त घरमें रहनेवालोंमें (यदि वितन्तसते) जो दो मनुष्य झगडा करते हैं (अयोः उभयोः सः नृम्णं पत्यते) उनके बीच वह मनुष्य धन प्राप्त करता है । (यदि समिथे वेधसः हवन्ते) कि जो यज्ञमें ज्ञानियोंको बुलाते हैं । या हवन करते हैं ॥ ६ ॥

[२७९] (अध स्म) और भी हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते चर्षणयः) जो तेरी प्रजा (यत् एजान् त्राता भव) जो डरसे कांपती है, उनकी रक्षा कर । (उत वरूता) और उनका तारक हो । (अस्माकासः नृतमासः ये अर्यः) हमारे जो अतिशय श्रेष्ठ नेता मनुष्य हैं, उनका तू संरक्षण कर । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सूरयः नः पुरः दधिरे) जो ज्ञानी हमको आगे धारण करते हैं, उनका भी रक्षण कर । जो हमें नेता करते हैं उनका भी रक्षण कर ॥ ७ ॥

१ ते एजानः चर्षणयः त्राता उत वरूता भव— जो भयसे कांपनेवाली प्रजा है उनका रक्षक और उद्धारक बने ।
२ ये अस्माकासः नृतमासः अर्यः सूरयः नः पुरः दधिरे त्राता भव— जो हमारे श्रेष्ठ मनुष्य हैं, जो ज्ञानी हमें नेता करते हैं उनका भी रक्षक मनुष्य बने ।

भावार्थ— यह इन्द्र योद्धाओंमें सर्वाधिक तेजस्वी है, इसलिए कोई भी इसके साथ युद्ध नहीं कर सकता । जो अन्य शत्रुओंका नाश करते हैं, जो शत्रुओंका धर्षण करते हैं, तथा जो घमंडी हैं, ऐसे योद्धाओंमें भी कोई इस इन्द्रके साथ युद्ध नहीं कर सकता, क्योंकि जितने भी सामर्थ्यशाली आज तक उत्पन्न हुए हैं, उन सबका पराभव इस इन्द्रने किया है, इसलिए युद्ध करनेके लिए सहसा कोई तैय्यार नहीं होता ॥ ५ ॥

मनुष्य घरमें रहें वा युद्धमें रहें, जो उनमें परमेश्वरकी भक्ति करेगा वही विजयी होगा । अन्तिम विजय यज्ञ करनेवालेकी ही होगी । अन्तिम विजय ईश्वरके भक्तकी ही होगी ॥ ६ ॥

हे शूरवीर ! तेरी प्रजा जो डरसे कांपती है, उनकी रक्षा कर, उन्हें संकटोंसे पार करा, इन प्रजाओंमें जो अत्यन्त श्रेष्ठ मनुष्य हों, उनकी भी तू रक्षा कर । जो ज्ञानी हमें अपना नेता चुनते हैं, उनका भी तू संरक्षण कर ॥ ७ ॥

२८० अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥ ८ ॥
२८१ एवा नः स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम् ॥ ९ ॥

[२६]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२८२ श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि त्वा महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः ।
सं यद् विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहन् दाः ॥ १ ॥
२८३ त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन् ॥ २ ॥

अर्थ— [२८०] (महे ते इन्द्रियाय अनु दायि तुझ जैसे महान् वीरके पास प्रभुत्वशक्ति दी है । (वृत्रहत्ये ते विश्वं सत्रा अनु दायि युद्धमें वृत्रासुरादि शत्रुओंको मारनेके लिये तुझे सब प्रकारका संघबल दिया है । (क्षत्रं अनु दायि) तुझे क्षात्र बल दिया (सहः अनु दायि) शत्रुओंका पराभव करनेका बल तुझे दिया । हे (यजत्र) पूजनीय (इन्द्र) इन्द्र ! (ते नृषह्ये देवेभिः अनु दायि) तुझे युद्धमें देवताओंने यह बल दिया ॥ ८ ॥

[२८१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (एव नः स्पृधः) इस प्रकार तू हमारी सेनाको शत्रुसेनाका वध करनेके लिये (समत्सु समज) संग्रामोंमें प्रेरित कर । (मिथतीः अदेवीः ररन्धि) हिंसा करनेवाली राक्षसी शत्रुसेनाको हमारे लिये विनष्ट कर । (उत) और हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते गृणन्तः भरद्वाजाः) तेरी स्तुति करनेवाले हम भरद्वाज (अवसा वस्तोः नूनं विद्याम) रक्षणशक्तियुक्त घर अवश्य प्राप्त करें ॥ ९ ॥

[२६]

[२८२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ववृषाणाः) बलवान् होनेवाले हम (महः वाजस्य सातौ) बहुत अन्नकी प्राप्तिके लिये (त्वा ह्वयामसि) तुझे बुलाते हैं । (नः श्रुधि) हमारे इस प्रार्थनाको सुन, (यत् विशः शूरसातौ) जब प्रजाजन युद्धमें (सं अयन्त) जाते हैं, तब (पार्ये अहन्) अन्तिम कठिन दिनमें (नः उग्रं अवः दाः) हमें शूरता युक्त संरक्षण दे कि जो शत्रुके लिये भयंकर प्रतीत हो ॥ १ ॥

[२८३] (वाजी वाजिनेयः) बलवान् वीर (गध्यस्य महः वाजस्य सातौ) अधिक अन्नकी प्राप्तिके लिये (त्वां हवते) तेरी प्रार्थना करता है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सत्पतिं तरुत्रं त्वां) सज्जनोंके पालक और दुर्जनोंका नाश करनेवाले ऐसे तेरी (वृत्रेषु) शत्रुका आक्रमण होनेपर भक्त प्रार्थना करता है । (मुष्टिहा) मुष्टिसे शत्रुका नाश करनेवाला (गोषु युध्यन् त्वां चष्टे) गौके लिये युद्ध करते हुए तेरी ओर ही देखता है ॥ २ ॥

भावार्थ— इन्द्रके पास यह सब बल इसलिये दिया है कि इससे वह सबकी रक्षा करे, सब शत्रुओंका दूर करे और सबका सुयोग्य योगक्षेम चलावे । प्रजाका उत्तम रीतिसे रक्षण हो ॥ ८ ॥

हमारी सेना शत्रुकी सेनाके साथ युद्ध करे और उसका पराभव करे, सब संग्रामोंमें हमारी विजय हो । राक्षसी सेनाका नाश हो । हम भरद्वाज गोत्री तेरे भक्त हैं इसलिये पर्याप्त अन्न जिसमें सदा रहता है ऐसा घर हमें प्राप्त हो ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! बलसे युक्त हम बहुत अन्नकी प्राप्तिके लिए तुझे बुलाते हैं । हमारी इस प्रार्थनाको सुन, कि जब सब प्रजाजन युद्धमें शत्रुता करनेके लिए जाते हैं, तब जिस दिन युद्धका अन्तिम निर्णय होनेवाला हो, उस दिन तू हमें उत्तम संरक्षण शक्तिसे युक्त कर, ताकि हम अपनी शक्तिको प्रकट करके उन्हें डरा सकें ॥ १ ॥

२८४ त्वं कविं चोदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क् ।
त्वं शिरो अमर्मणः पराह—न्नतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ३ ॥

२८५ त्वं रथं प्र भरो योधमृष्व—मावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन् त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र तूतोः ॥ ४ ॥

२८६ त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि ।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन् प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती ॥ ५ ॥

अर्थ— [२८४] हे इन्द्र (त्वं) तू (अर्क-सातौ) अन्नप्राप्तिके युद्धके लिये (कविं चोदय) बुद्धिमान् कविको प्रेरित कर। (त्वं दाशुषे कुत्साय) तू दाता कुत्सके लिये (शुष्णं वर्क्) शुष्ण असुरका वध किया। (त्वं अतिथिग्वाय) तूने अतिथिग्वके लिये (शंस्यं करिष्यन्) सुख देनेकी इच्छासे (अमर्मणः शिरः पराहन्) मर्महीन असुरका सिर काटा ॥ ३ ॥

[२८५] हे इन्द्र ! (तं योधं ऋष्वं रथं प्र भरः) उस युद्धसाधनरूप, महान् रथको प्राप्त कर और (दशद्युं युध्यन्तं वृषभं) दस दिन युद्ध करनेवाले बलवान् वीरकी (आवः) रक्षा कर। (त्वं वेतसवे सचा तुग्रं अहन्) तूने वेतसुकी सहायता करनेके लिये तुग्र असुरको मारा। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं गृणन्तं तुजिं तूतोः) तूने स्तुति करनेवाले तुजिको बढाया ॥ ४ ॥

[२८६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (बर्हणा त्वं तत् उक्थं कः) शत्रुओंके हिंसक ऐसे तूने प्रशंसनीय कार्य किये। हे (शूर) वीर ! (शता सहस्रा प्र दर्षि) सैकडों और हजारों शत्रुके वीरोंका नाश किया। (दासं गिरेः शम्बरं अव हन्) दस्यु अर्थात् हिंसक और पर्वतके किलेमें रहनेवाले शम्बरासुरका वध किया। (चित्राभिः ऊती दिवोदासं प्रावः) विलक्षण संरक्षणके साधनोंसे दिवोदासकी अच्छी तरह रक्षा की ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! यह बलवान् वीर और अधिक अन्नकी प्राप्तिके लिए तेरी प्रार्थना करता है। तू सज्जनोंका पालक है और दुष्टोंका नाशक है अतः शत्रुके आक्रमण होनेपर भक्त तेरी प्रार्थना करता है ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तूने दानशील कुत्स अर्थात् सत्पुरुषको सुरक्षित रखनेके लिए शोषण करनेवाले असुर या दुष्टको मारा। अतिथिका सम्मान करनेवाले आर्यको सुख देनेकी इच्छासे निर्दय दुष्टका सिर काट डाला, और इस प्रकार अन्नकी प्राप्ति होनेवाले युद्धमें बुद्धिमान् कविको प्रेरित किया ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तू युद्धको सिद्ध करनेवाले रथको प्राप्त कर और दीर्घकाल तक युद्ध करनेवाले बलवान् वीरकी रक्षा कर। तूने वेतसु नामक ऋषिकी रक्षा करनेके लिए तुग्र नामक असुरको मारा और तूने ही स्तुति करनेवाले तुजि अर्थात् लोगोंको उत्तम प्रेरणा देनेवाले मनुष्यको बढाया ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तूने शत्रुओंकी हिंसा करके सचमुच प्रशंसनीय कार्य किया तथा सैकडों और हजारों शत्रुओंको मारा। मनुष्योंको दास या गुलाम बनाकर उनसे काम लेनेवाले, प्राणियोंकी अनावश्यक हिंसा करनेवाले तथा पर्वतोंको दुर्ग बनाकर रहनेवाले असुरोंको नष्ट किया तथा अपने संरक्षणके विलक्षण साधनोंसे दिवोदास अर्थात् देवोंका दास बनकर उनकी सेवा करनेवाले श्रेष्ठ मनुष्यकी रक्षा की ॥ ५ ॥

२८७ त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप् ।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन् षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन् ॥ ६ ॥

२८८ अहं चन तत् सूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः ।
त्वया यत् स्तवन्ते सधवीर वीरास्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ ॥ ७ ॥

२८९ वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः ।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम् ॥ ८ ॥

[२७]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । अभ्यावर्ती चायमानः (दानं) । छन्दः- त्रिष्टुप्]

२९० किमस्य मदे किम्वस्य पीताविन्द्रः किमस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि किं ते अस्य पुरा विविद्रे किमु नूतनासः ॥ १ ॥

अर्थ— [२८७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (श्रद्धाभिः सोमैः मन्दसानः) श्रद्धायुक्त कर्मोंसे और सोमरसोंसे आनन्दित हुए (त्वं दभीतये चमुरिं सिष्वप्) तूने दभीतिके संरक्षण करनेके लिये, चमुरि असुरको सुला दिया अर्थात् मार डाला । (त्वं पिठीनसे रजिं दशस्यन्) तूने पिठीनस्को राज्य देते हुए (शच्या षष्टिं सहस्रा सचा अहन्) अपनी शक्तिसे शत्रुके साठ हजार वीरोंको एक साथ मार डाला ॥ ६ ॥

[२८८] हे (सधवीर) वीरोंसहित रहनेवाले (शविष्ठ) अतिशय बलवान् इन्द्र ! (वीराः त्रिवरुथेन नहुषा त्वया) वीर लोग, तीनों लोकोंका रक्षण करनेवाले तुझसे दिये (यत् सुम्नं ओजः स्तवन्ते) सुख और बलकी प्रशंसा करते हैं । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (तव ज्यायः तत्) तेरे द्वारा दिये गए उस श्रेष्ठ सुख और बलको (अहं च न सूरिभिः आनश्यां) मैं और सब ज्ञानी लोग भी प्राप्त करें ॥ ७ ॥

[२८९] हे (महिन) पूजनीय (इन्द्र) इन्द्र ! (ते सखायः वयं) तेरे मित्र हम (अस्यां द्युम्नहूतौ) इस धनके निमित्त किये स्तवनसे तुझे (प्रेष्ठाः स्याम) अत्यन्त प्रिय होवें । (प्रातर्दनिः प्रतर्दनका पुत्र (क्षत्रश्रीः श्रेष्ठः अस्तु) क्षत्रश्री सबसे श्रेष्ठ हो (वृत्राणां घने) शत्रुओंका वध करनेके लिये और (धनानां सनये) धनकी प्राप्तिके लिये वह श्रेष्ठ कर्म करे ॥ ८ ॥

[२७]

[२९०] (अस्य मदे इन्द्रः किं चकार) इसके हर्षमें इन्द्रने क्या किया ? (किमु अस्य पीतौ) और इसके पीनेपर क्या किया ? (अस्य सख्ये किं) इसके साथ मित्रता करनेपर इसने क्या किया ? (अस्य निषदि रणा वा ये पुरा) इसके साथ जो लोग रहते हैं (ते किं विविद्रे) उन्होंने क्या प्राप्त किया ? (नूतनासः किमु) इस समय नवीनोंको भी क्या प्राप्त हुआ ? ॥ १ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! श्रद्धायुक्त कर्म तथा श्रद्धापूर्वक दिए गए सोमरसोंसे आनन्दित होकर तूने दभीति अर्थात् भयभीत हुए मनुष्यके संरक्षणके लिए चमुरि अर्थात् लूटनेवाले दुष्टको मारा । तूने अत्यन्त शक्तिशाली वीरको राज्य देते हुए अपनी शक्तिसे उसके साठ हजार वीरोंको एक साथ मार डाला ॥ ६ ॥

हे वीरोंके साथ रहनेवाले अत्यन्त बलशाली इन्द्र ! वीरगण तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाले तुझसे दिए गए सुख और बलकी प्रशंसा करते हैं । हे इन्द्र ! तेरे द्वारा दिए गए उस श्रेष्ठ सुख और बलको हम सब ज्ञानी जन प्राप्त करें ॥ ७

हे पूज्य इन्द्र ! तेरे मित्र हम तेरी स्तुति करते हैं, अतः तुझे हम बहुत प्रिय हों । प्रतर्दन अर्थात् शत्रुओंका घर्षण करनेवाले वीरका पुत्र क्षत्रिय तेजसे सुशोभित मनुष्य सबसे श्रेष्ठ हो । शत्रुओंका वध करनेके लिये और धनकी प्राप्तिके लिये वह श्रेष्ठ कर्म करे ॥ ८ ॥

×

२९१ सदस्य मदे सद्वस्य पीताविन्द्रः सदस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि सत् ते अस्य पुरा विविद्रे सदु नूतनासः ॥ २ ॥

२९२ नहि नु ते महिमनः समस्य न मघवन् मघवत्त्वस्य विद्म ।
न राधसोराधसो नूतनस्येन्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते ॥ ३ ॥

२९३ एतत् त्यत् त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः ।
वज्रस्य यत् ते निहतस्य शुष्मात् स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार ॥ ४ ॥

अर्थ— [२९१] (इन्द्रः अस्य मदे सत् चकार) इन्द्रने इसके आनन्दमें उत्तम कर्म किया, (अस्य पीतौ सत्) इसके पान करनेपर भी उसने सत् कार्य किया, (अस्य सख्ये सत्) इसके साथ मैत्री करनेपर भी उसने सत्कर्म ही किया, (ये रणा वा निषदि) जो रणमें या समागृहमें रहे हैं (पुरा ते सत् विविद्रे) उन्होंने पहिले भी सत्कर्म किये, (नूतनासः सत् उ) इस समय नवीन भी सत्कर्म ही करते हैं ॥ २ ॥

[२९२] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (ते समस्य महिमनः नहि विद्म) तेरे समान दूसरे किसीकी महिमा हम नहीं जानते, (मघवत्त्वस्य न) तेरे जैसा ऐश्वर्यशाली और कोई होगा भी, यह भी हम नहीं जानते । (नूतनस्य राधसोराधसः) तेरे संपूर्ण प्रशंसनीय सिद्धिको और (इन्द्र) इन्द्र ! (ते इन्द्रियं नाकिः ददृशे) तेरे सामर्थ्यको भी हममेंसे कोई जानता नहीं ॥ ३ ॥

[२९३] हे इन्द्र ! (वरशिखस्य शेषः अवधीः) जिस पराक्रम द्वारा तूने वरशिख नामक असुरके पुत्रोंको मारा, (ते एतत् यत् इन्द्रियं अचेति) तेरा यह पराक्रम प्रसिद्ध है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् शुष्मात्) जिस पराक्रमसे (निहतस्य वज्रस्य) प्रेरित वज्रके (स्वनात् चित् परमः ददार) आवाजसे ही बडा शत्रु विदीर्ण हुआ था ॥ ४ ॥

भावार्थ— इस मंत्रमें कतिपय प्रश्न पूछे गए हैं जिनके उत्तर अगले मंत्रमें दिए गए हैं। प्रश्न हैं - इस सोमरसको पीकर उसके उत्साहमें इन्द्रने क्या किया ? इस सोमसे मित्रता जोडकर इन्द्रने कौनसा पराक्रम किया ? इस इन्द्रके साथ जो लोग रहते हैं उन्हें इस इन्द्रकी मित्रतासे क्या लाभ हुआ ? उन्होंने क्या प्राप्त किया ? तथा उसके जो नवीन मित्र थे, उन्हें भी उससे क्या लाभ हुआ ? ॥ १ ॥

इस मंत्रमें पिछले मंत्रोंमें पूछे गए प्रश्नोंके उत्तर दिए गए हैं, वे उत्तर इस तरह हैं – इन्द्रने इस सोमरसको पीने पर जो हर्ष हुआ, उस हर्षमें उत्तम कर्म किया, इस सोमरसको पान करके उसने सत्कार्य किए । सोमरसके साथ मित्रता करके उसने श्रेष्ठ कर्म किए । अतः जो इसके नवीन या पुरातन मित्र, जो रणमें रहते हैं या गृहमें अर्थात् जहां भी रहते हैं, उत्तम कर्म ही करते हैं, इन्द्रके मित्र सदा सत्कर्म करते हैं, अथवा सत्कर्मियोंको ही वह इन्द्र अपने मित्र बनाता है ॥ २ ॥

हम इस बातको अच्छी तरह जानते हैं कि इस इन्द्रके समान महिमाशाली और कोई नहीं है, तथा इसके समान ऐश्वर्यशाली भी कोई दूसरा नहीं है । यह इन्द्र कितनी सिद्धियां प्राप्त कर चुका है और इसका सामर्थ्य कितना है, यह भी कोई नहीं जानता ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! वरशिख अर्थात् पराक्रमशालियोंमें भी अत्यधिक पराक्रमी असुरको तूने मारा, उसके कारण तेरा पराक्रम सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया । तेरा वज्र इतना शक्तिशाली है कि उस पराक्रम युक्त वज्रके आवाजसे ही शत्रु नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

२९४ वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषो ऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन् ।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन् पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त् ॥ ५ ॥

२९५ त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या ।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दाना न्यर्थान्यायन् ॥ ६ ॥

२९६ यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा ।
स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद् वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ॥ ७ ॥

२९७ द्वयाँ अग्ने रथिनो विंशतिं गा वधूमतो मघवा मह्यं सम्राट् ।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [२९४] (इन्द्रः चायमानाय अभ्यावर्तिने शिक्षन्) इन्द्रने चयमानके पुत्र अभ्यावर्तीको ईप्सित धन देकर (वरशिखस्य शेषः वधीत्) वरशिख असुरके पुत्रोंको मारा। (यत् हरियूपीयायां) जब इन्द्रने हरियूपीया नगरीके (पूर्वे अर्धे वृचीवत् हन्) पूर्व भागमें वृचीवान्‌को मारा। (अपरः भियसा दर्त) तब दूसरा पुत्र तो डरसे ही विदीर्ण हुआ ॥ ५ ॥

[२९५] हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा प्रार्थित इन्द्र! (श्रवस्या शरवे पत्यमानाः) यशकी इच्छाने तेरी हिंसा करनेके उद्देश्यसे तेरे ऊपर हमला करनेवाले (वर्मिणः त्रिंशत् शतं वृचीवन्तः) कवचधारी तीन हजार वृचीवत्‌के सैनिकोंको (साकं यव्यावत्यां) एक साथ यव्यावतीमें (पात्रा न्यर्थानि आयन्) मिट्टीके पात्र जैसे तोडे जाते हैं वैसे उन सबको तूने तोड दिया ॥ ६ ॥

[२९६] (अरुषा सुयवस्यू रेरिहाणा) कान्तिमान् सुन्दर तृणादिकी इच्छावाले पुनः पुनः घासको चबाते हुए (यस्य गावौ अन्तः चरतः) जिस इन्द्रके दो घोडे खेतमें घूमते हैं। (सः) उस इन्द्रने (वृचीवतः दैववाताय शिक्षन्) वृचीवत्‌के पुत्र दैववातको सुखी करते हुए (सृञ्जयाय तुर्वशं परादात्) सृञ्जयके आधीन तुर्वशको दे दिया ॥ ७ ॥

[२९७] हे (अग्ने) अग्नि! (मघवा सम्राट् चायमानः अभ्यावर्ती) धनवान् सम्राट् चयमानके पुत्र अभ्यावर्तीके राजाने (रथिनः वधूमतः द्वयान् विंशतिं गाः) स्त्रियोंसहित रथ और बीस गायें (मह्यं ददाति) मुझे दी। (पार्थवानां इयं दक्षिणा दुर्नशा) राजाओंकी इस दक्षिणाका कोई नाश नहीं कर सकता ॥ ८ ॥

भावार्थ— इन्द्रने चयमान अर्थात् उत्तम कर्मोंको करनेवाले श्रेष्ठ मनुष्यके पुत्रको अभिलषित धन प्रदान किया और श्रेष्ठ असुरके पुत्रोंको मारा। जब इन्द्रने वृचीवान् अर्थात् कुटिलमार्गसे चलनेवाले मनुष्यको मारा, तब इन्द्रके पराक्रमको देखकर दूसरे दुष्ट तो डरके मारे ही मर गए ॥ ५ ॥

इस इन्द्रने उसे मारनेकी इच्छासे उस पर आक्रमण करनेवाले कवचधारी तीन हजार शत्रुओंको रणके मैदानमें जैसे मिट्टीके पात्र तोडे जाते है, वैसे नष्ट कर डाले ॥ ६ ॥

इस इन्द्रके घोडे तेजस्वी तथा पुष्ट हैं। इस इन्द्रने वृचीवान् नामक दुष्टका नाश करके उसके सज्जन पुत्र दैववातको सुखी किया ॥ ७ ॥

धनवान् सम्राट् चयमानके पुत्र अभ्यावर्तीके राजाने सज्जनोंको अनेक तरहकी सहायता और दक्षिणा दी। इन क्षत्रियोंके द्वारा दी गई दक्षिणाको कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥ ८ ॥

[२८]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- गावः; २, ८ इन्द्रो गावो वा । छन्दः- त्रिष्टुप्, २-४ जगती, ८ अनुष्टुप् ।]

२९८ आ गावो॑ अग्मन्नु॒त भ॒द्रम॑क्र॒न् त्सीद॑न्तु गो॒ष्ठे र॒णय॑न्त्व॒स्मे ।
प्र॒जाव॑तीः पुरु॒रूपा॑ इ॒ह स्यु॒ -रिन्द्रा॑य पू॒र्वीरु॒षसो॒ दुहा॑नाः ॥ १ ॥

२९९ इन्द्रो॒ यज्व॑ने पृण॒ते च॑ शिक्ष॒ -त्युपेद्द॑दाति॒ न स्वं मु॑षायति ।
भूयो॑भूयो र॒यिमिद॑स्य व॒र्धय॒ -न्नभि॑न्ने खि॒ल्ये नि द॑धाति देव॒युम् ॥ २ ॥

३०० न ता न॑शन्ति॒ न द॑भाति॒ तस्क॑रो॒ नासा॑माभि॒त्रो व्यथि॒रा द॑धर्षति ।
दे॒वाँश्च॒ याभि॒र्यज॑ते॒ ददा॑ति च॒ ज्योगित्ताभिः॑ सचते॒ गोप॑तिः स॒ह ॥ ३ ॥

३०१ न ता अर्वा॑ रे॒णुक॑काटो अश्नुते॒ न सं॑स्कृत॒त्रमुप॑ यन्ति॒ ता अ॒भि ।
उ॒रु॒गा॒यमभ॑यं॒ तस्य॒ ता अनु॒ गावो॒ मर्त॑स्य॒ वि च॑रन्ति॒ यज्व॑नः ॥ ४ ॥

[२८]

अर्थ— [२९८] (गावः आ अग्मन्) गायें हमारे घर आयें, (उत भद्रं अक्रन्) और वे हमारा कल्याण करें। (गोष्ठे सीदन्तु) वे गोशालामें बैठें, (अस्मे रणयन्तु) और हमें आनन्दित करें, (इह पुरुरूपाः प्रजावतीः पूर्वीः) इन गौओंमें अनेक रूप तथा अनेक वर्णवाली, बछडोंवाली, बहुतसी गायें (इन्द्राय उषसः दुहानाः स्युः) इन्द्रके लिये प्रातःकालमें दूध देनेवाली हों ॥ १ ॥

[२९९] (इन्द्रः) इन्द्र (यज्वने पृणते च शिक्षति) यज्ञ करनेवाले और अन्न दान करनेवालेको सहायता देता है, (इत् उप ददाति) और धन देता है। और (स्वं न मुषायति) उसके धनका कभी भी हरण नहीं करता। (अस्य रयिं भूयोभूयः) इसके धनको वारंवार (वर्धयन्) बढाता है और (इत् देवयुं अभिन्ने खिल्ये नि दधाति) देव बननेकी इच्छावालेको न टूटे हुए सुरक्षित घरमें रखता है ॥ २ ॥

[३००] (ताः न नशन्ति) वे गौएं नाश नहीं होती। (तस्करः न दभाति) चोर भी उनकी हिंसा नहीं करता। (आमित्रः व्यथिः आसां न आ दधर्षति) शत्रुका शस्त्र इन गौओंपर आक्रमण नहीं करता। (गोपतिः याभिः देवान् च यजते) गौओंका पालक जिन गौओंसे देवोंका यजन करता है (ददाति च) और उनके दूधका दान देता है। (ताभिः सह ज्योक् इत् सचते) वैसी गौओंके साथ वह चिरकालतक रहता है ॥ ३ ॥

[३०१] (रेणुककाटः अर्वा) रेणूको उडानेवाला घोडा (ताः न अश्नुते) उन गौओंको प्राप्त नहीं करता (ताः संस्कृतत्रं) वे गौ संस्कारसे बननेकी अवस्थाको (न अभि उप यन्ति) प्राप्त न हों। (ताः गावः) वे गायें (यज्वनः तस्य मर्तस्य) यजनशील उस मनुष्यके (उरुगायं अभयं अनु वि चरन्ति) विस्तीर्ण, भयरहित प्रदेशमें विचरण करें ॥ ४ ॥

भावार्थ— हमारे घरोंमें गायोंका निवास हो, वे अपने निवाससे सबका कल्याण करें। वे हमारे घरोंमें निवास करके हमें आनन्दसे युक्त करें। ये सभी गायें अनेक रूपोंवाली, अनेकों प्रजाओंवाली होकर प्रातःकालके समय हमें दूध दें ॥ १ ॥

इन्द्र यज्ञ-करनेवाले तथा अन्नदान करनेवालेको हर तरहकी सहायता देता है और उन्हें हरतरहका धन देता है। उसके धनका वह कभी हरण नहीं करता, अपितु इसके धनको बार बार बढाता है। जो देवोंके गुणोंको अपने अन्दर धारण करके देव बनना चाहता है, उसे वह हर तरहसे सुखी रखता है ॥ २ ॥

गायें कभी नष्ट नहीं होतीं, चोर भी उनकी हिंसा नहीं कर सकता। शत्रुका शस्त्र इन गायों पर आक्रमण नहीं कर सकता। गौओंका पालक जिन गौओंसे देवोंका यजन करता है, उनके दूधका दान करता है, उन दुधारु गायोंके साथ वह चिरकाल तक रहता है ॥ ३ ॥

३०२ गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥ ५ ॥
३०३ यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद् वो वय उच्यते सभासु ॥ ६ ॥
३०४ प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥ ७ ॥
३०५ उपेदमुपपर्चन्मासु गोषूप पृच्यताम् ।
उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥ ८ ॥

अर्थ— [३०२] (गावः भगः) गौएं ही धन हैं। (इन्द्रः मे गावः अच्छान्) इन्द्र मुझे गौएं प्रदान करे। (गावः प्रथमस्य सोमस्य भक्षः) गौओंका दूध प्रथम सोममें मिलाने योग्य है। हे (जनासः) मनुष्यों! (इमाः या गावः) ये जो गौएं हैं, (सः इन्द्रः) वह ही इन्द्र है (इन्द्रं हृदा मनसा चित् इच्छामि इत्) उस इन्द्रकी श्रद्धायुक्त मनसे मैं इच्छा करता हूँ ॥ ५ ॥

[३०३] हे (गावः) गौओं! (यूयं मेदयथ) तुम हमें बलवान् बनाओ। (कृशं चित् अश्रीरं चित् सुप्रतीकं कृणुथ) कृश और निस्तेजको हृष्टपुष्ट और सुंदर तेजस्वी रूपवाला बनाओ। हे (भद्रवाचः) कल्याणकारी वाणीयुक्त गौओं! (गृहं भद्रं कृणुथ) घरको कल्याणमय बनाओ। (सभासु बृहत् वयः उच्यते) सभाओंमें तुम्हारा महान् अन्नदायी यश गाया जाता है ॥ ६ ॥

[३०४] हे गौओ! तुम (प्रजावतीः सुयवसं रिशन्तीः) बछडोंसे युक्त होवो, सुन्दर तृण भक्षण करो, (सुप्रपाणे शुद्धाः अपः पिबन्तीः) सुखसे पीने योग्य जलाशयमें निर्मल पानी पीनेवाली हों, (वः स्तेनः मा ईशत) तुम चोरके आधीन न हो, (अघशंसः मा) तुम पापीके आधीन न हो, (वः रुद्रस्य हेतिः परि वृज्याः) तुम्हारेसे रुद्रका शस्त्र दूर रहे अर्थात् रुद्रका शस्त्र तुम्हें न काटे ॥ ७ ॥

[३०५] (आसु गोषु) इन गौओंके दूधमें (इदं उपपर्चनं उप पृच्यतां) यह बलवर्धक मसाला मिलाओ। हे इन्द्र! (तव वीर्ये ऋषभस्य रेतसि उप) तेरे बलके बढानेके लिये सोमके रसमें यह दूध मिला ॥ ८ ॥

भावार्थ— कोई शूर डाकू घोडेपर बैठकर आकर इन गौओंको न पकडे, इन गौओंपर वध करनेका आघात कोई न करे। वे गायें विशाल निर्भय स्थानमें निर्भयताके साथ विचरतीं रहें। गायें सदा निर्भय और आनंद प्रसन्न रहें ॥४॥

गौएं सच्चा धन है। ऐसी गौवें इन्द्रकी कृपासे हमें मिलें। सोमरसमें गौओंके दूधका एक भाग मिलानेपर वह रस भक्षण करने योग्य होता है। ये जो गौएं हैं वही स्वयं इन्द्र है अर्थात् इन्द्रने गौका रूप धारण किया है और वह इस पृथ्वीपर गोरूपसे विचर रहा है। मैं मनसे इन्द्रको प्राप्त करना चाहता हूँ। इसलिये गौओंकी सेवा करना योग्य है ॥ ५ ॥

गायें अपने दूधसे मनुष्यको पुष्ट बनाती हैं। कृशको बलवान् बनाती हैं। निस्तेजको तेजस्वी बनाती हैं। घरको आनंदयुक्त बनाती हैं। इसलिये सभाओंमें गौओंका अन्न दानरूपी जो उत्तम यश है उसका वर्णन किया जाता है ॥ ६ ॥

गौवें बछडोंवाली हों, सुन्दर घास खाती रहें, उत्तम जलाशयमें निर्मल पानी पीती रहें। इनकी चोर चोरी न कर सके, ऐसे सुरक्षित स्थानमें गौवें रहें। पापीके आधीन गौवें न हों। बिजली गिरकर गौवोंकी मृत्यु न हो। सदा गौवें आनंद प्रसन्न और सुरक्षित हों। ॥ ७ ॥

[२९]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३०६ इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपु - र्महो यन्तः सुमतये चकानाः ।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ॥ १ ॥

३०७ आ यस्मिन् हस्ते नर्या मिमिक्षु - रा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः ।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयो - राध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः ॥ २ ॥

---

[२९]

अर्थ- [३०६] (वः नरः) तुम्हारे नेता उस इन्द्रकी (सख्याय) मैत्रीके लिये (इन्द्रं महयन्तः सेपुः) उस इन्द्रका यश गाते हुए उसकी सेवा करते हैं । (सुमतये) अच्छी बुद्धिकी (चकानाः) इच्छा करते हुए (वज्रहस्तः) वज्र धारण करनेवाला इन्द्र (महः दाता अस्ति) बडा धन देता है । इसलिये (रण्वं महां उ अवसे यजध्वं) रमणीय और महान् ऐसे इन्द्रका अपनी रक्षाके लिये यजन करो ॥ १ ॥

१ सुमतये चकानाः नरः सख्याय इन्द्रं महयन्तः सेपुः— उत्तम बुद्धिकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले नेता वीर इन्द्रके साथ मित्रता करनेके लिये इन्द्रके गुणोंका वर्णन करते हैं और उसकी सेवा करते हैं। इन्द्रके गुणोंका वर्णन करनेसे सुमति प्राप्त होती है ।

[३०७] (यस्मिन् हस्ते नर्या आ मिमिक्षुः) जिस इन्द्रके हाथमें मनुष्योंका हित करनेवाला धन भरपूर रहता है । (रथेष्ठाः हिरण्यये रथे आ) रथमें बैठनेवाला वह वीर सुवर्णमय रथमें बैठकर इधर आता है । (स्थूरयोः गभस्त्योः रश्मयः आ) पुष्ट हाथोंमें घोडोंकी लगाम रखता है (वृषणः अश्वासः युजानाः) जिसके बलवान् घोडे रथमें जोते हुए (अध्वन् आ) मार्गसे उसे ले जाते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— इन गौओंको यह बलवर्धक पदार्थ दे दो । इन गौओंके दूधमें यह मसाला बलवर्धनके लिये मिला दो । यह दूध सोमरसमें मिला दो और ऐसा तैयार किया हुआ सोमरस इन्द्रको अर्पण करो । उस रसको इन्द्र पीवे और उससे इन्द्रका पराक्रम बढता जाय । जो मनुष्य इस तरह दुग्धमिश्रित सोमरस पीयेगा उसके शरीरमें भी वीर्य बढेगा और वह बलवान् बनेगा । ॥ ८ ॥

उत्तम बुद्धिको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले नेता वीर इन्द्रके साथ मित्रता करनेके लिए इन्द्रके गुणोंका वर्णन करते हैं और उसकी सेवा करते हैं । इन्द्रके गुणोंपर आचरण करनेसे सुमति प्राप्त होती है । किस समय क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए इसका ज्ञान प्राप्त होता है । इस इन्द्रकी सेवा करनेसे तथा उसका कार्य करनेसे उससे मित्रता होती है । वह वज्रधारी वीर बहुत धन देता है । वीर महत्त्वका स्थान प्रदान करता है । अतः इस महान् इन्द्रकी पूजा करनेसे पूजककी हर तरहसे सुरक्षा होती है ॥ १ ॥

इन्द्रके अधीन मनुष्योंका हित करनेवाले धन भरपूर होते हैं । वह लोगोंके हितके कार्यमें ही अपना धन खर्च करता है । वह इतना धनवान् होते हुए भी अपने घोडोंको स्वयं चलाता है तथा अपने घोडोंकी सेवा स्वयं करता है ॥ २ ॥

३०८ श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षु— र्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान् ।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्व१र्ण नृतविषिरो बभूथ ॥ ३ ॥
३०९ स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद् यस्मिन् पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः ।
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः ॥ ४ ॥
३१० न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य वि तु बाबधे रोदसी महित्वा ।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ॥ ५ ॥
३११ एवेदिन्द्रः सुहव ऋष्वो अस्तू— ती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा ।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥ ६ ॥

अर्थ— [३०८] (श्रिये ते पादा दुवः) ऐश्वर्यके लिये तेरे चरणोंमें हम सब अपनी सेवाको (आ मिमिक्षुः) समर्पित करते हैं। तू (शवसा धृष्णुः) बलसे शत्रुओंका नाश करनेवाला (वज्री दक्षिणावान्) वज्रधारी दाता इन्द्र है। हे (नृतः) नेता इन्द्र ! (सुरभिं अत्कं) सुगंधित कवचको (दृशे वसानः) सबके दर्शनके लिये धारण करता हुआ तू (स्वः न) सूर्यकी तरह (इषिरः बभूथ) सबका उत्साह बढानेवाला होता है ॥ ३ ॥

१ श्रिये ते पादा दुवः आ मिमिक्षुः— ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये हम तेरे चरणोंकी सेवा करते हैं।

[३०९] (यस्मिन् पक्तिः पच्यते) इस समय पकाने योग्य अन्न पकाया जाता है। (धानाः सन्ति) लाजा तैयार है। (ब्रह्मकाराः नरः) स्तोत्र पढनेवाले नेता (इन्द्रं स्तुवन्तः) इन्द्रकी स्तुति करते हुए (उक्था शंसन्तः देववाततमाः) सामगान करते हैं वे देवत्वको सत्वर प्राप्त होते हैं। (सः सुतः सोमः) वह सोमरस निकालनेपर (आमिश्लतमः भूत्) उसमें दुग्धादि पदार्थ मिश्रित किये हैं। वह पीनेके लिये तैयार हुआ है ॥ ४ ॥

[३१०] (ते अस्य शवसः अन्तः) तेरे इस बलका अन्त (न धायि) नहीं है। (रोदसी महित्वा) द्यावापृथिवी भी उस बलसे (तु वि बबाधे) कांपती है, डरती है। (ता सूरिः तूतुजानः) उस बलसे ज्ञानी लोग सत्वर (ऊती समीजमानः) संरक्षण प्राप्त करके यजन करते हुए (यूथा इव अप्सु) जिस प्रकार गौओंके समूह जलस्थानमें तृप्ती प्राप्त करते हैं, उस प्रकार (आ पृणाति) तृप्त होता है ॥ ५ ॥

[३११] (एव ऋष्वः इन्द्रः सुहवः अस्तु) इस प्रकार महान् इन्द्र सुखसे बुलाने योग्य हो। (इत् हरिशिप्रः) सुवर्णका शिरस्त्राण धारण करनेवाला वीर (ऊती अनूती) संरक्षण करनेसे अथवा संरक्षण न करनेकी अवस्थामें (सत्वा) वह बलवान् ही है। (एवा हि जातः) इस प्रकार सुप्रसिद्ध वह इन्द्र (असमाति ओजाः) अनुपम तेज और बलसे (पुरु च वृत्रा हनति) बहुतसे राक्षसादिका नाश करता है (दस्यून नि) और शत्रुओंका भी नाश करता है ॥ ६ ॥

१ हरिशिप्रः ऊती अनूती सत्वा जातः— सुवर्णका शिरस्त्राण धारण करनेवाला वह वीर हमारा संरक्षण करने या न करनेपर भी स्वयं निःसंदेह बलवान् ही है।

भावार्थ— हे शत्रुओंके विनाशक, वज्रधारी और दाता इन्द्र ! ऐश्वर्य प्राप्त करनेके लिये तेरे चरणोंमें हम अपनी सेवाओंको समर्पित करते हैं। यह इन्द्र जब सुनहरा कवच धारण करता है, तब जिस तरह सूर्यकी सुनहली किरणोंके प्रगट होते ही सर्वत्र उत्साह दौड जाता है, उसी तरह इस इन्द्रके इस सुनहले कवचको देखकर सब वीरोंके मनोंमें उत्साह दौड जाता है ॥ ३ ॥

जैसे ही इन्द्रका आगमन होता है, वैसे ही उसके लिए अन्न पकाना शुरु हो जाता है, धानको भूनकर उनकी खीलें तैयार की जाती हैं। स्तोत्र पाठ करनेवाले उसकी स्तुति करने लगते हैं और सोमरस तैय्यार किया जाता है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तेरे सामर्थ्यका अन्त नहीं है। तेरे महत्वसे द्यावापृथिवी भी डरती है। द्यावापृथिवीको बाधा पहुंचती है। सत्वर कार्य करनेवाला विद्वान् उन संरक्षणोंको सम्यकया प्राप्त होकर उसी तरह संतुष्ट होता है, जिस तरह गौओंका झुण्ड जलस्थानको प्राप्त करके तृप्त होता है ॥ ५ ॥

[३०]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३१२ भूय इद् वावृधे वीर्याय एको अजुर्यो दयते वसूनि ।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥ १ ॥

३१३ अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति ।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद् वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात् ॥ २ ॥

---

[३०]

अर्थ— [३१२] (भूयः इत् वीर्याय वावृधे) बहुत बार पराक्रम करनेके लिये वह वीर बढा हो गया था। (एकः अजुर्यः इन्द्रः) यह एक ही जरारहित इन्द्र (वसूनि दयते) धनोंको देता है। और (दिवः पृथिव्याः प्र रिरिचे) द्युलोक और पृथ्वीसे भी बढा है (उभे रोदसी अस्य अर्धं इत प्रति) दोनों द्यावापृथिवी इस इन्द्रका आधा भाग हैं ॥ १ ॥

१ वीर्याय भूयः इत् वावृधे— पराक्रम करनेके लिये निःसंदेह यह वीर वारंवार उत्साहसे बढ जाता है।

२ दिवः पृथिव्याः प्र रिरिचे— यह इन्द्र द्युलोक और पृथिवीसे बहुत ही बडा है।

३ उभे रोदसी अस्य अर्धं इत् प्रति— दोनों द्युलोक और पृथिवीलोक इसके आधे भागके बराबर हैं।

[३१३] (अध अस्य बृहत् असुर्यं मन्ये) इस समय इस इन्द्रके बडे बलको मैं मानता हूँ। (यानि दाधार नकिः आ मिनाति) जिन कर्मोंको इन्द्र धारण करता है उनका कोई भी नाश नहीं कर सकता। (दिवेदिवे सूर्यः दर्शतः भूत्) प्रतिदिन सूर्य दर्शनीय होता है। (सुक्रतुः सद्मानि उर्विया वि धात्) शोभन कर्म करनेवाले इन्द्रने भुवनोंको विस्तीर्ण किया है ॥ २ ॥

१ अस्य बृहत् असुर्यं मन्ये— इस वीरका बडा सामर्थ्य है ऐसा मैं मानता हूँ।

२ यानि दाधार, नकिः आ मिनाति— जिन कर्मोंको यह वीर धारण करता है, उनका नाश कोई कर नहीं सकता।

३ दिवेदिवे सूर्यः दर्शतः भूत्— प्रतिदिन सूर्य दर्शनीय होकर उदित होता है। यह उस इन्द्रका ही प्रभाव है।

४ सुक्रतुः सद्मानि उर्विया वि धात्— उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रने इस विश्वमें बडे बडे स्थानोंको- भुवनोंको- निर्माण किया है। उसीका बनाया यह सब विश्व है।

भावार्थ— वह इन्द्र हमारे द्वारा आसानीसे बुलाये जाने योग्य हो। सोनेका शिरस्त्राण धारण करनेवाला वह वीर इन्द्र चाहे हमारी रक्षा करनेकी अवस्थामें हो या न हो, हर हालतमें वह बलवान् ही है। इस प्रकार सुप्रसिद्ध वह इन्द्र अनुपम तेज और बलसे बहुतसे राक्षसोंका नाश करता है ॥ ६ ॥

बार बार पराक्रम करनेके लिए यह इन्द्र सदा उत्साहसे भर जाता है। सदा तरुण रहनेवाला, कभी भी वृद्धावस्थासे ग्रस्त न होनेवाला इन्द्र सभी तरहके धनोंको प्रदान करता है। वह द्युलोक और पृथ्वीलोकसे भी बडा है। दोनों द्यावापृथिवी इस इन्द्रके आधा भाग हैं ॥ १ ॥

इस इन्द्रके बलके महत्त्वको हर किसीको मानना पडता है। चाहे वह नास्तिक हो या आस्तिक, वह इस सर्वैश्वर्यशाली शक्तिके आगे किसी न किसी रूपमें झुकता ही है। क्योंकि जिन कर्मोंको यह प्रारंभ करता है, उनका नाश नहीं होता, उन्हे कोई भी बिगाड नहीं सकता। यह इसी इन्द्रका सामर्थ्य है कि सूर्य प्रतिदिन दर्शनीय होकर समय पर उदय होता है और समय पर अस्त होता है। उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रने इन भुवनोंमें सभी बडे बडे स्थानोंका निर्माण किया। यह सब विश्व उसीका बनाया हुआ है ॥ २ ॥

३१४ अद्या चिन्नू चित् तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र ।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदु-स्त्वया दृळ्हानि सुक्रतो रजांसि ॥ ३ ॥

३१५ सत्यमित् तन्न त्वावाँ अन्यो अस्ती-न्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णो ऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥ ४ ॥

३१६ त्वमपो वि दुरो विषूची-रिन्द्र दृळ्हमरुजः पर्वतस्य ।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन् द्यामुषासम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [३१४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अद्या चित् नु चित्) आज भी और पहिले भी (नदीनां तत् अपः) नदियोंके जलप्रवाहोंको (आभ्यः गातुं अरदः यत्) मार्ग खोदकर बना दिया। (अद्मसदः न) भोजनके लिये बैठनेवाले पुरुषोंकी तरह (पर्वताः निषेदुः) पर्वतोंको सुस्थिर किया। हे (सुक्रतो) शोभनकर्मकर्त्ता ! (त्वया रजांसि दृळ्हानि) तूने सब लोक सुदृढ किये हैं ॥ ३ ॥

[३१५] हे (इन्द्र इन्द्र ! (तत् सत्यं इत्) वह सब सत्य ही है कि (त्वावान् अन्यः देवः न अस्ति) तेरे समान दूसरा कोई देव नहीं है। (मर्त्यः न) और कोई मनुष्य भी नहीं है। (ज्यायान्) तुमसे अधिक भी कोई नहीं है। तूने (अर्णः परिशयानं अहिं अहन्) पानीपर सोनेवाले शत्रुका नाश किया। और (समुद्रं अच्छ अपः अवासृजः) समुद्रकी ओर पानीके प्रवाहोंको प्रवाहित किया ॥ ४ ॥

१ त्वावान् अन्यः देवः न अस्ति, न मर्त्यः— ईश्वरके समान अथवा उससे अधिक न कोई देव है, और न कोई मनुष्य है। तत् सत्यं— यह नितान्त सत्य है।

[३१६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं अपः दुरः विषूचीः वि) तूने जलोंके द्वारोंको खोलकर चारों ओर जलप्रवाहोंको बहा दिया (पर्वतस्य दृळ्हं अरुजः) पर्वतके दृढ भागको तोड दिया (जगतः चर्षणीनां) संसारकी प्रजाओंका (सूर्यं द्यां उषसं साकं जनयन्) सूर्यको द्युलोकको और उषाको एक साथ प्रकाशित किया और उसका (राजा अभवः) राजा हुआ ॥ ५ ॥

१ जगतः चर्षणीनां सूर्यं द्यां उषसं साकं जनयन् राजा अभवः— सब जगत्के मनुष्योंके हितार्थ द्यु, उषा और सूर्यको उत्पन्न किया और तू इस सबका राजा हुआ है।

भावार्थ— इस इन्द्रने आज भी और पहले भी नदियोंके जल प्रवाहोंको बहनेके लिए खोदकर मार्ग तैय्यार किया। नदीका मार्ग उत्तम रीतिसे तैय्यार किया। पर्वतोंको स्थिर किया और सभी लोकोंको दृढ किया ॥ ३ ॥

हे इन्द्र! यह सत्य है कि तेरे समान दूसरा देव कोई नहीं है और न कोई मनुष्य ही है। जब तेरे समान ही कोई नहीं हैं, तब तुझसे अधिक कोई कैसे हो सकता है। तूने ही पानीको रोककर सोनेवाले अहि नामक शत्रुका नाश किया। और जलोंके प्रवाहोंको बहनेके लिये मुक्त किया ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तूने जलप्रवाहोंके द्वारोंको खोलकर चारों ओर उन्हें बहाया। पर्वतके दृढ भागको तोडा। संसारकी प्रजाओंके हितके लिए सूर्य, द्यु और उषाको प्रकाशित किया, तथा उनका राजा या स्वामी तू बना ॥ ५ ॥

×

[३१]

[ऋषिः- सुहोत्रो भारद्वाजः। देवता- इन्द्रः। छन्दः- त्रिष्टुप्, ४ शक्करी।]

३१७ अभूरेको रयिपते रयीणा-मा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः।
वि तोके अप्सु तनये च सूरे ऽवोचन्त चर्षणयो विवाचः ॥ १ ॥

३१८ त्वद् भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वा ऽच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृळ्हं भयते अज्मन्ना ते ॥ २ ॥

३१९ त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्रा-ऽशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ॥ ३ ॥

---

[३१]

अर्थ— [३१७] हे (रयिपते) धनके स्वामी (इन्द्र) इन्द्र! (रयीणां एकः अभूः) तू सब धनोंका एकही स्वामी है। (हस्तयोः कृष्टीः आ अधिथाः) तू अपने हाथोंमें सब प्रजाओंको रखता है। (विवाचः चर्षणयः अप्सु सूरे तोके तनये) विविध भाषा बोलनेवाले मनुष्य जलप्रवाहों तथा ज्ञानी पुत्रपौत्रके उत्कर्षके लिये (वि अवोचन्त) विशेष प्रकारसे चर्चा करते हैं ॥ १ ॥

१ त्वं रयीणां एकः अभूः— तू धनोंका एक ही स्वामी है।
२ हस्तयोः कृष्टीः आ अधिथाः— अपने हाथोंमें सब प्रजाजनोंको रखा है।

[३१८] हे इन्द्र! (त्वत् भिया) तेरे भयसे (अच्युता चित्) न हिलनेवाले (विश्वा पार्थिवानि रजांसि) सब पृथिवी स्थानीय और अन्तरिक्ष स्थानीय पदार्थ (च्यावयन्ते) कांपने लगते हैं। (ते आ-अज्मन्) तेरे आगमन होनेसे (द्यावा-क्षामा पर्वतासः वनानि) द्युलोक, पृथिवी, पर्वत और वन तथा (विश्वं दृळ्हं) सब स्थिर वस्तुमात्र (भयते) भयभीत होता हैं ॥ २ ॥

[३१९] हे (इन्द्र) इन्द्र! (त्वं कुत्सेन अशुषं शुष्णं) तूने कुत्सके द्वारा शोषण न होनेवाले प्रबल शुष्ण असुरसे (अभि युध्य) युद्ध किया। (गविष्टौ कुयवं दश) गौओंके लिये किये संग्राममें कुयव नामक असुरका नाश किया। (अध प्रपित्वे) और युद्धमें तूने (सूर्यस्य चक्रं मुषायः) सूर्यके रथचक्रका हरण किया और (रपांसि अविवेः) दुष्टोंका वध किया ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र! तू सब तरहके धनोंका अकेला ही स्वामी है, तेरे ही अधिकारमें सब प्रजायें रहती हैं। अनेक तरहकी भाषायें बोलनेवाले मनुष्य अपने उत्तम कर्मों तथा अपनी सन्तानोंकी उन्नतिके बारेमें अनेक तरहके विचार करते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र! तेरे भयसे न हिलनेवाले सब पृथिवी स्थानीय और अन्तरिक्ष स्थानीय पदार्थ भी कांपने लगते हैं। इस इन्द्रके आगमन होते ही द्युलोक, पृथिवीलोक, पर्वत और वन आदि सभी स्थिर पदार्थ भयभीत होकर कांपने लगते हैं ॥ २ ॥

जिस शोषण करनेवाले शुष्ण नामक असुरका मुकाबला कोई भी आर्य राजा करनेमें समर्थ नहीं हुआ, उस वीर तथा अत्यधिक बलशाली शुष्णसे हे इन्द्र! तूने युद्ध किया। गौओंके लिए किए गए संग्राममें तूने कुयव अर्थात् धान्यको नष्ट करनेवाले शत्रुको मारा और युद्धमें अन्य भी अनेक शत्रुओंका वध किया ॥ ३ ॥

३२० त्वं श॒तान्यव॒ शम्ब॑रस्य॒ पुरो॑ जघन्थाप्र॒तीनि॒ दस्योः॑ ।
अशि॑क्षो॒ यत्र॒ शच्या॑ शचीवो॒ दिवो॑दासाय सुन्व॒ते सु॑तक्रे॒ भ॒रद्वा॑जाय गृण॒ते वसू॑नि ॥४॥

३२१ स स॑त्यसत्वन् मह॒ते रणा॑य॒ रथ॒मा ति॑ष्ठ तुविनृम्ण भी॒मम् ।
या॒हि प्र॑पथि॒न्नव॒सोप॑ म॒द्रिक् प्र च॑ श्रुत श्रावय चर्ष॒णिभ्यः॑ ॥ ५ ॥

[३२]

[ऋषिः- सुहोत्रो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३२२ अपू॑र्व्या पुरु॒तमा॑न्यस्मै म॒हे वी॒राय॑ त॒वसे॑ तु॒राय॑ ।
वि॒र॒प्शिने॑ व॒ज्रिणे॒ शंत॑मानि॒ वचां॑स्या॒सा स्थवि॑राय तक्षम् ॥ १ ॥

३२३ स मा॒तरा॒ सूर्ये॑णा क॒वीना॒मवा॑सयद्रु॒जदद्रिं॑ गृणा॒नः ।
स्वा॒धीभि॒ॠक्व॑भिर्वावशा॒न उदु॒स्रिया॑णामसृजन्नि॒दान॑म् ॥ २ ॥

अर्थ—[३२०] हे (शचीवः) बुद्धिमान् (सुतक्रे सोम प्रिय इन्द्र ! (यत्र सुन्वते दिवोदासाय) जिस समय सोमयज्ञ करनेवाले दिवोदासको (शच्या अशिक्षः) प्रज्ञाके साथ धन दिया और (गृणते भरद्वाजाय वसूनि) स्तुति करनेवाले भरद्वाजको भी धन दिया । तब (त्वं) तूने (दस्योः शंबरस्य) शंबर असुरकी (शतानि अप्रतीनिपुरः) सौ अभेद्य नगरियोंका (अव जघन्थ) नाश किया ॥ ४ ॥

[३२१] हे (सत्यसत्वन्) सत्य बलवान् और (तुविनृम्ण) बहुत धनवान् इन्द्र ! (सः महते रणाय) तू बडे संग्रामके लिये (भीमं रथं आ तिष्ठ) भयंकर रथ पर चढ । हे (प्रपथिन्) प्रकृष्ट मार्गसे जानेवाले इन्द्र ! तू (अवसा मद्रिक् उप याहि) अपने रक्षण सामर्थ्यके साथ मेरे समीप आ । हे (श्रुत) ज्ञानवान् इन्द्र ! (चर्षणिभ्यः प्र श्रावय च) प्रजाओंको उत्तम बातें सुना ॥ ५ ॥

[३२]

[३२२] (अपूर्व्या पुरुतमानि शंतमानि वचांसि) अपूर्व बहुत अतिशय सुखकारक स्तुतिरूप वाणी (आसा) मुखसे (महे वीराय तवसे) महान् वीर, बलवान्, (तुराय विरप्शिने) शीघ्रगामी, विशेष प्रकारसे स्तवनीय, (वज्रिणे स्थविराय) वज्रधारी, प्रवृद्ध (अस्मै तक्षं) इस इन्द्रके लिये स्तोत्रोंको पढता हूँ ॥ १ ॥

[३२३] (सः मातरा कवीनां) वह इन्द्र द्यावापृथिवीको बुद्धिमान् ज्ञानियोंके लिये (अद्रिं रुजत्) पर्वतका मेघका-नाश करता हुआ (सूर्येण अवासयत्) सूर्यसे प्रकाशित करता है । (गृणानः स्वाधीभिः ऋक्वभिः वावशानः) स्तूयमान् शोभन धारणाशक्तिसे स्तोताओं द्वारा वारंवार प्रशंसित होता हुआ (उस्रियाणां निदानं उत् असृजत्) गौओंको बन्धनमुक्त किया ॥ २ ॥

भावार्थ— हे बुद्धिमान् सोमप्रिय इन्द्र ! जिस समय तूने सोमयज्ञ करनेवाले दिवोदासको प्रज्ञाके साथ धन दिया और स्तुति करनेवाले भरद्वाजको भी धन दिया । तूने शंबर असुरकी अनेक नगरियोंका नाश किया ॥ ४ ॥

कभी नष्ट न होनेवाले बलसे युक्त इन्द्र ! तू शत्रुओंके साथ भयंकर युद्ध करनेके लिए इस सुदृढ रथ पर आकर बैठ। तू अपने रक्षण सामर्थ्यसे युक्त होकर मेरे समीप आ और हम सभी प्रजाओंको सदुपदेश देकर उत्तम मार्गमें प्रेरित कर ॥ ५ ॥

यह इन्द्र अत्यन्त सुखकारी, महान् वीर, बलवान्, शीघ्रगामी वज्रको धारण करनेवाला और प्रवृद्ध है । उस इन्द्रके लिए मैं स्तुतिपाठ करता हूँ ॥ १ ॥

वह इन्द्र मेघोंका नाश करके द्यु और पृथिवीको ज्ञानियोंके हितके लिए सूर्यके द्वारा प्रकाशित करता है । वह स्तुत होता हुआ सूर्यकी किरणोंको मेघोंके बंधनसे मुक्त करता है ॥ २ ॥

३२४ स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन् मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय ।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन् दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन् ॥ ३ ॥
३२५ स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीना मा गिर्वणः सुविताय प्र याहि ॥ ४ ॥
३२६ स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यै रप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट् ।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम् ॥ ५ ॥

[३२]

[ऋषिः- शुनहोत्रो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३२७ य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन् त्स्वभिष्टिर्दास्वान् ।
सौवश्व्यं यो वनवत् स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान् ॥ १ ॥

अर्थ— [३२४] (पुरुकृत्वा सः) बहुत कर्मकर्ता इन्द्रने (वह्निभिः ऋक्वभिः) हवन करनेवाले, स्तुति करनेवाले (शश्वत् मितज्ञुभिः) निरन्तर घुटने टेककर प्रार्थना करनेवाले ऋषियोंके साथ मिलकर (गोषु जिगाय) गौओंके लिये असुरोंको पराजित किया । (पुरोहा सखिभिः कविभिः) पुरियोंका नाश करनेवाला मित्र बुद्धिमानोंसे (सखीयन् कवि सन्) मित्रता करता हुआ और बुद्धिमान् होकर शत्रुके (दृळ्हाः पुरः रुरोज) दृढ मजबूत नगरियोंका नाश किया करता है ॥ ३ ॥

[३२५] हे (वृषभ) बलवान् (गिर्वणः) स्तुतिसे सेवनीय इन्द्र ! (सः) तू (महः वाजेभिः च महद्भिः शुष्मैः) महान् अन्नोंसे और अतिशय बलोंसे (क्षितीनां जरितारं) प्रजाओंके बीच स्तोताके (अच्छ नव्याभिः पुरुवीराभिः) सन्मुख अत्यन्त नव्य और वीरता बढानेवालोंके साथ (सुविताय) सुख प्राप्तिके लिये (प्र याहि) आ ॥ ४ ॥

[३२६] (तुराषाट् सः इन्द्रः) हिंसकोंका पराभव करनेवाला यह इन्द्र (सर्गेण शवसा) सर्वदा उद्युक्त बलसे (अत्यैः तक्तः) सततगामी तेजस्वी अश्वोंसे युक्त हुआ (दक्षिणतः अपः इत्था सृजानाः) दक्षिण दिशामें पानीको इस प्रकार छोडनेवाला (अर्थं अप्रमृष्यं) गन्तव्य क्षोभरहित समुद्रको (दिवेदिवे अनपावृत् विविषुः) प्रतिदिन पुनः आगमन न हो उस प्रकार व्याप्त करता है ॥ ५ ॥

[३२]

[३२७] हे (वृषन्) बलवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (यः ओजिष्ठः मदः स्वभिष्टिः दास्वान्) जो पुत्र अतिशय बलवान्, स्तुति करनेवाला, सुन्दर यज्ञ करनेवाला और हव्यान्न देनेवाला हो ऐसा (तं नः सुदाः) वह पुत्र हमें अच्छी प्रकार देओ । (यः स्वश्वः समत्सु) जो घोडेपर सवार होकर संग्राममें (सौवश्व्यं वनवत्) शोभन अश्वोंके शत्रु समूहका नाश करे । और (वृत्रा अमित्रान् सासहत्) वृत्र शत्रुओंका अतिशय पराभव करे ॥ १ ॥

१ यः ओजिष्ठः मदः दास्वान्, तं नः सुदाः— जो बलवान्, आनंद बढानेवाला, उत्तम यज्ञ करनेवाला दाता पुत्र हो वैसा हमें पुत्र दे ।

भावार्थ— इस उत्तम कर्मोंको करनेवाले इन्द्रने हवन करनेवाले तथा स्तुति करनेवाले ऋषियोंके साथ मिलकर गायोंको प्राप्त करनेके लिए असुरोंको पराजित किया । शत्रुओंकी नगरियोंका नाश करनेवाला इन्द्र अपने बुद्धिमान् मित्रोंके साथ मिलकर शत्रुओंके सुदृढ नगरोंका नाश करता है ॥ ३ ॥

हे बलवान् इन्द्र ! तू अन्नों और बलोंसे युक्त होकर अपने नवीन मित्र और वीरता बढानेवाले मित्रोंके साथ सुख प्राप्तिके लिए आ ॥ ४ ॥

हिंसकोंका पराभव करनेवाला इन्द्र अपने बल और शीघ्रगामी अश्वोंसे युक्त होकर जलप्रवाहोंको समुद्रकी तरफ बहनेके लिए प्रेरित करता है ॥ ५ ॥

३२८ त्वां हीऽइन्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ।
त्वं विप्रेभिर्वि पणीरँशाय स्त्वोत इत् सनिता वाजमर्वा ॥ २ ॥
३२९ त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान् दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कै रा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥ ३ ॥
३३० स त्वं न इन्द्राकवाभिरूती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः ।
स्वर्षाता यद्ध्वयामसि त्वा युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर ॥ ४ ॥

अर्थ— [३२८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वां हि विवाचः चर्षणयः) तुझे ही अनेक प्रकारकी स्तुति करनेवाली प्रजायें (शूरसातौ अवसे हवन्ते) युद्धमें रक्षणके लिये बुलाती हैं। (त्वं विप्रेभिः) तूने मेधावी विप्रोंके साथ (पणीन् वि अशायः) राक्षसोंका वध किया। (त्वा ऊतः इत् सनिता वाजं अर्वा) तेरे द्वारा रक्षित ही भक्तिमान् पुरुष अन्न प्राप्त करता है ॥ २ ॥

[३२९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तूने (तान् उभयान् अमित्रान् वधीः) इन दोनों प्रकारके शत्रुओंका नाश किया। (दासा आर्या वृत्राणि च) बलादि असुरोंका और कर्मानुष्ठानकारी किन्तु आवरक ऐसे दोनों प्रकारके शत्रुओंको हे (शूर) शूरवीर ! मारा। (नृणां नृतम पृत्सु) नेताओंमें अतिशय श्रेष्ठ नेता हे इन्द्र ! संग्रामोंमें (वना इव) जिस प्रकार कुठार वृक्षोंको काटकर गिरा देता है उस प्रकार तूने (सुधितेभिः अत्कैः आ दर्षि) अच्छी तरह प्रयुक्त अपने आयुधोंसे शत्रुओंको काटा ॥ ३ ॥

१ त्वं दासा आर्या तान् उभयान् अमित्रान् वृत्राणि च वधीः— तुमने दास और आर्य इन दोनोंमें जो शत्रु थे, उन घातक शत्रुओंका वध किया।

२ नृणां नृतम ! पृत्सु वना इव सुधितेभिः अत्कैः आ दर्षि— हे वीरोंमें श्रेष्ठ वीर ! वनके वृक्षोंको काटते हैं उस तरह युद्धोंमें तीक्ष्ण शस्त्रोंसे तूने शत्रुओंको काटा।

[३३०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सः त्वं अकवाभिः ऊती) उस प्रकार तू प्रशंसनीय रक्षाओंसे (नः वृधे अविता भूः) हमें बढानेके लिये रक्षक हो। (विश्वायुः सखा) सर्वत्रगामी तू हमारा मित्र हो। (नेमधिता पृत्सु) पुरुषोंसे युक्त संग्राममें (युध्यन्तः स्वर्षाता) युद्ध करते हुए अच्छे रक्षणीय धनके लिये हे (शूर) पराक्रमशाली ! (यत् ह्वयामसि) जब हम बुलायें तब हमारा रक्षक हो ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे बलशाली इन्द्र ! तू हमें ऐसा पुत्र दे कि जो बलवान्, देवोंकी स्तुति करनेवाला, सुन्दर यज्ञ करनेवाला और देवोंको हव्यान्न देनेवाला हो। वह घोडे पर सवार होकर संग्राममें शत्रुओंके समूहका नाश करे ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुझे ही अनेक तरहकी स्तुति करनेवाली प्रजायें युद्धमें संरक्षणके लिए बुलाती हैं। तूने मेधावी विप्रोंकी सहायता लेकर राक्षसोंका वध किया। तेरे द्वारा रक्षित हुआ भक्तिमान् पुरुष ही अन्न प्राप्त करता है ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तूने दोनों तरहके शत्रुओंका नाश किया। जो दुष्ट कर्म करते हैं, उनका भी नाश किया और जो जलप्रवाह आदि रोककर प्रजाओंको सताते हैं, उनका भी तूने नाश किया। जिसप्रकार एक कुठार वृक्षोंको काटकर गिराता है, उसी तरह तूने अपने आयुधोंसे शत्रुओंको काटा ॥ ३ ॥

तू अपने प्रशंसनीय रक्षाके साधनोंसे हमें बढानेके लिए हमारा रक्षक हो। सर्वत्र व्यापक तू हमारा मित्र हो। वीर पुरुषोंसे युक्त संग्राममें युद्ध करनेवाले हम अपने ऐश्वर्य आदिकी रक्षाके लिए जब तुझे बुलायें, तब तू हमारी रक्षा करनेके लिए हमारे पास आ ॥ ४ ॥

३३१ नूनं न इन्द्रापराय च स्या भवा मृळीक उत नो अभिष्टौ ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन् दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः ॥ ५ ॥

[३४]

[ऋषिः- शुनहोत्रो भारद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३३२ सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वी र्वि च त्वद् यन्ति विभ्वो मनीषाः ।
पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पृध्र इन्द्रे अध्युक्थार्का ॥ १ ॥

३३३ पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वाँ एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः ।
रथो न महे शवसे युजानो ऽस्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत् ॥ २ ॥

३३४ न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणी रिन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः ।
यदि स्तोतारः शतं यत् सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै ॥ ३ ॥

अर्थ— [३३१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नूनं नः स्याः) आज हमारा ही हो, (च अपराय) और अन्य समयमें भी हमारा ही हो। (उत नः अभिष्टौ मृळीकः भव) और भी हमारे सामने आनेपर तू सुख देनेवाला हो। (इत्था गृणन्तः) इस प्रकार स्तुति करते हुए (गोषतमाः महिनस्य) गौओंकी सेवा करनेवाले होकर महान् तेरे सम्बन्धी (दिवि पार्ये शर्मन् स्याम) द्योतमान दुःख और सुखमें वर्तमान रहें ॥ ५ ॥

[३३२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वे पूर्वीः गिरः सं जग्मुः) तुझे पहिलेसे बहुतसी स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं। (त्वत् विभ्वः मनीषाः वि यन्ति) तेरे पास वैभवयुक्त स्तोताओंकी प्रशंसायें जाती है। (पुरा नूनं च ऋषीणां स्तुतयः) पहले और इस समय भी ऋषियोंकी स्तुतियां (इन्द्रे अधि पस्पृध्रे) इन्द्रमें अधिक स्पर्धा करती हुई जाती हैं। (उक्थ अर्का) उसी प्रकार गान और पूजायें आदि भी उनके ही पास जाते हैं ॥ १ ॥

[३३३] (पुरुहूतः पुरुगूर्तः ऋभ्वा एकः यः) बहुतोंसे बुलाया जानेवाला, बहुतोंसे प्रशंसित, महान्, प्रधानभूत इन्द्र (यज्ञैः पुरुप्रशस्तः अस्ति) यजनीय स्तोत्रों द्वारा बहुत प्रशंसनीय है। (इन्द्रः रथो न) इन्द्र रथकी तरह (महे शवसे युजानः) महान् बलके लिये स्तुतिओंसे युक्त होता हुआ (अस्माभिः अनुमाद्यः भूत्) हमारेसे सदा स्तवनीय है ॥ २ ॥

[३३४] (यं इन्द्रं धीतयः न हिंसन्ति) जिस इन्द्रको यज्ञ आदि कर्म बाधा नहीं देते। (वाणीः न) स्तुतियाँ भी बाधाकारक नहीं होती। किन्तु (वर्धयन्तीः अभि नक्षन्ति) उस इन्द्रको बढाती हुई प्राप्त होती हैं। (गिर्वणसं शतं स्तोस्तारः यदि गृणन्ति) स्तुतिसे सेवनीय उस इन्द्रकी सैकडों स्तोतालोग स्तुति करते हैं। (यत् सहस्रं तत् अस्मै शं) यदि हजारों स्तुति करते हैं तो वे स्तोत्र इन्द्रको सुखकर होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू आज भी हमारी रक्षा करनेवाला हो तथा अन्य दिनोंमें भी तू हमारी रक्षा करनेवाला हो। जब भी तू हमारे पास रहे, तभी तू हमें सुख देनेवाला हो। गौओंकी सेवा करनेवाले हम इस प्रकार तेरी स्तुति करते हुए सुख और दुःखमें सदा तेरे ही पास रहें ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुझे पहलेसे ही बहुत सारी स्तुतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं। जो ऐश्वर्यशाली स्तोता हैं, वे भी तेरी प्रशंसा करते हैं। प्राचीन और नूतन ऋषियोंकी स्तुतियाँ मानो स्पर्धा सी करती हैं कि देखें कौन इन्द्रके पास जल्दी पहुंचती है ॥ १ ॥

बहुतोंसे बुलाये जानेवाला, बहुतोंसे प्रशंसित, महान् और सब देवोंमें प्रधान इन्द्र यजनीय स्तोत्रोंके द्वारा बहुत प्रशंसनीय होता है। इन्द्र रथकी तरह महान् बलकी प्राप्तिके लिए हमारे द्वारा सदा स्तुत होता है ॥ २ ॥

इस इन्द्रके कर्ममें कोई बाधा नहीं डाल सकता तथा स्तुतियां भी बाधा नहीं डाल सकतीं, इसके विपरीत स्तुतियां और यज्ञादि कर्म इन्द्रको बढाती हैं। इस इन्द्रकी सैंकडों लोग स्तुति करते हैं, वे सभी स्तुतियां इस इन्द्रको सुख देते हैं ॥ ३ ॥

३३५ अस्मा एतद् दिव्य१र्चेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः
जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः । ॥ ४ ॥
३३६ अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि ।
असद् यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ॥ ५ ॥

[३५]

[ऋषिः- नरो भारद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३३७ कदा भुवन् रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः ।
कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः ॥ १ ॥
३३८ कर्हि स्वित् तदिन्द्र यन्नृभिर्नॄन् वीरैर्वीरान् नीळयासे जयाजीन् ।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद् धेह्यस्मे ॥ २ ॥

अर्थ— [३३५] (एतत् दिवि) इस यज्ञके दिन (अर्चा इव मासा मिमिक्षः) अर्चनाके साथ रहनेवाला मिश्रित (सोमः अस्मे इन्द्रे न्यायामि) सोमरस इस इन्द्रके लिये प्रस्तुत हुआ है । (धन्वन् अभि संयत् आपः जनं) मरुदेशमें जिस प्रकार अभिगमन करनेवाला पानी मनुष्योंको आनंदित करता है, उस प्रकार (यज्ञैः सत्रा हवनानि वावृधुः) यज्ञमें किये हवन भी उसको आनंदित करें ॥ ४ ॥

[३३६] (अस्मै महि एतत् आंगूष) इन्द्रके लिये महान् स्तोत्र (मतिभिः अवाचि) स्तोताओंने कहा । (विश्वायुः इन्द्रः महति वृत्रतूर्ये) सर्वत्रगामी वह इन्द्र महान् युद्धमें (यथा अविता वृधः च असत्) जिस प्रकार रक्षक और हमको वर्धित करनेवाला हो उस प्रकार (अस्मा इन्द्राय स्तोत्रं) इस इन्द्रके लिये स्तोत्र पढा गया है ॥ ५ ॥

[३५]

[३३७] हे इन्द्र ! (ब्रह्म रथक्षयाणि कदा भुवन्) हमारे स्तोत्र रथनिवासके हेतु कब होवें । (कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः) कब स्तुति करनेवाले मुझे सैकडों पुरुषोंका पोषक पुत्र या धन देंगे । (कदा अस्य स्तोमं राया वासयः) और कब मेरे स्तोताके स्तोत्रको धनसे युक्त करेंगे, (धियः वाजरत्नाः कदा करसि) हमारे बुद्धियुक्त कर्मोंको अन्नोंसे रमणीय कब करेंगे ॥ १ ॥

(३३८) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (कर्हि स्वित् तत्) वह सब कब होगा (नृभिः नॄन्) हमारे वीर पुरुषोंसे शत्रुके वीर पुरुषोंको (वीरैः वीरान् हमारे वीर पुत्रोंसे शत्रुपुत्रोंको (यत् नीळयासे) कब संयुक्त करोगे । और (आजीन् जय) इन संग्रामोंमें हमारी जीत हो । (गोषु त्रिधातु गाः अधि जयासि) गमनशील शत्रुओंमेंसे दूध, दहि और घी वाली गौओंको जीत लो । हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (स्वर्वत् द्युम्नं अस्मे धेहि) तेजस्वी धन हमें दे दो ॥ २ ॥

भावार्थ— यज्ञोंमें स्तुतिके साथ प्रदान किया जानेवाला सोमरस इस इन्द्रके लिए प्रस्तुत किया जाता है । जिसप्रकार मरुस्थलमें बहनेवाला पानी वहांके मनुष्योंको आनंदित करता है, उसी प्रकार यज्ञोंमें प्रदान किए गए ये सोमरस इस इन्द्रको आनंदित करें ॥ ४ ॥

सर्वत्र जानेवाला वह इन्द्र महान् युद्धमें जिस प्रकार हमारी रक्षा करे तथा हमारा संवर्धन करे, इसलिए हम उसकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तेरी कृपा हम पर कब होगी, ताकि तेरी कृपा प्राप्त करके हम अनेकोंका पोषण करनेवाला धन अथवा पुत्र प्राप्त करें । तेरी स्तुति करनेवाले ऐश्वर्यसे सम्पन्न हों तथा वे बुद्धिपूर्वक कर्मोंको करके रमणीय अन्नसे युक्त हों ॥ ६ ॥

३३९ कर्हि स्वित् तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः ॥ ३ ॥
३४० स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः ।
पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः ॥ ४ ॥
३४१ तमा नूनं वृजनमन्यथा चि-च्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे ।
मा निररं शुक्रदुघस्य धेनो-राङ्गिरसान् ब्रह्मणा विप्र जिन्व ॥ ५ ॥

[३६]

[ऋषिः- नरो भारद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्]

३४२ सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः सत्रा रायोऽध ये पार्थिवासः ।
सत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद् देवेषु धारयथा असुर्यम् ॥ १ ॥

अर्थ— [३३९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (कर्हि स्वित् तत्) वह कब होगा हे (शविष्ठ) अतिशय बलवान् इन्द्र ! (जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः यत्) स्तोताको जो बहुत अन्न दोगे और ज्ञान दोगे वह कब होगा ? (कदा धियः न नियुतः युवासे) कब हमारे कर्मों और स्तुतियोंको अपनेमें संयुक्त करोगे । (कदा गोमघा हवनानि गच्छाः) और कब गौओंके घृतादिका हवन करोगे ॥ ३ ॥

[३४०] हे इन्द्र ! (सः जरित्रे गोमघा अश्वचन्द्राः वाजश्रवसः पृक्षः) तू स्तोताको गोदायक, अश्वोंसे आनन्ददाता, बलोंसे प्रसिद्ध अन्न (भरद्वाजेषु अधि धेहि) अन्नदान करनेवालेको दे । (इषः सुदुघां धेनुं) वे अन्न, सुन्दर दूध देनेवाली गौको हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पीपिहि) परिपुष्ट करें । और (सुरुचः रुरुच्याः) सुन्दर कान्तिवाली हों उस प्रकार कान्तिसे युक्त हों ॥ ४ ॥

[३४१] (नूनं वृजनं अन्यथा चित्) इस समयके हमारे बाधक शत्रुका अन्य प्रकारकी योजनासे ही नाश कर । हे (शक्र) शक्तिमान् इन्द्र ! (शूरः वि दुरः) शौर्यसे युक्त तू शत्रु निहन्ता है । (यत् गृणीषे) जब हम लोग तेरा स्तवन करते हैं, (शुक्रदुघस्य धेनोः मा निररं) तब शुद्ध दूध देनेवाली गौके समान हम तुझसे दूर न हों । हे (विप्र) बुद्धिमान ! (आंगिरसान् ब्रह्मणा जिन्व) अंगिरसोंको अन्नसे प्रसन्न कर ॥ ५ ॥

[३६]

[३४२] हे इन्द्र ! (तव मदासः सत्रा विश्वजन्याः) तेरे आनन्द सचमुच सब मनुष्योंके हितके लियेही होते हैं । (अध पार्थिवासः ये रायः सत्रा) और पृथ्वीपरके सब धनसमूह भी सत्य ही मनुष्योंके हितके लिये होते हैं । (वाजानां सत्रा विभक्ता अभवः) सत्य ही तू अन्नोंका दाता है । (यत् देवेषु असुर्यं धारयथाः) जिससे तू देवोंके बीच बलको धारण करता है ॥ १ ॥

भावार्थ— हे वीर इन्द्र ! जब ऐसा समय आए कि हमें या हमारे वीरोंको अथवा हमारे पुत्रोंको शत्रुओंसे या उनके वीरोंसे या उनके पुत्रोंसे भिडना ही पडे, तो उस समय तेरी कृपासे जीत हमारी ही हो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! वह समय कब आएगा कि जब तू स्तोताको बहुत अन्न देगा और उत्तम ज्ञान देगा । कब तू हमारे कर्मों और स्तुतियोंसे स्वयंको संयुक्त करेगा ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तू स्तोताको गायें, अश्व, बलदायक प्रसिद्ध अन्न प्रदान कर । वे अन्न सुन्दर दूध देनेवाली गौको परिपुष्ट करें तथा वे परिपुष्ट होकर सुन्दर कान्तिवाली हों ॥ ४ ॥

हमारे कार्यमें जो विघ्न डालता है उस शत्रुका तू हर तरहसे नाश कर । हे शक्तिमान् इन्द्र ! शौर्यसे युक्त तू शत्रुको मारनेवाला है । जिस तरह शुद्ध दूधको देनेवाली गाय अपने पालकसे दूर या अलग नहीं रहती, उसी तरह तू शुद्ध ऐश्वर्यको देनेवाला है अतः तू हमसे दूर मत रह ॥ ५ ॥

३४३ अनु प्र येजे जन ओजो अस्य सत्रा दधिरे अनु वीर्याय ।
स्यूमगृभे दुधयेऽर्वते च क्रतुं वृञ्जन्त्यपि वृत्रहत्ये ॥ २ ॥
३४४ तं सध्रीचीरूतयो वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम् ।
समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आ विशन्ति ॥ ३ ॥
३४५ स रायस्खामुप सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः ।
पतिर्बभूथासमो जनाना-मेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥ ४ ॥

अर्थ— [३४३] (अस्य ओजः जनः अनु प्र येजे) इस इन्द्रके सामर्थ्यको मनुष्य हमेशा पूजता है। (वीर्याय सत्रा अनु दधिरे) वीर कर्म करनेके लिये ही मनुष्य वीर आगे करता है। (स्यूमगृभे दुधये) शत्रुओंको पकडकर हिंसा करनेके लिये (अर्वते च क्रतुं वृत्रहत्ये वृञ्जन्ति) शत्रुपर आक्रमण करनेवाले और शत्रुका नाश करनेवालेके लिये मनुष्य शुभ कर्म करते हैं ॥ २ ॥

१ अस्य ओजः जनः अनु प्र येजे— इस वीरके सामर्थ्यका लोग सत्कार करते हैं।
२ वीर्याय सत्रा अनु दधिरे— इस वीरको वीरताके कार्य करनेके लिये आगे रखते हैं।
३ स्यूमगृभे दुधये अर्वते च वृत्रहत्ये क्रतुं वृञ्जन्ति— शत्रुको पकडकर उसका नाश करनेके लिये, घोडेको शत्रुनाशमें लगानेके लिये मनुष्य शुभकर्मोंको करते हैं।

[३४४] (तं ऊतयः सध्रीचीः सश्चुः) उस इन्द्रके साथ संरक्षण शक्तियां रहती हैं। (वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः इन्द्रं) वीर कर्म, बल और रथमें जोडे गये घोडे भी उस इन्द्रके साथ रहते हैं। (समुद्रं न सिन्धवः) जिस तरह समुद्रको नदियां प्राप्त होती हैं उस प्रकार (उक्थ-शुष्माः गिरः उरुव्यचसं आ विशन्ति) बलवाली स्तुतियां विस्तीर्ण व्यापक इन्द्रको प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

१ तं ऊतयः सध्रीचीः सश्चुः— उस वीरके साथ संरक्षक सामर्थ्य रहते हैं।
२ वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः इन्द्रं— वीरताके कर्म, बल तथा रथके घोडे उस वीर इन्द्रके साथ रहते हैं।

[३४५] हे (इन्द्र) इन्द्र! (गृणानः सः त्वं) स्तूयमान तू (पुरुश्चन्द्रस्य वस्वः रायः) बहुतोंको आनन्द देनेवाले, निवासक धनकी (खां उप सृज) धाराको छोड। (असमः जनानां पतिः बभूथ) तू अनुपम सर्वोत्कृष्ट सब प्राणियोंका स्वामी हुआ। (विश्वस्य भुवनस्य एकः राजा) संपूर्ण भुवनोंका तू एक ही अधिपति है ॥ ४ ॥

१ त्वं पुरुश्चन्द्रस्य वस्वः रायः खां उप सृज— तू तेजस्वी धनकी धाराएं हमारे पास आने दो।
२ जनानां असमः पतिः बभूथ— लोगोंका अनुपम स्वामी हो।
३ विश्वस्य भुवनस्य एकः राजा— सब भुवनोंका एक राजा तू ही हो।

भावार्थ — हे इन्द्र ! तेरे आनन्द सब प्राणियोंका हित करनेवाले हैं, अर्थात् जब तू आनन्दमें होता है, तब तू सभी प्राणियोंका हित करता है। तेरे पृथ्वीपरके धन सबको आनन्द देनेवाले हैं। तू ही सब धनोंका दाता है और तू ही सब देवोंमें बलको स्थापित करता है ॥ १ ॥

इस वीर इन्द्रके सामर्थ्यका सभी प्राणी सत्कार करते हैं और इस वीरको वीरताके कार्य करनेके लिए आगे रखते हैं अर्थात् अपना नेता बनाते हैं। उसके साथ ही शत्रुको पकडकर उसका नाश करनेके लिए मनुष्य शुभ कर्म करते हैं ॥ २ ॥

उसवीर इन्द्रके साथ सभी संरक्षक सामर्थ्य रहते हैं। वीरताके कर्म, बल तथा अन्य सैन्य सामग्री उस वीर इन्द्रके साथ रहते हैं। इस कारण जिस तरह नदियां समुद्रकी तरफ प्रवाहित होती हैं, उसी तरह बल देनेवाली स्तुतियां इस व्यापक इन्द्रको प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

+

३४६ स तु श्रुधि श्रुत्या यो दुवोयु- र्द्यौर्न भूमाभि रायो अर्यः।
असो यथा नः शवसा चकानो युगेयुगे वयसा चेकितानः ॥ ५ ॥

[३७]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्]

३४७ अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रे- न्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु ।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वा- नृधीमहि सधमादस्ते अद्य ॥ १ ॥
३४८ प्रो द्रोणे हरयः कर्मोग्मन् पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन् ।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद् द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा ॥ २ ॥
३४९ आसस्राणासः शवसानमच्छे- न्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः ।
अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयु- र्नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् ॥ ३ ॥

अर्थ— [३४६] हे इन्द्र ! (श्रुत्या तु श्रुधि) हमारे प्रशंसनीय स्तोत्रोंको सुन । (यः दुवोयुः अर्यः भूम रायः) जो इन्द्र हमारेसे सेवा करानेकी इच्छावाला शत्रुओंके अतिशय धनको (द्यौः न अभि) सूर्यकी तरह जीते (शवसा चकानः) अपने बलसे युक्त (युगे युगे) समय समयपर (वयसा चेकितानः यथा नः असः) अन्नसे युक्त जिस प्रकार पहिले हमारे लिये था वैसा ही अब भी हो ॥ ५ ॥

[३७]

[३४७] हे (उग्र) बलवान् वीर (इन्द्र) इन्द्र ! (युक्तासः हरयः) रथके साथ जोडे हुए अश्व (ते विश्ववारं रथं अर्वाक् वहन्तु) तेरे सबके द्वारा प्रशंसनीय रथको हमारे समीप ले आवें । (हि स्वर्वान् कीरिः चित् त्वा हवते) क्योंकि आत्मज्ञानी ऋषि तेरी स्तुति करता है और (अद्य ते सधमादः ऋधीमहि) इस समय तेरे साथ आनन्द अनुभवते हुए हम सिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

[३४८] (हरयः नः कर्म प्रो अग्मन्) तेरे हरितवर्णवाले घोडे हमारे यज्ञके पास आते हैं और ये (पुनानासः द्रोणे ऋज्यन्तः अभूवन्) पवित्र सोमरस द्रोणकलशमें रखे जाते हैं । (पूर्व्यः द्यु-क्षः) पुरातन द्युलोकमें रहनेवाला (मदस्य सोमस्य राजा इन्द्रः) आनंदकारक सोमका स्वामी इन्द्र (अस्य पपीयात्) इस सोमका पान करे ॥ २ ॥

[३४९] (आसस्राणासः रथ्यासः अश्वाः ऋज्यन्तः) सर्वत्रगामी, रथमें जोडे हुए घोडे, सुगमतापूर्वक जानेवाले होते हैं (सुचक्रे शवसानं इन्द्रं) वे घोडे, सुन्दर रथमें बैठे हुए बलवान् इन्द्रको (श्रवः अच्छ वहेयुः) यज्ञके समीप ले आवें । (अमृतं वायोः नु नू चित् वि दस्येत्) अमरता देनेवाले सोमको वायुसे कोई खराबी न हो । अर्थात् इसके पहिले ही इन्द्र सोमका पान कर ले ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! प्रशंसित होनेवाला तू बहुतोंको आनन्द देनेवाले तथा सबके जीवनको श्रेष्ठ बनानेवाले धनकी धाराको हमारी तरफ मुक्त कर । तू अनुपम, सर्वोत्कृष्ट और सभी प्राणियोंका स्वामी है । तू ही सम्पूर्ण भुवनोंका स्वामी है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! हमारे प्रशंसनीय स्तोत्रोंको सुन । वह इन्द्र हमारे शत्रुओंके धनोंको जीते । वह हमारे लिए हमेशा ही धन और अन्नसे युक्त रहे ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! आत्मज्ञानी ऋषि तेरी स्तुति कर रहा है अतः, तू अपने प्रशंसनीय घोडे हमारी ओर घुमा, ताकि हम तेरी कृपासे आनन्द प्राप्त करते हुए सिद्धिको प्राप्त करें ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तेरे तेजस्वी घोडे हमारे यज्ञके पास जब आते हैं, तब ये पवित्र सोमरस कलशमें तेरे पीनेके लिए भरे जाते हैं । तब द्युलोकमें रहनेवाला तथा आनन्ददायक सोमरसोंका स्वामी तू इन सोमरसोंका पान कर ॥ २ ॥

सर्वत्र जानेवाले, रथमें जोडे हुए घोडे सभी जगह सुगमतापूर्वक जाते हैं, ऐसे घोडे सुन्दर रथमें बैठे हुए बलवान् इन्द्रको यज्ञके पास ले आवें । अमरता देनेवाले इस सोममें वायु लगनेके कारण सड न जाए, इससे पहले ही इन्द्र इन सोमोंको पी डाले ॥ ३ ॥

३५० वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्तीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः ।
यया वज्रिवः परियास्यंहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन् ॥ ४ ॥
३५१ इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः ।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ऽऽ ता सूरिः पृणति तूतुजानः ॥ ५ ॥

[३८]

[ऋषिः– बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवताः– इन्द्रः । छन्दः– त्रिष्टुप्]

३५२ अपादित उदु नश्चित्रतमो महीं भर्षद् द्युमतीमिन्द्रहूतिम् ।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यामञ्जनस्य रातिं वनते सुदानुः ॥ १ ॥
३५३ दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः ।
एयमेनं देवहूतिर्ववृत्यान्मद्र्य१गिन्द्रमियमृच्यमाना ॥ २ ॥

अर्थ— [३५०] (वरिष्ठः तुविकूर्मितमः इन्द्रः) अत्यन्त श्रेष्ठ त्वरासे अनेक कर्म करनेवाला इन्द्र (मघोनां अस्य दक्षिणां इयर्ति) धनवानोंके बीचमें श्रेष्ठको दक्षिणा देता है । हे (वज्रिवः) वज्रवान् इन्द्र ! (यया अंहः परियासि) जिससे पाप दूर होंगे नाश होंगे । हे (धृष्णो) धर्षक इन्द्र ! (मघा सूरीन् वि दयसे) यह धन ज्ञानियोंको विशेष रूपसे लाभकारी हो ॥ ४ ॥

[३५१] (इन्द्रः) इन्द्र (स्थविरस्य वाजस्य दाता) श्रेष्ठ अन्न तथा बलका देनेवाला है । (इन्द्रः वृद्धमहाः गीर्भि वर्धतां) इन्द्र महान् वृद्ध तेजवाला होता हुआ हमारी स्तुतियोंसे वर्धमान् हो । (सत्वा इन्द्रः वृत्रं हनिष्ठः अस्तु) सत्त्ववान् इन्द्र आवरक शत्रुका नाश करनेवाला हो । (सूरिः तूतुजानः ता आ पृणति) विद्वान् इन्द्र शीघ्रतासे उन धनोंको हमें दे ॥ ५ ॥

[३८]

[३५२] (चित्रतमः न इतः अपात्) अत्यंत आश्चर्यकारक इन्द्र हमारे इस पात्रसे पान करे । (महीं द्युमतीं इन्द्रहूतिं भर्षत्) विशेष तेजस्वी प्रार्थनाको वही इन्द्र श्रवण करे । (दैव्यस्य जनस्य यामन्) दिव्य मनुष्यकी की हुई (पन्यसीं धीतिं रातिं) स्तुत्य बुद्धिको तथा दानको (सुदानुः वनते) उत्तम दाता इन्द्र स्वीकार करे, उसका सेवन करे ॥ १ ॥

[३५३] (अस्य कर्णा) इस प्रभुके कान (दूरात् चित् आ वसतः) दूरदेशसे भी सुनते हैं । (इन्द्रस्य ब्रुवाणः घोषात् तन्यति) इन्द्रकी स्तुति स्तोता उच्च स्वरसे करता है । (देवहूतिः इयं ऋच्यमाना) देवकी यह स्तुति प्रेरणा करती हुई (एनं इन्द्रं) इस इन्द्रको (मद्र्यक् आ ववृत्यात्) हमारे समीप लाती है ॥ २ ॥

१ अस्य कर्णा दूरात् चित् आवसतः— इस प्रभुके कान दूरसे भी सुनते हैं ।
२ इन्द्रस्य ब्रुवाणः घोषात् तन्यति— इन्द्रकी स्तुति ऊंचे स्वरसे की जाती है । प्रभुकी स्तुति उच्च स्वरसे गाना ।

भावार्थ— अत्यन्त श्रेष्ठ और शीघ्रतासे काम करनेवाला इन्द्र धनवानोंको भी धन प्रदान करनेवाला है । जो धन इन्द्र प्रदान करता है, वे पापको दूर करनेवाले तथा पापोंका नाश करनेवाले हैं, इसी कारण यह धन ज्ञानियोंको विशेष रूपसे लाभकारी होता है ॥ ४ ॥

यह इन्द्र श्रेष्ठ अन्न और बलको देनेवाला है, अतः यह इन्द्र महान्, अत्यन्त तेजस्वी और हमारी स्तुतियोंसे बढे । ऐसा यह बलवान् इन्द्र आवरक शत्रुका नाश करनेवाला हो तथा उन शत्रुओंका नाश करके इन्द्र शीघ्र ही उन धनोंको हमें दे ॥ ५ ॥

अत्यन्त आश्चर्यकारक कर्मोंको करनेवाला इन्द्र हमारे इस पात्रसे सोमका पान करे । विशेष तेजस्वी प्रार्थनाको वही इन्द्र श्रवण करे तथा तेजस्वी मनुष्यके द्वारा दी गई स्तुत्य बुद्धिको तथा हमारे द्वारा दिए गए हविके दानको इन्द्र स्वीकार करे ॥ १ ॥

३५४ तं वो॑ धि॒या प॑र॒मया॑ पुरा॒जा॒मजर॒मिन्द्र॑म॒भ्य॑नूष्य॒र्कैः ।
ब्रह्मा॑ च॒ गिरो॑ दधि॒रे सम॑स्मिन् म॒हाँश्च॒ स्तोमो॒ अधि॑ वर्ध॒दिन्द्रे॑ ॥ ३ ॥

३५५ वर्धा॒द् यं य॒ज्ञ उ॒त सोम॒ इन्द्रं॒ वर्धा॒द् ब्रह्म॒ गिर॑ उ॒क्था च॒ मन्म॑ ।
वर्धाहै॑नमु॒षसो॒ याम॑न्न॒क्तोर्वर्धा॒न् मासाः॑ श॒रदो॒ द्याव॒ इन्द्र॑म् ॥ ४ ॥

३५६ ए॒वा ज॑ज्ञा॒नं सह॑से॒ असा॑मि वावृधा॒नं राध॑से च श्रु॒ताय॑ ।
म॒हामु॒ग्रमव॑से विप्र नू॒नमा वि॑वासेम वृत्र॒तूर्ये॑षु ॥ ५ ॥

अर्थ— । ३५४ । हे इन्द्र ! (पुराजां अजरं तं इन्द्रं) पुरातन परंतु जरारहित, उस इन्द्रकी (वः परमया धिया अर्कैः) अत्यन्त उत्कृष्ट बुद्धिसे और अर्चनाओंसे मैं (अभ्यनूषि) उपासना करता हूँ। (अस्मिन् इन्द्रे) इस इन्द्रमें (ब्रह्म गिरः सं दधिरे) श्रेष्ठ ज्ञान और वाणियां रहती हैं। (महान् स्तोमः च अधि वर्धत्) महान् यश भी उसीसे बढता है ॥ ३ ॥

[३५५](यं इन्द्रं यज्ञः वर्धात्) जिस इन्द्रको यज्ञ बढाता है (उत सोमः) और सोम भी बढाता है। (ब्रह्म वर्धात्) ज्ञान भी उसको बढाता है । (गिरः मन्म उक्था च) स्तोत्र और मननीय गान भी बढाते हैं। (एनं उषसः अक्तोः यामन् वर्ध) इस इन्द्रको उषा, रात्रि और प्रहर बढाते हैं। (मासाः शरदः द्यावः इन्द्रं वर्धान्) मास, संवत्सर और दिन भी इन्द्रको बढाते हैं ॥ ४ ॥

१ यज्ञः इन्द्रं वर्धात्— यज्ञ प्रभुकी महिमाको बढाते हैं ।
२ ब्रह्म इन्द्रं वर्धात्— ज्ञान प्रभुकी महिमाको बढाता है ।

[३५६] हे (विप्र) बुद्धिमान् (एव जज्ञानं सहसे) इस प्रकार ज्ञात शत्रुओंको पराजित करनेके लिये (असामि वावृधानं महां उग्रं) बहुत बढे हुए महान् बलका (अद्य वृत्रतूर्येषु) आज युद्धोंमें (श्रुताय राधसे च अवसे) कीर्ति, धन और रक्षणके लिये (आ विवासेम) हम आश्रय करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह प्रभु सर्वव्यापक है, इसलिए इसके कान सर्वत्र फैले हुए हैं, इसलिए वह दूरदेशमें की हुई बातें भी समझ जाता है, जब मनुष्य जो स्तुति करते हैं, उन स्तुतियोंसे आकर्षित होकर इन्द्र उन मनुष्योंके समीप जाता है ॥ २ ॥

वह इन्द्र अत्यन्त प्राचीन होते हुए भी जरारहित है, वह कभी भी बूढा नहीं होता। उसकी अत्यन्त उत्कृष्ट बुद्धि तथा अर्चनाओंसे मैं उपासना करता हूँ। इस इन्द्रमें सभी तरहके श्रेष्ठ ज्ञान और स्तुतियां रहती हैं, हर तरहका महान् यश भी उसीसे बढता है ॥ ३ ॥

प्रभुकी स्तुति गानेसे प्रभुकी महिमा बढती है। प्रभुकी स्तुतिसे ज्ञान बढता है, हमारी वाणियां, हमारे मननीय गान भी उसकी महिमाको बढाते हैं। इस प्रभुकी महिमाको प्रहर, रात्री, उषा, दिन, महिने और वर्ष भी बढाते हैं ॥ ४ ॥

ज्ञात शत्रुको पराजित करनेके लिये तथा कीर्ति, सिद्धि, धन और सुरक्षाके लिये अद्वितीय, बढे हुए महान् उग्र प्रचंड सामर्थ्यका हम आश्रय करते हैं ॥ ५ ॥

[३९]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३५७ मन्द्रस्य॑ क॒वेर्दि॒व्यस्य॒ वह्ने॒र्विप्र॑मन्मनो वच॒नस्य॒ मध्वः॑ ।
अपा॑ न॒स्तस्य॑ सच॒नस्य॑ दे॒वेषो॑ युवस्व गृण॒ते गोअ॑ग्राः ॥ १ ॥
३५८ अ॒यमु॑शा॒नः पर्यद्रि॑मु॒स्रा ऋ॒तधी॑तिभिर्ऋत॒युग्यु॑जा॒नः ।
रु॒जद॑रुग्णं॒ वि व॒लस्य॒ सानुं॑ प॒णीँर्वचो॑भिर॒भि यो॑ध॒दिन्द्रः॑ ॥ २ ॥
३५९ अ॒यं द्यो॑तयद॒द्युतो॒ व्य१॒॑क्तून् दो॒षा वस्तोः॑ श॒रद॒ इन्दु॑रिन्द्र ।
इ॒मं के॒तुम॑दधु॒र्नू चि॒दह्नां॒ शुचि॑जन्मन उ॒षस॑श्चकार ॥ ३ ॥
३६० अ॒यं रो॑चयद॒रुचो॑ रुचा॒नो॒३॒॑ऽयं वा॑सय॒द्व्यृ१॒॑तेन॑ पू॒र्वीः ।
अ॒यमी॑यत ऋत॒युग्भि॒रश्वैः॑ स्व॒र्विदा॒ नाभि॑ना चर्षणि॒प्राः ॥ ४ ॥

[३९]

अर्थ- [३५७] (मन्द्रस्य कवेः दिव्यस्य) आनंद देनेवाले, दिव्य ज्ञान बढानेवाले (वह्नेः विप्रमन्मनः वचनस्य) संचालक, बुद्धि बढानेवाले प्रशंसनीय (तस्य सचनस्य) उस सेवनीय (नः मध्वः अपाः) हमारे मधुररसको पिओ। हे (देव) कान्तिमान् ! (गृणते गोअग्राः इषः युवस्व) स्तुति करनेवालेको गोरसादि अन्नोंसे युक्त करो ॥ १ ॥

[३५८] (अयं अद्रिं परि) इसने पर्वतके ऊपर रहे (उस्राः उशानः ऋतधीतिभिः युजानः) गौओंकी रक्षा करनेकी इच्छासे सत्य धारणाशक्तियोंसे युक्त होकर (ऋतयुक्) सरलतासे युक्त होकर (वलस्य अरुग्णं सानुं वि रुजत्) वलासुरके तोडनेमें अशक्य उच्च पर्वतको भी तोडा। और (पणीन् वचोभिः इन्द्रः अभि योधत्) पणीयोंसे वचनोंसे युद्ध करके इन्द्रने उनको पराजित किया ॥ २ ॥

[३५९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अयं इन्दुः) इस सोमने (अद्युतः अक्तून् दोषावस्तोः शरदः) अन्धेरी रात्री, दिन और वर्षोंको (वि द्योतयत्) प्रकाशित किया। (नू चित् इमं अह्नां केतुं अदधुः) और सचमुच इसको दिवसोंका ध्वज जैसा प्रज्ञापक बनाया था (उषसः शुचिजन्मनः चकार) उषःकालोंको अपने तेजसे शुद्ध तेजस्वी बनाया ॥ ३ ॥

[३६०] (अयं रुचानः अरुचः रोचयत्) यह सूर्य रूपसे दीप्तिमान् होकर अप्रकाशित लोकोंको (रोचयत्) प्रकाशित करता है। (पूर्वीः अयं ऋतेन वि वासयत्) बहुतसे उषःकालोंको इसने अपने तेजसे प्रकाशित किया। (ऋतयुग्भिः अश्वैः) इशारेसे नियोजित अश्वोंद्वारा चलाये जानेवाले (नाभिना स्वर्विदा) सुन्दर नाभीवाले तेजस्वी रथसे (चर्षणिप्राः अयं ईयते) प्रजाओंके मनोरथोंको पूर्ण करता हुआ यह वीर जाता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम जो यह सोमरस देते हैं, वह आनन्द देनेवाला, दिव्य ज्ञान बढानेवाला, बुद्धि बढानेवाला और मधुर है। अतः हे तेजस्वी इन्द्र ! तुझे हम जो सोमरस देते हैं, अतः तू हमें गौ दुग्ध आदिसे युक्त कर ॥ १ ॥

यह वीर पर्वतपर रही गौओंको सुरक्षित करनेकी इच्छा करता है। पर्वतपर गौवें चरती रहें और वे वहां सुरक्षित रहें, उनको कोई चुराये नहीं, ऐसी इच्छा वीर करता है। सत्य धारणाशक्तियोंसे युक्त, तथा सरलतासे योग्य कार्य करनेवाला वीर, वल असुरके अभेद पर्वतपरके किलेको तोडता है। अपनी शक्ति बढाकर शत्रुके अभेद्य किलोंको तोडना चाहिये।

इस सोमने अप्रकाशित रात, दिन (पक्ष, मास, अयन) और वर्ष प्रकाशित किये। चन्द्रमाने यह कालकी गणना की। चन्द्रमाकी गतिसे दिन, मास, वर्ष आदि हुए। सचमुच यह सोम-चन्द्रमा दिनोंका ध्वज करके धारण किया गया है। उषाओंको इस चन्द्रमाने अपने तेजसे शुद्धतासे जन्मा करके प्रसिद्ध किया है। चन्द्रमासे भी कई उषाएं प्रकाशित होती हैं ॥ ३ ॥

३६१ नू गृ॒णा॒नो गृ॑ण॒ते प्र॑त्न राज॒न्निषः॑ पिन्व वसु॒देया॑य पू॒र्वीः ।
अ॒प ओष॑धीरवि॒षा वना॑नि॒ गा अर्व॑तो॒ नॄनृ॒चसे॑ रिरीहि ॥ ५ ॥

[४०]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाज । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३६२ इन्द्र॒ पिब॒ तुभ्यं॑ सु॒तो मदा॒याऽव॑ स्य॒ हरी॒ वि मु॑चा॒ सखा॑या ।
उ॒त प्र गा॑य ग॒ण आ नि॒षद्याऽथा॑ य॒ज्ञाय॑ गृण॒ते वयो॑ धाः ॥ १ ॥

३६३ अस्य॑ पिब॒ यस्य॑ जज्ञा॒न इ॑न्द्र॒ मदा॑य॒ क्रत्वे॒ अपि॑बो विरप्शिन् ।
तमु॑ ते॒ गावो॒ नर॒ आपो॒ अद्रि॒रिन्दुं॒ सम॑ह्यन् पी॒तये॒ सम॑स्मै ॥ २ ॥

अर्थ— [३६१] हे (प्रत्न) पुरातन ! (राजन्) प्रकाशमान् वीर ! (गृणानः वसुदेयाय गृणते) प्रशंसित होकर तू धन देने योग्य उपासकको (पूर्वीः इषः नु पिन्व) बहुत अन्न दे । (ऋचसे अपः ओषधीः) और उपासकको पानी, अन्न (अविषा वनानि गा अर्वतः) विषरहित वृक्षसमूह, गौ, अश्व आदि (नॄन् रिरीहि) मनुष्योंको दे ॥ ५ ॥

[४०]

[३६२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (तुभ्यं मदाय सुतः) तेरे आनंदके लिए निकाला यह रस है । (सखाया हरी अव स्य) मित्र जैसे दोनों घोडोंको रथसे खोल और (वि मुच) छोड । (उत गणे आ निषद्य) और हमारे समूहमें बैठकर (प्र गाय गानेके लिये प्रेरणा दे । (अथ यज्ञाय गृणते) अनन्तर यज्ञके लिये गानेवालेको (वयः धाः) अन्न दे ॥ १ ॥

[३६३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अस्य पिब) इसको पी । हे (विरप्शिन्) स्तुतिके योग्य ! (जज्ञानः मदाय क्रत्वे) उत्पन्न होते ही तूने हर्षकारक वीरकर्म करनेके लिये (यस्य अपिबः) जिसको पिया था । (तमु इन्दुं) उसी सोमका पान करो । (गावः नरः आपः अद्रिः) गौओंका दूध, मनुष्य, पानी और पत्थर (अस्मै ते पीतये) तेरे पानके लिये सोमरस बनानेको ही ये सब (समह्यन्) लाये गये हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— यह वीर स्वयं प्रकाशित होकर अप्रकाशितोंको प्रकाशित करता है । इसने अपने सीधे प्रकाशसे पूर्व समयकी उषाओंको प्रकाशित किया । सूर्योदयके पूर्व अनेक उषायें प्रकाशित हुई वे इसीके प्रकाशसे हुई थीं इशारेसे जोते जानेवाले घोडोंसे जोते हुए तेजस्वी सुन्दर नाभीवाले रथसे प्रजाजनोंका पालन-पोषण करनेवाला यह वीर प्रगति करता है । वीर प्रजाजनोंका पालन-पोषण करे और सबकी स्थिति स्वयं भ्रमण करके निरीक्षण करे । जो अज्ञानमें हैं उनको ज्ञान देकर प्रकाशमें ले आवे ॥ ४ ॥

हे पुरातन राजन् ! स्तुत्य बनकर तू धन देने योग्य उपासकको उत्तम अन्न दे । उपासकको जल, अन्न, निर्विष फलवाले वृक्ष, गौवें, घोडे और बल, बच्चे अथवा अनुयायी मनुष्य दे । उपासना करनेवाला इनको प्राप्त करके सुखसे रहे ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तेरे आनन्दके लिए यह सोमरस निकाला गया है । तेरे साथ मित्रकी तरह आचरण करनेवाले अपने इन दोनों घोडोंको अपने रथसे खोल और उन्हें स्वतंत्र छोड दे । हमें ऐसी प्रेरणा दे कि हम समूहमें बैठकर तेरा गायन करें । तदनन्तर यज्ञके लिए गानेवालेको अन्न प्रदान कर ॥ १ ॥

उत्पन्न होते ही आनंदके लिये वीर कर्म करनेके लिये तुमने यह सोमरस पीया था । उस सोमको तैयार करनेके लिये गौओंने दूध दिया है, ऋत्विज रूपी मनुष्योंने कूटा है, जल उसमें मिलाया है और पहाडपरके पत्थरोंसे सोम कूटा गया है । इनकी सहायतासे यह सोमरस तैयार हुआ है ॥ २ ॥

३६४ समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः ।
त्वायता मनसा जोहवीमी-न्द्रा याहि सुविताय महे नः ॥ ३ ॥
३६५ आ याहि शश्वदुशता ययाथे-न्द्र महा मनसा सोमपेयम् ।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नो ऽथा ते यज्ञस्तन्वे३ वयो धात् ॥ ४ ॥
३६६ यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृध-ग्यद् वा स्वे सदने यत्र वासि ।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान् त्सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ॥ ५ ॥

[४१]

[ऋषिः— ५ बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता— इन्द्रः । छन्दः— त्रिष्टुप्]

३६७ अहेळमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्दवः सुतासः ।
गावो न वज्रिन् त्स्वमोको अच्छे-न्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम् ॥ १ ॥

अर्थ—[३६४] (अग्नौ समिद्धे सोमे सुते) अग्नि प्रदीप्त होने और सोमका रस निकालनेपर हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वा वहिष्ठाः हरयः आ वहन्तु) तुझे रथमें जुडे हुए घोडे यज्ञकी ओर ले आवें (त्वायता मनसा जोहवीमि) तेरी ओर मन लगानेवाले हम मनसे तुझे वारंवार बुलाते हैं । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः महे सुविताय आ याहि) हमारे विशेष कल्याणके लिये तू यहां आ ॥ ३ ॥

[३६५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (शश्वत् ययाथ) बारबार तू यज्ञमें जाता है इसलिये (उशता महा मनसा) इच्छा करता हुआ प्रबल मनसे (सोमपेयं आ याहि) सोम पानके स्थानपर आ जा । और (इमा नः ब्रह्माणि) हमारे इन स्तोत्रोंको (उप शृणवः) पाससे सुन । (अथ यज्ञः) उसके बाद यज्ञका कर्ता (ते तन्वे वयः धात्) तेरे शरीरके लिए सोमरस रूप अन्न देगा ॥ ४ ॥

[३६६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पार्ये दिवि यत्) दूर देश द्युलोकमें यदि तू रहता है (यद्वा स्वे सदने यत्र असि) अथवा यदि अपने घरमें अथवा जहाँ कहाँ भी रहता है (अतः) वहाँसे आकर हे (गिर्वणः) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (नियुत्वान् मरुद्भिः सजोषाः) अश्वोंके स्वामी और मरुतोंके साथ आनंदसे रहनेवाला तू (नः अवसे यज्ञं पाहि) हमारी रक्षाके लिये यज्ञकी रक्षा कर ॥ ५ ॥ [४१]

[३६७] (अहेळमानः यज्ञं उप याहि) क्रोधरहित होकर हमारे यज्ञमें आ (तुभ्यं सुतासः इन्दवः पवन्ते) तेरे लिये ये सोमरस शुद्ध हो रहे हैं । हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! (गावः न स्वं ओकः अच्छ) गौओंके समान वह सोम अपने स्थानमें, कलशमें जाता है, हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यज्ञियानां प्रथमः आ गहि) यजनीय देवोंमें मुख्य तू यहां आ ॥ १ ॥

१ अहेळमानः यज्ञं उप याहि— क्रोधरहित, प्रसन्न चित्तसे यज्ञमें जा । यज्ञमें आनंदप्रसन्न होकर जाना चाहिये । आनन्दप्रसन्न रहना योग्य है ।

भावार्थ— हे इन्द्र ! अग्नि प्रदीप्त होने तथा सोमरस निकालकर तैय्यार करनेके बाद तुझे तेरे रथमें जुडे हुए घोडे यज्ञकी ओर ले आवें । हमारा मन तुझमें ही लगा हुआ है, अतः हम मनसे तुझे ही बुलाते हैं । अतः तू हमारा कल्याण करनेके लिए यहां आ ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तू यज्ञमें बार बार जाता है, इसलिए हमारे पास आनेकी इच्छा करता हुआ तू अपनी प्रबल मनशक्तिसे युक्त होकर हमारे पास आ और हमारे द्वारा दिए गए सोमरसको पी और आकर हमारे इन स्तोत्रोंको पाससे सुन । हमारी स्तुति सुननेके बाद यज्ञका कर्ता तेरे शरीरकी पुष्टिके लिए सोमरसरूप अन्न देगा ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तू चाहे दूर द्युलोकमें रह, अथवा अपने घरमें रह अथवा तू जहां चाहे वहां रह, वहींसे हमारी स्तुति सुनकर हमारे पास आ और हमारी रक्षा करनेके लिए यज्ञकी रक्षा कर ॥ ५ ॥

३६८ या ते॑ काकुत् सुकृ॑ता या वरि॑ष्ठा यया॒ शश्व॒त् पिब॑सि॒ मध्व॑ ऊ॒र्मिम्।
तया॑ पाहि॒ प्र ते॑ अध्व॒र्युर॑स्था॒त् सं ते॒ वज्रो॑ वर्ततामिन्द्र ग॒व्युः ॥ २ ॥
३६९ ए॒ष द्र॒प्सो वृ॑ष॒भो वि॒श्वरू॑प॒ इन्द्रा॑य॒ वृष्णे॒ सम॑कारि॒ सोमः॑।
ए॒तं पि॑ब हरिवः स्थातरुग्र॒ यस्येशि॑षे प्र॒दिवि॒ यस्ते॒ अन्न॑म् ॥ ३ ॥
३७० सु॒तः सोमो॒ असु॑ता॒दिन्द्र॒ वस्या॑न॒यं श्रेया॑ञ्चि॒कितु॑षे॒ रणा॑य।
ए॒तं ति॑ति॒र्व॒ उप॑ याहि य॒ज्ञं तेन॒ विश्वा॒स्तवि॑षी॒रा पृ॑णस्व ॥ ४ ॥

अर्थ— [३६८] (या ते काकुत् सुकृता । जो तेरी जिह्वा है वह अच्छी बनी हुई है, (या वरिष्ठा) जो अत्यन्त श्रेष्ठ है। (यया मध्वः ऊर्मिं) जिससे मधुर रसकी ऊर्मीको तू (शश्वत् पिबसि, तया पाहि) हमेशा पीता है उससे संरक्षण कर। (अध्वर्युः प्र अस्थात्) यज्ञका नेता अध्वर्यु आ रहा है। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (गव्युः ते वज्रः सं वर्तता) गौओंका रक्षण करनेवाला तेरा वज्र शत्रुओंका नाश करे ॥ २ ॥

[३६९] (द्रप्सः वृषभः विश्वरूपः एषः सोमः) द्रवणशील, बलवान् और अनेक रूपोंवाला, यह सोमरस (वृष्णे इन्द्राय) बलशाली इन्द्रके लिये (समकारि) अच्छी प्रकार तैयार किया है, हे (हरिवः) अश्ववान्, (स्थातः) युद्धमें स्थिर रहनेवाले (उग्र) उग्र बलवान् इन्द्र ! (एतं पिब) इसको पी। (यस्य प्रदिवि ईशिषे) जिसका तू बहुत दिनोंसे स्वामी है। (यः ते अन्नं) जो तेरा अन्न ही है ॥ ३ ॥

[३७०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सुतः अयं सोमः) रस निकाला हुआ यह सोम (असुतात् वस्यान्) रस न निकाले हुए सोमसे श्रेष्ठ है (चिकितुषे रणाय श्रेयान्) तुम जैसे विद्वान्‌के लिये यह रस आनन्द देनेवाला और श्रेयस्कर है। हे (तितिर्वः) शत्रु विनाशक वीर ! (एतं यज्ञं उप याहि) इस यज्ञके पास आ ! (तेन विश्वाः तविषीः आ पृणस्व) उससे संपूर्ण प्रकारके बलोंको पूर्ण रीतिसे उन्नत कर ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू क्रोधरहित होकर हमारे यज्ञमें आ क्योंकि तेरे लिए हम ये सोमरस शुद्ध कर रहे हैं। जिस प्रकार गायें अपने बाडोंमें जाती हैं, उसी तरह यह शुद्ध किया हुआ सोम अपने स्थानरूप कलशमें जाता है। तू यजनीय देवोंमें मुख्य है, अतः तू यहां हमारे पास आ ॥ १ ॥

जो तेरी उत्तम बनी जिह्वा है, जो श्रेष्ठ है, जिससे तू मधुर रसकी लहरें पीता है, उससे हमारा रक्षण कर। जिह्वासे मधुर रस पीया जाय और उत्तम भाषणसे लोगोंका संरक्षण भी किया जावे। जिह्वाके दो कार्य हैं एक पीनेका कार्य है। जिह्वासे पौष्टिक मिष्ट रस पीये जाय। जिह्वाका दूसरा कार्य बोलनेका है। ऐसा बोला जाय कि जिस भाषणसे सज्जनोंका रक्षण होता रहे। अध्वर्यु आगे बढ रहा है। (अध्वरं युनक्ति ध्वरा हिंसा, तदभावो यत्र स अध्वरः) ध्वराका अर्थ हिंसा। जिसमें हिंसा नहीं है वह कर्म अध्वर कहलाता है। हिंसारहित कर्म जो करता है वह अध्वर्यु है। वह हिंसारहित कार्य करनेवाला प्रगति करता है। आगे बढता है ॥ २ ॥

यह सोमरस प्रवाही, बलवर्धक और अनेक तरहके रूपोंवाला है। यह सोम बलवर्धक, उत्साहवर्धक और पुष्टिदायक अन्न है। इसलिए यह अन्न बलवान्, शत्रुनाशक और वीर इन्द्रके पीनेके लिए तैय्यार किया गया है। अतः वीरगण इस पौष्टिक अन्नका सेवन करें। क्योंकि इस अन्न पर चिरकालसे वीरका स्वामित्व है। इन्हीं रसोंको पीकर इन्द्र युद्धमें स्थिर रहनेवाला और उग्र वीर होता है ॥ ३ ॥

यह सोमरस रस न निकाले सोमसे अधिक श्रेष्ठ है। ज्ञानीको आनन्द देनेके लिये यह श्रेयस्कर है। ज्ञानी वीरको युद्ध करनेके समय यह रस पीना हितकर है। हे शत्रुनाशक वीर ! तू यज्ञके पास आ। और इस यज्ञका संरक्षण कर। सब प्रकारके बलोंकी वृद्धि कर। अपनेमें सब प्रकारके बल बढाने चाहिये ॥ ४ ॥

३७१ ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वा—ङरं ते सोमस्तन्वे भवाति ।
शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु प्रास्माँ अव पृतनासु प्र विक्षु ॥ ५ ॥

[४२]

[ऋषिः— ४ बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता— इन्द्रः । छन्दः— अनुष्टुप्, ४ बृहती ।]

३७२ प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर । अरंगमाय जग्मये ऽपश्चाद्दध्वने नरे ॥ १ ॥
३७३ एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् । अमत्रेभिर्ऋजीषिण मिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥ २ ॥
३७४ यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ । वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत् तंतमिदेषते ॥३॥

अर्थ— [३७१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वा ह्वयामसि) तुझे हम बुलाते हैं (अर्वाङ् आ याहि) हमारे सामने आ, (सोमः ते तन्वे) सोम तेरी शरीर पुष्टिके लिये (अरं भवाति) पर्याप्त है । हे (शतक्रतो) बहुत कर्म करनेवाले इन्द्र ! (सुतेषु मादयस्व) सोमरसका पान करके आनंदित हो । (पृतनासु अस्मान्) संग्राममें हमारी (प्र अव) रक्षा कर, और (विक्षु प्र) सब प्रजाओंमें भी हमारी रक्षा कर ॥ ५ ॥

[४२]

[३७२] (पिपीषते विश्वानि विदुषे) रस पीनेकी इच्छावाले संपूर्ण ज्ञानी (अरंगमाय जग्मये) अन्ततक कार्यको पहुंचनेवाले गमनशील, (अपश्चात् दध्वने नरे) अग्रेसर नेता ऐसे (अस्मै) इस इन्द्रको (प्रति भर) भरपूर सोमरस अर्पण कर ॥ १ ॥

[३७३] हे ऋत्विजों ! (सोमेभिः सोमपातमं एनं इन्द्रं) सोमरसोंके साथ अतिशय सोम पीनेवाले इन्द्रके (आ प्रति एतन) पास जाओ । (सुतेभिः इन्दुभिः अमत्रेभिः) अभिषुत सोमरससे भरे हुए पात्रोंके साथ (ऋजीषिणं) बलशाली इन्द्रके समीप गमन करो ॥ २ ॥

[३७४] (सुतेभिः इन्दुभिः सोमेभिः) रस निकाले तेजस्वी सोमरसोंसे (यदि प्रति भूषथ) जब तुम इन्द्रको सुभूषित करते हैं, उस समय (मेधिरः विश्वस्य वेद) बुद्धिमान् वह इन्द्र तुम्हारी सब कामनाओंको जानता है और जानकर (धृषत् तं तं इत् इषते) शत्रुओंका धर्षक वह वीर उन उन सब कामनाओंको पूर्ण करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र वीर ! तुझे हम बुलाते हैं, हमारे पास आ जाओ । तेरे शरीरके लिये सोम पर्याप्त है । सोमरससे शरीरकी पुष्टि और बल बढता है । हे सैकडों प्रशस्त कर्म करनेवाले वीर ! सोमरससे आनन्द प्राप्त कर । युद्धोंमें हमारी सुरक्षा कर । वीर सबकी सुरक्षा युद्धके समय करें । प्रजाजनोंका संरक्षण कर । प्रजामें किसी पर कोई आक्रमण कर रहा हो तो उस दुःखी प्रजाजनका रक्षण वीर करे । सोमरस शरीरके लिये उत्तम अन्न है । यह शरीरका बल, उत्साह और स्फूर्ति बढाता है । वीर इस रसको पीये और अपना बल और उत्साह और स्फूर्ति बढावें और प्रजाजनोंका संरक्षण करें ॥ ५ ॥

सब प्रकारके ज्ञानी, कार्यके अन्ततक पहुंचनेवाले, शत्रुपर आक्रमण करनेवाले, पीछे न रहनेवाले, अग्रेसर नेता ऐसे इस पीनेकी इच्छा करनेवाले वीरके लिये भरपूर रस दो । वीर ऐसे हों कि जो ज्ञानी हों, कार्यको पूर्ण रीतिसे समाप्त करनेवाले, शत्रुपर विचारपूर्वक आक्रमण करनेवाले, कभी पीछे न रहनेवाले, अग्रेसर और जनताको शुभ मार्गपर चला सकनेवाले हों ॥ १ ॥

इन्द्रके पास सोमरसके पात्रोंके साथ जाओ और उसको यथेच्छ सोमरस अर्पण करो । जिससे वह तृप्त होकर सबका संरक्षण करेगा ॥ २ ॥

बुद्धिमान् सब जाननेवाला, शत्रुका धर्षण करनेवाला उन उन सब इच्छाओंको पूर्ण करता है । बुद्धिसे अनुयायियोंकी आकांक्षाएं जानना और शत्रुका नाश करके अनुयायियोंकी आकांक्षाएं पूर्ण करना वीरका कर्तव्य है ॥ ३ ॥

+

३७५ अस्माअस्मा इदन्धसो ऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित् समस्य जेन्यस्य शर्धतो ऽभिशस्तेरवस्परत् ॥ ४ ॥

[४३]

[ऋषिः— बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता— इन्द्रः । छन्दः— उष्णिक् ।]

३७६ यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ १ ॥
३७७ यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमन्तं च रक्षसे । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥
३७८ यस्य गा अन्तरश्मनो मदे दृळ्हा अवासृजः । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ३ ॥
३७९ यस्य मन्दानो अन्धसो माघोनं दधिषे शवः । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ४ ॥

अर्थ— [३७५] (अस्मा अस्मा इत्) इस इन्द्रके लिये ही हे (अध्वर्यो) ऋत्विक् ! (अन्धसः सुतं प्रभर) अन्नरूप सोमरस भरपूर दे । (समस्य जेन्यस्य शर्धतः) सब जीतने योग्य स्पर्धा करनेवाले शत्रुके (अभिशस्तेः) हिंसाकर्मसे (कुवित् अवस्परत्) अनेक बार हमारी रक्षा कर, हमारा पालन कर ॥ ४ ॥

[४२]

[३७६] हे इन्द्र ! तूने (यस्य मदे शम्बरं) जिसके पीनेसे उत्साह उत्पन्न होनेपर शम्बरासुरको (दिवोदासाय) दिवोदासका हित करनेके लिये (रन्धयः) विनष्ट किया । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्यत् सः अयं सोमः) वही यह सोम (ते सुतः पिब) तेरे लिये रस निकालकर रखा है वह पी ॥ १ ॥

[३७७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यस्य तीव्रसुतं मदं) जिसका रस तीक्ष्ण है और उत्साहवर्धक है उस सोमरसका प्रातः (मध्यं च अन्तं) मध्याह्न और सायंकालमें (रक्षसे) तू संरक्षण करता है (अयं स सोमः) वह सोमरस (ते सुतः) तेरे लिये तैयार किया है (पिब) उसका पान कर ॥ २ ॥

[३७८] (यस्य मदे) जिस उत्साहवर्धक सोमरसका पान करनेपर (अश्मनः अन्तः) किलेके अन्दर रखी हुई (दृळहाः गाः) दृढ बन्धनसे बंधी हुई गौओंको (अव असृजः) तूने मुक्त किया । (अयं स सोमः) वह सोम तैयार करके (ते सुतः) तेरे लिये रखा है उसको तू (पिब) पी ॥ ३ ॥

[३७९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यस्य अन्धसः मन्दानः) जिस सोमरूपी अन्नके पीनेसे उत्साहित होता हुआ (माघोनं शवः दधिषे) बडा बल धारण करता है (अयं स सोमः) वह सोमरस (ते सुतः) तेरे लिये तैयार रखा है उसे (पिब) पी ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे यज्ञ करनेवाले मनुष्य ! तू इस इन्द्रके लिए सोमका रस भरपूर दे, ताकि हमारे साथ स्पर्धा करनेवाले शत्रुसे यह इन्द्र हमारी रक्षा करे ॥ ४ ॥

जिस सोमरसके पीनेसे उत्साह बढ गया और तूने दिवोदासका हित करनेके लिये शंबर असुरको मारा, वही यह सोम है । दिवोदासको शंवर असुर कष्ट दे रहा था । अतः दिवोदासकी सुरक्षा करनेके लिये इन्द्रने शंवर असुरका नाश किया । अपनी प्रजाकी सुरक्षा करनेके लिये राजाको ऐसा करना चाहिये, यह उपदेश यहां है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! जिसका रस तीक्ष्ण है, और उत्साहवर्धक है, उस सोमरसका तू प्रातः, मध्याह्न और सायं तीनों समय अर्थात् हर समय संरक्षण कर ॥ २ ॥

शत्रुने गौवें चुराकर किलेमें बांधकर रखी थीं । इन्द्रने सोमरस पीकर शत्रुको परास्त करके उसके किलेके द्वार खोले और गौवें मुक्त कर दीं । शासकको प्रजाजनोंके गौ आदि धन इसी तरह दुष्टोंको प्रतिबंध करके प्रजाजनोंको वापस मिलें ऐसा करना चाहिये ॥ ३ ॥

सोमरस उत्तम बलवर्धक अन्न है । उसका सेवन करनेसे बल बढता है और कार्य करनेका उत्साह वृद्धिंगत होता है ॥ ४ ॥

[४४]

[ऋषिः— शंयुर्बार्हस्पत्यः। देवता— इन्द्रः। छन्दः— त्रिष्टुप्, १-६ अनुष्टुप्, ७-९ (८ वा) विराट्।]

३८० यो र॒यिवो॑ र॒यिंत॑मो॒ यो द्यु॒म्नैर्द्यु॒म्नव॑त्तमः ।
सोमः॑ सु॒तः स इ॑न्द्र॒ ते॑ऽस्ति स्वधापते॒ मदः॑ ॥ १ ॥

३८१ यः श॒ग्मस्तु॑विशग्म ते रा॒यो दा॒मा म॑ती॒नाम् ।
सोमः॑ सु॒तः स इ॑न्द्र॒ ते॑ऽस्ति स्वधापते॒ मदः॑ ॥ २ ॥

३८२ येन॑ वृ॒द्धो न शव॑सा तु॒रो न स्वाभि॑रू॒तिभिः॑ ।
सोमः॑ सु॒तः स इ॑न्द्र॒ ते॑ऽस्ति स्वधापते॒ मदः॑ ॥ ३ ॥

३८३ त्यमु॑ वो॒ अप्र॑हणं गृणी॒षे शव॑स॒स्पति॑म् ।
इन्द्रं॑ विश्वा॒साहं॒ नरं॒ मंहि॑ष्ठं वि॒श्वच॑र्षणिम् ॥ ४ ॥

---

[४४]

अर्थ— [३८०] (रयिवः) धनवान् इन्द्र ! (यः रयिन्तमः) जो सोम अत्यंत शोभादायक है, और (यः द्युम्नैः द्युम्नवत्तमः) जो यशोंसे अतिशय यशस्वी है, हे (स्वधापते) अपनी धारणाशक्तिके पालक (इन्द्र) इन्द्र ! (सः सोमः ते मदः अस्ति) वह सोम तेरे लिये आनंददायक है ॥ १ ॥

[३८१] हे (तुविशग्म) बहुत आनंदी इन्द्र ! (यः शग्मः) जो सुखदायी सोम (ते मतीनां रायः दामा) तेरी मतियोंको ऐश्वर्य देनेवाला है हे (स्वधापते) अपनी धारणशक्तिके पालक (इन्द्र) इन्द्र ! (सः सोमः ते मदः अस्ति) वह सोम तेरे लिये आनंदकारक हो ॥ २ ॥

[३८२] (येन वृद्धः न) जिससे बडा वीर होकर (स्वाभिः ऊतिभिः) अपनी संरक्षण शक्तियोंसे और (शवसा तुरः) अपने सामर्थ्यसे शत्रुओंका नाश शीघ्र करता है। (सः सोमः ते मदः अस्ति) वह सोम तेरे लिये आनंदकारक हो ॥ ३ ॥

[३८३] (यः) तुम्हारे लिये (अप्रहणं शवसः पतिं) सज्जनोंपर प्रहार न करनेवाले, बलके पालक, (विश्वासाहं नरं) सब शत्रुओंका पराजय करनेवाले नेता (मंहिष्ठं विश्वचर्षणिं) अतिशय दाता, सर्वज्ञ (त्वं उ इन्द्रं) उस इन्द्रकी (गृणीषे) स्तुति करो ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे धनवान् इन्द्र ! जो सोम अत्यन्त शोभादायक है, जो यशोंसे अतिशय यशस्वी है, वह सोम तेरे लिए बहुत आनन्ददायक है ॥ १ ॥

हे सदा आनन्दमें रहनेवाले इन्द्र ! जो सुखदायी सोम है, वह तेरी बुद्धियोंको ऐश्वर्य देनेवाला है। हे धारणाशक्तिके पालक इन्द्र ! तेरे लिए यह सोम आनंदकारक हो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! जिस रसको पीकर तू बडाही वीर होता है और अपनी संरक्षण शक्तिसे और सामर्थ्यसे शत्रुओंका नाश शीघ्र करता है, सोम तेरे लिए आनन्ददायक हो ॥ ३ ॥

वह इन्द्र सज्जनोंपर प्रहार न करनेवाला, बलका पालक, सब शत्रुओंका पराजय करनेवाला नेता, अतिशय दानशील और सर्वज्ञ है ॥ ४ ॥

३८४ यं वर्धयन्तीद् गिरः पतिं तुरस्य राधसः ।
तमिन्न्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः ॥ ५ ॥
३८५ तद् वं उक्थस्य बर्हणे—न्द्रायोपस्तृणीषणि ।
विपो न यस्योतयो वि यद् रोहन्ति सक्षितः ॥ ६ ॥
३८६ अविदद् दक्षं मित्रो नवीयान् पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत् ।
ससवान् त्स्तौलाभिर्धौतरीभि—रुरुष्या पायुरभवत् सखिभ्यः ॥ ७ ॥
३८७ ऋतस्य पथि वेधा अपायि श्रिये मनांसि देवासो अक्रन् ।
दधानो नाम महो वचोभि—र्वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ॥ ८ ॥

अर्थ— [३८४] (गिरः) ये स्तोत्र (तुरस्य राधसः पतिं) त्वरासे कार्य सिद्ध करनेवालोंके स्वामीको (यं इत्) जिस बलको बढाते हैं। (अस्य) इस इन्द्रके (तं इत् शुष्मं) उसी बलकी (देवी रोदसी नु सपर्यतः) पृथ्वी और द्युलोक सेवा करते हैं ॥ ५ ॥

१ गिरः तुरस्य राधसः पतिं यं इत्— स्तुति स्तोत्र त्वरासे कार्य सिद्ध करनेवालेका प्रमुख जो होता है, उसका उत्साह बढाते हैं। जो वीर त्वरासे उत्तम कार्य सिद्ध करता है उसकी प्रशंसा करनी योग्य है।

२ अस्य तं इत् शुष्मं देवी रोदसी सपर्यतः नु — इसके उस बलकी सेवा द्युलोक और पृथ्वी निश्चयसे करते हैं। वीरके पराक्रमकी प्रशंसा सब विश्व करता है।

[३८५] (वः उक्थस्य तत् बर्हणा) तुम्हारे स्तोत्रोंकी वह विस्तृत महिमा है कि जो (इन्द्राय) इन्द्रके बल (उपस्तृणीषणि) बढाते हैं। (यस्य ऊतयः विपः न) जिसकी रक्षायें बुद्धिमानोंकी तरह श्रेष्ठ होती हैं। (यत् सक्षितः वि रोहन्ति) जिसमें एकत्र रहनेवाली रक्षायें बढती रहती हैं ॥ ६ ॥

[३८६] (दक्षं अविदत्) बलवान् वीरको वह जानता है। (मित्रः नवीयान्) मित्र, अत्यन्त नवीन तरुण (पपानः देवेभ्यः वस्यः अचैत्) रसपान करनेवाला विबुधोंको उत्तम धन देता है। (ससवान्) वीर्यसे युक्त (स्तौलाभिः धौतरीभिः) स्थूल समर्थ शत्रुको कंपानेवाला (सखिभ्यः) मित्रोंका (उरुष्या पायुः अभवत्) विशेष रक्षक होता है ॥ ७ ॥

[३८७] (ऋतस्य पथि वेधाः अपायि) सत्यके मार्गमें रहकर ज्ञानीने रक्षण किया है। (मनांसि श्रिये देवासः अक्रन्) मनोंको प्रसन्न रखनेके लिये विबुध सत्कर्म करते हैं। (नाम महः वपुः दधानः) वह प्रसिद्ध वीर बडा शरीर धारण करके (वचोभिः वन्यैः) प्रशंसाओंसे प्रशंसित होकर (दृशये व्यावः) दर्शनार्थ प्रकट होवे ॥ ८ ॥

भावार्थ— जो बल शीघ्रतासे कार्य करनेवाले तथा सबके स्वामीको बढाते हैं, उस बलकी पृथ्वी और द्युलोक सेवा करते हैं। ये स्तुतिस्तोत्र त्वरासे कार्य सिद्ध करनेवालेका जो प्रमुख होता है, उसका उत्साह बढाते हैं। उसके बलकी सेवा द्युलोक और पृथ्वी भी निश्चयसे करते हैं। वीरके पराक्रमकी प्रशंसा सब विश्व करता है ॥ ५ ॥

तुम्हारे स्तोत्रोंकी महिमा ऐसी है कि वे स्तोत्र इन्द्रका सामर्थ्य फैलाते हैं। स्तोत्रोंसे वीरके सामर्थ्यका पता सबको लगता है। जिस वीरके संरक्षण सामर्थ्य ज्ञानी मनुष्यके समान कल्याण करनेवाले होते हैं। जो एकत्र रहनेवाले सुरक्षाके साधन बढते रहते हैं। जिसके पास सुरक्षाके साधन बढते रहते हैं वह वीर राष्ट्रकी सुरक्षा कर सकता है ॥ ६ ॥

जो दक्ष रहता है, उसको वह जानता है। दक्षतासे कार्य करनेवाला यह मनुष्य है यह परीक्षा करके जानना योग्य है। नवीन मित्र रसपान करके विबुधोंको धन देता है। विबुधोंको धन देना चाहिये। वीर्यवान् वीर शत्रुको कंपानेवाले विशाल साधनोंसे मित्रोंके लिये विशेष संरक्षक होता है। अपने पास अन्न विपुल हो, तथा शत्रुका नाश करनेके साधन भी प्रभावशाली हों, उनसे स्वजनोंका उत्तम संरक्षण होता रहे ॥ ७ ॥

३८८ द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः ।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभि-र्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि ॥ ९ ॥

३८९ इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः ।
नकिरापिर्ददृशे मर्त्यत्रा किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः ॥ १० ॥

३९० मा जस्वने वृषभ नो ररीथा मा ते रेवतः सख्ये रिषाम ।
पूर्वीष्ट इन्द्र निष्षिधो जनेषु जह्यसुष्वीन् प्र वृहापृणतः ॥ ११ ॥

३९१ उदभ्राणीव स्तनयन्नियर्ती-न्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या ।
त्वमसि प्रदिवः कारुधाया मा त्वादामान आ दभन् मघोनः ॥ १२ ॥

अर्थ— [३८८] (द्युमत्तमं दक्षं अस्मे धेहि) तेजस्वी बल हमारेमें स्थापित कर । (जनानां पूर्वीः अरातीः सेध) प्रजाजनोंके बहुतसे शत्रुओंका नाश कर । (वर्षीयः वयः शचीभिः कृणुहि) बहुत अन्न शक्तियोंके साथ हमें प्रदान कर । और (धनस्य सातौ अस्मान् अविड्ढि) धनके दानके समय हमारा संरक्षण कर ॥ ९ ॥

[३८९] हे (मघवन्) धनवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (दात्रे तुभ्यं इत् वयं अभूम) तुझ दाताके पास ही हम आ रहे हैं । (हरिवः मा वि वेनः) हे अश्वोंके स्वामी ! हमसे प्रतिकूल मत होना (मर्त्यत्रा आपिः नकिः ददृशे) मनुष्योंके बीच बन्धु तेरेसे भिन्न दूसरा कोई दीखता नहीं । हे (अंग) प्रिय ! सब लोग (त्वा रध्रचोदनं आहुः) तुझे धनका प्रेरक कहते हैं ॥ १० ॥

[३९०] हे (वृषभ) बलवान् वीर ! (जस्वने नः मा ररीथाः) हिंसक शत्रुको हमें मत सौंप देना । (रेवतः ते सख्ये मा रिषाम) तुझ धनवान्की मित्रतामें हमारा नाश न हो । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते पूर्वीः निष्षिधः जनेषु) तेरे बहुतसे निवारक, मनुष्योंमें रहे हैं इसलिये (असुष्वीन् जहि, अपृणतः प्र वृह) उन शत्रुओंको मार और कंजूसका नाश कर ॥ ११ ॥

[३९१] (अभ्राणि इव स्तनयन्) मेघ जैसी गर्जना करता है वैसा ही (इन्द्र) इन्द्र (अश्व्यानि गव्या राधांसि उत् इयर्ति) अश्व और गौरूप धन उत्पन्न करता है । (प्रदिवः त्वं कारुधायाः असि) पुरातन कालसे तू कारीगरोंको धारण करनेवाला है । (त्वा मघोनः अदामानः) तुझे धनवान् कृपण कष्ट न दे ॥ १२ ॥

भावार्थ— सत्यके मार्गमें रहकर ज्ञानी मनुष्य अन्न प्राप्त करता है, संरक्षण करता है । अन्याय मार्गसे कभी नहीं जाता । विबुध लोग अपने मनोंको आनंदप्रसन्न करनेके लिये शुभ कर्म करते हैं । बडा शरीर धारण करके, प्रशंसाओंसे प्रशंसित होकर दर्शनके लिये प्रकट होता है । अपना शरीर व्यायामादिसे बडा करे, जिससे प्रशंसा होगी, पश्चात् दिखानेके लिये प्रकट होवे ॥ ८ ॥

तेजस्वी सामर्थ्य हमें दे । हमारेमें प्रभावी बल बढे ऐसा कर । प्रजाजनोंके अनेक शत्रुओंका नाश कर । शत्रुओंको रोक । वे हमपर आक्रमण न करें ऐसा कर । बहुत अन्न शक्तियोंके साथ हमें प्रदान कर । हम अन्नवान् और शक्तिमान् हों ऐसा कर । धनका दान करनेके समय हमारा संरक्षण कर । हम सुरक्षित रहें और धन भी प्राप्त करें ऐसा कर ॥ ९ ॥

तुझ दाताके पास हम रहें । हे अश्वोंके स्वामी ! हमसे विरुद्ध न बन । मानवोंमें मित्र या बन्धु तुझसे भिन्न दूसरा कोई दीखता नहीं । तुझे इस कारण धनको या धनिकोंको प्रेरणा करनेवाला सब कहते हैं ॥ १० ॥

हिंसकके आधीन हमें न देना । तुझ धनवान्की मित्रतामें हमारा नाश नहीं होगा । पूर्व समयसे कई तेरा निषेध करनेवाले लोगोंमें होंगे । अबतक भी कई लोग विरोध करते ही रहते हैं । उन शत्रुओंका नाश कर और कंजूसको दूर कर ॥ ११ ॥

३९२ अध्वर्यो वीर॒ प्र म॒हे सु॒ताना॒—मिन्द्रा॑य भर॒ स ह्य॑स्य॒ राजा॑ ।
य॒: पू॒र्व्याभि॑रु॒त नूत॑नाभि॒—र्गी॒र्भिर्वा॑वृ॒धे गृ॑ण॒ताम्‌ऋषी॑णाम्‌ ॥ १३ ॥

३९३ अ॒स्य मदे॑ पु॒रु वर्पां॑सि वि॒द्वा—निन्द्रो॑ वृ॒त्राण्य॑प्र॒ती ज॑घान ।
तमु॒ प्र हो॑षि॒ मधु॑मन्तमस्मै॒ सोमं॑ वी॒राय॑ शि॒प्रिणे॒ पिब॑ध्यै ॥ १४ ॥

३९४ पाता॑ सु॒तमिन्द्रो॑ अस्तु॒ सोमं॒ हन्ता॑ वृ॒त्रं वज्रे॑ण मन्द॒सा॒नः ।
गन्ता॑ य॒ज्ञं प॑रा॒वत॑श्चिद॒च्छा॒ वसु॑र्धी॒नाम॑वि॒ता का॒रुधा॑याः ॥ १५ ॥

अर्थ - [३९२] हे (वीर) वीर ! हे (अध्वर्यो) अध्वर्यु ! (महे इन्द्राय सुतानां प्र भर) महान्‌ इन्द्रके लिये सोमरस भरपूर दे । (स हि अस्य राजा) वह इन्द्र ही इसका राजा है । (यः पूर्व्याभिः नूतनाभिः) जो पूर्वकालीन तथा नवीन (गृणानां ऋषीणां गीर्भिः वावृधे) उपासक ऋषियोंकी स्तुतियोंसे बढता है ॥ १३ ॥

[३९३] (अस्य मदे विद्वान्‌ इन्द्रः) इस सोमपानसे उत्साहित होनेपर इन्द्रने (पुरु वर्पांसि वृत्राणि अप्रति) बहुतसे आवरक शत्रुओंको स्वयं न हारनेवाला होकर (जघान) मारा । (मधुमन्तं तं उ सोमं) माधुर्यवान्‌ उसी सोमको (शिप्रिणे अस्मै वीराय) उत्तम शिरस्त्राण धारण करनेवाले इस वीरको (पिबध्यै प्र होषि) पीनेके लिये दे ॥ १४ ॥

[३९४] (वसुः, धीनां अविता, कारुधायाः इन्द्रः) सबको निवासस्थान देनेवाला, ज्ञानियोंकी रक्षा करनेवाला, कारीगरोंका धारण करनेवाला, वह इन्द्र (सुतं सोमं पाता अस्तु) सोमरसका पान करनेवाला हो । (मन्दसानः वज्रेण वृत्रं हन्ता) उत्साह प्राप्त होकर वह वज्रसे आवरक शत्रुका नाश करनेवाला है । (परावतः चित्‌ यज्ञं अच्छ गन्ता) दूरदेशमें यज्ञ होनेपर भी उसके पास वह जाता है ॥ १५ ॥

भावार्थ— मेघ गर्जना करके वृष्टी करता है । इन्द्र घोडे, गौवें तथा संपत्ति निश्चयसे देता है । तू प्राचीन कालसे कारीगरोंका धारण करनेवाला है । कारु-कारीगर, कुशलतासे कार्य करनेवाला । इनका धारण राष्ट्रमें होना चाहिये । दुष्ट धनी परंतु कृपण कष्ट न दें । धनवालोंको उदार रहना चाहिये ॥ १२ ॥

हे वीर ! परंतु अहिंसक कर्म करनेवाले शूर ! महान्‌ इन्द्रके लिये पीनेके लिये रस भरपूर भर दे । वही इस सबका राजा है । जो प्राचीन तथा अर्वाचीन उपासक ऋषियोंकी स्तुतियोंसे बढता है । स्तुतियोंसे जिसका यश चारों ओर फैलता है ॥ १३ ॥

इस रसपानसे प्राप्त हुए उत्साहसे विद्वान्‌ इन्द्रने बहुत युक्तियां करनेवाले नाना प्रकारके शत्रुओंको स्वयं न हारा जाकर, मारा । उस मीठे सोमरसको शिरस्त्राण धारण करनेवाले इस वीरको पीनेके लिये दो । नाना कुटिल युक्तियां करके कष्ट देनेवाले, घेरनेवाले शत्रुको नष्ट करें ॥ १४ ॥

सबको निवासस्थान देता है, सब प्रजाजनोंको रहनेके लिये घर देता है । बुद्धिमानोंका रक्षक, वह बुद्धियोंका रक्षक है । कारीगरोंका आधार इन्द्र है । वज्रसे आवरक शत्रुका वध करता है । दूरसे भी यज्ञमें जाता है । मनुष्य दूर देशसे भी जहां यज्ञ होता है वहां अवश्य जाय । राजाके ये गुण हैं । योग्य राजा ये कार्य करे ॥ १५ ॥

३९५ इदं त्यत् पात्रमिन्द्रपान — मिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ।
मत्सद् यथा सौमनसाय देवं व्य१स्मद् द्वेषो युयवद् व्यंहः ॥ १६ ॥
३९६ एना मन्दानो जहि शूर शत्रू — ञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान् ।
अभिषेणाँ अभ्या३देदिशानान् पराच इन्द्र प्र मृणा जही च ॥ १७ ॥
३९७ आसु ष्मा णो मघवन्निन्द्र पृ — त्स्व१स्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सूरीन् कृणुहि स्मा नो अर्धम् ॥ १८ ॥
३९८ आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः ।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु ॥ १९ ॥

अर्थ— [३९५] (इन्द्रपानं पात्रं) इन्द्रके पीने योग्य पात्रसे (इन्द्रस्य प्रियं त्यत् इदं अमृतं) इन्द्रको प्रिय वह अमृतरस (अपायि) इन्द्र पीये । (यथा सौमनसाय देवं मत्सत्) जिस प्रकार मनकी प्रसन्नताके लिये देव इन्द्रको उत्साह प्राप्त हो, उस प्रकार वह पान करे । (द्वेषः अस्मत्, अंहः वि युयवत्) द्वेष और पाप भी हमारेसे दूर हो जांय ॥ १६ ॥

[३९६] हे (मघवन्) धनवान् (शूर) शूरवीर ! (एना मन्दानः) इससे आनंदित होकर (जामिं अजामिं) ज्ञातिके और अज्ञातिके दोनों प्रकारके (अमित्रान् शत्रून्) अमित्र शत्रुओंको (जहि) मार । (अभिषेणान् आदेदिशानान्) हमारे सामने आये हुए आयुधोंको, हमारे सामने छोडनेवाले शत्रुओंको हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पराचः प्र मृण च जहि) दूरसे ही मार और उनका पराभव कर ॥ १७ ॥

[३९७] हे (मघवन्) धनवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (नः आसु पृत्सु) हमें इन संग्रामोंमें (अस्मभ्यं महि सुगं वरिवः कः) हमको बडे सुखसे प्राप्त होनेवाले धनको दो । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अपां तोकस्य तनयस्य) जलोंको, पुत्र और पौत्रोंके (जेषे सूरीन् नः अर्धं कृणुहि) जयके लिये हमें विद्वान् और समृद्ध बनाओ ॥ १८ ॥

[३९८] (त्वा) तुझे (वृषणः युजानाः) बलवान् स्वयं ही रथके साथ जुडनेवाले (वृषरथासः वृषरश्मयः) बलवान् रथके साथ रहनेवाले, बलवान् रश्मिवाले, (अत्याः अस्मत्राञ्चः) सतत चलनेवाले, हमारे समीप आनेवाले, (वृषणः वज्रवाहः सुयुजः) वीर्यवान्, वज्रके समान तीक्ष्ण, सुन्दर जुते हुए (हरयः) घोडे (वृष्णे मदाय आ वहन्तु) बलवर्धक आनंद प्राप्त करनेके लिये ले आवें ॥ १९ ॥

भावार्थ— वह सोमरस इन्द्रको बहुत ही प्रिय है अतः वह अपने योग्य पात्रसे पीवे । वह इस प्रकार पिये कि जिससे उस देवके मनको प्रसन्नता तथा उत्साह प्राप्त हो । उसकी कृपासे द्वेष और पाप हमसे दूर हों ॥ १६ ॥

हे शूरवीर इन्द्र ! इससे आनंदित होकर स्वजातिके अथवा परजातिके अहित करनेवाले शत्रुओंको तू मार । शत्रु स्वजातिके हों अथवा परजातिके हों उनको मारना चाहिये। किसी भी शत्रुको जीवित रखना नहीं चाहिये । हमारे ऊपर सेना भेजनेवाले और हमारे नाशका आदेश देनेवाले शत्रुओंको दूरसे ही मार डाल और उनका पराजय करके उनको दूर कर ॥ १७ ॥

हमें इन स्पर्धाओंमें सुखसे प्राप्त होनेवाला बडा धन प्राप्त हो ऐसा कर । स्पर्धामें हम विजयी हों और सुखने धन प्राप्त हो । हमें धन मिले, बालबच्चोंकी जय हो और हम विद्वान् हों और हमें समृद्धि प्राप्त हो ॥ १८ ॥

घोडे कैसे हों ? घोडे (वृषणः) बलवान् हों, (युजानाः) रथके साथ स्वयं जुड जानेवाले हों, (वृष-रथासः) बलवान् रथके साथ रहनेवाले, (वृष-रश्मयः) जिनकी रस्सियां भी मजबूत हैं, (अत्याः) दौडसे चलनेवाले, (वज्रवाहाः) वज्रके समान तीक्ष्ण, (सु-युजः) सुगमतासे जुड जानेवाले (हरयः) घोडे हों इन्द्रके घोडे ऐसे थे ! घोडे पास रखनेवाले इस वर्णनसे बोध प्राप्त करें और अपने घोडोंको इस तरह सिखावें और रखें ।

घोडे बलवान्, रथमें स्वयं जुड जानेवाले, बलवान् या मजबूत रथके साथ रहनेवाले, वेगसे दौडनेवाले, वज्रके समान तीक्ष्ण और सुगमतासे जुड जानेवाले हों ॥ १९ ॥

३९९ आ ते॑ वृषन् वृष॑णो द्रोण॑मस्थुर्घृतप्रुषो॒ नोर्मयो॒ मद॑न्तः ।
इन्द्र॒ प्र तुभ्यं॒ वृष॑भिः सु॒ताना॒ं वृष्णे॑ भरन्ति वृष॒भाय॒ सोम॑म् ॥ २० ॥
४०० वृषा॑सि दि॒वो वृ॑ष॒भः पृ॑थि॒व्या वृषा॒ सिन्धू॑नां वृष॒भः स्तिया॑नाम् ।
वृष्णे॑ त॒ इन्दु॑र्वृषभ पीपाय स्वा॒दू रसो॑ मधु॒पेयो॒ वरा॑य ॥ २१ ॥
४०१ अ॒यं दे॒वः सह॑सा जाय॑मान॒ इन्द्रे॑ण यु॒जा प॒णिम॑स्तभायत् ।
अ॒यं स्वस्य॑ पि॒तुरायु॑धा॒नीन्दु॑रमुष्णा॒दशि॑वस्य मा॒याः ॥ २२ ॥
४०२ अ॒यम॑कृणोदु॒षसः॑ सु॒पत्नी॑र॒यं सूर्ये॑ अदधा॒ज्ज्योति॑र॒न्तः ।
अ॒यं त्रि॒धातु॑ दि॒वि रो॑च॒नेषु॑ त्रि॒तेषु॑ विन्ददमृतं निगू॑ळ्हम् ॥ २३ ॥

अर्थ— [३९९] हे (वृषन्) सामर्थ्यवान् वीर ! (वृषणः घृतप्रुषः ऊर्मयः न मदन्तः) बलवान् जलसे मिश्रित समुद्र तरंगोंकी तरह आनन्दित ये रस (ते द्रोणं आ अस्थुः) तेरे पात्रमें रहे हैं । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वृष्णे वृषभाय तुभ्यं) समर्थ बलवान् वीर ऐसे तुझे (वृषभिः सुतानां सोमं प्र भरन्ति) पत्थरोंसे कूटकर निकाले ये रस वे लोग देते हैं ॥ २० ॥

[४००] (दिवः वृषा असि) तू द्युलोकका बलवान् वीर है । (पृथिव्याः वृषभः) पृथिवीका बलवान् आधार है । (सिन्धूनां वृषा) नदियोंको प्रेरणा करनेवाला है । (स्तियानां वृषभः) स्थावरोंका बलवान् उत्पादक है । हे (वृषभ) काम वर्षक इन्द्र ! (वराय वृष्णे ते) श्रेष्ठ वीर्यवान् ऐसे तेरे लिये (स्वादुः रसः मधुपेयः इन्दुः) मधुर, प्रशस्त, मीठा रस तैयार हो रहा है ॥ २१ ॥

[४०१] (देवः अयं इन्दुः) कान्तिमान् इस सोमने (इन्द्रेण युजा) मित्र इन्द्रके साथ (जायमानः) रहकर (पणिं सहसा अस्तभायत्) पणि असुरको बलसे रोका । (स्वस्य पितुः) अपने पितृरूपी (अशिवस्य आयुधानि, मायाः अमुष्णात्) अशुभ शत्रुके आयुध और कुटिल योजनाओंका नाश किया ॥ २२ ॥

[४०२] (अयं उषसः सुपत्नीः अकृणोत्) इसने उषःकालोंको सुन्दर पतिसे सूर्यसे युक्त किया । (अयं सूर्ये अन्तः ज्योतिः अदधात्) इसने सूर्यमंडलके बीचमें तेजको रखा । (त्रिधातु अयं) तीन प्रकारकी धारक शक्तियोंसे युक्त यह (दिवि रोचनेषु त्रितेषु) द्युलोकमें तीनों तेजस्वी स्थानोंमें (निगूळ्हं अमृतं विन्दत) अदृश्य रूपसे रहनेवाले अमृतको प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

भावार्थ— जब इस सोमरसमें जलका मिश्रण किया जाता है, तब इसमें तरंगें उठती हैं और फिर ये पात्रोंमें भरे जाते हैं । समर्थ और वीर तथा बलवान् ऐसे इन्द्रको यज्ञ करनेवाले पत्थरोंसे कूटकर रस प्रदान करते हैं ॥ २० ॥

इन्द्र द्युलोकका सामर्थ्यवान् वीर है, पृथिवीका आधार है, नदियोंका प्रेरक है, स्थावरोंका उत्पादक है । उस श्रेष्ठ वीरके लिये पीनेके हेतु यह मीठा रस तैयार हो रहा है ॥ २१ ॥

यह तेजस्वी सोम, इन्द्र वीरके साथ रहकर, पणि असुरको बलसे रोकता है । अपने पिता अशुभ शत्रुके आयुधोंको और उसकी कुटिल योजनाओंका नाश किया । शत्रुको बलसे रोकना चाहिये, उसके आयुध तथा उसकी दुष्ट योजनाओंको टिकने नहीं देना चाहिये । इस प्रकारसे शत्रुका प्रतिकार करना चाहिये ॥ २२ ॥

इसने उषाओंको उत्तम पतिसे संयुक्त किया । उषाके पीछे सूर्यका उदय हुआ । इसने सूर्यमें ज्योतिको रखा । तीन धारक शक्तियोंसे युक्त यह द्युलोकसे तीन तेजस्वी स्थानोंमें गुप्त रहे अमृतको प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

४०३ अयं द्यावापृथिवी वि ष्कंभाय—दुयं रथमयुनक् सप्तरंश्मिम् ।
अयं गोषु शच्यां पक्वमन्तः सोमो दाधार दर्शयन्त्रमुत्सम् ॥ २४ ॥

[४५]

ऋषिः- शंयुर्बार्हस्पत्यः । देवताः- इन्द्रः, ३१-३३ बृबुस्तक्षा । छन्दः- गायत्री, २९ अतिनिचृत्, ३१ पादनिचृत्, ३३ अनुष्टुप् ।

४०४ य आनयत् परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् । इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ १ ॥
४०५ अविप्रे चिद् वयो दध—दनाशुना चिदर्वता । इन्द्रो जेता हितं धनम् ॥ २ ॥
४०६ महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः । नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥ ३ ॥

अर्थ—[४०३] (अयं द्यावापृथिवी विष्कभायत्) इसने द्यावापृथिवीको स्थिर किया है। (अयं रथं सप्तरश्मिम् अयुनक्) इसीने सूर्यके रथको सात किरणोंसे युक्त किया। (अयं सोमः गोषु अन्तः) इस सोमने ही गौओंके अन्दर (पक्वं शच्या उत्सं दशयन्त्रं दाधार) पक्व दूधको शक्तिसे परिपूर्ण करके स्थापित किया। जो दस इंद्रियोंसे सुशोभित शरीरको पुष्ट करता है ॥ २४ ॥

[४५]

[४०४] (यः तुर्वशं यदुं) जो इन्द्र तुर्वश और यदु राजाको (सुनीती परावतः आनयत्) सुगमतासे दूर देशसे ले आया (युवा सः इन्द्रः नः सखा) वह तरुण इन्द्र हमारा मित्र हो ॥ १ ॥

[४०५] (अविप्रे चित्) अज्ञानी पुरुषको भी वह इन्द्र (वयः दधत्) अन्न देता है। (इन्द्रः अनाशुना चित् अर्वता) इन्द्र जल्दी न जानेवाले घोडे द्वारा भी (हितं धनं जेता) शत्रुओंका धन जीतता है ॥ २ ॥

[४०६] (अस्य प्रणीतयः महीः) इस इन्द्रकी प्रकृष्ट नीतियां महान् होती हैं, (उत प्रशस्तयः पूर्वीः) और अतिशय प्रशस्त स्तुतियां भी बहुत हैं। (अस्य ऊतयः न क्षीयन्ते) इसकी रक्षायें भी कभी क्षीण नहीं होती ॥ ३ ॥

१ अस्य प्रणीतयः महीः— इसकी संचालक शक्तियां विशाल होतीं हैं।
२ अस्य प्रशस्तयः पूर्वीः— इसकी प्रशंसाएं सनातन कालसे चलीं आती हैं।
३ अस्य ऊतयः न क्षीयन्ते— उसकी रक्षाके साधन भी कभी कम नहीं होती।

भावार्थ— इसने द्युलोक और पृथिवीलोकको स्थिर किया। इसने सात किरणोंवाले रथको जोता। सूर्यके किरणोंमें सात रंगके किरणोंको रखा। इस सोमने गौवोंके अन्दर पक्व दूध शक्तिसे युक्त हौज जैसा रखा, वह दस इंद्रियोंवाले शरीरको परिपुष्ट करता है। गौवोंको खानेके लिये सोम वल्ली दी जाय और उनका दूध पीया जाय, जिससे शरीर अच्छी तरह पुष्ट होता है ॥ २४ ॥

यह इन्द्र त्वरासे कार्य करनेवाले तथा यत्नशील राजाको आसानीसे दूर देशसे ले आया अर्थात् ऐसे वीरोंको उसने हरतरहके संकटसे पार किया। ऐसा तरुण और उत्साही इन्द्र हमारा मित्र हो अर्थात् हमपर अत्यन्त स्नेह करनेवाला बने ॥ १ ॥

ईश्वर ज्ञानी और अज्ञानी दोनोंके खानेके लिये अन्न देता है और जल्दी न दौडनेवाले घोडेसे भी शत्रुको परास्त करके उन शत्रुओंका धन जीतकर लाता है ॥ २ ॥

ईश्वरकी संचालक शक्तियां विशाल हैं। उसकी प्रशंसाएं भी अपूर्व होती हैं, पहिलेसे उसकी प्रशंसाएं चली आयी हैं। उसकी रक्षण शक्तियां भी कभी कम नहीं होती। राजा अपनी प्रजाकी उन्नतिके लिये बडी बडी नाना योजनाएं प्रयोगमें लावें। और प्रजाके सुरक्षाके अनेक साधन सदा तैयार रखे। इनको कभी कम होने न दें। ऐसे राजाकी सदा प्रशंसा होती रहेगी ॥ ३ ॥

४०७ सखा॑यो ब्रह्म॑वाहसे ऽर्च॑त प्र च॑ गायत । स हि नः॒ प्रम॑तिर्म॒ही ॥ ४ ॥
४०८ त्वमेक॑स्य वृत्रहन्नवि॒ता द्वयो॑रसि । उ॒तेदृशे॒ यथा॑ व॒यम् ॥ ५ ॥
४०९ नय॒सीद्वति॒ द्विषः॑ कृ॒णोष्यु॑क्थशं॒सिनः॑ । नृभिः॑ सु॒वीर॑ उच्यसे ॥ ६ ॥
४१० ब्र॒ह्माणं॒ ब्रह्म॑वाहसं गी॒र्भिः सखा॑यमृ॒ग्मिय॑म् । गां न दो॒हसे॑ हुवे ॥ ७ ॥
४११ यस्य॒ विश्वा॑नि॒ हस्त॑योरू॒चुर्वसू॑नि॒ नि द्वि॒ता । वी॒रस्य॑ पृतना॒षहः॑ ॥ ८ ॥

अर्थ— [४०७] हे (सखायः) स्तोताओं ! (ब्रह्मवाहसे अर्चत च प्र गायत) मन्त्रोंसे स्तवनीय इन्द्रके लिये प्रशंसा करो और उसके स्तोत्रोंको गाओ । (स हि नः मही प्रमतिः) वह इन्द्र हमें बडी बुद्धि प्रदान करनेवाला है ॥ ४ ॥

[४०८] हे (वृत्रहन्) शत्रुओंका नाश करनेवाले इन्द्र ! (त्वं एकस्य द्वयोः अविता असि) तू एक अथवा दोनोंका ही रक्षण करनेवाला है । ऐसा नहीं पर (उत ईदृशे यथा वयं) और भी अनेक मनुष्योंका तू ही रक्षक है और हम भी तेरेसे ही सुरक्षित हुए हैं ॥ ५ ॥

[४०९] हे इन्द्र ! (इत् द्विषः अति नयसि) तू ही शत्रुओंको हमसे दूर करता है । अर्थात् उनका नाश करता है । (उक्थशंसिनः कृणोषि) अतः हमें तू प्रशंसा करनेवाले बनाता है । (नृभिः सुवीरः उच्यसे) अतः मनुष्योंद्वारा तुम उत्तम वीर कहा जाता है । अथवा तुम्हारे साथ उत्तम वीर रहते हैं ॥ ६ ॥

[४१०] (ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं सखायं ऋग्मियं) ज्ञानी, ज्ञानपूर्वक स्तवनीय, मित्रभूत प्रशंसनीय इन्द्रको (दोहसे गां न, गीर्भिः हुवे) दुहनेके लिये गौकी तरह, स्तुतियोंसे बुलाता हूँ ॥ ७ ॥

[४११] (वीरस्य पृतनासहः यस्य) वीर्यवान्, शत्रुसेनाको पराजित करनेवाले उस इन्द्रके (हस्तयोः) हाथोंमें (विश्वानि द्विता वसूनि) सब दोनों प्रकारके धन हैं, इस प्रकार (नि ऊचुः) कहते हैं ॥ ८ ॥

१ वीरस्य पृतनासहः हस्तयोः विश्वानि वसूनि— वीर शत्रुसैनिकोंका पराभव करनेवालेके हाथोंमें सब प्रकारके धन रहते हैं ।

२ द्विता वसूनि— धन दो प्रकारके होते हैं । एक वैयक्तिक धन और दूसरा सामूहिक धन । धन गुप्त और प्रकट ऐसे दो प्रकारके हैं ।

भावार्थ— ज्ञानसे जो प्रशंसा गाने योग्य होता है उसीका सत्कार करो और उसीके स्तुतिस्तोत्र गाओ । वही सबको उत्तम संमति दे सकता है ॥ ४ ॥

ईश्वर एक दोका ही रक्षक नहीं है, परंतु सब मानवोंका वह रक्षक है और हम सबका संरक्षक है ॥ ५ ॥

तू शत्रुओंको दूर भगा देता है । शत्रुओंको भगा देना योग्य है । शत्रुओंका नाश करना योग्य है । तू लोगोंको प्रशंसक बनाता है । तू ऐसा कर कि जिससे लोग तेरी प्रशंसा करें । तुझको मनुष्य उत्तम वीरोंसे युक्त महावीर कहें । तू ऐसा वीर कि जिससे मनुष्य तुझे उत्तम वीर कहें ॥ ६ ॥

इन्द्र-प्रभु-ज्ञानी है, ज्ञानपूर्वक उसकी स्तुति की जाती है, वह सबका सखा है, सबसे प्रशंसनीय है । इस प्रभुकी ही सबको स्तुति करना उचित है । दोहनके समय गौको बुलाते हैं वैसा हम उस प्रभुको अपने पास बुलाते हैं ॥ ७ ॥

वह प्रभु 'वीर' है, वह शत्रुको दूर करता है, वह 'पितना-सहः' है अर्थात् शत्रुकी सेनाका पूर्ण पराभव करनेवाला है । इस कारण इसके हाथमें सब प्रकारके गुप्त और प्रकट धन हैं ऐसा सब ज्ञानी कहते हैं ।

४१२ वि दृळ्हानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते । वृह माया अनानत ॥ ९ ॥
४१३ तमु त्वा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते । अहूमहि श्रवस्यवः ॥ १० ॥
४१४ तमु त्वा यः पुरासिथ यो वा नूनं हिते धने । हव्यः स श्रुधी हवम् ॥ ११ ॥
४१५ धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान् । त्वया जेष्म हितं धनम् ॥ १२ ॥
४१६ अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते । भरे वितन्तसाय्यः ॥ १३ ॥

अर्थ— [४१२] हे (अद्रिवः) वज्रधारक इन्द्र ! (शचीपते) शक्तिमान् इन्द्र ! (जनानां दृळ्हानि चित् वि वृह) शत्रुओंके दृढ मजबूत पुरियोंको और बलोंको नाश कर । हे (अनानत) सर्वोच्छ्रित इन्द्र ! (मायाः) और उनकी कुटिलताओंका भी नाश कर ॥ ९ ॥

[४१३] हे (सत्य सोमपाः) सत्यस्वभावी, सोमका पान करनेवाले, (वाजानां पते) अन्न और बलोंके स्वामी, (इन्द्र) इन्द्र ! (श्रवस्यवः तं उ त्वा अहूमहि) अन्नकी इच्छा करनेवाले हम तेरी ही स्तुति करते हैं ॥ १० ॥

[४१४] (तं उ त्वा) हम तुम्हें ही सहायार्थ बुलाते हैं, (यः पुरा हव्यः आसिथ) जो पहिले बुलाने योग्य था । (यः वा हिते धने, नूनं सः हवं श्रुधि) और तू, शत्रुओंके साथ युद्ध छिड जानेपर बुलाने योग्य है उस समय वह तू हमारा आह्वान सुन ॥ ११ ॥

[४१५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (धीभिः त्वया अर्वद्भिः) बुद्धियोंसे, तथा तेरे द्वारा प्रेरित हुए अश्वोंसे (अर्वतः श्रवाय्यान्) शत्रुओंके घोडोंको, प्रशंसनीय अन्नोंको, और (हितं धनं जेष्म) शत्रुओंके पास रहे, धनको जीतें ॥ १२ ॥

१ धीभिः धनं जेष्म— बुद्धियोंके प्रयोगसे हम धनको जीतें ।

२ अर्वद्भिः श्रवाय्यान् वाजान् जेष्म— घोडोंसे अर्थात् घुडसवारोंसे हम प्रशंसनीय अन्नोंको जीतें ।

३ हितं धनं जेष्म— शत्रुके पासका धन जीतकर प्राप्त करें ।

[४१६] हे (वीर) वीर, (गिर्वणः) स्तुतिके लिये योग्य, (इन्द्र) इन्द्र ! (हिते धने) शत्रुओंके पास रहे हुए धनको प्राप्त करनेके लिये (भरे) संग्राममें (महान् वितन्तसाय्यः अभूः) तू शत्रुओंका बडा विजेता हुआ है ॥ १३ ॥

भावार्थ— स्वयं शस्त्र धारण करके, शक्तिसंपन्न बनकर, शत्रुके सुदृढ किलोंका नाश करना और उनके कपट व्यूहोंको भी विनष्ट करना चाहिये ॥ ९ ॥

यह इन्द्र सत्य स्वभाववाला है, सोमका पान करनेवाला है, अन्न और बलोंका स्वामी है । अतः अन्न और बलको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले हम इस इन्द्रकी स्तुति कर रहे हैं ॥ १० ॥

जो प्राचीन समयसे बुलाने योग्य है अर्थात् अब तथा भविष्यकालमें भी बुलाने योग्य है । जो युद्धके छिड जानेपर बुलाने योग्य है, जिसकी सहायता प्राप्त करके शत्रुसे धन प्राप्त किया जा सकता है, उस इन्द्रको हम अपनी सहायताके लिये बुलाते हैं ॥ ११ ॥

हम अपनी उत्तम बुद्धिके प्रयोगसे धनको जीतें, घोडोंकी सहायतासे हम प्रशंसनीय अन्नोंको जीतें, इसप्रकार शत्रुओंके पास जो धन है, उसे हम जीतें ॥ १२ ॥

हे स्तुतिके योग्य इन्द्र ! शत्रुओंके पास जो धन था, उसे जीतनेके बाद ही तू शत्रुओंका विजेता हुआ । शत्रुओंके विजेताके रूपमें वही प्रसिद्धि प्राप्त कर सकता है कि जो शत्रुओंके धनपर अपना अधिकार कर ले ॥ १३ ॥

४१७ या ते ऊतिरमित्रहन् मक्षूजवस्तमासति । तया नो हिनुही रथम् ॥ १४ ॥
४१८ स रथेन रथीतमो ऽस्माकेनाभियुग्वना । जेषि जिष्णो हितं धनम् ॥ १५ ॥
४१९ य एक इत् तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः । पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥ १६ ॥
४२० यो गृणतामिदासिथा ऽऽपिरूती शिवः सखा । स त्वं न इन्द्र मृळय ॥ १७ ॥
४२१ धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः । सासहीष्ठा अभि स्पृधः ॥ १८ ॥
४२२ प्रत्नं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम् । ब्रह्मवाहस्तमं हुवे ॥ १९ ॥
४२३ स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको वसूनि पत्यते । गिर्वणस्तमो अध्रिगुः ॥ २० ॥

अर्थ— [४१७] हे (अमित्रहन्) शत्रुनाशक ! (ते मक्षुजवस्तमा या ऊतिः असति) तेरी अतिशय शीघ्रगामी जो संरक्षक गति है (तया नः रथं हिनुहि) उस गतिसे हमारे रथको भी, शत्रुओंको जीतनेके लिये, शीघ्र जानेकी प्रेरणा कर ॥ १५ ॥

[४१८] हे (जिष्णो) जयशील इन्द्र ! (रथीतमः सः) अतिशय महारथी तू (अस्माकेन अभियुग्वना रथेन) हमारे शत्रुओंको पराजित करनेवाले रथसे (हितं धनं जेषि) शत्रुओंके धनको तू जीतता है ॥ १५ ॥

[४१९] (विचर्षणिः वृषक्रतुः) विशेष सर्वद्रष्टा, वर्षकर्मा (यः एक इत्) जो एक ही (कृष्टीनां पतिः) प्रजाओंका पति (जज्ञे) हुआ है. (तमु स्तुहि) उसकी ही स्तोता स्तुति करे ॥ १६ ॥

[४२०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः ऊती) जो तू सुरक्षा करनेके कारण (शिवः सखा) सबका सुखकर मित्र हुआ और (गृणतां इत् आपिः आसिथ) स्तोताओंका बन्धु जैसा रक्षा हुआ (त्वं नः मृळय) वह तू हमें अब सुखी कर ॥ १७ ॥

[४२१] हे (वज्रिवः) वज्रधारी इन्द्र ! (गभस्त्योः रक्षोहत्याय वज्रं धीष्व) हाथोंमें राक्षसोंको मारनेके लिये वज्र धारण कर, (स्पृधः अभि सासहीष्ठाः) स्पर्धा करनेवाली शत्रुसेनाका अतिशय पराभव कर ॥ १८ ॥

[४२२] (प्रत्नं रयीणां युजं) पुरातन, धनोंको देनेवाला, (सखायं) मित्रभूत, (कीरिचोदनं ब्रह्मवाहस्तमं) स्तोताओंको प्रेरणा करनेवाला, अतिशय स्तुतिके योग्य इन्द्रको मैं (हुवे) बुलाता हूं ॥ १९ ॥

[४२३] (गिर्वणस्तमः अध्रिगुः) अतिशय स्तुतिके योग्य अप्रतिहत गतिमान (सः हि) ऐसा वह इन्द्र ही (विश्वानि पार्थिवा वसूनि) संपूर्ण पृथिवीमें होनेवाले सब धनोंका (एकः पत्यते) एक ही स्वामी है ॥ २० ॥

भावार्थ— हे शत्रुनाशक इन्द्र ! तेरी जो रक्षा करनेवाली शीघ्र गति है, उस गतिसे हमारे रथको ऐसी गति और प्रेरणा दे, कि उस गतिसे हम शत्रुओंको जीतें ॥ १४ ॥

हे सदा जय प्राप्त करनेवाले इन्द्र ! अत्यन्त महारथी तू शत्रुओंको पराजित करनेवाले रथसे शत्रुओंके धनको जीतता है । हमारे रथी वीर अपने वेगवाले रथसे शत्रुपर हमला करें और शत्रुका धन जीतकर ले आयें ॥ १५ ॥

जो विशेष द्रष्टा है, जो विशेष शक्तिके कर्म करता है, जो प्रजाजनोंका एक ही पालक है उस प्रभुकी प्रशंसा करना योग्य है ॥ १६ ॥

प्रभु सबका संरक्षण करता है, अतः वह सबका मित्र, भाई और सखा है । वह हमें सुखी करे ॥ १७ ॥

राक्षसोंके विनाशके लिये हाथमें शस्त्र धारण करना चाहिये । स्पर्धा करनेवाला शत्रुओंका संपूर्ण पराभव करना चाहिए ॥ १८ ॥

प्रभु पुराण पुरुष है, धन देनेवाले है, सबका मित्र है, ज्ञानियोंको शुभ प्रेरणा देता है, प्रशंसनीय है । ऐसे श्रेष्ठ प्रभुकी मैं प्रार्थना करता हूं ॥ १९ ॥

प्रशंसनीय, अप्रतिहत गति, ऐसा वह प्रभु सब धनोंका एकमात्र स्वामी है ॥ २० ॥

४२४ स नो नियुद्भिरा पृण कामं वाजेभिरश्विभिः । गोमद्भिर्गोपते धृषत् ॥ २१ ॥
४२५ तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद् गवे न शाकिने ॥ २२ ॥
४२६ न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत् सीमुप श्रवद् गिरः ॥ २३ ॥
४२७ कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥ २४ ॥
४२८ इमा उ त्वा शतक्रतो ऽभि प्र णोनुवुर्गिरः । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ २५ ॥
४२९ दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते । अश्वो अश्वायते भव ॥ २६ ॥

अर्थ— [४२४] हे (गोपते) गोपाल इन्द्र ! (सः नः कामं) तू हमारी इच्छाको (नियुद्भिः धृषत्) अश्वोंसे दारिद्र्यनाशन करनेमें समर्थ होकर (आपृण) पूर्ण कर । (गोमद्भिः अश्विभिः) बहुत गायोंसे तथा अश्वोंसे युक्त होकर हमारी इच्छायें पूर्ण कर ॥ २१ ॥

[४२५] (वः सुते) तुम्हारे सोमयागमें (पुरुहूताय सत्वने) बहुतों द्वारा प्रशंसित, और बलवान् इन्द्रके लिये (तत् सचा गाय) वह स्तोत्र मिलकर गाओ । (यत् शाकिने) जो शक्तिमान् इन्द्रको सुखकर हो (शं गवे न) जैसा घास गौको सुखकर होता है ॥ २२ ॥

[४२६] (वसुः) निवासस्थान देनेवाला इन्द्र (गोमतः वाजस्य) बहुत गौओंसे युक्त अन्न और बलका (दानं न घ नि यमते) दान देता है । (यत् सीं गिरः उप श्रवत्) जिस समय वह इन स्तुतियोंको सुनता है ॥ २३ ॥

[४२७] (कुवित्सस्य गोमन्तं व्रजं) कुवित्सकी बहुत गौओंसे युक्त गौशालाके समीप (दस्युहा प्र गमत्) शत्रुनाशक इन्द्र गया । (हि शचीभिः नः अप वरत्) और अपनी शक्तियों द्वारा हमको उन गायोंको उसने दिया ॥ २४ ॥

[४२८] हे (शतक्रतो) बहुत प्रकारके कर्मकर्ता (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वा इमाः गिरः अभि प्र णोनुवुः) तेरे लिये ही ये स्तुतियां अच्छी तरह गायी जा रही हैं । (वत्सं न मातरः) जिस प्रकार वत्स माताके पास जाता है, वैसी ये स्तुतियां तुझे प्राप्त हों ॥ २५ ॥

[४२९] (तव सख्यं दूणाशं) तेरी मैत्री नाश होनेवाली नहीं होती । इसलिये हे (वीर) बलवान् ! (गव्यते गौः असि) गौकी इच्छावालेको तू गौ देनेवाला हो और (अश्वायते अश्वः भव) अश्वकी इच्छावालेको अश्वका प्रदाता हो ॥ २६ ॥

भावार्थ— प्रभु गौओंका पालन करता है । वह हमारी कामनाएं पूर्ण करे । अश्वों और गौओंसे हमें युक्त करके हमारी इच्छाएं पूर्ण करे । घरमें बहुत गौवें और घोडे होना यह धनीका लक्षण है । ऐसे धनी हम बनें और हमारी इच्छा पूर्ण होती रहे ॥ २१ ॥

प्रभुके स्तोत्र अनेक मित्र मिलकर, संघमें बैठकर, गाया करो । इससे प्रभु संतुष्ट होगा । जिस तरह गाय उत्तम घास खानेसे संतुष्ट होती है, वैसा वह प्रभु सामूहिक उपासनासे संतुष्ट होगा ॥ २२ ॥

प्रभु सबको रहनेके लिये स्थान देता है, गौवें देता है और अन्न तथा बल देता है जब वह स्तुति सुनता है तब वह दान देता है ॥ २३ ॥

बुरी पद्धतिसे रहनेवाला शत्रु, समाज शत्रु, शत्रुकी गोशालाके पास वीर जाता है और अपने सामर्थ्योंसे वह उन गौओंको वहांसे लाकर सज्जनोंको देता है ॥ २४ ॥

हे प्रभो ! तेरी स्तुतियां हम गाते हैं । वे तुझे प्राप्त हों । जिस तरह बच्चेको प्राप्त कर माताएं प्रसन्न होती हैं उस तरह तू इन स्तुतियोंसे प्रसन्न हो ॥ २५ ॥

प्रभुकी मित्रता विनाश करनेवाली नहीं होती । हे बलवान् वीर ! गायकी इच्छा करनेवालेको गाय दे और जो घोडा चाहता है उसको घोडा दे ॥ २६ ॥

४३० स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥ २७ ॥
४३१ इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः । वत्सं गावो न धेनवः ॥ २८ ॥
४३२ पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि । वाजेभिर्वाजयताम् ॥ २९ ॥
४३३ अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः । अस्मान् राये महे हिनु ॥ ३० ॥
४३४ अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात् । उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः ॥ ३१ ॥
४३५ यस्य वायोरिव द्रवद् भद्रा रातिः सहस्रिणी । सद्यो दानाय मंहते ॥ ३२ ॥

अर्थ— [४३०] (सः अन्धसः तन्वा) वह तू अन्नसे पुष्ट बने अपने शरीरसे (महे राधसे) महान् सिद्धिके लिये (मन्दस्व) आनन्दित हो। (स्तोतारं निदे न करः) स्तोताको निन्दकके आधीन मत कर ॥ २७ ॥

[४३१] हे (गिर्वणः) स्तुतियोंसे सेवनीय इन्द्र ! (सुते सुते) प्रत्येक यज्ञमें (इमाः गिरः त्वा नक्षन्ते) ये स्तुतियां तुझे प्राप्त होती हैं। (धेनवः गावः वत्सं) जैसी दूध देनेवाली गायें बछडेके पास जाती हैं ॥ २८ ॥

[४३२] (वाजेभिः वाजयतां) बलोंसे बलवान् बने वीरोंके तथा (पुरूणां स्तोतॄणां) बहुत स्तोताओंके (विवाचि) वाणीमें (पुरूतमं) श्रेष्ठतम बनकर रहे (त्वा) तुझ प्रभुको हमारी (गिरः नक्षन्ते) स्तुतियां प्राप्त होती हैं ॥ २९ ॥

[४३३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वाहिष्ठः) अतिशय वहनीय (अस्माकं स्तोमः) हमारे स्तोत्र (ते अन्तमः भूतु) तेरे अतिशय समीप हों। (अस्मान् महे राये हिनु) हमको महान् धनकी प्राप्तिके लिये प्रेरित कर ॥ ३० ॥

[४३४] (पणीनां बृबुः) वणिजोंमें तक्षा, शिल्पी (वर्षिष्ठे मूर्धन् अधि अस्थात्) श्रेष्ठ उन्नत मूर्धावत् स्थलपर अधिष्ठित हुआ है और (गाङ्ग्यः कक्षः न ऊरुः) गंगाके ऊंचे तटोंकी तरह वह श्रेष्ठ हुआ है ॥ ३१ ॥

[४३५] (वायोः इव) वायुकी तरह (यस्य द्रवत्) जिसने त्वरासे (भद्रा सहस्रिणी रातिः) कल्याणकारक, सहस्रों प्रकारका दान किया (सद्य दानाय मंहते) तत्काल ही दान देनेके लिये उसकी शक्ति बढती है ॥ ३२ ॥

यस्य द्रवत् भद्रा सहस्रिणी रातिः सद्यः दानाय मंहते— जिस प्रभुकी त्वरासे कल्याण करनेवाली सहस्रों प्रकारकी दानशक्ति तत्काल ही सहाय्यार्थ तत्पर रहती है।

भावार्थ— हे मनुष्य ! अन्नसे पुष्ट बने शरीरसे युक्त हो। अन्नसे शरीरको पुष्ट कर। महती सिद्धि प्राप्त करनेके लिये आनन्दित हो। भक्तका शत्रुके आधीन न कर ॥ २७ ॥

प्रत्येक यज्ञमें ईश्वरकी स्तुतियां गायी जाती हैं, जिस तरह गौवें बछडेके पास जाती हैं। गौवें बछडेके पास ही जाती हैं उस तरह स्तुतियां प्रभुके पास जाती हैं। स्तुतियोंका ध्येय प्रभुप्राप्ति ही है ॥ २८ ॥

धनों, ऐश्वर्यों, अन्नों और बलोंसे युक्त वीरोंके तथा अनेक प्रकारसे स्तुति करनेवाले भक्तोंकी वाणीमें जो श्रेष्ठसे श्रेष्ठ करके मान्य हुआ है, उसी प्रभुका हमारी वाणियां भी वर्णन करती हैं ॥ २९ ॥

हमारे स्तोत्र, हे प्रभो ! तेरे पास पहुंचे, तुझे प्रिय लगें। उनको सुनकर तू हमें उत्तम मार्गसे धन प्राप्त हो ऐसी प्रेरणा कर ॥ ३० ॥

व्यापार-व्यवहार करनेवालोंमें शिल्पी उच्च स्थानपर आरूढ होता है। क्योंकि शिल्पोंका व्यापार अधिक होता है, उससे धन अधिक प्राप्त होता है और व्यापारियोंको धनकी आवश्यकता होती है। गंगा आदि नदियोंके तट जैसे ऊंचे होते हैं वैसा ही शिल्पी उच्च स्थानोंमें विराजता है ॥ ३१ ॥

वायु जैसे त्वरासे बहकर सबपर उपकार करता है उस तरह उस प्रभुकी कल्याण करनेवाली सहस्रों प्रकारकी दान क्रिया तत्काल ही दानके लिये आगे बढती है ॥ ३२ ॥

४३६ तत् सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः । बृबुं सहस्रदातमं
सूरिं सहस्रसातमम् ॥ ३३ ॥

[४६]

ऋषिः- १४ शंयुर्बार्हस्पत्यः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः (=विषमा बृहती, समा सतोबृहती)

४३७ त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नर॒स्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥

४३८ स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥

४३९ यः सत्राहा विचर्षणि॒रिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥ ३ ॥

अर्थ— [४३६] (सहस्रदातमं सूरिं सहस्रसातमं) सहस्रों प्रकारके धनोंके दाता, बुद्धिमान् विद्वान् और सहस्रों दान करनेवाले (तत् बृबुं) उस शिल्पीका (नः विश्वे अर्यः कारवः) हमारे सब श्रेष्ठ कारीगर (सदा सु आ गृणन्ति) हमेशा अच्छी तरहसे वर्णन करते हैं ॥ ३३ ॥

[४६]

[४३७] (कारवः वाजस्य साता) हम शिल्पी लोग अन्नकी प्राप्तिके लिये, हे इन्द्र ! (त्वां इत् हि हवामहे) तुझे ही बुलाते हैं । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सत्पतिं त्वां नरः वृत्रेषु) सज्जनोंके पालक हुए तुझको दूसरे मनुष्य भी वृत्रादि शत्रु उत्पन्न होनेपर तुझे ही बुलाते हैं । (अर्वतः काष्ठासु त्वां) अश्वोंको दिशाओंमें विजयार्थ भेजनेके लिये तुझे ही बुलाते हैं ॥ १ ॥

[४३८] हे (चित्र) आश्चर्यकारक इन्द्र ! (वज्रहस्त) वज्रधारी (अद्रिवः) शस्त्रवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (धृष्णुया महः सः त्वं) शत्रुओंको दबानेके कारण महान् बना तू (नः स्तवानः) हमारे द्वारा प्रशंसित होकर हमें (गां रथ्यं अश्वं सं किर) गौ, रथ वहन करनेवाले अश्वको हमें दे दो । (जिग्युषे सत्रा वाजं न) जीतनेवाले वीरको जैसा बहुत अन्न देते हैं वैसा यह सब हमें दे दो ॥ २ ॥

[४३९] (यः सत्राहा विचर्षणिः) जो इन्द्र, सर्वदा सबको विशेष रीतिसे देखनेवाला है (तं इन्द्रं वयं हूमहे) उस इन्द्रको हम सहाय्यार्थ बुलाते हैं । हे (सहस्र मुष्क) सहस्र वीर्य, (तुविनृम्ण) बहुत धनवान् (सत्पते) सज्जनोंके पालक ! (समत्सु नः वृधे भव) संग्रामोंमें हमारी वृद्धि करनेवाला हो ॥ ३ ॥

भावार्थ— सहस्रों प्रकारके धनोंके दाता, सहस्रों प्रकारोंसे दान करनेवाले ज्ञानी विद्वान् शिल्पीकी– उस प्रभुकी– सब श्रेष्ठ कारीगर सदा उत्तम रीतिसे प्रशंसा गाते हैं । कारीगर उत्तम हों, वे सहस्रों प्रकारके धन उत्पन्न करें और उनका दान करें, अनेक प्रकारोंसे सहायता करें । वे उस श्रेष्ठ शिल्पी–जगत्स्रष्टा कारीगर– की प्रशंसाका गान करें ॥ ३३ ॥

हम शिल्पी विद्वान् धन अन्न आदिको प्राप्त करनेके लिये सहायार्थ तुझे ही बुलाते हैं । सब मनुष्य सज्जनोंके पालक बने हुए तुमको शत्रुओंके उपस्थित होनेपर सहाय्यार्थ बुलाते हैं । दिशाओंमें विजयार्थ घोडों घुडसवारों– को भेजनेके समय सहाय्यार्थ तुझे ही बुलाते हैं । तेरी सहायता मांगते हैं ॥ १ ॥

हे आश्चर्यकारक, वज्रको हाथमें धारण करनेवाले, शस्त्रास्त्रवान् इन्द्र ! वीर ऐसे शस्त्रास्त्र अपने पास रखे । शत्रुका नाश करनेकी शक्तिसे बडा बना तू, गौओं और रथको जोतनेके घोडोंको हमें दे । गौवें दूध पीकर पुष्ट होनेके लिये और रथके घोडे वीरोचित कर्म करनेके लिये हमें चाहिये ॥ २ ॥

४४० वार्धसे जनान् वृषभेव मन्युना घृषौ मीळ्ह ऋचीषम ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये ॥ ४ ॥
४४१ इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥ ५ ॥
४४२ त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसो ऽमित्रान् त्सुषहान् कृधि ॥ ६ ॥
४४३ यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद् वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥ ७ ॥

अर्थ— [४४०] (ऋचीषम) हे ऋचाके समान कर्मकर्ता इन्द्र ! (घृषौ मीळ्हे) शत्रुओंके घर्षक संग्राममें तू (जनान् वृषभा इव) शत्रुजनोंको बैलके समान (मन्युना वाधसे) क्रोधसे पीडित करता है। (महाधने अस्माकं अविता बोधि) महान् धन प्राप्तिके संग्राममें हमारा रक्षक हो। (तनूषु, अप्सु सूर्ये) शरीर, उदक और सूर्यके प्रकाशमें रक्षक हो ॥ ४ ॥

[४४१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ज्येष्ठं ओजिष्ठं) श्रेष्ठ और बलवर्धक (पपुरि श्रवः नः आ भर) पुष्ट करनेवाला अन्न हमको दे दो। हे (चित्र) आश्चर्यकारक (वज्रहस्त) वज्र हाथमें धरनेवाले (सुशिप्र) सुन्दर मुकुट धारण करनेवाले इन्द्र ! (येन इमे उभे रोदसी आ प्राः) जिससे तुम ये द्यावापृथिवी पूर्ण रीतिसे भरता है वह अन्न हमें दे दो ॥ ५ ॥

[४४२] हे (राजन्) राजा इन्द्र ! (देवेषु उग्रं चर्षणीसहं त्वां) देवोंके बीच उग्र वीर शत्रुके नाशक तुझे (अवसे हूमहे) रक्षणके लिये बुलाते हैं। (विश्वा पिब्दना सु विथुरा) संपूर्ण दुष्टोंको अच्छी तरह व्यथित कर। हे (वसो) निवासक इन्द्र ! (नः अमित्रान् सुषहान् कृधि) हमारे शत्रुओंको सुखसे जीतने योग्य करो ॥ ६ ॥

[४४३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नाहुषीषु कृष्टीषु) मानवी प्रजाओंमें (यत् ओजः नृम्णं च) जो बल और मानसिक शक्ति है और (यत् वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नं आ भर) जो पांचों वर्गोंके पास तेज रहता है वह सब हमको दे दो। (सत्रा विश्वानि पौंस्या) और इनके साथ संपूर्ण सामर्थ्य भी रहें ॥ ७ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र सबको विशेष रीतिसे देखता है। उस इन्द्रको हम अपनी सहायताके लिये बुलाते हैं। हे अनेकों पराक्रमवाले, बहुत धनवान् और सज्जनोंके पालक इन्द्र ! तू युद्धोंमें हमारी वृद्धि करनेवाला हो ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! घर्षण जिसमें होता है ऐसे संग्राममें शत्रुपक्षके जनोंको बैलके समान क्रोधसे तू बाधा पहुंचाता है। संग्राममें हमारे शरीर, जलस्थान, सूर्यप्रकाश आदिमें हमारा रक्षक हो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! श्रेष्ठ बलवर्धक पुष्टीकारक, यशोवर्धक अन्न हमें भरपूर दो। अन्न ऐसा हो कि जो बल बढावे, पोषण करे, ज्ञानसे यश बढावे और जो निर्दोष श्रेष्ठ हो। विलक्षण, शस्त्रधारी, उत्तम मुकुटधारी शत्रुनाशक वीर हो। ये द्यावापृथिवी जिससे पूर्ण रीतिसे भरे हैं ऐसा अन्न हो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! वीरोंमें विशेष शूर और शत्रुका पराभव करनेवाला तू है इसलिये तुझे हम अपने रक्षणके लिये बुलाते हैं। सबको पीसकर नष्ट करनेवाले शत्रुओंको उत्तम रीतिसे दूर कर। हे निवासक प्रभो ! हमारे शत्रुओंको सुगमतासे जीतने योग्य हमें कर ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! मानवी प्रजाजनोंमें जो शारीरिक बल, मानसिक सामर्थ्य, तथा जो पांच प्रकारके मानवोंमें तेज हैं, तथा उनके साथ जो सब सामर्थ्य रहते हैं वे सब हमें दे ॥ ७ ॥

४४४ यद् वा तृक्षौ मघवन् द्रुह्यावा जने यत् पूरौ कच्च वृष्ण्यम् ।
अस्मभ्यं तद् रिरीहि सं नृषाह्ये ऽमित्रान् पृत्सु तुर्वणे ॥ ८ ॥
४४५ इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥ ९ ॥
४४६ ये गव्यता मनसा शत्रुमादभु- रभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वण- स्तनूपा अन्तमो भव ॥ १० ॥
४४७ अध स्मा नो वृधे भवे- न्द्र नायमवा युधि ।
यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिनो दिद्यवस्तिग्ममूर्धानः ॥ ११ ॥

अर्थ— [४४४] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (तृक्षौ यत् वा) बलयुक्त मनुष्यमें (यत् द्रुह्यौ जने) तथा द्रोह करनेवाले मानवोंमें जो बल रहता है और (पुरौ यत् कत् च वृष्ण्यं) पुरिमें निवास करनेवालोंमें जो बल रहता है (तत् अस्मभ्यं) वह सब हमको (पृत्सु अमित्रान् तुर्वणे नृषह्ये) संग्रामोंमें शत्रुओंका नाश करनेके लिये और शत्रुके मनुष्योंके साथ युद्ध करनेके समय (सं रिरीहि) अच्छी प्रकार दे दो ॥ ८ ॥

[४४५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्रिधातु त्रिवरूथं स्वस्तिमत् शरणं छर्दिः) तीन धातुओंसे युक्त ठंडी, गरमी, वर्षा इन तीनों ऋतुओंमें हितकारी, कल्याणकारी, आश्रय करनेयोग्य घर (मघवद्भ्यः च मह्यं यच्छ) जैसा धनवालोंके लिये वैसा ही मुझे भी दे दो । (च एभ्यः दिद्युं यवय) और इनसे तेजस्वी शस्त्र दूर कर ॥ ९ ॥

[४४६] (ये गव्यता मनसा शत्रुं आदभुः) जो गौकी इच्छा करनेवाले मनसे शत्रुको दबा देते हैं । (धृष्णुया अधि प्रघ्नन्ति) जो धर्षण शक्तिसे प्रहार करते हैं । हे (मघवन्) धनवान् (गिर्वणः) प्रशंसनीय (इन्द्र) इन्द्र ! (अध स्म नः अन्तमः तनूपाः भव) और हमारा तू समीपवर्ती शरीर रक्षक हो और शत्रुसे हमारी रक्षा कर ॥ १० ॥

[४४७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अध नः वृधे भव स्म) और हमारे संवर्धन करनेके लिये सिद्ध रह (नार्यं युधि अव) हमारे नेताकी युद्धमें रक्षा कर । (पर्णिनः तिग्ममूर्धानः दिद्यवः) पंखवाले, तीक्ष्ण अग्रभागवाले, तेजस्वी बाण (यत् अन्तरिक्षे पतयन्ति) जब अन्तरिक्षसे गिरते हैं, उस समय हमारी रक्षा कर ॥ ११ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हलचल करनेवाले मनुष्योंमें जो बल है, द्रोह करनेवाले लोगोंमें जो बल है, पुरीमें रहनेवालोंमें जो भी कुछ बल होता है, वह सामर्थ्य हमको युद्धोंमें शत्रुओंका नाश करनेके लिये और शत्रुके वीरोंका पराभव करनेके लिये दे । हमें इन कामोंको करनेके लिये ये सब बल चाहिये ॥ ८ ॥

घर ऐसा हमें चाहिये जो (त्रि-धातु) सुवर्ण, रजत और लोहा इन धातुओंसे युक्त हो, तीन धारण शक्तियोंसे युक्त हो, (त्रि-वरूथं) सर्दी, गर्मी और वर्षामें रहने योग्य हो, (स्वस्तिमत्) कल्याण करनेवाला, हितकारी, आनन्द देनेवाला, (शरणं) जिसमें रहनेके लिये लोग आ जायं, शरण आनेवालोंको आश्रय देनेवाला (छर्दिः) आश्रयस्थान, घर- घर ऐसा हो । ऐसा घर हमें चाहिये । तथा (एभ्यः दिद्युं यावय) इनसे शस्त्र दूर रहे । घर ऐसा हो कि जिसमें रहनेसे शस्त्रधारी शत्रुका आक्रमण उसपर न हो सके ॥ ९ ॥

गौको प्राप्त करनेकी कामनासे शत्रुको दबाते हैं । वे एक प्रकारके वीर हैं । जो धर्षण शक्तिसे प्रहार करते हैं, शत्रुपर आक्रमण करके शत्रुपर प्रहार करते हैं । ये दूसरे प्रकारके वीर हैं । हमारे समीप रहकर हमारे शरीरका रक्षण करनेवाला तू हो । यहां शरीरका रक्षण करनेके लिये शरीरके पास रहनेवाले ' शरीर रक्षक ' की कल्पना है ॥ १० ॥

+

४४८ यत्र शूरासस्तन्वो वितन्वते प्रिया शर्म पितृणाम् ।
अध स्मा यच्छ तन्वे तने च छर्दिरचित्तं यावय द्वेषः ॥ १२ ॥
४४९ यदिन्द्र सर्गे अर्वतश्चोदयासे महाधने ।
असमने अध्वनि वृजिने पथि श्येनाँ इव श्रवस्यतः ॥ १३ ॥
४५० सिन्धूँरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोशमनु ष्वणि ।
आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि गृभीता बाह्वोर्गवि ॥ १४ ॥

[४७]

ऋषिः- २१ गर्गो भारद्वाजः। देवताः- इन्द्रः, १-५ सोमः, २० देव-भूमि-बृहस्पतीन्द्राः, २२-२५ सार्ञ्जयः प्रस्तोकः (दानस्तुतिः), २६-२८ रथः, २९-३० दुंदुभिः, ३१ दुंदुभीन्द्रौ। छन्दः- त्रिष्टुप्, १९ बृहती, २३ अनुष्टुप्, २४ गायत्री, २५ द्विपदा त्रिष्टुप्, २७ जगती।

४५१ स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥ १ ॥

अर्थ— [४४८] (यत्र शूरासः तन्व वितन्वते) जिस समय शूरवीर अपने शरीरोंको अर्पण करते हैं। युद्धके समय (पितृणां प्रिया शर्म) पितरोंके लिये प्रिय सुख होता है। (अध स्म तन्वे च तने) इस समय शरीरके और पुत्रके लिये (छर्दिः यच्छ) सुरक्षित घर दे दो और (अचित्तं द्वेषः यावय) अविचारी शत्रुको दूर करो ॥ १२ ॥

[४४९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (महाधने सर्गे असमने अध्वनि) संग्राममें उद्योगमें, विषम मार्गमें (अर्वतः) अश्वोंको (यत् चोदयासे) जब प्रेरणा करते हैं। उस समय वे घोडे (वृजिने पथि श्रवस्यतः श्येनान् इव) कुटिल मार्गमें भी अन्नरूप आमिषकी इच्छासे दौडनेवाले श्येन पक्षियोंकी तरह शीघ्र गमन करते हैं ॥ १३ ॥

[४५०] (प्रवणे आशुया यतः सिन्धून् इव) नीचेके प्रदेशमें शीघ्र गतिसे जानेवाली नदियोंकी तरह (आमिषि वयः न) मांसके लिये दौडनेवाले पक्षियोंके समान (स्वनि अनु क्लोशं) शब्दमें भय उत्पन्न होनेपर (बाह्वोः गृभीताः ये गवि आवर्वृतति) बाहुओंसे पकडे गये रास जिनके ऐसे घोडे भूमिपर दौडते जाते हैं और विजय पाते हैं ॥ १४ ॥ [४७]

[४५१] (अयं स्वादु किल) यह सोम वास्तवमें स्वादु है। (उत अयं मधुमान्) और यह मीठा भी है। (अयं तीव्रः किल) यह सचमुच अति तीक्ष्ण है (उत अयं रसवान्) और यह रसवाला भी होता है (उतः अस्य पपिवांसं इन्द्रं) और इस सोमके पीनेवाले इन्द्रको (आहवेषु कः चन न सहते) संग्राममें कोई भी पराजित नहीं कर सकता ॥ १ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हमारा संवर्धन करनेके लिये तत्पर रह। नेताकी युद्धमें रक्षा कर। तीक्ष्ण अग्रवाले तेजस्वी पंख लगे बाण जिस समय अन्तरिक्षमेंसे गिरने लगते हैं, उस प्रकारसे युद्धमें हमारी सुरक्षा कर ॥ ११ ॥

जिस युद्धमें शूर लोग अपने शरीरोंको अर्पण करते हैं, शरीरोंको अर्पण करनेकी तैयारीसे जहां शूरवीर युद्ध करते हैं, वैसा युद्ध पितरोंको आनन्द देनेवाला होता है। ऐसा युद्ध करना योग्य है। हे इन्द्र ! शरीरकी तथा बालबच्चोंकी सुरक्षाके लिये उत्तम सुरक्षित घर दे। ऐसा घर हो कि जिसमें बालबच्चोंकी सुरक्षा हो। अविचारी शत्रुको दूर कर। वह हमें वारंवार न सताएं ऐसा कर ॥ १२ ॥

हे इन्द्र ! युद्धमें, नवीन उत्पत्ति करनेके व्यवसायमें, अथवा विषम मार्गमें घोडोंको जब तू दौडता है, तब कुटिल मार्गसे भी अन्न चाहनेवाले श्येन पक्षी जैसे दौडते हैं, वैसे वे घोडे दौडने लगते हैं ॥ १३ ॥

इस इन्द्रके घोडे युद्ध ध्वनि होनेपर इतने वेगसे दौडते हैं कि जिस तरह नदियोंका प्रवाह निम्न प्रदेशकी तरफ शीघ्रतासे दौडता है, अथवा मांस खानेवाले पक्षी जिस तरह मांसके टुकडेपर झपट्टा मारते हैं। इसी वेगके कारण इन्द्रके घोडे सदा विजयी होते हैं। वीरोंके घोडे भी इसी तरह वेगवान् और वीर हों ॥ १४ ॥

४५२ अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद ।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य वि नवतिं नव च देह्यो३ हन् ॥ २ ॥
४५३ अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः ।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥ ३ ॥
४५४ अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः ।
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ॥ ४ ॥
४५५ अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।
अयं महान् महता स्कम्भनेनोद् द्यामस्तभ्नाद् वृषभो मरुत्वान् ॥ ५ ॥

अर्थ— [४५२] (इह अयं स्वादु मदिष्ठः आस) यहां यह स्वादु सोमरस पीनेपर अतिशय हर्षकारक सिद्ध हुआ, (यस्य इन्द्रः वृत्रहत्ये ममाद) जिसके पान करनेसे इन्द्र शत्रुका नाश करनेके समयमें हर्षयुक्त हुआ। (यः शम्बरस्य पुरूणि च्यौत्ना) जिसने शम्बरासुरके बहुतसे दुर्ग तथा किलोंका नाश किया। (देह्यः नवतिं नव च वि हन्) और शत्रुके निन्यानवे पुरियोंका भी जिसने नाश किया ॥ २ ॥

[४५३] (अयं पीतः मे वाचं उत् इयर्ति) सोमके पीनेसे मेरी वाणी ऊंची होकर निकलती है। (अयं उशतीं मनीषां अजीगः) यह सोम तेजस्वी बुद्धिको प्रकाशित करता है। (अयं धीरः षट् उर्वीः अमिमीत) इस बुद्धिवर्धक सोमने पृथ्वीके छः विभाग बनाये हैं। (याभ्यः आरे कत् चन भुवनं न) जिनसे कोई भी अधिक भूविभाग नहीं है ॥ ३ ॥

[४५४] (सः अयं सोमः) यह वह सोम है (यः पृथिव्याः वरिमाणं अकृणोत्) जिसने पृथिवीको अत्यन्त विस्तृत किया, (दिवः वर्ष्माणं) और द्युलोकको भी अत्यन्त दृढ किया, (अयं सः) यह वही सोम है। (अयं तिसृषु प्रवत्सु पीयूषं दाधार) इस सोमने औषधियों, उदक और गायोंमें उत्तम अमृतरसको रखा है। (उरु अन्तरिक्षं) और विस्तृत अन्तरिक्षको भी धारण किया है ॥ ४ ॥

[४५५] (शुक्रसद्मनां उषसां अनीके) निर्मल अन्तरिक्ष जिनका घर ऐसी उषाओंके समूहमें (अयं चित्रदृशीकं अर्णः विदत्) यह सोम ही चित्रविचित्र ज्योतिको प्रकाशित करता है। (महान् वृषभः मरुत्वान्) महान् बलवाला और मरुतोंसे युक्त (अयं महता स्कंभनेन) यह सोम बडे मध्यवर्ती स्तंभसे (द्यां उत् अस्तभ्नात्) द्युलोकको ऊपर स्थापित करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— सोमरस स्वादु, रुचिकर, मीठा और तीखा होता है। इसके पीनेसे इन्द्रको युद्धमें कोई शत्रु जीत नहीं सकता इतनी शक्ति आती है ॥ १ ॥

यह स्वादिष्ट सोमरस बहुत ही हर्षदायक है। इसीलिए इसका पान करके इन्द्र उत्साहयुक्त होकर शत्रुओंका नाश करता है और उसी उत्साहसे युक्त होकर इस इन्द्रने असुरोंके अनेक किलोंका नाश किया ॥ २ ॥

इस सोमरसको पीनेवालेकी वाणी ऊंची और गंभीर होती है, यह सोमरस बुद्धिको प्रकाशित करता है। इस सोमने अपनी बुद्धिसे पृथ्वीके ६ हिस्से किए। इन छै हिस्सोंसे बढकर और कोई भूविभाग नहीं है ॥ ३ ॥

इसी सोमके कारण यह पृथिवी अत्यन्त विस्तृत हुई। इसी सोमके कारण द्युलोक भी अत्यन्त दृढ हुआ। इसी सोमरसके कारण औषधियों, जलों और गायोंमें उत्तम अमृत है। यही विस्तृत अन्तरिक्षको धारण करता है ॥ ४ ॥

निर्मल अन्तरिक्षमें जितनी भी उषायें प्रकाशित होती हैं, उन सभीमें सोमकी ही चित्रविचित्र ज्योति प्रकाशित हो रही है। यह सोम बहुत बलशाली, महान् और उत्साहसे युक्त होकर द्युलोकमें विराजमान है ॥ ५ ॥

४५६ धृषत् पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।
माध्यंदिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि ॥ ६ ॥
४५७ इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ ।
भवा सुपारो अतिपारयो नो भवा सुनीतिरुत वामनीतिः ॥ ७ ॥
४५८ उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान् त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥ ८ ॥
४५९ वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा ।
इषमा वक्षीषां वर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन् रायो अर्यः ॥ ९ ॥

अर्थ—[४५६] हे (शूर) शूरवीर (इन्द्र) इन्द्र ! (वृत्रहा वसूनां समरे) शत्रुनाशक तू धनोंकी प्राप्तिके संग्राममें (कलशे सोमं धृषत्) कलशमें रहे सोमको शत्रुका घर्षण करनेके लिये (पिब) पी, (माध्यंदिने सवने आ वृषस्व) मध्याह्नके सवनमें अपना बल बढा और (रयिस्थानः रयिं अस्मासु धेहि) धनका आधार बनकर तू हमें धन दे ॥ ६ ॥

[४५७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (पुरएता इव नः प्र पश्य) अग्रगामीकी तरह हमको देख (वस्यः अच्छ प्रतरं नः प्र नय) श्रेष्ठ धन सुगमतासे हमें प्राप्त हों । (सुपारः भव) अच्छी तरह दुःखसे पार करानेवाला हो । (नः अतिपारयः) हमें शत्रुओंसे छुडाओ । (सुनीतिः भव) सुन्दर नीतिवान् हो अथवा पार सुगमतापूर्वक ले जानेवाला हो । (उत वामनीतिः) और प्रशंसनीय नीतिका संचालक हो ॥ ७ ॥

[४५८] हे इन्द्र ! (विद्वान् उरुं लोकं नः अनु नेषि) तू ज्ञानी है इसलिये विस्तीर्ण लोकको हमें प्राप्त करा । (स्वर्वत् अभयं स्वस्ति ज्योतिः) सुखयुक्त, भयरहित, कल्याणकारक ज्योति हमें प्राप्त करा । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (स्थविरस्य ते ऋष्वा बृहन्ता बाहू शरणा उप स्थेयाम) वृद्धके बडे विशाल बाहुओंकी शरणमें हम जाकर तेरे समीप रहें ॥ ८ ॥

[४५९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वरिष्ठे वन्धुरे नः आ धाः) श्रेष्ठ रथपर हमको बैठा । हे (शतावन्) सैकडों धनोंके स्वामी इन्द्र ! (वहिष्ठयोः अश्वयोः आ धाः) अतिशय वहन करनेवाले अश्वोंके रथमें हमें स्थापन कर । (इषां वर्षिष्ठां इषं आ वक्षि) अन्नोंमेंसे अत्यन्त श्रेष्ठ अन्न हमारे लिये दे । हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (अर्यः नः रायः मा तारीत्) तू धनका स्वामी है, हमारे धनका कोई शत्रु नाश न करे ऐसा हमारा संरक्षण कर ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे शूरवीर इन्द्र ! शत्रुनाशक तू धनोंकी प्राप्ति करानेवाले संग्राममें सोमको पी और शत्रुओंका नाश कर ! माध्यंदिन यज्ञमें अपना बल बढा और धनका आधार बनकर तू हमें धन दें ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तू उत्तम नीतिमान् है, तू उत्तम प्रशंसनीय नीतिका संचालक है, अतः हमारा नेता बनकर हमारी देखभाल कर, श्रेष्ठ धनवाला तू हमें सुगमतासे दुःखसे पार ले चल । तू हमें दुःखोंसे पार ले जानेवाला हो, हमें शत्रुओंसे पार ले जा ॥ ७ ॥

तू सब जानता है इसलिये सुखदायी विस्तीर्ण प्रदेशमें हमको अनुकूलतासे ले चल । सुखमय, भयरहित, कल्याण-कारण तेज हमें प्राप्त हो । तुझ वृद्ध पुरातन पुरुषके विशाल पुष्ट बडे बाहुओंकी शरण जाकर हम तेरे पास आकर रहें । तेरे आश्रयसे रहकर आनंद प्राप्त करें ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! उत्तम रथपर हमें बिठला । हम उत्तम रथपर बैठें ऐसा कर । उत्तम दौडनेवाले घोडोंके रथपर हमें बिठला । हमारे पास उत्तम चलनेवाले घोडे हों । अन्नोंमें जो श्रेष्ठ अन्न है वही हमें मिले ऐसा कर । तू स्वामी है, अतः तू ऐसा कर कि हमारा धन कोई दूसरा विनष्ट न करे ॥ ९ ॥

४६० इन्द्र॑ मृळ मह्यं॑ जीवातु॑मिच्छ चो॒दय॒ धिय॒मय॑सो॒ न धारा॑म् ।
यत् किं चा॒हं त्वा॒युरि॒दं वदा॑मि॒ तज्जु॑षस्व कृ॒धि मा॑ दे॒ववन्तम् ॥ १० ॥

४६१ त्रा॒तार॒मिन्द्र॑मवि॒तार॒मिन्द्रं॒ हवे॑हवे सु॒हवं॒ शूर॒मिन्द्र॑म् ।
ह्वया॑मि श॒क्रं पु॑रुहू॒तमिन्द्रं॑ स्व॒स्ति नो॑ म॒घवा॑ धा॒त्विन्द्रः॑ ॥ ११ ॥

४६२ इन्द्रः॑ सु॒त्रामा॒ स्ववाँ॒ अवो॑भिः सुमृळी॒को भ॑वतु वि॒श्ववे॑दाः ।
बाध॑तां॒ द्वेषो॒ अभ॑यं कृणोतु सु॒वीर्य॑स्य॒ पत॑यः स्याम ॥ १२ ॥

४६३ तस्य॑ व॒यं सु॑म॒तौ य॒ज्ञिय॒स्याऽपि॑ भ॒द्रे सौ॑मन॒से स्या॑म ।
स सु॒त्रामा॒ स्ववाँ॒ इन्द्रो॑ अ॒स्मे आ॒राच्चि॒द् द्वेषः॑ सनु॒तर्यु॑योतु ॥ १३ ॥

अर्थ— [४६० । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मृळ) हमको सुखी कर । (जीवातुं मह्यं इच्छ) दीर्घ जीवन मेरे लिये मिले ऐसी इच्छा कर । (धियं चोदय) मेरी बुद्धिको अच्छे कर्मोंमें प्रेरित कर । (अयसः न धारां) लोहमय खड्ग आदिकी धाराकी तरह मेरी बुद्धि तीक्ष्ण हो । (त्वायुः इदं यत् किं च अहं वदामि) तेरी प्रीति चाहता हुआ जो कुछ मैं बोलता हूं (तत् जुषस्व) वह श्रवण कर । (मा देववन्तं कृधि) मुझे रक्षकदेवोंसे युक्त कर ॥ १० ॥

[४६१] (त्रातारं इन्द्रं) शत्रुओंसे रक्षण करनेवाले इन्द्रको, (अवितारं इन्द्रं) सब प्रकारसे संरक्षण करनेवाले इन्द्रको (हवे हवे सुहवं शूरं शक्रं) प्रत्येक समयमें सुखसे बुलाने योग्य शूरवीर, सामर्थ्यवान् (पुरुहूतं इन्द्रं ह्वयामि) बहुतजनों द्वारा सहाय्यार्थ बुलाने योग्य इन्द्रको मैं बुलाता हूं । (मघवा इन्द्रः स्वस्ति नः धातु) वह धनवान् इन्द्र हमारा कल्याण करे ॥ ११ ॥

[४६२] (सुत्रामा स्ववान् इन्द्रः) अच्छी प्रकारसे रक्षण करनेवाला आत्मशक्तिसे युक्त वह इन्द्र (अवोभिः सुमृळीकः भवतु) रक्षणोंसे सुख देनेवाला हो (विश्ववेदाः द्वेषः बाधतां) सर्वज्ञ वह प्रभु हमारे शत्रुओंका नाश करनेवाला हो । (अभयं कृणोतु) निर्भयता स्थापन करे । (सुवीर्यस्य पतयः स्याम) हम उत्तम बलके स्वामी बनें ॥ १२ ॥

[४६३] (यज्ञियस्य सुमतौ वयं स्याम) पूज्य पुरुषकी उत्तम बुद्धिमें हम रहें । (भद्रे सौमनसे अपि) कल्याणकारक अच्छे मनसे युक्त भी हम हों । (सुत्रामा स्ववान् सः इन्द्रः) उत्तम पालन करनेवाला, धनवान् वह इन्द्र (अस्मे आरात् चित् द्वेषः सनुतः युयोतु) हमारेसे दूर देशमें छिपे हुए शत्रुओंको सदाके लिये दूर करे ॥ १३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! मुझे सुखी कर । मुझे दीर्घ जीवन प्राप्त हो ऐसी इच्छा कर । मेरी बुद्धिको सत्कर्म करनेकी प्रेरणा कर । तलवारकी तीक्ष्ण धाराके समान मेरी बुद्धि तीक्ष्ण हो । तेरा प्रेम चाहता हुआ जो मैं बोलता हूं वह सुन । मुझे देवोंके साथ रहनेवाला कर । मुझे दिव्य शक्तियां प्राप्त हों ॥ १० ॥

रक्षक, पालक, सहाय्यार्थ बुलाने योग्य, शूर, समर्थ, बहुत जिसको सहाय्यार्थ बुलाते हैं, ऐसे इन्द्रको मैं सहाय्यार्थ बुलाता हूं । धनवान् वह इन्द्र हमें सुख प्रदान करें ॥ ११ ॥

उत्तम रक्षक आत्मशक्तिसे शक्तिमान् बना, वह प्रभु अपने अनेक रक्षणसामर्थ्योंसे हमें उत्तम सुख देनेवाला हो । सर्वज्ञ प्रभु हमारे शत्रुओंको बाधा पहुंचावे । सर्वत्र निर्भयता स्थापित करे । हम उत्तम सामर्थ्यके स्वामी बनें । जिससे निर्भय होकर विचरें ॥ १२ ॥

पूजनीय पुरुषकी श्रेष्ठ बुद्धि हमारे लिये अनुकूल हो । कल्याणकारी उत्तम मन हमारे अनुकूल हो । उत्तम संरक्षण करनेवाला आत्मशक्तिवान् इन्द्र हमसे दूर रहनेवाले शत्रुओंको सदाके लिये दूर रखे ॥ १३ ॥

४६४ अव त्वे इन्द्र प्रवतो नोर्मि- गिरो ब्रह्माणि नियुतो धवन्ते ।
उरू न राधः सवना पुरूण्य- पो गा वज्रिन् युवसे समिन्दून् ॥ १४ ॥
४६५ क ईं स्तवत् कः पृणात् को यजाते यदुग्रमिन्मघवा विश्वहावेत् ।
पादाविव प्रहरन्नन्यमन्यं कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः ॥ १५ ॥
४६६ शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमाय- न्नन्यमन्यमतिनेनीयमानः ।
एधमानद्विळुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥ १६ ॥
४६७ परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥ १७ ॥

अर्थ— [४६४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वे नियुतः गिरः) तुझे स्तोताकी वाणियां (ब्रह्माणि) स्तोत्र रूपमें पहुंचें। (ऊर्मिः प्रवतः न) जैसे जलप्रवाह नीचेके प्रदेशमें दौडते हुए (अव धवन्ते) जाते हैं। (उरु राधः पुरूणि सवना) बहुत अन्न और बहुत सोम तुझे ही प्राप्त होता है। हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र (अपः गाः इन्दून् सं युवसे) ये जल गौके दूध, दही आदिको सोमरसोंके साथ अच्छी तरह मिश्रित करता है ॥ १४ ॥

[४६५] (कः ईं स्तवत्) कौन इस इन्द्रकी स्तुति करता है ? (कः पृणात्) कौन उसको प्रसन्न करता है ? (कः यजाते) कौन उसका यजन करता है ? (यत् मघवा उग्रं इत् विश्वहा अवेत्) जिससे धनवान् इन्द्र उग्रवीर होकर सदा हमारा रक्षण करे। (प्रहरन् पादौ इव) जिस प्रकार मनुष्य चलता हुआ मार्गमें पैरोंको एकके बाद दूसरा रखता है, उस प्रकार (शचीभिः पूर्वं अपरं अन्यं अन्यं कृणोति) अपनी बुद्धिद्वारा पहिले एकको पीछे दूसरेको इस प्रकार उन्नत करता रहता है ॥ १५ ॥

[४६६] (उग्रं उग्रं दमायन्) हरएक उग्र शत्रुका दमन करता है, (अन्यं अन्यं अतिनेनीयमानः) हरएक उत्तम पुरुष अत्यंत बढाता है ऐसा (वीर शृण्वे) यह वीर है ऐसा सुनते हैं। (एधमान-द्विट् उभयस्य राजा इन्द्रः) वर्धमान शत्रुओंका द्वेष करनेवाला, और द्यावापृथिवीका राजा यह इन्द्र (विशः मनुष्यान् चोष्कूयते) अपने प्रजारूपी मनुष्योंको रक्षणके लिये बारबार बुलाता है ॥ १६ ॥

[४६७] (पूर्वेषां सख्या परा वृणक्ति) पहिलोंकी मैत्रियोंको दूर करता है और (वितर्तुराणः अपरेभिः एति) शत्रुकी हिंसा करता हुआ दूसरोंके साथ चलता है। (अनानुभूतीः अवधून्वानः) अनुभवशून्य प्रजाओंको दूर करता है और इस तरह (पूर्वीः शरदः इन्द्रः तर्तरीति) पूर्व आयुके वर्षोंका यह इन्द्र अतिक्रमण करता है ॥ १७ ॥

भावार्थ— स्तोताओंकी वाणियां इन्द्रकी प्रशंसा गाती है। तथा सोमरस गौके दूधके साथ अच्छी तरह मिलाये जाते हैं ॥ १४ ॥

कौन प्रभुकी उत्तम स्तुति कर सकता है ? कौन इस प्रभुको प्रसन्न कर सकता है ? कौन इसके लिये यज्ञ करता है ? धनवान् प्रभु सर्वदा अपने आपको उग्रवीर जानता है और अपनी नाना प्रकारकी शक्तियोंसे एकको पहिले और दूसरेको दूसरी बार ऐसा एक एकको उच्च करता रहता है। एकको पहिले ऊंचा बनाता है, तो दूसरेको पश्चात् ऊंचा बनाता है ॥ १५ ॥

वह इन्द्र हरएक शत्रुके वीरको दबाता है। हरएक उत्तम मनुष्योंको बढाता है। ऐसा यह वीर है ऐसा सुनते हैं। बढनेवाले शत्रुसे यह द्वेष करता है। दोनोंका यह इन्द्र राजा है। प्रजाजनोंका संरक्षण करता है ॥ १६ ॥

वह इन्द्र पूर्वकालके लोगोंकी मित्रताएं दूर रखता है और शत्रुका नाश करके वह नवीन नवीन लोगोंके साथ मित्रता करनेके लिये जाता है। अनुभवशून्य लोगोंको वह दूर करता है और पूर्वके वर्ष इन्द्र व्यतीत करके आगे बढता है। पूर्व समय जो मित्र हुए हैं उनके पाससे वह नवीन भक्तोंके साथ अधिक रहने लगता है। नवीनोंको उच्च बनानेका उसका हेतु है। शत्रुओंको दूर करके वह नये भक्तोंके साथ रहता है। अनुभवशून्य लोगोंको वह दूर करता है और अनुभवी लोगोंके पास रहता है। इस तरह उनके आयुके वर्ष जाते हैं। सारी आयुमें वह नवीन भक्तोंको अपने पास अधिकाधिक लानेका यत्न करता रहता है ॥ १७ ॥

४६८ रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥ १८ ॥
४६९ युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति ।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥ १९ ॥
४७० अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत् ।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टा—वित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम् ॥ २० ॥
४७१ दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः ।
अहन् दासा वृषभो वस्नयन्तो—दव्रजे वर्चिनं शम्बरं च ॥ २१ ॥

अर्थ-[४६८] (रूपं रूपं प्रतिरूपः बभूव) प्रत्येक रूपके लिये यह प्रभु आदर्शरूप हुआ है । (अस्य तत् रूपं) इसका वह रूप (प्रति चक्षणाय) आदर्श करके देखनेके लिये है । (इन्द्रः मायाभिः पुरुरूपः ईयते) प्रभु अपनी अनन्त शक्तियोंसे अनेक रूप बनकर जाता है, (अस्य हि दश शता हरयः युक्ताः) इसके हजारों घोडे जोते हैं ॥ १८ ॥

[४६९] (हरिता रथे युजानः त्वष्टा) हरित अश्वोंको रथमें जोडनेवाला त्वष्टा इन्द्र (इह भूरि राजति) यहां बहुत चमकता है । (उत सूरिषु आसीनेषु) और ज्ञानी लोग सभामें बैठनेपर (विश्वाहा कः द्विषतः पक्षः आसते) सदा कौन शत्रुके पक्षका सामना करके रहता है ? ॥ १९ ॥

[४७०] हे (देवाः) देवो ! (अगव्यूति क्षेत्रं आ अगन्म) गोविहीन क्षेत्रमें हम आ गये हैं । (उर्वी सती भूमिः अंहू-रणा अभूत्) यहां विस्तीर्ण क्षेत्र होनेपर यह पृथ्वी पापी शत्रुओंके युद्धक्षेत्र-सी हुई है । हे (बृहस्पते) बृहस्पति ! तू (गो-इष्टौ प्रचिकित्स) गौओंकी प्राप्ति होनेपर उनकी विशेष चिकित्सा कर (इत्था सते जरित्रे) इस प्रकार सत्य भक्त स्तोताके लिये हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पन्थां) अच्छा मार्ग बता ॥ २० ॥

[४७१] (सद्मनः जाः सदृशीः कृष्णाः) इन्द्रने अपने घरसे जन्मी हुई कृष्णवर्ण प्रजाको (दिवेदिवे अन्यं अर्धं) प्रतिदिन दूसरे आधे भागको (अप असेधत्) हटा दी । (वृषभः दासा वस्नयन्ता) बलवान् इन्द्रने निवास करनेकी इच्छा करनेवाले (वर्चिनं शंबरं च उदव्रजे) वर्ची और शम्बरको व्रजके बाहरके देशमें (अहन्) मारा, वध किया ॥ २१ ॥

भावार्थ— विश्वमें जितने रूप हैं उनके लिये आदर्शरूप प्रभु है । प्रत्येक रूपमें प्रभुका प्रतिबिंब देखनेके लिये है । प्रभु ही अनन्त शक्तियोंसे बहुरूप बना है, इसलिये उसको 'पुरुरूप, बहुरूप या विश्वरूप' कहते हैं । उसके रथको हजारों घोडे किरणरूपसे जोते हैं ॥ १८ ॥

रथको हरा रंगके घोडे जोतनेवाला सूर्य यहां प्रकाशित होता है । ज्ञानी लोग सभामें बैठनेपर सदा शत्रुके पक्षके सामने विरोधी होकर यही बैठता है और शत्रुका विरोध करता है ॥ १९ ॥

जहां गौएं नहीं हैं ऐसे स्थानमें हम गये, तो वह विशाल भूमि होनेपर भी पापका युद्धक्षेत्र-सी लगती है । हे ज्ञानी प्रभो ! गौओंकी इच्छा कर और गौवें प्राप्त होनेपर उनके रोगोंको उत्तम प्रकार दूर कर । इस तरह रहकर जो प्रभुका स्तोत्र गाते हैं उनको, हे प्रभो ! अच्छा मार्ग बता ॥ २० ॥

वहां जन्मी हुई एक जैसी कृष्णवर्ण प्रजाको दूसरे आधे भागमें प्रतिदिन अपने घरसे बाहर हटा देता है । सूर्य आकर वहां रही रात्रीको दूसरे देशमें प्रतिदिन भगाता है । इसी तरह राजा शत्रुकी प्रजाको दूसरे देशमें हटा दे । बलवान् इन्द्रने वहां रहनेवाले दास, वर्ची और शंबरको छदक जानेके मार्गमें ही मारा । शत्रुको दूर किया ॥ २१ ॥

४७२ प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात् ।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥ २२ ॥
४७३ दशाश्वान् दश कोशान् दश वस्त्राधिभोजना ।
दशो हिरण्यपिण्डान् दिवोदासादसानिषम् ॥ २३ ॥
४७४ दश रथान् प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः । अश्वथः पायवेऽदात् ॥ २४ ॥
४७५ महि राधो विश्वजन्यं दधानान् भरद्वाजान् त्सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट ॥ २५ ॥
४७६ वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्वाऽऽस्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥ २६ ॥

अर्थ— [४७२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते राधसः प्रस्तोकः) तेरी शक्तियोंकी स्तुति करनेवालेने (दश कोशयीः) सुवर्णपूर्ण दश कोश और (दश वाजिनः नु) दश घोडे (अदात्) दिये (दिवोदासात्) दिवोदाससे (अतिथि ग्वस्य शाम्बरं राधः) अतिथिको गौ देनेवालेका धन जो, शम्बरसे प्राप्त था वह भी हमने (वसु प्रति अग्रभीष्म) धन ग्रहण किया ॥ २२ ॥

[४७३] (दश अश्वान्) दश अश्व (दश कोशान्) सुवर्णपूर्ण दश कोश (अधिभोजना दश वस्त्रा) अधिक भोजन और दश वस्त्र (दशो हिरण्यपिण्डान्) दश सुवर्णपिण्ड (दिवोदासात्) दिवोदास राजासे (असानिषं) प्राप्त किये ॥ २३ ॥

[४७४] (दश प्रष्टिमतः रथान्) दश घोडोंसे युक्त रथोंको (शतं गाः) सौ गायें (अथर्वभ्यः पायवे) अथर्व गोत्रवालोंको और पालकको (अश्वथः अदात्) अश्वथने दी ॥ २४ ॥

[४७५] (विश्वजन्यं महि राधः) सब मनुष्योंके लिये हितकारक महान् धनको (दधानान् भरद्वाजान्) धारण करनेवाले भरद्वाजके पुत्रोंका (सार्ञ्जयः) सृञ्जयके पुत्रने धनका (अभ्ययष्ट) प्रदान करके सत्कार किया ॥ २५ ॥

[४७६] हे (वनस्पते) वनस्पतिविकार रथ ! तू (वीड्वंगः भूयाः) दृढ मजबूत अवयववाला (अस्मत् सखा) हमारा मित्र सहायक (प्रतरणः सुवीरः) तारक और सुन्दर शूरवीर योद्धाओंसे वा पुत्रोंसे युक्त, (गोभिः संनद्धः असि) और गायके चमडेकी डोरीसे अच्छी तरह बंधा हुआ हो ॥ २६ ॥

भावार्थ— हे प्रभो ! तेरी सिद्धियोंकी प्रशंसा करनेवालेने धनके दस कोश और दस घोडे मुझे दानमें दिये । इस तरह दान करना चाहिये । दिवोदाससे, अतिथिको गौ देनेवालेका धन जो शम्बरने अपने अधिकारमें रखा था, वह धन हमने प्राप्त किया ॥ २२ ॥

जो देवोंके सेवक हैं, उनसे सोना, अश्व, वस्त्र आदि हर तरहके भोग्य पदार्थ प्राप्त किए जा सकते हैं ॥ २३ ॥

घोडोंके साथ रहनेवाले शूरवीरने दस घोडोंसे युक्त रथ, सौ गाय स्थिर मनवाले मनुष्यको प्रदान किए ॥ २४ ॥

सार्ञ्जय अर्थात् शत्रुको जीतनेवाले शूरवीरके पुत्रने भी सब मनुष्योंके लिए हित कारक महान् धनको धारण करनेवाले भरद्वाज अर्थात् अन्नके द्वारा प्रजाओंका भरणपोषण करनेवालेका धन देकर सत्कार किया ॥ २५ ॥

रथ मजबूत हो, वीरका हितकारी, दुःखसे बचानेवाला, वीरोंके बैठनेयोग्य और डोरियोंसे अच्छी तरह बंधा हो ॥ २६ ॥

४७७ दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृत—मिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥ २७ ॥

४७८ इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥ २८ ॥

४७९ उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवै—र्दूराद् दवीयो अप सेध शत्रून् ॥ २९ ॥

४८० आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निः ष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीळयस्व ॥ ३० ॥

अर्थ— [४७७] (दिवः पृथिव्याः) द्युलोक और पृथ्वीसे (उद्भृतं ओजः परि) उद्धृत किया बल इसको प्राप्त है (वनस्पतिभ्यः परि) वनस्पतियोंसे (आभृतं) इकठ्ठा किया हुआ (सहः) सामर्थ्य (अपां ओज्मानं) पानीके तेजसे युक्त (गोभिः परि आवृतं) गौके चमडेकी डोरियोंसे चारों तरफसे बंधे (इन्द्रस्य वज्रं रथं) इन्द्रके वज्रका और रथका (हविषा यज) हव्यसे यजन कर ॥ २७ ॥

[४७८] (इन्द्रस्य वज्रः) इन्द्रका वज्र (मरुतां अनीकं) मरुतोंका सैन्य (मित्रस्य गर्भः) मित्रका गर्भ और (वरुणस्य नाभिः) वरुणकी नाभिके गुणोंसे युक्त तू है। हे (देव) कान्तिमान् इन्द्र ! (रथः सः) रमणीय गुणोंसे युक्त तू (इमां नः हव्यदातिं) हमारी इस यागक्रियाको (जुषाणः हव्या प्रति गृभाय) स्वीकार करके हमारे हवनको ग्रहण कर ॥ २८ ॥

[४७९] हे (दुन्दुभे) दुन्दुभि ! (पृथिवीं उत द्यां उप श्वासय) पृथिवीको और द्युलोकको अपने जयघोषसे जीवित कर। (विष्ठितं जगत् ते पुरुत्रा मनुतां) विशेष रूपसे स्थिर हुआ जगत् तेरे शब्दको बहुत प्रकारसे संमान देवे। (सः इन्द्रेण देवैः सजूः) वह तू इन्द्रके तथा अन्य देवोंके साथ (दूरात् दवीयः शत्रून् अप सेध) दूरसे भी अति दूर रहनेवाले हमारे शत्रुओंको दूर कर ॥ २९ ॥

[४८०] हे (दुन्दुभे) दुन्दुभि ! (आ क्रन्दय) हमारे शत्रुओंको रुला (बलं ओजः नः आ धाः) बल और ओज हमको दे (दुरिता बाधमानः निः स्तनिहि) पापियोंका नाश करता हुआ तू अत्यन्त बडा शब्द कर। हे (दुन्दुभे) दुन्दुभि ! (दुच्छुनाः इतः अप प्रोथ) हमारे दुःखका कारण बनी शत्रुसेनाको हमारे स्थानसे दूर कर। (इन्द्रस्य मुष्टिः असि) तू इन्द्रकी मुष्टि है इसलिये हमें (वीळयस्व) सामर्थ्यवान् कर ॥ ३० ॥

भावार्थ— द्युलोक और पृथ्वीलोकसे जितना बल प्राप्त हो सकता है, उतना बल इस इन्द्रको प्राप्त है। इस इन्द्रका रथ भी सामर्थ्यसे युक्त, तांतोंसे चारों ओर अच्छीतरह बंधा हुआ तथा वज्रसे युक्त है ॥ २७ ॥

इन्द्रका रथ इन्द्रके वज्र, मरुतोंकी सेना, मित्रकी सहायता और वरुणका केन्द्र इन सभी सामर्थ्योंसे युक्त है। हे तेजस्वी इन्द्र ! उत्तम गुणोंसे युक्त तू हमारे इस यज्ञको स्वीकार करके हमारी हविको ग्रहण कर ॥ २८ ॥

हे दुन्दुभे ! तू अपने जयघोषसे आकाश और पृथ्वीको गुंजा दे। इस गूंजको सुनकर सारा संसार इस दुन्दुभिको सम्मान प्रदान करे। हे दुन्दुभि ! तू इन्द्र तथा अन्य देवोंके साथ रहकर अत्यन्त दूर पर रहनेवाले शत्रुओंको भी नष्ट कर ॥ २९ ॥

+

४८१ आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरो ऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥ ३१ ॥

[४८]

ऋषिः- २२ शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिः) । देवताः- १-१० अग्निः; ११-१५, २०-२१ मरुतः (१३-१५ लिंगोक्तावा), १६-१९ पूषा, २२ द्यावाभूमी वा पृश्निर्वा । छन्दः- प्रगाथः= (१, ३ बृहती; २, ४ सतोबृहती; ५ बृहती, ६ महासतोबृहती; ७ महाबृहती, ८ महासतोबृहती; ९ बृहती, १० सतोबृहती; ११ ककुप्, १२ सतोबृहती), १३ पुरउष्णिक्, १४ बृहती, १५ अतिजगती, १६ ककुप्, १७ सतोबृहती, १८ पुरउष्णिक्, १९-२० बृहती, २१ महाबृहती यवमध्या, २२ अनुष्टुप् ।

४८२ यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ १ ॥

अर्थ— [४८१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अमूः आ अज) शत्रुओंकी सेनाको हटा दे । (इमाः प्रत्यावर्तय) हमारी सेनाको अब वापस लौटा ला । (दुन्दुभिः केतुमत् वावदीति) दुन्दुभि झण्डेके साथ अत्यन्त शब्द करती रहे । (अश्वपर्णाः नः नरः सं चरन्ति) घोडेसवार और हमारे वीर शत्रुओंसे युद्ध करते हैं इसलिये हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अस्माकं रथिनः जयन्तु) हमारे रथारूढ वीर शत्रुओंको जीतें ऐसा कर ॥ ३१ ॥

१ अमूः आ अज— इस शत्रुसेनाको भगा दे ।
२ इमाः प्रत्यावर्तय— इन हमारी सेनाको अब पीछे ले ।
३ केतुमत् दुन्दुभिः वावदिति— ध्वजके साथ जो दुंदुभि है वह शब्द करता है ।
४ नः अश्वपर्णा नरः सं चरन्ति— हमारे घुडसवार और हमारे नेता वीर संचार कर रहे हैं ।
५ अस्माकं रथिनः जयन्तु— हमारे रथी वीरोंका जय हो ।

[४८]

[४८२] हे स्तोताओं ! (वः यज्ञायज्ञा) तुम सब प्रत्येक यज्ञमें (दक्षसे अग्नये) वर्धमान अग्निकी (गिरागिरा) स्तुतिरूप वाणीसे स्तुति करो, (वयं) हम भी (अमृतं जातवेदसं मित्रं न प्रियं) अमर, हरएक वस्तुका ज्ञानी, मित्ररूप, प्रिय अग्निकी (प्र शंसिषं) प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— हे दुन्दुभि ! तू गूंजकर शत्रुओंको इस प्रकार भयभीत कर कि वे रो पडें, हमें ओज और सामर्थ्य प्रदान कर । पापियोंका नाश करता हुआ तू उनको बुरी तरह नष्ट कर । जो हमें दुःख देती है, उस शत्रुसेनाको तू नष्ट कर । तू इन्द्रका सामर्थ्य है, अतः तू हमें भी सामर्थ्यशाली कर ॥ ३० ॥

हे इन्द्र ! तू शत्रुओंकी सेनाको पीछे हटा, तथा समय पडने पर हमारी सेनाको भी पीछे हटा । हमारी पताकाके साथ दुन्दुभिका शब्द भी गूंजता रहे । दुन्दुभिकी आवाजके साथ ही हमारे वीर उत्साहसे भरकर शत्रुओंसे युद्ध करते रहें और उन्हें जीतें । कुशल सेनापति वही होता है कि जो सेनाको आगे बढावे, पर समयका नाजुकता पहचानकर पीछे भी हट जाए । सेनाके आगे बढनेके साथ ही साथ दुन्दुभि आदि बाजे बजते रहें और सेनाका उत्साह बढता रहे ॥ ३१ ॥

हे स्तोताओ ! तुम प्रत्येक यज्ञमें बढनेवाले अग्निकी वाणीसे स्तुति करो । हम भी अमर, हर पदार्थको जाननेवाले तथा मित्रके समान हितकारी अग्निकी प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

४८३ ऊर्जो नपातं॒ स हि॒नायम॑स्म॒यु — र्दाशे॑म ह॒व्यदा॑तये ।
भुव॒द् वाजे॑ष्ववि॒ता भुव॑द् वृ॒ध उ॒त त्रा॒ता त॒नूना॑म् ॥ २ ॥

४८४ वृषा॒ ह्य॑ग्ने अ॒जरो॑ म॒हान् वि॒भास्य॒र्चिषा॑ ।
अज॑स्रेण शो॒चिषा॒ शोशु॑चच्छुचे सुदी॒तिभिः॒ सु दी॑दिहि ॥ ३ ॥

४८५ म॒हो दे॒वान् यज॑सि॒ यक्ष्या॑नु॒षक् तव॒ क्रत्वो॒त दं॒सना॑ ।
अ॒र्वाचः॑ सीं कृणुह्य॒ग्नेऽव॑से॒ रास्व॒ वाजो॒त वं॑स्व ॥ ४ ॥

४८६ यमापो॒ अद्र॑यो॒ वना॒ गर्भ॑मृ॒तस्य॒ पिप्र॑ति ।
सह॑सा॒ यो म॑थि॒तो जाय॑ते॒ नृभिः॑ पृथि॒व्या अधि॒ सान॑वि ॥ ५ ॥

अर्थ— [४८३] (ऊर्जः नपातं) हम अन्न और बलके पुत्रकी प्रशंसा करते हैं (सः अयं अस्मयुः) वह अग्नि हमारे पास आनेकी इच्छा करता है । तथा (हव्यदातये दाशेम) देवोंको हव्यान्न देनेके लिये अग्निको हम हव्यान्न देते हैं । वह अग्नि (वाजेषु अविता वृधः भुवत्) संग्राममें हमारा रक्षक और वर्धक हो । (उत तनूनां त्राता) और हमारे पुत्रोंका भी रक्षक हो ॥ २ ॥

[४८४] हे (अग्ने) अग्नि ! (वृषा अजरः महान्) वृष्टिकर्ता, इच्छाओंको पूर्ण करनेवाला जरारहित, महान तू (अर्चिषा विभासि) अपनी कान्तिसे प्रकाशित होता है । हे (शुचे) प्रदीप्त अग्नि ! (अजस्रेण शोचिषा) निरन्तर तेजसे (शोशुचत्) अत्यन्त दीप्तिमान् तू (सुदीतिभिः सु दीदिहि) अच्छी कान्तिसे अच्छी तरह हमें प्रकाशित कर ॥ ३ ॥

१ वृषा अजरः महान् अर्चिषा विभासि— बलवान् जरारहित और जो महान् होता है वह तेजसे प्रकाशता है । (निर्बल जराग्रस्त और अल्प जो रहता है वह तेजस्वी नहीं हो सकता ।)

[४८५] हे (अग्ने) अग्नि ! तू (महः देवान् यजसि) महान् देवोंका यजन करता है । (आनुषक् यक्षि) इसलिये हमारे यज्ञमें भी निरन्तर यजन कर । (तव क्रत्वा उत दंसना सीं) और तेरी बुद्धिसे कर्म कर, तथा (अर्वाचः अवसे कृणुहि) उन देवोंको हमारी रक्षाके लिये हमारे सामने कर । (वाजा रास्व) बल दे (उत वंस्व) तथा तू भी बल बढानेवाला अन्न प्राप्त कर ॥ ४ ॥

१ महः देवान् यजसि— महान् होकर ज्ञानियोंका सत्कार करो ।

[४८६] (आपः अद्रयः वना ऋतस्य गर्भं यं पिप्रति) जल, मेघ और वन यज्ञके गर्भमें (वाडवाग्नि, वैद्युताग्नि और दावाग्नि रूपसे वर्तमान) अग्नि रहता है । (यः नृभिः सहसा मथितः) जो अग्नि नेताओंसे बलद्वारा मथित होकर (पृथिव्याः अधि सानवि जायते) पृथिवीपर उत्कृष्ट यज्ञप्रदेशमें प्रकट होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— अपने बलको बढाना चाहिये । अपना बल कम हो ऐसा कोई कार्य करना नहीं चाहिये । युद्धोंमें सकीयोंका संरक्षण करना योग्य है । अपना बल बढे ऐसा करना चाहिये । अपने स्वजनोंका संरक्षण करना चाहिये ॥ २ ॥

हे अग्ने ! इच्छाओंको पूर्ण करनेवाला, जरारहित तू अपने तेजसे प्रकाशित होता है । अत्यन्त तेजस्वी तू अपनी कान्तिसे हमें तेजस्वी करता रह । मनुष्य बलवान् बने, जरारहित बने, वृद्ध होनेपर भी तारुण्यका उत्साह उसमें बना रहे । वह अपने तेजसे तेजस्वी हो, सतत उत्साहसे उत्साही बना रहे और निराशाका विचार समीप न आने दे ॥ ३ ॥

हे अग्रणे ! तू महान् देवोंका यजन अर्थात् संगठन करता है अतः हमारे यज्ञोंमें भी देवोंका संगठन कर तथा बुद्धिपूर्वक कर्म कर । देवोंको प्रेरणा दे कि वे हमारी रक्षा करनेके लिए हमारे पास आवें । मनुष्य स्वयं महान् होकर ज्ञानियोंका सत्कार करे तथा स्वयं भी हर काममें देवों अर्थात् विद्वानोंका सत्कार करे ॥ ४ ॥

४८७ आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि ।
तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा ॥ ६ ॥
४८८ बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत् पावक दीदिहि ॥ ७ ॥
४८९ विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ।
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारं शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति ॥ ८ ॥

अर्थ — [४८७] (यः भानुना उभे रोदसी आ पप्रौ) जो अग्नि अपनी कान्तिसे द्यावापृथिवीको परिपूर्ण करता है। (धूमेन दिवि धावते) और धूएंसे अन्तरिक्षमें जाता है। (अरुषः वृषा) कान्तिमान्, इष्टसिद्धीवर्धक, अग्नि (श्यावासु उर्म्यासु) काली अन्धकारवाली रात्रिमें (तमः तिरः आ ददृशे) अंधकारको तिरस्कृत करके चारों तरफ प्रकाशित होता है। (श्यावाः आ) काली रात्रियां रहती है तब वह (अरुषः वृषा) कान्तिमान् वर्धक अग्नि प्रकाशित होता हैं ॥ ६ ॥

[४८८] हे (देव) दानादिगुणयुक्त कान्तिमान् (यविष्ठ्य) अतिशय युवान् (शुक्र) दीप्तिमान् (अग्ने) अग्नि ! (शुक्रेण शोचिषा) निर्मल तेजसे (भरद्वाजे) भरद्वाजमें (सं इधानः) सम्यक् दीप्यमान् तू (बृहद्भिः अर्चिभिः) अत्यन्त तेजसे (नः रेवत्) हमारे लिये धनसे युक्त होकर (दीदिहि) प्रदीप्त हो। हे (पावक) शोधक अग्नि ! (द्युमत् दीदिहि) तेजस्वी होकर दीप्तिमान् हो ॥ ७ ॥

[४८९] हे (अग्ने) अग्नि ! (त्वं) तू (मानुषीणां विश्वासां विशां) संपूर्ण मानवी प्रजाओंका (गृहपतिः असि) घरका स्वामी है। हे (यविष्ठ) अत्यन्त तरुण ! (शतं हिमाः) सौ वर्षोंतक (सं इद्धारं) तुझे अच्छी तरह प्रदीप्त करनेवाले मेरी (शतं पूर्भिः) सौ पालनकर्मों द्वारा (अंहसः पाहि) पापसे और दुष्ट शत्रुओंसे रक्षा कर। (ये च स्तोतृभ्यः ददति) और जो स्तोताओंको यज्ञकर्ममें धन देता है उनकी भी रक्षा कर ॥ ८ ॥

भावार्थ— जलमें अग्नि है, वडवाग्नि इसे कहते हैं। अद्रि-पहाड, मेघमें वैद्युताग्नि रहता है। वनोंमें दावाग्नि उत्पन्न होता है। सत्य यज्ञके गर्भमें अग्नि होता है। जो यज्ञके मध्यमें अग्नि रहता है वह यज्ञाग्नि कहा जाता है। जो मनुष्योंके द्वारा बलसे मन्थन करके निर्माण करते हैं वह यज्ञाग्नि कहलाता है। पृथ्वीके उत्तम स्थानमें- यज्ञशालामें- यह अग्नि निर्माण किया जाता और यज्ञके लिये वह रखा जाता है। इसमें यजन होता है ॥ ॥ ५ ॥

जो अग्नि अपने प्रकाशसे दोनों द्यावापृथिवीको भर देता है। वह अग्नि अपने धुवेंसे ऊपर आकाशमें दौडता है। तेजस्वी और बलवान् यह अग्नि काली अन्धकारमय रात्रियोंमें अन्धकारको दूर करता है ऐसा दीखता है काले अंधेरेमें वह बलवान् अग्नि प्रकाश फैलाता है। इसी तरह मनुष्य बलवान् बने, जगत्में जो अज्ञानका अन्धकार है उसे दूर करे और सबको प्रकाश बताकर उत्तम रीतिसे मार्ग बतावे ॥ ६ ॥

हे देव ! हे तरुण, बलवान् अग्ने ! तू दिव्य गुणयुक्त है, तरुण जैसा उत्साही है, वीर्यवान् है और तू उसका अग्रणी है। मनुष्य दिव्य गुणोंसे युक्त, सदा तरुण, वीर्यवान् और नेता बने। स्वच्छ तेजसे प्रकाशित होकर, अन्नका दान करनेवालेके लिये बडे तेजसे, धन देता हुआ, प्रकाशित होता रहे। हमारेमें जो अन्नका दान करता है, उसे धन दे और सन्ततिका मार्ग बता। हे पवित्रता करनेवाले। तू अपने तेजसे प्रकाशता रह। मनुष्य पवित्रता करे, तेजस्वी बने और अपने तेजसे प्रकाशता रहे ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! तू सब मानवी प्रजाओंका गृहस्वामी है। प्रत्येक घरमें तू रहता है, कमसे कम पकानेका कार्य तो करता है, याजकोंके घर यज्ञकार्य करता है। सौ वर्षतक तुझे प्रदीप्त करनेवालेका, सौ किलोंसे जैसा किया जाता है वैसा, पापसे वा पापी शत्रुओंसे संरक्षण कर। जो उपासकोंको धन दिया जाता है उसका भी रक्षण कर ॥ ८ ॥

४९० त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥ ९ ॥
४९१ पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्व-मदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नो ऽदेवानि ह्वरांसि च ॥ १० ॥
४९२ आ सखायः सबर्दुघां धेनुमजध्वमुप नव्यसा वचः । सृजध्वमनपस्फुराम् ॥ ११ ॥
४९३ या शर्धाय मारुताय स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत ।
या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरेवयावरी ॥ १२ ॥

अर्थ— [४९०] हे (वसो) निवासक (अग्ने) अग्नि ! (चित्रः त्वं ऊत्या राधांसि नः चोदय) दर्शनीय तू रक्षाके साथ धनोंको हमारे पास प्रेरित कर। (अस्य रायः त्वं रथीः असि) इस धनका तू नेता है। और (नः तुचे गाधं तु विदाः) हमारे पुत्रादिको प्रतिष्ठा जल्दी प्राप्त करा ॥ ९ ॥

[४९१] हे (अग्ने) अग्नि ! (त्वं अदब्धैः अप्रयुत्वभिः पर्तृभिः) तू किसीसे अहिंसित अपृथग्भूत याने अलग नहीं होनेवाले पालनके साधनोंसे (तोकं तनयं पर्षि) पुत्र और पौत्रका पालन कर। (दैव्या हेळांसि नः युयोधि) दैवी क्रोधको हमारेसे दूर करो। (अदेवानि च ह्वरांसि) और मनुष्यसम्बन्धी हिंसित कर्म हमसे दूर करो ॥ १० ॥

[४९२] हे (सखायः) मित्रो ! (नव्यसा वचः) अत्यन्त नवीन शब्द द्वारा (सबर्दुघां धेनुं आ अजध्वं) पोषक दूध देनेवाली गायको ले आओ ! (अनपस्फुरां उप सृजध्वं) ऐसी न हिलनेवाली गायको बन्धनसे मुक्त करो ॥ ११ ॥

१ सखायः ! नव्यसा वचः सबर्दुघां धेनुं आ अजध्वं— हे मित्रो ! नवीन कोमल शब्दोंसे दुधारु गायको इधर ले आओ।

[४९३] (या) जिस गायने (अमृत्यु श्रवः) अमर, अन्नरूपी दूध (शर्धाय स्वभानवे) प्रसहनशील, कान्तिमान् (मारुताय) मरुत् संघके लिये (धुक्षत्) दूध दिया। (या) जिसने और (तुराणां मरुतां मृळीके) जल्दी कर्मकारी मरुतोंको सुखी किया (या) तथा जो गाय (सुम्नैः एवयावरी) सुखसाधनोंसे जानेवाली दूसरोंको भी सुखके लिये जानेवाली वह गाय प्राप्त होती है ॥ १२ ॥

भावार्थ— अग्नि निवास कराता है। शरीरमें अग्नि रहता है तबतक मानव जीवित रहता है। पृथिवीमें अग्नि है तबतक ही पृथिवीपर प्राणियोंका निवास होता है। ऐसा अग्नि विलक्षण सामर्थ्यवान् है, दर्शनीय है। मनुष्यका शरीर दर्शनीय तबतक दीखता है जबतक उसमें उष्णता रहती है। वह अग्नि संरक्षण साधनोंके साथ सिद्धि देनेवाले धन हमारे पास भेजे। धन, यश देनेवाले और संरक्षक साधनोंसे युक्त चाहिये। निर्बलता और दुष्कीर्ति देनेवाले धन नहीं चाहिये ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! तू अहिंसक और पृथक् न होनेवाले रक्षा साधनोंसे पुत्रपौत्रोंका संरक्षण कर। रक्षा साधन ऐसे हों कि जो सदा अपने पास रहें और टूटें न, नष्ट न हों। ऐसे साधनोंसे हमारे बालबच्चोंका रक्षण कर। दैवी आपत्तियोंसे हमारे द्वारा युद्ध करा और उनको दूर कर। दैवी आपत्तियां हमसे दूर रहें। अदैवी – ऐहिक – मानवीय कुटिलताओंको दूर रख हमसे दैवी आपत्तियां और मानवी कपट दूर रहें ॥ १० ॥

गायको कठोर शब्दसे बुलाना चाहिये। कठोर शब्दसे गायपर बुरा परिणाम होता है। दूध देनेतक न हिलनेवाली गायको बन्धनसे बाहर चरनेके लिये छोड दो ॥ ११ ॥

४९४ भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता । धेनुं च विश्वदोहसमिषं च विश्वभोजसम् ॥ १३ ॥

४९५ तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम् ।
अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसं विष्णुं न स्तुष आदिशे ॥ १४ ॥

४९६ त्वेषं शर्धो न मारुतं तुविष्वण्यनर्वाणं पूषणं सं यथा शता ।
सं सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आँ आविर्गूळ्हा वसू करत् सुवेदा नो वसू करत् ॥ १५ ॥

४९७ आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे । अघा अर्यो अरातयः ॥ १६ ॥

अर्थ— [४९४] हे मरुतों ! (भरद्वाजाय) आपने भरद्वाजको दी (द्विता) दो प्रकारकी वस्तु (विश्वदोहसं धेनुं) सबको बहुत दूध देनेवाली गाय (च विश्वभोजस इषं) और पर्याप्त भोगरूप अन्न (अव धुक्षत) दिया ॥ १३ ॥

[४९५] हे मरुत् गण ! (इन्द्रं न) इन्द्रके समान (सुक्रतुं वरुणं इव) अच्छे कर्म करनेवाले वरुणकी तरह (मायिनं अर्यमणं न) बुद्धिमान् अर्यमाके समान (मन्द्र विष्णुं न) सुखदायी विष्णुकी तरह (सुप्रभोजसं) अत्यंत उत्तम भोजन देनेवाले (तं वः) उस आपके संघकी (आदिसे स्तुषे) मैं स्तुति करता हूँ ॥ १४ ॥

[४९६] (न) इस समय (त्वेषं तुविष्वणि पूषणं मारुतं शर्धः) तेजस्वी, बहु प्रशंसित, पोषक, मरुतोंके समुदायरूप संघकी स्तुति करता हूं । (यथा) जिससे (चर्षणिभ्याः शता सं कारिषत्) मनुष्योंको सैकडों धनोंके साथ युक्त करो । (सहस्रा सं) सहस्र धनोंसे भी युक्त करो । (गूळ्हा वसु आ आविः करत्) गुप्त धनोंको प्रकट करो । तथा (वसु सुवेदा नः करत्) धन सरलतासे प्राप्त हों ऐसा करें ॥ १५ ॥

[४९७] हे (पूषन्) पूषक देव ! (मा आ द्रव) मेरी रक्षाके लिये आ । हे (आघृणे) दीप्तिमान् ! (अघाः अर्यः अरातयः उप) हिंसक शत्रुओंकी हिंसा करनेवाली प्रजाओंको रोको । (ते अपिकर्णे नु शंसिषं) और मैं तेरे समीपमें रहकर तेरी प्रशंसा करता हूँ ॥ १६ ॥

भावार्थ— जो मृत्युको दूर करनेवाला दूध तेजस्वी मरुतोंके गणोंको देती है । जो गाय मृत्युको दूर करनेवाला दूध तेजस्वी सैनिकोंके संघको देती है । जो त्वराशील मरुत् (सैनिक) संघके लिये देती है । जो सुखोंके साथ सदा रहती है । गाय अमरत्व देनेवाला दूध देती है, सैनिकोंको सुख देती है, अनेक प्रकारके आनन्द देती है । इसलिये गौका पालन करना चाहिये ॥ १२ ॥

मरुतोंने भरद्वाजको सदा दूध देनेवाली गौ दी और खाने योग्य अन्न दिया ॥ १३ ॥

हे मरुतो ! तुम सब इन्द्रके समान शूरवीर, वरुणकी तरह अच्छे कर्म करनेवाले, अर्यमाके समान बुद्धिमान्, विष्णुकी तरह सुखदायी तथा अत्यन्त उत्तम भोजन देनेवाले हो, अतः मैं आपके संघकी स्तुति करता हूँ ॥ १४ ॥

तेजस्वी, अनेकों द्वारा प्रशंसित, पोषण करनेवाला वीर मरुतोंका यह संघ है । मानवोंको यह संघ सैकडों और हजारों धन प्राप्त हों ऐसा करे । गुप्त धन प्रकट करे धन हमें सुखसे प्राप्त हो ऐसा करे ॥ १५ ॥

हे तेजस्वी पोषणकर्ता देव ! मेरे समीप (मेरे रक्षाके लिये) आ । मेरी सुरक्षा कर । पापी कंजूस शत्रु हमारे समीप न आये । पापी हमसे दूर हो, कंजूस हमारे समीप न आ और शत्रु हमारे पास न आवें । मैं तेरे कानमें यह कहता हूं ॥ १६ ॥

४९८ मा काकम्बीरमुद् वृहो वनस्पति—मशस्तीर्वि हि नीनशः ।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः ॥ १७ ॥
४९९ दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम् । अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥ १८ ॥
५०० परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया ।
अभि ख्यः पूषन् पृतनासु नस्त्व—मवा नूनं यथा पुरा ॥ १९ ॥
५०१ वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता ।
देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वे—जानस्य प्रयज्यवः ॥ २० ॥
५०२ सद्यश्चिद् यस्य चर्कृतिः परि द्यां देवो नैति सूर्यः ।
त्वेषं शवो दधिरे नाम यज्ञियं मरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः ॥ २१ ॥

अर्थ— [४९८] हे पूषा ! (काकम्बीरं वनस्पतिं मा उद् वृहः) काकम्बीर वृक्षको बाधा मत पहुँचा, उसे बढने दे । (अशस्तीः वि नीनशः हि) अशंसनीय शत्रुभूत प्रजाका तू नाश कर । (उत सूरः एव मा अहः) और प्रेरक शत्रु भी हमारा हरण न करें । जिस प्रकार (ग्रीवाः वेः आदधते) व्याध, शिकारी लोग पक्षियोंका हरण करते हैं ॥ १७ ॥

[४९९] हे पूषा ! (ते अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दृतेः इव) छिद्ररहित, परिपूर्ण दधिसे भरे पात्रके समान तेरी अविच्छिन्न मैत्री हो और (अवृकं सख्यं अस्तु) बाधारहित मैत्री हो ॥ १८ ॥

[५००] हे (पूषन्) पूषा ! तू (मर्त्यैः परः असि) मनुष्योंसे श्रेष्ठ है । (श्रिया देवैः उत समः) संपत्तिसे भी तू अन्य देवोंके समान ही है । (त्वं पृतनासु नः अभि ख्यः) तू संग्रामोंमें हमको कृपादृष्टिसे देख । (यथा पुरा नूनं अव) जिस प्रकार प्राचीन मनुष्योंकी रक्षा की उस प्रकार हमारी भी रक्षा कर ॥ १९ ॥

[५०१] हे (धूतयः) शत्रुको कम्पित करनेवाले ! (प्रयज्यवः मरुतः) अतिशय पूजनीय मरुत् गणो ! (सूनृता प्रणीतिः अस्तु) तुम्हारी प्रिय सत्य वाणी हमारे लिये प्राप्त हो । (देवस्य वा मर्त्यस्य वा ईजानस्य वामी वामस्य) देव अथवा मनुष्य अथवा यज्ञकर्ता इनकी प्रशस्त वाणी [प्रसंनीय धन देनेवाली हो ।] ॥ २० ॥

[५०२] (यस्य चर्कृतिः) जिसके कर्म (सद्यः चित् द्यां परि एति) शीघ्र ही स्वर्गको प्राप्त होते हैं । (देवः सूर्यः न) दीप्तिमान् सूर्यकी तरह (मरुतः) मरुतोंने (त्वेषं नाम यज्ञियं शवः दधिरे) प्रदीप्त यश और प्रशंसनीय बल धारण किया है । (शवः वृत्रहं) वह बल शत्रुओंका नाश करनेवाला है, और (वृत्रहं शवः ज्येष्ठं) शत्रुनाशक वह बल सबसे अत्यन्त प्रशस्त है ॥ २१ ॥

भावार्थ— मनुष्य वनस्पतिको न उखाडें । वनस्पति बढती रहे । अप्रशस्त शत्रुरूप प्रजा नष्ट हो । शत्रु न बढे । उत्तम शूर भी मेरा हरण न करे । उत्तम शत्रु भी मेरा नाश न करे । पक्षियोंका गला व्याध पकडते हैं वैसा हमारा गला कोई न पकडे ॥ १७ ॥

हे पूषा ! छिद्ररहित दहीसे परीपूर्ण भरा पात्र जैसा आनन्द देता है, वैसी तेरी मित्रता कुटिलता रहित हो । ॥ १८ ॥

हे पूषा ! तू मानवोंसे श्रेष्ठ है और संपत्तिसे तू अन्य देवोंके समान संपत्तिमान् है । तू युद्धोंमें हमें दयार्द्र दृष्टिसे देख । जैसा तू प्राचीन समयमें रक्षा करता था वैसी ही अब भी हमारी रक्षा कर । ॥ १९ ॥

हे मरुतो ! तुम्हारे पास वाणीकी जो सत्यता है, वह हमें प्राप्त हो । दिव्य गुणोंवाले मनुष्य और यज्ञ करनेवालेकी वाणी हमेशा प्रशंसाके योग्य होती है । वैसी वाणी हमें भी प्राप्त हो ॥ २० ॥

इन मरुतोंके कर्म शीघ्र ही सर्वत्र फैल जाते हैं । इनके यश और बल दीप्तिमान् सूर्यकी तरह तेजस्वी हैं । उनका वह बल शत्रुओंका नाश करनेवाला है । जो बल शत्रुओंका नाश करता है, वह सबसे अधिक प्रशस्त होता है ॥ २१ ॥

५०३ सकृद्ध द्यौरजायत सकृद् भूमिरजायत ।
पृश्न्या दुग्धं सकृत् पय स्तदन्यो नानु जायते ॥ २२ ॥

[४९]

ऋषिः- ऋजिश्वा भारद्वाजः । देवताः- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १५ शक्वरी ।

५०४ स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभि र्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ॥ १ ॥

५०५ विशोविश ईड्यमध्वरे ष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः ।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै ॥ २ ॥

५०६ अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या ।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥ ३ ॥

अर्थ— [५०३] (द्यौः सकृत् ह अजायत) स्वर्ग एक ही उत्पन्न हुआ है, और (भूमिः सकृत् अजायत) पृथ्वी भी एक ही उत्पन्न हुई है तथा (पृश्न्याः पयः सकृत् दुग्धं) गायका दूध भी एक ही प्रकारका होता है (तत् अन्यः न अनु जायते) दूसरा इसके समान कोई पदार्थ उत्पन्न नहीं हुआ है ॥ २२ ॥

[४९]

[५०४] (सुव्रतं जनं) अच्छे कर्म करनेवाले दिव्य जनसंघकी (नव्यसीभिः गीर्भिः) अतिशय नवीन वाणीसे (स्तुषे) मैं स्तुति करता हूँ । (सुम्नयन्ता मित्रावरुणा) स्तोताओंको सुखी करनेकी इच्छावाले मित्रावरुणकी मैं स्तुति करता हूँ । (सुक्षत्रासः ते वरुणः मित्रः अग्निः) सुन्दर क्षात्रतेजवाले वे वरुण, मित्र और अग्नि (इह आ गमन्तु) इस यज्ञमें आवें और (ते श्रुवन्तु) वे हमारी स्तुतियां सुनें ॥ १ ॥

[५०५] (विशोविशः) संपूर्ण प्रजा द्वारा (अध्वरेषु) यज्ञकर्मोंमें (ईड्यं अदृप्तक्रतुं) स्तुत्य और गर्वरहित कर्म करनेवाले, (युवत्योः अरतिं) स्वर्ग और पृथ्वीमें जानेवाले (दिवः शिशुं) स्वर्गके पुत्र (सहसः सूनुं) बलके लिये उत्पन्न हुए पुत्र (यज्ञस्य केतुं) यज्ञके ध्वज रूप (अरुषं अग्निं) तेजस्वी अग्निकी (यजध्यै) यज्ञ करनेके लिये मैं स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

[५०६] (अरुषस्य विरूपे दुहितरा) सूर्यकी शुक्ला और कृष्णा दो पुत्रियाँ हैं । (अन्या स्तृभिः पिपिशे) उनमेंसे एक रात्रि नामकी पुत्री नक्षत्रोंसे प्रकाशती है और (अन्या सूरः) दूसरी दिनप्रभा नामक पुत्री सूर्यसे प्रकाशती है । (मिथस्तुरा विचरन्ती) परस्पर त्वरासे चलती है (पावके ऋच्यमाने) शुद्ध करनेवाली प्रशंसनीय (श्रुतं मन्म) श्रवणीय तथा मननीय हमारे स्तोत्रको (नक्षतः) सुनें ॥ ३ ॥

भावार्थ— द्युलोकके समान द्युलोक है, भूमिके समान भूमि है, और गायके दूधके समान गायका दूध है । इनके समान दूसरा पदार्थ उत्पन्न नहीं हुआ ॥ २२ ॥

मित्र और वरुण दूसरोंको सुखी करते हैं उस तरह मनुष्य दूसरोंका सुख बढावे । उत्तम वीर वरुण, मित्र और अग्नि यहां आकर हमारा रक्षण करें ॥ १ ॥

यह तेजस्वी अग्नि यज्ञकर्मोंमें सभी प्रजाओं द्वारा स्तुत्य और गर्वरहित कर्म करनेवाला, सर्वत्र गमन करनेवाला, तथा यज्ञका प्रज्ञापक है, ऐसे अग्नि देवकी मैं यज्ञ करनेके लिए स्तुति करता हूं ॥ २ ॥

५०७ प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥ ४ ॥
५०८ स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान् मनसा युजानः ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ५ ॥
५०९ पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि ।
सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम् ॥ ६ ॥
५१० पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥ ७ ॥

अर्थ—[५०७] (बृहती मनीषा) हमारी बडी इच्छा है कि (बृहत् रयिं विश्ववारं रथप्रां वायुं) बडे धनको साथ लेकर, सबसे सेवनीय अपने रथको धनसे भरकर वायु (अच्छ प्र) हमारे पास आवे (प्रयज्यो) हे अतिशय पूजनीय ! (द्युतत्-यामा नियुतः पत्यमानः कविः) कान्तिमान् वाहनवाला, अपने रथमें जोडी हुई घोडियोंका स्वामी बुद्धिमान् तू (कविं इयक्षसि) बुद्धिमान् की पूजा कर ॥ ४ ॥

[५०८] (अश्विनोः सः मे वपुः छदयत्) अश्विनोंका वह रथ मेरे शरीरको तेजसे तेजस्वी करे । (यः रथः विरुक्मान् मनसा युजानः) जो रथ विशेष दीप्तिमान् तथा मनके इशारे मात्रसे ही अश्वोंसे युक्त होता है । हे (नरा) नेता (नासत्या) अश्विन् देवो ! (येन वर्तिः) जिस रथसे स्तोताके घरको (तनयाय त्मने च इषयध्यै) पुत्रके लिये, उसके पिताके लिये और उनकी इच्छाओंको पूर्ण करनेके लिये (याथः) तुम दोनों जाते हैं ॥ ५ ॥

[५०९] हे (वृषभा) वृष्टि करनेवाले ! (पर्जन्यवाता) पर्जन्य और वायू ! (पृथिव्याः अप्यानि पुरीषाणि) पृथिवीपरके जलयुक्त अन्न हमारे पास (जिन्वतं) प्रेरित करो । हे (सत्यश्रुतः कवयः) सत्य प्रशंसा योग्य ज्ञानी (जगतः स्थातः) जगत्‌के संस्थापक देवगण ! (यस्य गीर्भिः) वाणियोंसे (जगत् आ कृणुध्वं) सर्व जगत्‌का तुम निर्माण करते हो ॥ ६ ॥

[५१०] (पवीरवी कन्या चित्रायुः वीरपत्नी सरस्वती) पवित्र करनेवाली, सुन्दर, उत्तम अन्न देनेवाली, वीरोंका पालन करनेवाली, ऐसी सरस्वती देवी (धियं धात्) हमारे बुद्धिसे किये कर्मोंको धारण करे (ग्नाभिः सजोषाः) देवपत्नियोंके सहित प्रीतिसे रहनेवाली (गृणते) स्तुति करनेवालेको (अच्छिद्रं दुराधर्षं शरणं शर्म) छिद्ररहित शीतवायु आदिका दुःख जहां नहीं है ऐसा घर और सुख हमें (यंसत्) प्रदान कर ॥ ७ ॥

भावार्थ— दो परस्पर विरुद्ध रूपवाली दो पुत्रियां हैं । एक रात्री काली है और दूसरी दिनप्रभा गोरी है । नक्षत्रोंके साथ रात्री रहती है और सूर्यके साथ दिनकी प्रभा रहती है । ये दोनों त्वरासे सतत चल रही हैं कभी ठहरती नहीं । ये विश्वमें पवित्रता करती हैं और ये दोनों प्रशंसीय हैं । हम इनकी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

हमारी ऐसी इच्छा है कि बडे धनको अपने रथपर रखकर वायु हमारे पास बहता रहे । उसका रथ तेजस्वी है और उसको उत्तम घोडियां जोती हैं । वह बुद्धिमान् वायु ज्ञानियोंकी पूजा धनसे करे ॥ ४ ॥

अश्विनौ देवोंका वह रथ मेरे शरीरको तेजस्वी करे । इसी रथसे ये दोनों देव स्तोताके घर उसे हर तरहका धन देनेके लिए जाते हैं ॥ ५ ॥

हे पर्जन्य और वायू ! तुम वृष्टि करते हो, अतः पृथिवीपर जो जलके साथ अन्न हैं उनको हमें दो । लोग वाणियोंसे तुम्हारी स्तुति गाते हैं कि तुम सब जगत्‌का निर्माण करते हो । यह स्तुति सत्य है क्योंकि वायु और पर्जन्य इस पृथ्वीपर सब वनस्पतियोंकी उन्नति करते हैं । जिससे सब प्रकारका खाद्य, अन्न और पेय उत्पन्न होता है । ॥ ६ ॥

+

५११ प॒थस्प॑थः॒ परि॑पतिं वच॒स्या कामे॑न कृ॒तो अ॒भ्या॑नळ॒र्कम् ।
स नो॑ रासच्छु॒रुध॑श्च॒न्द्राग्रा॒ धियं॑धियं सीषधाति॒ प्र पू॒षा ॥ ८ ॥
५१२ प्र॒थ॒म॒भाजं॑ य॒शसं॑ वयो॒धां सु॑पा॒णिं दे॒वं सु॒गभ॑स्ति॒मृभ्व॑म् ।
होता॑ यक्षद् यज॒तं प॒स्त्या॑नाम॒ग्निस्त्वष्टा॑रं सु॒हवं॑ वि॒भावा॑ ॥ ९ ॥
५१३ भुव॑नस्य पि॒तरं॑ गी॒र्भिरा॒भी रु॒द्रं दिवा॑ व॒र्धया॑ रु॒द्रम॒क्तौ ।
बृ॒हन्त॑मृ॒ष्वम॒जरं॑ सुषु॒म्नमृध॑ग्घुवेम क॒विने॑षि॒तासः॑ ॥ १० ॥
५१४ आ यु॑वा॒नः क॒वयो॑ यज्ञि॒यासो॒ मरु॑तो ग॒न्त गृ॑ण॒तो व॑र॒स्याम् ।
अ॒चि॒त्रं चि॒द्धि जिन्व॑था वृ॒धन्त॑ इ॒त्था नक्ष॑न्तो नरो अङ्गिर॒स्वत् ॥ ११ ॥

अर्थ— [५११] (पथस्पथः परिपतिं) प्रत्येक मार्गपर अधिकारी ऐसे (अर्कं) अर्चनीय पूषाको (कामेन कृतः वचस्या अभ्यानट्) अपनी कामनासे प्रेरित होकर उत्तम वचनसे प्रार्थना करे। (सः पूषा) वह पूषा (नः शुरुधः चन्द्राग्राः रासत्) हमको शोकको रोकनेवाली उत्तम वाणियां प्रदान करे। (धियंधियं प्र सीषधाति) और संपूर्ण हमारे कर्म वह सिद्ध करे ॥ ८ ॥

[५१२] (प्रथमभाजं यशसं वयोधां) प्रथम भजनीय, यशस्वी, अन्न धारण करनेवाले (सुपाणिं देवं सुगभस्तिं) सुन्दर हाथवाले, दानादि गुणयुक्त, सुन्दर भुजाओंवाले (ऋभ्वं पस्त्यानां यजतं) प्रकाशमान्, प्रजाजनोंसे यजनीय, (सुहवं त्वष्टारं) पूजनीय त्वष्टाका (होता विभावा अग्निः) देवोंको बुलानेवाला, दीप्यमान् अग्नि (यक्षत्) यजन करे ॥ ९ ॥

[५१३] (भुवनस्य पितरं रुद्रं) भुवनका पालन करनेवाले, दुःख दूर करनेवाले ईश्वरकी (आभिः गीर्भिः) इन वाणियोंसे (दिवा वर्धय) दिनमें यशगान करो। (अक्तौ रुद्रं) और रात्रिमें भी उसी रुद्रका यश गाओ। और हम (कविना इषितासः) बुद्धिमान् रुद्रसे प्रेरित हुए (बृहन्तं ऋष्वं अजरं सुषुम्नं) महान्, दर्शनीय, जरारहित, उत्तम सुख देनेवाले ईश्वरकी (ऋधक् हुवेम) प्रशंसा गाते हैं ॥ १० ॥

[५१४] हे (युवानः) हमेशा तरुण, (कवयः) ज्ञानी, (यज्ञियासः) यजनीय (मरुतः) मरुतो! (गृणतः वरस्यां आ गन्त) स्तुति करनेवालेकी स्तुतिके पास आओ। हे (नरः) नेता मरुतो! (इत्था वृधन्तः नक्षन्तः अंगिरस्वत्) तुम इस प्रकार अन्तरिक्षमें बढते हो और अग्निकी किरणें (अचित्रं चित् जिन्वथ) औषधियोंसे रहित देशको भी वृष्टिसे तृप्त करती हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ— सरस्वती विद्या है। वह सबको पवित्र बनाती है। विद्यासे उत्तम अन्न प्राप्त होता है, विद्या वीरताको बढाती है। बुद्धिका संरक्षण करती है। इस बुद्धिसे नाना प्रकारके उत्तम कर्म किये जाते हैं। दैवी शक्तियां विद्यासे प्राप्त होती हैं। विद्वान् उत्तम छिद्ररहित शत्रुसे जिसपर आक्रमण नहीं हो सकता ऐसा सुखदायक घर प्राप्त कर सकता है ॥ ७ ॥

प्रत्येक मार्गपर स्वामीरूपसे वर्तमान पूजनीय (पूषा देव) की हम अपनी इच्छासे वाणी द्वारा पूजा करते हैं। वह पूषा हमें शोकको दूर करनेवाली, आनंद देनेवाली वाणियां (गौवें) देवें। वह हमारे प्रत्येक बुद्धिपूर्वक किये कर्म सिद्ध करें ॥ ८ ॥

त्वष्टा देवोंके मध्यमें प्रथम पूजनीय, यशस्वी, अन्न धारण करनेवाला, सुन्दर हाथवाला, सुन्दर भुजावाला, तेजस्वी, प्रजाजनों द्वारा उपास्य है। तेजस्वी अग्नि उस त्वष्टाका यजन करे ॥ ९ ॥

विश्वके परम पिता दुःख दूर करनेवाले परमेश्वरकी हम वाणियोंसे दिनमें स्तुति गाते हैं। रात्रीमें भी उसी प्रभुकी स्तुति करते हैं। कविसे प्रेरित हुए हम बडे दर्शनीय, जरारहित, उत्तम सुख देनेवाले प्रभुकी सदा स्तुति करते हैं ॥ १० ॥

५१५ प्र वीराय प्र तवसे तुरायाऽजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम् ।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः ॥ १२ ॥
५१६ यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद् विष्णुर्मनवे बाधिताय ।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा३ तना च ॥ १३ ॥
५१७ तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कैस्तत् पर्वतस्तत् सविता चनो धात् ।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरंधिर्जिन्वतु प्र राये ॥ १४ ॥

अर्थ— [५१५] (वीराय प्र अज) वीरके समीप जा। (तवसे तुराय प्र) बलवान्, शीघ्रगामी वीरकी उपासना कर। (पशुरक्षिः यूथा इव अस्तं) पशुपालक जिस प्रकार पशुसमूहको शामको शीघ्र घरकी तरफ प्रेरित करता है, वैसे तुम भी प्रभुकी ओर शीघ्र जाओ। (सः वचनस्य विपः श्रुतस्य) वह स्तुति करनेमें प्रवीणकी स्तुति (तन्वि पिस्पृशति) शरीरको स्पर्श करती है। (स्तृभिः न नाकं) जिस प्रकार नक्षत्रोंसे आकाश तेजस्वी दीखता है, वैसा उपासक भी तेजस्वी होता है ॥ १२ ॥

[५१६] (यः विष्णुः) जिस विष्णुने (बाधिताय मनवे) असुरोंसे दुःखी हुए मनुके लिये (पार्थिवानि रजांसि) तीनों पार्थिव लोकोंका (त्रिः विममे) तीन वार आक्रमण किया। हे विष्णो ! (तस्य ते) उस प्रकार तुमने (उपदद्यमाने शर्मन्) दिये घरमें (राया तन्वा तना च मदेम) धनसे युक्त नीरोग शरीरवाले पुत्रोंसहित हम आनन्दसे रहेंगे ॥ १३ ॥

[५१७] (अहिर्बुध्न्यः) अग्निदेव (अर्कैः नः अद्भिः तत् चनः धात्) मन्त्रोंसे स्तूयमान होकर हमको पानी सहित अन्न दें। (पर्वतः तत् सविता तत् रातिषाचः) पर्वत हमें अन्न दे, सविता हमें अन्न दें, और विश्वेदेव भी हमको (ओषधीभिः तत् अभि) औषधियोंके सहित अन्न दें। (पुरंधिः भगः राये प्र जिन्वतु) बहुत बुद्धिमान् भगदेव हमारे लिये धनको प्रेरित करें ॥ १४ ॥

भावार्थ— हे सदा तरुण रहनेवाले, ज्ञानी तथा पूजाके योग्य मरुतो ! तुम स्तुति करनेवालेके पास आओ। तुम जब अन्तरिक्षमें बढते हो, तब सूर्यकी किरणें द्युलोकसे पानी बरसाती हैं, जो ओषधियोंसे रहित देशको भी जलसे युक्त करती है ॥ ११ ॥

हे मनुष्य ! प्रभु वीर है, उसके पास जा, उसकी उपासना कर। सामर्थ्यसे त्वराके साथ कार्य करनेवाले प्रभुकी भक्ति कर। उसकी उपासना कर, उसके पास जा। गौओंका पालक जिस तरह पशुसमूहको शामके समय घरकी ओर प्रेरित करता है, उस तरह उपासक अपने पिता-प्रभु-के घरके पास जाय, अर्थात् उसकी उपासना करे। वह स्तुति करनेवाला श्रुति वचनका ज्ञाता स्तुतिसे शरीरमें-मनको-स्पर्श करता है। ऐसी वेदवचनोंसे स्तुति करता है कि वह स्तुति सुननेवालेके शरीरमें घुसती है। मनपर परिणाम करती है ॥ १२ ॥

जिस विष्णुने दुःखित मनुके लिये तीन वार पृथिवीपरके लोकोंका आक्रमण किया। तीन वार आक्रमण करके तीनों लोकोंमें शान्ति स्थापन करके मनुका दुःख दूर किया। उस तेरे दिये घरमें धन, शरीर तथा पुत्रोंके साथ आनन्दसे रहेंगे। विष्णु तीनों लोगोंको आनन्द बढाता है, इसलिये वह मेरे घरका आनन्द बढावेगा ही ॥ १३ ॥

अनेक तरहके मंत्रोंसे स्तुत होकर अग्नि, पर्वत, सविता और विश्वेदेव हमें औषधियों सहित अन्न प्रदान करें। अत्यधिक बुद्धिमान् भगदेवता हमारे लिये धनको प्रेरित करें ॥ १४ ॥

५१८ नू नो रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं मह ऋतस्य गोपाम् ।
क्षयं दाताजरं येन जनान् त्स्पृधो अदेवीरभि च क्रमाम विश
आदेवीरभ्य१श्नवाम ॥ १५ ॥

[५०]

ऋषिः- ऋजिश्वा भारद्वाजः। देवता- विश्वे देवाः। छन्दः- त्रिष्टुप्।

५१९ हुवे वो देवीमदितिं नमोभिर्मृळीकाय वरुणं मित्रमग्निम् ।
अभिक्षदामर्यमणं सुशेवं त्रातॄन् देवान् त्सवितारं भगं च ॥ १ ॥

५२० सुज्योतिषः सूर्य दक्षपितॄननागास्त्वे सुमहो वीहि देवान् ।
द्विजन्मानो य ऋतसापः सत्याः स्वर्वन्तो यजता अग्निजिह्वाः ॥ २ ॥

अर्थ—[५१८] हे संपूर्ण देवताओं ! (नः रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं महः ऋतस्य गोपां रयिं) हमें रथोंसे युक्त, मनुष्योंकी धनसे तृप्ति करनेवाला, बहुत वीरों, पुत्रोंसे युक्त, महान् सत्यका रक्षक ऐसा धन और (अजरं क्षयं) अक्षय घर (दात) दें। (येन जनान्) जिस धन और घरसे शत्रुओंको (च अदेवीः स्पृधः) स्पर्धा करनेवाली राक्षसी सेनाका (अभि क्रमाम) हम पराभव करें। (आदेवीः विशः अभि अश्नवाम) दैवी प्रजा जिस धन और घरसे संतुष्ट होती है ऐसा धन और घर हमको दे ॥ १५ ॥

[५०]

[५१९] हे देवों ! मैं (मृळीकाय नमोभिः) सुखके लिये नमनोंसे (वः देवीं अदितिं) तुम्हारी तेजस्विनी माता अदितिकी (वरुणं मित्रं अग्निं) वरुण, मित्र, अग्नि, (अभिक्षदां सुशेवं अर्यमणं) एवं शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले तथा अच्छी तरहसे सेवनीय, अर्यमा, (सवितारं भगं च त्रातॄन् देवान्) सविता, भग और रक्षण करनेवाले सब देवोंको नमन करता हूँ, सबकी उपासना करता हूं ॥ १ ॥

[५२०] हे (सुमहः सूर्य) बडे महान् सबके प्रेरक सूर्य ! (दक्षपितॄन् सुज्योतिषः देवान्) जिनके दक्ष नामक पितर हैं ऐसे सुन्दर कान्तिवाले देवोंको (अनागास्त्वे वीहि) निष्पाप रूपमें हमारे अनुकूल कर। (ये द्विजन्मानः ऋतसापः सत्याः) जो दो बार जन्मनेवाले, सत्य आचरण करनेवाले, सत्यवादी, (स्वर्वन्तः यजताः अग्निजिह्वाः) आत्मवान्, पूजनीय, अग्निरूपी जिह्वावाले देव हैं, उनको हमारे अनुकूल करें ॥ २ ॥

भावार्थ— हे देवों ! हमें रथोंसे युक्त, मानवोंकी तृप्ति करनेवाले, बहुत पुत्रपौत्रोंसे युक्त, बडे सत्य यज्ञके रक्षक धनको तथा अक्षय घरको दो। जिससे हम शत्रुके सैनिकोंपर और दुष्ट स्पर्धा करनेवालोंपर आक्रमण करें और दिव्य प्रजा जिससे संतुष्ट होती है वह धन हमें मिले ॥ १५ ॥

अदिती देवोंकी माता है। मूल प्रकृति अदिति है। अग्नि, मित्र, वरुण, अर्यमा, सविता, भग ये प्रकृतिसे बने संरक्षक देव हैं। प्रकृति यह 'प्रजा' है। प्रजासे राज्यके संरक्षणके लिये अधिकारी चुने जाते हैं। वैसे ही ये (त्रातॄन् देवान्) रक्षक देव हैं। विश्वराज्यके विभिन्न अधिकार इनके पास हैं ॥ १ ॥

हे सबके प्रेरक बडे सूर्य ! जिनके पितर दक्ष हैं ऐसे तेजस्वी देवोंको-ज्ञानियोंको-पापरहित रूपसे हमारे अनुकूल कर। जो द्विज सत्यनिष्ठ, सत्यरूपी, आत्मबलसे युक्त, पूजनीय अग्निके समान तेजस्वी जिह्वासे तेजस्वी वक्तृत्वसे-युक्त हैं वे भी हमें अनुकूल हों ॥ २ ॥

५२१ उत द्यावापृथिवी क्षत्रमुरु बृहद् रोदसी शरणं सुषुम्ने ।
महस्करथो वरिवो यथा नो ऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः ॥ ३ ॥
५२२ आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्ता-मद्या हूतासो वसवोऽधृष्टाः ।
यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान् ॥ ४ ॥
५२३ मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी सिषक्ति पूषा अभ्यर्धयज्वा ।
श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते ॥ ५ ॥
५२४ अभि त्यं वीरं गिर्वणसमर्चे-न्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन ।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद् वाजाँ उप महो गृणानः ॥ ६ ॥

अर्थ— [५२१] (उत) और भी; हे (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी ! (ऊरु क्षत्रं करथः) तुम हमें विस्तृत क्षात्रबलसे युक्त बनाओ । हे (रोदसी) द्यावापृथिवी ! (सुसुम्ने बृहत् शरणं) अच्छी तरह सुख देनेवाला, खूब बडा रहनेके लिये घर दो (महः वरिवः नः यथा) हमें जिस प्रकार हो उस प्रकार अधिक धन दो । हे (धिषणे) धारण करनेवाली द्यावापृथिवी ! (अस्मे अनेहः क्षयाय) हमारे घरको पापरहित करो ॥ ३ ॥

[५२२] (रुद्रस्य वसवः अधृष्टाः सूनवः) रुद्रके पुत्र, बसानेवाले, दूसरोंसे अहिंसित, (अद्य हूतासः नः आ नमन्ताम्) आज बुलानेपर हमारे पास आवें। (यत् ईं मरुतः देवान्) जो इन मरुत् देवोंको (अर्भे महति वा बाधे) अल्प अथवा महान् संग्राममें (हितासः अह्वाम) हित करनेके लिये बुलाते हैं ॥ ४ ॥

[५२३] (येषु रोदसी देवी मिम्यक्ष नु) जिनके साथ तेजस्वी द्यावापृथिवी मिली हुई हैं । (अभ्यर्धयज्वा पूषा सिषक्ति) भक्तोंको समृद्ध करनेवाला पूषा जिनकी सेवा करता है । हे (मरुतः) मरुत् गण ! तुम (हवं श्रुत्वा यद्ध याथ) हमारी प्रार्थना सुनकर जब जाते हो तब (अध्वनि प्रविक्ते भूम रेजन्ते) मार्गमें जानेके लिये चलते रहने पर अन्य प्राणी कांपते हैं । इतना तुम्हारा वेग है ॥ ५ ॥

[५२४] हे (जरितः) स्तोता ! (त्यं वीरं गिर्वणसं इन्द्रं) उस वीर प्रशंसनीय इन्द्रकी (नवेन ब्रह्मणा) नवीन स्तोत्रसे (अभि अर्च) स्तुति करो । (स्तवानः) स्तुति किया हुआ वह इन्द्र (हवं उप श्रवत् इत्) हमारी प्रार्थना श्रवण करे । (गृणानः महः वाजान् च उप रासत्) और प्रशंसित इन्द्र हमें अत्यधिक बल और अन्न देवें ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे द्युलोक और हे पृथिवी ! हमें बडा क्षात्रबल प्राप्त हो ऐसा करो हे द्यावापृथिवी ! हमें सुख देनेवाला बडा घर प्राप्त हो । हमें बडा धन जैसा मिले वैसा करो । हे बुद्धिमती देवियो ! हमें निष्पाप घर मिले ऐसा करो ॥ ३ ॥

रुद्रके पुत्र जो सबका निवास कराते हैं, स्वयं अहिंसित रहते हैं, वे आज बुलानेपर हमारे पास आयें । मरुत् देवोंको छोटे या बडे युद्धमें हित करनेके लिये बुलाते हैं ॥ ४ ॥

द्युलोक और पृथिवीलोक जिनके साथ मिले हुए हैं, भक्तोंका समृद्ध करनेवाला पूषा जिनकी सेवा करता है, ऐसे मरुत् गण जब चलते हैं, तब इनके वेगको देखकर सभी प्राणी कांपने लगते हैं । मरुत्गण वायु हैं । ये अन्तरिक्ष स्थानीय देव है। अन्तरिक्ष ही द्युलोक और पृथिवीलोकको आपसमें मिलाता है । सबका पोषण करनेवाले मेघ भी इस वायुदेवकी सेवा करते हैं । पर जब यह वायु प्रचण्डरूप धारण करके चलता है, तब इसके वेगको देखकर संसार सभी प्राणी कांपने लगते हैं ॥ ५ ॥

५२५ ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं योः ।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ॥ ७ ॥
५२६ आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजतो जगम्यात् ।
यो दत्रवाँ उषसो न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ॥ ८ ॥
५२७ उत त्वं सूनो सहसो नो अद्या देवाँ अस्मिन्नध्वरे ववृत्याः ।
स्यामहं ते सदमिद् रातौ तव स्याममग्नेऽवसा सुवीरः ॥ ९ ॥
५२८ उत त्या मे हवमा जग्म्यातं नासत्या धीभिर्युवमङ्ग विप्रा ।
अत्रिं न महस्तमसोऽमुमुक्तं तूर्वतं नरा दुरितादभीके ॥ १० ॥

अर्थ— [५२५] हे (आपः) जलप्रवाहो ! (मानुषीः) तुम मनुष्योंके हितके लिये हो, इसलिये (तोकाय तनयाय धात) पुत्र और पौत्रके लिये (अमृक्तं ओमानं) अहिंसित, रक्षक अन्न देओ। (हि विश्वस्य स्थातुः जगतः जनित्रीः) तुम सब स्थावर और जंगमको उत्पन्न करनेवाले हो। (यूयं मातृतमाः भिषजः स्थ) तुम सब माताओंसे भी अधिक अच्छे चिकित्सक हो। इसलिये (शं योः) तुम सब उपद्रवोंको दूर करो ॥ ७ ॥

[५२६] (यः दत्रवान्) जो धनवान् देव (उषसः न प्रतीकं) उषाका प्रतीक जैसा है वह (दाशुषे वार्याणि) मनुष्यको प्रशंसनीय धन (वि ऊर्णुते) देता है, वह (त्रायमाणः हिरण्यपाणिः यजतः सविता देवः) रक्षक, सुवर्णके समान किरणोंवाला, यजनीय, सविता देव (नः आ जगम्यात्) हमारे पास आवे ॥ ८ ॥

[५२७] (उत) और हे (सहसः सूनो) बलपुत्र अग्नि ! (त्वं अद्य नः अस्मिन् अध्वरे) तू आज हमारे इस यज्ञमें (देवान् आ ववृत्याः) देवोंको ला। और (अहं ते रातौ सदं इत् स्यां) मैं तेरे धन देनेके समय सदा उपस्थित रहूँ तथा हे (अग्ने) अग्नि ! (तव अवसा सुवीरः स्यां) तेरे रक्षणसे उत्तम वीर (पुत्रपौत्रादि) से युक्त होऊं ॥ ९ ॥

[५२८] (उत) और हे (विप्रा नासत्या) बुद्धिमान् अश्विन् देवताओ ! (त्या युवं) वे तुम दोनों (धीभिः मे हवं अंग आ जग्म्यातं) बुद्धियुक्त कर्मोंके साथ मेरे स्तोत्रके प्रति शीघ्र ही आओ। (महः तमसः अत्रिं न अमुमुक्तं) महान् अन्धकारसे जैसे अत्रि ऋषिको छुडाया था, उस प्रकार हे (नरा) नेता अश्विनो ! (अभीके दुरितात् तूर्वतं) संग्राममें पापी शत्रुसे हमें बचाओ ॥ १० ॥

भावार्थ— हे स्तुति करनेवाले मनुष्य ! तू उस प्रशंसनीय इन्द्रकी नवीन स्तोत्रसे स्तुति कर। वह इन्द्र भी स्तुति करनेवाले हम मनुष्योंकी प्रार्थना सुने और हमें अत्यधिक बल और अन्न दे ॥ ६ ॥

जल मानवोंका हित करनेवाला है। घातपात न करनेवाला संरक्षक अन्न पुत्रपौत्रोंके लिये देवे। सब स्थावर जंगमको उत्पन्न करनेवाला जल है। तथा माताओंसे भी अधिक प्रेमसे रोग दूर करनेवाले जल हैं। वे जल हमें शांति दें और दोष दूर करें ॥ ७ ॥

सविता देव धनवान्, उषाके समान प्रकाशमान्, रक्षक, सोनेके समान तेजस्वी किरणोंवाला, पूज्य और मनुष्यको प्रशंसनीय धन देनेवाला है। वह देव हमारे पास आवे ॥ ८ ॥

हे बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! तू आज हमारे इस यज्ञमें देवोंको ला। जब तू धन दे, तब मैं सदा उपस्थित हूँ तथा तेरे रक्षणके साधनोंसे युक्त होकर मैं उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होऊं ॥ ९ ॥

हे अश्वि देवो ! तुम दोनों बुद्धिमान् हो, इसलिए बुद्धियुक्त कर्मोंके साथ मेरे स्तोत्रोंकी तरफ शीघ्र आओ और संग्राममें पापी शत्रुओंसे हमें बचाओ ॥ १० ॥

५२९ ते नो रायो द्युमतो वाजवतो दातारो भूत नृवतः पुरुक्षोः ।
दशस्यन्तो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या मृळता च देवाः ॥ ११ ॥

५३० ते नो रुद्रः सरस्वती सजोषा मीळ्हुष्मन्तो विष्णुर्मृळन्तु वायुः ।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्यावाता पिप्यतामिषं नः ॥ १२ ॥

५३१ उत स्य देवः सविता भगो नो ऽपां नपादवतु दानु पप्रिः ।
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सजोषा द्यौर्देवेभिः पृथिवी समुद्रैः ॥ १३ ॥

५३२ उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात् पृथिवी समुद्रः ।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥ १४ ॥

अर्थ— [५२९] हे (देवाः) देवो ! (ते द्युमतः वाजवतः) तुम तेजसे, बलसे तथा (नृवतः पुरुक्षोः रायः) पुत्रादिसे युक्त हो और अत्यन्त प्रशंसनीय धनके (नः दातारः भूत) दाता हो । (दशस्यन्तः दिव्याः पार्थिवासः गोजाताः च अप्या) दान देनेवाले, द्युलोकमें तथा पृथिवीपर रहनेवाले, गौओंके साथ रहनेवाले और अन्तरिक्षमें रहनेवाले तुम हमको सुखी करो ॥ ११ ॥

[५३०] (मीळ्हुष्मन्तः ते) मनोरथ पूर्ण करनेवाले वे (रुद्रः सरस्वती सजोषाः) रुद्र, सरस्वती, समान रूपसे प्रसन्न रहनेवाले (विष्णु वायुः ऋभुक्षाः) विष्णु, वायु ऋभुक्षा, (दैव्यः वाजः विधाता) देवोंका हितकारी अन्नविधाता (नः मृळन्तु) हमें सुखी करें । (पर्जन्यावाता नः इषं पिप्यतां) और पर्जन्य तथा वायु भी हमें अन्न देवें ॥ १२ ॥

[५३१ (उत स्यः सविता देवः भगः) और वह प्रसिद्ध देव सविता, भग और (दानु पप्रिः अपां नपात्) धनसे पूर्ण करनेवाला अग्नि. (नः अवतु) हमारी रक्षा करे । (देवेभिः जनिभिः सजोषाः त्वष्टा) देव और देवियोंके साथ प्रीतिसे रहनेवाला त्वष्टा (देवेभिः द्यौः) देवोंके साथ द्यौ और (समुद्रैः पृथिवी) समुद्रोंके साथ पृथिवी आदि सब देव हमारी रक्षा करें ॥ १३ ॥

५३२] (उत) और (अहिर्बुध्न्यः, अजः एकपात् पृथिवी समुद्रः) अहिर्बुध्न्य, अज, एक पाद, पृथिवी और समुद्र नः शृणोतु) हमारी प्रार्थना सुने । (ऋतावृधः हुवानाः स्तुता मन्त्राः) यज्ञ अथवा सत्यको बढानेवाले स्तुतिके मन्त्र तथा (कविशस्ताः विश्वेदेवाः) बुद्धिमान् ऋषियोंसे स्तूयमान् सब देवगण हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥ १४ ॥

भावार्थ— देवो ! तुम तेजसे, बलसे तथा पुत्रादिसे युक्त हो, और अत्यन्त प्रशंसनीय धनोंको देनेवाले हो । दान देनेवाले, सभी लोकोंमें रहनेवाले, अन्तरिक्षमें निवास करनेवाले तुम हमें सुखी करो ॥ ११ ॥

रुद्र, सरस्वती, विष्णु, वायु, ऋभुक्षा, दिव्य अन्न, विधाता वे हमें सुखी करें और पर्जन्य तथा वायु हमें अन्न देकर सुखी करें ॥ १२ ॥

वह प्रसिद्ध देव सविता, भग और धनसे पूर्ण करनेवाला अग्नि हमारी रक्षा करे । देव और देवियोंके साथ प्रीतिसे रहनेवाला त्वष्टा द्युलोक तथा समुद्र आदि अन्य देवोंके साथ हमारी रक्षा करे ॥ १३ ॥

अहिर्बुध्न्य, अविनाशी, अद्वितीय देव, पृथिवी तथा समुद्र हमारी प्रार्थना सुनें । यज्ञको समृद्ध करनेवाले तथा ऋषियोंसे स्तुत होनेवाले देवगण हमारी रक्षा करें ॥ १४ ॥

५३३ एवा नपातो मम तस्य धीभिर्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
ग्ना हुतासो वसवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः ॥ १५ ॥

[५१]

ऋषिः- ऋजिश्वा भारद्वाजः । देवताः- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १३-१५ उष्णिक्, १६ अनुष्टुप् ।

५३४ उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोराँ एति प्रियं वरुणयोरदब्धम् ।
ऋतस्य शुचि दर्शतमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥ १ ॥

५३५ वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः ।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान् ॥ २ ॥

५३६ स्तुष उ वो मह ऋतस्य गोपानदितिं मित्रं वरुणं सुजातान् ।
अर्यमणं भगमदब्धधीतीनच्छा वोचे सधन्यः पावकान् ॥ ३ ॥

अर्थ— [५३३] (एव) इस प्रकार (तस्य मम नपातः भरद्वाजाः) भरद्वाज गोत्रीय मेरे पुत्रपौत्र (धीभिः अर्कैः) बुद्धिपूर्वक किये स्तोत्रोंसे (अभि अर्चन्ति) उपासना करते हैं । हे (यजत्रा) यजनीय देवों ! (हुतासः वसवः अधृष्टाः विश्वे ग्नाः स्तुतासः भूत) हव्य द्वारा तृप्त किये गये, बसानेवाले, शत्रुसे भी अहिंसित तुम सब देवपत्नियों सहित सब देव पूजित होओ ॥ १५ ॥

[५१]

[५३४] (त्यत् चक्षुः) वह सबका आंख (महि मित्रयोः वरुणयोः प्रियं) बडे मित्र और वरुणको प्रिय (अदब्धं शुचि दर्शतं) किसीसे अहिंसित, निर्मल और दर्शनीय, (ऋतस्य अनीकं) सत्यका तेजरूप सूर्य (आ उत् एति) प्रकाशित हो रहा है । (उदिता दिवः रुक्मः न वि अद्यौत्) और प्रकाशित होकर वह तेज द्युलोकके भूषणकी तरह सुशोभित होता है ॥ १ ॥

[५३५] (यः त्रीणि विदथानि वेद) जो सूर्य तीनों लोकोंको जानता है । (एषां देवानां सनुतः जन्म च विप्रः) इन देवोंके जन्मको भी जानता है । (सूरः) वह सूर्य (मर्तेषु ऋजु वृजिना) विश्वमें सत् कर्म और असत् कर्मोंको (च पश्यन् अभि चष्टे) देखता हुआ उनको प्रकाशित करता है, (अर्यः एवान्) वह स्वामी देव सूर्य मनुष्यों की इच्छा पूर्ण करता है ॥ २ ॥

[५३६] हे देवो ! (महः ऋतस्य) महान् यज्ञकी (गोपान् वः) रक्षा करनेवाले तुम्हारी मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूँ । (अदितिं मित्रं वरुणं) अदिति, मित्र, वरुण, (सुजातन् अर्यमणं भगं) उत्तम जन्मवाले अर्यमा और भग तथा (अदब्धधीतीन् सधन्यः पावकान्) अहिंसित कर्मवाले अन्य और सबको पवित्र करनेवाले ऐसे सब देवोंकी मैं (अच्छ वोचे) प्रशंसा करता हूँ । ॥ ३ ॥

भावार्थ— जिस तरह मैं देवोंकी उपासना करता हूँ, उसी तरह मेरे पुत्र आदि भी देवोंकी उपसना करें । हे देवो ! तुम सबको निवास करानेवाले, शत्रुओंसे अहिंसित हो, अतः तुम अपनी शक्तियोंके कारण सर्वत्र पूजित होओ ॥ १५ ॥

सूर्य संसारके सब कामोंको देखता हुआ चलता है, इसीलिए वह सर्वद्रष्टा चक्षु है । वह अहिंसित, निर्मल, देखने योग्य और तेजोरूप है । जब वह प्रकाशित होता है, तब द्युलोकके भूषणके समान सुशोभित होता है । जिस तरह किसी वीरके कानोंमें कुण्डल सुशोभित होता है, उसी तरह यह सूर्य द्युलोकके सुनहरे कुण्डलके रूपमें सुशोभित होता है ॥ १ ॥

जो तीनों लोकोंमें चल रहा है उसको जानता है । इन देवोंके जन्म जो जानता है । वह सूर्य इस विश्वमें सरल और कुटिल जो है वह देखता और प्रकाशित करता है । वह ऐसा सच्चा शासक है । सब इस शासकका सामर्थ्य जाने और उसको चारों ओर देखकर सरल रीतिसे अपने जीवन व्यतीत करें । ॥ २ ॥

हे देवो ! तुम महान् यज्ञकी रक्षा करते हो, इस लिये मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ । साथ ही मैं अदिति, मित्र, वरुण, अर्यमा, ऐश्वर्यशाली भग देवता तथा अन्य देवोंकी भी मैं उपासना करता हूँ ॥ ३ ॥

५३७ रिशादसः सत्पतीँरदब्धान् महो राज्ञः सुवसनस्य दातॄन् ।
यूनः सुक्षत्रान् क्षयतो दिवो नॄनादित्यान् याम्यदितिं दुवोयु ॥ ४ ॥
५३८ द्यौ३ष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता नः ।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्त ॥ ५ ॥
५३९ मा नो वृकाय वृक्ये समस्मा अघायते रीरधता यजत्राः ।
यूयं हि ष्ठा रथ्यो नस्तनूनां यूयं दक्षस्य वचसो बभूव ॥ ६ ॥
५४० मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत् कर्म वसवो यच्चयध्वे ।
विश्वस्य हि क्षयथ विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्वं रीरिषीष्ट ॥ ७ ॥

अर्थ— [५३७] (रिशादसः सत्पतीन्) हिंसकोंका नाश करनेवाले, सज्जनोंकी रक्षा करनेवाले, (अदब्धान् महः राज्ञः) अहिंसित, महान् शासक (सुवसनस्य दातॄन् यूनः सुक्षत्रान्) सुन्दर घर देनेवाले, नित्य तरुण, अतिशय क्षात्रबलसे युक्त, (क्षयतः दिवः नॄन्) निवास करनेवाले, द्युलोकके नेता, (आदित्यान्) अदितिके पुत्रोंकी ओर (दुवोयु अदितिं यामि) आशीर्वाद देनेवाली अदितिके समीप मैं जाता हूँ ॥ ४ ॥

[५३८] हे (पितः द्यौः) पिता द्युलोक, (मातः अध्रुक् पृथिवि) अद्रोही माता पृथिवि, (भ्रातः अग्ने) भाई अग्नि और (वसवः) वसुओं! (नः मृळत) हमको सुखी बनाओ। हे (विश्वे आदित्याः) सब अदिति पुत्रों! हे (अदिते) अदिति! तुम सब (सजोषाः अस्मभ्यं) प्रीतिपूर्वक मिलकर हमको (बहुलं शर्म वियन्त) अत्याधिक सुख दो ॥ ५ ॥

[५३९] हे (यजत्रा) पूजनीय देवों! (नः वृकाय वृक्ये मा रीरधत) हमको वृक और वृकीके वशमें मत करना, ((समस्मै अघायते) संपूर्ण रीतिसे जो हमारे साथ पापव्यवहार करना चाहते हैं उनके भी हाथमें हम न चले जांय। (यूयं हि नः तनूनां रथ्यः स्थ) तुम हमारे शरीरोंके नेता हो। (यूयं दक्षस्य वचसः बभूव) और तुम सब हमारे बलवर्धक भाषणके भी नेता बनो ॥ ६ ॥

[५४०] हे देवो! (वः अन्यकृतं एनः मा भुजेय) हम तुम्हारे ही हैं, हम अन्य शत्रुओं द्वारा किये हुए पापके भोगी ना बनें। हे (वसवः) वसुओं! (यत् चयध्वे) जिस पापके लिये तुम हमको रोकते हो, (तत् मा कर्म) वह पाप हम न करें। हे (विश्वदेवाः) सब देवों! (विश्वस्य हि क्षयथ) सब जगत्के तुम ही स्वामी हो। (रिपुः तन्वं स्वयं रिरिषीष्ट) इसलिये हमारे शत्रु स्वयं ही अपने शरीरका नाश कर डाले ॥ ७ ॥

भावार्थ— अदितिके पुत्र आदित्य हिंसकोंका नाश करनेवाले, सज्जनोंकी रक्षा करनेवाले, अहिंसित महान् शासक, सुन्दर घर देनेवाले, नित्य तरुण तथा अत्यन्त बलशाली हैं। इसी तरह अदिति भी है, अतः मैं इन सबकी शरणमें जाता हूँ ॥ ४ ॥

द्युलोक वर्षा गिराकर तथा अन्न पैदा करके सबका पोषण करनेवाला होनेसे सबका पिता है, पृथिवी सभी प्राणियोंपर समान रूपसे स्नेह करनेवाली माता है, अग्नि सबका सहायक होनेसे सबका भाई है। ये सभी देव हमें सुखी करें। हे देवो! तुम सब प्रीतिपूर्वक मिलकर हमें अत्यधिक सुख प्रदान करो ॥ ५ ॥

हे पूज्य देवो! तुम हमें कुटिल और दुष्ट लोगोंके वशमें मत करो। हमारे साथ जो पापव्यवहार करते हैं, उनके अधीन भी हम न रहें। हे देवो, तुम सब हमारे शरीरके स्वामी हो, इसलिए तुम हमारे शरीरमें बल बढाओ ॥ ६ ॥

दूसरोंका किया पाप हमें भोगना न पडे। जिसके लिये तुम दण्ड देते हैं वैसा कोई पाप न करे। विश्वके तुम स्वामी हो। शत्रु अपने शरीरको स्वयं नष्ट करे। वह हमें कष्ट देनेके लिये न रहे ॥ ७ ॥

५४१ नम॒ इदु॒ग्रं नम॒ आ वि॑वासे॒ नमो॑ दाधार पृथि॒वीमु॒त द्याम् ।
नमो॑ दे॒वेभ्यो॒ नम॑ ईश एषां कृ॒तं चि॒देनो॒ नम॒सा वि॑वासे ॥ ८ ॥
५४२ ऋ॒तस्य॑ वो र॒थ्यः॑ पू॒तद॑क्षा॒नृ॒तस्य॑ पस्त्य॒सदो॒ अद॑ब्धान् ।
ताँ आ नमो॑भिरुरु॒चक्ष॑सो॒ नॄन् विश्वा॑न्व॒ आ न॑मे म॒हो य॑जत्राः ॥ ९ ॥
५४३ ते हि श्रेष्ठ॑वर्चस॒स्त उ॑ न॒स्तिरो॒ विश्वा॑नि दुरि॒ता नय॑न्ति ।
सु॒क्ष॒त्रासो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॒ग्निरृ॒तधी॑तयो वक्म॒राज॑सत्याः ॥ १० ॥
५४४ ते न॒ इन्द्रः॑ पृथि॒वी क्षाम॑ वर्ध॒न् पू॒षा भगो॒ अदि॑तिः॒ पञ्च॒ जनाः॑ ।
सु॒शर्मा॑णः॒ स्वव॑सः सुनी॒था भव॑न्तु नः सुत्रा॒त्रासः॑ सुगो॒पाः ॥ ११ ॥

अर्थ— [५४१] (नमः इत् उग्रं) नमस्कार वास्तवमें ही सर्वोत्कृष्ट है। इसलिये (नमः आ विवासे) मैं नमस्कार करता हूँ। नमः पृथिवीं उत द्यां दाधार) नमस्कार ही पृथिवी और द्युलोकको धारण करता है। मैं (देवेभ्यः नमः) देवोंको नमस्कार करता हूँ। (एषां नमः ईशे) देवोंका नमस्कार अभीष्ट है जिससे वे वशमें हो जाते हैं। और इसलिये (कृतं चित् एनः नमसा आ विवासे) किये हुए पापोंका मैं नमस्कार द्वारा नाश करता हूँ। ८ ॥

[५४२] हे (यजत्राः) यजनीय देवों ! (वः ऋतस्य रथ्यः पूतदक्षान्) तुम यज्ञके नेता, शुद्ध बलवाले, (ऋतस्य पस्त्यसदः) यज्ञशालामें रहनेवाले, (अदब्धान् उरुचक्षसः) अपराजित दूरदर्शी, (नॄन् महः तान् विश्वान् वः) नेता, ऐसे महान् तुम सबको मैं (आ नमोभिः आ नमे) नमस्कारोंसे नमन करता हूँ ॥ ९ ॥

[५४३] (ते हि श्रेष्ठवर्चसः) वे अत्यन्त श्रेष्ठ तेजसे युक्त हैं। इसलिये (ते उ नः विश्वानि दुरिता तिरः नयन्ति) वे ही हमारे संपूर्ण पापोंको दूर करते हैं। (वरुणः मित्रः अग्निः) वरुण, मित्र, अग्नि ये देव (सुक्षत्रासः ऋतधीतयः वक्मराजसत्याः) उत्तम क्षात्रबलसे युक्त, सत्य कर्म करनेवाले, और विशेष राज्य चलानेमें सत्यवादी हैं ॥ १० ॥

[५४४] (क्षाम वर्धन् इन्द्रः) सुखको बढानेवाला (पृथिवी, पूषा, भगः अदितिः पंचजनाः) पृथिवी, पूषा, भग, अदिति, पञ्चजन ये देव (सुशर्माणः सुअवसः) उत्तम घर देनेवाले, उत्तम रक्षा करनेवाले सुनीथाः) उत्तम मार्गसे चलानेवाले हमारे लिये (भवन्तु) हों। तथा वे (नः सुत्रात्रासः) हमारे उत्तम संरक्षक (सु-गोपाः) उत्तम गोपालक हों ॥ ११ ॥

भावार्थ— नमस्कार करना या वन्दना करना सर्वोत्तम रीति है, इसीलिए मैं सबको नमस्कार करता हूँ। यह नमस्कार ही पृथिवी और द्युलोकको धारण करता है। इसी नमस्कारके द्वारा सभी देव भक्तके वशमें होते हैं। मैं देवोंकी भक्ति करके, उनकी उपासना करके अपने पापोंका नाश करता हूँ। ॥ ८ ॥

हे देवो ! तुम यज्ञके नेता, शुद्ध बलवाले, यज्ञशालामें रहनेवाले, अपराजित दूरदर्शी और मनुष्योंको उत्तम मार्गसे आगे ले जानेवाले हो ! ॥ ९ ॥

वे देव अत्यन्त श्रेष्ठ तेजसे युक्त हैं, इसलिए वे हमारे संपूर्ण पापोंको दूर करें। ये सभी देव उत्तम क्षात्रबलसे युक्त सत्य कर्म करनेवाले और सदा सत्यवादी हैं ॥ १० ॥

सुखको बढानेवाले इन्द्र, पृथिवी, पूषा, भग, अदिति और पंचजन ये देव उत्तम घर देनेवाले, उत्तम रक्षा करनेवाले और उत्तम मार्गसे चलानेवाले हों। वे हमारी उत्तम रक्षा करनेवाले और गोपालक हों ॥ ११ ॥

५४५ नू सद्मानं दिव्यं नंशि देवा भारद्वाजः सुमतिं याति होता ।
आसानेभिर्यजमानो मियेधैर्देवानां जन्म वसूयुर्ववन्द ॥ १२ ॥
५४६ अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् । दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥ १३ ॥
५४७ ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वनाय वावशुः ।
जही न्यत्रिणं पणिं वृको हि षः ॥ १४ ॥
५४८ यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।
कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा ॥ १५ ॥

अर्थ— [५४५] हे देवो ! (भारद्वाज होता) अन्नदान करनेवाला होता (सुमतिं याति) उत्तम मतिमान्को प्राप्त करता है । (दिव्यं सद्मानं नंशि) दिव्य घरको प्राप्त करता है । (यजमानः) यज्ञ करनेवाला (आसानेभिः मियेधैः) समीप बैठे हुओंके साथ (वसयुः) रहनेवाला (देवानां जन्म ववन्द) देवोंके जन्मका उपदेश करता है ॥१२॥

[५४६] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्यं रिपुं) उस शत्रुको (स्तेनं दुराध्यं वृजिनं) चोर, दुष्ट, पापीको (दविष्ठं सुगं कृधि) दूर रहनेवाले दुष्टको भी उत्तम रीतिसे पास जाने योग्य कर । हे (सत्पते) सत्यके पालक ! तू (अस्य अप क्राध) इस सज्जनसे उस दुष्टको दूर कर ॥ १३ ॥

[५४७] हे (सोम) शान्ति स्थापक देव ! (नः ग्रावाणः सखित्वनाय कं वावशुः) हमारे पत्थर जैसे कठिन लोग भी मित्रताके लिये सुखदायक पुरुषको ही अपने पास रखते हैं । (पणिं अत्रिणं जहि) तू कुव्यवहार करनेवाले, खानेवाले पुरुषको दण्डित कर । (हि सः वृकः हि) क्योंकि वह भेडिया ही है । समाजमें वह भेडियेके समान है ॥१४॥

[५४८] (यूयं हि सुदानवः स्थ) तुम उत्तम दाता हो, (अभिद्यवः इन्द्रज्येष्ठाः) विशेष तेजस्वी इन्द्र जिनमें श्रेष्ठ है (स्थ) ऐसे तुम देव हो । (नः अध्वन् सुगं आ कर्त) हमारे मार्गको सुगम करो । हे (गोपाः) गोपालको ! (अमा) हमारे घरको सुखदायक करो ॥ १५ ॥

भावार्थ— अन्नको देनेवाला होता उत्तम बुद्धिको प्राप्त करता है । दिव्य घरको प्राप्त करता है तथा यज्ञ करनेवाला बुद्धिमान् मनुष्य इन देवोंके जन्मोंके बारेमें उपदेश देता है ॥ १२ ॥

हे अग्ने ! तू ऐसा कर कि हम शत्रु, चोर, दुष्ट और पापीके पास भी जा सकें, अर्थात् उनसे भी हमें कोई डर न हो । हम निडर होकर सर्वत्र संचार करें । पर यदि कोई दुष्ट अपनी दुष्टता न छोडकर सज्जनसे खराब व्यवहार करे, तो ऐसे दुष्टको तू सज्जनसे दूर ही रख ॥ १३ ॥

जो पुरुष पत्थर जैसे कठोर होते हैं, वे अपनी मित्रताके लिये सुख देनेवाले पुरुषको ही अपने पास रखते हैं । हे देव ! तू दुष्ट व्यवहार करनेवाले पुरुषको दण्डित कर, क्योंकि ऐसा दुष्ट पुरुष मानों समाजके लिये भेडिया रूप ही । जिस तरह भेडिया बकरी आदि अहिंसक प्राणियोंको मार देता है, उसी तरह दुष्ट पुरुष भी समाजमें सज्जन पुरुषोंको मार देता है ॥ १४ ॥

हे देवो ! तुम सभी उत्तम दान देनेवाले हो, तुम देवोंमें विशेष तेजस्वी इन्द्र श्रेष्ठ है । जो विशेष तेजस्वी होता है, वही मनुष्योंमें श्रेष्ठ होता है । हे देवो ! तुम हमारे मार्गको सुगम करो । हे गोपालको ! हमारे घरको सुखदायक करो ! जिस घरमें गौओंका पालन होता है, वह घर सदा सुखसे पूर्ण होता है ॥ १५ ॥

५४९ अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥ १६ ॥

[५२]

ऋषिः- ऋजिश्वा भारद्वाजः । देवताः- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ७-१२ गायत्री, १४ जगती ।

५५० न तद् दिवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत शमीभिराभिः ।
उब्जन्तु तं सुभ्वः पर्वतासो नि हीयतामतियाजस्य यष्टा ॥ १ ॥

५५१ अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निनित्सात् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः ॥ २ ॥

५५२ किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः सोम गोपां किमङ्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः ।
किमङ्ग नः पश्यसि निद्यमानान् ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥ ३ ॥

अर्थ— [५४९] (स्वस्तिगां अनेहसं पंथां अपि अगन्म) सुखसे जाने योग्य निष्पाप मार्गसे हम जांय । (येन विश्वाः द्विषः परिवृणक्ति) जिससे सब शत्रु दूर होते हैं और (वसु विन्दते) धन मिलता है ॥ १६ ॥

[५२]

[५५०] (न तत् दिवा) न वह द्युलोकमें होगा, (न पृथिव्या) न वह पृथिवीमें होगा, (न यज्ञेन) न वह यज्ञसे होगा, और (न उत आभिः शमीभिः) न वह इन शांतिमय कर्मोंसे होगा, ऐसा मैं (अनु मन्ये) निश्चयसे मानता हूँ । (अतियाजस्य यष्टा) अति याजका-अर्थात् न करने योग्य यज्ञका याजक है (सुभ्वः पर्वतासः) उत्तम बडे पर्वत (तं उब्जन्तु) उसका विनष्ट करें, और वह (नि हीयतां) निःशेष रीतिसे हीन बने ॥ १ ॥

[५५१] हे (मरुतः) मरुत् वीरों ! (यः वा) अथवा जो (नः क्रियमाणं ब्रह्म) हमारे द्वारा किये जानेवाले मंत्रपाठका (अति मन्यते) अतिक्रमण करेगा, (वा यः निनित्सात्) अथवा जो हमारे मंत्रपाठकी निंदा करेगा, (तस्मै तपूंषि वृजिनानि सन्तु) उसके लिये आगज्वालाएं जलानेवाली हों, (तं ब्रह्मद्विषं द्यौः अभिशोचतु) उस ज्ञानके द्वेष करनेवालेको यह द्युलोक भी संतप्त करे ॥ २ ॥

[५५२] हे (अङ्ग सोम) प्रिय सोम ! (किं त्वा ब्रह्मणः गोपां आहुः) क्या तुझे ज्ञानका रक्षक कहते हैं ना ? हे (अङ्ग) प्रिय प्रभो ! (किं त्वा नः अभिशस्तिपां आहुः) क्या तुझे निन्दासे हमारा बचाव करनेवाला कहते हैं ना ? हे (अङ्ग) प्रिय ! (न निद्यमानान् पश्यसि) हमारी निन्दा करनेवालोंको तू देखता ही, हे अतः (ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिं अस्य) ज्ञानसे द्वेष करनेवालेके ऊपर तपा हुआ शस्त्र फेंक ॥ ३ ॥

भावार्थ— हम सुखसे जाने योग्य निष्पाप अर्थात् पापसे रहित मार्गमें जाएं । इस पापरहित मार्गसे जाने पर सब शत्रु दूर होते हैं और धन मिलता है । ॥ १६ ॥

जो न करने योग्य यज्ञको करता है, वह न द्युलोकमें रहता है, न पृथिवीमें रह सकता है और वह यज्ञसे प्राप्त करनेवाले फलोंको भी नहीं प्राप्त कर सकता । न उसे कभी शान्ति ही मिल सकेगी । ऐसे अयोग्य यज्ञको करनेवाले मनुष्यको सभी देव नष्ट करें, हीन अवस्थाको पहुंचे ॥ १ ॥

जो ज्ञानसे द्वेष करता है, जो ज्ञानकी निंदा करता है, उसके लिये ज्वालाएं जलानेवाली हों । उस ज्ञानसे द्वेष करनेवालेको यह द्युलोक संतप्त करे, दुःखी करे, । ज्ञानसे द्वेष करनेवालेका कभी कल्याण नहीं होगा । ॥ २ ॥

• हे सोम ! तुझे ज्ञानका रक्षक कहते हैं । तुझे निन्दासे बचानेवाला कहते हैं । ज्ञानका रक्षण करना चाहिये और किसीकी निन्दा भी नहीं करनी चाहिये । निन्दा करनेवालोंको देखते रहना योग्य नहीं है । उनको सुधारना चाहिये । ज्ञानसे द्वेष करनेवालेको अच्छा दण्ड देना चाहिये । यदि वह सौम्य उपायोंसे न सुधरे तो कठक शस्त्र भी उसपर फेंकना चाहिये । इस मंत्रमें प्रभुसे पूछा है कि क्या तुमको ज्ञानका रक्षक कहते हैं ना ? तुमको निन्दासे बचानेवाला कहते हैं ना ? फिर हमारी निन्दा करनेवालोंको तुम देखते ही रहते हो यह कैसे हो रहा है । निन्दकोंपर अच्छा प्रहार करो और विश्वमें शान्ति स्थापन हो ॥ ३ ॥

५५३ अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः ।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासो ऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥ ४ ॥
५५४ विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
तथा करद् वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥ ५ ॥
५५५ इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना ।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्निः सुशंसः सुहवः पितेव ॥ ६ ॥
५५६ विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् । एदं बर्हिर्नि षीदत ॥ ७ ॥
५५७ यो वो देवा घृतस्नुना हव्येन प्रतिभूषति । तं विश्व उप गच्छथ ॥ ८ ॥

अर्थ— [५५३] (जायमानाः उषासः मां अवन्तु) प्रकट होनेवाली उषाएं मेरा संरक्षण करें, (पिन्वमानाः सिन्धवः मा अवन्तु) जलसे भरी नदियां मेरी रक्षा करें, (ध्रुवासः पर्वतासः मा अवन्तु) सुस्थिर पर्वत मेरी रक्षा करें, (पितरः देवहूतौ) पितर देवोंकी प्रार्थना करनेपर (मा अवन्तु) मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥

[५५४] (विश्वदानीं सुमनसः स्याम) सदा ही हम उत्तम विचार करनेवाले हों। (सूर्यं उच्चरन्तं पश्येम नु) आकाशमें ऊपर संचार करनेवाले सूर्यको हम देखें । (वसूनां वसुपतिः तथा करत्) धनोंका धनपति देव वैसा प्रयत्न करे कि जिससे (देवान् ओहानः अवसा आगमिष्ठः) ज्ञानियोंको बुलानेवाला देव अपनी रक्षणकी शक्तिसे हमारे पास आ जावे ॥ ५ ॥

[५५५] (इन्द्रः अवसा नेदिष्ठं आगमिष्ठः) इन्द्र अपने रक्षा करनेके साधनोंसे हमारे समीप आवे । (सिन्धुभिः पिन्वमाना सरस्वती) जलके स्रोतोंसे खूब भरकर बहनेवाली सरस्वती हमारी रक्षा करे । (पर्जन्यः ओषधीभिः नः मयोभुः) पर्जन्य औषधियोंके साथ हमें सुख देनेवाला हो (सुशंसः अग्निः) प्रशंसनीय अग्नि (पिता इव सहवः) पिताके समान सुखसे बुलाने योग्य हो ॥ ६ ॥

[५५६] हे (विश्वे देवाः) सब देवो ! (आ गत) आओ, (मे इदं हवं शृणुत) मेरी यह प्रार्थना सुनो और (इदं बर्हिः आ नि षीदत) इस आसनपर बैठो ॥ ७ ॥

[५५७] हे (देवाः) दिव्य वीरो ! (घृतस्नुना हव्येन) घृतसे भरपूर भरे हविसे (यः वः प्रतिभूषति) जो आपको समर्पण करता है (तं विश्वे उप गच्छथ) उसके पास आप सब आते जाते हैं । ॥ ८ ॥

घृतस्नुना हव्येन यः प्रतिभूषति— घी जिससे टपकता है वैसे हविसे जो तुम्हारा आदरसत्कार करता है। हवन वैसे हविसे किया जाय जिसमें गौका घी भरपूर भरा हो ।

भावार्थ— जो उषायें हर रोज प्रकट होती हैं, वे मेरी रक्षा करें । जलसे भरकर बहनेवाली नदियां मेरी रक्षा करें । सदा स्थिर और दृढ रहनेवाले पर्वत मेरी रक्षा करें और पितर भी मेरी उत्तम प्रकारसे रक्षा करें ॥ ४ ॥

हम सदा मनमें उत्तम विचार रखें । मनमें कुविचार रखनेसे हानि होती है । अतः सदा अपने मनमें उत्तम ओजस्वी विचार ही रहें । सूर्य ऊपर आकाशमें आया है ऐसा हम देखें । अर्थात् हम सूर्यका दर्शन करें । हम प्रकाशमें रहें । दीर्घ जीवन प्राप्त करें । दिव्य पुरुषोंको अपने पास लानेवाला धनपति संरक्षक शक्तिके साथ हमारे पास आवे और हमें धन देकर हमारा संरक्षण करे ॥ ५ ॥

अपने रक्षा के साधनों से युक्त होकर इन्द्र हमारे पास आवे, जलसे भरकर चलनेवाली नदियां हमारी रक्षा करें । पर्जन्य अर्थात् मेघदेव औषधियों को उत्पन्न करके हम सुख प्रदान करे। प्रशंसनीय अग्नि पिताके समान सुखसे बुलाने योग्य हो ॥ ६ ॥

हे देवो ! मेरी प्रार्थना सुनकर तुम आओ और इस मेरे यज्ञ में बैठो ॥ ७ ॥

५५८ उप॑ नः सू॒नवो॒ गिरः॑ शृ॒ण्वन्त्व॒मृत॑स्य॒ ये । सु॒मृ॒ळी॒का भ॑वन्तु नः ॥ ९ ॥
५५९ विश्वे॑ दे॒वा ऋ॑ता॒वृध॑ ऋ॒तुभि॑र्हवन॒श्रुतः॑ । जु॒षन्तां॒ युज्यं॒ पयः॑ ॥ १० ॥
५६० स्तो॒त्रमिन्द्रो॑ म॒रुद्ग॑ण॒स्त्वष्टृ॑मान् मि॒त्रो अ॑र्य॒मा । इ॒मा ह॒व्या जु॑षन्त नः ॥ ११ ॥
५६१ इ॒मं नो॑ अग्ने अध्व॒रं होत॑र्वयुन॒शो य॑ज । चि॒कि॒त्वान् दैव्यं॒ जन॑म् ॥ १२ ॥
५६२ विश्वे॑ देवाः शृणु॒तेमं हवं॑ मे॒ ये अ॒न्तरि॑क्षे॒ य उप॒ द्यवि॒ ष्ठ ।
ये अ॑ग्निजि॒ह्वा उ॒त वा॒ यज॑त्रा आ॒सद्या॒स्मिन् ब॒र्हिषि॑ मादयध्वम् ॥ १३ ॥

अर्थ— [५५८] (ये अमृतस्य सूनवः) जो अमर ईश्वरके पुत्र हैं, वे देव (नः गिरः उप शृण्वन्तु) हमारी प्रार्थना सुनें। वे (नः सुमृळीका भवन्तु) हमें सुख देनेवाले हों ॥ ९ ॥

अमृतस्य सूनवः— अमर ईश्वरके पुत्र ये सब अग्न्यादि देव हैं। ये सब हमें सुख देनेवाले हों।

[५५९] (विश्वे देवाः ऋतावृधः) आप सब देव सत्यमार्गको बढानेवाले हो (ऋतुभिः हवनश्रुतः) और ऋतुओंके अनुसार हवन करानेके लिये सुप्रसिद्ध हों । अतः (युज्यं पयः जुषन्तां) इस योग्य दूधका स्वीकार करो ॥ १० ॥

[५६०] (इन्द्रः मरुद्गणः) इन्द्र, वीर मरुतोंका समूह, (त्वष्टृमान्) कारीगर, सुतार आदि जिसके साथ रहते हैं वे (मित्रः अर्यमा) मित्र और श्रेष्ठ मनवाला अर्यमा ये सब देव (नः इमा हव्या जुषन्त) हमारी ये प्रार्थनाएं सुनें ॥ ११ ॥

[५६१] हे (होतः अग्ने) यज्ञसंपादक अग्ने ! (नः इमं अध्वरं) हमारे इस हिंसारहित यज्ञका (दैव्यं जनं चिकित्वान्) दिव्यजनको जानकर (वयुन-शः यज) उनके कर्मके अनुसार संपादन कर ॥ १२ ॥

[५६२] हे (विश्वे देवाः) सब देवों ! (ये अन्तरिक्षे) जो देव अन्तरिक्षमें हैं (ये द्यवि उप स्थ) और जो द्युलोकमें हैं वे सब देव (मे इमं हवं शृणुत) मेरी यह प्रार्थना सुनें। (ये अग्निजिह्वाः) जो देव अग्नि जैसा जिह्वावाले हैं (उत वा यजत्राः) अथवा जो यजनीय देव हैं, वे (अस्मिन् बर्हिषि आसद्य) इस आसनपर बैठकर (मादयध्वं) आनन्दित हो जाव ॥ १३ ॥

भावार्थ— हे देवो ! घी जिससे टपकता है, ऐसी हविसे जो तुम्हारा आदर सत्कार करता है, उसके पास तुम जाते आते हो। हवनमें ऐसी हवि डाली जाए कि जिसमें घी भरपूर हो ॥ ८ ॥

अग्नि आदि सब देव अमर ईश्वर के पुत्र हैं, ये सभी देव हमें सुख देनेवाले हों। ॥ ९ ॥

सत्यमार्गकी वृद्धि करनेवाले जो होते हैं वे देव कहलाते हैं। ऋतुके अनुसार हवन करनेके लिये ये प्रसिद्ध हैं। ये दो लक्षण देवोंके हैं। सत्यका प्रचार और ऋतुके अनुसार कर्म करना ये दो लक्षण देवोंके हैं ॥ १० ॥

इन्द्र, वीर मरुतों का समूह, कारीगर, मित्र और श्रेष्ठ मनवाला अर्यमा ये सब देव हमारी प्रार्थनायें सुनें ॥ ११ ॥

हे यज्ञको पूर्ण करनेवाले अग्ने ! तू हमारी दिव्यता जानकर उत्तम कर्म के अनुसार यज्ञको पूर्ण कर ॥ १२ ॥

हे देवो ! जो देव अन्तरिक्षमें हैं, और जो द्युलोकमें हैं, वे सब देव मेरी प्रार्थना सुनें। जो देव अग्निके समान तेजस्वी हैं, तथा जो देव यजनीय हैं, वे इस आसन पर अर्थात् यज्ञ में बैठकर आनन्दित हों ॥ १३ ॥

५६३ विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञिया उभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद् वो अन्तमा मदेम ॥ १४ ॥
५६४ ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे ।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्रा वरिवस्यन्तु देवाः ॥ १५ ॥
५६५ अग्नीपर्जन्याववतं धियं मे ऽस्मिन् हवे सुहवा सुष्टुतिं नः ।
इळामन्यो जनयद् गर्भमन्यः प्रजावतीरिष आ धत्तमस्मे ॥ १६ ॥
५६६ स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे ।
अस्मिन् नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् ॥ १७ ॥

अर्थ— [५६३] हे (विश्वे देवाः) सब देवों ! हे (यज्ञियाः) पूजनीयो ! हे (उभे रोदसी) दोनों द्यु और पृथिवी ! (अपां नपात् च) हे जलोंको न गिरानेवाले अग्नि ! तुम सब (मम मन्म शृण्वन्तु) मेरा स्तोत्र श्रवण करो । (परिचक्ष्याणि वचांसि वः मा वोचं) निन्दाके भाषण तुम्हारे संमुख मैं कभी न कहूं । (वः सुम्नेषु अन्तमा इत् मदेम) तुम्हारे उत्तम विचारोंमें रहकर हम आनन्दित होंगे ॥ १४ ॥

[५६४] (ये के च) कोई (ज्मा) पृथिवीपर, (दिवः) द्युलोकमें तथा (अपां सधस्थे) अन्तरिक्षमें (महिनः अ-हि-मायाः) महान् कर्मकौशल्यसे युक्त देव (जज्ञिरे) प्रकट हुए हैं (ते देवाः) वे देव (अस्मभ्यं) हम सबके लिये (क्षपः उस्राः) रात्र दिन (विश्वं आयुः) संपूर्ण आयु (इषये वरिवस्यन्तु) इष्ट सुखके लाभके लिये देवें ॥ १५ ॥

[५६५] हे (अग्नि-पर्जन्या) अग्नि और पर्जन्य ! (मे धियं अवतं) मेरी बुद्धिका संरक्षण करो । हे (सुहवा) सुखसे बुलाने योग्य देवों ! (अस्मिन् हवे) इस प्रार्थनामें (नः सुष्टुतिं) हमारी स्तुति तुम सुनो । (अन्यः इळां जनयत्) तुम्हारेमेंसे एक अन्नको उत्पन्न करता है, (अन्यः गर्भं) दूसरा गर्भको पुष्ट करता है, अतः हे देवों ! (प्रजावतीः इषः) प्रजा बढानेवाला अन्न (अस्मै आधत्तं) इसके लिये दे दो ॥ १६ ॥

[५६६] (बर्हिषि स्तीर्णे) आसन फैलानेपर (अग्नौ समिधाने) अग्नि प्रदीप्त होनेके बाद (मनसा महा सूक्तेन आ विवासे) मनसे बडे सूक्त बोलकर कर्म शुरू होनेपर हे (यजत्राः विश्वे देवाः) पूजनीय सब देवों ! (अद्य अस्मिन् नः विदथे) आज इस हमारे कर्ममें (हविषि मादयध्वं) अन्नसे आनन्दित होवो ॥ १७ ॥

भावार्थ— निन्दाके भाषण तुम्हारे सामने मैं कभी न कहूं । मैं कभी बुरे भाषण ही न करूं। तुम्हारे मनोंमें हमारे विषयमें अच्छे भाव ही सदा रहें और हम आनन्द प्राप्त करें ॥ १४ ॥

जो भी देव पृथिवीपर, द्युलोक में और अन्तरिक्ष में हैं, वे देव हमें ऐसे रात्री और दिन तथा आयु प्रदान करें कि हम संपूर्ण आयु सुख ही भोगते रहें ॥ १५ ॥

हे अग्नि और पर्जन्य देव ! तुम दोनों मेरी बुद्धि की रक्षा करो । हे देवो ! तुम हमारी स्तुति सुनो । तुम दोनोंमेंसे एक देव अर्थात् पर्जन्य या मेघ अन्नको उत्पन्न करता है, तो दूसरा देव अग्नि उस अन्नके अन्दर रह कर उन अन्नोंको परिपक्व या पुष्ट करता है ॥ १६ ॥

हे देवो ! जब हम आसन फैला चुकें, अग्नि प्रदीप्त हो जाए तथा मनसे मंत्रोंका बोलना शुरू हो, तब तुम सब हमारे इस कर्म में आनन्दित हों ॥ १७ ॥

[५३]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- पूषा । छन्दः- गायत्री; ८ अनुष्टुप् ।)

५६७ वयमु॒ त्वा पथस्पते रथं॒ न वाज॑सातये । धि॒ये पू॑षन्नयुज्महि ॥ १ ॥
५६८ अ॒भि नो॒ नर्यं॒ वसु॑ वी॒रं प्रय॑तदक्षिणम् । वा॒मं गृ॒हप॑तिं नय ॥ २ ॥
५६९ अदि॑त्सन्तं चिदाघृणे॒ पूष॒न् दाना॑य चोदय । प॒णेश्चि॒द् वि म्र॑दा मनः॑ ॥ ३ ॥
५७० वि प॒थो वाज॑सातये चिनु॒हि वि मृधो॑ जहि । साध॑न्तामुग्र नो॒ धियः॑ ॥ ४ ॥
५७१ परि॑ तृन्धि प॒णीना॒मार॑या हृद॑या कवे । अथे॑म॒स्मभ्यं॑ रन्धय ॥ ५ ॥

[५३]

अर्थ— [५६७] (पथः-पते पूषन्) हे मार्गका रक्षण करनेवाले पूषन् ! (वाजसातये रथं न) अन्नका दान करनेके लिये रथको जोतते हैं उस तरह (धिये त्वा अयुज्महि) बुद्धिके कर्म करनेके लिये तुझे प्रयुक्त करते हैं ॥ १ ॥

[५६८] हे पूषन् ! (नः) हमें (नर्यं वसु) मानवोंका हित करनेवाले धन, (प्रयत-दक्षिणं वीरं) दक्षिणा देनेवाले वीरपुत्र और (वामं गृहपतिं) प्रशंसनीय गृहस्वामीके (अभि नय) पास ले चलो ॥ २ ॥

[५६९] हे (आघृणे पूषन्) प्रकाशमान् पूषन् ! (अदित्सन्तं चित्) दान न देनेवालेको (दानाय चोदय) दान देनेके लिये प्रेरित कर, (पणेः चित् मनः वि म्रदा) व्यवहार करनेवालेके मनको तू विशेष नरम कर ॥ ३ ॥

[५७०] (वाज-सातये पथः वि चिनुहि) धन प्राप्तिके मार्ग ढूंढकर निकालो । (मृधः वि जहि) घातक शत्रुओंको पराजित कर । हे (उग्र) शूर पूषन् ! (नः धियः साधन्तां) हमारे कर्म सिद्ध हो जायें ॥ ४ ॥

[५७१] हे (कवे) ज्ञानी दूरदर्शी ! (पणीनां हृदया) बनियोंके हृदयोंको (आरया परितृन्धि) आरासे काटो, (अथ) और (अस्मभ्यं) हमारे लिये (ईं रन्धय) इन दुष्टोंको नष्टभ्रष्ट कर ॥ ५ ॥

भावार्थ— मार्गका स्वामी पोषणकर्ता ! पोषण करनेवाला योग्य मार्गको जाने और उसी मार्गपरसे वह जाय । अन्नदान अथवा अन्नप्राप्तिके लिये रथको जोतते हैं । रथमें बैठकर अन्नका दान करते हैं अथवा अन्न लाते हैं । बुद्धिके कर्म करनेके लिये तुझे प्रेरित करते हैं । मनुष्य बुद्धिको बढावे और बुद्धिसे सुयोग्य कर्म करे ॥ १ ॥

मानवोंका हित करनेवाला धन है, धन सब मानवोंका हित करनेवाला है । दक्षिणा देनेवाला वीर पुत्र या वीर पुरुष हो । उदार पुत्र हो । प्रयत्न करके दान देनेवाला वीर पुत्र हो । प्रशंसनीय जो गृहस्थ हो, उसको हम प्राप्त करें । मानवोंके हितार्थ धन देनेवाला, उदार वीर गृहस्थ जो होगा वह प्रशंसनीय तथा पास जाने योग्य है ॥ २ ॥

दान न देनेवालेको भी दान देनेके लिये प्रेरित कर । जो कंजूस हैं उनको भी दान देनेमें प्रवृत्त करना चाहिये । व्यापार व्यवहार करनेवाले बनियेके मनको जरा नरम कर । बनिये दान नहीं देते, उनका मन गरीबोंकी स्थिति देख कर पिघल जाय ऐसा मृदु करना चाहिये ॥ ३ ॥

धन प्राप्त करनेके मार्ग ढूंढकर निकालने चाहियें । मनुष्य उद्यमी बनें । उदास न हों । शत्रुओंको परास्त करो । धनप्राप्तिके मार्गमें जो विघ्न करते हैं उनको दूर करना चाहिये । हमारे बुद्धिपूर्वक किये कार्य सबके सब सिद्धिको प्राप्त हों । उनसे हमें लाभ मिले । हमारी इच्छाएं सिद्ध हों ॥ ४ ॥

हे ज्ञानी ! बनियोंके हृदयोंको आरेसे चारों ओरसे काट दे । उनके हृदयोंको पीडा पहुंचे ऐसा कर । हमारे हितके लिये इन दुष्टोंको नष्ट कर ॥ ५ ॥

५७२ वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम् । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ६ ॥
५७३ आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ७ ॥
५७४ यां पूषन् ब्रह्मचोदनी—मारां बिभर्ष्याघृणे ।
तया समस्य हृदय—मा रिख किकिरा कृणु ॥ ८ ॥
५७५ या ते अष्ट्रा गोओपशा ऽऽघृणे पशुसाधनी । तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥ ९ ॥
५७६ उत नो गोषणिं धियं—मश्वसां वाजसामुत । नृवत् कृणुहि वीतये ॥ १० ॥

अर्थ— [५७२] हे (पूषन्) पोषण करनेवाले ! (आरया पणेः वि तुद) आरेसे पणीके हृदयोंको पीडा दे। (हृदि प्रियं इच्छ) हृदयमें प्रिय करनेकी इच्छा कर और (अथ ईं अस्मभ्यं रन्धय) इस दुष्टको हमारे लिये नष्ट कर ॥ ६ ॥

[५७३] हे (कवे) ज्ञानी पूषा ! (आ रिख) पूर्णतासे लिख । (पणीनां हृदया किकिरा कृणु) बनियोंके हृदय खाली कर । (अथ ईं अस्मभ्यं रन्धय) और शत्रुको हमारे लिये नष्ट कर ॥ ७ ॥

[५७४] हे (आघृणे पूषन्) तेजस्वी पूषा देव ! (यां ब्रह्मचोदनीं आरां बिभर्षि) जिस ज्ञानसे प्रेरित होनेवाली आराको तू धारण करता है, (तया समस्य हृदयं) उससे समानके हृदयको (आ रिख) अच्छी तरह लिख और (किकिरा कृणु) खाली कर ॥ ८ ॥

[५७५] हे (आघृणे) तेजस्वी वीर ! (या ते अष्ट्रा गोओपशा) जो तेरी व्यापक और गौओंकी सहायता (पशुसाधनी) पशुओंको पास करनेवाली बुद्धि है, (तस्याः ते सुम्नं ईमहे) उस तेरी बुद्धिसे हम उत्तम मनोभाव हमें मिले ऐसा चाहते हैं ॥ ९ ॥

[५७६] (उत नः धियं) और हमारी बुद्धिको (गो-षणिं) गोसेवक (अश्व-सां) घोडोंके साथ रहनेवाली (वाज-सां) अन्न प्राप्त करनेवाली (उत नृवत्) और पुत्रपौत्रोंके साथ, मानवोंके साथ मिलजुलकर रहनेवाली (वीतये कृणुहि) विशेष उत्पादनके लिये कर ॥ १० ॥

भावार्थ— हे पूषा देव ! आरेसे पणिको काट दे। पणि वह व्यापारी है कि जो अत्यधिक लाभकी इच्छासे ग्राहकोंको ठगाता है। हृदयमें सबका भला करनेकी इच्छा कर। किसीको दुःख देनेकी इच्छा न कर। हमारे लिये शत्रुका नाश कर ॥ ६ ॥

बुरा या भला जो वृत्त हो वह यथावत् लिखकर रख। सबको विदित होवे कि यह ऐसा है। पणियोंके हृदय खाली कर। उसके अन्दर बुरी भावनाएं न रहें ऐसा कर। व्यवहार करनेवाले बुरी वृत्तिसे व्यवहार करके जनोंको न फंसावें ऐसा कर ॥ ७ ॥

तेजस्वी सबका पोषक देव ज्ञानसे प्रेरित शस्त्रको धारण करता है। शस्त्र हमेशा ज्ञानपूर्वक, विचारपूर्वक चलाया जाय। अविवेकसे कभी भी शस्त्रका उपयोग कोई न करे। हे देव ! सबके विषयमें समभाव रखनेवाला जो है, उसके हृदयके समभावको यथावत् लिखकर रख। वह सबके लिये आदर्श हृदयका भाव होगा। अतः उसके समभावको यथावत् लिख कर रखना अत्यावश्यक है। उसके हृदयको खाली कर। उसमें कुछ भी बुराई न रहे ऐसा कर। हृदय परिशुद्ध हो ऐसा कर ॥ ८ ॥

हे तेजस्वी वीर ! जो तेरी व्यापक और पशुओंको बढानेवाली बुद्धि है वह तेरे पास बढे। उस तेरी बुद्धिसे तेरा उत्तम मन भी मिला रहे। तेरे पास उत्तम पशु भी बढें और उत्तम मन भी तेरे पास हो। ऐसी बुद्धि और ऐसा उत्तम मन हमें प्राप्त हो ॥ ९ ॥

हे देव ! हमारी बुद्धिको गौकी सेवा करनेवाली, घोडोंके साथ रमनेवाली, अन्न प्राप्त करनेवाली और पुत्रपौत्रों तथा मानवोंके साथ मिलकर रहनेवाली बना। हमारी बुद्धि ऐसी हो। ॥ १० ॥

+

[५४]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- पूषा । छन्दः- गायत्री ।)

५७७ सं पूषन् विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति । य एवेदमिति ब्रवत् ॥ १ ॥
५७८ समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति । इम एवेति च ब्रवत् ॥ २ ॥
५७९ पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते । नो अस्य व्यथते पविः ॥ ३ ॥
५८० यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते । प्रथमो विन्दते वसु ॥ ४ ॥
५८१ पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजं सनोतु नः ॥ ५ ॥
५८२ पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः । अस्माकं स्तुवतामुत ॥ ६ ॥

[५४]

अर्थ—[५७७] हे (पूषन्) पोषक देव ! (यः इदं एव इति ब्रवत्) जो यह ऐसा ही है ऐसा कहता है और (यः अनुशासति) जो योग्य उपदेश देता है (विदुषा अञ्जसा सं नय) उस विद्वान्‌के पास हमें ले जाओ ॥ १ ॥

[५७८] (यः गृहान् अभिशासति) जो घरोंके विषयमें अनुशासन करता है, तथा (इमे एव इति च ब्रवत्) ये ही वे हैं ऐसा जो कहता है, (पूष्णा उ संगमेमहि) पूषाके साथ हम उनके साथ रहते हैं ॥ २ ॥

[५७९] (अस्य पूष्णः चक्रं न रिष्यति) इस पूषाका चक्र दूषित नहीं होता, (कोशः न अवपद्यते) इसका कोश गिरता नहीं, (अस्य पविः नो व्यथते) इसका शस्त्र व्यथाको नहीं प्राप्त होता ॥ ३ ॥

[५८०] (यः अस्मै हविषा अविधत्) जो इस पूषाके लिये हवि अर्पण करता है, (तं पूषा अपि न मृष्यते) उसको पूषा कभी कष्ट नहीं देता है और वह (प्रथमः वसु विन्दते) पहिले धन प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

[५८१] (पूषा नः गाः अनु एतु) पूषा हमारी गौवोंके पीछे जाय, (पूषा अर्वतः रक्षतु) पूषा हमारे घोडोंका रक्षण करे । (पूषा नः वाजं सनोतु) पूषा धन या अन्न हमें देवे ॥ ५ ॥

[५८२] (सुन्वतः यजमानस्य) यज्ञ करनेवाले यजमानके लिये (उत स्तुवतां अस्माकं) और स्तुति करनेवाले हमारे लिये (गाः अनु प्र इहि) गौवें अनुकूलतासे प्राप्त हों ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो निःसंदेह यह ऐसा ही है ऐसा अचूक कहता है वह सच्चा मनुष्य है। हे देव ! जो अनुकूल शासन करता है, योग्य उपदेश देता है, उस विद्वान्‌के पास शीघ्र हमें ले जा। ऐसा विद्वान् सबका हित करेगा ॥ १ ॥

पूषा अर्थात् सबका पोषण करनेवाला देव इस विश्वरूपी घरको अनुशासनमें रखता है। इस विश्वका एक कण भी अपनी मर्यादासे बाहर नहीं जाता। इसी तरह घरका स्वामी संपूर्ण घरको अनुशासनमें रखे। उसके अनुशासनके बाहर परिवारका कोई भी सदस्य न जाए ॥ २ ॥

पूषाका चक्र और शस्त्र पीछे नहीं हटता, शत्रुपर योग्य रीतिसे आघात करता है। तथा इसका कोश–खजाना रीता (खाली) नहीं होता। सदा भरा रहता है। शस्त्रोंकी तीक्ष्णता और खजाना भरपूर भरा रहना, इस पर राज्ययंत्रकी सुरक्षितता है ॥ ३ ॥

जो मनुष्य इस पूषाको मनसे हवि देता है, उसे यह पूषा भी कभी कष्ट नहीं देता और उसे यह पूषा सबसे पहले धन देता है ॥ ४ ॥

पूषा देवकी कृपासे हमारे पास गौवें, घोडे और धन या अन्न भरपूर हो ॥ ५ ॥

यज्ञ करनेवाले यजमानके लिए तथा स्तुति करनेवाले हमारे लिए गायें अनुकूलतासे प्राप्त हों ॥ ६ ॥

५८३ माकिर्नेशन्माकीं रिष॒न्माकीं सं शा॑रि केव॑टे । अथारि॑ष्टाभि॒रा ग॑हि ॥ ७ ॥
५८४ शृ॒ण्वन्तं॑ पू॒षणं॑ व॒य मिर्य॒मन॑ष्टवेदसम् । ईशा॑नं रा॒य ई॑महे ॥ ८ ॥
५८५ पूष॑न् तव॑ व्र॒ते व॒यं न रि॑ष्येम॒ कदा॑ च॒न । स्तो॒तार॑स्त इ॒ह स्म॑सि ॥ ९ ॥
५८६ परि॑ पू॒षा प॒रस्ता॒ द्धस्तं॑ दधातु॒ दक्षि॑णम् । पुन॑र्नो न॒ष्टमाज॑तु ॥ १० ॥

[५५]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- पूषा । छन्दः- गायत्री ।)

५८७ एहि॒ वां वि॑मुचो नपा॒ दाघृ॑णे॒ सं स॑चावहै । र॒थीर्ऋ॒तस्य॑ नो भव ॥ १ ॥
५८८ र॒थीत॑मं कप॒र्दिन॒ मीशा॑नं॒ राध॑सो म॒हः । रा॒यः सखा॑यमीमहे ॥ २ ॥

अर्थ— [५८३] (माकिः नेशत्) नष्ट न करे, (माकिं रिषत्) नष्ट न होवे, (के-वटे माकिं सं शारि) जलके कुंवेमें गिरकर नष्ट न हों, (अथ अरिष्टाभिः आगहि) ऐसे अहिंसित गौवोंसे हमारे पास आओ ॥ ७ ॥

[५८४] (शृण्वन्तं) प्रार्थना सुननेवाले (इर्यं) प्रेरक (अ-नष्ट-वेदसं) जिसका धन नष्ट नहीं होता ऐसे (ईशानं पूषणं) ईश पूषाके पास (वयं रायः ईमहे) हम धन मांगते हैं ॥ ८ ॥

[५८५] हे (पूषन्) पूषा देव ! (तव व्रते) तेरे व्रतमें रहेंगे तो (वयं कदाचन न रिष्येम) हम कभी भी नष्ट नहीं होंगे । (ते स्तोतारः इह स्मसि) क्योंकि तेरी स्तुति करनेवाले हम हैं ॥ ९ ॥

[५८६] (पूषा दक्षिणं हस्तं) पूषा अपने सीधे हाथको (परस्तात् परिदधातु) ऊपर धारण करे। और (नष्टं पुनः नः आ अजतु) नष्ट हुए धनको वह हमें पुनः देवे ॥ १० ॥

[५५]

[५८७] हे (आघृणे) तेजस्वी पूषन् ! (वां एहि) हम दोनोंके पास आ । (विमुचः न पात्) दुःख मुक्त करनेवालोंको न गिरानेवाले ! (सं सचावहै) हम दोनों मिलकर रहेंगे । (नः ऋतस्य रथीः भव) हमारे सत्य कर्मका चलानेवाला हो ॥ १ ॥

[५८८] (रथीतमं) श्रेष्ठ रथी वीर (कपर्दिनं) मस्तकपर केश धारण करनेवाला, (महः राधसः ईशानं) बडे धनके स्वामी ऐसे (सखायं) हमारे मित्र पूषाके पास हम (रायः ईमहे) धन मांगते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हे पूषा देव ! हम तुझे नष्ट न करें, तू हमें नष्ट न कर। हम कभी भी पतन की न ओर जायें । तू भी अविनाशी गायोंको लेकर हमारे पास आ ॥ ७ ॥

यह पूषा देव प्रार्थना सुननेवाला, अविनाशी धन अपने पास रखनेवाला है, इससे हम धन मांगते हैं ॥ ८ ॥

हे पूषा देव ! तेरे व्रतमें रहते हुए हम कभी नष्ट न हों, क्योंकि हम तेरी स्तुति करनेवाले हैं । जो इन देवोंके अनुशासनमें रहकर इनके द्वारा बताये गए कर्मोंको करता है, वह कभी भी नष्ट नहीं होता ॥ ९ ॥

पूषा अपना आशीर्वाद हमें देनेके लिए अपना दाहिना हाथ हमारे ऊपर रखे और नष्ट हुए धनको हम फिर प्राप्त करें ॥ १० ॥

वीर तेजस्वी हो, विमुक्त करनेवालोंको उन्नति पथसे न गिरावे । हम दोनों मिलकर रहेंगे । समाजमें ज्ञानी-अज्ञानी, सबल-निर्बल, धनी निर्धन ऐसे दो प्रकारके लोग होते हैं उनमें संगति होनी चाहिये ॥ १ ॥

यह पूषा देव रथियोंमें सर्वश्रेष्ठ है, बहुत विशाल धनका स्वामी है, ऐसे पूषासे, जो हमारा मित्रके समान हित करनेवाला है, हम धन मांगते हैं ॥ २ ॥

५८९ रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व । धीवतोधीवतः सखा ॥ ३ ॥
५९० पूषणं न्व१जाश्व॑मुप स्तोषाम वाजिनम् । स्वसुर्यो जार उच्यते ॥ ४ ॥
५९१ मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः । भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ॥ ५ ॥
५९२ आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम् । देवं वहन्तु बिभ्रतः ॥ ६ ॥

[५६]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- पूषा । छन्दः- गायत्री, ६ अनुष्टुप् ।)

५९३ य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम् । न तेन देव आदिशे ॥ १ ॥
५९४ उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ २ ॥

अर्थ— [५८९] हे (आघृणे अजाश्व) तेजस्वी वेगवान् अश्ववाले पूषन् ! (रायः धारा असि) धनका प्रवाह तू है, (वसोः राशिः) ऐश्वर्यकी राशि है और (धीवतः धीवतः सखा) प्रत्येक बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवालेका तू मित्र है ॥ ३ ॥

[५९०] (वाजिनं अजाश्वं) बलवान्, घोडोंवाले, अजोंको घोडोंके स्थानपर जोतनेवाले (पूषणं उप स्तोषाम) पूषाकी हम स्तुति करते हैं। (यः स्वसुः जारः उच्यते) जो उषा नामक बहिनका नाश करनेवाला कहा जाता है ॥ ४ ॥

[५९१] (मातुः दिधिषुं अब्रवं) माताके सहचरको मैंने कहा है, (स्वसुः जारः नः शृणोतु) बहिनका-उषाका नाशक हमारे भाषण सुने। (इन्द्रस्य भ्राता) इन्द्रका यह भाई है (मम सखा) मेरा मित्र पूषा है ॥ ५ ॥

[५९२] (जनश्रियं पूषणं देवं निशृम्भाः) जनोंको वैभवशाली करनेवाले, पूषा देवको लानेवाले (अजासः) अज मेंढे (बिभ्रतः रथे वहन्तु) रथमें धारण करके यहां ले आवें ॥ ६ ॥

[५६]

[५९३] (यः एनं पूषणं) जो इस पूषाको (करम्भ-अद्) करंभ खानेवाला करके (आदिदेशति) स्तुति करता है, (तेन देवः न आदिशे) उससे पूषा देवकी [और अधिक अच्छी स्तुति] कोई नहीं होती ॥ १ ॥

करम्भ— दही मिश्रित आटेसे बनाया खानेका पदार्थ।

[५९४] (उत घ सः रथीतमः) और निश्चयसे वह रथी वीरोंमें श्रेष्ठ है। (युजा सख्या) इसलिये अपने इस योग्य मित्र पूषाके साथ रहकर (सत्पतिः इन्द्रः) सज्जनोंका पति इन्द्र (वृत्राणि जिघ्नते) वृत्रोंको मारता है ॥ २ ॥

भावार्थ— हे तेजस्वी और वेगवान् घोडोंवाले पूषा ! तू धनका स्रोत है, अर्थात् तुझसे ही धन निकलता है, तू ही ऐश्वर्यका खजाना है और प्रत्येक उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यका तू मित्र है ॥ ३ ॥

यहां पूषाको स्वसुः जार अर्थात् अपनी बहिनकी आयुको नष्ट करनेवाला कहा गया है, यहां पूषा सूर्य है। सूर्यके आते ही उसकी बहिन उषा नष्ट हो जाती है, इसलिए सूर्य यहां पूषाको बहिनको नष्ट करनेवाला कहा गया है ॥ ४ ॥

यह पूषा देव अर्थात् सूर्य अपनी माता अर्थात् रात्रीकी आयुको भी नष्ट करता है और अपनी बहिन उषाकी भी। सूर्यके उदय होते ही रात्री और उषा दोनों नष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥

यह पूषा-सूर्य इन्द्र अर्थात् विद्युतका भाई है, और उत्तम मनुष्यका हितकारी है ॥ ६ ॥

यह पूषा करम्भ अद् अर्थात् कर-हाथोंसे अंभ-जलको अद्-खानेवाला है। पूषा सूर्यके रूपमें कर अर्थात् अपनी किरणोंसे पृथ्वी परके जलको पीता है। फिर उसी जलको बरसाता है, इसीलिए लोग इस पूषाकी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

पूषा देव रथी वीरोंमें श्रेष्ठ है। यह पूषा इन्द्रका सच्चा मित्र है, इसलिए सज्जनोंका पालन करनेवाला इन्द्र इस पूषाकी सहायतासे शत्रुओंको मारता है ॥ २ ॥

५९५ उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम् । न्यैरयद् रथीतमः ॥ ३ ॥
५९६ यदद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः । तत् सु नो मन्म साधय ॥ ४ ॥
५९७ इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम् । आरात् पूषन्नसि श्रुतः ॥ ५ ॥
५९८ आ ते स्वस्तिमीमह आरेअघामुपावसुम् ।
अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ॥ ६ ॥

[५७]

(ऋषिः— बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता— इन्द्रापूषणौ । छन्दः— गायत्री ।)

५९९ इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥ १ ॥
६०० सोममन्य उपासदत् पातवे चम्वोः सुतम् । करम्भमन्य इच्छति ॥ २ ॥

अर्थ— [५९५] (रथीतमः) रथियोंमें श्रेष्ठ पूषाने (उत) और (परुषे गवि) कठोर स्थान जैसे भूमिपरसे (अदः सूरः हिरण्ययं चक्रं) वह सूर्यका सुवर्णका चक्र (नि ऐरयत्) घुमाया है ॥ ३ ॥

[५९६] (पुरुष्टुत) हे बहुतों द्वारा प्रशंसित, (दस्र) दर्शनीय (मन्तुमः) और मननीय पूषन् ! (यत् अद्य त्वा प्र ब्रवाम) जो आज तुझे हम कहते हैं, (नः तत् मन्म सुसाधय) हम हमारा मननीय स्तोत्र उत्तम रीतिसे सिद्ध कर ॥ ४ ॥

[५९७] हे (पूषन) पूषा देव ! तू (आरात् श्रुतः असि) तू समीपसे और दूरसे प्रसिद्ध है (इमं गवेषणं गणं) इस गौकी खोज करनेवाले जनसमूहको (सातये सीषधः) धन दानके लिये ले जा ॥ ५ ॥

[५९८] (अद्य च श्वः च) आज और कल हमारा (सर्वतातये सर्वतातये) सब प्रकारसे कल्याण हो, इसलिये (ते आरे अघां) तेरी पाप दूर करनेवाली (उप वसुं) धन देनेवाली और (स्वस्ति) कल्याण करनेवाली बुद्धिको (ईमहे) प्राप्त करनेकी प्रार्थना करते हैं ॥ ६ ॥

[५७]

[५९९] (वयं) हम सब (इन्द्रा नु पूषणा) इन्द्र और पूषाको (सख्याय स्वस्तये) मित्रताके और कल्याणके लिये तथा (वाजसातये) बल, ऐश्वर्य, अन्नादिकी प्राप्तिके लिये (हुवेम) बुलाते हैं ॥ १ ॥

[६००] (अन्यः) उनमेंसे एक इन्द्र (सुतं सोमं चम्वोः पातवे) छानकर पात्रमें रखा सोमरस पीनेके लिये (उपासदत्) आसनपर बैठा है । और (अन्यः करम्भं इच्छति) और दूसरा पूषा करंभ खानेकी इच्छा करता है ॥ २ ॥

भावार्थ— सबका पोषण करनेवाले परमात्माका एक अद्भुत काम यह है कि उसने सूर्यको द्युलोकमें स्थापित किया । इतना दूर स्थापित करने पर भी पृथ्वीपरके लोगोंको प्रतीत यह होता है कि सूर्य उनसे बहुत दूर नहीं है । क्योंकि सूर्यकी किरणे पृथ्वीपर घूमती हैं । ॥ ३ ॥

हे बहुतों द्वारा स्तुत और प्रशंसाके योग्य पूषा देव ! जो हम आज तुझसे मांगते हैं, उसे तू हमें प्रदान कर ॥ ४ ॥

हे पूषा ! तेरे लिए पासका स्थान या दूरका स्थान कुछ भी नहीं है, क्योंकि तू सर्वत्र व्यापक है । तू सबके मनकी इच्छाओंको जानता है, इसलिए गायोंकी खोज करनेवाले इस जनसमूहको धन प्रदान कर ॥ ५ ॥

आज भी हमारा सब प्रकारसे कल्याण हो और कल भी हमारा सब प्रकारसे कल्याण हो । तेरी पाप दूर करनेवाली, धन देनेवाली और कल्याण करनेवाली बुद्धि हमें अनुकूल हो ऐसी हम प्रार्थना करते हैं ॥ ६ ॥

हम स्तुति करनेवाले मनुष्य इन्द्र और पूषाको मित्रता, कल्याण, बल, ऐश्वर्य और अन्नादिकी प्राप्तिके लिए बुलाते हैं ॥ १ ॥

६०१ अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य संभृता । ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥ ३ ॥
६०२ यदिन्द्रो अनयद् रितो महीरपो वृषन्तमः । तत्र पूषाभवत् सचा ॥ ४ ॥
६०३ तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव । इन्द्रस्य चा रभामहे ॥ ५ ॥
६०४ उत् पूषणं युवामहे ऽभीशूँरिव सारथिः । मह्या इन्द्रं स्वस्तये ॥ ६ ॥

[५८]

(ऋषिः— बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता— पूषा । छन्दः— त्रिष्टुप्, २ जगती ।)

६०५ शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ १ ॥

अर्थ— [६०१] (अन्यस्य अजाः वह्नयः) इन दोनोंमेंसे एक पूषाकी गाडी खेंचनेवाले मेंढे हैं और (अन्यस्य हरी संभृता) और दूसरे इन्द्रके घोडे बडे पुष्ट हैं । (ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते) इन दोनों द्वारा वृत्र मारे जाते हैं ॥ ३ ॥

[६०२] (यत्) जब (वृषन्तमः इन्द्रः) बलवान् इन्द्रने (रितः) उत्साहित होकर (महीः अपः अनयत्) बडे जलप्रवाहोंको लाया तब (पूषा तव सचा अभवत्) पूषा तेरा साथी था ॥ ४ ॥

[६०३] (पूष्णः इन्द्रस्य च सुमतिं) पूषा और इन्द्रकी उत्तम बुद्धिको (वयं आरभामहे) प्राप्त करते हैं (वृक्षस्य वयां इव) वृक्षकी शाखाको पकडते हैं, उस तरह हम उसकी सुमतिके आश्रयसे रहते हैं ॥ ५ ॥

[६०४] (सारथिः अभीशून् इव) सारथी लगामोंको पकडता है उस तरह (पूषणं इन्द्रं) पूषा और इन्द्रको (मह्यै स्वस्तये) बडे कल्याणके लिये (उत् युवामहे) हम पकड कर रखते हैं ॥ ६ ॥

[५८]

[६०५] हे (स्वधा-वः) अपने धारण शक्तिसे युक्त, हे (पूषन्) पूषा ! (ते शुक्रं अन्यत्) तेरा एक रूपदिनका-प्रकाशमय है,(ते यजतं अन्यत्) और तेरा दूसरा रूप पुजनीय-रात्रिका-है । (वि-सु-रूपे अहनी) इस तरह विशेष सुंदर रूपवाले दिन और रात्रि (द्यौः इव असि) प्रकाशमान जैसे हैं । (विश्वाः मायाः अवसि हि) सब कौशल्य युक्त कर्मोंका तू रक्षण करता है । (ते भद्राः रातिः इह अस्तु) तेरा कल्याणपूर्ण दान यहां होता रहे ॥ १ ॥

भावार्थ— इन्द्र और पूषा इन दोनों देवोंमेंसे इन्द्र सोमरसको पीता है और पूषा करंभको पसन्द करता है । विद्युत् रूपी इन्द्र सदा बादलोंमें रहकर जलरूपी सोम पीता रहता है, और सूर्य रूपी पूषा अपनी किरणोंसे सदा पृथ्वी परके जलोंको बादलके रूपमें बदलता रहता है ॥ २ ॥

इन्द्र और पूषामेंसे पूषाके रथमें अविनाशी किरण रूपी घोडे जुडे हुए हैं और इन्द्रके रथमें पुष्ट घोडे जुडे हुए हैं । ये दोनों मिलकर वृत्रोंका विनाश करते हैं ॥ ३ ॥

जिस समय इन्द्रने उत्साहमें भरकर जलप्रवाहोंको बहाया, तब उस कार्यमें पूषा इन्द्रका सहायक हुआ ॥ ४ ॥

जिस तरह पक्षीगण वृक्षकी शाखाओंका आसरा लेकर सुख से रहते हैं, उसी तरह हम भी इन्द्र और पूषाकी उत्तम बुद्धिका सहारा लेकर सुखसे रहें ॥ ५ ॥

जिस तरह लगाम सारथी के हाथोंमें रहते हैं, उसी तरह इन्द्र और पूषा हमारा कल्याण करनेके लिए हमारे पास रहें ॥ ६ ॥

इस पूषाके दो रूप हैं, एक रूप इसका प्रकाशमय है और दूसरा रूप कृष्ण होते हुए भी पूजनीय है । पूषाका प्रकाशमय रूप दिन है और कृष्ण रूप रात्री है । रात्रीमें निद्राके द्वारा सबको आराम मिलता है, इसलिए रात्री भी पूजनीय है । पूषाके ये दोनों ही रूप प्रकाशमान हैं । दिन और रात सूर्यके ही रूप हैं । सूर्यकी गतिके कारण ही दिन और रात बनते हैं । उसके ये दोनों रूप हमारे लिए कल्याणकारी हों ॥ १ ॥

६०६ अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियंजिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः ।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत् संचक्षाणो भुवना देव ईयते ॥ २ ॥
६०७ यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ॥ ३ ॥
६०८ पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः ।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ॥ ४ ॥

[५९]

(ऋषिः— बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता— इन्द्राग्नी । छन्दः— बृहती, ७-१० अनुष्टुप् ।)

६०९ प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्या३ यानि चक्रथुः ।
हतासो वां पितरो देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम् ॥ १ ॥

अर्थ— [६०६] (पूषा) पूषा देव (अजाश्वः) बकरोंको रथमें जोतनेवाला (पशुपाः) पशुओंका पालक (वाज-पस्त्यः) अन्नका संग्रह घरमें करनेवाला (धियं-जिन्वः) बुद्धिको स्फूर्ति देनेवाला (विश्वे भुवने अर्पितः) सब भुवनोंमें अर्पित है । यह पूषा (शिथिरां अष्ट्रां उत् वरी वृजत्) अपने तेजस्वी शस्त्रको चमकाता है और (संचक्षाणः देवः भुवना ईयते) निरीक्षण करता हुआ यह देव भुवनोंमें जाता है ॥ २ ॥

[६०७] हे (पूषन्) पूषा ! (याः ते हिरण्ययीः नावः) जो तेरी सुवर्णकी नौकाएं (अन्तरिक्षे समुद्रे अन्तः चरन्ति) अन्तरिक्षके समुद्रमें चल रही हैं (ताभिः) उनसे तू (श्रव इच्छमानः) यशकी इच्छा करता हुआ (कामेन कृत) हे स्वइच्छासे कर्म करनेवाले ! (सूर्यस्य दूत्यां यासि) सूर्यके दूतकर्मको करता है ॥ ३ ॥

[६०८] (दिवः पृथिव्याः आ) द्युलोकसे पृथिवी तक (पूषा सुबन्धुः) पूषा सबका उत्तम भाई जैसा है । (इळः पतिः मघवा दस्मवर्चाः) यह भूमिका पालन धनवान् दर्शनीय तेजसे युक्त है । (यं देवासः सूर्यायै अददुः) जिस पूषाको देवोंने उषाके लिये दिया, यह (कामेन कृतं स्वञ्चं तवसं) कामने किया सुभूषित बलयुक्त कार्य है ॥४॥

[५९]

[६०९] हे (पितरः) रक्षक वीरो ! (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (सुतेषु) यज्ञोंमें (यानि वीर्या चक्रथुः) जो आपने पराक्रम किये थे, (वां नु प्रवोच) तुम्हारे उन पराक्रमोंका वर्णन करते हैं । (वां देवशत्रवः हतासः) तुम्हारे देवोंके शत्रु तुमने मारे हैं । हे इन्द्र अग्नि ! (युवं जीवथः) तुम दोनों जीवित रहते हो ॥ १ ॥

भावार्थ— यह पूषा देव पशुओंका पालक, अन्नको देनेवाला, बुद्धिको स्फूर्ति देनेवाला और सभी भुवनोंमें व्याप्त है। यह पूषा अर्थात् सूर्य अपनी तेजस्वी किरणोंको चमकाता है और सब भुवनोंका निरीक्षण करता हुआ सर्वत्र गति करता है । यह सूर्यदेव अपने अमृतमय तेजसे सभी प्राणियोंके अन्दर उत्साह भरता है। सुबह होते ही सभी प्राणी तरोताजा होकर उत्साहसे अपने कामोंमें जुट जाते हैं ॥ २ ॥

सबका पोषण करनेवाले इस सूर्यकी किरणरूपी सुनहरी नौकायें अन्तरिक्ष और द्युलोकरूपी समुद्रमें घूम रही हैं । सूर्यकी किरणें जब अन्तरिक्ष और द्युलोकमें विचरती हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है कि सुनहरी नौकायें समुद्रमें घूम रही हैं ॥ ३ ॥

द्युलोकसे लेकर पृथिवीतक जितने प्राणी हैं, उन सबका भरणपोषण करनेवाला होनेके कारण सूर्य सभी प्राणियोंका भाई है । वह भूमिपर बरसात गिराकर भूमिका पालन करता है। वही उषाको प्रकट करता है और सारे विश्वको प्रकाशित करता है ॥ ४ ॥

६१० बळित्था महिमा वा॒मिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा ॥ २ ॥
६११ ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्ती इवादने ।
इन्द्रा न्व१ग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे ॥ ३ ॥
६१२ य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत् तेष्वृतावृधा ।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसथश्चन ॥ ४ ॥
६१३ इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तश्चिकेतति ।
विषूचो अश्वान् युयुजान ईयत एकः समान आ रथे ॥ ५ ॥

अर्थ— [६१०] हे (इन्द्र-अग्नी) इन्द्र और अग्नि देवो ! (वां महिमा) आपकी महिमा (पनिष्ठः बट् इत्था आ) सत्य और निःसंदेह है । (वां जनिता) आपका उत्पन्न कर्ता पिता (समानः) एक ही है, इस कारण (युवं यमौ भ्रातरा) तुम जुडवे भाई हो । और (इह-इह-मातरा) यहां यही तुम्हारी माता है ॥ २ ॥

[६११] (सप्ती अश्वा इव अदने) वेगवान् घोडे घास खानेको मिलनेपर जैसे आनंदित होते हैं, उस तरह (सुते सचाँ ओकिवांसा) यज्ञमें सोमरस मिलनेपर आनंदित होते हैं। हे (वज्रिणा इन्द्रानु अग्नी अवसा इह) हे वज्रधारी इन्द्र और अग्नि ! अपनी रक्षण शक्तिके साथ यहां आओ, ऐसी (देवा) हे देवों ! (वयं हवामहे) हम प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

[६१२] हे (इन्द्र-अग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (सुतेषु वां यः स्तवत्) यज्ञोंमें तुम्हारी जो स्तुति करता है, (तेषु ऋता-वृधा) उनके संबंधमें तुम सत्य भाव बढानेवाले होकर (जोषवाकं वदतः) उनसे संतोषका भाषण बोलते हो । हे (पज्र-होषिणा देवा) शक्तिमान घोषणा करनेवाले देवों ! (न भसथः चन) उन भक्तोंका विनाश तुम नहीं करते ॥ ४ ॥

[६१३] (इन्द्राग्नी देवौ) हे इन्द्र और अग्नि देवों ! (कः मर्तः) कौन मानव भला (वां अस्य चिकेतति) आपके इस कार्यको पूर्णतया जान सकता है ? आपमेंसे (एकः) एक इन्द्र (समाने रथे) एक ही रथको (विषूचः अश्वान् युयुजानः) विविध दिशाओंमें जानेवाले घोडोंको जोडकर (आ ईयते) जाता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनों रक्षक और वीर हो, यज्ञोंमें तुमने जो पराक्रम किए हैं, उन पराक्रमोंका वर्णन हम करते हैं । तुम्हारे पराक्रमके कारण ही देवोंके शत्रु मारे गए हैं । पर तुम नष्ट नहीं हुए ॥ १ ॥

इन्द्र और अग्निकी सारी महिमा सत्य है और स्तुत्य है । इन दोनोंको उत्पन्न करनेवाला भी एक ही ईश्वर है और इनकी माता अदिति भी एक ही है ॥ २ ॥

जिस तरह दाना और घास मिलनेपर घोडे आनंदित होते हैं, उसी तरह यज्ञमें सोमरसके मिलनेपर ये इन्द्र और अग्नि दोनों देव आनन्दित होते हैं । हे वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र और अग्नि ! अपनी संरक्षणशक्तिसे युक्त होकर तुम यहां आओ, ऐसी हम प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

हे इन्द्र और अग्ने ! हे इन्द्र और अग्ने ! यज्ञोंमें जो तुम्हारी स्तुति करता है, उसके बारेमें तुम सत्यभाव बढानेवाले होकर उन्हें सन्तोष दे, ऐसे वचन तुम बोलते हो । ऐसे भक्तोंका तुम विनाश नहीं करते हो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और अग्नि देवो ! तुम्हारे कामकी मर्यादाको भला कौन मानव प्राप्त कर सकता है ? इनके काम इतने विस्तृत हैं कि इनकी मर्यादाका पता लगाना असंभव है । इन देवोंमें सूर्यरूपी इन्द्र अपने रथके किरणरूपी घोडोंको सभी दिशाओंमें पहुंचाता है ॥ ५ ॥

६१४ इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात् पद्वतीभ्यः ।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत् त्रिंशत् पदा न्यक्रमीत् ॥ ६ ॥
६१५ इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वोः ।
मा नो अस्मिन् महाधने परा वर्क्तं गविष्टिषु ॥ ७ ॥
६१६ इन्द्राग्नी तपन्ति माऽघा अर्यो अरातयः ।
अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥ ८ ॥
६१७ इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा ।
आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम् ॥ ९ ॥
६१८ इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।
विश्वाभिर्गीर्भिरा गत मस्य सोमस्य पीतये ॥ १० ॥

अर्थ— [६१४] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (इयं अपात्) यह पादरहित उषा (पद्वतीभ्यः पूर्वा अगात्) पांववालोंसे पहिले जाती है। (शिरः हित्वी) सिरको कंपित करके (जिह्वया वावदत्) जिह्वासे बोलती है और साथ-साथ (चरत्) चलती भी है। इस तरह (त्रिंशत् पदा नि अक्रमीत्) तीस पांव आक्रमण करती है॥६॥

[६१५] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (हि नरः बाह्वोः धन्वानि) वीर नेतालोग बाहुओंपर धनुष्य (आ तन्वते) सज्ज रखते हैं। (अस्मिन् महाधने) इस युद्धमें (गविष्टिषु नः मा परा वर्क्तं) इस गौकी प्राप्तिके कार्यमें हमें छोडकर पीछे न चले जाइये ॥ ७ ॥

[६१६] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (अघाः अर्यः अरातयः) पापी दुष्ट शत्रु (मा तपन्ति) मुझे ताप देते हैं। (द्वेषांसि अपाकृतं) उन द्वेष करनेवाले शत्रुओंको दूर करो, (सूर्यात् अधि युयुतं) सूर्यसे उनको दूर करो, उनको अन्धेरेमें रखो ॥ ८ ॥

[६१७] हे इन्द्र और अग्नि ! (दिव्यानि पार्थिवा) द्युलोकमें और पृथिवीपर जो (वसु) धन है वह सब (युवोः अपि) तुम्हारा ही है। (विश्वायुपोषणं रयिं) सब आयुभर सब मानवोंका पोषण होगा, ऐसा धन (इह नः आ प्रयच्छतं) यहां हमें दे दो ॥ ९ ॥

[६१८] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! आप (उक्थवाहसा) सामगान सुननेवाले और (स्तोमेभिः हवनश्रुता) स्तोत्रोंसे प्रसन्न होनेवाले (विश्वेभिः गीर्भिः) हमारी सब प्रार्थनाओंको सुनकर (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमरसके पीनेके लिये (आ गतं) आओ ॥ १० ॥

भावार्थ- यह उषा पांवसे रहित है, फिर भी पांववाले प्राणियोंसे पूर्व ही उठकर वह चलने फिरने लगती है। प्राणी सोते रहते हैं, पर उषा अपने समयपर क्षितिजपर प्रकट हो जाती है और प्राणीयोंको प्रबुद्ध करती है ॥ ६ ॥

वीर नेताओंके हाथ हमेशा धनुषपर रहते हैं अर्थात् वे वीर हमेशा युद्धके लिए तैय्यार रहते हैं। ऐसे वीर धनके लिए किए जानेवाले युद्धमें सदा हमारे सहायक रहें ॥ ७ ॥

हे इन्द्र और अग्नि ! पापी शत्रु दुष्ट मुझे ताप दे रहे हैं, उनको दूर करो। सूर्यप्रकाशसे दूर उनको रखो। यह दण्ड उनको दो ॥ ८ ॥

सब आयुभर पोषण हो, सब मानवोंका पोषण हो। सब आयुभर अपने सब मनुष्योंका पोषण हो ऐसा धन यहां हमें दो ॥ ९ ॥

+

[६०]

(ऋषिः— बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता— इन्द्राग्नी । छन्दः— गायत्री; १-३, १३ त्रिष्टुप्, १४ बृहती, १५ अनुष्टुप् ।)

६१९ श्नथ॑द् वृ॒त्रमु॒त स॑नोति॒ वाज॒ — मिन्द्रा॒ यो अ॒ग्नी सहु॑री सप॒र्यात् ।
इ॒र॒ज्यन्ता॑ वस॒व्य॑स्य॒ भूरे॑ः सह॑स्तमा॒ सह॑सा वाज॒यन्ता॑ ॥ १ ॥

६२० ता यो॑धिष्टम॒भि गा इ॑न्द्र नू॒न — म॒पः स्व॑रु॒षसो॑ अग्न ऊ॒ळ्हाः ।
दिश॒ः स्व॑रु॒षस॑ इन्द्र चि॒त्रा अ॒पो गा अ॑ग्ने युवसे नि॒युत्वा॑न् ॥ २ ॥

६२१ आ वृ॑त्रहणा वृत्रह॒भि॑ः शुष्मै॒ — रिन्द्र॑ या॒तं नमो॑भिरग्ने अ॒र्वाक् ।
यु॒वं राधो॑भि॒रक॑वेभिरिन्द्रा — ऽग्ने॑ अ॒स्मे भ॑वतमुत्त॒मेभि॑ः ॥ ३ ॥

६२२ ता हु॑वे॒ ययो॑रि॒दं प॒प्ने विश्वं॑ पु॒रा कृ॒तम् । इ॒न्द्रा॒ग्नी न म॑र्धतः ॥ ४ ॥

[६०]

अर्थ— [६१९] (यः इन्द्रा अग्नि सहुरी सपर्यात्) जो इन्द्र और अग्निकी सूर्योदयके समय पूजा करता है, वह (वृत्रं श्नथत्) शत्रुको मारता है, और (वाजं सनोति) अन्न प्राप्त करता है । वे (सहस्तमा) बलवान् (सहसा वाजयन्ता) सामर्थ्यसे शक्तिमान् हैं (भूरेः वसव्यस्य इरज्यन्ता) और बहुत धनके दाता हैं ॥ १ ॥

[६२०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हे (अग्ने) अग्नि ! (नूनं) निश्चयसे जिन्होंने (गाः अपः स्वः उषसः) गौवों, जलप्रवाहों और प्रकाश और उषाओंको (ऊळ्हाः) उठाया है, जो दूर ले गये हैं (ताः अभियोधिष्ट) उनसे लडो । हे इन्द्र और (नियुत्वान् अग्ने) उत्तम घोडोंको रथसे जोतनेवाले अग्ने ! (दिशः स्वः उषसः) दिशाएं, स्वर्गीय प्रकाश, उषाएं (चित्रा गाः अपः) चित्रविचित्र गौवें और जलप्रवाहोंको (युवसे) तुम भक्तोंको दो ॥ २ ॥

[६२१] हे (इन्द्र अग्ने) इन्द्र और हे अग्ने ! हे (वृत्रहणा) वृत्रोंको मारनेवालो ! (वृत्रहभिः शुष्मैः) वृत्रमारक सामर्थ्योंसे और (नमोभिः) यज्ञोंसे (अर्वाक् आ यातं) हमारे पास आओ । हे इन्द्र और अग्ने ! (युवं उत्तमेभिः अकवेभिः राधोभिः) तुम उत्तम निर्दोष धनोंके साथ (अस्मे भवतं) हमारे होकर रहो ॥ ३ ॥

[६२२] (ययोः इदं पुरा कृतं विश्वं) जिन्होंने यह विश्व पहिले किया था, (पप्ने) जिनकी प्रशंसा हो रही है । (ता हुवे) उनको मैं बुलाता हूं । वे (इन्द्राग्नी न मर्धतः) इन्द्र और अग्नि किसीका नाश नहीं करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनों सामगान सुननेवाले और स्तोत्रोंसे प्रसन्न होनेवाले हो, इसलिए हमारी सब प्रार्थना सुनकर हमारे द्वारा दिए सोमरसको पीनेके लिए आओ ॥ १० ॥

सूर्यके उदय होनेके समय जो इन्द्र और अग्निकी पूजा करता है, वह अपने शत्रुओंको मारता है और अन्न प्राप्त करता है । ये दोनों देव बलवान् और सामर्थ्यसे शक्तिमान् हैं और बहुतसे धनके दाता हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र और अग्ने ! जो गौ, जल, प्रकाश आदि पदार्थोंको चुरानेवाले हैं, उन शत्रुओंको तुम नष्ट करो तथा जो तुम्हारे भक्त हैं, उन्हें स्वर्गीय प्रकाश, गाय और उत्तम जलोंको प्रदान करो ॥ २ ॥

हे देवो ! अपने शत्रुनाशक सामर्थ्योंसे और यज्ञोंसे हमारी ओर आओ तथा शुद्ध पवित्र धनसे युक्त होकर तुम हमारे पास ही सदा रहो ॥ ३ ॥

इन्द्र और अग्नि इन दोनों देवोंने यह सारा विश्व बनाया इसी कारण इन दोनोंकी प्रशंसा होती है । उन दोनों देवोंको मैं बुलाता हूँ । वे देव किसीका भी नाश न करें ॥ ४ ॥

६२३ उ॒ग्रा वि॑घ॒निना॒ मृध॑ इन्द्रा॒ग्नी ह॑वामहे । ता नो॑ मृळात ई॒दृशे॑ ॥ ५ ॥
६२४ ह॒तो वृ॒त्राण्यार्या॑ ह॒तो दासा॑नि॒ सत्प॑ती । ह॒तो विश्वा॒ अप॒ द्विषः॑ ॥ ६ ॥
६२५ इन्द्रा॑ग्नी यु॒वामि॒मे॒३॒ऽभि स्तोमा॑ अनूषत । पिब॑तं शंभुवा सु॒तम् ॥ ७ ॥
६२६ या वां॒ सन्ति॑ पुरु॒स्पृहो॑ नि॒युतो॑ दा॒शुषे॑ नरा । इन्द्रा॑ग्नी॒ ताभि॒रा ग॑तम् ॥ ८ ॥
६२७ ताभि॒रा ग॑च्छतं न॒रोपे॒दं सव॑नं सु॒तम् । इन्द्रा॑ग्नी॒ सोम॑पीतये ॥ ९ ॥
६२८ तमी॑ळिष्व॒ यो अ॒र्चिषा॒ वना॒ विश्वा॑ परि॒ष्वज॑त् । कृ॒ष्णा कृ॒णोति॑ जि॒ह्वया॑ ॥ १० ॥

अर्थ— [६२३] (इन्द्राग्नी) ये इन्द्र और अग्नि (उग्रा) उग्रवीर हैं (मृधः विघनिना) युद्धमें शत्रुको मारनेवाले हैं, (हवामहे) इनको मैं बुलाता हूं । (ता नः ईदृशे मृळात) वे हमें ऐसे समयमें सुखी रखें ॥ ५ ॥

[६२४] हे (आर्या) आर्यो ! (वृत्राणि हतः) शत्रुओंको मारो, हे (सत्पती) सज्जनोंके पालनकर्ता ! (दासानि हतः) दासों-विनाशकोंको मारो तथा (विश्वाः द्विष अप हतः) सब शत्रुओंको मारो ॥ ६ ॥

[६२५] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (इमे स्तोमाः) ये स्तोत्र (युवां अभि अनूषत) आपकी स्तुति करते हैं । हे (शंभुवा) मंगल करनेवाले देवों ! (सुतं पिबतं) यह सोमरस पीओ ॥ ७ ॥

[६२६] हे (नरा: इन्द्राग्नी) नेता इन्द्र और अग्नि ! (या पुरुस्पृहः वां नियुतः) जो अनेकों द्वारा प्रशंसित, तुम्हारी घोडियां हैं (ताभिः दाशुषे आगतं) उनसे दाताके पास आओ ॥ ८ ॥

[६२७] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! हे (नरा) नेताओं ! (इदं सुतं सवनं) इस सोमरसके पास (सोमपीतये) सोम पीनेके लिये (उप आ गच्छतं) आओ ॥ ९ ॥

[६२८] (यः आर्चिषा) जो अपने ज्वालाओंसे (विश्वा वना परिष्वजत्) सब वनोंको घेरता है और (जिह्वया कृष्णा करोति) जिह्वासे सबको काला करता है (तं ईळिष्व) उस अग्निकी स्तुति करो ॥ १० ॥

भावार्थ— इन्द्र और अग्नि ये दोनों देव बहुत वीर हैं और युद्धमें शत्रुओंको मारनेवाले हैं, ये दोनों देव हमें हमेशा सुखी रखें ॥ ५ ॥

हे श्रेष्ठ देवो ! तुम शत्रुओंको मारो, हे सज्जनोंका पालन करनेवाले देवों, तुम दास बनानेवालोंका विनाश करो । इनके अलावा और भी जितने शत्रु हैं, उन सबका नाश करो ॥ ६ ॥

हे देवो ! ये स्तोत्र तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम दोनों कल्याण करनेवाले हो, इसलिए हमारा कल्याण करो ॥ ७ ॥

सबको उत्तम मार्गपर ले जानेवाले इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनों अपने वाहनोंसे धनको देनेवाले मनुष्योंके पास जाओ ॥ ८ ॥

हे नेताओ ! हम तुम्हें पीनेके लिए ये सोमरस प्रदान करते हैं, इसलिए तुम दोनों सोम पीनेके लिए हमारे पास आओ ॥ ९ ॥

यह अग्नि अपनी ज्वालाओंसे सब वनोंको घेरता है और जलाकर सबको काला करता है, ऐसे सर्वभक्षी अग्निकी स्तुति करनी चाहिए, ताकि वह हमपर सदा प्रसन्न रहे ॥ १० ॥

६२९ य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः ॥ ११ ॥
६३० ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः । इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे ॥ १२ ॥
६३१ उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै ।
उभा दातारविषां रयीणा-मुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥ १३ ॥
६३२ आ नो गव्येभिरश्व्यै-र्वसव्यैरुप गच्छतम् ।
सखायौ देवौ सख्याय शंभुवे-न्द्राग्नी ता हवामहे ॥ १४ ॥
६३३ इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः ।
वीतं हव्यान्या गतं पिबतं सोम्यं मधु ॥ १५ ॥

अर्थ— [६२९] (यः मर्त्यः) जो मनुष्य (इन्द्रस्य सुम्नं) इन्द्रके उत्तम मन होनेके लिये (इद्धे आविवासति) प्रदीप्त अग्निमें हवन करता है, (द्युम्नाय) उसके तेजके संवर्धनके लिये (अपः सुतराः) दुःखके जलप्रवाह सुखसे तैरने योग्य होते हैं ॥ ११ ॥

[६३०] (ता नः वाजवतीः इषः) वे तुम हमें बल बढानेवाला अन्न देवो और (इन्द्रं अग्निं च वोळ्हवे) इन्द्र और अग्निको ले जानेके लिये (आशून् अर्वतः पिपृतं) वेगवान् घोडोंको पुष्ट करो ॥ १२ ॥

[६३१] (उभा इन्द्राग्नी) दोनों इन्द्र और अग्नि हैं। (वां आहुवध्यै) तुम दोनोंको हम बुलाते हैं। (उभा) दोनों (राधसः सह मादयध्यै) संसिद्ध धनसे साथ साथ प्रसन्न होते हो। (इषां रयीणां उभा दातारा) अन्नों और धनोंके तुम दोनों दाता हो। (वाजस्य सातये) अन्नकी प्राप्तिके लिये (वां उभा हुवे) तुम दोनोंको बुलाता हूं ॥ १३ ॥

[६३२] (गव्यैः) गौवों, (अश्व्यैः) घोडों, (वसव्यैः) धनोंके साथ (नः उप आगच्छतं) हमारे समीप आओ। (सखायौ देवौ) तुम मित्र देव हो, (शंभुवा इन्द्राग्नी) कल्याण करनेवाले इन्द्र और अग्नि (ता सख्याय हवामहे) उनको मित्रताके लिये मैं अपने पास बुलाता हूं ॥ १४ ॥

[६३३] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (सुन्वतः यजमानस्य) सोमरस निकालनेवाले यज्ञकर्ताकी (हवं शृणुतं) प्रार्थना सुनो। (हव्यानि वीतं) हवन द्रव्योंकी इच्छा करो। (आगतं) आओ और (सोम्यं मधु पिबतं) सोमका मधुर रस पीओ। ॥ १५ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य इन्द्रको प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिए प्रदीप्त अग्निमें हवन करता है, वह इन्द्रके तेजको प्राप्त करके दुःखोंको भी आसानीसे पार कर जाता है ॥ ११ ॥

हे देवो ! तुम दोनों हमें बल बढानेवाला अन्न प्रदान करो और हम भी हमारा पोषण करनेवाले तुम्हें पुष्ट करते रहें ॥ १२ ॥

मैं इन्द्र और अग्नि दोनों देवोंको बुलाता हूँ, दोनों देव मुझे धन देकर सुखी करें। मैं अन्न प्राप्तिके लिए दोनों देवोंको बुलाता हूँ ॥ १३ ॥

हे दोनों देवो ! तुम दोनों मित्रके समान हित करनेवाले हो, तुम दोनों हमारा कल्याण करनेवाले हो, इसलिए मैं अपनी मित्रताके लिए तुम्हें बुलाता हूँ ॥ १४ ॥

हे देवो ! सोमरस निकालनेवाले यज्ञकर्ताकी प्रार्थना सुनो तथा यज्ञकर्ता जो हवि देता है, उसे प्रसन्नतासे स्वीकार करो, ऐसे सज्जनके पास आकर सोमका मधुर रस पीओ ॥ १५ ॥

[६१]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता - सरस्वती । छन्दः- गायत्री, १-३, १३ जगती; १४ त्रिष्टुप् ।)

६३४ इयमददाद् रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥ १ ॥

६३५ इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत् सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ॥ २ ॥

६३६ सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः ।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥ ३ ॥

६३७ प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । धीनामवित्र्यवतु ॥ ४ ॥

---

[६१]

अर्थ— [६३४] (इयं) इस सरस्वतीने (दाशुषे वध्र्यश्वाय) दाता वध्र्यश्वके लिये (रभसं ऋणच्युतं दिवोदासं) धैर्यवान्, ऋण फेडनेवाला दिवोदास नामक पुत्र (अददात्) दिया। (या शश्वंतं अवसं पणिं) जिसने सदा कष्ट देनेवाले धनवान् कंजूसका (आ चखाद) नाश किया, हे सरस्वति ! (ता ते तविषा दात्राणि) वे तेरे बलशाली दान हैं ॥ १ ॥

[६३५] (इयं) यह सरस्वती (बिस-खाः इव) कमलके मूलको तोडनेवालोंके समान (शुष्मेभिः तविषेभिः ऊर्मिभिः) अपनी बलवान्, वेगवान् लहरियोंसे (गिरीणां सानु अरुजत्) पर्वतोंके ऊंचे भाग तोड देती है। हम (पारावत-घ्नी सरस्वतीं) दूसरे आघात करनेवाली सरस्वतीकी (सुवृक्तिभिः धीतिभिः) उत्तम भक्तिसे और धारणापूर्वक (अवसे आविवासेम) अपने संरक्षणके लिये सेवा करते हैं ॥ २ ॥

[६३६] हे (सरस्वती) सरस्वती ! (देव-निदः प्रजां निबर्हय) ईश्वरकी निंदा करनेवाली प्रजाका नाश कर। तथा (विश्वस्य मायिनः बृसयस्य) उसी प्रकार सब कपटी दुष्टोंकी प्रजाका नाश कर। (उत क्षितिभ्यः) और मानवोंके हितके लिये (अवनीः अविंदः) संरक्षक भू-भागको प्राप्त किया। हे (वाजिनीवति) अन्न देनेवाली ! (एभ्यः विषं अस्रवः) इन लोकोंके लिये तूने उदकके प्रवाह चलाये हैं ॥ ३ ॥

[६३७] (देवी सरस्वती) देवी सरस्वती (वाजेभिः वाजिनीवती) अन्नोंसे अन्नवाली (नः धीनां अवित्री प्र अवतु) हमारी बुद्धियोंका रक्षण करनेवाली हमारा रक्षण करे ॥ ४ ॥

भावार्थ— इस सरस्वतीने दानशीलको देवोंकी भक्ति करनेवाला पुत्र दिया। इसीने कष्ट देनेवाले तथा धनवान् होनेपर भी कंजूसी करनेवाले मनुष्यका नाश किया ॥ १ ॥

यह सरस्वती नदी अपने वेगवान् प्रवाहोंसे पर्वतोंके उतराईके भू-भागोंको तोडती है। ऐसी इस सरस्वती नदीकी सेवा हम उत्तम भक्तिभावके साथ अपना संरक्षण हो इस उद्देश्यसे करते हैं ॥ २ ॥

हे सरस्वती ! तू ईश्वरकी निन्दा करनेवाले मनुष्यका नाश कर। कपट करनेवाले दुष्टोंको नष्ट कर। सज्जनोंको मानवोंका हित करनेके लिए उपजाऊ भूमि प्रदान कर। तू जलके प्रवाह चलाकर सभी भूमिको उपजाऊ बना ॥ ३ ॥

सरस्वती अनेक प्रकारके अन्न देनेके कारण अन्नवाली है। अतएव बल देनेवाली भी है। नदीसे अन्न उत्पन्न होते हैं यह सब जानते हैं। हमारी बुद्धियोंका रक्षण करके हमारी सुरक्षा करे ॥ ४ ॥

६३८ यस्त्वा देवि सरस्व-त्युपब्रूते धने हिते । इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥ ५ ॥
६३९ त्वं देवि सरस्व-त्यवा वाजेषु वाजिनि । रदा पूषेव नः सनिम् ॥ ६ ॥
६४० उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः । वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥
६४१ यस्या अनन्तो अह्रुत-स्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः । अमश्चरति रोरुवत् ॥ ८ ॥
६४२ सा नो विश्वा अति द्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी । अतन्नहेव सूर्यः ॥ ९ ॥
६४३ उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥ १० ॥

अर्थ— [६३८] हे (देवी सरस्वति) सरस्वती देवी ! (धने हिते) युद्ध शुरू होनेपर (यः त्वा उपब्रूते) जो तेरी प्रार्थना करता है [उसका रक्षण तू करती है] (वृत्रतूर्ये इन्द्रं न) वृत्र हननके लिये जैसा इन्द्रको [बुलाते हैं । वैसे लोग तुझे बुलाते हैं ।] ॥ ५ ॥

[६३९] हे (वाजिनि देवि सरस्वति) हे बलशालिनी सरस्वती देवी ! (त्वं वाजेषु अव) तू युद्धोंमें हमारा रक्षण कर । और (पूषा इव) पूषाके समान (नः सनिं रद) हमें धन दे ॥ ६ ॥

[६४०] (उत घोरा हिरण्यवर्तनिः सरस्वती) और उग्रवीरा, सुवर्णके रथके चक्रवाली यह सरस्वती (वृत्रघ्नी) वृत्रनाशक है, (नः सु-स्तुतिं वष्टि) और हमारी उत्तम स्तुतिस्तोत्र सुननेकी इच्छा करती है ॥ ७ ॥

[६४१] (यस्याः) जिसका (अनंतः त्वेषः अ-ह्रुतः) अमर्याद, वेगवान् न सदा रहनेवाला (चरिष्णुः अर्णवः अमः) नित्य चलनेवाला जलका वेग (रोरुवत् चरति) गर्जना करता हुआ चलता है ॥ ८ ॥

[६४२] (सा नः विश्वा द्विषः अति) वह सरस्वती हमारे सब शत्रुओंको दूर करती है । वह (ऋतावरी) सत्य प्रिय सरस्वती (अन्याः स्वसॄः) अन्य बहिनों-नदियोंके पार हमें ले जाती है, (सूर्यः अहा अतन् इव) जैसा सूर्य दिनमें प्रकाश फैलाता है (वैसी यह सरस्वती यश फैलावे) ॥ ९ ॥

[६४३] (उत नः प्रियासु प्रिया) और हमारे लिये यह प्रियोंमें प्रिय है और (सुजुष्टा सप्त स्वसा) उत्तम सेवाके योग्य यह सात बहिनों-सात नदियोंमें है । (सरस्वती स्तोम्या भूत्) यह सरस्वती प्रशंसनीय हुई है ॥ १० ॥

भावार्थ— हे सरस्वती ! युद्धके शुरू होनेपर जो तेरी स्तुति करता है और तुझे सहायताके लिए बुलाता है, उसकी तू रक्षा करती है । लोग वृत्रका नाश करनेके लिए जिस तरह इन्द्रको बुलाते हैं, उसी तरह शत्रुओंका नाश करनेके लिए तुझे बुलाते हैं ॥ ५ ॥

हे बलसे युक्त सरस्वती ! तू युद्धोंमें हमारी रक्षा कर और पूषाके समान हमें धन प्रदान कर ॥ ६ ॥

भयंकर वीरतासे युक्त तथा सोनेके रथपर चढकर जानेवाली सरस्वती शत्रुओंका नाश करनेवाली है, पर जो सज्जन हैं, उनकी स्तुति सुनकर प्रसन्न होती है ॥ ७ ॥

सरस्वती नदीका प्रवाह अमर्याद, वेगशाली, कभी भी न रुकनेवाला और गर्जना करता हुआ चलनेवाला है ॥ ८ ॥

वह सरस्वती देवी हमारे सब शत्रुओंको दूर करे, वह हमें अन्य नदियोंके पार ले जावे, तथा जिस प्रकार दिनमें सूर्य प्रकाश फैलाता है, उसी तरह सरस्वती हमारा यश फैलावे ॥ ९ ॥

यह सरस्वती हमारे लिए प्रियोंमें प्रिय है, तथा यह सबसे श्रेष्ठ होनेके कारण यह सरस्वती सर्वाधिक प्रशंसनीय है ॥ १० ॥

६४४ आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् । सरस्वती निदस्पातु ॥ ११ ॥

६४५ त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती । वाजेवाजे हव्या भूत् ॥ १२ ॥

६४६ प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।
रथ इव बृहती विभ्वने कृतो पस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥ १३ ॥

६४७ सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा मा न आ धक् ।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत् क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥ १४ ॥

अर्थ— [६४४] (पार्थिवानी आपप्रुषी) पार्थिव धनोंको देनेवाली और (उरु रजः अन्तरिक्षं) विशाल अन्तरिक्षको अपने तेजसे भरनेवाली (सरस्वती निदः पातु) सरस्वती निन्दकोंसे हमारी सुरक्षा करे ॥ ११ ॥

[६४५] (त्रि सधस्था) तीन स्थानोंमें रहनेवाली, (सप्त धातुः) सात धारक शक्तियोंसे युक्त (पञ्च जाता वर्धयन्ती) पांच जातिके मानवोंको बढानेवाली यह सरस्वती (वाजे वाजे हव्या भूत्) प्रत्येक युद्धमें प्रार्थना करने योग्य होती है, प्रत्येक कर्ममें प्रशंसनीय है ॥ १२ ॥

[६४६] (या महिम्ना महिना) जो महत्वके योगसे, और प्रभावसे तथा (द्युम्नेभिः) तेजोंसे (आसु प्र चेकिते) इन नदियोंमें श्रेष्ठ दीखती है, (अपसां अपस्तमा अन्याः) अन्य प्रवाहोंमें जिसका प्रवाह अधिक वेगवान् है। (रथः इव बृहती) रथके समान जो प्रशस्त है, (विभ्वने कृता) जो व्यापक प्रभुने निर्माण की है वह (चिकितुषा सरस्वती उपस्तुत्या) ज्ञानयुक्त सरस्वती प्रशंसाके लिये योग्य है ॥ १३ ॥

[६४७] हे (सरस्वती) सरस्वती ! (नः वस्यः अभिनेषि) हमें अभीष्ट धनके पास ले चल । (पयसा मा अप स्फरीः) अपने जलप्रवाहसे हमें कष्ट न पहुंचाओ। (नः मा आ धक्) हमें दूर न कर। (नः सख्या वेश्या च जुषस्व) हमारी सेवा और मित्रताका स्वीकार कर। (त्वत् क्षेत्राणि अरणानि मा गन्म) तुझे छोडकर दूसरे खेतोंमें हमें जाना न पडे ऐसा कर ॥ १४ ॥

भावार्थ— पार्थिव धनोंको देनेवाली और विशाल अन्तरिक्षको अपने तेजसे भरनेवाली यह सरस्वती निन्दा करनेवालोंसे हमारी रक्षा करे ॥ ११ ॥

यह सरस्वती तीन प्रदेशोंमें बहनेवाली तथा अपने आसपासके प्रदेशोंसे सातों धातुओंको रखनेवाली और हर तरहके मनुष्यका हित करनेवाली है, इसलिए यह प्रत्येक युद्धमें प्रार्थना करने योग्य है ॥ १२ ॥

यह सरस्वती अपने महत्व और प्रभावके कारण तथा अपने तेजोंसे सभी नदीयोंमें श्रेष्ठ है। अन्य नदियोंके प्रवाहोंसे इस नदीका प्रवाह वेगवान् है। इसे व्यापक प्रभुने निर्माण किया है ॥ १३ ॥

हे सरस्वती ! तू हमें अभीष्ट धनके पास ले चल। जिस तरहके धनकी हमें आवश्यकता हो, वह हमें दे। अपने जलप्रवाहसे हमें कष्ट मत पहुंचा, हमें अपने पाससे दूर मत कर। हम जो तेरी सेवा करके तुझसे मित्रता करना चाहते हैं, उन्हें तू स्वीकार कर। तुझे छोडकर हम अन्यत्र न जाएं ॥ १४ ॥

[६२]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६४८ स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ता ऽश्विना हुवे जरमाणो अर्कैः ।
या सद्य उस्रा व्युषि ज्मो अन्तान् युयूषतः पर्युरू वरांसि ॥ १ ॥

६४९ ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा रथस्य भानुं रुरुचू रजोभिः ।
पुरू वरांस्यमिता मिमाना ऽपो धन्वान्यति याथो अज्रान् ॥ २ ॥

६५० ता ह त्यद् वर्तिर्यदरध्रमुग्रे-त्था धियं ऊहथुः शश्वदश्वैः ।
मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य ॥ ३ ॥

६५१ ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मो-प भूषतो युयुजानसप्ती ।
शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता होता यक्षत् प्रत्नो अध्रुग्युवाना ॥ ४ ॥

अर्थ— [६४८] हे (दिवः नरा) दिव्य नेताओं! (अस्य प्रसन्ता अश्विना) इस दृश्यमान् जगत्के प्रशासक होते हुए अश्विदेवोंकी (अर्कैः जरमाणः) स्तोत्रोंसे प्रशंसा करता हुआ मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूं। (सद्यः) तत्काल (उस्रा या) शत्रुको उखाड देनेवाले ये दो देव (व्युषि) उषःकालमें (ज्मः अन्तान्) पृथिवीके अन्ततक (उरु वरांसि) विशाल अन्धेरेको (परि युयूषतः) हटा देते हैं ॥ १ ॥

[६२]

[६४९] (यज्ञं शुचिभिः) यज्ञके पास निर्मल तेजोंके साथ जाते हुए (ता) वे दो देव (आ चक्रमाणा) जाते समय (रजोभिः) अपने तेजोंके साथ (रथस्य भानुं) रथके तेजको (रुरुचुः) प्रदीप्त करते हैं। (अमिता पुरु) असंख्य बहुतसे (वरांसि मिमाना) श्रेष्ठ धनोंको उत्पन्न करके (धन्वानि अति) मरु देशोंको पार कर (अज्रान् अपः याथः) घोडोंको जलके समीप ले चलते हैं ॥ २ ॥

[६५०] (उग्रा ता ह) उग्र शूर वे दो वीर (यत् अरध्रं) दरिद्रतासे युक्त भक्तके (त्यत् वर्तिः) उस घरके प्रति (इत्था) इस प्रकार (मनोजवेभिः) मनके तुल्य वेगवान् (इषिरैः अश्वैः) इशारेसे चलनेवाले घोडोंसे (शश्वत्) सदा (धियः ऊहतुः) बुद्धियुक्त कर्मोंको करनेके लिये जाते हैं और (दाशुषः मर्त्यस्य व्यथिः) दाता मानवको कष्ट पहुंचानेवालेको (परि शयध्यै) लंबी निद्रामें सुलाते हैं ॥ ३ ॥

[६५१] (शुभं पृक्षं) उत्तम अन्न (इषं ऊर्जं वहन्ता) पुष्टि तथा बल बढानेके लिये ढोते हुए (युयुजान सप्ती ता) घोडोंको जोतनेवाले वे दोनों (नव्यसः जरमाणस्य मन्म) नये स्तोताके मननीय स्तोत्रको (उप भूषथः) समीप जाकर शोभा बढाते हैं। (अध्रुक् प्रत्नः होता) द्रोह न करनेवाला पुराना होता (युवाना यक्षत्) युवक अश्विदेवोंको हवि अर्पण करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— अश्विनी देव इस दृश्य जगत्के प्रशासक हैं, उन अश्विदेवोंकी मैं उत्तम स्तोत्रोंसे प्रशंसा करता हूं। शत्रुओंके विनाशक वे देव उषाकाल पृथ्वीपर फैले हुए अन्धकारको हटा देते हैं ॥ १ ॥

जब ये दोनों देव यज्ञके पास अपने निर्मल तेजोंसे युक्त होकर जाते हैं, तब उनके तेजके कारण उनके रथ भी तेजसे दमकने लगते हैं। ॥ २ ॥

वे दोनों देव अपने दरिद्र भक्तके पास भी जाते हैं, और ऐसे भक्तोंको जो कष्ट पहुंचाता है, उसे लम्बी नींदमें सुला देते हैं, अर्थात् उसे नष्ट कर देते हैं। सत्कर्म करनेवाला गरीब हो, तो भी उसे सहायता पहुंचाकर उसके यज्ञकर्मको सफल बनाना चाहिये और जो सज्जनोंको पीडा देते हैं, उनको नष्ट करना चाहिये ॥ ३ ॥

६५२ ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे ।
या शंसते स्तुवते शंभविष्ठा बभूवतुर्गृणते चित्ररातीं ॥ ५ ॥
६५३ ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात् तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः ।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ॥ ६ ॥
६५४ वि जयुषा रथ्या यातमद्रिं श्रुतं हवं वृषणा वध्रिमत्याः ।
दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गामिति च्यवाना सुमतिं भुरण्यू ॥ ७ ॥
६५५ यद् रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा हेळो देवानामुत मर्त्यत्रा ।
तदादित्या वसवो रुद्रियासो रक्षोयुजे तपुरघं दधात ॥ ८ ॥

अर्थ— [६५२] (शंसते स्तुवते) विस्तारसे वर्णन करनेवाले और स्तुति करनेवालेको (या शंभविष्ठा) जो दो अश्विनौ देव अत्यंत सुख देते हैं, और (गृणते चित्ररातीं बभूवतुः) स्तुति करनेवालेके लिये अद्भुत दान देनेवाले हो चुके हैं, (ता वल्गू दस्रा) उन दोनों सुन्दर और शत्रुनाशक (पुरुशाकतमा प्रत्ना) बहुत कार्य करनेकी शक्ति रखनेवाले पुरातन अश्विदेवोंको (नव्यसा वचसा) नवीन स्तोत्रसे (आ विवासे) पूर्णतया सन्तुष्ट करता हूं ॥ ५ ॥

[६५३] (तुग्रस्य पुत्रं भुज्युं) तुग्र नरेशके पुत्र भुज्युको (भुजन्ता ता) सुरक्षित रखनेवाले वे दोनों (समुद्रस्य अर्णसः) समुद्रके विशाल चमकीले (अद्भ्यः उपस्थात्) जलसमूहके समीपसे (अरेणुभिः रजोभिः) धूलिरहित स्थानोंसे (योजनेभिः) योजनापूर्वक (पतत्रिभिः विभिः) उडनेवाले पक्षीतुल्य विमानोंसे (निः ऊहथुः) उत्तम रीतिसे ले चले ॥ ६ ॥

[६५४] हे (वृषणा रथ्या) बलवान् और रथपर बैठनेवाले अश्विदेवो ! तुम (जयुषा) विजयी रथपरसे (अद्रिं वि यातं) पहाडको भी लांघकर जाते हैं ! (वध्रिमत्या हवं श्रुतं) वध्रिमतिकी पुकारको तुमने सुना । (दशस्यन्ता) दान देनेवाले तुम दोनों ! तुमने (शयवे गां पिप्यथुः) शयुके लिये गौको पुष्ट किया । (इति सुमतिं च्यवाना) इस रीतिसे उत्तम बुद्धि रखनेवाले तुम दोनों सबके (भुरण्यू) पोषणकर्ता होते हो ॥ ७ ॥

[६५५] (यत्) जो (देवानां उत मर्त्यत्रा)-देवोंमें या मानवोंमें विद्यमान् (प्रदिवः भूमा हेळः अस्ति) अत्यन्त बडा भारी क्रोध है, (तत् तपुः अघं) वह तापदायक पापरूपी दुःख, हे आदित्यों, वसुओं, और रुद्रों तथा द्यावापृथिवी ! (रक्षो युजे दधात) राक्षसोंके लिये रखो ॥ ८ ॥

भावार्थ— ये अश्विनीकुमार उत्तम, रोगीके रोगको दूर करके उसे पुष्ट करनेवाले, पोषण तथा बल बढानेवाले अन्नको तैय्यार करके रोगीको देनेके लिये अश्विनी कुमार अपने रथमें रखकर ले जाते हैं ॥ ४ ॥

जो मनुष्य इनके कार्मोंका विस्तारसे वर्णन करता है और तदनुसार इनकी स्तुति करता है, उसे ये देव अत्यन्त सुख प्रदान करते हैं । इसलिए मैं उन दोनों सुन्दर और शत्रुनाशक कार्य करनेवाले अश्विनीकुमारोंको पूर्णतया सन्तुष्ट करता हूं ॥ ५ ॥

तुग्र नरेशका पुत्र भुज्यु देशान्तरमें युद्धके लिये गया था । वहां वह पराभूत हुआ । तब अश्विदेवोंने अपने पक्षी सदृश विमानोंसे उसे आकाशमार्गसे घर पहुंचाया । धूलिरहित मार्गोंसे अन्तरिक्षके आकाशमार्गसे पक्षिसदृश विमानोंसे उसको घरतक पहुंचा दिया ॥ ६ ॥

अश्विदेव बलिष्ट और रथपर चढनेवाले हैं । विजयी रथपरसे वे पर्वतोंको भी लांघ जाते हैं, उत्तम गतिवालेकी प्रार्थना सुनते हैं, दान देते हैं, गायोंको दुधारु बनाते हैं और अपने भक्तोंको उत्तम सलाह देते हैं ॥ ७ ॥

हे देवो ! जो क्रोध तुम्हारे और मनुष्योंके अन्दर विद्यमान् हो, वह तापदायक और दुःखदायक क्रोध केवल सज्जनों और दुष्टोंके लिए हो, वह क्रोध शत्रुओंपर प्रकट न हो ॥ ८ ॥

६५६ य ईं राजानावृतुथा विदधद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद्वचस आनवाय ॥ ९ ॥
६५७ अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्तिर्द्युमता यातं नृवता रथेन ।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् ॥ १० ॥
६५८ आ परमाभिरुत मध्यमाभिर्नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक् ।
दृळहस्य चिद्गोमतो वि व्रजस्य दुरो वर्तं गृणते चित्रराती ॥ ११ ॥

[६३]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता - अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप्, १ विराट्, ११ एकपदा त्रिष्टुप् ।)

६५९ क्व१ त्या वल्गू पुरुहूताद्य दूतो न स्तोमोऽविदन्नमस्वान् ।
आ यो अर्वाङ्नासत्या ववर्त प्रेष्ठा ह्यसथो अस्य मन्मन् ॥ १ ॥

अर्थ— [६५६] (यः ईं) जो इन (रजसः राजानौ) लोकोंके अधिपति अश्विदेवोंकी (ऋतुथा विदधत्) ऋतुके अनुसार सेवा करते हैं, उस कार्यको मित्र और वरुण (चिकेतत्) जानते हैं। और वे (अस्य हेतिं) इसके आयुधको (द्रोघाय, आनवाय वचसे चित्) द्रोह करनेवालेके ऊपर तथा अभद्रवाणी बोलनेवालेके ऊपर अथवा(गंभीराय रक्षसे) प्रबल राक्षसके नाशके लिये उपयोगमें लाते हैं ॥ ९ ॥

[६५७] (अन्तरैः चक्रैः) दूरतक जानेवाले चक्रोंसे युक्त (द्युमता नृवता रथेन) तेजस्वी मानवी वीरोंको ले जानेवाले रथपर बैठकर (तनयाय) संतानको सुख देनेके लिये (वर्तिः आयातं) घर आ जाओ। (मर्त्यस्य वनुष्यतां) मानवोंको कष्ट देनेवालेके (शीर्षा) सिर (सनुत्येन त्यजसा) तिरस्करणीय क्रोधसे (अपि ववृक्तं) अलग कर डालो ॥ १० ॥

[६५८] (परमाभिः मध्यमाभिः उत अवमाभिः) श्रेष्ठ, मध्यम और तीसरे दर्जेके (नियुद्भिः) वाहनोंसे (अर्वाक् आयातं) हमारे समीप आओ। (गृणते चित्रराती) स्तोताको विलक्षण दान देनेवाले तुम दोनों अश्विनौ (दृळहस्य चित् गोमत व्रजस्य) सुदृढ गौवोंसे भरे बाडेके (दुरः विवर्तं) द्वार खोल दो ॥ ११ ॥

[६३]

[६५९] (त्या पुरुहूता वल्गू क्व) वे दोनों बहुतों द्वारा प्रशंसित सुन्दर अश्विदेव कहां है ? (अद्य) आज (नमस्वान् स्तोमः) नमन युक्त स्तोत्र (दूतः न अविदत्) दूतके समान उनको प्राप्त हुआ है। (यः) जो स्तोत्र (नासत्या अर्वाक् आ ववर्त) अश्विदेवोंको हमारे समीप आकर्षित करता है। (अस्य मन्म) इस मननीय काव्यमें तुम दोनों (प्रेष्ठा हि असथः) अत्यंत रममाण हो जाओ ॥ १ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य इन अश्विनी कुमारोंकी स्तुति करता है, उसके इस पवित्र कार्यको मित्र और वरुण आदि सभी देव जानते हैं। ऐसा उपासक मनुष्य भी अपने शस्त्रास्त्रोंका उपयोग द्रोह करनेवाले अथवा अभद्रवाणी बोलनेवालेके ऊपर ही करता है ॥ ९ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! तुम दूरतक जानेवाले चक्रोंसे युक्त तथा तेजस्वी वीरोंको ले जानेवाले रथपर बैठकर सन्तानको सुख देनेके लिए घर आओ तथा जो मानवोंको कष्ट देता है उसका सिर तुम क्रोधका उपयोग करके अलग कर डालो ॥ १० ॥

हे अश्विनौ ! तुम हर तरहके वाहनोंसे हमारे पास आओ। घरके पास गौओंके बाडे हों, उनमें बहुतसी गायें रहें। ऐसे घरोंके पास वीर आवें और उनके दूध पीनेके लिए उन बाडोंके द्वार खोले जाएं ॥ ११ ॥

६६० अरं मे गन्तं हवनायास्मै गृणाना यथा पिबाथो अन्धः ।
परि ह त्यद् वर्तिर्याथो रिषो न यत् परो नान्तरस्तुतुर्यात् ॥ २ ॥
६६१ अकारि वामन्धसो वरीमन्नस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम् ।
उत्तानहस्तो युवयुर्ववन्दा ऽऽ वां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन् ॥ ३ ॥
६६२ ऊर्ध्वो वामग्निरध्वरेष्वस्थात् प्र रातिरेति जूर्णिनी घृताची ।
प्र होता गूर्तमना उराणो ऽयुक्त यो नासत्या हवीमन् ॥ ४ ॥
६६३ अधि श्रिये दुहिता सूर्यस्य रथं तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम् ।
प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र नरा नृतू जनिमन् यज्ञियानाम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [६६०] (अस्मै मे) इस मेरे पास (हवनाय अरं गन्तं) बुलानेपर तुम दोनों आओ। (यथा गृणानाः) जैसी-जैसी तुम्हारी स्तुति होगी वैसा-वैसा (अन्धः पिबाथ) सोमरस पीओ। (त्यत् वर्तिः ह) उस घरको अवश्य (रिषः परि याथः) हिंसक शत्रुसे बचाते रहो। (यत् न परः) जिस घरको न कोई दूसरा शत्रु (न अन्तरः) या न कोई समीपका शत्रु (तुतुर्यात्) नष्ट कर सके ऐसा प्रबंध करो ॥ २ ॥

[६६१] (वां अन्धसः वरीमन् अकारि) आपके लिये सोमरसको निचोडकर उत्तम स्थानमें रखा है। (सुप्रायणतमं बर्हिः) अत्यंत सुखदायक आसन तुम्हारे लिये (अस्तारि) फैलाकर रखा है। (युवयुः उत्तानहस्तः आववन्द) तुम दोनोंको चाहनेवाला हाथ ऊपर उठाकर नमन कर रहा है। (अद्रयः वां नक्षन्तः) सोम कूटनेके पत्थर तुम्हारी इच्छा करते हुए (आञ्जन्) इसको निकाल चुके हैं ॥ ३ ॥

[६६२] अध्वरेषु वां) यज्ञोंमें अग्नि तुम दोनोंके लिये (ऊर्ध्वः अस्थात्) ऊर्ध्वगतिसे जल रहा है। (जूर्णिनी घृताची रातिः) गमनशील घीसे भरी कडछी (प्र एति) आगे बढ रही है। (यः हवीमन् नासत्या अयुक्त) जो हवनकर्ता मानव अश्विदेवोंके लिये हवि अर्पण करता है, वह (प्र होता) दानी (गूर्तमनाः) मन लगाकर कार्य करनेवाला (उराणः) विशेष कार्य करनेवाला होता है ॥ ४ ॥

[६६३] हे (पुरु भुजा) बडी भुजावाले अश्विदेवों ! (शतोतिं रथं) सैकडों संरक्षणोंसे युक्त रथपर (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी पुत्री उषा (श्रिये अधि तस्थौ) शोभाके लिये चढ बैठी है। (अत्र यज्ञियानां जनिमन्) यहां पूजनीयोंके जन्मके अवसरपर आनंदसे (नृतू) नृत्य करनेवाले (नरा मायिना) नेता कुशल अश्विदेव (मायाभिः प्रभूतं) अपनी अद्भुत शक्तियोंसे अत्यधिक प्रभावशाली बने हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— वे अश्विदेव जहांपर भी हों उनके पास इस स्तुतिको दूतके रूपमें भिजवाना चाहिए। उन स्तुतियोंसे आकर्षित होकर अश्विदेव हमारे पास आवें और हमारी स्तुतियोंमें आनन्द प्राप्त करें ॥ १ ॥

हे देवो, हमारे घरपर आओ, और हमारी स्तुतियोंसे प्रशंसित होकर तुम सोमरसका पान करो। जिस घरमें तुम सोमका पान करते हो, उस घरको सदा संकटोंसे बचाते रहो। ऐसी व्यवस्था करो कि कोई भी दूर या पासका शत्रु हमें नष्ट न कर सके। वीर मनुष्य हमारे घरोंमें आवें और हमारे घरोंकी शत्रुओंसे रक्षा करें, तथा हमारे द्वारा सत्कृत होकर आनन्दसे हमारे यहां रहें ॥ २ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम्हारे लिए उत्तम सोमका रस निचोडकर रखा गया और तुम्हारे लिए सुखदायक आसन भी बिछाकर रखा हुआ है। साथ ही तुम्हें चाहनेवाला नम्रतापूर्वक तुम्हारी स्तुति कर रहा है ॥ ३ ॥

हे देवो ! यज्ञोंमें अग्नि तुम्हारे लिए जल रहा है। घीसे भरी हुई कडछी आगे बढ रही है, अर्थात् उत्तम हवि दी जा रही है। जो हवन करनेवाला मनुष्य तुम्हें प्रेमसे हवि अर्पण करता है, वह मन लगाकर कार्य करनेवाला होकर उत्तम कार्य करता है ॥ ४ ॥

६६४ युवं श्रीभिर्दर्शताभिराभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः ।
प्र वां वयो वपुषेऽनु पप्तन् नक्षद् वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम् ॥ ६ ॥
६६५ आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु ।
प्र वां रथो मनोजवा असर्जीषः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः ॥ ७ ॥
६६६ पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं धेनुं न इषं पिन्वतमसक्राम् ।
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन् ॥ ८ ॥
६६७ उत मे ऋज्रे पुरयस्य रघ्वी सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्वा ।
शाण्डो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन् दश वशासो अभिषाच ऋष्वान् ॥ ९ ॥

अर्थ— [६६४] हे (धिष्ण्या) बुद्धिमान् अश्विदेवों ! (युवं आभिः दर्शताभिः श्रीभिः) तुम दोनों इन सुन्दर शोभाओंके साथ (सूर्यायाः शुभे) सूर्य पुत्री उषाके कल्याणके लिये (पुष्टिं ऊहथुः) पुष्टिकारक अन्न अपने साथ रथपर रखते हो । तथा (वां वपुषे) तुम्हारे शरीरकी पुष्टिके लिये (अनु वयः प्र पतन्) अनुकूल अन्न तुम्हें प्राप्त होता है । और (सुष्टुता वाणी) अच्छी स्तुतिकी वाणी (वां नक्षत्) तुम्हें प्राप्त होती है ॥ ६ ॥

[६६५] हे (नासत्या) अश्विदेवों ! (वहिष्ठाः वयः अश्वासः) ढोनेवाले गतिशील घोडे (प्रयः वां अभि आवहन्तु) अन्नके पास तुम्हें ले आवें । (वां मनोजवः रथः) आपका मनोवेगका रथ (पूर्वीः पृक्षः) बहुतसी पुष्टिकारक (इषधः इषः अनु प्र सर्जि) अन्न सामग्रियोंको लाकर रखता है ॥ ७ ॥

[६६६] हे (पुरु भुजा) बडी भुजावालों ! (वां देष्णं पुरु हि) आपका दान बहुत होता है । (नः धेनुं) हमारे लिये तुमने गाय दी है । (असक्रां इषं पिन्वतं) दूसरेके पास न जानेवाली अन्नसामग्री तुमने दी है । (वां स्तुतः च माध्वी सुष्टुतिः च रसाः च) तुम दोनोंकी अच्छी स्तुति और मीठे सोमरस तैयार रखे हैं (ये वां रातिं अनु अग्मन्) जो तुम्हारे दानके अनुकूल रहते हैं ॥ ८ ॥

[६६७] (उत पुरयस्य रघ्वी ऋज्रे) और पुरयकी शीघ्रगामी घोडियां, (सुमीळ्हे शतं) सुमीळ्ह नरेशकी सौ गौवें (पेरुके च पक्वा) पेरुके पके फल, (हिरणिनः स्मद्दिष्टान् ऋष्वान्) सुवर्ण भूषण धारण करनेवाले सुन्दर रूपवाले दर्शनीय (अभिषाचः दश वशासः) शत्रुके पराभवकर्ता दश सेवकोंको (शाण्डः मे दात्) शाण्डने मुझे दिया है ॥ ९ ॥

भावार्थ— सैंकडों संरक्षणोंसे युक्त रथपर सूर्यकी पुत्री उषा शोभाके लिए चढ बैठी तब अश्विनीकुमार अपनी अतुल शक्तियोंसे और अधिक शक्तिशाली बने ॥ ५ ॥

हे बुद्धिमान् अश्विनीकुमारो ! तुम सब अपनी शोभाओंके साथ पुष्टिकारक अन्न अपने साथ रखते हो । तुम्हें पुष्टिके लिये उत्तम अन्न प्राप्त होता है और उत्तम स्तुतियां भी प्राप्त होती हैं ॥ ६ ॥

वेगसे जानेवाले गतिशील घोडे अन्नके पास तुम्हें ले आवें, मनके समान वेगसे जानेवाले रथमें अनेक तरहके पुष्टिकारक अन्न रखे रहते हैं ॥ ७ ॥

हे बडी भुजाओंवाले अश्विनीकुमारो ! आपका दान बहुत महान् होता है । तुमने हमारे लिए गाय दी, जो दूसरोंके पास न हो, वैसे अन्न दिए । इसलिए तुम दोनोंके लिए मीठे सोमरस दिए गए हैं, ये सोमरस तुम्हारे दानके अनुकूल ही हैं ॥ ८ ॥

नगरकी रक्षा करनेवाले मनुष्यके पास शीघ्रगामी घोडियां हों, आनन्द प्रदान करनेवालेके पास अनेक गायें हों, सामर्थ्यशालीके पास पुष्टिकारक अन्न हों, सभी सोनेको धारण करनेवाले और सुन्दर रूपवाले हों तथा सभी शत्रुका पराभव करनेवाले हों ॥ ९ ॥

६६८ सं वां शता नासत्या सहस्रा ऽश्वानां पुरुपन्था गिरे दात् ।
भरद्वाजाय वीर नू गिरे दा ह्रता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः ॥ १० ॥
६६९ आ वां सुम्ने वरिमन्त्सूरिभिः ष्याम् ॥ ११ ॥

[६४]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भारद्वाजः । देवता - उषाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६७० उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः ।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगा न्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी ॥ १ ॥
६७१ भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भा स्युत् ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन् ।
आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भमानो षो देवि रोचमाना महोभिः ॥ २ ॥

अर्थ— [६६८] हे (नासत्या) सत्यपालक अश्विदेवों ! (वां गिरे) तुम्हारे स्तोता (पुरुपन्थाः) पुरुपन्था नामवाले (अश्वानां शता सहस्रा) सैकडों हजारों घोडे (संदात्) दिये । हे (पुरु दंससा) बहुत कार्य करनेवाले अश्विदेवों ! (भरद्वाजाय गिरे) भरद्वाजको स्तुति करनेपर (नु दात्) यह दान दिया । अब (रक्षांसि हताः स्युः) राक्षस मारे गये हैं ॥ १० ॥

[६६९] (वां वरिमन् सुम्ने) तुम दोनोंके दिये श्रेष्ठ सुखमें (सूरिभिः आ स्याम्) विद्वानोंके साथ मैं रहूं ॥ ११ ॥

[६४]

[६७०] (रोचमानाः रुशन्तः उषासः) तेजस्वी चमकनेवाली उषाएं (श्रियै) शोभा बढानेके लिये (अपां ऊर्मयः न) पानीकी लहरियोंके समान, (उत् अस्थुः) ऊपर आ रही हैं । ये उषाएं (विश्वा सुपथा) सब सुन्दर मार्गोंको (सुगानि कृणोति) सुगम करती हैं । यह (मघोनी वस्वी दक्षिणा) ऐश्वर्यवाली उषा धन देनेवाली और अपने कर्ममें दक्ष रहती हैं ॥ १ ॥

[६७१] हे (उषः) उषा ! तू (भद्रा ददृक्षे) कल्याण करनेवाली दीखती है । तू (ऊर्विया विभासि) विशेष रूपसे प्रकाशित होती है । हे (उषः देवि) दिव्य उषा ! (महोभिः रोचमाना) तू किरणोंसे चमकती हुई (शुम्भमाना) शोभनेवाली (वक्षः आविः कृणुषे) अपनी छाती खुली करती है ॥ २ ॥

१ भद्रा ददृक्षे— उषा कल्याण करती है, प्रकाशसे कल्याण होता है ।

२ हे उषः देवि ! महोभिः रोचमाना शुम्भमाना वक्षः आविः कृणुषे— हे उषा देवी ! तू अपने तेजसे सुशोभित होकर अपनी छाती बताती है । तरुण स्त्री इस तरह अपने तारुण्यके गर्वसे ऐसा करती है ।

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुम्हारा स्तोता तथा अनेक तरहके उत्तम मार्गोंको जाननेवाला मनुष्य सैकडों और हजारों घोडोंको देनेवाला हो । हे देवो ! जब अन्नको धारण करनेवालेने तुमसे दान मांगा, तब उसे यह दान दिया, इस दानके कारण तब अनेक राक्षस मारे गए ॥ १० ॥

हे देवो ! तुम दोनों जिस श्रेष्ठ सुखको प्रदान करते हो, उस श्रेष्ठ सुखमें मैं विद्वानोंके साथ रहकर जीवनका आनन्द भोगूं ॥ ११ ॥

जिस प्रकार जलकी लहरें उछलती हैं, उसी तरह उषाके प्रकाशकी लहर अर्थात् उषायें शोभा बढानेके लिए नीचेसे ऊपर आ रही हैं । वह सबका मार्ग सुगम करती हैं, प्रकाशसे मार्ग सुगम हो जाते हैं ॥ १ ॥

हे उषा ! तू कल्याण करनेवाली है, तेरी प्रकाश किरणें आकाशमें फैल रही हैं । हे तेजस्विनी उषे ! तू किरणोंसे प्रकाशमान् और सुशोभित होकर अपनी छातीको प्रकट कर, अपने अन्तःकरणको प्रकट कर, अपने प्रकाशसे पूर्ण अवयवोंको प्रकट कर ॥ २ ॥

६७२ वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम् ।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून् बाधते तमो अजिरो न वोळ्हा ॥ ३ ॥

६७३ सुगोत ते सुपथा पर्वते-ष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो ।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ॥ ४ ॥

६७४ सा वह योक्षभिरवातो-षो वरं वहसि जोषमनु ।
त्वं दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः ॥ ५ ॥

अर्थ— [६७२] (अरुणासः रुशन्तः गावः) लाल रंगवाली तेजस्वी किरणें (सुभगां उर्विया प्रथानां सीं) उत्तम भाग्यवती विशेष प्रशंसनीय ऐसी इस उषाको (वहन्ति) उठाती हैं। (अस्ता शूर इव) अचूक बाण मारनेवाले शूर पुरुषके समान यह उषा (शत्रून् अप ईजते) शत्रुओंको दूर करती है। (अजिरः वोळ्हा न) शीघ्रगामी घुडसवार जैसा शत्रुको दूर करता है वैसी यह उषा (तमः बाधते) अन्धकारको दूर भगाती है ॥ ३ ॥

१ अस्ता शूर इव शत्रून अप ईजते— बाण मारनेवाला शूर जैसा शत्रुको दूर भगाता है। (वैसे तुम अपने शत्रुको भगाओ)।

२ अजिरः वोळ्हा न तमः बाधते— शीघ्रगामी घुडसवार जैसा शत्रुको दूर भगाता है वैसी यह उषा अन्धकारको दूर करती है। वैसा तुम प्रकाशसे अज्ञानको दूर करो।

[६७३] हे उषा! (पर्वतेषु उत अवाते) पर्वतोंमें अथवा मार्गरहित प्रदेशमें (ते सुपथा सुगा) तेरे लिये उत्तम मार्ग अत्यंत सुगम होते हैं। हे (स्व-भानो) स्वयं प्रकाशी उषा! तू (अपः तरसि) अन्तरिक्षमें संचार करती है। हे (पृथुयामन् ऋष्वे) बडे रथमें बैठनेवाली सुन्दर (दिवः दुहिता) स्वर्गकन्ये उषा! (सा नः) वह तू हमें (इषयध्यै) प्राप्तव्य धनके लिये (आ वह) ले आ ॥ ४ ॥

[६७४] हे (उषः) उषा! (सा वरं आ वह) वह तू श्रेष्ठ धन मेरे पास ले आ। (या अवाता जोषं अनु) जो तू अप्रतिहत गतिवाली अपनी इच्छानुसार (उक्षभिः वरं वहसि) बैलों द्वारा श्रेष्ठ धन लाती है। हे (दिवः दुहितः) स्वर्गकन्ये उषा! (या त्वं देवी) जो तू देवी (पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः) प्रथम हवनके समय दर्शनीय और पूजनीय होती है ॥ ५ ॥

भावार्थ— प्रकाशमान् किरणें विशाल उषाको ऊपर लाती हैं। शस्त्र चलानेमें कुशल शूर पुरुषके समान यह उषा शत्रुओंको दूर भगाती है। जिस तरह शीघ्रगामी घुडसवार अपने शत्रुको दूर भगाता है उसी तरह यह उषा अन्धकारको दूर करती है। इसी तरह तरुणी आत्मरक्षाके लिए शस्त्रास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करे ॥ ३ ॥

मार्गरहित पर्वतोंमें भी इस उषाके लिए मार्ग सुगम हो जाते हैं। यह उषा अपनी किरणोंसे अन्तरिक्षमें संचार करती है। बडे रथमें बैठनेवाली यह उषा प्राप्त करने योग्य धनको ले आती है ॥ ४ ॥

उषा श्रेष्ठ धन लाती है, उसका रथ बैलों द्वारा खींचा जाता है। प्रथम हवन करनेके समय उषाका ही सेवन होता है ॥ ५ ॥

६७५ उत् ते वयश्चिद् वसतेरपप्तन् नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ ६ ॥

[६५]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता - उषाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६७६ एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः ।
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून् ॥ १ ॥

६७७ वि तद् ययुररुणयुग्भिरश्वैश्चित्रं भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः ।
अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्तीर्वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः ॥ २ ॥

६७८ श्रवो वाजमिषमूर्जं वहन्तीर्नि दाशुष उषसो मर्त्याय ।
मघोनीर्वीरवत् पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ॥ ३ ॥

अर्थ— [६७५] हे उषा ! (ते व्युष्टौ) तेरे प्रकाशित होनेपर (ये पितुभाजः नरः) जो अन्नसेवन करनेवाले नेता हैं, वे तथा (वयः चित्) पक्षी भी (वसतेः अपप्तन्) अपने रहनेके स्थानोंसे बाहर पडते हैं। हे (उषः देवि) उषा देवी ! तू (अमा सते दाशुषे मर्ताय) साथ रहनेवाले दाता मनुष्यके लिये (भूरि वामं वहसि) बहुत धन लाकर देती है ॥ ६ ॥

१ दाशुषे मर्ताय भूरि वामं वहसि— दाता मानवके लिये बहुत धन लाकर देती है ।

२ ते व्युष्टौ पितुभाजः नरः, वयः चित् वसतेः अपप्तन्— तेरे उदित होनेपर अन्न चाहनेवाले मनुष्य और पक्षी, अपने रहनेके स्थानसे बाहर आते हैं ।

[६५]

[६७६] (एषा स्या दिवोजाः दुहिता) यह वह स्वर्गमें जन्मी दिव्य कन्या उषा (नः उच्छन्तीः) हमारे लिये अन्धकार दूर करती हुई (मानुषीः क्षितीः अजीगः) मानवी प्रजाओंको जगाती है । (या रुशता भानुना) जो तेजस्वी प्रकाशसे युक्त होकर (राम्यासु अक्तून्) रात्रियोंके अन्दरके (तमसः चित् तिरः) अन्धकारको दूर करती है, ऐसा (अज्ञायि) दीखता है ॥ १ ॥

[६७७] (चन्द्ररथाः) चन्द्रमाके समान शोभनेवाले रथमें बैठनेवाली और (तत् बृहतः यज्ञस्य अग्रं नयन्ती) उस विशाल यज्ञके समीप पहुंचानेवाली (उषसः) उषाएं (अरुणयुग्भिः अश्वैः) अरुण रंगवाले घोडोंसे (वि ययुः) विशेष वेगसे जा रही हैं। वे (चित्रं भान्ति) विलक्षण तेजसे प्रकाशित हो रही हैं । (ता ऊर्म्यायाः तमः वि बाधन्ते) वे रात्रिके अन्धकारको दूर करती हैं ॥ २ ॥

[६७८] हे (उषसः) उषाओं ! (दाशुषे मर्त्याय) दाता मनुष्यके लिये (श्रवः वाज इषं ऊर्जं वहन्तीः) कीर्ति, बल, अन्न और रसको ले जानेवाली तुम (मघोनीः पत्यमानाः) धनवाली तथा जानेवाली उषाएं (विधते) सेवा करनेवाले मेरे लिये (वीरवत् रत्न-अवः) वीर पुत्रोंसे युक्त रत्न और अन्न (अद्य नि धात) आज ही दे दो॥३॥

भावार्थ— हे उषा ! तेरा प्रकाश होनेपर मनुष्य, पशु और पक्षी अपने स्थानसे उठते हैं, और अन्न ढूंढनेके कार्यमें लग जाते हैं । इस समय दाता मनुष्यके लिए उषा उत्तम धन देती है ॥ ६ ॥

यह उषा प्रकाशती है और मनुष्योंको जगाती है । यह अपने प्रकाशसे रात्रीको और अन्धकारको दूर करती है ॥१॥

सुन्दर रथमें बैठनेवाली ये उषाएं यज्ञको सिद्ध करती हैं और अपने प्रकाशसे विलक्षण उत्तम तेजको प्रदान करती हैं और अन्धकारको दूर करती हैं ॥ २ ॥

६७९ इदा हि वो विधते रत्नमस्ती—दा वीराय दाशुष उषासः ।
इदा विप्राय जरते यदुक्था नि ष्म मावते वहथा पुरा चित् ॥ ४ ॥
६८० इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति ।
व्य१र्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद् देवहूतिः ॥ ५ ॥
६८१ उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद् विधते मघोनि ।
सुवीरं रयिं गृणते रिरीह्यु—रुगायमधि धेहि श्रवो नः ॥ ६ ॥

[६६]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- मरुतः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६८२ वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम् ।
मर्तेष्वन्यद् दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥ १ ॥

अर्थ— [६७९] हे (उषासः) उषाओं ! (इदा हि वः विधते) इस समय तुम्हारी सेवा करनेवालेको देनेके लिये तुम्हारे पास (रत्नं अस्ति) रत्न है । (इदा वीराय दाशुषे) इस समय वीरको देनेके लिये धन भी है । अतः (यत् उक्था) स्तोत्र गानेवाले (मावते पुरा चित्) मेरे जैसेके लिये जैसे पूर्व समयमें दिये थे वैसे धन इस समय भी (नि वहथ स्म) दे दो ॥ ४ ॥

[६८०] हे (अद्रिसानो उषः) पर्वतपर दीखनेवाली उषा ! (ते इदा हि) तेरी कृपासे इसी समय (अंगिरसः) अंगिरस गोत्री (गवां गोत्रा) गौवोंके झुंडोंको (गृणन्ति) खुला करते हैं, (अर्केण ब्रह्मणा विबिभिदुः) सूर्यकिरणोंके साथ गाये स्तोत्रसे अन्धकारोंका नाश हो रहा है । (नृणां देवहूतिः सत्या अभवत्) मनुष्योंकी ईश प्रार्थना अब सत्य हो चुकी है ॥ ५ ॥

[६८१] हे (दिवः दुहितः) स्वर्गकन्ये उषे ! (प्रत्नवत् नः उच्छ) पूर्व समयके समान इस समय हमारे लिये अन्धकार दूर कर । हे (मघोनि) धनवाली उषा ! (भरद्वाजवत् विधते गृणते) भरद्वाजके समान सेवा करनेवाले और स्तुति करनेवाले मुझे (सुवीरं रयिं रिरीहि) सुपुत्रयुक्त धन दे तथा (नः) हमारे लिये (उरुगायं श्रवः अधि धेहि) बहुतों द्वारा प्रशंसनीय अन्नका यश दे दो ॥ ६ ॥

[६६]

[६८२] (तत्) वह (धेनुः समानं नाम) धेनु करके एक ही नाम (पत्यमानं वपुः) धारण करनेवाला शरीर (नु चित्) सचमुच (चिकितुषे) ज्ञानी मनुष्यके लिये परिचित (अस्तु) है । (अन्यत्) उनमेंसे एक (मर्तेषु दोहसे पीपाय) मानवोंमें दूधका दोहन करनेके लिये पुष्ट हो रहा है । (शुक्रं सकृत्) तेजस्वी दूसरा रूप (पृश्निः) अन्तरिक्षमें मेघरूपी (ऊधः दुदुहे) दुग्धाशयसे दुहा जाता है ॥ १ ॥

भावार्थ— हे उषाओ ! तुम दाता मनुष्यको यश, अन्न और बल देती हो तथा यज्ञ करनेवालेके लिए वीर पुत्रोंके साथ रहनेवाला धन, अन्न और संरक्षण देती है ॥ ३ ॥

हे उषाओ ! तुम्हारे पास इस समय जो रत्न है, उसे उपासकके लिए तुम दो । इस दाता वीरके लिए, ज्ञानी उपासकके लिए तुम उत्तम धन दो । इसी तरह तुमने पूर्व समयमें स्तोताओंको दिया था, उसी तरह इस समय भी दो ॥ ४ ॥

आंगिरस गोत्री ऋषि पर्वत शिखरपर प्रकाश डालनेवाली उषाका गुणगान कर रहे हैं । गाये गए इन स्तोत्रोंके साथ अन्धेरा दूर हो चुका है और स्तोताओंकी प्रार्थना सत्य हो गई है ॥ ५ ॥

हे उषा ! तू पहलेके समान ही आज भी हमारे लिए अन्धेरा दूर कर । भरद्वाजके समान स्तोताके लिए वीरपुत्रोंसे युक्त धन दे और हमें प्रशंसनीय अन्न, धन और बल दे ॥ ६ ॥

६८३ ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत् त्रिर्मरुतो वावृधन्त ।
अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन् ॥ २ ॥
६८४ रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै ।
विदे हि माता महो मही षा सेत् पृश्निः सुभ्वे३ गर्भमाधात् ॥ ३ ॥
६८५ न य ईषन्ते जनुषोऽया न्व१ न्तः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः ।
निर्यद् दुह्रे शुचयोऽनु जोष मनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः ॥ ४ ॥
६८६ मक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः ।
न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित् सुदानुरव यासदुग्रान् ॥ ५ ॥

अर्थ— [६८३] (ये मरुतः इधानाः) जो मरुत् (इधानाः) प्रदीप्त होकर (अग्नयः न शोशुचन्) अग्निके समान प्रकाशते हैं, (यत् द्विः त्रिः) और जो द्विगुणित या त्रिगुणित बलिष्ठ होकर (ववृधन्त) बढते हैं, (एषां अरेणवः हिरण्ययासः) इनके मलरहित और सुवर्णसे चमकनेवाले रथ (नृम्णैः पौंस्यैः च साकं) बुद्धियों और बलोंसे युक्त (भूवन्) होते हैं ॥ २ ॥

[६८४] (ये मीळ्हुषः रुद्रस्य पुत्राः सन्ति) ये वीर स्नेह करनेवाले रुद्रके पुत्र हैं, (दाधृविः यान् चो नु भरध्यै) सबका धारण करनेवाली पृथिवी इन मरुतोंका भरणपोषण करनेके लिये ही है । (महः हि) बडे वीरोंका (माता मही विदे) माता होनेके कारण ही वही करके पृथिवी कही जाती है । (सा पृश्निः) वह पृथिवी माता ही (सुभ्वे इत्) सबका कल्याण करनेकी इच्छासे (गर्भं आधात्) गर्भ धारण करती है ॥ ३ ॥

[६८५] (अन्तः सन्तः) अन्दर रहकर (अवद्यानि पुनानाः) दोषोंको पवित्र करते हुए (ये नु) जो वीर (अया जनुषः न ईषन्ते) अपनी गतिसे जनतासे दूर नहीं जाते हैं, तथा (यत् श्रिया तन्वं अनु) जो अपनी आभासे शरीरको अनुकूलतासे (उक्षमाणाः) बलवान् करते हैं, वे (शुचयः) पवित्र वीर मरुत् (जोषं अनु निः दुह्रे) इच्छाके अनुकूल दान देते हैं ॥ ४ ॥

[६८६] (येषु) जो वीर (धृष्णु मारुतं नाम) शत्रुसेनाका धर्षण करनेवाला मरुतोंका नाम (आ दधानाः) धारण करते हैं, और जो (दोहसे चित्) जनताके पोषणके लिये (मक्षु अयाः) तत्काल ही जाते हैं । य (सुदानुः) उत्तम दानी वीर (न ये अयासः स्तौनाः) जो भटकनेवाले चोरोंके समान और (उग्रान् नु चित्) भीषण डाकुओंको भी (अवयासत्) परास्त करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— ' धेनु ' नामक दो माताएं हैं । एक धेनु गोमाता मानवोंके पोषणके लिये दूध देती है और दूसरी अन्तरिक्षमें मेघरूपसे जलकी वृष्टि करके सबको तृप्त करती है ॥ १ ॥

मरुतोंके रथोंपर सोनेका चमकदार भाग होता है, वह चमकता रहता है और वह बुद्धिके तथा पराक्रमोंके कार्योंके लिये प्रसिद्ध रहता है ॥ २ ॥

ये मरुत् वीर रुद्रके पुत्र हैं । पृथिवी इनका पोषण करती है । इसलिये पृथिवीको बडी माता कहते हैं । यही पृथिवी सबका भरण पोषण करनेके लिये धान्यरूपी गर्भका धारण करती है ॥ ३ ॥

ये वीर समाजमें ही रहते हैं, दोषोंको दूर हटाते और पवित्रताका वातावरण फैला देते हैं । ये कभी जनसमाजका परित्याग नहीं करते, अपने आपको दूर नहीं करते और अपना तेज बढाकर अनुकूलतापूर्वक दान देते रहते हैं ॥ ४ ॥

जिन्होंने शूरोंका नाम ' मरुत् ' धारण किया है, जो जनताका पोषण करनेका यत्न करते हैं, वे क्रूर प्रबल डाकुओंको भी परास्त करते हैं ॥ ५ ॥

×

६८७ त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके ।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचि--रामवत्सु तस्थौ न रोकः ॥ ६ ॥
६८८ अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्व--नश्वश्चिद् यमजत्यरथीः ।
अनवसो अनभीशू रजस्तु--र्वि रोदसी पथ्या याति साधन् ॥ ७ ॥
६८९ नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति मरुतो यमवथ वाजसातौ ।
तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्ता पार्ये अध द्योः ॥ ८ ॥
६९० प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम् ।
ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥ ९ ॥

अर्थ— [६८७] (ते शवसा उग्राः) वे अपने बलसे उग्रवीर हैं, और (धृष्णु-सेनाः) साहसी सेनाके वीर हैं, (सुमेके उभे रोदसी युजन्त इत्) वे सुन्दर वीर भूलोक और द्युलोकमें सुसज्ज बने रहते हैं। (अध स्म) और (अमवत्सु एषु) इन बलवान् वीरोंके तैयार रहने पर (रोदसी स्वशोचिः) भूमि और आकाश अपने तेजसे युक्त होते हैं, पश्चात् (रोकः न आ तस्थौ) उनके सामने प्रतिबंध खडा नहीं होता है ॥ ६ ॥

[६८८] हे (मरुतः) मरुत् वीरो ! (वः यामः अन्-एनः अस्तु) आपका रथ दोषरहित रहे। (अन्-अश्वः) उसको घोडे जोते नहीं जाते, (अरथीः) रथपर न बैठनेवाला भी (यं अजति) जिसको चलाता है। (अन्-अवसः) जिसपर रक्षाका कोई साधन नहीं है, (अन्-अभीशुः) जिसको लगाम नहीं हैं, (रजस्तूः) धूली उडाता हुआ (साधन् रोदसी) इच्छा पूर्ण करता हुआ आकाश और पृथिवीके मध्यमेंसे (पथ्या वियाति) मार्गसे जाता है ॥ ७ ॥

[६८९] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वाजसातौ यं अवथ) युद्धमें जिसकी तुम रक्षा करते हो, (अस्य वर्ता न) उसको घेरनेवाला कोई नहीं रहता। तथा उसका (तरुता नु न अस्ति) विनाशक भी कोई नहीं होता। (अध) और (तोके तनये गोषु अप्सु) बालबच्चोंमें गौवोंमें और जलोंमें (यं) जिसकी तुम सुरक्षा करते हो, (सः पार्ये द्योः) वह युद्धमें द्युलोककी (व्रजं दर्ता) गोशालाका भी विदारण करता है ॥ ८ ॥

[६९०] हे अग्ने ! (ये सहसा सहांसि सहन्ते) जो अपने बलसे शत्रुके आक्रमणोंको परास्त करते हैं, तब (मखेभ्यः पृथिवी रेजते) इन वीरोंकी हलचलसे भूमि कांपती है। उन (गृणते तुराय स्वतवसे) स्तुत्य, त्वराशील और बलवान् (मारुताय) वीर मरुतोंके संघके लिये (चित्रं अर्कं प्र भरध्वं) आश्चर्यकारक स्तोत्र गाओ ॥ ९ ॥

भावार्थ— इन वीरोंकी साहसी सेना सदैव तैयार रहती है, इस कारण इनके मार्गमें कोई रुकावट खडी नहीं रहती। इस कारण ये वीर अपना कर्तव्य पूर्ण करते हैं ॥ ६ ॥

मरुतोंका रथ दोषरहित है, उसको घोडे नहीं जोते जाते, रथपर न बैठनेवाला भी उसको चलाता है, लगाम नहीं और सुरक्षित रखनेका कोई साधन भी नहीं है। जब यह रथ चलता है तब धूली उडाता है और वेगसे मार्गपरसे जाता है ॥ ७ ॥

ये वीर जिसका संरक्षण करते हैं उसका नाश कोई नहीं कर सकता। पुत्र-पौत्रों गौवोंमें रहनेवालोंका संरक्षण जब ये वीर करते हैं, तब वे सब शत्रुओंका नाश करते हैं, अतः वे लोग सदा सुरक्षित रहते हैं ॥ ८ ॥

उन वीरोंके संघका जिस समय आक्रमण होता है उस समय पृथिवी कंपित होती है। इन वीरोंके संघकी स्तुति करो और उनको अन्नादिसे संतुष्ट करो ॥ ९ ॥

६९१ त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत् तृषुच्यवसो जुह्वो३ नाग्नेः ।
अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ॥ १० ॥
६९२ तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे ।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ॥ ११ ॥

[६७]

(ऋषिः- ११ बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता - मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६९३ विश्वेषां वः सतां ज्येष्ठतमा गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृधध्यै ।
सं या रश्मेव यमतुर्यमिष्ठा द्वा जनाँ असमा बाहुभिः स्वैः ॥ १ ॥
६९४ इयं मद् वां प्र स्तृणीते मनीषोप प्रिया नमसा बर्हिरच्छ ।
यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं छर्दिर्यद् वां वरूथ्यं सुदानू ॥ २ ॥

अर्थ— [६९१] वे (मरुतः) मरुद् वीर (अध्वरस्य इव) हिंसारहित कर्म करनेवाले (त्विषि-मन्तः) तेजस्वी (तृषु च्यवसः) वेगसे चलनेवाले (अग्नेः जुह्वः न) अग्निकी ज्वालाओंके समान (दिद्युत् अर्चत्रयः) तेजस्वी और पूजनीय, (वीराः न) वीरोंके समान (धुनयः) शत्रुको हिलानेवाले (भ्राजत्-जन्मानः) तेजस्वी जीवनवाले (अ- धृष्टाः) पराभूत न होनेवाले हैं ॥ १० ॥

[६९२] (तं वृधन्तं) उस बढनेवाले तथा (भ्राजत्-ऋष्टिं) तेजस्वी भाले धारण करनेवाले (रुद्रस्य सूनुं मारुतं) रुद्रके पुत्र मरुतोंके गणकी (आ विवासे) मैं प्रशंसा करता हूं । इसी तरह (दिवः शर्धाय) दिव्य बलकी प्राप्तिके लिये (उग्राः शुचयः मनीषाः) उग्र पवित्र इच्छाएं (गिरयः आपः न) पर्वतसे बहनेवाली जल धाराओंके समान (अस्पृध्रन्) स्पर्धा करती हैं ॥ ११ ॥

[६७]

[६९३] (विश्वेषां वः सतां) आपके सब श्रेष्ठोंमें (ज्येष्ठतमा मित्रावरुणा) अतिश्रेष्ठ मित्र और वरुण हैं, (गीर्भिः ववृध्यै) उनकी स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं । (या यमिष्ठा द्वा) जो नियमन करनेवाले ये दो देव (रश्मा इव) रस्सियोंसे पकडमें रखनेके समान (स्वैः बाहुभिः) अपने बाहुओंसे (असमा) अद्वितीय रीतिसे (जनान् सं यमतुः) लोगोंको अपने नियंत्रणमें रखते हैं ॥ १ ॥

[६९४] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! (इयं मनीषा) यह स्तुति (मत् वां प्र स्तृणीते) मुझसे चलकर आपके पास पहुंचती है । (बर्हिः) तुम्हारे लिये आसन फैलाकर (नमसा उप प्रिया) नमस्कार करके आप जो प्रिय हैं उनके पास वह (अच्छ) सीधी आती है । (अ-धृष्टं छर्दिः नः यन्तं) हमें सुरक्षित घर दो । हे (सुदानू) उत्तम दान देनेवालो ! (यत् वां वरूथ्यं) जो आपका आश्रयस्थान है ॥ २ ॥

भावार्थ— ये वीर तेजस्वी, शत्रुपर वेगसे धावा करनेवाले, शत्रुदलको हरानेवाले हैं, अतः इनका कभी पराभव नहीं होता है ॥ १० ॥

मैं इन शस्त्रास्त्र धारण करनेवाले वीरोंके गणका स्वागत करता हूं । हम अपनी आकांक्षाओंको उनके समीप बडी स्पर्धासे रखते हैं । ताकि हमें दिव्य बल प्राप्त हो जाय और अधिकाधिक बल प्राप्त हमारा बढता जाय ॥ ११ ॥

सब श्रेष्ठोंमें अतिश्रेष्ठ मित्र और वरुण हैं । जो सबको नियममें रखनेवाले दो देव अपने बाहुओंसे अद्वितीय रीतिसे सब लोगोंको अपने अधीन रखते हैं ॥ १ ॥

मैं मनःपूर्वक तुम्हारी भक्ति करता हूं उसको तुम सुनो । तुम्हारे लिये यह आसन फैलाया है, आपको हम प्रणाम करते हैं । आप हमें उत्तम सुरक्षित घर दें जो आपका आश्रय हो ॥ २ ॥

६९५ आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना ।
सं यावप्नःस्थो अपसेव जनाञ्छ्रुधीयतश्चिद् यतथो महित्वा ॥ ३ ॥
६९६ अश्वा न या वाजिना पूतबन्धू ऋता यद् गर्भमदितिर्भरध्यै ।
प्र या महि महान्ता जायमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि दीधः ॥ ४ ॥
६९७ विश्वे यद् वां मंहना मन्दमानाः क्षत्रं देवासो अदधुः सजोषाः ।
परि यद् भूथो रोदसी चिदुर्वी सन्ति स्पशो अदब्धासो अमूराः ॥ ५ ॥
६९८ ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु द्यून् दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः ।
दृळ्हो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान् द्यां धासिनायोः ॥ ६ ॥

अर्थ— [६९५] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! (आ यातं) आओ। (नमसा उप हूयमाना) प्रणाम करके आपको हम समीप बुलाते हैं। (सुशस्ति प्रिय) आप प्रिय हैं इसलिये आपकी हम स्तुति करते हैं। (यौ अप्नःस्थः) आप दोनों सत्कर्ममें प्रवृत्त हैं। (अपसा श्रुधीयतः जनान् इव) कर्मसे समृद्धिकी इच्छा करनेवाले लोगोंको जिस तरह कर्ममें प्रवृत्त करते हैं उस तरह (महित्वा चित् सं यततः) अपने महत्त्वसे आप जनोंको प्रयत्नशील हैं ॥ ३ ॥

[६९६] (या अश्वा न वाजिना) जो घोडोंके समान बलवान् हैं, (पूत-बन्धू) पवित्र भाईके समान हैं तथा (ऋता) सत्यस्वरूप हैं, (यत् अदितिः गर्भं भरध्यै) इसलिये तुम्हें अदितिने गर्भमें पोषण किया था। (या महि महान्ता प्रजायमाना) जो आप श्रेष्ठसे श्रेष्ठ जन्मे हैं, (मर्ताय रिपवे) मानवी शत्रुके लिये (घोरा) भयंकर तुम्हें (नि दीधः) बना दिया है ॥ ४ ॥

[६९७] (यत्) जब (वां मंहना मन्दमानाः) आपके महत्त्वके कारण आनन्दित हुए (विश्वे देवासः) सब देवोंने (सजोषाः क्षत्रं अदधुः) जिस समय प्रीतिपूर्वक क्षात्रबल धारण किया (उर्वी चित् रोदसी) इतनी बडी यह द्यावा पृथिवी है, पर उनको भी तुम (यत् परि भूथः) घेरते हैं, और तुम्हारे (स्पशः अदब्धासः अमूराः) दूत भी किसीके सामने न दबनेवाले और समझदार हैं ॥ ५ ॥

[६९८] (ता हि सर्वं क्षत्रं अनुद्यून् धारयेथे) वे दोनों सब प्रकारका क्षात्रबल दिन-प्रतिदिन धारण करते हैं, (द्योः सानुं) द्युलोकके शिखरको (उपमात् इव दृंहेथे) समीप रहनेके समान दृढता लाते हैं। (नक्षत्रः दृळ्हः) नक्षत्रोंका स्थान सुदृढ किया है (उत विश्वदेवः) और विश्वमें प्रकाशक सूर्यको भी स्थिर किया। (आयोः धासिना) मानवोंको अन्न मिले इसलिये (द्यां भूमिं आ अतान) द्यु और भूमिको पृथक् करके फैलाकर रहा है। ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे मित्र, वरुण ! नमस्कार करके आपको हम बुलाते हैं। किसीको बुलाना हो तो प्रणाम करके ही बुलाना चाहिये। ये दोनों देव प्रशंसित और प्रिय हैं। जो प्रशंसित होते हैं उनपर ही प्रेम करना चाहिये। सत्कर्ममें प्रवृत्त रहना चाहिये। कर्म करके जो श्रेष्ठत्व प्राप्त करनेके इच्छुक हैं, उनको महत्त्वसे प्रयत्नमें प्रवृत्त करते हैं। स्वयं सत्कर्म करके महत्त्व प्राप्त करना हरएकको योग्य है। ऐसे प्रयत्नशील पुरुष सतत सत्कर्ममें प्रवृत्त रहें ॥ ३ ॥

माता अदितिने देवोंको अपने गर्भमें इसलिये धारण किया, कि देव शूरवीर बन कर अपने शत्रुओंको मारें, बडा होनेके बाद देवी अदितिने देवोंको वैसी शिक्षा भी दी कि जिससे देव शूरवीर बन सकें। इसी प्रकार मातायें अपने बच्चोंको उत्तम उत्तम शिक्षायें दें, ताकि बच्चे शूरवीर होकर देशके श्रेष्ठ कर्णधार बन सकें ॥ ४ ॥

हे मित्रा वरुण ! आपके महत्त्वको देखकर आनन्दित हुए उत्साही सब देवोंने क्षात्र सामर्थ्य धारण किया। आपका सामर्थ्य देखकर सब देव भी क्षात्र कर्म करने लगे। आपके दूत भी किसीसे न दबनेवाले और चतुर हैं ॥ ५ ॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव क्षात्रतेज प्रतिदिन धारण करते हैं। सदा अपना बल बढाते रहते हैं। द्युलोकके शिखरको सुदृढ करते हैं। मनुष्योंको अन्न मिले इस हेतुसे द्युलोक और भूलोकको उन्होंने विस्तृत किया ॥ ६ ॥

६९९ ता विप्रं धैथे जठरं पृणध्या आ यत् सद्म सभृतयः पृणन्ति ।
न मृष्यन्ते युवतयोऽवाता वि यत् पयो विश्वजिन्वा भरन्ते ॥ ७ ॥
७०० ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद् वां सत्यो अरतिर्ऋते भूत् ।
तद् वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं दाशुषे वि चयिष्टमंहः ॥ ८ ॥
७०१ प्र यद् वां मित्रावरुणा स्पूर्धन् प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति ।
न ये देवास ओहसा न मर्ता अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः ॥ ९ ॥
७०२ वि यद् वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः ।
आद् वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा ॥ १० ॥

अर्थ— [६९९] (स-भृतयः सद्म यत् आ पृणन्ति) जब याजक लोग यज्ञशालामें भरते हैं, तब (जठरं पृणध्यै) पेट भरनेके लिये (ता विप्रं धैथे) वे आप दोनों आदरपूर्वक अन्न धारण करते रखते हैं। (अवाताः युवतयः न मृष्यन्ते) अविवाहित तरुण स्त्रियां अपना जीवनका अकेलापन सहन नहीं करतीं, वैसा ही (विश्वमिन्वा यत् पयः विभरन्ते) विश्वको प्रेरणा देनेवाले तुमने जब जल भर दिया तब नदियां भर कर बहने लगीं ॥ ७ ॥

[७००] (ता जिह्वया सदं इदं) वे दोनों जिह्वासे-उपदेशसे-सदा ही (सुमेधाः आ) भक्तोंको उत्तम बुद्धिवान् बनाते हैं। (यत् वां सत्यः अरतिः ऋते आ भूत) जब वह आपका सच्चा भक्त सत्यमें तत्पर होता है। हे (घृत-अन्नौ) घृतमिश्रित अन्न देनेवालो ! (तत् वां महित्वं अस्तु) वह आपका महत्व है (युवं दाशुषे अंहः वि चयिष्टं) जो आप दोनों दाताके लिये पापको हटाते हैं ॥ ८ ॥

[७०१] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुणो ! (यत् वां प्रिया धाम) जो आपको प्रिय स्थान हैं उनको (प्र स्पूर्धन्) स्पर्धा करके (युव-धिता मिनन्ति) तथा आपने धारण किये नियमोंको जो तोडते हैं वे (न ये देवासः) देव नहीं, (ओहसा न मर्ताः) मनुष्य वे मानव भी नहीं, (अ-यज्ञ-साचः) यज्ञ न करनेवाले वे (अप्यः न पुत्राः) कर्मनिष्ठ पुत्र भी नहीं हैं ॥ ९ ॥

[७०२] (कीस्तासः यत् वाचं वि भरन्ते) कोई स्तुति करनेवाले आपकी स्तुति करते हैं, (के चित् मनानाः निविदः शंसन्ति) कोई मननशील स्तोत्र गाते हैं, (आत् वां सत्यानि उक्था ब्रवामः) हम आपकी सत्य स्तुतियोंको गाते हैं कि तुम्हारा (न किः महित्वा देवेभिः यतथः) महत्व बडा है इस कारण कोई भी इस विषयमें देवोंके साथ तुलना नहीं करते ॥ १० ॥

भावार्थ— हे मित्र और वरुण ! जब लोग घरमें भरते हैं, तब पेट भरनेके लिये तुम अन्न भरकर रखते हो। अविवाहित तरुणियां अपना अकेलापन सहन नहीं करतीं, वैसी ही नदियां जलसे भरती हैं। तब वे प्रफुल्लित होकर पोषक धान्य उत्पन्न करती हैं ॥ ७ ॥

जिह्वासे ऐसा उपदेश करना चाहिये जिससे सुननेवाले उत्तम बुद्धिवान् बने। जब देवोंका सत्यभक्त सदाचारवान् होता है तब उसकी बुद्धि बढती है। वह देवोंका ही महत्व है जो वे दाताको निष्पाप बनाते हैं ॥ ८ ॥

हे मित्र और वरुण देवो ! जो आपके प्रिय स्थान हैं, उन्हें जो भ्रष्ट करते हैं, तथा आपके नियमों और व्रतोंका भंग करते हैं, वे न देव होते हैं, न मनुष्य होते हैं और न उत्तमकर्म करनेवाले पुत्रके समान ही होते हैं ॥ ९ ॥

हे मित्रावरुण देवो ! कुछ लोग आपकी स्तुति करते हैं, कुछ लोग आपके लिए मननीय स्तोत्र गाते हैं, तो कुछ लोग आपके महत्वका गुणगान करते हैं, पर इन देवोंका महत्व इतना बडा है कि इनके साथ किसी भी देवकी तुलना नहीं की जा सकती ॥ १० ॥

७०३ अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु ।
अनु यद् गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद् रणे वृषणं युनजन् ॥ ११ ॥

[६८]

(ऋषिः- ११ पार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप्, ९-१० जगती ।)

७०४ श्रुष्टी वां यज्ञ उद्यतः सजोषा मनुष्वद् वृक्तबर्हिषो यजध्यै ।
आ य इन्द्रावरुणाविषे अद्य महे सुम्नाय मह आववर्तत् ॥ १ ॥
७०५ ता हि श्रेष्ठा देवताता तुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम् ।
मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना ॥ २ ॥

अर्थ— [७०३] हे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुणों ! (वां अवोः इत्था) आप दोनोंके रक्षणके अन्दर रहनेवाले भक्त (युवोः छर्दिषः अभिष्टौ) आपसे घर प्राप्त करनेकी इच्छा करनेके कार्यमें (अस्कृधोयु) कृतकार्य होते हैं। (यत्) जिसके चारों ओर (गावः अनुस्फुरान्) गौवें घूमती रहें और जो घर (ऋजिप्यं धृष्णुं) सरल व्यवहार करनेवालोंको रहने योग्य, शत्रुका घर्षण करनेमें समर्थ (यत् रणे वृषणं युनजन्) और जो रणमें बलवान् तरुणको भेज सकता है ॥ ११ ॥

१ यत् गावः अनुस्फुरान्— जिस घरके चारों ओर गौवें घूमती हों ऐसा घर चाहिये ।

२ ऋजिप्यं धृष्णुं— सरल व्यवहार करनेवाले जहां रहते हैं और शत्रुका घर्षण करनेमें जो समर्थ हो ऐसा घर चाहिये ।

३ यत् रणे वृषणं युनजन्— जो घर युद्धमें बलवान् तरुणको भेज सकता हो ऐसा घर चाहिये । अर्थात् प्रत्येक घरमें ऐसे तरुण हों कि जो युद्धमें जा सकते हों । ऐसा घर हमें चाहिये ।

[६८]

[७०४] (इन्द्रावरुणौ) हे इन्द्र और वरुणो ! (यः यज्ञः) जो यज्ञ (अद्य महे इषे) आज बड़ी इच्छा-तृप्तिके लिये, (महे सुम्नाय) और बड़े सुखके लिये (आ आववर्तत्) हो रहा है, वह (वां यज्ञः) आपका यज्ञ (श्रुष्टी सजोषाः) शीघ्र उत्साहवर्धक, (उद्यतः) उद्यमशील, (मनुष्वत्) मानवोंसे युक्त (वृक्त-बर्हिषः) फैले आसनोंसे युक्त (यजध्यै) यजन करनेके लिये हो ॥ १ ॥

[७०५] (ता हि देवताता श्रेष्ठा तुजा) वे दोनों सचमुच देवोंमें श्रेष्ठ मारक वीर हैं, (ता हि शूराणां शविष्ठा भूतं) वे दोनों शूरोंमें बलवान् हैं । (मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्मा) धनवानोंमें बड़े और अनेक बलोंसे युक्त हैं, तथा (ऋतेन) सत्य व्यवहारसे (वृत्रतुरा सर्वसेना) शत्रुको मारनेवाले और सब प्रकारकी सेनासे युक्त हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हर मनुष्यको घर प्राप्तिकी इच्छा रहती है । सभीकी यह इच्छा होती है कि उनके अपने घर हों । पर घर ऐसा हो कि जिसके चारों ओर गायें घूमती हों । उस घरमें एक बड़ी सी गौशाला हो। उस घरके सभी सदस्य सरल व्यवहार करने वाले हों, कोई भी कुटिल व्यवहार करनेवाला न हो । देशके प्रत्येक घर ऐसे हों कि जिसके प्रत्येक सदस्य समय पड़नेपर युद्धमें जा सके ॥ ११ ॥

यज्ञ बहुत अन्न प्राप्त करनेके लिये हो, इच्छाकी तृप्ति करनेके लिये हो । यज्ञ बड़ा सुख प्राप्त होनेके लिये हो । आपका यज्ञ शीघ्र ही प्राप्तिपूर्वक उद्यमयुक्त मानवों द्वारा आसन सुशोभित हुए हैं ऐसा हो । बहुत मनुष्य आ जायें, आसनोंपर बैठे और उद्यमशीलता बढ़े और सबका कल्याण हो । यज्ञ ऐसा हो ॥ १ ॥

इन्द्र और वरुण ये दोनों देव यज्ञ करनेवाले देवोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं । वे दोनों शूरोंमें बलवान् हैं, धनवानोंमें बड़े और अनेक बलोंसे युक्त हैं तथा सत्य व्यवहारसे शत्रुको मारनेवाले तथा हर तरहकी सेनासे युक्त हैं ॥ २ ॥

७०६ ता गृणीहि नमस्येभिः शूषैः सुम्नेभिरिन्द्रावरुणा चकाना ।
वज्रेणान्यः शवसा हन्ति वृत्रं सिषक्त्यन्यो वृजनेषु विप्रः ॥ ३ ॥
७०७ ग्नाश्च यन्नरश्च वावृधन्त विश्वे देवासो नरां स्वगूर्ताः ।
प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा द्यौश्च पृथिवि भूतमुर्वी ॥ ४ ॥
७०८ स इत् सुदानुः स्ववाँ ऋतावेन्द्रा यो वां वरुण दाशति त्मन् ।
इषा स द्विषस्तरेद् दास्वान् वंसद् रयिं रयिवतश्च जनान् ॥ ५ ॥
७०९ यं युवं दाश्वध्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
अस्मे स इन्द्रावरुणावपि ष्यात् प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः ॥ ६ ॥

अर्थ— [७०६] (नमस्येभिः शूषैः सुम्नैः) नमस्कार पूर्वक, उत्तम बलशाली स्तोत्रोंसे (ता चकाना इंद्रावरुणा) उन तेजस्वी इंद्र और वरुणोंकी (गृणीहि) स्तुति करो, (अन्यः वज्रेण शवसा) एक इन्द्र वज्र बलसे फेंककर (वृत्रं हन्ति) वृत्रको मारता है और (अन्यः वृजनेषु सिषक्ति) दूसरा वरुण संकटोंमें सहायता करता है ॥ ३ ॥

[७०७] (ग्नाः च नरः च वावृधन्त) स्त्रियां और पुरुष कितने भी बढ गये, (विश्वे देवासः) सब विबुध (नरां स्वगूर्ताः) नेताओंमें स्वकीय उद्यमसे कितने भी बढ गये, (द्यौः च पृथिवी च उर्वी) द्यु और पृथिवी कितनी भी बडी हुई तो भी (एभ्यः) इन सबसे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण (महित्वा प्र भूतं) अपने महत्वके कारण श्रेष्ठ हैं ॥ ४ ॥

[७०८] (स इत् सुदानुः) वह सचमुच उत्तम दाता है, (स्ववान् ऋतावा) वह आत्मशक्तिसे युक्त और सत्य नियमसे चलनेवाला है। हे (इंद्रावरुणा) इन्द्र और वरुणों ! (यः वां त्मन् दाशति) जो आपको स्वयं देता है। (सः दास्वान् इषा द्विषः तरेत्) वह दाता अन्नदानसे द्वेष करनेवालोंको भी तैर कर दूर करता है। (रयिवतः जनान् च रयिं वंसत्) धनवान् लोगोंको भी वह धन प्रदान करता है ॥ ५ ॥

[७०९] हे (इन्द्रावरुणौ) इन्द्र और वरुणो ! (युवं) आप दोनों, हे (देवा) देवो ! (दाशु-अध्वराय) दान और अहिंसाशील पुरुषके लिये (वसुमन्तं पुरुक्षुं यं रयिं धत्थः) ऐश्वर्ययुक्त और अन्नयुक्त जैसा धन देते हैं, (सः अस्मे अपि स्यात्) वह धन हमें भी मिले, कि (यः वनुषां अशस्तीः प्र भनक्ति) जो निन्दकोंकी निन्दाओंको नष्ट करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! उत्तम और बलशाली स्तोत्रोंसे तेजस्वी इन्द्र और वरुणकी स्तुति करो। इन दोनों देवोंमें एक देव इन्द्र अपने वज्रको बलसे फेंककर मारता है, और दूसरा देव वरुण संकटोंमें सहायता करता है। एक देव इन्द्र अपने बलसे वज्रको मारता है, और दूसरा देव कष्टोंके समय लोगोंकी सहायता करता है ॥ ३ ॥

स्त्री-पुरुष अर्थात् मनुष्य चाहे कितना भी बढ जाएं, सभी ज्ञानी अपने उद्यम चाहे जितना बढ जावें, द्यु और पृथ्वी चाहे जितनी भी विस्तृत हो जाय, पर इन सबसे भी इन्द्र और वरुण बडे हैं। अर्थात् इन इन्द्र और वरुणदेवोंसे कोई भी श्रेष्ठ नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

वह सचमुच उत्तम दाता है, वह आत्मबलसे युक्त है और वह सत्य नियमोंका पालन करनेवाला है। मनुष्यको आत्मिक बल संपादन करना, सत्य नियमोंका पालन करना और उत्तम दान करना योग्य है। जो अपना धन दानमें देता है, वह श्रेष्ठ होता है। वह दाता अन्नका दान करके शत्रुओंको भी दूर करता है। दानसे शत्रु भी मित्र बनते हैं। धनवानोंको भी धन देता है ॥ ५ ॥

७१० उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः सूरिभ्य इन्द्रावरुणा रयिः ष्यात् ।
येषां शुष्मः पृतनासु साह्वान् प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः ॥ ७ ॥
७११ नू नं इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धो ऽपो न नावा दुरिता तरेम ॥ ८ ॥
७१२ प्र सम्राजे बृहते मन्म नु प्रियमर्च देवाय वरुणाय सप्रथः ।
अयं य उर्वी महिना महिव्रतः क्रत्वा विभात्यजरो न शोचिषा ॥ ९ ॥
७१३ इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रता ।
युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसरमुप याति पीतये ॥ १० ॥

अर्थ— [७१०] हे इन्द्र और वरुणो ! (नः सूरिभ्यः) हमारे विद्वानोंको (उत सुत्रात्रः देवगोपाः रयिः स्यात्) उत्तम रक्षण जिससे होता है और देव भी जिसका रक्षण करते हैं ऐसा धन मिले । (येषां शुष्मः) जिनका सामर्थ्य (पृतनासु साह्वान्) युद्धोंमें विजय मिलानेवाला है, जो (ततुरिः) त्वरासे (द्युम्ना) अपने तेजसे (सद्यः प्र तिरते) तत्काल लांघकर दुःखसे परे जाता है ॥ ७ ॥

[७११] हे (देवा इन्द्रावरुणा) देव इन्द्र और वरुणो ! (गृणाना) स्तुति किये गये तुम दोनों (सौश्रवसाय नः रयिं पृङ्क्तं) यशके लिये हमें धन दे दो । (इत्था महिनस्य शर्धः गृणन्तः) इस तरह आपके महान् सामर्थ्यकी स्तुति करते हुए हम लोग (अपः नावा न) जलप्रवाहोंको नौकासे जैसे पार करते हैं वैसे ही (दुरिता तरेम) हम पापोंको दूर करेंगे ॥ ८ ॥

[७१२] (बृहते संराजे) बडे सम्राट् (देशाय वरुणाय) वरुण देवकी (स-प्रथः प्रियं मन्म) यशस्वी प्रिय ऐसे मननीय स्तोत्रसे (नु प्र अर्च) स्तुति कर । (यः अयं महिव्रतः) जो यह बडा कर्तृत्ववान् (अजरः) जरारहित (महिना उर्वी) अपने महिमासे बडी पृथिवीको (क्रत्वा शोचिषा न विभाति) कर्तृत्वसे और अपने प्रकाशसे प्रकाशनेके समान प्रकाशित करता है ॥ ९ ॥

[७१३] हे (सुत-पौ इन्द्रावरुणा) सोम पीनेवाले इन्द्र और वरुणो ! हे (धृतव्रता) व्रतके पालनकर्ता ! (इमं) इस (सुतं) निचोडे (मद्यं सोमं पिबतं) आनंदकारक सोमरसको पीओ । (युवां रथः) तुम्हारा रथ (सोमपीतये) सोमपानके लिये और (देववीतये) देवोंकी प्राप्तिके लिये (अध्वरं प्रति) अहिंसक यज्ञस्थानके पास (पीतये) रसपान करनेके लिये (प्रति स्वसरं उपयाति) प्रत्येक यज्ञस्थानके पास जाता है ॥ १० ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और वरुण देवो ! तुम दोनों दान देनेवाले और अहिंसाशील पुरुषके लिए ऐश्वर्ययुक्त और अन्नयुक्त धन देते हो, वैसा धन हमें भी प्राप्त हो । हम ऐसा धन प्राप्त करें कि जो निन्दकोंको दूर करे । दानके द्वारा निन्दकोंको भी प्रसंशक किया जा सकता है ॥ ६ ॥

हमारे ज्ञानियोंको ऐसा धन मिले, जो उत्तम रक्षा करनेवाला हो, और जिसका रक्षण देव भी सतत करते हों । ऐसे धनोंसे प्राप्त सामर्थ्य युद्धोंमें निःसन्देह विजय लाता है । त्वरासे कार्य करनेवाला अपने तेजसे शत्रुओंको पार करता है और विजयी होता है ॥ ७ ॥

हे इन्द्र और वरुण देवो ! उत्तम कीर्ति प्राप्त करनेके लिये धन हमें दे दो । धन यश बढानेवाला हो । महान् बलकी हम स्तुति करें । पापको हम तैर कर परे जाँय । जिस तरह जलोंको नौकासे पार करते हैं वैसे हम पापोंसे पार हों ॥ ८ ॥

हे मनुष्यो ! बडे सम्राट् वरुण देवके लिये प्रिय स्तोत्र यशस्वितासे गाओ । यह बडे कार्य करनेवाला जरारहित अपने महान सामर्थ्यसे इस पृथ्वीको अपने तेजसे प्रकाशित करता है ॥ ९ ॥

७१४ इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परिषिक्तमस्मे आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयेथाम् ॥ ११ ॥

[६९]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्राविष्णू । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७१५ सं वां कर्मणा समिषा हिनोमी न्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्त मरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥ १ ॥

७१६ या विश्वासां जनितारा मतीना मिन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना ।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कैः ॥ २ ॥

अर्थ— [७१४] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुणो ! (मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य) अति मधुर बलवर्धक सोमके रसका प्राशन, हे (वृषणा) बलवान् वीरों ! (वृषेथां) बलके साथ करो । (इदं अन्धः) यह रस (वां परिषिक्तं) आपके लिये ही तैयार करके रखा है । (अस्मिन् बर्हिषि आसद्य) इस आसनपर बैठकर (अस्मे मादयेथां) इससे आनन्दित हो जाओ ॥ ११ ॥

[६९]

[७१५] हे (इन्द्रा-विष्णू) इन्द्र और विष्णु ! (अस्य अपसः पारे) इस कर्मके अन्तमें (वां कर्मणा सं हिनोमि) आप दोनोंको मैं कर्मसे प्रेरित करता हूं और (इषा सं) अन्नसे उत्साहित करता हूं । (यज्ञं जुषेथां) हमारे यज्ञमें तुम आओ और (द्रविणं च धत्तं) हमें धन दो तथा (अरिष्टैः पथिभिः पारयन्ता) कष्टरहित मार्गोंसे हमें दुःखोंसे पार करो ॥ १ ॥

[७१६] (या विश्वासां मतीनां जनितारा) जो सब सद्बुद्धियोंकी प्रेरणा देनेवाले हैं । हे (इन्द्रा-विष्णू) हे इन्द्र और विष्णु ! आपके लिये (सोमधाना कलशा) सोमसे भरे ये दो पात्र रखे हैं । (वां शस्यमानाः गिरः) आपकी स्तुतिके शब्द (प्र अवन्तु) हमारी रक्षा करें । और (अर्कैः गीयमानासः स्तोमासः प्र) गायन किये जानेवाले स्तोत्र हमारी रक्षा करें ॥ २ ॥

भावार्थ— हे सोमको पीनेवाले इन्द्र और वरुण देवो ! तुम दोनों निचोडे हुए इस आनंदकारक रसको पीओ । तुम्हारा रथ सोमका पान करनेके लिए और देवत्वकी प्राप्तिके लिए प्रत्येक यज्ञमें तुम दोनोंको ले जाए ॥ १० ॥

हे बलवान् वीरो ! तुम बलसे युक्त होकर इस मधुर और सोमवर्धक सोमरसको पीओ । यह रस आपहीके लिए तैय्यार करके रखा हुआ है । इस यज्ञमें आकर स्वयं भी आनंदित होओ और हमें भी आनन्द प्रदान करो ॥ ११ ॥

हे इन्द्र और विष्णु ! इस यज्ञ कर्मके अन्तमें तुम दोनोंको मैं अपने कर्मसे प्रेरित करता हूं और अन्नसे उत्साहित करता हूं । हे देवो ! हमारे यज्ञोंमें तुम आओ और हमें धन दो तथा कष्ट रहित मार्गोंसे हमें ले जाकर हमें दुःखोंसे पार कराओ ॥ १ ॥

सभी सद्बुद्धियोंको प्रेरणा देनेवाले इन्द्र और विष्णु ! तुम्हारे लिए सोमसे भरे ये दो पात्र रखे हैं । तुम्हारे लिए किए जानेवाले स्तुतिके शब्द हमारी रक्षा करें । ॥ २ ॥

७१७ इन्द्राविष्णू मदपती मदाना—मा सोमं यातं द्रविणो दधाना ।
सं वामञ्जन्त्वक्तुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः ॥ ३ ॥
७१८ आ वामश्वासो अभिमातिषाह इन्द्राविष्णू सधमादो वहन्तु ।
जुषेथां विश्वा हवना मतीना—मुप ब्रह्माणि शृणुतं गिरो मे ॥ ४ ॥
७१९ इन्द्राविष्णू तत् पनयाय्यं वां सोमस्य मद उरु चक्रमाथे ।
अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयो ऽप्रथतं जीवसे नो रजांसि ॥ ५ ॥
७२० इन्द्राविष्णू हविषा वावृधाना ऽग्राद्वाना नमसा रातहव्या ।
घृतासुती द्रविणं धत्तमस्मे समुद्रः स्थः कलशः सोमधानः ॥ ६ ॥
७२१ इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्य सोमस्य दस्रा जठरं पृणेथाम् ।
आ वामन्धांसि मदिराण्यग्मु—न्नुप ब्रह्माणि शृणुतं हवं मे ॥ ७ ॥

अर्थ— [७१७] हे (इन्द्राविष्णू) इन्द्र और विष्णु ! (मदानां मदपती) आप दोनों आनन्दके अधिपति हैं, (द्रविणः दधाना) धन लेकर (सोमं आ यातं) सोम यज्ञके समीप आओ । (मतीनां अक्तुभिः) स्तोत्रोंके साथ गाये तथा (उक्थैः शस्यमानासः स्तोमासः) गायनोंसे गाये हुए स्तोत्र (वां सं अञ्जन्तु) आपको सुभूषित करें ॥ ३ ॥

[७१८] हे (इन्द्राविष्णू) इन्द्र और विष्णु ! (अभिमाति-सहः) शत्रुका पराजय करनेवाले (सध-माद्यः) साथ रहनेसे आनन्दित होनेवाले (अश्वासः) घोडे (वां आ वहन्तु) आपको इधर ले आवें । (मतीनां विश्वा हवना जुषेथां) मतिमानोंके सब स्तोत्र सुनो, (ब्रह्माणि उपशृणुतं) ज्ञानके स्तोत्र सुनो और (मे गिरः) मेरी प्रार्थना सुनो ॥ ४ ॥

[७१९] हे (इन्द्राविष्णू) इन्द्र और विष्णु ! (वां तत् पनयाय्यं) आपका वह वर्णनीय पराक्रम है, (सोमस्य मदे उरु चक्रमाथे) सोमके आनन्दमें इस विस्तीर्ण विश्वमें आपने आक्रमण किया है, (अन्तरिक्षं वरीयः अकृणुतं) अन्तरिक्षको विशाल बनाया और (नः जीवसे रजांसि अप्रथतं) हमारे जीवनके लिये ये रजोलोक फैलाये हैं ॥ ५ ॥

[७२०] हे (इन्द्राविष्णू) इन्द्र और विष्णु ! आप (हविषा वावृधाना) हविष्यान्नसे हृष्टपुष्ट होते हो, (अग्र-अद्वाना) तुम उसका प्रथम स्वीकार करते हो । (नमसा रातहव्या) नमस्कारसे तुम संतुष्ट होते हो । तुम (घृतासुती) घीकी आहुतिको प्रेमसे स्वीकारते हो, (अस्मे द्रविणं धत्तं) हमारे लिये धन देदो । (समुद्रः स्थः) समुद्र जैसे तुम गंभीर हो और (कलशः सोम-धानः) यह कलश सोमसे भरा है वैसे तुम भी परिपूर्ण हो ॥ ६ ॥

[७२१] हे (इन्द्राविष्णू) इन्द्र और विष्णु ! (अस्य मध्वः सोमस्य पिबतं) इस मधुर सोमरसको पीओ । हे (दस्रा) दर्शनीय देवो ! (जठरं पृणेथां) पेट भरकर पीओ । (अन्धांसि वां आ अग्मन्) ये सोमरस आपके पास पहुंचें । (मे हवं ब्रह्माणि उप शृणुतं) मेरी प्रार्थना और मेरे स्तोत्र सुनो ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और विष्णु देवो ! तुम दोनों आनन्दके स्वामी हो, इसलिए धन लेकर इस यज्ञके पास आओ । यज्ञमें आने पर स्तोताओंके द्वारा गाए गए स्तोत्र तुम्हें सुभूषित करें ॥ ३ ॥

हे इन्द्र और विष्णू ! शत्रुका पराजय करनेवाले तथा साथ साथ रहकर आनन्दित होनेवाले घोडे तुम्हें इधर ले आवें । तुम यहां आकर बुद्धिमानोंके स्तोत्र सुनो, ज्ञानियोंके स्तोत्र सुनो और साथ ही मेरी प्रार्थना भी सुनो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और विष्णु देवो ! आपका यह पराक्रम वर्णनीय है, क्योंकि सोमके आनन्दमें इस विस्तीर्ण विश्व आपने व्याप्त किया था । आपने इस विस्तीर्ण अन्तरिक्षको फैलाया, और हमारे जीवनके लिए ये सभी लोक बनाये ॥ ५ ॥

हे देवो ! तुम हविष्यान्नसे हृष्टपुष्ट होते हो, तुम उस हविष्यान्नको सर्व प्रथम स्वीकार करते हो, तुम नमस्कारोंसे सन्तुष्ट होते हो, तुम घी की आहुतिको प्रेमसे स्वीकार करते हो । हमारे लिए धन दो ॥ ६ ॥

७२२ उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥ ८ ॥

[७०]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- द्यावापृथिवी । छन्दः- जगती ।)

७२३ घृतवती भुवनानामभिश्रियो-र्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥ १ ॥
७२४ असश्चन्ती भूरिधारे पयस्वती घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते ।
राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम् ॥ २ ॥

अर्थ— [७२२] (उभा जिग्यथुः) तुम दोनों विजय करते हो । (न परा जयेथे) कभी पराजित होते नहीं। (एनोः कतरः च) इनमेंसे एक भी (न पराजिग्ये) पराजित नहीं होता है । हे इन्द्र और विष्णु ! (यत् अपस्पृधेथां) जब तुम स्पर्धासे कार्य करते हो तब (एतत् सहस्रं) इस सहस्र भुवनोंको तुम (त्रेधा ऐरयेथां) तीन प्रकारसे हिलाते हो ॥ ८ ॥

[७०]

[७२३] (घृतवती) जलसे युक्त (भुवनानां अभिश्रिया) सब भुवनोंको आश्रय देनेवाली, (उर्वी) विस्तीर्ण (पृथ्वी) फैली हुई (मधुदुघे सुपेशसा) मधुर अन्नरस देनेवाली, सुन्दर (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी (अजरे) जरारहित (भूरि-रेतसा) बहुत शक्तिसे युक्त है (वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते) ये वरुणके नियमसे धारण किये गये हैं ॥ १ ॥

[७२४] (असश्चन्ती) परस्पर पृथक् रहनेवाली (भूरिधारे पयस्वती) बहुत जलप्रवाहोंसे युक्त, दूधसे भरपूर (सुकृते शुचिव्रते) सत्कर्मकर्ता और पवित्र व्रतवालेके लिये (घृतं दुहाते) घी को देती है, (अस्य भुवनस्य राजन्ती) इस भुवनको प्रकाशित करती है ऐसी (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मनुर्हितं यद् रेतः) मनुष्यके लिये जो हितकर है वह जल (अस्मे सिञ्चतं) हमारे लिये प्रवाहित करो ॥ २ ॥

भावार्थ— हे देवो ! इस मधुर सोमरसको पीओ, हे दर्शनीय देवो ! तुम पेट भरकर इस सोमरसको पीओ और मेरी प्रार्थना सुनो ॥ ७ ॥

इन्द्र और विष्णु इन दोनों देवोंमें कोई भी हारता नहीं है, दोनों ही विजय प्राप्त करते हैं। इनमें किसीको भी कोई शत्रु नहीं हरा सकता । पर जब तुम आपसमें ही स्पर्धा करने लगते हो, तब सारा लोक डरके मारे कांपने लगता है ॥ ८ ॥

द्युलोक और पृथ्वीलोक जलसे युक्त, सब भुवनोंको आश्रय देनेवाले, बहुत विस्तीर्ण, मधुर अन्नरस देनेवाले, अविनाशी और बहुत शक्तिसे युक्त हैं । ये दोनों लोक वरुणके नियमोंमें चलते हैं ॥ १ ॥

एक दूसरेसे बहुत दूर रहनेवाली, अनेक जलप्रवाहोंसे युक्त ये द्युलोक और पृथिवीलोक उत्तम और पवित्र कर्म करनेवालों को तेज प्रदान करते हैं । ये दोनों इन भुवनोंको प्रकाशित करते हैं । हे द्यावापृथिवी ! मनुष्योंके लिए जो हितकर है, वह जल हमारे लिए प्रवाहित करो ॥ २ ॥

७२५ यो वामृजवे क्रमणाय रोदसी मर्तो ददाश धिषणे स साधति ।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि युवोः सिक्ता विषुरूपाणि सव्रता ॥ ३ ॥
७२६ घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा ।
उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते ते इद्विप्रा ईळते सुम्नमिष्टये ॥ ४ ॥
७२७ मधु नो द्यावापृथिवी मिमिक्षतां मधुश्चुता मधुदुघे मधुव्रते ।
दधाने यज्ञं द्रविणं च देवता महि श्रवो वाजमस्मे सुवीर्यम् ॥ ५ ॥
७२८ ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां पिता माता विश्वविदा सुदंससा ।
संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा सनिं वाजं रयिमस्मे समिन्वताम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [७२५] हे (रोदसी धिषणे) द्यावापृथिवी, हे धारण करनेवालो ! (यः मर्तः) जो मनुष्य (ऋजवे क्रमणाय) सरल जीवन क्रमके लिये (वां ददाश) आपको अर्पण करता है, (सः साधति) वह यश कमाता है । (धर्मणः परि) धर्मके ऊपर रहनेवाला ही (प्रजाभिः प्र जायते) पुत्रपौत्रोंसे जन्मता है क्योंकि (युवोः सिक्ता) आपसे निकले (सुव्रता विषुरूपाणि) उत्तम नियम अनेक हैं परन्तु वे सब उत्तम प्रकारके हैं ॥ ३ ॥

[७२६] (द्यावापृथिवी घृतेन अभिवृते) द्यु और पृथिवी जलसे युक्त हैं । वे (घृतश्रिया) जलकी शोभासे युक्त (घृतपृचा) जलसे स्नेहसंबंध रखनेवाले और (घृतवृधा) जलका संवर्धन करनेवाले हैं । (उर्वी पृथिवी) तुम विशाल और अमर्याद हो । (होतृवूर्ये) होताके वरण करनेके समय (पुरः हिते) आगे आप रहे हो । (सुम्नं इष्टये) सुखप्राप्तिके लिये (विप्राः इत् ते ईळते) ज्ञानी लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

[७२७] हे द्यु और पृथिवी ! (नः मधु मिमिक्षतां) हमें तुम दोनों मधुररससे मिलाओ । तुम दोनों (मधुश्चुता) मधुर रसका स्राव करनेवाली, (मधु-दुघे) मधुर रसका वर्षाव करनेवाली हैं और (मधु-व्रते) मधुर रस देना तुम्हारा स्वभावही है । (यज्ञं द्रविणं देवता च दधाने) यज्ञ, धन और देवत्वको धारण करनेवाले तुम (अस्मे) हमें (सुवीर्यं वाजं महि श्रवः) उत्तम वीर्य, बल और महान् यश दे दो ॥ ५ ॥

[७२८] (नः द्यौः च पृथिवी च) हमारा द्यु और पृथिवी (ऊर्जं पिन्वतां) बल बढावें, वे हमारे (पिता माता) मातापिता हैं, तथा वे (विश्वविदा सुदंससा) सब जाननेवाले और उत्तम कार्य करनेवाले हैं । (सं रराणे रोदसी) उत्तम तेजस्वी द्यु और पृथिवी ! तुम (विश्व-शं-भुवा) सबका कल्याण करनेवाली हो, (अस्मे) हमारे लिये (सनिं वाजं रयिं) यश, बल और धन (सं इन्वतां) मिले ऐसा करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— सरल जीवनके लिये जो दान करता है वह सफल होता है । जो धर्मपर रहता है वह संतानोंसे युक्त होता है । हे द्यावापृथिवी ! तुम्हारे नियम अनेक हैं और विविध प्रकारके हैं ॥ ३ ॥

द्यु और पृथिवी ये दोनों लोक जलसे युक्त हैं । ये दोनोंही लोक जलका संवर्धन करनेवाले हैं । ये दोनोंही विशाल और अमर्यादित हैं । सुखप्राप्तिके लिए ज्ञानी जन इन लोकोंकी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

हे द्यावापृथिवी ! हमें माधुर्य प्राप्त कराओ । मधुर व्रत धारण करनेवाले, मधुरताका वर्षाव करनेवाले और मधुरताका स्राव करनेवाले हो । मनुष्यका व्रत मधुरताकी वृद्धि करे । हमें उत्तम वीर बल और बडा यश मिले । मनुष्य अपना आचरण मीठा रखे और बल तथा वीर्य बढाकर यशस्वी हो ॥ ५ ॥

ये द्यावापृथिवी हमें पुत्रपौत्रयुक्त यश, अन्न, बल और धन दें । द्यावापृथिवी तेजस्वी हैं और सबका कल्याण करनेवाली हैं । ये सबके माता-पिता सब जाननेवाले और उत्तम कार्य करनेवाले हैं । माता-पिता उत्तम ज्ञानी और सत्कर्म करनेवाले हों ॥ ६ ॥

[७१]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- सविता । छन्दः- जगती, ४-३ त्रिष्टुप् ।)

७२९ उदु ष्य देवः सविता हिरण्ययां बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः ।
घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि ॥ १ ॥
७३० देवस्य वयं सवितुः सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने ।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः ॥ २ ॥
७३१ अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥ ३ ॥
७३२ उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात् ।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वामम् ॥ ४ ॥

---

[७१]

अर्थ— [७२९] (सविता सुक्रतुः स्यः देवः) जगत्का प्रसव करनेवाले, उत्तम कर्म करनेवाले उस सूर्य देवने (उ) निश्चयसे (सवनाय) दान देनेके लिये (हिरण्यया बाहू) अपने सुवर्णमय बाहू (उत् अयंस्त) ऊपर उठाये हैं । (सुदक्षः युवा) उत्तम दक्ष, तरुण तथा (मखः) पवित्र यज्ञस्वरूप यह देव (रजसः विधर्मणि) रजोलोकके विविध रूपोंमें (घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते) जलसे युक्त अपने दोनों हाथ ऊपर उठाता है ॥ १ ॥

[७३०] (वयं) हम (सवितुः देवस्य) जगदुत्पादक सविता देवकी (श्रेष्ठे सवीमनि) श्रेष्ठ प्रेरणामें (वसुनः च दावने स्याम) और धनके दानके समय हम उपस्थित हों । (यः) जो तू (विश्वस्य द्विपदः चतुष्पदः) सब द्विपाद और चतुष्पादके (भूमनः निवेशने प्रसवे च) विश्वके विश्राम और व्यवसायमें कारण (असि) तू है ॥ २ ॥

[७३१] (अद्य अदब्धेभिः शिवेभिः पायुभिः) और न दबनेवाले कल्याणकारी रक्षणोंसे, हे (सवितः) जगदुत्पादक देव ! (नः गयं परि पाहि) हमारे घरकी रक्षा कर । (हिरण्य जिह्वः) सुवर्ण जिह्वावाले तू (नव्यसे सुविताय) नवीन सुखके लिये (रक्ष) हमारी रक्षा कर । (अघशंसः नः माकिः ईशत) पापी हमपर कभी शासन न करे ॥ ३ ॥

[७३२] (उ) निश्चयसे (यः दमूना सविता देवः) वह मन शान्त रखनेवाला, जगत् उत्पन्न करनेवाला सूर्य देव (दमूनाः हिरण्यपाणिः) मनको अपने आधीन रखनेवाला, सुवर्णके हाथवाला (प्रतिदोषं अस्थात्) प्रत्येक रात्रीके समाप्तिपर उदयको प्राप्त होता है । (अयः हनुः) लोहे जैसी हनुवाला (यजतः मन्द्रजिह्वः) पूज्य और आनंदकारक शब्द बोलनेवाला वह देव (दाशुषे भूरि वामं आसुवति) दाताको उत्तम धन देता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— उत्तम कर्म करनेवाला, सबका प्रसव करनेवाला देव अपने सुवर्णके समान बाहू दान देनेके लिये ऊपर उठाता है । वह उत्तम दक्ष, तरुण और यज्ञरूप है ॥ १ ॥

वह प्रभु सब द्विपाद, चतुष्पादोंके निवास, विश्राम और उद्योगके लिये कारण है । जगत् उत्पन्न करनेवाले देवकी श्रेष्ठ प्रेरणामें तथा धन दानके समय हम उपस्थित हों ॥ २ ॥

हे सविता ! न दबनेवाले कल्याणकारी रक्षणोंसे हमारे घरकी रक्षा कर । रक्षक न दबनेवाले हों, कल्याणकारी हों । वे रक्षक हमारे घरकी रक्षा करें । हमारे घर सुरक्षित हों । उत्तम सुख हो इसलिये संरक्षण करें । पापी हमपर स्वामित्व कभी न करें । पापीके आधीन हम कभी न हों ॥ ३ ॥

७३३ उदु॑ अ॒याँ उ॑प॒वक्ते॑व बा॒हू हि॑र॒ण्यया॑ सवि॒ता सु॒प्रती॑का ।
दि॒वो रोहां॑स्यरुहत् पृथि॒व्या अरी॑रमत् प॒तय॒त् कच्चि॒दभ्व॑म् ॥ ५ ॥

७३४ वा॒मम॒द्य स॑वितर्वा॒मम॒ श्वो दि॒वेदि॑वे वा॒मम॒स्मभ्यं॑ सावीः ।
वा॒मस्य॒ हि क्षय॑स्य देव॒ भूरे॑र॒या धि॒या वा॑म॒भाजः॑ स्याम ॥ ६ ॥

[७२]

(ऋषिः- ५ बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रासोमौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७३५ इन्द्रा॑सोमा॒ महि॒ तद् वां॑ महि॒त्वं यु॒वं म॒हानि॑ प्रथ॒मानि॑ चक्रथुः ।
यु॒वं सूर्यं॑ विवि॒दथु॑र्यु॒वं स्व१॒॑र्विश्वा॒ तमां॑स्यहतं नि॒दश्च॑ ॥ १ ॥

अर्थ— [७३३] (उपवक्ता इव बाहू उद् अयान् उ) वक्ता जैसे अपने बाहू ऊपर करता है वैसा यह (सुप्रतीका सविता हिरण्यया) उत्तम दर्शनीय सुवर्णके समान भुजाएं फैलाकर सविता उदयको प्राप्त हो रहा है। (दिवः रोहांसि अरुहत्) द्युलोकके उच्च भागोंपर चढा है। (पृथिव्याः कच्चिद् अभ्वं पतयत्) पृथ्वीपर किसी तरहके उत्पातको बंद करता है (अरीरमत्) सबको रममाण करता है ॥ ५ ॥

[७३४] हे (देव) दिव्य (सवितः) सूर्य ! (अद्य वामं उ) आज हमें उत्तम धन प्राप्त हो (श्वः वामं उ) कल भी हमें धन प्राप्त हो। (दिवे दिवे अस्मभ्यं वामं सावीः) प्रतिदिन हमें उत्तम धन दे। (भूरेः वामस्य हि क्षयस्य) तू बहुत धनका और आश्रयस्थानका स्वामी है। (अया धिया वामभाजः स्याम) इस भक्तिसे हम उत्तम धनके भागी बनें ॥ ६ ॥

(७२)

[७३५] हे (इन्द्रासोमा) इन्द्र और सोम ! (वां तत् महित्वं महि) आपकी यह महिमा बडी है। (युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः) तुम दोनोंने बडे श्रेष्ठ कर्म किये थे। (युवं सूर्यं विविदथुः) तुमने सूर्यको प्राप्त किया, (युवं स्वः विश्वा तमांसि अहतं) तुम दोनोंने प्रकाशसे सब अन्धकारका नाश किया तथा (निदः च) निंदकोंको भी दूर किया ॥ १ ॥

भावार्थ— यह सविता देव मनको शान्त रखनेवाला, जगत्को उत्पन्न करनेवाला, मनको अपने अधीन करनेवाला, सुनहरे हाथों अर्थात् किरणोंवाला तथा हर रात्रीकी समाप्ति पर उदयको प्राप्त होता है। पूज्य और आनन्ददायक शब्दोंको बोलनेवाला यह सविता देव दाताको उत्तम धन देता है ॥ ४ ॥

जिस तरह कोई भाषण करनेवाला मनुष्य अपने बाहुओंको उठा उठाकर भाषण देता है, उसी तरह यह सविता देव अपनी सुनहरी किरणोंको ऊपर करके उदय होता है, उदय होनेके बाद वह पृथिवीपरके अन्धकारको दूर करता है और सबको आनंदित करता है ॥ ५ ॥

हे सविता देव ! आज हमें उत्तम धन प्राप्त हो और कल भी हमें उत्तम धन प्राप्त हों, इस प्रकार प्रतिदिन हमें उत्तम धन दो। तुम बहुत प्रकारके धनके स्वामी हो, अतः तुम्हारी भक्ति करके हम उत्तम धनके भागी हों ॥ ६ ॥

हे इन्द्र और सोम ! आपकी महिमा बहुत बडी है, क्योंकि तुम दोनोंने बहुत श्रेष्ठ कर्म किए हैं, तुमने सूर्यको प्रेरित करके उसके प्रकाशसे अन्धकारको दूर किया और निन्दकोंको भी दूर किया ॥ १ ॥

७३६ इन्द्रासोमा वासयथ उषास—मुत् सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह ।
उप द्यां स्कम्भथुः स्कम्भनेना—प्रथतं पृथिवीं मातरं वि ॥ २ ॥
७३७ इन्द्रासोमावहिमपः परिष्ठां हथो वृत्रमनु वां द्यौरमन्यत ।
प्रार्णांस्यैरयतं नदीना—मा समुद्राणि पप्रथुः पुरूणि ॥ ३ ॥
७३८ इन्द्रासोमा पक्वमामास्वन्त—र्नि गवामिद् दधथुर्वक्षणासु ।
जगृभथुरनपिनद्धमासु रुशच्चित्रासु जगतीष्वन्तः ॥ ४ ॥
७३९ इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्र—मपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे ।
युवं शुष्मं नर्यं चर्षणिभ्यः सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ॥ ५ ॥

अर्थ— [७३६] हे (इन्द्रासोमा) इन्द्र और सोम ! (उषासं वासयथः) उषाको तुमने बसाया, (ज्योतिषा सह) प्रकाशके साथ (सूर्यं उत् नयथ.) सूर्यको ऊपर चढाया । (द्यां स्कंभनेन उप स्कंभथुः) द्युलोकको अपने आधारसे ऊपर स्तब्ध किया । और (पृथिवीं मातरं वि अप्रथतं) मातृभूमिको विस्तृत किया ॥ २ ॥

[७३७] हे (इन्द्रासोमा) इन्द्र और सोम ! (अपः परिष्ठां अहिं हथः) जलस्थानमें–मेघमंडलमें रहनेवाले अहि–कम न होनेवाले मेघको मारा, तथा (वृत्रं) वृत्रको मारा, यह (वां) आपका कर्म (द्यौः अनु अमन्यत्) द्युलोकके अनुकूल है ऐसा माना था । (नदीनां अर्णांसि प्र ऐरयतं) नदियोंके जलोंको प्रवाहित किया और (पुरूणि समुद्राणि आ पप्रथुः) बहुत समुद्र जलोंको भर दिया ॥ ३ ॥

[७३८] हे (इन्द्रासोमा) इन्द्र और सोम ! (आमासु अन्तः) छोटी आयुवाली (गवां वक्षणासु नि दधथुः इत्) गौवोंके दुग्धाशयमें (पक्वं) परिपक्व दूध तुम रखते हो । इसी तरह (आसु चित्रासु जगतीषु) इन चित्रविचित्र गमनशील गौओं (अन्तः) के अन्दर (अनपिनद्धं रुशत्) बंद न रहा ऐसा तेजस्वी दूध (जगृभथुः) धारण करते हो ॥ ४ ॥

[७३९] हे (इन्द्रासोमा) इन्द्र और सोम ! हे (अंग) प्रिय ! (युवं) तुम दोनों (तरुत्रं) शीघ्र रक्षण करनेवाला (अपत्यासाचं) पुत्रोंके साथ रहनेवाला (श्रुत्यं) यशस्वी धन (रराथे) देते हैं । आप (उग्रा) उग्रवीर हैं, (युवं) आप (चर्षणिभ्यः) लोगोंके लिये (पृतनासहं) शत्रुसैन्यका पराभव करनेवाला (नर्यं शुष्मं) मानवोंका हित करनेवाला बल (सं विव्यथुः) देते हो ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और सोम ! उषाको तुमने निवास कराया, प्रकाशमान् सूर्यको ऊपर चढाया, द्युलोकको बिना किसी आधारके ऊपर ही ऊपर स्तब्ध किया और पृथ्वीको विस्तृत किया ॥ २ ॥

हे इन्द्र और सोम ! तुमने अन्तरिक्षमें रहनेवाले मेघको मारा, वह तुम्हारा कर्म द्युलोकके समान ही बडा था । मेघोंको फोडकर तुमने नदियोंके जलोंको प्रवाहित किया और उस जलसे अनेक समुद्रोंको भरा ॥ ३ ॥

हे इन्द्र और सोम ! तुमने गायोंमें पके हुए अन्नके समान शक्ति देनेवाले दूधको रखा । यह दूध गायोंके अन्दर सतत बहता रहता है, यह दूधकी धारा कभी बंद नहीं होती ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और सोम ! तुम शत्रुसे शीघ्र संरक्षण करनेवाला, बालबच्चोंके साथ रहनेवाला, कीर्ति फैलानेवाला धन देते हो । तुम दोनों लोगोंको शत्रुसैन्यका पराभव करनेवाला, मानवोंका हित करनेवाला बल देते हो । मनुष्योंमें ऐसा सामर्थ्य चाहिये ॥ ५ ॥

[७३]

(ऋषिः- ३ बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- बृहस्पतिः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७४० यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥ १ ॥

७४१ जनाय चिद् य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान् पृत्सु साहन् ॥ २ ॥

७४२ बृहस्पतिः समजयद् वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन् त्स्वरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ३ ॥

---

[७३]

अर्थ— [७४०] (यः अद्रिभित्) जो शत्रुके किलोंको तोडता है (प्रथमजाः ऋतावा) जो सबसे प्रथम प्रकट हुआ, जो सत्यधर्म पालन करता है, (आंगिरसः हविष्मान्) जो आंगिरसोंमें-तेजस्वी वीरोंमें-हविष्यान्नसे युक्त है ऐसा बृहस्पति है। वह (द्वि-बर्ह-ज्मा) दो उत्तम गुणोंसे भूमिका रक्षण करनेवाला (प्राघर्मसत्) जो अपने तेजसे तेजस्वी होता है। (वृषभः) बलवान् (नः पिता) वह हमारा पिता (रोदसी) द्युलोक और भूलोकमें (आ रोरवीति) गर्जना करता है ॥ १ ॥

[७४१] (यः) जो (ईवते जनाय चित्) प्रगतिशील लोगोंके हितके लिये (लोकं उ) स्थान देता है, उस (बृहस्पतिः देवहूतौ चकार) बृहस्पतिने देवयज्ञमें ऐसा ही किया था। (वृत्राणि घ्नन्) शत्रुओंको मारा, (पुरः वि दर्दरीति) शत्रुके नगरोंको तोड दिया, (शत्रून् जयन्) शत्रुपर जय प्राप्त किया और (पृत्सु अमित्रान् साहन्) युद्धोंमें शत्रुओंको पराजित किया है ॥ २ ॥

[७४२] (बृहस्पतिः वसूनि सं अजयत्) बृहस्पति धनोंको जीतता है। (एषः देवः) यह देव (गोमतः महः व्रजान्) गौओंसे युक्त गोशालाओंको जीतता है (स्वः अपः सिषासन्) स्वर्गसे जलोंको लाता है। (अ-प्रतिहतः बृहस्पतिः) अपराजित बृहस्पति (अर्कैः अमित्रं हन्ति) अपने तेजोंसे शत्रुका नाश करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— वह बृहस्पति शत्रुओंके पहाडी अर्थात् पहाडपर बने हुए या पहाडके समान सुदृढ किलोंको तोडता है। वह सत्यका पालक तथा सदा सत्यशील होनेके कारण सदा प्रथम स्थानपर रहता है। वह ज्ञान और कर्मरूप उत्तम कोटिके गुणोंसे मातृभूमिकी सेवा करता है। यह हम सबका पिता बृहस्पति द्यावापृथिवीमें आवाज करता है ॥ १ ॥

बृहस्पति देव प्रगति करनेवाले लोगोंके हितके लिए उत्तम स्थान देता है। उसने स्वयं भी शत्रुओंको मारकर शत्रुओंपर विजय प्राप्त की ॥ २ ॥

बृहस्पति धनोंको बलसे प्राप्त करता है। शत्रुके पास जो धन होंगे वे धन शत्रुको पराभूत करके प्राप्त करता है। यह देव गौओंसे युक्त बाडोंको जीतता है। शत्रुको पराभूत करके उनके पासकी गौवें प्राप्त करता है। उच्च स्थानसे जलोंको लाता है। अपने तेजोंसे शत्रुको मारता है। ये बृहस्पतिके गुण अपने वीरोंको अपनाने चाहिये ॥ ३ ॥

[७४]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- सोमारुद्रौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७४३ सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यं१ प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥

७४४ सोमारुद्रा वि वृहतं विषूची- ममीवा या नो गयमाविवेश ।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचै- रस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥ २ ॥

७४५ सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥ ३ ॥

---

[७४]

अर्थ— [७४३] हे (सोमा-रुद्रा) सोम और रुद्र ! तुम दोनों (असुर्यं धारयेथां) सामर्थ्य धारण करते हैं। (इष्टयः वां अरं प्र अश्नुवन्तु) हमारे यज्ञ आपके पास निःसंदेह पहुंचते हैं । (दमे दमे सप्त रत्ना दधाना) घर घरमें सात रत्न तुम रखते हो । (नः शं भूतं) हमारे लिये कल्याण करनेवाले हो जाओ तथा (द्विपदे चतुष्पदे शं) हमारे द्विपाद और चतुष्पादोंके लिये कल्याण करनेवाले हो जाओ ॥ १ ॥

[७४४] हे (सोमा रुद्रा) सोम और रुद्र ! (विषूचीं विवृहतं) विविध प्रकारके उन अनर्थोंको दूर करो, (अमीवा या नः गयं आ विवेश) जो रोग हमारे घरमें प्रविष्ट हुए हैं (निर्ऋतिं पराचैः आरे बाधेतां) दुरवस्थाको दूर हटा दो । (अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु) हमें कल्याणकारी मंगल प्राप्त हों ॥ २ ॥

[७४५] हे (सोमा रुद्रा) सोम और रुद्रो ! (युवं) तुम दोनों (अस्मे तनूषु) हमारे शरीरोंमें (एतानि विश्वा भेषजानि) ये सब औषध (धत्तं) धारण करो । (यत् नः तनूषु बद्धं अस्ति) जो हमारे शरीरोंमें बंधा है, (एनः कृतं) पाप किया है वह (अस्मत् अवस्यतं) हमसे खुला करो और (मुञ्चतं) मुक्त करो ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे सोम और रुद्र ! तुम दोनों सामर्थ्य धारण करते हो । हमारे यज्ञ पूर्णतासे तुम्हारे पास पहुंचे । क्योंकि वे हम तुम्हारे संतोषके लिये कर रहे हैं । प्रत्येक घरमें सात रत्न धारण करते हो । हीरा, लाल, पाचू आदि सात रत्न घर घरमें रहें । ऐसा धन सबको मिले । दो आंख, दो कान, दो नाक, एक मुख ये सात रत्न हैं । प्रत्येक मानवके शरीररूपी घरमें ये रखे हैं । हमारा और द्विपादों तथा चतुष्पादोंका कल्याण हो ॥ १ ॥

हे सोम और रुद्र ! जो हमारे घरमें प्रविष्ट हुए हैं वे रोग सबके सब सब प्रकारसे दूर हों । पेटमें अपचित अन्नसे उत्पन्न होनेवाले रोग, सब प्रकारके रोग दूर हों । चारों प्रकारोंसे, शौचशुद्धि, मलशुद्धि, कोष्ठशुद्धि आदि उपायोंसे रोग दूर हों । दुरवस्थाको दूर करो । दुरवस्था हमारे पास न रहे । हमें सब कल्याण मंगल प्राप्त हो । हमारा उत्तम यश बढे ॥ २ ॥

हे सोम और रुद्र ! तुम दोनों ये हमारे शरीरमें सब औषध रखो । औषधोंकी योजना करो जिससे हम रोगमुक्त हो जायें । हमारे शरीरोंमें जो दृढमूल दोष हुआ हो, जो हमने पाप किया हो, जिससे दोष हमारे शरीरमें रहा हो, हमसे वह दोष दूर करो और उस दोषसे हमें मुक्त करो । जिससे हमें कई रोग न हो ऐसा करो ॥ ३ ॥

×

७४६ तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृळतं नः ।
प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद् गोपायतं नः सुमनस्यमाना ॥ ४ ॥

[७५]

(ऋषिः- पायुर्भारद्वाजः । देवता- (संग्रामाशिषः) १ वर्म, २ धनुः, ३ ज्या, ४ आर्त्नी, ५ इषुधिः, ६ (पूर्वार्धः) सारथिः, ६ (उत्तरार्धः) रश्मयः, ७ अश्वाः, ८ रथः, ९ रथगोपाः, १० ब्राह्मण-पितृ-सोम-द्यावा-पृथिवी-पूषाणः; ११-१२, १५-१६ इषवः, १३ प्रतोदः, १४ हस्तघ्नः, १७ युद्धभूमि-कवच-ब्रह्मणस्पत्यादयः, १८ वर्म-सोम-वरुणाः, १९ देवब्रह्माणि । छन्दः- त्रिष्टुप्; ६, १० जगती; १२, १३ १५, १६, १९ अनुष्टुप् , १७ पङ्क्तिः ।

७४७ जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद् वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥ १ ॥

७४८ धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ २ ॥

अर्थ— [७४६] हे (तिग्मायुधौ तिग्महेती) तीक्ष्ण आयुधवाले, तीक्ष्ण शस्त्रवाले (सुशेवौ सोमारुद्रौ) उत्तम सेवा करने योग्य सोम और रुद्रो ! (इह नः सु मृळतं) यहां हमें उत्तम रीतिसे सुखी करो । (नः वरुणस्य पाशात् प्र मुञ्चतं) हमें वरुणके पाशसे मुक्त करो । (सुमनस्यमाना) उत्तम विचार करनेवालो (नः गोपायतं) हमारा संरक्षण करो ॥ ४ ॥

[७५]

[७४७] १ वर्म देवता— (यत् वर्मी) जब कवच धारण करके वीर (समदां उपस्थे याति) संग्रामोंमें जाता है, वह (जीमूतस्य इव प्रतीकं भवति) मेघका प्रतीकसा होता है । (त्वं अनाविद्धया तन्वा जय) घायल न होते हुए शरीरसे जय प्राप्त कर । (वर्मणः सः महिमा) कवचका वह महिमा (त्वा पिपर्तु) तेरा बचाव करे ॥ १ ॥

[७४८] २ धनुः देवता — (धन्वना गाः) धनुसे गौवोंको प्राप्त करेंगे, और (धन्वना आजिं जयेम) धनुसे संग्राममें जय प्राप्त करेंगे । (धन्वना तीव्राः समदः जयेम) धनुष्यसे तीव्र युद्धमें विजयी होंगे । (धनुः शत्रोः अपकामं कृणोति) धनुष्य शत्रुके इष्ट फलका नाश करता है, शत्रुका पराभव करता है । (धन्वना सर्वाः प्रदिशः जयेम) धनुसे सब दिशाओंमें विजय करेंगे ॥ २ ॥

भावार्थ— हे सोम और रुद्र ! यहां हमें सुखी करो । वरुणके पाशसे-रोगसे हमें मुक्त करो । हमारे पास रोग न आवे ऐसा करो। उत्तम मनवालो हमारी सुरक्षा करो । उत्तम मनसे रोगमुक्त होकर सुरक्षा होती है । मनकी भावना शुद्ध रही तो रोग दूर होते हैं और अशुद्ध मन हुआ तो रोग उत्पन्न होते हैं। यह नीरोगिता प्राप्तिका सिद्धान्त सदा मनमें सुस्थिर रखने योग्य है ॥ ४ ॥

कवच पहन कर जो वीर संग्राममें जाता है वह घायल न होते हुए विजय प्राप्त करता है । यह कवचकी महिमा है । इस लिये वीर कवच धारण करके ही संग्राममें जाये ॥ १ ॥

हमारे वीरोंके पास उत्तम और दृढ धनुष हों, उनसे हमारे वीर गायोंको प्राप्त करें, तीव्र अर्थात् दारुण युद्धमें भी हमारे वीर विजयी हों तथा शत्रुओंके इष्ट फलका नाश हो, वह शत्रुका पराभव करें । इस प्रकार इन दृढ धनुषोंको लेकर हम सब दिशाओंमें विजय प्राप्त करें ॥ २ ॥

७४९ वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयं समने पारयन्ती ॥ ३ ॥
७५० ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून् विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥ ४ ॥
७५१ बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥ ५ ॥
७५२ रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥ ६ ॥

अर्थ— [७४९] ३ ज्या देवता— (प्रियं सखायं कर्णं परिषस्वजाना) प्रिय मित्र कर्णको आलिंगन देनेके समान (वक्ष्यन्ती इव इत्) कुछ कहनेकी इच्छा करती हुई धनुष्यकी डोरी (आगनीगन्ति) आती है। (धन्वन् अधि वितता) धनुष्यपर चढाई हुई (ज्या) धनुष्यकी डोरी (योषा इव शिंक्ते) स्त्रीके समान मधुर शब्द करती है। (इयं समने पारयन्ती) यह डोरी युद्धमें संकटसे पार करती है ॥ ३ ॥

[७५०] ४ आर्त्नी देवता— (ते) वे दो धनुष्यके नोक (समना इव योषा) एक मनसे रहनेवाली दो स्त्रियोंके समान (आचरन्ती) आचरण करनेवाली (माता इव पुत्रं उपस्थे बिभृतां) माता जैसी गोदमें पुत्रको लेती है वैसी ये बाणको अपनी गोदमें धरती हैं। (सं विदाने आर्त्नी) वे मिलकर रहनेवाले दोनों नोकें (शत्रून् अप विध्यतां) शत्रुका वेध करती हैं और (इमे अमित्रान् विस्फुरन्ती) ये शत्रुओंको नाश करती हैं ॥ ४ ॥

[७५१] ५ इषुधिः देवता— (बह्वीनां पिता) बहुतोंका यह तरकश पिता है, (अस्य पुत्रः बहु) इसके पुत्र भी बहुत हैं, (समना अवगत्या) समरमें आकर (चिश्चा कृणोति) चिचां करता है। (पृष्ठे निबद्धः इषुधिः) पीठपर बंधा हुआ यह बाणोंका तरकश (प्रसूतः) अपनेसे निकले बाणोंसे (सर्वाः संकाः पृतनाः) सब संगठित शत्रुसेनाको (जयति) जीतता है ॥ ५ ॥

[७५२] ६ सारथिः— (पूर्वार्धः) रश्मयः (उत्तरार्धः) — (सु-सारथिः) उत्तम सारथि (रथे तिष्ठन्) रथमें बैठा हुआ (यत्र यत्र कामयते) जहां जानेकी इच्छा करता है, (वाजिनः पुरः नयति) घोडोंको आगे चलाता है। (अभीशूनां महिमानं पनायत) लगामोंका महिमा देखो (मनः पश्चात्) मनके पीछे पीछे (रश्मयः अनुयच्छन्ति) रश्मियां दौडती हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— धनुष्यकी डोरी उसका प्रियमित्र वीरका कान है, उसको आलिंगन देकर कुछ कहनेकी इच्छासे कानके पास आती है। धनुष्यपर चढाई डोरी स्त्रीके समान वीरके कानमें कुछ कहती है और यह डोरी युद्धके संकटसे वीरका बचाव करती है ॥ ३ ॥

धनुष्यकी दोनों नोकें एक मनसे एकत्र रहनेवाली दो स्त्रियोंके समान शत्रुका पराभव करती हैं ॥ ४ ॥

तरकश बहुतसे बाणोंको रखनेका स्थान होनेसे यह बाणोंका पिता कहा गया है और बाणोंको इसका पुत्र कहा गया है। युद्धमें तरकशसे बाणोंको निकालने और रखनेसे इसमें बडी आवाज होती है। वीरोंकी पीठपर बंधा हुआ बाणोंका यह तरकश अपनेमेंसे निकले हुए बाणोंसे संगठित हुए शत्रुओंको जीतता है ॥ ५ ॥

उत्तम सारथि रथमें बैठकर जहां जाना चाहता है, वहां घोडोंको प्रेरित करता है। यह वस्तुतः लगामोंकी ही महिमा है, कि जहां जहां सारथिको जानेका मन होता है, उसकी इच्छाके पीछे पीछे सारथिके लगाम भी जाते हैं ॥ ६ ॥

७५३ तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयो ऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः ॥ ७ ॥
७५४ रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥ ८ ॥
७५५ स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥ ९ ॥
७५६ ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥ १० ॥

अर्थ— [७५३] ७ अश्वा देवता— (रथेभिः सह वाजयन्तः) रथके साथ बलसे दौडनेवाले (वृषपाणयः अश्वाः) बैलोंसे अधिक बलवान् घोडे (तीव्रान् घोषान् कृण्वते) बडे शब्द करते हैं (अमित्रान् प्रपदैः अवक्रामन्तः) शत्रुओंको अपने पावोंसे आक्रान्त करते हुए (अनपव्ययन्तः शत्रून् क्षिणन्ति) व्यय न करते हुए भी शत्रुओंका नाश करते हैं ॥ ७ ॥

[७५४] ८ रथः देवता— (यत्र अस्य रथवाहनं हविः) जहां इस रथको चलानेवाला द्रव्य रखा है, (यत्र अस्य नाम आयुधं) जहां इसका शत्रुको नमानेवाला आयुध है, जहां (अस्य वर्म निहितं) इसका कवच रखा है, (वयं सुमनस्यमानाः) हम उत्तम मनवाले (विश्वाहा) सर्वदा (तत्र शग्मं रथं उपसदेम) वहां उस सुखदायी रथपर चढकर बैठेंगे ॥ ८ ॥

[७५५] ९ रथगोपा देवता— (स्वादु संसदः) सुखदायी सहायता करनेवाले (वयोधाः) बलवान् (कृच्छ्रेश्रितः) संकट समयमें आश्रय लेने योग्य (शक्तिमन्तः) शक्तिमान् (गभीराः) गंभीर स्वभाववाले, (चित्रसेनाः) विशेष उत्तम सेनावाले (इषु बलाः) बाणोंका बल जिनके साथ है ऐसे, (अमृध्राः) शत्रुसे अहिंसित (सतो वीराः) सत्पक्षमें रहनेवाले वीर (उरवः) बहुत (व्रातसाहाः पितरः) शत्रुसैनिकोंका पराभव करनेवाले संरक्षक होते हैं ॥ ९ ॥

[७५६] १० ब्राह्मण-पितृ-सोम-द्यावा-पृथिवी-पूषाणः देवता— (ब्राह्मणासः) ब्राह्मण, ज्ञानी पुरुष (पितरः) रक्षक, (सोम्यासः) सोम (शिवे अनेहसा द्यावापृथिवी) कल्याणकारी निष्पाप द्युलोक और पृथिवी और (पूषा) पोषक देव (दुरितात् नः पातु) पापसे हमारा बचाव करें। (ऋतावृधः रक्ष) सत्य मार्गका संवर्धन करनेवाले हमारी सुरक्षा करें (माकिः अघशंसः नः ईशत) कोई भी पापी हमारे ऊपर स्वामित्व न करें ॥ १० ॥

भावार्थ— रथोंको अपने बलसे खींचकर ले जानेवाले अतिशय बलवान् घोडे बहुत जोरसे हिन हिनाते हैं। वे बलशाली घोडे शत्रुओंको अपने पांवोंसे कुचलते हुए उनका संपूर्ण संहार करते हैं ॥ ७ ॥

जिस रथमें इस घोडोंको प्रेरणा देनेवाली घास रखी हुई है, उसी रथमें शत्रुको झुकानेवाला आयुध अर्थात् हथियार रखा हुआ है। उसी रथपर वीरका कवच भी रखा हुआ है। हम उत्तम मनवाले इस सब जन हररोज ऐसे सुखदायी रथोंपर चढें ॥ ८ ॥

ऐसे उत्तम रथकी रक्षा करनेवाले वीर गण सुख देनेवाले, सबकी सहायता करनेवाले, बलवान्, संकटके समय सबकी सहायता करनेवाले, शक्तिशाली, गंभीर स्वभाववाले, विशेष उत्तम सेनावाले, बाणोंके बलको अपने पास रखनेवाले, शत्रुओंसे अहिंसित और शत्रुसेनाओंका पराभव करनेवाले होते हैं ॥ ९ ॥

ब्राह्मण, ज्ञानी पुरुष, रक्षक, सोम कल्याणकारी निष्पाप द्यु और पृथिवीलोक तथा सबका पोषण करनेवाला पूषा देव पापसे हमारी रक्षा करें। सत्य मार्गका संवर्धन करनेवाले सभी देव हमारी रक्षा करें, कोई भी पापी हम पर शासन न करे ॥ १० ॥

७५७ सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥ ११ ॥

७५८ ऋजीते परि वृङ्धि नो ऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधि ब्रवीतु नो ऽदितिः शर्म यच्छतु ॥ १२ ॥

७५९ आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसो ऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥ १३ ॥

७६० अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥ १४ ॥

७६१ आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयो मुखम् ।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥ १५ ॥

अर्थ – [७५७] ११-१२ इषवः देवताः— (मृगः सुवर्णं वस्ते) बाण उत्तम पंख धारण करता है, (अस्या दन्तः) इस बाणका दांत तीक्ष्ण है। (गोभिः संनद्धा प्रसूता पतति) गोचर्मकी डोरीसे मिलकर फेंका बाण शत्रुपर गिरता है। (यत्र नरः सं द्रवन्ति वि द्रवन्ति च) जिस युद्धमें वीर मिलकर या अलग होकर दौडते हैं (तत्र) वहां उस युद्धमें (अस्मभ्यं इषवः शर्म यंसन्) हमारे लिये बाण सुख देवें ॥ ११ ॥

[७५८] हे (ऋजीते) सरल जानेवाले बाण ! (नः परि वृंधि) हमारा चारों ओरसे रक्षण कर (नः तनूः अश्मा भवतु) हमारा शरीर पत्थर जैसा बने। (सोमः नः अधि ब्रवीतु) सोम हमारा उत्साह बढावे और (अदितिः शर्म यच्छतु) अदिति हमें सुख देवे ॥ १२ ॥

[७५९] १३ प्रतोदः देवता— हे (अश्वाजनि) घोडोंको चलानेवाली कशा ! तू (समत्सु प्रचेतसः अश्वान् चोदय) संग्रामोंमें समझदार घोडोंको प्रेरित कर। (एषां सानु) इनके ऊंचे भागोंपर (आ जंघन्ति) प्रहार करते हैं और (जघनान् उप जिघ्नते) नीचेके भागपर समीपसे ताडन करते हैं ॥ १३ ॥

[७६०] १४ हस्तघ्नः देवता— (अहिः इव भोगैः बाहुं पर्येति) सांपके समान बाहुपर लिपटता है, और (ज्यायाः हेतिं परिबाधमानः) धनुष्यकी डोरीके आघातोंसे बचाता है ऐसा यह (हस्तघ्नः) हस्तबंध (विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान्) सब कर्मोंको जाननेवाले विद्वान् पुरुषकी तरह पुमांसं विश्वतः परिपातु) पुरुषका चारों ओरसे रक्षण करें ॥ १४ ॥

[७६१] १५-१६ इषवो देवताः— (या आलाक्ता) जो विषसे लिपटी (रुरु-शीर्ष्णी) मृगके समान सिरवाली (अथो यस्याः अयो मुखं) जिसके मुखमें लोहेका फल लगा है (पर्जन्य-रेतसे देव्यै इष्वै) पर्जन्यजलसे जिसका वीर्य बढाया है उस बाण देवताके लिये (इदं बृहत् नमः) यह मेरा बडा प्रणाम है ॥ १५ ॥

भावार्थ— यह बाण उत्तम पंख धारण करता है, इसका अग्रभाग तीक्ष्ण होता है। ज्यापर चढाकर फेंका गया यह बाण शत्रुपर आकर गिरता है। जिस युद्धमें वीर मिलकर या अलग अलग होकर दौडते हैं, उस युद्धमें भी हम इन बाणोंसे सुरक्षित होकर रहें अर्थात् ये बाण हमपर न गिरें ॥ ११ ॥

हे सरलतासे जानेवाले बाण ! तू हमारी रक्षा कर। हमारे शरीर पत्थरकी तरह बलवान् हो। सोम देव हमारा उत्साह बढावे और अदिति हमें सुख दे ॥ १२ ॥

घोडोंको प्रेरणा देनेवाली चाबुक भी अच्छी हो। इन चाबुकोंसे घोडोंको अनावश्यक रूपसे न मारा जाए, अपितु जहां जरूरत पडे वहां चाबुकसे घोडोंके ऊंचे जघन भागपर मारा जाए ॥ १३ ॥

युद्ध करनेके समय धनुष्यकी डोरी खींचते समय डोरीके घर्षणसे कलाइयां जख्मी न हों, इसलिए वीर योद्धा हाथोंमें चमडेके दस्ताने पहनते थे, जो कोहनीके नीचे तक आते थे। यह दस्ताने बाहुओं पर सांपोंके समान लिपट जाते थे और हाथ धनुषकी डोरीके आघातोंसे बचता था। इस प्रकार यह दस्ताना वीरकी तरहसे रक्षा करता था ॥ १४ ॥

७६२ अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः ॥ १६ ॥
७६३ यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पति—रदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ १७ ॥
७६४ मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ १८ ॥
७६५ यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥ १९ ॥

अर्थ— [७६२] हे (ब्रह्म संशिते शरव्ये) ज्ञान द्वारा तीक्ष्ण बनाये बाण ! (अवसृष्टा परा पत) छोडा जानेपर दूर जा (गच्छ) जा और (अमित्रान् प्र पद्यस्व) शत्रुओंपर जाकर गिर । (अमीषां कंचन मा उच्छिषः) इन शत्रुओंमेंसे किसीको भी न बचा रहने दे ॥ १६ ॥

[७६३] १७ युद्धभूमि-कवच-ब्रह्मणस्पत्यादयः देवताः— (विशिखाः कुमारा इव) शिखा रहित कुमारोंके समान (यत्र बाणाः संपतन्ति) जहां बाण गिरते हैं, (तत्र) वहां उस युद्धभूमिमें (ब्रह्मणःपति अदितिः) ब्रह्मज्ञानका पति और अदिति (नः शर्म यच्छतु) हमें सुख देवे । (विश्वाहा शर्म यच्छतु) हमें सदा सुख देवे ॥ १७ ॥

[७६४] वर्म-सोम-वरुणाः देवताः— (वर्मणा ते मर्माणि छादयामि) कवचसे तेरे सब मर्मस्थानोंको आच्छादित करता हूं । (राजा सोमः त्वा अमृतेन अनु वस्तां) सोम राजा तेरे पास अपने अमरत्वके गुणसे बसता रहे । वरुणः ते उरोः वरीयः कृणोतु) वरुण तेरे लिये श्रेष्ठका श्रेष्ठत्व देवे, अथवा श्रेष्ठ धन देवे । (जयन्तं त्वा देवाः अनु मदन्तु) जय होनेपर देव तेरा आनन्द माने अर्थात् तेरे जयसे सब देव आनंदित हों ॥ १८ ॥

[७६५] १९ देवब्रह्माणि देवता— (यः नः स्वः) जो हमारा अपना हो (अरणः) अथवा दूरका हो (यः च निष्ट्यः) जो नीच हो (जिघांसति) जो हमें मारता हो (तं) उसको (सर्वे देवाः धूर्वन्तु) सब देव विनष्ट करें । (मम अन्तरं) मेरे अन्दर (ब्रह्म वर्म) ज्ञान रूपी कवच है ॥ १९ ॥

भावार्थ— इस मंत्रमें अनेक तरहके बाणोंका वर्णन किया है । जो इस प्रकार है— कुछ बाण आक अक्का अर्थात् विषमें बुझे होते हैं । प्रथम बाणको तपाकर फिर उसे विषमें बुझाते हैं । इस बाणके शरीरमें जरासा भी लगते ही सारे शरीरमें रक्त फैल जाता है और वह मर जाता है । कुछ बाण सींगके समान बहुत तीक्ष्ण होते हैं । कुछ बाण अयोमुख अर्थात् लोहेकी नोकवाले होते हैं । इन सभी बाणोंको नमस्कार हो । ऐसे बाण मेरे पास न आवें, मुझसे दूर ही रहें ॥ १५ ॥

हे बाण ! तू छोडे जानेपर दूर जाकर ही गिर, तू तो शत्रुओंपर जाकर गिर और जो हमारे शत्रु हैं, उनमेंसे एक भी न बचे ॥ १६ ॥

शिखाओंसे रहित अर्थात् अत्यन्त तीक्ष्ण कुमारोंके समान बहुत तेज बाण जहां गिरते हैं, ऐसी युद्धभूमिमें ब्रह्मणस्पति आदि देवता हमारी रक्षा करें और हमें सदा सुख दें ॥ १७ ॥

सोम वनस्पतिसे अमरत्व या दीर्घायुत्व, अथवा बाण आदिके व्रण शीघ्र ठीक होते हैं ऐसा राजा सोम, सोमवल्ली अपने अमरत्वके साथ तेरे साथ रहे ॥ १८ ॥

जो हमारा सम्बन्धी होकर भी हमें मारना चाहते हो, अथवा जो हमारा शत्रु हमें मारना चाहते हो, उसे सब देव नष्ट करें और मेरे अन्दर ज्ञानरूपी कवच रहे अर्थात् ज्ञानसे मैं अपनी रक्षा करता रहूँ ॥ १९ ॥

॥ षष्ठ मण्डल समाप्त ॥



ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

षष्ठ मंडल

सुभाषित

१ धियः होता अभवः— (१) बुद्धिसे ही मनुष्य होता बनता है ।

२ दुस्तरीतु सहः— (२) मनुष्यका बल दुष्टोंको मारनेके लिए ही हो ।

३ नरः प्रथमं देवयन्तः— (२) मनुष्य प्रथम दिव्य गुणोंसे युक्त हो ।

४ महः राये चिन्तयन्तः— (२) विशेष वैभव प्राप्त करनेके लिए ज्ञानको प्राप्त करें ।

५ जागृवांसः रुशन्तं अग्निं अनुग्मन्— (३) जागृत रहनेवाले साधक तेजस्वी अग्निका अनुसरण करें । अन्धविश्वाससे किसी दुष्टके पीछे न जाएं ।

६ जागृवांसः रयिं अनुग्मन्— (३) जाग्रत रहकर प्रयत्न करनेवाले मनुष्य ऐश्वर्यको प्राप्त होते हैं ।

७ देवस्य पदं नमसा व्यन्तः— (४) प्रभुके पवित्र पदको नम्रतापूर्वक उपासनासे ही प्राप्त किया जा सकता है ।

८ ते भद्रायां सन्दृष्टौ रणयन्त— (४ प्रभुके कल्याण करनेवाले (विश्वके) सौन्दर्यमें आनन्द प्राप्त करते रहें । विश्वमें सुन्दरता है, उसे देखकर मनुष्य आनन्द प्राप्त करें ।

९ यज्ञियानि नामानि दधिरे— (४) प्रभुके पवित्र नामोंका ध्यान करते रहें ।

१० जनानां उभयासः रायः— (५) मनुष्योंको ऐहिक धन और पारमार्थिक ज्ञानरूप धन दोनों तरहके धन प्राप्त करने चाहिए ।

११ तरणे, त्वं चेत्यः त्राता भूः— (५) हे तारक प्रभो ! तू लोगोंको ज्ञानवान् बनाकर उनका तारण करता है । मनुष्य ज्ञानी बनकर ही अपना उद्धार कर सकता है ।

१२ मनुष्याणां सदं इत् माता पिता— (५) ईश्वर ही मनुष्योंका सच्चा माता पिता है ।

१३ विक्षु प्रियः सपर्येण्यः— (६) जो प्रजाजनोंमें प्रिय होता है, उसकी पूजा होती है ।

१४ विशां विश्पतिः कविः— (८) प्रजाओंका शासक अनाडी न हो ।

१५ वृषभः नितोषनः— (८) शासक बलवान् हो और शत्रुका नाश करनेवाला हो ।

१६ चर्षणीनां प्रेतीषणिः— (८) प्रजाजनोंके पास जाकर उनकी परिस्थिति देखनेवाला शासक हो ।

१७ मर्तः शशमे— (९) मनुष्य ईश्वरकी स्तुति करके शान्ति प्राप्त करें ।

१८ त्वा ऊतः सः मर्तः विश्वा वामा दधते— (९) ईश्वरसे सुरक्षित हुआ वह मनुष्य सब धनोंको प्राप्त करता है ।

१९ भद्रायां सुमतौ आयतेमहि— (१०) हम उत्तम बुद्धिके संरक्षणमें अपनी उन्नतिके लिए प्रयत्न करें।

२० नृवत् सदं अस्मे धेहि— (११) पर्याप्त पुत्र पौत्रादिसे भरा हुआ घर हमें मिले।

२१ भद्रा सौश्रवसानि अस्मे सन्तु— (१२) कल्याण करनेवाले यश हमें मिलें।

२२ विधते पुरूणि वसु त्वे सन्ति— (१३) उपासकको देनेके लिए प्रभुके पास बहुत सारा धन है।

२३ मर्तः सु दानवे धिया शशमते— (१७) मनुष्य उत्तम दाताकी ही स्तुति करे।

२४ पुरि जूर्यः रण्वः— (२०) नगरमें वृद्ध मनुष्य सबको उपदेश देनेके कारण सबको प्रिय होता है।

२५ क्रन्ना द्रोणे अज्यते— (२१) मनुष्य अपनी उन्नतिके साधन मर्यादित होनेके बावजूद भी अपने पुरुषार्थसे अपनी उन्नति करता रहे।

२६ देवान् नः सुमतिं वोचः— (२४) विद्वानों अर्थात् ज्ञानियोंके पास हमारी उत्तम सन्देशकी वाणी पहुंचे।

२७ नॄन् सुक्षितिं स्वस्तिं वीहि— (२४) मनुष्योंको उत्तम घर मिले और उनका कल्याण हो।

२८ ऋतपाः ऋतेजाः क्षेषत्— (२५) सत्यका पालक और सत्यपालनके लिए ही अपना जीवन देनेवाला दीर्घजीवी होता है।

२९ सः देवयुः उरु ज्योतिः नशते— (२५) वह देवभक्त विस्तृत तेज प्राप्त करता है।

३० ऋधद्वाराय अग्नये ददाश— (२६) प्रदीप्त अग्निमें ही मनुष्य हविको अर्पित करे।

३१ तं मर्तं अंहः न, प्रदृप्तिः न— (२६) उस मनुष्यको पाप तथा गर्व नहीं होते।

३२ सूरः न अस्य दृशतिः अ-रेपाः— (२७) सूर्यके समान मनुष्यका दर्शन पवित्र और निष्पाप हो।

३३ शुचतः धीः भीमा आ एति— (२७) तेजस्वी वीरकी बुद्धि भीरु मनुष्यको भयानक दीखती है। वह विशाल होती जाती है।

३४ मित्रमहाः शोचिषा— (३०) मित्रके महत्त्वको बढानेवाला, उसके गुणोंको प्रकट करके सर्वत्र उसकी प्रसिद्धि करनेवाला मनुष्य विशेष तेजसे युक्त होता है।

अरुषः दिवा, अरुषः नक्तं— (३०) मनुष्य जिस तरह दिनमें पापसे रहित होकर शुभ कर्म करे, उसी तरह रातमें भी पापरहित शुभ कर्मोंको करता रहे।

३५ धायोभिः युज्येभिः अर्कैः— (३२) मनुष्य धारक शक्ति, योग्यता और तेजसे युक्त हो।

३६ विद्युत् न स्वेभिः शुष्मैः दविद्योत्— (३२) वह बिजलीके समान अपनी कान्तिसे प्रकाशता रहे।

३७ विश्वायुः अमृतः अतिथिः, जातवेदाः— (३४) मनुष्य पूर्णायु, रोग अपमृत्यु आदिसे रहित, अतिथिके समान पूज्य और ज्ञानका प्रचार करनेवाला हो।

३८ मर्त्येषु उषर्बुत्— (३४) मनुष्योंमें उषःकालमें उठनेवाला हो।

३९ अश्नस्य पूर्व्याणि चित् शिश्नथत्— (३५) दुष्टोंसे पहले किए गए दुष्कर्मोंका भी बदला लेना चाहिए।

४० भानुमद्भिः अर्कैः सूर्यः न— (३८) तेजस्वी किरणोंसे जिसतरह सूर्य प्रकाश फैलाता है, उसी तरह मनुष्य ज्ञानको फैलावे।

४१ औशिजः पत्मन् दीयन्— (३८) जिस तरह सूर्य अपने मार्गसे जाता है, उसी तरह मनुष्य अपने निश्चित मार्गसे चले।

४२ अवृकेभिः पथिभिः नः रायः स्वस्ति— (४०) उपद्रव रहित मार्गोंसे हमें धन और कल्याण प्राप्त हो।

४३ प्रचेताः पुरुवारः अध्रुक्— (४१) ज्ञानी मनुष्य विज्ञानमें निपुण, अनेकों द्वारा प्रशंसनीय तथा द्रोह न करनेवाला हो।

४४ मित्रमहः तपिष्ठः अग्निः— (४४) अग्रणी मनुष्य अपने मित्रोंका महत्त्व बढानेवाला, शत्रुओंको संताप देनेवाला और तेजस्वी हो।

४५ तपसा तपस्वान्— (४४) मनुष्य अपने तेजसे तेजस्वी बने।

४६ तव ऊती काम्यं अश्याम— (४७) अग्रणीके संरक्षणसे सुरक्षित होकर हम अपनी इच्छाओंको पूर्ण करें।

४७ वीरासः त्वत् अभिमातिषाहः— (४७) वीर क्षत्रिय भी इस प्रभुके सामर्थ्यकी सहायतासे ही शत्रुओंको हरानेमें सफल होते हैं।

४८ सुक्रतुः कविः वैश्वानरः— (५१) उत्तम कर्म करनेवाला ज्ञानी सब मनुष्योंका हित करनेवाला होता है।

४९ अदब्धः गोपाः अमृतस्य रक्षिता— (९१) किसी शत्रुके सामने न दबनेवाला वीर सबका संरक्षण करता है और अमरत्वका रक्षक भी वही है।

५० वैश्वानरः विश्वं वृष्ण्यं अधत्त— सब मानवोंका हित करनेवाला नेता अग्रणी सब बल अपनेमें धारण करता है।

५१ ज्योतिषाः तम अन्तर्वावत् अकृणोत्— (६४) अपने प्रकाशसे अन्धकारको इसने दूर किया। नेता ज्ञान क प्रसार करके लोगोंके अज्ञानको दूर करे।

५२ परश्या इव वनिनं अघशंसं नीचा नि वृश्च— (६६) जिस तरह वृक्षके आघातसे वृक्ष टूट पडता है, उसी तरह पापी शत्रुको नीचे गिरा दो।

५३ अजरः राजा— (६६) राजा जरा रहित हो। राजा निर्बल न हो। वह वृद्धावस्थामें भी तरुणके समान कार्य करे।

५४ अदब्धेभिः गोपाभिः सूरीन् पाहि— (६८) राजा अपनी अदम्य संरक्षणकी शक्तिसे विद्वानोंकी रक्षा करे।

५५ सः मर्त्येषु श्रवसा पीपाय— (७८) परमात्माकी उपासना करनेवाला साधक मनुष्योंमें अपने यशके कारण परिपुष्ट होता है।

५६ उशत् इर्म यक्षं चनः धाः— (८१) मनुष्य यज्ञ करनेकी इच्छासे अपने पास अन्नका संग्रह करे।

५७ तव स्वां तन्वं यजस्व— (८४) हे मनुष्य ! तू अपने शरीरका सत्कार कर। मनुष्य अपने शरीरको परिपुष्ट बनाकर अपने शरीरका सत्कार करे।

५८ त्वे वष्टि धिषणा धन्या— (८५) प्रभुकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली बुद्धि धन्य है।

५९ अपाकः विभावा अग्निः स्म अदिद्युतत्— (८६) परिपक्व बुद्धिवाला वैभवसम्पन्न अग्रणी अत्यन्त तेजस्वी दीखता है।

६० वावसानाः अंहः अति स्सेम— (८८) भक्ति करनेवाले हम पापोंको दूर करते हैं।

६१ ऋतावा सूर्यः न दूरात् शोचिषा ततान— (८९) सत्यकी रक्षा करनेवाला वीर सूर्यके समान दूरसे ही चमकता है।

६२ अद्रोघः अमर्त्यः त्मन् चेतति— (९१) द्रोह न करनेवाला अमर होकर स्वयं अपने तेजसे प्रकाशित होता है।

×

६३ भालः पनयन्ति— (९३) तेजकी सर्वत्र प्रशंसा होती है।

६४ त्वं निदायाः पाहि— (९४) हे प्रभो ! तू हमारी निन्दासे रक्षा कर। न हम किसीकी निन्दा करें और न कोई हमारी निन्दा करे।

६५ भगः त्वं, नः रत्नं आ इषे— (९५) हे प्रभो ! तू भाग्यवान् है, इसलिए हमें भी भाग्य दे। हम स्वयं भाग्यशाली होकर दूसरोंको भी भाग्यशाली बनायें।

६६ सत्पतिः वृत्रं शवसा हन्ति— (९७) सत्यका पालन करनेवाला मनुष्य अपने सामर्थ्यसे शत्रुका वध करता है।

६७ विप्रः पणेः वाजं बिभर्ति— (९७) ज्ञानी वीर दुष्ट व्यवहार करनेवालेसे अन्न वा धन छीन लेता है।

६८ विह्वायाः नः वग्मा— (१००) विशेष ज्ञानी हमें उपदेश करें।

६९ विश्वाभिः गीर्भिः पूर्तिं अभि अश्यां— (१००) उत्तम वाणीका उपयोग करके हम पूर्णता प्राप्त करें।

७० मर्त्यः दुवः धियं जुजोष सः पूर्व्यः प्रथसत्— (१०१) जो मनुष्य आशीर्वादके वचन कहता है, वह सर्व श्रेष्ठ होकर प्रकाशित होता है।

७१ अग्निः प्रचेताः वेधस्तमः ऋषिः— (१०२) अग्रणी नेता ज्ञानी, कर्मप्रवीण और दूरदर्शी हो।

७२ आयवः दस्युं तूर्वन्तः व्रतैः अव्रतं सीक्षन्तः— (१०३) व्रतशील मनुष्य अपने शत्रुओंका नाश करते हैं और अपने व्रतोंसे व्रतविरोधियोंकी पराजय करते हैं।

७३ अग्निः अप्सां ऋतीषहं सत्पतिं वीरं ददाति— (१०४) अग्नि कर्म करनेमें कुशल, शत्रुका नाश करनेवाला, सज्जनोंका उत्तम पालन करनेवाला वीर शूर पुत्र देता है।

७४ यस्य सं चक्षि शवसः भिया शत्रवः त्रसन्ति —(१०४) पुत्र ऐसा हो कि जिसका दर्शन होते ही उसके सामर्थ्यसे डरकर शत्रु कांपने लग जाएं।

७५ सहावा देवः अग्निः विद्मना मर्तं निदः उरूष्यति —(१०५) बलवान् अग्नि देव अपने ज्ञानसे अपने भक्तकी निंदक शत्रुसे सुरक्षा करता है।

७६ यस्य रयिः वाजेषु अवृतः— (१०५) उसका धन युद्धोंमें सुरक्षित रहता है।

७७ अतिथिं उषर्बुधं विश्वासां विशां पतिं इम गिरा ऋंजसे— (१०७) इस अतिथिवत् पूज्य, उषः-

कालमें जगनेवाले, सब प्रजाजनोंके पालनकर्ताकी अपनी वाणीसे प्रशंसा करनी चाहिए।

७८ यत् अच्युतं, तत् अत्ति – (१०७) जो गिरा हुआ नहीं होता, उसी अन्नको खाना चाहिए। दूसरोंके द्वारा जूठा करके छोड़े हुए या फेंके हुए अन्नको खाना महापाप है।

७९ सः अवृकः दक्षस्य वृधः भूः— (१०९) मनुष्य स्वयं क्रूरतारहित होकर चतुर मनुष्यको बढानेवाला हो। जो कर्ममें दक्ष या कुशल होता है, उसीकी वृद्धि और उन्नति हो सकती है।

८० पावकया चिन्तयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुचे— (१११) पवित्र ज्ञान बढानेवाली कान्तिसे पृथ्वीपर प्रकाशित होते रहो।

८१ अमृतं पायुं जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा निषेदिरे— (११४) जो अमर रक्षक, सदा सावधान रहनेवाला, वैभवशाली और प्रजाका पालक है, उसको सभी प्रजायें नमन करती हैं।

८२ उभयान् अनुव्रता विभूषन्— (११५) राजा दोनों तरहकी प्रजाके अनुकूल आचरण करनेवाला होकर सबको सुखी रखे। राज्यमें ज्ञानी–अज्ञानी, सबल–निर्बल आदिके रूपमें दो वर्गकी प्रजायें होती हैं। राजा सबके अनुकूल होकर सबको सुखी रखे।

८३ धीतिं सुमतिं आवृणीमहे— (११५) हम धारणावती बुद्धि, कर्मशक्ति तथा सुमतिको अपने अन्दर धारण करें।

८४ अविद्वांसः विदुस्तरं सुप्रतीकं सुदृशं स्वंचं सपेम— (११६) हम अज्ञानी हैं, इसलिए हम अत्यन्त ज्ञानी उत्तम शरीरवाले सुन्दर और प्रगतिशील ज्ञानी नेताकी सेवा करें।

८५ सुप्रतीकं सुदृशं स्वंचं— (११६) सुन्दर और आदर्श रूपसे प्रगति करनेवाला नेता पूजनीय होता है।

८६ विश्वा वयुनानि विद्वान्— (११६) मनुष्य सब कर्मोंका ज्ञान प्राप्त करे।

८७ कवये धीतिं आनट्, तं पासि, पिपर्षि— (११७) ज्ञानीकी सेवाके लिए जो कर्म करता है, उसकी सुरक्षा वह ज्ञानी करता है और उसकी इच्छायें वह पूर्ण करता है।

८८ निशितिं उदितिं आनट्, तं शवसा राया पृणक्षि— (११७) जो मनुष्य तेजस्विता और उदयके लिए कर्म करता है, वह बल और धनसे भरपूर होता है।

८९ गृहपतिः जातवेदाः राजा विश्वा जनिमा वेद (११९) गृहस्थी, ज्ञानी और राजा सब प्राणियोंको जानता है। गृहस्थी अपने परिवारके नौकरचाकरोंका भी सदा ध्यान रखे और राजा अपने देशकी प्रजाके सुख दुःखका सदा ख्याल रखे।

९० देवानां उत मर्त्यानां यजिष्ठः— (११९) देवों और श्रेष्ठ मानवोंका सदा सत्कार हो।

९१ सः ऋतावा प्र यजतां— (११९) वह सत्यपालक यज्ञ करे।

९२ अध्वरस्य होतः पावकशोचे— (१२०) हिंसारहित कर्मका संपादन करनेवाला पवित्र तेजसे युक्त होता है।

९३ विशः यत् अद्य वेः— (१२०) प्रजा जो चाहती है, वही (राजा) करे।

९४ ऋता यजासि, महिना विभूः— (१२०) मनुष्य सत्यपूर्वक यज्ञ करे और अपनी महिमासे सर्वत्र प्रभावी बने।

९५ दयाव्याभ्यः अंकृयन्तं अमूरं आनयन्— (१२३) उन्नतिशील या उन्नतिका मार्ग दर्शानेवाले ज्ञानीकी सहायतासे हम मनुष्योंको अन्धकारमेंसे निकालकर प्रकाशमें लाते हैं।

९६ मानुषे जने विश्वेषां यज्ञानां होता हितः— (१२६) मानवी समाजमें सब यज्ञोंको कुशलतासे करनेवालेको आदरपूर्वक सम्मानके पद पर स्थापित करना चाहिए।

९७ विश्वेषां यज्ञानां होता मानुषे जने हितः— (१२६) सब श्रेष्ठ कर्मोंको कुशलतासे करनेवाला मानव समाजमें हितकारी होता है।

९८ वेधाः सुक्रतुः देवः— (१२८) निर्माण करनेके कार्यमें विबुध कुशल होते हैं।

९९ अध्वनः पथः च अंजसा वेत्थ— (१२८) अच्छे और बुरे मार्गोंको शीघ्रही जानना चाहिए। जो यह जानता है, वह दिव्य ज्ञानी होता है।

१०० संदृशं प्रयक्षि— (१३१) तेजस्विताका सत्कार कर।

१०१ विश्वे सुदानवः कामिम क्रतुं जुषन्त।— (१३३) सब दानी सुखकी इच्छा करते हुए शुभ कर्म करते हैं ।

१०२ होता मनुर्हितः— (१३४) हवन करनेवाला मनुष्योंका हितकारी होता है ।

१०३ आसा वन्हिः विदुष्टरः— (१३४) मुखसे उत्तम शब्दोंका उच्चारण करनेवाला मनुष्य अधिक ज्ञानी होता है ।

१०४ दिवः विशः यक्षि— (१३४) दिव्य प्रजाका सत्कार करना चाहिए ।

१०५ पृथु श्रवाय्यं बृहत् सुवीर्यं नः अच्छ विवाससि – (१३०) बडा यशस्वी और विशेष वीर्य– पौरुष – बढानेवाला धन हमें मिले ।

१०६ वाघतः विश्वस्य मूर्ध्नः पुष्कारत् अधि अथर्वा त्वां निरमन्यत— (१३८) आधाररूप सब विश्वके शिरस्थानमें रहनेवाले कमलसे अथर्वाने मंथन करके अग्निको निकाला ।

१०७ ते पूर्तं अक्षिपत् नहि भुवत्— (१४३) अग्निका प्रज्वलित तेज आंखका विनाशक नहीं होता ।

१०८ पुरुचेतनः सत्पतिः— (१४४) विशेष ज्ञानी ही उत्तम पालक होता है ।

१०९ राजानः शुचिव्रताः— (१४९) राजा गण शुद्ध आचरण करनेवाले हों ।

११० ऊर्जो न पात्— (१५०) मनुष्य अपने बलको अधःपतित न करे ।

१११ सं दृष्टिः इषयते मर्त्याय वस्वी— (१५०) उत्तम दृष्टि मनुष्यको धन देनेवाली हो ।

११२ प्रजावत् ब्रह्म आ भर— (१६१) पुत्रपौत्रोंको बढानेवाला ज्ञान हमें चाहिए ।

११३ प्रयस्वन्तः रणवसंदृशं गिरः उप ससृज्महे —(१६२) अन्नदान करनेवाले हम सब रमणीय ज्ञानी पुरुषकी प्रशंसा अपनी वाणीसे करते हैं ।

११४ उत्तानहस्तः नमसा आ विवासेत्— (१७१) हाथ उठाकर नमस्कार करके सेवा करे। हाथ उठाकर नमस्कार करना चाहिए।

११५ मर्तः देवं दुवस्येत्— (१७१) मनुष्य देवता की सेवा करे।

११६ अनूनं महां तवसं विभूतिं प्रसाहं जर्हृषन्त —(१७७) यह शक्ति जिसकी कम नहीं होती, ऐसे महान् सामर्थ्यवान्, विभूतिमान् और शत्रुका नाश करनेवाले वीरको आनंदित करते हैं ।

११७ विश्वे देवाः तवसं एकं पुरः दधिरे—(१८१) सब विद्वानोंने अकेले सामर्थ्यवान् वीरको (इन्द्र) को अपना नेता बनाया ।

११८ सूरीन् नृवतः— (१८७) विद्वान् सहायक मनुष्योंसे युक्त हों ।

११९ पार्ये दिवि च नः एधि— (१८७) भविष्य-कालमें हमें सुख मिले ।

१२० देवहितं वाजं सनेम—(१८८) इन्द्रियोंका हित करनेवाला अन्न हम प्राप्त करें ।

१२१ त्वं एकः आर्याय कृष्टीः अवनोः— (१९१) इस इन्द्रने अकेले ही आर्यों अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषोंको प्रजा दी ।

१२२ नः प्रत्नं सख्यं अस्तु— (१९३) जिस तरह पूर्वकालमें हमारी मित्रता देवोंके साथ थी, वैसी ही अब भी रहे ।

१२३ अच्युतच्युत्— (१९३) वीर सुदृढ शत्रुओंको भी स्थान-भ्रष्ट करनेवाला हो ।

१२४ शूरः महति वृत्रतूर्ये धीभिः हव्यः अस्ति— (१९४) शूर पुरुष बडे युद्धोंमें बुद्धिमानोंके द्वारा प्रशंसा योग्य होता है ।

१२५ न मिथू जनः भूत् सः न मुहे— (१९१) जो वीर कदापि मिथ्यावादी जनके समान असत्यवादी नहीं होता, वह वीर कदापि मोहित नहीं होता ।

१२६ सः सुमन्तु नामा— (१९६) वह वीर मननीय यशसे युक्त होता है ।

१२७ तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य धृष्वेः महिमा पृथिव्याः दिव प्र ररप्शे— (२००) तेजस्वी, श्रेष्ठ और शत्रुनाशक वीरकी महिमा पृथ्वी और द्युलोकसे भी बडी है।

१२८ पुरुमायस्य शंयोः शत्रुः न— (२००) बहुत प्रज्ञावान् और शत्रुनाशक वीरका कोई शत्रु नहीं होता।

१२९ पुरुमायस्य शंयोः प्रतिमानं न अस्ति— (२००) बहुत कुशल और सुखशान्ति देनेवाले वीरकी कोई तुलना नहीं है ।

१३० पुरुमायस्य शंयोः न प्रतिष्ठि— (२००) उत्तम कुशल, सुख और शान्ति देनेवाले वीरोंको दूसरेके आश्रयकी जरूरत नहीं होती।

१३१ ते तत् कृतं करणं प्रभूत्— (२०१) इस इन्द्रका कार्य और साधन दोनों प्रभावशाली हैं।

१३२ अमर्त्याः देवाः ते तत् ओजः अनु जिहते— (२०३) अमर देव तेरे उस सामर्थ्यका अनुसरण करते हैं।

१३३ हे कृत्नः, यत् ते अकृतं अस्ति, तत् कृण्व— (२०३) हे पुरुषार्थी वीर ! जो तूने अवतक किया नहीं है, वैसा पुरुषार्थ अब करके दिखा।

१३४ पुरुः पृथुः कर्तृभिः सुकृतः भूत्— (२०४) मनुष्य शरीरसे बडा और गुणोंसे श्रेष्ठ होकर अपनी कर्तृत्वशक्तिके कारण सत्कारके योग्य होता है।

१३५ अर्वांसि पृथू करस्ना गभस्ती— (२०५) अश्वादिका विशेष दान करनेके लिए मनुष्यके पास हाथ दिए हैं।

१३६ पशुपाः पश्वः यूथा इव— (२०६) जिस तरह पशुरक्षक पशुओंके झुण्डोंको सुरक्षित रखता है, उसी तरह राजा प्रजाकी सुरक्षा करे।

१३७ यथाचित् पूर्वे अनेद्याः, अनवद्याः अरिष्टाः आसुः— (२०७) जिस तरह पूर्व समयके वीर अनिंदनीय, निष्पाप और अहिंसित हुए थे, वैसे ही हम इस समय हों।

१३८ सः हि धृतव्रतः— (२०८) वह वीर व्रतों तथा नियमोंका पालन करता है।

१३९ पथ्याः रायः अस्मिन् सं जग्मिरे— (२०८) सन्मार्गसे प्राप्त किए धन इस वीरके पास इकट्ठे हो जाते हैं।

१४० विश्वतः वृषभः शुष्मः अर्वाङ् अभि आ समेतु— (२१२) चारों ओरसे बल बढानेवाला सामर्थ्य हमारे पास एकत्रित होता रहे।

१४१ एभिः सख्यैः, ते वयं, उभयानि वृत्राणि घ्नन्तः, शत्रोः उत्तरे इत् स्याम— (२१७) इन मित्रताके शुभ कर्मोंको करते हुए हम आन्तर और बाह्य दोनों प्रकारके शत्रुओंका नाश करके शत्रुओंसे अधिक श्रेष्ठ हो जायें।

१४२ शवसा पृत्सु, द्यौः न भूम— (२१६) पुत्र अपने सामर्थ्यसे युद्धोंमें विजय प्राप्त करनेवाला और द्युलोकके समान विशाल सामर्थ्यशाली हो।

१४३ दिवः न तुभ्यं सत्रा विदधं असुर्यं— (२१८) आकाशके समान विशाल अनेक सामर्थ्य प्रभुके पास हैं।

१४४ सः अप्रतीतः स्पृधः ई वनते— (२२५) वह इन्द्र पीछे न हटता हुआ सब स्पर्धा करनेवालोंका नाश करता है।

१४५ ते अवसा नव्यः सनेम— (२२६) हे प्रभो ! तेरे संरक्षणसे हम सुरक्षित होकर अपूर्व धन प्राप्त करें और उसका उपभोग करें।

१४६ काव्याय उशने वरिवस्यन् वृधः भूः— (२२७) शुभ कामना करनेवाले ज्ञानीको मनुष्य उत्कृष्ट धन देकर उसकी उन्नति करे।

१४७ पुरुमायस्य महित्वं दिवः पृथिव्याः महा अति रिरिचे— (२२१) श्रेष्ठ, बुद्धिमान् और कर्ममें कुशल प्रभुकी महिमा द्युलोक और भूलोकके विस्तारसे भी बहुत ही बडी और विस्तृत है।

१४८ सः इत् अ-वयुनं ततन्वत् तमः सूर्येण वयुनवत् चकार— (२३१) वही प्रभु फैले हुए घने अन्धकारको सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशमय करता है।

१४९ इयक्षन्तः मर्ताः ते अमृतस्य कदा न मिनन्ति— (२३२) यज्ञ करनेवाले मनुष्य प्रभुके धामका नाश नहीं करते, वे प्रभुके यशका संवर्धन करते हैं।

१५० अवरासः तं पृच्छन्तः— (२३५) छोटे अर्थात् अल्पज्ञानवाले मनुष्य उस प्रभुके बारेमें जिज्ञासा करते हैं।

१५१ ते पराणि प्रत्ना श्रुत्वा अनु— (२३५) ज्ञानी मनुष्य इस प्रभुके श्रेष्ठ और पुरातन कर्मोंका वर्णन करते हैं।

१५२ वीरः इन्द्रः कारुधाया— (२३७) वीर इन्द्र ज्ञानीको आश्रय देनेवाला है।

१५३ त्वावान् त्वत् अन्यः न अस्ति— (२३९) इस प्रभुके समान सामर्थ्यवान् और कोई नहीं है।

१५४ पथिकृत् विदानः सः सुगेषु उत दुर्गेषु नः पुरएता बोधि— (२४१) मार्ग बनानेवाला ज्ञानी सुगम तथा दुर्गम मार्गोंमें लोगोंका अग्रगामी नेता होकर मार्गदर्शन करे और ज्ञानपूर्वक योग्य रीतिसे उन अनुयायियों को बचाए और इष्ट स्थान तक पहुंचाए।

१५५ आभिः गीर्भिः एकः इन्द्र इत् हव्यः— (२४२) इन वाणियोंसे एक इन्द्र ही स्तुति करने योग्य है ।

१५६ वृषभः वृष्ण्यावान् सत्यः— (२४२) वही इन्द्र बलवान्, सामर्थ्यशाली, सत्य और अविनाशी है ।

१५७ सत्वा पुरुमायः सहस्वान् पत्यते— (२४२) सत्ववान् अर्थात् सामर्थ्यशाली, अनेक कौशल्योंसे युक्त और शत्रुका पराभव करनेवाला ही सबका स्वामी हो सकता है ।

१५८ त्वेषसंदृक् अजुर्यः इन्द्रः— (२५०) तेजके समूह जैसा दीखनेवाला इन्द्र जरा और क्षयरहित है ।

१५९ दिव्यस्य जनस्य, पार्थिवस्य जगतः राजा भुवः— (२५०) द्युलोक तथा भूलोकमें रहनेवाले लोगोंका वह इन्द्र ही राजा है ।

१६० शत्रुतुर्याय बृहतीं अमृध्रां संयतं स्वस्तिं नः आ भर— (२५१) शत्रुओंका नाश करनेके लिए विशाल, अविनाशी और स्वाधीन रहनेवाली और कल्याण करनेवाली संपत्ति हमें दे ।

१६१ दासानि आर्याणि करः— (२५१) दासोंको आर्य बनाया जाए, अर्थात् जिनकी वृत्ति दासकी है अर्थात् गुलामगिरीकी है, उनकी वृत्तियोंको ऊंचा उठाकर उन्हें श्रेष्ठ बनाया जाए ।

१६२ उग्रः वीराय लोकं कर्ता अस्तु— (२५५) वीर राजा अपने शूर वीरोंके लिए विस्तृत कार्यक्षेत्र देनेवाला हो ।

१६३ वृक्षस्य वयाः ऊतयः वि रुरुहुः— (२६५) प्रभुके संरक्षण वृक्षकी शाखाओंकी तरह चारों ओर फैल रहे हैं । अर्थात् प्रभुकी संरक्षक शक्ति सर्वत्र व्याप्त है ।

१६४ शचीवतः शाकाः गवां स्रुतयः संचरणीः— (२६६) उस सामर्थ्यशाली प्रभुकी शक्तियां किरणोंकी तरह सर्वत्र संचार करती हैं ।

१६५ ते दामन्वन्तः अदामानः— (२६६) प्रभुके बंधन भी उन्नतिकारक होते हैं । प्रभुके बंधन भी वास्तविक बंधन न होकर उन्नतिके साधन होते हैं ।

१६६ अद्य अन्यत् कर्वरं अन्यत् उ श्वः— (२६७) ईश्वर आज एक कार्य करता है, और कल दूसरा कार्य करता है । कभी चुप नहीं रहता । इसी तरह मनुष्य भी कभी चुप न बैठे, सतत कार्य करता रहे ।

१६७ इन्द्रः सत् असत् मुहुः आचक्रिः— (२६७) इन्द्र प्रभु सत् और असत् कर्म सदा करता रहता है । उसके सत्कर्म सज्जनोंकी उन्नतिके लिए होते हैं और असत्कर्म दुष्टोंके नाशके लिए होते हैं ।

१६८ शरदः यं न जरन्ति— (२६९) वर्ष इस प्रभुको वृद्ध नहीं कर सकते ।

१६९ मासाः द्यावाः न अव कर्शयन्ति— (२६९) महीने और दिन भी इस प्रभुको कृश नहीं बना सकते ।

१७० वृद्धस्य अस्य तनूः शस्यमाना वर्धतां— (२६९) इस सनातन प्रभुका शरीर सदा ही प्रशंसित होकर बढता है ।

१७१ वीळवे न नमते— (२७०) वीर पुरुष सामर्थ्यशाली शत्रुके आगे भी नहीं झुकता ।

१७२ स्थिराय न नमते— (२७०) स्थिर और दृढ शत्रुके सामने भी नहीं झुकता ।

१७३ दर्शते दस्युजूताय न नमते— (२७०) हिंसक क्रूरके सामने भी नहीं झुकता ।

१७४ ऋष्वाः गिरयः अज्राः— (२७०) बडे बडे पहाड भी इस वीरके लिए सुगम हो जाते हैं ।

१७५ गंभीरे चित् अस्मै गाधं भवति— (२७०) गहरा सागर भी इसके लिए उथलासा अर्थात् आसानीसे पार करने योग्य हो जाता है ।

१७६ ऊती अरिषण्यन् ऊर्ध्वः स्थाः— (२७१) वीर पुरुष दूसरोंकी रक्षा करनेके लिए सदा उद्यत रहे ।

१७७ जामयः अजामयः अर्वाचीनासः वनुषः एषां शवांसि विधुरा— (२७५) अपनी जातिवाले अथवा पराये जो भी शत्रु हमारे ऊपर हमला करके हमारा नाश करना चाहते हैं, उनके बलोंको सत्वहीन और निष्फल करना चाहिए ।

१७८ तोके तनये गोषु अप्सु उर्वरासु क्रन्दसी वि ह्वयेते— (२२७) बालबच्चों, गौवों, जलप्रवाहों और उर्वरा भूमिके लिए विवाद बढता है, तब झगडे होते हैं ।

१७९ विश्वा जातानि तानि अभ्यसि— (२७७) सब शत्रुके सामर्थ्योंका यह पराभव कर सकता है ।

१८० ते प्रजानः चर्षणयः त्राता उत वरूता भव — (२७९) जो भयसे कांपनेवाली प्रजा है, उनका राजा रक्षक और उद्धारक बने ।

१८१ ये अस्माकासः नृतमासः अर्यः, सूरयः नः पुरः दधिरे, त्राता भव— (२७९) जो हमारे श्रेष्ठ मनुष्य हैं, जो ज्ञानी हैं, उनका रक्षक मनुष्य बने।

१८२ अवसा वस्तो नूनं विद्याम— (२८१) हमें संरक्षणशक्ति युक्त घर प्राप्त हों।

१८३ गावः आ अग्मन्, उत भद्रं अक्रन्— (२९८) गायें हमारे घर आएं और हमारा कल्याण करें।

१८४ पुरुरूपाः प्रजावतीः उपसः दुहानाः स्युः —(२९८) अनेक वर्णोंवाली तथा बछडोंवाली गायें उषःकालमें दूध दें।

१८५ गावः भगः— (३०२) गायें ही ऐश्वर्य हैं।

१८६ इमाः याः गावः, स इन्द्रः— (३०२) ये जो गायें हैं, वे ही इन्द्र हैं। इन्द्र रूप परमात्मा ही इस पृथ्वी पर गोरूपसे विचर रहा है।

१८७ कृशं चित् अश्रीरं चित् सुप्रतीकं कृणुथ— (३०३) ये गायें कृश और निस्तेजको भी हृष्टपुष्ट और सुन्दर तेजस्वी रूपवाला बनाती हैं।

१८८ गृहं भद्रं कृणुथ (३०३) गायें घरको कल्याणमय बनाती हैं।

१८९ सुमतये चकानाः नरः सख्याय इन्द्रं महयन्तः सेपुः— (३०७) उत्तम बुद्धिकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले नेता वीर इन्द्रके साथ मित्रता करनेके लिए इन्द्रके गुणोंका वर्णन करते हैं।

१९० हस्ते नर्या आ मिमिक्षुः— (३०७) वीरके हाथोंमें मानवोंका हित करनेवाले धन भरपूर हों।

१९१ श्रिये ते पादाः दुवः आ मिमिक्षुः— (३०८) ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए हम प्रभुके चरणोंकी सेवा करते हैं।

१९२ ते शवसः अन्तः न धायि— (३१०) इस प्रभुके सामर्थ्यका कोई अन्त नहीं है।

१९३ तूतुजानः सूरिः ता ऊती समीजमानः यूथा अप्सु इव आ पृणति— (३१०) सत्वर कार्य करनेवाला विद्वान् प्रभुके संरक्षणोंको अच्छी तरह प्राप्त होकर, जिस तरह गौओंका झुण्ड जलस्थानको प्राप्त करके तृप्त होता है, उसी तरह तृप्त होता है।

१९४ वीर्याय भूयः इत् वावृधे— (३१२) पराक्रम करनेके लिए यह वीर बार बार उत्साहसे बढता है।

१९५ उभे रोदसी अस्य अर्धं इत् प्रति— (३१२) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोक इन्द्रके आधे भागके बराबर हैं।

१९६ अस्य बृहत् असुर्यं— (३१२) इस वीरका बहुत सामर्थ्य है।

१९७ यानि दाधार, न किः आ मिमाति— (३१३) जिन कर्मोंको यह वीर धारण करता है, उनका नाश कोई नहीं कर सकता।

१९८ त्वावान् अन्यः देवः न अस्ति, न मर्त्यः— (३१५) इस इन्द्रके समान अथवा उससे अधिक सामर्थ्यशाली या ऐश्वर्यशाली न कोई देव है और न कोई मनुष्य।

१९९ जगतः चर्षणीनां सूर्यं द्यां उषसं साकं जनयन्, राजा अभवः— (३१६) सब जगत्के मनुष्योंके हितार्थ प्रभुने द्यु, उषा और सूर्यको उत्पन्न किया और वही इन सबका राजा हुआ।

२०० त्वं रयीणां एकः अभूः— (३१७) वह प्रभु सभी धनोंका अकेला ही स्वामी है।

२०१ हस्तयोः कृष्टीः आ अधिथाः— (३१७) वही अपने हाथोंसे सब विश्वको रखता है।

२०२ यः ओजिष्ठः मदः दास्वान्, तं नः सुदाः— (३२७) जो बलवान्, आनन्द बढानेवाला, उत्तम यज्ञ करनेवाला और दाता हो ऐसा ही पुत्र हमें चाहिए।

२०३ त्वं दासा आर्या तान् उभयान् अमित्रान् वधीः (३२९) इन्द्रने, जो दास या आर्य शत्रुताका व्यवहार करते थे, उन्हें मारा। आर्य अथवा श्रेष्ठ होनेपर भी जो शत्रुताका व्यवहार करें, उनको मारना ही चाहिए।

२०४ अस्य आजः जनः अनु प्र यंजे— (३४३) इस वीरके सामर्थ्यका लोग सत्कार करते हैं।

२०५ तं ऊतयः सध्रीचीः सश्चुः— (३४४) उस वीरके साथ संरक्षक सामर्थ्य रहते हैं।

२०६ विश्वस्य भुवनस्य एकः राजाः— (३४५) वह प्रभु ही सब भुवनोंका राजा है।

२०७ अस्य कर्णा दूरात् चित् आ वसतः— (३५३) इस प्रभुके कान दूरसे भी सुनते हैं।

२०८ यज्ञः इन्द्रं वर्धात्— (३५५) यज्ञ प्रभुकी महिमाको बढाते हैं।

२०९ ब्रह्म इन्द्रं वर्धात्— (३५५) ज्ञान प्रभुकी महिमाको बढाता है।

२१० गो अग्राः इषः— (३५७) गायका रस अर्थात् गोदुग्ध अन्नरूप है।

२११ अयं रुजानः अ-रुचः अरोचयत्— (१६०) वह वीर स्वयं प्रकाशित होकर अप्रकाशितोंको प्रकाशित करता है।

२१२ ऋचसे अपः ओषधीः अविषा वनानि गाः अर्वतः नॄन् रिरीहि— (१६१) उपासकको जल, अन्न, निर्विष फलवाले वृक्ष, गाय, घोडे, बल, बच्चे और अनुयायी मनुष्य दो।

२१३ अहेळमानः यज्ञं उप याहि— (१६७) क्रोधरहित होकर प्रसन्न मनसे यज्ञमें सम्मिलित होना चाहिए।

२१४ गिरः तुरस्य राधसः पातिं— (१८४) उत्तम वाणियां या प्रशंसाके बोल शीघ्रतासे कार्य करनेवाले उत्साहको बढाते हैं।

२१५ अस्य तं इत् शुष्मं देवी रोदसी सपर्यतः नु —(३८४) ऐसे वीरके बलकी सेवा द्यु और पृथ्वी निश्चयसे करते है।

२१६ ऋतस्य पथि वेधाः अपायि— (१८७) सत्यके मार्गमें रहकर ज्ञानी मनुष्य अन्न प्राप्त करता है। वह अन्यायके मार्गसे कभी नहीं जाता।

२१७ देवासः मनांसि श्रिये अक्रन्— (१८७) ज्ञानी जन अपने मनोंको आनन्दित करनेके लिए शुभ कर्म करते हैं।

२१८ दात्रे इत् वयं अभूम— १८९ दाताके पास हम सदा रहें।

२१९ प्रदिवः कारुधायाः— (१९१) इन्द्र प्राचीन कालसे कारीगरोंको धारण करनेवाला है।

२२० अपां तोकस्य तनयस्य जेषे नः सूरीन् अर्धं कृणुहि— (१९७) हमें धन मिले, बालबच्चोंकी जय हो, हम विद्वान् हों और हमें समृद्धि प्राप्त हो।

२२१ स्वस्य अशिवस्य पितुः आयुधानि मायाः अमुष्णात्— (४०१) देव सोमने अपने अभद्र काम करनेवाले पिताके शस्त्रास्त्रोंको और मायाओंको नष्ट किया।

२२२ अस्य प्रणीतयः मह्वीः— (४०६) इस ईश्वरकी संचालक शक्तियां बहुत हैं।

२२३ अस्य प्रशस्तयः पूर्वीः— (४०६) इसकी प्रशंसायें सनातन कालसे चली आ रही हैं।

२२४ अस्य ऊतयः न क्षीयन्ते— (४०६) इसकी रक्षाके साधन भी कभी कम नहीं होते।

२२५ पृतनाषहः वीरस्य हस्तयोः विश्वानि वसूनि — (४०६) शत्रु सैनिकोंका पराभव करनेवाले वीरके हाथोंमें सब प्रकारके धन रहते हैं।

२२६ धीभिः धनं जेष्म— (४१५) बुद्धियोंका उपयोग करके हम धन जीतें।

२२७ रक्षो हत्याय गभस्त्योः वज्रं धीष्व— (४२१) राक्षसोंके विनाशके लिए हाथमें शस्त्र धारण करना चाहिए।

२२८ अन्धसः तन्वा— (४३०) मनुष्य अन्नसे पुष्ट बने हुए शरीरसे युक्त हो।

२२९ द्रवत् भद्रा सहस्रिणी रातिः सद्यः दानाय मंहते— (४३५) प्रभुकी शीघ्रतासे कल्याण करनेवाली हजारों प्रकारकी दानशक्ति तत्काल ही सहाय्यार्थ तत्पर रहती हैं।

२३० सुवीर्यस्य पतयः स्याम्— (४६२) हम उत्तम सामर्थ्यके स्वामी बनें।

२३१ यज्ञियस्य सुमतौ स्याम— (४६३) हम पूजनीय पुरुषकी उत्तम बुद्धिके अनुकूल व्यवहार करें।

२३२ भद्रे सौमनसे अपि स्याम— (४६३) हमारा मन उत्तम और कल्याणकारी हो।

२३३ रूपं रूपं प्रति रूपः बभूव— (४६८) प्रत्येक रूपमें उसी प्रभुका रूप है।

२३४ इन्द्रः मायाभिः पुरुरूप ईयते— (४६८) प्रभु अपनी अनन्त शक्तियोंसे अनेकरूप बनता है।

२३५ अगव्यूति क्षेत्रं आ अगन्म, उर्वी सती भूमिः अंहूरणा अभूत्— (४७०) गायोंसे रहित क्षेत्रमें जब हम जाए तो हमें वहांकी पृथ्वी विस्तीर्ण होनेपर भी शत्रुओंके युद्धक्षेत्रके समान प्रतीत हुई। गायोंसे रहित प्रदेश विस्तीर्ण होते हुए भी उजाड उजाडसे प्रतीत होते हैं।

२३६ गो-इष्टौ प्रचिकित्स— (४७०) गायोंके प्राप्त होने पर उनकी अच्छी तरह देखभाल करनी चाहिए और उनकी अच्छी चिकित्सा करनी चाहिए।

२३७ वृषा अजर महान् अर्चिषा विभाति— (४८४) बलवान्, जरारहित और जो महान् होता है, वह तेजसे प्रकाशित होता है। (निर्बल और जराग्रस्त कभी भी तेजस्वी नहीं हो सकता)

२३८ महान् देवान् यजासि— (४८५) स्वयं महान् होकर ज्ञानियोंका सत्कार करना चाहिए।

२३९ नव्यसा वचः सबर्दुघां धेनुं आ— (४९१) नवीन और कोमल शब्दोंसे दुधारु गायको बुलाना चाहिए। गायको कठोर शब्दोंसे नहीं बुलाना चाहिए। उसे कठोर शब्दोंसे बुलाने पर गायपर बुरा परिणाम होता है।

२४० अत्रः अमृत्यु— (४९१) दूध मृत्युको दूर करनेवाला है।

२४१ सुम्नैः एव यावरी— (४९३) गाय सुखोंसे युक्त होकर संचार करती है अर्थात् गायें जिन प्रदेशोंमें संचार करती हैं, वे प्रदेश सदा सुखमय होते हैं।

२४२ वनस्पतिं मा उद् वृहः— (४९८) वनस्पति अर्थात् वृक्षादिको न उखाडा जाए।

२४३ सख्यं अवृकं अस्तु— (४९९) मित्रता कुटिलता रहित हो।

२४४ मर्त्यैः परः असि— (५००) सबका पोषक देव मनुष्योंकी अपेक्षा बहुत श्रेष्ठ है।

२४५ श्रिया देवैः समः— (५००) सम्पत्तिमें अन्य देवोंके समान है!

२४६ सः पूषा नः शुरुधः चन्द्राग्रा रासत्— (५११) वह पूषा हमें शोकको दूर करनेवाली और आनन्द देनेवाली वाणियां दें।

२४७ आपः मानुषीः— (५२५) जल मनुष्योंका हित करनेवाले हैं।

२४८ मातृतमाः भिषजः स्थ— (५२५) ये जल माताओंसे भी अधिक प्रेमसे रोग दूर करनेवाले हैं।

२४९ सूरः गर्तेषु ऋतु वृजिना च पश्यन् अभि चष्टे— (५४५) वह सूर्य इस विश्वमें सरलता और कुटिलताको देखता हुआ प्रकाशित होता है।

२५० अर्यः एवान्— (५३५) वही सच्चा शासक है।

२५१ अन्यकृतः एनं मा भुजेम— (५४०) दूसरोंका किया हुआ पाप हमें न भोगना पडे।

२५२ यत् चयध्वे तत् मा कर्म— (५४०) जिसके लिए तुम दण्ड देते हो, वैसा कर्म हम न करें।

२५३ अतियाजस्य यष्टा नि हीयताम्— (५५०) अविधिपूर्वक कर्म करनेवाला विनष्ट हो जावे।

२५४ यः ब्रह्म अति मन्यते, निनित्सात्, तस्मै तपूंषि वृजिनानि सन्तु— (५५१) जो ज्ञानसे द्वेष करे और ज्ञानकी निन्दा करे, उसको ज्वालायें जलानेवाली हों।

२५५ ब्रह्मद्विषं द्यौः अभि शोचतु— (५५१) उस ज्ञानसे द्वेष करनेवालेको यह द्युलोक संतप्त करे।

२५६ ब्रह्मणः गोपां आहुः —(५५२) सोमको ज्ञानका रक्षक कहते हैं।

२५७ ब्रह्मद्विषे तपुषे हेतिं अस्य —(५५२) ज्ञानसे द्वेष करनेवालेको अच्छा दण्ड देना चाहिए।

२५८ विश्वदानीं सुमनसः स्याम— (५५४) हम सदा मनसे उत्तम विचार रखें।

२५९ अमृतस्य सूनवः — (५५८) मनुष्य अमर ईश्वरके पुत्र हैं।

२६० ऋतावृधः देवः— (५५९) सत्यमार्गकी वृद्धि करनेवाले ही देव कहलाते हैं।

२६१ परिवक्ष्याणि वचांसि मा वोचं— (५६१) निन्दाके भाषण मैं कभी न करूं।

२६२ वामं गृहपतिं अभिनय— (५६८) प्रशंसनीय गृहस्थीके पास ही हम जाएं।

२६३ आदित्सन्तं दानाय चोदय— (५६९) दान न देनेवाले मनुष्यको दान देनेके लिए प्रेरित कर।

२६४ पणेः मनः वि म्रद— (५६९) व्यापार करनेवाले बनियेके मनको जरा नरम कर।

२६५ पणीनां हृदया आरया परितृन्धि— (५७१) कंजूसोंके हृदयोंको आरोंसे काट।

२६६ आरया पणेः वि तुद— (५७२) आरेसे पणिको काट।

२६७ हृदि प्रियं इच्छ— (५७२) हृदयमें सबका भला करनेकी इच्छा करनी चाहिए।

२६८ यः इदं एव इति ब्रवत्—(५७७) "जो यह ऐसाही है" इस प्रकार सच बोलता है, वही सच्चा मनुष्य है।

२६९ धीवतः सखा— (५९८) बुद्धिपूर्वक कार्य करनेवालेका यह पूषा देव मित्र है।

२७० देवनिदः प्रजां विश्वस्य मायिनः प्रजां निबर्हय— (६१६) हे देवी सरस्वती! ईश्वरकी निन्दा करनेवालोंका तथा सब कपटी लोगोंका तू नाश कर।

२७१ अपसा श्रुधीयतः जनान् महित्वा चित् संयतः— (६१५) कर्म करके जो श्रेयस प्राप्त करनेके इच्छुक है, उन्हें मित्र और वरुण ये दोनों देव उत्तम कर्मकी तरफ प्रेरित करते हैं।

२७२ स्पशः अदब्धासः अमूरः— (६९७) दूत किसीसे भी न दबनेवाले और चतुर हों।

२७३ अवाताः युवतयः न मृष्यन्ते— (६९९) अविवाहित तरुणियां अपना अकेलापन सहन नहीं कर पातीं।

२७४ जिह्वया सदं इदं सुमेधा आ— (७००) जिह्वासे ऐसा उपदेश करना चाहिए कि जिसे सुननेवाले उत्तम बुद्धिमान् बनें।

२७५ यत् सत्यः अरतिः ऋते आभूत्— (७०८) जब देवोंका सत्यभक्त सदाचारी होता है, तब उसकी बुद्धि बढती है।

२७६ तत् महित्वं यत् दाशुषे अंहः विचयिष्ठं— (७००) यह देवोंका ही महत्व है कि वे दाताको निष्पाप बनाते हैं।

२७७ वां प्रियं धाम प्र स्फूर्धन् युवधिता मिनन्ति, न देवासः, न मर्ताः, न अप्यः पुत्राः— (७०१) हे देवो ! जो आपके प्रिय स्थानसे ईर्ष्या करते हैं, और आपके नियमोंको तोडते हैं, वे निश्चयसे न देव हैं, न मनुष्य हैं और कर्मकुशल पुत्र ही हैं।

२७८ यत् गावः अनुस्फुरान् छर्दिषः अभिष्टिः— (७०२) जिस घरके चारों ओर गायें घूमती हों, ऐसा घर चाहिए।

२७९ ऋजिष्यं धृष्णुं— (७०३) सरल व्यवहार करनेवाले मनुष्य जहां रहते हों, ऐसा घर हमें चाहिए।

२८० यत् रणे वृषणं युनजन्— (७०३) जो घर युद्धमें बलवान् तरुणको भेज सकता हो, ऐसा घर चाहिए। प्रत्येक घरमें ऐसे तरुण तैयार रहें कि जो समय पडनेपर युद्धमें जा सके।

२८१ यज्ञः महः इषे, महे सुम्नाय आववर्तत्— (७०४) यज्ञ बहुत अन्न प्राप्त करनेके लिए और अतिशय सुख प्राप्त होनेके लिए हो।

२८२ देवताता श्रेष्ठाः शूराणां शविष्ठा, मघोनां मंहिष्ठा— (७०५) देवोंमें यज्ञ करनेवाले श्रेष्ठ हैं, शूरवीरोंमें बलवान् श्रेष्ठ हैं, और धनिकोंमें उत्तम दान देनेवाले श्रेष्ठ हैं।

२८३ तुतुरिः द्युम्ना सद्यः प्र तिरते— (७१०) शीघ्रतासे कार्य करनेवाला अपने तेजसे शत्रुओंको पार करता है।

२८४ धर्मणः परि प्रजाभिः जायते— (७२५) जो धर्ममार्ग पर चलता है, वह सन्तानोंसे युक्त होता है।

२८५ या नः गयं आ विवेश, अमीवा विपूचीं विवृहतं— (७७४) जो हमारे घरमें प्रविष्ट हुए हैं, वे सबके सब रोग हमसे दूर हों।

२८६ यत् एनः कृतं, अस्मत् अवस्यतं मुंचतं— (७४५) जो हमने पाप किया हो, वह हमसे दूर हो।





ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

षष्ठ मंडल

ऋषिवार सूक्त संख्या

ऋषि	संख्या
बार्हस्पत्यो भरद्वाजः	५९
सुहोत्रो भारद्वाजः	२
शुनहोत्रो भारद्वाजः	२
नरो भारद्वाजः	२
शंयुर्बार्हस्पत्यः	४
गर्गो भारद्वाजः	१
ऋजिश्वा भारद्वाजः	४
पायुर्भारद्वाजः	१
	७५

ऋषिवार मंत्र संख्या

ऋषि मंत्र	संख्या
बार्हस्पत्यो भरद्वाजः	५२९
शंयुर्बार्हस्पत्यः	९३
ऋजिश्वा भारद्वाजः	६३
गर्गो भारद्वाजः	३१
पायुर्भारद्वाजः	१९
सुहोत्रो भारद्वाजः	१०
शुनहोत्रो भारद्वाजः	१०
नरो भारद्वाजः	१०
	७६५

देवतावार मंत्र संख्या

देवता मंत्र	संख्या
इन्द्रः	२७९
अग्निः	११२
विश्वे देवाः	६५
पूषा	४०
इन्द्राग्नी	३५
अश्विनौ	२२
वैश्वानरोऽग्निः	२१
मरुतः	१८
सरस्वती	१४
उषाः	१२
इन्द्रावरुणौ	११
मित्रावरुणौ	११
इन्द्राविष्णू	८
गावः	८
इन्द्रापूषणौ	६
द्यावापृथिवी	६
सविता	६
इन्द्रासोमौ	५
सोमः	५
इषवः	४
रथः	४

सोमारुद्रौ	४
सार्जंयः प्रस्तोकः	४
वृबुस्तक्षा	३
बृहस्पतिः	३
दुन्दुभिः	२
दुन्दुभीन्द्रौ	१
अश्वाः	१
आर्त्नी	१
इषुधिः	१
ज्या	१
देवब्रह्माणि	१
देवभूमिबृहस्पतीन्द्राः	१
द्यावाभूमी पृश्निर्वा	१
धनुः	१
प्रतोदः	१
ब्राह्मणपितृसोमद्यावापृथिवी पूषाणः	१
युद्धभूमिकवचब्रह्मणस्पत्यादयः	१
रथगोपाः	१
वर्म	१
वर्मसोमवरुणाः	१
सारथिरश्मयः	१
हस्तघ्नः	१
	७६५

इस प्रकार इस मंडलमें ऋषि और देवताओंकी संख्या है। इस मंडकमें मानवजीवनके लिए उपयोगी जो उपदेश मंत्रों द्वारा दिए गए हैं, उन्हें हम अब देखें।

प्रभुके विश्वमें आनन्द

मनुष्यके लिए प्रभु परोक्ष है, वह प्रभुका साक्षात् दर्शन इन आंखोंसे नहीं कर सकता। वह तो मनकी आंखोंसे ही देखा जा सकता है, पर वह भी सर्वसाधारण मनुष्योंके वशकी बात नहीं। लाखों, करोडोंमें ही एक ऐसा व्यक्ति निकलता है कि जो योगके द्वारा अपने मनकी आंखोंको खोलकर उस परम प्रभुका साक्षात् दर्शन किया करता है। पर उसका बनाया हुआ विश्व सभी देख और जान सकते हैं। जब मनुष्य कुछ जानने योग्य होता है तो वह सूर्यको उदय और अस्त होता हुआ, नदियोंको अनवरत बहता हुआ, तारोंको झिलमिल करता हुआ देखता है, तब इस संसारके सौन्दर्यसे अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकता। सारे संसारमें उसे आनन्द ही आनन्द प्रतीत होता है। वस्तुतः है भी यह विश्व आनन्दसे भरपूर। इस विषयमें ऋषि भरद्वाज कहते हैं—

१ ते भद्रायां सन्दृष्टौ रणयन्त— (४) प्रभुके कल्याणकारी विश्वके सौन्दर्यमें हम आनन्द प्राप्त करते रहें।

ऋषि भरद्वाजके इस कथनसे उन अवैदिक सिद्धान्तोंकी, कि जो संसारको कारागार, बंधनरूप और हेय समझते हैं, असत्यता सिद्ध हो जाती है। जो इस विश्वको अकल्याणकारी, बन्धनकारक, माया, आदि समझते और लोगोंको इस संसारको छोडकर मुक्ति या निर्वाणकी तरफ प्रवृत्त होनेका उपदेश करते हैं, वे सत्यतासे बहुत दूर हैं। यह विश्व तो कल्याणकारी है। मुक्ति या निर्वाण प्राप्त करनेसे पूर्व उन्हें भी इसी संसारमें आना पडता है। महात्मा बुद्ध, महावीर आदि जितने भी मोक्षाधिकारी हुए हैं, उन्हें भी मोक्षकी प्राप्तिके लिए इसी संसारमें आना पडा। संसारमें आए बिना मोक्ष नहीं। इस प्रकार संसार कल्याणकारी है। जब यह कल्याणकारी है तो यह आनन्द रहित कैसे होगा। आनन्दरहित पदार्थ कल्याणकारी कैसे हो सकता है? इसके अलावा जब प्रभु आनन्दमय हैं, तब उनके द्वारा बनाया गया विश्व आनन्दरहित कैसे हो सकता है? प्रत्यक्ष प्रमाण भी इसका साक्षी देता है। जल प्यासेका आनंद देता है, अग्नि शैत्यको दूर कर तथा अन्न पकाकर हमें आनंद देता है, वायुके बिना तो क्षणभर भी जीवन नहीं रह सकता, पृथ्वी हमें आधार देती है, हमारा पालन पोषण करती है, आकाश हमें चलने फिरनेके लिए अवकाश देकर हमें जीवन धारण करनेके कार्यमें समर्थ बनाता है। इस प्रकार जब पांचों भूत आनन्ददायी हैं, तो उन्हींसे बना हुआ यह विश्व आनन्दरहित कैसे हो सकता है? इसलिए विश्वको आनन्द-रहित मानना वैदिक सिद्धान्तके प्रतिकूल है। यह प्रभुका विश्व है, यह विराट् प्रभुका शरीर है, यह सूक्ष्मतम प्रभुका स्थूलतम आवरण है। इस सबमें आनन्दमय प्रभु समाया हुआ है। यह सब प्रभुकीही महिमा है। प्रभुकी महिमासेही यह विश्व महिमावान् है। सभी सूर्यचन्द्रादि ग्रह उपग्रहोंमें उसीकी महिमा जगमगा रही है। विश्वका प्रत्येक अणु उसकी महिमा गान कर रहा है। जरा कान देकर सुनो, वह क्या कह रहा है।

प्रभुकी महिमा

विश्वका प्रत्येक परमाणु प्रभुकी महिमा वेदभगवान्के शब्दोंमें इस तरहसे गा रहा है ।

१ पुरुमायस्य महित्वं दिवः पृथिव्याः मह्ना अति रिरिचे— (२३१) श्रेष्ठ, बुद्धिमान् और कर्ममें कुशल प्रभुकी महिमा द्युलोक और भूलोकके विस्तारसे भी बड़ी है।

उसकी महिमाका वर्णन करना भी असंभव है। वही प्रातः सूर्यके रूपमें उदय होकर अन्धकारका नाश करता है।

२ सः इत् क्ष-वयुनं ततन्वत् तमः सूर्येण वयुनवत् चकार— (२३२) वही प्रभु फैले हुए घने अन्धकारको सूर्यके प्रकाशसे दूर करके विश्वको प्रकाशमय करता है ।

३ त्वावान् त्वत् अन्यः न अस्ति— (२३९) इस प्रभुके समान सामर्थ्यवान् और कोई नहीं है ।

४ शचीवतः शाकाः गवां स्रुतयः संचरणीः— (२६६) उस सामर्थ्यशाली प्रभुकी शक्तियां किरणोंकी तरह सर्वत्र संचार करती हैं ।

इस सर्व महिमामय प्रभुके रूपको जानना भी सबके लिए आसान नहीं है । कुछ लोग जो अल्पज्ञानी हैं, इस विश्वमें अनेक चमत्कार देखकर आश्चर्यचकित होते हैं और—

५ अवरासः तं पृच्छन्तः— (२३५) वे अल्पज्ञानी मनुष्य उस प्रभुके बारेमें पूछते हैं। अनेक तरहकी जिज्ञासायें करते हैं । तब

६ ते पराणि प्रत्ना श्रुत्या अनु— (२३५) ज्ञानी मनुष्य इस प्रभुके श्रेष्ठ और पुरातन कर्मोंका वर्णन करते हैं।

प्रभु जो जीवको इस संसाररूपी बंधनमें डालते हैं, वह भी जीवके लाभके लिएही होता है । जो जो प्रभु करते हैं, वह मनुष्यके कल्याणके लिएही करते हैं। जिसे मनुष्य अमंगल समझता है, उसमें भी कोई न कोई मंगल अवश्य छिपा हुआ होता है। अतः ऋषिका कथन है-

७ ते दामन्वन्तः अदाम्नानः— (२६६) प्रभुके बन्धन भी बन्धन न होनेके समान ही होते हैं। उसके बन्धन भी उन्नतिकारक होते हैं । उनमें बंधकर भी मनुष्य उन्नत होता है ।

वेद इस सिद्धान्तका भी खण्डन करता है कि यह संसार स्वयं बन गया। वह स्पष्ट कहता है—

८ हस्तयोः क्षृग्रीः आ अधिथाः— (२१७) वही प्रभु अपने हाथोंसे सब विश्वको रचता है। वह केवल इसे रचता ही नहीं अपितु इस विश्वके—

९ रूपं रूपं प्रतिरूपः बभूव— (४१८) प्रत्येक रूपमें उसी प्रभुका रूप है ।

१० इन्द्रः मायाभिः पुरुरूपः ईयते— (४१८) वह ऐश्वर्यशाली प्रभु अपनी अनन्त शक्तियोंसे अनेक रूप बनता है। इसलिए वह प्रभु इस विश्वकी हमेशा रक्षा किया करता है । उसके रक्षा करनेकी अनेक शक्तियां हैं-

११ वृक्षस्य वयाः ऊतयः वि रुरुहुः— (२६५) इस प्रभुके संरक्षण वृक्षकी शाखाओंकी तरह चारों ओर फैल रहे हैं अर्थात् प्रभुकी संरक्षणशक्ति सर्वत्र व्याप्त हो रही है।

कर्म कुशल

इतना विशाल या अनन्त विश्व जिस कुशलतासे चल रहा है, वह भी आश्चर्यकारक है । सभी ग्रह अपने केन्द्रमें तेजीसे घूमते हुए भी एक दूसरेसे टकराते नहीं। अपने अपने मार्ग पर अनन्तकालसे चले आ रहे हैं और अनन्तकाल तक चले जाएंगे । विश्वकी इस गतिके पीछे उसी प्रभुकी कार्य कुशलता है। वह भी सदा कार्यरत रहता है—

१२ अद्य अन्यत् कर्वरं अन्यत् उ श्वः— (२६७) ईश्वर आज एक कार्य करता है और कल दूसरा कार्य करता है । वह कभी शान्त या क्रियाहीन होकर नहीं बैठता । उसकी इस क्रियाशीलताके कारण ही यह संसार चल रहा है।

१३ इन्द्रः सत् असत् मुहुः आ चक्रिः— (२६७) प्रभु सत् और असत् कर्म सदा करता रहता है । यहाँ असत् कर्म और सत्कर्म दुष्ट कर्म तथा श्रेष्ठ कर्मके वाचक नहीं हैं, क्योंकि परमात्मा दुष्ट कर्म कभी नहीं करता । अतः यहां सत् और असत् कर्मका अर्थ होगा उन्नतिकारक कर्म और अवनतिकारक कर्म । प्रभु सज्जनोंके लिए उन्नतिकी ओर ले जानेवाले कर्म करता है अर्थात् उन्हें उन्नतिके मार्गमें प्रेरित करता है और दुष्टोंके लिए अवनतिके कर्म करता है। उन्हें ऐसे मार्गमें प्रेरित करता है कि जिस पर चलकर उनकी निश्चयसे अवनति होती है । इस कर्मके कारणही वह अमर है ।

१४ शरदः न जरन्ति, मासाः द्यावः न अवकर्शयन्ति— (२६९) वर्ष, महीने और दिन भी इसे कृश या वृद्ध नहीं बना सकते । वह अनन्तकालसे विद्यमान है, तथापि वह वृद्ध नहीं होता, क्योंकि वह काल और स्थानके व्यवधानसे परे है। इसी सिद्धान्तको योग सूत्रमें "स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्"

कहकर स्पष्ट किया है। वह प्रभु प्राचीनसे प्राचीन ऋषियोंका भी गुरु है, क्योंकि काल या समयका इस पर कोई परिणाम नहीं होता। वह सदा तरुण रहता है और सतत कर्म करता रहता है। इसी कर्मके कारण उसमें तरुणों सा उत्साह सदा बना रहता है।

१५ वृद्धस्य अस्य तनूः शस्यमाना वर्धताम्— (२११) इस सनातन प्रभुका शरीर सदा ही प्रशंसित होकर बढता है। सदा ही इसका सामर्थ्य बढता रहता है, इसलिए—

१६ ते शवसः अन्तः न धायि— (३१०) इस प्रभुके सामर्थ्यका कोई अन्त नहीं है।

इसप्रकार साधक या मनुष्य जब सर्वत्र प्रभुकी महिमाका अनुभव करता है, तब बरवस ही उसका मन प्रभुकी उपासनाकी तरफ खिंचने लगता है। प्रभुकी उपासनासे साधकका ही मन उत्तम होता है।

प्रभुकी उपासना

१ देवस्य पदं नमसा व्यन्तः— (४) प्रभुके पवित्र पदको नम्रतापूर्वक की गई उपासनासे ही प्राप्त किया जा सकता है।

२ यज्ञियानि नामानि दधिरे— (४) प्रभुके पवित्र नामोंका ध्यान करते रहें।

३ मर्तः शशमे— (९) मनुष्य ईश्वरकी स्तुति करके शान्ति प्राप्त करे।

४ मर्तः देवं दुवस्येत्— (१७१) मनुष्य प्रभुकी सेवा करे।

प्रभुकी उपासना करनेसे मनुष्यको अनेक तरहके ऐश्वर्योंकी प्राप्ति होती है।

प्रभुकी उपासनासे ऐश्वर्यकी प्राप्ति

१ श्रिये ते पादाः दुवः आ मिमिक्षुः— (३०८) ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए हम प्रभुके चरणोंकी सेवा करते हैं।

२ विधते पुरूणि वसु त्वे सन्तु— (१२) उपासकको देनेके लिए प्रभुके पास बहुत सारा धन है।

३ सः देवयुः उरुज्योतिः नशते— (२५) देवका भक्त विस्तृत तेज प्राप्त करता है।

४ श्रिये ते पादाः दुवः आ मिमिक्षुः— (३०८) ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए हम प्रभुके चरणोंकी सेवा करते हैं।

प्रभुकी उपासना करनेसे हर तरहके ऐश्वर्य और इहलौकिक और पारलौकिक दोनों तरहके धन प्राप्त हो सकते हैं। वह अपने उपासककी हरतरहसे रक्षा करता है। क्योंकि—

५ मनुष्याणां सदं इत् मातापिता— (५) वह ईश्वर ही मनुष्योंका सच्चा मातापिता है। अन्य मातापिता तो जन्म देनेके कारण मातापिता हैं, पर बिना किसी स्वार्थके सबकी रक्षा और सबका पालन पोषण करनेके कारण वह प्रभु ही सबका सच्चा मातापिता है।

इस प्रकार प्रभुकी उपासनासेही मनुष्य हर तरहका ऐश्वर्य प्राप्त कर सकता है।

उत्तम बुद्धिकी प्रशंसा

मनुष्यके अन्दर सदा उत्तम बुद्धि रहे। वह दुष्ट बुद्धिका कभी उपयोग न करे। उत्तम बुद्धिकी प्रशंसा करते हुए वेद कहता है—

१ धियः होता अभवः— (१) उत्तम बुद्धिसे ही मनुष्य होता बनता है। अपनी उत्तम बुद्धिके कारण मनुष्य सबसे श्रेष्ठ होता है। अपनी उत्तम बुद्धिका उपयोग करके वह अपनी उन्नति कर सकता है।

२ भद्रयां सुमतौ आ यतेमहि— (१०) हम उत्तम बुद्धिके संरक्षणमें अपनी उन्नतिके लिए प्रयत्न करें। इस उत्तम बुद्धिका उपयोग करके प्रभुकी प्राप्ति भी की जा सकती है।

३ त्वे वष्टि धिषणा धन्या— (८५) प्रभुकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली बुद्धि धन्य है।

४ धीवतः सखा— (५९८) वह प्रभु भी उत्तम बुद्धिवालोंका ही मित्र बनता है। इसलिए—

५ धीतिं सुमतिं आ वृणीमहे— (११५) हम धारणावती बुद्धि तथा सुमतिको अपने अन्दर धारण करें।

६ शुचतः धीः भीमा आ एति— (२७) तेजस्वी वीरकी बुद्धि भीरु मनुष्यको भयानक दीखती है। जो दुष्ट हैं, वे सदा सज्जनसे घबराया करते हैं।

ज्ञानसे वैभवकी प्राप्ति

१ महः राये चितयन्तः— (२) विशेष वैभव प्राप्त करनेके लिए ज्ञानको प्राप्त करें।

२ जनानां उभयासः रायः— (५) मनुष्योंको

ऐहिक धन और पारमार्थिक ज्ञानरूप धन दोनों तरहके धन प्राप्त करने चाहिए।

४ तरण ! त्वं चेत्यः त्राता भूः— (५) हे तारक प्रभो ! तू लोगोंको ज्ञानवान् बनाकर उनका तारण करता है।

४ त्वा ऊतः स मर्तः विश्वा वामा दधते — (९) ईश्वरसे सुरक्षित हुआ वह मनुष्य सब धनोंको प्राप्त करता है।

५ कवये धीर्ति आनट्, तं पासि, पिपर्षि— (११०) ज्ञानीकी सेवाके लिए जो कर्म करता है, उसकी सुरक्षा वह ज्ञानी करता है और उसकी इच्छायें वह पूर्ण करता है।

समाजमें ज्ञानका प्रचार अत्यन्त आवश्यक है। समाजमें कोई भी अज्ञानी न रहे। इसलिए राष्ट्रमें सर्वत्र ज्ञानके प्रचारक हों। इन प्रचारकोंमें कौन कौनसे गुण हों, यह आगे बताया गया है।

ज्ञानका प्रचारक कैसा हो ?

१ विश्वायुः अमृतः अतिथिः जातवेदाः— (३४) मनुष्य पूर्णायु संपन्न, रोग अपमृत्यु आदिसे रहित, अतिथिके समान पूज्य और ज्ञानका प्रचार करनेवाला हो।

२ भानुमद्भिः अर्कैः सूर्यः न— (३८) तेजस्वी किरणोंसे जिस तरह सूर्य प्रकाश फैलाता है, उसी तरह मनुष्य ज्ञानको फैलावे।

३ प्रचेताः पुरुवारः अध्रुक्— (४१) ज्ञानी मनुष्य विज्ञानमें निपुण, अनेकोंके द्वारा प्रशंसनीय तथा द्रोह न करनेवाला हो।

४ सुक्रतुः कविः वैश्वानरः— (६१) उत्तम कर्म करनेवाला ज्ञानी सब मनुष्योंका हित करनेवाला होता है।

५ ज्योतिषा तमः अन्तर्वावित् अकृणोत्— (६४) अपने प्रकाशसे यह अन्धकारको दूर करे। नेता ज्ञानका प्रचार करके लोगोंके अज्ञानको दूर करे।

६ श्याव्याभ्यः अंकूयन्तं असूरं आनयत्— (१२३) उन्नतिशील या उन्नतिका मार्ग दर्शानेवाले ज्ञानीकी सहायतासे हम मनुष्योंको अन्धकारमेंसे निकालकर प्रकाशमें लाते हैं।

७ पथिकृत् विदानः स्वः सुगेषु उत दुर्गेषु नः पुरएता बोधि— (२४१) मार्ग बनानेवाला ज्ञानी सुगम तथा दुर्गम मार्गोंमें लोगोंका अग्रगामी नेता होकर मार्गदर्शन करे, और ज्ञानपूर्वक योग्य रीतिसे उन अनुयायियोंको चलाए और इष्ट स्थान तक पहुंचावे।

ज्ञानका प्रचार करनेवाला मनुष्य तेजस्वी और जिस तरह सूर्यकी किरणें चारों ओर फैलती हैं, उसी तरह ज्ञानकी किरणें चारों ओर फैलानेवाला हो। ऐसे ज्ञानका प्रचार करनेवालेका सर्वत्र सम्मान हो। पर जो ज्ञानसे द्वेष करता हो, उसका नाश हो।

ज्ञानसे द्वेष करनेवालेकी दुर्दशा

१ यः ब्रह्म अति मन्यते, निनित्सात्, तस्मै तपूंषि वृजिनानि सन्तु— (५५१) जो ज्ञानसे द्वेष करे और ज्ञानकी निन्दा करे, उसे ज्वालायें जलानेवाली हों।

२ ब्रह्मद्विषं द्यौः अभिशोचतु— (५५१) उस ज्ञानसे द्वेष करनेवालेको यह द्युलोक संतप्त करे।

३ ब्रह्मद्विषे तपुषे हेतिं अस्य— (५५२) ज्ञानसे द्वेष करनेवालेको अच्छा दण्ड देना चाहिए।

मनुष्य ज्ञानसे कभी द्वेष न करे। ज्ञान परमात्माका प्रतीक है, इसलिए ज्ञानसे द्वेष करनेवाला मानों परमात्मासे ही द्वेष करता है। अतः ज्ञानसे द्वेष न करके उसका सर्वत्र प्रचार ही करना चाहिए।

तेजप्राप्तिका उपाय

१ मित्रमहाः शोचिषा (३०) मित्रके महत्त्वको बढानेवाला, उसके गुणोंको प्रकट करके सर्वत्र उसका यश बढानेवाला, मनुष्य विशेष तेजसे युक्त होता है।

२ अध्वरस्य होतः पावकशोचे (१२०) हिंसारहित कर्मका संपादन करनेवाला पवित्र तेजसे युक्त होता है।

जो अपने मित्रके दुर्गुणोंको छिपाकर सर्वत्र उसके उत्तम गुणोंका ही बखान करता है, तथा हिंसारहित उत्तम कर्मोंको करता है, वह तेजस्वी होता है।

यज्ञकी महिमा

१ ऋता यजासि, महिना विभूः— (१२०, मनुष्य सत्यपूर्वक यज्ञ करे और अपनी महिमासे सर्वत्र प्रभावी बने।

२ मानुषे जने विश्वेषां यज्ञानां होता हितः— (१२६) मानवी समाजमें सब यज्ञोंको करनेवाला मनुष्य हितकारी होता है।

३ होता मनुर्हितः— (११४) हवन करनेवाला मनुष्योंका हितकारी होता है।

४ इयक्षन्तः मर्ताः ते अस्तृतस्य कद्दा न मिनन्ति —(२३२) यज्ञ करनेवाले मनुष्य प्रभुके धामका नाश नहीं करते।

५ यज्ञः इन्द्रं वर्धात्— (२५५) यज्ञ प्रभुकी महिमाको बढाते हैं।

६ अहेळमानः यज्ञं उप याहि— (२३७) क्रोध-रहित होकर प्रसन्न मनसे यज्ञमें सम्मिलित होना चाहिए।

यज्ञ करनेसे हवाके अन्दर घूमनेवाले रोगके कीटाणु नष्ट हो जाते हैं और हवा शुद्ध होती है। इस शुद्ध हवासे मनुष्यका स्वास्थ्य बढता है। इस प्रकार यज्ञ करनेसे मनुष्योंका हित होता है।

अग्निकी उत्पत्ति और महिमा

१ वाघतः विश्वस्य मूर्ध्नः पुष्करात् अधि अथर्वा त्वां निरमन्थत— (१२८) आधाररूप विश्वके शिरस्थानमें रहनेवाले कमलसे अथर्वाने मंथन करके उत्पन्न किया।

२ ते पूर्तं अक्षिपत् नहि भुवत्— (१४१) अग्निका प्रज्वलित तेज आंखका विनाशक नहीं होता।

सब विश्वका आधाररूप द्युलोकमें जो कमलके आकारका सूर्य है, उसे मथकर अथर्वा अर्थात् प्रभुने इस अग्निकी उत्पत्ति की। इसलिए अग्नि सूर्यका ही एक भाग है। इस अग्नि या सूर्यके प्रकाशसे मनुष्यके आंखोंकी ज्योति नष्ट नहीं होती। अपितु आंखोंका प्रकाश बढता है। ओगलेवाडीमें ओगले ग्लास वर्क्स नामका एक कारखाना है, उस कारखानेमें काम करनेवालोंसे एक महत्वपूर्ण बात यह ज्ञात हुई कि जो मजदूर आगकी भट्टीके सामने काम करते हैं, उनकी आंखें अन्य भागोंमें काम करनेवाले लोगोंकी अपेक्षा अच्छी थीं। इससे ज्ञात होता है कि अग्नि और सूर्यकी किरणोंसे आंखोंकी ज्योति बढती है।

यह अग्नि शब्द अग्रणीका अपभ्रंश है। निरुक्तकार यास्कने " अग्निः कस्मात् ? अग्रणीः भवति " कहकर अग्नि शब्दकी व्युत्पत्ति अग्रणीसे बताई है। इसलिए इस अग्निके मंत्रोंमें अग्रणीके गुण बताये गए हैं।

अग्रणीके गुण

१ मित्रमहः तविष्ठः अग्निः— (४४) अग्रणी मनुष्य अपने मित्रोंका महत्व बढानेवाला, शत्रुओंको संताप देनेवाला और तेजस्वी हो।

२ अदब्धः गोपाः अमृतस्य रक्षिता— (९१) किसी शत्रुके सामने न दबनेवाला वीर सबका संरक्षण करता है और अमरत्वका रक्षक भी वही है।

३ वैश्वानरः विश्वं वृष्ण्यं अधत्त - (९४) सब मानवोंका हित करनेवाला नेता अग्रणी सब बल अपनेमें धारण करता है।

४ अजरः राजा— (९६) शासक या अग्रणी जरारहित हो। वह निर्बल न हो। वह वृद्धावस्थामें भी तरुणके समान कार्य करे।

५ अदब्धेभिः गोपाभिः सूरीन् पाहि— (९८) राजा अपनी अदम्य रक्षा-शक्तिसे विद्वानोंकी रक्षा करे।

६ अग्निः प्रचेताः वेधस्तमः ऋषिः— (१०२) अग्रणी नेता ज्ञानी, कर्मप्रवीण और दूरदर्शी हो।

७ सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चं— (११६) सुन्दर और आदर्शरूपसे प्रगति करनेवाला नेता पूजनीय होता है।

राजा या अग्रणी राष्ट्रका कर्णधार होता है। उसी पर राष्ट्रकी उन्नति या अवनति अवलम्बित रहती है। इसलिए राजाको सभी उत्तम गुणोंसे युक्त होना चाहिए। राजाकी मित्रमंडली सज्जनोंसे संपन्न हो, राजा भी अपने मित्रोंके साथ उत्तम व्यवहार करे। मनु महाराजने राजाको मित्रोंके सम्मतिके अनुसार कार्य करनेके लिए कहा है। पर राजा भी अपने मित्रोंको चुननेमें सावधान रहे। वे मित्र खुशामदी न हों, अपितु अपनी उत्तम सम्मति राजाको दें। इस प्रकार समय समय पर अपने मित्रोंकी सम्मति लेकर अपनी प्रजाके हितके कार्यमें सदा तत्पर रहे। अपने राष्ट्रमें राजा ज्ञानियोंकी हरतरहसे रक्षा करे, तथा वह स्वयं भी ज्ञानी और दूरदर्शी हो। ऐसा ही नेता या राजा पूजनीय होता है। वह राजा वीर और साहसी हो, ऐसे वीर राजाकी महिमा बहुत बडी होती है।

वीरकी महिमा

१ तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य धृष्वेः महिमा पृथिव्याः दिवः प्र ररचे— (२००) तेजस्वी श्रेष्ठ और शत्रु-बाधक वीरकी महिमा पृथ्वी और द्युलोकसे भी बढी है। अपने शत्रुओंका नाश करनेवाले वीरका यश सारी पृथ्वीमें तो फैलता ही है, पर द्युलोकमें भी फैलता है अथवा जितना

पृथ्वी और द्युलोकका विस्तार है, उससे भी अधिक इस वीरका यश फैलता है। ऐसा वीर अपने एक भी शत्रुको पृथ्वी पर नहीं रहने देता, इसलिए-

२ पुरुमायस्य शत्रुः न— (२००) अत्यधिक सामर्थ्यशाली वीरका कोई शत्रु नहीं होता।

३ पुरुमायस्य शंयोः प्रतिमानं न अस्ति— (२००) ऐसे बहुत कुशल और सुखशान्ति देनेवाले वीरकी कोई तुलना नहीं है। ऐसा वीर अद्वितीय होता है।

४ पुरुमायस्य शंयोः न प्रतिष्ठि— (२००) उत्तम कुशल और सुखशान्ति देनेवाले वीरोंको दूसरेके आश्रयकी जरूरत नहीं होती। ऐसा वीर अपने ही बाहुबलके आश्रयसे सारे शत्रुओंका नाश करता है।

५ वीळवे न नमते— (२७०) ऐसा वीर सामर्थ्य-शाली शत्रुके आगे भी नहीं झुकता।

६ स्थिराय न नमते— (२७०) स्थिर और दृढ शत्रुके सामने भी नहीं झुकता।

७ ऋष्वाः गिरयः अज्राः— (२७०) बडे बडे पहाड भी इस वीरके लिए सुगम हो जाते हैं।

८ गंभीरे चित् अस्मै गाधं भवाति— (२७०) गहरा सागर भी इसके लिए उथलासा अर्थात् आसानीसे पार करने योग्य हो जाता है।

ऐसे वीरके मार्गमें कोई भी विघ्न बनकर नहीं आ सकता। यदि कोई विघ्न आता भी है तो उसकी यह वीर कुछ भी परवाह नहीं करता। ऐसा वीर—

९ धृतव्रतः— (२०८) व्रतों और नियमोंको धारण करनेवाला हो।

१० ऊती अरिषण्यन् ऊर्ध्वः स्थाः— (२७१) वीर पुरुष दूसरोंकी रक्षा करनेके लिए सदा उद्यत रहे।

ऐसा वीर सर्वत्र पूजा जाता है और प्रजाओंका प्रिय होता है।

प्रजाप्रियका सम्मान

१ विक्षु प्रियः सपर्येण्यः— (६) जो प्रजाजनोंमें प्रिय होता है, उसीकी पूजा होती है।

२ पुरि जूर्यः रण्वः— (१०) नगरमें वृद्ध मनुष्य सबको उपदेश देनेके कारण सबको प्रिय होता है।

३ अमूरं पायुं जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा निषेदिरे— (११४) जो अमर रक्षक, सदा सावधान रहनेवाला, वैभवशाली और प्रजाका पालक है, उसे सभी प्रजाएं नमन करती हैं।

उत्तम शासक या राजा जो होता है, उसे सभी लोग अपने प्राणसे भी अधिक मानते हैं, अपनी जान देकर भी प्रजायें उसकी रक्षा करती हैं। पर यह तभी होता है कि जब वह—

४ चर्षणीनां प्रेतीषणिः— (८) शासक प्रजाजनोंके पास जाकर उनकी परिस्थिति देखनेवाला हो।

राष्ट्रका शासक अपना भेष बदलकर प्रजाके सुख दुःखका पता लगाए और उन दुःखोंको दूर करनेका प्रयत्न करे।

५ उभयान् अनुव्रता विभूषन्— (११५) राजा दोनों तरहकी प्रजाके अनुकूल आचरण करनेवाला होकर सबको सुखी रखे। राज्यमें ज्ञानी-अज्ञानी, सबल-निर्बल आदिके रूपमें दो वर्गकी प्रजायें होती हैं। राजा सबके अनुकूल होकर सबको सुखी रखे।

६ विशः यत् अह्य वेः— (१२०) प्रजा जो चाहती है, वही राजा करे। राजा प्रजाके प्रतिकूल आचरण कभी न करे। प्रजाके प्रतिकूल आचरण करनेवाला राजा अत्याचारी होकर प्रजाओं पर मनमाने अत्याचार करता है, फिर अन्तमें वह प्रजाओंके द्वारा ही मारा जाता है। इसलिए—

७ राजानः शुचिव्रताः— (१४९) राजागण शुद्ध आचरण करनेवाले हों।

८ ते प्रजानः चर्षणयः त्राता उत वरूता भव— (२७९) जो भयसे कांपनेवाली प्रजायें हैं, उनका राजा रक्षक और उद्धारक बने।

९ सत्वा पुरुमायः सहस्वान् पत्यते— (२४२) सत्ववान् अर्थात् सामर्थ्यशाली, अनेक कौशल्योंसे युक्त और शत्रुका पराभव करनेवाला ही सबका स्वामी हो सकता है।

ऐसा शासक अपने राष्ट्रपर उत्तम रीतिसे शासन करे। राष्ट्रमें सभी आर्य हों। सभी श्रेष्ठ हों। दास कोई न हो। जिस राष्ट्र दास्यता या गुलामगिरीकी वृत्ति प्रजाओंमें होती है, उन प्रजाओंका स्वाभिमान नष्ट हो जाता है और फिर वह राष्ट्र कभी उन्नति नहीं कर सकता। इसलिए प्रजाओंमें महत्त्वाकांक्षा हो, उन्नति करनेकी साध हो इस दिशामें राजा प्रयत्न करे।

१० दासानि आर्याणि करः—(२५१) दासोंको आर्य बनाया जाए। जिन लोगोंकी वृत्ति दासकी है अर्थात् गुलामगिरी करनेकी है, उन लोगोंकी वृत्तियोंको ऊंचा उठाकर उन्हें श्रेष्ठ बनाया जाए। इस तरह राष्ट्र भी ऊंचा हो सकता है।

वाणीका सदुपयोग

मनुष्यको परमात्माने वाणी दी है। यह उसकी विशेषता है। वह अपनी वाणीके द्वारा अपने मनोभावोंको व्यक्त कर सकता है। मनुष्यके अन्दर वाणीकी शक्ति बडी भारी है, इसलिए मनुष्य अपनी वाणीके उपयोगमें सदा सावधान रहे। वह अपनी वाणीका उपयोग उत्तम कर्मोंमें ही करे।

१ विश्वाभिः गीर्भिः पूर्तिं अभि अश्याम्—(१००) उत्तम वाणीका उपयोग करके हम पूर्णता प्राप्त करें।

२ मर्त्यः दुवः धियं जुजोष, सः पूर्व्यः प्रभसत्—(१०१) जो मनुष्य आशीर्वादके शुभवचन कहता है, वह सर्वश्रेष्ठ होकर प्रकाशित होता है।

३ आसा वह्निः विदुष्टरः—(११४) मुखसे उत्तम शब्दोंका उच्चारण करनेवाला मनुष्य अधिक ज्ञानी होता है।

ज्ञानी मनुष्य सदा नये तुले शब्दोंका ही उपयोग करता है। अपनी वाणीका वह सदा संयम करता है, इसीलिए वह हमेशा शक्तिशाली होता है। वाणीको शक्तिशाली बनानेका एक दूसरा उपाय है—

हम निन्दा न करें

१ त्वं निदायाः पाहि—(९४) हे प्रभो! तू हमारी निन्दासे रक्षा कर। हम किसीकी निन्दा न करें।

२ परिचक्ष्याणि वचांसि मा वोचं—(५६३) निन्दाके भाषण मैं कभी न करूं।

“ दूसरे हमारी निन्दा न करें, ” यह देखना तो मनुष्यके अपने अधीनकी बात नहीं है। क्योंकि इस संसारमें निष्कारण भी वैरी होते ही हैं, और वे वैरी निन्दा तो करेंगे ही। पर मनुष्य इतना तो कर ही सकता है कि वह स्वयं किसीकी निन्दा न करे। किसीकी निन्दा करना या न करना मनुष्यके अपने अधीनकी बात है। अतः मनुष्य भरसक यही कोशिश करे कि वह किसी की निन्दा न करे।

इस प्रकार वाणीको शक्तिसंपन्न बनानेका पहला उपाय है “ किसीकी निन्दा न करना ” और दूसरा उपाय है—

*

सत्यपालन

सत्यपालनकी प्रशंसा वेदोंमें बहुत गाई गई है। वेदका कहना है—

१ ऋतपाः ऋतेजाः क्षेपत्—(२५) सत्यपालक और सत्यपालनके लिए ही अपना जीवन देनेवाला दीर्घजीवी होता है।

२ ऋतावा सूर्यः न दूरात् शोचिषा ततान—(८९) सत्यकी रक्षा करनेवाला वीर सूर्यके समान दूरसे ही चमकता है।

३ ऋतपतिः वृषं शवसा हन्ति—(९७) सत्यका पालन करनेवाला मनुष्य अपने सामर्थ्यसे शत्रुका वध करता है।

४ न मिथूजनः भूत् सः न मुह्—(१९६) जो मनुष्य कभी भी मिथ्यावादी जनके समान असत्यवादी नहीं होता, वह वीर कभी भी मोहित नहीं होता।

५ ऋतावृधः देवः—(५५८) सत्यमार्गकी वृद्धि करनेवाले ही देव कहलाते हैं।

सत्यका पालन बडा कठिन काम है, पर उसका पालन करनेसे मनुष्य दीर्घजीवी, तेजस्वी और देव बनता है। जो मनुष्य सत्यका पालन करता है, वह सबसे हिलमिल कर रहता है।

झगडेका कारण

मनुष्य जो आपसमें झगडा करते हैं, उनमें मुख्य कारण वेदमें इस प्रकार बताये गए हैं—

१ तोके तनये गोषु अप्सु उर्वरासु क्रन्दसी वि ह्वयेते—(२७७) बालबच्चों गौओं, जलप्रवाहों और उर्वरा भूमिके लिए विवाद बढता है, तब झगडे होते हैं।

समाजमें होनेवाले झगडोंके मुख्यतया यही कारण होते हैं। स्त्री, पशु, जमीन और धनके कारण ही झगडे होते हैं। उन झगडोंके कारण तो कभी कभी मनुष्य सभी कुछ गंवा बैठता है। इसलिए बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिए कि वह इन विषयोंमें जरा सम्हाल कर व्यवहार करे।

पापसे बचनेका उपाय

१ ऋधद्वाराय अग्नये ददाश, तं मर्तः अंहः न, अदाशिः न—(३६) जो मनुष्य प्रदीप्त अग्नियोंमें हवि अर्पित करता है, उसे न पाप लिप्त होता है, न गर्व। जो

मनुष्य प्रतिदिन अग्निरूप प्रभुकी उपासना करता है, वह कभी पापी या घमण्डी नहीं होता।

२ सूरः न अस्य दृशतिः अ-रेपाः— (२७) सूर्यके समान मनुष्यका दर्शन पवित्र और निष्पाप हो। जो मनुष्य प्रतिदिन अग्निमें हवि देता है, प्रभुकी उपासना करता है तथा पाप और दंभसे दूर रहता है, ऐसे निष्पाप और प्रभुके उपासकका दर्शन भी मनुष्यको निष्पाप और पवित्र करनेवाला होता है।

३ अन्यकृतः एनः मा भुजेम— (१४०) दूसरोंका किया हुआ पाप हमें न भोगना पडे। जो पापसे दूर रहता है, वह श्रेष्ठ होता है।

कौन श्रेष्ठ है ?

१ देवताता श्रेष्ठः, शूराणां शविष्ठः, मघोनां मंहिष्ठः— (७०५) देवोंमें यज्ञ करनेवाला श्रेष्ठ है, शूरवीरोंमें बलवान् श्रेष्ठ है, और धनिकोंमें उत्तम दान देनेवाले श्रेष्ठ हैं। यज्ञ करनेवाला देवोंमें भी श्रेष्ठ है, तथा बलशाली होकर भी शूरवीर हो, तो बहुत उत्तम है। जो मनुष्य शूरवीर होकर भी यदि बलशाली न हो तो उसकी शूरवीरता किस काम की? इसी तरह जो बलशाली होकर भी डरपोक हो, तो उसका बल किस काम आएगा? इसी तरह मनुष्य ऐश्वर्यशाली तो हो, पर जब तक वह दूसरोंको दान न दे, तब तक उसके ऐश्वर्यशाली होनेका समाजको क्या उपयोग? समाजके लिए तो ऐसे अदानी मनुष्यका ऐश्वर्यशाली होना और न होना सब बराबर है। इसलिए दानशीलतासे समन्वित ऐश्वर्यशालिता ही प्रशंसाके योग्य होती है।

पुरुषार्थकी प्रशंसा

मनुष्यकी पुरुष संज्ञा इसी कारण है कि उसमें पौरुषका निवास होता है। पौरुषका अर्थ है पुरुषार्थ और पुरुषार्थका अर्थ है, उत्साहसे भरकर अनवरत परिश्रम करना। इस पुरुषार्थसे मनुष्य अपने सभी मनोरथ हासिल कर सकता है। वेदभगवान् भी पुरुषार्थकी प्रशंसा करते हैं—

१ क्रत्वा द्रोणे अज्यते— (२१) मनुष्य अपनी उन्नतिके साधन मर्यादित होनेके बावजूद भी अपने पुरुषार्थसे अपनी उन्नति करता रहे। मनुष्यकी उन्नतिके साधन मर्यादित तो होते ही हैं, पर यदि वह उन्हीं मर्यादित साधनोंसे पुरुषार्थ करता रहे, तो वह अपनी सिद्धि तक अवश्य ही पहुंच जाता है। महापुरुषोंकी नजर सदा साध्यकी तरफ ही रहती है। साधन कैसे भी हों, उसकी उसे परवाह नहीं रहती, वह तो उन्हीं परिमित साधनोंसे अपना साध्य प्राप्त कर लेता है।

२ पुरुः पृथुः कर्तृभिः सुकृतः भूत्— (२०४) मनुष्य शरीरसे बडा और गुणोंसे श्रेष्ठ होकर भी अपने पुरुषार्थ या कर्तृत्वशक्तिके कारण ही सत्कारके योग्य होता है। मनुष्य चाहे कितनी भी दीर्घकाय और गुणी हो, पर जब तक वह पुरुषार्थ नहीं करता या उसमें कर्तृत्वशक्ति नहीं होती, तब तक वह समाजमें सत्कृत नहीं होता। मनुष्य वस्तुतः जो पूजा जाता है, तो वह अपनी कर्तृत्वशक्तिके कारण ही। इसलिए मनुष्य क्रियाशील बनकर अपने समाजकी उन्नति करे।

शुभकर्म

१ अरुपः दिवा, अरुपः नक्तं— (३०) मनुष्य जिस तरह दिनमें पापरहित होकर शुभकर्म करे, उसी तरह रातमें भी पापरहित होकर शुभकर्मोंको करता रहे।

२ विश्वेषां यज्ञानां होता मानुषे जने हितः— सब श्रेष्ठ कर्मोंको कुशलतासे करनेवाला मनुष्य मानव समाजमें हितकारी होता है।

३ विश्वे सुदानवः कामिनः क्रतुं जुषन्त— (१६६) सब दानी सुखकी इच्छा करते हुए शुभकर्म करते हैं।

४ यत् चयध्वे तत् मा कर्म— (५४०) जिसके लिए तुम दण्ड देते हो, वैसा कर्म हम न करें।

५ अतियाजस्य यष्टा नि हीयताम्— (५५०) अविधिपूर्वक कर्म करनेवाला विनष्ट हो जाए।

६ अवसा श्रुधीयतः जनान् मित्रः चित् संयत— (६९५) कर्म करके जो श्रेयस प्राप्त करनेके इच्छुक हैं, उन्हें मित्र और वरुण उत्तम कर्मकी तरफ प्रेरित करते हैं।

मनुष्यकी योनि ही कर्मयोनि है। अन्य योनियां तो भोग योनियां हैं। अन्य योनियोंमें तो मनुष्य अपने किए हुए कर्मका भोग ही करता है, पर मनुष्ययोनिमें आकर यह आत्मा कर्म करनेकी अधिकारिणी बनती है। इसलिए मनुष्य इस योनिको पाकर उत्तम ही कर्म करे।

दानकी प्रशंसा

१ भ्रवांसि पृथू करस्ना गभस्ती— (२०९) अन्नादिका विशेष दान करनेके लिए भगवान्ने मनुष्यको हाथ दिए हैं।

२ पणेः मनः वि म्रद— (५६९) व्यापार करनेवाले बनियेको जरा नरम कर। कंजूस बनियेको भी दान देनेके लिए प्रेरित कर।

३ पणीनां हृदया आरया परि तृन्धि— (५७१) कंजूसोंके हृदयको आरोंसे काट।

४ आरया पणेः वि तुद— (५७२) आरेसे कंजूसको काट।

५ तत् महित्वं यत् दाशुषे अंहः विचयिष्ठं— (७००) यह देवोंका ही महत्व है कि वे दाताको निष्पाप बनाते हैं।

दान देनेके लिए भगवान्ने मनुष्यको हाथ दिए हैं। मनुष्य " सौ हाथोंसे धन इकट्ठा करे और हजार हाथोंसे दान दे। " मनुष्य अपने पासही धन इकट्ठा करके न रखे। यदि कोई धन अपने पासही इकट्ठा करके रखेगा, और न स्वयं खाएगा न दूसरोंको ही खानेके लिये देगा, तो उसके धनका निश्चयसे नाश हो जाएगा। इसलिए मनुष्य धनका दान अवश्य करे।

नमस्कार करनेका तरीका

१ उत्तानहस्तः नमसा आ विवासेत्— (१७१) हाथ उठाकर नमस्कार करके सेवा करे। हाथ उठाकर नमस्कार करना चाहिए। दोनों हाथ जोडकर और उनके हाथोंको सिरसे लगाकर नमस्कार करनेकी भारतीय पद्धति है।

घरका सुख

१ नृवत् सदं अस्मे धेहि— (१२) पर्याप्त पुत्र पौत्रादिसे भरा हुआ घर हमें मिले।

२ अवसा वस्तो नूनं विद्याम— (२८१) हमें संरक्षणशक्ति युक्त घर प्राप्त हों।

३ गावः आ अग्मन्. उत भद्रं अक्रन्— (२९८) गायें हमारे घर आवें और हमारा कल्याण करें।

४ यत् गावः अनुस्फुरान्, छर्दिषः अभिष्टिः— (७०१) जिस घरके चारों ओर गायें घूमती हों, ऐसा घर चाहिए।

५ ऋजिप्यं धृष्णुं— (७०१) सरल व्यवहार करनेवाले मनुष्य जहां रहते हों, ऐसा घर हमें चाहिए।

६ यत् रणे वृषणं युनजन्— (७०१) जो घर युद्धमें बलवान् बलको भेज सकता हो, ऐसा घर चाहिए। प्रत्येक घरमें ऐसे तरुण तैय्यार रहें, कि जो समय पडने पर युद्धमें जा सकें।

घरका सुख जीवनके बडे सुखोंमेंसे एक है। जिसे घरका सुख मिल गया, उसका गार्हस्थ्य जीवन उत्तम होजाता है। घरको सुखी करनेमें पशुओंका भी समावेश है। घरमें गायें भरपूर हों, उन गायोंसे घी दूध भरपूर मिलता हो और गोरस पीकर घरके बालबच्चे स्वस्थ और पुष्ट हों, तो फिर घरके सुखका क्या कहना? घरमें मधुरभाषिणी अर्धांगिनी, उत्तम पुत्र और पुत्रियां सुखके स्रोत हैं।

उत्तम पुत्रके लक्षण

१ अप्सां ऋतीषहं सत्पतिं वीरं ददाति— (१०४) पुत्र कर्म करनेमें कुशल, शत्रुका नाश करनेवाला, सज्जनोंका उत्तम पालन करनेवाला और शूरवीर हो।

२ यस्य संचक्षि शवसः भिया शत्रवः त्रसन्ति— (१०९) पुत्र ऐसा हो कि जिसका दर्शन होते ही उसके सामर्थ्यसे डरकर शत्रु कांपने लग जाएं।

३ शवसा पृथुः, द्यौः न भूम— (२१७) पुत्र अपने सामर्थ्यसे युद्धोंमें विजय प्राप्त करनेवाला और द्युलोकके समान विशाल सामर्थ्यशाली हो।

४ अमृतस्य सूनवः— (५५८) मनुष्य अमर ईश्वरके पुत्र हैं।

पुत्र वीर और सामर्थ्यशाली हो। शत्रुओंको मारकर सज्जनोंका पालन करनेवाला हो। सभी मनुष्य उस अमर ईश्वरके पुत्र हैं, इसलिए सभी उस ईश्वरकी तरह व्यवहार करें। ईश्वर इस विश्वपर शासन करते हुए दुष्टोंका संहार करता है, और सज्जनोंका पालन करता है। इसी तरह मनुष्य भी अपने राज्यपर शासन करते हुए दुष्टोंका नाश करके सज्जनोंका पालन करे।

गो महिमा

गाय वैदिक ऋषियोंकी पूज्या रही है। उन्होंने गायोंका पालन करनेका आदेश दिया है। वेदोंमें कहींपर भी गायोंको मारनेका आदेश नहीं है। इसके विपरीत गायको ' अघ्न्या ' और ' अदिति ' कहकर इसे न मारने योग्य बताया है।

ऋग्वेदके प्रथम मंडलमें ऋषि भरद्वाजने गायकी महिमा इस प्रकार गायी हैं।

१ गावः भगः— (१०२) गायें ही ऐश्वर्य हैं।

२ इमाः याः गावः स इन्द्रः— (३०२) ये जो गायें हैं, वे ही इन्द्र हैं। इन्द्ररूप परमात्मा ही इस पृथ्वी पर गोरूपसे विचर रहा है।

३ कृशं चित् अश्रीरं चित् सुप्रतीकं कृणुथ— (३०३) ये गायें कृश और निस्तेजको हृष्टपुष्ट और सुन्दर तेजस्वी रूपवाला बनाती हैं।

४ गृहं भद्रं कृणुथ— (३०३) गायें घरको कल्याणमय बनाती हैं।

५ गो अग्राः इषः— (३५७) गायका रस अर्थात् गोदुग्ध अन्नरूप है।

गायको वेदमें परमात्माका रूप ही बताया है। श्रीकृष्णका गोपालन प्रसिद्ध ही है। श्रीकृष्ण मानों गायमय ही हो गए थे। परमात्मा ही इस पृथिवी पर गोरूपसे विचार रहा है। गायके दूधका जो नित्यप्रति उपभोग करते हैं, वे चाहे जैसे कृश या दुबले पतले हों, हृष्टपुष्ट होकर स्वस्थ और सुन्दर हो जाते हैं। इस प्रकार घरके सदस्योंको तन्दुरस्त बनाकर गायें घरका कल्याण करती हैं। गायोंसे घरकी शोभा बढती है। गायोंसे रहित क्षेत्र तो उजाड उजाडसा लगता है।

६ अगव्यूति क्षेत्रं आ अगन्म, उर्वी सती भूमिः अंहूरणा अभूत्— (४७०) गायोंसे रहित क्षेत्रमें जब हम आए, तो हमें वहां की पृथिवी विस्तीर्ण होने पर भी शत्रुओंके युद्धक्षेत्रके समान प्रतीत हुई। गायोंसे रहित प्रदेश चाहे जितना विस्तृत हो, पर लगता वह युद्धक्षेत्रके समान ही। जिस तरह युद्धक्षेत्र एक भयंकर नीरवताको लिए होता है, उसी तरह गोरहित प्रदेशोंमें किसी भी तरह की शोभा न होनेके कारण उजाड उजाडसा प्रतीत होता है।

६ गो-इष्टौ प्र चिकित्स— (४७०) गायोंके प्राप्त होने पर उनकी अच्छी तरह देखभाल करनी चाहिए। यदि गायें कभी बीमार हो जाएं, तो उनकी ध्यान पूर्वक चिकित्सा करनी चाहिए।

८ नव्यसा वचः सबर्दुघां धेनुं आ— (४९२) नवीन और कोमल शब्दोंसे दुधारु गायको बुलाना चाहिए। गायों पर शब्दोंका बहुत प्रभाव पडता है। इस लिए उनके लिए कठोर शब्दोंका उपयोग नहीं करना चाहिए, उनके लिए हमेशा नरम और कोमल शब्दोंका ही उपयोग किया जाए। विदेशोंमें प्रत्येक गोष्ठ (गायोंके बाडे) में रेडियो आदि रखे हुए होते हैं और दूध निकालते समय उन्हें रेडियोंके द्वारा संगीत सुनाया जाता है, जिसके कारण वे प्रसन्न मनसे ज्यादा दूध देती हैं। डण्डोंके द्वारा पीट पीटकर निकाला गया दूध हानिकर ही अधिक होता है, पर जो दूध गायें प्रसन्न मनसे देती हैं, वह दूध निस्सन्देह आरोग्यकर होता है। अतः गायोंको सदैव प्रसन्न रखना चाहिए।

९ गो-अग्राः इषः— (३५७) गायका रस अर्थात् गोदूध अन्नरूप है। गायके दूधमें इतनी शक्ति रहती है कि जितनी अन्नमें।

१० अन्नं अमृत्युः— (४९३) यह गोरस रूपी अन्न मृत्युको दूर करनेवाला है।

११ सुखैः एव यावरी— (४९३) गाय सुखोंसे युक्त होकर संचार करती है। गायके अंगप्रत्यंगोंमें देवोंका निवास है, इसलिए उसके शरीरमें सदा ही सुखका भण्डार रहता है। इसलिए जिन प्रदेशोंमें गायें संचार करती हैं, वे प्रदेश सदा सुखमय होते हैं।

उत्तम अन्न

१ यत् अच्युतं तत् अत्ति— (१०७) जो गिरा हुआ नहीं होता, उसी अन्नको खाना चाहिए। दूसरोंके द्वारा जूठा करके छोडे गए या फेंके गए अन्नको नहीं खाना चाहिए। ऐसे अन्नको खाना दारिद्र्यकी निशानी है।

अन्नका सदुपयोग

१ उशन् इमं यज्ञं चनः धाः— (८१) मनुष्य यज्ञ करनेकी इच्छासे अपने पास अन्नका संग्रह करे। अन्नका उत्तम उपयोग यज्ञ करनेमें ही है। अपने पास संचित अन्नका उपयोग समाजके लोगोंको समृद्ध बनानेके कार्यमें किया जाए।

शरीरकी रक्षा

१ तव स्वां तन्वं यजस्व— (८१) हे मनुष्य ! तू अपने शरीरका सत्कार कर।

२ अन्धसः तन्वा— (४३०) मनुष्य अन्नसे पुष्ट बने हुए शरीरसे युक्त हो।

मनुष्य अपने शरीरका निरादर न करे। यह देवोंका मन्दिर है, इसमें सभी देव आकर निवास कर रहे हैं, इसलिए इस मन्दिरको मनुष्य सदा स्वच्छ और उत्तम रखे। इसे वह कभी हेय दृष्टिसे न देखे। इसे उत्तम खान-पानसे हृष्टपुष्ट करके इसे स्वस्थ बनाये।

जल चिकित्सा

१ आपः मानुषीः— (५२५) जल मनुष्योंका हित करनेवाले हैं।

२ मातृतमाः भिषजः स्थः— (५१५) ये जल माताओंसे भी अधिक प्रेम करनेवाले हैं। जिस तरह मातायें अपने प्रेमभरे हाथोंसे अपने बच्चोंका दुःख और रोग दूर करती हैं, उसी तरह जल भी अनेक रोगोंको दूर करते हैं। जल चिकित्सा प्रसिद्ध ही है। जलसे अनेक रोग दूर होते हैं।

सावधान रहना चाहिए

१ जागृवांसः रुशन्तं अग्निं अनु ग्मन् (३) जागृत रहनेवाले साधक तेजस्वी अग्निका अनुसरण करते हैं।

२ जागृवांसः रयिं अनु ग्मन्— (३) जागृत रहकर प्रयत्न करनेवाले मनुष्य ऐश्वर्यको प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य सदा सावधान रहते हैं, वे हर तरहका ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। उन पर कभी भी कोई दुष्ट आक्रमण नहीं कर सकता, और यदि कोई करता भी है, तो उससे आसानीसे बदला लिया जा सकता है।

दुष्टोंसे बदला

१ अधनस्य पूर्व्याणि चित् शिश्नथत्— (१५) दुष्टोंके द्वारा पहले किए गए दुष्कर्मोंका भी बदला लेना चाहिए। दुष्टोंको कभी सस्ता नहीं छोडना चाहिए। जब पांच पच्चीस वर्षके बाद अवसर मिले, उनसे बदला ले ही लेना चाहिए। ऐसा करने पर वे दुष्ट कभी भी प्रबल नहीं होंगे।

बलका सदुपयोग

१ दुस्तरीतुः सहः— (१) मनुष्योंका बल दुष्टोंको मारनेके लिए ही है।

२ ऊर्जः न पात्— (१५०) मनुष्य अपने बलको अधःपतित न करे।

दुष्टोंका नाश करनेमें ही अपने बलका उपयोग करे। वह अपने बलसे सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंका नाश करे। यही बलका सदुपयोग है।

उन्नतिका मार्ग

१ औशिजः पत्मन् दीयन्— (३८) जिस तरह सूर्य अपने मार्गसे जाता है, उसी तरह मनुष्य अपने निश्चित मार्गसे चले।

२ अवृकेभिः पथिभिः नः रायः स्वस्ति— (४०) उपद्रवरहित मार्गोंसे हमें धन और कल्याण प्राप्त हो।

जिस तरह सूर्य अपने सीधे सरल मार्गसे प्राणियोंको अपना प्रकाश देता जाता है, उसी तरह मनुष्य भी सब पर उपकार करता हुआ सीधे और सरल मार्गसे जाए और इस प्रकार उत्तम मार्गसे चलता हुआ अपनी उन्नति करे।

इस प्रकार इस षष्ठ मण्डलमें ऋषि भरद्वाजने अनेक उत्तम उपदेश दिए हैं, जो मननीय और आचरणीय हैं।





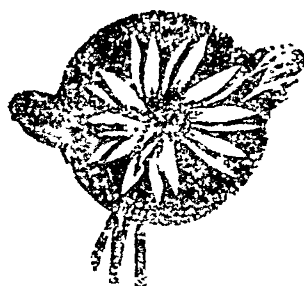


ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

षष्ठ मण्डल

मंत्रवर्णानुक्रम-सूची

×





ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

सप्तम मंडल

[१]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- विराट्, १९-२५ त्रिष्टुप् ।)

१ अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम् ॥ १ ॥

२ तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥ २ ॥

अर्थ— [१] (नरः प्रशस्तं दूरेदृशं) नेता लोग प्रशंसा करने योग्य, दूरदर्शी (गृहपतिं अथर्युं) अपने घरोंका पालन करनेवाले प्रगतिशील (अग्निं) अग्निको (अरण्योः) दोनों अरणियोंमेंसे (हस्तच्युती) हाथोंकी कुशलतासे (दीधितिभिः जनयन्त) अपनी अंगुलियोंके द्वारा निर्माण करते हैं ॥ १ ॥

[२] (यः दक्षाय्यः) जो दक्ष रहनेवाला अथवा बलवान् (नित्यः दमे आस) सदा अपने स्थानमें रहता था, (तं सुप्रतिचक्षं अग्निं) उस उत्तम दर्शनीय अग्निको (कुतः चित्) सब ओरसे (अवसे) सबकी सुरक्षा करनेके लिये (वसवः) निवास कर्ताओंने (अस्ते नि ऋण्वन्) अपने घरमें, रहनेके स्थानमें लाकर रख दिया ॥ २ ॥

भावार्थ— नेता लोग प्रशंसाके योग्य, दूरदर्शी, अपने घरोंकी सुरक्षा करनेमें समर्थ और प्रगतिशील अग्रणीको प्रकाशित करते हैं । उसके निज तेजसे ही वह अग्रणी प्रकाशित होता है, उसे अन्य मनुष्यगण अपने प्रयत्नसे आगे बढावें । मनुष्य लोगोंको प्रशस्तमार्गसे चलावे । अपने घर, अपने समाज और अपने राष्ट्रकी रक्षा करनेमें समर्थ हो । वह स्वयं भी प्रगतिशील हो ॥ १ ॥

बलवान् पुरुष सदा अपने घरमें रहे और घरकी सुरक्षा सावधानीसे करता रहे । मनुष्य भी ऐसे वीर पुरुषको सब ओरसे अपनी सुरक्षा करनेके लिये आदरसे अपने घर बुलावें और उसका भरपूर आदर करें । राष्ट्रीय नागरिक ऐसे वीर पुरुषको अपनी सुरक्षाके कार्यमें नियुक्त करें । मनुष्य अपने बलके कारण ही सत्कारके योग्य होता है । ऐसा वीर अपने समाजमें संचार करके सर्वत्र निर्भयता स्थापित करे ॥ २ ॥

३ प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नो ऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥ ३ ॥
४ प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचन्त द्युमन्तः ।
यत्रा नरः समासते सुजाताः ॥ ४ ॥
५ दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम् ।
न यं यावा तरति यातुमावान् ॥ ५ ॥
६ उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची ।
उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः ॥ ६ ॥

अर्थ— [३] हे (यविष्ठ अग्ने) तरुण अग्ने ! (प्र इद्धः अजस्रया सूर्म्या) प्रदीप्त होकर प्रचण्ड ज्वालाओंसे (नः पुरः दीदिहि) हमारे सन्मुख प्रकाशित हो । (त्वां शश्वन्तः वाजाः उपयन्ति) तेरे पास बहुत अन्न और बल आते रहते हैं । ॥ ३ ॥

[४] (अग्निभ्यः वरं द्युमन्तः) अग्नियोंसे भी अधिक तेजस्वी (ते सुवीरासः अग्नयः) वे उत्तम वीररूप अग्नि (प्र निः शोशुचन्त) विशेष रीतिसे अधिक प्रकाशित होते हैं । (यत्र सुजाताः नरः) जहां उत्तम कुलीन वीर (सं आसते) संगठित होकर बैठते हैं ॥ ४ ॥

इस मंत्रके स्मरण करने योग्य वाक्य—

१ अग्निभ्यः वरं द्युमन्तः सुवीरासः— अग्निसे भी अधिक तेजस्वी हमारे वीर हों । हमारे पुत्र पौत्र ऐसे वीर हों कि जो अग्निसे भी अधिक तेजस्वी हों ।

२ सुजाताः नरः समासते— उत्तम कुलीन पुरुष एक स्थानपर बैठते हैं । एक स्थानपर बैठकर संघटना करते हैं ।

[५] हे (सहस्य अग्ने) शत्रुका पराभव करनेमें कुशल अग्ने ! (नः) हमें (सुवीरं स्वपत्यं प्रशस्तं रयिं) जिसके साथ वीर हों, उत्तम संतति हों, ऐसे प्रशंसित धनको (धिया दाः) बुद्धिके साथ दो । (यं यातुमावान् यावा न तरति) जिसको हिंसक शत्रु कभी बाधा नहीं कर सकता ॥ ५ ॥

[६] (यं सुदक्षं) जिस उत्तम बलवानके पास (हविष्मती घृताची युवतिः) अन्नवाली घृत परोसनेवाली तरुणी (दोषा वस्तोः) रात्रीके और दिनके समय (उप एति) जाती है, (एनं स्वा वसूयुः अरमतिः उपैति) उसके पास धनके साथ रहनेवाली बुद्धि भी होती है ।

भावार्थ— तरुण अग्रणी अपने अतुल तेजसे सर्वत्र प्रकाशित होता रहे । जो ऐसा तेजस्वी होगा उसके पास अन्न और बल स्वयं उपस्थित होते रहेंगे । जो बलवान और तेजस्वी होगा, उसे अन्न और बल स्वयं प्राप्त होते रहेंगे और उसका बल अधिकाधिक बढता जाएगा ॥ ३ ॥

जहां उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए वीर उत्तम रीतिसे संगठित होकर रहते हैं, वहां उत्तम वीर अग्निसे भी अधिक तेजस्वी होकर प्रकाशते हैं । इसलिये वीर अपना और अपने समाजका संगठन करें । सब एक विचारसे कार्य करें और उत्तम वीरोंको अपनी वीरता और अधिक दिखानेके लिए अवसर दें ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! हमें उत्तम वीर सन्ततियोंसे युक्त ऐश्वर्य प्रदान करो । बल ऐसा हो कि जिससे शत्रुका पराभव हो । जिस धनकी रक्षा करनेके लिए वीर सन्तति होगी ही नहीं, तो वह धन निश्चित रूपसे नष्ट हो जाएगा । धन हरतरहसे प्रशंसित हो, निन्दनीय साधनोंसे धन प्राप्त न किया जाए ॥ ५ ॥

७ विश्वा अग्नेऽप दहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथम् ।
प्र निस्वरं चातयस्वामीवाम् ॥ ७ ॥
८ आ यस्ते अग्न इधते अनीकं वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक ।
उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः ॥ ८ ॥
९ वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं मर्ता नरः पित्र्यासः पुरुत्रा ।
उतो न एभिः सुमना इह स्याः ॥ ९ ॥
१० इमे नरो वृत्रहत्येषु शूरा विश्वा अदेवीरभि सन्तु मायाः ।
ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम् ॥ १० ॥

अर्थ— [७] हे (अग्ने) अग्ने ! (विश्वाः अरातीः तपोभिः अप दह) सब शत्रुओंको अपने तेजोंसे जला, (येभिः जरूथं अदह) जिनसे कठोर भाषी शत्रुको तूने जलाया था, तथा (अमीवां निःस्वरं प्र चातयस्व) रोगोंको निःशेष रीतिसे हटा ॥ ७ ॥

[८] हे (वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक अग्ने) हे निवास हेतु शुद्ध तेजस्वी पवित्रता करनेवाले अग्ने ! (यः ते अनीकं आ इधते) जो तेरे तेजको प्रदीप्त करता है; उन (नः उतो एभिः स्तवथैः इह स्याः) हम सबके पास इन प्रशंसा स्तोत्रोंके साथ आकर यहां रह ॥ ८ ॥

[९] हे अग्ने ! (ते अनीकं) तेरा तेज, (पित्र्यासः मर्ताः नर) पितरोंका हित करनेवाले मर्त्य लोगोंने (पुरुत्रा विभेजिरे) अनेक स्थानोंमें, अनेक देशोंमें फैलाया है, उनके समान (नः उतो एभिः सुमना इह स्याः) हमारे इन स्तोत्रोंसे प्रसन्न होकर तुम यहां रहो ॥ ९ ॥

[१०] (ये मे प्रशस्तां धियं पनयन्त) जो मेरी प्रशंसनीय बुद्धिकी स्तुति करते हैं, (इमे नरः वृत्रहत्येषु शूराः) वे ये नेता वृत्र वध करनेके लिये शुद्ध किये युद्धमें शूरवीरता करनेवाले वीर पुरुष (अदेवीः विश्वाः मायाः अभि सन्तु) सब आसुरी कपटोंको पराभूत करें ॥ १० ॥

भावार्थ— इस बलवान् अग्निके पास अन्नवाली और घृत परोसनेवाली एक तरुणी दिनरात जाती है । यह तरुण अग्नि है और उसके पास जानेवाली घृतसे युक्त तरुणी जुहु या स्रुवा है । स्रुवामें घी या हवि भरकर अग्निमें आहुति डाली जाती है । यह वर्णन रूपक अलंकारका एक उत्तम उदाहरण है । इस अलंकारमें यह भी कहा गया है कि यह तरुणी बुद्धि युक्त है । जो स्रुवासे हवि देता है, वह बुद्धिपूर्वक हवि प्रदान करता है ॥ ६ ॥

अपने तेजोंसेही शत्रुओंको दूर करना चाहिए, समाजमें जो कठोरभाषी हों, उन्हें दूर करना चाहिए, इसी तरह जो रोग हों, उन्हें भी दूर करना चाहिए । कठोरभाषी शत्रुको अपनेही तेजसे लज्जित करना चाहिए, इसी तरह अपने तेजोंसे शत्रुओंके तेजको निस्तेज करना चाहिए । अपनी शारीरिक सहिष्णुता तथा आत्मिक शक्तिसे रोगोंको भी दूर करना चाहिए । अन्दरका जीवनरस जिस मनुष्यमें प्रबल होता है, उसके शरीरमें रोग नहीं घुस सकते ॥ ७ ॥

लोगोंको उत्तम रीतिसे निवास करानेवाला, स्वयं शुद्ध और पवित्र हो । ऐसा स्वयं तेजस्वी और सबको पवित्रता करनेवाला वीर अग्निके समान तेजस्वी होता है । इसका सैन्य या बल इसका सामर्थ्य ही है । ऐसे तेजस्वी पुरुषकी प्रशंसा सब करते हैं और यह अपने पास आकर रहे, ऐसा भी चाहते हैं । पवित्र, बलिष्ठ, तेजस्वी और सर्वत्र पवित्रता करनेवाला मनुष्य अग्निके समान तेजस्वी होता है । ऐसा वीर समाजमें आकर रहे ताकि समाज उन्नतिशील हो ॥ ८ ॥

अपने उपास्य देवका यश जिस तरह हमारे पूर्वज पितर देश विदेशमें फैलाया करते थे, उसी तरह हम भी करें । ऐसा करनेसे ही प्रभु प्रसन्न होंगे । देशविदेशमें धर्मका प्रचार करना चाहिए और सबको आदर्श बनाना चाहिए ॥ ९ ॥

प्रशंसा योग्य बुद्धि और उत्तम कर्मकी सब लोग प्रशंसा करें । युद्धमें उपस्थित शूरवीर नेता असुरोंके तथा शत्रुपक्षके सब कपट जालोंको दूर करके अपनी विजयके लिए प्रयत्न करें ॥ १० ॥

×

११ मा शूने॑ अग्ने॒ नि ष॑दाम नृ॒णां मा॒शेष॑सो॒ऽवीर॑ता॒ परि॑ त्वा ।
प्र॒जाव॑तीषु॒ दुर्या॑सु दुर्य ॥ ११ ॥
१२ यम॒श्वी नित्य॑मुप॒याति॑ य॒ज्ञं प्र॒जाव॑न्तं स्वप॒त्यं क्षयं॑ नः ।
स्वज॑न्मना॒ शेष॑सा वावृ॒धान॑म् ॥ १२ ॥
१३ पा॒हि नो॑ अग्ने र॒क्षसो॒ अजु॑ष्टात् पा॒हि धू॒र्तेर॑र॒रुषो॑ अघा॒योः ।
त्वा यु॒जा पृ॑तना॒यूँर॒भि ष्या॑म् ॥ १३ ॥
१४ सेद॒ग्निर॒ग्नीँरत्य॑स्त्व॒न्यान् यत्र॑ वा॒जी तन॑यो वी॒ळुपा॑णिः ।
स॒हस्र॑पाथा अ॒क्षरा॑ स॒मेति॑ ॥ १४ ॥

अर्थ— [११] हे अग्ने ! (शूने मा नि सदाम) पुत्र पौत्रादि रहित शून्य घरमें हम न रहें । हे (दुर्य) घरके लिये हित कर्ता ! (नृणां) मनुष्योंके बीचमें हम ही (अ-शेषसः अवीरता मा) पुत्र पौत्र रहित तथा वीरता रहित न रहें । (प्रजावतीषु दुर्यासु त्वा परि) पुत्र पौत्रादिकोंसे युक्त घरोंमें हम तेरी उपासना करते हुए रहें ॥ ११ ॥

१ शूने मा निसदाम— पुत्र पौत्र रहित, संतान हीन घरमें हम न रहें । हम ऐसे घरोंमें रहें कि जहां पुत्र पौत्र प्रपौत्र बहुत हों । पुत्रोंसे घर भरे हुए हों ।

२ नृणां अशेषसः अवीरता मा— मनुष्योंमें पुत्ररहित तथा वीरता रहित जीवन बहुत बुरा है, वैसा जीवन हमें कभी प्राप्त न हो ।

३ नृणां मा निसदाम— दूसरे मनुष्योंके घरमें रहनेका अवसर हमें न प्राप्त हो । हम अपने घरमें रहें । रहनेका घर अपना हो ।

४ प्रजावतीषु दुर्यासु त्वा परि निसदाम— संतानोंसे युक्त घरोंमें प्रभुकी उपासना करते हुए हम रहें ।

[१२] (यं यज्ञं अश्वी नित्यं उपायति) जिसके पास पूजनीय अश्वारूढ अग्नि जैसा तेजस्वी वीर आता है (तं प्रजावन्तं स्वपत्यं) वैसा प्रजावाला उत्तम संतानवाला (स्वजन्मना शेषसा वावृधानं) अपनेसे उत्पन्न हुए औरस संतानसे बढनेवाला (क्षयं नः देहि) घर हमें दो ॥ १२ ॥

[१३] हे (अग्ने) अग्ने ! (अजुष्टात् रक्षसः नः पाहि) संबंध रखनेके लिये अयोग्य ऐसे दुष्ट राक्षसोंसे हमें बचाओ । (अररुषः अघायोः धूर्तेः पाहि) दुष्ट पापी धूर्तसे हमें सुरक्षित कर । (त्वा युजा पृतनायून् अभिस्यां) तुम्हारी सहायतासे सेना लेकर हमला करनेवाले शत्रुका भी हम पराभव करेंगे ॥ १३ ॥

[१४] (यत्र वाजी वीळुपाणिः) जहां बलवान् सुदृढ शस्त्रधारी (सहस्र-पाथाः तनयः) सहस्रों प्रकारके धनस्रोतोंसे युक्त अपना पुत्र (अक्षरा सं एति) अक्षरोंसे ज्ञानोंसे युक्त होता है, स्तोत्रोंसे अग्निकी उपासना करता है, (स इत् अग्निः) वही अग्नि (अग्नीन् अति अस्तु) अन्य अग्नियोंसे श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

भावार्थ— पुत्रोंसे रहित अर्थात् सन्तानहीन घरमें हमें न रहना पडे । हमारे पुत्र पौत्र हमारे घरमें रहें । हमारा घर बालबच्चोंसे भरा रहे । बाहर भी हम जिनके घरमें रहें, वे घर भी बाल-बच्चोंसे भरपूर हों । पुत्रहीन तथा वीरताहीन जीवन बुरा है । बालबच्चोंसे भरे हुए घरमें रहकर हम प्रभुकी भक्ति किया करें ॥ ११ ॥

घर ऐसे हों कि जो पुत्रपौत्रादि सन्तानोंसे युक्त हों, अपने घरमें औरस सन्तानें हों, और ये औरस सन्तानें घरकी शोभा बढानेवाली हों । दूसरेकी संतानोंको दत्तकके रूपमें न लेना पडे । औरस सन्तानोंसेही घरकी समृद्धि बढे ॥ १२ ॥

मनुष्य राक्षसोंसे अपना बचाव करे, पापी और छली दुष्टोंसे अपने आपको सुरक्षित रखे और सेना लेकर आक्रमणकारी शत्रुका पराभव करनेके लिए तैय्यार रहे ॥ १३ ॥

१५ सेदुग्निर्यो वनुष्यतो निपाति समेद्धारमंहस उरुष्यात् ।
सुजातासः परि चरन्ति वीराः ॥ १५ ॥
१६ अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशानः समिदिन्धे हविष्मान् ।
परि यमेत्यध्वरेषु होता ॥ १६ ॥
१७ त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानास आ जुहुयाम नित्या ।
उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे ॥ १७ ॥
१८ इमो अग्ने वीततमानि हव्याऽजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ ।
प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु ॥ १८ ॥

अर्थ— [१५] (यः समेद्धारं वनुष्यतः निपाति) जो जलानेवालेकी हिंसकसे सुरक्षा करता है, (उरुष्यात् अंहसः निपाति) व्यापक पापसे बचाता है, (यं सुजातासः वीराः परिचरन्ति) जिसकी पूजा कुलीन वीर पुत्र करते हैं (सः इत् अग्निः) वही श्रेष्ठ अग्नि है ॥ १५ ॥

१ समेद्धारं वनुष्यतः निपाति - जलानेवालेकी हिंसकसे सुरक्षा करो

२ उरुष्यात् पापात् निपाति— पापसे बचाओ,

३ सुजातासः वीराः परिचरन्ति— उत्तम कुलिन वीर पुत्र बैठकर पूजा करें । जहां पुत्र ऐसा करते हैं वह घर श्रेष्ठ है ।

[१६] (यं हविष्मान् ईशानः सं इन्धे) जिसको हविष्यान्न देनेवाला ऐश्वर्यवान् याजक प्रदीप्त करता है, (यं होता अध्वरेषु परि एति) जिसको होता हिंसारहित यज्ञोंमें प्रदक्षिणा करता है (सः अयं अग्निः पुरुत्रा आहुतः) यह वह अग्नि है कि जो बहुतवार आहुतियोंसे हुत हुआ है ॥ १६ ॥

[१७] हे (अग्ने ! अग्ने ! (त्वे ईशानासः) तेरी कृपासे धनके स्वामी बने (नित्या उभा वहतू कृण्वन्तः) नित्य करने योग्य दोनों प्रकारके स्तोत्र तथा शस्त्र करनेवाले हम (मियेधे भूरि आहवनानि जुहुयाम) यज्ञमें बहुत प्रकारका हवन तेरे लिये करते हैं ॥ १७ ॥

[१८] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (अजस्रः इमो वीततमानि) अखंडितरीतिसे ये अत्यंत प्रिय (हव्या) हवन द्रव्य (देवतातिं अभि वक्षि) देवताओंके समूहके पास पहुंचा (अच्छ गच्छ च) और वहां सीधा जा । (नः ईं सुरभीणि प्रतिव्यन्तु) हमारे ये सुगंधित हविर्द्रव्य प्रत्येक देवताको प्रिय हों ॥ १८ ॥

भावार्थ— मनुष्यका औरस पुत्र बलवान् हो । वेदके उपर्युक्त कथनका यह अर्थ नहीं कि उसका दत्तक पुत्र बलवान् न हो, अपितु उसका मतलब यह है कि मनुष्य पर दत्तक पुत्रको लानेकी नौबत ही न आए । सबोंके अपने औरस पुत्र हों, यही इसका अर्थ है । ऐसा औरस पुत्र बलवान् हो शूर हो, शस्त्रधारी हो, धन धान्य युक्त हो, विद्वान् हो । ऐसा पुत्र जिस अग्निमें हवन करता है, वही अग्नि श्रेष्ठ है । ऐसी शिक्षाका प्रबन्ध देशमें सर्वत्र होना चाहिए ॥ १४ ॥

जो अपने प्रदीप्त करनेवालेकी हर तरहसे रक्षा करता है, उसे हर पापसे बचाता है । मनुष्यके औरसपुत्र जिसकी पूजा करते हैं, वही अग्नि सबसे श्रेष्ठ है । जो हमें सावधान करके उत्तम मार्गपर चलनेके लिए प्रेरित करता है, उसकी हर तरहसे रक्षा करनी चाहिए । उसे पापसे बचाना चाहिए । घरमें सभी सदस्य मिलकर अग्निकी पूजा करें ॥ १५ ॥

श्रेष्ठ अग्निको ऐश्वर्यशाली याजक अर्थात् यज्ञ करनेवाला मनुष्य प्रदीप्त करता है और हिंसारहित यज्ञोंकी प्रदक्षिणा करता है । इस अग्निमें यजमान अनेकवार आहुतियां देता है ॥ १६ ॥

हे अग्ने ! तेरी कृपासे हम धनके स्वामी बनें , तेरे लिए स्तोत्र तथा आत्मरक्षाके लिए शस्त्र तैय्यार करनेवाले हम यज्ञमें बहुत प्रकारकी आहुतियां तेरे लिए प्रदान करते हैं ॥ १७ ॥

हे अग्ने ! हम यज्ञकी अग्निमें जो अखण्डित रूपसे तुझे अत्यन्त प्रिय लगनेवाले हविर्द्रव्य डालते हैं उन द्रव्योंको तू देवोंके समूहतक पहुंचा । हमारे द्वारा दिए गए ये सुगंधित द्रव्य देवोंको अत्यन्त प्रिय और रुचिकर लगे ॥ १८ ॥

१९ मा नो॑ अग्नेऽवी॒रते॒ परा॑ दा दु॒र्वास॒सेऽम॑तये॒ मा नो॑ अ॒स्यै ।
मा नः॑ क्षु॒धे मा र॒क्षस॑ ऋतावो॒ मा नो॒ दमे॒ मा वन॒ आ जु॑हूर्थाः ॥ १९ ॥

२० नू मे॒ ब्रह्मा॑ण्यग्न॒ उच्छ॑शाधि॒ त्वं दे॑व म॒घव॑द्भ्यः सुषूदः ।
रा॒तौ स्या॑मो॒भया॑स॒ आ ते॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥ २० ॥

२१ त्वम॑ग्ने सु॒हवो॑ र॒ण्वसं॑दृक् सुदी॒ती सू॑नो सहसो दिदीहि ।
मा त्वे सचा॒ तन॑ये॒ नित्य॒ आ धृ॒ङ्मा वी॒रो अ॒स्मन्नर्यो॒ वि दा॑सीत् ॥ २१ ॥

अर्थ— [१९] हे (अग्ने) अग्ने ! (नः अवीरते मा परादाः) हमें पुत्रहीनता न प्राप्त हो । (दुर्वाससे च नः मा परादा) मलिन वस्त्र परिधान करनेकी अवस्थाको हमें न पहुंचा । (अस्यै अमतये नः मा परा दाः) इस निर्बुद्धताको हमें न पहुंचा । (नः क्षुधे मा) हमें भूखके कष्ट न हों । (मा रक्षसः) राक्षस हम पर हमला न करें । हे (ऋतावः) सत्यवान् अग्ने ! (नः दमे मा) हमें घरमें कष्ट न हों (वने मा आजुहूर्थाः) हमें वनमें कष्ट न हों ॥१९॥

[२० हे (अग्ने) अग्ने ! (मे ब्रह्माणि नु उत् शशाधि) मेरे लिये अन्नोंको उत्तम प्रकारसे पवित्र कर । हे (देव) तेजस्वी अग्नि देव ! (त्वं मघवद्भ्यः सुषूद) तू हम सब हविर्द्रव्यरूप धनोंको धारण करनेवालोंके लिये अन्नोंको प्रेरित कर । (ते रातौ उभयासः आ स्याम) तेरे दानमें हम दोनों लेनेवाले होकर रहेंगे । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित करो ॥ २० ॥

[२१] हे (सहसः सूनो अग्ने) बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! (सुहवः रण्वसंदृक्) उत्तम प्रार्थित होनेवाला और रमणीय दीखनेवाला तू (सुदीती दिदीहि) ज्वालाओंसे प्रकाशित हो । (तनये नित्ये त्वे सचा) पुत्रके लिये नित्य सहायक होकर (मा आ धक्) उसे मत् जला । (वीरः नर्यः मा अस्मत् वि दासीत) वीर और मानवोंका हित करनेवाला पुत्र हमसे विनष्ट न हो ॥ २१ ॥

भावार्थ— हमारे पास पुत्रहीन अवस्था न आवे । हमें कभी बुरे वस्त्र पहनना पडे, ऐसी स्थिति भी हमें न प्राप्त हो । हम कभी बुद्धिहीन भी न हों । भूख हमें न सतावे । राक्षस हम पर हमला न करे । हम चाहे घरमें रहें, चाहे वनमें, अर्थात् हम कहीं भी रहें, हमें किसीतरहका कष्ट न हो, हम सर्वत्र प्रसन्न रहें ॥ १९ ॥

मनुष्य भक्षण करने योग्य अन्नको परिशुद्ध रीतिसे तैय्यार करे । ऐसे अन्न मलिन या मैले हाथोंसे न बनाये गए हों । जो अन्नसे युक्त हैं, उन्हें भी उत्तम अन्न मिलते रहें । प्रभुके दानके हम सब भागी हों, अर्थात् हम सबको प्रभुका दान मिलता रहे । हम प्रभुकी भक्ति करें और प्रभु हमें प्रसन्न होकर उत्तम अन्न प्रदान करते रहें । प्रभु अपने कल्याणमय हाथोंसे हमारी रक्षा सदा करते रहें ॥ २० ॥

हे अग्ने ! तू हमारे घरमें रोज प्रदीप्त होता रह और अपनी प्रदीप्त ज्वालाओंसे हमारे यहां प्रकाशित हो । हमारे घरमें जितने पुत्रपौत्र हों, उनका तू रक्षक हो, उन्हें तू कष्ट न दे । हमारा पुत्र वीर और मनुष्योंका हित करनेवाला हो, वह कभी विनष्ट या अपमृत्युका शिकार न हो । मनुष्यका पुत्र इतना सुन्दर हो कि सभी उसे देखकर प्रसन्न हों और अपने पास बुलानेकी इच्छा करें ॥ २१ ॥

२२ मा नो अग्ने दुर्भृतये सचैषु देवेद्धेष्वग्निषु प्र वोचः ।
मा ते अस्मान् दुर्मतयो भृमाच्चिद् देवस्य सूनो सहसो नशन्त ॥ २२ ॥
२३ स मर्तो अग्ने स्वनीक रेवा—नमर्त्ये य आजुहोति हव्यम् ।
स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति ॥ २३ ॥
२४ महो नो अग्ने सुवितस्य विद्वान् रयिं सूरिभ्य आ वहा बृहन्तम् ।
येन वयं सहसावन् मदेमा—ऽविक्षितास आयुषा सुवीराः ॥ २४ ॥

अर्थ— [२२] हे अग्ने ! (सचा देवेद्धेषु एषु अग्निषु) तू हमारा साथी है अतः तू देवों द्वारा प्रदीप्त किये अग्नियोंको (नः दुर्भृतये मा प्रवोचः) हमारे भरण पोषण न करनेके लिये न कहना । हे (सहसः सूनो) बलसे उत्पन्न होनेवाले पुत्र ! (देवस्य ते दुर्मतयः) प्रकाशमान होनेवाले तेरी बुद्धियां हमारे विषयमें कदापि दोष युक्त न हों; (भ्रमात् चित् नशंत) भ्रमसे भी हम पर तुम्हारा विरोधी भाव न हो ॥ २२ ॥

१ सचा नः दुर्भृतये मा प्रवोचः— कोई साथी अपने मित्रोंके भरणपोषणमें बाधा डालनेका यत्न न करे ।

२ दुर्मतयः मा— कोई मित्र अपने साथीके संबंधमें बुरे विचार प्रकट न करे ।

३ भ्रमात् चित् सचा मा नशंत— भ्रमसे भी मित्रके विषयमें उसका साथी बुरे विचार प्रकट न करे ।

[२३] हे (स्वनीक अग्ने) उत्तम तेजस्वी अग्ने ! (अमर्त्ये यः हव्यं आ जुहोति) अमर ऐसे तुझ अग्निमें जो हवन करता है । (सः मर्तः रेवान्) वह मनुष्य धनवान् होता है । (यं सूरिः अर्थी पृच्छमानः एति) जिसके विषयमें ज्ञानी और धनकी कामना करनेवाला पूछता हुआ आता है (सः देवता वसुवनिं दधाति) वह देवताके उद्देश्यसे धन अर्पण करता है ॥ २३ ॥

[२४] हे (अग्ने) अग्ने ! (नः महो सुवितस्य विद्वान्) हमारे बडे कल्याणकारक कर्मके ज्ञाता तू है । (सूरिभ्यः बृहन्तं रयिं आ वह) विद्वानोंके लिये उस बडे ऐश्वर्यका प्रदान कर । हे (सहसाऽवन्) बलसे संरक्षण करनेवाले अग्ने ! कि (येन वयं आयुषा अविक्षितासः) जिससे हम आयुसे क्षीण न होते हुए, पूर्णायुषी होकर, (सुवीराः मदेम) उत्तम वीर पुत्र पौत्रोंके साथ आनंदसे रहें ॥ २४ ॥

भावार्थ— मित्र कभी ऐसा काम न करे कि जिससे उसके मित्र की हानि हो । मित्रके जीवन या भरणपोषण पर आंच आवे, ऐसा कोई काम मनुष्य न करे । मित्रकी कभी निन्दा न करे । सदा उसके गुणोंका ही लोगोंके सामने बखान करे, उसके अन्दरके दुर्गुणोंको छिपाये रखे । मित्रके बारेमें कोई आकर यदि कोई कुछ भ्रम भी फैलाये, तो भी उस भ्रमकी बातोंमें आकर अपने मित्रका बुरा न करे ॥ २२ ॥

इस अमर अग्निमें जो नित्य हवन करता है, वह मनुष्य धनवान् होता है । मनुष्यके पास धनकी अभिलाषासे यदि कोई ज्ञानी आए, तो वह मनुष्य यह समझकर कि इस ज्ञानीके रूपमें स्वयं देवता ही धनार्थी होकर पधारे हैं, उस ज्ञानीको भरपूर धन दे ॥ २३ ॥

हे अग्ने ! तू हमें उत्तम और कल्याणकारक कर्मोंका उपदेश कर और विद्वानोंको उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर । हम क्षीण आयुवाले न होकर उत्तम वीर पुत्र और पौत्रोंके साथ आनन्दसे रहें । जिससे कल्याण हो, उस मार्गको जानना चाहिये । ज्ञानियोंको धनका दान करना चाहिए । मनुष्य ऐसा कर्म करे कि जिससे वह पूर्णायु भोगे और अपने वीर और उत्तम पुत्र और पौत्रोंके साथ हृष्टपुष्ट हो ॥ २४ ॥

२५ नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २५ ॥

[२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता आप्रीसूक्त = (१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः)। छन्दः- त्रिष्टुप्।

२६ जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद् यजतं धूममृण्वन् ।
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य ॥ १ ॥
२७ नराशंसस्य महिमानमेषा- मुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥ २ ॥

अर्थ— [२५] हे (अग्ने) अग्ने ! (मे ब्रह्माणि नु उत् शशाधि) मेरे लिए अन्नोंको उत्तम प्रकारसे पवित्र कर। हे (देव) तेजस्वी अग्ने ! (त्वं मघवद्भ्यः सुषूद) तू हम सब हविर्द्रव्यरूप धनोंको धारण करनेवालोंके लिए अन्नोंको प्रेरित कर। (ते रातौ उभयासः आ स्याम) तेरे दानमें हम दोनों लेनेवाले होकर रहें। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ २५ ॥

[२]

[२६] हे (अग्ने) अग्ने ! (नः समिधं अद्य जुषस्व) हमारी समिधाको आज स्वीकार करो। (यजतं धूमं ऋण्वन्) प्रशस्त धूमको फैलाकर (बृहत् शोच) बहुत प्रकाशित हो। (दिव्यं सानु स्तूपैः रश्मिभिः उपस्पृश) अन्तरिक्षमें पहुंचे पर्वतके ऊंचे भागको अपनी तप्त रश्मियोंसे स्पर्श करो। (सूर्यस्य रश्मिभिः संततनः) सूर्यके किरणोंके साथ मिलकर रहो ॥ १ ॥

[२७] (ये देवाः सुक्रतवः) जो देव उत्तम यज्ञका संपादन करनेवाले हैं, (शुचयः धियंधाः) शुद्ध हैं और बुद्धिका वा कर्म शक्तिका धारण करते हैं, व (उभयानि हव्या स्वदन्ति) दोनों प्रकारके हविर्द्रव्योंका आस्वाद लेते हैं। (एषां) उनके मध्यमें (नराशंसस्य यजतस्य) नरोंद्वारा प्रशंसित तथा पूजनीय अग्निकी (महिमानं) महिमाको (यज्ञैः उपस्तोषामः) हविर्द्रव्योंके अर्पणके साथ हम वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— मनुष्य भक्षण करने योग्य अन्नको परिशुद्ध रीतिसे तैय्यार करे। ऐसे अन्न मलिन या मैले हाथोंसे न बनाये गए हों। जो अन्नसे युक्त हैं, उन्हें भी उत्तम अन्न मिलते रहें। प्रभुके दानके हम सब भागी हों अर्थात् हम सबको प्रभुका दान मिलता रहे। हम प्रभुकी भक्ति करें, और प्रभु हमें प्रसन्न होकर उत्तम अन्न प्रदान करते रहें। प्रभु अपने कल्याणमय हाथोंसे हमारी रक्षा सदा करते रहें ॥ २५ ॥

हे अग्ने ! हम आज तुम्हें जो समिधायें प्रदान करते हैं, उन्हें तुम स्वीकार करो। तुम इन समिधाओंको स्वीकार करके अच्छी तरह प्रदीप्त होओ। पर्वतके ऊंचे भागोंको अपनी तप्त रश्मियोंसे स्पर्श करो और सूर्यकी किरणोंके साथ मिलो। पर्वतोंके शिखरों पर भी यज्ञ करने चाहिए। इन यज्ञोंसे वायुमंडल शुद्ध होता है ॥ १ ॥

जो उत्तम कर्म करनेवाले शुद्ध और बुद्धिमान् हैं, उनमें जो सब मनुष्यों द्वारा प्रशंसित और अधिक पूज्य हैं, उनकी महिमाका वर्णन करना चाहिए। सभी मनुष्य उत्तम कर्म करें, पवित्र हों, बुद्धि और उत्तम कर्मोंको उत्तम रीतिसे करनेकी शक्तिको धारण करें ॥ २ ॥

२८ ईळेन्यं वो असुरं सुदक्षमन्तर्दूतं रोदसी सत्यवाचम् ।
मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम ॥ ३ ॥
२९ सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु प्र वृञ्जते नमसा बर्हिरग्नौ ।
आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्वदध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम् ॥ ४ ॥
३० स्वाध्यो३ वि दुरो देवयन्तोऽशिश्रयू रथयुर्देवताता ।
पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रुवो न समनेष्वञ्जन् ॥ ५ ॥
३१ उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेताम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [२८] (वः ईळेन्यं असुरं सुदक्षं) आप सबके लिये स्तुत्य, बलवान्, उत्तम दक्ष, (रोदसी अन्तः दूतं) द्युलोक और पृथिवीके मध्यमें दूतके समान कार्य करनेवाले (सत्यवाचं) सत्यभाषी, (मनुष्वत् मनुना समिद्धं) मनुष्योंके समान मनुने प्रदीप्त किये (अग्निं अध्वराय) अग्निको अहिंसामय कर्म करनेके लिये (सदं इत् संमहेम) सदा ही हम सुपूजित करते हैं ॥ ३ ॥

[२९] (सपर्यवः) अग्निकी सेवा करनेवाले (अभिज्ञु भरमाणाः) घुटने टेककर पात्रको भरते हुए (बर्हिः नमसा अग्नौ प्रवृञ्जते) दर्भोंको हविर्द्रव्यके साथ अग्निमें अर्पण करते हैं । हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (घृतपृष्ठं पृषद्वत्) घृतसे सिंचित स्थूल घृत बिंदुओंसे युक्त दर्भमुष्टिको (हविषा आजुह्वानाः मर्जयध्वं) हविके साथ हवन करनेके समय परिशुद्ध करके हवन करो ॥ ४ ॥

[३०] (स्वाध्यः देवयन्तः) उत्तम कर्म करनेवाले, देवताकी भक्ति करनेवाले (रथयुः) रथकी कामना करनेवाले (देवताता दुरः वि अशिश्रयुः) यज्ञके अन्दर द्वारोंका आश्रय करते हैं । (समनेषु पूर्वीः) यज्ञोंमें पूर्वकी ओर अग्रभाग करके रहनेवाले जुहू आदिकोंको (शिशुं न मातरा) वत्सको गोमाताके (रिहाणे) चाटनेके समान तथा (अग्रुवः न) अग्रगामी नदियाँ क्षेत्रोंका अपने उदकसे सिंचन करनेके समान (सं अंजन्) अग्निको घृतसे सिंचन करते हैं ॥ ५ ॥

[३१] (उत दिव्ये योषणे) और दो दिव्य युवतियां (मही बर्हिषदा) बडी और दर्भोंपर बैठनेवाली (पुरुहूते मघोनी) बहुतों द्वारा प्रशंसित होनेवाली तथा धनवाली (यज्ञिये उषा सानक्ता) पूजनीय उषा और रात्री (सुदुघा धेनुः इव) उत्तम दूध देनेवाली गौके समान (नः सुविताय आ श्रयेतां) हमारे कल्याणके लिये हमें आश्रय देती रहें ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो स्तुत्य, बलवान्, दक्ष, सत्यभाषी और सेवकके समान कार्यकर्ता होता है, उसे हिंसा और कुटिलतारहित कार्यमें बुलाकर उसका सत्कार करना चाहिए । उत्तम दूत या राजदूत सदा दक्षतासे कार्य करनेवाला, सत्यभाषी और अहिंसापूर्ण कर्मोंको करनेवाला हो ॥ ३ ॥

अग्निकी सेवा करनेवाले अध्वर्युगण घुटने टेककर अर्थात् नम्र होकर दर्भोंको हविद्रव्योंके साथ अग्निमें डालते हैं । दर्भोंको घीसे सिंचित करके उनकी आहुति अग्निमें डालनी चाहिए ॥ ४ ॥

उत्तम कर्म करनेवाले, देवताकी भक्ति करनेवाले तथा रथ आदि ऐश्वर्योंकी कामना करनेवाले मनुष्य यज्ञोंका आश्रय लेते हैं । यज्ञमें अध्वर्युगण, जिस तरह गायें अपने बछडोंको प्रेमसे चाटती हैं, अथवा नदियां जिस तरह क्षेत्रोंको सींचती हैं, उसी तरह प्रेमसे द्रव्य अग्निको घीसे सींचते हैं ॥ ५ ॥

३२ विप्रा॑ य॒ज्ञेषु॒ मानु॑षेषु का॒रू मन्ये॑ वां जा॒तवे॑दसा॒ यज॑ध्यै ।
ऊ॒र्ध्वं नो॑ अध्व॒रं कृ॑तं॒ हवे॑षु॒ ता दे॒वेषु॑ वनथो॒ वार्या॑णि ॥ ७ ॥
३३ आ भार॑ती॒ भार॑तीभिः स॒जोषा॒ इळा॑ दे॒वैर्म॑नु॒ष्ये॑भिर॒ग्निः ।
सर॑स्वती सारस्व॒तेभि॑र॒र्वाक् ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरे॒दं स॑दन्तु ॥ ८ ॥
३४ तन्न॑स्तु॒रीप॒मध॑ पोषयि॒त्नु देव॑ त्वष्ट॒र्वि र॑रा॒णः स्य॑स्व ।
यतो॑ वी॒रः क॑र्म॒ण्यः॑ सु॒दक्षो॑ यु॒क्तग्रा॑वा॒ जाय॑ते दे॒वका॑मः ॥ ९ ॥
३५ वन॑स्प॒तेऽव॑ सृ॒जोप॑ दे॒वान॒ग्निर्ह॒विः श॑मि॒ता सू॑दयाति ।
सेदु॒ होता॑ स॒त्यत॑रो यजाति॒ यथा॑ दे॒वानां॒ जनि॑मानि॒ वेद॑ ॥ १० ॥

अर्थ— [३२] हे (विप्रा जातवेदसा) ज्ञानी और धन उत्पन्न करनेवाले, (मानुषेषु कारू) मानवोंमें कुशलतासे कर्म करनेवाले दिव्य होताओ ! (वां यजध्यै मन्ये) आपकी मैं यज्ञके लिये स्तुति करता हूं। (हवेषु नः अध्वरं ऊर्ध्वं कृतं) इन हवनोंमें हमारे हिंसा रहित यज्ञ कर्मको उच्च करो। (ता देवेषु वार्याणि वनथः) वे आप दोनों देवोंमें हमारे धनोंको पहुंचाइये ॥ ७ ॥

[३३] (भारती भारतीभिः सजोषा) भारती भारतियोंके साथ (देवैः मनुष्येभिः इळा अग्निः) देवों और मनुष्योंके साथ इळा रूप अग्नि और (सारस्वतेभिः सरस्वती) सारस्वतोंके साथ सरस्वती ये (तिस्रः देवीः) तीन देवियाँ (अर्वाक्) पास आजांय और (इदं बर्हिः आ सदन्तु) इस आसनपर बैठें ॥ ८ ॥

[३४] हे (देव त्वष्टः) त्वष्टा देव ! (रराणः) प्रसन्न होकर तू (नः) हमें (तत् तुरीयं पोषयित्नु वि स्य स्व) उस त्वरित पुष्टि करनेवाले वीर्यका प्रदान करो। हमें वीर्यवान बनाओ। (यतः) जिस वीर्यसे (कर्मण्यः सुदक्षः) कर्म करनेमें तत्पर दक्ष (देवकामः युक्तग्रावा) देवत्वको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला और यज्ञकर्ता (वीरः जायते) वीर होता है ॥ ९ ॥

[३५] हे (वनस्पते) वनस्पते ! (देवान् उप अव सृज) देवोंको यहां ले आ। (अग्निः शमिता हविः सूदयाति) अग्नि शान्ति करनेवाला होकर अन्नको पकाता है। (स इत् उ होता सत्यतरः यजाति) वह देवोंको बुलानेवाला अग्नि अधिक सत्य *यज्ञनिष्ठ* होकर यज्ञ करता है। (यथा देवानां जनिमानि वेद) वह देवोंके जन्म वृत्तान्तको यथायोग्य रीतिसे जानता है ॥ १० ॥

भावार्थ— उषा और रात्री ये दो स्त्रियां हैं। ये दोनों स्त्रियां दिव्यगुणोंसे युक्त, ऐश्वर्यवाली और सभीके द्वारा प्रशंसित हैं। उत्तम गुणोंसे युक्त होनेके कारण सब लोग इनकी प्रशंसा करते हैं ॥ ६ ॥

कारीगर मनुष्यों कुशल हों और वे विशेष रूपसे ज्ञानी तथा धनको उत्पन्न करनेवाले हों। ऐसे कारीगरोंकी सब प्रशंसा करें। यज्ञ तथा अन्य सभी सत्कर्मोंके अवसर पर उनका सत्कार किया जाए ॥ ७ ॥

भारती देशकी भाषा है। मातृभाषाकी संज्ञा भारती है। इळा मातृभूमिको कहते हैं। सरस्वती सतत बहनेवाली संस्कृति है। मातृभाषा, मातृभूमि और मातृसभ्यता ये तीन देवियां हैं। इन तीनों देवियोंका सत्कार यज्ञमें होना चाहिए। जो भी कर्म मनुष्य करे, वह इन तीनों देवियोंकी उन्नति करनेकी दृष्टिसेही किए जाएं। ये तीनों देवियां अग्निके रूप हैं। मातृभाषा अग्निका रूप है, क्योंकि अग्निसेही वाणी उत्पन्न होती है। मातृभूमि भी अग्निकाही रूप है, क्योंकि भूमि अग्निकाही स्थान है और सभ्यता या संस्कृति भी अग्निके समान तेजस्वी होती है। इन तीनों देवियोंकी भक्ति सदा करनी चाहिए ॥ ८ ॥

मनुष्य अपने अन्दर ऐसा बलवर्धक और पोषक वीर्य उत्पन्न करें कि जिससे पुरुषार्थ करनेवाला, सावधानी और चतुराईसे कर्म करनेवाला, दिव्यगुणोंको अपने अन्दर धारण करनेकी इच्छा करनेवाला और यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाला वीर पुत्र उत्पन्न हो ॥ ९ ॥

३६ आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥ ११ ॥

[३]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

३७ अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥ १ ॥

३८ प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् यदा महः संवरणाद् व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचि- रध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ २ ॥

अर्थ— [३६] हे (अग्ने) अग्ने ! (समिधानः) प्रदीप्त होकर (अर्वाक्) हमारे समीप (इन्द्रेण तुरेभिः देवैः) इन्द्र और त्वरा करनेवाले देवोंके साथ (सरथं आयाहि) एक रथमें बैठकर आओ । (सुपुत्रा अदितिः) उत्तम पुत्रोंकी माता अदिति (नः बर्हिः आस्तां) हमारे इस आसनपर बैठे । (अमृताः देवाः स्वाहा मादयन्तां) अमर देव स्वाहाकारसे दिये अन्नसे आनंदित हो ॥ ११ ॥

[३]

[३७] (वः) आप (अग्निभिः सजोषाः) अन्य अग्नियोंके साथ रहनेवाले (यजिष्ठं) पूजा योग्य (अग्निं देवं) अग्नि देवको (अध्वरे दूतं कृणुध्वं) हिंसा रहित प्रशस्ततम कर्ममें दूत बनाइये । (यः मर्त्येषु निध्रुविः) जो मर्त्योंमें रहनेवाला, (ऋतावा) सत्यका पालन करनेवाला (तपः मूर्धा) तेजसे तपनेवाला (घृतान्नः पावकः) घी खानेवाला और पवित्रता करनेवाला होता है ॥ १ ॥

[३८] (यवसे अविष्यन्) घास खानेवाला (प्रोथत् अश्वः न) घोडा जैसा शब्द करता है, वैसा (यदा महः संवरणात् व्यस्थात्) बडे निरोधनसे अग्नि काष्ठोंपर रहता है [उस समय वह शब्द करता है और लकडियोंको खाता भी है] इस समय (अस्य शोचिः अनु) इसके प्रकाशके अनुकूल (वातः अनुवाति) वायु बहता है । (अध ते व्रजनं कृष्णं अस्ति) और तेरा मार्ग काला होता है ॥ २ ॥

भावार्थ— जो दिव्यज्ञानी हों, उनकी संगति करनी चाहिए, उन्हें अपने घरमें बुलाकर उनका सत्कार करना चाहिए । उन्हें उत्तम उत्तम अन्न पकाकर देना चाहिए । उन्हें जो भी कुछ दिया जाए वह प्रेमसे और सत्यपूर्वक अर्थात् छल और कपटसे रहित होकर दिया जाए । इनके जीवनकी बातें सुनकर उनके जीवनसे शिक्षा लेकर अपने भी जीवनको दिव्य बनाया जाए ॥ १० ॥

मनुष्य स्वयं तेजस्वी बने और शीघ्रतासे कार्य करनेवाले ज्ञानियोंकी संगतिमें रहें, उनके साथ रहकर कार्य करे । सभी स्त्रियां माता बनकर अपने वीर पुत्रके साथ आनन्दसे रहें, ऐसी वीर माताओंका सर्वत्र सत्कार हो । अमर देवगण भी उत्तम हवि तथा अन्न प्राप्त करके आनन्दित होते रहें । उत्तम पुत्रोंकी माता कभी दीन नहीं होती, वह सदा अदीन या अदितिही रहती है । वह हमेशा समर्थ होती है ॥ ११ ॥

जो स्वयं अग्निके समान तेजस्वी है, और जो तेजस्वी मित्रोंके साथ रहता है, ऐसे सत्कारके योग्य पुरुषकोही दूत बनाना चाहिए । यह दूत मानवोंमें रहनेवाला हो, सत्यनिष्ठ हो, अपने तेजसे शत्रुको तपानेवाला हो, पवित्रता करनेवाला तथा घृतमिश्रित अन्न खानेवाला हो । राजदूतके पदपर ऐसेही व्यक्तिको नियुक्त करना चाहिए कि जो तेजस्वी मित्रोंके साथ रहता हो । जो हीन साथियोंके साथ रहता हो, ऐसे हीन पुरुषको महत्वके स्थान पर नहीं रखना चाहिए ॥ १ ॥

+

३९ उदु यस्य ते नवजातस्य वृष्णो ऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।
अच्छा द्यामरुषो धूम एति सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥ ३ ॥
४० वि यस्य ते पृथिव्यां पाजो अश्रेत् तृषु यदन्ना समवृक्त जम्भैः ।
सेनेव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दस्म जुह्वा विवेक्षि ॥ ४ ॥
४१ तमिद् दोषा तमुषसि यविष्ठ—मग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः ।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः ॥ ५ ॥

अर्थ— [३९] हे (अग्ने) अग्ने! (नवजातस्य वृष्णः यस्य ते) नवीन उत्पन्न हुए तुझ बलशालीकी (अजराः इधानाः) जरा रहित ज्वालाएं (उत् चरन्ति) ऊपर उठती हैं। (अरुषः धूमः) इसका प्रकाशमान धूवाँ (द्यां अच्छ एति) द्युलोकमें सीधा जाता है। हे (अग्ने) अग्ने! तू हमारा (दूतः देवान् हि सं ईयसे) दूत होकर देवोंके पास पहुंचता है ॥ ३ ॥

[४०] (यस्य ते पाजः पृथिव्यां) तेरा तेज पृथिवीपर (तृषु व्यश्रेत्) शीघ्रही फैलता है, (यत् अन्ना जंभैः समवृक्त) जब तू अपने काष्ठ रूप अन्नोंको अपने जबडों-ज्वालाओं-से खाने लगता है, तब (ते सेना इव सृष्टा प्रसितिः एति) तेरी सेना जैसी ज्वालाएँ तेरेसे छूटीं हुईं बलाकेसे हमला करती है। हे (दस्म) दर्शनीय अग्ने! तू (यवं न जुह्वा विवेक्षि) जौ के खानेके समान ज्वालाओंसे काष्ठोंको भक्षण करता है ॥ ४ ॥

[४१] (यविष्ठ अतिथिं तं इत् अग्निं) अत्यंत तरुण, अतिथिके समान पूज्य उस अग्निको (दोषा उषसि) रात्रीके तथा उषा या दिनके समय (तं अस्य योनौ निशिशानाः नरः) उसके उत्पत्तिस्थानमें प्रदीप्त करनेवाले नेता लोग (अत्यं न) घोडेके समान (तं मर्जयन्तः) उसको शुद्ध करते वा सेवा करते हैं। (आहुतस्य वृष्णः शोचिः दीदाय) हवन हुए बलवान् अग्निकी ज्वाला अधिक प्रदीप्त होती है ॥ ५ ॥

भावार्थ— जिस समय अग्नि छोटेसे रूपमें रहती है, उस समय धीमें चलनेवाली हवा भी उसे बुझा सकती है, पर जब वही अग्नि बडा रूप धारण कर लेती है तब जोरसे चलनेवाली हवा भी उसे बुझा नहीं पाती, अपितु उसे और बढाकर उसे अनुकूलता प्रदान करती है। इसी तरह मनुष्य जब छोटा होता है, तब सब उसके साथ शत्रुताका व्यवहार करते हैं, पर जब वही मनुष्य बडा हो जाता है, तो उसके शत्रु भी उसके साथ मित्रताका व्यवहार करते हैं ॥ २ ॥

अग्निका ऊर्ध्वज्वलन सर्वत्र सुप्रसिद्ध है। उसकी ज्वालायें हमेशा ऊपरकी तरफ जाती हैं। वह स्वयं भी देवोंमें जाकर बैठता है, इस प्रकार अग्निके सभी कर्म उच्च मार्गसे होता है। इसलिए अग्नि सदाही प्रगति करनेवाला देवता है। उसकी गति कभी नीचेकी तरफ नहीं होती। इसीलिए अग्निकी गणना देवताओंमें होती है। जो मनुष्य अग्निकी तरह प्रगति करेगा, उसकी भी गणना देवोंमें हो सकेगी ॥ ३ ॥

जिस तरह अग्निकी ज्वालाएं सब पदार्थोंका विनाश करती हुई सर्वत्र जाती हैं, उसी प्रकार मनुष्योंकी सेनायें भी शत्रुओं पर हमला करके उन्हें विनष्ट करती हुई सर्वत्र संचार करें ॥ ४ ॥

चाहे दिन हो या रात हो, सदाही अतिथिकी सेवा करनी चाहिए। जिस प्रकार घुडदौडके लिए घोडे पालनेवाले लोग घोडोंकी सेवा दिनरात करते हैं, उसी तरह मनुष्य भी अतिथिकी दिनरात सेवा करे। अथवा जिस तरह घोडोंको हृष्टपुष्ट किया जाता है, उसी तरह तरुणोंको भी हृष्टपुष्ट किया जाना चाहिए। तरुण राष्ट्रके आधार होते हैं, अतः उन्हें अधिक कार्यक्षम और तेजस्वी बनानेके लिए सदा प्रयत्न करना चाहिए ॥ ५ ॥

४२ सुसंदृक् ते स्वनीक प्रतीकं वि यद् रुक्मो न रोचस उपाके ।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश्चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम् ॥ ६ ॥
४३ यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः ।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि ॥ ७ ॥
४४ या वा ते सन्ति दाशुषे अधृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुरुष्याः ।
ताभिर्नः सूनो सहसो नि पाहि स्मत् सूरीञ्जरितॄञ्जातवेदः ॥ ८ ॥
४५ निर्यत् पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात् स्वया कृपा तन्वा३ रोचमानः ।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ॥ ९ ॥

अर्थ— [४२] हे (स्वनीक) उत्तम तेजस्वी अग्ने ! तू (यत् रुक्मः न) जब सूर्यके समान (उपाके रोचसे) समीप स्थानमें प्रकाशित होता है, तब (ते प्रतीकं सुसंदृक्) तेरा रूप उत्तम दर्शनीय होता है, तथा (ते शुष्मः दिवः तन्यतुः न एति) तेरा प्रकाश विद्युत्के समान फैलता है। (चित्रः सूरः न) दर्शनीय सूर्यके समान (भानुं प्रति चक्षि) अपनी दीप्तिको भी तू दर्शाता है ॥ ६ ॥

[४३] हे (अग्ने) अग्ने ! (अग्नये वः स्वाहा) तुझ अग्निके लिये दिये हुए हविसे तथा (इळाभिः घृतवद्भिः हव्यैः यथा परिदाशेम) गौओंके घृतसे मिश्रित हवन द्रव्योंसे जब हम तेरी सेवा करते हैं, तब तू भी (तेभिः अमितैः महोभिः) उन अपरिमित तेजोंसे (शतं आयसीभिः पूर्भिः नः नि पाहि) सैकडों लोहेके किलोंसे हमारी सुरक्षा कर ॥ ७ ॥

[४४] हे (सहसः सूनो जातवेदः) बलसे उत्पन्न होनेवाले वेदोत्पादक अग्ने ! (दाशुषे ते या वा सन्ति) दाताके लिये हितकारी जो तुम्हारी ज्वालाएं हैं, तथा जो (अधृष्टाः गिरः वा) अहिंसित वाणियां हैं, (याभिः नृवतीः उरुष्याः) जिनसे सुपुत्रवती प्रजाका तुम रक्षण करते हो, (ताभिः नः स्मत् सूरीन् जरितॄन् नि पाहि) उनसे हमारे विद्वानों और स्तोताओंको सुरक्षित कर ॥ ८ ॥

[४५] (यत् शुचिः स्वया तन्वा कृपा) जब पवित्र अग्नि अपनी फैली हुई ज्वालारूपी कृपासे (रोचमानः) प्रदीप्त होता है तब (पूता इव स्वधितिः) तीक्ष्ण शस्त्रके समान वह (निः गात्) बाहर आता है, अरणियोंसे बाहर आता है। (यः उशेन्यः) जो कामना योग्य प्रिय (सुक्रतुः पावकः) उत्तम कर्म करनेवाला, पवित्रता करनेवाला (मात्रोः आ जनिष्ट) दोनों अरणिरूप माताओंसे उत्पन्न हुआ वह (देव यज्याय) देवोंके यजन करनेके लिये ही हुआ है ॥ ९ ॥

भावार्थ— यह अग्नि जब प्रदीप्त होता है, तब वह सूर्यके समान तेजस्वी होनेके कारण उत्तम और दर्शनीय रूपवाला होता है। इसका तेज या प्रकाश विद्युत्के समान सर्वत्र फैलता है। उस समय तेजस्वी सूर्यके समान इस अग्निकी दीप्ति सर्वत्र फैलती है ॥ ६ ॥

हे अग्रणे ! जब हम प्रजायें अनेक तरहकी हवियों तथा अन्नोंसे तेरा सत्कार करती हैं, तब तू भी अपने अपरिमित तेजोंसे तथा सैकडों लोहेके किलोंसे हमारी रक्षा कर। देशमें जितने भी नगर हों, वे सभी सुरक्षित हों, उन पर शत्रु आक्रमण न कर सके ॥ ७ ॥

यह अग्नि बलका पुत्र है, अर्थात् बलसे उत्पन्न होनेवाला है। इसकी ज्वालायें दाताके लिए हितकारी हैं। जो इस अग्निकी ज्वालाओंमें हवि प्रदान करता है, उसका हित ये अग्निकी ज्वालायें करती हैं। वाणियां अहिंसित हों। वाणीका प्रयोग मनुष्य इस प्रकार करे कि उससे किसीको कष्ट न हो। वाणीका प्रयोग मनुष्य विवेकपूर्वक करे ॥ ८ ॥

४६ एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

[४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४७ प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम् ।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंष्यन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ॥ १ ॥
४८ स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः ।
सं यो वना युवते शुचिदन्भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः ॥ २ ॥

अर्थ— [४६] हे (अग्ने) अग्ने ! (एता सौभगा नः दिदीहि) ये उत्तम कर्म करनेवाले उत्तम ऐश्वर्य हमें दे। (अपि क्रतुं सुचेतसं वतेम) और उत्तम कर्म करनेवाले उत्तम बुद्धिमान् पुत्रको हम प्राप्त करें। (विश्वा स्तोतृभ्यः गृणते च संतु) सब धन ईश्वर भक्तोंके लिये मिलते रहें। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करके सुरक्षित रखो ॥ १० ॥

[४]

[४७] (वः शुक्राय भानवे सुपूतं) तुम सब शुद्ध तेजस्वी अग्निके लिये उत्तम पवित्र (हव्यं मतिं च प्रभरध्वं) हव्य पदार्थ तथा उत्तम बुद्धि अर्थात् स्तोत्र भर दो, कर दो, गाओ (यः दैव्यानि मानुषा विश्वानि) जो दिव्य और मानुष ऐसे सब (जनूंषि अन्तः विद्मना जिगाति) प्राणियोंके जन्मोंमें अन्दर ही अन्दर ज्ञानसे संचार करता है ॥ १ ॥

[४८] (सः अग्निः गृत्सः तरुणः अस्तु) वह अग्नि बडा बुद्धिमान और तरुण है। (यतः मातुः यविष्ठः अजनिष्ट) जब माता रूप अरणियोंसे वह तरुण उत्पन्न होता है। (यः शुचिदन् वना संयुवते) जो तेजस्वी दांतवाला अग्नि वनोंके साथ संमिलित होता है, लकडियोंको जलाता है, तब वह (भूरिचित् अन्ना सद्यः इत् सं अत्ति) बहुत अन्नोंको तत्कालही खाजाता है ॥ २ ॥

भावार्थ— जिस समय, अग्नि दोनों अरणियोंसे उत्पन्न होता है, उस समय उसका रूप इस तरह चमकता हुआ होता है कि जिस तरह तीक्ष्ण शस्त्र या तलवार म्यानसे बाहर आने पर चमकती है। जिस तरह दो अरणीरूप मातापितासे उत्पन्न हुआ अग्नि चमकता या तेजस्वी होता है, उसी तरह मातापितासे उत्पन्न हुआ पुत्र तेजस्वी होकर सर्वत्र चमकता रहे ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! हमें सब तरहके ऐश्वर्य प्राप्त हों, हम धनवान् और ऐश्वर्यवान् बनें। हम उत्तम बुद्धिमान् और उत्तम कर्म करनेवाले पुत्रको प्राप्त करें। हमें पुरुषार्थी और बुद्धिशाली पुत्र प्राप्त हो। ईश्वरकी भक्ति करनेवालेको सब तरहके ऐश्वर्य प्राप्त हो। ऐसे ईश्वरभक्तको तू कल्याणकारक उपायोंसे सुरक्षित कर ॥ १० ॥

हे मनुष्यो ! शुद्ध अग्निके लिए उत्तम पवित्र और हवनीय पदार्थ अर्पण करो और उत्तम स्तोत्र गाओ। वह अग्नि सब दिव्य और मानुष तथा अन्य प्राणियोंके अन्दर भी ज्ञानपूर्वक संचार करता है। अग्नि सब प्राणियोंमें व्यापक है ॥ १ ॥

अरणीरूप माताका पुत्र अग्नि उत्पन्न होते ही बहुत तेजस्वी और उत्साही हो जाता है। मनुष्यका पुत्र भी इसी तरह तरुण और सदा उत्साही रहे। वह अग्निकी तरह उत्तम उत्तम अन्नोंको खाकर बुद्धि, बल और उत्साह प्राप्त करे ॥ २ ॥

४९ अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे ।
नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोकमग्निरायवे शुशोच ॥ ३ ॥
५० अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम ॥ ४ ॥
५१ आ यो योनिं देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्यग्निरमृताँ अतारीत् ।
तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं बिभर्ति ॥ ५ ॥
५२ ईशे ह्यग्निरमृतस्य भूरे- रीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः ।
मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः ॥ ६ ॥

अर्थ— [४९] (अस्य देवस्य अनीके संसदि) इस देवके तेजस्वी यज्ञ सभामें (श्येतं यं मर्तासः जगृभ्रे) जिस तेजस्वी अग्निको मानवोंने धारण किया, जिसकी सेवा की । (यः पौरुषेयीं गृभं नि उवोच) जो अग्नि मनुष्यों द्वारा की गयी सेवाका स्वीकार करता है । वह (अग्निः आयवे दुरोकं शुशोच) अग्नि आयुके लिये सेवन करनेके लिये अशक्य रीतिसे प्रकाशित होता है । अत्यंत प्रकाशता है, जो प्रकाश सहन करना अशक्य है ॥ ३ ॥

[५०] (कविः प्रचेता अमृतः) ज्ञानी विशेष बुद्धिमान् अमर ऐसा (अयं अग्निः) यह अग्नि (अकविषु मर्तेषु निधायि) अज्ञानी मानवोंमें रखा गया है । हे (सहस्वः) बलवान् अग्ने ! (त्वे सुमनसः स्याम) तेरे विषयमें हम सदा उत्तम बुद्धि धारण करनेवाले हैं । इसलिये (सः त्वं अत्र नः मा जुहुरः) वह तू यहां हमें विनष्ट न कर ॥४॥

[५१] (यः देवकृतं योनिं आ ससाद) वह अग्नि देवोंद्वारा बनाये स्थानपर बैठता है, क्योंकि (हि क्रत्वा अग्निः अमृतान् अतारीत्) वह अग्नि अपने पुरुषार्थ प्रयत्नसे अमर देवोंको भी सुरक्षित रखता है । (विश्वधायसं तं) विश्वका धारण पोषण करनेवाले इस अग्निको (ओषधीः वनिनः च भूमिः च गर्भं बिभर्ति) औषधियां, वृक्ष तथा भूमि अपने अन्दर धारण करती हैं ॥ ५ ॥

[५२] (अमृतस्य भूरेः अग्निः ईशे हि) अमृतदान बहुत करनेके लिये अग्नि समर्थ है । (सुवीर्यस्य रायः दातोः ईशे) उत्तम वीर्ययुक्त धन देनेमें अग्नि समर्थ है । हे (सहसावन्) बलवान् अग्ने ! (वयं अवीराः त्वा मा परिषदाम) हम पुत्रहीन वा वीरताहीन होकर तेरी सेवा करनेके लिये न बैठें । (अप्सवः मा) रूपरहित होकर हम न बैठें । (अदुवः मा) भक्तिहीन भी हम न हों ॥ ६ ॥

भावार्थ— मनुष्य इस तेजस्वी अग्निको उत्पन्न करके हवि आदि अनेक तरहके द्रव्योंसे उसकी सेवा करते हैं । अर्थात् यज्ञ करनेवाले मनुष्य अग्निको प्रदीप्त करके उसमें पोषणकारक द्रव्योंकी आहुतियां देते हैं । इन आहुतियोंके यज्ञमें पडने पर वह इतना प्रकाशित होता है कि उसका तेज सहना मनुष्योंके लिए असंभव हो जाता है ॥ ३ ॥

मनुष्य अग्निके समान तेजस्वी, ज्ञानी, बुद्धिमान् और अमर हो । यदि वह अज्ञानी मनुष्योंमें भी रहने लगे, तो भी उसके विषयमें उत्तम विचार ही मनमें धारण करना योग्य है, क्योंकि वह ज्ञानी मनुष्य कभी भी किसीका नाश नहीं करता । ज्ञानी मनुष्य सबकी रक्षा करता है ॥ ४ ॥

जो अपने प्रयत्नोंसे सज्जनोंको संकटसे तारता है अर्थात् सज्जनों पर आए हुए संकटोंको अपने प्रयत्नोंसे दूर करता है, वह मनुष्य देवोंके द्वारा निर्मित श्रेष्ठ स्थानोंमें विराजता है । सबका धारण और पोषण करनेवाले अग्निको जिस प्रकार सभी तरहकी औषधियां, वृक्ष तथा भूमि अपने अन्दर धारण करती हैं, उसी तरह जो सबका धारणपोषण करनेवाला होता है, उसे सभी लोग अपने अन्तःकरणमें आदरसे रखते हैं ॥ ५ ॥

५३ परिषद्यं ह्यरंणस्य रेक्णो नित्यंस्य रायः पतंयः स्याम ।
न शेषो अग्ने अन्यजातम- स्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ॥ ७ ॥
५४ नहि ग्रभायारंणः सुशेवो ऽन्योदर्यो मनंसा मन्तवा उं ।
अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या ऽऽ नो वाज्यंभीषाळेतु नव्यंः ॥ ८ ॥
५५ त्वमंग्ने वनुष्यतो नि पांहि त्वमुं नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वां ध्वस्मन्वदुभ्यंतु पाथः सं रयिः स्पृंहयाय्यंः सहस्री ॥ ९ ॥
५६ एता नो अग्ने सौभंगा दिदीह्य- पि क्रतुं सुचेतंसं वतेम ।
विश्वां स्तोतृभ्यो गृणते चं सन्तु यूयं पांत स्वस्तिभिः सदां नः ॥ १० ॥

अर्थ— [५३] (अरणस्य रेक्णः परिषद्यं हि) ऋण रहित मनुष्यका धन पर्याप्त होता है। (नित्यस्य रायः पतयः स्याम) इसलिये हम नित्य रहनेवाले धनके स्वामी बनें। हे अग्ने ! (अन्यजातं शेषः न अस्ति) अन्य मनुष्यका पुत्र औरस पुत्र नहीं कहलाता। (अचेतानस्य पथः मा विदुक्षः) निर्बुद्धके मार्गको हम न जानें ॥ ७ ॥

[५४] (अन्य-उदर्यः सुशेवः अरणः) दूसरेका पुत्र सुखसे सेवा करनेवाला और ऋण न करनेवाला होनेपर भी वह पुत्र करके (ग्रभाय नहि) ग्रहण करनेके योग्य नहीं होता, इतना ही नहीं परंतु वह (मनसा मंतवै उं) मनसे माननेके लिये भी योग्य नहीं है। (अध ओकः चित् पुनः इत् स एति) क्योंकि वह अपने निज पिताके घरके पास ही खींचा जाता है। अतः (नव्यः वाजी अभीषाट् नः आ एतु) नवीन बलवान् शत्रुका पराभव करनेवाला पुत्र ही हमें प्राप्त होवे ॥ ८ ॥

[५५] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं वनुष्यतः नः निपाहि) तू हिंसकोंसे हमें बचा। हे (सहसावन्) बलवान् ! (त्वं अवद्यात् नः पाहि) तू पापसे हमें बचा। (त्वा ध्वस्मन्वत् पाथः अभिएतु) तेरे पास निर्दोष अन्न पहुंचे। (स्पृहयाय्यः सहस्री रायः सं एतु) हमारे पास प्राप्त करने योग्य सहस्रों प्रकारका धन आ जाय ॥ ९ ॥

[५६] हे (अग्ने) अग्ने ! (एता सौभगा दिदीहि) ये उत्तम कर्म करनेवाले उत्तम ऐश्वर्य हमें प्रदान कर। (अपि क्रतुं सुचेतसं वतेम) हम उत्तम कर्म करनेवाले उत्तम बुद्धिमान् पुत्रको प्राप्त करें। (विश्वा स्तोतृभ्यः गृणते च सन्तु) सब धन ईश्वर भक्तोंको मिलते रहें। (यूय नः सदा स्वस्तिभिः पातः) तुम हमें सदा कल्याण करके सुरक्षित रखो ॥ १० ॥

भावार्थ— मनुष्योंके पास बहुत अन्न हो, उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति हो। वे पुत्रहीन तथा वीरताहीन अर्थात् भीरु न बनें, कुरूप तथा सौन्दर्यहीन न हों। भक्तिहीन भी न हों। मनुष्य धनवान्, शूर, पराक्रमी, वीर्यवान्, सामर्थ्यवान्, पुत्रपौत्रवान्, धैर्यवान्, सुन्दर, शोभायुक्त और भक्तिमान् हों। मनुष्य मलिन न रहें। अपना सौन्दर्य बढावें, शृंगार बढावें, अपने घर, उद्यान और शरीरकी सजावट करके शोभा बढावें। सभी सुन्दर रहें ॥ ६ ॥

जो मनुष्य ऋण नहीं करता, उसका धन पर्याप्त होता है। हम भी ऋणसे रहित होकर पर्याप्त धनके स्वामी बनें। मनुष्य धनका स्वामी होकर औरस पुत्रका भी स्वामी हो, क्योंकि दत्तक पुत्र औरस पुत्रके समान नहीं हो सकता। कोई भी मूर्ख मनुष्यके मार्गसे न जाए ॥ ७ ॥

दूसरेका पुत्र दत्तकके रूपमें ले और यदि वह पुत्र उत्तम सेवा करनेवाला तथा ऋण न भी करनेवाला हो, तो भी वह औरस पुत्रके समान नहीं हो सकता। जो दूसरेका है, वह दूसरेका ही रहेगा। मनमें भी उसे औरस पुत्र नहीं माना जा सकता, क्योंकि उसका मन तो उसके वास्तविक मातापिताकी ओर ही खिंचकर जाएगा, उसका मन अपने दूसरे पिताके घरमें रह नहीं सकता। इसलिए हमें ऐसा ही औरस पुत्र चाहिए जो शत्रुका पराभव करनेवाला हो ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! तू हमें हिंसकोंसे बचा, तू हमें पापसे बचा। हम भी तुझे निर्दोष अन्न प्रदान करें। हमारे पास प्राप्त करने योग्य अनेक तरहके धन प्राप्त हों ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! हमें सब तरहके ऐश्वर्य प्राप्त हों, हम धनवान् और ऐश्वर्यवान् बनें। हम उत्तम बुद्धिमान और उत्तम कर्म करनेवाले पुत्रको प्राप्त करें। हमें पुरुषार्थी और बुद्धिशाली पुत्र प्राप्त हो। ईश्वरकी भक्ति करनेवालेको सब तरहके ऐश्वर्य प्राप्त हों। ऐसे ईश्वरभक्तको तू कल्याणकारक उपायोंसे सुरक्षित कर ॥ १०

(५)

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। देवता- वैश्वानरोऽग्निः। छन्दः- त्रिष्टुप्।)

५७ प्राग्नये तवसे भरध्वं गिरं दिवो अरतये पृथिव्याः ।
यो विश्वेषाममृतानामुपस्थे वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भिः ॥ १ ॥
५८ पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां नेता सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ।
स मानुषीरभि विशो वि भाति वैश्वानरो वावृधानो वरेण ॥ २ ॥
५९ त्वद् भिया विश आयन्नसिक्नीरसमना जहतीर्भोजनानि ।
वैश्वानर पूरवे शोशुचानः पुरो यदग्ने दरयन्नदीदेः ॥ ३ ॥
६० तव त्रिधातु पृथिवी उत द्यौर्वैश्वानर व्रतमग्ने सचन्त ।
त्वं भासा रोदसी आ ततन्थाऽजस्रेण शोचिषा शोशुचानः ॥ ४ ॥

---

[५]

अर्थ— [५७] (तवसे दिवः पृथिव्याः अरतये) वृद्धिगत हुए, द्युलोक और पृथिवीपर गमन करनेवाले (अग्नये गिरं भरध्वं) अग्निके लिये स्तोत्र भर दो, करो। (यः वैश्वानरः) जो वैश्वानर अग्नि (विश्वेषां अमृतानां उपस्थे) सब देवोंके समीप (जागृवद्भिः ववृधे) जागनेवालोंके द्वारा बढाया जाता है ॥ १ ॥

[५८] (सिन्धूनां नेता) नदियोंका चालक और (स्तियानां वृषभः) जलोंका वर्षण कर्ता (पृष्टः अग्निः) सुपूजित हुआ अग्नि (दिवि पृथिव्यां धायि) द्युलोकमें और पृथिवीपर स्थापित हुआ है। (सः वैश्वानरः वरेण ववृधानः) वह सर्वजन हितकारी अग्नि श्रेष्ठ हविसे बढता हुआ (मानुषीः विशः अभि वि भाति) मानवी प्रजाओंमें प्रकाशता है ॥ २ ॥

[५९] हे (वैश्वानर) वैश्वानर ! (त्वत् भिया) तेरी भीतिसे (असिक्नीः विशः) काली प्रजा (भोजनानि जहतीः) भोजनोंको भी त्यागती हुई (असमनाः आयन्) तितर बितर होकर भागने लगी थी। (यत् पूरवे शोशुचानः) जब तू पुरु राजाके लिये प्रकाशित होकर (पुरः दरयन् अदीदेः) शत्रुकी नगरियोंका विदारण करके प्रज्वलित हुआ था ॥ ३ ॥

[६०] हे वैश्वानर अग्ने ! (तव व्रतं त्रिधातु) तेरे व्रतका त्रिधातु अर्थात् पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें रहनेवाले लोग (सचन्त) पालन करते हैं। (अजस्रेण शोशुचा शोशुचानः) विशेष प्रकाशसे प्रकाशित होता हुआ (त्वं) तू अपने (भासा रोदसी आततन्थ) तेजसे द्युलोक और पृथिवी लोकको विस्तृत करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह वैश्वानर अग्नि सब देवोंके समीप प्रदीप्त करनेवालोंके द्वारा प्रदीप्त किया जाता है। प्रदीप्त होकर यह सर्वत्र संचार करता है। ऐसे अग्निके लिए स्तोत्र बोलने चाहिए ॥ १ ॥

यह अग्नि वृष्टि करता है। वृष्टिसे नदियां भरपूर भरकर बहती हैं। यह अग्नि पृथिवी पर तथा आकाशमें है और यहां पूजा लेता है। वही अग्नि यहां हवनसे बढता हुआ मानवी प्रजाओंमें यज्ञोंके अन्दर प्रकाश रहा है ॥ २ ॥

पुरु राजाके पास अग्नि था। यह अग्नि उसका सहायक था। पुरु राजाके लिए इसने शत्रुके नगरोंको जलाया, तब इस अग्निकी भीतिसे अन्न आदि सबको त्याग कर शत्रुकी सारी प्रजायें इधर उधर भागने लगीं। युद्धके समय शत्रुकी नगरियोंको जलाने पर शत्रुकी प्रजायें जल जानेके डरसे इधर उधर भागते समय सब सुख साधन फेंककर भागने लगती हैं ॥ ३ ॥

६१ त्वाम॑ग्ने हरितो॑ वावशा॒ना गिर॑: सचन्ते॒ धुन॑यो घृ॒ताची॑: ।
पतिं॑ कृष्टी॒नां र॒थ्यं॑ रयी॒णां वै॑श्वान॒रमु॒षसां॑ के॒तुमह्ना॑म् ॥ ५ ॥
६२ त्वे अ॑सु॒र्यं१॒॑ वस॑वो॒ न्यृ॑ण्व॒न् क्रतुं॒ हि ते॑ मित्रमहो जु॒षन्त॑ ।
त्वं दस्यूँ॒रोक॑सो अग्न आज उ॒रु ज्योति॑र्ज॒नय॒न्नार्या॑य ॥ ६ ॥
६३ स जाय॑मानः पर॒मे व्यो॑मन् वा॒युर्न पाथ॒: परि॑ पासि स॒द्यः ।
त्वं भुव॑ना ज॒नय॑न्न॒भि क्र॒न्नप॑त्याय जातवेदो दश॒स्यन् ॥ ७ ॥

अर्थ— [६१] हे अग्ने ! (कृष्टीनां पतिं) कृषि करनेवाली प्रजाके स्वामी, (रयीणां रथ्यं) धनोंके संचालक, (उषसां अह्नां केतुं) उषाओं सहित दिनोंके ध्वजके समान (वैश्वानरं त्वां) तुझ वैश्वानरकी (वावशाना हरितः) चाहनेवाले घोडे (सचन्ते) सेवा करते हैं। तथा (घृताचीः धुनयः गिरः सचन्ते) घीको हविके साथ मिलाकर पापको धोनेवाली स्तुतियां भी तेरी सेवा करती हैं ॥ ५ ॥

[६२] हे (मित्रमहः) मित्रके महत्वको बढानेवाले अग्ने ! (त्वे वसवः असुर्यं नि ऋण्वन्) तेरे अन्दर वसु देवोंने बलको स्थापित किया है। तथा उन्होंने (ते क्रतुं जुषन्त हि) तेरी प्रीति करनेवाले कर्मको किया है। तथा (त्वं आर्याय उरु ज्योतिः जनयन्) तूने आर्योंके लिये विशेष प्रकाश उत्पन्न करके (दस्यून् ओकसः आजः) शत्रुओंको अपने स्थानसे उखाड दिया है ॥ ६ ॥

[६३] (सः त्वं) वह तू (परमे व्योमन् जायमानः) अति दूरके आकाशमें सूर्य रूपसे उत्पन्न होकर (वायुः न) वायुके समान (पाथः सद्यः परिपासि) सोमरसको प्रथम ही सत्वर पीता है। हे (जातवेदः) वेदके प्रकाशक ! (त्वं भुवना जनयन्) तू भुवनों-जलोंको प्रकट करता हुआ (अपत्याय दशस्यन्) संतानकी कामनाओंको पूर्ण करता है और (अभिक्रन्) गर्जना करता है, विद्युत् रूपसे बडा शब्द करता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— अग्निके व्रतका पालन सब करते हैं, उसका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता। वह स्वयं अजस्र प्रकाशसे प्रकाशित होकर अपने प्रकाशसे सब स्थानोंको प्रकाशित करता है। तब मनुष्योंको कार्य करनेके लिए विस्तृत स्थान मिलता है। यही इस अग्निका द्यावापृथिवीको विस्तृत करना है ॥ ४ ॥

सूर्यरूपी अग्नि उषाओं और दिनोंका मानो ध्वज ही है। दिनमें ही सब व्यवहार होकर धन प्राप्त होते हैं, इसलिए यह धनोंका प्रेरक है। यह सूर्य मानों धनोंका रथ ही है। इस कारण यह प्रजाओंका और कृषकोंका हितकारी है। इस अग्निको घोडोंसे संयुक्त रथमें रखकर चारों ओर घुमाते हैं, उस समय स्तोता इसकी प्रशंसा गाते हैं और साथ साथ हवन भी करते हैं ॥ ५ ॥

इस अग्निमें विलक्षण बल है। वह बल इसमें वसुओंने स्थापित किया है। इस बलसे युक्त अग्नि जिसका सहायक होता है, उसका बल और महत्व बढा देता है। यह अग्निका व्रत है। उसके नियमोंके अनुसार जो चलता है, उसीका यह सहायक होता है। पुरुषार्थी ही आर्य होते हैं। इन आर्योंका यह अग्नि सदा सहायक होता है ॥ ६ ॥

अग्नि द्युलोकमें सूर्यरूपसे प्रकाशता है और अन्तरिक्षमें विद्युत् रूपसे रहकर गर्जना करता है और पृथ्वी पर रहकर मनुष्योंकी सहायता अनेक प्रकारसे करता है। अग्निका वाणीसे संबंध विद्युत् रूपी अग्निकी मेघगर्जनासे स्पष्ट अनुभवमें आता है। अग्निसे वाक्प्रादुर्भूत हुई और विद्युदग्निसे गर्जना हुई। यह अग्निसे वाणीका सम्बन्ध है। अग्निसे जल उत्पन्न होनेका अनुभव भी अन्तरिक्षमें ही होता है। मेघोंमें विद्युत् चमकती है और बादमें वृष्टि होती है। यही अग्निसे जलका उत्पन्न होना है ॥ ७ ॥

६४ तामग्ने अस्मे इषमेरयस्व वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः ।
यया राधः पिन्वसि विश्ववार पृथु श्रवो दाशुषे मर्त्याय ॥ ८ ॥

६५ तं नो अग्ने मघवद्भ्यः पुरुक्षुं रयिं नि वाजं श्रुत्यं युवस्व ।
वैश्वानर महि नः शर्म यच्छ रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः ॥ ९ ॥

[६]

(ऋषिः- ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वैश्वानरोऽग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६६ प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्तिं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्मि ॥ १ ॥

अर्थ— [६४] हे (जातवेद वैश्वानर अग्ने) वेदके प्रकट करनेवाले विश्वके नेता अग्ने ! (तां द्युमतीं इषं अस्मे आ ईरयस्व) उस दीप्तिमय वृष्टिको हमारे पास प्रेरित करो । (यया राधः पिन्वसि) जिससे धनका पालन तू करता है, और हे (विश्ववार) सबको स्वीकार करने योग्य अग्ने ! (पृथु श्रवः दाशुषे मर्त्याय) बडा यश दाता मनुष्यके लिये तू ही देता है ॥ ८ ॥

[६५] हे (वैश्वानर अग्ने) सब मानवोंका हित करनेवाले अग्ने ! (मघवद्भ्यः नः) हविरूपी धन धारण करनेवाले हमारे लिये (तं पुरुक्षुं रयिं) इस बहुत यश देनेवाले धनको तथा (श्रुत्यं वाजं युवस्व) कीर्ति बढानेवाले बलको दो । हे अग्ने ! (वसुभिः रुद्रेभिः सजोषाः) वसु और रुद्रोंके साथ रहनेवाला तू (नः महि शर्म यच्छ) हमारे लिये सुख दो ॥ ९ ॥

[६]

[६६] (दारुं वन्दे) शत्रुओंकी नगरियोंका नाश करनेवाले वीरको मैं प्रणाम करता हूं । (वंदमानः) उसको नमन करता हुआ मैं (सम्राजः असुरस्य पुंसः) सम्राट् बलवान् वीर (कृष्टीनां अनुमाद्यस्य) प्रजाओं द्वारा अनुमोदित (तवसः इन्द्रस्य इव) बलवान् इन्द्रके समान वैश्वानर अग्निके (कृतानि विवक्मि) किये कर्मोंका वर्णन करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ— अन्तरिक्षस्थ मेघोंमें स्थित अग्नि विद्युद्रूपसे चमकती है और वृष्टिको प्रेरित करती है, जिससे लोगोंको धान्यरूपी धन प्राप्त होता है । इस धान्यका दान यज्ञमें मनुष्य करते हैं । इस प्रकार ' विद्युत्-अग्नि-वृष्टि-धान्य-धन-दान-यज्ञ-यश ' का सम्बन्ध इस प्रकार है । अग्निसे यह सब होता है ॥ ८ ॥

अपने पास जो हवि है, उसे हम अग्निको प्रदान करते हैं और वह अग्नि हमें धन, बल, यश और सुख दे । हमें धन चाहिए, बल चाहिए, यश और सुख चाहिए । वह हम अग्निकी सहायतासे मिल सकता है । मनुष्य अग्निके समान तेजस्वी बने और सब लोगोंके हित करनेका कार्य करे । धन ऐसा प्राप्त करे कि जिससे सबका जीवन सुखमय हो । बल ऐसा प्राप्त करे कि जिससे मनुष्यका यश सर्वत्र फैले और सबको अधिकसे अधिक सुख प्राप्त होता रहे । मानवोंके लिए अग्नि आदर्श है, इस आदर्शके अनुसार मनुष्य अपना जीवन बनाये ॥ ९ ॥

वैश्वानर अग्नि सब प्रजाओंका हित करनेवाला है । यह वैश्वानर सम्राट्, बलवान् और वीर है तथा प्रजाओं द्वारा अनुमोदित है अर्थात् प्रजाओंका अनुमोदन इसे प्राप्त है । इन्द्रके समान यह बलिष्ठ है । इसने वैसे पराक्रम भी किए हैं ॥ १ ॥

×

६७ कविं केतुं धासिं भानुमद्रे- र्हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः ।
पुरंदरस्य गीर्भिरा विवासे- ऽग्नेर्व्रतानि पूर्व्या महानि ॥ २ ॥

६८ न्यक्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः पणीँरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान् ।
प्रप्र तान् दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून् ॥ ३ ॥

६९ यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचीश्चकार नृतमः शचीभिः ।
तमीशानं वस्वो अग्निं गृणीषे- ऽनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ॥ ४ ॥

अर्थ— [६७] (कविं केतुं) ज्ञानी, सूचक, अथवा ज्ञापक (अद्रेः धासिं भानुं) किलोंका धारक, प्रकाशक, (रोदस्योः शं राज्यं) द्युलोक और पृथिवीका सुखदायक रीतिसे राज्य करनेवाला, ऐसे (पुरंदरस्य अग्नेः पूर्व्या महानि व्रतानि) शत्रुके किले तोडनेवाले अग्निके पुरातन बडे महान पुरुषार्थोंका (गीर्भिः आ विवासे) अपनी वाणीसे मैं वर्णन करता हूं। इस वर्णनसे मैं उसकी सेवा करता हूं ॥ २ ॥

[६८] (अक्रतून् ग्रथिनः) सत्कर्म न करनेवाले, वृथा भाषण करनेवाले, (मृध्रवाचः पणीन्) हिंसक वाणी बोलनेवाले, पणी अर्थात् सूदका व्यवहार करनेवाले, (अश्रद्धान् अवृधान्) अश्रद्ध और हीन अवस्थाको पहुंचनेवाले (अयज्ञान् तान् दस्यून्) यज्ञ न करनेवाले उन दस्युओंको (अग्निः प्र प्र विवाय) अग्नि निःसंदेह हटा देता है, हीन कर देता है, दूर करता है। (पूर्वः अग्निः) मुख्य अग्नि (अ-यज्यून्) यज्ञ न करनेवालोंको (अ-परान् चकार) कनिष्ठ बना देता है। श्रेष्ठ स्थानपर नहीं रखता ॥ ३ ॥

[६९] (नृतमः) उत्तम नेताने (अपाचीने तमसि) गाढ अन्धकारमें (मदन्तीः) निमग्न होकर आनंद माननेवाली परन्तु स्तुति करनेवाली प्रजाको (शचीभिः प्राचीः चकार) प्रज्ञाबुद्धिसे ऋजुगामी किया। (तं वस्वः ईशानं) उस धनके स्वामी (अनानतं पृतन्यून् दमयन्तं) अदीन परंतु सेनासे हमला करनेवाले शत्रुका दमन करनेवाले (अग्निं गृणीषे) अग्निकी मैं प्रशंसा करता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिस तरह यह अग्नि ज्ञानी, प्रकाशक है, उसी तरह राजा भी ज्ञानी, दूरदर्शी, उत्तम प्रभावका सूचक, अपने किलों और नगरोंका संरक्षक, तेजस्वी और प्रजाको सुख देनेके लिए ही राज्य करनेवाला हो। ऐसे वीर राजाके पराक्रमोंका उत्तम वर्णन किया जाए ॥ २ ॥

जो शुभकर्म नहीं करते, जो केवल वृथा भाषण ही करते रहते हैं, हिंसाको बढानेवाला भाषण करते हैं, जो सूदका व्यवहार करते हैं, जो अत्यधिक सूद लेते हैं, जो ईश्वरपर श्रद्धा नहीं रखते, जो हीन अवस्थाको प्राप्त होनेके ही व्यवहार करते हैं, जो यज्ञ नहीं करते, जो डाका डालते रहते हैं, इनको राजा उच्च अधिकारके स्थानोंपर न रखे। यदि ऐसे आदमी उच्च पदोंपर हों भी तो उन्हें उन पदों परसे हटा देवे और उन स्थानोंपर जो सदा प्रशस्त नम्र कर्म करते हैं, जो मित, पथ्य और हितकारी भाषण करते हैं, जो सूद आदिका व्यवहार नहीं करते, जो श्रद्धालु हैं, ऐसे उन्नतिशील मनुष्योंको ही उच्च पदोंपर राजा स्थापित करे ॥ ३ ॥

उत्तम नेताका यह कर्तव्य है कि वह गाढ अन्धकारमें पडी और वहीं आनन्द मनानेवाली प्रजाको उनकी प्रज्ञा जागृत करके सीधे उन्नतिके मार्गोंसे चलावे। ऐसे धनके स्वामी, अत्यंत सम्मान रखनेवाले तथा शत्रुका दमन करनेवाले अग्निके समान तेजस्वी वीरके गीत गाए जाएं ॥ ४ ॥

७० यो देह्यो३ अनमयद् वधस्नै— र्यो अर्यपत्नीरुषसश्चकार ।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्नि— र्विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः ॥ ५ ॥
७१ यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस्तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः ।
वैश्वानरो वरमा रोदस्यो— राग्निः ससाद पित्रोरुपस्थम् ॥ ६ ॥
७२ आ देवो ददे बुध्न्या३ वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य ।
आ समुद्रादवरादा परस्मा— दाग्निर्ददे दिव आ पृथिव्याः ॥ ७ ॥

[७]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७३ प्र वो देवं चित् सहसानमग्नि— मश्वं न वाजिनं हिषे नमोभिः ।
भवा नो दूतो अध्वरस्य विद्वान् त्मना देवेषु विविदे मितद्रुः ॥ १ ॥

अर्थ— [७०] (यः देह्यः वधस्नैः अनमयत्) जो आसुरी घातकोंको अपने आयुधोंसे विनम्र करता है, (यः उषसः अर्यपत्नीः चकार) जो सूर्य पत्नी उषाको निर्माण करता है । (सः यह्वः अग्निः सहोभिः विशः निरुध्य) उस महान् अग्निने अपनी शक्तियोंसे प्रजाका निरोध करके (नहुषः बलिहृतः चक्रे) उस प्रजाको राजाको कर देनेवाली बना दिया ॥ ५ ॥

[७१] (विश्वे जनासः शर्मन्) सब लोग अपने सुखके लिये (यस्य सुमतिं भिक्षमाणाः) जिसकी उत्तम बुद्धिकी प्रार्थना करके (एवैः उप तस्थुः) अपने उत्तम कर्मोंके समीप खडे रहते हैं, वह (वैश्वानरः अग्निः) सब मानवोंका हितकर्ता अग्नि (पित्रोः उपस्थे) द्यावा पृथिवीके बीचमें (वरं आससाद) श्रेष्ठ स्थानपर बैठ गया ॥ ६ ॥

[७२] (वैश्वानरः अग्निः देवः) सब जनोंका हित करनेवाला अग्नि देव (बुध्न्या वसूनि सूर्यस्य उदिता आददे) अन्तरिक्षके अन्धकारको सूर्यके उदयके समय लेता है । (समुद्रात् अवरात् पृथिव्याः) समुद्रसे तथा इधरकी पृथिवीकी ओरसे (आ) अन्धकारको लेता है । (परस्मात् दिवः आददे) परके द्युलोकसे भी अन्धकारको लेता है । सबको प्रकाशित करता है ॥ ७ ॥

[७]

[७३] (वः देवं सहसानं) प्रकाशमान और राक्षसोंके पराभव कर्ता (अग्निं अश्वं इव वाजिनं) अग्रणीको अश्वके समान वेगवान जानकर मैं (नमोभिः चित् प्र हिषे) अन्नोंके साथ प्रेरित करता हूं । (विद्वान् नः अध्वरस्य दूतः भव) तू सब जानता है । इसलिए हमारे हिंसारहित यज्ञकर्मोंका तू दूत हो (त्मना देवेषु मितद्रुः विविदे) स्वयं देवोंमें वृक्षोंको जलानेवाला करके प्रसिद्ध हो ॥ १ ॥

भावार्थ— प्रजाको सतानेवाले आसुरी गुण्डोंको अपने दण्डसे अथवा शस्त्रसे राजा नम्र तथा शासनानुकूल चलनेवाली बनावे । महान् शासक अपने शासनके प्रबन्धसे प्रजाको निरुद्ध करके कर देनेवाली बनाए । चूंकि राजा प्रजाका पालन करता है, इसलिए प्रजाको भी चाहिए कि वह अपने संरक्षणके लिए अपने अर्जित धनसे राजाको योग्य कर देवे । जो प्रजा आर्थिक दृष्टया समर्थ होने पर भी कर न दे, उसे जबर्दस्ती राजा कर देनेवाली बनाए ॥ ५ ॥

सब लोग अपनी सुरक्षाके लिए जिसकी सदिच्छाकी अपेक्षा करते हैं, और अपने उत्तम कर्म जिसके सामने रखते हैं, वह सर्वजन हितकारी वीर उच्च स्थान पर विराजने योग्य है । सब लोग अपनी सुरक्षाके लिए जिसकी सद्बुद्धिकी अपेक्षा करते हैं, वही वीर श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥

सब जनोंका हित करनेके लिए उन सब जनोंका अज्ञान पूर्णतया दूर करना चाहिए । बुद्धि, मन, इन्द्रिय, शरीर तथा विश्व सम्बन्धी सब अज्ञानान्धकार दूर करना चाहिए । जिस तरह विश्वका अन्धकार दूर होनेसे सब मार्ग स्पष्ट रीतिसे दिखाई देते हैं, उसी तरह मानवोंके अज्ञान दूर होनेसे उन्हें भी उन्नतिके मार्ग दिखाई देंगे । इसलिए राजा या नेताको चाहिए कि वह प्रजाके अज्ञानको दूर करनेका प्रयत्न करें ॥ ७ ॥

७४ आ यांह्यग्ने पथ्याः अनु स्वा मन्द्रो देवानां सख्यं जुषाणः ।
आ सानु शुष्मैर्नदयन् पृथिव्या जम्भेभिर्विश्वमुशधग्वनानि ॥ २ ॥

७५ प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि बर्हिः प्रीणीते अग्निरीळितो न होता ।
आ मातरा विश्ववारे हुवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः ॥ ३ ॥

७६ सद्यो अध्वरे रथिरं जनन्त मानुषासो विचेतसो य एषाम् ।
विशामधायि विश्पतिर्दुरोणेऽग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ॥ ४ ॥

अर्थ— [७४] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (मन्द्रः) आनंदित होकर (देवानां सख्यं जुषाणः) देवोंके साथ मित्रता करनेवाला (पृथिव्याः सानुं शुष्मैः) पृथ्वीके ऊपरके उच्च भागको अपने शोषक तेजोंसे (नदयन्) शब्द युक्त करके (जंभेभिः विश्वं वनानि उशधक्) अपनी ज्वालाओंसे सब वनोंको इच्छानुसार जलाता हुआ (स्वाः पथ्याः अनु आ आ याहि) अपने मार्गोंसे इस ओर आ जा ॥ २ ॥

[७५] (यज्ञः प्राचीनः) यह पूर्वाभिमुख है । (बर्हिः हि सुधितं) दर्भासन अच्छी तरह रखा है । (ईळितः अग्निः प्रीणीत) प्रशंसित अग्नि तृप्त होता है । (होता न) और होता भी वैसा ही होता है । (विश्ववारे मातरा) विश्वके द्वारा वरणीय द्यावा पृथिवी (हुवानः) बुलाये जा रहे हैं । हे (यविष्ठ) तरुण अग्ने ! तू (यतः) जब (सुशेवः जज्ञिषे) उत्तम सेवा करने योग्य होता है, तब यह सब ऐसा ही होता है ॥ ३ ॥

[७६] (विचेतसः मानुषासः) विशेष बुद्धिमान् मनुष्य (अध्वरे रथिरं सद्यः जनन्त) हिंसारहित यज्ञमें रथमें बैठनेवाले नेता अग्निको शीघ्रतासे उत्पन्न करते हैं । (यः एषां) जो इनके हविका हवन करता है वह (विश्पतिः मन्द्रः) प्रजाओंका पालक आनन्द बढानेवाला है, (मधुवचा ऋतावा) वह मधुरभाषी सत्यनिष्ठ अग्नि (विशां दुरोणे अधायि) प्रजाओंके घरमें स्थापित हुआ है ॥ ४ ॥

भावार्थ— राक्षसों अथवा शत्रुओंका पराभव करनेवाला तेजस्वी वीर अग्रणी होता है । जो घोडेके समान वेगवान् तथा बलवान् होता है, उसका प्रणामोंसे, यज्ञोंसे तथा धनोंसे सत्कार करना चाहिए । जो विद्वान् हो वही यज्ञोंमें कार्य करे ॥ १ ॥

हे अग्ने ! तू आनन्दित होकर देवोंके साथ मित्रता कर । पृथ्वीके ऊपरके उच्च भागको अपनी शोषक ज्वालाओंसे तप्त कर तथा अपनी ज्वालाओंसे सब वनोंको अपनी इच्छानुसार जलाता हुआ अपने मार्गोंसे इस ओर आ ॥ २ ॥

यज्ञशालाका द्वार पूर्वाभिमुख हो, दर्भका आसन बिछा हुआ हो । कुण्डमें प्रशंसित अग्नि प्रदीप्त होकर तृप्त हो, उसके साथ ही यज्ञ करनेवाला होता भी हवि देकर स्वयं भी तृप्त हो । द्युलोक और पृथ्वीलोकका आवाहन हो रहा है । जब यह अग्नि सेवाके योग्य होता है, तब ये सब काम शुरु होते हैं । अर्थात् जब अग्नि प्रदीप्त होकर आहुतिके योग्य बन जाता है, तब ये सभी काम शुरु हो जाते हैं ॥ ३ ॥

विशेष ज्ञानी मनुष्य हिंसारहित कर्म करते हैं और उसमें वीरका सत्कार करते हैं, क्योंकि वीर ही ऐसे कर्म कर सकता है । प्रजाओंका पालक यह राजा सबका आनन्द बढाता हुआ, मीठा भाषण करता हुआ तथा सत्यनिष्ठ रहकर प्रजाओंके स्थानमें ही रहे, प्रजाजनोंमें ही रहे । अपने राष्ट्रमें ही रहे । जो राजा प्रजाओंमें रहता है, वह प्रजाओंके सुखदुःखसे अच्छी तरह परिचित होता है । राजा प्रजाओंके सुखदुःखको जानकर हरतरहसे उनका हित करे ॥ ४ ॥

७७ असा॑दि वृ॒तो वह्नि॑राजग॒न्वा- न॒ग्निर्ब्र॒ह्मा नृ॑ष॒दने॑ विध॒र्ता ।
द्यौश्च॒ यं पृ॑थि॒वी वा॑वृ॒धाते॒ आ यं होता॒ यज॑ति वि॒श्ववा॑रम् ॥ ५ ॥
७८ ए॒ते द्यु॒म्नेभि॒र्विश्व॒माति॑रन्त॒ मन्त्रं॒ ये वारं॒ नर्या॒ अत॑क्षन् ।
प्र ये विश॑स्ति॒रन्त॒ श्रोष॑माणा॒ आ ये मे॑ अ॒स्य दीध॑यन्नृ॒तस्य॑ ॥ ६ ॥
७९ नू त्वाम॑ग्न ईमहे॒ वसि॑ष्ठा॒ ई॒शा॒नं सू॑नो सहसो॒ वसू॑नाम् ।
इषं॑ स्तो॒तृभ्यो॑ म॒घव॑द्भ्य आनड्॒ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥ ७ ॥

[८]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८० इ॒न्धे राजा॒ सम॒र्यो नमो॑भि॒- र्यस्य॒ प्रती॑क॒माहु॑तं घृ॒तेन॑ ।
नरो॑ ह॒व्येभि॑रीळते स॒बाध॒ आग्निरग्र॑ उ॒षसा॑मशोचि ॥ १ ॥

अर्थ— [७७] (वृतः वह्निः ब्रह्मा) वरण किया हुआ ब्रह्मा ज्ञानी (विधर्ता अग्निः) विशेष रीतिसे धारण करनेवाला अग्नि (आजगन्वान्) आ गया है और वह (नृषदने असादि) मनुष्योंके स्थानमें बैठा है। (यं द्यौः च पृथिवी च वावृधाते) जिसको द्युलोक और भूलोक बढाते हैं। और (यं विश्ववारं होता आ यजाति) जिस सबके द्वारा वरण करने योग्यका यजन होता करता है ॥ ५ ॥

[७८] (एते द्युम्नेभिः विश्वं आ तिरंत) ये हमारे लोग अन्नोंसे सब पोष्यवर्गको पुष्ट कर रहे हैं। (ये नर्याः मन्त्रं वा अरं अतक्षन्) ये मनुष्य मनन करने योग्य रीतिसे संस्कार करते हैं। (ये विशः श्रोषमाणाः प्रतिरन्त) जो प्रजाजन इसको सुनकर वीरको बढाते हैं (मे ये ऋतस्य आ दीधयन्) और मेरे ये लोग सत्यको प्रकाशित करते हैं ॥ ६ ॥

[७९] हे (सहसः सूनो अग्ने) बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! (वसिष्ठाः वयं) हम सब वसिष्ठ (वसूनां ईशानं त्वां) धनोंके स्वामी तुमको हमारे (स्तोतृभ्यः मघवद्भ्यः इषं आनट्) स्तोता और हवि अर्पण करनेवालोंके लिये यह अन्न पहुंचा। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याण करके हमें सुरक्षित कर दे ॥ ७ ॥

[८]

[८०] (राजा अर्यः अग्निः नमोभिः सं इन्धे) यह श्रेष्ठ राजा-अग्नि-अन्नोंसे प्रदीप्त हो रहा है। (यस्य प्रतीकं घृतेन आहुतं) जिसका रूप घीके द्वारा हवन करके बढाया जा रहा है। (नरः सबाधः हव्येभिः ईळते) मनुष्य मिलकर हव्योंद्वारा इसको पूजते हैं। वह (अग्निः उषसां अग्रे आ अशोचि) अग्नि उषाओंके सामने प्रकाशित हो रहा है ॥ १ ॥

भावार्थ— जिस अग्निको द्युलोक और पृथिवी लोक बढाते हैं, जिसका उत्तम रीतिसे वरण करनेपर ही योग्य यज्ञकर्म हो सकते हैं, वह अग्नि यज्ञवेदिमें आकर बैठता है और सम्यक् रीतिसे वृत हुए ज्ञानीके द्वारा वह प्रदीप्त होता है ॥ ५ ॥

जब बडे बडे यज्ञोंके उत्सव होते हैं, उस समयका वर्णन इस मंत्रमें है। जब यज्ञ चलते हैं, तब यजमानके सेवक वर्ग यज्ञमें आए हुए लोगोंको अन्न धान्यादि देकर पुष्ट करता है, कुछ अध्वर्यु आदि मननीय संस्कार करनेमें व्यस्त रहते हैं. कुछ लोग इस अग्निको प्रदीप्त करनेके कार्यमें लगे रहते हैं, तो कुछ लोग ज्ञान या सत्यको प्रकाशित करते हैं, अर्थात् सत्यका उपदेश देते हैं ॥ ६ ॥

हे बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! हम वसिष्ठ गोत्रके हैं, अथवा हम ऐश्वर्यमें स्थित अर्थात् ऐश्वर्यशाली हैं। ऐश्वर्यशाली होनेपर भी हम हे अग्निदेव ! तुम्हें हवि अर्पण करते हैं। मनुष्य भरपूर धनवान् होनेपर भी परमात्माको न भूले ॥ ७ ॥

८१ अयमु ष्य सुमहाँ अवेदि होता मन्द्रो मनुषो यह्वो अग्निः ।
वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोषधीभिर्ववक्षे ॥ २ ॥
८२ कया नो अग्ने वि वसः सुवृक्तिं कामु स्वधामृणवः शस्यमानः ।
कदा भवेम पतयः सुदत्र रायो वन्तारो दुष्टरस्य साधोः ॥ ३ ॥
८३ प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत् सूर्यो न रोचते बृहद् भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥ ४ ॥
८४ असन्नित् त्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः ।
स्तुतश्चिदग्ने शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ॥ ५ ॥

अर्थ— [८१] (स्य अयं होता मन्द्रः यह्वः अग्निः) यह हवन कर्ता सुखदायी बड़ा अग्नि (मनुषः सुमहान् अवेदि) मानवोंमें अत्यंत महान् करके प्रसिद्ध है । वह (भाः वि अकः) प्रकाश करता है । (कृष्णपविः पृथिव्यां ओषधीभिः ववक्षे) वह काले मार्गसे जानेवाला अग्नि इस पृथिवीपर औषधियोंमें – काष्ठोंमें – बढता है ॥ २ ॥

[८२] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (कया नः सुवृक्तिं वि वसः) किससे हमारी उत्तम स्तुतिको स्वीकारता है ? (कः स्वधां शस्यमानः ऋणवः) किस अन्नको लेकर स्तुति करनेपर तू हमें प्राप्त होगा ? हे (सु दत्र) उत्तम दान देनेवाले ! हम (कदा दुष्टरस्य साधोः रायः पतयः) कब शत्रुके लिये अप्राप्य उत्तम धनके स्वामी और उस (वंतारः भवेम) धनका बटवारा करनेवाले होंगे ? ॥ ३ ॥

[८३] (अयं अग्निः भरतस्य प्रप्र शृण्वे) यह अग्नि भरतके यज्ञमें प्रसिद्ध हुआ है । (यत् सूर्यः न बृहद् भाः विरोचते) तब सूर्यके समान यह अत्यंत तेजसे प्रकाशता रहा । (यः पृतनासु पुरुं अभि तस्थौ) यह अग्नि युद्धोंमें पुरु नामक असुरके विरोधमें खडा रहा, (द्युतानः दैव्यः अतिथिः शुशोच) यह तेजस्वी दिव्य अतिथिके समान पूज्य होकर प्रज्वलित हुआ है ॥ ४ ॥

[८४] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वे आहवनानि भूरि असन् इत्) तेरे अन्दर हविर्द्रव्यकी आहुतियाँ बहुत डाली जाती हैं । तू (विश्वेभिः अनीकैः सुमना भुवः) अनंत तेजोंसे सुप्रसन्न होता है । (स्तुतः चित् शृण्विषे) स्तुति करनेपर तू उसको श्रवण करता है । हे (सुजात) उत्तम जन्मवाले अग्ने ! (गृणानः स्वयं तन्वं वर्धस्व) स्तुति करनेपर अपने शरीरका वर्धन कर बडा हो जा ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह अग्नि एक श्रेष्ठ राजा है । वह हविरूप अन्नोंसे प्रदीप्त किया जाता है । इसका तेजस्वी रूप घीके द्वारा बढाया जाता है । जब कुण्डमें घीकी आहुतियां दी जाती हैं, तब अग्निकी ज्वालायें बढती हैं और उसका रूप भी बढता है । जब मनुष्य यज्ञमें संगठित होकर हवि प्रदान करके इस अग्निको पूजते हैं। तब वह अग्नि उपासकोंके सामने प्रकाशता है ॥ १ ॥

हवनको पूर्ण करके सुखको प्रदान करनेवाला यह अग्नि मनुष्योंमें बहुत महान् है, वह सर्वत्र प्रकाश करता है । धूमके द्वारा ज्ञात होनेवाला वह अग्नि इस पृथ्वीपर काष्ठ आदिसे बढाया जाता है ॥ २ ॥

हे अग्ने ! तू हमारी प्रार्थनाओंको स्वीकार करके हमें ऐसा धन प्रदान कर कि जो शत्रुओंके लिए अप्राप्य हो । धन ऐसा होना चाहिए कि जो शत्रुओंके लिए अप्राप्य हो । हम वीर हों और हमें धन मिलें । उस धनको हम अपने मित्रोंमें बांट सकें ॥ ३ ॥

युद्धोंमें शत्रुओंका पराभव करनेके लिए अग्नि सदा स्थिर रहता है । इसका अर्थ यह है कि शत्रुपर अग्न्यस्त्रका प्रयोग करके उसका पराभव करना चाहिए । युद्धोंमें प्रदीप्त अग्नि शत्रुपर फेंका जाता है । अग्नि अस्त्र यही है । भरत पदका अर्थ ' भरणपोषणमें समर्थ ' और पुरुका अर्थ ' नगरमें निवास करनेवाला पुरवासी ' है अथवा ' सभी भोगसाधनोंसे परिपूर्ण शत्रु ' ही पुरु है । अग्निने भरतका हित और पुरुका नाश किया ॥ ४ ॥

राजा सब सैनिकोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक बर्ताव करे । उत्तम और सु प्रसन्न चित्तसे वीरोंके साथ बात करे । वह सदा हंसके सुखदायक रहे । मनुष्य स्वयं प्रयत्न करके अपने शरीरको बढावे ॥ ५ ॥

८५ इदं वचः शतसाः संसहस्रमुदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः ।
शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवाति द्युमदमीवचातनं रक्षोहा ॥ ६ ॥
८६ नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[९]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८७ अबोधि जार उषसामुपस्थाद्धोता मन्द्रः कवितमः पावकः ।
दधाति केतुमुभयस्य जन्तोर्हव्या देवेषु द्रविणं सुकृत्सु ॥ १ ॥

अर्थ— [८५] (शतसाः संसहस्रं द्विबर्हाः) सैकडों और सहस्रों प्रकारका धन पास रखनेवाले तथा विद्या और कर्मसे श्रेष्ठ बने वसिष्ठने (इदं वचः अग्नये उत् अजनिष्ट) यह स्तोत्र अग्निके लिये बनाया है। (यत् द्युमत् अमीवचातनं रक्षोहा) जो तेजस्वी, रोग दूर करनेवाला, राक्षसोंको दूर करनेवाला तथा जो (आपये शं भवाति) बांधवोंके लिये सुखदायी होता है ॥ ६ ॥

[८६] हे (सहसः सूनो अग्ने) बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने! (वसिष्ठाः वयं) हम सब वसिष्ठ (वसूनां ईशानं त्वा) धनोंके स्वामी तुझको हमारे (स्तोतृभ्यः मघवद्भ्यः इषं आनट्) स्तोता और हवि अर्पण करनेवालोंके लिए यह अन्न पहुंचा। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) हे देवो! तुम सदा ही अपने कल्याणकारक साधनोंसे हमारा पालन करो ॥ ७ ॥

[९]

[८७] (जारः होता मन्द्रः) सबकी वयोहानि करनेवाला, देवोंको आह्वान करनेवाला, आनन्द देनेवाला (कवितमः पावकः) अत्यंत ज्ञानी, पवित्र करनेवाला (उषसां उपस्थात् अबोधि) उषाओंके मध्यमें जाग उठा। (उभयस्य जन्तोः केतुं दधाति) दोनों प्रकारके प्राणियोंको ज्ञान देता है। (देवेषु हव्या) देवोंमें हवन द्रव्योंको और (सुकृत्सु द्रविणं) पुण्य कर्म करनेवालोंको धन देता है ॥ १ ॥

भावार्थ—अनेकों तरहका धन अपने पास रखनेवाले तथा विद्या और कर्ममें श्रेष्ठ वसिष्ठने अग्निकी स्तोत्रोंसे स्तुति की। यह अग्नि अनेक रोगोंको दूर करनेवाला, रोगकृमी रूप राक्षसोंको दूर करनेवाला और इसकी स्तुति करनेवालोंके लिए यह सुखदायी होता है ॥ ६ ॥

हे बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने! हम वसिष्ठ गोत्रके हैं, अथवा हम ऐश्वर्यमें स्थित अर्थात् ऐश्वर्यशाली हैं। ऐश्वर्यशाली होने पर भी हम, हे अग्निदेव! तुम्हें हवि अर्पण करते हैं। मनुष्य भरपूर धनवान् होने पर भी परमात्माको न भूले ॥ ७ ॥

जार शब्दका अर्थ 'आयु नष्ट करनेवाला' भी होता है और 'स्तुति करनेवाला' भी। अग्निके जगाते ही अर्थात् प्रदीप्त होते ही यज्ञ स्थानमें स्तुतिके मंत्र बोले जाते हैं। अन्यान्य देवोंको भी बुलाया जाता है। यज्ञ कर्मका आरंभ होता है। इस कारण सभी आनन्दित होते हैं। यह अग्नि बहुत ही ज्ञानी और परिशोधन करनेवाला है। यह उषःकालमें ही जागृत होता है, यह स्वयं उठकर मनुष्यों, पशुओं तथा पक्षियोंको जगाता है। इसी तरह ज्ञानी उषःकालमें उठता है, अपने शरीर तथा आत्माकी पवित्रताके कर्म करता है। देवोंको प्रार्थनासे बुलाता है। स्वयं आनन्द प्रसन्न रहकर दूसरोंको भी प्रसन्न रखता है ॥ १ ॥

८८ स सुक्रतुर्यो वि दुरः पणीनां पुनानो अर्कं पुरुभोजसं नः ।
होता मन्द्रो विशां दमूना स्तिरस्तमो ददृशे राम्याणाम् ॥ २ ॥
८९ अमूरः कविरदितिर्विवस्वान् त्सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः ।
चित्रभानुरुषसां भात्यग्रे ऽपां गर्भः प्रस्वः आ विवेश ॥ ३ ॥
९० ईळेन्यो वो मनुषो युगेषु समनगा अशुचज्जातवेदाः ।
सुसंदृशा भानुना यो विभाति प्रति गावः समिधानं बुधन्त ॥ ४ ॥
९१ अग्ने याहि दूत्यं मा रिषण्यो देवाँ अच्छा ब्रह्मकृता गणेन ।
सरस्वतीं मरुतो अश्विनापो यक्षि देवान् रत्नधेयाय विश्वान् ॥ ५ ॥

अर्थ— [८८] (सः सुक्रतुः) वह उत्तम कर्म करनेवाला है, (यः पणीनां दुरः वि) जिसने पणियोंके–गौको चोरनेवालेके–द्वार खोल दिये । (पुरुभोजसं अर्कं नः पुनानः) वह अधिक दुग्धरूप भोजन देनेवाले पूजा करने योग्य गौके झुण्डको ढूंढता है । (होता मन्द्रः दमूनाः) वह देवोंको बुलानेवाला, आनंददायक, मनः संयमी है । (राम्याणां विशां तमः तिरः ददृशे) रात्रियोंका तथा प्रजाओंका अन्धेरा दूर करता है ॥ २ ॥

[८९] (यः अमूरः कविः) जो अमूढ और ज्ञानी (अदितिः विवस्वान्) अदीन और तेजस्वी (सुसंसत् मित्रः अतिथिः) उत्तम साथी, मित्र और पूज्य (नः शिवः) हमारे लिये शुभकारी (चित्रभानुः) विशेष तेजस्वी (उषसां अग्रे भाति) उषाओंके अग्र भागमें प्रकाशता है, (सः अपां गर्भः) वह जलोंका उत्पादक (प्रस्वः आ विवेश) ओषधियोंके अन्दर प्रविष्ट हुआ है ॥ ३ ॥

[९०] (वः) तू (मनुषः युगेषु) मनुष्योंके युगोंमें यज्ञके समयमें (ईळेन्यः) स्तुत्य है । (यः जातवेदाः) जो अग्नि धन और वेदका उत्पादक है, (समनगाः अशुचत्) युद्धमें सामना करनेके समयमें वह अधिक तेजस्वी होता है । (सु संदृशा भानुना) उत्तम दर्शन योग्य तेजसे (विभाति) वह प्रकाशता है । उस (समिधानं गावः प्रति बुधन्त) प्रदीप्त होनेवाले अग्निको गौवें अथवा स्तुतियां जगाती हैं ॥ ४ ॥

[९१] हे (अग्ने) अग्ने ! (दूत्यं याहि) दूत कर्म करनेके लिये तू जा । (देवान् अच्छ) देवोंके प्रति जा । (गणेन ब्रह्मकृतः मा रिषण्यः) संघमें रहकर ब्रह्म–स्तोत्र–करनेवाले हम जैसोंका विनाश न कर । (सरस्वतीं मरुतः अश्विना अपः) सरस्वती, मरुत, अश्विनौ और आप (विश्वान् देवान् रत्नधेयाय यक्षि) विश्वेदेवोंको रत्नोंका दान हमें देनेके लिये सुपूजित कर ॥ ५ ॥

भावार्थ— अग्नि उत्तम कर्म करता है, चोरोंको पकडता है और उनके द्वार खोलकर गौवोंको मुक्त करता है । इसके बाद ये गौवें अधिक दूध देती हैं । यह अग्नि यज्ञोंका प्रेरक, सबको आनन्द देनेवाला तथा संयमी है । वह अन्धेरा दूर करता है, इसी तरह ज्ञानी प्रजाओंमें अज्ञानके अन्धकार को दूर करे ॥ २ ॥

वह अग्नि मूढ नहीं है । वह ज्ञानी, अदीन, तेजस्वी, उत्तम मित्र, पूज्य, शुभकारी, प्रकाशमान्, जलोंका उत्पादक, उषाओंका प्रकाशक और औषधियोंमें प्रविष्ट होनेवाला है ॥ ३ ॥

ज्ञानी हर समयमें स्तुति करने योग्य है । जो ज्ञान तथा धन उत्पन्न करता है, वह शत्रुके साथ युद्ध करनेमें भी अधिक उत्साही दीखता है । वह दर्शनीय तेजसे प्रकाशित होता है । इस तेजस्वी ज्ञानीके लिए गौवें प्राप्त होती हैं ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! तू दौत्य कर्म करनेके लिए जा । तू सीधा देवोंके पास जा । समुदायमें रहकर तेरी स्तुति करनेवालोंका तू विनाश मत कर । तू सरस्वती, मरुत् आदि सभी देवोंकी पूजा कर ताकि वे हमें रत्नोंको प्रदान करनेके लिए प्रेरित हों ॥५॥

९२ त्वाम॑ग्ने समि॒धा॒नो वसि॑ष्ठो॒ जरू॑थं ह॒न् यक्षि॑ रा॒ये पुरं॑धिम् ।
पु॒रु॒णी॒था जा॑तवेदो जरस्व यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ६ ॥

[१०]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

९३ उ॒षो न जा॒रः पृ॒थु पाजो॑ अश्रेद् दवि॑द्युत॒द् दीद्य॒च्छोशु॑चानः ।
वृषा॒ हरिः॒ शुचि॒रा भा॑ति भा॒सा धियो॑ हिन्वा॒न उ॑श॒तीर॑जीगः ॥ १ ॥

९४ स्व१॒॑र्ण वस्तो॑रु॒षसा॑मरोचि य॒ज्ञं त॑न्वा॒ना उ॒शिजो॒ न मन्म॑ ।
अ॒ग्निर्जन्मा॑नि दे॒व आ वि वि॒द्वान् द्र॒वद् दू॒तो दे॑व॒यावा॒ वनि॑ष्ठः ॥ २ ॥

अर्थ— [९२] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वां वसिष्ठः समिधानः) तुझे वसिष्ठ ऋषि प्रदीप्त करता है । (जरूथं हन्) तू कठोर भाषोंका वध कर । (राये पुरंधिं यक्षि) धनके लिये बहुत बुद्धिमान् दिव्य विद्वानोंका सत्कार कर । हे (जात वेदः) अग्ने ! (पुरुनीथा जरस्व) बहुत स्तोत्रोंसे देवोंको स्तुति कर । (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात-) आप कल्याण करनेके साधनोंसे हम सबको सदा सुरक्षित रखो ॥ ६ ॥

[१०]

[९३] (उषः न जारः) उषाका नाश करनेवाला सूर्य है उसके समान, (पृथु पाजः अश्रेत्) बहुत तेज यह अग्नि अपनेमें धारण करता है । (दविद्युतत् दीद्यत् शोशुचानः) अत्यंत चमकनेवाला तेजस्वी और प्रकाशमान (वृषा हरिः शुचिः) बलवान् दुःखका हरण करनेवाला पवित्र अग्नि (धियः हिन्वानः) बुद्धि तथा कर्मोंको प्रेरित करता है और (भासा आभाति) अपने तेजसे प्रकाशता है । (उशतीः अजीगः) सुखकी कामना करनेवालोंको जगाता है ॥ १ ॥

[९४] (अग्निः वस्तोः) अग्नि दिनके समय (उषसां अग्रे) उषाओंके आगे (स्वः न अरोचि) सूर्यके समान प्रकाशता है । (उशिजः न यज्ञं तन्वानाः) सुखकी इच्छा करनेवाले जैसे यज्ञ फैलाते हैं और (मन्म) मननीय स्तोत्र पढते हैं, (विद्वान् दूतः देवयावा वनिष्ठः) वैसा विद्वान् देवोंका दूत देवोंके पास जानेवाला दाता (अग्निः देवः वि आ द्रवत्) अग्नि देव अनेक प्रकारसे देवोंके सहायतार्थ गमन करता है ॥ २ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तुझे वसिष्ठ ऋषि प्रदीप्त करता है । जो मनुष्य कठोर आचरण करता हो, उसका तू वध कर । तू धनके लिए बहुत-बुद्धिमान् और दिव्य ज्ञानियोंका सत्कार कर । हे अग्ने ! तू हमारी स्तुति देवों तक पहुँचा तथा कल्याणकारी साधनोंसे वे देव हमें सदा सुरक्षित रखें ॥ ६ ॥

मनुष्य अपने अन्दर सूर्यके समान तेज धारण करे । अत्यन्त तेजस्वी, बलवान्, पवित्र और दुःख हरण करनेवाला ज्ञानी बुद्धियुक्त कर्मोंको करता है और अधिक तेजस्वी होता है । वह सुखप्राप्तिकी इच्छा करनेवाली प्रजाको जागृत करता है ॥ १ ॥

ज्ञानी सूर्यके समान तेजस्वी बने । सुखकी वृद्धिके लिए प्रशस्ततम कर्म करें और मननीय विचार भी मनमें धारण करें । ज्ञानी अन्य ज्ञानीओंके साथ रहें और उनके साथ प्रगति करें । दिनमें चमकनेवाले सूर्यके समान मनुष्य तेजस्वी हों । सुख प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले मनुष्य प्रशस्तकर्मों और मननीय विचारोंका प्रचार करें । विद्वान् मनुष्य देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छासे विशेष प्रगति करे ॥ २ ॥

+

९५ अच्छा गिरो मतयो देवयन्ती—रग्निं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः ।
सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ॥ ३ ॥
९६ इन्द्रं नो अग्ने वसुभिः सजोषा रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम् ।
आदित्येभिरदितिं विश्वजन्यां बृहस्पतिमृक्वभिर्विश्ववारम् ॥ ४ ॥
९७ मन्द्रं होतारमुशिजो यविष्ठ—मग्निं विश ईळते अध्वरेषु ।
स हि क्षपावाँ अभवद् रयीणा—मतन्द्रो दूतो यजथाय देवान् ॥ ५ ॥

अर्थ— [९५] (मतयः देवयन्तीः) बुद्धियाँ देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली और (द्रविणं भिक्षमाणाः गिरः) धनकी प्रार्थना करनेवाली वाणियाँ (सुसंदृशं सुप्रतीकं) उत्तम दर्शनीय, सुरूप, (स्वंचं हव्यवाहं) उत्तम प्रगतिशील, तथा हव्यका वहन करनेवाले, (मनुष्याणां अरतिं) मनुष्योंके स्वामी (अग्निं अच्छयन्ति) अग्निके समीप जाती हैं ॥ ३ ॥

[९६] हे अग्ने ! (वसुभिः सजोषाः) वसुओंके साथ मिलकर तू (नः इन्द्रं आवह) हमारे लिये इन्द्रको बुलाओ। (रुद्रेभिः बृहन्तं रुद्रं) रुद्रोंके साथ मिलकर महान रुद्रको बुलाओ। (आदित्यैः विश्वजन्यां अदितिं) आदित्योंके साथ मिलकर सर्वजन हितकारी अदिति माताको बुलाओ। (ऋक्वभिः विश्ववारं बृहस्पतिं आ वह) स्तुतियोग्य ज्ञानी अंगिरा देवोंके साथ मिलकर सबके द्वारा संसेवित बृहस्पतिको बुलाओ ॥ ४ ॥

[९७] (उशिजः विशः) सुखकी कामना करनेवाली प्रजाएं (मन्द्रं होतारं यविष्ठं अग्निं) स्तुत्य, आह्वान करनेवाले, तरुण अग्निकी (अध्वरेषु ईळते) हिंसा रहित यागोंमें स्तुति गाते हैं। (सः हि क्षपावान्) वह रात्रीमें रहनेवाला, (रयीणां देवान् यजथाय) धनोंके लिये देवोंका यजन करनेके लिये (अतन्द्रः दूतः अभवत्) आलस्य रहित कार्य करनेवाला दूत हुआ है ॥ ५ ॥

भावार्थ— मनुष्यकी बुद्धियां देवत्व प्राप्त करें तथा धनकी प्राप्तिकी इच्छा करें। सभी मनुष्य उत्तम और सुन्दर शरीरधारी, प्रगतिशील और बलवान् हों। मनुष्य देवत्व प्राप्त करके अपनी योग्यता बढायें और धनके लिए सुन्दर, प्रगतिशील, धनवान् और मानवोंके नेता अग्रणीके पास जाएं। मनुष्योंकी बुद्धियां देवत्व प्राप्त करनेका यत्न करें ॥ ३ ॥

जो प्रजाओंका निवास कराते हैं, उन्हें वसु कहते हैं। इन वसुओंका राजा इन्द्र है। इसी तरह राष्ट्रमें जो अग्रणी प्रजाओंका निवास कराते हैं, उन्हें वसु कहते हैं, उनका स्वामी राजा होता है। जो शत्रुओंको रुलाते हैं, उन वीर सैनिकोंका नाम रुद्र है और उन सैनिकोंके सेनापतिका नाम महारुद्र है। अदिति प्रजाको कहते हैं। प्रजाका नाश नहीं करना चाहिए। इस अदिति अर्थात् प्रजाके पुत्र राजाकी संज्ञा आदित्य है। यों तो राजा प्रजाका स्वामी है, पर चूंकि वह प्रजाओं द्वारा ही निर्वाचित होकर नियुक्त होता है, इसलिए उसे प्रजाका पुत्र भी कहा गया है। राष्ट्रमें जो ज्ञानी हैं, वे बृहस्पति हैं। इसप्रकार राष्ट्रमें वसु, रुद्र, अदिति, आदित्य और बृहस्पति आदि सभी तरहके देवता रहते हैं। वसु धनका नाम होनेसे वसुदेव धनके देव हैं। रुद्र वीर है और बृहस्पति ज्ञानी हैं। इस प्रकार बृहस्पति, रुद्र और वसु ये देव क्रमशः ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णके प्रतीक हैं। ये तीनों ही मिलकर राष्ट्र यज्ञको चलाते हैं ॥ ४ ॥

जो प्रजा सुखप्राप्तिकी इच्छा करे, वह प्रशंसनीय तरुण तेजस्वी अग्रणी नेताका प्रशस्ततम कर्म करनेके लिए तैय्यार रहे। नेता रात्रीमें जागृत रहे अर्थात् संकटके समय सदा सावधान रहे। सबको धनवान् और समृद्ध करे और अपना कर्तव्य आलस्य छोडकर करता रहे ॥ ५ ॥

[११]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

९८ महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो न ऋते त्वदमृता मादयन्ते ।
आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैर्न्यग्ने होता प्रथमः सदेह ॥ १ ॥
९९ त्वामीळते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन्मानुषासः ।
यस्य देवैरासदो बर्हिरग्नेऽहान्यस्मै सुदिना भवन्ति ॥ २ ॥
१०० त्रिश्चिदक्तोः प्र चिकितुर्वसूनि त्वे अन्तर्दाशुषे मर्त्याय ।
मनुष्वदग्न इह यक्षि देवान् भवा नो दूतो अभिशस्तिपावा ॥ ३ ॥
१०१ अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्याऽग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य ।
क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्ताऽथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ॥ ४ ॥

---

[११]

अर्थ— [९८] हे अग्ने ! (अध्वरस्य महान् प्रेकतः असि) तू हिंसारहित कर्मका महान ध्वज जैसा सूचक है। (त्वत् ऋते अमृताः न मादयन्ते) तेरे विना अमर देव आनंदित नहीं होते। (विश्वेभिः देवैः सरथं आ याहि) सब देवोंके समेत एक रथपर बैठकर आओ और (इह प्रथमः होता नि सद) यहां पहिला आह्वाता होकर बैठो ॥ १ ॥

[९९] हे (अग्ने) अग्ने ! (अजिरं त्वां) प्रगतिशील तुझको (मानुषासः हविष्मन्तः) मनुष्य हवि लेकर (सदं इत्) सदा ही (दूत्याय ईळते) दूत कर्म करनेके लिये प्रार्थना करते हैं। (यस्य बर्हिः) जिसके आसनपर (देवैः आसदः) देवोंके साथ तू बैठता है (अस्मै अहानि सुदिना भवन्ति) उसके लिये अच्छे दिन आते हैं ॥ २ ॥

[१००] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वे अन्तः अक्तोः वसूनि त्रिः चित् मर्त्याय दाशुषे) तेरे पास दिनमें तीन वार दाता मनुष्योंको देनेके लिये धन है ऐसा (प्रचिकितुः) सब जानते हैं। (मनुष्वत् इह नः दूतः भव, देवान् यक्षि) मनुके समान यहां हमारा दूत होकर देवोंका यजन कर और (नः अभिशस्ति-पावा भव) हमारा रक्षण शत्रुओंसे करनेवाला हो ॥ ३ ॥

[१०१] (बृहतः अध्वरस्य अग्निः ईशे) महान् हिंसारहित प्रशस्ततम कर्मका अग्नि अधिपति है। (विश्वस्य कृतस्य हविषः) सब संस्कार किये हविष्यान्नका अग्नि ही अधिपति है। (हि अस्य क्रतुं वसवः जुषन्त) इसके किये कर्मका वसुदेव सेवन करते हैं (अथ देवाः हव्यवाहं दधिरे) और देवोंने अग्निको हव्योंका वहनकर्ता करके धारण किया है ॥ ४ ॥

भावार्थ— मनुष्य हिंसा और कुटिलता रहित कर्मोंका सर्वत्र प्रचार करे। जगत्में जो हिंसा और कुटिलता चलती है, उसका प्रतिकार सरल व्यवहार करनेवालोंके द्वारा ही हो सकता है। जिस राष्ट्रमें अहिंसा और सरलताका प्रचार करनेवाले नहीं होंगे, उस राष्ट्रमें श्रेष्ठ पुरुष प्रसन्नतापूर्वक नहीं रह सकते। इसलिए मनुष्य राष्ट्रमें अहिंसा और सरलता युक्त कर्मोंका प्रचार करे ॥ १ ॥

राजा प्रगतिशील वीर मनुष्यको दूतकर्ममें नियुक्त करे। शीघ्रतासे कर्म करनेवाला मनुष्य दूत कर्म करनेके लिए अच्छा है। जिसके गृहमें ज्ञानीजन पधारते हैं, उसके दिन बहुत उत्तम होते हैं। दूत शीघ्रतासे कार्य करनेवाला और तत्परतासे कार्य करनेवाला हो। वह सुस्त न हो। जिसके घरमें ज्ञानीजन पधारते हैं, उसके दिन सदा उत्तमतासे गुजरते हैं, पर जिनकी संगति बुरी होती है, वे रो रो कर दिन काटते हैं। इसलिए सदा ज्ञानियोंकी ही संगति करनी चाहिए ॥ २ ॥

यज्ञ करनेवाले दाता मनुष्योंको धन दिया जाए, धन इसी कार्यके लिए है, इस बातको मनुष्य सदा ध्यानमें रखें। मनुष्य ज्ञानियोंका सत्कार करे और उनकी वह दुष्टोंसे रक्षा करे। जो सुरक्षा करनेवाला है, उसका धन आदिसे सत्कार करना चाहिए। मनुष्योंको चाहिए कि वह अपने घरमें ईश्वर सम्पत्तिवालोंका सत्कार करें और आसुरी लोगोंको दूर करे ॥ ३ ॥

१०२ अग्ने वह हविरद्याय देवा—निन्द्रज्येष्ठास इह मादयन्ताम् ।
इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[१२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१०३ अगन्म मह्ना नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ १ ॥
१०४ स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वा—नग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
स नो रक्षिषद् दुरितादवद्या—दस्मान् गृणत उत नो मघोनः ॥ २ ॥

अर्थ— [१०२] हे (अग्ने) अग्ने! (हविरद्याय देवान् आ वह) अन्नके भक्षण करनेके लिये देवोंको यहां बुलाकर ले आ । (इह इन्द्रज्येष्ठासः मादयन्तां) इस यज्ञमें इन्द्र प्रमुख देव आनन्द प्रसन्न हों । (इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि) इस यज्ञको द्युलोकमें देवोंके अन्दर स्थापन कर । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप सब हमें कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ ५ ॥

[१२]

[१०३] (यः स्वे दुरोणे समिद्धः दीदायः) जो अपने स्थानमें जागकर प्रकाशित होता है, और (उर्वी रोदसी अन्तः) विस्तीर्ण द्यावापृथिवीके मध्यमें (चित्रभानुं यविष्ठं स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चं) विलक्षण प्रकाश देनेवाले तरुण उत्तम पदार्थोंसे हवन किये हुए और सब ओरसे संसेवित उस अग्निको (नमसा अगन्म) नमस्कारसे हम सेवा करते हैं ॥ १ ॥

१ चित्रभानुं स्वाहुतं, विश्वतः प्रत्यञ्चं यविष्ठं नमसा अगन्म— विलक्षण तेजस्वी, उत्तम प्रकारसे सत्कार पूर्वक अन्नका सेवन करनेवाला, सब ओरसे जिसके पास लोग आते हैं ऐसे तरुण वीरके समीप हम नमस्कार करते हुए जाते हैं । तेजस्वी उत्तम अन्नका सेवन करनेवाले, सबके प्रिय तरुण वीरका सब सत्कार करें । तेजस्वी तरुणोंका राष्ट्रमें सत्कार हो ।

[१०४] (सः अग्निः मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वान्) वह अग्नि अपने महत्वसे सब पापोंको दूर करता है, (जातवेदाः दम आ स्तवे) वह वेदोंका तथा धनोंका उत्पादक अपने स्थानमें प्रशंसित होता है । (सः दुरितात् अवद्यात् नः रक्षिषत्) वह पापोंसे और निंदित कर्मोंसे हमें बचावे । (गृणतः अस्मान्) स्तुति करनेवाले, हम सबकी तथा (उत नः मघोनः) हमारे धनवान यज्ञ कर्ताकी सुरक्षा करे ॥ २ ॥

भावार्थ— महान्, हिंसारहित और प्रशस्ततम कर्मका अग्नि अधिपति है । सभी संस्कारयुक्त हविष्यान्नका अग्नि ही स्वामी है । इस अग्निमें जो हव्य पदार्थ डाले जाते हैं, उन पदार्थोंका वसु गण सेवन करते हैं फिर वे देव अग्निको पुष्ट करते हैं ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! हवियोंका भक्षण करनेके लिए देवोंको यहां बुलाकर ला । इन देवोंमें जो प्रमुख देव इन्द्र है, वह आनन्द प्रसन्न हो । इस यज्ञको देवोंमें स्थापित कर । हे देवो ! तुम अपने कल्याणकारी साधनोंसे हमें सुरक्षित रखो । ज्ञानीजन हमारे घरमें आकर और सत्कृत होकर आनन्द प्रसन्न होते रहें । हम ऐसे उत्तम कर्म करें, कि जो ज्ञानियोंको प्रिय हो ॥५॥

सभी जन अपने स्थान अर्थात् अपने समाज और अपने राष्ट्रमें तेजस्वी होकर प्रकाशित हों । सभी अपने राष्ट्रमें सावधान रहकर प्रकाशित हों तथा राष्ट्रसे बाहर भी अपने तेजोंको फैलायें ॥ १ ॥

१०५ त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

[१३]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वैश्वानरोऽग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१०६ प्राग्नये विश्वशुचे धियंधेऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वम् ।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम् ॥ १ ॥

१०७ त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः ।
त्वं देवाँ अभिशस्तेरमुञ्चो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥ २ ॥

अर्थ— [१०५] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं वरुणः असि) तू वरुण है, (उत मित्रः) और मित्र भी तू है। (वसिष्ठाः मतिभिः त्वां वर्धन्ति) वसिष्ठ मननीय स्तोत्रोंसे तुम्हें बढाते हैं (त्वे वसु सुषणनानि सन्तु) तेरे पास सब प्रकारके धन संसेवनीय हों। (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात) आप कल्याणोंके साथ हम सबको सदा सुरक्षित रखिये ॥३॥

[१३]

[१०६] (विश्वशुचे धियंधे) विश्वको प्रकाश देनेवाले, बुद्धियों और कर्मोंका धारण करनेवाले, (असुरघ्नो अग्नये) असुरोंके नाश कर्ता अग्निके लिये (मन्म धीतिं प्र भरध्वं) मननीय काव्यों और प्रशस्त कर्मोंको भर दो। (मतीनां यतये) कामनाओंके दाता और (वैश्वानराय बर्हिषि) विश्वके नेताके लिये यज्ञमें (हविः न) हविष्यान्नके समान शुद्ध अन्न (प्रीणानः भरे) संतुष्ट हुआ मैं देता हूं, अर्पण करता हूं ॥ १ ॥

[१०७] हे अग्ने ! (त्वं शोचिषा शोशुचानः) तू अपने तेजसे प्रकाशित होकर (जायमानः रोदसी अपृणः) उत्पन्न होते ही द्युलोक और पृथिवीको भरपूर भर देता है। हे (जातवेदः वैश्वानर) वेद और धनके उत्पन्न कर्ता और विश्वके नेता ! (महित्वा) अपनी महिमासे (त्वं देवान् अभिशस्तेः अमुञ्चः) तूने देवोंको शत्रुओंके द्वारा होनेवाले विनाशसे बचाया है ॥ २ ॥

१ त्वं शोचिषा शोशुचानः रोदसी अपृणः— तू तेजस्वी होकर अपने तेजसे विश्वको भर दे।
२ जात-वेद, वैश्वानर— ज्ञानका प्रसार कर, धनका उत्पादन कर, विश्वका नेतृत्व कर।
३ त्वं अभिशस्तेः अमुञ्चः— तू शत्रुओंसे सबको बचाओ।

भावार्थ— अग्निके समान तेजस्वी पुरुष अपने महत्त्व एवं तेजस्वितासे सब पापोंको दूर करता है, पापमय तथा निन्दित कर्मोंसे सबको सुरक्षित रखता है। वह ज्ञानका प्रकाशक और धनका दाता अपने स्थानमें प्रशंसित होकर प्रकाशित होता है। जो ऐसे तेजस्वी पुरुषका वर्णन करते हैं, गुणगान करते हैं, जो धनी अपने धनका दान प्रशस्ततम कर्मोंके लिए करते हैं, उनकी वह अग्नि सुरक्षा करता है। मनुष्य अपनी आत्मिक शक्ति बढाकर पापविचारोंको दूर करे। वह पापोंसे स्वयं सुरक्षित रहकर दूसरोंको भी सुरक्षित रखे ॥ २ ॥

अग्नि ही वरुण तथा मित्र है। मित्र और वरुण देवताके गुणधर्म इस अग्निमें हैं। जो वरणीय होता है, वह वरुण है और जो मित्रवत् आचरण करता है, वह मित्र है। अग्नि सबके द्वारा वरणीय और सबका मित्रके समान हितकारी है। इस अग्निके द्वारा प्रदान किए गए धन सुषणन अर्थात् सबके द्वारा उपभोगके योग्य हों कोई एक मनुष्य धनोंका उपभोक्ता न हो। जो अकेला ही धनोंका उपभोग करता है, वह पाप करता है ॥ ३ ॥

जो विश्वमें प्रकाशमान और शुद्ध है, जो बुद्धिमान् और पुरुषार्थी है, जो असुरोंका विनाश करता है, उसके गुणोंका गान करना चाहिए, उसकी सहायताके लिए उत्तम कर्म करने चाहिए। जो कामनाओंकी पूर्ति करता है, उस नेताके लिए अपना सर्वस्व प्रसन्नता पूर्वक समर्पित कर देना चाहिए ॥ १ ॥

तेजस्वी पुरुष अपने तेजसे प्रकाशित हो और अपनी दीप्तिसे विश्वको भर दे। ज्ञानका प्रसार करे, धनको उत्पन्न करे, विश्वका नेतृत्व करे और अपनी शक्तिसे सबको शत्रुसे बचावे ॥ २ ॥

१०८ जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून् न गोपा इर्यः परिज्मा ।
वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

[१४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १ बृहती ।)

१०९ समिधा जातवेदसे देवाय देवहूतिभिः ।
हविर्भिः शुक्रशोचिषे नमस्विनो वयं दाशेमाग्नये ॥ १ ॥

११० वयं ते अग्ने समिधा विधेम वयं दाशेम सुष्टुती यजत्र ।
वयं घृतेनाध्वरस्य होतर्वयं देव हविषा भद्रशोचे ॥ २ ॥

१११ आ नो देवेभिरुप देवहूतिमग्ने याहि वषट्कृतिं जुषाणः ।
तुभ्यं देवाय दाशतः स्याम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

अर्थ— [१०८] हे (वैश्वानर अग्ने) वैश्वानर अग्ने ! (जातः) उत्पन्न होते ही तू (इर्यः परिज्मा) सबका प्रेरक और सर्वत्र गमन कर्ता होकर (पशून् गोपाः) पशुओंका संरक्षण करता है । (यत् भुवना व्यख्यः) जब तू भुवनोंका निरीक्षण करता है, तब (ब्रह्मणे गातुं विंद) ज्ञान प्रसारके लिये मार्ग प्राप्त करता है । (सदा नः यूयं स्वस्तिभिः पात) सदा हम सबको आप कल्याणोंके द्वारा सुरक्षित रखो ॥ ३ ॥

[१४]

[१०९] (जातवेदसे) जिससे वेद प्रकट हुए उस अग्निके लिये (समिधा वयं दाशेम) समिधाओंसे हम परिचर्या करते हैं । (देवाय देवहूतिभिः) इस अग्निदेवके लिये देवस्तुतियोंसे, तथा (शुक्रशोचिषे नमस्विनः हविर्भिः) पवित्र प्रकाशवाले अग्निके लिये अन्न लेकर हम हविकी आहुतियोंसे (दाशेम) सेवा करते हैं ॥ १ ॥

[११०] हे (अग्ने) अग्ने ! (ते वयं समिधा विधेम) तेरी हम समिधाओंसे परिचर्या करते हैं । हे (यजत्र) यजनीय अग्ने ! (वयं सुष्टुतीः दाशेम) हम उत्तम स्तुतियोंसे तुम्हारी सेवा करते हैं । हे (अध्वरस्य होतः) हिंसारहित यज्ञके होता अग्ने ! हम (घृतेन) घृतसे तेरी परिचर्या करते हैं । हे (भद्रशोचे देव) कल्याण प्रकाशवाले अग्ने ! हे देव ! (वयं हविषा) हम हविके अर्पणसे तेरी परिचर्या करते हैं ॥ २ ॥

[१११] हे अग्ने ! (नः देवहूतिं) हमारी देवस्तुतिरूप यज्ञके प्रति (देवेभिः) देवोंके साथ (वषट्कृतिं जुषाण) वषट्कारसे दिये अन्नका सेवन करते हुए तू (उप आ याहि) आ । (देवाय तुभ्यं दाशतः स्याम) तुझ देवकी सेवा करनेवाले हम हों, (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप सदा हमारी कल्याणके साधनोंसे सुरक्षा कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ— उत्पन्न होते ही यह अग्नि सबका प्रेरक और सर्वत्र जानेवाला होकर पशुओंकी रक्षा करता है । जब यह भुवनोंका निरीक्षण करता है, तब ज्ञानके प्रसारके लिए मार्गको प्रकाशित करता है । इसी तरह नेता राष्ट्रमें सर्वत्र प्रजाका निरीक्षण करे, सबको उत्तम कर्म करनेके लिए प्रेरणा दे, सबको ज्ञानके मार्गमें प्रेरित करे ॥ ३ ॥

अग्निसे यज्ञ होता है और यज्ञमें वेदोंके मंत्र बोले जाते हैं, इस कारण यहां अग्निसे वेदोंका प्रकट होना बताया गया है । वेदोंको प्रकट करनेवाले अग्निके लिए हम समिधायें प्रदान करें, समिधाओंके द्वारा प्रदीप्त करके हम ईश्वरके स्तुति-स्तोत्रोंका पाठ करें । फिर प्रदीप्त अग्निमें हम हविकी आहुतियां दें ॥ १ ॥

इस मंत्रमें भी यज्ञ करनेकी विधि बताई गई है । प्रथम उत्तम समिधायें चुनकर स्तुतिके मंत्रोंका उच्चारण करते हुए उन समिधाओंको घृतसे सींचें, फिर उन्हें प्रदीप्त करके उसमें हवियोंकी आहुतियां दी जाय ॥ २ ॥

मनुष्य मिलकरके ईश्वरकी स्तुति गायें । वषट्कार पूर्वक अन्न अथवा हवि समर्पण करें । इस प्रकार देवताओंके संरक्षणमें यज्ञ करें । इस प्रकार किया हुआ यज्ञ सफल होता है, और उससे सबकी सुरक्षा होती है ॥ ३ ॥

[१५]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

११२ उपसद्याय मीळ्हुषं आस्ये जुहुता हविः । यो नो नेदिष्ठमाप्यम् ॥ १ ॥
११३ यः पञ्च चर्षणीरभि निषसाद दमेदमे । कविर्गृहपतिर्युवा ॥ २ ॥
११४ स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु विश्वतः । उतास्मान् पात्वंहसः ॥ ३ ॥
११५ नवं नु स्तोममग्नये दिवः श्येनाय जीजनम् । वस्वः कुविद् वनाति नः ॥ ४ ॥
११६ स्पार्हा यस्य श्रियो दृशे रयिर्वीरवतो यथा । अग्रे यज्ञस्य शोचतः ॥ ५ ॥

---

[१५]

अर्थ— [११२] (उपसद्याय मीळहुषे) पास बैठने योग्य और इच्छाकी पूर्ति करनेवाले अग्निके लिये (आस्ये हविः जुहुत) इसके मुखमें हविका हवन करो । (यः नः नेदिष्ठं आप्यं) जो हमारा अत्यंत समीपका बंधु है ॥ १ ॥

[११३] (यः कविः गृहपतिः युवा) जो अग्नि ज्ञानी, गृहस्वामी और तरुण है, (पंच चर्षणीः दमे दमे) पांचों लोगोंके घर घरमें (निषसाद) रहता है ॥ २ ॥

[११४] (सः अग्निः नः आमात्यं वेदः) वह अग्नि हमारा साथ रहनेवाला धन (विश्वतः रक्षतु) सब ओरसे सुरक्षित रखे । (उत अस्मान् अंहसः पातु) और हमें पापसे बचावे ॥ ३ ॥

[११५] (दिवः श्येनाय अग्नये) द्युलोकमें श्येनपक्षीके सदृश शीघ्र गमन करनेवाले अग्निके लिये (नवं स्तोमं) नवीन स्तोत्र (जीजनं) मैं बनाता हूँ, वह अग्नि (नः) हमारे लिये (कुवित् वस्वः वनाति) बहुत धन देवे । ॥ ४ ॥

[११६] (यज्ञस्य अग्रे शोचतः) यज्ञके अग्रभागमें प्रकाशित होनेवाले अग्निकी (श्रियः) शोभा देनेवाली ज्वालाएँ (वीरवतः रयिः यथा) जैसा वीर पुत्रवालेका धन होता है, उस प्रकार (दृशे स्पार्हाः) देखनेके लिये स्पृहणीय होती हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— अग्नि हमारे अत्यन्त समीपका बन्धु है । अत्यन्त समीपका बन्धु वह है कि जो समीप बैठने योग्य हो और जो अपना हित करता है । कठिन प्रसंगपर जानेपर जो भरसक सहायता करता है, वह समीपका बन्धु होता है । इस तरहका समीपका बन्धु अग्नि है । वह अपने उपासककी हर तरहसे सहायता करता है ॥ १ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पांच जन हैं । इन पांचों जनोंमें अग्नि प्रदीप्त होता है, इससे ज्ञात होता है कि यज्ञ करनेका अधिकार सबको है अथवा अग्निकी सेवा करनेका अधिकार सबको है । यह सेवा करनेका तरीका सब जातियोंका पृथक् पृथक् होता है । ' यह अग्नि, ज्ञानी गृहपति युवा है ' इन शब्दोंके आधारपर ज्ञात होता है कि इन पांचों जनोंमें ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन आश्रमोंका विधान था । क्योंकि गृहपतिके पूर्व ब्रह्मचारीका होना आवश्यक है, इसी तरह गृहस्थीके बाद वानप्रस्थका भी क्रम आता है । इस प्रकार ये आश्रम सभी पांच जनोंमें होते थे ॥ २ ॥

अग्नि मनुष्यके लिए अमात्य धनरूप हो । अमात्य धन वह है कि जो पैतृक धनके रूपमें मनुष्यको मिलता है । जिस तरह पैतृक धन पितासे पुत्रको मिलता है, उसी तरह अग्नि भी पितासे पुत्रको प्राप्त हो अर्थात् यज्ञकी यह परम्परा अविच्छिन्न हो । प्रथम पिता आजीवन यज्ञ करता रहे, फिर पुत्र इस यज्ञकी परम्पराको चलाए ॥ ३ ॥

जब प्रदीप्त हुए अग्निकी ज्वालायें आकाशमें उठती हैं, तब वे ज्वालायें ऐसी प्रतीत होती हैं, कि मानो आकाशमें बाज पक्षी उड रहे हों । ऐसे अग्निकी स्तुति करनी चाहिए ॥ ४ ॥

११७ सेमां वेतु वषट्कृतिमग्निर्जुषत नो गिरः । यजिष्ठो हव्यवाहनः ॥ ६ ॥
११८ नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं देव धीमहि । सुवीरमग्न आहुत ॥ ७ ॥
११९ क्षप उस्रश्च दीदिहि स्वग्नयस्त्वया वयम् । सुवीरस्त्वमस्मयुः ॥ ८ ॥
१२० उप त्वा सातये नरो विप्रासो यन्ति धीतिभिः । उपाक्षरा सहस्रिणी ॥ ९ ॥
१२१ अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिः पावक ईड्यः ॥ १० ॥
१२२ स नो राधांस्या भरेशानः सहसो यहो । भगश्च दातु वार्यम् ॥ ११ ॥

अर्थ— [११७] (यजिष्ठः हव्यवाहनः अग्निः) यजनके लिये योग्य हवनीय द्रव्योंका वहन करनेवाला अग्नि (इमां वषट् कृतिं) हमारी दी हुई इस आहुतिको (वेतु) स्वीकारे और (नः गिरः जुषतं) हमारे वचन सुने ॥ ६ ॥

[११८] हे (नक्ष्य विशांपते) पास जानेयोग्य, प्रजाओंके अधिपते (आहुत अग्ने देव) आहुति दिये हुए अग्निदेव ! (द्युमन्तं सुवीरं त्वा नि धीमहि) तेजस्वी उत्तम वीरोंके साथ रहनेवाले ऐसे तेरा हम यहां स्थापन करते हैं ॥ ७ ॥

[११९] (क्षपः उस्रः च दीदिहि) रात्रिमें और दिनमें प्रदीप्त होते रहो, (त्वया वयं स्वग्नयः) तेरे कारण हम उत्तम अग्निवाले होंगे और (त्वं अस्मयुः सुवीरः) तू भी हमारे कारण उत्तम वीरोंसे युक्त होगा ॥ ८ ॥

[१२०] (त्वा नरः विप्रासः) तेरे पास नेता ज्ञानी लोग (धीतिभिः सातये उपयन्ति) बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंके साथ धन प्राप्तिके लिये जाते हैं। (सहस्रिणी अक्षरा उप) सहस्रों अक्षरोंवाली हमारी वाणी भी तेरे पास पहुंचती है ॥ ९ ॥

[१२१] (शुक्रशोचिः अमर्त्यः) शुभ्र किरणवाला अमर (शुचिः पावकः ईड्यः) पवित्र शुद्धता करनेवाला स्तुत्य (अग्निः रक्षांसि सेधति) अग्नि राक्षसोंका नाश करता है ॥ १० ॥

[१२२] हे (सहसः यहो) बलके पुत्र अग्ने ! (सः ईशानः नः राधांसि आ भर) वह सबका स्वामी तू हमें भरपूर धन दो। (भगः च वार्यं दातु) भाग्यवान् देव भी हमें धन देवे ॥ ११ ॥

भावार्थ— जिसके पुत्र वीर हैं, उसका धन स्पृहणीय होता है। पुत्रहीनके पासका धन वैसा शोभादायक नहीं होता। इतना पुत्रका महत्त्व है। इस प्रकार वीरपुत्रसे युक्त धनकी जितनी शोभा होती है उतनी शोभा इस अग्निकी ज्वालाओंकी होती है ॥ ५ ॥

यज्ञके लिए योग्य हवि द्रव्योंको वहन करनेवाला अग्नि हमारे द्वारा दी गई इस आहुतिको स्वीकार करे और हमारी स्तुतिको सुने ॥ ६ ॥

हे प्रजाओंके स्वामी अग्ने ! तेजस्वी और उत्तम वीरोंके साथ रहनेवाले हम तेरी स्थापना यहां करते हैं। जिसके पास वीरपुत्र न हो, उसका सम्मान कम होता है। इसलिए वीरपुत्र अवश्य होना चाहिए ॥ ७ ॥

देवोंसे भक्त और भक्तोंसे देव लाभ प्राप्त करते हैं। देवसे भक्तोंको धनादि प्राप्त होता है और भक्तोंके द्वारा देवका यश और माहात्म्य बढता है ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! नेता और ज्ञानी लोग अपनी बुद्धिके साथ किए गए कर्मोंके साथ धन प्राप्तिके लिए जाते हैं, तथा हजारों अक्षरोंवाली हमारी वाणी भी इस अग्निके पास पहुंचे ॥ ९ ॥

अग्नि जिस प्रकार शुभ्र किरणोंवाला, अमर, पवित्र और शुद्धता करनेवाला है, उसी तरह मनुष्य शुभ्र तेजस्वी, सर्वत्र पवित्रता और शुद्धता करनेवाला होकर दुष्टोंका नाश करनेवाला हो ॥ १० ॥

हम राध और वार्य दोनों तरहके धनोंके स्वामी हों। जो धन परमसिद्धि तक सहायक होता है, वह धन ' राध् ' है। सिद्धितक पहुंचानेवाले धन अनेक तरहके होते हैं। दूसरा धन ' वार्य ' है। जिससे शत्रुओंका निवारण किया जाता है, उसे ' वार्य ' धन कहते हैं ॥ ११ ॥

१२३ त्वम॑ग्ने वी॒रव॒द् यशो॑ दे॒वश्च॑ सवि॒ता भगः॑ । दिति॑श्च दाति॒ वार्य॑म् ॥ १२ ॥
१२४ अग्ने॒ रक्षा॑ णो॒ अंह॑सः॒ प्रति॑ ष्म देव॒ रीष॑तः । तपि॑ष्ठैर॒जरो॑ दह ॥ १३ ॥
१२५ अधा॑ म॒ही न॒ आय॒स्य॑नाधृष्टो॒ नृपी॑तये । पूर्भ॑वा श॒तभु॑जिः ॥ १४ ॥
१२६ त्वं नः॑ पा॒ह्यंह॑सो॒ दोषा॑वस्तरघाय॒तः । दिवा॒ नक्त॑मदाभ्य ॥ १५ ॥

[१६]

(ऋषिः- १२ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- प्रगाथः (विषमा बृहती, समा सतोबृहती ।)

१२७ ए॒ना वो॑ अ॒ग्निं नम॑सो॒र्जो नपा॑त॒मा हु॑वे ।
प्रि॒यं चेति॑ष्ठमर॒तिं स्व॑ध्व॒रं विश्व॑स्य दू॒तम॒मृत॑म् ॥ १ ॥

अर्थ— [१२३] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं वीरवत् यशः) तू वीर पुत्रोंसे युक्त यश हमें दे, (सविता भगः च वार्यं) सविता और भाग्यवान् देव वरणीय श्रेष्ठ धन हमें देवे । (दितिः च दाति) दिति देवी भी हमें धन देवे ॥ १२ ॥

[१२४] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (नः अंहसः रक्ष) हमारा पापसे बचाव कर । हे देव ! तू (अजरः) जरारहित है अतः तू (रिषतः तपिष्ठैः दह स्म) शत्रुओंको अपने दाहक तेजोंसे जला दे ॥ १३ ॥

[१२५] (अध अनाधृष्टः) और शत्रुओंसे आक्रान्त न होकर (नः नृपीतये) हमारे सब मानवोंकी सुरक्षाके लिये (शतभुजिः मही आयसीः पूः भव) सैकडों मानवोंसे सुरक्षित बडी विस्तृत लोहेके प्राकारवाली पुरी जैसा तू संरक्षक हो ॥ १४ ॥

[१२६] हे (अदाभ्य) न दबनेवाले वीर ! (त्वं नः) तू हमें (दोषावस्तः) रात्रीके समय और दिनके समय (अंहसः पाहि) पापसे बचाओ और (दिवा नक्तं अघायतः) दिनमें और रात्रीमें दुष्ट पापी शत्रुओंसे बचाओ ॥ १५ ॥

[१६]

[१२७] (ऊर्जः नपातं) बलका पतन न करनेवाले (प्रियं चेतिष्ठं) प्रिय और चेतना देनेवाले (अरतिं स्वध्वरं) प्रगतिशील और उत्तम अहिंसामय यज्ञ निर्माता (विश्वस्य अमृतं दूतं) सबका अमर दूत ऐसे (एना नमसा आ हुवे) इस अग्निको नम्रतापूर्वक (वः) आप सबके हितके लिये मैं बुलाता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तू हमें वीरपुत्रोंसे युक्त यश प्रदान कर । इसी तरह सविता, भग आदि देव भी हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करें ॥ १२ ॥

हे अग्ने ! तू हमारा पापसे बचाव कर । हे देव ! तू जरारहित है, इसलिए तू शत्रुओंको अपने दाहक तेजसे जला डाल । मनुष्य पापसे बचकर पवित्र बने और शत्रुओंका विनाश करके वे निर्भय हों, इसलिये लिए इन दोनोंकी आवश्यकता है ॥ १३ ॥

हे अग्ने ! जिस तरह किलेमें रहनेवालोंकी किला हर तरहसे रक्षा करता है, बाहरके शत्रुओंका उनपर आक्रमण नहीं हो सकता, उसी प्रकार अग्नि अपने उपासकोंकी रक्षा करे ॥ १४ ॥

सुरक्षाका प्रबन्ध जिस तरह रात्रीके समय उसी तरह दिनके समय भी जागरूकताके साथ होना चाहिए । सुरक्षाका प्रबन्ध जनपद और नगरोंमें समान रूपसे होना चाहिए । सुरक्षा करनेवाले वीर हमेशा जागते रहें और अपना कर्तव्य करते रहें । सुरक्षाकी व्यवस्थामें शिथिलता न रहे ॥ १५ ॥

अग्नि शारीरिक बलको कम न करनेवाला, चेतना देनेवाला, उत्साह बढानेवाला, विश्वके व्यापारको चलानेवाला, प्रगतिशील, शीघ्र गति करनेवाला, उत्तम रीतिसे हिंसारहित रीतिसे यज्ञात्मक कर्म करनेवाला तथा सदा चेतना और उत्साहयुक्त दूत है । इसी तरह मनुष्य ऐसा कोई काम न करे कि जिससे उसके शरीरका बल कम हो । इस तरहका प्रिय आचरण करे कि उसका उत्साह सदा बढता रहे, वह सदा प्रगतिशील रहे, सबसे नम्रतापूर्वक व्यवहार करे ॥ १ ॥

१२८ स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥ २ ॥
१२९ उदस्य शोचिरस्थादाजुह्वानस्य मीळ्हुषः ।
उद् धूमासो अरुषासो दिविस्पृशः समग्निमिन्धते नरः ॥ ३ ॥
१३० तं त्वा दूतं कृण्महे यशस्तमं देवाँ आ वीतये वह ।
विश्वा सूनो सहसो मर्तभोजना रास्व तद् यत् त्वेमहे ॥ ४ ॥
१३१ त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे ।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि वेषि च वार्यम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१२८] (सः विश्वभोजसा अरुषा) वह अग्नि विश्वको भोजन देनेवाले अपने तेजसे (योजते) युक्त होता है। प्रकाशता है। और (स दुद्रवत्) शीघ्र गतिसे जाता है। वह (स्वाहुतः सुब्रह्मा) उत्तम आहुतियोंको लेनेवाला, उत्तम ज्ञानी, (यज्ञः सुशमी) यजनीय और उत्तम कर्म करनेवाला अग्नि (वसूनां देवं राधः) धनोंमें दिव्य धन (जनानां) लोगोंको देता है ॥ २ ॥

[१२९] (मीळ्हुषः आजुह्वानस्य) कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले और जिसमें हवन हो रहा है ऐसे (अस्य शोचिः उत् अस्थात्) इस अग्निकी ज्वालाएं ऊपर उठती हैं। (अरुषासः दिविस्पृशः धूमासः उत्) तेजस्वी आकाशको स्पर्श करनेवाले धूम ऊपर जा रहे हैं। ऐसे (अग्निं नरः सं इन्धते) अग्निको लोग प्रदीप्त करते हैं ॥ ३ ॥

[१३०] हे (सहसः सूनो) बलसे उत्पन्न हुए अग्ने ! (यशस्तमं तं त्वा दूतं कृण्महे) अत्यंत यशस्वी ऐसे तुझे हम दूत करते हैं। वह तू (देवान् वीतये आवह) देवोंको हविका भक्षण करनेके लिये यहां ले आ। (यत् त्वा ईमहे) जब हम तेरे पास आते हैं तब (तत् विश्वा मर्तभोजना रास्व) सब मनुष्योंको भोगने योग्य धन हमें दो ॥ ४ ॥

[१३१] हे (विश्ववार अग्ने) सबके द्वारा वरने योग्य अग्ने ! (त्वं नः अध्वरे गृहपतिः) तू हमारे यज्ञ कर्ममें गृहका संरक्षक है, (त्वं होता) तू देवोंको बुलानेवाला है, (त्वं पोता प्रचेता) तू पवित्र करनेवाला अत्यंत बुद्धिमान है अतः तू (वार्यं यक्षि वेषि च) यज्ञमें प्रयुक्त होनेवाले हविरूप अन्नका यजन कर और उसको प्राप्तिकी इच्छा कर ॥ ५ ॥

भावार्थ— पूज्य और तरुण वीर विश्व अर्थात् सबका रक्षक और सबको भोजन देनेवाला होकर तेजसे युक्त हो। वह उत्तम ज्ञानी हो, वह सत्कार-संगठन और दानात्मक शुभ कर्म करता रहे। वह इन्द्रियोंका संयमन करनेवाला हो। उत्तम कर्म करे तथा उत्तम लोगोंको धन देता रहे ॥ २ ॥

जिसमें आहुतियां दी जा रही हैं, ऐसे कामनाओंके पूरक अग्निकी ज्वालायें ऊपर उठती हैं। प्रदीप्त अग्निका आकाशको छूनेवाला धुंवा ऊपर जा रहा है। ऐसे अग्निको लोग प्रदीप्त करते हैं ॥ ३ ॥

हे बलसे उत्पन्न हुए अग्ने ! हम तुझे दूत बनाते हैं, तू देवोंको यहां ला और वे यहां आकर हवियोंका भक्षण करें। तू भी हमें मनुष्योंके द्वारा जो जो भोगने योग्य धन हैं, वे सब धन हमें चाहिए। धन, रत्न, गाय, घोडे आदि सभी रत्न हमें चाहिए, ताकि हम सरलतासे जीवन व्यतीत कर सकें ॥ ४ ॥

मनुष्य सबका प्रिय अपने घरका स्वामी, अपने स्थानका स्वामी, देशका पालक, उत्तम बुद्धिमान् और पवित्र करनेवाला बने। अग्निके गुण मनुष्यमें देखनेसे आदर्श व्यक्तिका रूप सामने आता है ॥ ५ ॥

१३२ कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि ।
आ न ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश्च दक्षते ॥ ६ ॥
१३३ त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान् दयन्त गोनाम् ॥ ७ ॥
१३४ येषामिळा घृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति ।
ताँस्त्रायस्व सहस्य द्रुहो निदो यच्छा नः शर्म दीर्घश्रुत् ॥ ८ ॥
१३५ स मन्द्रया च जिह्वया वह्निरासा विदुष्टरः ।
अग्ने रयिं मघवद्भ्यो न आ वह हव्यदातिं च सूदय ॥ ९ ॥

अर्थ— [१३२] हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म करनेवाले अग्ने ! (यजमानाय रत्नं कृधि) यजमानके लिये रत्न या धन दे । (हि त्वं रत्न धाः असि) क्योंकि तू रत्नोंका धारण करनेवाला है । (नः ऋते) हमारे यज्ञमें (विश्वं ऋत्विजं आशिशीहि) सब ऋत्विजोंको तेजस्वी कर । (यः सुशंसः च दक्षते) जो उत्तम प्रशंसा योग्य है उसको दक्षतासे बढाओ ॥ ६ ॥

[१३३] हे (अग्ने) अग्ने, हे (स्वाहुत) उत्तम आहुति लेनेवाले ! (ते सूरयः प्रियासः सन्तु) तुझे विद्वान् प्रिय हों । विद्वानोंके लिये तू प्रिय हो । तथा (ये यन्तारः मघवानः) जो दाता धनवान हैं और जो (जनानां गोनां ऊर्वान् दयन्त) लोगोंको गौओंके झुण्डोंको दानमें देते हैं, वे भी तुझे प्रिय हों ॥ ७ ॥

[१३४] (येषां दुरोणे घृतहस्ता इळा) जिनके घरमें घी हाथमें लेकर अन्न परोसनेवाली देवी (प्राता आ निषीदति) भरपूर अन्न लेकर बैठती है । हे (सहस्य) बलवान् ! (तान् त्रायस्व) उनको सुरक्षित करो । (द्रुहः निदः) द्रोहकारी निंदक शत्रुसे उनको बचाओ । (नः दीर्घश्रुत् शर्म यच्छ) हमें दीर्घकाल टिकनेवाले यशसे युक्त सुख या घर दो ॥ ८ ॥

[१३५] हे (अग्ने) अग्ने ! (मन्द्रया आसा जिह्वया) आनन्ददायक मुखमें रहनेवाली जिह्वासे-ज्वालासे (वह्निः विदुष्टरः) हवनीय द्रव्योंका वहन करनेवाला ज्ञानी (सः) वह अग्नि तू (मघवद्भ्यः नः रयिं आ वह) धन देनेवाले हम सबके लिये धन ले आओ, और (हव्यदातिं च सूदय) हवनीय अन्नका दान करनेवाले यजमानको प्रशस्त कर्ममें प्रेरित करो ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे उत्तम रीतिसे कर्म करनेवाले अग्ने ! तू यजमानके लिए रत्न और धन दे, क्योंकि तू रत्नोंको धारण करनेवाला है । हमारे यज्ञमें जितने भी ऋत्विज हैं, उन सबको तू तेजस्वी कर ॥ ६ ॥

अग्नि या अग्रणीको विद्वान् प्रिय हों और विद्वानोंको वह प्रिय हों । धनवान् दाता हों । धनी लोग अपने धनका दान देते रहें । उत्तम सत्पुरुषोंको गायोंके झुण्डके झुण्ड दानमें दिये जाएं ॥ ७ ॥

जिन घरोंमें देवियां घी और अन्नके भरे हुए पात्र लेकर अन्नदान करनेके लिए सिद्ध रहती हैं, उनकी रक्षा, हे अग्ने ! तू कर । द्रोही तथा निन्दकोंसे उनकी रक्षा कर तथा जिसका यश दीर्घकालतक टिका रहता है, ऐसा घर, सुख और संरक्षण हमें दे ॥ ८ ॥

विद्वानोंमें श्रेष्ठ और तेजस्वी वीर पुरुष आनन्द प्रदान करनेवाली मधुर भाषाके साथ हमें धन देवें । वह उत्तम भाषण भी करें और श्रेष्ठ अन्न भी देवे । धनवान् दानी मनुष्योंको और ज्यादा धन मिले, ताकि वे और अधिक दान देवें । सभी लोगोंको अन्नके दानकी प्रेरणा मिलती रहे ॥ ९ ॥

१३६ ये राधांसि दद॑त्यश्व्या॑ मघा कामे॑न श्रव॑सो म॒हः ।
ताँ अंह॑सः पिपृहि प॒र्तृभि॒ष्ट्वं श॒तं पू॒र्भिर्य॑विष्ठ्य ॥ १० ॥
१३७ दे॒वो वो॑ द्रविणो॒दाः पू॒र्णां वि॑वष्ट्या॒सिच॑म् ।
उद् वा॑ सि॒ञ्चध्व॒मुप॑ वा पृणध्व॒मादिद् वो॑ दे॒व ओ॑हते ॥ ११ ॥
१३८ तं होता॑रमध्व॒रस्य॑ प्र॒चेत॑सं॒ वह्निं॑ दे॒वा अ॑कृण्वत ।
दधा॑ति॒ रत्नं॑ विध॒ते सु॒वीर्य॑म॒ग्निर्जना॑य दा॒शुषे॑ ॥ १२ ॥

[१७]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- द्विपदा त्रिष्टुप् ।)

१३९ अग्ने॒ भव॑ सुष॒मिधा॒ समि॑द्ध उ॒त ब॒र्हिरु॑र्वि॒या वि स्तृ॑णीताम् ॥ १ ॥

अर्थ— [१३६] हे (यविष्ठ्य) अत्यंत तरुण वीर अग्ने ! (महः श्रवसः कामेन) बडे यशकी इच्छासे जो (राधांसि अश्व्या मघा) सिद्धिदायक अश्व युक्त धन (ददति) दानमें देते हैं, (तान् अंहसः) उनको पापसे अथवा दुष्ट दुःखसे (पर्तृभिः शतं पूर्भिः त्वं पिपृहि) संरक्षक साधनोंसे तथा सैंकडों कीलोंवाली नगरियोंसे तू सुरक्षित रख ॥ १० ॥

[१३७] (द्रविणोदाः देवः) धन देनेवाला अग्निदेव (वः पूर्णां आसिचं विवष्टि) आपकी घृतादिसे परिपूर्ण चमसकी इच्छा करता है । (वा उत् सिञ्चध्वं) पात्र भरपूर भर दो, अथवा (वा उप पृणध्वं) पात्रको परिपूर्ण करो । (आत् इत् देवः वः ओहते) अनंतर अग्निदेव तुम्हें उच्च अवस्थाको पहुंचा देता है ॥ ११ ॥

[१३८] (देवाः प्रचेतसं तं वह्निं) देव उस ज्ञानी अग्निको (अध्वरस्य होतारं अकृण्वत) हिंसारहित कर्मका करनेवाला करके निर्माण करते हैं । वह (अग्निः विधते दाशुषे जनाय) अग्नि परिचर्या करनेवाले दाता मनुष्यके लिये (सुवीर्यं रत्नं दधाति) उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति और उत्तम धन देता है ॥ १२ ॥

[१७]

[१३९] हे (अग्ने) अग्ने ! (सुषमिधा समिद्धः भव) उत्तम समिधासे प्रदीप्त हो । (उत) और (उर्विया बर्हिः विस्तृणीतां) याजक उत्तम विस्तीर्ण आसन फैलावें ॥ १ ॥

भावार्थ— जो बडे यशकी इच्छासे सिद्धि देनेवाले धन जिनमें अश्व, गौ, घर आदिका समावेश होता है, दानमें देते हैं, उनका संरक्षण होना चाहिए । उन्हें पापसे बचाना चाहिए । राष्ट्रमें अनेक तरहके किले आदि बनाकर प्रजाओंकी रक्षा करनी चाहिए ॥ १० ॥

हे यज्ञ करनेवालो ! यह अग्निदेव आपके द्वारा घीसे भरे हुए चमसकी इच्छा करता है । इस लिए तुम पात्रको भर कर आहुतियां दो । तुम्हारी आहुतियोंसे प्रसन्न होकर अग्निदेव तुम्हें उच्च अवस्थाको पहुंचा देगा ॥ ११ ॥

देवोंने विशेष ज्ञानी और अग्निके समान तेजस्वी वीरको कुटिलतारहित कर्म करनेके लिए निर्माण किया है । वह तेजस्वी वीर कर्ता और दाता जनके लिए उत्तम वीर्य और धन देता है । मनुष्य कुटिलतारहित कर्म करें, शौर्यसे कर्म करें और धन प्राप्त करें । छल कपट, भीरुता आदिके द्वारा धन कमाना अच्छा नहीं ॥ १२ ॥

यज्ञ करनेवाले मनुष्य समिधायें डालकर अग्निको प्रदीप्त करें और यज्ञशालामें बैठनेवालोंके लिए उत्तम आसन आदि बिछावें, इस प्रकार यज्ञमें आनेवाले लोगोंका सत्कार किया जाए ॥ १ ॥

१४० उत द्वारं उशतीर्वि श्रयन्तामुत देवाँ उशत आ वहेह ॥ २ ॥
१४१ अग्ने वीहि हविषा यक्षि देवान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥ ३ ॥
१४२ स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षद् देवाँ अमृतान् पिप्रयच्च ॥ ४ ॥
१४३ वंस्व विश्वा वार्याणि प्रचेतः सत्या भवन्त्वाशिषो नो अद्य ॥ ५ ॥
१४४ त्वामु ते दधिरे हव्यवाहं देवासो अग्न ऊर्ज आ नपातम् ॥ ६ ॥
१४५ ते ते देवाय दाशतः स्याम महो नो रत्ना वि दध इयानः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१४०] (उत उशतीः द्वारः विश्रयन्तां) और देवभक्ति करनेवाली देवियां विश्राम करें। (उत उशतः देवान् इह आ वह) यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाले देवोंको यहां यज्ञमें ले आ ॥ २ ॥

[१४१] हे (जातवेदः) जातवेद ! (वीहि) आ (हविषा देवान् यक्षि) हविसे देवोंका यजन कर उनको (स्वध्वरा कृणुहि) उत्तम यज्ञवाले बना ॥ ३ ॥

[१४२] (जातवेदाः अमृतान् देवान्) जातवेद अग्नि अमर देवोंको (स्वध्वरा करति) उत्तम यज्ञवाला बनाता है, (यक्षत् पिप्रयत् च) यज्ञ करता और प्रसन्न करता है ॥ ४ ॥

[१४३] हे (प्रचेतः) उत्तम बुद्धिमान् अग्ने ! (विश्वा वार्याणि वंस्व) सब प्रकारके धन हमें दे और (नः आशिषः अद्य सत्या भवन्तु) हमारे आशीर्वाद आज सत्य हों ॥ ५ ॥

[१४४] हे (अग्ने) अग्ने ! (ऊर्जः नपातं त्वां) बलको न गिरानेवाले तुझको (हव्यवाहं ते देवासः दधिरे) हविका वहन करनेके लिये उन देवोंने धारण किया है ॥ ६ ॥

[१४५] (देवाय ते) तुझ देवके लिये (ते दाशतः स्याम) वे हम हवि देनेवाले हों और (महः इयानः) महत्त्वको प्राप्त होकर (नः रत्ना विदधः) हमें रत्नोंको दे दो ॥ ७ ॥

भावार्थ— देवोंकी भक्ति करनेवाली स्त्रियोंका भी उचित रीतिसे सर्वत्र सम्मान हो। ऐसी भक्त स्त्रियोंका पहले अच्छा सत्कार होना चाहिए ॥ २ ॥

हे अग्ने ! तू आ और हविसे देवोंका यजन कर, उनको उत्तम यज्ञवाला बना ॥ ३ ॥

जिससे वेद प्रकट हुए हैं अथवा जो उत्पन्न हुए सभी पदार्थोंको जानता है, ऐसा अग्नि अमर देवोंको भी उत्तम यज्ञवाला बनाता है अर्थात् अमर देवोंको भी यज्ञ करना पडता है, तब वे देव प्रसन्न होते हैं। अमर देव भी तभी यज्ञ करते हैं कि जब वे यज्ञ करते हैं, इसलिए प्रसन्नताको प्राप्त करनेकी इच्छावाले मनुष्य यज्ञ किया करें ॥ ४ ॥

हे उत्तम बुद्धिमान् अग्ने ! तू सब तरहके धन हमें दे और हमारे सभी मनोरथ आज सिद्ध हों ॥ ५ ॥

अग्नि शरीरके बलको नहीं गिराता अपितु उत्साहको स्थायी रखता है। शरीरमें जब गर्मीका अभाव होकर ठंडा होने लगता है तो बल न्यून होने लगता है। शरीरमें स्थित इस अग्निको शरीरकी इन्द्रियरूपी देव धारण करते हैं। इस अग्निकी गर्मीसे इन्द्रियोंकी शक्ति बढती है ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! तू दिव्य गुण युक्त और तेजस्वी है, ऐसे तुझको हम हवि देनेवाले हों। हमारे द्वारा दी गई हवियोंसे तू महत्त्वको प्राप्त होकर हमें रत्न आदि प्रदान कर ॥ ७ ॥

[१८]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः, २२-२५ सुदाः पैजवनः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१४६ त्वे ह यत् पितरश्चिन्न इन्द्र विश्वा वामा जरितारो असन्वन् ।
त्वे गावः सुदुघास्त्वे ह्यश्वा स्त्वं वसु देवयते वनिष्ठः ॥ १ ॥

१४७ राजेव हि जनिभिः क्षेष्येवा ऽव द्युभिरभि विदुष्कविः सन् ।
पिशा गिरो मघवन् गोभिरश्वै स्त्वायतः शिशीहि राये अस्मान् ॥ २ ॥

१४८ इमा उ त्वा पस्पृधानासो अत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुप स्थुः ।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु स्याम ते सुमतविन्द्र शर्मन् ॥ ३ ॥

---

[१८]

अर्थ— [१४६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वे ह यत् नः पितरः चित्) तेरे पाससे ही हमारे पितर (जरितारः विश्वा वामा असन्वन्) स्तुति करते हुए सब प्रकारके धन प्राप्त करते रहे । (त्वे सुदुघा गावः) तेरे पास उत्तम दूध देनेवाली गौवें हैं, (त्वे हि अश्वाः) तेरे पास उत्तम घोडे हैं, (त्वं देवयते वसु वनिष्ठः) तू देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवालेके लिये अत्यंत श्रेष्ठ धन देता है ॥ १ ॥

[१४७] (जनिभिः राजा इव) जैसा स्त्रियोंके साथ राजा रहता है वैसा (द्युभिः क्षेषि) दीप्तियोंके साथ तू निवास करता है । हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! तू (विदुः कविः सन्) ज्ञानी और दूरदर्शी, होकर (पिशा गोभिः अश्वैः) सुंदर रूपसे, गौओं और घोडोंसे (गिरः) वाणियोंको (त्वायतः अस्मान् राये अभि शिशीहि) तेरे साथ रहनेकी इच्छा करनेवाले हम सबको धनके लिये संस्कार संपन्न कर ॥ २ ॥

[१४८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वा अत्र पस्पृधानासः) तेरे वर्णन करनेमें यहां इस यज्ञमें स्पर्धा करनेवाली (मन्द्राः इमाः देवयन्तीः गिरः) आनन्ददायक और देवत्वको प्राप्त करनेवाली ये वाणियाँ (उपस्थुः) तेरे पास उपस्थित होती हैं, तेरा वर्णन करती हैं । (ते रायः पथ्या अर्वाची एतु) तेरे धनके मार्ग सीधे हमारे पास आवें । (ते सुमतौ शर्मन् स्याम) तेरी उत्तम बुद्धिमें रहकर हम सुखमें रहें ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! हमारे पितर तुम्हारी भक्ति करते थे और तुमसे हर तरहका धन प्राप्त करते थे । हमारे माता पिता जिस तरह सर्व नियन्ता प्रभुकी उपासना करते थे, वैसे ही हम भी उसी प्रभुकी उपासना करते हैं । उस प्रभुके पास सब प्रकारके धन हैं । जो उस देवकी भक्ति करता है, उसे वह सब प्रकारका धन देता है ॥ १ ॥

जिस तरह एक राजा अनेक स्त्रियोंसे युक्त होता है, उसी तरह यह इन्द्र अनेक तेजोंसे युक्त होकर रहता है । यहां इन्द्रकी अनेक दीप्तियां ही उसकी अनेक स्त्रियोंके समान हैं । यह इन्द्र धनवान्, ज्ञानी, क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी है । राजा भी इन गुणोंसे युक्त हो । राज्याधिकारी भी इन गुणोंसे युक्त हों, वे अज्ञानी और अदूरदर्शी न हों । राजा सुन्दर रूपवाला तथा अपार वैभववाला हो । वह अपनी प्रजाकी वाणीको शुभ संस्कारोंसे युक्त बनाए । प्रजाओंपर उत्तम संस्कार पडें, ऐसी व्यवस्था राजा राज्य भरमें करे ॥ २ ॥

यदि मनुष्य अपनी वाणीको दिव्य बनाना चाहे तो वह अपनी वाणीको प्रभुकी स्तुति करनेमें लगाए । प्रभुके शुभ गुणोंका गान करके उन गुणोंको अपने अन्दर धारण करके मनुष्य भी देव बन सकता है । जो इस प्रभुके दिव्य गुणोंका आश्रय लेता है, वह प्रभुकी सुमतिमें रहता है और सदा सुखी होता है ॥ ३ ॥

१४९ धेनुं न त्वां सुयवसे दुदुक्ष-न्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः ।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा ऽऽन इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छ ॥ ४ ॥
१५० अर्णांसि चित् पप्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत् सुपारा ।
शर्धन्तं शिम्युमुचथस्य नव्यः शापं सिन्धूनामकृणोदशस्तीः ॥ ५ ॥
१५१ पुरोळा इत् तुर्वशो यक्षुरासीद् राये मत्स्यासो निशिता अपीव ।
श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद् विषूचोः ॥ ६ ॥

अर्थ— [१४९] (सुयवसे धेनुं न) उत्तम घास जहां है ऐसी गोशालामें रहनेवाली धेनुके पास जानेके समान (त्वा दुधुक्षन् वसिष्ठः) तेरा दोहन करके बहुत धन प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला वसिष्ठ (ब्रह्माणि उप ससृजे) बहुत स्तोत्र निर्माण करता है । (विश्वः त्वां इत् गोपतिं मे आह) सब लोग तू ही गौओंका स्वामी है ऐसा मुझे कह रहे हैं । (नः सुमतिं इन्द्रः अच्छ आ गन्तु) हमारे स्तोत्र सुननेके लिये इन्द्र सीधा हमारे पास आ जावे ॥ ४ ॥

[१५०] (नव्यः इन्द्रः अर्णांसि) प्रशंसनीय इन्द्रने जलोंको (पप्रथाना) फैलाकर (सुदासे गाधानि सुपारा) सुदास राजाके लिये चलकर पार करने योग्य (अकृणोत्) किया, बनाया । (शर्धन्तं उचथस्य शिम्युं शापं) उत्साही उचथके शिम्युके पास शाप और तथा (सिन्धूनां अशस्तीः) नदियोंके घोर अप्रशस्त महापूरको पहुंचने योग्य (अकृणोत्) किया, पहुंचाया ॥ ५ ॥

[१५१] (यक्षुः पुरोळाः इत् तुर्वशः) यज्ञ करनेवाला प्रगतिशील तुर्वश राजा (आसीत्) था । (मत्स्यासः राये निशिताः अपि इव) मत्स्य लोग धन प्राप्तिके लिये सिद्ध जैसे थे । (भृगवः द्रुह्यवः च श्रुष्टिं चक्रुः) भृगु और द्रुह्यु शीघ्र धन प्राप्तिके लिये स्पर्धा कर रहे थे । (विषूचोः सखा सखायं अतरत्) दोनों स्पर्धकोंमें मित्रने मित्रका संरक्षण किया ॥ ६ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार दूध दुहनेकी इच्छा करनेवाला अपनी गायोंको उत्तम घास आदि देकर पुष्ट करता है, उसी तरह उस प्रभुसे दिव्यता प्राप्त करनेके लिए प्रभुकी स्तुति करके अपनी बुद्धिको पुष्ट करता है । वह इन्द्र सभी तरहकी गायोंका स्वामी है । जीवात्मा इन्द्र है और उसकी गायें ये इन्द्रियां हैं । सूर्य इन्द्र है और गायें उस सूर्यकी किरणें हैं ॥ ४ ॥

इन्द्रने सुदासको नदीसे पार कराया । जो मनुष्य दास बनकर इस ऐश्वर्यशाली प्रभुकी सेवा करता है, वह संकटरूपी नदी या भवसागरसे पार हो जाता है । उचथके ऊपर शाप और हिंसक शम्युके ऊपर नदियोंको प्रेरित करके उनका नाश किया । जो स्वयं दुष्ट होकर सज्जनोंको शाप देता है अथवा जो हिंसाके साधनोंका प्रयोग सज्जनोंपर करता है, उस शाप या हिंसाके साधनोंसे सज्जन तो नष्ट नहीं होते, अपितु वह दुष्ट स्वयं नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

तुर्वश पुरोडाशको तैय्यार करके यज्ञ करना चाहता था । त्वरासे यज्ञ करनेवाला अथवा किसी कार्यको सत्वर या शीघ्रतासे करनेवाला तुर्वश कहलाता है । मत्स्य लोग सदा धन प्राप्तिके कार्यमें व्यस्त रहते हैं । मत्स्य उनको कहते हैं कि जो अपने जीवनके लिए दूसरोंको निगल जाते हैं । जीवन कलहमें बड़ा छोटेको खाता है । जो ऐसा आचरण करते हैं उनका नाम मत्स्य है । ये मत्स्यवृत्तिके लोग धन प्राप्त करनेके लिये आपसमें तीक्ष्णस्पर्धा करते हैं । स्पर्धा करना और दुर्बलोंको खा जाना ही ऐसे मत्स्य लोगोंके जीवनका एकमात्र ध्येय होता है । इसी तरह भृगु और द्रुह्युमें भी सत्वर धन प्राप्त करनेकी स्पर्धा रहती है । भृगु वह हैं कि जो अपने ही भरणपोषणके लिए गति करते हैं । इनके प्रयत्न सदा अपनी ही आजीविकाके लिए ही होते हैं । जो द्रोह करते हैं, डाका डालते हैं वे द्रुह्यु हैं । भृगु अपने जीवननिर्वाहकी ही चिन्तामें रहते हैं और द्रुह्यु द्रोह करके या डाका डालकर अपनी आजीविका चलाते हैं । ये सभी मनुष्यके शत्रु हैं । पर जो ऐसे लोगोंसे शत्रुता करता है, वही मनुष्योंका सच्चा मित्र है ॥ ६ ॥

१५२ आ पक्थासो भलानसो भनन्ता ऽलिनासो विषाणिनः शिवासः ।
आ योऽनयत् सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन् युधा नॄन् ॥ ७ ॥
१५३ दुराध्यो३ अदितिं स्रेवयन्तो ऽचेतसो वि जगृभ्रे परुष्णीम् ।
मह्नाविव्यक् पृथिवीं पत्यमानः पशुष्कविरशयच्चायमानः ॥ ८ ॥
१५४ ईयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णी माशुश्चनेदभिपित्वं जगाम ।
सुदास इन्द्रः सुतुकाँ अमित्रा नरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः ॥ ९ ॥

अर्थ— [१५२] (पक्थासः) हविष्यान्नका पाक यज्ञके लिये करनेवाले, (भलानसः भल-आनसः) सुन्दर प्रसन्न मुखवाले, (अलिनसः) मलिन, तपके कारण क्षीण शरीर, (विषाणिनः) सींग हाथमें लेनेवाले, खुजली करनेके लिये अथवा शत्रुपर प्रहार करनेके लिये हाथमें कृष्ण मृगका सींग लेनेवाले, (शिवासः) सब जनोंका कल्याण करनेकी कामना मनमें धारण करनेवाले इन्द्रकी (आ भनंत) प्रशंसा करते हैं । (यः आर्यस्य सधमाः गव्याः) जो इन्द्र आर्यके साथ रहनेवाली गायोंके झुण्डोंको (तृत्सुभ्यः आ अनयत्) हिंसक शत्रुओंसे वापस लाता है । और उसने (युधा नॄन् अजगन्) युद्धसे उन शत्रुके वीरोंपर आक्रमण करके उनका वध किया ॥ ७ ॥

[१५३] (दुराध्यः अचेतसः) दुष्ट बुद्धिवाले मूढ शत्रु (अदितिं परुष्णीं) जल देनेवाली परुष्णी नदी–रावी नदीके तटको (स्रेवयन्तः वि जगृभ्रे) तोडते रहे । उस इन्द्रने (मह्ना पृथिवीं अविव्यक्) अपने सामर्थ्यके द्वारा पृथिवीको व्याप दिया । अर्थात् उसका यश पृथिवीपर फैल गया । और शत्रुरूपी (चायमानः कविः पत्यमानः पशुः अशयत्) चायमानका कवि वीर पशु जैसा सोया, अर्थात् इन्द्रके द्वारा उसका वध हुआ ॥ ८ ॥

[१५४] इन्द्रने परुष्णीके जलप्रवाहोंको पहलेके समान (अर्थं ईयुः) योग्य मार्गसे चलाया और (न्यर्थं परुष्णीं न ईयुः) अयोग्य मार्गसे परुष्णीके प्रति नहीं जाने दिया । (आशुः चन इत्) उसका शीघ्रगामी घोडा भी (अभिपित्वं जगाम) अपने जानेके मार्गसे ही गया । (इन्द्रः सुदासे) इन्द्रने सुदासके लिये (मानुषे) मनुष्य लोकमें रहनेवाले (वध्रिवाचः सुतुकान् अमित्रान् अरन्धयत्) व्यर्थ बडबड करनेवाले, उत्तम पुत्रवाले शत्रुओंको मार दिया ॥ ९ ॥

भावार्थ— इस मंत्रमें याजकोंके गुण बताए गए हैं, याजक पाकक्रियामें कुशल हों, यज्ञमें हविरूपमें डालनेके लिए पुरोडाश आदि जो पकाया जाता है, उसे पकानेमें वे कुशल हों । यज्ञको सम्पन्न होते देखकर उनके चेहरे प्रसन्नतासे चमकने लगें, जो यज्ञकर्म करके थक जानेवाले हों और सबके कल्याण करनेकी इच्छा करनेवाले हों तथा प्रभु इन्द्रका गुणगान करनेवाले हों ॥ ७ ॥

दुष्ट शत्रुने राष्ट्रपर आक्रमण करके परुष्णी नदीके तटोंको तोड डाला, उसका परिणाम यह हुआ कि नदीका पानी इधर उधर फैल गया । तब इन्द्रने अपनी योजनासे शत्रुकी योजनाको विफल कर दिया, इससे इन्द्रका यश बहुत फैला । इसी तरह राष्ट्रपर जब शत्रुओंका आक्रमण हो और वे राष्ट्रको नष्ट करनेके लिए जो जो योजनायें बनायें, उन योजनाओंको विफल करनेवाली योजनायें राजाके पास हो । ऐसे राजाकी कीर्ति ही सर्वत्र फैलती है ॥ ८ ॥

इन्द्रने परुष्णी नदीके दोनों ओरकी बाजुओंकी दीवारोंको ठीक किया और उस नदीका प्रवाह जिस तरह पहले बहता था, उसी तरह फिर बहने योग्य बना दिया । इससे जिस हानिकी संभावना थी, वह हानि नहीं होने पाई और आसपासके प्रदेशोंकी रक्षा हो गई । इन्द्रने सुदासके लिए उसके शत्रुओंको उनके पुत्रोंके समेत नष्ट किया । राजा अपने राष्ट्रमें नदी और नहरोंकी उत्तम व्यवस्था रखें । युद्धके समय यदि शत्रु नदी और नहरकी व्यवस्थाको बिगाडे भी, तो शीघ्र ही उस व्यवस्थाको ठीक कर दें ॥ ९ ॥

१५५ ईयुर्गावो न यवसादगोपा यथाकृतमभि मित्रं चितासः ।
पृश्निगावः पृश्निनिप्रेषितासः श्रुष्टिं चक्रुर्नियुतो रन्तयश्च ॥ १० ॥

१५६ एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या वैकर्णयोर्जनान् राजा न्यस्तः ।
दस्मो न सद्मन् नि शिशाति बर्हिः शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम् ॥ ११ ॥

१५७ अध श्रुतं कवषं वृद्धमप्स्वनु द्रुह्युं नि वृणग्वज्रबाहुः ।
वृणाना अत्र सख्याय सख्यं त्वायन्तो ये अमदन्ननु त्वा ॥ १२ ॥

अर्थ— [१५५] (पृश्नि-निप्रेषितासः) माताके द्वारा प्रेरित हुए (चितासः) उत्तम संगठित हुए (पृश्निगावः) नाना वर्णवाली गौवें जिनके पास हैं, ऐसे मरुत् वीर (यथाकृतं) जैसा पहिले किया था वैसा सहाय्य करनेके निश्चयसे (मित्रं) मित्र इन्द्रके पास (यवसात् अगोपाः गावः) जौके खेतके पास ग्वालियेके विना रही गौवें जाती हैं, वैसे (अभि ईयुः) गये। (रंतयः नियुतः च श्रुष्टिं चक्रुः) आनंदित हुए मरुतोंके घोडे भी चपलतासे अच्छी दौड करने लगे ॥ १० ॥

[१५६] (यः राजा श्रवस्या) इस राजाने यशकी इच्छासे (वैकर्णयोः एकं च विंशतिं च जनान्) वैकर्ण राष्ट्रोंके इक्कीस वीरोंका (नि अस्तः) वध किया। जैसा (दस्मः न) दर्शनीय युवा (सद्मन् बर्हिः नि शिशाति) अपने घरमें दर्भोंको काटता है। ऐसे युद्धोंके लिये ही (शूरः इन्द्रः एषां सर्गं अकरोत्) शूर इन्द्रने इन मरुतोंको निर्माण किया था ॥ ११ ॥

[१५७] (अध वज्रबाहुः) इसके पश्चात् वज्रधारी इन्द्रने (श्रुतं कवषं वृद्धं द्रुह्युं अनु) श्रुत, कवष, वृद्ध और द्रुह्यु इनको क्रमसे (अप्सु निवृणक्) जलमें डुबा दिया। (अत्र ये त्वायन्तः त्वा अनु अमदन्) इस समय जिन्होंने तेरे अनुकूल रहकर तेरे लिये आनन्द होने योग्य कर्म किया, वे (सख्याय सख्यं वृणानाः) तेरे मित्रताको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥

भावार्थ— इन्द्रको युद्धमें संलग्न देखकर मरुद्वीर उसकी सहायताके लिए आ पहुंचे। सैनिकोंका कर्तव्य यहां बताया गया है। सैनिकोंका कर्तव्य यह है कि वे अपने सेनापतिको युद्ध करते देखकर उसी क्षण उसकी सहायता करनेके लिए पहुंच जाएं। जिस प्रकार स्वतंत्र गायें घासको देखकर उसी तरफ दौडती हैं, उसी प्रकार वीर सैनिक अपने सेनापतिकी सहायताके लिए उसकी तरफ दौडें। ये सभी मरुद्वीर या सैनिक प्रसन्न चित्तवाले, ज्ञानी और संगठित हों ॥ १० ॥

इन्द्रके द्वारा युद्धके लिए तैय्यार किए गए मरुद्वीर दुष्ट शत्रुओंका नाश इस तरह करते हैं कि जिस तरह यज्ञमें याजक दर्भोंको काटते हैं। इसी तरह राष्ट्रके रक्षक सैनिक भी विकर्ण शत्रुओंका नाश करें। विकर्ण शत्रु वे हैं कि जो बारबार समझानेपर भी नहीं सुनते। संधिके समय तो शर्तोंको स्वीकार कर लेते हैं, पर बादमें उद्दण्डताका व्यवहार करते हैं। समझानेपर भी सुना अनसुना करके अपनी दुश्मनीसे बाज नहीं आते ॥ ११ ॥

यदि कोई विद्वान् ज्ञानी या वृद्ध भी राष्ट्रके साथ द्रोह करें, तो शस्त्रधारी वीर उस दशमें न आनेवाले शत्रुओंको नष्ट करें। जो लोग अनुकूलतासे रहकर आनन्द बढानेवाले सहायक मित्र हैं, उनके साथ मित्रके समान बर्ताव करें। इस मंत्रमें राजनीतिका पाठ है, जो राष्ट्र द्रोही हैं वे चाहे कितने भी ज्ञानी हों, वृद्ध हों अथवा कितने भी पूज्य हों, तो भी उनका नाश करना ही चाहिए ॥ १२ ॥

+

१५८ वि सद्यो विश्वा दृंहितान्येषामिन्द्रः पुरः सहसा सप्त दर्दः ।
व्यानवस्य तृत्सवे गयं भाग्जेष्म पूरुं विदथे मृध्रवाचम् ॥ १३ ॥
१५९ नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा ।
षष्टिर्वीरासो अधि षड् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥ १४ ॥
१६० इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः ।
दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमाना जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे ॥ १५ ॥
१६१ अर्धं वीरस्य शृतपामनिन्द्रं परा शर्धन्तं नुनुदे अभि क्षाम् ।
इन्द्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः ॥ १६ ॥

अर्थ— [१५८] (एषां विश्वा दृंहितानि पुरः) इन शत्रुओंके सब सुदृढ नगरोंके (सप्त सहसा सद्यः विदर्दः) सातों प्रकारोंको बलसे तत्काल तोड दिया, और (अनवस्य गयं तृत्सवे वि भाक्) शत्रुभूत अनुके घरको तृत्सुको दिया । हमने (मृध्रवाचं पूरुं जेष्म) असत्यवादी मनुष्योंपर विजय किया ॥ १३ ॥

[१५९] (गव्यवः अनवः द्रुह्यवः च) गौओंको चुरानेवाले अनु और द्रुह्युके अनुयायी (षष्टिः शता षट् सहस्रा षष्टिः च अधि षट् वीरासः) छियासठ हजार, छियासठ वीरोंको (दुवोयु नि सुषुपुः) सहायकोंके हित करनेके लिये निःशेष मारे गये, (विश्वा इत्) ये सभी (इन्द्रस्य वीर्या कृतानि) इन्द्रके किये पराक्रम हैं ॥ १४ ॥

[१६०] (एते दुर्मित्रासः तृत्सवः) ये दुष्टोंके साथ मित्रता करनेवाले बाधाकारी शत्रु (प्रकलवित्) विशेष युद्ध कलाको जाननेवाले (इन्द्रेण वेविषाणाः सृष्टाः) इन्द्रके द्वारा अन्दर घुसकर हटाये गये शत्रु (आपः नः नीचीः अधवन्त) जलप्रवाहोंके समान नीचे मुंह करके भागने लगे । (मिमानाः) मारे जानेपर (विश्वानि भोजना सुदासे जहुः) सब भोजन साधनरूप धनोंको सुदासके लिये छोडकर भाग गये ॥ १५ ॥

[१६१] (इन्द्रः क्षां अभि) इन्द्र मातृभूमिको देखकर (वीरस्य अर्धं) वीरका नाश करनेवाले तथा (शृतपां शर्धन्तं अनिन्द्रं परा नुनुदे) हविष्यान्न खानेवाले विनाशक शत्रुका नाश करता रहा । (इन्द्रः मन्युम्यः मन्युं मिमाय) इन्द्रने शत्रुता करनेवालेके शत्रुके क्रोधका नाश किया । और (पत्यमानः पथः वर्तनिं भेजे) भागनेवालेके मार्गका अवलंबन करनेके लिये शत्रुको बाधित किया ॥ १६ ॥

भावार्थ— शत्रुओंके सब किले और नगरोंको इन्द्रने नष्ट कर दिया और शत्रुओंके धनको छीनकर मित्रोंमें बांट दिया और असत्यका व्यवहार करनेवालोंपर विजय प्राप्त की । इसी तरह राजा शत्रुओंके किलोंको नष्ट करके उन्हें भी नष्ट करे तथा उन शत्रुओंके धनोंको छीनकर अपने सहायकोंमें बांट दे ॥ १३ ॥

इन्द्रने गायोंको चुरानेवाले अनु और द्रुह्युके हजारों अनुयायियोंको नष्ट किया । यह इन्द्रका एक महान् पराक्रम था । धन लूटनेवाले डाकू और द्रोहकारी शत्रु हजारोंकी संख्यामें भी हों, तो भी उन्हें निःशेष करना चाहिए ॥ १४ ॥

दुष्टोंके साथ मित्रता करनेवाले कलामें चाहे कितने भी निपुण हों, वे शत्रु ही होते हैं, ऐसे शत्रुओंके अन्दर प्रविष्ट होकर उनका वध करना या उन्हें भगाना चाहिए । उनके अन्दर ऐसी घबराहट उत्पन्न करनी चाहिए, कि जैसे जलप्रवाह नीचेकी ओर दौडते हैं, उसी प्रकार वे तेजीसे भाग जाएं ॥ १५ ॥

मनुष्य अपनी मातृभूमिके हितका विचार करे, तथा अपने वीरोंका नाश करनेवाले तथा भोगोंका हरण करनेवाले शत्रुओंका नाश करे या उन्हें दूर कर दे । शत्रुके क्रोधको व्यर्थ कर दे और उसे ऐसा कर दे कि शत्रुको भागनेके सिवाय और कोई मार्ग ही न सूझे ॥ १६ ॥

१६२ आध्रेणं चित् तद्वेकं चकार सिंह्यं चित् पेत्वेना जघान ।
अवं स्रक्तीर्वेश्यावृश्चदिन्द्रः प्रायच्छद् विश्वा भोजना सुदासे ॥ १७ ॥
१६३ शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम् ।
मर्ताँ एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन् नि जहि वज्रमिन्द्र ॥ १८ ॥
१६४ आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत् ।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि ॥ १९ ॥
१६५ न तं इन्द्र सुमतयो न रायः संचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्नाः ।
देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थाऽव त्मना बृहतः शम्बरं भेत् ॥ २० ॥

अर्थ— [१६२] (तत् इन्द्रः आध्रेण चित् एकं चकार) तब इन्द्रने दरिद्रके द्वारा भी एक बड़ा दान कराया । (सिंह्यं चित् पेत्वेन जघान) प्रबल सिंहको भी बकरेसे मरवाया । (वेश्या स्रक्तीः अव अवृश्चत्) सूईसे स्तंभके कोने कटवा दिये । और (विश्वा भोजना सुदासे प्र अयच्छत्) सब भोग्य धन सुदासको दिये ॥ १७ ॥

[१६३] हे इन्द्र ! (ते शत्रवः शश्वन्तः ररधुः हि) तेरे बहुतसे शत्रु वशमें आ गये हैं । (शर्धतः भेदस्य रन्धिं विंद) स्पर्धा करनेवाले भेदकर्ताको वश करनेका उपाय प्राप्त कर । (यः स्तुवतः मर्तान् एनः कृणोति) जो भक्तोंके प्रति भी पाप करता है, (तस्मिन् तिग्मं वज्रं निजहि) उस शत्रुपर तीक्ष्ण वज्रका प्रहार कर ॥ १८ ॥

[१६४] (अत्र सर्वताता यः भेदं प्रमुषायत्) इस सर्वत्र फले युद्धमें जिस इन्द्रने भेद करनेवाले शत्रुका वध किया, (तं इन्द्रं यमुना तृत्सवः च आवत्) इस इन्द्रका रक्षण यमुना और तृत्सुओंने किया । (अजासः च शिग्रवः यक्षवः च अश्व्यानि शीर्षाणि बलिं जभ्रुः) अज, शिग्रु तथा यक्षु लोगोंने प्रमुख घोडोंका प्रदान इन्द्रके लिये किया ॥ १९ ॥

[१६५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते पूर्वाः सुमतयः न संचक्षे) तेरी पुरातन समयसे चली आयी शुभ कृपाएं अवर्णनीय हैं तथा (रायः) धन भी (उषसः न) उषाओंके समान (न संचक्षे) अवर्णनीय हैं तथा (नूत्नाः न) तुम्हारी नूतन कृपाएं भी अवर्णनीय हैं । (मान्यमानं देवकं चित् जघंथ) मान्यमान देवक शत्रुका तूने वध किया । और (त्मना बृहतः शम्बरं अवभेत्) तूने स्वयं ही बड़े पर्वतसे शंबर नामक असुर शत्रुका नाश किया ॥ २० ॥

भावार्थ— इन्द्रने एक दरिद्रके हाथोंसे भी एक बड़ा भारी दान कराया, शक्तिशाली सिंहको भी एक बकरेसे नष्ट करवाया, सुईसे स्तंभके कोने कटवाए और सब भोग्य धन सुदासको दिए । ये सब असंभव दीखनेवाले कर्म इन्द्रने अपनी शक्तिसे करवाये । इसी तरह मनुष्यको चाहिए कि वह अपनी शक्ति बढावे और असंभव कार्योंको भी संभव करके दिखाए ॥ १७ ॥

वीर मनुष्य शत्रुओंको वशमें करे, अपने समाजमें फूट डालकर परस्पर स्पर्धा करानेवालेका दमन करे । जो सज्जनोंके विरुद्ध पापका आचरण करता है, उसे शस्त्रके प्रहारसे विनष्ट करे । जो समाजमें रहकर अनेक पक्षभेद उत्पन्न करते हैं, आपसमें झगडते हैं और इस प्रकार समाजका संगठन नष्ट करते हैं, वे समाजके महाशत्रु हैं इन्हें नष्ट करना चाहिए ॥ १८ ॥

यज्ञमें अथवा प्रजाकी शक्ति जिससे बढती है, ऐसे कार्यमें जो विघ्न डालकर प्रजामें परस्पर फूट डालते हैं, ऐसे लोगोंको नष्ट करना चाहिए । यमनियमका पालन करनेवाले तथा संकटोंसे पार करनेवाले वीर अपने नेताका संरक्षण करें । गति करनेवाले शीघ्रतासे कार्य करनेवाले तथा याजक ये सब अपने नेताको सहायता प्रदान करें । और उसे हर तरहकी सहायता प्रदान करें ॥ १९ ॥

इन्द्रने पूर्व समयमें जो कृपायें की थीं, या जो इस समय भी कृपा कर रहे हैं, वे उसकी कृपायें अवर्णनीय हैं । कृपा निष्कपट या निःस्वार्थ भावसे करनी चाहिए । धन भी नाना तरहके होनेसे अवर्णनीय हैं । घमंडी और गर्विष्ठ ही जिसकी मान्यता करते हैं, ऐसे दांभिक और तुच्छ देवताके पूजकोंको अर्थात् एक श्रेष्ठ देवकी भक्ति न करनेवाले शत्रुका वध करना चाहिए । देव और देवक इन शब्दोंमें ' देवक ' शब्द तुच्छ देवकी पूजाके निषेधार्थमें प्रयुक्त हुआ है । इस प्रकार देवकका ' अर्थ छोटा देव ' है ॥ २० ॥

१६६ प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताऽधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥ २१ ॥
१६७ द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः ।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ॥ २२ ॥
१६८ चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके ।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासस्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति ॥ २३ ॥
१६९ यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी शीर्ष्णेशीर्ष्णे विबभाजा विभक्ता ।
सप्तेदिन्द्रं न स्रवतो गृणन्ति नि युध्यामधिमशिशादभीके ॥ २४ ॥

अर्थ— [१६६] (ये पराशरः शतयातुः वसिष्ठः) जो पराशर, सैकडों राक्षसोंका सामना करनेवाला वसिष्ठ ये (त्वायाः) तेरी भक्ति करनेवाले ऋषि (गृहात् प्र अममदुः) घरघरमें तुझे संतुष्ट करते हैं। (ते भोजस्य सख्यं न मृषन्त) वे ऋषि भोजन देनेवाले तुम्हारी मित्रताका विस्मरण नहीं होने देते। (अध सूरिभ्यः सुदिना वि उच्छान्) इन ज्ञानियोंको उत्तम दिन प्राप्त हों ॥ २१ ॥

[१६७] हे (अग्ने) अग्ने! (देववतः नप्तुः) देव भक्तके पौत्र (पैजवनस्य सुदासः) पिजवनके पुत्र सुदासकी (गोः द्वे शते) दो सौ गाइयाँ (वधूमन्ता द्वा रथा) वधुओंके साथ दो रथ (दानं रेभन्) इस दानकी प्रशंसा करता हुआ मैं (अर्हन्) योग्य (होता इव सद्म परि एमि) होता यज्ञगृहमें जाता है वैसा मैं अपने घरमें आता हूं ॥ २२ ॥

[१६८] (पैजवनस्य सुदासः) पिजवनके पुत्र सुदास राजाके (स्मद्दिष्टयः कृशनिनः) दानमें दिये, सुवर्णके अलंकारोंसे लदे (निरेके ऋज्रासः) कठिन स्थानमें भी सरल जानेवाले ऐसे सुशिक्षित (पृथिविष्ठाः दानाः चत्वारः) पृथिवीपर प्रसिद्ध दानमें दिये चार घोडे (तोकं मा) पुत्रवत् पालनीय मुझ वसिष्ठको (तोकाय श्रवसे वहन्ति) पुत्रोंके पास यशके साथ जानेके लिये ले जाते हैं ॥ २३ ॥

[१६९] (यस्य श्रवः उर्वी रोदसी अन्तः) जिसका यश इस बडी द्यावापृथिवीके अन्दर फैला है, (विभक्ता शीर्ष्णे विबभाज) जो मुख्य मुख्य विद्वानोंको ऐसा ही धन देता है, (सप्त इन्द्रं न इत् गृणन्ति) सात लोक इन्द्रकी स्तुति करनेके समान इसकी प्रशंसा करते हैं। उसके शत्रु (युध्यामधिं स्रवतः अभीके नि अशिशात्) युध्यामधिका नदीके समीप वध हुआ ॥ २४ ॥

भावार्थ— पराशर और वसिष्ठ ये दो ऋषि ऐसे हैं कि जो सैकडों शत्रुओंका सामना करनेवाले होते हैं। 'परा-शर' वह है कि जो दूरतक शरसंधान करते हैं और 'वसिष्ठ' वह है कि जो शत्रुका हमला होनेपर भी अपने स्थानपर दृढ रहता है। ये दोनों ही गुण विजयके लिए आवश्यक हैं। इन नेतारूप ऋषियोंका यश घर घरमें गाया जाता था। योग्य वस्तुओंको प्रदान करनेवाले प्रभुकी भक्तिसे दूर नहीं होते थे, वे उसका नित्य स्मरण करते थे ॥ २१ ॥

इस मंत्रमें एक राजासे सौ गायें, दो रथ और रथके साथ कन्यायें दानमें मिलनेका उल्लेख है। इस तरहके दान ऋषियोंके आश्रमोंको मिलते थे, जिनपर आश्रम चलते थे। इस दानमें गायें तो छात्रोंके दूध पीनेके लिए उपयोगी हैं, रथ और घोडोंका वाहनोंमें उपयोग हो सकता है। पर ये वधूयें और कन्यायें क्यों दी जाती थीं, यह अन्वेषणीय है ॥ २२ ॥

ऋषियोंकी भक्ति करनेवाले सुदास राजाने सुवर्णके अलंकारोंसे लदे ऊबड खाबड स्थानोंमें भी सरलतासे जानेवाले चार घोडे वसिष्ठको दिए ॥ २३ ॥

दान ऐसा देना चाहिए कि जिससे चारों ओर यश फैले। विद्वानोंमें भी जो श्रेष्ठ विद्वान् हों, उन्हींको दान देना चाहिए। विद्याविहीनको दान नहीं देना चाहिए ॥ २४ ॥

१७० इ॒मं न॑रो मरुतः सश्च॒तानु॒ दिवो॑दासं॒ न पि॒तरं॑ सु॒दासः॑ ।
अ॒वि॒ष्टना॑ पैजव॒नस्य॒ केतं॑ दू॒णाशं॑ क्ष॒त्रम॒जरं॑ दुवो॒यु ॥ २५ ॥

[१९]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१७१ यस्ति॒ग्मशृ॑ङ्गो वृष॒भो न भी॒म एकः॑ कृ॒ष्टीश्च्या॒वय॑ति॒ प्र विश्वाः॑ ।
यः शश्व॑तो॒ अदा॑शुषो॒ गय॑स्य प्रय॒न्तासि॒ सुष्वि॑तराय॒ वेदः॑ ॥ १ ॥

१७२ त्वं ह॒ त्यदि॑न्द्र॒ कुत्स॑मावः॒ शुश्रू॑षमाणस्त॒न्वा॑ सम॒र्ये ।
दासं॒ यच्छुष्णं॒ कुय॑वं॒ न्य॑स्मा॒ अर॑न्धय आर्जुने॒याय॒ शिक्ष॑न् ॥ २ ॥

अर्थ— [१७०] हे (नरः मरुतः) नेता मरुद्वीरो ! (इमं पितरं दिवोदासं न) इसके, पिता दिवोदासके समान ही इस (सुदासः अनु सश्चत) सुदासको सहायता करो । (दुवोयु पैजवनस्य केतं अविष्टन) आशीर्वाद प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले पिजवन पुत्र सुदासके घरकी सुरक्षा करो । तथा इसका (क्षत्रं दूणाशं अजरं) क्षात्रबल बढता जाय कभी कम न हो ॥ २५ ॥

(१९)

[१७१] (यः तिग्मशृंगो वृषभो न भीमः) जो तीखे सींगवाले बैलके समान भयंकर (एकः विश्वाः कृष्टीः प्र च्यावयति) अकेला ही सभी शत्रुओंको स्थानसे भ्रष्ट कर देता है । (यः अदाशुषः शश्वतः गयस्य) जो दान न देनेवालेके अनेक घरोंको भी स्थानभ्रष्ट कर देता है, वह (सुष्वितराय वेदः प्रयंता असि) तू यज्ञ करनेवालोंके लिये धन देता है ॥ १ ॥

[१७२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं ह त्यत् तन्वा शुश्रूषमाणः) तूने उस अपने शरीरसे शुश्रूषा करके (समर्ये कुत्सं आवः) युद्धमें कुत्सकी सुरक्षा की, (यत् आर्जुनेयाय अस्मै शिक्षन्) उस अर्जुनीके पुत्र कुत्सको धन दिया और (दासं शुष्णं कुयवं नि अरंधयः) दास शुष्ण और कुयवका नाश किया ॥ २ ॥

भावार्थ— जो मरने तक डटकर लडते हैं, वे वीर मरुत् हैं । ये ही युद्धके नेता हैं, ये युद्ध संचालनकी विद्याको जानते हैं, इसी लिए इनको " नरः " कहते हैं । ये वीर्यवान् पुरुष हैं । ये सब जनताके संरक्षक हैं । ये वीर देवोंके प्राप्त अर्थात् देवोंके भक्तकी रक्षा करते हैं ॥ २५ ॥

वीर तीक्ष्ण सींगवाले बैलके समान बलवान् और भयंकर हो । वह सब शत्रुओंको स्थानभ्रष्ट करे । कोई शत्रु अपने स्थान पर स्थिर न रह सके । कंजूस और अनुदार लोगोंके स्थान भी अस्थिर रहें । ऐसे लोग राष्ट्रमें बलिष्ठ न होने पावें । जो यज्ञ करता और दान देता है उसे पर्याप्त धन प्राप्त हो । वीर यदि अकेला भी हो, तो भी वह अनेक शक्तिशाली शत्रुओंको अपने स्थानसे उखाड डालता है ॥ १ ॥

जो प्रजाओंपर आक्रमण करके और उनका नाश करके उन्हें नष्टभ्रष्ट करता है, वह " दास " है । जो समाजके लोगोंके धनों, भोगों और सुखोंका शोषण करता है, अपने सुखके लिए दूसरोंको दुःख देता है, वह " शुष्ण " है । " कु-यव " वह है कि जो अपने सडे गले धान्यको भी अच्छा बताकर लोगोंको बेचता है । इस सडे गले धान्यको खाकर प्रजाके स्वास्थ्यका नाश होता है । ऐसे समाजशत्रुओंका समाजके हितके लिए नाश करना चाहिए अथवा ऐसे समाजशत्रुओंको उत्तम शिक्षा देकर उन्हें संस्कारी बनाना चाहिए ॥ २ ॥

१७३ त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ ३ ॥
१७४ त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चाऽस्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥ ४ ॥
१७५ तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरो नवतिं च सद्यः ।
निवेशने शततमाविवेषीरहञ्च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥ ५ ॥
१७६ सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१७३] हे (धृष्णो) शत्रुधर्षक इन्द्र ! तूने (धृषता वीतहव्यं सुदासं) अपने बलसे अन्नका दान करनेवाले सुदासका (विश्वाभिः ऊतिभिः प्र आवः) अनेक संरक्षणके साधनोंसे संरक्षण किया । (वृत्र हत्येषु क्षेत्र साता) वृत्रवध करनेके युद्धमें तथा क्षेत्रका बंटवारा करनेके समय (पौरुकुत्सिं त्रसदस्यु पुरुं च प्र आवः) पुरुकुत्सके पुत्र त्रसदस्यु तथा पुरुका संरक्षण किया ॥ ३ ॥

[१७४] हे (नृ-मनः) मनुष्योंके मनोंको आकर्षित करनेवाले इन्द्र ! अथवा जिसका मन मनुष्योंका हित करनेमें लगा है ऐसे इन्द्र ! (देववीतौ त्वं नृभिः भूरीणि वृत्रा हंसि) युद्धमें तू अपने वीरोंके द्वारा बहुत शत्रुओंको मारता है। हे (हर्यश्व) हरिद्वर्णके घोडोंवाले इन्द्र ! तूने (दभीतये सुहन्तु) दभीतिके वज्रके द्वारा दस्यु चुमुरि और धुनिको (नि अस्वापयः) सुलाया, मारा ॥ ४ ॥

[१७५] हे (वज्रहस्त) वज्रधारी इन्द्र ! (तव च्यौत्नानि तानि) तेरे वे प्रसिद्ध बल हैं कि जो (यत् नव नवतिं च पुरः सद्यः) तूने शत्रुके नौ और नब्बे नगरोंका भेदन तत्काल ही किया था और (निवेशने शततमा अविवेषीः) अपने ठहरनेके लिये जब सौवी नगरोंमें तूने प्रवेश किया उसी समय (वृत्रं च अहन्) वृत्रको तूने मारा और (उत नमुचिं अहन्) नमुचिको भी मारा ॥ ५ ॥

[१७६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते रातहव्याय दाशुषे सुदासे) तुझे हव्य देनेवाले दानी सुदासके लिए (ता भोजनानि सना) जो तू भोगके योग्य धन दिये, वे सदा टिकनेवाले थे । हे (पुरुशाक) बहु शक्तिमान् वीर ! (वृष्णे ते) बलशाली ऐसे तुझे लानेके लिये रथको (वृषणा हरी युनज्मि) बलशाली घोडोंको जोडता हूं । (ब्रह्माणि वाजं व्यन्तु) स्तोत्र बलशाली ऐसे तेरे पास पहुंचे ॥ ६ ॥

भावार्थ— जिस तरह इन्द्र अपनी शक्तिसे अनेक संरक्षणके साधनोंसे सुरक्षा करता है, उसी तरह शत्रुको दबानेके बलसे सब सुरक्षाके साधनों द्वारा प्रजाका संरक्षण करना चाहिए। युद्धोंमें तथा भूमिका बंटवारा करते समय झगडेकी जड दूर करनी चाहिये ॥ ३ ॥

प्रजाजनोंका हित करनेमें जिसका मन लगा रहता है, अथवा जिसने प्रजाओंका मन अपनी ओर आकर्षित किया है, वह " नृ-मन " है । देवोंका जहां सत्कार होता है, वह " देववीती " है । राजा मनुष्योंका हित करनेमें अपना मन लगाए। प्रजाका हित करनेमें तत्पर रहे । युद्धोंमें अपने वीरों द्वारा बहुत सारे शत्रुओंका नाश करे । दुष्टोंके दमनसे जो भयभीत होता है, उसकी सुरक्षाके लिए बहुतसे दुष्टोंका वध करे ॥ ४ ॥

हे वज्रधारी इन्द्र ! तूने शत्रुओंके जो अनेक नगरोंका भेदन किया, वह तेरा बल प्रसिद्ध है । शत्रुओंके किलों, प्राकारों और नगरोंका नाश करना चाहिए । उनपर अपना स्वामित्व स्थापन करना चाहिए और उनमें जो नाना रूपोंमें कष्ट देनेवाले शत्रु हों उनका नाश करना चाहिए ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! दाताके उपभोगके लिए हमेशा टिकनेवाले धन दो । बहुत शक्ति और बहुतसा सामर्थ्य प्रदान करो । बलवान् वीरकी सर्वत्र प्रशंसा हो ॥ ६ ॥

१७७ मा ते॑ अ॒स्यां स॑हसाव॒न् परि॑ष्टा॒व॒घाय॑ भूम हरिवः परा॒दै ।
त्राय॑स्व नोऽवृ॒केभि॒र्वरू॑थै॒ स्तव॑ प्रि॒यासः॑ सू॒रिषु॑ स्याम ॥ ७ ॥
१७८ प्रि॒यास॒ इत् ते॑ मघवन्न॒भिष्टौ॒ नरो॑ मदेम शर॒णे सखा॑यः ।
नि तु॒र्वशं॒ नि याद्वं॑ शिशीह्यतिथि॒ग्वाय॒ शंस्यं॑ करि॒ष्यन् ॥ ८ ॥
१७९ स॒द्यश्चि॒न्नु ते॑ मघवन्न॒भिष्टौ॒ नरः॑ शंसन्त्युक्थ॒शास॑ उ॒क्था ।
ये ते॒ हवे॑भि॒र्वि प॒णीँरदा॑श॒न्नस्मान् वृ॑णीष्व॒ युज्या॑य॒ तस्मै॑ ॥ ९ ॥
१८० ए॒ते स्तोमा॑ न॒रां नृ॑तम॒ तुभ्य॑मस्म॒द्र्य॑ञ्चो॒ दद॑तो म॒घानि॑ ।
तेषा॑मिन्द्र वृत्र॒हत्ये॑ शि॒वो भूः॒ सखा॑ च॒ शूरो॑ऽवि॒ता च॑ नृ॒णाम् ॥ १० ॥

अर्थ— [१७७] हे (सहसावन् हरिवः) बलशाली और घोडोंवाले इन्द्र ! (तव अस्यां परिष्टौ) तेरी इस प्रशंसामें (परादै अघाय मा भूम) दूसरोंसे सहाय्य लेनेका पाप हमसे न हो। (नः अवृकेभिः वरूथैः त्रायस्व) बाधा न करनेवाले संरक्षक साधनोंसे हमें बचाओ। (सूरिषु तव प्रियासः स्याम) ज्ञानियोंमें हम तेरे अधिक प्रिय बने ॥ ७ ॥

[१७८] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (ते अभिष्टौ) तेरी स्तुति करते हुए (नरः सखायः प्रियासः शरणे इत् मदेम) हम सब नेता समान कार्य करनेवाले तुम्हें प्रिय होकर अपने घरमें आनन्दसे रहें। (अतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन्) अतिथि सत्कार करनेवालेके लिये प्रशंसनीय सुखकी अवस्था निर्माण करके (तुर्वशं याद्वं नि नि शिशीहि) तुर्वश और याद्व इन शत्रुओंको अपने वशमें कर ॥ ८ ॥

[१७९] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (ते नु अभिष्टौ उक्थशासः ये नरः सद्यः चित् उक्था शंसति) तेरी स्तुति करनेके कार्यमें स्तोत्र बोलनेवाले जो नेता तत्काल ही स्तोत्रोंको बोलते हैं। (ते हवेभिः पणीन् वि अदाशन्) उन्होंने अपने दानोंसे पणय करनेवालोंको भी दान करनेवाले बना दिया है। (तस्मै युज्याय अस्मान् वृणीष्व) उस मित्रताके लिये हमारा स्वीकार कर ॥ ९ ॥

[१८०] हे (नृतम इन्द्र) नेताओंमें अत्यंत श्रेष्ठ इन्द्र ! (तुभ्यं एते स्तोमाः मघानि ददतः) तुझे ये सब धन देते हुए (अस्मद्र्यंचः) हमारी ओर आ रहे हैं। (तेषां वृत्रहत्ये शिवः भूः) उनके लिये शत्रुका नाश करनेके युद्धमें तू कल्याण करनेवाला हो, तथा उन (नृणां सखा च शूरः अविता च) मानवोंका मित्र और शूर संरक्षक हो ॥ १० ॥

भावार्थ— मनुष्य शक्तिशाली बनें। दूसरेकी सहायतापर अवलम्बित न रहें, अपनी ही शक्तिसे अपना कार्य करें, स्वावलम्बी बनें। क्रूरता रहित संरक्षक साधनोंसे प्रजाजनोंका बचाव हो और ज्ञानियोंमें भी अत्यधिक विद्वान् बनकर प्रभुके प्रिय भक्त बने रहें ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! सबको उत्तम मार्गसे ले जानेवाले तुम्हारे प्रिय बनकर हम अपने घरमें आनन्दसे रहें, आनेवाले अतिथियोंका सत्कार करें। मनुष्य धनवान् बने क्योंकि धनसे ही सब कार्य होते हैं। सब अपने देशमें सुखसे रहें। अपने देशमें रहकर भी लोग दुःख न भोगें। सभी जन अतिथियोंका सत्कार करें, शत्रुओंको वशमें रखें, उन्हें बढने न दें। सभी जन एक कार्य करनेवाले, परस्पर प्रीति करनेवाले, अग्रगामी होकर कार्योंको सम्पन्न करनेवाले और अपने स्थानपर आनन्दसे रहनेवाले हों ॥ ८ ॥

पणी वे होते हैं कि जो पणय करते हैं, वस्तुका क्रय विक्रय करते हैं। ये लोग व्यापार व्यवहार करनेवाले हैं। ये अपना धन बढाना जानते हैं। ऐसे पणव्यवहारियोंको भी दाता बना दिया। यह परिणाम स्तुतिके काव्य पढनेसे हुआ। इसलिए इन्द्रकी स्तुति करनी चाहिए ॥ ९ ॥

१८१ नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व ।
उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ११ ॥

[२०]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१८२ उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावा- ञ्चक्रिरपो नर्यो यत् करिष्यन् ।
जग्मिर्युवा नृषदनमवोभि- स्त्राता न इन्द्र एनसो महश्चित् ॥ १ ॥
१८३ हन्ता वृत्रमिन्द्रः शूशुवानः प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती ।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत् ॥ २ ॥

अर्थ— [१८१] हे शूर इन्द्र ! (स्तवमानः ब्रह्मजूतः) स्तुतिसे और ज्ञानसे प्रेरित होकर (तन्वा ऊती वावृधस्व) अपने शरीरसे और संरक्षणकी शक्तिसे बढता जा । (नः वाजान् उप मिमीहि) हमें बल और अन्न दो, (स्तीन् उप) हमें घर दो । (यूयं नः सदा स्वस्तिभि पात) आप हमें सदा कल्याणोंसे सुरक्षित करो ॥ ११ ॥

[२०]

[१८२] (स्वधावान् उग्रः इन्द्रः वीर्याय जज्ञे) अपनी धारणाशक्तिसे युक्त वीर इन्द्र पराक्रम करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है । (नर्यः यत् करिष्यन् अपः चक्रिः) मानवोंका हित करनेकी इच्छासे जो कर्म करना चाहता है वह कर्म वह करता ही है । (नृषदनं युवा अवोभिः जग्मिः) मनुष्योंके स्थानमें यह तरुण संरक्षणके साधनोंसे जाता है । और (महः चित् एनसः नः त्राता) बडे पापसे हमारा संरक्षण करनेवाला है ॥ १ ॥

[१८३] (इन्द्र शूशुवानः वृत्रं हन्ता) इन्द्र बढता हुआ वृत्रका वध करता है । (वीरः जरितारं नु ऊती प्र आवीत्) यह वीर स्तोताका संरक्षण अपने सुरक्षाके साधनसे करता है । (सुदासे लोकं कर्ता वै उ) सुदासके लिये लोगोंको, नागरिकोंको, तैयार करता है । (दाशुषे अह वसु मुहुः दाता आ भूत्) दाताको धन वारंवार दे सकता है ॥ २ ॥

भावार्थ— मनुष्य अन्य मनुष्योंमें श्रेष्ठ बने । धनका दान करे । युद्धके समय मनुष्योंकी सहायता करके उनका कल्याण करे । वह मनुष्योंका संरक्षण करे और इनके लिए वह शूर बने और मनुष्योंके साथ मित्रताका व्यवहार करे ॥ १० ॥

मनुष्य शूर हों । देवतास्तुतिसे और ज्ञानविज्ञानसे उन्हें प्रशस्ततम कर्म करनेकी प्रेरणा मिलती रहे । शरीर स्वस्थ नीरोग और बलवान् बने और उनमें संरक्षण करनेका सामर्थ्य बढे । अन्न ऐसे प्राप्त हों कि जिससे बल बढे । रहनेके लिए उत्तम घर हो । मानवोंका कल्याण होकर उनका संरक्षण भी हो ॥ ११ ॥

मनुष्य अपनी आन्तरिक धारणाशक्तिको बढावे, यह वह उग्रवीर बने, यह समझे कि उसका जीवन मानवोंका हित करने और पराक्रम करनेके लिए ही है। मानवोंका हित सिद्ध करनेके लिए जो प्रशस्ततम कर्म करने आवश्यक हों, उन्हें उत्तम रीतिसे करे । उनके करनेमें असावधानी न होने दे । मानवी समाजमें यह तरुण वीर अपने संरक्षक साधनोंके साथ जाए और उनका हित करे । उन्हें पतनके मार्गमें न गिरने दे, इस प्रकार उनका कल्याण करे ॥ १ ॥

वीर सामर्थ्यसे बढे और शत्रुओंका नाश करे । वीर नागरिकोंका संरक्षण करे, विशेष करके वीर काव्योंके निर्माताओंको सुरक्षित रखें । राजाकी सहायताके लिए नागरिकोंको उत्तम बनायें, जिससे राजाका राज्यशासन उत्तम रीतिसे चल सके । जो उदार दाता हैं, उन्हें वीर वारवार धन दे, जिससे उनका दान अखण्डित रूपसे चलता रहे ॥ २ ॥

१८४ युध्मो अनर्वा खजकृत् समद्वा शूरः सत्राषाड् जनुषेमषाळ्हः ।
व्यास इन्द्रः पृतनाः स्वोजा अधा विश्वं शत्रूयन्तं जघान ॥ ३ ॥
१८५ उभे चिदिन्द्र रोदसी महित्वा ऽऽ पप्राथ तविषीभिस्तुविष्मः ।
नि वज्रमिन्द्रो हरिवान् मिमिक्षन् त्समन्धसा मदेषु वा उवोच ॥ ४ ॥
१८६ वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारी नर्यं ससूव ।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः ॥ ५ ॥
१८७ नू चित् स भ्रेषते जनो न रेषन् मनो यो अस्य घोरमाविवासात् ।
यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि क्षयत् स राय ऋतपा ऋतेजाः ॥ ६ ॥

अर्थ— [१८४] (युध्मः अनर्वा खजकृत्) योद्धा युद्धसे निवृत्त न होनेवाला युद्धमें कुशल (समद्वा शूरः जनुषा सत्राषाट्) युद्धमें जानेके लिये सिद्ध शूरवीर जन्मस्वभावसे ही शत्रुका पराभव करनेवाला (अषाळ्हः स्वोजाः इन्द्रः) स्वयं कभी पराभूत न होनेवाला उत्तम बलशाली यह इन्द्र (पृतनाः वि आस) शत्रुकी सेनाको अस्तव्यस्त करता है। (अध विश्वं शत्रुयन्तं जघान) और सब शत्रुके समान आचरण करनेवालोंका वध करता हैं ॥ ३ ॥

[१८५] हे (तुवि-ष्मः इंद्र) बहुत धनसे युक्त इंद्र ! (महित्वा तविषीभिः) अपने महत्त्वसे और अपने बलोंसे तू (उभे रोदसी आ पप्राथ) दोनों द्यावा = पृथिवीको भरपूर भर देता है। (हरिवान् इंद्रः वज्रं नि मिमिक्षन्) घोडोंवाला इंद्र अपने वज्रको शत्रुओंपर फेंकता है और (मदेषु वै अन्धसा सं उवोच) यज्ञोंमें अन्नको प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

[१८६] (वृषा वृषणं रणाय जजान) बलवान् पिताने बलवान् वीरपुत्रको युद्ध करनेके लिये उत्पन्न किया है, (नर्यं तं उ नारी चित् ससूव) मानवोंके हित करनेवाले उस पुत्रको स्त्रीने जन्म दिया। (अध यः नृभ्यः सेनानीः प्र अस्ति) और जो मानवोंका हित करनेवाला सेनानायक प्रभावयुक्त होता है वह (सः इनः) वह सबका स्वामी होता है वह (सत्वा) शत्रुनाशक (गवेषणः) गौओंको प्राप्त करनेवाला और (धृष्णुः) शत्रुओंका घर्षण करनेवाला है ॥५॥

[१८७] (यः अस्य घोरं मनः) जो इस वीरके शूर मनको (यज्ञैः आ विवासत्) यज्ञोंद्वारा प्रसन्न करनेके लिये सेवा करता है (सः जनः नु चित् भ्रेजते) वह मनुष्य स्थानभ्रष्ट नहीं होता, और (न रेषत्) वह क्षीण भी नहीं होता। (यः इंद्रे दुवांसि दधते) जो इन्द्रके स्तोत्र धारण करता है, अपने पास रखता है, उसके लिये (सः ऋतपाः ऋते जाः) वह सत्यपालक और सत्यके लिये उत्पन्न हुआ इंद्र (रायं क्षयत्) धन देता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— वीर ऐसा हो कि जो योद्धा हो, युद्ध करनेवाला हो, वह युद्धसे डरकर अथवा अन्य किसी कारणसे युद्धसे पीछे हटनेवाला न हो। वह युद्ध करनेमें कुशल, युद्धमें जानेके लिए सदा सिद्ध, शूरवीर, जन्मसे ही शत्रुओंका पराभव करनेमें समर्थ, कभी पराभूत न होनेवाला और उत्तम बलवान् हो। ऐसा वीर ही शत्रुकी सेनाको तितर बितर कर देता है, अस्तव्यस्त करता है और शत्रुके समान दुष्ट व्यवहार करनेवालोंका नाश करता है ॥ ३ ॥

यह इन्द्र अपने महत्त्व और शक्तिसे सर्वत्र व्याप्त होता है, सर्वत्र प्रसिद्धिको प्राप्त होता है। उत्तम घोडोंवाला वह इन्द्र जब अपने वज्रसे शत्रुओंको मारता है, तब सब प्रसन्न होकर उसे अनेक तरहका अन्नरस प्रदान करते हैं, और इन अन्नरसोंसे यह इन्द्र आनन्दित होता है ॥ ४ ॥

बलवान् पिताने अपने बलवान् पुत्रको युद्ध करके शत्रुनाश करनेके लिए उत्पन्न किया। पिता स्वयं बलवान् बने और अपनी सन्तानको भी बलवान् बनानेका प्रयत्न करे। स्त्री भी मानवोंका हित करनेमें समर्थ बलवान् पुत्रका निर्माण करे। इस तरह जहां पिता और माता ये दोनों शूर और युद्धकुशल पुत्र निर्माण करना चाहेंगे वहां वैसे ही पुत्र उत्पन्न होंगे। जो पुत्र मानवोंका हित करनेवाला, सेना संचालनमें कुशल और प्रभावी नेता हो, ऐसे पुत्रको ही उत्पन्न करनेकी इच्छा माता किया करे ॥ ५ ॥

१८८ यदिन्द्र पूर्वो अपराय शिक्ष- न्नयज्ज्यायान् कनीयसो देष्णम् ।
अमृत इत् पर्यासीत दूर- मा चित्र चित्र्यं भरा रयिं नः ॥ ७ ॥
१८९ यस्त इन्द्र प्रियो जनो ददाश- दसन्निरेके अद्रिवः सखा ते ।
वयं ते अस्यां सुमतौ चनिष्ठाः स्याम वरूथे अघ्नतो नृपीतौ ॥ ८ ॥
१९० एष स्तोमो अचिक्रदद् वृषा त उत स्तामुर्मघवन्नक्रपिष्ट ।
रायस्कामो जरितारं त आगन् त्वमङ्ग शक्र वस्व आ शको नः ॥ ९ ॥

अर्थ— [१८८] हे (चित्र इंद्र) आश्चर्यकारक इंद्र ! (यत् पूर्वः अपराय शिक्षन्) जो धन पूर्वज वंशजको देता है, जो (देष्णं ज्यायान् कनीयसः अयत्) जो धन श्रेष्ठको कनिष्ठसे प्राप्त होता है, जो (अमृतः दूरं परि आसीत) धन मृत्युरहित होकर दूर देशमें जाकर धारण किया जाता है वह तीन प्रकारका (चित्र्यं रयिं नः आभर) विलक्षण धन हमें दे दो ॥ ७ ॥

[१८९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः ते प्रियः सखा जनः ददाशत्) जो तेरा प्रिय मित्रजन तुझे देता है, हे (अद्रिवः) किलोंमें रहनेवाले वीर ! वह (ते सखा) तेरा मित्र (निरेके असत्) तेरे दानमें रहे, उसे दान मिले। (वयं अघ्नतः ते सुमतौ चनिष्ठाः) हम अहिंसित होकर तेरी कृपामें रहकर अधिकसे अधिक अन्नयुक्त, धनवान् (स्याम) हों और (नृपीतौ वरूथे) मानवोंकी सुरक्षा करनेके समय हम स्वस्थानमें सुरक्षित रहें ॥ ८ ॥

[१९०] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (ते वृषा एषः स्तोमः अचिक्रदत्) तेरा बल बढानेवाला यह सोम शब्द करता है। (उत स्तामुः अक्रपिष्ट) और स्तुति करनेवाला स्तुति करता है। (ते जरितारं रायः कामः आ अगन्) तेरी स्तुति करनेवाले मेरे पास धनकी कामना आ गयी है। हे (अंग शक्र) प्रिय इन्द्र ! (त्वं वस्वः नः आशकः) तू धन हमें शीघ्र दे ॥ ९ ॥

भावार्थ— जो वीरके मनको प्रसन्नता प्रदान करता है, वह मनुष्य स्थान भ्रष्ट नहीं होता और वह क्षीण भी नहीं होता, क्योंकि उसकी वह वीर मनुष्य रक्षा करता है। जो इन्द्रकी स्तुति करता है, उसके लिए वह सत्यका पालक और सत्यकी रक्षाके लिए उत्पन्न हुआ यह इन्द्र धन देता है ॥ ६ ॥

धन तीन तरहके होते हैं एक धन वह कि जो पूर्वजोंसे परम्परया प्राप्त होता है, इसे पैतृक धन कहते हैं। दूसरा धन वह है जो श्रेष्ठसे कनिष्ठको प्राप्त होता है, इसे सामाजिक धन कह सकते हैं। तीसरा धन वह है कि जो मनुष्य स्वयं मृत्युके भयसे दूर होकर दूर देशमें जाकर धन कमाता है, यह स्वयं अर्जित धन है। ये तीनों धन उत्तम हैं। इन तीनों धनोंको प्राप्त करनेके लिए मनुष्य प्रयत्न करें ॥ ७ ॥

मनुष्य परस्परकी सहायता करें। राष्ट्रकी सुरक्षाके लिए पर्वतोंपर किले बनाये जाएं और उनमें वीर रहें। कोई भी दुःखी और कष्टी न हों, सब धन धान्य संपन्न हों, सब लोग सुरक्षित हों और अपने निवासस्थानमें आनन्द प्रसन्नसे रहें। हम दुःखी न होकर अत्यन्त धन धान्यसे संपन्न होकर प्रभुकी कृपाके भागी बनें। हम जनताकी सुरक्षा करनेके कार्यमें और उन्हें उनके स्थानमें सुरक्षित रखनेके कार्यमें हम प्रयत्न करनेवाले हों ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! तेरे लिए यह सोमका रस निकाला जा रहा है और निचोडनेका भी शब्द हो रहा है। इस समय स्तोत्रका गान भी हो रहा है। मैं स्तोत्रका पाठ कर रहा हूँ और धनप्राप्तिकी मेरी इच्छा भी है, अतः मुझे पर्याप्त धन दे ॥ ९ ॥

१९१ स न॑ इन्द्र त्वय॑ताया इ॒षे धा॒स्त्मना॑ च॒ ये म॒घवा॑नो जु॒नन्ति॑ ।
व॒स्वी षु ते॑ जरि॒त्रे अ॑स्तु श॒क्तिर्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒: सदा॑ नः ॥ १० ॥

[२१]

(ऋषिः— मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवताः— इन्द्रः । छन्दः— त्रिष्टुप् ।)

१९२ असा॑वि दे॒वं गोऋ॑जीक॒मन्धो॒ न्य॑स्मि॒न्निन्द्रो॑ ज॒नुषे॑मुवोच ।
बोधा॑मसि त्वा हर्यश्व य॒ज्ञैर्बोधा॑ न॒: स्तोम॒मन्ध॑सो॒ मदे॑षु ॥ १ ॥

१९३ प्र य॑न्ति य॒ज्ञं वि॒पय॑न्ति ब॒र्हिः सो॑म॒मादो॑ वि॒दथे॑ दु॒ध्रवा॑चः ।
न्यु॑ भ्रियन्ते य॒शसो॑ गृ॒भादा दू॒रउ॑पब्दो॒ वृष॑णो नृ॒षाच॑: ॥ २ ॥

१९४ त्वमि॑न्द्र॒ स्रवि॑तवा अ॒पस्क॒: परि॑ष्ठिता॒ अहि॑ना शूर पू॒र्वीः ।
त्वद्वा॑वक्रे र॒थ्यो॒३॒॑ न धेना॒ रेज॑न्ते॒ विश्वा॑ कृ॒त्रिमा॑णि भी॒षा ॥ ३ ॥

अर्थ— [१९१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सः) वह (त्वयताया इषे नः धाः) तेरे दिये अन्नका भोग करनेकी शक्ति हममें रहे । हमें धारण कर, हमें सुरक्षित रखे । (ये च मघवानः त्मना जुनन्ति) जो धनीलोग हविष्यान्न तुझे देते हैं उनको भी सुरक्षित रखे । (ते जरित्रे वस्वी सु शक्तिः अस्तु) तेरी स्तुति करनेवालेको निवास करनेकी उत्तम शक्ति रहे । (यूयं सदा स्वस्तिभिः नः पात) आप सब सदा कल्याण करनेवाले साधनोंसे हमें सुरक्षित रखो ॥ १० ॥

[२१]

[१९२] (देवं गोऋजीकं अन्धः असावि) दिव्य गोदुग्धसे मिश्रित सोमरस निचोडा गया है । (ईं इन्द्रः अस्मिन् जनुषा नि उवोच) यह इंद्र इस सोमरसमें जन्म स्वभावसे ही संगत होते हैं, प्रीति रखते हैं । हे (हर्यश्व–हरि+अश्व) हरिद्वर्णके घोडोंको जोडनेवाले वीर ! हम (त्वा यज्ञैः बोधामसि) तुम्हें यज्ञोंसे जगाते हैं, उत्साहित करते हैं । यहां (अन्धसः मदेषु नः स्तोमं बोध) सोमपानके आनन्दमें हमारे स्तोत्र पाठका श्रवण कर ॥ १ ॥

[१९३] (यज्ञं प्रयन्ति) लोग यज्ञके पास जाते हैं । यज्ञशालामें (बर्हिः विपयन्ति) आसन फैलाये जाते हैं । (विदथे सोममादः दुध्रवाचः) यज्ञमें सोम कूटनेके पत्थर कूटनेका कठोर शब्द करते हैं, सोम कूटा जाता है । (यशसः दूर-उपब्दः नृ-षाचः) यश देनेवाले, दूरसे जिनका शब्द सुनाई देता है, ऐसे मनुष्योंकी सेवा करनेवाले (वृषणः गृभात् नि भ्रियन्ते) बल बढानेवाले सोम कूटनेके पत्थर घरमेंसे लिये जाते हैं ॥ २ ॥

[१९४] हे (शूर इन्द्र) शूर इंद्र ! (त्वं अहिना परिष्ठिता पूर्वीः अपः) तूने वृत्रके द्वारा आक्रान्त होकर स्तब्ध हुए बहुतसे जलप्रवाह (स्रवितवा अकः) प्रवाहित होनेवाले बना दिये । (धेना त्वत् रथ्यः न वावक्रे) नदियाँ तेरे कारण ही रथी वीरोंके समान चलने लगी । (विश्वा कृत्रिमाणि भीषा रेजन्ते) सब कृत्रिम भुवन तेरे भयसे कांपते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम सबको अन्नके द्वारा पुष्ट करके धारण कर । प्राप्त अन्नोंका हम उपभोग कर सकें, इसलिए हमारे जीवनको सुरक्षित रख । हमें ऐसी शक्ति प्रदान कर कि हम सुखसे निवास कर सकें । हमारा कल्याण हो और साथमें हमारी सुरक्षा भी हो ॥ १० ॥

सोमयागमें सोम औषधिका रस निकालते हैं । उसमें गायोंका दूध मिलाते हैं । इस दुग्धमिश्रित सोमका अर्पण इन्द्रादि देवोंको करते हैं । इस समय वेदमंत्रोंका गान होता है और उसके बाद इस रसका पान करते हैं ॥ १ ॥

लोग यज्ञमें जाकर शामिल होते हैं, और यज्ञशालामें फैलाये गए आसनोंपर बैठते हैं । जब सोम कूटा जाता है, तब उसके कूटनेके पत्थरोंका कठोर शब्द होता है । यह सोमरस बल बढानेवाला और यश देनेवाला होता है ॥ २ ॥

१९५ भीमो विवेषायुधेभिरेषा॒मपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान् ।
इन्द्रः पुरो जर्हृषाणो वि दूधोद् वि वज्रहस्तो महिना जघान ॥ ४ ॥
१९६ न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ॥ ५ ॥
१९७ अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन् न ते विव्यङ् महिमानं रजांसि ।
स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ न शत्रुरन्तं विविदद् युधा ते ॥ ६ ॥

अर्थ— [१९५] (इन्द्रः नर्याणि विश्वा अपांसि विद्वान्) इन्द्र लोगोंके हितके लिये करने योग्य सब कर्मोंको जानता है। (आयुधेभिः भीमः एषां विवेष) शस्त्रोंसे भयंकर हुआ इन्द्र इन शत्रुसेनाओंके अन्दर प्रविष्ट होता है। और (पुरः विधुनोत्) शत्रुओंके नगरोंको कंपाता है। (जर्हृषाणः महिना वज्र-हस्तः विजघान) हर्षित होकर अपनी महिमासे वज्र हाथमें लेकर शत्रुका वध करता है ॥ ४ ॥

[१९६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यातवः नः न जुजुवुः) राक्षस हमारा घातपात न करें। हे (शविष्ठ) बलशाली वीर ! (वंदना वेद्याभिः न) वंदन करके हमारे अन्दर रहनेवाले हमारे गुप्त शत्रु उनके जाननेके साधनोंसे हमारा नाश न कर सकें। (सः अर्यः विषुणस्य जन्तोः शर्धत्) वह आर्य इन्द्र विषम मनुष्य प्राणियोंपर भी अधिकार चलानेकी इच्छा करता है। (शिश्नदेवाः नः ऋतं अपि मा गुः) शिश्नपूजक, ब्रह्मचर्यका पालन न करनेवाले, हमारे यज्ञके पास न आ जांय ॥ ५ ॥

[१९७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं क्रत्वा ज्मन् अभिभूः) तू अपने पुरुषार्थसे पृथ्वीके ऊपरके सारे शत्रुभूत प्राणियोंका पराभव करता है (अध ते महिमानं रजांसि न विव्यक्) और तेरी महिमाको सारे लोक नहीं जानते। (स्वेन शवसा हि वृत्रं जघन्थ) अपने बलसे तू वृत्रका वध करता है। (शत्रुः युधा ते अन्तं न विविदत्) शत्रु युद्ध करके तेरा नाश नहीं कर सकता ॥ ६ ॥

भावार्थ— जिसका बल कम नहीं होता, उस शत्रुका नाम अहि है। यह शत्रु हमला करके जलस्थान, नदियां आदिपर अपना अधिकार स्थापित करता है, जिसके कारण प्रजायें जलसे वंचित रह जाती हैं। इन्द्र इस शत्रुको परास्त करके जलस्थानों-पर अपना अधिकार प्रस्थापित करता है और जलप्रवाह सब प्रजाओंके लिए खुले करता है। इस भयंकर युद्धके कारण सब भुवन कांपने लगते हैं। अहि, वृत्र आदि नाम मेघ अथवा बर्फके हैं। सर्दीके कारण तालाब और नदियां बर्फ बनकर सख्त हो जाती हैं। पहाडोंके ऊपर बर्फ जम जाती है। बर्फके कारण जलप्रवाह बन्द हो जाते हैं। सर्दीके समाप्त होते ही सूर्यका प्रखर ताप बढने लगता है। इस तापसे बर्फ पिघलने लगती है। यही अहि और वृत्रका मारा जाना है ॥ ३ ॥

इन्द्र जनहितके कर्मोंको जानता है। शस्त्रोंको धारण करनेके कारण भयंकर प्रतीत होनेवाला इन्द्र शत्रुसेनाओंके अन्दर प्रविष्ट होता है, इसके आक्रमण करते ही शत्रुओंके नगर कांपने लगते हैं, तब हर्षित होकर यह इन्द्र शत्रुका वध करता है। जो जनहितके कर्म हैं, उन्हें प्रथम जानना चाहिए। प्रचण्ड भयंकर शस्त्रोंको लेकर शत्रुसेनामें घुसना चाहिए और उनके नगरों और सेना शिबिरोंको नष्ट करना चाहिए ॥ ४ ॥

घात करनेवाले डाकू हमारे पास न आवें। गुप्तरीतिसे अपने आपको सज्जन बताकर, हमारे समाजमें रहकर अन्दर ही अन्दरसे हमारा नाश करनेकी योजना बनानेवालोंका नाश उनके व्यवहारोंको ठीक तरह जानकर किया जावे। हमारे श्रेष्ठ पुरुष दुष्टोंका ठीक तरह शासन करें और हमारे समाजमें शिश्नपरायण अर्थात् इन्द्रिय-लोलुप मनुष्य न रहें ॥ ५ ॥

१९८ देवाश्चित् ते असुर्याय पूर्वेऽनु क्षत्राय ममिरे सहांसि ।
इन्द्रो मघानि दयते विषह्येन्द्रं वाजस्य जोहुवन्त सातौ ॥ ७ ॥
१९९ कीरिश्चिद्धि त्वामवसे जुहावेशानमिन्द्र सौभगस्य भूरेः ।
अवो बभूथ शतमूते अस्मे अभिक्षत्तुस्त्वावतो वरूता ॥ ८ ॥
२०० सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम नमोवृधासो महिना तरुत्र ।
वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीकेऽभीतिमर्यो वनुषां शवांसि ॥ ९ ॥

अर्थ—[१९८] हे इन्द्र ! (पूर्वे देवाः चित्) पूर्वे देवों अर्थात असुर लोगोंने (असुर्याय क्षत्राय) अपने बल और क्षात्र तेजको (ते सहांसि अनुममिरे) तेरे बलोंकी अपेक्षा हीन ही मान लिया था ; यह (इन्द्रः विषह्य मघानि दयते) इन्द्र शत्रुका पराभव करके भक्तोंके लिये धनोंका दान करता है और (वाजस्य सातौ इन्द्रं जोहुवन्त) धनकी प्राप्तिके लिये भक्त इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

[१९९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ईशानं त्वां कीरिः अवसे जुहाव हि) तुझ प्रभुकी प्रार्थना स्तोता अपने संरक्षणके लिये करता है। हे (शतं ऊते) सैंकडों साधनोंसे रक्षा करनेवाले इंद्र ! (अस्मे भूरेः सौभगस्य अवः बभूथ) हमारे बहुतसे धनोंकी सुरक्षा तू कर । तथा (अभिक्षत्तुः त्वावतः वरूता) तेरे साथ स्पर्धा करनेवाले शत्रुका निवारण कर ॥ ८ ॥

[२००] हे (इन्द्र) इंद्र ! (ते नमोवृधासः विश्वह सखायः स्याम) तेरे यशकी वृद्धि करनेवाले हम सब सदा तेरे मित्र होकर रहेंगे । हे (महिना तरुत्र) अपनी शक्तिसे तारण करनेवाले इंद्र ! (ते अवसा) तेरे संरक्षणसे (समीके अर्यः अभीतिं) संग्राममें आर्यवीर अनार्य आक्रमकोंका तथा (वनुषां शवांसि वन्वन्तु) हिंसकोंके बलोंका नाश करें ॥ ९ ॥

भावार्थ— जिस तरह इन्द्र अपने पुरुषार्थसे सभी शत्रुओंका नाश करता है, पर उसकी महिमाको सारे लोग मिलकर भी नहीं जान सकते, इसी तरह मनुष्य अपने प्रयत्नसे शत्रुओंका पराभव करे, पर अपनी शक्तिका पता-अपने शत्रुओंको न लगने दे । वह शत्रुओंका तो वध करे, पर स्वयं ऐसी सुरक्षित स्थितिमें रहे, कि शत्रु उसका वध कदापि न कर सके ॥ ६ ॥

पूर्वदेव अर्थात् राक्षस भी, जो सदा अपनी शक्तिके घमंडमें रहते हैं, अपनी शक्तिको इन्द्रकी शक्तिसे कम ही समझते हैं । यह इन्द्र शत्रुका पराभव करके और उनसे धन प्राप्त करके उस धनको अपने अनुयायियोंमें बांटता है । इसलिए जब किसी अनुयायीको यज्ञ करनेके लिए धनकी आवश्यकता होती है, तब वह इन्द्रके पास जाकर ही धन मांगता है । असुरोंको यहां पूर्वदेव कहा गया है । वे असुर पहले सत्पुरुष या देव थे, पर बादमें व स्वार्थ प्रवृत्तिके कारण बिगड गए, इसलिए वे राक्षस कहलाए ॥ ७ ॥

राजा अपने राष्ट्रमें स्थित कारीगरोंकी रक्षा करे । शत्रु अनेक रीतिसे आक्रमण करते हैं, इसलिए अनेक रीतिसे उनके आक्रमणोंसे अपना बचाव करना चाहिए । प्रजाओंके धनोंकी सुरक्षा होनी चाहिए और स्पर्धा करनेवाले दुष्टोंका भी नाश होना चाहिए ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! यज्ञके द्वारा तेरे यशको बढानेवाले हम तेरा सदा ही मित्र बनकर रहें तथा तेरे पराक्रमकी सहायतासे हम वीर अनार्योंका नाश करें । यज्ञ करनेवाले सदा मित्रभावसे आपसमें मिल जुलकर सबहित होकर रहें । अपनी शक्ति बढाकर लोगोंका तारण करें । युद्धमें आर्यदलके वीर अनार्यदलके आक्रमणकारियोंको विनष्ट करें ॥ ९ ॥

२०१ स न॑ इन्द्र त्व॒यता॑या इ॒षे धा॒ त्मना॑ च॒ ये म॒घवा॑नो जु॒नन्ति॑ ।
व॒स्वी षु ते॑ जरि॒त्रे अ॑स्तु श॒क्तिर्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒: सदा॑ नः ॥ १० ॥

[२२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- विराट्, ९ त्रिष्टुप् ।)

२०२ पिबा॒ सोम॑मिन्द्र॒ मन्द॑तु त्वा॒ यं ते॑ सु॒षाव॑ हर्य॒श्वाद्रि॑: ।
सो॒तुर्बा॒हुभ्यां॒ सुय॑तो॒ नार्वा॑ ॥ १ ॥

२०३ यस्ते॒ मदो॒ युज्य॒श्चारु॒रस्ति॒ येन॑ वृ॒त्राणि॑ हर्यश्व॒ हंसि॑ ।
स त्वामि॑न्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

२०४ बोधा॒ सु मे॑ मघव॒न् वाच॒मेमां यां ते॒ वसि॑ष्ठो॒ अर्च॑ति॒ प्रश॑स्तिम् ।
इ॒मा ब्रह्म॑ सध॒मादे॑ जुषस्व ॥ ३ ॥

अर्थ— [२०१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सः) वह (त्वयतायाः इषे नः धा) तेरे द्वारा दिए गए अन्नका भोग करनेकी शक्ति हममें रहे, तू हमें धारण कर, हमें सुरक्षित रख। (ये च मघवानः त्मना जुनन्ति) जो धनी लोग हविष्यान्न तुझे देते हैं, उनको भी सुरक्षित रख। (ते जरित्रे वस्वी सुशक्तिः अस्तु) तेरी स्तुति करनेवालेमें निवास करनेकी उत्तम शक्ति रहे। (यूयं सदा स्वस्तिभिः नः पात) तुम सदा हे देवो ! कल्याणकारी साधनोंसे हमारी रक्षा करो ॥ १० ॥

[२२]

[२०२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सोमं पिब) सोमका यह रस पी। (त्वां मन्दतु) यह सोमरस तुझे आनंद देवे। हे (हर्यश्व) उत्तम घोडोंको जोतनेवाले वीर ! (ते सोतुः बाहुभ्यां, अर्वा न सुयतः, अद्रिः यं सुषाव) तेरे लिये यह सोमरस निचोडनेवालेके बाहुओंसे, रश्मियोंसे संयमित किये घोडेके समान, ये पत्थर इस रसको निकालते हैं ॥ १ ॥

[२०३] हे (हर्यश्व) हे घोडोंवाले इंद्र ! (ते यः युज्यः चारुः मदः) जो यह तेरे योग्य उत्तम आनंद देनेवाला सोम है। (येन वृत्राणि हंसि) जिसके पीनेसे तू वृत्रोंका वध करता है। हे (प्रभुवसो) बहुत धनवाले इंद्र ! (सः त्वां ममत्तु) वह तुम्हें आनन्द देवे ॥ २ ॥

[२०४] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (ते प्रशस्तिं) तेरे प्रशंसारूप (यां इमां वाचं वसिष्ठः अर्चति) जिस स्तोत्रका पाठ वसिष्ठ कर रहा है (तां मे वाचं सु आबोध) उस मेरी वाणीको तू अच्छी तरह जान। और (इमा ब्रह्माणि सधमादे जुषस्व) इन स्तोत्रोंको यज्ञमें स्वीकृत करो ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम सबको अन्नके द्वारा पुष्ट करके धारण कर प्राप्त पदार्थोंका हम उपभोग कर सकें, इसलिए हमारे जीवनको सुरक्षित रख। हमें ऐसी शक्ति प्रदान कर कि हम सुखसे निवास कर सकें। हमारा कल्याण हो और साथमें हमारी सुरक्षा भी हो ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तू सोमका रस पी, ये सोमरस तुझे आनंद दें। पत्थरोंसे कूटकर सोमरस निकालते हैं। दोनों हाथोंसे ये पत्थर पकडे जाते हैं। जिस तरह सावधानीसे सारथी घोडोंको संभालता है उसी तरह सावधानीसे ये पत्थर दोनों हाथोंसे संभाले जाते हैं। जिस तरह लगामको ठीक तरह न पकडनेपर घोडे इधर उधर भागते हैं, उसी तरह पत्थर भी यदि ठीक तरह न पकडे जायें तो वे इधर उधर गिरने लगते हैं ॥ १ ॥

सोम पीनेसे उत्साह और शक्ति बढती है। इसे पीनेके बाद उत्साहमें भरकर इन्द्र वृत्रोंका वध करता है। वह सोम शक्तिवर्धक है ॥ २ ॥

वसिष्ठ अर्थात् संसारमें उत्तम रीतिसे रहनेवाला अथवा सर्वदा धनोंमें रहनेवाला मनुष्य इस इन्द्रकी स्तुति करता है। हे इन्द्र ! इन स्तुतियोंको तुम स्वीकार करो ॥ ३ ॥

२०५ श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥ ४ ॥
२०६ न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥ ५ ॥
२०७ भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक् कः ॥ ६ ॥
२०८ तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥ ७ ॥

अर्थ— [२०५] हे इन्द्र ! (विपिपानस्य अद्रेः हवं श्रुधि) सोमरसका पान करनेवाले पत्थरकी इस प्रार्थनाका श्रवण कर । (अर्चतः विप्रस्य मनीषां बोध) पूजा करनेवाले इस ब्राह्मणकी मनकी इच्छाको जान ले । (इमा दुवांसि अन्तमा सचा कृष्व) इन सेवाओंको अन्तःकरणमें पहुंचनेवाली साथ साथ कर । ये प्रार्थनाएं तेरे अन्तःकरणमें पहुंचें ॥ ४ ॥

[२०६] हे इंद्र ! (ते असुर्यस्य विद्वान्) तेरे सामर्थ्यको जाननेवाला मैं (तुरस्य: गिर: अपि न मृष्ये) शत्रुका विनाश करनेवाले ऐसे तेरी प्रशंसाके भाषणोंको नहीं छोडूंगा और (न सुष्टुतिं) नहीं तुम्हारी स्तुति करना छोडूंगा । (स्वयशसः ते नाम सदा विवक्मि) उत्तम यशस्वी ऐसे तेरा नाम मैं सदा लेता रहूंगा । ॥ ५ ॥

[२०७] हे (मघवन्) धनवान् इंद्र ! (ते सवना मानुषेषु भूरि हि) तेरे लिये सोमरस निकालनेके सवन मनुष्योंमें बहुत हैं । (मनीषी त्वां इत् भूरि हवते) ज्ञानी स्तोता तेरा ही आह्वान करता है । (अस्मत् आरे ज्योक् मा कः) हमसे दूर अपने आपको तू न कर ॥ ६ ॥

[२०८] हे (शूर) शूर ! (तुभ्य इत् इमा विश्वा सवना) तेरे लिये ही ये सब सोमके सवन हैं । (तुभ्यं वर्धना ब्रह्माणि कृणोमि) तेरे लिये ही ये यश बढानेवाले स्तोत्र हैं । (त्वं नृभिः विश्वधा हव्यः असि) तू ही मनुष्यों द्वारा प्रार्थना करने योग्य है ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! सोमको रसके लिए कूटनेवाले इस पत्थरकी आवाजको सुन और पूजा करनेवाले इस ज्ञानीकी मनकी इच्छाको जान ले । हम जो प्रार्थना करते हैं, वे प्रार्थनायें सीधे तेरे मनमें जाकर पहुंचे अर्थात् हमारे द्वारा की गई स्तुतिसे तू प्रसन्न हो ॥ ४ ॥

मनुष्य इन्द्रके सामर्थ्यको जाने और शत्रुका विनाश करनेवाले इन्द्रकी पूजाका त्याग कभी न करे, अपितु वह ऐश्वर्यशाली प्रभुका नाम सदा लेता रहे ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! हम यह जानते हैं कि तेरे लिए अनेक यज्ञ होते हैं और अनेक लोग तेरी स्तुति करते हैं । पर जो ज्ञानी होता है, उसीके पास तू जाता है । हम ज्ञानसे युक्त होकर तेरी स्तुति करते हैं, इसलिए तू हमारे पास आकर हमारे मनोरथ पूर्ण कर ॥ ६ ॥

हे शूरवीर इन्द्र ! तेरे लिए ही ये सोमयज्ञ किए जाते हैं, तेरे लिए ही ये यश बढानेवाले स्तोत्र गाये जाते हैं, क्योंकि तू ही मनुष्योंके द्वारा प्रार्थना करनेके योग्य है । अर्थात् तू ही एक ऐसा देव है कि जिसकी प्रार्थना की जा सकती है ॥ ७ ॥

२०९ नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मो—दश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥ ८ ॥

२१० ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः ।
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥

[२३]

(ऋषिः— मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवताः— इन्द्रः । छन्दः— त्रिष्टुप् ।)

२११ उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्ये—न्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानो—पश्रोता म ईवतो वचांसि ॥ १ ॥

२१२ अयामि घोष इन्द्र देवजामि—रिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥ २ ॥

अर्थ— [२०९] हे (दस्म) दर्शनीय वीर ! (मन्यमानस्य ते महिमानं नू चित् उत् अश्नुवन्ति) सन्माननीय ऐसी तेरी महिमाका कोई पार नहीं लगा सकते। तेरी महिमा अपार है । हे (उग्र) शूरवीर ! (ते राधः वीर्यं न उत् अश्नुवन्ति) तेरे धन और वीर्यका भी पार किसीको लगता नहीं है ॥ ८ ॥

[२१०] हे (इन्द्र) इंद्र ! (ये च पूर्वे ऋषयः) जो प्राचीन ऋषि थे (ये च नूत्नाः) और जो नवीन ऋषि हैं, जो (विप्राः ब्रह्माणि जनयन्त) ज्ञानी विद्वान् स्तोत्रोंको करते हैं, (अस्मे ते सख्यानि शिवानि सन्तु) उनमें और हम सबमें तेरी मित्रताएँ कल्याण करनेवाली हों । (यूयं सदा नः) तुम सब हम सबको सदा (स्वस्तिभिः पात) कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित कीजिये ॥ ९ ॥

[२३]

[२११] (श्रवस्या ब्रह्माणि उत् ऐरयत् उ) यशकी इच्छासे स्तोत्रोंको इन्द्रकी प्रसन्नताके लिये प्रेरित करो। हे (वसिष्ठ) वसिष्ठ ! (समर्ये इंद्रं महय) यज्ञमें इंद्रके महत्त्वका वर्णन कर । (यः विश्वानि शवसा ततान) जो भुवनोंको अपने बलसे फैलाता है, (ईवतः मे वचांसि उपश्रोता) उपासना करनेवाले ऐसे मेरे स्तुतियोंको वही सुननेवाला है ॥ १ ॥

[२१२] (यत् शुरुधः इरज्यन्त) जब शोकको रोकनेवाली कृतियां बढती हैं, तब हे इंद्र ! (विवाचि देवजामिः घोषः अयामि) हमारी स्तुतिका घोष देवताके पास में पहुंचाता हूँ । (जनेषु स्वं आयुः नहि चिकीते) लोगोंमें अपनी आयुको कोई नहीं जानता, जिससे आयु क्षीण होती है (तानि अंहांसि इत् अस्मान् अति पर्षि) उन सब पापोंसे हमें पार ले जाओ ॥ २ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र अपने सामर्थ्यके कारण सबके द्वारा सम्माननीय है, इसकी महिमाका कोई पार नहीं पा सकता। इस प्रभुकी महिमा अपार है । इसके धन और वीर्यका भी कोई पार नहीं है ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! जितने भी प्राचीन ऋषि और नवीन ऋषि तेरी स्तुति करते आए हैं, उनकी स्तुतियोंसे हम प्रेम करें । उन स्तुतियोंके अन्दर भरे हुए ज्ञानसे हम प्रेम करें अर्थात् उस ज्ञानको प्राप्त करके तदनुसार आचरण करें और इस प्रकार हम उन ज्ञानीयोंसे तथा सदाचरणके द्वारा तुझसे भी मित्रता रखें ॥ ९ ॥

ऐश्वर्यशाली और सामर्थ्यशाली प्रभु ही इन सब भुवनोंका यथायोग्य रीतिसे निर्माण करके उन्हें यथायोग्य स्थान-पर स्थापित करता है । वही सबकी पुकार सुनता है। इसलिए उसीका यश गाना और उसे ही प्रसन्न करना चाहिए ॥ १ ॥

२१३ युजे रथं गवेषणं हरिभ्या- मुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वे- न्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥ ३ ॥
२१४ आपश्चित् पिप्युः स्तर्यो३ न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ ४ ॥
२१५ ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्ता- नस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ५ ॥
२१६ एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स नः स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

अर्थ— [२१३] (गवेषणं रथं हरिभ्यां युजे) गौवें प्राप्त करानेवाले इंद्रके रथको मैं दो घोडे जोडता हूं । (ब्रह्माणि जुजुषाणं उप अस्थुः) स्तोत्र हमारे सेवा करने योग्य इंद्रकी उपासना करते हैं । (स्यः इंद्रः महित्वा रोदसी वि बाधिष्ट) यह इंद्र अपनी महत्त्वसे द्यावापृथिवीको व्यापता है । (इन्द्रः वृत्राणि अप्रति जघन्वान्) इंद्र वृत्रोंको अतुलनीय रीतिसे मारता है ॥ ३ ॥

[२१४] हे (इन्द्र) इंद्र ! (अपः चित्, स्तर्यः गावः न पिप्युः) जलप्रवाह, प्रसूत न हुई गायकी तरह, बढते जांयें । (ते जरितारः ऋतं नक्षन्) तेरे स्तोतागण यज्ञको व्यापते रहें, यज्ञ करें । (नियुतः, वायुः न, नः अच्छ याहि) घोडा वायुके समान हमारे पास शीघ्र आ जावे । अर्थात् इंद्र वेगसे धावे । (त्वं हि धीभिः वाजान् विदयसे) तू बुद्धियोंके साथ अन्नों और बलोंको देता है ॥ ४ ॥

[२१५] हे (इन्द्र) इंद्र ! (त्वा ते मदाः मादयन्तु) तुझे ये सोमरस आनन्द देवें । (जरित्रे शुष्मिणं तुविराधसं) तेरे उपासकको बलवान् और अनेक सिद्धि जिसको प्राप्त है ऐसा पुत्र हो । (हि देवत्रा एकः मर्तान् दयसे) देवोंमें एक ही तू देव मानवोंपर दया करता है । (अस्मिन् सवने हे शूर ! मादयस्व) इस यज्ञमें, हे शूर ! तू आनन्दित हो ॥ ५ ॥

[२१६] (वसिष्ठासः वज्रबाहुं वृषणं इंद्रं एव इत्) वसिष्ठ लोग वज्रके समान बाहुवाले बलवान् इंद्रको (अर्कैः अभि अर्चन्ति) स्तोत्रोंसे पूजते हैं । (सः स्तुतः वीरवत् गोमत् नः धातु) वह स्तुति करनेपर वीरोंसे और गौओंसे युक्त अन्न हमें देवे । (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) आप कल्याण करनेके साधनोंसे सदा हमें सुरक्षित रखो ॥ ६ ॥

भावार्थ— शोक या दुःखको दूर करनेके उपाय करने चाहिए । ईश्वरकी स्तुति शोकको दूर कर सकती है, इसलिए ईश्वरकी स्तुति करनी चाहिए । यह शोकको दूर करनेका उपाय है । अपनी आयु कितनी है, यह कोई भी नहीं जानता, पर वह यह अवश्य जान सकता है कि पापसे आयु क्षीण होती है, इसलिए मनुष्य स्वयंको पापसे बचाए ॥ २ ॥

यह प्रभु अपने सामर्थ्यसे द्यु और पृथिवी लोकको व्यापता है और अपने शत्रुओंको अप्रतिम रूपसे नष्ट करता है। ऐसे प्रभुकी स्तोत्रोंसे स्तुति करनी चाहिए ॥ ३ ॥

हे प्रभो ! जिस तरह अप्रसूत गायें अधिक पुष्ट होती हैं, उसी तरह जलसे पुष्ट अर्थात् जलसे भरी हुई नदियां बहती जाएं । उन नदियोंके प्रवाहके कारण अन्नादि पदार्थ उत्पन्न हों और उस अन्नसे लोग यज्ञ करते रहें । उन यज्ञोंसे तुझे प्रसन्न करके हम तुझसे बुद्धि और बलको प्राप्त करें ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! हमें ऐसा पुत्र प्रदान करो कि जो बलवान् हो और जिसे अनेक तरहकी कलायें और सिद्धियां प्राप्त हों तथा जिसके पास अनेक तरहके धन हों । पुत्र उत्तम शिक्षा प्राप्त करके अनेक सिद्धियां प्राप्त करे । यह प्रभु ही सब प्राणियोंपर दया करता है । प्राणियोंपर दया करनेवाला इस प्रभुके सिवाय और कोई नहीं है ॥ ५ ॥

×

[२४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२१७ योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
असो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥ १ ॥

२१८ गृभीतं ते मन इन्द्र द्विबर्हाः सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
विसृष्टधेना भरते सुवृक्ति- रियमिन्द्रं जोहुवती मनीषा ॥ २ ॥

२१९ आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषि- न्निदं बर्हिः सोमपेयाय याहि ।
वहन्तु त्वा हरयो मद्र्यञ्च- माङ्गूषमच्छा तवसं मदाय ॥ ३ ॥

---

[२७]

अर्थ— [२१७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते सदने योनिः अकारि) तेरे बैठनेके लिये यह स्थान बनाया है। हे (पुरुहूत) बहुतोंद्वारा सुपूजित इन्द्र ! (तं नृभिः आ प्र याहि) उस स्थानके प्रति तू अपने साथी नेताओंके साथ आ ! और (नः यथा अविता वृधे च असः) हमारा संरक्षक हो और हमारे संवर्धन करनेके लिये तू सिद्ध रह । (वसूनि च ददः) अनेक प्रकारके धन दे और (सोमैः ममदः च) हमने दिये सोमरससे आनन्दित हो ॥ १ ॥

[२१८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (द्विबर्हाः ते मनः गृभीतं) दोनों स्थूल और सूक्ष्म- स्थानोंमें रहनेवाले ऐसे तेरे मनको हमने अपनी ओर आकर्षित किया है । यहां (सोमः सुतः) सोमरस तैयार है । (मधूनि परिषिक्ता) शहद उसमें मिलाया है । (विसृष्टधेना इयं जोहुवती मनीषा सुवृक्तिः) मध्यम स्वरसे उच्चारी जानेवाली यह प्रार्थनारूप मननयोग्य स्तुति (इन्द्रं भरते) इन्द्रके लिये उच्चारी जाती है ॥ २ ॥

[२१९] हे (ऋजीषिन्) सोमपान करनेवाले इन्द्र ! (नः इदं बर्हिः) यह हमारा आसन है, इसपर बैठकर (सोमपेयाय) सोमपान करनेके लिये (दिवः पृथिव्याः आ याहि) द्युलोकसे अथवा पृथिवीके ऊपरसे, जहां तुम हो वहांसे आ । (तवसं मद्र्यञ्चं त्वा) बलवान् और मेरी ओर आनेवाले ऐसे तुझे (हरयः आंगूषं अच्छ मदाय वहन्तु) घोडे स्तोत्र पाठके स्थानके पास आनन्द लेनेके लिये तुझे सीधा ले आवें ॥ ३ ॥

भावार्थ— उत्तम आचरण करनेवाले ज्ञानी वज्रके समान बाहुओंवाले बलवान् इन्द्रको स्तोत्रोंसे पूजते हैं । वह वीरों तथा गौओंसे युक्त इन्द्र हमें वीरपुत्र तथा गाय आदि सम्पत्ति प्रदान करे, तथा उसकी कृपासे सभी देव हमारी रक्षा करें ॥६॥

हे इन्द्र ! यह स्थान तेरे बैठनेके लिए बनाया गया है, इसलिए तू अनेकोंसे पूजित होकर अपने सहयोगियोंके साथ हमारे पास आ । । यहां आकर तू हमारा संरक्षक होकर हमें बढानेके लिए तू हमेशा तैयार रह । हमें अनेक तरहके धन दे और हमारे दिए गए सोमरससे तू आनंदित हो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तू सूक्ष्म और स्थूल दोनों स्थानोंमें अर्थात् सर्वत्र व्यापक होकर रहता है । जिव्हा जिसमें शनैः शनैः प्रयुक्त की जाती है, अर्थात् मध्यम स्वरसे जिसका उच्चारण किया जाता है, वह मननीय उत्तम वचनोंवाली ईश्वर स्तुति है । यही मानवोंकी तारक है ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हमने तेरे लिए यह आसन बिछाया हुआ है, उसपर बैठकर सोमपान करनेके लिए तू जहां भी हो, वहांसे चला आ । ये तेरे घोडे भी, जहां तेरे लिए आनन्ददायक स्तुतियां चल रही हों, वहां तुझे ले आयें ॥ ३ ॥

२२० आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि ।
वरीवृजत् स्थविरेभिः सुशिप्रा ऽस्मे दधद् वृषणं शुष्ममिन्द्र ॥ ४ ॥
२२१ एष स्तोमो मह उग्राय वाहे धुरीऽइवात्यो न वाजयन्नधायि ।
इन्द्र त्वायमर्क ईट्टे वसूनां दिवीव द्यामधि नः श्रोमतं धाः ॥ ५ ॥
२२२ एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[२५]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२२३ आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत् समरन्त सेनाः ।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वो र्मा ते मनो विष्वद्र्यग्वि चारीत् ॥ १ ॥

अर्थ— [२२०] हे (हर्यश्व) उत्तम घोडोंको जोतनेवाले (सुशिप्र) उत्तम शिरस्त्राणवाले इंद्र ! (विश्वाभिः ऊतिभिः सजोषाः) संपूर्ण संरक्षणके साधनोंसे युक्त रहनेवाला तू (स्थविरेभिः वरीवृजत्) युद्धनिपुण श्रेष्ठ वीरोंके साथ रहकर शत्रुका नाश करता है । (अस्मे वृषणं शुष्मं दधत्) हमें बलवान् सामर्थ्यशाली पुत्रको देता है । ऐसा तू (ब्रह्म जुषाणः नः आ याहि) स्तोत्रको सुननेके लिये हमारे पास आ ॥ ४ ॥

[२२१] (महे उग्राय वाहे) महान् वीर विश्वके संचालक इन्द्रके लिये, (धुरि इव अत्यः न) रथकी धुरामें घोडे जोतनेके समान, (वाजयन् एष स्तोमः अधायि) बल प्रकट करनेवाला यह स्तोत्र किया है । हे इन्द्र ! (त्वा अयं अर्कः वसूनां ईट्टे) तेरे पास यह स्तोता धनोंको मांगता है । वह तू (नः दिवि इव श्रोमतं अधि धाः) हमारे लिये द्युलोकमें भी यशस्वी धन या पुत्र दे ॥ ५ ॥

[२२२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः एव वार्यस्य पूर्धि) हमें संरक्षणीय धनसे परिपूर्ण कर । भरपूर धन दे डाल । (ते महीं सुमतिं प्र वेविदाम) तेरी महनीय सुमति हम सब प्राप्त करें । (मघवद्भ्यः सुवीरां इषं पिन्व) हम धनवालोंके लिये वीर युक्त धन दे डाल । (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) आप कल्याणोंके साथ सदा हमें सुरक्षित रखिये ॥ ६ ॥

[२५]

[२२३] हे (उग्र इन्द्र) उग्र इन्द्र ! (यत् समन्यवः सेनाः समरन्त) जब उत्साहयुक्त सेना युद्ध करती है तब (महः नर्यस्य ते बाह्वोः दिद्युत्) मानवोंका हित करनेवाले ऐसे तेरे बडे बाहुओंमें रहा शस्त्र (ऊती पताति) हमारी सुरक्षा करनेके लिये शत्रुपर गिरे । तेरा (विष्वद्र्यक् मनः) सर्वत्रगामी मन (मा विचारीत्) इधर उधर न जाय, वह हमारे हितके कार्यमें ही लग जाय ॥ १ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! संपूर्ण सुरक्षाके साधनोंसे युक्त तू युद्धमें निपुण श्रेष्ठ वीरोंके साथ रहकर तू शत्रुओंका नाश कर और हमें बलवान् और सामर्थ्यशाली पुत्र प्रदान कर । पुत्र निर्बल और निस्तेज न हो अपितु सामर्थ्यवान् हो । वीर युद्धकार्में निपुण और संपूर्ण संरक्षणकी शक्तियोंसे युक्त रहे ॥ ४ ॥

यह ऋषियोंका काव्य बडे और उग्रवीरके प्रभावका वर्णन करनेवाला है । हे इन्द्र ! तेरा यह स्तोता तुझसे धनोंको मांगता है, इसलिए तू तेजस्वी धन और पुत्र प्रदान कर ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! हमें संरक्षणके योग्य भरपूर धन दे । तेरे आशीर्वादसे युक्त होकर हम आगे बढें । उत्तम वीर जिसके साथ रहते हैं, वह धन हमें मिले । तेरे अलावा सभी देव भी अपने संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर हमारी रक्षा करते रहें ॥ ६ ॥

२२४ नि दुर्ग इन्द्र श्नथिह्यमित्राँ अभि ये नो मर्तासो अमन्ति ।
आरे तं शंसं कृणुहि निनित्सो रा नो भर संभरणं वसूनाम् ॥ २ ॥
२२५ शतं ते शिप्रिन्नूतयः सुदासे सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु ।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्याऽस्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि ॥ ३ ॥
२२६ त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्रँ ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः ॥ ४ ॥

अर्थ— [२२४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (दुर्गे ये मर्तासः अभि) युद्धमें जो शत्रुके मानव वीर हमारे सन्मुख खडे रहकर (नः अमन्ति) हमारा पराभव करना चाहते हैं, उन (अमित्रान् निश्नथिहि) शत्रुओंका नाश कर। तथा (निनित्सोः तं शंसं आरे कृणुहि) निंदा करनेवाले शत्रुके उस प्रलापको दूर कर और (नः वसूनां संभरणं आ, भर) हमारे पास धनोंको भरपूर ले आओ ॥ २ ॥

[२२५] हे (शिप्रिन्) शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्र ! (ते शतं ऊतयः सुदासे) तेरी सैंकडों प्रकारकी संरक्षणकी साधनें हमारे जैसे तेरे उत्तम भक्तके संरक्षणके लिये रहें। तथा (सहस्रं शंसाः सन्तु) हजारों प्रशंसाएं हों। तथा (उत रातिः) वैसा दान भी हो। (वनुषः मर्त्यस्य वधः जहि) हिंसक शत्रुके मनुष्यके वधकारी शस्त्रको विनष्ट कर। और (अस्मे द्युम्नं रत्नं च अधि धेहि) हमें तेजस्वी रत्न दो ॥ ३ ॥

[२२६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वावतः क्रत्वे अस्मि हि) तेरे अनुकूल कर्ममें ही मैं दत्तचित्त रहता हूं। हे (शूर) शूर ! (अवितुः त्वावतः रातौ) तेरे अनुकूल रहकर संरक्षण करनेवालेके दान मुझे मिलें। हे (तविषीवः उग्र) बलवान् उग्र वीर ! (विश्वा अहानि ओकः कृणुष्व) सब दिनोंमें हमारा घर अपना ही घर कर, हमारे पास रहो। हे (हरिवः) उत्तम घोडोंवाले वीर (न मर्धीः) हमारा नाश न कर ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जब हमारी उत्साही सेना युद्ध करती है, तब तेरा वह अस्त्र मानवोंका अहित करनेवाले शत्रुओंपर ही गिरे। मानवोंके हित करनेका यत्न करनेवाले महान् वीरका तेजस्वी शस्त्र मानवोंका हित करनेके लिए ही शत्रुपर गिरे। इधर उधर जानेवाले वीरका मन मानवोंके हितके कार्यको छोडकर इधर उधर न भटके। उसका मन मानवोंकी रक्षाके कर्तव्यमें व्यस्त और स्थिर रहे ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! युद्धमें सामने आकर जो हमारा नाश करना चाहते हैं, उनका तू नाश कर। शत्रुओंके निन्दा भरे शब्द सुनने नहीं चाहिए। इसलिए दूसरोंकी निन्दा स्वयं करने तथा दूसरेसे करवानेके पापमय कर्मसे मनुष्य सदा दूर रहे। जो दूसरोंकी विनाकारण निन्दा करता हो, उस मनुष्यको सदा दूर रखना चाहिए। इस प्रकार मनुष्य सद्गुणोंसे युक्त होकर हर तरहसे समृद्ध हो ॥ २ ॥

उत्तम दाता भक्तके संरक्षणके लिए हजारों प्रशंसाके योग्य संरक्षक साधन सदा तैय्यार रहें। जो सज्जन और दाता मनुष्य हों उन्हें ही धन प्राप्त हो और उन्हें ही हर तरहके सुखसाधन प्राप्त हों। घात करनेवाले शत्रु जो हमारे प्रति शस्त्रका प्रयोग करें, उनका भी नाश हो। और हमें तेजस्वी अर्थात् चमकीले रत्न प्राप्त हों ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! मैं सर्वदा ऐसे ही कर्म करनेमें लगा रहूं कि जो तेरे अनुकूल हों। इस प्रकार तेरे अनुकूल रहकर मैं ऐश्वर्य प्राप्त करूं। तू भी हमारे घरोंको अपना ही घर समझकर सदा सर्वदा हमारे पास ही रह, कभी हमारा नाश मत कर। उस प्रभुका आशीर्वाद प्राप्त करनेके लिए हमेशा उसके अनुकूल कार्य करते रहें। वह प्रभु हमारे पास सदा रहे। वह भी प्रभु हमें सदा देखता रहता है, यह सोचकर सदा उत्तम कर्म ही करते रहें ॥ ४ ॥

२२७ कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषमिन्द्रे सहो देवजूतमियानाः ।
सत्रा कृधि सुहना शूर वृत्रा वयं तरुत्राः सनुयाम वाजम् ॥ ५ ॥
२२८ एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[२६]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२२९ न सोम इन्द्रमसुतो ममाद नाब्रह्माणो मघवानं सुतासः ।
तस्मा उक्थं जनये यज्जुजोषन्नृवन्नवीयः शृणवद्यथा नः ॥ १ ॥
२३० उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मघवानं सुतासः ।
यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः समानदक्षा अवसे हवन्ते ॥ २ ॥

अर्थ— [२२७] (एते वयं हर्यश्वाय शूषं कुत्साः) ये हम सब उत्तम घोडे पास रखनेवाले इन्द्रके लिये सूक्त कर स्तोत्र करते हैं । (इन्द्रे देवजूतं सहः इयानाः) इन्द्रके पाससे देवों द्वारा सेवित बल प्राप्त करनेकी इच्छा हम करते हैं । (तरुत्रा वाजं सनुयाम) दुःखसे पार होनेवाले हम बलको प्राप्त करेंगे । हे शूर ! (वृत्रा सत्रा सुहना कृधि) शत्रुओंको सदा सहज रीतिसे वधके योग्य करो । शत्रुओंका वध सहज ही हो जावे ऐसा कर ॥ ५ ॥

[२२८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः एव वार्यस्य पूर्धि) हमें संरक्षणीय धनसे परिपूर्ण कर । (ते महीं सुमतिं प्र वेविदाम) तेरी स्पृहणीय उत्तम बुद्धि हम प्राप्त करें । (मघवद्भ्यः सुवीरां इषं पिन्व) हम धनवानोंके लिए वीरतायुक्त धन दे । (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याणकारी साधनोंसे हमें सदा सुरक्षित रखो ॥ ६ ॥

[२६]

[२२९] (मघवानं इन्द्रं असुतः सोमः न ममाद) धनवान् इन्द्रके लिये जो सोमरस निचोडा नहीं वह सोम आनंद नहीं देता । (सुतासः अब्रह्माणः न) रस निकालनेपर जो स्तोत्र पाठ रहित होता है वह सोम भी आनंद नहीं देता । (नः यत् उक्थं) हमारा जो सूक्त इन्द्र (जुजोषत्) स्वीकार करेगा (यथा नृवत् शृणवत्) और मनुष्योंसे बैठकर सुनेगा वैसा (नवीयः उक्थं तस्मै जनये) नवीन स्तोत्र उस वीरके लिये मैं बनाता हूं ॥ १ ॥

[२३०] (उक्थे उक्थे सोमः इंद्रं ममाद) प्रत्येक स्तोत्रमें सोम इंद्रको आनंद देता है । (सुतासः नीथे नीथे मघवानं) सोमरस प्रत्येक प्रार्थनाके मंत्रमें धनवान् इंद्रकी प्रशंसा गाते हैं, (पुत्राः पितरं न) पुत्र जैसे पिताको बुलाते हैं उस तरह (सबाधः समानदक्षाः ईं अवसे हवन्ते) इकट्ठे मिले समानतया दक्ष रहनेवाले लोग अपनी सुरक्षाके लिये इंद्रको बुलाते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— घोडोंका उत्तम रीतिसे पालन करनेवाले शूरकी प्रशंसामें हम काव्यका गायन करें । देव भी जिसकी प्रशंसा करें, वैसा बल हमें प्राप्त हो । सज्जनोंके द्वारा प्रशंसनीय बल हम प्राप्त करें । दुःखोंसे पार होकर हम बल, अन्न तथा सुख प्राप्त करें । इस प्रकार हम अपना बल इतना बढायें कि शत्रुओंका नाश सहज ही में हो सके ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! हमें संरक्षणके योग्य भरपूर धन दे । तेरे आशीर्वादसे युक्त होकर हम आगे बढें । उत्तम वीर जिसके साथ रहते हैं, वह धन हमें मिले । तेरे अलावा सभी देव भी अपने संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर हमारी रक्षा करते रहें ॥६॥

सोमरस इन्द्रके लिए निकाला जाए, उसे अर्पण किया जाए । स्तोत्रपाठसे जो पवित्र हुआ होता है, वही सोम सदा आनन्द देता है । हम भी ऐसे स्तोत्रोंका पाठ करें जो वीरोंको प्रिय लगे और वे सभामें बैठकर हमारे स्तोत्रोंको ध्यानसे सुनें ॥ १ ॥

स्तोत्रोंके उच्चारणके साथ तैय्यार किया गया सोमका हरएक पात्र इन्द्रको आनन्द देनेवाला होता है। प्रत्येक स्तोत्रमें धनवान् इन्द्रकी प्रशंसा होती है । जिस तरह पुत्र अपने पिताको बुलाते हैं, उसी तरह लोग अपनी सुरक्षाके लिए इन्द्रको बुलाते हैं ॥ २ ॥

२३१ चकार ता कृणवन्नूनमन्या यानि ब्रुवन्ति वेधसः सुतेषु ।
जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वाः ॥ ३ ॥

२३२ एवा तमाहुरुत शृण्व इन्द्र एको विभक्ता तरणिर्मघानाम् ।
मिथस्तुर ऊतयो यस्य पूर्वीरस्मे भद्राणि सश्चत प्रियाणि ॥ ४ ॥

२३३ एवा वसिष्ठ इन्द्रमूतये नॄन् कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति ।
सहस्रिण उप नो माहि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[२७]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२३४ इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत् पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता शवसश्चकान आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥ १ ॥

अर्थ- [२३१] (वेधसः सुतेषु यानि ब्रुवन्ति) स्तोत्र पाठ करनेवाले सोमरस निकालनेके समय जिन इंद्रके कर्मोंका वर्णन करते हैं, (ता नूनं चकार) वे कर्म निश्चय ही इंद्रने पूर्व समयमें किये थे, (कृणवत् अन्या) दूसरे कर्म वह अब भी करता है। वही इंद्र (सर्वाः पुरः) शत्रुके सब नगरोंको (समानः एकः) समवृत्तिसे अकेला-दूसरेकी सहायता न लेता हुआ ही (पतिः जनीः इव) पति अपनी पत्नियोंको वश करता है वैसा ही वह इन्द्र (सु नि मामृजे) उनको अपने वशमें करता है ॥ ३ ॥

[२३२] (यस्य मिथस्तुरः पूर्वीः ऊतयः) जिस इन्द्रके पास परस्पर मिले जुले अनेक अपूर्व रक्षासाधन हैं, (तं एव आहुः) उसीका सब वर्णन करते हैं, (उत शृण्वे) और सुनते हैं कि (एकः इन्द्रः मघानां विभक्ता तरणिः) वही एक इन्द्र धनोंका दाता है और सबका तारक भी है। उसकी कृपासे (अस्मे) हमें (प्रियाणि भद्राणि सश्चत) प्रिय कल्याण हमें प्राप्त हों ॥ ४ ॥

[२३३] (वसिष्ठः नॄन् कृष्टीनां ऊतये) वसिष्ठ मानवोंकी सुरक्षा करनेके लिये (वृषभं इन्द्रं एव) बलवान् इन्द्रका ही (सुते गृणाति) यज्ञमें वर्णन करता है। स्तोत्र गाता है। हे इन्द्र ! (नः सहस्रिणः वाजान् उप माहि) हमें सहस्रों प्रकारके अन्न बल तथा धन दे डालो। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेवाले रक्षा साधनोंसे सुरक्षित करो ॥ ५ ॥

[२७]

[२३४] (यत् ताः पार्याः धियः युनजते) जब संकटोंसे बचनेके लिये बुद्धि युक्त कर्म किये जाते हैं तब (नरः नेमधिताः इन्द्रं हवन्ते) नेता लोग युद्धके समय इन्द्रको ही बुलाते हैं। यह (त्वं शूरः नृषाता) तू शूर और मनुष्योंको धन देनेवाला (शवसः चकानः) तथा बल चाहनेवाला (गोमति व्रजे त्वं नः आ भज) गौओंके स्थानमें तू हमें पहुंचाओ ॥ १ ॥

भावार्थ- सोमरस तय्यार करते समय होता इन्द्रके जिन गुणोंका वर्णन करते हैं, वे कर्म इन्द्र पहले कर चुका होता है तथा भविष्यमें भी वह ऐसे ही अनेक कर्मोंको करेगा। इन्द्र शत्रुओंकी सब नगरियोंपर अकेला ही कब्जा जमाता है ॥ ३ ॥

इन्द्रके सुरक्षाके साधन परस्पर संयुक्त है और शीघ्रतासे लोगोंकी रक्षा करनेवाले हैं। वह एक ही वीर धनोंका यथायोग्य रीतिसे विभाग करके सबको देता है और सबकी सुरक्षा करता है। हमें भी उसकी कृपासे प्रिय और कल्याणकारी सुख मिले ॥ ४ ॥

होतागण बलवान् इन्द्रकी इसलिए प्रशंसा गाते हैं कि वह मानवों और नेताओंकी सुरक्षा करे। वह हजारों तरहके अन्न और धन देवे। जो हमें धन, अन्न और बल बढानेमें सहायक हों, उसकी हम प्रशंसा करें ॥ ५ ॥

ज्ञानीजन संकटके आनेपर उससे पार होनेके लिए बुद्धिपूर्वक यत्न करते हैं और प्रभु इन्द्रकी कृपा भी प्राप्त करते हैं। नेताको चाहिए कि वह मनुष्योंको उसकी योग्यताके अनुसार धन प्रदान करे ॥ १ ॥

२३५ य इन्द्र शुष्मो मघवन् ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः ।
त्वं हि दृळ्हा मघवन् विचेता अपा वृधि परिवृतं न राधः ॥ २ ॥
२३६ इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ ३ ॥
२३७ नू चिन्न इन्द्रो मघवा सहूती दानो वाजं नि यमते न ऊती ।
अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः ॥ ४ ॥
२३८ नू इन्द्र राये वरिवस्कृधी न आ ते मनो ववृत्याम मघाय ।
गोमदश्वावद् रथवद् व्यन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

अर्थ— [२३५] हे (पुरुहूत मघवन् इंद्र) बहुतों द्वारा प्रार्थित धनवान् इंद्र ! (ते यः शुष्मः अस्ति) तेरा जो बल है उसको तू (सखिभ्यः नृभ्यः शिक्ष) एक विचारसे कार्य करनेवाले मनुष्योंको दे । हे (मघवन्) धनवान् इंद्र! (त्वं हि दृळ्हा) तू सुदृढ किलोंको भी तोड देता है इस लिये वह तू (विचेताः परिवृतं राधः) विशेष ज्ञानी गुप्त धनको भी (न अपवृधि) निःसंदेह हमारे लिये प्रकट कर ॥ २ ॥

[२३६] (जगतः चर्षणीनां इन्द्रः राजा) जंगम और मानव इन सबका इन्द्र ही एकमात्र राजा है । (अधि क्षमि यत् विषुरूपं अस्ति) इस पृथिवीपर जो नाना प्रकारके रूपोंवाला जो भी कुछ है, उसका भी वही राजा है । (ततः दाशुषे वसूनि ददाति) इस लिये वह दाताको धन देता है । वह (उपस्तुतः चित्) स्तुति करनेपर (राधः अर्वाक् चोदत्) धनको हमारे समीप प्रेरित करता है ॥ ३ ॥

[२३७] (मघवा दानः इन्द्रः) धनवान् दाता इन्द्र (नः सहूती नः ऊती वाजं नूचित् नियमते) हमारे बुलानेपर हमारी सुरक्षाके लिये शीघ्र ही हमें बल देता रहे । (यस्य अनूना अभि वीता दक्षिणा) जिसका संपूर्ण प्राप्त दान (सखिभ्यः नृभ्यः वामं पीपाय) एक विचारसे कार्य करनेवाले नेताओंके लिये धन दुहता है, देता है ॥ ४ ॥

[२३८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः राये नु वरिवः कृधि) हमारे ऐश्वर्यवृद्धिके लिये तू सत्वर ही धन दे, धन निर्माण कर । हम (ते मनः मघाय आ ववृत्याम) तेरे मनको धनके दानके लिये प्रवृत्त करते हैं। (गोमत् अश्ववत् रथवत् व्यन्तः) गौवों, घोडों और रथोंके साथ रहनेवाला धन तुम्हारे पास है, उसका तू दाता है (स्वस्तिभिः यूयं सदा नः पात) अपने कल्याणकारक साधनोंसे तुम सदा हमारी सुरक्षा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जो सामर्थ्य तुझमें है, उसे तू अपने समान विचारवाले नेताओंको प्रदान कर । तू मनुष्योंको संगठित कर । तू जिस सामर्थ्यसे शत्रुओंके किलोंको तोडता है, उस अपने सामर्थ्यको ज्ञानियोंके लिए प्रदान कर ॥ २ ॥

इस पृथ्वीपर जितने कुरूप या सुरूप पदार्थ और मनुष्य हैं, उन सबमें वह प्रभु इन्द्र वास करता है । सभी स्थावर और जंगम जगत्का भी वही एकमात्र स्वामी है । वह दाताके लिए अनेक तरहके धन देता है । जो उदार चरित हैं, उन्हें प्रभु हरतरहकी समृद्धि प्रदान करता है ॥ ३ ॥

दाता धनपति हमारी प्रार्थनापर हम सबकी सुरक्षा करनेके लिए हमें बल प्रदान करे अर्थात् धनपति अपनी सुरक्षाके लिए वीरोंको धन दे और उस धनसे वे वीर संगठन करके उस धनपतिकी रक्षा करें ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! हमारे ऐश्वर्योंकी अभिवृद्धि कर । हमें श्रेष्ठ धन दे । श्रेष्ठ साधनोंसे प्राप्त हुआ धन ही श्रेष्ठ धन कहाता है । ऐसे धनको प्राप्त करनेके लिए हम तेरे मनको अपनी ओर आकर्षित करें ॥ ५ ॥

[२८]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२३९ ब्रह्मा॑ ण इन्द्रोप॑ याहि वि॒द्वान॒र्वाञ्च॑स्ते॒ हर॑यः सन्तु यु॒क्ताः ।
विश्वे॑ चि॒द्धि त्वा॑ वि॒हव॑न्त॒ मर्ता॑ अ॒स्माक॒मिच्छृ॑णुहि विश्वमिन्व ॥ १ ॥

२४० हवं॑ त इन्द्र महि॒मा व्या॑न॒ड् ब्रह्म॒ यत् पासि॑ शवसि॒न्नृषी॑णाम् ।
आ यद् वज्रं॑ दधि॒षे हस्ते॑ उग्र घो॒रः सन् क्रत्वा॑ जनिष्ठा॒ अषा॑ळ्हः ॥ २ ॥

२४१ तव॒ प्रणी॑तीन्द्र॒ जोहु॑वाना॒न् त्सं यन्नॄन् न रोद॑सी नि॒नेथ॑ ।
म॒हे क्ष॒त्राय॒ शव॑से॒ हि ज॒ज्ञेऽतू॑तुजिं चि॒त् तूतु॑जिरशिश्नत् ॥ ३ ॥

---

[२८]

अर्थ— [२३९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (विद्वान् नः ब्रह्म उपयाहि) सब जाननेवाला तू हमारे स्तोत्र पाठके पास आ । (ते हरयः अर्वांचः युक्ताः सन्तु) तेरे घोडे हमारी ओर आनेके लिये ही जोते हुए हों । हे (विश्वमिन्व) विश्वको संतोष देनेवाले वीर ! (त्वा विश्वे मर्ताः चित् इ विहवन्त) तुझे सारे मनुष्य पृथक् पृथक् बुलाते हैं । तथापि तू (अस्माकं हवं श्रृणुहि) हमारी प्रार्थना सुन ॥ १ ॥

[२४०] हे (शवसिन् इन्द्र) बलवान् इन्द्र ! (यत् ऋषीणां ब्रह्म पासि) जब ऋषियोंका स्तोत्र तुम सुरक्षित रखते हो, तब (ते महिमा वि आनट्) तुम्हारी महिमा उसमें व्याप्त होती है । हे (उग्र) शूर वीर ! (यत् हस्ते वज्रं आ दधिषे) जब तुम हाथमें वज्रको धारण करते हो, तब (घोरः सन् क्रत्वा अषाळ्हः जनिष्ठाः) तुम भयंकर शूर बनकर अपने युद्धरूप कर्मसे अपराजित होते हो ॥ २ ॥

[२४१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् तव प्रणीती जोहुवानान्) जब तुम अपनी नेतृत्वकी पद्धतिके अनुसार स्तोत्र पाठ करनेवाले (नॄन् रोदसी सं निनेथ) मानवोंको द्युलोकसे पृथिवीतक सुप्रतिष्ठित करते हो, तब तुम (महे क्षत्राय शवसे जज्ञे) महान् क्षात्र कर्म तथा बलके कार्य करनेके लिये ही उत्पन्न हुए हो (हि) यह यह निःसंदेह ही है । (अतूतुजिं तूतुजिः चित् अशिश्नत) अदाताको दाता पराजित करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू सर्वज्ञ होनेके कारण हमारे मनोरथोंको जान और उनको पूरा करनेके लिए हमारे पास आ । तू सब विश्वको तृप्त करके उसे सन्तोष प्रदान करता है । इस लिए संसारके सभी प्राणी तुझे बुलाते हैं, तो भी तू हमारी प्रार्थना ध्यान देकर सुन ॥ १ ॥

इन्द्र अपनी महिमासे ऋषियोंके काव्योंकी सुरक्षा करता है और अपने हाथोंमें वज्र धारण करके दृढतम शत्रुओंको भी पराजित करता है । जिन काव्योंमें वीरोंकी वीरताका वर्णन है, वे काव्य सुरक्षित रहें । ऐसे वीर शस्त्रास्त्रोंको धारण करके ऐसा पराक्रम दिखाएं कि वे पराक्रम शत्रुओंके लिए असह्य हो जाए ॥ २ ॥

जो प्रभुकी आज्ञाके अनुकूल होकर चलता है, उसकी सर्वत्र प्रतिष्ठा होती है । ऐसे प्रतिष्ठित वीरपुरुष बल और शौर्यके महान् कार्य करनेके लिए ही उत्पन्न होते हैं । उदार और कंजूसोंमें कंजूस हमेशा पीछे ही रह जाता है । विश्वमें दाताका यश फैलता है और कंजूस अप्रतिष्ठित होता है ॥ ३ ॥

२४२ एभिर्न इन्द्राहभिर्दशस्य दुर्मित्रासो हि क्षितयः पवन्ते ।
प्रति यच्चष्टे अनृतमनेना अव द्विता वरुणो मायी नः सात् ॥ ४ ॥
२४३ वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद् ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[२९]

(ऋषिः- ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२४४ अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः ।
पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियानः ॥ १ ॥
२४५ ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम् ।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः ॥ २ ॥

अर्थ— [२४२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (दुर्मित्रासः क्षितयः पवन्ते) जो दुष्ट मनुष्य हम लोगोंपर हमला करते हैं, (एभिः अहभिः नः दशस्य) उनको इन अच्छे दिनोंके साथ हमारे अधीन करो । (अनेनाः मायी वरुणः) निष्पाप कुशल वरुण (यत् अनृतं प्रति चष्टे) जो असत्य हमारे अन्दर देखेगा वह (द्विता अव सात्) द्विधा होकर हमसे दूर हो जाय ॥ ४ ॥

[२४३] (यत् महः राधसः रायः नः ददत्) जो बडे सिद्धिप्रद धनका हमें दान करता है (यः अर्चतः ब्रह्मकृतिं अविष्ठः) जो स्तोताके स्तोत्ररूप कृतिका संरक्षण करता है (एनं मघवानं इन्द्रं इत् वोचेम) उस धनवान् इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारी सुरक्षा उत्तम कल्याणोंके साथ करो ॥ ५ ॥

[२९]

[२४४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (तुभ्यं अयं सोमः सुन्वे) तेरे लिये यह सोमरस निकालते हैं। हे (हरिवः) उत्तम घोडे रथको जोतनेवाले इन्द्र ! (तदोकाः तु आ प्रयाहि) उस स्थानपर तू सत्वर आ । (अस्य सुसुतस्य चारोः तु पिब) इस उत्तम सुन्दर रसका पान कर। हे (मघवन्) धनवान् ! (इयानः मघानि ददः) उपासना करनेपर धनोंका प्रदान कर ॥ १ ॥

[२४५] हे (ब्रह्मन् वीर) ज्ञानी वीर ! (ब्रह्मकृतिं जुषाणः) ज्ञानपूर्वककी हुई इस कृतिका-स्तुतिका सेवन करके (अर्वाचीनः हरिभिः तूयं याहि) हमारी ओर मुख करके घोडोंके साथ सत्वर हमारे पास आ । (अस्मिन् सवने सु मादयस्व) इस सोमसेवनसे आनंदित हो । (नः इमा ब्रह्माणि उप शृणवः) और हमारे ये स्तोत्र श्रवण कर ॥ २ ॥

भावार्थ— जब सज्जनोंपर दुष्टजन मित्रताका छत्ररूप बनाकर आक्रमण करें, तब उन दुष्टोंका निर्मन्त्रण करना चाहिए और सज्जनोंको उत्तम अवसर प्रदान करना चाहिए । इस नियमनका अधिकारी निष्पाप, उत्तम कर्म करनेमें प्रवीण और श्रेष्ठ हो । वह जो असत्य देखे, उसे वह दूर करे ॥ ४ ॥

जो अनेक तरहकी सिद्धियां प्रदान करनेवाले धन हमें देता है, जो स्तोताके स्तोत्ररूप काव्योंकी सुरक्षा करता है, उस धनवान् इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं । इन्द्रकी कृपासे अन्य देव भी हमारी हर तरहसे रक्षा करें ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तेरे लिए यह सोमरस निचोडा गया है। इस लिए सोम निचोडनेके स्थानपर तू शीघ्र जा । और उस उत्तम रसका पान कर तथा प्रसन्न होकर उपासकको उत्तम धन प्रदान कर ॥ १ ॥

२४६ का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन् दाशेम ।
विश्वा मतीरा ततने त्वायाऽधा म इन्द्र शृणवो हवेमा ॥ ३ ॥
२४७ उतो घा ते पुरुष्या इदासन् येषां पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणाम् ।
अधाहं त्वा मघवञ्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेव ॥ ४ ॥
२४८ वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद् ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[३०]

(ऋषिः— ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवताः — इन्द्रः । छन्दः— त्रिष्टुप् ।)

२४९ आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन् भवा वृध इन्द्र रायो अस्य ।
महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर ॥ १ ॥

अर्थ— [२४६] (सूक्तैः ते अरंकृतिः का अस्ति) इन सूक्तोंसे तुम्हारी शोभा कैसी हो रही है । हे (मघवन्) धनपते ! (कदा ते नूनं दाशेम) कब तुझे हम सचमुच प्रसन्न करें ? (त्वाया विश्वा मतीः आततने) तेरे लिये ही ये स्तुतियां मैं करता हूं । हे इन्द्र ! (अध मे इमा हवा शृणवः) और मेरे ये स्तोत्र श्रवण कर ॥ ३ ॥

[२४७] हे (मघवन्) धनपते ! (उत येषां पूर्वेषां ऋषीणां) और जिन प्राचीन ऋषीयोंकी स्तुतियां (अशृणोः) तुमने सुनी थीं, (ते पुरुष्याः इत् आसन्) वे ऋषि मनुष्योंका हित करनेवाले थे । (अध अहं त्वा जोहवीमि) अतः मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं, हे इन्द्र ! (त्वं नः पिता इव प्रमतिः असि) तुम हमारे पिता जैसे उत्तम बुद्धिदाता हो ॥ ४ ॥

[२४८] (यत् महः राधसः रायः नः ददत्) जो बडे सिद्धिप्रद धनका दान हमें करता है, (यः अर्चतः ब्रह्मकृतिं अविष्ठः) जो स्तोताके स्तोत्ररूप कृतिका संरक्षण करता है, (एनं मघवानं इन्द्रं इत् वोचेम) उस धनवान् इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं, (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारी सुरक्षा उत्तम कल्याणोंसे करो ॥ ५ ॥

[३०]

[२४९] हे (देव शुष्मिन् इन्द्र) प्रकाशमान् बलशाली इन्द्र ! (शवसा नः आयाहि) बलके साथ हमारे पास आ । (अस्य रायः वृधः भव) इस धनको बढानेवाला बन । हे (नृपते सुवज्र) मनुष्योंके पालनकर्ता उत्तम वज्रधारी इन्द्र ! (महे नृम्ण) बडे बलको बढानेवाला बन । हे (शूर) शूर ! (महि क्षत्राय पौंस्याय) बडे क्षात्र सामर्थ्य और विशाल पौरुषके बढानेवाले बनो ॥ १ ॥

भावार्थ— हे ज्ञानी वीर इन्द्र ! ज्ञानपूर्वक की गई इस स्तुतिका सेवन करके अपने घोडोंपर बैठकरके हमारी ओर आ । तू इस सोमयागसे आनन्दित हो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हमारे द्वारा की गई इन स्तुतियोंसे तेरी शोभा बढती हैं, इस लिए तू हमारे द्वारा की गई इन स्तुतियोंको सुन ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! प्राचीनकालमें जिन ऋषियोंकी स्तुति तुमने सुनी, वे ऋषि मनुष्योंका हित करनेवाले थे । मैं भी तेरी स्तुति करता हूँ, क्योंकि तू ही हमारा पिता और हमें उत्तम बुद्धिको देनेवाला है ॥ ४ ॥

जो अनेक तरहकी सिद्धियां प्रदान करनेवाले धन हमें देता है, जो स्तोताके स्तोत्ररूप काव्योंकी सुरक्षा करता है, उस धनवान् इन्द्रकी हम सुरक्षा करते हैं । उस इन्द्रकी कृपासे अन्य देव भी हमारी रक्षा करें ॥ ५ ॥

२५० हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ ।
त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु । ॥ २ ॥
२५१ अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान् दधो यत् केतुमुपमं समत्सु ।
न्य१ग्निः सीददसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान् ॥ ३ ॥
२५२ वयं ते त इन्द्र ये च देव स्तवन्त शूर ददतो मघानि ।
यच्छा सूरिभ्य उपमं वरूथं स्वाभुवो जरणामश्नवन्त ॥ ४ ॥
२५३ वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद् ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

अर्थ— [२५०] (हव्यं त्वा विवाचि ऊं हवन्ते) प्रार्थना करने योग्य ऐसे तुम्हारी प्रार्थना विवादयुद्धमें लोग करते हैं । (शूराः सूर्यस्य सातौ तनुषु) शूर लोग सूर्यकी प्राप्ति दीर्घ कालतक शरीरोंमें हो अर्थात् सूर्यसे शरीरमें दीर्घायु प्राप्त हो इस लिये तुम्हारी प्रार्थना करते हैं । (विश्वेषु जनेषु त्वं सेन्यः) सब लोगोंमें तुम ही सेनाके लिये सुयोग्य संचालक हो । (त्वं सुहन्तु वृत्राणि रन्धय) तू उत्तम नाशक शस्त्रसे घेरनेवाले शत्रुओंका विनाश कर ॥ २ ॥

[२५१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् अहा सुदिना व्युच्छान्) जब दिन अच्छे आयेंगे, (यत् समत्सु केतुं उपमं दधः) जब युद्धोंके संबंधका ज्ञान हमें तुम दोगे, हमें युद्धका कौशल प्राप्त होगा, तब (असुरः होता अग्निः) समर्थ और विबुधोंको बुलानेवाला अग्नि (सुभगाय) हमारे सौभाग्य वर्धनके लिये (देवान् हुवानः) विबुधोंको बुलाता हुआ, (अत्र नि सीदत्) यहां इस यज्ञमें प्रदीप्त होकर बैठे ॥ ३ ॥

[२५२] हे (शूर इन्द्र) शूर इन्द्र देव ! (ते वयं) तुम्हारे ही हम हैं । (ये मघानि ददतः स्तवन्तः) जो धनका दान करते और तुम्हारी स्तुति करते हैं उन (सूरिभ्यः उपमं वरूथं यच्छ) विद्वानोंके लिये श्रेष्ठ धन दे दो । वे (स्वाभुवः जरणां अश्नवंत) उत्तम ऐश्वर्यवाले होकर वृद्धावस्थाका भोग करें ॥ ४ ॥

[२५३] (यत् महः राधसः रायः नः ददत्) जो बडे सिद्धिप्रद धनका हमें दान करता है, (यः अर्चतः ब्रह्मकृतिं अविष्ठः) जो स्तोताके स्तोत्ररूप कृतिका संरक्षण करता है, (एनं मघवानं इन्द्रं) इस धनवान् इन्द्रकी हम (इत् वोचेम) प्रशंसा करते हैं । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारी सुरक्षा उत्तम कल्याणोंके साथ करो ॥ ५ ॥

भावार्थ— प्रकाशमान् तेजस्वी, बलवान् उत्तम शस्त्रधारी, शूरवीर और शत्रुनाशक ऐसा मनुष्य ही मनुष्योंका राजा हो । राजा और राजपुरुषोंमें ये गुण हों । यह राजा अपनी शक्तिपूर्वक अपने कर्तव्य कर्मोंको करता रहे तथा अपने राष्ट्रके ऐश्वर्यको बढावे । अपने राष्ट्रके सामर्थ्य, बल तथा पौरुषको बढावे ॥ १ ॥

युद्धके समय शूर पुरुषोंकी सहायता करनी चाहिए । मनुष्य अपने शरीरके सामर्थ्यको बढानेके लिए सूर्यकिरणोंका आश्रय लेते हैं । सूर्यकिरणोंका स्नान करनेसे शारीरिक शक्ति बढती है । जो शूरवीर तरुण हों वे राष्ट्रकी रक्षाके लिए सैन्यमें भरती हों और उनमें भी जो विशेष शूरवीर हों वे सेनाका संचालन करें ॥ २ ॥

प्रभु जब मनुष्योंको ज्ञान प्रदान करेगा, ज्ञानियोंको प्रेरणा देनेवाला अग्नि जब सौभाग्यको बढानेके लिए ज्ञानियोंको मनुष्योंके पास भेजकर उन्हें तेजस्वी बनायेगा, वही दिन मनुष्योंके लिए सर्वश्रेष्ठ दिन होगा ॥ ३ ॥

मनुष्य यह समझें कि वे सब उस प्रभुके औरस पुत्र हैं, इस लिए वे अन्य असहाय मनुष्योंकी धनादिसे सहायता करें और ईश्वरकी स्तुति करें । हे प्रभो ! ज्ञानीयोंको धन दो और वे ज्ञानी समृद्ध और अतिवृद्ध होकर दीर्घ आयुतक जीवनका उपभोग करें ॥ ४ ॥

[३१]

ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री, १०-१२ विराट् ।

२५४ प्र व॒ इन्द्रा॑य॒ माद॑नं॒ हर्य॑श्वाय गायत । सखा॑यः सोम॒पाव्ने॑ ॥ १ ॥
२५५ शंसेदु॒क्थं सु॒दान॑व उ॒त द्यु॒क्षं यथा॒ नरः॑ । च॒कृ॒मा स॒त्यरा॑धसे ॥ २ ॥
२५६ त्वं न॑ इन्द्र वाज॒यु॒स्त्वं ग॒व्युः श॑तक्रतो । त्वं हि॑रण्य॒युर्व॑सो ॥ ३ ॥
२५७ व॒यमि॑न्द्र त्वा॒यवो॒ऽभि प्र णो॑नुमो वृषन् । वि॒द्धी त्व१॒॑स्य नो॑ वसो ॥ ४ ॥
२५८ मा नो॑ नि॒दे च॒ वक्त॑वे॒ऽर्यो र॑न्धी॒रर॑ाव्णे । त्वे अपि॒ क्रतु॒र्मम॑ ॥ ५ ॥
२५९ त्वं वर्मा॑सि स॒प्रथः॑ पुरोयो॒धश्च॑ वृत्रहन् । त्वया॒ प्रति॑ ब्रुवे यु॒जा ॥ ६ ॥

---

[३१]

अर्थ— [२५४] हे (सखायः) हे मित्रो ! (वः हर्यश्वाय सोमपाव्ने) तुम उत्तम घोडोंवाले और सोम पीनेवाले (इन्द्राय मादनं प्र गायत) इन्द्रके लिये आनन्दकारक काव्य गाओ ॥ १ ॥

[२५५] (उत) और (सुदानवे सत्यराधसे उक्थं) उत्तम दान देनेवाले और सत्य धन जिसका है ऐसे इन्द्रके लिये स्तोत्र (यथा नरः द्युक्षं) जैसे अन्य नेता तेजस्वी स्तोत्र गाते हैं, वैसा ही (शंस इत्) तुम भी कहो, और हम भी (चकृम) करेंगे ॥ २ ॥

[२५६) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं नः वाजयुः) तू हमारे लिये धनकी अभिलाषा कर ! हमें धन देनेकी इच्छा कर । हे (शतक्रतो) सैंकडों प्रशस्त कर्म करनेवाले ! (त्वं गव्युः) तुम हमारे लिये गौओंकी कामना करो । हमें गौएं देनेकी इच्छा करो । हे (वसो) निवासकर्ता ! (त्वं हिरण्ययुः) तू हमारे लिये सुवर्णकी कामना कर ॥ ३ ॥

[२५७] हे (वृषन् इन्द्र) बलवान् इन्द्र ! (त्वायवः वयं अभि प्रणोनुमः) तेरी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हम तुम्हारी स्तुति गाते हैं। हे (वसो) निवासकर्ता ! (अस्य नः विद्धि) इस हमारे स्तोत्रको तुम ध्यानसे सुनो ॥ ४ ॥

[२५८] (अर्यः वक्तवे निदे अराव्णे नः मा रन्धि) तू हमारा स्वामी है, हमको कठोर बोलनेवाले, निंदक, तथा कंजूसके अधीन मत रख । (ममः क्रतुः त्वे अपि) मेरा यज्ञ तेरे पास पहुंचे ॥ ५ ॥

[२५९] हे (वृत्रहन्) शत्रुका नाश करनेवाले इन्द्र ! (त्वं वर्म असि) तू हमारा कवच है । (स प्रथः) तू सर्वत्र संरक्षण करनेमें प्रसिद्ध है । तू (पुरो योधः च असि) सामनेसे युद्ध करनेवाला है । (त्वया युजा प्रति ब्रुवे) तेरी सहायतासे हम शत्रुको अच्छा उत्तर दें । उनका नाश कर सकें ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो अनेक तरहकी सिद्धियां प्रदान करनेवाले धन हमें देता है, जो स्तोताके स्तोत्ररूप काव्योंकी सुरक्षा करता है, उस धनवान् इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं। उस इन्द्रकी कृपासे अन्य देव भी हमारी हर तरहसे रक्षा करें ॥ ५ ॥

हे मित्रो ! तुम उत्तम घोडोंवाले और सोम पीनेवाले इन्द्रके प्रशंसाकारक काव्योंका गायन करो ॥ १ ॥

जो उत्तम रीतिसे दान देता है, उसीका धन सच्चा होता है । प्रभु सबको दान देकर सबका उत्तम रीतिसे पोषण करता है, इसलिए उसकी ही प्रशंसाके गीत गाने चाहिए ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तू हमें धन देनेकी इच्छा कर । हे अनेकों तरहके उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! तू हमें गायें भी प्रदान कर। तू हमें सोना देनेकी भी इच्छा कर ॥ ३ ॥

हे बलवान् इन्द्र ! तुझे प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले हम तेरी स्तुति गाते हैं, इस हमारी स्तुतिको तू ध्यानसे सुन ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तू हमारा स्वामी है, इस लिए हम तुझसे प्रार्थना करते हैं कि तू हमें कभी भी ऐसे मनुष्योंके वशमें मत कर कि जो कठोर भाषण करनेवाले, निन्दा करनेवाले और कंजूस हों ॥ ५ ॥

२६० मुहाँ उतासि यस्य ते ऽनु स्वधावरी सहः । मुम्नाते इन्द्र रोदसी ॥ ७ ॥
२६१ तं त्वा मुरुत्वती परि भुवद् वाणी सुयावरी । नक्षमाणा सुह द्युभिः ॥ ८ ॥
२६२ ऊर्ध्वासस्त्वान्विन्दवो भुवन् दुस्ममुप द्यवि । सं ते नमन्त कृष्टयः ॥ ९ ॥
२६३ प्र वो मुहे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ १० ॥
२६४ उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥ ११ ॥

अर्थ— [२६०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (महान् असि) तू सबसे बडा है, (यस्य ते सहः) तेरे बलको (स्वधावरी, रोदसी अनु मम्नाते) अन्नवाली द्यावापृथिवी भी मानती है ॥ ७ ॥

[२६१] (तं त्वा सुयावरी) तेरे साथ जानेवाली (द्युभिः सह नक्षमाणा) तेजोंके साथ फैलनेवाली (मरुत्वती वाणी) वीरों द्वाराकी स्तुति (परिभुवत्) तुझे स्वीकार करे। तेरी स्तुति सर्वत्र होती रहे ॥ ८ ॥

[२६२] (उपद्यवि त्वा दस्म) द्युलोकके समीप तुम दर्शनीयके लिये (ऊर्ध्वासः इन्दवः भुवन्) ऊपर ऊपर चढनेवाले सोम सिद्ध हो रहे हैं। (कृष्टयः ते सं नमन्त) और प्रजाएं तुम्हें नमन करती हैं ॥ ९ ॥

[२६३] (वः महिवृधे महे प्रभरध्वं) तुम धनका संवर्धन करनेवाले महान् वीर इन्द्रके लिये सोमरस भर दो। (प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं) विशेष ज्ञानवान् इंद्रके लिये उत्तम स्तुति करो। (चर्षणिप्राः पूर्वीः विशः प्र चर) प्रजाओंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले तुम प्रजाओंमें संचार कर ॥ १० ॥

[२६४] (उरुव्यचसे महिने इन्द्राय सुवृक्तिं) चारों ओर यशसे फैले और बडे इन्द्रके लिये स्तुति और (ब्रह्म विप्राः जयन्त) हविष्यान्न ज्ञानी लोग तैयार करते हैं। (तस्य व्रतानि धीराः न मिनन्ति) उसके संरक्षणादि व्रतोंका निषेध धीर पुरुष भी नहीं कर सकते ॥ ११ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र हर तरहसे रक्षा करनेके कार्यमें प्रसिद्ध है, इस लिए यह इन्द्र हम प्राणियोंका कवच ही है। इस कवचसे सुरक्षित होकर हम अपने शत्रुओंका नाश करें। राजा शत्रुओंका नाश करके प्रजाकी रक्षा करे। वह प्रजाके लिए कवचके समान हो ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तू सबसे महान् है, तू सबसे अधिक बलशाली है। तेरे इस बलके आगे अन्न प्रदान करनेवाले द्यु और पृथिवीलोक भी नम्र होते हैं ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तेरे साथ जानेवाली, तेजोंके साथ फैलनेवाली वीरोंके द्वारा की गई स्तुति तुझे बलशाली बनाये ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! अत्यन्त सुन्दर ऐसे तेरे लिए उत्साह प्रदान करनेवाले सोमरस तैयार किए जा रहे हैं और उसके साथ ही प्रजायें नम्रतापूर्वक तेरी स्तुति गा रही हैं ॥ ९ ॥

धनका संवर्धन करनेवाले महान् वीरके लिए सोमरस देकर उसका पूरी तरह सत्कार करना चाहिए। विशेष ज्ञानी वीरकी प्रशंसा करनी चाहिए और प्रजाओंकी आवश्यकताओंकी तरफ ध्यान देनेवाला राजा प्रजाओंमें संचार करके उनकी आवश्यकताओंको जाने, उनकी अवस्थापर विचार करे ॥ १० ॥

सभी प्राणी उस प्रभुकी महिमाका गान करते हैं और सभी उसके नियमोंके अनुकूल होकर चलते है, क्योंकि ज्ञानी भी इस प्रभुके नियमोंका उल्लंघन नहीं कर सकते। तब साधारण प्राणियोंकी तो बात ही क्या ॥ ११ ॥

२६५ इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥ १२ ॥

[३२]

ऋषिः- (१-२५) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, २६ पूर्वार्धर्चस्य शक्तिर्वासिष्ठो वा (शाट्यायने ब्राह्मणे), २६-२७ शक्तिर्वासिष्ठो वा (ताण्डके ब्राह्मणे)। देवता- इन्द्रः। छन्दः- प्रगाथः- (बृहती, सतोबृहती), ३ द्विपदा विराट् ।

२६६ मो षु त्वा वाघतश्चना ऽऽरे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्ताच्चित् सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ १ ॥
२६७ इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥ २ ॥
२६८ रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे ॥ ३ ॥

अर्थ— [२६५] (सत्रा राजानं अनुत्त-मन्युं) सब विश्वका राजा और जिसका उत्साह अप्रतिम है ऐसे (इन्द्रं वाणीः सहध्यै दधिरे) इन्द्रकी प्रशंसा अपना बल बढानेके लिये की जाती है। अतः (हर्यश्वाय आपीन् सं बर्हय) उत्तम घोडोंको जोतनेवाले इन्द्रकी स्तुति करनेके लिये अपने मित्रोंको उत्साहित कर ॥ १२ ॥

[३२]

[२६६] (त्वा वाघतः चन अस्मत् आरे) तेरी स्तुति करनेवाले ये स्तोता हमसे दूर (मो सु नि रीरमन्) न रमते रहें। (आरात्तात् चित् नः सधमादं आ गहि) दूरसे भी तू हमारे यज्ञगृहमें आ। (इह वा सन् उप श्रुधि) यहां रहकर हमारा स्तोत्रका श्रवण कर ॥ १ ॥

[२६७] (ते सुते इमे ब्रह्मकृतः हि) तुम्हारे लिये सोमरस निकालनेका कार्य चलनेके समय ये स्तोत्र पाठकर्ता गण (मधौ मक्ष न) शहदमें मधुमक्खियाँ बैठनेके समान (सचा आसते) साथ साथ बैठते हैं। (वसूयवो जरितारः) धन चाहनेवाले स्तोत्रपाठी (रथे न पादं) रथमें पांव रखनेके समान (इन्द्रे कामं आदधुः) इन्द्रमें अपनी इच्छाको रखते हैं ॥ २ ॥

[२६८] (पुत्रः पितरं न) पुत्र पिताको पूछता है उस तरह (रायस्कामः) धनकी कामना करनेवाला मैं (वज्रहस्तं सुदक्षिणं हुवे) वज्रधारी उत्तम दाता इन्द्रकी प्रार्थना करता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थ— राजा सदा उत्साही हो, वह कभी दीन या निरुत्साही न हो। राजपुरुष भी ऐसे ही हों। इन्द्रकी स्तुतिका गान करनेसे बल बढानेके उपाय मनुष्योंको ज्ञात होंगे। इस प्रकार मनुष्य स्वयं भी उस प्रभुकी स्तुति करे और दूसरोंको भी उसकी स्तुति करनेकी प्रेरणा दे ताकि वे भी अपना बल बढा सकें ॥ १२ ॥

हे इन्द्र! तेरी स्तुति करनेवाले स्तोता हमसे दूर रहकर आनन्दित हों अर्थात् हम कोई ऐसा काम न करें कि वे हमसे दूर रहना चाहें। तू भी हमारे यज्ञगृहमें आकर हमारे द्वारा किए जानेवाले स्तोत्रोंका श्रवण कर ॥ १ ॥

जिस तरह छत्तेमें मधुमक्खियां बैठती हैं, उसी तरह ये स्तोता यज्ञमें संगठित होकर बैठते हैं। धन प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले इन्द्रमें ही अपने ध्यानको केन्द्रित करते हैं ॥ २ ॥

मनुष्य इन्द्रसे ही धन पानेकी इच्छा करे। जिस तरह पिताका धन पुत्रको प्राप्त होता है, उसी तरह इन्द्रसे मुझे धन मिले, क्योंकि वह मेरा पिता है और मैं उसका पुत्र हूं ॥ ३ ॥

२६९ इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥ ४ ॥
२७० श्रवच्छ्रुत्कर्ण ईयते वसूनां नू चिन्नो मर्धिषद् गिरः ।
सद्यश्चिद् यः सहस्राणि शता दद न्नकिर्दित्सन्तमा मिनत् ॥ ५ ॥
२७१ स वीरो अप्रतिष्कुत इन्द्रेण शूशुवे नृभिः ।
यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन् त्सुनोत्या च धावति ॥ ६ ॥
२७२ भवा वरूथं मघवन् मघोनां यत् समजासि शर्धतः ।
वि त्वाहतस्य वेदनं भजेम ह्या दूणाशो भरा गयम् ॥ ७ ॥

अर्थ—[२६९] हे (वज्रहस्त) वज्र हाथमें लेनेवाले इन्द्र ! (दध्याशिरः इमे सोमासः) दहीसे मिश्रित ये सोमरस (इन्द्राय सुन्विरे) इन्द्रके लिये तैयार हो रहे हैं। तुम्हारे लिये ही हो रहे हैं। (तान् मदाय पीतये) आनन्दके लिये उनको पीनेके लिये (ओकः हरिभ्यां आ याहि) यज्ञ स्थानपर घोडोंसे आओ ॥ ४ ॥

[२७०] (श्रुत्कर्णः वसूनां ईयते) प्रार्थना सुननेके लिये तत्पर कर्णवाला इन्द्र है, उसके पास हम धनोंकी प्रार्थना करते हैं। (नः गिरः श्रवत्) वह हमारी प्रार्थना सुने। (नु चित् मर्धिषत्) कदापि हमें हिंसित न करे, हमारी प्रार्थना निष्फल न करे ! (सद्यः चित् यः शता सहस्राणि ददत्) तत्काल ही वह सैंकडों और हजारोंकी संख्यामें धनोंको देता है। (दित्सन्तं न किः आ मिनत्) देनेकी इच्छा करनेवाले उसको कोई रोक नहीं सकते ॥ ५ ॥

[२७१] हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (ते यः गभीरा सवनानि सुनोति) तुम्हारे लिये ये गम्भीर सोमके सवन जो करता है (आ धावति च) और तुम्हारे लिये शीघ्रता करता है (सः वीरः इन्द्रेण) वह वीर इन्द्रके द्वारा (अप्रतिष्कुतः) विरुद्ध भावसे प्रतिरोधित न होता हुआ (नृभिः शुशुवे) मानवोंके द्वारा संसेवित होता है। संमानित होता है ॥ ६ ॥

[२७२] हे (मघवन्) धनपते ! (मघोनां वरूथं भव) धनवान् दाताओंका कवच जैसा संरक्षक बनो। (यत् शर्धतः समजासि) स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका निवारण करो। (त्वाहतस्य वेदनं विभजेमहि) तुम्हारे द्वारा मारे गये शत्रुके धनका हम सब बंटवारा करेंगे। (दुर्णशः गयं आभर) जिसका नाश नहीं होता ऐसा तुम हमें धन दो ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे इन्द्र ! दहीसे मिश्रित ये सोमरस तेरे लिए तैय्यार किए जा रहे हैं। तू इन रसोंको पीनेके लिए हमारे पास आ ॥ ४ ॥

यह इन्द्र या ऐश्वर्यशाली प्रभु प्रार्थना सुननेके लिए सदा तत्पर रहता है, आवश्यकता है केवल हृदयसे प्रार्थना करनेकी। हृदयसे प्रार्थना किए जानेपर वह अवश्य सुनता है। वह ऐसी प्रार्थनाको कभी निष्फल नहीं करता। जब वह अपने उपासककी इच्छा पूर्ण करनेके लिए तैय्यार रहता है, तब उसे कोई रोक नहीं सकता ॥ ५ ॥

जो सच्चे हृदयसे प्रभुकी उपासना करता है, वह प्रभुके विरोधमें या प्रतिकूल कभी नहीं जाता अपितु उसके द्वारा संवर्धित होकर मनुष्योंके द्वारा संमानित भी होता है ॥ ६ ॥

हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! तू दाताओंकी कवचके समान रक्षा कर तथा उनके साथ जो शत्रुता करते हों, उनका तू नाश कर, तथा हमको तू अक्षय धन प्रदान कर ॥ ७ ॥

२७३ सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित् पृणन्नित् पृणते मयः ॥ ८ ॥
२७४ मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे ।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे ॥ ९ ॥
२७५ नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत् ।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत् स गोमति व्रजे ॥ १० ॥
२७६ गमद् वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो यस्य त्वमविता भुवः ।
अस्माकं बोध्यविता रथाना—मस्माकं शूर नृणाम् ॥ ११ ॥

अर्थ—[२७३] (वज्रिणे सोमपाव्ने इन्द्राय सोमं सुनोत) वज्रधारी सोमपान करनेवाले इन्द्रके लिये सोमरस निकालो। (अवसे पक्तीः पचत) अपनी सुरक्षाके लिये इन्द्रके प्रीतिके लिए पुरोडाशादि अन्न पकाओ (कृणुध्वं इत्) इन्द्रके लिये ये सब कर्म करो। (मयः पृणन् इत् पृणते) इन्द्र सुख देता हुआ इस यज्ञकर्मको पूर्ण संपन्न करता है ॥ ८ ॥

[२७४] (सोमिनः मा स्रेधत) सोमयागसे पीछे न हटो। (दक्षत) दक्षतासे कर्म करते रहो। (महे आतुजे) बडे तथा शत्रुके विनाशक इन्द्रके लिये तथा (राये कृणुध्वं) धन प्राप्तिके लिये यज्ञ करो। (तरणिः इत् जयति) त्वरासे कर्म करनेवाला निःसंदेह विजय करता है, (क्षेति पुष्यति) वह अपने घरमें निवास करता है, पुष्ट होता है, (कवत्नवे देवासः न) कुत्सित कर्म करनेवालेके सहायक देव नहीं होते ॥ ९ ॥

[२७५] (सुदासः रथं नकिः परि आस) उत्तम दाताके रथको कोई दूर नहीं रख सकता। (न रीरमत्) न उसको अन्यत्र रममाण कर सकता है। (यस्य रक्षिता इन्द्रः) जिसका रक्षक इन्द्र है और (यस्य मरुतः) जिसके रक्षक मरुत् हैं (सः गोमति व्रजे गमत्) वह गौओंवाले बाडेमें जाता है, उसके पास गौओंके झुण्ड होते हैं ॥ १० ॥

[२७६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्व यस्य अविता भुवः) तुम जिसके रक्षक होंगे, वह (मर्तः वाजयन् वाजं गमत्) मनुष्य तुम्हारा यश गाता हुआ अन्नको प्राप्त करता है। हे (शूर) शूर ! (अस्माकं रथानां अविता बोधि) हमारे रथोंका रक्षक बनो। और (अस्माकं नृणां च) हमारे पुत्रपौत्रादिकोंका रक्षक होओ ॥ ११ ॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! वज्र धारण करनेवाले तथा सोमपान करनेवाले इन्द्रके लिए सोमरस तैय्यार करो। इन्द्रको प्रसन्न करके उससे अपनी सुरक्षा करवानेके लिए उसका सत्कार करो। ऐसा करनेसे इन्द्र सुख देता हुआ हर श्रेष्ठ कर्मको पूर्ण सम्पन्न करता है ॥ ८ ॥

मनुष्य श्रेष्ठ कर्म करनेसे स्वयं भी पीछे न हटे और न दूसरोंको विमुख करें। शत्रुनाशी वीरकी तन, मन और धनसे सहायता करे। जो शीघ्रतासे पर उत्तम रीतिसे कर्म करता है, वही सर्वत्र विजय प्राप्त करता है और अपने घरमें आनंदसे रहता है। ऐसे मनुष्यकी देव भी सहायता करते हैं। इसके विपरीत कुत्सित कर्म करनेवालेकी सहायता देव कभी नहीं करते ॥ ९ ॥

उत्तम दाता या एक उत्तम दासके समान प्रभुकी सेवा करनेवालेकी गति सर्वत्र होती है। उसकी गतिको कोई रोक नहीं सकता। ऐसे मनुष्यके रक्षक इन्द्र और मरुत् होते हैं, इसलिए वह हर तरहके ऐश्वर्यसे युक्त होता है ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तू जिसका रक्षक होता है, वह तेरी कृपासे समृद्धि पाकर तेरा यश सर्वत्र गाता है। हे शूरवीर इन्द्र ! तू हमारे रथोंका रक्षक बन और हमारे पुत्रपौत्रादिकोंकी भी रक्षा कर ॥ ११ ॥

२७७ उदिन्न्वस्य रिच्यते — ऽशो धनं न जिग्युषः ।
य इन्द्रो हरिवान् न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥ १२ ॥
२७८ मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥ १३ ॥
२७९ कस्तमिन्द्र त्वावसु — मा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा इत् ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥ १४ ॥
२८० मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभि — र्विश्वा तरेम दुरिता ॥ १५ ॥

अर्थ — [२७७] (यस्य अंशः रिच्यते) जिस इन्द्रका सोमरसका भाग अन्योंकी अपेक्षा अधिक होता है, (जिग्युषः धनं न) विजयी वीरके धनके समान (उत् इत् नु) निःसंदेह (यः हरिवान् इन्द्रः सोमिनि दक्षं दधाति) जो घोडोंवाला इन्द्र सोमयाग करनेवालेमें बल धारण करता है (तं रिपः न दभन्ति) उसको शत्रु नहीं दबाते ॥ १२ ॥

[२७८] (अखर्वं सुधितं सुपेशसं मंत्रं) बडा उत्तम बनाया सुन्दर मंत्रोंका स्तोत्र (यज्ञियेषु आदधात) यज्ञके योग्य देवोंमें इंद्रके लिये ही अर्पण करो । (यः कर्मणा इंद्रे भुवत्) जो अपने स्तोत्रगानरूप कर्मसे इन्द्रके मनमें स्थान पाता है, (तं पूर्वीः प्रसितयः न तरंति चन) उसको कोई बंधन कष्ट नहीं देते ॥ १३ ॥

[२७९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मर्त्यः) जो मनुष्य तुम्हारा प्रिय होता है (तं त्वा-वसुं कः आ दधर्षति) उस तुम्हारे भक्तको कौन भय दिखा सकता है ? हे (मघवन्) धनपते ! (त्वे इत् श्रद्धा) तुम्हारे ऊपर जो श्रद्धा रखता है वह (वाजी) बलवान् होता है, (पार्ये दिवि वाजं सिषासति) और पार होनेके दिनमें भी धन प्राप्त करता है ॥ १४ ॥

[२८०] (मघोनः ते ये प्रिया वसु ददति) तुम जैसे धनीको जो प्रिय धन अर्पण करते हैं, उनको (वृत्रहत्येषु चोदय) वृत्रवधके समय उत्साहित करो । हे (हर्यश्व) उत्तम घोडोंवाले इन्द्र ! (तव प्रणीती) तुम्हारी नीतिके द्वारा (सूरिभिः विश्वा दुरिता तरेम) ज्ञानियोंके साथ रहकर सब पापोंसे हम पार हो जायेंगे ॥ १५ ॥

भावार्थ — सोमयागमें इन्द्रको सोमरसका भाग अधिक दिया जाता है । जिस तरह विजयी वीरको धन अधिक मिलता है, उसी तरह इस विजयी इन्द्रको सोमरस अधिक मिलता है । ये वीर इन्द्र सोमयज्ञ करनेवालेको बल प्रदान करता है, उस बलके कारण उसके सभी शत्रु परास्त हो जाते हैं ॥ १२ ॥

इन्द्र सभी देवोंमें प्रमुख है । वह देवोंका राजा है, इसलिए वह सभी तरहकी स्तुतियोंके योग्य है । जो अपनी उपासनाके द्वारा इन्द्रके मनमें अपना स्थान बना लेता है, उसे किसी तरहके बंधन कष्ट नहीं देते ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! जो तेरा प्रिय भक्त होता है, उसे भला कौन भय दिखा सकता है अर्थात् इन्द्रका भक्त हर तरहसे निर्भीक होता है । जो तुमपर श्रद्धा रखता है, वह बलवान् होता है और संकटके क्षणोंमें भी ऐश्वर्यशाली बना रहता है ॥ १४ ॥

जो इन्द्रकी उपासना करता है वह शत्रुनाशके लिए किए जानेवाले युद्धमें सदा उत्साहपूर्ण रहता है । उत्तम धर्म नियमोंमें रहनेसे सब पाप दूर हो सकते हैं । ज्ञानियोंके साथ रहनेसे तो निस्सन्देह पापसे बचा जा सकता है ॥ १५ ॥

×

२८१ तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥ १६ ॥

२८२ त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो य ईं भवन्त्याजयः ।
तवायं विश्वः पुरुहूत पार्थिवो ऽवस्युर्नाम भिक्षते ॥ १७ ॥

२८३ यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥ १८ ॥

२८४ शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥ १९ ॥

अर्थ— [२८१] हे (इन्द्र) इंद्र ! (अवमं वसु तव इत्) पृथिवीपरका धन तुम्हारा ही है, (त्वं मध्यमं पुष्यसि) तू मध्यम धनको पुष्ट करता है । (विश्वस्य परमस्य राजसि) सब श्रेष्ठ धनपर भी तुम्हारा राज्य है यह (सत्रा) सत्य है । (त्वा गोषु न किः वृण्वते) तुम्हें गौओंमें रहनेसे कोई रोक नहीं सकता ॥ १६ ॥

[२८२] (त्वं विश्वस्य धनदा श्रुतः असि) तुम सब धनोंके दाता प्रसिद्ध हो । (ये आजयः ईं भवन्ति) जो युद्ध होते हैं उनमें भी तुम प्रसिद्ध हो । हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा प्रशंसित वीर ! (अयं विश्वः पार्थिवः) ये सब पृथ्वीपरके मनुष्य (अवस्युः नाम भिक्षते) अपनी सुरक्षाके लिये तुम्हारी ही प्रार्थना करते हैं ॥ १७ ॥

[२८३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् यावतः त्वं) जितने धनका स्वामी तू है (एतावत् अहं ईशीय) उतना सब धन मैं प्राप्त करना चाहता हूं । हे (रदावसो) धनके दाता ! (स्तोतारं इत् दिधिषेय) स्तोताकी सुरक्षा हो ऐसी मेरी इच्छा है । (पापत्वाय न रासीय) पाप बढानेके लिये धनका दान मैं नहीं करूंगा ॥ १८ ॥

[२८४] (कुहचिद्विदे महयते) कहींपर भी रहनेवाले उपासना करनेवाले भक्तके लिये (दिवे दिवे रायः शिक्षेयं इत्) प्रतिदिन मैं धनका दान अवश्य करूंगा । हे (मघवन्) धनपते ! (नः आप्यं त्वत् अन्यत् नहि) तुमसे भिन्न हमारा कोई बंधु नहीं है । (वस्यः पिता चन अस्ति) न प्रशंसनीय पिता ही दूसरा है ॥ १९ ॥

भावार्थ— यह सत्य है कि इस पृथ्वीपर, अन्तरिक्षमें और द्युलोकमें जितना भी कुछ ऐश्वर्य भरा पडा है, वह सब प्रभुका है । प्रभु ही उन सबका एकमात्र स्वामी है ॥ १६ ॥

वह प्रभु इतने बडे ऐश्वर्यका स्वामी होनेपर भी महान् दाता है । वह धनके दाताके रूपमें बहुत प्रसिद्ध है । युद्धोंमें भी या शत्रुनाशनके कार्यमें भी वह महायशस्वी है, इसलिए अपनी सुरक्षाके लिए सभी प्राणी उसी प्रभुकी शरणमें जाते हैं ॥ १७ ॥

हे इन्द्र ! जितने धनका स्वामी तू है, उतने ही विस्तृत धनका स्वामी मैं भी होऊं । मैं धनका स्वामी होकर स्तोताकी रक्षा करूं । मैं पाप बढानेके कामोंमें कभी भी अपना धन खर्च न करूं ॥ १८ ॥

इन्द्र कहता है- ' मैं प्रतिदिन उपासकको धन देता हूं, ' यह सुनकर ऋषि कहता है- हे धनपते ! तुमसे भिन्न या तेरे सिवाय हमारा बन्धु और कोई नहीं है और नाही कोई दूसरा पिता है । तू ही हमारा पिता, भाई और पिता अर्थात् सर्वस्व है ॥ १९ ॥

२८५ तरणिरित् सिषासति वाजं पुरंध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वम् ॥ २० ॥
२८६ न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन्मघवन् तुभ्यं मावते देष्णं यत् पार्ये दिवि ॥ २१ ॥
२८७ अभि त्वा शूर नोनुमो ऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृश मीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ २२ ॥
२८८ न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २३ ॥

अर्थ— [२८५] (तरणिः इत्) त्वरासे कर्म करनेवाला मनुष्य (पुरंध्या युजा वाजं सिषासति) बडी धारणावती बुद्धिके साथ युक्त होकर बल तथा अन्न प्राप्त करता है । (सुद्र्वं नेमिं त्वष्टा इव) उत्तम लकडीकी चक्रनेमिको तर्खाण नमाता है, इस तरह (गिरा वः पुरुहूतं इन्द्रं आ नमे) मैं अपनी स्तुतिसे आपके लिये बहुप्रशंसनीय इंद्रको मैं अपनी ओर लानेके लिये नवाता हूं ॥ २० ॥

[२८६] (मर्त्यः दुष्टुती वसु न विन्दते) मनुष्य बुरे स्तोत्रसे धन नहीं प्राप्त कर सकता । (स्रेधन्तं रयिः न नशत्) हिंसकको धन नहीं प्राप्त हो सकता । हे (मघवन्) धनपते ! (पार्ये दिवि) दुःखसे पार होनेके प्रयत्नसे युक्त दिनमें (मावते देष्णं) मेरे जैसे भक्तके लिये देनेयोग्य धन (तुभ्यं सुशक्तिः इत् विन्दते) तुमसे उत्तम शक्तिसे उत्तम कर्म करनेवाला ही प्राप्त करता है ॥ २१ ॥

[२८७] हे (शूर) शूर इंद्र ! (अस्य जगतः ईशानं) इस जंगम वस्तुजातके स्वामी तथा (तस्थुषः ईशानं) स्थावर विश्वके स्वामी ऐसे (स्वर्दृशं त्वा) दिव्यदृष्टिवाले तुमको (अदुग्धाः इव धेनवः) न दुही हुई गौवें जिस तरह दोहन होनेके लिये उत्सुक होती हैं उस तरह हम (अभि नो नुमः) स्तवन करते हैं ॥ २२ ॥

[२८८] हे (मघवन् इंद्र) धनपते इंद्र ! (दिव्यः त्वावान् अन्यः न) द्युलोकमें तुम्हारे सदृश दूसरा कोई नहीं है । (न पार्थिवः जातः न जनिष्यते) पृथ्वीपर भी न कोई तुम्हारे सदृश हुआ है और ना ही होगा । (अश्वायन्तः गव्यन्तः वाजिनः) हम घोडों, गौओं और अन्नोंको चाहनेवाले (त्वा हवामहे) तुम्हारी प्रार्थना करते हैं ॥ २३ ॥

भावार्थ— कुशलतासे और शीघ्रतासे उत्तम काम करनेवाला शिल्पी उत्तम बुद्धिसे युक्त होनेके कारण अन्न और बलको प्राप्त करता है । वक्ता या उपदेशक अपनी वाणीके द्वारा लोगोंका मन आकृष्ट करके अन्न और बल प्राप्त करता है । वाणीमें ऐसी शक्ति चाहिए कि जिससे दूसरोंपर प्रभाव पडे ॥ २० ॥

मनुष्य बुरे स्तोत्रसे धन प्राप्त न करे अर्थात् वह धन प्राप्त करनेके लिए दुष्टकी प्रशंसा न करे और हिंसा करके भी धन न कमावे । मनुष्य प्रथम कुशलतासे कर्म करनेकी शक्ति प्राप्त करे फिर इस कुशलतापूर्ण कर्मसे मनुष्य धन प्राप्त करे ॥ २१ ॥

जो स्थावर और जंगमका एकमात्र प्रभु है, उसीकी उपासना करना मनुष्योंके लिए योग्य है । मनुष्य उतनी ही आतुरतासे ईश्वरस्तुति करे जितनी न दुही गायें दोहन करानेके लिए उत्सुक रहती हैं ॥ २२ ॥

हे प्रभो ! द्युलोकमें, अन्तरिक्षमें तथा पृथ्वीपर तेरे समान समर्थ वीर कोई दूसरा न भूतकालमें हुआ, न भविष्य कालमें होगा और न इस समय है । तीनों लोकोंमें और तीनों कालोंमें तेरे जैसा दूसरा कोई नहीं है । इसलिए ऐश्वर्यको चाहनेवाले सभी लोग तेरे पास ही आते हैं ॥ २३ ॥

२८९ अभी षतस्तदा भरे॒न्द्र ज्याय॑ः कनी॑यसः ।
पुरूवसुर्हि म॑घवन् त्सनादसि भरे॑भरे च॒ हव्य॑ः ॥ २४ ॥

२९० परा॑ णुदस्व मघवन्नमित्रा॑न् त्सुवेदा॑ नो॒ वसू॑ कृधि ।
अ॒स्माकं॑ बोध्यवि॒ता म॑हाध॒ने भवा॑ वृ॒धः सखी॑नाम् ॥ २५ ॥

२९१ इन्द्र॒ क्रतुं॑ न॒ आ भ॑र पि॒ता पुत्रेभ्यो॒ यथा॑ ।
शिक्षा॑ णो अ॒स्मिन् पु॑रुहूत॒ याम॑नि जी॒वा ज्योति॑रशीमहि ॥ २६ ॥

२९२ मा नो॒ अज्ञा॑ता वृ॒जना॑ दुरा॒ध्यो॒३॑ माशि॑वासो॒ अव॑ क्रमुः ।
त्वया॑ व॒यं प्र॒वतः॒ शश्व॑तीर॒पो ऽति॑ शूर तरामसि ॥ २७ ॥

अर्थ— [२८९] हे (ज्यायः इंद्र) श्रेष्ठ इंद्र ! (कनीयसः सतः तत् अभि आ भर) मैं तुम्हारा छोटा भाई हूं अतः मुझे वह धन तुम भरपूर दो । हे (मघवन्) धनपते ! (सनात् पुरुवसुः हि असि) तुम सनातन कालसे बहुत धनवाला हो और (भरे भरे हव्यः च) प्रत्येक युद्धमें तथा यज्ञमें पूज्य हो ॥ २४ ॥

[२९०] हे (मघवन्) धनपते ! (अमित्रान् परा नुदस्व) शत्रुओंको दूर कर । (नः वसु सुवेदा कृधि) हमारे लिये धन सुखसे प्राप्त होने योग्य कर । (महाधने सखीनां अविता बोधि) युद्धके समय मित्रोंका संरक्षण करनेवाला हो, (वृधः भव) धनको बढानेवाला हो ॥ २५ ॥

[२९१] हे (इन्द्र) इंद्र ! (नः क्रतुं आ भर) हमारे प्रज्ञानपूर्वक किये कर्मोंको पूर्ण करो । (यथा पिता पुत्रेभ्यः) जैसा पिता पुत्रोंको धन देता है वैसा तुम (नः शिक्ष) हमें दो । हे (पुरुहूत) बहुतोंद्वारा स्तवित हुए इंद्र ! (अस्मिन् यामनि) इस यज्ञमें (जीवाः ज्योतिः अशीमहि) हम जीवित रहकर तेजको प्राप्त करें ॥ २६ ॥

[२९२] (अज्ञाताः अशिवासः दुराध्यः वृजनाः नः मा मा अवक्रमुः) अज्ञात रीतिसे अशुभ दुष्ट घातक शत्रु हमपर आक्रमण न करें । हे (शूर) शूर ! (त्वया वयं प्रवतः शश्वतीः अपः अति तरामसि) तुम्हारेसे हम स्वसंरक्षणमें समर्थ होकर सब कर्मोंसे हम पार हो जायगे ॥ २७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! मैं तेरा छोटा भाई हूँ, इसलिए तू मुझे भरपूर धन दे । बडा भाई छोटे भाईको धन दे । उसकी सहायता करे । उसका भाग योग्य समय आनेपर स्वयं दे डाले । बडे भाईके पास पैतृक धन पहले आता है । इसलिए बडे भाईको चाहिए कि वह ईमानदारीसे अपने छोटे भाईका धन उसे दे दे ॥ २४ ॥

शत्रुओंको दूर करके ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि जिससे धनप्राप्तिके व्यवहार सुखसे होते रहें । युद्धके समय मित्रोंकी रक्षा हो, मित्रोंकी समृद्धि हो, इस प्रकार मित्रोंकी शक्ति बढे ॥ २५ ॥

पिता अपने पुत्रोंको सुशिक्षा दे, उनकी प्रज्ञा बढावे । उनमें कर्मको कुशलतासे करनेकी शक्ति प्रदान करे । मनुष्य दीर्घजीवी हो, उसका जीवन तेजसी हो ॥ २६ ॥

कोई भी शत्रु अज्ञातमार्गसे हमपर आक्रमण न कर सके । हमारे कल्याणके मार्गमें बाधक न हो सके । हम सामर्थ्यवान् होकर सदा अपनी उन्नतिके लिए शुभ कर्मोंको करते रहें । उन शुभ कर्मोंको हम निर्विघ्न रूपसे करते रहें ॥ २७ ॥

[३३]

(ऋषिः- (१-९) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, १०-१४ वसिष्ठपुत्राः । देवता- १-९ वसिष्ठपुत्रा इन्द्रो वा, १०-१४ वसिष्ठः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२९३ श्वित्यञ्चो॑ मा दक्षिण॒तस्क॑पर्दा धियंजि॒न्वासो॑ अ॒भि हि प्र॑म॒न्दुः ।
उ॒त्तिष्ठ॑न् वोचे॒ परि॑ ब॒र्हिषो॒ नॄन् न मे॑ दू॒राद॑वित॒वे वसि॑ष्ठाः ॥ १ ॥

२९४ दू॒रादिन्द्र॑मनय॒न्ना सु॒तेन॑ ति॒रो वै॑श॒न्तमति॒ पान्त॑मु॒ग्रम् ।
पाश॑द्युम्नस्य वाय॒तस्य॒ सोमा॑त् सु॒तादिन्द्रो॑ऽवृणीता॒ वसि॑ष्ठान् ॥ २ ॥

२९५ ए॒वेन्नु कं॒ सिन्धु॑मेभिस्ततारे॒वेन्नु कं॑ भे॒दमे॑भिर्जघान ।
ए॒वेन्नु कं॑ दाशरा॒ज्ञे सु॒दासं॒ प्राव॒दिन्द्रो॒ ब्रह्म॑णा वो वसिष्ठाः ॥ ३ ॥

२९६ जुष्टी॑ नरो॒ ब्रह्म॑णा वः पितॄ॒णामक्ष॑मव्ययं॒ न किला॑ रिषाथ ।
यच्छक्व॑रीषु बृह॒ता रवे॒णेन्द्रे॒ शुष्म॒मद॑धाता वसिष्ठाः ॥ ४ ॥

---

[३३]

अर्थ— [२९३] इंद्र कहता है— (श्वित्यञ्चः धियंजिन्वासः) गौरवर्ण बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवाले (दक्षिणतस्कपर्दाः) दक्षिणकी ओर शिखा रखनेवाले वसिष्ठ गोत्रके लोग (मा अभि प्रमन्दुः हि) मुझे अत्यन्त आनंद देते रहे । (बर्हिषः परि उत्तिष्ठन् नॄन् वोचे) आसनसे ऊपर उठते हुए लोगोंसे मैंने कहा कि (मे दूरात् वसिष्ठाः अवितवे न) मुझसे दूर वसिष्ठके लोग न जांय ॥ १ ॥

[२९४] वसिष्ठ कहता है— (वैशन्तं पान्तं उग्रं इंद्रं) चमसमें स्थित सोमको पीनेवाले उग्र वीर इंद्रको (सुतेन अति तिरः) इस सोमरससे उस पात्रका तिरस्कार करवा के (दूरात् आनयन्) दूरसे भी ले आये थे । (इंद्रः वायतस्य पाशद्युम्नस्य सुतात् सोमात्) इंद्रने भी वयत् पुत्र पाशद्युम्नके तयार हुए सोमको छोडकर (वसिष्ठान् अवृणीत) वसिष्ठोंको ही वर लिया ॥ २ ॥

[२९५] (एव इत् नु एभिः सिन्धुं कं ततार) इसी तरह इन्द्रोंने सिन्धुको सुखसे पार किया । (एव इत् नु एभिः भेदं कं जघान) इसी तरह इन्होंने भेदका नाश सुखसे किया, आपसकी फूटको दूर किया । (एव इत् नु दाशराज्ञे सुदासं) इसी तरह दाशराज्ञ युद्धमें सुदासको हे (वसिष्ठाः) वसिष्ठो ! (वः ब्रह्मणा इन्द्रः प्रावत्) आपके स्तोत्रसे ही इन्द्रने सुरक्षित किया ॥ ३ ॥

[२९६] हे (नरः) नेता लोगो ! (वः ब्रह्मणा पितॄणां जुष्टी) आपके स्तोत्रसे पितरोंकी प्रीति होती है । (अक्षं अव्ययं) मैंने अपने रथके अक्षको चलाया है । मैं रथ अपने स्थानको जानेके लिये चलाता हूं । (न किल रिषाथ) तुम क्षीण न होओ । बलवान् बनो । हे (वसिष्ठाः) वसिष्ठ लोगो ! (यत् शक्वरीषु बृहता रवेण) शक्वरी ऋचाओंमें बडे आलापोंके स्वरसे, सामगानसे (इन्द्रे शुष्मं अदधात) इन्द्रमें बल धारण करो, बल बढाओ । इन्द्रका यश बढाओ ॥ ४ ॥

भावार्थ —इस मंत्रमें आर्योंका वर्णन प्रतीत होता है– वे आर्य गौरवर्णके, बुद्धिपूर्वक कार्य करनेवाले, दक्षिणकी ओर शिखा रखनेवाले तथा लोगोंको निवास करानेवाले होते थे । वे हमेशा अपने पूज्य देव इन्द्रकी ही भक्ति करते थे । इन्द्र भी यही चाहता था कि ये आर्य उसकी भक्तिसे कभी दूर न जायें ॥ १ ॥

इन्द्र आर्योंका देव है । इसलिए आर्य इसी देवका सदा सत्कार करते थे । कभी कभी आर्येतर लोग भी इस इन्द्रका सत्कार करनेकी कोशिश करते तो आर्य उसे अपना सत्कार ही स्वीकार करनेकी प्रेरणा देते थे ॥ २ ॥

इन्द्रने सिन्धुको सुखसे पार करने योग्य बनाया । आपसकी फूटको दूर किया और अपने अनुयायियोंको अच्छी तरह संघटित किया । दाशराज्ञ युद्धमें सुदासकी रक्षा की । इन सब कामोंके लिए ऋषियोंने अपने स्तोत्रोंसे उसे प्रेरणा दी ॥ ३ ॥

२९७ उद् द्यामिवेत् तृष्णजो नाथितासो ऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः ।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रो—दुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम् ॥ ५ ॥
२९८ दण्डा इवेद् गोअजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित् तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥ ६ ॥
२९९ त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेत—स्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वाँ इत् ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः ॥ ७ ॥
३०० सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ॥ ८ ॥

अर्थ— [२९७] (तृष्णजः वृतासः नाथितासः) तृषित घेरे हुए उन्नति चाहनेवाले वसिष्ठोंने (द्यां इव दाशराज्ञे) द्युलोकके समान दाशराज्ञ युद्धमें (उत् अदीधयुः) इन्द्रकी प्रशंसा गायी । (स्तुवतः वसिष्ठस्य इन्द्रः अश्रोत्) स्तुति करनेवाले वसिष्ठका स्तोत्र इन्द्रने सुना । और उसने (तृत्सुभ्यः उरुं लोकं अकृणोत्) तृत्सुओंके लिये विस्तृत प्रदेश करके दिया ॥ ५ ॥

[२९८] (गो अजनासः दण्डा इव) गौओंको चलानेवाले डंडोंके समान (भरताः परिच्छिन्नाः अर्भकासः आसन्) भरत लोग छोटे और अल्प थे । (तृत्सूनां पुर एता वसिष्ठः अभवत्) उन तृत्सुओं—भरतों—का वसिष्ठ पुरोहित हुआ (आत् इत् तृत्सूनां विशः अप्रथन्त) तबसे भरतोंकी प्रजा बढने लगी ॥ ६ ॥

[२९९ (भुवनेषु त्रयः रेतः कृण्वन्ति) भुवनोंमें तीन देव वीर्य निर्माण करते हैं । (ज्योतिरग्राः आर्याः तिस्रः प्रजाः) ज्योति जिनके सामने रहती है ऐसे आर्य तीन प्रकारकी प्रजारूप होते हैं । (त्रयः घर्मासः उषसं सचन्ते) ये तीन उष्णताएं उषाका सेवन करती हैं । (वसिष्ठाः तान् सर्वान् इत् अनु विदुः) वसिष्ठ इन सबको उत्तम रीतिसे जानते हैं ॥ ७ ॥

[३००] हे (वसिष्ठाः) वसिष्ठ पुत्रो ! (एषां महिमा) आपकी महिमा (सूर्यस्य ज्योतिः इव वक्षथः) सूर्यके प्रकाशके समान फैली है और (समुद्रस्य इव गम्भीरः) समुद्रके समान गंभीर है । (वातस्य प्रजवः इव) वायुके वेगके समान (वः स्तोमः) आपका स्तोम (अन्येन अनु-एतवे न) किसी अन्यके द्वारा अनुकरण करने योग्य नहीं है । आपकी ही वह विशेषता है ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे नेता मनुष्यों ! अपनी विद्वत्तासे ज्ञानियोंको तृप्त करो । वाहनादि चलानेमें कुशल होओ । कभी निर्बल मत होओ, तथा अपने काव्य आदियोंसे वीरोंका उत्साह बढाओ । पुत्रोंके द्वारा रचित काव्योंको सुनकर ज्ञानी प्रसन्न होते हैं ॥ ५ ॥

भूखे, प्यासे शत्रुओंसे घिरे हुए और अपनी उन्नति चाहनेवाले आतुर भक्तोंने प्रार्थना की तो प्रभुने उनकी प्रार्थनाओंको सुना । इस लिए भक्त अन्तःकरणसे प्रभुकी प्रार्थना करे ॥ ५ ॥

जिस तरह गायोंको हांकनेके लिए डण्डे छोटे छोटे होते हैं, उसी तरह भरण पोषण करनेवाले सज्जन भी अल्प ही होते हैं । समाज या राष्ट्रमें उदार जनोंकी संख्या अल्प ही होती है । अथवा भरत शक्तिहीन थे, पर जब उन्होंने वसिष्ठको अपना पुरोहित बनाया तो वसिष्ठके प्रयत्नोंसे भरत शक्तिशाली हो गए । जिस राष्ट्रका पुरोहित उत्तम होता है, वह राष्ट्र और उस राष्ट्रकी प्रजायें समृद्ध होती हैं ॥ ६ ॥

अग्नि, वायु और सूर्य ये तीन देव त्रिभुवनोंमें वीर्य अर्थात् शक्तिका निर्माण करते हैं । प्रकाशका मार्ग जिनके सामने हमेशा रहता है, ऐसी तीन प्रकारकी प्रजायें आर्य कहलाती हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन प्रकारकी आर्य प्रजाएं हैं । इनके सामने प्रकाशका मार्ग हमेशा रहता है । यही देवमार्ग है । तीन प्रकारकी अग्नि अर्थात् तीन यज्ञ उषःकालमें शुरू होते हैं । ज्ञानी इन सब बातोंको अच्छी तरह जानते हैं ॥ ७ ॥

हे ज्ञानी ऋषियो ! आपकी महिमा सूर्यप्रकाशके समान सर्वत्र फैली हुई है समुद्रके समान अपार है । जिस तरह वायुके वेगको कोई जान नहीं सकता, उसी तरह आपके ज्ञानकी थाह भी कोई नहीं पा सकता ॥ ८ ॥

३०१ त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति ।
यमेन ततं परिधिं वयन्तो ऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः ॥ ९ ॥
३०२ विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा ।
तत् ते जन्मोतैकं वसिष्ठा—ऽगस्त्यो यत् त्वा विश आजभार ॥ १० ॥
३०३ उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठो—र्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः ।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥ ११ ॥
३०४ स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान् त्सहस्रदान उत वा सदानः ।
यमेन ततं परिधिं वयिष्य—न्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः ॥ १२ ॥

अर्थ— [३०१] (ते वसिष्ठाः इत्) वे वसिष्ठगण (निण्यं सहस्रवल्शं) सहस्रों शाखोपशाखाओंसे युक्त इस जाननेके लिये कठिन विश्वमें (हृदयस्य प्रकेतैः अभि सं चरन्ति) अपने हृदयकी ज्ञानशक्तियोंसे चारों ओर संचार करते हैं । जानते तथा अनुभव लेते हैं । (यमेन ततं परिधिं वयन्तः वसिष्ठाः) नियामक प्रभुने फैलाये हुए इस वस्त्रको बुनते हुए ये वसिष्ठ गण (अप्सरसः उपसेदुः) अप्सराओंके पास जाकर बैठते हैं ॥ ९ ॥

[३०२] हे (वसिष्ठ) वसिष्ठ ! (यत् विद्युतः ज्योतिः परि संजिहानं त्वा) जब विद्युत्के तेजका परित्याग करनेवाले तुझको (मित्रावरुणा अपश्यतां) मित्र और वरुणने देखा (तत् ते एकं जन्म) तब तुम्हारा वह एक जन्म हुआ था । (यत् त्वा अगस्त्यः विशः आजभार) तब तुझे अगस्त्यने प्रजाओंमेंसे बाहर लाया ॥ १० ॥

[३०३] हे (वसिष्ठ) वसिष्ठ ! (मैत्रावरुणः असि) मित्र और वरुणका तू पुत्र है । (उत) और हे (ब्रह्मन्) ब्राह्मण ! तू (उर्वश्याः मनसः अधिजातः) उर्वशीके मनसे उत्पन्न हुआ है । (द्रप्सं स्कन्नं) इस समय रेतका पतन हुआ । (दैव्येन ब्रह्मणा) दिव्य मंत्रोंके साथ (विश्वे देवाः त्वा पुष्करे अददन्त) विश्वे देवोंने तुझे पुष्करमें धारण किया ॥ ११ ॥

[३०४] (सः वसिष्ठः उभयस्य प्र विद्वान्) वह वसिष्ठ द्युलोक और भूलोकके सब विषयोंका ज्ञाता (सहस्रदानः उत वा सदानः) हजारों दानोंका देनेवाला अथवा सर्वस्वका दान करनेवाला है । (यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्) नियामक प्रभुने फैलाये वस्त्रको बुननेवाला यह वसिष्ठ (अप्सरसः परिजज्ञे) अप्सरासे उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥

भावार्थ— यह विश्व अनेक शाखाओं और उपशाखाओंसे युक्त होनेके कारण अपार है, इस लिए इसे चर्मचक्षुओंसे जान सकना दुःसाध्य ही नहीं अपितु सर्वथा असंभव है, पर जब ज्ञानी अपने हृदय–गुहामें प्रविष्ट होकर ज्ञानकी दृष्टिसे विश्वका अवलोकन करता है, तब सारा विश्व उसके सामने वस्त्रकी तरह फैल जाता है ॥ ९ ॥

वसिष्ठने विद्युत्के समान तेजस्वी अपनी ज्योतिको बाहर निकाला । यह देहत्यागकी अवस्थाका वर्णन है । जीवका स्वरूप विद्युत्की ज्योतिके समान है । योगीजन इसे स्वेच्छासे अपने शरीरसे निकालते हैं और स्वेच्छापूर्वक इतर शरीरमें प्रवेश करते हैं । मित्र और वरुण प्राण और जीवन हैं ॥ १० ॥

वसिष्ठ अर्थात् ज्ञानी मित्रवरुण अर्थात् प्राण और जीवनका पुत्र है । ज्ञानी मनुष्य तभी हो सकता है कि जब वह अपने प्राण और जीवनको शक्तिशाली बनाता है । इसी तरह जब वह उरु–वशी अर्थात् अपनी विशाल इन्द्रियोंको वशमें करता है, तब मित्र वरुण अर्थात् प्राणका वीर्य अर्थात् शक्ति इन इन्द्रियोंमें दौडती है । इन्द्रियोंको वशमें करनेपर उन इन्द्रियोंमें प्राणोंकी शक्ति सम्यकया दौडने लगती है, तब मनुष्य ज्ञानी बनता है । यह ज्ञानी ही वसिष्ठ है । इस सिद्धान्तको मित्रावरुणके वीर्यसे उर्वशीमें वसिष्ठकी उत्पत्तिरूप रूपकसे समझाया है ॥ ११ ॥

३०५ सुत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम् ।
ततो ह मान उदियाय मध्यात् ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ॥ १३ ॥
३०६ उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत् प्र वदात्यग्रे ।
उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः ॥ १४ ॥

[३४]

(ऋषिः- २५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, । देवता- विश्वे देवाः, १६ अहिः, १७ अहिर्बुध्न्यः ।
छन्दः- द्विपदा विराट्, २२-२५ त्रिष्टुप् ।)

३०७ प्र शुक्रैतु देवी मनीषा अस्मत् सुतष्टो रथो न वाजी ॥ १ ॥
३०८ विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृण्वन्त्यापो अध क्षरन्तीः ॥ २ ॥

अर्थ— [३०५] (सत्रे ह जातौ) यज्ञमें दीक्षा लिये (नमोभिः इषिता) मन्त्रोंद्वारा प्रेरित हुए (कुंभे रेतः समानं सिसिचतुः) मित्रावरुणोंने कुंभमें अपना रेत एक ही समय गिराया। (ततः मध्यात् ह मानः उत् इयाय) उसके बीचमेंसे माननीय अगस्त्य प्रकट हुआ तथा (ततः वसिष्ठं ऋषिं जातं आहुः) उसीसे वसिष्ठ ऋषिको जन्मा कहते हैं ॥ १३ ॥

[३०६] हे (प्रतृदः) भरत लोगों ! (वः वसिष्ठः आगच्छाति) आपके पास वसिष्ठ आ रहे हैं। (सुमनस्यमानाः एनं आध्वं) उत्तम मनोभावनासे इनका सत्कार करो। यह वसिष्ठ आनेपर वह (अग्रे उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति) पहिलेसे ही नेता होकर उक्थ और साम गायकोंको धारण करेंगे, तथा (ग्रावाणं बिभ्रत्) सोमरस निकालनेवाले अध्वर्युका भी धारण करेंगे और उन सबको (प्रवदाति) सुना भी देंगे ॥ १४ ॥

[३४]

[३०७] (शुक्रा मनीषा देवी) सामर्थ्यवाली बुद्धिदेवी (सुतष्टः वाजी रथः न) उत्तम बनावटका घोडोंसे चलाया जानेवाला रथ जैसा शीघ्र जाता है, वैसी (अस्मत् प्र एतु) हमारे पास आवे ॥ १ ॥

[३०८] (अध क्षरन्तीः आपः) बहनेवाले जलप्रवाह-जीवनप्रवाह- (दिवः पृथिव्याः जनित्रं विदुः) द्युलोक और पृथिवीकी उत्पत्तिको जानते हैं और (शृण्वन्ति) सुनते भी हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— ज्ञानी द्युलोक और भूलोकके बीचमें अर्थात् सब विश्वके ज्ञानसे सम्पन्न, उदार, विश्वकल्याणके लिए सर्वस्वको प्रदान करनेवाला और प्रभुकी विश्व रचनाके कार्यको करनेके लिए उत्पन्न होता है ॥ १२ ॥

प्राण और अपानरूपी मित्र और वरुण इस जीवन रूपी यज्ञशालामें बैठकर सांवत्सरिक यज्ञ कर रहे हैं। इनकी वीर्यरूपी शक्ति प्रवाहित होकर हृदय या मस्तिष्करूपी कुंभमें एकत्रित होती है। मस्तिष्कमें एकत्रित हुई उस शक्तिसे अगस्त्य और वसिष्ठरूपी ज्ञानियोंका जन्म होता है ॥ १३ ॥

इन्द्रने भरतकी प्रजाओंसे कहा कि वे वसिष्ठको अपना पुरोहित बनायें। वे वसिष्ठ पुरोहित बनकर उनके अभ्युदयका कार्य करेंगे और उससे उनकी उन्नति होगी। वेदज्ञ पुरोहितमें राज्यकी सब व्यवस्थाओंको करनेकी शक्ति होती है। वह राष्ट्रकी हरतरहसे उन्नति करता है। इससे यह सिद्ध होता है कि वेदोंमें हरतरहका विज्ञान है ॥ १४ ॥

मनुष्य ऐसी मनीषा या उत्तम बुद्धि प्राप्त करे जो विजयकी इच्छा, व्यवहार, तेजप्राप्ति, आनन्दप्राप्ति और प्रगतिके प्रयत्नोंमें उसकी सहायता करे। वह प्रज्ञा सामर्थ्य और प्रभावसे युक्त हो ॥ १ ॥

जल जीवनका रस है। जल शान्ति देनेवाला है। " अ " से लेकर " ह " पर्यन्त जो उपयोगी होता है, उसकी संज्ञा जल है ॥ २ ॥

३०९ आर्पश्चिदस्मै पिन्वन्त पृथ्वीः वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः ॥ ३ ॥
३१० आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वा—निन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः ॥ ४ ॥
३११ अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन् त्मना हिनोत ॥ ५ ॥
३१२ त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरम् ॥ ६ ॥
३१३ उदस्य शुष्माद् भानुर्नार्त बिभर्ति भारं पृथिवी न भूम ॥ ७ ॥
३१४ ह्वयामि देवाँ अयातुरग्ने साधन्नृतेन धियं दधामि ॥ ८ ॥
३१५ अभि वो देवीं धियं दधिध्वं प्र वो देवत्रा वाचं कृणुध्वम् ॥ ९ ॥

अर्थ— [३०९] (पृथ्वीः आपः चित्) पृथ्वीके ऊपर मिलनेवाला जल (अस्मै पिन्वन्त) इस इन्द्रकी पुष्टी करता है। (वृत्रेषु उग्राः शूराः मंसन्ते) शत्रुओंके उपद्रव होनेपर उग्र शूर वीर इसी इन्द्रको बुलाते हैं। ॥ ३ ॥

[३१०] (अस्मै धूर्षु अश्वान् आदधात) इस इन्द्रको यहां लानेके लिये रथकी धुरामें घोडोंको जोतो। (हिरण्यबाहुः वज्री इन्द्रः न) जिसके बाहूपर सुवर्णके आभूषण हैं ऐसा वज्रधारी इन्द्र जिस तरह घोडे जोतता है, वैसे ही तुम जोतो ! ॥ ४ ॥

[३११] (अह इव यज्ञं अभि प्र स्थात) यज्ञके प्रति अवश्य जाओ। (त्मना याता इव) स्वयंही अपनी इच्छासे जानेवालेके समान (पत्मन् हिनोत) मार्गसे वेगसे चलो ॥ ५ ॥

[३१२] (समत्सु त्मना हिनोत) युद्धोंमें स्वयं जाओ। (वीरं हिनोत) वीरको युद्धमें जानेके लिये प्रेरित करो। (जनाय केतुं यज्ञं दधात) लोगोंके कल्याणके लिये ज्ञान बढानेवाले यज्ञका धारण करो ॥ ६ ॥

[३१३] (अस्य शुष्मात् भानुः उत् आर्त) इस बलसे सूर्य उदयको प्राप्त होता है। तथा (भूम पृथिवी न भारं बिभर्ति) सब भूत और पृथिवी भार उठाती है ॥ ७ ॥

[३१४] हे (अग्ने) अग्ने ! (अयातुः ऋतेन) अहिंसक यज्ञसे (साधन् देवान् ह्वयामि) साधना करता हुआ सहायार्थ देवोंको बुलाता हूं, (धियं दधामि) बुद्धिपूर्वक किये जानेवाले कर्मको मैं धारण करता हूं ॥ ८ ॥

[३१५] (वः अभि देवीं धियं दधिध्वं) आप दिव्य बुद्धिका धारण करो। (वः देवत्रा वाचं प्रकृणुध्वं) आप दिव्य विबुधोंके संबंधमें भाषण करते रहो ॥ ९ ॥

भावार्थ— पृथ्वीके ऊपर जो जीवन प्राप्त होता है, उससे मनुष्य पुष्ट होता है। शत्रुओंके उपद्रव होनेपर वीर और शूर नेताको ही लोग बुलाते हैं। ॥ ३ ॥

शत्रुओंका उपद्रव उपस्थित होनेपर वीर योद्धा संघठित हों, इतर जन इन वीरोंकी सहायता करें। वीर नेताओंके लिए उत्तम वाहनोंका प्रबन्ध हो ॥ ४ ॥

जहां यज्ञ चलता हो, वहां लोग स्वेच्छापूर्वक जाएं। अपने अन्तःकरणसे प्रेरित होकर जाएं ॥ ५ ॥

इसी तरह जहां राष्ट्रकी सुरक्षाके लिए शत्रुओंसे युद्ध चल रहा हो, वहां भी लोग स्वयंस्फूर्तिसे सैन्यमें जाकर प्रविष्ट हों। उस समय किसीके आमंत्रण या निमंत्रणकी प्रतीक्षा न करें। इस प्रकार स्वयं जाकर दूसरे वीरोंका भी उत्साह बढायें ॥ ६ ॥

इस प्रभुके सामर्थ्यके कारणही सूर्य उदय होता है और पृथ्वी सबका बोझ उठाती है। विश्वमें जो भी कार्य होता है, वह बलसेही होता है। इसलिए बलको प्राप्त करना चाहिए ॥ ७ ॥

तपःसाधना करनेके बादही देवगण उसकी सहायताके लिए आते हैं। इसलिए सदा पवित्र बुद्धिसे कुटिलतारहित कर्मोंको करना चाहिए ॥ ८ ॥

×

३१६ आ चष्ट आसां पाथो नदीनां वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः ॥ १० ॥
३१७ राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु ॥ ११ ॥
३१८ अविष्टो अस्मान् विश्वासु विक्ष्वद्युं कृणोत शंसं निनित्सोः ॥ १२ ॥
३१९ व्येतु दिद्युद् द्विषामशेवा युयोत विष्वग्रपस्तनूनाम् ॥ १३ ॥
३२० अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभिः प्रेष्ठो अस्मा अधायि स्तोमः ॥ १४ ॥
३२१ सजूर्देवेभिरपां नपातं सखायं कृध्वं शिवो नो अस्तु ॥ १५ ॥

अर्थ— [३१६] (सहस्रचक्षाः उग्रः वरुणः) सहस्र नेत्रवाला उग्र वीर वरुण (आसां नदीनां पाथः आचष्टे) इन नदियोंके जलको देखता है ॥ १० ॥

[३१७] (राष्ट्रानां राजा) यह वरुण राष्ट्रोंका शासक, (नदीनां पेशः) नदियोंका रूप (अस्मै अनुत्तं क्षत्रं) इसका क्षात्र बल उत्तम (विश्वायु) संपूर्ण आयुतक टिकनेवाला है ॥ ११ ॥

[३१८] (अस्मान् विश्वासु विक्षु अविष्टः) हमें सब प्रजाजनोंमें सुरक्षित करो और (निनित्सोः शंसं अ-द्युं कृणोत) निंदा करनेवालेके भाषणको निस्तेज करो ॥ १२ ॥

[३१९] (द्विषां दिद्युत् अशेवा विष्वक् व्येतु) शत्रुओंका शस्त्र अपरिणामी होकर चारों ओरसे दूर जावे। (तनूनां रपः विष्वक् युयोत) हमारे शारीरिक पाप हमसे दूर होजांय ॥ १३ ॥

[३२०] (हव्यात् प्रेष्ठः अग्निः नमोभिः नः अवीत्) हव्य अन्नका भक्षण करनेवाला प्रिय अग्नि हमारे नमस्कारोंसे प्रसन्न होकर हमारी सुरक्षा करे। (अस्मै स्तोमः अधायि) इसका यह स्तोत्रपाठ हमने किया है ॥ १४ ॥

[३२१] (अपां नपातं सखायं कृध्वं) जलोंको न गिरानेवाले अग्निको अपना मित्र बनाओ। वह (देवेभिः सजूः नः शिवः अस्तु) देवोंके साथ रहनेवाला अग्नि हमारे लिये कल्याण करनेवाला हो ॥ १५ ॥

भावार्थ— मनुष्य सदा दिव्य गुणोंसे युक्त बुद्धिसे प्रेरित होकर श्रेष्ठ कर्म करे और दिव्यभावसे परिपूर्ण होकर वचनोंको बोले ॥ ९ ॥

जिस तरह कोई जलप्रवाहोंको स्पष्ट रूपसे देखता है, उसी तरह वह वीर वरुण देव हमारे जीवन प्रवाहोंको देखता है, इसलिए हमेशा सावधान होकर व्यवहार करना चाहिए और सदा ऐसा ही प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे शुद्ध आचरण हो ॥ १० ॥

राष्ट्रका जो राजा हो, उसमें ऐसा श्रेष्ठ क्षात्रबल हो कि उसकी पूरी आयुतक टिके। वह अपने राष्ट्रमें नदियोंकी इतनी सुन्दर व्यवस्था करे कि उसके राष्ट्रमें सब जगह समृद्धि ही हो ॥ ११ ॥

सब प्रजाजनोंका उत्तम संरक्षण हो। निन्दकोंके द्वारा की जानेवाली निंदा प्रभावरहित हो। निन्दक हमारी चाहे कितनी भी निन्दा करें, पर उस निन्दासे हमारा कुछ न बिगडे ॥ १२ ॥

मनुष्य शत्रुके शस्त्रास्त्रोंसे सुरक्षित रहें। रक्षाकी ऐसी व्यवस्था हो कि शत्रुके शस्त्रास्त्र प्रभावरहित सिद्ध हों। सभी मनुष्य काया, वाचा, मनसा और बुद्धिसे पापरहित रहें ॥ १३ ॥

अन्नका भक्षण करनेवाला प्रिय अग्नि हमारे नम्रतापूर्वक किए गए स्तोत्रोंसे प्रसन्न होकर हमारी सुरक्षा करे ॥ १४ ॥

जलोंको सुखानेवाले अग्निको अपना मित्र बनाना चाहिए, ताकि देवोंके साथ रहनेवाला वह अग्नि हमारा कल्याण करनेवाला हो ॥ १५ ॥

३२२ अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे बुध्ने नदीनां रजःसु षीदन् ॥ १६ ॥
३२३ मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धान्मा यज्ञो अस्य स्रिधदृतायोः ॥ १७ ॥
३२४ उत न एषु नृषु श्रवो धुः प्र राये यन्तु शर्धन्तो अर्यः ॥ १८ ॥
३२५ तपन्ति शत्रुं स्वर्ण भूमा महासेनासो अमेभिरेषाम् ॥ १९ ॥
३२६ आ यन्नः पत्नीर्गमन्त्यच्छा त्वष्टा सुपाणिर्दधातु वीरान् ॥ २० ॥
३२७ प्रति नः स्तोमं त्वष्टा जुषेत स्यादस्मे अरमतिर्वसूयुः ॥ २१ ॥

अर्थ— [३२२] (नदीनां बुध्ने) नदियोंके समीप भागमें (रजःसु सीदन्) पुलिनमें रहनेवाले (अब्-जां अहिं) जलको उत्पन्न करनेवाले शत्रुहन्ता अग्निको (उक्थैः गृणीषे) स्तोत्रोंसे प्रशंसित करो ॥ १६ ॥

[३२३] (बुध्न्यः अहिः नः रिषे मा धात्) अन्तरिक्षमें होनेवाला मेघनाशक विद्युत् अग्नि हमारा नाश न करे । (अस्य ऋतायोः यज्ञः मा स्रिधत्) इस सत्यके लिये जिसने अपनी आयु दी है इसका यज्ञ क्षीण न हो ॥ १७ ॥

[३२४] (उत एषु नृषु श्रवः धुः) इन हमारे लोगोंमें अन्न, धन वा यश पर्याप्त रहे । इनको पर्याप्त धन प्राप्त हो। (राये शर्धन्तः अर्यः प्रयन्तु) धनप्राप्ति करनेके कार्यमें हमारे साथ जो स्पर्धा कर रहे हैं, वे हमारे शत्रु हमसे दूर चले जांय । वहां वे असमर्थ सिद्ध हो जांय । १८ ॥

[३२५] (महासेनासः एषां अमेभिः) बडी सेना साथ रखनेवाले राजा इनके बलोंसे बलवान् होकर, (स्वः न) सूर्यके समान (शत्रुं तपन्ति) शत्रुको ताप देते हैं ॥ १९ ॥

[३२६] (यत् पत्नीः) जब पत्नियाँ (नः अच्छ आ गमन्ति) हमारे समीप आती हैं तब (सुपाणिः त्वष्टा) उस समय उत्तम हाथवाला विश्वका निर्माण कर्ता (वीरान् दधातु) वीरोंको धारण करे । हमारी स्त्रियोंको वीर पुत्र हों ऐसा करे । विश्वस्रष्टा प्रभुकी कृपासे हमारी स्त्रियोंमें वीर पुत्र उत्पन्न हों ॥ २० ॥

[३२७] (नः स्तोमं त्वष्टा प्रति जुषेत) हमारे यज्ञको स्वीकार विश्वरचयिता करे । (अरमतिः अस्मे वसुयुः स्यात्) उत्तम बुद्धिवाला विश्वरचयिता हमें बहुत धन देनेवाला होवे ॥ २१ ॥

भावार्थ— प्राचीनकालमें नदियोंके किनारे रेतीके तट पर यज्ञ किए जाते थे । उनमें अग्नियोंको प्रज्वलित किया जाता था । फिर उन प्रज्वलित अग्नियोंकी स्तुति की जाती थी ॥ १६ ॥

अन्तरिक्षमें विद्युत्के रूपमें रहकर मेघोंको बरसानेवाला अग्नि हमारी रक्षा करे । जो मनुष्य जीवन भर सत्यका पालन करता आया है, उसका यज्ञ क्षीण न हो ॥ १७ ॥

हमारे सहायकोंको पर्याप्त मात्रामें धन, अन्न और यश मिले । धनप्राप्तिके कार्योंमें जो मनुष्य हमसे शत्रुता करके हमें नीचे गिराना चाहते हैं, वे हमारे शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ १८ ॥

बडी सेना रखनेवाला राजा भी इन अग्नि, वायु, आदि देवोंके बलोंसे बलिष्ठ होकर सूर्यके समान तेजस्वी होते हैं और अपने तेजसे शत्रुओंको तपाते हैं । जब बडे बडे राजाको भी देवोंकी सहायताकी जरूरत होती है, तो फिर साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या ? ॥ १९ ॥

जब मनुष्य अपनी पत्नियोंमें पुत्रोंको उत्पन्न करें, तो वे वीर पुत्रोंको ही उत्पन्न करें ॥ २० ॥

विश्वका निर्माण करनेवाला प्रभु हमारी उपासना तथा प्रार्थनाको स्वीकार करे और फिर वह बहुत सारा धन प्रदान करे ॥ २१ ॥

३२८ ता नो॑ रासन् राति॒षाचो॒ वसू॒न्या रोद॑सी वरुणा॒नी शृ॑णोतु ।
वरू॑त्रीभिः सुश॒रणो॑ नो अस्तु॒ त्वष्टा॑ सु॒दत्रो॒ वि द॑धातु॒ राय॑ः ॥ २२ ॥
३२९ तन्नो॒ राय॑ः पर्व॑ता॒स्तन्न॒ आप॒स्तद्रा॑ति॒षाच॒ ओष॑धीरु॒त द्यौः ।
वन॒स्पति॑भिः पृथि॒वी स॒जोषा॑ उ॒भे रोद॑सी॒ परि॑ पासतो नः ॥ २३ ॥
३३० अनु॒ तदु॒र्वी रोद॑सी जिहाता॒मनु॑ द्यु॒क्षो वरु॑ण॒ इन्द्र॑सखा ।
अनु॒ विश्वे॑ म॒रुतो॒ ये स॒हासो॑ रा॒यः स्या॑म ध॒रुणं॑ धि॒यध्यै॑ ॥ २४ ॥
३३१ तन्न॒ इन्द्रो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॒ग्निराप॒ ओष॑धीर्व॒निनो॑ जुषन्त ।
शर्म॑न् त्स्याम म॒रुता॑मु॒पस्थे॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥ २५ ॥

अर्थ— [३२८] (ता वसूनि) वे हमारे लिये अभीष्ट धन (रातिषाचः नः रासन्) दान देनेवाली देवपत्नियां हमें देवें । (रोदसी वरुणानी आशृणोतु) द्यावापृथिवी और वरुणकी पत्नी हमारा स्तोत्र सुने । (सुदत्रः त्वष्टा) उत्तम दान देनेवाला त्वष्टा— विश्वरचयिता— (वरूत्रीभिः नः सुशरणः) शत्रुनिवारक शक्तियोंके साथ हमारे लिये आश्रय करने योग्य (अस्तु) होकर (रायः वि दधातु) धन हमें देवें ॥ २२ ॥

[३२९] (नः तत् रायः पर्वताः) हमारे इस धनका ये पर्वत संरक्षण करें । (नः तत् आपः) हमारे उस धनका जल संरक्षण करे, (रातिषाचः तत्) दान देनेवाली पत्नियां उस धनका संरक्षण करें । (ओषधीः उत द्यौः) औषधियां और द्यौ उसका रक्षण करें । (वनस्पतिभिः सजोषा पृथिवी) वनस्पतियोंके साथ यह पृथिवी उसका रक्षण करे । (उभे रोदसी नः तत् परि पासतः) आकाश और पृथिवी ये दो मिलकर हमारे उस धनका संरक्षण करें ॥२३॥

[३३०] (उर्वी रोदसी तत् अनुजिहातां) ये विशाल द्यावापृथिवी इसका अनुमोदन करे । (द्युक्षः इन्द्र-सखा वरुणः अनु) तेजस्वी इन्द्रका मित्र वरुण अनुमोदन करे । (ये सहासः विश्वे मरुतः अनु) जो शत्रुका पराभव करनेवाले मरुत् वीर हैं, वे अनुकूल हों । (धियध्यै रायः धरुणं स्याम) धारण करने योग्य धनके हम धारण करनेवाले बनें ॥ २४ ॥

[३३१] (नः तत्) हमारा वह स्तोत्र इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, आप्, ओषधियाँ (वनिनः जुषंत) वनमें रहनेवाले वृक्ष ये सब सेवन करें । हम (मरुतां उपस्थे शर्मन् स्याम) मरुत् वीरोंके समीप कल्याण रूप स्थानमें रहें । (सदा नः यूयं स्वस्तिभिः पात) सदा हमें आप कल्याणके साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ २५ ॥

भावार्थ— हम देवपत्नियों अर्थात् देवोंकी शक्तियोंसे युक्त हों, द्यु, पृथ्वी तथा वरुणकी शक्ति हमारी स्तुति सुने ! उत्तम दान देनेवाला तथा विश्वका रचयिता प्रभु शत्रुको नष्ट करनेवाली शक्तियोंसे युक्त होकर हमें अपने आश्रयमें ले ॥ २२ ॥

पर्वत, नदियां, जलप्रवाह, ओषधियां, द्यौः, पृथिवी ये सब हमारे सब प्रकारके धनका संरक्षण करें । पर्वतोंसे शत्रुकी गति रुकती है और राष्ट्रका संरक्षण होता है । नदियोंके प्रवाहसे धान्यादि उत्पन्न होकर राष्ट्रकी समृद्धि होती है । औषधि वनस्पतियोंसे रोग दूर होकर प्रजाजनोंके स्वास्थ्यकी रक्षा होती है । इस तरह विश्वके सभी पदार्थ प्राणियोंको सहायता दे रहे हैं ॥ २३ ॥

हम जो भी काम करें, उसमें हमें द्यु, पृथिवी, इन्द्र, मित्र, वरुण, मरुत् आदि सभी देवोंका समर्थन प्राप्त हो और हम धारण करने योग्य धनोंको प्राप्त करें ॥ २४ ॥

सभी देव हमारी प्रार्थना सुनें, हमारी सहायता करें, हम सुरक्षित हों और धनसे युक्त हों ॥ २५ ॥

[३५]

(ऋषिः- १५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता - विश्वे देवाः छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

३३२ शं न॑ इन्द्राग्नी भ॑वतामवो॑भिः शं न॒ इन्द्रा॒वरु॑णा रा॒तह॑व्या ।
शमिन्द्रा॒सोमा॑ सुवि॒ताय॒ शं योः शं न॒ इन्द्रा॑पू॒षणा॒ वाज॑सातौ ॥ १ ॥
३३३ शं नो॒ भगः॒ शमु॑ नः॒ शंसो॑ अस्तु॒ शं नः॒ पुरं॑धिः॒ शमु॑ सन्तु॒ रायः॑ ।
शं नः॑ स॒त्यस्य॑ सु॒यम॑स्य॒ शंसः॒ शं नो॑ अर्य॒मा पु॑रुजा॒तो अ॑स्तु ॥ २ ॥
३३४ शं नो॑ धा॒ता शमु॑ ध॒र्ता नो॑ अस्तु॒ शं न॑ उरू॒ची भ॑वतु स्व॒धाभिः॑ ।
शं रोद॑सी बृह॒ती शं नो॒ अद्रिः॒ शं नो॑ दे॒वानां॑ सु॒हवा॑नि सन्तु ॥ ३ ॥
३३५ शं नो॑ अ॒ग्निर्ज्योति॑रनीको अस्तु॒ शं नो॑ मि॒त्रावरु॑णाव॒श्विना॒ शम् ।
शं नः॑ सु॒कृतां॑ सुकृ॒तानि॑ सन्तु॒ शं न॑ इषि॒रो अ॒भि वा॑तु॒ वातः॑ ॥ ४ ॥

---

[३५]

अर्थ— [३३२] (इन्द्राग्नी अवोभिः नः शं भवतां) इन्द्र और अग्नि अपने संरक्षणोंसे हमारे लिये शांति देनेवाले हों। (रातहव्या इन्द्रावरुणा नः शं) जिनको हवि दिया है ऐसे ये इन्द्र और वरुण हमें शांति देनेवाले हों। (इन्द्रासोमा नः शं शं सुविताय च) इन्द्र और सोम हमारे लिये शांति तथा कल्याण देनेवाले हों, और (इन्द्रापूषणा वाजसातौ नः शं योः) इन्द्र और पूषा युद्धमें हमारा कल्याण करनेवाले हों ॥ १ ॥

[३३३] (भगः न शं अस्तु) भग हमें शांति देनेवाला हो, (शंसः नः शं उ) मनुष्योंद्वारा प्रशंसित देव हमें शांति देनेवाला हो। (पुरंधिः नः शं) विशाल बुद्धि हमें शांति देवे और (रायः शं उ सन्तु) सब प्रकारके धन हमें शांति देवें। (सुयमस्य सत्यस्य शंसः नः शं) उत्तम नियमपूर्वक बोला जानेवाला सत्य वचन हमें शांति देनेवाला हो। (पुरुजातः अर्यमा नः शं अस्तु) बहुत प्रशंसित अर्यमा हमें शांति देनेवाला हो ॥ २ ॥

[३३४] (धाता नः शं) आधार देनेवाला हमें शांति देनेवाला हो, (धर्ता नः शं उ अस्तु) धारणकर्ता हमें शांति देनेवाला हो। (उरूची स्वधाभिः नः शं भवतु) गति करनेवाली पृथिवी अन्नोंसे हमें शांति देनेवाली हो। (बृहती रोदसी नः शं) बडी द्यावापृथिवी हमें शांति देवे। (अद्रिः नः शं) पर्वत हमें शांति देवे। (देवानां सुहवानि नः शं सन्तु) देवोंकी स्तुतियां हमें शान्ति देनेवाली हों ॥ ३ ॥

[३३५] (ज्योतिरनीकः अग्निः नः शं अस्तु) तेजही जिसकी सेना है ऐसा अग्नि हमारे लिये शांति देनेवाला हो। (मित्रावरुणा नः शं) मित्र और वरुण, सूर्य और चन्द्र हमारे लिये शांति देनेवाले हों। (अश्विना शं) अश्विदेव हमें शांति देनेवाले हों। (सुकृतां सुकृतानि नः शं सन्तु) सत्कर्म करनेवालोंके सत्कर्म हमारी शांति बढानेवाले हों। (इषिरः वातः नः शं अभि वातु) गतिशील वायु हमारे लिये कल्याण करनेवाला होकर बहता रहे ॥ ४ ॥

भावार्थ— जीवनकी स्पर्धामें विद्युत् स्वरूप अग्नि, उष्णता देनेवाला अग्नि, जल देव वरुण, सोम पूषा आदि देव हमारे सहायक हों। उनकी कृपासे जो धन हमारे पास है, उसकी रक्षा करें और जो धन नहीं है, उसकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करें ॥ १ ॥

ऐश्वर्य, प्रशंसा, विशाल बुद्धि, धन, सत्यभाषण, श्रेष्ठत्वका निर्णय करनेवाला न्यायाधिपति ये सभी हमारे अन्दर शान्ति स्थापन करनेवाले हों ॥ २ ॥

सृष्टिकी रचना करनेवाला सर्वाधार देव यह पृथिवी आकाश, पर्वत और उपासना ये सब हमें शान्ति देनेवाले हों ॥ ३ ॥

तेजस्वी अग्नि, मित्र, वरुण, अश्विनौ और वायु ये सभी देव हमें शान्ति दें। इसी प्रकार पुण्यकर्म करनेवाले महापुरुषोंके प्रशंसित कर्म भी हमारे लिए शान्ति बढानेवाले हों ॥ ४ ॥

३३६ शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥ ५ ॥

३३७ शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥

३३८ शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥

३३९ शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥

अर्थ— [३३६] (पूर्वहूतौ द्यावापृथिवी नः शं) प्रथम प्रार्थना किये द्यावा पृथिवी हमें शांति प्रदान करें। (अन्तरिक्षं नः दृशये शं अस्तु) अन्तरिक्ष हमारे दर्शनके लिये शांति देनेवाला हो। (वनिनः ओषधीः नः शं भवन्तु) वनमें उत्पन्न होनेवाले वृक्ष और औषधियाँ हमें शांति दें। (जिष्णुः रजसः पतिः नः शं अस्तु) विजयशाली लोकपति हमें शांति दें ॥ ५ ॥

[३३७] (देवः इन्द्रः वसुभिः नः शं अस्तु) इन्द्र देव अष्ट वसुओंके साथ हमें शांति दें। (सुशंसः वरुणः आदित्येभिः शं) प्रशंसनीय वरुण द्वादश आदित्योंके साथ हमें शांति दें। (जलाषः रुद्रः रुद्रेभिः नः शं) जल देनेवाला रुद्र एकादश रुद्रोंके साथ हमें शांति दें। (ग्नाभिः त्वष्टा इह नः शं शृणोतु) देवशक्तियोंके साथ त्वष्टा यहां शांतिसे हमारे स्तोत्र सुनें ॥ ६ ॥

[३३८] (सोमः नः शं भवतु) सोम हमें शांति दें। (ब्रह्म नः शं) ब्रह्म हमें शांति दें। (ग्रावाणः नः शं) पत्थर हमें शांति दें। (यज्ञाः नः शं उ सन्तु) यज्ञ हमें शान्ति दें। (स्वरूणां मितयः नः शं भवन्तु) यूपोंके प्रमाण हमें शांति दें। (प्रस्वः नः शं) औषधियां हमें शान्ति दें। (वेदिः नः शं उ अस्तु) वेदि हमें शांति दे ॥ ७ ॥

[३३९] (उरुचक्षाः सूर्यः नः शं उदेतु) विशाल तेजवाला सूर्य हमारी शांतिके लिये उदित हो। (चतस्रः प्रदिशः नः शं भवन्तु) चारों दिशाएँ हमें शांति दें। (ध्रुवयः पर्वताः नः शं भवन्तु) स्थिर पर्वत हमें शांति दें। (सिन्धवः नः शं) समुद्र हमें शान्ति दें। (आपः नः शं उ सन्तु) जल हमें शांति दे ॥ ८ ॥

भावार्थ— द्युलोक और पृथिवीलोक हमें शान्ति प्रदान करें। अन्तरिक्ष हमें शान्ति देनेवाला हो। वनमें उत्पन्न होनेवाले वृक्ष औषधियां आदि हमें शान्ति दें ॥ ५ ॥

इन्द्र हमें आठ वसुओंके साथ युक्त होकर हमें शान्ति दें। वरुणदेव बारह आदित्योंसे युक्त होकर हमें शान्ति दें। ग्यारह रुद्र हमें शान्ति दें तथा देवशक्तियोंके साथ त्वष्टा देव हमारे स्तोत्र सुने ॥ ६ ॥

सोम, ब्रह्म, पत्थर, यज्ञ, यूप, औषधियां और वेदी हमें शान्ति प्रदान करें ॥ ७ ॥

विशेष तेजस्वी सूर्य हमें शान्ति प्रदान करनेके लिए उदित हो। चारों दिशायें हमें शान्ति प्रदान करें। स्थिर पर्वत हमें शान्ति दें, समुद्र और अन्य जल भी हमें शान्ति दें ॥ ८ ॥

३४० शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥ ९ ॥
३४१ शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥ १० ॥
३४२ शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥ ११ ॥
३४३ शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥ १२ ॥
३४४ शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः१ शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥ १३ ॥

अर्थ— [३४०] (अदितिः व्रतेभिः नः शं भवतु) अदिति अपने व्रतोंसे हमें शांति दे । (स्वर्काः मरुतः नः शं भवन्तु) उत्तम तेजस्वी मरुत् वीर हमें शांति दें । (विष्णुः नः शं) विष्णु हमें शांति दें । (पूषा नः शं उ अस्तु) पूषा हमें शान्ति दें । (भवित्रं नः शं) भुवन हमें शान्ति दें । (वायुः शं उ अस्तु) वायु हमें शांति दें ॥ ९ ॥

[३४१] (त्रायमाणः सविता देवः नः शं) संरक्षणकर्ता सविता देव हमें शान्ति दें । (विभातीः उषसः नः शं भवन्तु) तेजस्वी उषाएं हमें शांति दें । (पर्जन्यः नः शं भवतु) पर्जन्य हमें शांति दें । (क्षेत्रस्य शंभुः पतिः नः प्रजाभ्यः शं अस्तु) देशका कल्याण करनेवाला अधिपति हमारी प्रजाके लिये शांति दें ॥ १० ॥

[३४२] (विश्वदेवाः नः शं भवन्तु) सब प्रकाशमान देव हमें शांति दें । (सरस्वती धीभिः सह शं अस्तु) सरस्वती बुद्धियोंके साथ हमें शांति दें । (अभिषाचः शं) यज्ञकी सेवा करनेवाले हमें शांति दें । (रातिषाचः नः शं उ) दान देनेवाले हमें शांति दें । (दिव्याः पार्थिवाः अप्याः) द्युलोक, पृथिवी और जलमें उत्पन्न होनेवाले (नः शं) हमें शांति दें ॥ ११ ॥

[३४३] (सत्यस्य पतयः नः शं भवन्तु) सत्यका पालन करनेवाले हमें शांति देनेवाले हों । (अर्वन्तः गावः नः शं सन्तु) घोडे और गौवें हमें शांति दें । (सुकृतः सुहस्ताः ऋभवः नः शं) कुशलतासे कर्म करनेवाले उत्तम हाथवाले ऋभु हमें शांति दें । (हवेषु पितरः नः शं भवन्तु) यज्ञमें पितर हमें शांति देनेवाले हों ॥ १२ ॥

[३४४] (अजः एकपात् देवः नः शं अस्तु) एक पाद् अज देव हमें कल्याण करनेवाला हो । (अहिः बुध्न्यः नः शं) अहिर्बुध्न्य हमें शांति दे । (समुद्रः शं) समुद्र शांति दे । (पेरुः अपां नपात् नः शं अस्तु) आपत्तियोंसे पार करनेवाला अपां नपात् देव हमें शांति दे । (देवगोपा पृश्निः नः शं भवतु) देवों द्वारा सुरक्षित गौ हमें शांति प्रदान करें ॥ १३ ॥

भावार्थ— अदिति, उत्तम तेजस्वी मरुत् वीर, विष्णु, पूषा, भुवन और वायु हमें शान्ति प्रदान करें ॥ ९ ॥

संरक्षणकर्ता सविता, तेजस्वी उषायें, पर्जन्य, देशका कल्याण करनेवाला अधिपति हमारी प्रजाके लिए शान्ति प्रदान करे ॥ १० ॥

सभी तेजस्वी देव, देवी सरस्वती उत्तम बुद्धियोंके साथ, यज्ञकी सेवा करनेवाले, दान देनेवाले, द्यु, पृथिवी और जलमें उत्पन्न होनेवाले हमें शान्ति दें ॥ ११ ॥

सत्यका पालन करनेवाले, घोडे और गायें, कुशलतासे कर्म करनेवाले उत्तम हाथोंवाले ऋभु तथा यज्ञोंमें जानेवाले पितर हमें शांति दें ॥ १२ ॥

३४५ आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तेदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥ १४ ॥
३४६ ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १५ ॥

[३६]

(ऋषिः- १ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

३४७ प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य वि रश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः ।
वि सानुना पृथिवी सस्र उर्वी पृथु प्रतीकमध्येधे अग्निः ॥ १ ॥

अर्थ— [३४५] (नवीयः क्रियमाणं इदं ब्रह्म) नवीन किया जानेवाला यह स्तोत्र है, इसको आदित्य, वसु और रुद्र स्वीकार करें । (दिव्याः) द्युलोकमें उत्पन्न (पार्थिवासः) पृथिवीपर उत्पन्न (गो जाताः) स्वर्गमें उत्पन्न अथवा गौके हित करनेके लिये उत्पन्न (उत ये यज्ञियासः) और जो यज्ञके योग्य हैं वे सब (नः शृण्वन्तु) हमारी प्रार्थना सुनें ॥ १४ ॥

[३४६] (ये यज्ञियानां देवानां यज्ञियाः) जो पूजनीय देवोंके लिये भी पूजनीय हैं, जो (मनोः यजत्राः ते) मनुके लिये भी पूज्य हैं वे (ऋतज्ञाः अमृताः) ऋत जाननेवाले अमर देव (अद्य उरुगायं नः रासन्तां) आज हमें विस्तृत प्रशंसनीय यश दें । विस्तृत यश प्राप्त करनेवाला पुत्र प्रदान करें । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप सदा हमें कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ १५ ॥

[३६]

[३४७] (ऋतस्य सदनात् ब्रह्म प्र एतु) सत्यके स्थानसे ज्ञान फैले । (सूर्यः रश्मिभिः गाः विससृजे) सूर्य अपने किरणोंसे वृष्टिके उदक भेजता है (उर्वी पृथिवी सानुना वि सस्रे) विशाल पृथिवी पर्वत शिखरोंसे युक्त बनी है । (अग्निः पृथु प्रतीकं अधि आ ईधे) अग्नि विस्तीर्ण पृथिवीके प्रतीक रूप वेदीपर प्रदीप्त होता है ॥ १ ॥

भावार्थ— उदयके समय सूर्यका एक अंश जो ऊपर आता है, वह एकपात् कहाता है, वह एकपाद् सूर्य हमारा कल्याण करनेवाला हो । सबको आधार देनेवाला तथा कभी नष्ट न होनेवाला मूलाधार देव हमें शान्ति दे । समुद्र शान्ति प्रदान करे । जलोंको न गिरानेवाला मेघस्थ विद्युद्रूप अग्नि हमें आपत्तियोंसे पार कराये । देव जिसकी रक्षा करते हैं, या जो देवोंकी रक्षा करता है, वह माता अदिति हमारी रक्षा करे ॥ १३ ॥

यह स्तोत्र नया ही किया गया है, इस स्तोत्रको आदित्य, वसु और रुद्र स्वीकार करें । जो द्युलोकमें उत्पन्न, पृथिवी पर उत्पन्न तथा अन्तरिक्ष या स्वर्गमें उत्पन्न तथा यज्ञमें सत्कारके योग्य हैं, वे सभी देव हमारी प्रार्थना सुनें ॥ १४ ॥

जो पूज्योंके लिए भी पूज्य हैं, जो मननीय विद्वान्के द्वारा भी पूज्य हैं, वे ऋत या नैतिक नियमोंके अनुसार आचरण करनेवाले देव हमें आज विस्तृत यश प्रदान करें तथा कल्याणकारी साधनोंसे हमारी रक्षा करें ॥ १५ ॥

सत्यके केन्द्रसे सत्यज्ञान फैलता है । यज्ञस्थानसे ज्ञानके सूक्त प्रसृत हुए हैं । यज्ञसे ज्ञानके सूक्त किस तरह प्रसृत हुए हैं ? इस विषयमें मंत्र स्पष्ट करता है— सूर्य अपनी किरणोंसे वृष्टिकी उत्पत्ति करता है । पर्वतके शिखरोंसे युक्त यह पृथिवी वृष्टि जलको ग्रहण करती है और धान्यको उत्पन्न करती है । अग्नि वेदिमें प्रदीप्त होता है, उसमें इस धान्यका हवन किया जाता है और उस समय ज्ञानके सूक्त गाये जाते हैं । इस प्रकार यज्ञस्थानमें ज्ञान सूक्तोंकी उत्पत्ति होती है ॥ १ ॥

३४८ इमां वां मित्रावरुणा सुवृक्ति—मिषं न कृण्वे असुरा नवीयः ।
इनो वामन्यः पदवीरदब्धो जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः ॥ २ ॥
३४९ आ वातस्य ध्रजतो रन्त इत्या अपीपयन्त धेनवो न सूदाः ।
महो दिवः सदने जायमानो ऽचिक्रदद् वृषभः सस्मिन्नूधन् ॥ ३ ॥
३५० गिरा य एता युनजद्धरी त इन्द्र प्रिया सुरथा शूर धायू ।
प्र यो मन्युं रिरिक्षतो मिना—त्या सुक्रतुमर्यमणं ववृत्याम् ॥ ४ ॥
३५१ यजन्ते अस्य सख्यं वयश्च नमस्विनः स्व ऋतस्य धामन् ।
वि पृक्षो बाबधे नृभिः स्तवान इदं नमो रुद्राय प्रेष्ठम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [३४८] हे (असुरा मित्रावरुणा) बलशाली मित्र और वरुण ! (वां इषं न) आप दोनोंके लिये अन्नके समान (नवीयः इमां सुवृक्तिं कृण्वे) इस नवीन स्तोत्रको करता हूं । (वां अन्यः इनः अदब्धः) आपमेंसे एक वरुण प्रभु है और न दबनेवाला है और (पद-वीः) धर्माधर्मका निर्णय करके योग्य स्थान देनेवाला है और (ब्रुवाणः मित्रः च जनं यतति) प्रशंसित हुआ मित्र लोगोंको धर्म मार्गमें प्रेरित करता है ॥ २ ॥

[३४९] (ध्रजतः वातस्य इत्या आ रन्ते) चलनेवाले वायुकी गति चारों ओर सुशोभित होती है । (सूदाः धेनवः न अपीपयन्त) दूध देनेवाली गौवें बढती हैं । तथा (महः दिवः सदने जायमानः) इस विशाल द्युलोकके स्थानमें उत्पन्न होनेवाला (वृषभः) वृष्टि करनेवाला मेघ (सस्मिन् ऊधन्) उस अन्तरिक्षमें (अचिक्रदत्) गर्जना करता है ॥ ३ ॥

[३५०] हे (शूर इन्द्र) शूर इन्द्र ! (ते प्रिया सुरथा धायू हरी) तेरे प्रिय रथमें जोते जानेवाले बलवान् घोडे हैं, (यः गिरा एता युनजत्) जो उत्तम शब्दोंके साथ इनको रथके साथ जोडता है वहां तुम जाते हैं । (यः रिरिक्षतः मन्युं प्र मिनाति) जो हिंसक शत्रुके क्रोधको दूर करता है, निष्फल बनाता है, उस (सुक्रतुं अर्यमणं आ ववृत्यां) उत्तम कर्म करनेवाले अर्यमाको मैं अपनी ओर लाता हूं ॥ ४ ॥

[३५१] (नमस्विनः ऋतस्य स्वे धामन्) अन्नवाले यज्ञके अपने स्थानमें रहकर (वयः अस्य सख्यं यजन्ते) प्रगतिशील लोग इस रुद्रकी मित्रता करनेके लिये यज्ञ करते हैं । (नृभिः स्तवानः पृक्षः वि बाबधे) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित होकर रुद्र उपासकोंको अन्न देता है । (रुद्राय प्रेष्ठं इदं नमः) इस रुद्रके लिये यह प्रियतर यह स्तोत्र है ॥ ५ ॥

भावार्थ— मनुष्य प्रभावी सामर्थ्यसे युक्त बने, शत्रुसे न दबे । मनुष्योंकी परीक्षा करके उन्हें यथायोग्य स्थान प्रदान करे और सब लोगोंके साथ मित्रवत् आचरण करके उन्हें सत्कार्यमें प्रवृत्त करते जाएं ॥ २ ॥

जब चलनेवाले वायुकी गति चारों ओर सुशोभित होती है, तब द्युलोकमें बहुत ऊंचाई पर रहनेवाले मेघ अन्तरिक्षसे पृथ्वीके पास आकर गर्जते हैं, तब बरसात होकर धान्यकी उत्पत्ति होती है, उससे दूध देनेवाली गायें पुष्ट होकर समृद्ध होती हैं ॥ ३ ॥

हे शूर इन्द्र ! ये सामर्थ्यशाली घोडे तेरे ही रथमें जोडे जाने योग्य हैं । अर्यमा हिंसक शत्रुओंके क्रोधको दूर करता है, उनके क्रोधको निष्फल बनाता है और स्वयं उत्तम कर्म करता है ॥ ४ ॥

स्तुति करनेवाले मनुष्य रुद्र या शत्रुओं और दुष्टोंको रुलानेवाले प्रभुकी मित्रता प्राप्त करनेके लिए यज्ञ करते हैं । तब मनुष्योंके द्वारा स्तुत होकर वह प्रभु उपासकोंको अन्न देता है ॥ ५ ॥

×

३५२ आ यत् साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता ।
याः सुष्वयन्त सुदुघाः सुधारा अभि स्वेन पयसा पीप्यानाः ॥ ६ ॥
३५३ उत त्ये नो मरुतो मन्दसाना धियं तोकं च वाजिनोऽवन्तु ।
मा नः परि ख्यदक्षरा चरन्त्यवीवृधन् युज्यं ते रयिं नः ॥ ७ ॥
३५४ प्र वो महीमरमतिं कृणुध्वं प्र पूषणं विदथ्यं१ न वीरम् ।
भगं धियोऽवितारं नो अस्याः सातौ वाजं रातिषाचं पुरंधिम् ॥ ८ ॥
३५५ अच्छायं वो मरुतः श्लोक एत्वच्छा विष्णुं निषिक्तपामवोभिः ।
उत प्रजायै गृणते वयो धुर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥

अर्थ— [३५२] (सिन्धुमाता सप्तथी सरस्वती) माताके समान सिन्धु नदी और सातवी सरस्वती नदी (सुधाराः सुदुघाः याः सुष्वयन्त) उत्तम प्रवाहवाली और उत्तम दूध देनेवाली गौओंसे युक्त होकर बहती रहें । (स्वेन पयसा पीप्यानाः) अपने जलसे भरपूर होकर (याः यशसः वावशानाः) अन्न बढानेकी कामनासे (साकं अभि आ) साथ साथ बहती रहें ॥ ६ ॥

[३५३] (उत मन्दसाना वाजिनः त्ये मरुतः) आनन्द बढानेवाले बलवान वे मरुत् वीर (नः तोकं धियं च अवन्तु) हमारे पुत्रोंको और बुद्धियुक्त कर्मोंको सुरक्षित रखें । (अक्षरा चरन्ती नः परि मा ख्यत्) अविनाशी चलनेवाली वाणी हमें छोडकर किसी अन्यको न देखे · हमारे पास ही रहे । (ते नः युज्यं रयिं अवीवृधन्) वे मरुद्गण और वाणी हमारे योग्य धनको बढावें ॥ ७ ॥

[३५४] (वः महीं अरमतिं प्र कृणुध्वं) आप विशाल भूमिको मांगो । तथा (विदथ्यं पूषणं वीरं न) युद्धके योग्य वीर पूषाको मांगो । (नः अस्याः धियः अवितारं भगं) हमारे इस बुद्धियुक्त कर्मका संरक्षण करनेवाले भग देवके पास मांगो । तथा (पुरंधिं रातिषाचं वाजं सातौ) नगरकी धारणा करनेवाली जिसकी बुद्धि है और जो दानशील है उस बलवान् देवकी सहायता युद्धके समय मांगो ॥ ८ ॥

[३५५] हे (मरुतः) मरुद्वीरो ! (वः अयं श्लोकः अच्छ एतु) आपका यह स्तोत्र आपके पास सीधा पहुंचे । (निषिक्तपां अवोभिः विष्णुं अच्छ) गर्भका संरक्षण अपनी संरक्षक शक्तियोंसे करनेवाले विष्णुके पास यह स्तोत्र पहुंचे । (उत प्रजायै गृणते वयः धुः) वे सन्तान और अन्न उपासकको दें । (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) आप हमें कल्याणके साधनोंसे सदा सुरक्षित रखो ॥ ९ ॥

भावार्थ— सात नदियां हैं । इनमें सिन्धु नदी माता है और सातवीं नदी सरस्वती है । इन नदियोंके तीरों पर दुधारू गायें संचार करती रहें । अपने जलसे ये नदियां भूमिका उपजाऊ गुण बढायें और पर्याप्त अन्न दें । ये नदियां सदा बहती रहें और अन्न देती रहें ॥ ६ ॥

सभी प्राणिमात्रको आनन्द देनेवाले ये बलवान् मरुत् हमारे पुत्रों और बुद्धियुक्त कर्मोंको सुरक्षित रखें । हमारी वाणी हमारी उन्नतिका साधन बने । सभी देव हमारी वाणीको प्रशस्त करें ॥ ७ ॥

मनुष्य इस पृथ्वी पर अपने लिए विस्तृत कार्यक्षेत्रका निर्माण करें । युद्धमें जाकर विजय प्राप्त करनेवाले तथा वीरोंका पोषण करनेवाले पुत्रको उत्पन्न करें । वह पुत्र बुद्धिपूर्वक किए गए उत्तम कर्मोंकी रक्षा करे तथा युद्धके समय नगरका संरक्षण, दान देनेमें कुशल और बलवान् हो ॥ ८ ॥

जिस तरह विष्णु अर्थात् व्यापक प्रभु अपने गर्भ रूप प्राणियोंकी रक्षा करता है, उसी तरह राजा अपनी प्रजाओंकी रक्षा करे । राष्ट्रमें जो अन्न उत्पन्न हो, उसका उपयोग राजा अपनी प्रजाओंके पोषणके लिए करे ॥ ९ ॥

[३७]

(ऋषिः— ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता— विश्वे देवाः । छन्दः— त्रिष्टुप् ।)

३५६ आ वो वाहिष्ठो वहतु स्तवध्यै रथो वाजा ऋभुक्षणो अमृक्तः ।
अभि त्रिपृष्ठैः सवनेषु सोमैर्मदे सुशिप्रा महभिः पृणध्वम् ॥ १ ॥

३५७ यूयं ह रत्नं मघवत्सु धत्थ स्वर्दृश ऋभुक्षणो अमृक्तम् ।
सं यज्ञेषु स्वधावन्तः पिबध्वं वि नो राधांसि मतिभिर्दयध्वम् ॥ २ ॥

३५८ उवोचिथ हि मघवन् देष्णं महो अर्भस्य वसुनो विभागे ।
उभा ते पूर्णा वसुना गभस्ती न सूनृता नि यमते वसव्या ॥ ३ ॥

३५९ त्वमिन्द्र स्वयशा ऋभुक्षा वाजो न साधुरस्तमेष्यृक्वा ।
वयं नु ते दाश्वांसः स्याम ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः ॥ ४ ॥

---

[३७]

अर्थ— [३५६] (ऋभुक्षणः वाजाः) हे तेजस्वी ऋभु देवो ! (वः वाहिष्ठः स्तवध्यै अमृक्तः रथः आ वहतु) आपको यह वाहक प्रशंसनीय और अहिंसित रथ यहां ले आवे । हे (सुशिप्राः) शोभन शिरस्त्राणवालो अथवा सुन्दर हनुवालो ! (सवनेषु मदे त्रिपृष्ठैः महोभिः सोमैः) हमारे यज्ञोंमें आनन्द करनेके लिये दूध-दहि-सत्तु मिश्रित महान सोमरसोंसे (आ पृणध्वं) अपने पेट भरो ॥ १ ॥

[३५७] हे (ऋभुक्षणः) तेजस्वी ऋभुओ ! (स्वर्दृशः यूयं) आत्मदर्शी आप लोग (मघवत्सु अमृक्तं रत्नं धत्थ) धनवान हम दाताओंके लिये अहिंसित रत्नोंका प्रदान करो । (स्वधावन्तः यज्ञेषु सं पिबध्वं) बलवान तुम लोग हमारे यज्ञोंमें सोमरसका पान करो । तथा (मतिभिः राधांसि नः दयध्वं) अपनी बुद्धियोंके साथ सिद्धि देनेवाले धनोंको हमें दे दो ॥ २ ॥

[३५८] हे (मघवन्) धनपते ! तुम (महः अर्भस्य वसुनः विभागे) बडे और अल्प धनके विभाग करनेके समय (देष्णं उवोचिथ हि) देने योग्य धनको तुम लेते हैं । (ते उभा गभस्ती) तुम्हारे दोनों बाहु (वसुना पूर्णा) धनसे भरपूर भरे हैं । (सूनृता वसव्या न नियमते) तुम्हारी उत्तम वाणी धनका प्रदान करनेके समय बाधक नहीं होती ॥ ३ ॥

[३५९] हे इन्द्र ! (स्वयशाः ऋभुक्षाः त्वं) अपने यशसे युक्त कारीगरोंका निवास करनेवाले तुम (साधुः वाजः न ऋक्वा) उत्तम साधक अन्नकी तरह पूजा योग्य (अस्तं एषि) हमारे घरके समान आते हैं । हे (हरिवः) उत्तम घोडोंसे युक्त वीर ! (वयं वसिष्ठाः ते दाश्वांसः स्याम) अब हम वसिष्ठ तुम्हें हवि अर्पण करनेके लिये सिद्ध हैं तथा (ते ब्रह्म कृण्वन्तः) तेरा स्तोत्र भी करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे तेजस्वी ऋभु देवो ! तुम सबको यह प्रशंसित और कहींसे भी न टूटा फूटा रथ यहां ले आवे । तुम हमारे यज्ञमें आकर तृप्त होओ ॥ १ ॥

ये तेजस्वी कारीगर आत्मदर्शी हों । वे परम सत्य और सुखकी ओर दृष्टि रखनेवाले हों । दुष्ट भी जिसे चुरा या लूट न सकें ऐसा धन प्रदान करें । हमारे पास उत्तम और अन्तिम सिद्धि तक पहुंचनेवाली बुद्धि हो ॥ २ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! जब धनके दानका समय आता है, तब तू उत्तम धनही देता है । क्योंकि तेरे दोनों हाथ धनसे पूर्ण हैं । तेरी सत्यभाषण करनेवाली वाणी धनका दान करते समय किसीके द्वारा रोकी नहीं जा सकती । जब इन्द्र धन दानके लिए आज्ञा देने लगता है, उस समय उसको आज्ञाको कोई रोक नहीं सकता ॥ ३ ॥

३६० सनितासि प्रवतो दाशुषे चिद् याभिर्विवेषो हर्यश्व धीभिः ।
ववन्मा नु ते युज्याभिरूती कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः ॥ ५ ॥
३६१ वासयसीव वेधसस्त्वं नः कदा न इन्द्र वचसो बुबोधः ।
अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरं पृक्षो नो अर्वा न्युहीत वाजी ॥ ६ ॥
३६२ अभि यं देवी निर्ऋतिश्चिदीशे नक्षन्त इन्द्रं शरदः सुपृक्षः ।
उप त्रिबन्धुर्जरदष्टिमेत्यस्ववेशं यं कृणवन्त मर्ताः ॥ ७ ॥
३६३ आ नो राधांसि सवितः स्तवध्या आ रायो यन्तु पर्वतस्य रातौ ।
सदा नो दिव्यः पायुः सिषक्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

अर्थ— [३६०] हे (हर्यश्व) उत्तम घोडोंको पास रखनेवाले ! तुम (याभिः धीभिः विवेषः) जिन बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंसे सर्वत्र व्यापते हो, ऐसे तुम (दाशुषे चित् प्रवतः सनिता असि) दाताके लिये उत्तम धनके दाता होते है। हे इन्द्र ! तुम (नः कदा रायः आ दाशस्येः) हमें कब धनोंका प्रदान करोगे ! (नु ते युज्याभिः ऊती ववन्म) आज तुम्हारी योग्य सुरक्षासे हम सुरक्षित होंगे ॥ ५ ॥

[३६१] हे इन्द्र ! (नः वचसः कदा बुबोध) तुम हमारा वचन कब समझोगे ? कब हमारी प्रार्थना सुनोगे ? (त्वं नः वेधसः वासयसि इव) तुम हमारा निवास करनेवाले हो। (वाजी अर्वा) तुम्हारा बलवान् घोडा (तात्या धिया) हमारी विस्तृत वाणसे प्रेरित होकर (सुवीरं रयिं) उत्तम वीर पुत्र युक्त धनको (पृक्षः) तथा अन्नको (नः अस्त नि उहीत) हमारे घरमें ले आवे ॥ ६ ॥

[३६२] (देवी निर्ऋतिः चित् यं ईशे) देवी भूमि इसनके लिये (यं अभि नक्षन्ते) जिसकी ओर देखती है। (सुपृक्षः शरदः यं इन्द्रं) उत्तम अन्नस युक्त वर्ष जिसको देखते हैं। (मर्ताः यं अस्ववेशं कृण्वन्तः) मनुष्य जिसको अपने घरमें ठहरने देते, (त्रिबन्धुः जरदष्टिं उप एति) वह तीनों लोकोंका भाई इन्द्र बहुत बडे बलसे हमारे समीप आ जावे। हमें बडा बल देवे ॥ ७ ॥

[३६३] हे (सवितः) सबके प्रेरक देव ! (स्तवध्ये राधांसि) प्रशंसनीय धन (नः आ यन्तु) हमारे पास आ जाय। (पर्वतस्य रातौ रायः आ) पर्वतके दानके समय धन हमारे पास आ जाय। (पायुः दिव्यः सदा नः सिषक्तु) पालन कर्ता देव सदा हमारी सुरक्षा करे (यूयं सदा स्वस्तिभिः नः पात) आप सदा संरक्षणोंसे हमारी सुरक्षा कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ— इन्द्र अपने प्रयत्नसे यश कमाता है और अपने सहयोगियोंको अपने पास रखता है। राजा तथा वीर अपने प्रयत्नसे अपना यश बढावे और अपने आश्रयमें सहयोगियोंको रखे ॥ ४ ॥

मनुष्य बुद्धिपूर्वक किए गए अपने पुरुषार्थोंसे सर्वत्र यशस्वी हो अर्थात् अपने यशके द्वारा वह सर्वत्र गमन करे। सभी जन इन्द्रसे सुरक्षित होकर पुरुषार्थी हों ॥ ५ ॥

राजाके राष्ट्रमें ज्ञानी सुखसे निवास करें। राष्ट्रकी ऐसी सुव्यवस्था हो कि उत्तमसे उत्तम ज्ञानी भी आकर उस राष्ट्रमें रहें। तथा उस राष्ट्रमें सबके घर उत्तम वीर सन्तान हों ॥ ६ ॥

भूमि जिसे अपना अधिपति मानती है, सभी संवत्सर जिसके लिए सुखमय होते हैं, मनुष्य जिसे अपने हृदयप्रदेशमें बिठाते हैं, वह हमारा प्रभु हमें उत्तम बल प्रदान करे ॥ ७ ॥

प्रशंसनीय मार्गसे प्राप्त हुआ अथवा जिसकी प्रशंसा होती है, ऐसा धन हमारे पास हो। पर्वतसे प्राप्त होनेवाले धन हमें प्राप्त हों संरक्षण करनेवाले दिव्य और तेजस्वी वीर सदा हमारी सुरक्षा करें ॥ ८ ॥

[३८]

(ऋषिः ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- १-६ सविता, ६ उत्तरार्धस्य भगो वा, ७-८ वाजिनः । छन्दः-त्रिष्टुप् ।)

३६४ उदु ष्य देवः सविता ययाम हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
नूनं भगो हव्यो मानुषेभि- र्वि यो रत्ना पुरूवसुर्दधाति ॥ १ ॥

३६५ उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्य१स्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य ।
व्यु१र्वीं पृथ्वीममतिं सृजान आ नृभ्यो मर्तभोजनं सुवानः ॥ २ ॥

३६६ अपि ष्टुतः सविता देवो अस्तु यमा चिद् विश्वे वसवो गृणन्ति ।
स नः स्तोमान् नमस्य१श्चनो धाद् विश्वेभिः पातु पायुभिर्नि सूरीन् ॥ ३ ॥

३६७ अभि यं देव्यदितिर्गृणाति सवं देवस्य सवितुर्जुषाणा ।
अभि सम्राजो वरुणो गृण- न्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोषाः ॥ ४ ॥

---

[३८]

अर्थ— [३६४] (स्यः सविता देवः) वह सविता देव (हिरण्ययीं यां अमतिं) जिस सुवर्णमयी प्रभाका (आशिश्रेत्) आश्रय करता है, उसका (उत् ययाम) उदय होता है। (नूनं भगः मनुष्येभिः हव्यः) निश्चयहीसे यह भग देव मनुष्यों द्वारा स्तुति करने योग्य है। (यः पुरूवसुः रत्ना वि दधाति) जो यह बहुत धनसे युक्त देव है वह अनेक रत्न भक्तोंको देता है ॥ १ ॥

[३६५] हे (सवितः) सबके प्रेरक देव ! तुम (उत् तिष्ठ) ऊपर आओ। उदित हो जाओ। हे (हिरण्यपाणे) सुवर्णके आभूषणोंसे सुशोभित हाथवाले ! तुम (ऋतस्य प्रभृतौ अस्य श्रुधि) यज्ञके चलने पर इस स्तोत्रका श्रवण करो। (उर्वीं पृथ्वीं अमतिं वि सृजानः) तुम विस्तीर्ण और प्रसिद्ध प्रभाको फैलाते और (नृभ्यः मर्तभोजनं आ सुवानः) मानवोंके लिये भोगके योग्य धन, अन्न देते हो ॥ २ ॥

[३६६] (अपि सविता देवः स्तुतः अस्तु) सविता देव हमारे द्वारा प्रशंसित हो। (विश्वे वसवः यं चित् आ गृणन्ति) सब ही निवासक देव जिसकी स्तुति गाते हैं। (सः नमस्यः नः स्तोमान् चनः धात्) वह नमस्कार करने योग्य देव हमारे स्तोमोंको तथा अन्नको धारण करें। वह (विश्वेभिः पायुभिः सूरीन् नि पातु) सब संरक्षणके साधनोंसे हमारे ज्ञानियोंकी सुरक्षा करे ॥ ३ ॥

[३६७] (यं देवी अदितिः अभि गृणाति) जिस सविताकी अदिति देवी स्तुति करती है। (सवितुः देवस्य सवं जुषाणा) वह सविता देवकी प्रेरणाका पालन करती है। (सम्राजः वरुणः अभि गृणन्ति) सम्राट वरुण देव जिसकी प्रशंसा करते हैं। तथा (सजोषाः मित्रासः अर्यमा अभि) समान प्रीतिवाला अर्यमा और मित्रादि देव इसकी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह सूर्य या सविता देव उदय होते समय सुनहरे वर्णका प्रभाको धारण करता है। सूर्यका यह ऐश्वर्य निश्चयसे मनुष्योंके द्वारा प्रशंसनीय है ॥ १ ॥

हे सबको प्रेरणा देनेवाले सविता देव ! तू उदय हो। सुनहरी किरणोंवाले देव ! यज्ञमें तेरे लिए किए जानेवाले इस स्तुतिका श्रवण कर। तू अपनी विस्तीर्ण और प्रसिद्ध प्रभाको फैलाता हुआ मानवोंके लिए अनेक तरहके भोग्य पदार्थ देता है ॥ २ ॥

हम सविता देवकी प्रशंसा करें। सभी देव इस सविता देवकी स्तुति गाते हैं। वे नमस्कारके योग्य देव हमारे लिए स्तोत्र तथा अन्नको धारण करें। वह देव सभी तरहके संरक्षणके साधनोंसे हमारे ज्ञानियोंकी सुरक्षा करे ॥ ३ ॥

३६८ अभि ये मिथो वनुषः सपन्ते रातिं दिवो रातिषाचः पृथिव्याः ।
अहिर्बुध्न्य उत नः शृणोतु वरूत्र्येकधेनुभिर्नि पातु ॥ ५ ॥
३६९ अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः ।
भगमुग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नम् ॥ ६ ॥
३७० शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मद् युयवन्नमीवाः ॥ ७ ॥
३७१ वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ ८ ॥

अर्थ— [३६८] (ये रातिषाचः वनुषः मिथः) दानशील भक्त जन मिलकर (दिवः पृथिव्याः रातिं अभि सपन्ते) द्युलोक और पृथिवी लोकके मित्ररूप सविताकी उपासना करते हैं। (बुध्न्यः अहिः उत नः शृणोतु) मध्यस्थानमें रहनेवाला प्रगतिमान वह विद्युत् रूप अग्नि हमारा स्तोत्र सुने। (वरूत्री एकधेनुभिः नि पातु) वाग्देवी मुख्य गौओंके साथ हमारी सुरक्षा करें ॥ ५ ॥

[३६९] (इयानः जास्पतिः) प्रार्थना करनेपर सब प्रजाओंका पालक (सवितुः देवस्य तत् रत्नं) सविता देव अपने रत्नोंको, धनोंको, (नः अनुमंसीष्ट) हमारे लिए दें, देनेकी अनुमति प्रदान करें। (उग्रः भगं अवसे जोहवीति) उग्र वीर भग देवकी अपनी सुरक्षाके लिये प्रार्थना करता है। (अध अनुग्रः भगं रत्नं याति) पर जो उग्र वीर नहीं है वह भगके पास केवल रत्नोंको ही मांगता है। ॥ ६ ॥

[३७०] (मित द्रवः स्वर्काः वाजिनः) अच्छी गतिवाले स्तुतिके योग्य ये बलवान देव (देवताता हवेषु) यज्ञमें प्रार्थनाके समय (नः शं भवन्तु) हमारे लिये सुख देनेवाले हों। ये (अहिं वृकं रक्षांसि जंभयन्तः) बढनेवाले क्रूर राक्षसोंका नाश करते हुए (सनेमि अमीवाः अस्मत् युयवन्) पुराने सब रोग हमसे दूर करें ॥ ७ ॥

[३७१] हे (वाजिनः) बल देनेवाले देवो! (विप्राः अमृताः ऋतज्ञाः) ज्ञानी अमर और सत्य मार्गको जाननेवाले तुम सब (वाजे वाजे नः धनेषु अवत) प्रत्येक युद्धमें धनके लिये हमारा संरक्षण करो। (अस्य मध्वः पिबत) इस मधुर सोमरसका पान करो, (मादयध्वं) आनंद प्राप्त करो (तृप्ताः देवयानैः पथिभिः यात) तृप्त होकर देवयानके मार्गोंसे आओ ॥ ८ ॥

भावार्थ— अदिति देवी इस सविता देवकी स्तुति करती है, और इसके आदेशोंका पालन करती है। सम्राट् वरुण भी इसकी प्रशंसा करता है, समान रूपसे प्रेम करनेवाला अर्यमा और मित्र इसकी स्तुति करते हैं। ॥ ४ ॥

यह सविता देव द्युलोक और पृथिवीलोकका मित्र है। मित्रके समान इन दोनोंका हित करनेवाला है। मध्यस्थान अर्थात् अन्तरिक्षमें रहनेवाला यह विद्युत् रूप सविता हमारी प्रार्थना सुने ॥ ५ ॥

उग्र वीर भगसे संरक्षणकी शक्तिके साथ धन मांगता है, पर जो वीर नहीं है, वह केवल धन ही मांगता है। संरक्षणकी शक्ति मांगना योग्य है क्यों कि बिना शक्तिके प्राप्त धनका संरक्षण नहीं हो सकता ॥ ६ ॥

सविता देवकी किरणें प्रमाणसे गति करती हैं, उत्तम गुण धर्मवाली तथा बल बढानेवाली हैं। ये किरणें हमें सुख और शान्ति देनेवाली हों। आमाशयमें अन्नका ठीक न होनेसे जो रोग उत्पन्न होते हैं वे, सूर्य किरणोंके प्रयोगसे दूर हो जाते हैं। दिखाई न देकर बढते ही जानेवाले, भेडियेके समान क्रूर कर्म करनेवाले रोगकृमियोंको सूर्य किरणें नष्ट करती हैं ॥ ७ ॥

मनुष्य बलवान्, ज्ञानवान् और सामर्थ्यवान् बने। वह कभी अकालमृत्युसे न मरे। वह उन्नतिके सत्यमार्गको जाने और धन प्राप्तिके निमित्त होनेवाले युद्धमें वह सदा सुरक्षित रहे ॥ ८ ॥

[३९]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

३७२ ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत् प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति ।
भेजाते अद्री रथ्येव पन्थामृतं होता न इषितो यजाति ॥ १ ॥

३७३ प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते ।
विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥ २ ॥

३७४ ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः ।
अर्वाक् पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य ॥ ३ ॥

[३९]

अर्थ— [३७२] (ऊर्ध्वः अग्निः वस्वः सुमतिं अश्रेत्) जिसकी गति ऊपरकी ओर होती है ऐसा ऊर्ध्वगामी अग्नि निवासकी इच्छा करनेवाले भक्तकी की हुई स्तुतिको सुने । (प्रतीची जूर्णिः देवतातिं एति) पूर्व दिशामें होनेवाली, सबको जीर्ण करनेवाली उषा यज्ञमें जाती है । (अद्री रथ्या इव पन्थां भेजाते) आदरणीय दोनों प्रकारके लोग रथ चलानेवाले मार्गका अवलंबन करते हैं उस प्रकार यज्ञ मार्गका सेवन करते हैं । (इषितः नः होता ऋतं यजाति) प्रेरित हुआ होता यज्ञको करता है ॥ १ ॥

[३७३] (एषां सुप्रयाः बर्हिः) इनका अन्नसे भरपूर भरा बर्हि यज्ञमें (प्र वावृजे) प्रयुक्त होता है । (विश्पती इव) प्रजाओंके पालक दोनों (नियुत्वान्) वडवायुक्त (वायुः पूषा) वायु और पूषा ये देव (विशां स्वस्तये) सब प्रजाओंके कल्याणके लिये (अक्तोः उषसः) रात्री और उषाके समयके (पूर्व-हूतौ) प्रथम करनेकी प्रार्थनाके समय (बीरिटे आ इयाते) अन्तरिक्षमें आ जावें ॥ २ ॥

[३७४] (अत्र वसवः देवाः ज्मया रन्त) यहां वसुदेव भूमिके साथ रममाण हों । (उरौ अन्तरिक्षे शुभ्राः मर्जयन्त) विस्तीर्ण अन्तरिक्षमें तेजस्वी मरुद्वीर शुद्ध करते हैं । हे (उरुज्रयः) बहुत भ्रमण करनेवाले देवो ! आपका (पथः अर्वाक् कृणुध्वं) मार्ग हमारी ओर करो, हमारी ओर आओ । (नः अस्य जग्मुषः दूतस्य श्रोत) हमारे इस तुम्हारे पास जानेवाले दूतका भाषण सुनो ॥ ३ ॥

भावार्थ— अग्निकी ज्वाला सदा ऊपरकी ओर ही गमन करती है । इसी तरह मनुष्यको भी अपनी प्रगति उन्नतिकी ओर ही करनी चाहिए । मनुष्य इस संसारमें उत्तम रीतिसे निवास करनेके लिए उत्तम बुद्धिको प्राप्त करे । जिसके पास उत्तम बुद्धि होगी, वही यहां सुखसे निवास कर सकेगा ॥ १ ॥

जो यज्ञ किया जाए उससे अन्न भरपूर हो । प्रजाका कल्याण करनेमें तत्पर राजागण सभामें आकर बैठें और उन सभाओंमें प्रजाओंके कल्याणका विचार करें । राजा और राजपुरुष प्रजाके कल्याणकी तरफ ही हमेशा ध्यान रखें और अपना कर्तव्य करें ॥ २ ॥

वसुदेव इस भूमि पर आकर आनन्दित हों । विस्तीर्ण अन्तरिक्षमें तेजस्वी वायु गण पवित्र होकर बहें । हे देवो ! तुम सब हमारी ओर आओ ॥ ३ ॥

३७५ ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः ।
तॉं अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भगं नासत्या पुरंधिम् ॥ ४ ॥

३७६ आग्ने गिरो दिव आ पृथिव्या मित्रं वह वरुणमिन्द्रमग्निम् ।
आर्यमणमदितिं विष्णुमेषां सरस्वती मरुतो मादयन्ताम् ॥ ५ ॥

३७७ ररे हव्यं मतिभिर्यज्ञियानां नक्षत् कामं मर्त्यानामसिन्वन् ।
धाता रयिमविदस्यं सदासां सक्षीमहि युज्येभिर्नु देवैः ॥ ६ ॥

३७८ नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

अर्थ— [३७५] (यज्ञेषु ते यज्ञियासः ऊमाः) यज्ञोंमें ये पूजायोग्य और रक्षक (विश्वे देवाः सधस्थं अभि सन्ति) सबके सब देव वीर साथ साथ आते हैं । हे अग्ने ! (उशतः तान् अध्वरे यक्षि) इच्छा करनेवाले इन देवोंके लिये यज्ञमें यजन करो । तथा (श्रुष्टी भगं नासत्या पुरंधिं) सत्वर भग, अश्विदेव और नगर रक्षक इन्द्रके लिये यजन करो ॥ ४ ॥

[३७६] हे (अग्ने) अग्ने ! (दिवः गिरः आ वह) द्युलोकसे स्तुति करने योग्य देवोंको ले आ (पृथिव्याः आ वह) पृथ्वीके ऊपरसे भी ले आ । मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि, अर्यमा, अदिति, विष्णुको ले आ । (एषां सरस्वती मरुतः मादयध्वं) इनमें सरस्वती और मरुत् आनन्दित होकर यहां आवें ॥ ५ ॥

[३७७] (यज्ञियानां मतिभिः हव्यं ररे) पूजा योग्य देवोंके लिये हम अपनी बुद्धिपूर्वक की स्तुतियोंके साथ हव्य अन्न अर्पण करते हैं । (मर्त्यानां कामं असिन्वन् नक्षत्) मानवोंकी उन्नतिकी कामनाओंका प्रतिबंध न करता हुआ अग्नि यज्ञको करता है । (अविदस्यं सदासां रयिं धात) अक्षय और सदा स्थायी रहनेवाले धनको हमें दो और (युज्येभिः देवैः सक्षीमहि) साथी देवोंके साथ हम आज मिलेंगे ॥ ६ ॥

[३७८] (नू वसिष्ठैः रोदसी अभिष्टुते) निःसंदेह आज वसिष्ठोंने द्युलोक और पृथिवीकी स्तुति की है । (ऋतावानः वरुणः मित्रः अग्निः) यज्ञके योग्य वरुण, मित्र, अग्नि ये देव भी प्रशंसित हुए हैं । (चन्द्राः नः उपमं अर्कं यच्छन्तु) आनंद बढानेवाले ये देव हमें सर्वोत्कृष्ट पूजा योग्य अन्न तथा धन प्रदान करें । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप सदा हमें कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित करो ॥ ७ ॥

भावार्थ— सबके सब देव वीर और रक्षक होनेके कारण यज्ञोंमें अर्थात् पूज्योंमें भी सर्वश्रेष्ठ पूज्य हैं । उनका सत्कार करना चाहिये । ये सभी देव एक ही स्थानपर रहते हैं । एक स्थान पर संगठित होकर रहते हैं । उनमें कभी फूट नहीं होती ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! द्युलोकमें और पृथ्वीपर जितने भी देव हैं, उन सभी देवोंको तू बुलाकर ला ॥ ५ ॥

पूजनीय वीरोंका बुद्धिपूर्वक आदर और सत्कार करना चाहिए । मनुष्योंके अभ्युदयके मार्गमें विघ्न न हों । हमारे धन अक्षय और स्थायी हों । हम योग्य बन्धुओंके साथ मिलकर रहें ॥ ६ ॥

आज ज्ञानियोंने द्यु और पृथिवीकी स्तुति की है । यज्ञके योग्य वरुण आदि देव भी प्रशंसित हुए हैं । आनंदको बढानेवाले ये देव हमें सबसे उत्तम धन प्रदान करें तथा अपने कल्याणकारी साधनोंसे हमें सुरक्षित रखें ॥ ७ ॥

[४०]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। देवता- विश्वे देवाः। छन्दः- त्रिष्टुप्।)

३७९ ओ श्रुष्टिर्विदथ्या३ समेतु प्रति स्तोमं दधीमहि तुराणाम्।
यदद्य देवः सविता सुवाति स्यामास्य रत्निनो विभागे ॥ १ ॥

३८० मित्रस्तन्नो वरुणो रोदसी च द्युभक्तमिन्द्रो अर्यमा ददातु।
दिदेष्टु देव्यदिती रेक्णो वायुश्च यन्नियुवैते भगश्च ॥ २ ॥

३८१ सेदुग्रो अस्तु मरुतः स शुष्मी यं मर्त्यं पृषदश्वा अवाथ।
उतेमग्निः सरस्वती जुनन्ति न तस्य रायः पर्येतास्ति ॥ ३ ॥

३८२ अयं हि नेता वरुण ऋतस्य मित्रो राजानो अर्यमापो धुः।
सुहवा देव्यदितिरनर्वा ते नो अंहो अति पर्षन्नरिष्टान् ॥ ४ ॥

---

[४०]

अर्थ— [३७९] (विदथ्या श्रुष्टिः ओ सं एतु) संघटनसे प्राप्त होनेवाला सुख हमें प्राप्त हो। (तुराणां स्तोमं प्रति दधीमहि) हम त्वरासे कार्य करनेवाले देवोंके लिये स्तोत्र करते हैं। (अद्य देवः सविता यत् सुवाति) आज सविता देव जिस धनको देता है। हम (अस्य रत्निनः विभागे स्याम) इस रत्नोंको पास रखनेवाले सविता देवके धनदानके समय रहें। हमें वे धन मिलें ॥ १ ॥

[३८०] मित्र, वरुण, (रोदसी) द्यावापृथिवी (तत् नः ददातु) उस धनको हमें दें। इन्द्र और अर्यमा हमें (द्युभक्तं ददातु) तेजस्वीयों द्वारा सेवन करनेयोग्य धन दें। (अदितिः देवी रेक्णः दिदेष्टु) अदिति देवी वह धन हमें दे (वायुः भगः च) वायु और भग ये देव (नियुवैते) हमारे लिये जिसको प्रेरित करते हैं वह धन हमें प्राप्त हो ॥ २ ॥

[३८१] हे (पृषदश्वाः) उत्तम घोडोंवाले मरुत् वीरो ! (मर्त्यं यं अवाथ) जिस मनुष्यकी तुम सुरक्षा करते हो, (सः उग्रः, सः शुष्मी अस्तु) वह उग्र तथा बलवान् होता है। (अग्निः सरस्वती ईं उत जुनन्ति) अग्नि, सरस्वती आदि देव उसको सत्कर्ममें प्रवर्तित करते हैं। तस्य रायः पर्येता न अस्ति) उसके धनका नाश करनेवाला कोई नहीं है ॥ ३ ॥

[३८२] (अयं हि ऋतस्य नेता) यह सत्यमार्गका नेता है। मित्र, वरुण, अर्यमा, आदि (राजानः) राज्य शासक देव (अपः धुः) हमारे प्रशस्त कर्मोंका धारण करते हैं। (अनर्वा अदितिः देवी सुहवा) किसीके द्वारा प्रतिबंधित न होनेवाली अदिति देवी स्तुति करने योग्य है। (ते अरिष्टान् नः अंहः अति पर्षत्) वे सब देव बाधारहित ऐसे हम सबको पापसे बचावें ॥ ४ ॥

भावार्थ— जो सुख संगठनसे प्राप्त होते हैं, वे सुख हमें प्राप्त हों। सविता देव जिस धनको हमें प्रदान करना चाहता है, उसे पानेके हम अधिकारी हों ॥ १ ॥

तेजस्वी वीरोंको जो धन प्रिय होता है, वह धन हमें सभी देव प्रदान करें ॥ २ ॥

देव जिसका संरक्षण करता है, वह शूरवीर तथा प्रभावी होता है। उसे विद्याकी देवी सरस्वती उत्तम कर्ममें प्रेरित करती है। असत्कर्ममें वह कभी प्रवृत्त नहीं होता और उसका धन कभी नष्ट नहीं होता ॥ ३ ॥

×

३८३ अस्य देवस्य मीळ्हुषो वया विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः ।
विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ॥ ५ ॥
३८४ मात्र पूषन्नाघृण इरस्यो वरूत्री यद् रातिषाचश्च रासन् ।
मयोभुवो नो अर्वन्तो नि पान्तु वृष्टिं परिज्मा वातो ददातु ॥ ६ ॥
३८५ नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[४१]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- १ अग्नीन्द्रमित्रावरुणाश्विभगपूषब्रह्मणस्पतिसोमरुद्राः, २-६ भगः, ७ उषसः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १ जगती ।)

३८६ प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥ १ ॥

अर्थ— [३८३] (प्रभृथे हविर्भिः एषस्य मीळ्हुषः विष्णोः अस्य देवस्य) यज्ञमें हविर्योंके द्वारा उपासनीय और इच्छाओंको पूर्ति करनेवाले इस व्यापक विष्णु देवको (वयाः) अन्य देव शाखाएं हैं । (रुद्रः रुद्रियं महित्वं विदे हि) रुद्रदेव अपना महत्व युक्त सामर्थ्य हमें प्रदान करे । हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (इरावत् वर्तिः यासिष्टं) हमारे अन्न युक्त घरके पास आओ । हमारे यज्ञमें आओ ॥ ५ ॥

[३८४] हे (आ घृणे पूषन्) तेजस्वी पूषा देव ! (अत्र मा इरस्यः) इस कार्यमें विघात न करो । (वरूत्री) सबके द्वारा उपास्य सरस्वती (रातिषाचः) दान देनेवाली अन्य देवियां (यत् रासन्) जो धन हमें देती हैं, उसमें किसीकी रुकावट न हो । (मयोभुवः अर्वन्तः नः निपान्तु) सुख देनेवाले प्रगतिशील रक्षक देव हमें सुरक्षित रखें । (परिज्मा वात, वृष्टिं ददातु) चारों ओर जानेवाला गतिशील वायु हमें वृष्टि देवे ॥ ६ ॥

[३८५] (नू वसिष्ठैः रोदसी अभिष्टुते) निस्सन्देह आज वसिष्ठोंने द्युलोक और पृथिवीकी स्तुति की है । (ऋतावानः मित्रः, वरुणः अग्निः) यज्ञके योग्य वरुण, मित्र और अग्नि ये देव भी प्रशंसित हुए हैं । (चन्द्राः नः उपमं अर्कं यच्छन्तु) आनन्द बढानेवाले ये देव हमें सर्वोत्कृष्ट पूजाके योग्य अन्न तथा धन प्रदान करें । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) हे देवो ! तुम सदा हमारी कल्याणसे रक्षा करो ॥ ७ ॥

[४१]

[३८६] हम (प्रातः अग्निं हवामहे) प्रातःकाल अग्निको बुलाते हैं, (प्रातः इन्द्रं) प्रातःकाल इन्द्रको बुलाते हैं, (प्रातः मित्रावरुणा) प्रातःकाल मित्र और वरुणको बुलाते हैं, (प्रातः अश्विना) प्रातःकाल अश्विनी कुमारोंको बुलाते हैं, (प्रातः भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं) प्रातःकाल भग, पूषा और ब्रह्मणस्पतिको बुलाते हैं । (प्रातः सोमं उत रुद्रं हुवेम) प्रातःकाल हम सोम और रुद्रको बुलाते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— राजा और राजपुरुष सत्यके मार्ग परसे स्वयं चलकर जनताको चलानेवाले होकर प्रजाके उत्तम कर्मोंकी प्रशंसा करें । प्रजाओंके उत्तम कर्मोंकी सुरक्षा करें । वे नष्ट न हों । उनकी सब पापोंसे सुरक्षा हो ॥ ४ ॥

यज्ञोंमें उपास्य तथा इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले इस व्यापक प्रभुकी अन्य सभी देव शाखाओंके समान हैं । इसी एक देवके आश्रयसे अन्य देव रह रहे हैं । विश्वका सभी हिस्सा उसी एक प्रभुके अवयव हैं ॥ ५ ॥

विद्याकी देवी सरस्वती सबके द्वारा उपास्य है । विद्याकी आराधना सबको करनी चाहिए । सभी दान देनेवाले हों । कोई कंजूस न हो । संरक्षणके कार्यमें नियुक्त हुए सभी लोग सुख देनेवाले और उत्तम रक्षा करनेवाले हों ॥ ६ ॥

आज ज्ञानियोंने द्यु और पृथिवीकी स्तुति की है । यज्ञके योग्य वरुण आदि देव भी प्रशंसित हुए हैं । आनंदको बढाने-वाले ये देव हमें सबसे उत्तम धन प्रदान करें और अपने कल्याणकारी साधनोंसे हमें सुरक्षित रखें ॥ ७ ॥

३८७ प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह ॥ २ ॥
३८८ भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वै-र्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥
३८९ उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन् त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥
३९० भग एव भगवाँ अस्तु देवा-स्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ॥ ५ ॥

अर्थ— [३८७] (यः विधर्ता) जो देव विश्वका धारण करता है, उस (अदितेः पुत्रं उग्रं प्रातर्जितं भगं) अदितिके पुत्र उग्र वीर और विजयशील भग देवकी (वयं हुवेम) हम प्रातः समयमें प्रार्थना करते हैं। (आध्रः चित्) दरिद्री भी (यं मान्यमानः) जिसकी स्तुति गा कर तथा (तुरः चित् राजा चित्) सत्वर धन प्राप्त करनेवाला राजा भी (यं भगं भक्षि इति आह) जिस भग देवको ' मुझे धन दे ' ऐसा कहता है ॥ २ ॥

[३८८] हे (भग) भगवान् देव ! तू (प्रणेतः) सबका नेता संचालक है, तथा हे भग ! तू (सत्यराधः) सत्य धनसे युक्त है, तेरा धन शाश्वत टिकनेवाला है। हे (भग) भग देव ! (ददत् नः इमां धियं उदव) तुम हमें धन देकर इस हमारे बुद्धि युक्त कर्मको सुरक्षित करो। हे (भग) भग ! तुम (नः गोभिः अश्वैः प्रजनय) हमें गौओं और घोडोंके साथ उन्नत करो। हे (भग) भग ! हम (नृभिः नृवंतः प्र स्याम) वीरोंके साथ रहकर मनुष्य युक्त बनेंगे ॥ ३ ॥

[३८९] (उत इदानीं भगवन्तः स्याम) हम सब इस समय भाग्यवान् हों। (उत प्रपित्वे, उत अह्नां मध्ये) प्रातः काल और दिवसके मध्य समयमें हम भाग्यसे युक्त हों। (उत सूर्यस्य उदिता) और सूर्यके उदयके समय हम भाग्यवान् हों। हे (मघवन्) भगवन् ! (वयं देवानां सुमतौ स्याम) हम सब देवोंकी उत्तम बुद्धिमें रहें अर्थात् हमारे विषयमें देवोंकी उत्तम बुद्धि रहे। हमारे विषयमें देवोंकी सद्भावना रहे ॥ ४ ॥

[३९०] हे (देवाः) देवो ! (भगः एव भगवान् अस्तु) भग देव ही धनवान् हों। (तेन वयं भगवन्तः स्याम) उससे हम सब धनवान हों। हे भग ! (तं त्वा सर्वः इत् जोहवीति) उस तुमको ही सब जनसमाज बुलाता है। हे भग देव ! (सः नः इह पुरएता भव) तुम इस यज्ञमें हमारे नेता बनो ॥ ५ ॥

भावार्थ— हम प्रातःकाल उठकर तेजस्वी, ऐश्वर्यशाली, मित्रके समान हितकारी, वरणीय, शीघ्रतासे कर्म करनेवाले, ऐश्वर्यसम्पन्न, प्रेरक, ज्ञानी, आनन्ददायी तथा शत्रुओंको रुलानेवाले प्रभुकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

दरिद्री मनुष्य तथा बडा धनवान् राजा भी जिस भगदेवके पास ' मुझे धन दो ' ऐसी प्रार्थना करता है, उस प्रभुकी मैं प्रातःकाल उपासना करता हूं। वह प्रभु सबको धारण करनेवाला, वीर और सबको पराजित करनेवाला है ॥ २ ॥

हे भगदेव ! तू सबका नेता और संचालक है, तेराही धन शाश्वत रूपमें टिकनेवाला है। हे देव ! तू हमें उत्तम धन प्रदान कर ताकि हम बुद्धिपूर्वक कर्मोंको करें। हम वीरोंके साथ रहकर उन्नति करें ॥ ३ ॥

हम प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल अर्थात् सदाही सौभाग्यसे युक्त रहें। सूर्योदयके समय भी हम सौभाग्यशाली रहें। इस प्रकार सौभाग्यशाली होकर हम सदा देवोंकी उत्तम बुद्धियोंमें रहें। हमारे बारेमें देवोंकी सद्भावना रहे ॥ ४ ॥

ऐश्वर्यशाली प्रभुही हमारे उपास्य हों, उस प्रभुकी कृपासे हम भी धनवान् हों। इस प्रभुकोही सारा जनसमाज बुलाता है ॥ ५ ॥

३९१ समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥ ६ ॥

३९२ अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[४२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

३९३ प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त प्र क्रन्दनुर्नभन्यस्य वेतु ।
प्र धेनव उदप्रुतो नवन्त युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः ॥ १ ॥

३९४ सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युक्ष्वा सुते हरितो रोहितश्च ।
ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः ॥ २ ॥

अर्थ— [३९१] (शुचये पदाय) शुद्ध स्थानमें बैठनेके लिये (दधिक्रावा इव) श्वेत घोडेकी तरह (उषसः अध्वराय सं नमन्त) उषा देवताएं यज्ञके लिये आ जांय । (वाजिनः अश्वाः रथं इव) वेगवान घोडे रथको खींचते हैं उस तरह (वसुविदं भगं नः अर्वाचीनं) धनवान भगको हमारे समीप (आ वहन्तु) ले आवें ॥ ६ ॥

[३९२] (भद्राः उषसः) कल्याण करनेवाली उषाएँ (अश्वावतीः गोमतीः) अश्वों और गौओंसे युक्त (वीरवतीः) वीरोंसे युक्त तथा (घृतं दुहानाः) घीका दोहन करनेवाली और (विश्वतः प्रपीताः) सब गुणोंसे युक्त होकर (नः सदं उच्छन्तु) हमारे घरोंको प्रकाशित करती रहें । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याणोंके साथ सुरक्षित रखो ॥ ७ ॥

[४२]

[३९३] (ब्रह्माणः अंगिरसः प्र नक्षन्त) अंगिरस ब्रह्मा सर्वत्र व्याप्त हों । (क्रन्दनुः नभन्यस्य प्र वेतु) पर्जन्य स्तोत्रकी इच्छा करे । (धेनवः उदप्रुतः प्र नवंत) नदियां पानीसे भरपूर होकर बहती रहें । (अद्री अध्वरस्य पेशः युज्यतां) आदरणीय यजमान और पत्नी ये दोनों यज्ञकी सुंदरताको बढावें ॥ १ ॥

[३९४] हे (अग्ने) अग्ने ! (ते सन-वित्तः अध्वा सुगः) तुम्हारा बहुत समयसे प्राप्त मार्ग जानेके लिये सुगम हो । (हरितः रोहितः च) श्याम वर्ण तथा लाल वर्णके घोडे और (ये वा सद्मन्) जो यज्ञ गृहमें (वीरवाहाः अरुषः) वीरोंके ले जानेवाले तेजस्वी घोडे हैं (युक्ष्व) उनको तुम रथमें जोतो और इधर आओ । (सत्तः देवानां जनिमानि हुवे) मैं यज्ञमें मैं बैठकर देवोंके जन्मोंके वृत्तान्तोंको स्तोत्ररूपमें गाता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ— हमारे यज्ञोंमें उषायें और भगदेवता आवें ॥ ६ ॥

उषःकालमें हमारे घोडे और गायें हमारे घरके पास जमा हों । हमारे बालबच्चे वहां खेलें, गायोंका दूध दुहा जाए । दूधका मक्खन बनाया जाए । उसका सेवन करके सब हृष्टपुष्ट हों, ऐसे आनन्दमें हमारे घर उषःकालमें प्रकाशित होते रहें ॥ ७ ॥

अंगिरस अर्थात् ज्ञानियोंके काव्य सब जगत्‌में फैलें । मेघों पर उत्तम स्तोत्र गाये जाएं । मेघसे बरसात हो और नदियां पानीसे भरपूर होकर बहती रहें । बरसातसे धान्य बढे और धान्यसे यज्ञ सफल हो ॥ १ ॥

अग्नि या नेताके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर हम जाएं । हम वीर होकर घोडोंके शीघ्रगामी रथ पर बैठें और वीरोंके काव्योंका गान करके उनसे स्फूर्ति प्राप्त करें ॥ २ ॥

३९५ सम् वो यज्ञं महयन् नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके ।
यजस्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः ॥ ३ ॥

३९६ यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत् ।
सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम आ स विशे दाति वार्यमियत्यै ॥ ४ ॥

३९७ इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व मरुत्स्विन्द्रे यशसं कृधी नः ।
आ नक्ता बर्हिः सदतामुषासोशन्ता मित्रावरुणा यजेह ॥ ५ ॥

३९८ एवाग्निं सहस्यं१ वसिष्ठो रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत् ।
इषं रयिं पप्रथद् वाजमस्मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

अर्थ— [३९५] वे (वः यज्ञं नमोभिः सं महयन्) आपके यज्ञकी महिमाको नमस्कारोंसे बढाते हैं। (मन्द्रः उपाके होता प्र रिरिचे) प्रशंसनीय यज्ञ स्थानके समीप भागमें स्थित होता सर्वोत्तम समझा जाता है। तू (देवान् सु यजस्व) देवोंका उत्तम यजन कर। हे (पुरु-अनीक) बहु तेजस्वी अग्ने! तुम (यज्ञियां अरमतिं आ ववृत्याः) पूजा योग्य यज्ञ भूमिपर फैल जाओ। प्रदीप्त हो ॥ ३ ॥

[३९६] (अतिथिः अग्निः यदा वीरस्य रेवतः) सबके आदरणीय अतिथिरूप अग्नि जिस समय वीर और धनीके (दुरोणे स्योनशीः अचिकेतत्) घरमें सुखसे प्रदीप्त रूपमें देखा जाता है। जिस समय वह (दमे सुधितः सुप्रीतः आ) यज्ञस्थानमें उत्तम रीतिसे स्थापित होकर प्रदीप्त होता है, तब (सः) वह अग्नि (इयत्यै विशे वार्यं दाति) समीपवर्तिनी प्रजाजनोंको श्रेष्ठ धन देता है ॥ ४ ॥

[३९७] हे (अग्ने) अग्ने! (नः इमं अध्वरं जुषस्व) हमारे इस यज्ञका सेवन करो। (मरुत्सु इन्द्रे नः यशसं कृधि) मरुत् वीरोंमें तथा इन्द्रमें हमें यशस्वी करो। (नक्ता उषसा) रात्रीमें तथा उषःकालमें (बर्हिः आ सदतां) आसनों पर बैठो। (उशाता मित्रावरुणा इह यज) तुम्हारे यज्ञ सिद्धिकी इच्छा करनेवाले मित्र तथा वरुणका यहां यजन करो ॥ ५ ॥

[३९८] (वसिष्ठः रायस्कामः एव) वसिष्ठ धनकी इच्छा करके (सहस्यं अग्निं) बलवान् अग्निकी (विश्वप्स्नस्य स्तौत्) सब प्रकारके धनकी प्राप्तिके लिये स्तुति करने लगा। (अस्मे इषं रयिं वाजं पप्रथत्) हमें यह अन्न, धन और बल देवे। ऐसी प्रार्थना उसने की। हे देवो (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याणोंके साथ सुरक्षित रखो ॥ ६ ॥

भावार्थ— यज्ञ स्थानमें अग्नि प्रदीप्त हो। उसमें देवोंके निमित्त उत्तम याजक यज्ञ करे और स्तोत्रों तथा नमस्कारोंसे यज्ञका महत्व बढे ॥ ३ ॥

अतिथिके समान आदरणीय अग्नि यज्ञमें प्रदीप्त होकर यजमानको धन देता है। यज्ञसे धन प्राप्त होता है जिससे यज्ञ किया जाता है ॥ ४ ॥

हे अग्ने! हमारे द्वारा किए जानेवाले यज्ञका सेवन कर। हम मरुतोंमें और इन्द्रमें यशस्वी हों। हमारे इस यज्ञमें मित्र और वरुण भी आवें ॥ ५ ॥

हे देवो! धनकी इच्छा करनेवाले ज्ञानीने जब अग्निकी स्तुति की, तब तुम सबने भी प्रसन्न होकर उस ज्ञानीकी अपने साधनोंसे रक्षा की ॥ ६ ॥

[४३]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः-त्रिष्टुप् ।)

३९९ प्र वो॑ य॒ज्ञेषु॑ देव॒यन्तो॑ अर्च॒न् द्यावा॒ नमो॑भिः पृथि॒वी इ॒षध्यै॑ ।
येषां॒ ब्रह्मा॒ण्यस॑मानि॒ विप्रा॒ विष्व॑ग्वि॒यन्ति॑ व॒निनो॒ न शाखाः॑ ॥ १ ॥

४०० प्र य॒ज्ञ ए॑तु॒ हेत्वो॒ न सप्ति॒रुद्य॑च्छध्वं॒ सम॑नसो घृ॒ताचीः॑ ।
स्तृ॒णीत ब॒र्हिर॑ध्व॒राय॑ सा॒धूर्ध्वा शो॒चींषि॑ देव॒यून्य॑स्थुः ॥ २ ॥

४०१ आ पु॒त्रासो॒ न मा॒तरं॒ विभृ॑त्राः॒ सानौ॑ दे॒वासो॑ ब॒र्हिषः॑ सदन्तु ।
आ वि॒श्वाची॑ वि॒दथ्या॑मनक्त्वग्ने॒ मा नो॑ दे॒वता॑ता॒ मृध॑स्कः ॥ ३ ॥

४०२ ते सी॑षपन्त॒ जोष॒मा यज॑त्रा ऋ॒तस्य॒ धाराः॑ सु॒दुघा॒ दुहा॑नाः ।
ज्येष्ठं॑ वो अ॒द्य मह॒ आ वसू॑ना॒मा ग॑न्तन॒ सम॑नसो॒ यति॒ ष्ठ ॥ ४ ॥

[४३]

अर्थ— [३९९] (देवयन्तः विप्राः यज्ञेषु) देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी यज्ञोंमें (नमोभिः वः इषध्यै प्र अर्चयन्) अन्नों तथा नमस्कारों द्वारा आपकी प्राप्तिकी इच्छासे स्तोत्र पाठ करते हैं। और (द्यावा पृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोकका स्तोत्र गाते हैं। (येषां असमानि ब्रह्माणि) जिनके असीम स्तोत्र (वनिनः शाखा इव) वृक्षोंकी शाखाओंकी तरह (विष्वक् वियन्ति) चारों ओर फैलते हैं ॥ १ ॥

[४००] (यज्ञः प्र एतु) हमारा यज्ञ देवोंकी ओर पहुंचे। (हेत्वः न सप्तिः) जैसा शीघ्रगामी घोडा दौडता है। (समनसः घृताचीः उत् यच्छध्वं) एक विचारसे घृतसे भरी स्रुवाको ऊपर उठाओ। (अध्वराय साधु बर्हिः स्तृणीत) यज्ञके लिये उत्तम आसन बिछाओ। (देवयूनि शोचींषि ऊर्ध्वा अस्थुः) देवोंकी ओर जानेवाली अग्निकी ज्वालाएं ऊर्ध्वगामी होकर फैलें ॥ २ ॥

[४०१] (विभृत्राः पुत्रासः मातरं न) जैसे भरण पोषण करनेयोग्य छोटे बालक माताकी गोदमें बैठते हैं, उस तरह (देवासः बर्हिषः सानौ आ सदन्तु) देव आसनोंके ऊपर बैठें। हे अग्ने! (विदथ्यां विश्वाची आ अनक्तु) यज्ञमें चारों ओर घी सींचनेवाली जुहू तुम्हारे ऊपर सिंचन करे। (देवताता नः मृधः मा कः) युद्धके समय हमारे हिंसक शत्रुओंकी सहायता न करना ॥ ३ ॥

[४०२] (यजत्राः ते) यजनीय वे देव (ऋतस्य सुदुघाः धाराः दुहानाः) जलकी दुहने योग्य जल धाराओंको बरसाते हुए (जोषं आ सीषपन्त) हमारी सेवाका स्वीकार करें। (अद्य वसूनां ज्येष्ठं वः महः) आज धनोंमें जो श्रेष्ठ महत्वपूर्ण धन है वह हमारे पास (आ गंतन) आवे तथा आप भी (समनसः यति स्थ) एक मत करके यहां यज्ञमें आओ ॥ ४ ॥

भावार्थ— देवत्वकी प्राप्ति करनेकी इच्छावाले ज्ञानीजन देवोंकी स्तुति करते हैं। वे द्यु और पृथिवीलोकका यश गाते हैं। उनके द्वारा किए जानेवाले ये स्तोत्र चारों ओर फैलते हैं ॥ १ ॥

यज्ञशालामें देवोंके लिए आसन बिछाये जायें, घीको चममसमें भरकर आहुतियां दी जाएं, अग्निकी ज्वालायें प्रदीप्त होकर ऊपर उठें और हमारे द्वारा दी गई आहुतियां उन ज्वालाओंके द्वारा देवों तक पहुंचे ॥ २ ॥

जिस तरह भरणपोषण योग्य बालक अपनी माताके गोदमें प्रेमसे बैठते हैं, उसी तरह देवगण इन आसनों पर प्रेमसे बैठें। हे अग्ने! तू यज्ञमें अथवा युद्धमें हमारा घात करनेवाले शत्रुओंकी सहायता न कर ॥ ३ ॥

ये पूज्य देव जलधाराओंको बहाते हुए हमारी सेवाओंको स्वीकार करें। धनोंमें जो श्रेष्ठ तथा महत्वपूर्ण धन हो वही हमें प्राप्त हो हम भी सब एक विचारवाले होकर अपनी उन्नतिके लिए यत्न करते रहें ॥ ४ ॥

४०३ एवा नो अग्ने विक्ष्वा दशस्य त्वया वयं सहसावन्नास्क्राः ।
राया युजा सधमादो अरिष्टा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[४४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- दधिक्राः, १ दधिक्राश्व्युषोऽग्निभगेन्द्रविष्णुपूषब्रह्मणस्पत्यादित्य-द्यावापृथिव्यापः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १ जगती ।)

४०४ दधिक्रां वः प्रथममश्विनोषसम् अग्निं समिद्धं भगमूतये हुवे ।
इन्द्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिम् आदित्यान् द्यावापृथिवी अपः स्वः ॥ १ ॥

४०५ दधिक्रामु नमसा बोधयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
इळां देवीं बर्हिषि सादयन्तो ऽश्विना विप्रा सुहवा हुवेम ॥ २ ॥

४०६ दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निम् उप ब्रुव उषसं सूर्यं गाम् ।
ब्रध्नं मंश्चतोर्वरुणस्य बभ्रुं ते विश्वास्मद् दुरिता यावयन्तु ॥ ३ ॥

अर्थ— [४०३] हे (अग्ने) अग्ने ! (एव विक्षु नः आ दशस्य) इस तरह प्रजाजनोंमें हमें धनका प्रदान करो । हे (सहसावन्) बलवान् अग्ने ! (त्वया आस्क्राः वयं) तुम्हारे द्वारा वियुक्त न हुए हम सब (राया युजा) धनसे युक्त होकर (सधमादः) संगठित रहकर आनंदित होते हुए (अरिष्टाः) विनष्ट न हों । (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याण करनेके साधनोंसे सदा हमारी सुरक्षा करो ॥ ५ ॥

[४४]

[४०४] (वः ऊतये प्रथमं दधिक्रां हुवे) आप सबकी सुरक्षाके लिये मैं सबसे प्रथम दधिक्रा नामक घोडेकी प्रशंसा करता हूं । इसके पश्चात् (अश्विनं) अश्विदेव (उषसं) उषा (समिद्धं अग्निं) प्रदीप्त अग्नि और (भगं) भगकी प्रार्थना करता हूं । तथा (इन्द्रं) इन्द्र, (विष्णुं पूषणं) विष्णु, पूषा, (ब्रह्मणः पतिं) ब्रह्मणस्पति, (आदित्यान्) आदित्य, (द्यावापृथिवी) द्यावा पृथिवी, (अपः) जल तथा (स्वः) सूर्यकी प्रार्थना करता हूं ॥ १ ॥

[४०५] (दधिक्रां उ नमसा बोधयन्तः) दधिक्रा देवको नमस्कारों द्वारा संबोधित करके (उदीराणाः यज्ञं उपप्रयन्तः) तथा प्रेरित करके यज्ञके समीप जाते हैं । (बर्हिषि इळां देवीं सादयन्तः) यज्ञमें इळा देवीको स्थापन करके (सुहवा विप्रा अश्विना हुवेम) उत्तम प्रार्थना करने योग्य विशेष ज्ञानी दोनों अश्विदेवोंको बुलाते हैं ॥ २ ॥

[४०६] (दधिक्रावाणं बुबुधानः) दधिक्रावाको संबोधित करता हुआ मैं (अग्निं उपब्रुवे) अग्निकी स्तुति करता हूं । तथा (उषसं सूर्यं गां) उषा सूर्य और भूमि अथवा गौकी स्तुति करता हूं । (मंश्चतोः वरुणस्य ब्रध्नं बभ्रुं) घमंडी शत्रुओंके विनाश करनेवाले वरुणके बडे तथा भूरे वर्णके घोडेका स्तवन करता हूं । (ते अस्मत् विश्वा दुरिता यवयन्तु) वे सब हमसे सब पापोंको दूर करें ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! हम तुमसे कभी पृथक् न हों तथा तेरे द्वारा दिए गए धनसे हम सदा सम्पन्न रहें । हम संगठित होकर आनंदित होकर रहें और कभी विनष्ट न हों ॥ ५ ॥

मैं रक्षाके लिए अश्व, अश्विनीकुमार, उषा, अग्नि, भग, इन्द्र, विष्णु, पूषा, ब्रह्मणस्पति, आदित्य, द्यु, पृथिवी, जल और सूर्यकी स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

दधिक्राको नमन करके मैं इळा और अश्विदेवोंको बुलाता हूं ॥ २ ॥

मैं अग्नि, उषा, सूर्य, भूमि अथवा गौकी स्तुति करता हूं । मैं घमंडी शत्रुओंका विनाश करनेके लिए वरुणका स्तवन करता हूं । वे देव हमसे पापोंको दूर करें ॥ ३ ॥

४०७ दुधिक्रावा प्रथुमो वाज्यर्वा ऽग्रे रथांनां भवति प्रजानन् ।
संविदान उषसा सूर्येणा ऽऽदित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ॥ ४ ॥
४०८ आ नो दधिक्राः पथ्यामनक्त्वृ तस्य पन्थामन्वेतवा उं ।
शृणोतु नो दैव्यं शर्धो अग्निः शृण्वन्तु विश्वे महिषा अमूराः ॥ ५ ॥

[४५]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- सविता । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४०९ आ देवो यातु सविता सुरत्नो ऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयंश्च प्रसुवञ्च भूमं ॥ १ ॥
४१० उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया दिवो अन्ताँ अनष्टाम् ।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम् ॥ २ ॥

अर्थ— [४०७] (प्रथमः वाजी अर्वा दधिक्रावा) सबसे मुख्य वेगवान् शीघ्रगामी दधिक्रावा अश्व (प्रजानन् रथानां अग्रे भवति) जानता हुआ रथके अग्रभागमें स्वयं ही होता है । और यह उषा सूर्य आदित्य वसु और अंगिराओंके साथ (सं विदानः) सहमत रहता है ॥ ४ ॥

[४०८] (दधिक्राः ऋतस्य पन्थां अनुएतवै) दधिक्रा अश्व यज्ञके मार्गसे जानेके लिये (नः पथ्यां आ अनक्तु) हमारे मार्गको जलसे सिंचित करे । (दैव्यं शर्धः अग्निः) दिव्य बल रूप वह अग्नि (नः शृणोतु) हमारी प्रार्थनाका श्रवण करे तथा (विश्वे महिषाः अमूराः शृण्वन्तु) सब बलवान् ज्ञानी विबुध हमारी प्रार्थना सुनें ॥ ५ ॥

[४५]

[४०९] (सुरत्नः अन्तरिक्षप्राः) उत्तम रत्नोंको धारण करनेवाला, अन्तरिक्षको अपने प्रकाशसे भर देनेवाला, (अश्वैः वहमानः) घोडों द्वारा जिसका रथ चलता है ऐसा (सविता देवः आ यातु) सविता देव आ जाये । (हस्ते पुरूणि नर्या दधानः) जिसके हाथमें मानवोंका हित करनेवाला धन बहुत है और जो (भूम निवेशयन् प्रसुवन् च) प्राणियोंका निवास करता और कर्मसें प्रेरित करता है ॥ १ ॥

[४१०] (शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया अस्य बाहू) प्रसारित बडे सुवर्णसे परिपूर्ण इस सविताके बाहू हैं (दिवः अन्तान् उत् अनष्टां) द्युलोकके अन्ततक वह व्यापता है । (नूनं अस्य सः महिमा पनिष्ट) निःसंदेह इसका वह महिमा गाया जाता है । (सूरः चित् अस्मै अपस्यां अनु दात्) वह सूर्य ही इस मनुष्यके लिये शुभ कर्मकी प्रेरणा अनुकूलतासे देवे ॥ २ ॥

भावार्थ— उत्तम शिक्षित घोडा वेगवान् तथा चपल और शीघ्रतासे दौडनेवाला होता है । कहां किस तरह खडा होना चाहिए और रथके अग्रभागमें जाकर किस तरह खडा होना चाहिए, यह स्वयं जानता है ॥ ४ ॥

सब लोग यज्ञ करें, सीधे मार्गसे जायें । दिव्य बल प्राप्त करें, ज्ञान प्राप्त करें, सामर्थ्य प्राप्त करें । देवोंके गुण गाकर स्वयं देव जैसे बनें ॥ ५ ॥

नेता, राजा व राजपुरुष लोगोंको सत्कर्ममें प्रेरित करें । इनके हाथोंमें मानवोंका हित करनेवाला धन बहुत हो । यह प्राणियोंका उत्तम रीतिसे निवास कराये ॥ १ ॥

वीरोंके हाथ ऐसे हों कि जो दान देनेके लिए सोनेसे भरे हुए हों और वे हाथ दान देनेके लिए फैलाये हुए हों । इस सविता देवके बाहू भी सुवर्णसे परिपूर्ण हैं । इस देवकी सुनहरी किरणें प्राणियोंको अपना प्रकाश प्रदान करनेके लिए फैली रहती हैं । इसलिए इसकी महिमा गायी जाती है । ऐसा दानी सविता मनुष्योंको भी उत्तम दान देनेकी सत्प्रेरणा दे ॥ २ ॥

४११ स घा नो देवः सविता सहावा ऽऽ साविषद् वसुपतिर्वसूनि ।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते नः ॥ ३ ॥

४१२ इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम् ।
चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥

[४६]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- रुद्रः । छन्दः- जगती, ४ त्रिष्टुप् ।)

४१३ इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने ।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः ॥ १ ॥

अर्थ— [४११] (सहावा वसुपतिः सः सविता देवः) शक्तिमान् और धनवान् सविता देव (वसूनि नः आ साविषत्) हमें धन देवे । वह सविता देव (उरूचीं अमतिं विश्रयमाणः) विस्तृत तेजको धारण करके (अध नः मर्तभोजनं रासते) हमें मानवोंके लिये योग्य भोग्य धन दें ॥ ३ ॥

[४१२] (इमा गिरः) ये वचन, ये स्तोत्र (सुजिह्वं पूर्णगभस्तिं) उत्तम जिह्वावाले संपूर्ण धन हाथमें लिये हुए (सुपाणिं सवितारं) उत्तम हाथवाले सविता देवके गुणोंका वर्णन करते हैं । वह (चित्रं बृहत् वयः) श्रेष्ठ तथा विशाल धन (अस्मे दधातु) हमें देवे । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ ४ ॥

[४६]

[४१३] (इमाः गिरः) ये स्तोत्र (स्थिर धन्वने क्षिप्रेषवे) सुदृढ धनुष्यवाले, शीघ्रगामी बाण शत्रुपर छोडनेवाले (स्वधा-व्ने वेधसे) अपनी धारण शक्तिसे युक्त विधाता (अ-षाळ्हाय) जिसका आक्रमण असह्य है तथा (सहमानाय) शत्रुके आक्रमणको सहनेवाले (तिग्मायुधाय रुद्राय देवाय) तीक्ष्ण शस्त्र धारण करनेवाले रुद्र देवके लिये (भरत) भरो, करो, गाओ । वह (नः शृणोतु) हमारी प्रार्थना श्रवण करे ॥ १ ॥

भावार्थ— मनुष्य दान करनेसे पूर्व स्वयं धनवान् बने । वह सामर्थ्यवान् हो । धनका स्वामी शत्रुका पराभव करनेमें असमर्थ हो । वह स्वयं धनवान् होकर प्रगतिके कार्योंको आश्रय दे । जो प्रगतिके कार्योंमें धनादि देकर भरसक अपनी सहायता देता है, ऐसा धनवान् हो ॥ ३ ॥

सवितादेव उत्तम जिह्वा अर्थात् किरणोंवाला है, वह श्रेष्ठ तथा विशाल धन हमें प्रदान करे, अन्य देव भी हमारा कल्याण करें ॥ ४ ॥

शत्रुओंको रुलानेवाले महावीरका धनुष बलवान् हो, स्थिर हो । वह शत्रुओंपर बाण छोडनेमें निपुण हो । उसके पास हर तरहके शस्त्रास्त्र हों । वह स्वधा अर्थात् अपने ही सामर्थ्यसे सामर्थ्यशाली हो । वह निर्माण कार्योंमें कुशल हो । राष्ट्रके वीर ऐसे हों ॥ १ ॥

×

४१४ स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति ।
अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्चरा ऽनमीवो रुद्र जासु नो भव ॥ २ ॥
४१५ या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः ।
सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः ॥ ३ ॥
४१६ मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य ।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥

[४७]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- आपः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४१७ आपो यं वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः ।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम ॥ १ ॥

अर्थ— [४१४] (सः हि क्षम्यस्य जन्मनः क्षयेण चेतति) वह रुद्र पृथिवीके ऊपर जन्मे मनुष्योंके निवास हेतुरूपी धनसे जाना जाता है । और (दिव्यस्य साम्राज्येन) दिव्य जीवनवाले मनुष्यके साम्राज्य ऐश्वर्यसे जाना जाता है । हे रुद्र ! (नः अवंतीः अवन्) तुम हमारी अपनी सुरक्षा करनेवाली प्रजाका संरक्षण करके (नः दुरः उप चर) हमारे घरोंके पास आओ और (नः जासु अनमीवः भव) हमारे प्रजाजनोंमें नीरोगिता करनेवाला हो ॥ २ ॥

[४१५] (ते या दिद्युत् दिवस्परि अवसृष्टा) तुम्हारी जो विद्युत् आकाशसे छोडी हुई (क्ष्मया चरति) पृथिवीके साथ विचरण करती है (सा नः परि वृणक्तु) वह हमें छोड देवे, हम पर न गिरे । हे (स्वपिवात) उत्तम वायुके समान बलवान् वीर ! (ते सहस्रं भेषजा) तुम्हारे पास सहस्रों औषधियां हैं । (नः तनयेषु तोकेषु मा रीरिषः) हमारे बालबच्चोंमें क्षीणता न करो ॥ ३ ॥

[४१६] हे (रुद्र) रुद्र ! (नः मा वधीः) हमारा वध न कर । (मा परा दाः) हमारा त्याग न कर । (ते हीळितस्य प्रसितौ मा भूम) तुम्हारे क्रोधित होनेपर जो तुम बंधन करते हो वह हम पर न आवे । (जीवशंसे बर्हिषि) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित यज्ञमें (नः आ भज) हमें रख । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याणों द्वारा सुरक्षित रखो ॥ ४ ॥

[४७]

[४१७] (देवयन्तः आपः) हे देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले जलो ! (वः इन्द्रपानं) आपने इन्द्रके लिये पीने योग्य रसमें (इळः ऊर्मिं यं प्रथमं अकृण्वत) भूमिसे उत्पन्न प्रवाह रूप उदक मिलकर जो पहिले सोमपान तैयार किया था, (वः) आपके (तं शुचिं अरिप्रं) उस शुद्ध पापरहित (घृत-प्रुषं मधुमन्तं) वृष्टिजलसे मिश्रित मधुर रससे युक्त सोमरसको (वयं अद्य वनेम) हम सब आज प्राप्त करें, उसका हम आज सेवन करें ॥ १ ॥

भावार्थ— पृथ्वीपर मनुष्योंका निवास सुखपूर्वक हो ऐसी व्यवस्था राजा करे । दिव्य जीवनका साम्राज्य सर्वत्र हो । राष्ट्रमें सभी जन दिव्य जीवनको व्यतीत करें । प्रजाकी सुरक्षा हो । प्रजायें नीरोग हों । सर्वत्र आरोग्यकी उत्तम व्यवस्था हो ॥ २ ॥

आकाशस्थ मेघोंसे उत्पन्न होकर जो विद्युत् पृथिवीपर गिरती है, वह किसी प्राणी पर न गिरे । इस पृथ्वीपर जो हजारों औषधियां हैं, उनसे प्राणिमात्र आरोग्य पूर्ण रहे । राष्ट्रकी सन्तानें पुष्ट हों ॥ ३ ॥

हे दुष्टोंको रुलानेवाले प्रभो ! तू हमारा वध न कर, हमारा त्याग मत कर । तेरे क्रोधित होने पर जो बंधन आते हैं, उनसे हमें कष्ट न हों । हम सदा तेरे कल्याणकारक साधनोंसे सुरक्षित रहें ॥ ४ ॥

जल दवत्वको प्राप्ति करानेवाले हैं । यह सोमरसमें मिलकर उसे पीने योग्य बनाता है । सोमरसमें शुद्ध जल और मधु मिलाकर पीने योग्य बनाया जाता है । यदि उसमें जल न मिलाया जाए, तो वह पीने योग्य नहीं होता ॥ १ ॥

४१८ तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽपां नपादवत्वाशुहेमा ।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य ॥ २ ॥
४१९ शतपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः ।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत ॥ ३ ॥
४२० याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरदद् गातुमूर्मिम् ।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥

[४८]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- ऋभवः, ४ विश्वे देवा वा । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४२१ ऋभुक्षणो वाजा मादयध्वमस्मे नरो मघवानः सुतस्य ।
आ वोऽर्वाचः क्रतवो न यातां विभ्वो रथं नर्यं वर्तयन्तु ॥ १ ॥

अर्थ— [४१८] हे (आपः) जलो ! (वः मधुमत्तमं तं ऊर्मिं) आपका वह अत्यंत मीठा प्रवाह सोमरसमें मिला है उसको (आशु-हेमा अपां-न-पात्) शीघ्र गतिवाला तरंगोंको न गिरानेवाला अग्निदेव सुरक्षित करे । (यस्मिन् इन्द्रः वसुभिः मादयाते) जिस पानसे इन्द्र वसुओंके साथ आनंदित होते हैं (तं वः अद्य) उस आपके द्वारा सिद्ध हुए सोमपानको आज (देवयन्तः अश्याम) देवत्वकी इच्छा करनेवाले हम प्राप्त करें, उसका पान करें ॥ २ ॥

[४१९] (शतपवित्राः स्वधया मदन्तीः) सैकडों प्रकारोंसे पवित्रता करनेवाले और अन्नके साथ आनंद देनेवाले (देवीः देवानां पाथः अपि यन्ति) दिव्य जल देवोंके यज्ञस्थानको प्राप्त होते हैं । (ताः इन्द्रस्य व्रतानि न मिनन्ति) वे जल प्रवाह इन्द्रके कार्योंका नाश नहीं करते हैं । प्रत्युत सहायक होते हैं । इसलिये आप (सिन्धुभ्यः घृतवत् हव्यं जुहोत) नदियोंके लिये घृत मिश्रित हव्यका हवन करो ॥ ३ ॥

[४२०] (सूर्यः याः रश्मिभिः आततान) सूर्य जिनको अपनी किरणोंसे फैलाता है । (याभ्यः इन्द्रः ऊर्मिं गातुं अरदत्) जिन जलोंके लिये इन्द्रने प्रवाहित होनेका मार्ग खोदकर कर दिया है । हे (सिन्धवः) नदियोंके जल प्रवाहो ! (ते वरिवः नः, धातन) वे जलप्रवाह श्रेष्ठ अन्न, धन आदि हमें दें (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) आप हमें सदा कल्याणोंसे सुरक्षित रखिये ॥ ४ ॥

[४८]

[४२१] हे (ऋभुक्षणः वाजाः मघवानः नरः) कर्ममें कुशल पुरुषोंके निवासक, बलवान्, धनवान् नेताओ ! (अस्मे सुतस्य मादयध्वं) हमने बनाये इस सोमरससे आनंदित हो जाओ । (यातां वः क्रतवः विभ्वः) जानेके लिये उत्सुक हुए तुम्हारे कर्मकर्ता समर्थ अश्व (अर्वाचः नर्यं रथं आवर्तयन्तु) हमारे समीप तुम्हारे मनुष्योंका हित करनेवाले रथको ले आवें । तुमको हमारे पास ले आवें ॥ १ ॥

भावार्थ— हे जलो ! तुम मधुर सोमरसमें जाकर मिलो । उस सोमरसको अग्नि सुरक्षित रखे । इस सोमरसके पानसे इन्द्र वसुओंके साथ आनंदित हो । हम भी उस रसका पान करके देवत्व प्राप्त करें ॥ २ ॥

ये दिव्य जल अनेक तरह पवित्रता करनेवाले और अन्नके साथ आनंद देनेवाले हैं । ये जलप्रवाह इन्द्रके कार्योंका नाश नहीं करते ॥ ३ ॥

सूर्यकी किरणें इन जलप्रवाहोंमें शक्ति स्थापित करती हैं, इन्द्र या मेघस्थानीय विद्युत् मेघोंके द्वारोंको खोलकर इन जलप्रवाहोंको मुक्त करता है । तब ये जलप्रवाह प्राणियोंको अन्न धान्यादिसे पुष्ट करते हैं ॥ ४ ॥

नेता लोग अपने राष्ट्रमें कारीगरोंका निवास करनेवाले, बलवान्, धनवान्, उत्तम रीतिसे कर्म करनेवाले और हमेशा दूर गति मनुष्योंका हित करनेवाले हों ॥ १ ॥

४२२ ऋभुर्ऋभुभिरभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि ।
वाजो अस्माँ अवतु वाजसाताविन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् ॥ २ ॥
४२३ ते चिद्धि पूर्वीरभि सन्ति शासा विश्वाँ अर्य उपरताति वन्वन् ।
इन्द्रो विभ्वाँ ऋभुक्षा वाजो अर्यः शत्रोर्मिथत्या कृणवन् वि नृम्णम् ॥ ३ ॥
४२४ नू देवासो वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः
समस्मे इषं वसवो ददीरन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥

[४९]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- आपः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४२५ समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात् पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ १ ॥

अर्थ— [४२२] (वः ऋभुभिः ऋभुः अभि स्याम) आपके कुशल कारीगरोंके साथ रहकर हम कर्ममें कुशल हों । तथा (विभुभिः विभ्वः) तुम वैभव युक्तोंके साथ रहनेसे हम वैभव युक्त होंगे । (शवसा शवांसि) बलसे बल प्राप्त करेंगे । (वाजसातौ अस्मान् वाजः अवतु) युद्धके समय हमें अपना सामर्थ्य संरक्षण करे । (इन्द्रेण युजा वृत्रं तरुषेम) इन्द्रके साथ रहकर वृत्रका नाश करेंगे ॥ २ ॥

[४२३] (ते हि पूर्वीः शासा अभिसन्ति) वे शूर शत्रुकी बहुतसी सेनाको उत्तम शस्त्रसे पराभूत करते हैं । (उपरताति विश्वान् अर्य वन्वन्) युद्धमें सब शत्रुओंको मारते हैं । (विभ्वा ऋभुक्षाः वाजः अर्यः) वैभव युक्त, कारीगरोंके निवासक बलवान् शत्रुका पराभव करनेवाले वीर (इन्द्रः) इन्द्र और ऋभु ये सब (शत्रोः नृम्णं मिथत्या विकृणवन्) शत्रुके बलको विनष्ट करते हैं ॥ ३ ॥

[४२४] हे (देवासः) देवो ! (नू नः वरिवः कर्तन) हमारे लिये धनको प्रदान करो । (विश्वे सजोषाः नः अवसे भूत) सब एक विचारसे रहनेवाले तुम वीर हमारी सुरक्षा करनेके लिये रहो । (वसवः अस्मे इषं सं ददीरन्) वसुदेव हमें अन्नका प्रदान करें । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा सुरक्षाके कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित करो ॥ ४ ॥

[४९]

[४२५] (समुद्रज्येष्ठाः) जिनमें समुद्र श्रेष्ठ है ऐसे जल (सलिलस्य मध्यात् यन्ति) जलके मध्य स्थानसे चलते हैं जो (पुनानाः अनिविशमानाः) पवित्र करते हैं और कहीं भी ठहरते नहीं हैं । (वज्री वृषभः इन्द्रः या रराद) वज्रधारी बलवान् इन्द्रने जिनके लिये मार्ग बना दिया था । (ता देवीः आप इह मां अवन्तु) वे दिव्य जल यहां मेरी सुरक्षा करें ॥ १ ॥

भावार्थ— मनुष्य कुशल पुरुषोंके साथ रहकर स्वयं भी कुशल बने । वैभवशाली पुरुषोंके साथ रहकर वैभवशाली बने । समर्थोंके साथ रहकर अनेक प्रकारके सामर्थ्योंसे युक्त हो और अन्य वीरोंके साथ मिलकर शत्रुओंका नाश करे ॥ २ ॥

शत्रुसेना बहुतसी होनेपर भी वह उत्तम शस्त्रोंसे परास्त हो सकती है । यदि वीरोंके पास उत्तम शस्त्र हों, तो युद्धमें शत्रुओंका पराभव हो सकता है ॥ ३ ॥

मनुष्योंको धन मिले, सब उत्तम प्रकारसे सुरक्षित रहें, उन्हें उत्तम अन्न मिले । सभीको अन्न, धन और उत्तम संरक्षण मिले, जिससे उनकी उन्नति हो ॥ ४ ॥

पवित्र करनेवाली, सदा बहती रहनेवाली तथा समुद्रकी ओर जानेवाली जो नदियां हैं, जिन्हें इन्द्रने प्रवाहित किया है वे नदियां हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

४२६ या आपो॑ दि॒व्या उ॒त वा॒ स्रव॑न्ति ख॒नित्रि॑मा उ॒त वा॒ याः स्व॑यं॒जाः ।
स॒मु॒द्रार्था॒ याः शुच॑यः पाव॒का॒स्ता आपो॑ दे॒वीरि॒ह माम॑वन्तु ॥ २ ॥
४२७ यासां॒ राजा॒ वरु॑णो॒ याति॒ मध्ये॑ सत्यानृ॒ते अ॑व॒पश्य॒ञ्जना॑नाम् ।
म॒धु॒श्चुतः॒ शुच॑यो॒ याः पा॑व॒का॒स्ता आपो॑ दे॒वीरि॒ह माम॑वन्तु ॥ ३ ॥
४२८ यासु॒ राजा॒ वरु॑णो॒ यासु॒ सोमो॒ विश्वे॑ दे॒वा यासूर्जं॒ मद॑न्ति ।
वै॒श्वा॒न॒रो यास्व॒ग्निः प्रवि॑ष्ट॒स्ता आपो॑ दे॒वीरि॒ह माम॑वन्तु ॥ ४ ॥

[५०]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- १ मित्रावरुणौ, २ अग्निः, ३ विश्वे देवाः, ४ नद्यः ।
छन्दः- जगती, ४ अतिजगती शक्वरी वा ।)

४२९ आ मां॑ मित्रावरुणे॒ह र॑क्षतं कुला॒यय॑द्वि॒श्वय॒न्मा न॒ आ ग॑न् ।
अ॒ज॒का॒वं दु॒र्दृशी॑कं ति॒रो द॑धे॒ मा मां॒ पद्ये॑न॒ रप॑सा विद॒त्त्सरुः॑ ॥ १ ॥

अर्थ— [४२६] (याः आपः दिव्याः) जो जल आकाशसे प्राप्त होते हैं, और (उत वा स्रवन्ति) जो नदियोंमें बहते हैं, जो (खनित्रिमाः) खोद कर कुवेसे प्राप्त होते हैं, (उत वा याः स्वयंजाः) और जो स्वयं उत्पन्न होते हैं। (याः शुचयः पावकाः) जो शुद्धता और पवित्रता करनेवाले हैं, ये सब (समुद्रार्थाः) समुद्रकी ओर जानेवाले हैं (ताः देवीः आपः मां इह अवन्तु) वे दिव्य जल मेरी यहां सुरक्षा करें २ ॥

[४२७] (यासां वरुणः राजा मध्ये याति) जिनका राजा वरुण मध्य लोकमें जाता है और (जनानां सत्य-अनृते अवपश्यन्) लोगोंके सत्य और अनृतका निरीक्षण करता है। (याः आपः मधुश्चुतः) जो जल प्रवाह मधुररस देते हैं (याः शुचयः पावकाः) जो पवित्र और शुद्ध हैं (ताः आपः देवीः मां इह अवन्तु) वे दिव्य जल यहां हमारी सुरक्षा करें ॥ ३ ॥

[४२८] (राजा वरुणः यासु) वरुण राजा जिन जलोंमें रहता है, (सोमः यासु) सोम जिनमें रहता है, (विश्वे देवाः यासु ऊर्जं मदन्ति) सब देव जिनमें अन्न प्राप्त करके आनंदित होते हैं। (वैश्वानरः अग्निः यासु प्रविष्टः) विश्व संचालक अग्नि जिनमें प्रविष्ट हुआ है। (ताः देवीः आपः इह मां अवन्तु) वे दिव्य जल यहां मुझे सुरक्षित रखें ॥ ४ ॥

[५०]

[४२९] हे (मित्रावरुण) मित्र और वरुण ! (इह मां आरक्षतां) यहां मेरी सुरक्षा करो ! (कुलायवत् विश्वयत् नः मा आगन्) स्थानमें रहनेवाला अथवा फैलानेवाला विष हमारे पास न आवे। (अजकावं दुर्दृशीकं तिरः दधे) रोग और दृष्टि हीनता हमसे दूर हो। (त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्) सर्प पांवके शब्दसे मुझे न जाने। सांप मुझसे दूर रहे ॥ १ ॥

भावार्थ— जलके चार प्रकार हैं- (१) वृष्टिके द्वारा जो द्यु या आकाशसे प्राप्त होते हैं, वे दिव्य जल कहलाते हैं, (२) जो झरनोंसे स्रवते हैं, उन्हें प्रस्रवण कहते हैं, (३) जो खोदकर कुंवे और बावडियोंसे निकाले जाते हैं (४) और जो स्वयं स्रोतके द्वारा फूटकर बाहर आते हैं। ये सभी जल निर्दोष तथा पवित्रता करनेवाले हैं ॥ २ ॥

राजा वरुण अर्थात् तेजस्वी और वरणीय प्रभुकी सर्वत्र सत्ता है, इसलिए वह प्राणिमात्रके सत्य और अनृतका निरीक्षण करता है। उस प्रभुके द्वारा प्रेरित जो मधुरतासे भरे हुए जल प्रवाह हैं, वे दिव्य जल हमारी रक्षा करें ॥ ३ ॥

इन जलोंमें वरुण राजा रहता है, इन्हीं जलोंमें सोम रहता है। इन जलोंके द्वारा अन्न प्राप्त करके सब देव आनन्दित होते हैं। वे दिव्य जल मेरी सुरक्षा करें ॥ ४ ॥

हे मित्रके समान हितकारी तथा वरणीय प्रभो ! मेरी रक्षा कर, किसी तरहका विष हमें कष्ट न दे। हर तरहके रोग तथा दृष्टिकी हीनता हमसे दूर हो। सर्प आदि जन्तु भी मुझसे दूर रहें ॥ १ ॥

४३० यद् विजामन् परुषि वन्दनं भुव॑द् अष्ठीवन्तौ परि कुल्फौ च देह॑त् ।
अग्निष्टच्छोच॒न्नप॑ बाधतामि॒तो मा मां पद्येन रप॑सा विदत् त्सरुः ॥ २ ॥
४३१ यच्छल्मलौ भव॑ति यन्नदीषु यदोष॑धीभ्यः परि जाय॑ते विषम् ।
विश्वे देवा निरि॒तस्तत् सुवन्तु मा मां पद्येन रप॑सा विदत् त्सरुः ॥ ३ ॥
४३२ याः प्रवतो निवत उद्वत उदन्वतीरनुदकाश्च याः ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः शिवा देवीरशिपदा भवन्तु सर्वा नद्यो
अशिमिदा भवन्तु ॥ ४ ॥

[५१]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- आदित्याः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४३३ आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शंतमेन ।
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः ॥ १ ॥

अर्थ— [४३०] (वंदनं यत विजामन्) वंदन नामक विष जो जन्मभर रहता है, (परुषि भुवत्) जो पर्वस्थानमें रहता है, जो (अष्ठीवन्तौ कुल्फौ परि च देहत्) जांघों और गुल्फग्रंथियोंमें फुलाता है। (अग्निः शोचन् इतः तत् अपबाधतां) अग्नि प्रकाशित होकर यहांसे उसे दूर करे। (त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्) पांवके शब्दसे सांप मुझे न पहचाने ॥ २ ॥

[४३१] (यत् शल्मलौ भवति) जो शाल्मली वृक्ष पर होता है। (यत् नदीषु) नदियोंके जलोंमें होता है, (यत् विषं ओषधिभ्यः परिजायते) जो विष औषधियोंसे उत्पन्न होता है। (विश्वे देवाः तत् इतः निः सुवन्तु) सब देव उस विषको यहांसे दूर करें। (त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्) सांप पांवके शब्दसे मुझे न पहचाने ॥ ३ ॥

[४३२] (याः प्रवतः) जो नदियां प्रवण देशमें चलती है (याः निवतः उद्वतः) जो निम्न प्रदेशमें और जो उच्च प्रदेशमें चलती हैं, (याः उदन्वतीः अनुदकाः) जो उदकसे भरी रहती है और जिनमें थोडा जल रहता है, (ताः पयसा पिन्वमानाः) वे नदियां जलसे तृप्त करती हुई (अस्मभ्यं शिवाः) हमारे लिये कल्याण करनेवाली होकर वे (देवीः अशिपदाः) दिव्य नदियां शिपद रोगको दूर करनेवाली हो। (सर्वा नद्यः अशिमिदाः भवन्तु) सब नदियां कल्याण करनेवाली हों ॥ ४ ॥

[५१]

[४३३] (आदित्यानां नूतनेन अवसा) आदित्योंके नवीन संरक्षणसे (शंतमेन शर्मणा सक्षीमहि) अत्यन्त सुखदायी कल्याणसे हम युक्त हों। (तुरासः श्रोषमाणाः) त्वरासे कर्म करनेवाले और प्रार्थना सुननेवाले आदित्य (इमं यज्ञं) इस यज्ञको तथा इस याजकको (अनागास्त्वे अदितित्वे दधतु) निष्पाप और अदीन करें ॥ १ ॥

भावार्थ — शरीरमें जो विष हो, तथा जो रोग संधि तथा पर्वस्थानोंमें रहता है, वे सब अग्निके द्वारा दूर किए जाएं। वात रोग हो जानेके कारण घुटने, कोहिनी, टखने आदि अवयव जकडसे जाते हैं और उनमें सूजन आ जाती है, तब लोहेकी शलाका गरम करके उन उन स्थानों पर दाग देनेसे वह रोग समाप्त हो जाता है, ऐसा उपाय वेदोंमें बताया है ॥ २ ॥

वृक्षों, वनस्पतियों और नदीजलोंमें होनेवाला विष नाना प्रकारके दिव्य पदार्थों अर्थात् जल, अग्नि, वायु, औषधि, सूर्यप्रकाश आदिसे दूर किया जाय ॥ ३ ॥

हमारे देशमें जो नदियां ऊंचे, नीचे और सम प्रदेशमें जलसे भरकर संचार करती हैं, वे दिव्य नदियां हमारे रोगोंको दूर करनेवाली हों ॥ ४ ॥

आदित्योंके नवीन संरक्षणसे तथा उनके द्वारा प्रदत्त सुखदायी कल्याणसे हम युक्त हों। वे आदित्य देव हमारे इस यज्ञ तथा यज्ञ करनेवालेको निष्पाप तथा दीनता रहित करें ॥ १ ॥

४३४ आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः ।
अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोममवसे नो अद्य ॥ २ ॥
४३५ आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्वे ऋभवश्च विश्वे ।
इन्द्रो अग्निरश्विना तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

[५२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- आदित्याः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४३६ आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा ।
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः ॥ १ ॥
४३७ मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः ।
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत् कर्म वसवो यच्चयध्वे ॥ २ ॥

अर्थ— [४३४] (आदित्यासः, अदितिः, मित्रः, अर्यमा, वरुणः) आदित्य अदिति, मित्र, अर्यमा, वरुण ये (रजिष्ठाः) वेगवान् देव (मादयन्तां) हर्षित हों । आनन्दित हों । (भुवनस्य गोपाः अस्माकं सन्तु) ये विश्वके संरक्षक देव हमारा हित करनेवाले हों । (अद्य नः अवसे सोमं पिबन्तु) आज हमारे संरक्षण करनेके लिये ये सोमरस पीवें ॥ २ ॥

[४३५] (विश्वे आदित्याः) सब ही बारह आदित्य (विश्वे मरुतः) सब ४९ मरुत देव (विश्वे देवाः च) सब देव (विश्वे ऋभवः) सब ऋभुदेव और (इन्द्रः अग्निः अश्विना) इन्द्र, अग्नि तथा अश्वि देव (तुष्टुवानाः) इन सबकी स्तुति की है । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सब सदा हमारी सुरक्षा कल्याणके साधनोंसे करो ॥ ३ ॥

[५२]

[४३६] हे (आदित्यासः) आदित्यो ! हम (अदितयः स्याम) अदीन हों । हे (वसवः) वसुदेवो ! (देवत्रा पूः) देवोंमें जो संरक्षक शक्ति है वह (मर्त्यत्रा) हम मानवोंकी सुरक्षाके लिये प्राप्त हो । हे (मित्रावरुण) मित्र और वरुण ! (सनन्तः सनेम) तुम्हारी सेवा करने पर हम धनको प्राप्त करेंगे । हे द्यावा-पृथिवी ! हम (भवन्तः भवेम) भाग्यवान् हों ॥ १ ॥

[४३७] (मित्रः वरुणः तत् शर्म नः मामहन्त) मित्र और वरुण उस हमारे उत्तम सुखको बढावें । (गोपाः तोकाय तनयाय) विश्वरक्षक देव हमारे बाल-बच्चोंके लिये उत्तम सुख दें । (वः अन्यजातं एनः मा भुजेम) आपके आत्मीय बने हम अन्यके किये पापका फल न भोगें । अन्यके पापका फल हमें भोगना न पडे । हे (वसवः) वसुदेवो ! (यत् चयध्वे) जिस कारण आप नाश करते हैं (तत् कर्म मा) उस कर्मको हम न करें ॥२॥

भावार्थ— आदित्य अदिति आदि देव हमारे पास आकर आनन्द युक्त हों । ये विश्वके संरक्षक देव हमारा हित करनेवाले हों ॥ २ ॥

मैंने आदित्य, मरुत, ऋभु तथा इन्द्र आदि सभी देवोंकी स्तुति की है, वे देव हमारी रक्षा करें ॥ ३ ॥

हम दरिद्री अथवा दीन न हों । हमारा संरक्षण हो और धनवान् तथा भाग्यवान् हों ॥ १ ॥

हमारा सुख बढे, बालबच्चे आनंद प्रसन्न हों, दूसरेके द्वारा किया हुआ पाप हम पर न आ पडे । हमसे ऐसे कर्म कभी न हों कि जिससे हमारा विनाश हो । साथ ही हम ऐसे पाप कर्मके भागी न बनें कि जो दूसरोंके द्वारा किया गया हो ॥ २ ॥

४३८ तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।
पिता च तन्नो महान् यजत्रो विश्वे देवाः समनसो जुषन्त ॥ ३ ॥

[५३]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- द्यावापृथिवी । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४३९ प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः सबाध ईळे बृहती यजत्रे ।
ते चिद्धि पूर्वे कवयो गृणन्तः पुरो मही दधिरे देवपुत्रे ॥ १ ॥

४४० प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभि-र्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य ।
आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम् ॥ २ ॥

४४१ उतो हि वां रत्नधेयानि सन्ति पुरूणि द्यावापृथिवी सुदासे ।
अस्मे धत्तं यदसदस्कृधोयु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

अर्थ— [४३८] (तुरण्यवः अंगिरसः) त्वरासे कार्य करनेवाले अंगिरस (इयानाः) प्रार्थना करके (सवितुः देवस्य रत्नं नक्षन्त) सविता देवसे जिस रमणीय धनको प्राप्त करते रहे, (यजत्रः नः महान् पिता) यजन करनेवाला हमारा महान् पिता तथा (विश्वे देवाः) सब देव (समनसः जुषन्त) एक मनसे (तत्) उस धनको हमारे लिये दे दें ॥ ३ ॥

[५३]

[४३९] (यजत्ये बृहती द्यावा पृथिवी) पूजनीय बडे विशाल द्यावा पृथिवीकी (यज्ञैः नमोभिः) यज्ञों और अन्नोंके द्वारा (सबाधः ईळे) कष्टको दूर करनेके लिये प्रार्थना करता हूं । (ते चित् हि देवपुत्रे मही) वे द्यावा-पृथिवी जिनके पुत्र देव हैं तथा जो विशाल हैं उनको (पूर्वे गृणन्तः कवयः पुरः दधिरे) प्राचीन ज्ञानी स्तोता आगे रखते थे और स्तुति गाते थे ॥ १ ॥

[४४०] (नव्यसीभि गीर्भिः) नवीन स्तोत्रोंसे (ऋतस्य सदने) यज्ञके स्थानमें (पूर्वजे पितरा द्यावा पृथिवी) पूर्व जन्ममें पितर द्यावापृथिवीको (प्र कृणुध्वं) सुपूजित करो । हे (द्यावा पृथिवी) द्यावापृथिवी ! तुम (दैव्येन जनेन नः आ यातं) दिव्य जनोंके साथ हमारे पास आओ । (वां वरूथं महि) आपका धन बहुत है ॥२॥

[४४१] हे (द्यावापृथिवी) द्यावा पृथिवी ! (वां) आपके (सुदासे पुरूणि रत्न-धेयानि सन्ति) पास उत्तम दाताको देनेके लिये अनेक प्रकारके धन हैं । (यत् अ-स्कृधोयु असत्) जो बहुतसा धन होगा वह (अस्मे धत्तं) हमें प्रदान करो । (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याणके साधनोंसे सदा हमारा पालन करो ॥ ३ ॥

भावार्थ— शीघ्रतासे कार्य करनेवाले अंगिरस सविता देवके रमणीय धनको प्राप्त करते हैं । हमारा पालन करनेवाले सब देव हम पर कृपा करें ॥ ३ ॥

पूज्य और विशाल द्यु और पृथिवी हमारे कष्टोंको दूर कर करें । सभी देव इस विशाल द्यु और पृथ्वीके पुत्र हैं ॥ १ ॥

पूज्य द्यु और पृथिवी इस विश्वके पिता और माता है । अतः इनकी पूजा करनी चाहिए ॥ २ ॥

हे द्युलोक और पृथ्वी ! तुम्हारे पास अनेक तरहके धन हैं, उन धनोंको तुम हमें प्रदान करो ॥ ३ ॥

[५४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वास्तोष्पतिः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४४२ वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः ।
यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥
४४३ वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो ।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व ॥ २ ॥
४४४ वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

[५५]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वास्तोष्पतिः, २-८ इन्द्रः (२-८ प्रस्वापिनी उपनिषद्) ।
छन्दः- १ गायत्री, २-४ उपरिष्टाद्बृहती, ५-८ अनुष्टुप् ।)

४४५ अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् । सखा सुशेव एधि नः ॥ १ ॥

---

[५४]

अर्थ— [४४२] हे (वास्तोष्पते) वास्तोष्पते ! (अस्मान् प्रति जानीहि) तुम हमें अपने समझो । (नः स्वावेशः अनमीवः भव) हमारे घरको नीरोग करनेवाला हो । (यत् त्वा ईमहे तत् नः प्रति जुषस्व) जो धन हम तुम्हारे पास मांगेंगे वह हमें दे दो । (नः द्विपदे चतुष्पदे शं भव) हमारे द्विपाद और चतुष्पादके लिये कल्याणकारी हो ॥ १ ॥

[४४३] हे (वास्तोष्पते) गृहके स्वामिन् ! (नः प्रतरणः एधि) तुम हमारे तारक हो और (गय-स्फानः) धनके विस्तारकर्ता हो । हे (इन्दो) सोम ! (गोभिः अश्वेभिः) गौओं और घोडोंसे युक्त होकर (अजरासः स्याम) हम जरारहित हों । (ते सख्ये स्याम) तेरी मित्रतामें हम रहें । (पिता पुत्रान् इव) पिता जैसा पुत्रोंका पालन करता है उस तरह (नः जुषस्व) हमारा पालन कर ॥ २ ॥

[४४४] हे (वास्तोष्पते) वास्तुके स्वामिन् ! (शग्मया रण्वया) सुखदायक और रमणीय (गातुमत्या ते संसदा सक्षीमहि) प्रगति शील ऐसी तुम्हारी सभाको हम प्राप्त हों । ऐसा स्थान हमें मिले । हम ऐसे सभास्थानके सदस्य बनें । (क्षेमे उत योगे नः वरं पाहि) प्राप्त धनको तथा अप्राप्त धनकी प्राप्तिमें हमारे श्रेष्ठ धनको सुरक्षित रखो (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ ३ ॥

[५५]

[४४५] हे (वास्तोष्पते) वास्तोष्पते ! तुम (अमीवहा) रोगोंका नाश करो । (विश्वा रूपाणि आविशन्) अनेक रूपोंमें प्रविष्ट होकर (नः सुशेवः सखा एधि) हमारा सुखकर मित्र हो ॥ १ ॥

भावार्थ— वास्तु कहते हैं घरको, उसका पति अर्थात् गृहस्वामी उस गृहमें रहनेवालोंको अपना समझे ! राष्ट्रपति राष्ट्रमें रहनेवालोंको अपना समझे । उस घर या राष्ट्रमें रहनेवाले सभी निरोगी हों ॥ १ ॥

घर घरवालोंका संरक्षण करनेवाला हो, धनका विस्तार हो, घरमें साथ गायें और घोडे रहें । घरमें रहनेवाले क्षीण या निर्बल न हों, सभी नीरोग और हृष्टपुष्ट हों । घरवाले प्रभुके मित्र हों, ईश्वरभक्त हों ॥ २ ॥

घर सुखदायक, रमणीय, प्रगतिसाधक और जहां अनेक लोग मिलकर बैठ सकें, ऐसा हो । घर छोटा न हो, अपितु जहां सभी मिलकर बैठ सकें ऐसा बडा घर हो । हम अप्राप्तको प्राप्त करके उसका संरक्षण करनेमें कुशल हों ॥ ३ ॥

घरका स्वामी घरके अन्दरके तथा बाहरके रोगबीज दूर करे और अपने घरमें आरामसे रहे । उसका स्वभाव सुखदायी मित्र जैसा हो । घरका स्वामी लोगोंसे विविध रूप धारण करके व्यवहार करे ॥ १ ॥

+

४४६ यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे ।
वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ॥ २ ॥
४४७ स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनःसर ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान् दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥ ३ ॥
४४८ त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान् दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥ ४ ॥
४४९ सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः ।
ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ॥ ५ ॥
४५० य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।
तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ ६ ॥

अर्थ—[४४६] हे (अर्जुन सारमेय पिशंग) श्वेत सरमाके पुत्र पिंगल वर्णवाले कुत्ते! (यत् दतः यच्छसे) जब तू दांत दिखाता है, तब (ऋष्टयः इव वि भ्राजन्ते) शस्त्रोंके समान वे चमकते हैं। तथा (स्रक्वेषु उप बप्सतः) होठोंमें तेरे दांत खानेके समय भी विशेष चमकते हैं। ऐसा तू अब (सु नि स्वप) अच्छी तरह सोजा ॥ २ ॥

[४४७] हे (पुनःसर सारमेय) जिस स्थानमें एक बार जाते हैं, उसी स्थानमें पुनः पुनः जानेवाले सरमाके पुत्र ! (तस्करं स्तेनं वा राय) तू चोर वा डाकू पर दौड। (इन्द्रस्य स्तोतॄन् किं रायसि) इन्द्रके भक्तोंपर क्यों दौडता है? इनको छोड दे। (अस्मान् किं दुच्छुनायसे) हमें क्यों बाधा करता है? (सु नि स्वप) अब तू अच्छी तरह सोजा ॥ ३ ॥

[४४८] (त्वं सूकरस्य दर्दृहि) तू सुअरको फाड। (सूकरः तव दर्दर्तु) सुअर भी तुझ पर आक्रमण करे। हे कुत्ते ! तू (इन्द्रस्य स्तोतॄन् किं रायसि) इन्द्रके स्तोताओं पर क्यों दौडता है? (अस्मान् किं दुच्छुनायसे) हमें क्यों बाधा पहुंचाता है? (सु नि स्वप) अब तू अच्छीतरह सोजा ॥ ४ ॥

[४४९] (सस्तु माता, सस्तु पिता) माता पिता सो जाय। (सस्तु श्वा, सस्तु विश्पतिः) कुत्ता सोवे और प्रजा पालक भी सो जावे। (सर्वे ज्ञातयः ससन्तु) सब बन्धुबांधव सो जांय। (अभितः अयं जनः सस्तु) चारों ओरके ये सब लोग सो जांय ॥ ५ ॥

[४५०] (यः आस्ते, यः च चरति) जो यहां ठहरता है और जो चलता है, (यः जनः नः पश्यति) जो मनुष्य हमें देखता है, (तेषां अक्षाणि सं हन्मः) उनके आंखोंको हम एक केंद्रमें लाते हैं, (यथा इदं हर्म्यं तथा) जैसा यह राजप्रासाद स्थिर है वैसे उनके आंख एक केन्द्रमें स्थिर हों ॥ ६ ॥

भावार्थ— घरकी सुरक्षाके लिए अच्छी अच्छी जातिके कुत्ते पाले जाएं। उन्हें उत्तम भोजन देकर पुष्ट बनाया जाए। उन्हें प्रेमसे पाला जाए, तथा उनके सोने तथा रहनेके लिए उत्तम व्यवस्था की जाए ॥ २ ॥

ऐसे पले हुए कुत्ते उत्तम रीतिसे सुशिक्षित किए जाएं, ऐसे सुशिक्षित हों कि वे चोर, तस्कर और सज्जनोंको पहचानें। तथा पहचानकर चोरों और तस्करों पर आक्रमण करें तथा सज्जनोंकी रक्षा करें ॥ ३ ॥

घरकी सुरक्षाके लिए पाले गए कुत्तोंको बहादुर बनानेके लिए उन्हें अच्छी तरहसे प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। उन्हें अन्य शक्तिशाली जानवरोंसे युद्ध करनेके लिए छोड देना चाहिए ॥ ४ ॥

नगरकी व्यवस्था इतनी उत्तम हो कि सब लोग रातको आरामसे सो सकें। कुत्ते भी आरामसे सोयें। अर्थात् नगरमें चोर और डाकुओंका भय जरा भी न रहे। ऐसे ही नगरमें सब लोग निश्चिन्त होकर सो सकते हैं ॥ ५ ॥

४५१ सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥ ७ ॥
४५२ प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः
स्त्रियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥ ८ ॥

[५६]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- मरुतः । छन्दः-त्रिष्टुप्, १-११ द्विपदा विराट् ।)

४५३ क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः ॥ १ ॥
४५४ नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम् ॥ २ ॥
४५५ अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त वातस्वनसः श्येना अस्पृध्रन् ॥ ३ ॥

अर्थ— [४५१] (सहस्रशृंगः यः वृषभः) सहस्रों किरणोंवाला जो बलवान् तथा वृष्टि करनेवाला सूर्य है वह (समुद्रात् उत्-आचरत्) समुद्रसे ऊपर आया है । (तेन सहस्येन) उस शत्रुका पराभव करनेवाले सूर्यके बलसे (वयं जनान् नि स्वापयामसि) हम सब लोगोंको सुला देते हैं ॥ ७ ॥

[४५२] (याः प्रोष्ठे-शयाः) जो आंगनमें सोती है, (याः नारीः वह्ये-शयाः) जो स्त्रियां वाहनोंमें सोती हैं (याः तल्प-शीवरीः) जो स्त्रियां बिस्तरोंपर सोती हैं (याः पुण्यगन्धा स्त्रियः) जो उत्तम गन्धवाली स्त्रियां हैं, (ताः सर्वाः स्वापयामसि) उन सब स्त्रियोंको हम सुला देते हैं ॥ ८ ॥

[५६]

[४५३] (अध रुद्रस्य सनीळा मर्याः) महावीरके एक घरमें रहनेवाले (सु अश्वाः व्यक्ताः नरः) जिनके पास उत्तम घोडे हैं वे सबको परिचित नेता वीर (ईं के) भला कौनसे हैं ? ॥ १ ॥

[४५४] (एषां जनूंषि न किः वेद) इन वीरोंके जन्मके वृत्तान्तको कोई नहीं जानता । (ते मिथः जनित्रं अंग विद्रे) वे वीर परस्परके जन्मके वृत्तान्तको सचमुच जानते हैं ॥ २ ॥

[४५५] वे वीर जब (स्व-पूभिः मिथः अभिवपन्त) अपने पवित्र साधनोंके साथ जब परस्पर मिलते हैं, तब (वातस्वनसः श्येनाः अस्पृध्रन्) पवनके तुल्य बडा शब्द करनेवाले बाज पक्षियोंकी तरह वेगमें स्पर्धा करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— जिसतरह एक राजमहल विशाल होने पर भी एक स्थान पर स्थिर रहता है, उसी तरह बडे पाद्शियोंका ध्यान भी अपनी सुरक्षाके कार्यमें लगा रहे । जो बैठा हो, जो चलता हो, जो देखता हो, वे सभी मनुष्य अपने व्यक्तिगत काम करते रहनेपर भी संघटित होकर रहें ॥ ६ ॥

अनन्त किरणोंसे युक्त सूर्य द्युलोकरूपी समुद्रमेंसे उदय होता है, और सारे विश्वको प्रकाशित करता हुआ सब लोगोंको उत्तम कर्म करनेकी प्रेरणा देता है और सबको कर्ममें नियुक्त करता है । दिनभर प्रकाशनेके बाद जब शामको सूर्य अस्त हो जाता है, तब सारा दिन काम करके थके हुए प्राणी रातको आरामकी नींद लेते हैं ॥ ७ ॥

राष्ट्र या नगरके सुरक्षाकी इतनी सुन्दर व्यवस्था हो कि स्त्रियां आंगनमें भी निर्भीक होकर सोवें । यात्रा करनेवाली स्त्रियां भी मार्गमें या वाहनोंमें निर्भीक होकर आरामसे सोयें । स्त्रियां उत्तम गंधोंसे शरीरको सजाकर रातको उत्तम शय्याओंपर सोयें ॥ ८ ॥

सभी मरुत् वीर एक ही रुद्र अर्थात् शत्रुओंको रुलानेवाले महावीरके आश्रयमें रहते हैं । वे सभी वीर उत्तम घोडोंका पालन करते हैं ॥ १ ॥

इन मरुत् वीरोंके रहस्यको इतर जन नहीं जानते, पर ये आपसमें अत्यन्त प्रेमसे रहते हैं । इसी तरह राष्ट्रके वीरोंमें कितनी ताकत है, इस बात शत्रु राष्ट्रके लोग न जान सकें । राष्ट्रके सभी वीर आपसमें घनिष्ठ प्रेमसे रहें ॥ २ ॥

वे वीर जब अपने पवित्र साधनोंसे आपसमें मिलते हैं, तब वे वीर आपसमें आगे बढनेके लिए स्पर्धा करते हैं ॥ ३ ॥

४५६ एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभार ॥ ४ ॥
४५७ सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात् सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम् ॥ ५ ॥
४५८ यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्ला ओजोभिरुग्राः ॥ ६ ॥
४५९ उग्रं व ओजः स्थिरा शवांस्यधा मरुद्भिर्गणस्तुविष्मान् ॥ ७ ॥
४६० शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णोः ॥ ८ ॥
४६१ सनेम्यस्मद् युयोत दिद्युं मा वो दुर्मतिरिह प्रणङ्नः ॥ ९ ॥
४६२ प्रिया वो नाम हुवे तुराणामा यत् तृपन्मरुतो वावशानाः ॥ १० ॥

अर्थ— [४५६] (धीरः एतानि निण्या चिकेत) बुद्धिमान् पुरुष इन वीरोंके ये कार्यकलाप जानता है। (यत्) जिन वीरोंके लिये। (मही पृश्निः ऊधः जभार) बडी गौने दुग्धाशयमें दूधका भार उठाया था ॥ ४ ॥

[४५७] (सा विट्) वह प्रजा (मरुद्भिः सुवीरा) वीर मरुतोंके कारण अच्छे वीरोंसे युक्त होकर (सनात् सहन्ती) सदा शत्रुका पराभव करनेवाली तथा (नृम्णं पुष्यन्ती अस्तु) मनुष्योंके बलोंको बढानेवाली बने ॥ ५ ॥

[४५८] वे वीर शत्रुपर (यामं येष्ठाः) आक्रमण करनेका यत्न करनेवाले, (शुभाः शोभिष्ठाः) अलंकारोंसे सुहानेवाले (श्रिया संमिश्लाः) शोभासे संयुक्त हुए तथा (ओजोभिः उग्राः) सामर्थ्यसे उग्र वीर प्रतीत होते हैं ॥ ६ ॥

[४५९] (वः ओजः उग्रं) आपका सामर्थ्य उग्र है, वीरता युक्त है, (शवांसि स्थिरा) आपके बल स्थिर अर्थात् स्थायी रहनेवाले हैं। (अध) और (मरुद्भिः गणः तुविष्मान्) मरुद्वीरोंके कारण तुम्हारा संघ बलवान् हुआ है ॥ ७ ॥

[४६०] (वः शुष्मः शुभ्रः) आपका सामर्थ्य निष्कलंक है, तुम्हारे (मनांसि क्रुध्मी) मन क्रोधसे भरे हैं, तुम शत्रुपर क्रोध करनेवाले हो, परंतु (धृष्णोः शर्धस्य) शत्रुका धर्षण करनेके तुम्हारे सांघिक सामर्थ्यका (धुनिः) वेग (मुनिः इव) मुनिकी तरह मनन पूर्वक कार्य करनेवाला है ॥ ८ ॥

[४६१] वह तुम्हारा (सनेमि दिद्युं) तीक्ष्ण धारवाला तेजस्वी शस्त्र (अस्मत् युयोत) हमसे दूर रहे, हमपर उसका आघात न हो। (वः दुर्मतिः इह नः मा प्रणक्) आपकी शत्रुनाश करनेकी बुद्धि हमारा नाश न करे ॥ ९ ॥

[४६२] हे (मरुतः) मरुद्वीरो ! (तुराणां वः) त्वरासे कार्य करनेवाले तुम्हारे (प्रिया नाम आहुवे) प्यारे नामोंसे मैं तुम्हें बुलाता हूं। (यत् वावशानाः) जिस कार्यकी इच्छा करनेवाले तुम (आतृपत्) तृप्त होते हैं वही हम करें ॥ १० ॥

भावार्थ— राष्ट्रका बुद्धिशाली नेता इन वीरोंके कार्योंपर कडी नजर रखे और वह इन वीरोंके लिए पौष्टिक आहारकी व्यवस्था करे ॥ ४ ॥

जिस राष्ट्रकी प्रजाओंमें अच्छे वीर होते हैं, वे ही प्रजायें सदा विजयी होती हैं। इसलिए प्रजायें मिलकर राष्ट्रमें वीरोंका निर्माण करें ॥ ५ ॥

सभी वीर अपने शत्रुओंपर आक्रमण करके उन्हें भगा दें, स्वयं सुशोभित रहें और अपना सामर्थ्य बढाते रहें, कभी भी सामर्थ्य कम न होने दें ॥ ६ ॥

वीरोंमें प्रभावी सामर्थ्य और सदा टिकनेवाला बल चाहिए और उनमें संघशक्ति भी उत्तम चाहिए ॥ ७ ॥

वीरोंका सामर्थ्य उत्तम चरित्रवाला तथा निर्दोष हो। वे शत्रुओं पर क्रोध तो करें, पर उनका यह क्रोध मननपूर्वक हो, अविचारसे न हो ॥ ८ ॥

हमारे वीर जिस बुद्धि तथा शस्त्रोंसे शत्रुओंके वीरोंका नाश करते हैं, वह उनकी बुद्धि तथा शस्त्र अपने ही देशवासियोंका नाश न करें ॥ ९ ॥

वीरोंको सभी प्रजायें अच्छे और प्रेम भरे शब्दोंसे बुलावें, उनका आदर करें और उन्हें अच्छे लगनेवालेही कार्य करें अर्थात् जनतामें वीरोंका आदर हो ॥ १० ॥

४६३ स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ॥ ११ ॥
४६४ शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ॥ १२ ॥
४६५ अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः ।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः ॥ १३ ॥
४६६ प्र बुध्न्या व ईरते महांसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।
सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम् ॥ १४ ॥
४६७ यदि स्तुतस्य मरुतो अधीथेत्था विप्रस्य वाजिनो हवीमन् ।
मक्षू रायः सुवीर्यस्य दात नू चिद् यमन्य आदभदरावा ॥ १५ ॥

अर्थ— [४६३] हे वीर (सु आयुधाः) अच्छे शस्त्र अपने पास रखनेवाले (इष्मिणः सुनिष्काः) वेगवान् और आभूषण धारण करनेवाले और (स्वयं तन्वः शुम्भमानाः) वे अपनेही शरीरोंको सुशोभित करनेवाले हैं ॥ ११ ॥

[४६४] हे (मरुतः) मरुद्वीरो ! (शुचीनां वः हव्या शुची) आप शुद्ध हैं अतः आपके अन्न भी पवित्र हैं । (शुचिभ्यः शुचिं अध्वरं हिनोमि) इन शुद्ध वीरोंके लिये मैं हिंसारहितही यज्ञको करता हूँ । (ऋत-सापः) सत्यकी उपासना करनेवाले ये (शुचि-जन्मानः) शुद्ध कुलमें जन्मे कुलीन वीर (शुचयः पावकाः) शुद्ध और पवित्रता करनेवाले (ऋतेन सत्यं आयन्) सरलतासे सत्यको प्राप्त करते हैं ॥ १२ ॥

[४६५] हे (मरुतः) मरुद्वीरो ! (वः अंसेषु खादयः आ) आपके कंधोंपर आभूषण हैं, (वक्षःसु रुक्माः) छातियोंपर सुवर्ण मुद्राओंके हार (उप शिश्रियाणाः) लटक रहे हैं । (विद्युतः न रुचानाः) बिजलियोंकी तरह चमकनेवाले तुम (वृष्टिभिः आयुधैः) शत्रुपर आघातोंकी वर्षा करनेवाले अपने आयुधोंसे (स्वधां अनु यच्छमानाः) अपनी धारणा शक्तिको प्रकट करते हो ॥ १३ ॥

[४६६] हे (प्रयज्यवः मरुतः) पूजनीय वीर मरुतो ! (वः बुध्न्या महांसि) तुम्हारे मौलिक अपने सामर्थ्य (प्र ईरते) प्रकट हो रहे हैं । तुम अपने (नामानि प्रतिरध्वं) यशोंके साथ परले तट तक जाओ । शत्रुतक पहुंचो । (एतं सहस्रियं दम्यं) इस सहस्र गुणोंसे युक्त होनेके कारण हितकारी घरके (गृहमेधिनं भागं जुषध्वं) यज्ञके भागका स्वीकार करो ॥ १४ ॥

[४६७] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वाजिनः विप्रस्य हवीमन्) बलशाली ज्ञानी पुरुषके यज्ञ करनेके समय की हुई (स्तुतस्य) स्तुतिको (यदि इत्था अधीथ) यदि इस तरह तुम जानते हो, तो (सुवीर्यस्य रायः मक्षु दात) उत्तम वीरतासे युक्त धनका दान तुरन्तही करो । अन्यथा (अन्यः अरावा) दूसरा कोई कंजूस शत्रु (नु चित् यं आदभत्) उसको दबा देगा, विनष्ट कर देगा ॥ १५ ॥

भावार्थ— वीरोंके पास उत्तम शस्त्र हों, वे वीर वेगसे शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले हों, वे अपने शरीरोंको सुशोभित करके प्रभावी बनावें ॥ ११ ॥

वीरोंका आचार शुद्ध हो, वे पवित्र अन्नका आहार करें, स्वयं शुद्ध पवित्र और निष्पाप बनें । सत्यमय जीवनसे सत्यका व्यवहार करें, कभी टेढा व्यवहार न करें ॥ १२ ॥

वीरोंके शरीरों पर आभूषण रहें और वे उनकी शोभाको बढावें । उनके शस्त्र बिजलीकी तरह चमकनेवाले तीक्ष्ण हों, वे उन शस्त्रोंसे शत्रु पर आघातोंकी वृष्टि करें और अपनी शक्तिको प्रभावित रीतिसे दिखावें ॥ १३ ॥

वीरोंके सामर्थ्य बढते रहें, उनके यश भी बढते जाएं, उनके घर अनेक तरहके हितकारी पदार्थोंसे युक्त हों और वे प्रत्येक यज्ञमें जाकर यज्ञका भाग स्वीकार करें ॥ १४ ॥

४६८ अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।
ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिनः पयोधाः ॥ १६ ॥
४६९ दशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके ।
आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम् ॥ १७ ॥
४७० आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः ।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः ॥ १८ ॥
४७१ इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आ नमन्ति ।
इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति ॥ १९ ॥

अर्थ— [४६८] हे वीर मरुतो! (अत्यासः न) घुडदौडके घोडेकी तरह (सु अञ्चः यक्ष-दृशः) उत्तम वेगवान् और यज्ञका दर्शन करनेके लिये आये (मर्याः न) मनुष्योंकी तरह जो (शुभयन्त) अपने आपको सुशोभित करते हैं (ते हर्म्येष्ठाः शिशवः न) वे राज प्रासादमें रहनेवाले बालकोंकी तरह (शुभ्राः) सुहानेवाले (पयोधाः वत्सासः न) दूध पीनेवाले बालकके समान (प्रक्रीळिनः) खेलते रहते हैं ॥ १६ ॥

[४६९] शत्रुओंका (दशस्यन्तः) नाश करनेवाले तथा (सुमेके रोदसी वरिवस्यन्तः) सुस्थिर द्यावा पृथिवीको आश्रय देनेवाले (मरुतः नः मृळयन्तु) वीर मरुत् हमें सुखी बना देवें। हे (वसवः) वसानेवाले वीरो! (गोहा नृहा वः वधः) गौका घातक और मनुष्योंका घातक शस्त्र हमसे (आरे अस्तु) दूर रहे। तुम (सुम्नेभिः अस्मे नमध्वं) अपने अनेक सुखके साधनोंके साथ हमारे पास आनेके लिये चल पडो ॥ १७ ॥

[४७०] हे (वृषणः मरुतः) बलवान् वीर मरुतो! (सत्तः सत्राचीं रातिं गृणानः) यज्ञस्थानमें बैठकर तुम्हारे सर्वत्र फैलनेवाले दानकी स्तुति करनेवाला (होता) याजक (वः आ जोहवीति) तुम्हें बुला रहा है। (यः ईवतः गोपाः अस्ति) जो प्रगतिशील संरक्षक वीर है, (सः अद्वयावी) वह अनन्यभावसे युक्त होकर (उक्थैः वः हवते) स्तोत्रोंसे तुम्हारी प्रार्थना करता है ॥ १८ ॥

[४७१] (इमे मरुतः तुरं रामयन्ति) ये वीर मरुत् त्वरासे कार्य करनेवालोंको आनन्द देते हैं। (इमे सहः सहसः आनमन्ति) ये वीर अपनी प्रभावी शक्तिके सहारे बलवान् शत्रुको विनम्र करते हैं। (इमे शंसं वनुष्यतः निपान्ति) ये वीर स्तोत्रोंका आदरसे पाठ करनेवालोंका संरक्षण करते हैं और (अररुषे गुरु द्वेषः दधन्ति) शत्रुओं पर बडाभारी द्वेष धारण करते हैं ॥ १९ ॥

भावार्थ— यज्ञ करनेवालोंको वीरतासे परिपूर्ण धनका दान मिलता रहे। धन प्राप्त करनेके बाद यदि उसकी रक्षा करने लायक शक्ति हमारे अन्दर न हो, तो वह धन नष्ट हो जाएगा। उसे कोई लूट ले जाएगा और हम टापते रह जाएंगे। इसलिए धनके साथ साथ शरीरमें सामर्थ्य भी हो ॥ १५ ॥

यज्ञमें शामिल होनेके लिए जानेवाले लोग अच्छी तरह नहा धोकर सजधज कर जायें। जिस प्रकार राजमहलमें रहनेवाले लोग सजधजकर तथा सुन्दर होकर रहते हैं, उसी तरह सभी राष्ट्रवासी सजधजकर तथा सुन्दर होकर रहें ॥ १६ ॥

वीर शत्रुका नाश करें और लोगोंको सुखी करें। गौका नाश करने और मनुष्योंका वध करनेवाला समाजसे दूर किया जाए। तथा मनुष्योंके सुखके लिए हरतरहके सुखके साधन जुटाये जायें ॥ १७ ॥

सभी वीर बलवान्, वीर्यवान् और पराक्रमी हों। लोग दान ऐसा दें कि जिसका परिणाम या लाभ सब लोगोंतक पहुंचे। संरक्षण करनेवाले वीर प्रगतिशील लोगोंकी सदा रक्षा करें ॥ १८ ॥

वीरगण त्वरासे कार्य करनेवालोंको आनंद देनेवाले हों। अपने प्रभावी सामर्थ्यसे बलवान् शत्रुको भी विनम्र कर देनेवाले हों, पर जो उनका आदर करें, ऐसे अपने मित्रोंकी रक्षा करनेवाले हों और शत्रुओंसे द्वेष करनेवाले हों ॥ १९ ॥

४७२ इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति भृमिं चिद्यथा वसवो जुषन्त ।
अप बाधध्वं वृषणस्तमांसि धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे ॥ २० ॥
४७३ मा वो दात्रान्मरुतो निररान मा पश्चाद् दघ्म रथ्यो विभागे ।
आ नः स्पार्हे भजतना वसव्ये यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति ॥ २१ ॥
४७४ सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः ॥ २२ ॥
४७५ भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित् ।
मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित् सनिता वाजमर्वा ॥ २३ ॥

अर्थ— [४७२] (इमे वसवः मरुतः) ये बसानेवाले वीर मरुत् (यथा रध्रं चित् जुनन्ति) जैसे समृद्धिवाले मनुष्यके पास जाते हैं, वैसे ही (भृमिं चित् जुषन्त) भीख मांगनेके लिये भटकनेवालेके पास भी जाते हैं। हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! (तमांसि अप बाधध्वं) अन्धेरेको दूर हटा दो और (अस्मे विश्वं तनयं तोकं धत्त) हमारे पास बाल बच्चोंको सब प्रकारसे सुखमें रखो ॥ २० ॥

[४७३] हे (रथ्यः मरुतः) रथपर बैठनेवाले वीर मरुतो ! (वः दात्रात् मा निः अराम) आपके दानसे हम दूर न रहें । (विभागे पश्चात् मा दघ्म) धनको बांटनेके समय हम सबसे पीछे न रहें । हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! (वः सुजातं यत् ईं अस्ति) आपका उच्च कोटीका जो भी धन है उस (स्पार्हे वसव्ये) उस स्पृहणीय धनमें (नः आभजतन) हमें अंशभागी करो ॥ २१ ॥

[४७४] हे (रुद्रियासः अर्यः मरुतः) महावीरके श्रेष्ठ वीरो ! (यत् शूराः जनासः) जब शूर लोग (यह्वीषु ओषधीषु विक्षु) नदियोंमें, अरण्यमें, प्रजाओंमें (मन्युभिः संनहन्त) उत्साहके साथ मिलकर शत्रुपर हमला करते हैं, (अध पृतनासु) तब ऐसे युद्धोंमें (नः त्रातारः भूतस्म) हमारे संरक्षक बनो ॥ २२ ॥

[४७५] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! तुम (पित्र्याणि भूरि उक्थानि चक्र) पितरोंके संबंधमें बहुतसे स्तोत्र श्रवण कर चुके हो, (वः या पुरा चित् शस्यन्ते) तुम्हारे इन स्तोत्रोंकी पहिलेसे प्रशंसा होती आयी है। (उग्रः मरुद्भिः पृतनासु साळ्हा) उग्र शूर वीर मरुतोंकी सहायतासे युद्धोंमें शत्रुका पराभव करता है, (मरुद्भिः अर्वा वाजं सनिता) मरुतोंकी सहायतासे घोडा भी बलके कार्य करता है ॥ २३ ॥

भावार्थ— मरुत् वीर जिस तरह समृद्धिशालियोंके पास जाते हैं, उसी तरह गरीबोंके पास भी जाते हैं। उसी तरह राष्ट्रके वीर भी धनी और निर्धन दोनोंकी समानरूपसे रक्षा करें, जहां पर भी ये जाएं, वहांसे अन्धकारको दूर करते जाएं और सबको सुरक्षित रखें ॥ २० ॥

जिस समय ये मरुत् धनका विभाग करते हैं, उस समय सभी पर इनकी दृष्टि रहे। सभी जन इनके दानके अंश-भागी हों ॥ २१ ॥

हे शत्रुओंको रुलानेवाले वीरो ! जब दूसरे शूर नदियोंमें, जंगलोंमें और प्रजाओंमें रहकर शत्रुओंपर आक्रमण करते हैं, तब तुम युद्धोंमें उन शूरोंके संरक्षक बनो ॥ २२ ॥

इन मरुतोंकी प्रशंसा अनन्तकालसे चली आई है। इन्हीं मरुतोंकी सहायता पाकर ही वीर युद्धमें विजय प्राप्त करते हैं। जब ये मरुत् घोडोंपर चढते हैं, तब घोडे भी उत्साहमें आकर वीरताके कार्य करते हैं ॥ २३ ॥

४७६ अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता ।
अपो येन सुक्षितये तरेमा ऽध स्वमोको अभि वः स्याम ॥ २४ ॥
४७७ तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्नि- राप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन् त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २५ ॥

[५७]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- मरुतः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४७८ मध्वो वो नाम मारुतं यजत्राः प्र यज्ञेषु शवसा मदन्ति ।
ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी पिन्वन्त्युत्सं यदयासुरुग्राः ॥ १ ॥
४७९ निचेतारो हि मरुतो गृणन्तं प्रणेतारो यजमानस्य मन्म ।
अस्माकमद्य विदथेषु बर्हि- रा वीतये सदत पिप्रियाणाः ॥ २ ॥

अर्थ— [४७६] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (यः असु-रः जनानां विधर्ता) जो अपना जीवन देकर लोगोंका विशेष रीतिसे धारण करता है वह (अस्मे वीरः शुष्मी अस्तु) हमारा वीर बलवान् बने । (येन सुक्षितये अपः तरेम) जिसकी सहायतासे हम उत्तम सुखपूर्वक निवास करनेके लिये दुःखके समुद्रको भी हम तैरकर पार हो जांयगे । और (वः स्वं ओकः अभिस्याम) तुम्हारे मित्र बनकर हम अपने स्वकीय घरमें आनन्दसे प्रसन्न रहेंगे ॥ २४ ॥

[४७७] (इन्द्रः वरुणः मित्रः अग्निः आपः ओषधिः वनिनः) इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, आप, औषधी, वनके वृक्ष, (नः तत् जुषन्त) हमें वह सुख दें, कि जिससे हम (मरुतां उपस्थे शर्मन् स्याम) वीरोंके समीप आनंदसे रहें । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याणके साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ २५ ॥

[५७]

[४७८] हे (यजत्राः) पूज्य वीरो ! (वः मारुतं नाम मध्वः) आप वीर मरुतोंका नाम मीठासका द्योतक है । ये वीर (युद्धेषु शवसा प्र मदन्ति) युद्धोंमें अपने बलके कारण आनन्दसे लडते हैं । (यत् उग्राः अयासुः) जब ये उग्र वीर शत्रुपर हमला करते हैं, तब (ये उर्वी चित् रोदसी रेजयन्ति) वे विस्तृत द्यावापृथिवीको कंपाते हैं ऐसा प्रतीत होता है । और वे (उत्सं पिन्वन्ति) जलप्रवाहको भरपूर बहा देते हैं । भर देते हैं ॥ १ ॥

[४७९] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! तुम (गृणन्तं निचेतारः हि) काव्यका गान करनेवालोंको उत्साहित करते हो और (यजमानस्य मन्म प्र-नेतारः) यजमानके स्तोत्रके नेता बनते हो । (पिप्रियाणाः अद्य अस्माकं विदथेषु) प्रसन्न होकर आज हमारे यज्ञोंमें अथवा युद्धोंमें (वीतये बर्हिः आ सदत) हव सेवन करनेके लिये आसनोंपर आकर बैठो ॥ २ ॥

भावार्थ— राष्ट्रके वीर अपना जीवन देकर भी प्रजाओंकी रक्षा करें । ऐसे वीरोंके लिए प्रजायें शुभकामनायें करती हैं । इन वीरोंकी सहायता पाकर मनुष्य दुःखके समुद्रको भी तैरकर पार कर जाता है । तथा इन मरुतोंका मित्र बनकर मनुष्य अपने घरमें आनन्दसे रहता है ॥ २४ ॥

इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, आप आदि सभी देवता हमें सुख दें कि जिससे हम वीरोंके समीप आनन्दसे रहें, तथा उनके कल्याणमय साधनोंसे सुरक्षित रहें ॥ २५ ॥

वीरोंके नाममें ही मिठास भरी होती है । ये वीर अपने सामर्थ्यसे आनंदित होकर ही लडते हैं । वे सामर्थ्यशाली वीर जब शत्रुओंसे लडते हैं तब वे अपने शौर्यसे द्युलोक और पृथ्वीलोकको भी कंपा देते हैं ॥ १ ॥

ये वीर मरुत् स्तोत्रोंका गान करनेवालोंको उत्साहित करते हैं । जिसपर ये प्रसन्न होते हैं, उसके यज्ञोंमें आकर उसके द्वारा दिए गए हविरन्नको ग्रहण करते हैं ॥ २ ॥

४८० नैतावदन्ये मरुतो यथेमे भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः ।
आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः समानमञ्ज्यञ्जते शुभे कम् ॥ ३ ॥
४८१ ऋधक् सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यद् व आगः पुरुषता कराम ।
मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥ ४ ॥
४८२ कृते चिदत्र मरुतो रणन्ताऽनवद्यासः शुचयः पावकाः ।
प्र णोऽवत सुमतिभिर्यजत्राः प्र वाजेभिस्तिरत पुष्यसे नः ॥ ५ ॥
४८३ उत स्तुतासो मरुतो व्यन्तु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि ।
ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत रायः सूनृता मघानि ॥ ६ ॥

अर्थ— [४८०] (इमे मरुतः) ये वीर मरुत् (रुक्मैः आयुधैः तनूभिः यथा भ्राजन्ते) सुवर्ण मुद्राओंसे, आयुधोंसे और अपने उत्तम शरीरोंसे जैसे प्रकाशते हैं वैसे (न एतावत् अन्ये) दूसरे कोई नहीं। (विश्वपिशः रोदसी पिशानाः) सबको तेजस्वी बनानेवाले ये वीर द्यावा-पृथिवीको भी तेजस्वी बनाते हैं। ये अपनी (शुभे) शोभाके लिये (समानं अञ्जि) समान गणवेशको (कं आ अञ्जते) सुखसे पहनते हैं। अपने शरीरोंको प्रकाशमान करते हैं ॥ ३ ॥

[४८१] हे (यजत्राः) पूजनीय वीरो ! (यत् वः आगः) जो आपके विषयमें पाप हमसे (पुरुषता कराम) पौरुष कर्म करनेके समय हुआ हो, (सा वः दिद्युत् ऋधक् अस्तु) तो भी वह आपकी तेजस्वी तलवार हमसे दूर ही रहे ! (वः तस्यां अपि मा भूम) आपके उस शस्त्रके पास भी हम न रहें। (अस्मे वः चनिष्ठा सुमतिः अस्तु) हमारे पास आपकी अन्नदान करनेवाली बुद्धि रहे ॥ ४ ॥

[४८२] (अनवद्यासः शुचयः पावकाः) अनिंदनीय शुद्ध और पवित्र (मरुतः) वीर मरुत् (अत्र कृते चित् रणन्त) यहां पर हमारे चलाये इस यज्ञकर्ममें आकर प्रसन्न हों। हे (यजत्राः) पूजनीय वीरो ! (नः सुमतिभिः प्र अवत) हमारी सुरक्षा अपनी उत्तम बुद्धियोंसे करो। (नः वाजेभिः पुष्यसे प्र तिरत) हमें अन्नोंसे पुष्ट होनेके लिये संकटोंसे पार करो ॥ ५ ॥

[४८३] (उत विश्वेभिः नामभिः स्तुतासः) और अनेक नामोंसे प्रशंसित हुए ये (नरः मरुतः) नेता वीर मरुत् (हवींषि व्यन्तु) अन्नोंको सेवन करें। हे वीरो ! (नः प्रजायै अमृतस्य ददात) हमारी प्रजाको अमरपन दो और (सूनृता रायः मघानि जिगृत) सत्य मार्गसे प्राप्त होनेवाले विशाल धन दे दो ॥ ६ ॥

भावार्थ— वीर मरुत् आभूषणों और आयुधोंसे सजनेपर जितने तेजस्वी दिखलाई पड़ते हैं, उतने और कोई नहीं। वे मानों अपने तेजसे ही सब विश्वको तेजस्वी बनाते हैं ॥ ३ ॥

हे पूजनीय वीर मरुतो ! पुरुषार्थके कर्म करते समय अनजाने ही जो पाप हमसे आपके प्रति हो गया हो तो भी आपके शस्त्र हमपर आकर न गिरें। हम आपके शस्त्रोंसे बहुत दूर रहें। हमारे पास तो केवल आपकी उत्तम बुद्धि ही रहे ॥ ४ ॥

वीर प्रशंसनीय, शुद्ध और पवित्र आचरण करनेवाले हों। धर्मके कर्ममें वे आनन्दित हों। यज्ञादिक कर्मको देखकर वे प्रसन्न होते रहें। वे वीर सबका कल्याण करनेकी उत्तम भावनाओंसे युक्त हों तथा लोगोंको अन्नसे पुष्ट करके सबको सुरक्षित रखें ॥ ५ ॥

हे वीर मरुतो ! हमारी प्रजाको अकाल मृत्युसे दूर रखो। हमारी प्रजायें दीर्घजीवी बनें। हमें सत्यमार्गके द्वारा धन और वैभव प्राप्त हों ॥ ६ ॥

×

४८४ आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती अच्छा सूरीन् त्सर्वताता जिगात ।
ये नस्त्मना शतिनो वर्धयन्ति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[५८]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- मरुतः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४८५ प्र साकमुक्षे अर्चता गणाय यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान् ।
उत क्षोदन्ति रोदसी महित्वा नक्षन्ते नाकं निर्ऋतेरवंशात् ॥ १ ॥
४८६ जनूश्चिद् वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासस्तुविमन्यवोऽयासः ।
प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति विश्वो वो यामन् भयते स्वर्दृक् ॥ २ ॥
४८७ बृहद् वयो मघवद्भ्यो दधात जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः
गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत ॥ ३ ॥

अर्थ—[४८४] हे (स्तुतासः मरुतः) प्रशंसनीय वीर मरुतों ! तुम (विश्वे) सभी वीर (सर्वताता सूरीन् अच्छ ऊती) सर्वत्र फैलनेवाले यज्ञमें ज्ञानियोंकी ओर अपने संरक्षणके साथ (आ जिगात) आओ। ज्ञानियोंको सुरक्षित रखो। (ये त्मना शतिनः नः वर्धयन्ति) ये वीर स्वयं ही हम जैसे सेकडों मानवोंको बढाते हैं। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित करो ॥ ७ ॥

[५८]

[४८५] (यः दैव्यस्य धाम्नः तुविष्मान्) वह वीर दिव्य स्थानको अपने बलसे प्राप्त करता है। (साकं-उक्षे गणाय प्र अर्चत) साथ साथ कार्य करनेवाले वीरोंके संघका सत्कार करो। (उत अवंशात् निर्ऋतेः क्षोदन्ति) और वे वीर वंशविनाश रूप आपत्तिका नाश करते हैं। और (महित्वा रोदसी नाकं नक्षन्ते) अपने महत्त्वसे द्यावा-पृथिवीको तथा सुखमय स्वर्गको प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

[४८६] हे (भीमासः तुविमन्यवः) भीषण रूपवाले अत्यन्त उत्साहसे पूर्ण (अयासः मरुतः) शत्रुपर आक्रमण करनेवाले वीर मरुतो ! (वः जनूः त्वेष्येण चित्) तुम्हारा जन्म तेजस्वितासे युक्त है। (उत् ये महोभिः ओजसा प्रसन्ति) और जो अपने महत्त्वोंसे और बलसे प्रसिद्ध होते हैं, ऐसे (वः यामन्) तुम वीरोंके शत्रुपर आक्रमण करनेके समय (स्वर्दृक् विश्वः भयते) आकाशकी ओर दृष्टी रखकर सभी लोग भयभीत होते हैं ॥ २ ॥

[४८७] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (मघवद्भ्यः बृहत् वयः दधात) धनी लोगोंके लिये दीर्घ आयु दो। (नः सुष्टुतिं जुजोषन् इत्) हमारी स्तुतिका सेवन तुम करो। (गतः अध्वा जन्तुं न तिराति) जिस मार्गसे तुम जाते हो वह मार्ग प्राणिमात्रको विनष्ट करनेवाला नहीं होता है। इसी तरह (नः स्पार्हाभिः ऊतिभिः प्रतिरेत) हमारा संवर्धन स्पृहणीय संरक्षणके साधनोंसे तुम करते रहो ॥ ३ ॥

भावार्थ— वीरजन सर्वहितकारी कर्ममें ज्ञानियोंके पास जाकर उनकी रक्षा अच्छी तरह करें। वीर वह है कि जो स्वयं अकेला होते हुए भी सैंकडों मानवोंको बढानेमें सहायता करे ॥ ७ ॥

जो शक्तिशाली है, वह दिव्यधामको अपने सामर्थ्यसे प्राप्त करता है। एक साथ संघटित रूपमें रहकर जो उन्नति करते हैं, उन वीरोंका सत्कार करना चाहिए। वंशका नाश करनेवाली आपत्तिको वीर नष्ट कर देते हैं, इस प्रकार वे वीर अपने स्वयंके यश और सामर्थ्यसे स्वर्गधामको प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

सभी वीर विशाळ शरीरवाले, अत्यन्त उत्साहसे कार्य करनेवाले और शत्रुओंपर वेगसे आक्रमण करनेवाले हों। ऐसे वीरोंके जन्म उनकी तेजस्विता, महत्ता और सामर्थ्यके लिए प्रसिद्ध होते हैं। इन गुणोंसे उनकी प्रसिद्धि होती है। इन वीरोंके आक्रमणको देखकर सभी भयभीत होते हैं ॥ २ ॥

धनीजन दीर्घ आयुवाले हों। धनीजन छोटीसी आयुमेंही मर जाते हैं, इसलिए वे ऐसे मार्गमें चलें कि जिससे उनकी आयु दीर्घ हो। वीर जिस मार्गसे जाते हैं, उस मार्गसे जानेपर किसीका नाश नहीं होता ॥ ३ ॥

४८८ युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री ।
युष्मोतः सम्राळुत हन्ति वृत्रं प्र तद्वो अस्तु धूतयो देष्णम् ॥ ४ ॥

४८९ ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः ।
यत् सस्वर्ता जिहीळिरे यदाविरव तदेन ईमहे तुराणाम् ॥ ५ ॥

४९० प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं सूक्तं मरुतो जुषन्त ।
आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[५९]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- १-११ मरुतः, १२ रुद्रः (मृत्युविमोचनी ऋक्) ।
छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); ७-८ त्रिष्टुप्, ९-११ गायत्री, १२ अनुष्टुप् ।

४९१ यं त्रायध्व इदमिदं देवासो यं च नयथ ।
तस्मा अग्ने वरुण मित्रार्यमन् मरुतः शर्म यच्छत ॥ १ ॥

अर्थ- [४८८] हे (मरुतः) मरुत वीरो ! (युष्मा-ऊतः) तुम्हारेसे संरक्षित हुआ (विप्रः शतस्वी सहस्री) ज्ञानी सैंकडों और सहस्रों धनोंसे युक्त होता है । (युष्मा-ऊतः अर्वा सहुरिः) तुम्हारे द्वारा संरक्षित हुआ घोडा भी शत्रुका पराजय करनेमें समर्थ होता है । (युष्मा-ऊतः संराट् वृत्रं हन्ति) तुम्हारेसे संरक्षित हुआ सम्राट् घेरनेवाले शत्रुका भी नाश करता है । हे (धूतयः) शत्रुको हिलानेवाले वीरो ! (वः तत् देष्णं प्र अस्तु) तुम्हारा वह दान हमारे लिये पर्याप्त हो ॥ ४ ॥

[४८९] (मीळ्हुषः रुद्रस्य तान् आ विवासे) बलवान् रुद्रके इन वीरोंकी मैं सेवा करता हूं । (मरुतः नः कुवित् पुनः नंसन्ते) वीर मरुत हमें अनेक प्रकारसे और बार बार सहायता देते हैं । हमारे साथ मिलकर कार्य करते हैं । (यत् सस्वर्ता) जिन गुप्त अथवा (यत् आविः) जिन प्रकट पापोंके कारण वे वीर (जिहीळिरे) हमपर क्रोध प्रकट करते आये हैं उन (तुराणां एनः अव ईमहे) शीघ्रता करनेवालोंसे हुआ पाप हम अपनेसे दूर करते हैं ॥ ५ ॥

[४९०] (मघोनां सुस्तुतिः) धनाढय वीरोंकी यह सुन्दर स्तुति है । (सा वाचि प्र) वह हमारे मुखसे सदा रहे । (मरुतः इदं सूक्तं जुषन्त) वीर मरुत् इस सूक्तका सेवन करें, सुनें । हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! हमारे (द्वेषः आरात् चित्) द्वेषाओंको हमसे दूर करो । और (युयोत) उनको पृथक् करो । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित करो ॥ ६ ॥

(५९)

[४९१] हे (देवासः) देवो ! (यं इदं इदं त्रायध्वे) जिसे तुम इस तरह सुरक्षित रखते हो, और (यं च नयथ) जिसे तुम अच्छे मार्गसे ले जाते हो, हे (अग्ने) अग्ने ! हे (वरुण) वरुण ! हे (मित्र) मित्र ! हे (अर्यमन्) अर्यमन् ! तथा हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (शर्म यच्छत) उसे सुख दे दो ॥ १ ॥

भावार्थ— इन वीर मरुतोंसे रक्षित हुआ ज्ञानी सैंकडों और सहस्रों धनोंसे युक्त होता है । इनके द्वारा संरक्षित हुआ घोडा भी शत्रुको पराजित करनेमें समर्थ होता है । इन वीरोंसे सुरक्षित होनेपर राजा शत्रुओंसे घिर जाने पर भी उनका नाश कर देता है ॥ ४ ॥

हमारे जिन अपराधोंसे रुष्ट होकर मरुत् वीर हमसे क्रुद्ध हो गए हैं, उन अपराधोंसे हम दूर हों, तथा रुद्रके उन वीरोंकी सेवा करें ॥ ५ ॥

भक्तोंके मुखसे निकाली हुई स्तुतिको मरुत् वीर प्रेमसे सुनें । हे वीरो ! हमें हमसे द्वेष करनेवालोंसे दूर रखो और उन्हें भी हमसे पृथक् करो । तथा हमें सदैव कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ ६ ॥

हे अग्ने, वरुण, मित्र तथा अर्यमा देवो ! तुम मरुत् देवोंके साथ जिसकी सुरक्षा करते हो, और अच्छे मार्गसे ले जाते हो, वह सदैव सुखी रहता है ॥ १ ॥

४९२ युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय ईजानस्तरति द्विषः ।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ॥ २ ॥

४९३ नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते ।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबत कामिनः ॥ ३ ॥

४९४ नहि व ऊतिः पृतनासु मर्धति यस्मा अराध्वं नरः ।
अभि व आवर्त् सुमतिर्नवीयसी तूयं यात पिपीषवः ॥ ४ ॥

४९५ ओ षु घृष्विराधसो यातनान्धांसि पीतये ।
इमा वो हव्या मरुतो ररे हि कं मो ष्वन्यत्र गन्तन ॥ ५ ॥

४९६ आ च नो बर्हिः सदताविता च नः स्पार्हाणि दातवे वसु ।
अस्रेधन्तो मरुतः सोम्ये मधौ स्वाहेह मादयाध्वै ॥ ६ ॥

अर्थ— [४९२] हे (देवाः) देवो ! (युष्माकं अवसा) तुम्हारे संरक्षणसे सुरक्षित होकर (प्रिये अहनि ईजानः) शुभ दिवसमें यज्ञ करनेवाला (द्विषः तरति) शत्रुओंको लांघ जाता है । शत्रुओंका पराभव करता है । (यः वः वराय) जो तुम्हारे श्रेष्ठ वीरके लिये (महीः इषः विदाशति) बहुतसा अन्न देता है, (सः क्षयं प्र तिरते) वह विनाशको लांघता है, वह सुरक्षित होता है ॥ २ ॥

[४९३] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वसिष्ठः वः चरमं चन) यह वसिष्ठ तुम्हारे अन्तिम वीरका भी (नहि परि मंसते) तिरस्कार नहीं करता । तुम सबका संमान करता है । (अद्य अस्माकं सुते) आज हमारे सोमयागमें सोमरस निकालनेपर तुम (कामिनः विश्वे सचा पिबत) अपनी इच्छाके अनुसार सब एक स्थानपर बैठकर इस रसका पान करो ॥ ३ ॥

[४९४] हे (नरः) नेता वीरो ! तुम (यस्मै अराध्वं) जिसको संरक्षण देते हैं, वह (वः ऊतिः पृतनासु नहि मर्धति) तुम्हारी संरक्षण करनेकी शक्तिको युद्धोंमें कम नहीं करता । वह उसके लिये पर्याप्त होती है । (वः नवीयसी सुमतिः) तुम्हारी नवीन सुमति (अभि अर्वत) हमारी ओर आवे । (पिपीषवः तूयं आयात) सोमपान करनेकी इच्छासे तुम हमारे पास आ जाओ । और यथेच्छ रसपान करो ॥ ४ ॥

[४९५] हे (धृष्वि-राधसः मरुतः) संघर्षमें सिद्धि पानेवाले वीरो ! (अन्धांसि पीतये सु ओ यातन) अन्नरसका सेवन करनेके लिये तुम मिलकर यहां आओ । (हि वः इमा हव्या ररे) क्योंकि तुम्हें ये अन्न मैं देता हूं । अतः तुम अन्यत्र (मो सु गन्तन) कहीं भी न जाओ ॥ ५ ॥

[४९६] (स्पार्हाणि वसु दातवे) स्पृहणीय धन देनेके लिये (नः अवित) हमारे पास आओ । (नः बर्हिः आ सादत च) हमारे आसनों पर आकर बैठो । हे (अस्रेधन्तः मरुतः) अहिंसक वीरो ! (इह मधौ सोम्ये) यहां इस मधुर सोमरस पानमें (स्वाहा) अपना भाग स्वीकार करो और (मादयाध्वै) आनन्दित हो जाओ ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो उत्तम दिनोंमें यज्ञ करता है, वह इन देवोंके द्वारा सुरक्षित होकर शत्रुओंको पराजित करता है । जो वीरोंके पोषणके लिये उत्तम अन्न प्रदान करता है, वह विनाशसे दूर रहता है ॥ २ ॥

कोई वीर छोटा है, यह समझकर उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिए । सब वीरोंका एक समान सत्कार करे ॥ ३ ॥

ये वीर जिसकी रक्षा करते हैं, उसकी शक्ति युद्धोंमें कभी कम नहीं होती । उनकी शारीरिक शक्ति उनकी उत्तम बुद्धिसे संयुक्त होकर बढती है ॥ ४ ॥

वीरजन संघर्षमें भी सदा अपनी सिद्धिको प्राप्त करते हैं । शत्रुओंके साथ युद्ध करके अपनी विजय प्राप्त करते हैं । इसलिये ऐसे वीरोंका अन्नरसके द्वारा उत्तम पोषण करना चाहिए ॥ ५ ॥

हे वीरो ! चाहने योग्य धन देनेके लिए तुम हमारे पास आओ और आकर बैठो । हमारे द्वारा दिए गए मधुर सोमरसको तुम पीओ और आनन्दित होओ ॥ ६ ॥

४९७ सस्वश्चिद्धि तन्वः१ शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् ।
विश्वं शर्धो अभितो मा नि षेद नरो न रण्वाः सवने मदन्तः ॥ ७ ॥
४९८ यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायु स्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशान् प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ॥ ८ ॥
४९९ सांतपना इदं हवि र्मरुतस्तज्जुजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः ॥ ९ ॥
५०० गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन । युष्माकोती सुदानवः ॥ १० ॥
५०१ इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः । यज्ञं मरुत आ वृणे ॥ ११ ॥

अर्थ— [४९७] (सस्वः चित् हि) गुप्त स्थानपर बैठकर भी अपने (तन्वः शुम्भमानाः) शरीरोंको सुशोभित करनेवाले ये वीर (नील पृष्ठाः हंसासः) नील पीठवाले हंसोंके समान (सवने मदन्तः) सवनमें सोमपान करके आनंदित होते हैं । (रण्वाः नरः न) रमणीय नेताओंकी तरह (आ अपप्तन्) हमारे पास ये आ जांय और आपका (विश्वं शर्धः) सब बल (मा अभितः नि सेद) मेरी चारों ओर रहे ॥ ७ ॥

[४९८] हे (वसवः मरुतः) बसानेवाले वीर मरुतो ! (दुर्हृणायुः तिरः) अतीव क्रोधी तथा तिरस्कारके योग्य (यः नः चित्तानि) जो हमारे चित्तोंका (अभि जिघांसति) चारों ओरसे नाश करना चाहता है, (सः द्रुहः पाशान्) उस द्रोहकारीके पाशोंसे (प्रति मुचीष्ट) हमें तुम मुक्त करो और द्रोहकारीको (तं तपिष्ठेन हन्मना) अति तप्त आयुधसे (हन्तन) मार डालो ॥ ८ ॥

[४९९] हे (सान्तपनाः) शत्रुओंको ताप देनेवाले तथा (रिशादसः मरुतः) शत्रुका नाश करनेवाले वीर मरुतो ! तुम (इदं तद् हविः जुजुष्टन) इस हविष्यान्नका सेवन करो और (युष्माकं ऊती) तुम्हारी संरक्षणकी शक्ति बढाओ ॥ ९ ॥

[५००] हे (गृहमेधासः) गृहस्थधर्मका पालन करनेवाले (सु-दानवः मरुतः) उत्तम दानी मरुत् वीरो ! तुम (युष्माकं ऊती आगतः) अपनी संरक्षक शक्तियोंके साथ हमारे पास आओ और हमसे (मा अप भूतन) दूर न चले जाओ ॥ १० ॥

[५०१] (स्वतवसः) अपने स्वकीय बलसे युक्त (कवयः) ज्ञानी (सूर्यत्वचः) सूर्यके समान तेजस्वी (मरुतः) वीर मरुत् (इह इह यज्ञं वः) यहां यज्ञ करके तुम्हें मैं (आवृणे) वरण करता हूं, पास लाता हूं, सन्तुष्ट करता हूं ॥ ११ ॥

भावार्थ— सभी वीर गणवेश धारण करके सुशोभित हों और वे सब लोगोंका संरक्षण करें । उनका बल लोगोंकी रक्षा करनेके लिए ही हो । अपने बलके घमंडमें आकर लोगों पर अत्याचार न करें । लोग भी आदरसे उन्हें खानपान देकर उनका संमान करें ॥ ७ ॥

जो शत्रु हमारे मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन अन्तःकरण चतुष्टय पर अपना अधिकार जमा कर हमें नष्ट करना चाहते है, उनके इन पाशोंसे छूटना चाहिए, तथा स्वयं छूटकर इन पाशोंका प्रयोग उन्हीं शत्रुओं पर करना चाहिए ॥ ८ ॥

वीर ऐसा हो कि जो शत्रुको ताप देनेवाला तथा उनका नाश करनेवाला हो । वीर सदा अपनी शक्ति बढायें ॥ ९ ॥

वीरोंको गृहस्थधर्मका पालन करना चाहिए और दान भी देना चाहिए । इसी तरह अपने संरक्षणके सामर्थ्यसे सबकी सुरक्षा भी करनी चाहिए ॥ १० ॥

वीर अपने बलसे बढें, ज्ञानी हों, अभाली न रहें । वे देश और कालकी परिस्थितिसे भिज्ञ रहें और सूर्यके समान तेजस्वी हों ॥ ११ ॥

५०२ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ १२ ॥

[६०]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- १ सूर्यः, २-१२ मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

५०३ यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन् मित्राय वरुणाय सत्यम् ।
वयं देवत्रादिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन् गृणन्तः ॥ १ ॥

५०४ एष स्य मित्रावरुणा नृचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभि ज्मन् ।
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥ २ ॥

अर्थ— [५०२] (सुगन्धिं) उत्तम यशस्वी (पुष्टिवर्धनं , पोषण साधनोंका संवर्धन करनेवाले : त्र्यंबकं) तीन प्रकारसे संरक्षण करनेवाले देवकी (यजामहे) हम उपासना करते हैं । यह देव (उर्वारुकं इव) ककडीको मुक्त करते हैं उस तरह (मृत्योः बन्धनात् मुक्षीय) मृत्युके बंधनसे हमें मुक्त करे, परंतु (अमृतात् मा) अमरत्वसे कभी न छुडावे, परंतु हमें अमरत्वसे संयुक्त करें ।। १२ ॥

[६०]

[५०३] हे (सूर्य) सूर्य ! (उद्यन् अद्य यत्) उदय होते ही तुम आज हमें (अनागाः ब्रवः) निष्पाप करके घोषित करो । हे (अदिते) अदीन देव ! (वयं देवत्रा) हम देवोंके बीचमें (मित्राय वरुणाय सत्यं) मित्र और वरुणके लिये सच्चे रूपसे प्रिय (स्याम) हों । हे (अर्यमन् । आर्य मनवाले देव ! हम (गृणन्तः) स्तुति गाते हुए (तव प्रियासः स्याम) तुम्हारे लिये प्रिय हों ॥ १ ॥

[५०४] हे मित्र और वरुण ! (एषः स्यः) यह है वह (नृचक्षाः सूर्यः) मानवोंके आचरणोंको देखनेवाला सूर्य (उभे अभि ज्मन् उदेति) दोनों द्यावापृथिवीके बीचके अन्तरिक्ष मार्गसे जानेवाला उदयको प्राप्त होता है । यह (विश्वस्य स्थातुः जगतः च गोपाः) सब स्थावर जंगम जगत्का संरक्षण करनेवाला है । यह (मर्त्येषु ऋतु वृजिना च पश्यन्) मानवोंके सुकृतों और दुष्कृतोंको देखता है ॥ २ ॥

भावार्थ— उत्तम यशस्वी, पोषण साधनोंका संवर्धन करनेवाले तथा तीन प्रकारसे संरक्षण करनेवाले देवकी हम उपासना करते हैं। यह देव, जिसतरह ककडी अपनी बेलसे टूट जाती है, उसी तरह हमें मृत्युके बंधनोंसे छुडाये, पर अमरत्वसे कभी न छुडाये । स्वयंके प्रमादसे भय, राष्ट्रके दोषोंसे भय तथा प्रकृतिसे भय ये तीन तरहके भय होते हैं। देव मनुष्यको इन तीनों भयसे मुक्त करें तथा इसप्रकार मृत्युके बंधनोंसे मुक्त हों, पर अमृतकी स्थितिसे कभी दूर न हों ॥ १२ ॥

हे सूर्य ! तुम उदय होते ही हमें निष्पाप घोषित करो । हम सदा निष्पाप रहें । देवोंमें हम सत्यपालकके रूपमें प्रसिद्ध हों । हम सत्यका पालन करें । जिनके मन श्रेष्ठ हैं, ऐसे सज्जनोंके लिए हम प्रिय हैं। सूर्य सबको सत्कर्ममें प्रेरित करता है, अ-दिति अर्थात् अदीन है, श्रेष्ठ है, सबका मित्र है, सबमें वरिष्ठ है, अर्यमा अर्थात् श्रेष्ठ मनवाला है ॥ १ ॥

यह सूर्य मनुष्यके सत्य-असत्य व्यवहारका निरीक्षण करनेवाला है, वह द्यु और पृथ्वीके बीचमें चलता हुआ सबके व्यवहारको देखता रहता है । वह सबका संरक्षक है । वह सूर्य महापश्यक होनेसे मनुष्योंमें कौन सरल और कौन कुटिल है, इन सब बातोंका निरीक्षण करता है । इसीतरह राजा या नेता अपनी प्रजाओंके व्यवहारोंका निरीक्षण करे, सभीके संरक्षणका प्रबन्ध उत्तम रीतिसे करे तथा प्रजाओंमें अच्छे और बुरेका निरीक्षण करे । इस तरहकी उत्तम व्यवस्था हो तो प्रजाओंका कल्याण हो सकता है ॥ २ ॥

५०५ अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद् या ईं वहन्ति सूर्यं घृताचीः ।
धामानि मित्रावरुणा युवाकुः सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे ॥ ३ ॥
५०६ उद् वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थु-रा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।
यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ॥ ४ ॥
५०७ इमे चेतारो अनृतस्य भूरे-र्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति ।
इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ॥ ५ ॥
५०८ इमे मित्रो वरुणो दूळभासो ऽचेतसं चिच्चितयन्ति दक्षैः ।
अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्त-स्तिरश्चिदंहः सुपथा नयन्ति ॥ ६ ॥

अर्थ— [५०५] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण देवो ! (सधस्थात् सप्त हरितः अयुक्त) साथ साथ देवोंके रहनेके स्थानसे-अन्तरिक्षसे आनेके लिये सात घोडियोंको सूर्यने अपने रथको जोता है। (याः घृताचीः ईं सूर्यं वहन्ति) जो जलको देती हुई सूर्यको ले चलती हैं। (यः युवाकुः धामानि जनिमानि) जो तुम दोनोंको संतुष्ट करनेकी इच्छा करनेवाला सब स्थानों और जन्मोंको (यूथा इव) गोपालकके समान (संचष्टे) सम्यक् रीतिसे देखता है ॥ ३ ॥

[५०६] (वां पृक्षासः मधुमन्तः उत् अस्थुः) आपके लिये पुरोडाश आदि अन्न मीठे बनाये हैं। (सूर्यः शुक्रं अर्णः अरुहत्) सूर्य शुभ्र प्रकाशके साथ आकाशमें चढा है। (यस्मै आदित्याः अध्वनः रदन्ति) जिस सूर्यके लिये आदित्य मार्गको बनाते हैं। (मित्रः अर्यमा वरुणः सजोषाः) मित्र, वरुण, अर्यमा ये वे परस्पर प्रीति करनेवाले आदित्य हैं ॥ ४ ॥

[५०७] (इमे भूरेः अनृतस्य चेतारः सन्ति) ये आदित्य असत्य मार्गके विनाशक हैं। (इमे मित्रः वरुणः अर्यमा ऋतस्य दुरोणे वव्रृधुः) ये मित्र वरुण अर्यमा आदि आदित्य सत्यके स्थानमें बढनेवाले हैं। ये (अदितेः पुत्राः अदब्धाः शग्मासः) अदितिके पुत्र किसीसे न दब जानेवाले और सुख बढानेवाले हैं ॥ ५ ॥

[५०८] (इमे मित्रः वरुणः) ये मित्र, वरुण, अर्यमा आदि आदित्य स्वयं (दूळभासः) किसीसे दबाये जानेवाले नहीं हैं। (अचेतसं दक्षैः चित् चितयन्ति) अज्ञानीको भी अपने सामर्थ्योंसे ज्ञानी बनाते हैं। और (सुचेतसं क्रतुं अपि वतन्तः) उत्तम बुद्धिमान् और महान् पुरुषार्थ करनेवाले उद्यमी पुरुषको प्रगति प्रयत्न करते हैं, (अंहः चित् तिरः) पापीको पीछे गिराते और सुकर्म कर्ताको (सुपथा नयन्ति) उत्तम मार्गसे उन्नतिको पहुंचाते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— सूर्यके रथमें सात घोडे जुडे हुए हैं। सूर्य किरणमें सात रंग हैं। अथवा आत्मा सूर्य है उसका रथ शरीर है। इसमें इन्द्रियांरूपी घोडे जुडे हुए हैं, दो आंखे, दो नाक, दो कान तथा एक वाणी ये सात घोडे इस रथमें हैं। यह शरीरही सधस्थ है। सब देवोंके मिलकर रहनेका स्थान है ॥ ३ ॥

सूर्य उदय होकर जब शुभ्र प्रकाशसे युक्त होकर आकाशमें चढता है तब आदित्य इस सूर्यके लिए मार्ग बनाते हैं। आदित्य बारह मास हैं, उन्हीके नाम मित्र, वरुण, अर्यमा आदि हैं। इन महीनोंमें दक्षिणायन और उत्तरायणके अनुसार सूर्यका मार्ग बदलता रहता है। इसीलिए इन आदित्योंको सूर्यके मार्गको बाननेवाला कहा गया है ॥ ४ ॥

आदित्य असत्य मार्गके विनाशक हैं। क्योंकि सभी देव सत्यके स्थानमें वृद्धिको प्राप्त होते हैं। अतः असत्य मार्ग पर चलकर देवोंकी कृपा नहीं प्राप्त की जा सकती। तथा जो सत्यशील इन देवोंकी कृपा प्राप्त कर लेता है, वह अ-दिति अर्थात् अमृतका पुत्र होकर किसीसे न दबनेवाला तथा सुखको बढानेवाला होता है ॥ ५ ॥

वीरोंको चाहिए कि वे कभी कभी किसी शत्रुके दबावसे न दबें। अज्ञानियोंको अनेक उपायोंसे ज्ञानसम्पन्न करें और सुस्त तथा आलसियोंको पुरुषार्थी और प्रयत्नशील बनायें। पापियोंको पीछे ढकेल दें और पुण्यशालियोंको उन्नत करें ॥ ६ ॥

५०९ इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्या- श्चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति ।
प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन् ॥ ७ ॥
५१० यद् गोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः सुदासे ।
तस्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः ॥ ८ ॥
५११ अव वेदिं होत्राभिर्यजेत रिपः काश्चिद्वरुणध्रुतः सः ।
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तू- रुं सुदासे वृषणा उ लोकम् ॥ ९ ॥
५१२ सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषा- मपीच्येन सहसा सहन्ते ।
युष्मद् भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः ॥ १० ॥

अर्थ— [५०९] (इमे दिवः पृथिव्याः) ये द्युलोक और पृथिवीको जाननेवाले वीर (अनिमिषा अचेतसं चिकित्वांसः) विलंब न करते हुए अज्ञानीको ज्ञानवान् बनाते हैं और (नयन्ति) शुभ मार्गसे ले जाते हैं । शुभ कर्ममें प्रवृत्त करते हैं । (प्रव्राजे चित् नद्यः गाधं अस्ति) निम्न प्रदेशमें भी नदियां गहरी होती हैं । संकटके समयमें भी अधिक कष्ट होते हैं । अतः वे वीर (अस्य विष्पितस्य नः पारं पर्षन्) इस व्यापक कर्मके पार हमें ले जांय इसकी उत्तम समाप्ति करनेमें हमारे सहायक हों ॥ ७ ॥

[५१०] (यत् गोपावत् भद्रं शर्म) जो संरक्षण करनेवाला कल्याणपूर्वक सुख (अदितिः मित्रः वरुणः) अदीन मित्र, वरुण, अर्यमा आदि देव (सुदासे यच्छन्ति) उत्तम दान करनेवालेके लिये देते हैं, (तस्मिन्) उस कर्ममें (तोकं तनयं आदधानाः) बालबच्चोंको हम धारण करते हैं, हम इस कर्ममें पुत्रोंको प्रेरित करते हैं । हम (तुरासः) त्वरासे काम करनेके समय (देवहेळनं मा कर्म) देवोंको क्रोध आने योग्य कर्म हम कभी न करें ॥ ८ ॥

[५११] (होत्राभिः वेदिं अव यजेत) जो वाणीसे वेदीपर बैठकर भी स्तुति न करे, यजन न करे, (सः) वह (वरुणध्रुतः काः रिपः चित्) वरुण देवसे हिंसित होकर किनकिन दुर्गतियोंको प्राप्त होता है ? अर्थात् उसकी बुरी अवस्था हो जाती है । (अर्यमा द्वेषोभिः परि वृणक्तु) अर्यमा शत्रुओंसे हमें दूर रखे । हे (वृषणौ) बलवान् मित्रावरुणो ! (सुदासे उरुं लोकं) उत्तम दान करनेवालेके लिये उत्तम स्थान दो । उसकी योग्यता उच्च कर दो ॥ ९ ॥

[५१२] (एषां समृतिः सस्वर चित् हि त्वेषी) इन वीरोंकी संगति गुप्त रहती है और तेजस्वी भी होती है । ये (अपीच्येन सहसा सहन्ते) गुप्त बलसे शत्रुको पराभूत करते हैं । हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! (युष्मत् भिया रेजमानः) तुम्हारे भयसे शत्रु कांपने लगते हैं । (दक्षस्य महिना चित् नः मृळत) अपने बलकी महिमासे हमें सुखी करो ॥ १० ॥

भावार्थ— वीर ऐसे हों कि जो द्युलोक और पृथ्वीलोकके ज्ञानोंसे परिचित हों । ऐसे वीर ही ज्ञानहीनोंको ज्ञानी बना सकते हैं और शुभ मार्गोंसे ले जाते हैं । जिससे द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और पृथिवीलोकके अन्दर स्थित पदार्थोंकी विद्या जानी जाती है, वह विद्या है तथा अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत सम्बन्धी जो कर्म करने होते हैं, वह कर्ममार्ग है । ज्ञानसेही कर्ममार्गमें प्रवृत्ति होती है । इस कर्म मार्गमें अनेक तरहके संकट आवें तो भी उनसे डरना नहीं चाहिए ॥ ७ ॥

मनुष्य ऐसा सुख प्राप्त करनेका प्रयत्न करें कि जिससे अपनी सुरक्षा हो, कल्याण हो और उन्नति हो । परन्तु कभी विपरीत परिणाम न हो । ऐसे शुभ कर्मोंमें अपने बालबच्चोंकोभी प्रवीण बनावें । कामोंको शीघ्रतासे करने परभी ऐसा कोई कुकर्म मनुष्य न करे कि जिससे ज्ञानीजन रुष्ट हों ॥ ८ ॥

जो यज्ञ नहीं करता, हवन या परमात्माकी स्तुति नहीं करता, उसकी दुर्गति होती है, वह वरुण देवसे हिंसित होकर अनेक दुर्गतियोंको प्राप्त होता है । पर जो यज्ञ करता है, ऐसे सत्पुरुषोंसे अर्यमा शत्रुओंको दूर रखता है तथा उन्हें उत्तम स्थान प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

सज्जन वीरोंके साथ होनेवाली मैत्री गुप्त रहती है, स्थायी रहती है और तेजस्वी भी होती है । ऐसे ही वीर अपने बलकी महिमासे सबको सुखी करें । अपनी शक्तिका उपयोग करके सबकी सुरक्षा करें ॥ १० ॥

म०

प्रज्ञा०

५१३ यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः ।
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ॥ ११ ॥
५१४ इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १२ ॥

[६१]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

५१५ उद् वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान् ।
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत ॥ १ ॥
५१६ प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति ।
यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत् क्रत्वा न शरदः पृणैथे ॥ २ ॥

अर्थ— [५१३] (वाजस्य सातौ) अन्नके दानके समय तथा (परमस्य रायः) श्रेष्ठ धनका दान करनेके समय (यः ब्रह्मणे सुमतिं आ यजाते) जो स्तोत्रपाठमें अपनी बुद्धिको लगाता है । उस (मन्युं) मननीय स्तोत्रका (अर्यः मघवानः) कर्म प्रेरक धनवान मित्रादि देवगण (सीक्षन्त) सेवन करते, श्रवण करते हैं । और उनके (उरु क्षयाय सुधातु चक्रिरे) विशाल निवासके लिये उत्तम स्थान बनाते हैं ॥ ११ ॥

[५१४] हे (देवा) मित्रावरुण देवो ! (इयं पुरोहितिः) यह उपासना (यज्ञेषु युवभ्यां अकारि) यज्ञोंमें आप दोनोंके लिये की है । (विश्वानि दुर्गा नः तिरः पिपृतं) सब आपत्तियोंको हमसे दूर करो । (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) और तुम कल्याण साधनोंसे सदा हमें सुरक्षित करो ॥ १२ ॥

[६१]

[५१५] हे (वरुणा) मित्र और वरुण ! (देवयोः वां चक्षुः) आप दोनों देवोंकी आंख जैसा यह (सूर्यः सुप्रतीकं ततन्वान्) सूर्य उत्तम प्रकाशको फैलाता हुआ (उत् एति) उदयको प्राप्त होता है । (यः विश्वा भुवनानि अभि चष्टे) जो सब भुवनोंको देखता है । (सः मर्त्येषु मन्युं आ चिकेत) वह मनुष्योंमें रहे मनके भावको जानता है ॥ १ ॥

[५१६] हे मित्रावरुणो ! (वां मन्मानि) आपके मननीय स्तोत्र (सः ऋतावा दीर्घश्रुत् विप्रः) वह सत्यनिष्ठ अति विद्वान् बहुश्रुत ज्ञानी (प्र इयर्ति) बोलता है । प्रेरित करता है । फैलाता है । (यस्य ब्रह्माणि) जिसके ज्ञानस्तोत्रोंकी (सुक्रतू अवाथः) उत्तम कर्म करनेवाले तुम दोनों सुरक्षा करते हो । तथा (यत्) जिन कर्मोंको (क्रत्वा) करके (शरदः आ पृणैथे) अनेक संवत्सरोंतक परिपूर्णता प्राप्त करते रहते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— उत्तम कर्म करनेके समय जो भगवान्‌की स्तुतिमें अपने मनको लगाता है, उसकी स्तुतिको सब देवगण सुनते हैं । जो लोग प्रभुकी उपासना करते हैं, उनकी बुद्धि शुभ कर्ममें प्रेरित होती है, और उससे उनका निवास सुखमय होता है ॥ ११ ॥

हे देवो ! मैं आपकी ही उपासना करता हूँ, इसलिए आप हमें सब आपत्तियोंसे दूर रखो, तथा अपने कल्याणमय साधनोंसे हमारी सदा सुरक्षा किया करो ॥ १२ ॥

मित्र और वरुण अर्थात् द्युलोक तथा पृथ्वीलोकके लिए आंख यह सूर्य है अर्थात् यह सूर्य द्यु और पृथ्वीके आंखके समान है । वह सूर्य सब भुवनोंका निरीक्षण करता है । इतना ही नहीं, मनुष्य जो कुछ अपने अन्तःकरणमें सोचता या विचारता है, उसे भी यह सूर्य जानता है ॥ १ ॥

मनुष्य सत्यनिष्ठ, बहुश्रुत और विशेष ज्ञानसंपन्न बने । उत्तम कर्म करें और अपने राष्ट्रीय महाकाव्योंका संरक्षण करें । इन काव्योंके अनुसार शुभ कर्म करके सैंकडों वर्षोंतक अपने आपको पूर्ण बनाते जायें ॥ २ ॥

×

५१७ प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्वाद् बृहतः सुदानू ।
स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्ष्वृ—धग्यतो अनिमिषं रक्षमाणा ॥ ३ ॥

५१८ शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्बधे महित्वा ।
अयन् मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते ॥ ४ ॥

५१९ अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षम् ।
द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन् ॥ ५ ॥

अर्थ— [५१७] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! तुम दोनों (उरोः पृथिव्याः) इस अति विस्तीर्ण पृथिवीके चारों ओर पहुंचे हो और (ऋष्वात् बृहतः दिवः प्र) अपनी गतिसे बडे द्युलोकतक भी पहुंचे हो, इनसे तुम बडे हो-हे (सु-दानू) उत्तम दान देनेवाले वीर ! तुम (ओषधीषु विक्षु स्पशः दधाते) औषधियों और प्रजाओंमें रूपका धारण करते हो, उनमें सौंदर्य रखते हो । और (ऋधक् यतः अनिमिषं रक्षमाणा) सत्य मार्गसे जानेवालोंकी आंखे बंद न करते हुए अर्थात् अविश्रांत रीतिसे सतत संरक्षण करते हो ॥ ३ ॥

[५१८] (मित्रस्य वरुणस्य धाम शंस) मित्र और वरुणके तेजस्वी स्थानका वर्णन करो । इनका (शुष्मः) बल (महित्वा रोदसी बद्बधे) अपने महत्त्वसे द्युलोक और पृथिवीको बांधता है, अपने स्थानमें रख देता है । (अयज्वनां मासाः अवीराः आयन्) यज्ञ न करनेवालोंके महिने पुत्ररहित होकर चले जांय । (यज्ञ-मन्मा वृजनं प्र तिराते) यज्ञ करनेमें जिनका मन लगा होता है वे अपने बलको विशेष बढाते रहते हैं ॥ ४ ॥

[५१९] हे (अमूरा विश्वा वृषणौ) विशेष ज्ञानी व्यापक और बलवान् देवो ! (त्वां इमा) आपके ये स्तोत्र हैं, (यासु चित्रं न ददृशे) जिनमें आश्चर्य नहीं दीखता और (न यक्षं) न इनमें तुम्हारा सत्कार दीखता है । क्योंकि यह वर्णन यथार्थसे भी कम हो रहा है, तुम्हारी महिमा इससे बहुत अधिक है । (जनानां द्रुहः अनृता सचन्ते) जनोंके द्रोही शत्रुही असत्य प्रशंसा करते हैं । (त्वां निण्यानि अचिते न अभूवन्) आपके गुप्त पराक्रम भी अज्ञान बढानेवाले नहीं होते । वे भी ज्ञान बढाते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— मित्र और वरुण ये दोनों अपनी महिमाके कारण इस विशाल पृथ्वी और द्युलोकसे भी बडे हैं । इन्हीं देवोंके कारण औषधियां और मनुष्योंमें रसका निर्माण होकर वे स्वरूपवान् बनते हैं । ये दोनों देव सदा सत्यके मार्गसे चलते हुए सदाचारियोंकी सतत रक्षा करते हैं ॥ ३ ॥

मित्रवत् व्यवहार करनेवाले और वरिष्ठ अर्थात् श्रेष्ठ व्यवहार करनेवालोंकी स्तुति या प्रशंसा करनी चाहिए । जो सबसे मित्रवत् व्यवहार करते हैं, उनका हृदय पृथ्वीसे भी विशाल होता है, और सर्वत्र उनका यश फैलता है । जो यज्ञ अर्थात् प्रजाओंमें संघटनका काम न करके विघटनका काम करते हैं,वे हीन अवस्थामें गिरते हैं । पर यज्ञ करनेमें जिनका मन लगा रहता है, वे अपना बल बढाते हैं ॥ ४ ॥

मनुष्य अपना ज्ञान बढावें, बल बढावें और सर्वत्र जाकर निरीक्षण करें, सुरक्षा करें और वहां ज्ञानका प्रचार करें । वे ऐसे महत्त्वपूर्ण काम करें, कि लोग उनकी प्रशंसा करते हुए तृप्त न हों । जो असत्यकी प्रशंसा करते हैं, वे जनताके शत्रु हैं । असत्यकी प्रशंसा प्रजाके प्रति द्रोह है । इसलिए मनुष्य कोई भी ऐसा कर्म न करे, कि जिससे देशमें असत्य या अज्ञानकी वृद्धि हो और सत्य या ज्ञानका क्षय हो ॥ ५ ॥

म०
प्रज्ञा०

५२० मम्नुं वां यज्ञं मह्यं नमोभि॒र्हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः ।
प्र वां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि ॥ ६ ॥
५२१ इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[६२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- १-३ सूर्यः; ४-६ मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

५२२ उत् सूर्यो बृहदर्चींष्यश्रेत् पुरु विश्वा जनिम मानुषाणाम् ।
समो दिवा ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥ १ ॥
५२३ स सूर्य प्रति पुरो न उद् गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः ।
प्र नो मित्राय वरुणाय वोचो ऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च ॥ २ ॥

अर्थ— [५२०] हे (मित्रावरुण) मित्र और वरुण ! (त्वां यज्ञे नमोभिः सं मह्यं उ) आपके यज्ञका नमस्कारोंसे हम महत्त्व बढाते हैं । इसलिये (सबाधः वां हुवे) बाधित होकर आपको मैं बुलाता हूं । बाधा दूर करनेके लिये बुलाता हूं । (वां ऋचसे) आपकी प्रशंसा करनेके लिये (इमानि नवानि मन्मानि कृतानि) ये नवीन मननीय स्तोत्र किये हैं । ये (ब्रह्म जुजुषन्) स्तोत्र आपको प्रसन्न करें ॥ ६ ॥

[५२१] हे (देवा) मित्र और वरुण देवो ! (इयं पुरोहितिः) यह उपासना (यज्ञेषु युवभ्यां अकारि) यज्ञोंमें आप दोनोंके लिए की है । (विश्वानि दुर्गा नः तिरः पिपृतं) सब आपत्तियोंको हमसे दूर करो । (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याणमय साधनोंसे सदा हमें सुरक्षित रखो ॥ ७ ॥

[६२]

[५२२] (सूर्यः बृहत् पुरु अर्चींषि उत् अश्रेत्) यह सूर्य बडे विशाल तेजोंका, ऊपर होता हुआ, आश्रय करता है । (मानुषाणां विश्वा जनिम) मनुष्योंके सब जीवनोंको वह देखता है । (दिवा रोचमानः समः ददृशे) दिनके समय प्रकाशता हुआ एक जैसा सबको दीखता है । वह सूर्य (क्रत्वा) सबका निर्माता (कृतः) परमात्माने स्वयं निर्माण किया है, वह (कर्तृभिः सुकृतः भूत्) यज्ञ कर्ताओंद्वारा सत्कारित हुआ है ॥ १ ॥

[५२३] हे (सूर्य) सूर्य ! (सः नः प्रति पुरः) वह तुम हमारे सामने (एभिः स्तोमेभिः) इन स्तोत्रोंसे तथा (एतशेभिः एवैः) गमनशील अश्वोंसे (उत् गाः) ऊपर चढ और (नः) हमारे संबन्धमें (मित्राय वरुणाय अर्यम्णे अग्नये च) मित्र, वरुण, अर्यमा तथा अग्निके पास (अनागसः प्र वोचः) निष्पाप भावकी घोषणा करो ॥ २ ॥

भावार्थ— मित्र और वरुण इस विश्वका रचकर इसे धारण भी कर रहे हैं । यह एक शाश्वत सत्य है । पर कई अज्ञानी इस शाश्वत सत्यसे भी अनभिज्ञ रहते हैं, ऐसे अज्ञानियोंको इस शाश्वत सत्यसे परिचित कराना ज्ञानियोंका कार्य है । ज्ञानीजन लोगोंको प्रेरणा दें, ताकि वे लोग यज्ञकर्म करके महत्त्वको प्राप्त करें । इस महत्त्व प्राप्तिके मार्गमें कोई संकट आए तो, प्रभुकी उपासना करके उन संकटोंको दूर करना चाहिए । इस तरहकी उपासनासे प्रभु प्रसन्न होते हैं और उपासककी उन्नति होती है ॥ ६ ॥

हे देवो ! मैं आपकी ही उपासना करता हूं, इसलिए आप हमें सब आपत्तियोंसे दूर रखो, तथा अपने कल्याणमय साधनोंसे हमारी सदा सुरक्षा किया करो ॥ ७ ॥

मनुष्यका उदय होनेके बाद उसका तेज बढता रहे । उसमें श्रेष्ठ और कनिष्ठकी परीक्षा करनेकी शक्ति हो । उसका बर्ताव सबके साथ समान हो । वह बडे बडे पुरुषार्थ करनेवाला बने और अनेक कुशल पुरुषोंके साथ रहकर बडे विशाल कर्म उत्तम प्रकारसे निभानेवाला बने ॥ १ ॥

हे सूर्य ! तू उदय होकर अपने वेगवान् अश्वोंसे ऊपर चढ, तथा हमारे उत्तम कर्मोंको देखकर हमारी निरपराधिताको देवोंके सामने विख्यात कर ॥ २ ॥

५२४ वि नः सहस्रं शुरुधो रदन्त्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कमा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः ॥ ३ ॥
५२५ द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नो ये वां जज्ञुः सुजनिमान ऋष्वे ।
मा हेळे भूम वरुणस्य वायोर्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम् ॥ ४ ॥
५२६ प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥ ५ ॥
५२७ नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

अर्थ-- [५२४] (शु-रुधः ऋतावानः) शोकके दुःखको दूर करनेवाले सत्यनिष्ठ (वरुणः मित्रः अग्निः) वरुण, मित्र और अग्नि ये देव (नः सहस्रं विरदन्तु) हमें सहस्रों प्रकारका धन दें । तथा (चन्द्राः नः उपमं अर्कं आयच्छन्तु ; ये आल्हाददायक देव हमें स्तुत्य और प्रशंसनीय धन दें । तथा (स्तवानाः नः कामं पूपुरन्तु) स्तुति करनेपर हमारी कामनाओंको पूर्ण करें ॥ ३ ॥

[५२५] हे (अदिते ऋष्वे द्यावाभूमी) अखण्डनीय और विशाल द्यु और भूलोको ! (नः त्रासीथां) हमारा संरक्षण करो । (ये सुजनिमानः वां जज्ञुः) जो उत्तम कुलीन हम हैं वे तुम्हें जानते हैं । हम (वरुणस्य हेळे मा भूम) वरुणके क्रोधमें न जांय तथा (वायोः मा) वायुके क्रोधमें न जांय और (नृणां) मनुष्योंके क्रोधमें भी हम न जांय, (प्रियतमस्य मित्रस्य मा) प्रिय मित्रके क्रोधमें न जांय । अर्थात् इनका क्रोध होनेयोग्य बुरा आचरण हमसे न हो ॥ ४ ॥

[५२६] हे (मित्रावरुणा) मित्रावरुणो ! आप अपने (बाहवा प्र सिसृतं) बाहुओंको फैलाओ । (नः जीवसे) हमारे दीर्घ जीवनके लिये (नः गव्यूतिं घृतेन आ उक्षतं) हमारी गायें जानेके मार्गको जलसे सिंचन करो । (नः जने आ श्रवयतं) हमें लोगोंमें कीर्तिमान् बनाओ । हे (युवाना) तरुणो ! (मे इमा हवा श्रुतं) मेरे इन स्तोत्रोंको सुनो ॥ ५ ॥

[५२७] (मित्रः वरुण अर्यमा) मित्र, वरुण और अर्यमा ये तीनों देव (नु नः त्मने तोकाय वरिवः दधन्तु) हमारे पुत्र- पौत्रोंके लिये योग्य श्रेष्ठ धन दें । (नः विश्वा सुपथानि सुगा सन्तु) हमारे सब जानेके मार्ग हमारे लिये सुगम हों । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ ६ ॥

भावार्थ— सभी देव शोकके कारणको दूर करनेवाले, दुःखको दूर करनेवाले तथा सत्यके मार्गसे जानेवाले हैं । इसी तरह मनुष्य भी देवोंके सदृश बनकर लोगोंके दुःखोंको दूर करनेका कार्य करें और सत्यमार्गसे जाएं । ऐसे मनुष्योंको देवगण आनन्ददायक और उत्तम धन देते हैं ॥ ३ ॥

हे द्युलोक तथा भूलोक ! तुम दोनों हमारी रक्षा करो । हम उत्तम कुलमें जन्म लिए हुए हैं, इसलिए हम पर वरुण, वायु और मनुष्य कभी क्रोध न करें, अपितु हम पर सदा प्रसन्न रहें । हमारा प्रिय मित्र भी हमपर कभी क्रोध न करे । अर्थात् हम कभी कोई ऐसा आचरण न करें कि जिससे इन्हें हमपर क्रोध करना पडे ॥ ४ ॥

मनुष्य बहुत सा दान देते रहें । अपने दीर्घजीवनके लिए गौओंको उत्तम जल और हरी घास देते रहें । गौओंका पालन करके गोदुग्ध और घृतका सेवन करें तथा ऐसा उत्तम आचरण करें कि जिससे जगत्में यश फैले ॥ ५ ॥

मित्र, वरुण और अर्यमा ये तीनों देव हमारे पुत्र पौत्रोंके लिए उत्तम धन दें । हमारे जानेके सभी मार्ग सुगम हों, तथा ये अपने कल्याणकारी साधनोंसे सदा हमारी रक्षा करते रहें ॥ ६ ॥

[६३]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता - १-४ सूर्यः, ५ सूर्यो मित्रावरुणौ, ६ मित्रावरुणौ अर्यमा च ।
छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

५२८ उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम् ।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव यः समविव्यक् तमांसि ॥ १ ॥

५२९ उद्वेति प्रसवीता जनानां महान् केतुरर्णवः सूर्यस्य ।
समानं चक्रं पर्याविवृत्सन् यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः ॥ २ ॥

५३० विभ्राजमान उषसामुपस्थाद् रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः ।
एष मे देवः सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम ॥ ३ ॥

---

[६३]

अर्थ— [५२८] (सूर्यः सुभगः) यह सूर्य उत्तम भाग्यसे युक्त है (विश्वचक्षाः) सबका निरीक्षण करनेवाला (मानुषाणां साधारणः) सब मनुष्योंके लिए समान (मित्रस्य वरुणस्य चक्षुः देवः) मित्र और वरुणकी आंख जैसा यह देव (यः चर्म इव तमांसि समविव्यक्) जो चमडेकी तरह अन्धकारोंको समेटता है वह (उत् उ एति) उदय हो रहा है ॥ १ ॥

[५२९] (जनानां प्रसविता) सब लोगोंका प्रेरक (महान् केतुः) बडे ध्वजके समान सबको ज्ञान देनेवाला (अर्णवः) जीवन दाता (सूर्यस्य) यह सूर्य (उत् उ एति) उदयको प्राप्त होता है । (समानं चक्रं परि आविवृत्सन्) सबके लिये एकही कालचक्रको घुमाता हुआ, (यत् धूर्षु युक्तः एतशः वहति) जिस चक्रको धुरामें लगा हुआ अश्व चलाता है ॥ २ ॥

[५३०] यह (विभ्राजमानः उषसां उपस्थात्) विशेष प्रकाशता हुआ सूर्य उषाओंके सामने (रेभैः अनुमद्यमानः उत् एति) स्तोत्र-पाठकोंके स्तोत्रोंसे आनन्द प्रसन्न होता हुआ उदयको प्राप्त होता है । (एषः देवः सविता मे चच्छन्द) यह सविता देव मेरी कामनाकी पूर्ति करता है । (यः समानं धाम न प्रमिनाति) जो अपने समान तेजस्वी स्थानको संकुचित नहीं करता ॥ ३ ॥

भावार्थ— सूर्य भाग्यवान् और ऐश्वर्यवान् है । वह सबका निरीक्षक है, सब मनुष्योंके साथ समान रीतिसे बर्ताव करनेवाला है । मित्रावरुणकी यह आंख जैसा है । इस सूर्य देवके उदय होते ही अन्धकार सिमट जाता है ॥ १ ॥

यह सूर्य देव सब लोगोंको सत्कर्ममें प्रेरित करता है । सूर्योदय होते ही ईश्वरस्तुति, प्रार्थना, उपासना, यज्ञ याग आदि अनेक तरहके सत्कर्म शुरु हो जाते हैं । अन्यान्य विद्याध्ययन आदिक कर्म भी सूर्योदयसे ही शुरु हो जाते हैं । इसलिए सूर्य सत्कर्मका सूचक एक महान् ध्वज है । सूर्य अपनी किरणोंके द्वारा जीवनको पृथ्वीपर भेजता है, इसलिए यह जीवननिधि है । वह कालचक्रका प्रवर्तक है ॥ २ ॥

सूर्योदयसे पूर्व उषःकालमें उपासक लोग वैदिक स्तोत्रोंका गान करते हैं, उसके बाद सूर्य उदय होता है । उदयके समयका सूर्य सविता कहलाता है । यह सविता देव सबको आनन्द प्रदान करता है । इसका स्थान सब मानवोंके लिये समान है । यह किसीका पक्षपात नहीं करता ॥ ३ ॥

५३१ दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेअर्थस्तरणिर्भ्राजमानः ।
नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि ॥ ४ ॥
५३२ यत्रा चक्रुरमृता गातुमस्मै श्येनो न दीयन्नन्वेति पाथः ।
प्रति वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः ॥ ५ ॥
५३३ नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[६४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

५३४ दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन् ।
हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषन्त ॥ १ ॥

अर्थ— [५३१] यह सूर्य (दिवः रुक्मः उरुचक्षाः) द्युलोकको शोभा देनेवाला, विशेष तेजस्वी (दूरे अर्थः) दूर विराजमान, (तरणिः भ्राजमानः) तारणकर्ता और तेजस्वी (उत एति) उदित होता है । (नूनं) यह निःसंदेह है कि (सूर्येण प्रसूताः जनाः) सूर्यसे प्रेरित हुए लोग अपने प्राप्तव्य (अर्थानि अयन् अपांसि कृण्वन्) अर्थोंको प्राप्त करके उनसे कर्मोंको करते हैं ॥ ४ ॥

[५३२] (यत्र अमृताः अस्मै गातुं चक्रुः) जिस स्थानमें देवोंने इस सूर्यके लिये मार्ग बनाया है। वह (पाथः) मार्ग (श्येनः न दीयन्) शीघ्रगामी श्येनकी तरह अन्तरिक्षमेंसे (अनु एति) जाता है। हे (मित्रावरुण) मित्र और वरुण ! (सूरे उदिते सति) सूर्यका उदय होनेपर (वां) तुम्हारी (नमोभिः उत हव्यैः) नमस्कारोंसे और हवन द्रव्योंसे (प्रति विधेम) हम परिचर्या करेंगे ॥ ५ ॥

[५३३] (मित्रः वरुणः अर्यमा) मित्र, वरुण और अर्यमा ये तीनों देव (नु नः त्मने तोकाय वरिवः दधन्तु) हमारे पुत्र-पौत्रोंके लिए श्रेष्ठ धन देवें । (नः विश्वा सुपथानि सुगा सन्तु) हमारे सब जानेके मार्ग हमारे लिए सुगम हों । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ ६ ॥

[६४]

[५३४] (दिवि रजसः पृथिव्यां क्षयन्ता) तुम दोनों द्युलोकमें, अन्तरिक्षमें तथा पृथिवीमें रहते हो, (वां घृतस्य निर्णिजः प्र ददीरन्) तुम दोनों जलके रूपको बनाते हो । जल तुमने बनाया है । (नः हव्यं) हमारे हव्यका (मित्रः) मित्र (सुजातः अर्यमा) उत्तम कुलमें जन्मा अर्यमा और (सुक्षत्रः राजा वरुणः जुषन्त) उत्तम क्षात्र बलसे युक्त राजा वरुण सेवन करें ॥ १ ॥

भावार्थ— यह सूर्यदेव द्युलोकका अलंकार है । यह दूर रहकर भी सबको जीवन प्रदान करता है । सूर्यसे प्रेरित होकर लोग अपने प्राप्तव्य अर्थोंको प्राप्त करके उनसे सत्कर्म करते हैं ॥ ४ ॥

द्युलोकमें देवोंने इस सूर्यके लिए मार्ग बनाया, उन्हीं मार्गों पर यह सूर्य अनन्तकालसे चला आ रहा है । इस सूर्यदेवके उदय होने पर मित्र और वरुणकी स्तुति की जाती है ॥ ५ ॥

मित्र, वरुण और अर्यमा ये तीनों देव हमारे पुत्रपौत्रोंके लिए उत्तम धन दें । हमारे जानेके सभी मार्ग सुगम हों तथा ये अपने कल्याणकारी साधनोंसे सदा हमारी रक्षा करते हैं ॥ ६ ॥

ये मित्र तथा वरुण अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी पर रहते हैं और तीनों लोकोंका व्यापते हैं । ये दोनों देव जलको रूपवान् बनाते हैं । इन्हीं देवोंके कारण जल नेत्रोंके कारण दिखाई देता है । जल पहले गैस या वायुरूप था । मित्र और वरुण ये दो वायु हैं, वे अग्निके समक्ष मिलते हैं और जलको प्रकट करते हैं ॥ १ ॥

५३५ आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक् ।
इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू ॥ २ ॥
५३६ मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु ।
ब्रवद् यथा न आदरिः सुदास इषा मदेम सह देवगोपाः ॥ ३ ॥
५३७ यो वां गर्तं मनसा तक्षदेतमूर्ध्वां धीतिं कृणवद् धारयच्च ।
उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम् ॥ ४ ॥
५३८ एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

अर्थ— [५३५] हे (महः ऋतस्य गोपा राजाना) बडे सत्यके पालक राजा (सिन्धुपती क्षत्रिया) नदियोंके पालनकर्ता और क्षत्रियो । (अर्वाक् आयातं) हमारे समीप आओ । हे (जीरदानू मित्रावरुणा) शीघ्र दान देनेवाले मित्र वरुणो ! तुम (नः इळां) हमें अन्न दो (उत वृष्टिं । और वृष्टिको भी (दिवः अव इन्वतं) द्युलोकसे नीचे प्रेरित करो ॥ २ ॥

[५३६] (मित्रः वरुणः) मित्र, वरुण और (अर्यः) अर्यमा ये तीनों देव (नः तत्) हमें वहां सुखके स्थानमें (साधिष्ठेभिः पथिभिः प्र नयन्तु) उत्तम साधनोंसे युक्त मार्गोंसे पहुंचा दें । तथा (नः सुदासे) हमारा उत्तम दाताके पास (तथा ब्रवत्) वैसा वर्णन करें कि (यथा आदरिः) जैसा श्रेष्ठ पुरुष करता है । (देव-गोपाः इषा सह मदेम) देवोंसे सुरक्षित हुए हम अन्नके द्वारा हम सब साथ साथ रहकर आनंदित होते रहेंगे ॥ ३ ॥

[५३७] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! (यः वां एतं गर्तं मनसा तक्षत्) जो आपके इस रथको मनसे निर्माण करता है, वह (ऊर्ध्वां धीतिं कृणवत्) उच्च धारण शक्ति निर्माण करता और (धारयत् च) उसका धारण भी करता है । हे (राजाना राजाओ ! (घृतेन उक्षेथां) जलसे सिंचन करो (ता) वे आप दोनों (सुक्षितीः तर्पयेथां) सुन्दर रहनेके स्थान देकर सबको प्रसन्न करो ॥ ४ ॥

[५३८] हे (मित्र वरुण) मित्र वरुण ! (तुभ्यं) आपके लिये तथा (वायवे) वायुके लिए (शुक्रः सोमः न एषः स्तोमः) बलवर्धक सोमरसके समान आनन्द बढानेवाला यह स्तोत्र मैंने (अयामि) किया है । (धियः अविष्टं) हमारी बुद्धियों तथा हमारे कर्मोंका संरक्षण करो , (पुरंधीः जिगृतं) नगर रक्षण करनेकी बुद्धिकी जागृति करो । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पातं) तुम हमारी सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ— राजा ऋत अर्थात् सत्यका रक्षक हो, वह शुभ कर्मोंका संरक्षक हो, वह नदियोंका पालक हो । नदियोंके जलका संरक्षण करे और उस जलका उपयोग वह प्रजाजनोंकी समृद्धिके लिए करे । वह राजा क्षत्रिय अर्थात् प्रजाओंकी दुःखसे रक्षा करनेवाला हो ॥ २ ॥

मित्र, वरुण और अर्यमा ये तीनों देव हमें उत्तम साधनोंसे या मार्गोंसे सुखके स्थानमें पहुंचायें । देवोंकी कृपासे हम सुरक्षित होकर एक साथ रहें और समृद्ध हों ॥ ३ ॥

हे मित्र और वरुण ! जो मनुष्य आपके गमन साधनोंको मन लगाकर परिष्कृत करता है, उस मनुष्यकी धारणशक्ति उत्तम होती है । ऐसे मनुष्यको देवगण हर तरहसे समृद्ध बनाते हैं ॥ ४ ॥

मित्र, वरुण और वायुके लिए मैंने यह आनन्दवर्धक स्तोत्र बनाये हैं । ये सभी देव हमारी बुद्धियों तथा कर्मोंका संरक्षण करें तथा हमारी प्रज्ञा जागृत हो ॥ ५ ॥

[६५]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

५३९ प्रति॑ वां॒ सूर॒ उदि॑ते सू॒क्तै-र्मि॒त्रं हु॑वे॒ वरु॑णं पू॒तद॑क्षम् ।
यया॑रसु॒र्य१॒॑मक्षि॑तं॒ ज्येष्ठं॒ विश्व॑स्य॒ याम॑न्ना॒चिता॑ जिग॒त्नु ॥ १ ॥
५४० ता हि दे॒वाना॒मसु॑रा॒ ताव॒र्या ता नः॑ क्षि॒तीः क॑रतमू॒र्जय॑न्तीः ।
अ॒श्याम॑ मित्रावरुणा व॒यं वां॒ द्यावा॑ च॒ यत्र॑ पी॒पय॒न्नहा॑ च ॥ २ ॥
५४१ ता भूरि॑पाशा॒वनृ॑तस्य॒ सेतू॑ दुर॒त्येतू॑ रि॒पवे॒ मर्त्या॑य ।
ऋ॒तस्य॑ मित्रावरुणा प॒था वा॒-म॒पो न ना॒वा दु॑रि॒ता त॑रेम ॥ ३ ॥
५४२ आ नो॑ मित्रावरुणा ह॒व्यजु॑ष्टिं घृ॒तैर्गव्यू॑तिमुक्षत॒मिळा॑भिः ।
प्रति॑ वा॒मत्र॒ वर॒मा जना॑य पृणी॒तमु॒द्नो दि॒व्यस्य॒ चारोः॑ ॥ ४ ॥

---

[६५]

अर्थ— [५३९] (सूरे उदिते) सूर्यका उदय होनेके समय (मित्रं पूतदक्षं वरुणं) मित्र तथा पवित्र बलवाले वरुणकी (वां सूक्तैः प्रति हुवे) आपके सूक्तोंसे उपासना करता हूं । (ययोः अक्षितं ज्येष्ठं असुर्यं) जिनका अक्षय और श्रेष्ठ बल (आचिता यामन्) प्राप्त होनेपर वह (विश्वस्य जिगत्नु) सबका विजय करनेवाला होता है ॥१॥

[५४०] (ता हि देवानां असुराः) वे दोनों देवोंमें अधिक बलवाले हैं । (तौ अर्या) वे दोनों श्रेष्ठ हैं । (ता नः क्षिती ऊर्जयन्तीः करतं) वे दोनों हमारी प्रजाको बढाते हैं । हे मित्र और वरुण ! (वयं वां अश्याम) हम आप दोनोंको प्राप्त करते हैं । (यत्र द्यावा च) जिससे द्यु और पृथिवी (अहा च) दिन रात (पीपयन्) हमारी वृद्धि करते रहें ॥ २ ॥

[५४१] (तौ भूरिपाशौ) वे दोनों वीर बहुत पाशोंसे शत्रुको बांधनेवाले हैं । (अनृतस्य सेतू) सेतु जैसे असत्यके पार करनेवाले हैं । वे (मर्त्याय रिपवे दुरत्येतू) मर्त्य शत्रुके लिये आक्रमण करनेके लिये अशक्य हैं । हे (मित्रावरुणा) मित्रा वरुणो ! हम (वां ऋतस्य पथा) आपके सत्य मार्गसे (नावा अपः न) नौकासे नदियोंके पार होनेके समान (दुरिता तरेम) दुःखोंको पार करेंगे ॥ ३ ॥

[५४२] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! (नः हव्यजुष्टिं आ) हमारे हवनके स्थानमें आओ । (इळाभिः घृतैः गव्यूतिं उक्षतं) अन्नों और जलोंसे हमारी गो चरनेवाली भूमिको सिंचन करो । (वां अत्र वरं प्रति आ) आपको यहीं श्रेष्ठ हवि मिलेगा । (दिव्यस्य चारोः उद्नः जनाय पृणीतं) स्वर्गीय रमणीय जल लोगोंके लिये भरपूर दो ॥ ४ ॥

भावार्थ— सूर्यके उदय होनेपर पवित्र बलवाले मित्र तथा देवकी मैं इन स्तोत्रोंसे स्तुति करता हूं । इन देवोंके अक्षय और श्रेष्ठ बलकी सहायतासे मनुष्य सबको जीतनेवाला होता है ॥ १ ॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव इतर देवोंमें सर्वाधिक बलवाले हैं । वे दोनोंही श्रेष्ठ हैं, वे दोनों हमारी प्रजाओंको बढाते हैं । आपकी कृपा हम पर हो तो द्यु तथा पृथ्वीलोक दिनरात हमें समृद्ध करते रहें ॥ २ ॥

ये दोनों मित्र और वरुण अनेक तरहके पाशोंसे शत्रुओंको बांधनेवाले हैं । पुल जिस प्रकार लोगोंको असत्यके पार पहुंचाता है, उसी तरह ये देव लोगोंको असत्यके पार पहुंचाते हैं । हे मित्र और वरुण ! हम आपके सत्यमार्ग पर चलकर दुःखोंसे पार हो जाएं ॥ ३ ॥

हे मित्र और वरुण ! तुम हम पर प्रसन्न होकर अन्नों और जलोंसे हमारी गोचर भूमिको उत्तम बनाओ तथा अमृतके समान मधुर तथा रमणीय जल लोगोंको दो ॥ ४ ॥

५४३ एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधी―र्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[६६]

(ऋषि- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- मित्रावरुणौ, ४-१३ आदित्याः, १४-१९ सूर्यः ।
छन्दः- गायत्री; १०-१५ प्रगाथः = (समा बृहती, विषमा सतोबृहती,) १६ पुर उष्णिक् ।)

५४४ प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु शूष्यः । नमस्वान् तुविजातयोः ॥ १ ॥
५४५ या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा । असुर्याय प्रमहसा ॥ २ ॥
५४६ ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितॄणाम् । मित्र साधयतं धियः ॥ ३ ॥
५४७ यदद्य सूर उदिते ऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥ ४ ॥

अर्थ― [५४३] हे (वरुण मित्र) वरुण और मित्र ! (तुभ्यं) आपके लिये तथा (वायवे) वायुके लिये (शुक्रः सोमः न एषः स्तोमः) बलवर्धक सोमरसके समान आनन्द बढानेवाला यह स्तोत्र मैंने (अयामि) तैय्यार किया है । (धियः अविष्टं) हमारी बुद्धियों तथा हमारे कर्मोंका संरक्षण करो । (पुरंधीः जिगृतं) नगर रक्षण करने की बुद्धिको जागृत करो । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारी सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षा करो ॥ ५ ॥

[६६]

[५४४] (मित्रयोः वरुणयोः) मित्र और वरुण जो कि (तुवि-जातयोः) अनेक वार प्रकट होते हैं उनका (नमस्वान् शूष्यः स्तोमः) अन्नसे युक्त बल बढानेवाला स्तोत्र (नः प्र एतु) हमारे पास आ जावे ॥ १ ॥

[५४५] (देवाः) देव (सुदक्षा दक्षपितरा) उत्तम बलवान्, बलके संरक्षक (प्रमहसा) विशेष शक्तिवाले (असुर्याय धारयन्त) बल प्राप्त करनेके लिये धारण करते हैं । मित्र और वरुणका धारण करते हैं ॥ २ ॥

[५४६] (ता स्तिपाः तनूपाः) वे तुम दोनों घरोंके शरीरोंके रक्षक हो । हे (मित्र वरुण) मित्र और वरुण ! (नः जरितॄणां धियः साधयतं) हम सब स्तोताओंकी इच्छाओंको सफल बनाओ ॥ ३ ॥

[५४७] (यत् अद्य सूरे उदिते) जो धन आज सूर्यका उदय होनेके समय हमें अपेक्षित है वह (अनागाः) निष्पाप (मित्रः, अर्यमा, सविता, भगः) मित्र, अर्यमा, सविता, भग (सुवाति) हमें देवे ॥ ४ ॥

भावार्थ― मित्र, वरुण और वायुके लिए मैंने यह आनन्दवर्धक स्तोत्र बनाये हैं । ये सभी देव हमारी बुद्धियों तथा कर्मोंका संरक्षण करें तथा हमारी प्रज्ञा जागृत हो ॥ ५ ॥

मित्र और वरुणका स्तोत्र बल बढानेवाला है और अन्न देनेवाला है । वह अन्न हमें मिले । उस अन्नसे शक्तिशाली होकर हम इन देवोंकी स्तुतिसे स्तोत्र बनायें ॥ १ ॥

उत्तम बलोंको धारण करके इन बलोंकी रक्षा करनी चाहिए, इस प्रकार विशेष महत्व प्राप्त करना चाहिए । अपना बल बढानेका प्रयत्न करना चाहिए ॥ २ ॥

शरीरों, घरों, नगरों तथा राष्ट्रका संरक्षण करना चाहिए । हे मित्र और वरुण ! तुम दोनों हम सब स्तोताओंकी इच्छाओंको सफल करो ॥ ३ ॥

आज सूर्यके उदय होने पर जो धन हम चाहते हैं, उस धनको हमें मित्र, अर्यमा, सविता और भग देव प्रदान करें ॥ ४ ॥

+

५४८ सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन् त्सुदानवः । ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥ ५ ॥
५४९ उत स्वराजो अदिति- रदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ॥ ६ ॥
५५० प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशादसम् ॥ ७ ॥
५५१ राया हिरण्यया मति- रियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ॥ ८ ॥
५५२ ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि ॥ ९ ॥
५५३ बहवः सूरचक्षसो ऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभि- र्विश्वानि परिभूतिभिः ॥ १० ॥

अर्थ— [५४८] (सः क्षयः सुप्रावीः अस्तु) वह हमारा निवास स्थान उत्तम प्रकारसे सुरक्षित हो । हे (सुदानवः) उत्तम दान देनेवालो ! (नु यामन् प्र) आपका आगमन हमारा रक्षण करे । (ये नः अंहः अति पिप्रति) वे तुम हमें पापसे बचाओ ॥ ५ ॥

[५४९] (च अदितिः) जो मित्र आदि आदित्य और अदिति ये सब (अदब्धस्य व्रतस्य स्वराजः) न दबे व्रतके अधिष्ठाता हैं, वे (राजानः महः ईशते) अधिपति बडे धनके भी स्वामी हैं ॥ ६ ॥

[५५०] (सूरे उदिते) सूर्यका उदय होनेके समय (मित्रं वरुणं) मित्र वरुण और (रिशा-अदसं अर्यमणं वा) शत्रु नाशक अर्यमाकी (प्रति गृणीषे) प्रत्येककी स्तुति गाऊंगा ॥ ७ ॥

[५५१] (हिरण्यया राया) सुवर्णमय धनसे युक्त (इयं मतिः) यह मेरी बुद्धि (अवृकाय शवसे) अहिंसक बलके लिये हो । हे (विप्राः) ज्ञानियो ! (इयं मेधसातये) यह मेरी बुद्धि यज्ञको सिद्ध करनेवाली हो ॥ ८ ॥

[५५२] (देव मित्र वरुण) हे देव मित्र तथा वरुण ! (सूरिभिः सह ते स्याम) विद्वानोंके साथ हम आपके गुणगान करनेवाले हों । (इषं स्वः च धीमहि) हम अन्न और जल भी प्राप्त करेंगे ॥ ९ ॥

[५५३] (बहवः सूरचक्षसः) बहुत सूर्यके सदृश तेजस्वी (अग्नि जिह्वाः ऋतावृधः) अग्नि जिनकी जिह्वा है ऐसे सत्य मार्गको बढानेवाले मित्रादिक देव वीर (ये) जो (विश्वानि त्रीणि विदथानि) सब तीनों स्थानोंपर (परिभूतिभिः धीतिभिः येमुः) शत्रुका पराभव करनेके सामर्थ्योंसे नियमन करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— हमारा निवासस्थान अत्यन्त सुरक्षित हो । वीरोंके आगमनसे हमभी सुरक्षित हों । हमारे राष्ट्रमें वीर आवें और वे हमारी रक्षा करें ॥ ५ ॥

राष्ट्रके वीर ऐसे व्रतके प्रवर्तक हों, कि जो किसी शत्रुके द्वारा दबाया नहीं जा सकता । ये ही बडे धनके अधिपति हैं । जिन वीरोंके कर्म शत्रुसे नहीं मिटाये जाते, वेही वीर बडे ऐश्वर्यके स्वामी होते हैं, पर जिनके कर्म उनके शत्रु विनष्ट कर सकते हैं, उन्हें इस जगत्में ऐश्वर्य प्राप्त होना असंभव है ॥ ६ ॥

सूर्यके उदय होने पर मनुष्य सभी देवोंकी स्तुतिका गान करें ॥ ७ ॥

मनुष्यके पास स्वर्ण आदि ऐश्वर्य भरपूर होने पर भी उसकी बुद्धि हिंसारहित हो । धनवान् होने पर भी बुद्धि श्रेष्ठ बनी रहे । अपने धन पर घमंड करता हुआ वह हिंसामय क्रूर कर्म न करे । अपितु वह बुद्धि यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्म करनेवाली ही बने ॥ ८ ॥

मनुष्योंको चाहिए कि वे सदा ज्ञानी विद्वानोंके साथ रहें, श्रेष्ठ वीरोंके काव्य गाएं और खानपान प्राप्त करनेके कार्य करें ॥ ९ ॥

जिन वीरोंमें शत्रुओंको हरानेका सामर्थ्य होता है, वे अपने सामर्थ्यसे सभी युद्ध चौकियों पर अपना ही नियंत्रण रखते हैं, उन चौकियोंको शत्रुओंके हाथमें नहीं जाने देते । ऐसे वीर सूर्यके समान तेजस्वी, अग्निज्वालाके समान जिह्वावाले, उत्तम वक्ता और सत्यका संवर्धन करनेवाले हों ॥ १० ॥

५५४ वि ये दधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचम् ।
अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत ॥ ११ ॥

५५५ तद् वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते ।
यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः ॥ १२ ॥

५५६ ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः ।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः ॥ १३ ॥

५५७ उदु त्यद् दर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे ।
यदीमाशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम् ॥ १४ ॥

५५८ शीर्ष्णःशीर्ष्णो जगतस्तस्थुषस्पतिं समया विश्वमा रजः ।
सप्त स्वसारः सुविताय सूर्यं वहन्ति हरितो रथे ॥ १५ ॥

अर्थ— [५५४] (ये) जो (शरदं मासं) वर्ष, महिना, (आत् अहः) पश्चात् दिन (आत् अक्तुं यज्ञं च ऋचं) पश्चात् रात्रिको, यज्ञ और मन्त्रको (वि दधुः) धारण करते हैं। वे मित्र वरुण अर्यमा आदि वीर (राजानः) प्रकाशित होकर (अनाप्यं क्षत्रं आशत) अन्योंके लिये अप्राप्य बलको बढाते रहे ॥ ११ ॥

[५५५] (सूरे उदिते सूक्तैः) सूर्यका उदय होनेके समय सूक्तोंसे (तत् अद्य मनामहे) उस धनकी आज हम प्रार्थना करेंगे (यत्) जिसको (मित्रः वरुणः अर्यमा) मित्र वरुण अर्यमा आदि (ऋतस्य रथ्यः यूयं) सत्यके पथ प्रदर्शक वीर (ओहते) धारण करते हैं ॥ १२ ॥

[५५६] (ऋतावानः ऋतजाताः) सत्यनिष्ठ सत्यके लिये प्रसिद्ध (ऋतावृधः अनृतद्विषः) सत्यको बढानेवाले और असत्यका द्वेष करनेवाले (घोरासः) बडे प्रमाथी और आप हैं (तेषां वः) वैसे आपके (सुच्छर्दिष्टमे सुम्ने) उत्तम घरसे युक्त धनके अन्दर हम (सूरयः नरः स्याम) जो विद्वान तथा नेता हैं वे हों, वे हम रहें ॥ १३ ॥

[५५७] (त्यत् दर्शतं वपुः) वह दर्शनीय शरीर-सूर्यमंडल (दिवः प्रतिह्वरे) द्युलोकके समीपके भागमें (उत् उ एति) उदित हो रहा है। (विश्वस्मै चक्षसे अरं) संपूर्ण विश्वके दर्शनके लिये समर्थ ऐसे इस सूर्यको (यत् ईं एतशः देवः आशु वहति) शीघ्रगामी अश्व चलाता है ॥ १४ ॥

[५५८] (शीर्ष्णः शीर्ष्णः) सबके मुख्य शिर स्थानीय (तस्थुषः जगतः पतिं) स्थावर जंगमके स्वामी (रथे सूर्यं) रथमें बैठे सूर्यको (सुविताय) विश्व कल्याणके लिये (विश्वं रजः समया) सब लोकोंके समीपसे (स्वसारः सप्त हरितः आ वहन्ति) बहिनें जैसी सात घोडियां चलाती हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ— वीर अपने अन्दर ऐसा क्षात्रसामर्थ्य बढावें कि जिसे शत्रु प्राप्त न कर सकें। वीर समयानुसार, ऋत्वनुसार व्रतोंका पालन करें ॥ ११ ॥

सूर्यके उदय होनेपर हम धनप्राप्तिके लिए देवोंकी प्रार्थना तो करें, पर सत्य पथके प्रदर्शक वीर जिसको धारण करते हैं, उस धनको ही हम चाहें ॥ १२ ॥

सत्यनिष्ठ, सत्यके लिए जीवन देनेवाले, सत्यको बढानेवाले, असत्यसे द्वेष करनेवाले और शरीरसे विशाल हों। उनके द्वारा सुरक्षित घरमें हम रहें और उनके द्वारा सुरक्षित धन हमें मिले। हम भी ज्ञानी और नेता बनें ॥ १३ ॥

द्युलोकके समीप उदय होनेवाले सूर्यका शरीर बडा ही दर्शनीय दिखाई देता है। यह सूर्य संपूर्ण विश्वको देखनेमें समर्थ है। इस सूर्यको उसकी किरणें गतिमय बनाती हैं ॥ १४ ॥

सूर्य अपनी किरणोंसे सम्पूर्ण चराचर जगत्को प्राण देनेके कारण सम्पूर्ण जगत्का स्वामी है। यह अपनी किरणोंके द्वारा सबको जीवन देकर सबका कल्याण करता है। सात रंगकी किरणें मानों इस सूर्यके रथकी सात घोडियां हैं ॥ १५ ॥

५५९ तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् ॥ १६ ॥
५६० काव्येभिरदाभ्या ऽऽ यातं वरुण द्युमत् । मित्रश्च सोमपीतये ॥ १७ ॥
५६१ दिवो धामभिर्वरुण मित्रश्चा यातमद्रुहा । पिबतं सोममातुजी ॥ १८ ॥
५६२ आ यातं मित्रावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा । पातं सोममृतावृधा ॥ १९ ॥

[६७]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अश्विना । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

५६३ प्रति वां रथं नृपती जरध्यै हविष्मता मनसा यज्ञियेन ।
यो वां दूतो न धिष्ण्यावजीग रच्छा सूनुर्न पितरा विवक्मि ॥ १ ॥

अर्थ— [५५९] (तत् देवहितं शुक्रं चक्षुः) वह देवहित करनेवाला बलवान विश्वका आंख जैसा यह सूर्य (पुरस्तात् उत् चरत्) हमारे सामने उदित हो रहा है (पश्येम शरदः शतं) उसे हम सौ वर्षतक देखते रहें, (शरदः शतं जीवेम) हम सौ वर्ष जीये ॥ १६ ॥

[५६०] हे (अदाभ्या मित्रः वरुणः) न दबनेवाले मित्र और वरुण देवो ! तुम (द्युमत्) तेजस्वी देव (सोमपीतये आयातं) सोमपान करनेके लिए आओ ॥ १७ ॥

[५६१] हे (अद्रुहा मित्रः वरुण) द्रोह न करनेवाले मित्र और वरुण! और (ऋता वृधा) सत्यको बढानेवाले वीरो ! (दिवः धामभिः) द्युलोकके अपने स्थानोंसे (आ यातं) आओ और (आतुजी) शत्रुका नाश करते हुए (सोमं पिबतं) सोमरसका पान करो ॥ १८ ॥

[५६२] हे (ऋतावृधा) सत्यको बढानेवाले (मित्रा वरुणा) मित्र और वरुणो ! हे (नरा) नेताओ ! (आहुतिं जुषाणौ) आहुतिका स्वीकार करते हुए (आ यातं) आओ और (सोमं पातं) सोमरसका पान करो ॥१९॥

[६७]

[५६३] हे (नृपती) जनताके पालक (धिष्ण्यो) एवं बुद्धिमान् अश्विदेवो ! (यज्ञियेन हविष्मता मनसा) पवित्र तथा यज्ञ दानमें रत ऐसे अपने मनसे (वां रथं प्रति जरध्यै) तुम्हारे रथका वर्णन मैं करूंगा । (यः वां दूतः न अजीगः) जो तुम्हें दूतके समान जगा चुका है, बुला चुका है (सूनुः पितरा न) पुत्र पिताके सामने जैसा बोलता है, उसी प्रकार (अच्छ विवक्मि) तुम्हारे सन्मुख वह मैं विशेष स्पष्ट रीतिसे अपना भाव बोलता हूं । अपना मनोगत प्रकट करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ— सौ वर्षतक जीयें और सौ वर्षतक हमारी आंख आदि इन्द्रियें कर्म करनेमें समर्थ रहें । यह सूर्य इन्द्रियोंका हित करनेवाला है । सूर्य प्रकाशसे सब इन्द्रियां उत्तम अवस्थामें रहती हैं । इसी तरह पृथ्वी, जल, वनस्पती, प्राणी, वायु आदि भी सूर्यके कारण उत्तम अवस्थामें रहते हैं । इसीलिए सूर्यको देवहित कहते हैं ॥ १६ ॥

मित्र और वरुण देव किसीसे न दबनेवाले और तेजस्वी हैं। ऐसे ही हमारे वीर भी किसीसे न दबनेवाले तथा तेजस्वी हों ॥ १७ ॥

वीर द्रोह न करनेवाले हों, सत्यको बढानेवाले हों और शत्रुका नाश करनेवाले हों ॥ १८ ॥

मित्र और वरुण सत्यको बढानेवाले और नेता हैं, उसी तरह सन्मार्गसे चलते हुए वीर सत्यका पालन करें और लोगोंको सन्मार्गसे ले जायें ॥ १९ ॥

मनुष्योंका पालन करनेवाले अत्यन्त बुद्धिमान् होने चाहिए । बुद्धिहीनोंसे राष्ट्रका पालन अच्छी तरह नहीं हो सकता । मनुष्य परस्पर शुद्ध और पवित्र मनसे युक्त होकर ही बातचीत करें ॥ १ ॥

५६४ अशोच्यग्निः समिधानो अस्मे उपो अदृश्रन् तमसश्चिदन्ताः ।
अचेति केतुरुषसः पुरस्ता— च्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ॥ २ ॥
५६५ अभि वां नूनमश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान् ।
पूर्वीभिर्यातं पथ्याभिरर्वाक् स्वर्विदा वसुमता रथेन ॥ ३ ॥
५६६ अवोर्वां नूनमश्विना युवाकु— र्हुवे यद् वां सुते माध्वी वसूयुः ।
आ वां वहन्तु स्थविरासो अश्वाः पिबाथो अस्मे सुषुता मधूनि ॥ ४ ॥
५६७ प्राचीमु देवाश्विना धियं मे ऽमृध्रां सातये कृतं वसूयुम् ।
विश्वा अविष्टं वाज आ पुरंधी— स्ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः ॥ ५ ॥

अर्थ— [५६४] (अस्मे समिधानः अग्निः अशोचि) हमारे लिये प्रज्वलित हुआ अग्नि जगमगा रहा है । (तमसः अन्ताः चित् उप अदृश्रन्) अन्धकारका अन्तिम भाग दिखाई दे रहा है । अन्धकार समाप्त हो रहा है । (दिवः दुहितुः उषसः पुरस्तात्) द्युलोककी पुत्री उषाके सामने (जायमानः केतुः) प्रकट होनेवाला यह ध्वजरूपी सूर्य (श्रिये अचेति) शोभारूप प्रकाशके लिये प्रकट हो रहा है ॥ २ ॥

[५६५] हे (नासत्या अश्विना) हे असत्यका कभी आश्रय न करनेवाले अश्विदेवो ! (विवक्वान् सुहोता) उत्तम रीतिसे बोलनेवाला उत्तम बुलानेवाला होता (वां अभि) आपके सामने (नूनं स्तोमैः सिषक्ति) निश्चयपूर्वक स्तोत्रोंसे आपकी सेवा करता है । (वसुमता स्वर्विदा रथेन) धनवाले प्रकाशमान रथसे (पूर्वीभिः पथ्याभिः यातं) प्रथम निश्चित हुए मार्गोंसे ही आगे बढो ॥ ३ ॥

[५६६] हे (माध्वी अश्विना) मधुरभाषी अश्विदेवो ! (नूनं अवोः वां युवाकुः) निश्चय ही तुम रक्षण कर्ताओंके साथ सम्बन्ध रखनेवाला मैं (यत् वसूयुः) जब धनकी कामना करता हुआ (सुते वां हुवे) इस सोमयागमें तुम्हें बुलाता हूँ; तुम्हारे (स्थविरासः अश्वाः) वृद्ध घोडे (वां आवहन्तु) तुमको यहां ले आवें, और यहां आकर (अस्मे) हमारे बनाये (सुसुताः मधूनि पिबाथः) भली भान्ति निचोडे हुए मीठे सोमरसका पान करें ॥ ४ ॥

[५६७] हे (शचीपती देवा अश्विना) शक्तिके अधिपति अश्विदेवो ! (मे वसूयुं) मेरी धनकी कामना करनेहारी (अ-मृध्रां प्राचीं धियं) अहिंसित सरल बुद्धिको (सातये कृतं) धन प्राप्तिके लिये योग्य बना दो । (वाजे) युद्धमें (विश्वाः पुरन्धीः आविष्टं) सब प्रकारकी बुद्धियोंका पूर्णतया रक्षण करो, (ता) तुम दोनों (शचीभिः नः शक्तं) अपनी शक्तियोंसे हमें सामर्थ्यवान् बना दो ॥ ५ ॥

भावार्थ— प्रभातकालमें एक तरफ उषा धीरे धीरे अपना प्रकाश फैलाती होती है तो दूसरी तरफ पृथ्वी पर यज्ञकी अग्नि प्रदीप्त होकर जगमगाती होती है । ऊपर और नीचे दोनों तरफ प्रकाश होनेपर अन्धकार अपने आप भाग जाता है और तब सूर्य रूपी ध्वजा द्युलोकमें फहराने लगती है ॥ २ ॥

अश्विनौ देव कभी भी असत्यका आश्रय नहीं लेते, इसी तरह उन्नतिकी इच्छा करनेवाले असत्यका आश्रय कभी न लें । जो बोलनेमें कुशल हो, वही अश्विनौ देवोंको बुलावे । बुलाये जानेपर ये देव उपासकको हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥

ये अश्विदेव मधुरभाषी हैं, इसी तरह सभी मधुरभाषी बनें । बुलाये जानेपर ये देव सबके पास जाते हैं, तद्वत् मनुष्य भी सबके घर प्रेमसे जायें ॥ ४ ॥

दोनों देव शचीपति अर्थात् शक्तिके स्वामी हैं, ये देव लोगोंके रोगोंको दूर करके उन्हें स्वस्थ बनाकर सामर्थ्य प्रदान करते हैं । ये लोगोंको धन भी प्रदान करते हैं, पर प्रथम मनुष्योंको चाहिए कि धनकी इच्छा करनेवाली बुद्धिको हिंसा-रहित, सरल और धन प्राप्तिके योग्य बनायें । युद्धमें सबकी सुरक्षा हो, इसलिए सभी सामर्थ्यशाली बनें ॥ ५ ॥

५६८ अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद् रेतो अह्रयं नो अस्तु ।
आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम ॥ ६ ॥
५६९ एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे ।
अहेळता मनसा यातमर्वाग् अश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु ॥ ७ ॥
५७० एकस्मिन् योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात् ।
न वायन्ति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धूर्षु तरणयो वहन्ति ॥ ८ ॥
५७१ असश्चता मघवद्भ्यो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनन्ति ।
प्र ये बन्धुं सूनृताभिस्तिरन्ते गव्या पृञ्चन्तो अश्व्या मघानि ॥ ९ ॥

अर्थ— [५६८] हे (अश्विनौ) अश्वि देवो ! (आसु धीषु नः अविष्टं) इन बुद्धियों और कर्मोंमें हमें सुरक्षित रखो। (नः प्रजावत् रेतः अ-ह्रयं अस्तु) हमारा सुसन्तान उत्पन्न करनेवाला वीर्य क्षीण न हो। (वां तोके तनये तूतुजानाः) तुम्हें पुत्र पौत्रोंके सुख संवर्धनके लिये प्रवृत्त करते हुए (सुरत्नासः) उत्तम रत्नोंको धारण करके हम (देव वीतिं आ गमेम) देवोंकी पवित्रताको हम प्राप्त करें ॥ ६ ॥

[५६९] हे (माध्वीः) मधुर भाषण कर्ता अश्विदेवो ! (अस्मे रातः एषः स्यः निधिः) हमने दिया हुआ यह वह भण्डार (वां सख्ये) तुम्हारी मित्रताके लिये (पूर्व-गत्वा इव हितः) अग्रगामी वीरके समान तुम्हारे आगे रखा है। (मानुषीषु विक्षु) मानवी प्रजाओंमें (हव्यं अश्नन्ता) अन्नभागका सेवन करते हुए तुम (अहेळता मनसा) क्रोध रहित मनसे (अर्वाक् आ यातं) हमारे समीप आ जाओ ॥ ७ ॥

[५७०] हे (भुरणा) भरणपोषण करनेवाले अश्विदेवो ! (एकस्मिन् समाने योगे) एक समान अवसरपर (वां रथः) तुम्हारा रथ (सप्त स्रवतः) सात बहनेवाले स्रोतोंके भी आगे (परि गात्) बढ जाता है। (ये तरणयः वां धूर्षु वहन्ति) जो तारण करनेवाले घोडे हैं वे धुराओंमें तुम्हें ढोते हैं। वे (सुभ्वः देवयुक्ताः) उत्कृष्ट ढंगसे उत्पन्न देवोंके द्वारा जोते होनेके कारण (न वायन्ति) नहीं थकते हैं ॥ ८ ॥

[५७१] (ये गव्याः अश्व्याः) जो गायों और घोडों परिपूर्ण (मघानि पृञ्चन्तः) ऐश्वर्योंका दान करते हुए (बन्धुं सूनृताभिः प्रतिरन्ते) बन्धुको मधुर वाणीसे दान देते हैं, और (राया मघदेयं जुनन्ति) धनसे युक्त होकर धनका दान करनेके लिये प्रेरित करते हैं, ऐसे उन (मघवद्भ्यः) वैभवशाली लोगोंके लिये (असश्चता हि भूतं) दूसरी जगह न जानेवाले बनो। अर्थात् उनके घर जाओ ॥ ९ ॥

भावार्थ— हम जो भी विचार करें और कर्म करें, उनमें हमारी सदा सुरक्षा हो। हम कोई भी ऐसा कुविचार या कुकर्म न करें कि जिससे हमारी सुरक्षा खतरेमें न पडे। हम सुप्रजायें उत्पन्न करनेमें समर्थ शुभ संस्कारोंसे सम्पन्न तथा वीर्यसम्पन्न हों। हमें सदा पुत्रपौत्रोंका सुख सदा मिलता रहे ॥ ६ ॥

हे देवो ! हम तुमसे मित्रता प्राप्त करना चाहते हैं, इसलिए जो कुछ भी हमारे पास खजाना है, उसे हमने तुम्हारे सामने रख दिया है। तुम क्रोध रहित मनसे हमारे पास आओ और हमारे द्वारा दिए गए अन्नभागका सेवन करो ॥ ७ ॥

अश्विदेव सबका भरणपोषण करते हैं। इनका रथ वेगसे बहनेवाले सात नदियोंके पार भी आसानीसे चला जाता है। नदियोंको तैरकर पार कर जानेवाले यंत्र इनके रथोंमें लग हुए होते हैं। और ये यंत्र अच्छी तरह लगे होनेके कारण कभी खराब नहीं होते ॥ ८ ॥

गाय, घोडे और धनोंका दान करना चाहिए। अपने बांधवोंके साथ मधुर भाषण करते जाना चाहिए। जो धनसे युक्त होकर धनका दान करते हैं उन्हें छोडकर दूसरी जगह नहीं जाना चाहिए ॥ ९ ॥

५७२ नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

[६८]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- विराट्, ८-९ त्रिष्टुप् ।)

५७३ आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दस्रा जुजुषाणा युवाकोः ।
हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ॥ १ ॥

५७४ प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थु- रं गन्तं हविषो वीतये मे ।
तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ॥ २ ॥

५७५ प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः ।
अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ॥ ३ ॥

अर्थ— [५७२] हे (युवाना अश्विनौ) तरुण अश्विदेवो ! (मे हवं आ शृणुतं) मेरी प्रार्थना सुनो । (इरावत् वर्तिः यासिष्टं जिसमें अन्न है उसी घरमें जाओ । (रत्नानि धत्तं) रत्नोंको धारण करो । (सूरीन् जरतं) विद्वानोंकी सराहना करो । (स्वस्तिभिः यूयं सदा नः पातं) कल्याण करनेके साधनोंसे सदा हमारी सुरक्षा करो ॥१०॥

[६८]

[५७३] हे (शुभ्रा स्वश्वा दस्रा) श्वेतवर्णवाले अच्छे घोडोंवाले शत्रुनाशक अश्विदेवो ! (युवाकोः गिरः जुजुषाणा) तुम्हारी सेवा करनेवालेको भाषणोंको आदर पूर्वक सुनते हुए (आयातं) यहां आओ । (नः प्रतिभृता) हमारे इकट्ठे किये हुए (हव्यानि वीत) हविर्भागका सेवन करो ॥ १ ॥

[५७४] वां मद्यानि अन्धांसि प्र अस्थुः) तुम्हारे लिये आनन्द वर्धक अन्न रखे गये हैं । (मे हविषः वीतये) मेरे हविष्यान्नके आस्वाद लेनेके लिये (अरं गन्त) शीघ्र यहां आओ । (अर्यः तिरः) शत्रुओंको दूर हटा दो (नः हवनानि श्रुतं) हमारे बुलावोंको सुन लो ॥ २ ॥

[५७५] हे (सूर्यावसू) सूर्यको बसानेवाले अश्विदेवो ! (वां मनोजवाः रथः शतोतिः) आपका मनके समान वेगवान् रथ सैकडों संरक्षणके साधनोंसे युक्त है । वह (अस्मभ्यं इयानः) हमारे पास जाता है और (रजांसि तिरः प्र इयर्ति) धूलीके प्रदेशोंको दूर रखकर आता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— जहां पर्याप्त अन्न हो, और जहां दाता हों वहीं जाना चाहिए । मनुष्य स्वयं रत्नोंको धारण करे और दूसरोंको भी दे । सच्चे ज्ञानियोंकी प्रशंसा करनी चाहिए और कल्याण करनेके साधनोंसे अपनी सुरक्षा करनी चाहिए ॥१०॥

अश्विदेव श्वेत वर्णवाले, अच्छे घोडोंवाले और इनकी स्तुति करनेवालोंकी प्रार्थनाओंको आदरपूर्वक सुनते हैं ॥ १ ॥

हर्षवर्धक अन्नका सेवन करके उससे अपना बल बढाकर शत्रुको दूर हटाना चाहिए । शत्रुको दूर करना मुख्य कर्तव्य है, इसके लिए उद्यत रहना हर एकका आवश्यक कर्तव्य है ॥ २ ॥

सूर्यको भी शक्ति प्रदान करनेवाले अश्विदेवोंका रथ मनके समान वेगवान् और सैकडों तरहके संरक्षणके साधनोंसे युक्त है । वह रथ हमारे पास आवे ॥ ३ ॥

५७६ अयं ह यद् वां देवया उ अद्रि॑रूर्ध्वो विवक्ति सोमसुद् युवभ्याम् ।
आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः ॥ ४ ॥

५७७ चित्रं ह यद् वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम् ।
यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ॥ ५ ॥

५७८ उत त्यद् वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे ।
अधि यद् वर्प इतऊति धत्थः ॥ ६ ॥

५७९ उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे ।
निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः ॥ ७ ॥

अर्थ— [५७६] (अयं सोमसुत् अद्रिः ह) यह सोमका रस निचोडनेवाला पत्थर (यत् ऊर्ध्वः देवया) जब ऊंचे पददपर–सोमपर–आरूढ होकर देवोंकी ओर प्रवृत्त होता है तब (वां उ युवभ्यां विवक्ति) आप दोनोंकी ओर लक्ष्य लेकर विशेष प्रकारका शब्द करता है, तब (विप्रः वल्गू) ज्ञानी याजक सुन्दर रूपवाले तुम्हें (हव्यैः आ ववृतीत) हवनीय पदार्थोंसे अपनी ओर आकर्षित करता है ॥ ४ ॥

[५७७] (यत् वां चित्रं भोजनं अस्ति) जो तुम दोनोंका विलक्षण अन्न रूप दान है, जो (अत्रये महिष्वन्तं नियुयोतं) अत्रिकी शक्ति बढानेके लिये तुमने दिया था। (यः प्रियः सन्) वह तुम्हारा प्रिय था इसलिये (वां ओमानं दधते) तुम्हारे सुरक्षात्मक आश्रयसे रहता है ॥ ५ ॥

[५७८] (उत अश्विना) और हे अश्विदेवो ! (हविर्दे जुरते च्यवनाय) हवि देनेवाले वृद्ध च्यवन ऋषिके लिये (वां त्यत् प्रतीत्यं भूत) तुम्हारा वह उसके पास जाना हितकारक सिद्ध हुआ, (यत्) जो कि (इत ऊती वर्पः) इस मृत्युसे संरक्षण देनेवाला रूप तुमने उसे (अधि धत्थः) दे दिया ॥ ६ ॥

[५७९] (उत अश्विना) और हे अश्विदेवो ! (त्यं भुज्युं) उस भुज्युको (दुरेवासः सखायः) बुरी चालवाले उसके मित्र उसे (समुद्रे मध्ये जहुः) समुद्रके मध्यमें छोड चुके थे (यः युवाकुः अरावा) जो तुम्हारे पास सहायार्थ जाने लगा था, (ईं निः पर्षत्) उसे तुम पूर्णतया पार ले चले और सुरक्षित स्थानपर तुमने उसे पहुंचा दिया था ॥ ७ ॥

भावार्थ— जब सोम कूटनेके लिए पत्थर एक दूसरेपर रगडे जाते हैं, तब उनमेंसे शब्द प्रकट होता है, उस शब्दसे आकर्षित होकर देव आते हैं ॥ ४ ॥

अत्रि ऋषि असुरोंके कारावासमें रहनेके कारण बहुत कमजोर हो गए थे, उन्हें बलवान् और पुष्ट बनानेके लिए अश्विदेवोंने एक प्रकारका विलक्षण और पुष्टिकारक अन्न दिया जिससे अत्रि ऋषि फिरसे बलवान् बने और कार्य करनेमें समर्थ हुए। वैद्योंको भी ऐसे पुष्टिकारक अन्नोंका निर्माण करना चाहिए कि जिसे खाकर राष्ट्रकी प्रजायें पुष्ट और समर्थ बनें ॥ ५ ॥

च्यवन ऋषि बहुत वृद्ध हो गए थे, उनके पास अश्विनौ देवता गए, उन्हें पौष्टिक अन्न देकर उन्हें फिरसे तरुण बना दिया और उनकी मृत्युसे रक्षा की ॥ ६ ॥

राजपुत्र भुज्यु अपने साथियोंके साथ शत्रुपर आक्रमण करने गया, पर हारकर भागा, तब उसके साथी उसे छोड गए और समुद्रमें जाते हुए उस भुज्युका वाहन भी टूट गया, तब वह समुद्रमें डूबने लगा, तब अश्विनी देवोंने उसे समुद्रमेंसे उठाकर उसके घर पहुंचाया और इस प्रकार उसकी रक्षा की ॥ ७ ॥

५८० वृकाय चिज्जसमानाय शक्त-मुत श्रुतं शयवे हूयमाना ।
यावघ्न्यामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः ॥ ८ ॥

५८१ एष स्य कारुर्जरते सूक्तै-रग्रे बुधान उषसां सुमन्मा ।
इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभि-र्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥

[६९]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

५८२ आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान् ॥ १ ॥

५८३ स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा त्रिवन्धुरो मनसा यातु युक्तः ।
विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्रा चिद् याममश्विना दधाना ॥ २ ॥

अर्थ— [५८०] हे अश्विदेवो ! (जसमानाय वृकाय चित्) क्षीण होनेवाले वृकके हितके लिये तुम शक्तिका दान देनेमें (शक्ते) समर्थ हुए, (उत) और (हूयमाना शयवे श्रुतं) बुलानेपर शयुका हित करनेके लिये उसकी प्रार्थना तुमने सुनी थी । (यौ शचीभिः शक्ती) जो तुम दोनों अपनी शक्तियोंसे समर्थ होनेके कारण (स्तर्यं अघ्न्यां) वन्ध्या गायको भी (अपः न) जलके समान (अपिन्वतं) दूध देनेवाली दुधारू बना चुके ॥ ८ ॥

[५८१] (स्यः एषः सुमन्मा कारुः) वह यह उत्तम मननशील कारीगर (उषसां अग्रे बुधानः) उषः कालके पहिले जागृत होकर (सूक्तैः जरते) सूक्तोंसे प्रार्थना करता है । (अघ्न्या पयोभिः इषा तं वर्धत्) गौ दूधसे और अन्नसे उसको बढाती है । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें कल्याणकारक साधनोंसे सदा सुरक्षित रखो ॥ ९ ॥

[६९]

[५८२] (वां हिरण्ययः) तुम्हारा सुवर्णमय (घृतवर्तनिः) घृतको मार्गमें देनेवाला, (पविभिः रुचानः) आरोंसे जगमगता हुआ (इषां वोळ्हा) अन्नोंको पहुंचानेवाला, (वाजिनीवान् नृपतिः) सेनासे युक्त नरेश जैसा (रोदसी बद्बधानः) आकाश और पृथिवीको अपने शब्दसे निनादित करता हुआ (वृषभिः अश्वैः आ यातु) बलिष्ठ घोडोंसे चलाया जानेवाला इधर आ जाय ॥ १ ॥

[५८३] हे (अश्विना, अश्विदेवो ! (कुत्राचित् यामं दधाना) कहीं भी यात्राका आरंभ करते हुए (येन देवयन्तीः विशः गच्छथ) जिसपरसे तुम देवोंकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली प्रजाओंके समीप जाते हो, (सः त्रिबन्धुरः) वह तीन सुन्दर स्तरोंसे युक्त (पञ्च भूमा पप्रथानः) पांचोंको विस्तृत स्थान देनेवाला (मनसा युक्तः अभि यातु) मनके इशारेसे चलनेवाला तुम्हारा रथ तुम्हें लेकर यहां आ जावे ॥ २ ॥

भावार्थ— इन अश्विना कुमारोंने क्षीण होनेवाले वृकको भी शक्ति देकर समर्थ बनाया । इन्होंने शयुका हित करनेके लिए उसकी प्रार्थना सुनी । सब तरहकी शक्तियोंसे पूर्ण इन दोनोंने वंध्या गायको भी दुधारु बना दिया ॥ ८ ॥

शिल्पीजन भी उषःकालसे पूर्व उठें और अपने इष्ट देवकी उपासना करें । गाय आदि पशु अपने दूधसे उनका पोषण करें, तथा सभी देवगण भी शिल्पियोंकी रक्षा करें ॥ ९ ॥

इस मंत्रके अर्थसे पता चलता है कि अश्विदेवोंका रथ नाना प्रकारके औषधियोंसे मिश्रित घृत तथा पौष्टिक अन्नोंसे तथा चिकित्साके साधनोंसे भरपूर भरा था । अश्विदेव इस रथमें बैठकर स्थान स्थानपर जाते थे और उनकी चिकित्सा करके उन्हें पौष्टिक अन्न देते थे । वे स्वयं रोगियोंके घर जाते थे और उनकी चिकित्सा करते थे । इसी तरह देशके वैद्य रोगियोंके पास जाकर उनकी चिकित्सा करें और देशका स्वास्थ्य उत्तम रखें ॥ १ ॥

ये अश्विदेव अपनी यात्राका प्रारंभ करते हुए जब प्रजाओंके समीप जाना चाहते हैं, तब उनका वह सुन्दर रथ मनके इशारेसे चलता है और वे जहां जाना चाहते हैं ॥ २ ॥

×

५८४ स्वश्वा यशसा यातमर्वाग् दस्रा निधिं मधुमन्तं पिबाथः ।
वि वां रथो वध्वा३ यादमानो ऽन्तान् दिवो बाधते वर्तनिभ्याम् ॥ ३ ॥
५८५ युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् ।
यद् देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो गात् ॥ ४ ॥
५८६ यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ॥ ५ ॥
५८७ नरा गौरेव विद्युतं तृषाणा ऽस्माकमद्य सवनोप यातम् ।
पुरुत्रा हि वां मतिभिर्हवन्ते मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः ॥ ६ ॥

अर्थ-- [५८४] हे (दस्रा) शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवो ! (स्वश्वा यशसा अर्वाक् आ यातं) उत्तम घोडोंको जोतकर यशके साथ हमारे समीप आओ । यहां आकर (मधुमन्तं निधिं पिबाथः) मीठा सोमरस पीओ । (वां रथः वध्वा यादमानः) आपका रथ वधुके साथ आगे बढता है और (वर्तनिभ्यां दिवः अन्तान् विबाधते) पहियोंसे आकाशके अन्तिम विभागोंको विशेष रूपसे आन्दोलित करता है ॥ ३ ॥

[५८५] (सूरः दुहिता योषा) सूर्यकी पुत्री तरुणी उषा (परि तक्म्यायां) रात्रीके समय (युवोः श्रियं परि अवृणीत) तुम्हारी शोभाको बढानेवाले रथपर बैठ गई । (यत् देवयन्तं शचीभिः अवथः) देवोंको चाहनेवालेको अपनी शक्तियोंसे तुम सुरक्षित रखते हैं ॥ ४ ॥

[५८६] हे (रथिरा) रथमें बैठनेवाले वीरो ! (यः वां स्यः रथः) जो तुम्हारा वह रथ (युजानः वर्तिः परियाति) घोडोंके साथ जोतनेपर मार्गसे घरको पहुंचता है, (तेन) उस रथसे, हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (उषसः व्युष्टौ) उषाके प्रकट होनेपर (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (नः शं योः नि वहतं) हमारे लिये शान्तिकी प्राप्ति और दुःखसे वियोग कराओ ॥ ५ ॥

[५८७] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (अद्य अस्माकं सवना उपयातं) आज हमारे यज्ञके पास आ जाओ । (तृषाणा विद्युतं गौरा इव) और प्याससे तुम दोनों चमकनेवाले सोमरसको गौर मृगके तुल्य जल्दी जल्दी पी जाओ । (वां पुरुत्रा हि) तुम दोनोंको सचमुच अनेक स्थानोंपर (मतिभिः हवन्ते) बुद्धिपूर्वक बुलाते हैं । (अन्ये देवयन्तः) दूसरे देव बननेकी इच्छा करनेवाले लोग (वां मा नियमन्) आपको वहीं न रोक रखें ॥ ६ ॥

भावार्थ-- शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेव यशस्वी हैं और अपने रथमें उत्तम घोडोंको जोडकर प्रजाओंके पास जाते हैं और जाकर प्रेमपूर्वक मधुर रस पीते हैं ॥ ३ ॥

जो स्वयं देव बननेकी इच्छा करनेवाला है, उसे "देवयन्" कहते हैं । देवत्व गुणोंको अपने अन्दर धारण करनेकी इच्छा करनेवाला । नरसे नारायण बननेकी इच्छा करनेवाला । इस तरह अपनी उन्नति चाहनेवाले पुरुषकी अश्विदेव अपनी अनेक शक्तियोंसे सुरक्षा करते हैं । उन्नतिके लिए प्रयत्न करनेवालेकी सुरक्षा जिस तरह होती है, वैसी सुरक्षा अपनी उन्नतिके लिए प्रयत्न न करनेवालेकी नहीं होती ॥ ४ ॥

हे रथी अश्विदेवो ! घोडोंसे सम्पन्न रथ जिस तरह उत्तम मार्गसे तुम्हें तुम्हारे घर पहुंचाता है, उसी तरह उस रथसे प्रातःकाल हमें दुःखोंसे दूर करके सुख प्रदान करनेके लिए आओ ॥ ५ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम दोनों हमारे यज्ञमें आकर हमारे द्वारा दिए गए सोमरसको पीओ । तुम्हें बुलानेवाले अनेक हैं, वे बुलानेवाले सब देव बननेकी इच्छा करते हैं, इसलिए वे तुम दोनोंको अपने पास ही न रोक रखें ॥ ६ ॥

५८८ युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्रिधानैः।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभि र्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ॥ ७ ॥

५८९ नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

[७०]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप्)

५९० आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत् स्थानमवाचि वां पृथिव्याम् ।
अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्था दा यत् सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम् ॥ १ ॥

५९१ सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठा ऽतापि घर्मो मनुषो दुरोणे ।
यो वां समुद्रान् त्सरितः पिपर्त्ये तग्वा चिन्न सुयुजा युजानः ॥ २ ॥

अर्थ— [५८८] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (समुद्रे अवविद्धं भुज्युं) समुद्रमें गिरे हुए भुज्युको (युवं) तुम दोनों (अस्रिधानैः अश्रमैः अव्यथिभिः) क्षीण न होनेवाले, जिनमें श्रम नहीं होते और जिनमें बैठनेसे कष्ट नहीं होते ऐसे (पतत्रिभिः) पक्षीके समान उडनेवाले विमानोंसे और (दंसनाभिः पारयन्ता) क्रियाओंसे पार करनेवाले (अर्णसः उत् ऊहथुः) समुद्रके जलसे ऊपर उठाकर पहुंचा चुके ॥ ७ ॥

[५८९] हे (युवाना अश्विना) तरुण अश्विदेवो ! (मे हवं आ शृणुतं) मेरी प्रार्थना सुनो । (इरावत् वर्तिः यासिष्टं) जिसमें अन्न है, उसी घरमें जाओ । (रत्नानि धत्त) रत्नोंको धारण करो, (सूरीन् जरतं) विद्वानोंकी सराहना करो । स्वस्तिभिः यूयं सदा नः पातं) कल्याण करनेके साधनोंसे सदा हमारी सुरक्षा करो ॥ ८ ॥

[७०]

[५९०] हे (विश्ववारा अश्विना) सबसे श्रेष्ठ अश्विदेवो ! (पृथिव्यां वां तत् स्थानं) पृथिवीपर तुम दोनोंका वह स्थान (प्र अवाचि) बडा प्रशंसित हुआ है । वहांसे (नः आगतं) हमारे पास आओ और (यत् ध्रुवसे योनिं न आ सेदथुः) इस आसनपर स्थिर बैठनेके लिये, अपने निज स्थानपर बैठनेके समान, तुम बैठो, वह स्थान (शुनः पृष्ठः वाजी अश्वः न) जिसकी पीठपर बैठना सुखदायी हो ऐसे बलिष्ठ घोडेके समान यहां (अस्थात्) रखा है । यहां बिछाया है ॥ १ ॥

[५९१] (सा चनिष्ठा सुमतिः) वह वर्णनीय अच्छी बुद्धि (वां सिषक्ति) आपकी सेवा करती है । (मनुषः दुरोणे) मानवके घरमें (घर्मः अतापि) अग्नि प्रदीप्त हुआ है । (यः सुयुजा युजानः) जो उत्तम जोते जानेवाले (एतग्वा चित्) घोडेके समान (वां) तुम्हारे समीप जाता है और (समुद्रान् सरितः पिपर्ति) समुद्रों और नदियोंको पूर्ण करता है ॥ २ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! भुज्यु समुद्रमें गिर पडा था, तब अश्विदेवोंने उसे ऊपर उठाया और अपने पक्षी सदृश विमानोंमें उसे बिठलाकर समुद्र पार कराया और उसके घर पहुंचाया ॥ ७ ॥

जहां पर्याप्त अन्न हो और जहां दाता हों, वहीं जाना चाहिए । मनुष्य स्वयं रत्नोंको धारण करे और दूसरोंको भी दे। सच्चे ज्ञानियोंकी प्रशंसा करनी चाहिए और कल्याणकारी साधनोंसे अपनी सुरक्षा करनी चाहिए ॥ ८ ॥

हे अश्विनौ देवो ! पृथ्वीपर यह स्थान तुम्हारे लिए बहुत प्रशंसित है । तुम हमारे पास आओ और इस स्थानपर बैठो ॥ १ ॥

याजकोंकी उत्तम बुद्धि स्तोत्रपाठसे अश्विदेवोंकी सेवा कर रही है । अग्नि प्रदीप्त होकर यज्ञ शुरू हुआ है । यह यज्ञ अश्विदेवोंके पास हवि पहुंचाता है और वे सन्तुष्ट हुए देव वृष्टि द्वारा नदियोंको भर देते हैं, और वे नदियां समुद्रको भरती हैं ॥ २ ॥

५९२ यानि स्थानांन्यश्विना दधाथें दिवो यह्वीष्वोषंधीषु विक्षु ।
नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्ते—षं जनाय दाशुषे वहन्ता ॥ ३ ॥

५९३ चनिष्टं देवा ओषंधीष्वप्सु यद् योग्या अश्नवैथे ऋषीणाम् ।
पुरूणि रत्ना दधंतौ न्य१स्मे अनु पूर्वाणि चख्यथुर्युगानि ॥ ४ ॥

५९४ शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्य—भि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम् ।
प्रति प्र यातं वरमा जनाया—ऽस्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥ ५ ॥

५९५ यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान् कृतब्रह्मा समर्यो३ भवाति ।
उप प्र यातं वरमा वसिष्ठ—मिमा ब्रह्माण्यृच्यन्ते युवभ्याम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [५९२] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (दाशुषे जनाय) दानी पुरुषके लिये तुम (इषं वहन्ता) अन्न पहुंचाते हैं। और (पर्वतस्य मूर्धनि) पहाडके शिखरपर (नि सदन्ता) बैठते हैं। (दिवः यह्वीषु ओषधीषु) द्युलोककी बडी सोम आदि औषधियोंमें तथा (विक्षु) प्रजाजनोंमें (यानि स्थानानि दधाथे) यज्ञ स्थानोंका धारण करते हैं ॥ ३ ॥

[५९३] हे (देवा) अश्विदेवो ! (यत् ऋषीणां योग्या) जो ऋषियोंके योग्य अन्न (अश्नवैथे) तुम प्राप्त करते हो, वह (ओषधीषु अप्सु चनिष्टं) औषधियोंमें जलमें सेवनीय अन्न (अस्मे) हमें दो। और (पुरूणि रत्नानि नि दधतौ) अनेक रत्न भी हमें दो, तथा (पूर्वाणि युगानि) पूर्व युगोंके समान इन युगोंको (अनुचख्यथुः) अनुकूल दीखने योग्य बना दो ॥ ४ ॥

[५९४] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (ऋषीणां पुरूणि ब्रह्माणि) ऋषियोंके बहुतसे स्तोत्र (शुश्रुवांसः चित्) सुनते हुए (अभि चक्षाते) तुम सबका निरीक्षण करते हो। तथा (वरं प्रति आ प्रयातं) श्रेष्ठ मनुष्यके प्रति जाते हो। (अस्मे जनाय) इस मनुष्यके लिये (वां सुमतिः) तुम्हारी बुद्धि (चनिष्ठा अस्तु) अन्न देनेवाली हो ॥ ५ ॥

[५९५] हे (नासत्या) सत्यपालक अश्विदेवो ! (वां यः यज्ञः हविष्मान्) तुम्हारा जो यज्ञ हविष्यान्नसे युक्त है, (कृतब्रह्मः समर्यः भवाति) स्तोत्र निर्माण करके जिसने मनुष्योंको इकट्ठा किया है। उस (वरं वसिष्ठं) श्रेष्ठ जनोंको बसानेवाले यज्ञ कार्यके (उप प्र आ यातं) समीप तुम जाते हैं क्यों कि (युवभ्यां इमा ब्रह्माणि ऋच्यन्ते) तुम्हारे वर्णन करनेके लिये ही ये स्तोत्र होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— अश्विनीकुमार दानी पुरुषके लिए अन्न पहुंचाते हैं और पहाडके शिखरपर बैठते हैं। पर्वत शिखरपर सोम आदि औषधियां होती हैं। लोग उनको लाकर उनसे यज्ञ करते हैं। अश्विदेव पर्वत-शिखरपर जाते हैं, उन औषधियोंको लाते और सुख पहुंचाते हैं ॥ ३ ॥

अश्विदेव जो अन्न प्रदान करते हैं, वह अन्न ऋषियोंके खानेके योग्य तथा औषधियों और जलसे बननेवाला है। इन वर्णनोंसे मालूम पडता है, कि शाक ही भोजन है, मांस नहीं ॥ ४ ॥

हे देवो ! ऋषियोंके द्वारा गाये जानेवाले बहुतसे स्तोत्र सुनते हुए तुम सबका निरीक्षण करते हो तथा श्रेष्ठ मनुष्यके प्रति जाते हो। ऐसे श्रेष्ठ मनुष्यके लिए तुम्हारी बुद्धि अन्न देनेवाली हो ॥ ५ ॥

यज्ञोंमें अश्विदेवोंका वर्णन किया जाता है, उन स्तोत्रोंको पढकर यज्ञ होते हैं। यज्ञोंसे मानवोंका संघटन होता है। श्रेष्ठ पुरुषोंको बसाया जाता है, ग्रामोंका निर्माण होता है, मानवोंका परस्पर व्यवहार होता है। इस तरह यज्ञ उन्नतिके कारण बनते हैं ॥ ६ ॥

५९६ इयं मनीषा इयमश्विना गी- रिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[७१]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप्)

५९७ अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीररुषाय पन्थाम् ।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद् युयोतम् ॥ १ ॥

५९८ उपायातं दाशुषे मर्त्याय रथेन वाममश्विना वहन्ता ।
युयुतमस्मदनिराममीवां दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः ॥ २ ॥

५९९ आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु ।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वै- राश्विना वसुमन्तं वहेथाम् ॥ ३ ॥

अर्थ— [५९६] (वृषणा अश्विना) हे बलवान् अश्विदेवो ! इयं मनीषा) यह हमारी इच्छा है, (इयं गीः) यह हमारी वाणी है, (इमां सुवृक्तिं जुषेथां) इस सुन्दर स्तुतिको तुम स्वीकार करो । क्योंकि (युवयूनि) तुम्हारी कामना पूर्ण करनेवाले (इमा ब्रह्माणि अग्मन्) ये स्तोत्र प्रचलित हुए हैं (नः सदा यूयं स्वस्तिभिः पात) हमारा सदा तुम कल्याण करनेके साधनोंसे संरक्षण करो ॥ ७ ॥

[७१]

[५९७] (नक्) रात्री (स्वसुः उषसः अपाजिहीते) अपनी बहन उषासे दूर हटती हैं । (अरुषाय) लाल रंगवाले सूर्यके लिये (कृष्णीः पन्थां रिणक्ति) काली रात्री मार्ग खुला कर देती है । (अश्वामघा गोमघा वां हुवेम) घोडों और गौओंके रूपमें वैभवको देनेवाले (वां हुवेम) आपको हम बुलाते हैं । (दिवा नक्तं शरुं अस्मत् युयोतं) दिन रात घातक शत्रुको हमसे दूर कर दो ॥ १ ॥

[५९८] हे (माध्वी अश्विना) मीठे स्वभाववाले अश्विदेवो ! (रथेन वामं वहन्ता) रथसे सुन्दर धन वा अन्न लेकर (दाशुषे मर्त्याय उप आयातं) दानी मनुष्यके समीप आओ, (अस्मत् अनिरां-अन् + इरां) हमसे अन्नके अभावको और (अमीवां युयुतं) रोगोंको दूर करो । (नः दिवा नक्तं त्रासीथां) हमारा दिन रात रक्षण करो ॥ २ ॥

[५९९] (अवमस्यां व्युष्टौ) समीपकी उषाका उदय होनेपर (वृषणः सुम्नायवः) बलवान् और सुखसे चलनेवाले घोडे (वां रथं) तुम्हारे रथको हमारे समीप (आवर्तयन्तु) ले आवें । हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (ऋत-युग्भिः अश्वैः) सरलतापूर्वक जोते जानेवाले घोडोंसे (स्यूमगभस्तिं वसुमन्तं) तेजस्वी तथा धनवाले रथको (आ वहेथां) इधर ले आओ ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे बलवान् अश्विदेवो ! यह हमारी इच्छा है, यह हमारी वाणी है । इस सुन्दर स्तुतिको तुम स्वीकार करो, क्योंकि ये स्तोत्र तुम्हारी कामना पूर्ण करनेवाले हैं ॥ ७ ॥

उषासे रात्री पृथक् होती है । रात्रीसे सूर्यके लिए मार्ग खुल जाता है और वह अन्धकारको दूर करके दिनको प्रवृत्त करता है । गौवों और घोडोंके रूपमें वैभव प्राप्त करनेसे निर्धनता दूर होती है । हम धनी होकर अपने शत्रुओंको दूर करें और निर्भय होकर उन्नत होते रहें ॥ १ ॥

अश्विदेव अपने रथपर उत्तम अन्न और धनको रखकर हमारे पास आयें और हमारे अन्नके अकालको दूर करें और हमसे सब रोगोंको दूर करके हमारा संरक्षण करें ॥ २ ॥

हे देवो ! उषाके उदय होनेपर बलवान् और सुखसे चलनेवाले घोडे तुम्हारे रथको हमारे पास ला आयें तथा हमें तेज तथा धन आदि देकर सुखी करें ॥ ३ ॥

६०० यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्रयामा ।
आ न एना नासत्योप यातमभि यद्वां विश्वप्स्न्यो जिगाति ॥ ४ ॥
६०१ युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः ॥ ५ ॥
६०२ इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[७२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६०३ आ गोमता नासत्या रथेनाऽश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।
अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना ॥ १ ॥

अर्थ— [६००] हे (नृपती नासत्या) मानवोंके रक्षक और पालक अश्विदेवो ! (वां यः रथः वसुमान्) तुम्हारा जो रथ धनयुक्त और (उस्रयामा) प्रातःकालमें जानेवाला है तथा (त्रिवन्धुरः वोळ्हा अस्ति) तीन बन्धनोंवाला और स्थानपर शीघ्र पहुंचनेवाला है, (एना नः उपयातं) इससे हमारे पास तुम आओ, (यत् विश्वप्स्न्यः) जो सर्वत्र जानेवाला रथ (वां जिगाति) तुम्हें शीघ्र यहां लाता है ॥ ४ ॥

[६०१] तुमने (जरसः च्यवानं अमुमुक्त) बुढापेसे च्यवन ऋषिको मुक्त किया, (युवं आशुं अश्वं) तुमने शीघ्रगामी घोडेको (पेदवे निरूहथुः) पेदु नरेशके पास पहुंचा दिया । (अत्रिं तमसः अंहसः निष्पर्तं) अत्रिको अन्धेरेसे और कष्टके स्थानसे दूर किया और (जाहुषं शिथिरे अन्तः) जाहुष नरेशको भ्रष्ट हुए उसके राज्यपर पुनः (नि धातं) तुमने बिठला दिया ॥ ५ ॥

[६०२] (वृषणा अश्विना) हे बलवान् अश्विदेवो ! (इयं मनीषा) यह हमारी इच्छा है, (इयं गीः) यह हमारी वाणी है, (इमां सुवृक्तिं जुषेथां) इस सुन्दर स्तुतिको तुम स्वीकार करो । क्योंकि (युवयूनि) तुम्हारी कामना पूर्ण करनेवाले (इमा ब्रह्माणि अग्मन्) ये स्तोत्र प्रचलित हुए हैं । (नः सदा यूयं स्वस्तिभिः पात) हमारा सदा तुम कल्याण करनेके साधनोंसे संरक्षण करो ॥ ६ ॥

[७२]

[६०३] हे (नासत्या) सत्य पालक अश्विदेवो ! (गोमता अश्वावता) गायों और घोडोंसे युक्त (पुरुश्चन्द्रेण रथेन) तेजस्वी शोभासे युक्त रथसे (आ यातं) यहां आओ । (स्पार्हया श्रिया) स्पृहणीय शोभासे तथा (तन्वा शुभाना) उत्तम शरीरसे शोभायमान होते हुए (वां अभि) तुम्हारी (विश्वाः नियुतः सचन्ते) सब घोडे सेवा करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— अश्विदेव मनुष्योंके रक्षक हैं और सत्यके पालक हैं । उनके रथपर धन रहता है । सबेरे सबेरे उनका रथ सर्वत्र घूमता है । उनका वह रथ हमारे पास आवे और हमारी रक्षा करे ॥ ४ ॥

• अश्विनीकुमारोंने वृद्ध च्यवन ऋषिको तरुण बना दिया । पेदुको उत्तम घोडा दिया, अत्रि ऋषिको अन्धकारपूर्ण तथा कष्टदायक कारावाससे मुक्त किया, जाहुषको उसके राज्यपर फिर बिठलाया ॥ ५ ॥

हे बलवान् अश्विदेवो ! यह हमारी इच्छा है, यह हमारी वाणी है । इस सुन्दर स्तुतिको तुम स्वीकार करो, क्योंकि ये स्तोत्र तुम्हारी कामना पूर्ण करनेवाले हैं ॥ ६ ॥

अश्विदेव सत्यपक्षका रक्षण करते हैं । उनके पास बहुत गायें और घोडे हैं । वे तेजस्वी रथसे आते हैं । उनका शरीर सुन्दर है और उत्तम धन उनके पास है । वे हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

६०४ आ नो॑ दे॒वेभि॒रुप॑ यातम॒र्वाक् स॒जोष॑सा नासत्या॒ रथे॑न ।
यु॒वोर्हि नः॑ स॒ख्या पित्र्या॑णि समा॒नो बन्धु॑रु॒त तस्य॑ वित्तम् ॥ २ ॥
६०५ उदु॒ स्तोमा॑सो अ॒श्विनो॑रबुध्र॒न् जा॒मि ब्रह्मा॑ण्यु॒षस॑श्च दे॒वीः ।
आ॒वि॒वा॑स॒न् रोद॑सी॒ धिष्ण्ये॒मे अच्छा॒ विप्रो॒ नास॑त्या विवक्ति ॥ ३ ॥
६०६ वि चेदु॒च्छन्त्य॑श्विना उ॒षासः॒ प्र वां॒ ब्रह्मा॑णि का॒रवो॑ भरन्ते ।
ऊ॒र्ध्वं भा॒नुं स॑वि॒ता दे॒वो अ॑श्रेद् बृ॒हद॒ग्नयः॑ स॒मिधा॑ जरन्ते ॥ ४ ॥
६०७ आ प॒श्चाता॑न्नास॒त्या पु॒रस्ता॒दाश्वि॑ना यातमध॒रादुद॑क्तात् ।
आ वि॒श्वतः॒ पाञ्च॑जन्येन रा॒या यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥ ५ ॥

अर्थ— [६०४] हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (देवेभिः सजोषसः) देवोंके साथ रहकर (नः अर्वाक्) हमारे पास (रथेन उप आयातं) रथसे आओ। (नः युवोः हि) हमारी तुम्हारे साथ (पित्र्याणि सख्या) पितृपरंपरासे मित्रता है। (उत बन्धुः समानः) और तुम्हारा बन्धुभाव भी समान है, (तस्य वित्तं) उसको तुम जानते हैं ॥ २ ॥

[६०५] अश्विनोः स्तोमासः) अश्विदेवोंके स्तोत्र (देवीः उषसः) तेजस्वी उषाओंके (जामि ब्रह्माणि च) बन्धुवत् स्तोत्रोंको भी (उत अबुध्रन्) जाग्रत कर चुके हैं। (इमे धिष्ण्ये रोदसी) ये बुद्धिमान् द्यु और पृथिवि लोकोंकी (आविवासन् विप्रः) परिचर्या करता हुआ ज्ञानी ऋषि (नासत्या अच्छ विवक्ति) सत्यपालक अश्विदेवोंका उत्तम वर्णन करता है ॥ ३ ॥

[६०६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (उषासः वि उच्छन्ति चेत्) उषाएँ अन्धेरा हटा दें तब (वां ब्रह्माणि कारवः प्रभरन्ते) आपके स्तोत्र स्तुतिकर्ता भर देते हैं, गाते हैं। (देवः सविता ऊर्ध्वं भानुं अश्रेत्) सविता देव ऊंचे स्थानमें जाता हुआ प्रकाशका आश्रय करता है। तब (समिधा अग्नयः बृहत् जरन्ते) समिधासे अग्नि बहुत प्रशंसित- प्रदीप्त होते हैं ॥ ४ ॥

[६०७] हे (नासत्या अश्विना) सत्यपालक अश्विदेवो ! (अधरात् उदक्तात्) नीचेसे, ऊपरसे, (पश्चात् पुरस्तात्) पीछेसे अथवा आगेसे (आयातं) आओ। (पाञ्चजन्येन राया) पञ्चजनोंका हित करनेवाले धनके साथ (विश्वतः आयातं) सब ओरसे आओ। (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम हमारा कल्याणकारक साधनोंसे सदा संरक्षण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुम देवोंके साथ रहकर भी हमारे पास आओ। हमारी तुम्हारी मैत्री अनन्तकालसे चली आ रही है साथ ही हम तुममें परस्पर बंधुभाव भी है, उसे तुम जानते हो ॥ २ ॥

अश्विदेवोंके स्तोत्र उषःकालमें गाए जाते हैं, जिससे बन्धुबांधव जाग्रत होते हैं और पश्चात् यज्ञका प्रारंभ होता है ॥ ३ ॥

हे अश्विदेवो ! यदि उषायें अन्धेरेको दूर कर दें, तो स्तुति करनेवाले आपकी स्तुति करें। प्रातः उदय होनेवाला सविता ज्यों ज्यों आकाशमें ऊपर चढता जाता है, त्यों त्यों उसका प्रकाश भी तीक्ष्ण होता जाता है, तथा उसके साथ ही समिधा आदिसे हवनकी शुरुआत हो जाती है ॥ ४ ॥

हे देवो ! तुम दोनों नीचेसे, ऊपरसे, पीछेसे आगेसे अर्थात् हर तरफसे हमारे पास आओ तथा अपने कल्याणकारी साधनोंसे हमारी सदा रक्षा किया करो ॥ ५ ॥

[७३]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६०८ अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः ।
पुरुदंसा पुरुतमा पुराजा ऽमर्त्या हवते अश्विना गीः ॥ १ ॥

६०९ न्यु प्रियो मनुषः सादि होता नासत्या यो यजते वन्दते च ।
अश्नीतं मध्वो अश्विना उपाक आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान् ॥ २ ॥

६१० अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ॥ ३ ॥

६११ उप त्या वह्नी गमतो विशं नो रक्षोहणा संभृता वीळुपाणी ।
समन्धांस्यग्मत मत्सराणि मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन ॥ ४ ॥

---

[७३]

अर्थ— [६०८] (देवयन्तः स्तोमं प्रतिदधानाः) देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करते हुए स्तोत्रका धारण करते हैं, (अस्य तमसः पारं अतारिष्म) इस अन्धेरेके पार हम चले गये हैं। (गीः) हमारी वाणी (पुरु-दंसरा पुरु-तमा) बहुत कार्य करनेवाले और बडे (पुरा-जा अमर्त्या अश्विना) पूर्वकालसे प्रसिद्ध अमर अश्विदेवोंको (हवते) बुलाती है। इनका वर्णन हमारी वाणी करती है ॥ १ ॥

[६०९] हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (यः यजते वन्दते च) जो यज्ञ करता है और प्रणाम करता है। ऐसा वह (होता मनुषः प्रियः नि सादि) होता मनुष्योंमें प्रिय होकर यज्ञ स्थानमें बैठ गया है। तुम दोनों (उपाके मध्वः अश्नीत) समीप जाकर मधुर सोमरस पीओ (विदथेषु प्रयस्वान्) यज्ञोंमें अन्न साथ लेकर मैं (वां आवोचे) आप दोनोंकी स्तुति करता हूं ॥ २ ॥

[६१०] हे (वृषणा) बलवान् अश्विदेवो ! (इमां सुवृक्तिं जुषेथां) इस स्तुतिका सेवन करो। (त्वां प्रति प्रेषितः) तुम्हारी ओर भेजा हुआ (जरमानः वसिष्ठः) स्तुति करनेवाला वसिष्ठ ऋषि (श्रुष्टीवा इव) शीघ्रगामी दूतकी तरह तुम्हें (स्तोमैः अबोधि) स्तोत्रपाठोंसे जगा चुका है। (पथां उराणाः यज्ञं अहेम) मार्गोंका अनुसरण करनेवाले हम अब यज्ञको संपन्न करते हैं ॥ ३ ॥

[६११] (त्या वह्नी वीळुपाणी) वे ढोनेवाले सुदृढ हाथोंसे युक्त (रक्षो-हणा संभृता) राक्षसोंका वध करनेवाले और धनको लानेवाले अश्विदेव (नः विशं उपगमतः) हमारी प्रजाकी ओर आते हैं। और अब (मत्सराणि अन्धांसि सं अग्मत) आनंद देनेवाले सोमरस मिलाये गये हैं इसलिये तुम (नः मा मर्धिष्टं) हमारा कष्ट न बढाओ और शीघ्र (शिवेन आ गतं) हितकारक ढंगसे इधर आओ और सोमरस पीओ ॥ ४ ॥

भावार्थ— हम देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं। रात्रीके बीत जानेसे हम अन्धेरेको पार कर गए हैं और प्रकाशके उदय होनेपर हमारी वाणी अश्विनी कुमारोंकी स्तुतिमें संलग्न है ॥ १ ॥

यज्ञ शुरु हुआ। मानवोंका हितकर्ता याजक यज्ञमें प्रवृत्त हुआ है। अश्विदेवोंको रख दिया गया है और हविर्द्रव्य लेकर स्तोता लोग स्तोत्र पाठपूर्वक यज्ञ करते हैं ॥ २ ॥

हे बलवान् अश्विदेवो ! इस स्तुतिका तुम सेवन करो। तुम्हारी ओरसे भेजा गया स्तोता शीघ्रगामी दूतकी तरह तुम्हें अपने स्तोत्रपाठोंसे जगा चुका है। उत्तम मार्गपर चलनेवाले हम यज्ञको सम्पन्न करते हैं ॥ ३ ॥

सुदृढ हाथोंसे युक्त, राक्षसोंका वध करके धनको लानेवाले अश्विदेव हमारी प्रजाकी ओर आते हैं। हे देवो ! हम तुम्हें आनंद देनेवाले सोमरस प्रदान करते हैं, इसलिए तुम हमें कष्ट मत दो तथा हितकारक साधनोंसे सम्पन्न होकर ही हमारे पास आओ ॥ ४ ॥

६१२ आ प॒श्चाता॑न्नासत्या पु॒रस्ता॒दाश्वि॑ना यातमध॒रादुद॑क्तात् ।
आ वि॒श्वतः॒ पाञ्च॑जन्येन रा॒या यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ५ ॥

[७४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अश्विनौ । छन्दः प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

६१३ इ॒मा उ॑ वां॒ दिवि॑ष्टय उ॒स्रा ह॑वन्ते अश्विना ।
अ॒यं वा॑म॒ह्वेऽव॑से शचीवसू॒ विशं॑विशं॒ हि गच्छ॑थः ॥ १ ॥

६१४ यु॒वं चि॒त्रं द॑दथु॒र्भोज॑नं नरा॒ चोदे॑थां सू॒नृता॑वते ।
अ॒र्वाग्रथं॒ सम॑नसा॒ नि य॑च्छतं॒ पिब॑तं सो॒म्यं मधु॑ ॥ २ ॥

६१५ आ या॑त॒मुप॑ भूषतं॒ मध्वः॑ पिबतमश्विना ।
दु॒ग्धं पयो॑ वृषणा जेन्यावसू॒ मा नो॑ मर्धिष्ट॒मा ग॑तम् ॥ ३ ॥

अर्थ— [६१२] हे (नासत्या अश्विना) हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! तुम (अधरात् उदक्तात्) नीचेसे, ऊपरसे (पश्चात् पुरस्तात्) पीछेसे और आगेसे (आयातं) आओ। (पांचजन्येन राया) पंचजनोंका हित करनेवाले धनके साथ (विश्वतः आयातं) सब ओरसे आओ। (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम हमारी कल्याणकारक साधनोंसे सदा रक्षा करो ॥ ५ ॥

[७४]

[६१३] हे (वाजिनी-वसू उस्रा) शक्तिरूप धनसे युक्त और प्रकाशमान अश्विदेवो ! (इमाः दिविष्टयः) ये द्युलोकमें रहनेकी इच्छा करनेवाले भक्त (वां हवन्ते) तुम्हें बुलाते हैं। (अवसे अयं वां अह्वे) अपनी सुरक्षाके लिये यह मैं तुम्हें बुलाता हूं। क्योंकि (विशं विशं हि गच्छथः) तुम दोनों प्रत्येक प्रजाजनके पास जाते हो ॥ १ ॥

[६१४] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (युवं चित्रं भोजनं) तुम दोनों विलक्षण प्रकारका बलवर्धक भोजन (ददथुः) देते हो। और उसे (सूनृतावते चोदेथां) सत्य भाषण करनेवाले मनुष्यको प्रेरित करो तथा (समनसा रथं अर्वाक् नियच्छतं) एक मनसे अपने रथको हमारे समीप रोककर रखो और यहां (सोम्यं मधु पिबतं) सोमका मधुर रस पीओ ॥ २ ॥

[६१५] हे (जेन्या-वसू वृषणा) धनोंको जीतनेवाले बलवान् अश्विदेवो ! (आ यातं) इधर आओ, (उप भूषतं) अलंकृत होओ। (मध्वः पिबतं) मधुर रसका पान करो। (नः मा मर्धिष्टं) हमें कष्ट न दो, (आ गतं) आओ और (पयः दुग्धं) दूधका दोहन किया है, उसका सेवन करो ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे देवो ! तुम दोनों नीचेसे, ऊपरसे, पीछेसे, आगेसे अर्थात् हर तरफसे हमारे पास आओ तथा अपने कल्याणकारी साधनोंसे हमारी सदा रक्षा किया करो ॥ ५ ॥

अश्विनीकुमार शक्तिरूप धनसे युक्त होनेके कारण तेजस्वी हैं। तेजोयुक्त लोकोंमें रहनेकी इच्छा करनेवाले भक्त इन देवोंको बुलाते हैं। मैं भी अपनी सुरक्षाके लिए इन देवोंको बुलाता हूं। मनुष्य शक्तिसे सम्पन्न बने, क्योंकि शक्ति ही धन है ॥ १ ॥

उत्तम मार्गसे ले जानेवाले अश्विनीकुमार बलवर्धक भोजन देते हैं, तथा मनुष्योंको सत्यभाषणकी तरफ प्रेरित करते हैं। इसी प्रकार नेता अपने अनुयायियोंको विविध प्रकारका पौष्टिक अन्न दें, उनका बल बढावें तथा उन्हें सन्मार्गकी ओर प्रेरित करें ॥ २ ॥

हे बलवान् अश्विदेव ! हमारे पास अलंकृत होकर आओ, तथा मधुर रसका पान करो। हमें किसी तरहका कष्ट मत दो। हमने जो दूधका दोहन किया है, उसे पीओ। घरमें जब अतिथि आवे, तब उसे मधुर रस प्रदान करके उसका सत्कार किया जाए, उसे किसी तरहका कष्ट न हो, इस बातकी सावधानी रखी जाए और गौका दोहन करके उसे ताजा दूध दिया जाए ॥ ३ ॥

+

६१६ अश्वा॑सो॒ ये वा॒मुप॑ दा॒शुषो॑ गृ॒हं यु॒वां दीय॑न्ति॒ बिभ्र॑तः ।
म॒क्षू॒युभि॑र्नरा॒ हये॑भिरश्विना॒ ऽऽ दे॑वा यातमस्म॒यू ॥ ४ ॥
६१७ अधा॑ ह॒ यन्तो॑ अ॒श्विना॒ पृक्षः॑ सचन्त सू॒रयः॑ ।
ता यं॑सतो म॒घव॑द्भ्यो ध्रु॒वं यशः॑ छ॒र्दिर॒स्मभ्यं॒ नास॑त्या ॥ ५ ॥
६१८ प्र ये य॒युर॑वृ॒कासो॒ रथा॑ इव नृपा॒तारो॒ जना॑नाम् ।
उ॒त स्वेन॒ शव॑सा शूशुवु॒र्नर॑ उ॒त क्षि॑यन्ति सुक्षि॒तिम् ॥ ६ ॥

[७५]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- उषसः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६१९ व्यु१॒॑षा आ॑वो दिवि॒जा ऋ॒तेना॑ऽऽवि॒ष्कृ॒ण्वा॒ना म॑हि॒मान॒मागा॑त् ।
अप॑ द्रु॒हस्तम॑ आव॒रजु॑ष्ट॒मङ्गि॑रस्तमा प॒थ्या॑ अजीगः ॥ १ ॥

अर्थ— [६१६] (वां ये अश्वासः) आपके जो घोडे (बिभ्रतः युवां) रथको धारण करनेवाले तुम्हें (दाशुषः गृहं) दाताके घरतक (उप दीयन्ति) पहुंचा देते हैं। हे (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! तथा (देवा) देवतारूप तुम दोनों (अस्मयू) हमारी ओर आनेकी इच्छा करनेवाले होकर उन (मक्षूयुभिः हयेभिः) शीघ्रगामी घोडोंसे (आयातं) यहां आओ ॥ ४ ॥

[६१७] हे (नासत्या अश्विना) सत्यपालक अश्विदेवो ! (अधा सूरयः) अब विद्वान् लोग (यन्तः पृक्षः सचन्तः) प्रयत्न करनेपर अन्न प्राप्त करते ही हैं। (मघवद्भ्यः अस्मभ्यं) धनिक बने हम लोगोंको (ता) वे तुम दोनों (छर्दिः) उत्तम घर और (ध्रुवं यशः) स्थिर यश (यंसतः) दे दो ॥ ५ ॥

[६१८] (ये जनानां नृपातारः) जो लोगोंके पालक हैं और (अ-वृकासः) क्रूर कर्म करनेवाले नहीं हैं, वे (रथाः इव) रथोंके समान (प्र ययुः) आगे बढते हैं। (उत नरः) तथा वे नेता (स्वेन शवसा) अपने निज बलसे (शूशुवुः) बढते और (उत सुक्षितिं क्षियन्ति) वैसे ही वे अच्छे निवास स्थानमें रहते हैं ॥ ६ ॥

[७५]

[६१९] यह (उषाः दिविजाः वि आवः) उषा अन्तरिक्षमें प्रकट होकर विशेष रीतिसे प्रकाशने लगी है। वह उषा (ऋतेन महिमानं आविष्कृण्वाना) तेजसे अपनी महिमाको प्रकट करती हुई (आ अगात्) आ रही है। वह (द्रुहः अजुष्टं तमः अप आवः) शत्रुओं और अप्रिय अन्धकारको दूर करती है और (अंगिरस्तमा पथ्याः अजीगः) चलनेके मार्गोंको प्रकाशित करती है ॥ १ ॥

भावार्थ— शक्तिशाली घोडे इन अश्विदेवोंको दाताके घरतक पहुंचाते हैं, अतः हे अश्विनौ देवो ! तुम शीघ्रगामी घोडोंसे हमारी तरफ आओ ॥ ४ ॥

प्रयत्न करनेवाले ज्ञानी अन्न तथा भोग प्राप्त करते ही हैं। मनुष्य ज्ञान प्राप्त करे, प्रयत्न करे, धन, अन्न आदि प्राप्त करे। धनवान् होनेपर घर बनावे और स्थायी यश प्राप्त करे ॥ ५ ॥

लोगोंका या प्रजाका पालन करनेवाले क्रूर न हों, जो क्रूर न हों, उन्हें ही प्रजापालनके कार्यमें नियुक्त करना चाहिए। क्रूरतारहित अधिकारी ही प्रगति करते हैं, वे ही उन्नति प्राप्त करते हैं। क्रूरतासे रहित संरक्षक वीर ही अपनी शक्तिसे बढते हैं। उनकी उन्नतिमें कोई रुकावट डरपन नहीं कर सकता। ऐसे ही लोग अपने बलसे उत्तम निवासस्थान प्राप्त करके उसमें आनन्दसे निवास करते हैं ॥ ६ ॥

उषा अन्तरिक्षमें प्रकट होकर विशेष रीतिसे प्रकाशित होने लगती है। वह शत्रुओं और अप्रिय अन्धकारको दूर करती है और मार्गोंको प्रकाशित करती है। दिव्यभावोंवाले मनुष्य अपनी महिमाको प्रकट करते हैं। उषा दिव्य स्त्री है। दिव्य गुणोंके साथ प्रकट हुई है। वह सहज स्वभावसे अपनी महिमाको प्रकट करती है। स्त्रियां भी उषाकी तरह दिव्य गुणवाली हों। वे स्त्रियां अपने प्रभावसे दुष्टोंको दूर करें, अज्ञानान्धकारको दूर करके प्रकाशका मार्ग दिखायें ॥ १ ॥

६२० म॒हे नो॑ अ॒द्य सु॑वि॒ताय॑ बो॒ध्युषो॑ म॒हे सौभ॑गाय॒ प्र य॑न्धि ।
चि॒त्रं र॒यिं य॒शसं॑ धेह्य॒स्मे देवि॒ मर्ते॑षु मानुषि श्रव॒स्युम् ॥ २ ॥
६२१ ए॒ते त्ये भा॒नवो॑ दर्श॒ताया॑श्चि॒त्रा उ॒षसो॑ अ॒मृता॑स॒ आगुः॑ ।
ज॒नय॑न्तो॒ दैव्या॑नि व्र॒तान्या॑पृ॒णन्तो॑ अ॒न्तरि॑क्षा॒ व्य॑स्थुः ॥ ३ ॥
६२२ ए॒षा स्या यु॑जा॒ना प॑रा॒कात् पञ्च॑ क्षि॒तीः परि॑ स॒द्यो जि॑गाति ।
अ॒भि॒पश्य॑न्ती व॒युना॒ जना॑नां दि॒वो दु॑हि॒ता भुव॑नस्य॒ पत्नी॑ ॥ ४ ॥
६२३ वा॒जिनी॑वती॒ सूर्य॑स्य॒ योषा॑ चि॒त्राम॑घा रा॒य ई॑शे॒ वसू॑नाम् ।
ऋषि॑ष्टुता ज॒रय॑न्ती म॒घोन्यु॒षा उ॑च्छति॒ वह्नि॑भिर्गृणा॒ना ॥ ५ ॥

अर्थ— [६२०] (अद्य नः महे सुविताय बोधि) आज हमारे बडे सुखके लिये जागो । हे (उषः) उषा देवी ! हमें (महे सौभगाय प्र यंधि) बडे सौभाग्यका प्रदान कर । तथा (चित्रं यशसं रयिं अस्मे धेहि) विशेष श्रेष्ठ यशसे युक्त धन हमें दे । हे (मानुषि देवि) मनुष्योंका हित करनेवाली देवी ! (मर्तेषु श्रवस्युं) मनुष्योंको अन्न तथा यशवाले पुत्रको दो ॥ २ ॥

[६२१] (दर्शतायाः उषसः) दर्शनीय ऐसी इस उषाके (त्ये एते) वे ये (चित्राः अमृतासः भानवः) विलक्षण अमर प्रकाश किरणें (आ अगुः) फैल रहीं हैं । वे (दैव्यानि व्रतानि जनयन्तः) दिव्य व्रतोंको निर्माण कर रही हैं और (अन्तरिक्षा आपृणन्तः वि अस्थुः) अन्तरिक्षको भरपूर भर देती हैं और विशेष रीतिसे वहां रहती हैं ॥ ३ ॥

[६२२] (एषा स्या) यह वह उषा (पराकात्) दूरसे भी (पञ्च क्षितीः युजाना सद्यः परि जिगाति) पांचों मानवोंको उद्यममें लगाती हुई उनके पास पहुंचती है । (जनानां वयुना अभिपश्यन्ती) लोगोंके कर्मोंको देखती हुई यह (दिवः दुहिता भुवनस्य पत्नी) द्युलोककी पुत्री भुवनोंकी पालना करती है ॥ ४ ॥

[६२३] (वाजिनीवती चित्रामघा) बलवर्धक अन्नसे युक्त तथा विलक्षण धनसे युक्त (सूर्यस्य योषा) सूर्यकी पत्नी (वसूनां रायः ईशे) सब धनोंके ऐश्वर्यकी स्वामीनी है । (ऋषि-स्तुता) ऋषियोंद्वारा प्रशंसित (मघोनी) ऐश्वर्यवती (जरयन्ती) सबकी आयुका नाश करनेवाली (उषाः वह्निभिः गृणाना) उषा अग्नियोंके साथ प्रशंसित होकर (उच्छन्ती) प्रकाशित होती है ॥ ५ ॥

भावार्थ— उषा मनुष्योंका हित करनेवाली है, वह लोगोंको सुख प्राप्त करनेके लिए जाग्रत करती है । विशेष सौभाग्य प्राप्त करनेके लिए लोगोंको प्रयत्नशील बनाती है तथा यश प्रदान करनेवाले धनको प्रदान करती है । स्त्रियां मनुष्योंका हित करनेवाली हों, तथा ऐसे सुपुत्रका निर्माण करें कि जो यशस्वी, धनवान् और अन्न कमानेवाला हो ॥ २ ॥

उषाके अन्तरिक्षमें प्रकट होते ही उसकी रंग बिरंगी सुन्दर किरणें सर्वत्र फैलने लगती हैं, तथा सर्वत्र दिव्य कर्मोंका आरंभ हो जाता है । इसी तरह स्त्रियां सुन्दर हों, दर्शनीय हों, रंग बिरंगे सुन्दर सुन्दर कपडे धारण करें तथा उषाके समान आकर्षक तथा रमणीय बनें । स्त्रियां दिव्य व्रतोंका पालन करें, उत्तम व्रतोंका आचरण करें । इस प्रकार सब लोगोंके हृदयोंमें अपनी श्रेष्ठताका प्रभाव भर दें ॥ ३ ॥

यह उषा स्वयं दूर रहकर सभी जनोंको उनके उनके कार्यमें प्रवृत्त करती है । वह उदय होकर तत्काल सबके पास पहुंचती है और उन्हें सत्कर्मकी प्रेरणा देती है । लोगोंके कामोंको देखती है, सबके कर्मोंका निरीक्षण करती है । उषा दिव्य लोककी पुत्री है और त्रिभुवनका पालन करनेवाली है । इसी तरह गृहिणियां स्वयं उत्तम कर्म करती हुई अन्योंको भी उत्तम कर्म करनेकी प्रेरणा दें ॥ ४ ॥

उषा सूर्यकी स्त्री है, वह अनेक प्रकारके अन्न तथा धन अपने पास रखती है, धनों और वैभवोंका ईशन करती है, स्वामिनी होकर उन सब ऐश्वर्यों पर शासन करती है । वैसी ही स्त्रियां भी तेजस्विनी हों, अनेक तरहके अन्न और धनोंसे युक्त हों । स्वामिनी होकर सब ऐश्वर्यों पर शासन करें । ऐसी स्त्री (ऋषि स्तुता) की प्रशंसा सब ऋषि करते हैं । जो भी स्त्री अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्यका योग्य रीतिसे प्रशासन करती है, उसकी प्रशंसा ऋषि करते हैं ॥ ५ ॥

६२४ प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्तः ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय ॥ ६ ॥
६२५ सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजद् दृळ्हानि दददुस्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त ॥ ७ ॥
६२६ नू नो गोमद् वीरवद् धेहि रत्नमुषो अश्वावत् पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

[७६]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- उषसः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६२७ उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत् ।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुराविरकर्भुवनं विश्वमुषाः ॥ १ ॥

अर्थ— [६२४] (द्युतानां उषसं वहन्तः) तेजस्वीनी उषाको ले जानेवाले (अरुषासः चित्राः अश्वाः प्रति अदृश्रन्) विलक्षण तेजस्वी घोडे दिखाई देते हैं। वह (शुभ्रा) गौरवर्ण उषा (विश्वपिशा रथेन याति) सब प्रकारसे सुन्दर रथसे जाती है । यह (विधते जनाय रत्नं दधाति) प्रयत्नशील मनुष्योंको रत्न अथवा धन देती है ॥ ६ ॥

[६२५] (सत्या महती यजता देवी) सत्य बडी पूजनीय यह उषा देवी (सत्येभिः महद्भिः यजत्रैः देवेभिः) सत्य महान् पूजनीय देवोंके साथ रहकर (दृळ्हानि रुजत्) घने अन्धकारका नाश करती है, (उस्रियाणां ददत्) गौओंके लिये प्रकाश देती है, इस कारण (गावः उषसं प्रति वावशंत) गौवें उषाकी कामना करती हैं ॥ ७ ॥

[६२६] हे (उषः) उषा देवि ! (नु अस्मे) हमें, प्रत्येकके लिये (गोमत् अश्वावत् वीरवत् रत्नं) गौवों, अश्वों और वीर पुत्रोंसे युक्त धन और (पुरुभोजः धेहि) बहुत भोजन सामग्री दो । (नः बर्हिः पुरुषता निदे मा कः) हमारा यज्ञ मानवोंके समाजमें निन्दाके योग्य न होवे । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याण करनेके संरक्षक साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ ८ ॥

[७६]

[६२७] (अमृतं विश्वजन्यं ज्योतिः) अमर और सबके हितकारी तेजका (विश्वानरः सविता देवः उत् अश्रेत्) विश्वके नेता सविता देवने आश्रय लिया है । वह (देवानां चक्षुः क्रत्वा अजनिष्ट) देवोंका आंख सूर्य शुभ कर्मके साथ उदय हुआ है । और (उषाः विश्वं भुवनं आविः अकः) उषाने सब भुवनोंको प्रकाशित किया है ॥ १ ॥

भावार्थ— सूर्य किरणरूपी घोडे रथको चलाते हैं, और उस रथमें बैठकर उषा भ्रमण करनेके लिए जाती है । वह घरमें नहीं रहती अपितु सर्वत्र भ्रमण करती है । स्त्रियां भी राष्ट्रमें सर्वत्र भ्रमण करें । राष्ट्रमें ऐसा प्रबन्ध हो कि जिससे स्त्रियां निर्भय होकर राष्ट्रमें सर्वत्र संचार करें । उत्तम गुणोंवाली स्त्री रानी बनकर राष्ट्रका प्रशासन भी कर सकती है ॥ ६ ॥

उषा देवी अन्य देवोंके साथ रहकर सुदृढ शत्रुओंका नाश करती है । सत्यका पालन करनेवाली उषा सत्यका पालन करनेवाले वीरोंके साथ रहकर सुदृढ बने । यह गौओंको घास आदि देती है । इसलिए गौवें उषाको चाहती हैं । घरकी स्वामिनी सवेरे उठे, गौवोंको घास पानी देवे, गौवोंका प्रेम सम्पादन करे और गौओंका दूध निकाले ॥ ७ ॥

हे उषा देवी ! जिसके साथ गायें, घोडे, वीर पुत्र और भोग रहते हैं, ऐसा धन हमें चाहिए । मानव समाजमें हमारे कर्मोंकी निन्दा न हो । सभी हमारे कर्मकी प्रशंसा करें । मानवताकी दृष्टिसे हमारे कर्म श्रेष्ठसे श्रेष्ठ हों । हमारे कर्मोंसे मानवोंकी उन्नति हो ॥ ८ ॥

विश्वका नेता, सबको चलानेवाला प्रेरक सर्वजन हितकारी अमर तेजका आश्रय करता है । जो नेता है वह सबका प्रेरक, सबको शुभ कर्म करनेकी प्रेरणा देनेवाला, प्रकाशमान् विजिगीषु, कर्तव्यदक्ष तथा सबका हित करनेवाला होकर अमर तेजको धारण करे । सूर्यका प्रकाश मरणको दूर करनेवाला है । सूर्य प्रकाश रोगबीजोंको दूर करके आरोग्य बढाता है और अपमृत्युको दूर करता है । सूर्य विश्वका चक्षु है, क्योंकि इसीके प्रकाशसे सब कुछ प्रकाशित होता है । उषा भी सब जगत्को प्रकाशित करती है ॥ १ ॥

६२८ प्र मे पन्था देवयाना अदृश्र—न्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः ।
अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात् प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः ॥ २ ॥
६२९ तानीदहानि बहुलान्यासन् या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य ।
यतः परि जार इवाचर—न्त्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव ॥ ३ ॥
६३० त इद् देवानां सधमाद आस—न्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः ।
गूळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन् त्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम् ॥ ४ ॥
६३१ समान ऊर्वे अधि संगतासः सं जानते न यतन्ते मिथस्ते ।
ते देवानां न मिनन्ति व्रता—न्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः ॥ ५ ॥

अर्थ— [५२८] (अमर्धन्तः वसुभिः इष्कृतासः) हिंसा न करनेवाले और निवासक तेजोंसे सुसंस्कृत हुए (देवयानाः पन्थाः) देवोंके जाने आनेके मार्ग (मे प्र अदृश्रन्) मैंने देखे हैं। मुझे दिखाई दे रहे हैं (पुरस्तात् उषसः केतुः अभूत् उ) पूर्व दिशामें उषाका ध्वज-प्रकाश-फहरने लगा है। और (प्रतीची) पूर्व दिशामें उषा (हर्म्येभ्यः अधि आ अगात्) बडे प्रासादोंके ऊपर प्रकाशित हो रही है ॥ २ ॥

[६२९] हे (उषः) उषा देवी ! (तानि इत् बहुलानि अहानि आसन्) वे बहुत दिन थे कि (सूर्यस्य उदिता प्राचीना) जो सूर्यके उदयके पूर्व प्रकाशित होते थे। अर्थात् सूर्य उदयके पूर्व उषा बहुत दिन प्रकाशती रहती है। (यतः जारः इव परि आचरन्ती) क्योंकि तू पतिकी सेवा जैसी सती स्त्री करती है वैसी सेवा करती है, परन्तु (पुनः यती इव न) संन्यासिनी स्त्रीके समान पतिसे विमुख कभी तू नहीं होती ॥ ३ ॥

[६३०] जो (ऋतावानः पूर्व्यासः कवयः) सत्यके पालनकर्ता प्राचीन ज्ञानी और (सत्यमन्त्राः पितरः) जिनके मन्त्र सिद्ध किये होते थे, जो सबके पिता जैसे पालक थे, (ते इत् देवानां सधमादः आसन्) वे देवोंके साथ बैठकर सोमरसका आस्वाद लेनेवाले थे, जिन्होंने (गूळ्हं ज्योतिः अनु अविन्दन्) गुप्त सूर्यकी ज्योतीको प्राप्त किया और जिन्होंने (उषसं अजनयन्) उषाको प्रकट किया ॥ ४ ॥

[६३१] (समाने ऊर्वे) एक महत्कार्यके अन्दर वे (अधि सं-गतासः) एक होते हैं, संघटित होते हैं, और (सं जानते) अपना एक विचार करते हैं, तथा (ते मिथः न यतन्ते) वे कभी आपसमें कलह नहीं करते, (ते देवानां व्रतानि न मिनन्ति) वे देवोंके अनुशासनोंका भंग कभी नहीं करते और (अमर्धन्तः) हिंसा न करते हुए (वसुभिः यादमानाः) धनोंके साथ संगत होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— उषाके प्रकट होनेसे दिव्यमार्ग हिंसासे रहित हुए हैं। उषाके आनेके पूर्व चारों ओर अन्धेरा था, पर उषाका प्रकाश फैलते ही अन्धेरा नष्ट हो गया और सारे मार्ग प्रकाशित हो गए। ऐसे प्रकाशित मार्गोंसे देवजन जाते हैं, इसीलिए ऐसे मार्ग धनोंसे भरपूर होते हैं ॥ २ ॥

उषा देवी जारस्त्रीके समान अपने पति सूर्यकी सेवा करती है, संन्यासिनी स्त्री जिस तरह अपने पतिसे विमुख ही रहती है, उसी तरह यह उषा कभी अपने पति सूर्यकी सेवासे विमुख नहीं होती। जैसे एक जार स्त्री अपने जारकी आतुरतासे प्रतीक्षा करती है और उसके आने पर मन लगाकर उसकी सेवा करती है, उसी तरह स्त्री अपने पतिकी आतुरतासे प्रतीक्षा करे और आने पर उसकी सेवा मनसे करे। संन्यासिनीके समान आचरण न करे ॥ ३ ॥

पूर्व समयके ऋषि कवि अर्थात् दूरदर्शी और ज्ञानी होनेके कारण सत्यका पालन करते थे, वे मंत्रोंका साक्षात्कार करनेवाले थे, सबके पूर्वज और पालक थे। इन ऋषियोंको देवोंकी पंक्तिमें बैठकर सोम पीनेका अधिकार था। उन्होंने अपनी ज्योतिषविद्याके आधार पर ग्रहोंकी गतिका भी पता लगा लिया था ॥ ४ ॥

एक महा कार्य करनेके लिए पारस्परिक विद्वेषको हटाकर आपसमें संगठन करना चाहिए तथा एक अनुशासनमें रहना चाहिए। सबके एक विचार और मत हों। आपसमें द्वेष बढे, ऐसा यत्न कभी नहीं करना चाहिए। देवोंके अनुशासन को कभी नहीं तोडना चाहिए, किसीकी हिंसा नहीं करनी चाहिए तथा धनोंको प्राप्त करना चाहिए ॥ ५ ॥

६३२ प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।
गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छो-षः सुजाते प्रथमा जरस्व ॥ ६ ॥
६३३ एषा नेत्री राधसः सूनृताना-मुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः ।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[७७]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- उषसः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६३४ उषो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै ।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणा-मकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि ॥ १ ॥
६३५ विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद् रुशद् वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत् ।
हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृग् गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ॥ २ ॥

अर्थ— [६३२] हे (सुभगे उषः) उत्तम भाग्यवती उषा देवी ! (उषर्बुधः तुष्टुवांसः वसिष्ठाः) उषःकालमें जागनेवाले, स्तुति करनेकी इच्छा करनेवाले वसिष्ठ लोग (त्वा स्तोमैः ईळते) तुम्हारी स्तुति स्तोत्रोंसे करते हैं । (गवां नेत्री वाजपत्नी) गौओंको प्राप्त करनेवाली और अन्नका संरक्षण करनेवाली होकर (नः उच्छ) हमारे लिये प्रकाशित हो । हे (सुजाते) उत्तम जन्मवाली उषा ! (प्रथमा जरस्व) सब देवोंमें पहिली होकर प्रशंसित हो ॥ ६ ॥

[६३३] (एषा उषाः राधसः सूनृतानां नेत्री) यह उषा स्तुति करनेवालेके सद्वचनोंको प्रेरित करनेवाली है । (उच्छन्ती वसिष्ठैः रिभ्यते) यह उषा अन्धकारको दूर करती है और वसिष्ठों द्वारा प्रशंसित होती है । (दीर्घश्रुतं रयिं अस्मे दधाना) बहुत प्रशंसा योग्य धन हमें देती है । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारा सदा उत्तम संरक्षक साधनोंसे संरक्षण करो ॥ ७ ॥

[७७]

[६३४] (युवति योषा न) तरुणी स्त्रीके समान यह उषा (उषो रुरुचे) सूर्यके पहिले प्रकाशित हो रही है । यह (विश्वं जीवं चरायै प्रसुवन्ती) सब जीवोंको सर्वत्र संचार करनेके लिये प्रेरित करती है । (अग्निः मानुषाणां समिधे अभूत्) इस उषःकालमें अग्नि मनुष्योंको प्रदीप्त करना योग्य है । वह प्रदीप्त होकर (तमांसि बाधमाना ज्योतिः अकः) अन्धकारको दूर करनेवाली ज्योतिको प्रकट करता है ॥ १ ॥

[६३५] (विश्वं प्रतीची सप्रथाः उदस्थात्) सब जगतके सन्मुख अत्यंत प्रसिद्ध यह उषा उदित हुई है । और वह (रुशत् शुक्रं वासः बिभ्रती अश्वैत्) तेजस्वी शुभ्र वस्त्र पहन कर बढ रही है । वह (हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृक्) सुवर्णके समान वर्णवाली तथा सुन्दर दर्शनीय तेजवाली (गवां माता) गौओंकी माताके समान हित करनेवाली और (अह्नां नेत्री) दिनोंका सचलन करनेवाली (अरोचि) प्रकाशित हो रही है ॥ २ ॥

भावार्थ— प्रातःकाल उठकर स्तोत्रोंसे स्तुति करनी चाहिए । जो एकत्र निवास करते हैं, वे इकट्ठे होकर स्तोत्र पाठ करें । उषा गौओंको चलानेवाली और अन्नका पालन करनेवाली है । हे उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई स्त्री ! तू सबसे प्रथम ईश्वरकी स्तुति कर ॥ ६ ॥

उषःकाल इतना रमणीय होता है कि उसे देखकर कवियोंको काव्यगानका स्फुरण होता है । यह उषा अन्धकारको दूर करती है, प्रकाश देती है, इसलिए उषा प्रशंसाके योग्य है ॥ ७ ॥

उषा अपने पति सूर्यके पहले ही उठकर अन्धकार दूर करनेका अपना कार्य करने लगती है तथा रंग बिरंगे वर्णोंसे सजती है । उसी तरह तरुणी स्त्री अपने पतिसे पहले उठे और अपने घरकी सफाई करके स्वयं भी रंग बिरंगे परिधान पहन कर पतिके सामने सजीधजी रहे । तब घरके सभी सदस्य मिलकर अग्नि प्रदीप्त करें अर्थात् यज्ञ करें और अन्धकारको दूर करनेवाली ज्योतिको प्रकाशित करें ॥ १ ॥

उषाके समान तरुणी स्त्री सबसे प्रथम उठे । तेजस्वी और चमकीले वस्त्र पहनकर कार्य करनेके लिए आगे बढे । स्त्री उषाके समान सोनेकी तरह ही तेजस्वी वर्णवाली, सुन्दर और दर्शनीय बने । स्त्रियां विशेष कर तरुणियां सजकर अपनी सुन्दरता बढावें । घरके पशु पक्षियोंका संगोपन उसी तरह करें कि जिस तरह मातायें अपने बच्चोंका संगोपन करती हैं । दिनमें घरके जो कार्य करने हों, उनका नेतृत्व करें ॥ २ ॥

६३६ देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम् ।
उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता ॥ ३ ॥
६३७ अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छो-र्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः ।
यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ॥ ४ ॥
६३८ अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाहि-षो देवि प्रतिरन्ती न आयुः ।
इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद्रथवच्च राधः ॥ ५ ॥
६३९ यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धय-न्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।
सास्मासु धा रयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

अर्थ— [६३६] (देवानां चक्षुः वहन्ती) देवोंके तेजको धारण करनेवाली (सुभगा) उत्तम भाग्यवाली (सुदृशीकं श्वेतं अश्वं नयन्ती) सुन्दर श्वेत किरणोंको– सूर्यके अश्वोंको चलानेवाली (उषा रश्मिभिः व्यक्ता अदर्शि) उषा किरणोंसे व्यक्त रूपमें दीखने लगी है। यह उषा (चित्रामघा विश्वं अनु प्रभूता) विलक्षण धनवाली संपूर्ण विश्वके सन्मुख बढ रही है ॥ ३ ॥

[६३७] (अन्तिवामा) हमारे समीप धनको लानेवाली तू (अमित्रं दूरे उच्छ) हमारे शत्रुको दूर करके प्रकाशित हो। तथा (उर्वीं गव्यूतिं नः अभयं कृधि) विस्तृत भूमिको हमारे लिये निर्भय बनाओ। (द्वेषः यवय) शत्रुओंको दूर करो, (वसूनि आभर) धनोंको ला दो। हे (मघोनि) धनयुक्त उषा! (गृणते राधः चोदय) स्तुति करनेवालेके लिये धन भेजो ॥ ४ ॥

[६३८] हे (उषः देवि) उषा देवी! (अस्मे श्रेष्ठेभिः भानुभिः वि भाहि) हमारे हितके लिये श्रेष्ठ किरणोंके साथ प्रकाशित हो। (नः आयुः प्रतिरन्ती) हमारी आयुको बढाओ। हे (विश्ववारे) सबके द्वारा स्वीकार करने योग्य उषा देवी! (नः इषं च) हमारे लिये अन्न (गोमत् अश्ववत् रथवत् च राधः दधती) गौओं घोडों और रथोंके साथ रहनेवाला धन दे दो ॥ ५ ॥

[६३९] हे (दिवः दुहितः सुजाते उषः) द्युलोककी दुहिता रूप उत्तम कुलीन उषा देवि! (यां त्वा वसिष्ठाः मतिभिः वर्धयन्ति) वसिष्ठ लोग स्तोत्रोंसे तुम्हारी स्तुति गाते हैं। (सा अस्मासु बृहन्तं ऋष्वं रयिं धाः) वह तू हमारे पास बडा तेजस्वी धन धारण कर। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तू हमें सदा कल्याण साधक साधनोंसे सुरक्षित रख ॥ ६ ॥

भावार्थ— भाग्यवती उषा देवोंमें प्रकाश फैलाती है, सुन्दर श्वेत अश्वोंको चलाती है, किरणोंसे प्रकट होकर सुन्दर दीखती है तथा अनेक प्रकारके श्रेष्ठ धनोंसे युक्त होकर विश्वके सन्मुख आती है। इसी तरह सौभाग्यवती स्त्री अपने घरमें प्रकाश करे, स्वयं तेजस्विनी होकर रहे। तरुणियां अश्वविद्यामें भी प्रवीण हों। सुशोभित होकर ही बाहर निकलें। वे कभी भी मलिन वस्त्रोंवाली तथा आभूषणोंसे रहित न हों ॥ ३ ॥

यह उषा धनको देनेवाली तथा शत्रुको दूर करनेवाली है। अपने भक्तोंके लिए यह विस्तृत भूमिको निर्भय बनाती है। धनको प्राप्त करना, शत्रुको दूर करना, प्रदेशोंको निर्भय करना, द्वेष करनेवालोंको दूर भगाना, धनसे घर भर देना तथा भक्तोंको धन देना ये मनुष्यके कर्तव्य हैं ॥ ४ ॥

हे उषा देवी! हमारा हित करनेके लिए अपनी श्रेष्ठ किरणोंके साथ प्रकाशित हो। हमारी आयुको बढाओ तथा सबको पशु आदिसे युक्त धन दो ॥ ५ ॥

तेजसे उत्पन्न होकर उत्तम रीतिसे प्रकाशनेवाली उषे! तू हमें प्रदान करनेके लिए तेजस्वी धन धारण कर तथा हमारी सदा कल्याणकारी साधनोंसे रक्षा कर ॥ ६ ॥

[७८]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- उषसः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६४० प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्नूर्ध्वा अस्या अञ्जयो वि श्रयन्ते ।
उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि ॥ १ ॥

६४१ प्रति षीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणन्तः ।
उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरिताप देवी ॥ २ ॥

६४२ एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन् पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः ।
अजीजनन् त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ॥ ३ ॥

६४३ अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम् ।
आस्थाद् रथं स्वधया युज्यमानमा यमश्वासः सुयुजो वहन्ति ॥ ४ ॥

---

[७८]

अर्थ— [६४०] (अस्याः प्रथमाः केतवः प्रति अदृश्रन्) इस उषाके पहिले किरणें दीख रही हैं। (अस्याः अंजयः ऊर्ध्वाः वि श्रयन्ते) इसकी गतिशील किरणें ऊर्ध्व भागमें आश्रय ले रही हैं। हे (उषः) उषा देवि ! (अर्वाचा बृहता ज्योतिष्मता रथेन) हमारी ओर आनेवाले बडे तेजस्वी रथसे (अस्मभ्यं वामं वक्षि) हमें उत्तम धन दे ॥ १ ॥

[६४१] (समिद्धः अग्निः सीं प्रति जरते) प्रदीप्त हुआ अग्नि बढ रहा है। (विप्रासः मतिभिः गृणन्तः प्रति जरन्ते) ज्ञानी लोग स्तोत्रोंसे स्तुति गाते हुए अपने कर्ममें बढ रहे हैं। (उषा देवी) उषा देवी (विश्वा तमांसि दुरिता) सब अन्धकारों और पापोंको (ज्योतिषा अपबाधमाना याति) अपने तेजसे दूर करती हुई आती है ॥ २ ॥

[६४२] (एताः त्याः उषसः) ये वे उषायें (विभातिः ज्योतिः यच्छन्तीः) प्रकाशती और तेजको देती हुईं (पुरस्तात् प्रति अदृश्रन्) हमारे सामने दीख रही हैं। (सूर्यं अग्निं यज्ञं अजीजनन्) सूर्य, अग्नि और यज्ञको प्रकट किया है। (अजुष्टं तमः अपाचीनं अगात्) अप्रिय अन्धकारको दूर किया है ॥ ३ ॥

[६४३] (दिवः दुहिता मघोनी अचेति) द्युलोककी पुत्री धनवाली होकर आती है। (विश्वे विभातीं उषसं पश्यन्ति) सब प्रकाशित होनेवाली उषाको देखते हैं। यह उषा (स्वधया युज्यमानं रथं आ अस्थात्) अन्नसे भरे रथपर चढती है। (यं सुयुजः अश्वासः आ वहन्ति) जिसको उत्तम शिक्षित घोडे इष्ट स्थानतक पहुंचाते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— उषाके आनेसे पूर्वही उषाके आगमनकी सूचक उसकी किरणें दीखने लग जाती हैं और द्युलोकमें प्रकाशित होने लगती हैं। उस समय यह उषा तेजस्वी रथमें बैठकर मनुष्योंके पास जाती है ॥ १ ॥

उषा जिस समय सब अन्धकारों और पापोंको अपने तेजसे दूर करती हुई आती है, उस समय अग्नि प्रदीप्त होकर बढने लगता है और ज्ञानी जनोंके स्तुतियोंके साथ यज्ञरूप कर्म भी प्रारंभ होते हैं ॥ २ ॥

स्वयं प्रकाशित होती हुई तथा दूसरोंको तेजस्वी बनाती हुई उषायें प्रतिदिन प्रकाशित होती हैं। इनके आते ही सूर्य, अग्नि और यज्ञ प्रकट होते हैं और इनसे अप्रिय अन्धकार दूर होता है ॥ ३ ॥

द्युलोकमें उत्पन्न होनेके कारण यह उषा द्युलोककी दुहिता है। इसके प्रकाशित होने पर सब जन उषाको देखते हैं। उषाके पास उत्तम अन्नोंका भण्डार होता है ॥ ४ ॥

६४४ प्रति त्वाद्य सुमनसो बुधन्ता- ऽस्माकासो मघवानो वयं च ।
तिल्विलायध्वमुषसो विभाती- र्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[७६]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- उषसः । छन्दः- त्रिष्टुप्)

६४५ व्युषा आवः पथ्या३ जनानां पञ्च क्षितीर्मानुषीर्बोधयन्ती ।
सुसंदृग्भिरुक्षभिर्भानुमश्रेद् वि सूर्यो रोदसी चक्षसावः ॥ १ ॥

६४६ व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तून् विशो न युक्ता उषसो यतन्ते ।
सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू ॥ २ ॥

६४७ अभूदुषा इन्द्रतमा मघो- न्यजीजनत् सुविताय श्रवांसि ।
वि दिवो देवी दुहिता दधा- त्यङ्गिरस्तमा सुकृते वसूनि ॥ ३ ॥

अर्थ— [६४४] (त्वा अद्य) तुझे आज (अस्माकासः मघवानः सुमनसः) हमारे धनी और बुद्धिमान पुरुष तथा (वयं च) हम सब (प्रतिबुधंत) जानते हैं, तेरा वर्णन करते हैं । हे (उषसः) उषाओ ! (विभातीः तिल्विलायध्वं) तू प्रकाशित होकर जगत्को स्नेहयुक्त कर । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तू सदा हमको कल्याणपूर्ण साधनोंसे सुरक्षित कर ॥ ५ ॥

[७६]

[६४५] (जनानां पथ्या उषाः वि आवः) लोगोंके लिये हितकारिणी उषा विशेष रीतिसे प्रकट हुई है । वह (मानुषीः पञ्च क्षितीः बोधयन्ती) मानवोंके पांचों लोगोंको जगाती है । वह (सुसंदृग्भिः उक्षभिः भानुं अश्रेत्) सुन्दर गौओंके साथ तेजका आश्रय करती है । (सूर्यः रोदसी चक्षसा वि आवः) सूर्य भी अपने तेजसे द्यावा पृथिवीको भर देता है ॥ १ ॥

[६४६] (उषसः अक्तून् दिवः अन्तेषु व्यञ्जते) उषाएं अपने तेजोंको द्युलोकके अन्तिम प्रदेशतक फैलाती है । (युक्ताः विशः न यतन्ते) संघटित प्रजाजनोंकी तरह वे उषाएं अन्धकारके नाश करनेके लिये यत्न करती हैं । हे (उषः) उषा देवी ! (ते गावः तमः सं आ वर्तयन्ति) तेरी किरणें अन्धकारका नाश करती हैं । (सूर्यः इव बाहू ज्योतिः यच्छन्ति) सूर्य अपनी बाहूओं किरणोंको जिस तरह फैलाता है, उस तरह उषाएं अपने तेजको फैलाती हैं ॥ २ ॥

[६४७] (इन्द्रतमा मघोनी उषा अभूत्) श्रेष्ठ स्वामिनी ऐश्वर्यवाली उषा प्रकट हुई है । (सुविताय श्रवांसि अजीजनत्) सबके कल्याणके लिये उसने अन्नोंका निर्माण किया है । (दिवः दुहिता देवी) द्युलोककी पुत्री उषा देवी (अंगिरस्तमा) अंगारके समान तेजस्विनी होकर (सुकृते वसूनि वि दधाति) सत्कर्म करनेवालेके लिये धनोंका प्रदान करती है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे उषे ! हमारे धनी और बुद्धिमान पुरुष तथा हम भी तेरा वर्णन करते हैं । तू प्रकाशित होकर जगत्को स्नेहयुक्त कर तथा हमारी रक्षा कर ॥ ५ ॥

लोगोंका हित करती हुई तथा सबको जागृत करती हुई उषा उदय होती है । लोगोंके लिए हितकर कर्म ही करने चाहिए, सभी मानवोंको ज्ञान देना चाहिए । प्रकाशका आश्रय करना चाहिए ॥ १ ॥

जिस तरह सूर्य और उषा अपने प्रकाशसे जगत्के अन्धकारका नाश करते हैं, उस तरह पुरुष और स्त्री आलस्य छोडकर अपने ज्ञान द्वारा लोगोंके अज्ञानको दूर करें । ज्ञानका प्रकाश करें ॥ २ ॥

उत्तम शासकको इन्द्र कहते हैं । उत्तम रीतिसे शासन करनेके कारण उषाको ' इन्द्रतमा ' कहा है । उषाकी तरह स्त्रियां भी घरका शासन प्रबन्ध उत्तमसे उत्तम रीतिसे करनेवाली हों । लोगोंके कल्याणके लिए अन्नोंको सिद्ध करें तथा उत्तम कर्म करनेवालेको उसके कर्मके अनुसार धन देवें ॥ ३ ॥

६४८ तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत् स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना ।
या त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेण वि दृळ्हस्य दुरो अद्रेरौर्णोः ॥ ४ ॥
६४९ देवंदेवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्र्यक् सूनृता ईरयन्ती ।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[८०]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- उषसः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६५० प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन् ।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥
६५१ एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि ।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत् सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥ २ ॥

अर्थ— [६४८] हे (उषः) उषा देवी ! (यावत् राधः स्तोतृभ्यः अरदः) जितना धन तुमने स्तोताओंको पूर्व समयमें दिया था, (तावत् राधः गृणाना अस्मभ्यं रास्व) उतना धन प्रशंसित होकर हमें दे दो । (वृषभस्य रवेण यां त्वा जज्ञुः) बैलके शब्दसे तुम्हें सब जानते हैं, उषाके उदयमें बैल तथा गौवें शब्द करती हैं जिससे पता लगता है कि उषःकाल हुवा है । और (दृळ्हस्य अद्रेः दुरः वि और्णोः) सुदृढ पर्वतके किलेका द्वार खोल दिया है और गौओंको बाहर निकाला है ॥ ४ ॥

[६४९] (देवंदेवं राधसे चोदयन्ती) प्रत्येक सत्कर्म कर्ताको ऐश्वर्य प्राप्तिके लिये प्रेरित करती है, (अस्मद्र्यक् सूनृताः ईरयन्ती) हमारे सन्मुख सत्य भाषणको प्रेरित करती है । (व्युच्छन्ती नः सनये धियः धाः) अन्धकारको दूर करती हुई हमें धन देनेकी बुद्धिका धारण कर । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याणमय साधनोंसे सुरक्षित रख ॥ ५ ॥

[८०]

[६५०] (विप्रासः वसिष्ठाः) ज्ञानी वसिष्ठ गोत्रके ऋषि (प्रथमाः स्तोमेभिः) सबसे प्रथम स्तोत्रोंसे और (गीर्भिः) वाणियोंसे (उषसं प्रति अबुध्रन्) उषाको जगाते हैं । उषाके समय जागते हैं । यह उषा (समन्ते रजसी विवर्तयन्ती) समान अन्तवाली, द्यावा पृथिवीको घुमानेवाली, (विश्वा भुवना आविः कृण्वन्ती) सब भुवनोंको प्रकाशित करती है ॥ १ ॥

[६५१] (एषा स्या उषा नव्यं आयुः दधाना) यह वह उषा नवीन तारुण्यकी आयु धारण करती है, (गूढ्वी तमः ज्योतिषा) और गाढ अन्धकारको अपने तेजसे निवारण करती हुई (अबोधि) जागती है । (अग्रे) प्रारंभमें (अह्रयमाणा युवतिः एति) लज्जा न करनेवाली तरुण स्त्रीके समान यह सूर्यके पूर्व चलने लगती है । तथा (सूर्यं अग्निं यज्ञं प्र अचिकितत्) सूर्य, अग्नि और यज्ञको बतलाती है ॥ २ ॥

भावार्थ— उषःकाल होते ही गायें और बैल शब्द करने लगते हैं, तब गोशालाका सुदृढ द्वार खोला जाता है और गौवें तथा बैल बाहर निकाले जाते हैं तथा चरनेके लिए उन्हें खोल दिया जाता है ॥ ४ ॥

यह उषा प्रत्येक सत्कर्म करनेवालेको ऐश्वर्यप्राप्तिके लिए प्रेरित करती है, लोगोंको सत्यभाषणके लिए प्रेरित करती है, अन्धकारको दूर करती है । प्रत्येक तरुणी धन प्राप्त करनेके लिए सिद्धिके प्राप्त होने तक प्रयत्न करे । सत्य तथा सरल भाषण करे तथा दान देनेकी बुद्धिको अन्तःकरणमें रखे ॥ ५ ॥

ज्ञानी जन अपने सर्वोत्कृष्ट स्तोत्रोंसे उषाको प्रसन्न करते हैं । द्युलोक और पृथिवी लोक परस्पर घूमते हैं ॥ १ ॥

यह तरुण आयुवाली उषा अपने तेजसे अन्धकार दूर करती हुई पतिके पूर्व जाग उठी है । लज्जा न करनेवाली तरुण स्त्री पतिके पहले उठती है और अग्नि प्रदीप्त करके यज्ञ करती है । पतिके पूर्व स्त्री उठे, अपने कर्तव्य कर्म करे । ऐसी तरुणी पर ही पति प्रेम करता है, पर जो स्त्री सुस्त होती है, वह पतिके लिए उतनी प्रिय नहीं होती ॥ २ ॥

६५२ अश्वा॑वती॒र्गोम॑ती॒र्न उ॒षासो॑ वी॒रव॑तीः॒ सद॑मुच्छन्तु भ॒द्राः ।
घृ॒तं दुहा॑ना वि॒श्वतः॒ प्रपी॑ता यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥ ३ ॥

[८१]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- उषसः । छन्दः- प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

६५३ प्रत्यु॑ अदर्श्याय॒त्यु१॒॑च्छन्ती॑ दुहि॒ता दि॒वः ।
अपो॒ महि॑ व्ययति॒ चक्ष॑से॒ तमो॒ ज्योति॑ष्कृणोति सू॒नरी॑ ॥ १ ॥

६५४ उदु॒स्रियाः॑ सृजते॒ सूर्यः॒ सचाँ॑ उ॒द्यन्नक्ष॑त्रमर्चि॒वत् ।
तवेदु॑षो॒ व्युषि॒ सूर्य॑स्य च॒ सं भ॒क्तेन॑ गमेमहि ॥ २ ॥

६५५ प्रति॑ त्वा दुहितर्दिव॒ उषो॑ जी॒रा अ॑भुत्स्महि ।
या वह॑सि पु॒रु स्पा॒र्हं व॑नन्वति॒ रत्नं॒ न दा॒शुषे॒ मयः॑ ॥ ३ ॥

अर्थ— [६५२] (अश्वावतीः गोमतीः वीरवतीः) घोडे, गौवें और वीर पुरुष-वीरपुत्र जिसके साथ हैं ऐसी (भद्राः उषासः नः सदं उच्छन्तु) कल्याण करनेवाली उषाएं हमारे घरको प्रकाशित करें। ये उषायें (घृतं दुहानाः) घी अथवा जलको दुहकर देनेवाली और (विश्वतः प्रपीताः) सब ओरसे परिपुष्ट हुई हों। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याणमय साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ ३ ॥

[८१]

[६५३] (आयती उच्छन्ती दिवः दुहिता) आनेवाली अन्धकारको दूर करनेवाली द्युलोककी दुहिता उषा (प्रति अदर्शि उ) दिखाई देती है। (महि तमः अप उ व्ययति) बडे अन्धकारको दूर करती है। और (सूनरी चक्षसे ज्योतिः कृणोति) उत्तम नेतृत्व करनेवाली यह उषा देखनेके लिये प्रकाशको करती है। फैलाती है ॥ १ ॥

[६५४] (सूर्यः उस्त्रियाः सचा उत् सृजते) सूर्य किरणोंको साथ साथ ऊपर फेंकता है। तथा (उद्यत् नक्षत्रं अर्चिमत्) सूर्य उदय होनेके पहले नक्षत्रोंको तेजस्वी बनाता है। हे उषा देवी ! (तव इत् सूर्यस्य च व्युषि) तेरे तथा सूर्यके प्रकाशित होनेपर (भक्तेन संगमेमहि) अन्नके साथ मिलेंगे, अन्नको प्राप्त होंगे ॥ २ ॥

[६५५] हे (दिवः दुहितः उषः) द्युलोककी पुत्री उषा देवी ! (जीराः त्वा प्रति अभुत्स्महि) हम शीघ्र कर्म करनेवाले तुझे जगावेंगे। हे (वनन्वति) धनवाली उषा ! (या पुरु स्पार्हं वहसि) जो तू बहुत स्पृहणीय धनको लाती है और (दाशुषे मयः रत्नं न) दाताके लिये सुख और धन देनेके समान तू सबको सुख और धन देती है ॥ ३ ॥

भावार्थ— उषःकालमें घोडे, गायें और वीरपुत्र घरसे बाहर निकलते हैं, इनसे घर शोभावाला होता है। गौओंके रहनेपर घरमें पर्याप्त घी दूध होता है। उसका सेवन करके प्राणी बहुत हृष्ट पुष्ट हों ॥ ३ ॥

द्युलोककी पुत्री उषा आती है, लोगोंको मार्ग दिखानेके लिए अन्धकार दूर करती है और प्रकाशको फैलाती है। इसी तरह घरकी गृहिणी अपने घरमें प्रकाश करे और अन्धेरा दूर करे तथा घरका उत्तम प्रबंध करे ॥ १ ॥

सूर्य जब पृथ्वीके नीचे जाता है तब वह अपनी किरणोंको ऊपर फेंकता है, जिससे चन्द्रादि प्रकाशित होते हैं। यहां नक्षत्रका अर्थ चन्द्र, बुध, शुक्र आदि ग्रह है। क्योंकि नक्षत्रका स्वयं प्रकाश है और वहांतक हमारे सूर्यका प्रकाश पहुंच नहीं सकता ॥ २ ॥

सभी प्रभात समयमें उठें तथा अपने कर्तव्य कर्म अतिशीघ्र तथा अत्यन्त उत्तम रीतिसे करें, इस प्रकार वे स्पृहणीय धन तथा उत्तम सुख प्राप्त करें ॥ ३ ॥

६५६ उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥ ४ ॥
६५७ तच्चित्रं राध आ भरोषो यद् दीर्घश्रुत्तमम् ।
यत् ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद् रास्व भुनजामहै ॥ ५ ॥
६५८ श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः ।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्रिधः ॥ ६ ॥

[८२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रावरुणौ । छन्दः- जगती ।

६५९ इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः ॥ १ ॥

अर्थ— [६५६] हे (महि देवि) महति उषा देवते ! तू (व्युच्छन्ती मंहना) अन्धकार दूर करती और अपने महत्त्वको प्रकट करती है, (या स्वः दृशे प्रख्यै कृणोषि) और जो तू विश्वके दर्शन और प्रबोधनके लिये प्रकाश करती है । (तस्याः ते रत्नभाजः ईमहे) इस तरह तुझ रत्नोंका सेवन करनेवालीसे हम प्रार्थना करते हैं कि (वयं मातुः सूनवः न स्याम) हम माताके जैसे पुत्र होते हैं वैसे हम तेरे पुत्र बनें ॥ ४ ॥

[६५७] हे (उषः) उषा देवी ! (यत् दीर्घश्रुत्तमं चित्रं राधः) जो अत्यंत यशस्वी विलक्षण धन है (तत् आ भर) वह हमें भर दो । हे (दिवः दुहितः) द्युलोककी पुत्री उषा देवी ! (यत् ते मर्तभोजनं) जो तुम्हारे पास मनुष्योंके योग्य भोजन है, (तत् रास्व) वह भोजन हमें दो, हम (भुनजामहै) भोजन करेंगे ॥ ५ ॥

[६५८] हे (उषः) उषा देवी ! (सूरिभ्यः अस्मभ्यं अमृतं वसुत्वनं श्रवः) हम ज्ञानियोंके लिये अमर धन और यश तथा (गोमतः वाजान्) गौओंसे युक्त अन्न दे दो । (मघोनः चोदयित्री सूनृतावती उषाः) धनवानोंको यज्ञ करनेकी प्रेरणा करनेवाली और सत्य भाषणकी प्रेरणा करनेवाली उषा (स्रिधः अप उच्छत्) शत्रुओंका नाश करती है ॥ ६ ॥

[८२]

[६५९] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (युवं नः विशे जनाय) तुम दोनों हमारे प्रजाजनोंके लिये (अध्वराय) हिंसारहित सत्कर्म करनेके लिये (महि शर्म यच्छतं) बडा सुख घर आदि दे दो । तथा (दीर्घ-प्रयज्युं यः अति वनुष्यति) बडे यज्ञ करनेवाले सत्कर्मकर्ताको जो अत्यंत कष्ट देता है, और जो (पृतनासु दुः ध्यः) युद्धोंमें पराजित होना कठिन है उस शत्रुपर (वयं जयेम) हम विजय करेंगे ॥ १ ॥

भावार्थ— उषा प्रकाशती है, उससे सब लोग जागते हैं और मार्ग देखते हैं । यह उषा रत्नोंवाली माता जैसी है । उसके हम पुत्र जैसे हों और वह हमारी माता जैसी हो । जिस तरह एक माता अपने पुत्रोंको प्रेमसे अन्न और धन देती है, उसी तरह उषा हमें अन्न, धन और सुख देवे ॥ ४ ॥

हे उषे ! जो अत्यन्त यशस्वी और विलक्षण धन है, वह हमें प्रदान कर । तथा तेरे पास जो मनुष्योंके लिए योग्य भोजन है, वह भोजन हमें दे, उस भोजनका हम उपभोग करें ॥ ५ ॥

हम ज्ञानी हैं, अतः तू हमें अमर धन, यश तथा पशु प्रदान कर । यह उषा धनवानोंको यज्ञ करनेकी प्रेरणा देनेवाली तथा सत्यभाषणकी प्रेरणा देनेवाली होकर शत्रुओंका नाश करती है ॥ ६ ॥

प्रजायें हिंसा और कुटिलता रहित कर्म करें, इसलिये हे इन्द्र और वरुण ! तुम उन्हें बडा सुख, बडा संरक्षण और बडा घर दो । इन स्थानोंमें प्रजायें सुखसे रहकर प्रशंसित कर्म करें । जो युद्धोंमें अजेय हैं, ऐसे शत्रुओंको भी ये प्रजायें हरायें ॥ १ ॥

६६० सम्राळन्यः स्वराळन्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू ।
विश्वे देवासः परमे व्योमनि सं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः ॥ २ ॥
६६१ अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम् ।
इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायिनो ऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ॥ ३ ॥
६६२ युवामिद् युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ।
ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रावरुणा सुहवा हवामहे ॥ ४ ॥
६६३ इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथुर्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्मना ।
क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते ॥ ५ ॥

अर्थ— [६६०] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (वां) तुममेंसे (अन्यः सम्राट्) एक वरुण सम्राट है और (अन्यः स्वराट्) दूसरा स्वराट् है (उच्यते) ऐसा कहा जाता है। आप दोनों (महान्तौ महावसू) बडे हैं और बडे धनवाले हैं। हे (वृषणा) सामर्थ्यवानों ! (परमे व्योमनि विश्वे देवासः) परम उच्च आकाशमें सब देवोंने (वां) तुम दोनोंके लिये (ओजः बलं च सं दधुः) ओज और बल धारण किया है ॥ २ ॥

[६६१] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्रावरुणो ! (अपां खानि ओजसा अनु अतृन्तं) जलोंके द्वार अपने बलसे तुमने खोल दिये (सूर्यं दिवि प्रभुं आ ऐरयतं) तुमने सूर्यको द्युलोकका प्रभु बनाकर प्रेरित किया। (अस्य मायिनः मदे अपितः अपिन्वतं) इस शक्तिशाली सोमके पानसे आनंदित होकर जलरहित नदियोंको तुमने भरपूर भर दिया। और (धियः पिन्वतं) हमारे बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंको पूर्ण किया ॥ ३ ॥

[६६२] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुणो ! (वह्नयः युत्सु पृतनासु युवां इत्) अग्निवत् तेजस्वी वीर युद्धोंमें शत्रुसेनाओंमें तुम्हें ही बुलाते हैं। (मितज्ञवः क्षेमस्य प्रसवे युवां) संकुचित जानुवाले रक्षणके समय तुम्हें बुलाते हैं। (कारवः उभयस्य वस्वः ईशाना) हम कारीगर लोग भूलोक और द्युलोकके स्वामी (सुहवा हवामहे) सहजहीसे बुलाने योग्य आप दोनोंको हम सहायतार्थ बुलाते हैं ॥ ४ ॥

[६६३] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (यत् भुवनस्य इमानि विश्वा जातानि मज्मना चक्रथुः) जो तुमने इस भुवनके अन्दरके इन सभी प्राणियोंको अपने बलसे निर्माण किया है, उस कारण (मित्रः क्षेमेण वरुणं दुवस्यति) मित्र सबके कल्याण करनेके हेतुसे वरुणकी सेवा करता है और (अन्यः मरुद्भिः उग्रः शुभं ईयते) दूसरा इन्द्र मरुतोंके साथ रहनेसे उग्र वीर बनकर सबका शुभ करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— इन्द्र और वरुण दोनों बडे देव हैं। इनमें वरुण सम्राट् है और इन्द्र स्वराट् है। सम्राट् वह होता है जो अनेक राज्यों पर अपना शासन चलाता है और स्वराट् वह है कि जो केवल अपनेही सामर्थ्यसे अपने सब कर्म निभाता है। इस प्रकार इन्द्र और वरुण ये दोनों बडे शासक हैं। ऐसे शासकोंको सभी ज्ञानी सहायता पहुंचाते हैं। राष्ट्रमें ऐसी व्यवस्था हो कि जिससे सब राष्ट्र सुरक्षित हों और सब व्यवहार करनेवाले विबुध उसका यश बढाते हों ॥ २ ॥

इन्द्र और वरुणने जलोंके द्वार खोल दिए, उनसे जलोंके प्रवाह बहने लगे। सूर्य आकाशमें प्रकाशने लगा और यज्ञ कर्म शुरु हुए। अन्धकार दूर हो गया ॥ ३ ॥

हे इन्द्र और वरुण ! अग्निके समान तेजस्वी वीर भी जब शत्रुओंसे घिर जाते हैं, तब वे तुम्हें बुलाते हैं। घुटने टेककर आत्मिक क्षेमकी प्राप्तिके लिए ज्ञानी जन तुम्हें पुकारते हैं। यह ब्राह्मणोंकी पुकार है। युद्धोंमें लडनेके लिए आयी हुई शत्रुसेनाओंके साथ लडनेके समय क्षत्रिय तुम्हें बुलाते हैं। यह क्षत्रियोंकी पुकार है। कारीगर भी दोनों प्रकारके धनोंके स्वामी तुम दोनोंको बुलाते हैं। यह वैश्यों और शूद्रोंकी पुकार है। इस तरह चारों वर्णोंके लोग इन्द्र और वरुणको बुलाते हैं ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और वरुण ! इस भुवनमें जो नाना प्रकारके पदार्थ हैं, इनको तुम दोनों अपनी शक्तिसे ही निर्माण करते हो। सबका हित करनेके लिए मित्र वरुणकी सहायता करता है। मित्र और वरुण सबका क्षेम करते हैं। शूरवीर इन्द्र भी अपने सैनिकोंके साथ सबकी सुरक्षा करता है ॥ ५ ॥

६६४ महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष ओजो मिमाते ध्रुवमस्य यत् स्वम् ।
अजामिमन्यः श्नथयन्तमातिरद् दभ्रेभिरन्यः प्र वृणोति भूयसः ॥ ६ ॥

६६५ न तमंहो न दुरितानि मर्त्य- मिन्द्रावरुणा न तपः कुतश्चन ।
यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं न तं मर्तस्य नशते परिह्वृतिः ॥ ७ ॥

६६६ अर्वाङ्नरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः ।
युवोर्हि सख्यमुत वा यदाप्यं मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम् ॥ ८ ॥

६६७ अस्माकमिन्द्रावरुणा भरेभरे पुरोयोधा भवतं कृष्ट्योजसा ।
यद् वां हवन्त उभये अध स्पृधि नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु ॥ ९ ॥

अर्थ— [६६४] (वरुणस्य त्विषे ओजः मिमाते) मित्र और वरुणका तेज बढानेके लिये बलको बढाते हैं। (महे शुल्काय) विशेष धनकी प्राप्ति हो इसलिये तथा (अस्य यत् ध्रुवं स्वं) इसका जो स्थायी निज बल है उसको बढानेके लिये यह किया जाता है। (अन्यः श्नथयन्तं अजामिं आ अतिरत्) इनमेंसे एक वरुण हिंसक शत्रुके पार हो जाता है, और (अन्यः दभ्रेभिः भूयसः प्र वृणोति) दूसरा इन्द्र अल्प साधनोंसे ही महान् शत्रुओंको घेरता है ॥ ६ ॥

[६६५] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुणो ! (तं मर्तं अंहः न नशते) उस मानवका नाश पाप नहीं कर सकता। (न दुरितानि) न दुष्ट कर्म उसके पास जाते हैं, (कुतः च न तपः न) न किसी तरह संताप उसके पास जाता है। वह इन कष्टोंसे दूर रहता है। हे (देवा) देवो ! तुम (यस्य अध्वरं गच्छथः) जिसके यज्ञके पास जाते हो, (वीथः) जिसका हित तुम चाहते हो (तं मर्तस्य परि ह्वृतिः न नशते) उसके पास मानवोंका विनाश नहीं पहुंच सकता ॥ ७ ॥

[६६६] हे (नरा इन्द्रावरुणा) नेता इन्द्रवरुणो ! (दैव्येन अवसा) दिव्य रक्षणके साथ (अर्वाक् आगतं) हमारे पास आओ। (हवं शृणुतं) मेरी प्रार्थना श्रवण करो। (यदि मे जुजोषथः) यदि मुझपर तुम्हारी प्रीति है तो ऐसा करो। हे मित्र और वरुणो ! (युवयोः सख्यं) तुम्हारी मित्रता, (उत वा यत् आप्यं) जो बन्धुता है और जो तुम्हारा (मार्डीकं) सुख देनेका साधन है वह हमें (नि यच्छतं) दे दो ॥ ८ ॥

[६६७] हे (कृष्ट्योजसा) शत्रुको खींचनेवाले बलसे युक्त इन्द्रवरुणो ! (भरे भरे पुरोयोधा भवतं) प्रत्येक युद्धमें हमारे पक्षमें रहकर अग्र भागमें रहकर युद्ध करनेवाले बनो। (यत् उभये नरः स्पृधि वां हवन्ते) दोनों प्रकारके मनुष्य स्पर्धा करनेके समय तुम्हें बुलाते हैं (अध तोकस्य तनयस्य सातिषु) और बाल बच्चोंकी सेवाके समय भी तुम्हें बुलाते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— इन्द्र और वरुणमेंसे वरुण हिंसक शत्रुओंको मारता है, तो दूसरा इन्द्र अल्प साधनोंसे ही महान् शत्रुओंको मारता है। राष्ट्रमें बल और तेज बढाना चाहिए, धन बढाना चाहिए, तथा जो धन पासमें है, उसे सुरक्षित रखना चाहिए। राज्यशासनके ये तत्व इन्द्रावरुणके इस मंत्रमें बताये हैं ॥ ६ ॥

इन्द्र तथा वरुण जिसकी रक्षा करते हैं, उसके पास पाप, दुःख, दुष्कर्म, पीडा, बाधा अथवा अन्य प्रकारके कष्ट पहुंच ही नहीं सकते ॥ ७ ॥

हे इन्द्र और वरुण ! तुम दोनों सुरक्षाके दिव्य साधनोंके साथ हमारे पास आओ और हमारी रक्षा करो। सभी जन तुम्हारी मित्रता, बन्धुता और सुखदायिताको प्राप्त करें ॥ ८ ॥

हे शत्रुओंको अपने बलसे खींचनेवाले इन्द्रावरुणो ! हर युद्धमें तुम अग्रभागमें रहकर हमारी रक्षा करो। तुम्हें धनी-निर्धन, ज्ञानी-अज्ञानी ऐसे दोनों तरहके लोग बुलाते हैं, अपने बालबच्चोंकी रक्षा करनेके लिए भी तुम्हें ही बुलाते हैं ॥ ९ ॥

६६८ अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥ १० ॥

[८३]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रावरुणौ । छन्दः- जगती ।)

६६९ युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम् ॥ १ ॥

६७० यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किं चन प्रियम् ।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृश-स्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् ॥ २ ॥

अर्थ— [६६८] (इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा) इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा ये देव (अस्मे) हमें (सप्रथः महि द्युम्नं शर्म यच्छन्तु) विशेष विस्तृत महान तेजस्वी घर, धन या सुख प्रदान करें । (ऋतावृधः अदितेः ज्योतिः अवध्रं) सत्य मार्गका संवर्धन करनेवाली अदितिका तेज हमारे लिये विनाशक न बने । हम (सवितुः देवस्य श्लोकं मनामहे) सविता देवकी स्तुति करें ॥ १० ॥

[८३]

[६६९] हे (नरा मित्रावरुणा) नेता मित्र तथा वरुण ! (युवां आप्यं पश्यमानासः) तुम्हारे बन्धुभावकी ओर देखनेवाले (गव्यन्तः पृथुपर्शवः) गौओंकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले और बडे परशुको धारण करनेवाले (प्राचा ययुः) पूर्वकी ओर चले । तुम (दासा च वृत्रा आर्याणि च हतं) विनाशक घेरनेवाले शत्रु और जो क्षुद्र आर्य भी शत्रुसे मिले हैं उनको भी मारो । (सुदासं अवसा अवतं) अपने सुदासको अपनी शक्तिसे सुरक्षित रखो ॥ १ ॥

[६७०] (यत्र कृतध्वजः नरः समयन्ते) जहां मनुष्य अपने ध्वज उठाकर युद्धके लिये एकत्रित होते हैं, (यस्मिन् आजौ किंचन प्रियं भवति) जिस युद्धमें कुछ भी हित नहीं होता है । (यत्र स्वर्दृशः भुवना भयन्ते) जिस युद्धमें स्वर्गदर्शी लोग भयभीत होते हैं, हे इंद्र और वरुण ! (तत्र नः अधि वोचतं) वहां हमारे अनुकूल बात करो ॥ २ ॥

भावार्थ— इन्द्र आदि देवोंकी कृपासे हमें बडा तेजस्वी और अति विस्तृत घर प्राप्त हो । वह घर हमारे लिए सुखदायी हो । सत्यमार्गका संवर्धन करनेवाली अदिति देवीका तेज सदा हमारे घरमें रहे तथा हम भी सदा सविता देवकी स्तुति करते रहें ॥ १० ॥

हे मित्रावरुण ! जो तुम्हारी ओर बन्धुभावसे देखनेवाले हों, गौओंकी प्राप्ति करनेकी इच्छा करते हों, तथा परशु आदि शस्त्रोंको धारण करते हों, उन्हें तुम उन्नतिकी ओर ले चलो । जो शत्रु विनाशक और क्षुद्र आर्य हों, उन्हें तुम मारो ॥ १ ॥

जब मनुष्य अपनी अपनी ध्वजायें उठाकर एक दूसरेसे युद्ध करते हैं, तब उस युद्धसे कुछ अच्छा परिणाम नहीं निकलता . उस युद्धसे किसीका हित नहीं होता । स्वर्गकी इच्छा करनेवाले लोग ऐसे युद्धोंसे सदा दूर ही रहते हैं । युद्धसे सुखोंका नाश होकर सदा दुःखही होते हैं, अतः मनुष्यों पर देवोंकी कृपा ऐसी हो कि वे कभी युद्ध न करते हुए सदा प्रेमसे रहें ॥ २ ॥

६७१ सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षते न्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत् ।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयो ऽर्वागवसा हवनश्रुता गतम् ॥ ३ ॥

६७२ इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वन्ता प्र सुदासमावतम् ।
ब्रह्माण्येषां शृणुतं हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत् पुरोहितिः ॥ ४ ॥

६७३ इन्द्रावरुणावभ्या तपन्ति माघान्यर्यो वनुषामरातयः ।
युवं हि वस्व उभयस्य राजथो ऽध स्मा नोऽवतं पार्ये दिवि ॥ ५ ॥

६७४ युवां हवन्त उभयास आजिष्वि न्द्रं च वस्वो वरुणं च सातये ।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह ॥ ६ ॥

अर्थ — [६७१] हे (इन्द्रावरुण) इन्द्र और वरुण ! (भूम्याः अन्ताः ध्वसिराः सं अदृक्षत) भूमिके सारे प्रदेश ध्वस्त हुएसे दीख रहे हैं । (दिवि घोषः आरुहत्) आकाशमें सैनिकोंके आक्रमणका कोलाहल फैल गया है । (जनानां अरातयः मां उप अस्थुः) लोगोंके शत्रु मेरे सन्मुख युद्ध करनेके लिये खडे हुए हैं । (हवन श्रुता) आह्वानको सुननेवाले वीरो ! (अवसा अर्वाक् आगतं) संरक्षणकी शक्तिके साथ हमारे पास आओ ॥ ३ ॥

[६७२] हे (इन्द्रावरुण) इन्द्र और वरुण ! (वधनाभिः अप्रति भेदं वन्वन्ता) तुमने अपने वध करनेके साधनोंसे न रुके हुए आपसके भेदका — आपसकी फूटका — नाश किया । भेद रूप शत्रुका नाश किया और (सुदासं प्र आवतं) सुदासका संरक्षण किया । और (एषां हवीमनि ब्रह्माणि शृणुतं) इनके संग्राममें तुमने स्तोत्र सुने । तथा इस कारण (तृत्सूनां पुरोहितिः सत्या अभवत्) तृत्सु लोगोंका पौरोहित्य सफल हुआ ॥ ४ ॥

[६७३] हे (इन्द्रावरुण) इन्द्र और वरुण ! (अर्यः अघानि मा अभि आ तपन्ति) शत्रुके पाप-शस्त्र-मुझे बहुत ताप दे रहे हैं । और (वनुषां अरातयः) हिंसकोंके मध्यमें जो शत्रु हैं वे भी मुझे कष्ट दे रहे हैं । (युवं हि उभयस्य वस्वः राजथः) तुम दोनों प्रकारके — ऐहिक और पारलौकिक धनके स्वामी हो । इसलिये (अध पार्ये दिवि नः अवतं स्म) स्पर्धाके दिनोंमें हमारी सुरक्षा करो ॥ ५ ॥

[६७४] (उभयासः वस्वः सातये) दोनों लोग धनको जीतनेके लिये (युवां इन्द्रं वरुणं च) तुम दोनों इन्द्र और वरुणको (आजिषु हवन्ते) युद्धोंमें बुलाते हैं । (यत्र तृत्सुभिः सह) जहां तृत्सुओंके साथ रहनेवाले और (दशभिः राजभिः निबाधितं) दस राजाओंके द्वारा कष्ट पहुंचाये (सुदासं प्र आवतं) सुदास राजाकी तुमने सुरक्षा की ॥ ६ ॥

भावार्थ — युद्ध होनेसे भूमिके ऊपरके प्रदेश उध्वस्त हो जाते हैं । नगर, खेत, उद्यान आदि सभी नष्ट हो जाते हैं । दोनों तरफके सैनिकों और घायलोंका आर्तनाद आकाशमें भर जाता है । पर यदि मानवताके शत्रु युद्धके लिए सामने आकर खडे हो ही जाएं, तो फिर संरक्षणकी शक्तिसे युक्त होकर शत्रुसे लडें ॥ ३ ॥

जो देशकी प्रजाओंमें फूट डालनेका प्रयत्न करता हो, ऐसे शत्रुको मार देना चाहिए, तथा सज्जनोंकी रक्षा करनी चाहिए । सैनिक संग्राम या युद्धके समय भी बुरे शब्द न बोलें ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और वरुण देवो ! शत्रुओंके शस्त्र मुझे कष्ट दे रहे हैं । हिंसक मनुष्य भी मुझे बहुत कष्ट दे रहे हैं । ऐहिक और पारलौकिक धनोंके तुम स्वामी हो, अतः युद्धके दिनोंमें तुम हमारी सहायता करो ॥ ५ ॥

जो मनुष्य ऐहिक और पारलौकिक धनको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, वे युद्धोंके समय वीर देवोंको बुलाते हैं । जो राजा सज्जन होता है, तब तृत्सु अर्थात् उन्नति करनेकी इच्छा करनेवाले लोग उस सज्जन राजाकी रक्षा करते हैं ॥ ६ ॥

६७५ दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः ।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुति र्देवा एषामभवन् देवहूतिषु ॥ ७ ॥
६७६ दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम् ।
श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः ॥ ८ ॥
६७७ वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।
हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभि रस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतम् ॥ ९ ॥
६७८ अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥ १० ॥

अर्थ— [६७५] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुणो ! (अयज्यवः दश राजानः समिताः) यज्ञ न करनेवाले दस राजे इकट्ठे हुए तथापि तुम्हारी सहायता होनेसे वे (सुदासं न युयुधुः) सुदास राजाके साथ युद्ध न कर सके। (अद्मसदां नृणां उपस्तुतिः सत्या) अन्नदान करनेके लिये बैठे लोगोंकी प्रार्थना सफल हुई और (एषां देवहूतिषु देवाः अभवन्) इनके यज्ञोंमें सब देव उपस्थित थे ॥ ७ ॥

[६७६] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (दाश राज्ञे विश्वतः परियत्ताय) दस राजाओंके संघ द्वारा चारों ओरसे घेरे गये (सुदासे शिक्षतं) सुदास राजाको तुमने बल दिया। क्योंकि (यत्र श्वित्यंचः कपर्दिनः) जहां निर्मल जटाधारी (धीवन्त तृत्सवः) बुद्धिमान् तृत्सु लोग (नमसा धिया असपन्त) नमस्कार पूर्वक किये शुभ कर्मसे परिचर्या करते थे ॥ ८ ॥

[६७७] हे (इन्द्रावरुण) इन्द्र और वरुण ! तुममेंसे (अन्यः समिथेषु वृत्राणि जिघ्नते) एक इन्द्र युद्धके समय शत्रुओंका नाश करता है। (अन्यः सदा व्रतानि अभि रक्षते) दूसरा वरुण सदा सत्कर्मोंकी सुरक्षा करता है। हे (वृषणा) बलवान् वीरो ! (वां सुवृक्तिभिः हवामहे) तुम्हारी स्तुति हम अच्छे स्तोत्रोंसे करते हैं। इसलिये (अस्मे शर्म यच्छतं) हमें सुखका प्रदान करो ॥ ९ ॥

[६७८] (इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा) इन्द्र, वरुण, मित्र और अर्यमा देव (अस्मे) हमें (सप्रथः महि द्युम्नं शर्म यच्छन्तु) विशेष विस्तृत महान् तेजस्वी घर, धन या सुख प्रदान करें। (ऋतावृधः अदितेः ज्योतिः अवध्रं) सत्य मार्गका संवर्धन करनेवाली अदितिका तेज हमारे लिए विनाशक न बने। हम (सवितुः देवस्य श्लोकं मनामहे) सविता देवकी स्तुति करें ॥ १० ॥

भावार्थ— यज्ञ न करनेवाले अनार्य दस राजा भी सुदासके साथ युद्ध न कर सके अर्थात यज्ञ न करनेवाले अनार्य राजा अनेक होनेपर भी एक सज्जन पुरुषका कुछ बिगाड नहीं सकते। क्योंकि उस सज्जन पुरुषकी रक्षा देवगण करते हैं। अन्नका दान करनेवालोंके हर मनोरथ पूर्ण होते हैं, वे कभी भी इस जगत्में परास्त नहीं होते, क्योंकि इनके यज्ञोंमें देव स्वयं उपस्थित रहते हैं ॥ ७ ॥

अन्दर और बाहरसे पवित्र रहनेवाले बुद्धिमान् तृत्सु जहां शुभ कर्मोंको करते हैं, वहां बल बढता है। ऐसे ही लोग सुदासके सहायक थे, इसीलिए सुदासका बल बढा और वह विजयी हुआ, पर दूसरे अनार्य राजा, जो सुदासके साथ लडने आए थे, परास्त हुए, क्योंकि वे शुभ कर्म करनेवाले नहीं थे। पवित्र रहकर ज्ञानपूर्वक किए गए यज्ञसे शक्ति बढती है॥८॥

एक वीर युद्ध करता है और घेरनेवाले बाह्य शत्रुओंका नाश करता है। राष्ट्रके बाह्य शत्रुका नाश करना एक महत्त्व पूर्ण कार्य है। दूसरा वीर लोगोंके सत्कर्मोंको सुरक्षित रखता है। यह आन्तरिक सुरक्षितता है। राष्ट्रकी सुस्थितिके लिए बाह्य शत्रुओंका नाश होकर अन्दरके सब कार्य व्यवहार सुरक्षित रीतिसे चलते रहते रहने चाहिए। तभी लोगोंको सुख मिल सकता है ॥ ९ ॥

इन्द्र आदि देवोंकी कृपासे हमें बडा तेजस्वी और अति विस्तृत घर प्राप्त हो। वह घर हमारे लिए सुखदायी हो। सत्य मार्गका संवर्धन करनेवाली अदिति देवीका तेज सदा हमारे घरमें रहे तथा हम भी सदा सविता देवकी स्तुति करते रहें ॥ १० ॥

[८४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६७९ आ वां राजानावध्वरे ववृत्यां हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
प्र वां घृताची बाह्वोर्दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति ॥ १ ॥

६८० युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौर्यौ सेतृभिररज्जुभिः सिनीथः ।
परि नो हेळो वरुणस्य वृज्या उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम् ॥ २ ॥

६८१ कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता ।
उपो रयिर्देवजूतो न एतु प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेतम् ॥ ३ ॥

६८२ अस्मे इन्द्रावरुणा विश्ववारं रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
प्र य आदित्यो अनृता मिनात्यमिता शूरो दयते वसूनि ॥ ४ ॥

---

[८४]

अर्थ— [६७९] हे (राजानौ इन्द्रावरुणौ) राजा इन्द्र और वरुण (अध्वरे वां हव्येभिः नमोभिः आ ववृत्यां) हिंसारहित इस यज्ञमें तुम्हें हवनों और नमनोंद्वारा इधर बुलाता हूं । (बाह्वोः दधाना विषुरूपा घृताची) विविध रूपोंवाली घीकी आहुती डालनेवाली जुहू (त्मना वां परि प्र जिगाति) स्वयं ही तुम्हारे पास जाती है । तुम्हारे लिये आहुती देती है ॥ १ ॥

[६८०] (युवोः बृहत् राष्ट्रं द्यौः इन्वति) तुम दोनोंका बडा विशाल द्युलोक रूपी राष्ट्र सबको प्रसन्नता देता है । (यौ सेतृभिः अरज्जुभिः सिनीथः) जो तुम दोनों बंधन करनेके रज्जुरहित रोगादि साधनोंसे पापीयोंको बांध देते हैं । (वरुणस्य हेळः नः परि वृज्याः) वरुणका क्रोध हमें छोडकर दूसरे स्थानपर जावे । (इन्द्रः नः उरुं लोकं कृणवत्) इन्द्र हमारे लिये विस्तृत कार्यक्षेत्र निर्माण करके देवे ॥ २ ॥

[६८१] (नः विदथेषु यज्ञं चारुं कृतं) हमारे युद्धोंमें अथवा सभागृहोंमें यज्ञको सुन्दर बनाओ । तथा (सूरिषु ब्रह्माणि प्रशस्ता कृतं) विद्वानोंके स्तोत्रोंको प्रशंसित बनाओ । (देवजूतः रयिः नः उपो एतु) देवों द्वारा प्रेरित धन हमें प्राप्त हो ! (स्पार्हाभिः ऊतिभिः नः प्र तिरेतं) प्रशंसा योग्य संरक्षणोंसे हमें संवर्धित करो ॥ ३ ॥

[६८२] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (अस्मे) हमारे लिये (विश्ववारं वसुमन्तं पुरुक्षुं रयिं धत्तं) सबके सेवनके योग्य ऐश्वर्य युक्त और बहुत अन्नवाला धन दो । (यः आदित्यः अनृता प्र मिनाति) जो आदित्य असत्य आचरण करनेवालोंका नाश करता है, (शूरः अमिता वसूनि दयते) दूसरा शूर अपरिमित धनोंको देता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे तेजस्वी इन्द्र और वरुण ! हिंसारहित इस यज्ञमें तुम्हें हवनों और नमनों द्वारा इधर बुलाता हूँ । अनेक रूपोंवाली घीकी स्रुवासे तुम्हें आहुतियां प्रदान करता हूँ ॥ १ ॥

इन दोनों देवोंका राष्ट्र यह विशाल द्युलोक है, वह सब लोगोंको प्रसन्न करता है । इसीतरह पृथ्वीका राजा अपनी प्रजाको प्रसन्न करे, प्रजाकी उन्नति और अभ्युदय करे । ये दोनों देव पापियोंको बंधनोंसे बांधते हैं, तथैव राजा भी अपने राज्यके डाकू, चोर आदियोंको बंधनमें डाले । हम कभी ऐसा आचरण न करें कि वरुण हमपर क्रोधित हो । वरुण हमारे लिए विस्तृत कार्यक्षेत्रका निर्माण करे ॥ २ ॥

युद्धों, सभाओं और यज्ञस्थानोंमें हम जिस यज्ञको करना चाहते हैं, वह यज्ञ उत्तमसे उत्तम और निर्दोष बने । मनुष्य सत्कर्म करे और स्वयं निर्दोष बने । विद्वान् जो स्तोत्र करें, वे प्रशंसाके योग्य हों । तथा जो धन देवगण हमें देना चाहते हैं, वह हमें शीघ्रही प्राप्त हो । इस प्रकार हमारी प्रगति तथा उन्नति होती रहे ॥ ३ ॥

सब लोग जिसे स्वीकार करते हैं, सब जिसको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, मानवोंके निवास करनेमें जो सहायक होता है, जिसके साथ अनेक प्रकारका अन्न रहता है, तथा जो अनेकों द्वारा प्रशंसित होता है, ऐसा धन हमें मिले । आदित्य देव असत्य आचरण करनेवालोंका नाश करता है ॥ ४ ॥

६८३ इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत् तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[८५]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६८४ पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत् ।
घृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामन्नुरुष्यताम् अभीके ॥ १ ॥

६८५ स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति ।
युवं ताँ इन्द्रावरुणाविमित्रान् हतं पराचः शर्वा विषूचः ॥ २ ॥

६८६ आपश्चिद्धि स्वयशसः सदःसु देवीरिन्द्रं वरुणं देवता धुः ।
कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता वृत्राण्यन्यो अप्रतीनि हन्ति ॥ ३ ॥

अर्थ— [६८३] (मे इयं गीः) मेरी यह स्तुति (इंद्रं वरुणं अष्ट) इंद्र और वरुणको प्राप्त हो। मेरी स्तुति (तूतुजाना तोके तनये प्र आवत्) शीघ्र पास आकर हमारे बाल-बच्चोंकी सुरक्षा करे। हम (सुरत्नासः देववीतिं गमेम) उत्तम रत्नोंसे सुशोभित होकर देवोंके यज्ञमें जायें। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारा कल्याणके साधनोंसे संरक्षण करो ॥ ५ ॥

[८५]

[६८४] (वां अरक्षसं मनीषां पुनीषे) आप दोनोंकी राक्षस-भाव-रहित प्रशंसाको मैं पवित्र करता हूं। (इन्द्राय वरुणाय सोमं जुह्वत्) इन्द्र और वरुणके उद्देश्यसे सोमका हवन करता हूं। (देवीं उषसं न घृतप्रतीकां) उषा देवीकी तरह तेजस्वी अवयवोंवाली हमारी यह स्तुति है। (ता) वे इन्द्र और वरुण (अभीके यामन् नः उरुष्यतां) युद्ध उपस्थित होनेपर शत्रुपर आक्रमण करनेके समय हमारा संरक्षण करें ॥ १ ॥

[६८५] (अत्र देवहूये स्पर्धन्ते वै) इस संग्राममें शत्रु और हमारे वीर परस्पर स्पर्धा करते हैं। (येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति) जिन युद्धोंमें ध्वजोंपर शस्त्र गिरते हैं। हे इन्द्र और वरुण! (युवं तान् अमित्रान् हतं) तुम दोनों इन शत्रुओंको मारो और (शर्वा विषूचः पराचः) हिंसक शस्त्रसे चारों ओर और विरुद्ध दिशासे शत्रुओंको भगा दो ॥ २ ॥

[६८६] (आपः चित् स्व यशसः देवीः) जल मिश्रित अपने निज यशवाले दिव्य सोमरस (सदः सु इन्द्रं वरुणं देवता धुः) यज्ञके स्थानोंमें इन्द्र वरुण आदि देवताओंको धारण करते हैं। इनमेंसे (अन्यः प्रविक्ताः कृष्टीः धारयति) एक वरुण पृथक् पृथक् प्रजाओंका धारण करता है, (अन्य अप्रतीनि वृत्राणि हन्ति) दूसरा इन्द्र अप्रतिम शत्रुओंका भी विनाश करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— देवताओंकी स्तुति पुत्र-पौत्रोंका संरक्षण करती है। देवोंका वर्णन सुनकर तद्वत् आचरण करनेके लिए मनमें स्फूर्ति उत्पन्न होती है, फिर तद्वत् आचरण करनेसे मनुष्यकी सुरक्षा होती है। पश्चात् वह आदमी उत्तम रत्न धारण करके, उत्तम वस्त्रों और अलंकारोंको धारण करके जहां यज्ञ होता है, वहां जाता है ॥ ५ ॥

देवोंके भाव आसुर भावसे रहित होते हैं, उनसे मैं स्वयंको पवित्र करता हूं। उषाके समान बुद्धि तेजोयुक्त हो। तथा युद्धोंमें जब हम पर शत्रुओंका आक्रमण हो, तब सब वीरोंकी उत्तम रक्षा हो ॥ १ ॥

जहां विजयकी इच्छा करनेवाले वीर स्पर्धा करते हैं, वह संग्राम है। इन संग्रामोंमें तीक्ष्ण शस्त्र ध्वजोंपर गिरते हैं। ध्वजोंको देखकर शत्रुके शस्त्र एक दूसरे पर फेंकते हैं। वीरोंको चाहिए कि ऐसे शत्रुओंका वे वध करें। वीरोंके द्वारा छोडे गए घातक अस्त्रशस्त्रसे सब शत्रु चारों ओर भ्रांत होकर भागें ॥ २ ॥

एक अधिकारी प्रत्येक प्रजाजनका पृथक् पृथक् धारण-पोषण करता है। यह वरुण देव है। यह प्रत्येक प्रजाजनका पृथक् पृथक् निरीक्षण कर उनका पालन करता है। दूसरा अधिकारी इन्द्र घेरनेवाले शक्तिशाली बाह्य शत्रुओंका नाश करता है। इसी तरह राज्यमें एक आन्तरिक अधिकारी हो जो अन्दरकी व्यवस्था रखे तथा दूसरा बाह्य अधिकारी हो जो देशकी बाहरके शत्रुओंसे रक्षा करे ॥ ३ ॥

६८७ प्र सुक्रतुर्ऋतचिदस्तु होता य आदित्य शवसा वां नमस्वान् ।
आववर्तदवसे वां हविष्मानसदित् स सुविताय प्रयस्वान् ॥ ४ ॥

६८८ इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत् तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[८६]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वरुणः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६८९ धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी ।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥ १ ॥

अर्थ— [६८७] (सुक्रतुः होता ऋतचित् अस्तु) उत्तम कर्म करनेवाला होता यज्ञके विधिका ज्ञाता हो। हे आदित्यो ! (यः शवसा नमस्वान् वां) जो बलसे युक्त और अन्नसे युक्त ऐसे तुम दोनोंकी सेवा करता है, तथा (यः हविष्मान् अवसे वां आवर्तयत्) जो अन्नका यज्ञ करनेवाला अपनी सुरक्षाके लिये आपको अपने पास लाता है, (सः प्रयस्वान् सुविताय असत् इत्) अन्नवान् होकर उत्तम फल प्राप्त करनेके लिये योग्य होता है ॥ ४ ॥

[६८८] (मे इयं गीः) मेरी यह स्तुति (इन्द्रं वरुणं अष्ट) इन्द्र और वरुणको प्राप्त हो। मेरी स्तुति (तूतुजाना तोके तनये प्र आवत्) देवोंके पास जाकर हमारे बालबच्चोंको सुरक्षा करें। हम (सुरत्नासः देववीतिं गमेम) उत्तम रत्नोंसे सुशोभित होकर देवोंके यज्ञमें जायें। (यूय सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारी कल्याणकारी साधनोंसे रक्षा करो ॥ ५ ॥

[८६]

[६८९] (अस्य जनूंषि महिना धीरा) इस वरुणके जीवन उनकी निज महिमासे धैर्यवाले कर्मोंसे युक्त हैं। (यः उर्वी रोदसी चित् वि तस्तंभ) जो वरुण विस्तीर्ण द्युलोक और भूलोकको स्थिर करता है। (बृहन्तं नाकं) बड़े विशाल सूर्यको और (ऋष्व नक्षत्रं द्विता प्र नुनुदे) तेजस्वी नक्षत्रोंको दो समयोंमें जो प्रेरित करता है। दिनमें सूर्य और रात्रीके समय नक्षत्रोंको प्रेरित करता है तथा (भूम पप्रथत् च) भूमिको विस्तृत किया है ॥ १ ॥

भावार्थ— जो यज्ञ करनेवाला हो, उसे यज्ञकी विधि अच्छी तरहसे विदित होनी चाहिए। यज्ञ करनेवालेके पास पर्याप्त अन्न हो। उसकी अन्नका दान करनेकी इच्छा हो, इस यज्ञ करनेवालेका संरक्षण हो तथा यज्ञस्थान सुरक्षित हो। ऐसा याजकही उत्तम फल प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

देवताओंकी स्तुति पुत्र पौत्रोंका संरक्षण करती है। देवोंका वर्णन सुनकर तद्वत् आचरण करनेके लिए मनमें स्फूर्ति उत्पन्न होती है फिर तद्वत् आचरण करनेसे मनुष्यकी सुरक्षा होती है। पश्चात् वह आदमी उत्तम रत्न धारण करके, उत्तम वस्त्रों और अलंकारोंको धारण करके, जहां यज्ञ होता है, वहां जाता है ॥ ५ ॥

वरुणका कर्तृत्व बड़ा प्रभावशाली है। उसके कर्म बड़े प्रभावशाली हैं। वह द्युलोक और भूलोकको यथास्थान सुस्थिर करता है। सूर्यको प्रकाशित करके दिन बनाता है और अन्धकारके समय नक्षत्रोंको प्रकाशित करता है। इसीने भूमिको भी विशाल बनाया है। यह वरुण ईश्वरही है, जो यह सब करता है ॥ १ ॥

६९० उत स्वया तन्वा३ सं वदे तत् कदा न्व१न्तर्वरुणे भुवानि ।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ॥ २ ॥
६९१ पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षू—पो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहु—रयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥ ३ ॥
६९२ किमाग आस वरुण ज्येष्ठं यत् स्तोतारं जिघांससि सखायम् ।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावो ऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ॥ ४ ॥
६९३ अव द्रुग्धानि पित्र्या सृजा नो ऽव या वयं चकृमा तनूभिः ।
अव राजन् पशुतृपं न तायुं सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [६९०] (उत स्वया तन्वा सं वदे) क्या मैं अपने इस शरीरसे वरुणके साथ बोलूं ? और (कदा तत् वरुणं अन्तः भुवानि) कब मैं वरुणके अन्दर हो जाऊं ? (मे हव्यं अहृणानः जुषेत किं) मेरा क्या हवनीय द्रव्य क्रोध रहित होकर वरुण स्वीकार करेगा ? (कदा सुमनाः मृळीकं अभिख्यं) कब मैं उत्तम विचारवाला होकर सुखदायी वरुणको देख सकूं ? ॥ २ ॥

[६९१] हे (वरुण) वरुण ! (दिदृक्षु तत् एनः पृच्छे) जाननेकी इच्छा करके मैं उस अपने पापके विषयमें तुमसे पूछता हूं । (विपृच्छं चिकितुषः उपो एमि) मैं पूछनेकी इच्छासे विद्वानोंके पास भी गया हूं, उन (कवयः चित् मे समानं इत् आहुः) ज्ञानियोंने मुझे एकही उत्तर दिया है कि (अयं वरुणः तुभ्यं हृणीते ह) निश्चयसे यह वरुण तुम्हारे ऊपर क्रोधित हुआ है ॥ ३ ॥

[६९२] हे (वरुण) वरुण ! (किं ज्येष्ठं आगः आस) क्या मेरा ऐसा कोई बड़ा भारी अपराध हुआ है ? (यत् सखायं स्तोतारं जिघांससि) जो तू अपने भक्त स्तोत्र पाठक मुझ जैसेको भी मारता है ? हे (दूळभ स्वधावः) न दबनेवाले तेजस्वी वरुण देव ! यदि (तत् मे प्रवोचः) वह मेरा पाप है तो मुझे कह दो जिससे मैं (अनेनाः तुरः नमसा त्वा अव इयां) निष्पाप बनकर सत्वर नम्रतापूर्वक तुम्हारे पास प्राप्त होऊं ॥ ४ ॥

[६९३] हे वरुण ! (पित्र्या नः द्रुग्धानि अवसृज) हमारे पिता आदिसे हुए द्रोहको दूर करो । (वयं तनूभिः या चकृम अवसृज) हमने अपने शरीरोंसे किये जो पाप होंगे उनको भी दूर करो ! हे राजन् वरुण ! (पशुतृपं तायुं न अवसृज) पशुकी चोरी करके उस पशुको तृप्त करनेवाले चोरको जैसे दूर करते हैं वैसे मेरे पाप दूर करो । (दाम्नः वत्सं न वसिष्ठं अवसृज) रस्सीसे बछडेको छोडनेके समान इस वसिष्ठको पापसे छुडाओ ॥ ५ ॥

भावार्थ— क्या मैं परमेश्वरके साथ बोल सकूंगा ? मैं कब प्रभुके अन्दर पहुंचूंगा ? मेरा अर्पण किया हुआ क्या प्रभु स्वीकार करेगा ? मैं प्रभुका साक्षात्कार कब कर सकूंगा ? ऐसे विचार भक्तके मनमें उठते हैं । वह प्रभु हर एककी प्रार्थना सुनता है । वह प्रत्येक व्यक्तिके अन्दर हैं । अतः भक्त जो कुछ भी अर्पण करता है, उसे प्रभु स्वीकार करता है । हृदयके निर्मल होनेपर प्रभुका साक्षात्कार होता है ॥ २ ॥

मैं अपने पापके विषयमें सच सच बातें जानना चाहता हूं कि मैंने कौनसा पाप किया है जिसके कारण मुझे ये कष्ट हो रहे हैं ! मैंने विद्वानोंसे भी पूछा तो सभी विद्वानोंने एक स्वरसे कहा कि तुम्हारे ऊपर प्रभुका क्रोध है ॥ ३ ॥

हे वरुण ! मुझसे ऐसा कौनसा अपराध हो गया है कि जो तू मुझे मारना चाहता है । हे देव ! यदि मुझसे कोई ऐसा अपराध हो भी गया हो तो वह मेरा पाप मुझसे बता, जिससे मैं निष्पाप बनकर नम्रतापूर्वक तुम्हारे पास आऊं ॥ ४ ॥

पिता-पितामहने जो पाप हुए होते हैं उनका संस्कार हमारे शरीर पर भी होता है । बीजरूपसे वे दोष हमारे अन्दर आते हैं, उनसे छुटकारा प्राप्त करना चाहिए । जो पाप हम अपने शरीरसे करते हैं, उनसे भी छुटकारा प्राप्त करना चाहिए ॥ ५ ॥

६९४ न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः ।
अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥ ६ ॥

६९५ अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः ।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥ ७ ॥

६९६ अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

अर्थ— [६९४] हे (वरुण) वरुण ! (सः स्वः दक्षः न) वह अपना निज बल पापके लिये कारण नहीं होता । (ध्रुतिः) प्रगतिमें रुकावट होनेसे पापमें प्रवृत्ति होती है, (सुरा) मद्य, शराब, (मन्युः) क्रोध, (विभीदकः) धूत, जुआ (अचित्तिः) अज्ञान, चित्त लगाकर कार्य न करनेकी वृत्ति ये पापमें प्रवृत्त करनेवाली प्रवृत्तियां हैं । (कनीयसः ज्यायान् उपारे अस्ति) हीन पुरुषको श्रेष्ठ पुरुष पास रहकर पापमें प्रवृत्त करता है तथा (स्वप्नः चन अनृतस्य प्रयोता इत्) निद्रा या सुस्ती भी अनृत या पापमें प्रवृत्त करनेवाली है ॥ ६ ॥

[६९५] (मीळ्हुषे भूर्णये) इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले और भरण पोषण करनेवाले (देवाय) ईश्वरके लिये-वरुण देवकी (अनागाः) निष्पाप होकर (अहं) मैं (अरं कराणि) सेवा करता हूं । (दासः न) सेवकके समान मैं ईश्वरकी सेवा करूंगा । (अर्यः देवः अचितः अचेतयत्) वह श्रेष्ठ देव हम अज्ञानियोंको प्रेरित करता है । (कवितरः गृत्सं राये जुनाति) वह अधिक ज्ञानी ईश्वर स्तोताको धनकी ओर प्रेरित करता है ॥ ७ ॥

[६९६] हे (स्वधावः वरुण) अन्न पास रखनेवाले वरुण ! (तुभ्यं अयं स्तोमः) तुम्हारे लिये यह स्तोत्र (हृदि चित् सु उपश्रितः अस्तु) हृदयमें उत्तम रीतिसे रहनेवाला हो । तुम्हारे लिये यह हृदयंगम हो । (नः क्षेमे शं) हमारे क्षेममें कल्याण हो और (नः योगे शं अस्तु) हमारे लाभमें भी कल्याण हो । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारा सदा कल्याणके साधनोंसे संरक्षण करो ॥ ८ ॥

भावार्थ— प्रगतिमें रुकावट होनेसे पापमें प्रवृत्ति होती है । सुरा पीने, क्रोध, जुआ और अज्ञानसे पाप उत्पन्न होता है । जब मनुष्यकी प्रगतिमें कोई बाधा उत्पन्न करता है, तब मनुष्य बाधा उत्पन्न करनेवालेके प्रति मन ही मन द्वेष करता है और यह द्वेष ही उसे पापमें प्रवृत्त करता है । बडा छोटेको पापमें प्रवृत्त करता है । धनी निर्धनको, बलवान् निर्बलको तथा ज्ञानी अज्ञ लोगों पापमें प्रवृत्त करता है । निद्रा सुस्ती और आलस्य ये भी पापके प्रवर्तक हैं ॥ ६ ॥

भक्तकी सदिच्छाओंको पूर्ण करनेवाले सबका भरणपोषण करनेवाले ईश्वरकी सेवा मैं निष्पाप होकर करूं । परमेश्वर सबका पालक है और सबको निष्पाप बनानेवाला है, इसलिए उसकी सेवा करनेसे मनुष्य निष्पाप बनता है । यह श्रेष्ठ देव अज्ञानियोंको ज्ञान देकर सत्कर्ममें प्रेरित करता है और उन्हें धन-प्राप्तिकी ओर प्रेरित करता है ॥ ७ ॥

हमारे क्षेममें भी हमारा सच्चा कल्याण हो प्राप्त की हुई वस्तुओंकी रक्षा करनेको क्षेम कहते हैं । वह क्षेम हमारे लिए कल्याण करनेवाला हो । तथा अप्राप्त वस्तुको प्राप्त करनेके लिए जो हम प्रयत्न करते हैं, उससे भी हमारा कल्याण हो तथा हमारी सेना प्रभुकी प्रसन्न करनेवाली हो ॥ ८ ॥

[८७]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वरुणः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६९७ रदत् पथो वरुणः सूर्याय प्रार्णांसि समुद्रिया नदीनाम् ।
सर्गो न सृष्टो अर्वतीर्ऋतायञ्चकार महीरवनीरहभ्यः ॥ १ ॥

६९८ आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत् पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान् ।
अन्तर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि ॥ २ ॥

६९९ परि स्पशो वरुणस्य स्मदिष्टा उभे पश्यन्ति रोदसी सुमेके ।
ऋतावानः कवयो यज्ञधीराः प्रचेतसो य इषयन्त मन्म ॥ ३ ॥

---

[८७]

अर्थ— [६९७ यह (वरुणः देवः सूर्याय पथः प्र रदत्) वरुण देवने सूर्यके लिये मार्ग नियत कर दिया है । (नदीनां अर्णांसि समुद्रिया प्र) नदियोंके जल प्रवाह समुद्रके बन चुके हैं । (सर्गः अर्वतीः सृष्टः न) घोडा जैसा घोडियोंके पास दौडता है, उस तरह (ऋतायन महीः अवनीः अहभ्यः चकार) शीघ्र जानेवाले सूर्यने बडी रात्रियोंको दिनोंसे पृथक् निर्माण किया है । पर वे परस्पर जुडे हैं । एकके पीछे दूसरा लगा है ॥ १ ॥

[६९८] (ते वातः आत्मा) तेरा आत्मा वायु है । वह वायु (रजः आ नवीनोत्) धूलिको चारों ओर उडाता है । (पशुः न यवसे ससवान्) पशु जैसा घाससे बलवान् होता है, उस तरह (भूर्णिः) भरण पोषण करनेवाला प्रभु बलवान् है । हे वरुण ! (इमे मही बृहती रोदसी) ये बडे द्युलोक और भूलोकके (अन्तः) मध्यमें (ते विश्वा धाम प्रियाणि) तेरे सब स्थान सब लोगोंको प्रिय हैं ॥ २ ॥

[६९९] (वरुणस्य स्पशः स्मदिष्टाः) वरुणके चर प्रशस्त गतिवाले हैं । वे (सुमेके उभे रोदसी परि पश्यन्ति) सुन्दर रूपवाले द्युलोक और भूलोकका निरीक्षण करते हैं । (ये ऋतावानः कवयः यज्ञधीराः प्रचेतसः) जो सत्कर्म कर्ता ज्ञानी यज्ञ करनेवाले विशेष बुद्धिमान होते हैं, जो (मन्म इषयन्त) स्तोत्र पाठको प्रभुतक पहुंचाते हैं उनका भी वे चर निरीक्षण करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— परमेश्वरने सूर्यका मार्ग नियत कर दिया है, वृष्टिका जल नदियों द्वारा समुद्रमें जाता है और समुद्ररूप हो जाता है । सूर्य दौडता है उस कारण दिन और रात्री पृथक् होती है । सूर्य जिस तरह अपना मार्ग नहीं छोडता है, उसी तरह सज्जन भी अपना मार्ग न छोडें । वृष्टिका जल जिस तरह समुद्रमें जाकर एकरूप हो जाता है, उसी तरह सबका जीवन एकरूप हो । घोडा जिस तरह घोडीकी तरफ आकर्षित होता है, उसी तरह स्त्री पुरुष एक दूसरेकी तरफ प्रेमसे आकर्षित हों । जिस तरह दिन-रात परस्पर संगत हैं, उसी तरह स्त्री-पुरुष परस्पर संगत रहें ॥ १ ॥

यह वायु सब विश्वका प्राण है । यह चारों ओर धूलिको उडाता है अथवा अन्तरिक्षसे वृष्टिके जलको लाता है । सबका पोषण करनेवाला प्रभु सब प्रकारके बलसे युक्त है, इसलिए उसके सब स्थान मानवोंको प्रिय होते हैं । आत्मा सबका प्रेरक है, वह सब शरीरको चलाता है, उसी तरह सब विश्वको यह वायुरूपी प्राण चलाता है ॥ २ ॥

वरुणके गुप्तचर सर्वत्र गमन करते हैं और सबका निरीक्षण करते हैं । विश्वभरमें उनकी गति होती है और वे ज्ञानी यज्ञकर्ता कवि भक्तका भी निरीक्षण करते हैं । कोई भी उनके निरीक्षणसे नहीं छूटता । जो अच्छा काम करते हैं वे पुण्यके भागी होते हैं और जो बुरा कर्म करते हैं, वे पापके भागी होते हैं ॥ ३ ॥

७०० उवाच मे वरुणो मेधिराय त्रिः सप्त नामाघ्न्या बिभर्ति ।
विद्वान् पदस्य गुह्या न वोचद् युगाय विप्र उपराय शिक्षन् ॥ ४ ॥
७०१ तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन् तिस्रो भूमीरुपराः षड्विधानाः ।
गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं दिवि प्रेङ्खं हिरण्ययं शुभे कम् ॥ ५ ॥
७०२ अव सिन्धुं वरुणो द्यौरिव स्याद् द्रप्सो न श्वेतो मृगस्तुविष्मान् ।
गम्भीरशंसो रजसो विमानः सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा ॥ ६ ॥
७०३ यो मृळयाति चक्रुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः ।
अनु व्रतान्यदितेर्ऋधन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

अर्थ— [७००] (मेधिराय मे वरुणः उवाच) बुद्धिमान मुझसे वरुणने कहा था, (अघ्न्या त्रिः सप्त नाम बिभर्ति) गौके तीन गुणा सात अर्थात् इक्कीस नाम होते । पृथिवी, वाणी तथा गौके नाम इक्कीस हैं । (विद्वान् विप्रः) उस ज्ञानी बुद्धिमान वरुणने (उपराय युगाय शिक्षन्) समीप आनेवाले अपने शिष्यको सिखानेकी इच्छासे (पदस्य गुह्या न वोचत्) पदके गुप्त रहस्योंको जैसा कहते हैं वैसा कहा । वैसा उपदेश किया है ॥ ४ ॥

[७०१] (अस्मिन् अन्तः तिस्रः द्यावः निहिताः) इसके मध्यमें तीन द्युलोक हैं । द्युलोकके तीन विभाग हैं । (तिस्रः भूमीः) तीन भूमियां हैं । भूमिके तीन विभाग हैं । (उपराः षड्विधाः) उनमें छः विभाग छः ऋतुओंके कारण हुए हैं । (गृत्सः राजा वरुणः) प्रशंसनीय राजा वरुणने (एतं हिरण्यं कं प्रेंखं) इस सुवर्ण जैसे सुखदायी प्रेक्षणीय सूर्यको (दिवि शुभे चक्रे) द्युलोकमें सब लोकोंका हित करनेवाले सूर्यको किया है ॥ ५ ॥

[७०२] (वरुणः द्यौः इव सिन्धुं अवस्थात्) वरुणने आकाशके समानही समुद्रकी स्थापना की है । यह वरुण (द्रप्सः न श्वेतः) सोमरसके समान गौरवर्ण है, (मृगः तुविष्मान्) गौरमृगके समान बलवान् है । (गंभीर-शंसः रजसः विमानः) विशाल प्रशंसावाला और अन्तरिक्षका निर्माण करनेवाला (सुपारदक्षः अस्य सतः राजा) उत्तम रीतिसे दुःखसे पार करनेवाला जिसका बल है और यह इस जगतका एकमात्र राजा है ॥ ६ ॥

[७०३] (यः आगः चक्रुषे चित् मृळयाति) जो पाप करनेवालेको भी सुख देता है । उस (वरुणे वयं अनागाः स्याम) वरुणमें हम निष्पाप होकर रहेंगे, निवास करेंगे । (अदितेः व्रतानि अनु ऋधन्तः) अदीन वरुणके व्रतोंका हम संवर्धन करेंगे । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारी सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षा करो ॥ ७ ॥

भावार्थ— पृथ्वी, वाणी तथा गौके इक्कीस नाम हैं । उस ज्ञानी बुद्धिमान् वरुणने अपने भक्तको पदके गुप्त रहस्य बताये । ईश्वरने ज्ञानियोंके हृदयमें मंत्रोंके गुप्त पदोंके रहस्योंको स्पष्ट किया ॥ ४ ॥

वरुणने भूमिके पासका मध्यका तथा इनके बीचका ऐसे आकाशके तीन विभाग किए । उसी तरह समुद्र तीर परकी भूमि, पर्वत शिखरोंकी भूमि तथा उन दोनोंके बीचकी भूमि इस प्रकार तीन तरहकी भूमियोंका निर्माण किया । छः ऋतुओंका भी निर्माण वरुणने किया । इन सबका राजा परमेश्वर है । उसीने सबका कल्याण करनेके लिए आकाशमें सूर्यको स्थापित किया ॥ ५ ॥

परमेश्वरने जिस तरह आकाशको ऊपरही स्थापित किया, उसी तरह समुद्रको उसके योग्य स्थापित किया । वह प्रभु निष्कलंक है, बलवान् है, प्रशंसनीय है, अन्तरिक्षका निर्माता है, इसका सामर्थ्य उपासकको दुःखसे पार करानेवाला है और यह सब जगत्का राजा है ॥ ६ ॥

परमेश्वर दयालु है, अतः वह पाप करनेवालेको भी सुख देता है । हम निष्पाप बनकर परमेश्वरके पास रहें । परमेश्वरके नियमोंका हम पालन करें और हम सुखी हों ॥ ७ ॥

[८८]

(ऋषि:- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वरुणः, (७ पाशविमोचनी) । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७०४ प्र शुन्ध्युवं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं वसिष्ठ मीळ्हुषे भरस्व ।
य ईमर्वाञ्चं करते यजत्रं सहस्रामघं वृषणं बृहन्तम् ॥ १ ॥

७०५ अधा न्वस्य संदृशं जगन्वा- नग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि ।
स्व१र्यदश्मन्नधिपा उ अन्धो ऽभि मा वपुर्दृशये निनीयात् ॥ २ ॥

७०६ आ यद् रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत् समुद्रमीरयाव मध्यम् ।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम् ॥ ३ ॥

७०७ वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधा- दृषिं चकार स्वपा महोभिः ।
स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन् यादुषासः ॥ ४ ॥

[८८]

अर्थ— [७०४] हे वसिष्ठ ! (मीळ्हुषे वरुणाय) कामनापूरक वरुण देवके लिये (शुन्ध्युवं प्रेष्ठां मतिं प्र भरस्व) शुद्ध करनेवाली प्रिय स्तुति करो। (यः) जो वरुण (यजत्रं सहस्रामघं बृहन्तं वृषणं ईं) यजनीय, सहस्रों प्रकारके धनसे युक्त बडे बलवान् इस सूर्यको (अर्वाञ्चं करते) हमारे सन्मुख करता है ॥ १ ॥

[७०५] (अध अस्य वरुणस्य संदृशं जगन्वान्) अब मैं इस वरुणके सुंदर दर्शनको प्राप्त कर चुका हूं और (अग्नेः अनीकं मंसि) अग्निकी ज्वालाओंका वर्णन करता हूं (यत् स्वः अश्मन् अन्धः अधिपाः) जब सुखकर पत्थरपर सोमका रस निकाल कर वरुण अधिक प्रमाणमें पान करते हैं, तब (मा दृशये वपुः अभि निनीयात् उ) मुझे अपने दर्शनीय सुंदर रूपको दर्शाते हैं ॥ २ ॥

[७०६] मैं और (वरुणः च) वरुण देव ये दोनों (नावं आ रुहाव) नौकापर आरूढ होते हैं और (समुद्रं मध्ये प्र ईरयाव) समुद्रमें नौकाको हम चलाते हैं, (यत् अपां स्नुभिः) जब हम जलोंके मध्यमें अन्य नौकाओंके साथ (अधि चराव) विचरते हैं तब (शुभे कं प्रेङ्खं प्र ईङ्खयावहै) कल्याणके लिये झूलेपर हम खेलते जैसे होते हैं ॥ ३ ॥

[७०७] (वसिष्ठं ह वरुणः) वसिष्ठको वरुणने अपनी (नावि आ अधात्) नौकापर चढाया और (सु-अपाः महोभिः ऋषिं चकार) उसको उत्तम कर्म करनेवाला ऋषि अपने सामर्थ्योंसे बनाया (विप्रः स्तोतारं अह्नां सुदिनत्वे यात्) ज्ञानी वरुणने स्तोत्रपाठक वसिष्ठको दिनोंमेंसे उत्तम शुभ दिनमें सफल कर्मकर्ता बनाया । और (द्यावः यात् उषसः यात्) दिन और उषा रात्रियोंको गतिमान् बनाकर (ततनन्) फैला दिया । कालको निर्माण किया, इसमें यह साधक प्राशस्त्यको प्राप्त करे ऐसी योजना वरुणने बनायी ॥ ४ ॥

भावार्थ— प्रभुकी भक्ति उपासकके हृदयको शुद्ध करनेवाली और बुद्धिको प्रेमयुक्त बनानेवाली होती है । जो ईश्वर सूर्यको हमारे सामने उपस्थित करता है, वह बडा ही सामर्थ्यशाली है, इसीलिए वह स्तुतिके योग्य है ॥ १ ॥

यज्ञस्थानमें अग्नि प्रदीप्त किया जाता है, सोमका रस निकाला जाता है, वरुण देवको वह दिया जाता है, तब उसका रूप अधिक सुंदर दीखता है ॥ २ ॥

भक्त और वरुण एक ही नौकापर चढते हैं, वह नौका समुद्रमें तरंगोंके कारण ऊपर और नीचे होती है । इस गतिमें आनन्द और कल्याणकी प्राप्ति है । जब जीव इस शरीररूपी नौकामें आता है, उसी नौकामें परमेश्वर भी चलानेवाला बैठता है, यह नौका संसाररूपी सागरमें चलाई जाती है । आनेवाले सुखदुःखरूपी तरंगोंके कारण यह शरीररूपी नौका भी उन्नत और अवनत होती रहती है । पर यह अवस्था मनुष्यको कल्याण एवं आनन्द प्रदान करनेवाली होती है ॥ ३ ॥

यह शरीररूपी नौका ईश्वरने बनाई, उस नौकापर साधकको बिठाया और उसे ज्ञानी तथा कर्मका कर्ता बनाया । साथही कालका निर्माण करके शुभ दिनोंका सृजन किया ताकि इन शुभ दिनोंमें उत्तम कर्म करके यह जीव उत्तम स्थान पर पहुंचे ॥ ४ ॥

×

७०८ क्व१ त्यानि नौ सख्या बभूवुः सचावहे यदवृकं पुरा चित् ।
बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते ॥ ५ ॥
७०९ य आपिर्नित्यो वरुण प्रियः सन् त्वामागांसि कृणवत् सखा ते ।
मा त एनस्वन्तो यक्षिन् भुजेम यन्धि ष्मा विप्रः स्तुवते वरूथम् ॥ ६ ॥
७१० ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्य१स्मत् पाशं वरुणो मुमोचत् ।
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[८९]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वरुणः । छन्दः- गायत्री, ५ जगती ।)

७११ मो षु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम् । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ १ ॥

अर्थ-- [७०८] हे (वरुण) वरुण ! (तानि नौ सख्या क्व बभूव) वे हमारे मित्रभाव भला कहां बने थे ? (पुरा चित् यत् अवृकं तत् सचावहे) प्राचीन कालका हिंसारहित जो सख्य है, वह हम चाहते हैं । हे (स्वधावः) अपनी निज धारण शक्तिसे युक्त वरुण देव ! (ते बृहन्तं मानं) मैं तेरे बडे परिमाणवाले (सहस्रद्वारं गृहं जगम) सहस्रों द्वारोंवाले घरको जाना चाहता हूं ॥ ५ ॥

[७०९] हे (वरुण) वरुण ! (यः नित्यः आपिः) जो यह वसिष्ठ तुम्हारा नित्य बन्धु और (ते सखा प्रियः सन्) तुम्हारा प्रिय मित्र होता हुआ अब (त्वां आगांसि कृणवत्) तुम्हारे संबंधमें थोडेसे अपराध करनेवाला हुआ है । हे (यक्षिन्) पूजनीय देव ! (ते एनस्वन्तः मा भुजेम) हम तुम्हारे हैं, इसलिये हमसे पाप होनेपर भी उसका भोग हमें करना न पडे ऐसी कृपा करो । (विप्रः स्तुवते वरूथं यंधि स्म) तुम ज्ञानी हो इसलिये मुझ जैसे तुम्हारे भक्तके लिये उत्तम सुखदायी घर दे दो ॥ ६ ॥

[७१०] (ध्रुवासु आसु क्षितिषु क्षियन्तः) इन स्थायी भूप्रदेशोंमें रहनेवाले हम (त्वा) तुम्हारी भक्ति करते हैं । वह (वरुणः अस्मत् पाशं वि मुमोचत्) वरुण हमें अपने पाशसे छुडावे । (अदितेः उपस्थात् अवः वन्वानाः) अदीन वरुणसे हम अपना संरक्षण प्राप्त करते हैं । (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम हमें कल्याणके साधनोंसे सदा सुरक्षित करो ॥ ७ ॥

[८९]

[७११] हे वरुण राजन् ! (अहं मृन्मयं गृहं मो गमं) मैं मिट्टीके घरमें रहना नहीं चाहता, परंतु (सु) सुंदर घर रहनेके लिये चाहता हूं । हे (सुक्षत्र) उत्तम क्षात्रबलवाले प्रभो ! (मृळय) मुझे सुखी कर, (मृळ) आनंदित कर ॥ १ ॥

भावार्थ— जीव और ईश्वरके बीच मित्रता प्राचीन है, सनातन है, वह कब हुई किसीको भी पता नहीं । इन दोनोंकी मित्रतामें निष्कपटता है । यह मित्रता सदा स्थिर रहे, ऐसा यह जीव चाहता है । उसकी इच्छा सदा प्रभुके विशाल घरमें रहनेकी होती है ॥ ५ ॥

भक्त कहता है– हे प्रभो ! मैं तुम्हारा सनातन बन्धु हूं, तुम्हारा प्रिय मित्र हूं । अब मुझसे थोडेसे अपराध हुए तो क्या तुम मुझे उसके लिये दण्ड दोगे ? मैं तुम्हारा भक्त हूं, तुम्हारी भक्ति अब भी कर रहा हूँ, इसलिए थोडेसे पाप होनेपर भी मैं तुम्हारा ही मित्र बनकर रहूँ, ऐसा करो ॥ ६ ॥

यह मनुष्य शरीर अस्थिर होते हुए भी स्थिरसा प्रतीत होता है । इस शरीरको पाकर मनुष्य परमात्माकी ही भक्ति करे । परमात्माकी भक्ति करने पर मनुष्य हर तरहके बन्धनोंसे मुक्त हो जाएगा । तब उसे सर्वशक्तिमान् परमात्माके संरक्षण प्राप्त होंगे ॥ ७ ॥

मनुष्य सदा परमात्माकी भक्ति करके ऐश्वर्य प्राप्त करे । वह सदा आलीशान घरमेंही रहनेकी इच्छा करे । इस प्रकार ऐश्वर्य प्राप्त करके सदा पुष्ट एवं स्वस्थ होनेका प्रयत्न करे क्योंकि जिसके अन्दर बल होता है, वही दूसरोंको सुखी कर सकता है ॥ १ ॥

७१२ यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ २ ॥
७१३ क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ ३ ॥
७१४ अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ ४ ॥
७१५ यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि ।
अचित्ती यत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥ ५ ॥

[९०]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वायुः, ५-७ इन्द्रवायू । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७१६ प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः ।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥ १ ॥

अर्थ— [७१२] हे (अद्रिवः) पर्वतके किलेमें रहनेवाले ! (यत् ध्मातः दृतिः न) जब वायुसे भरपूर भरी चमडेकी थैलीके समान मैं (प्रस्फुरन् एमि) स्फुरण प्राप्त करके चलता हूं तब हे (सुक्षत्र) उत्तम क्षात्र तेजवाले ! (मृळ मृळय) मुझे सुखी करो, मुझे आनंदित करो ॥ २ ॥

[७१३] हे (समह शुचे) धनवान् और पवित्र ! (क्रत्वः दीनता प्रतीपं जगम) कर्म करनेकी दीनताके कारण मैं प्रतिकूल परिस्थितिको प्राप्त हुआ हूं । हे (सुक्षत्र) उत्तम क्षात्रतेजवाले ! (मृळय) इसलिये मुझे सुखी करो, आनंदित करो ॥ ३ ॥

[७१४] (अपां मध्ये तस्थिवांसं) जल प्रवाहोंके मध्यमें मैं हूं तो भी मुझ जैसे (जरितारं तृष्णा अविदत्) स्तोता भक्तको प्यास लग रही है । (सुक्षत्र) हे क्षात्र तेजवाले ! (मृळय) इसलिये मुझे सुखी करो, आनंदित करो ॥ ४ ॥

[७१५] हे (वरुण) वरुण ! (दैव्ये जने यत् किं च) दिव्य जनोंके संबंधमें जो भी कुछ (मनुष्याः अभिद्रोहं चरामसि) हम मनुष्य द्रोह कर रहे हैं तथा (अचित्ती तव यत् धर्म युयोपिम) अज्ञानी अवस्थामें तेरे कर्तव्यका जो हम लोप करते है, हे देव ! (तस्मात् एनसः नः मा रीरिषः) उस पापसे तुम हमारा नाश न कर ॥५॥

[९०]

[७१६] हे (वायो) वायो ! (वीरया वां अध्वर्युभिः शुचयः मधुमन्तः सुतासः) तुम वीरके लिये अध्वर्युओं द्वारा शुद्ध मधुर सोमरस (प्र दद्रिरे) दिये जाते हैं । अतः हे वायु ! (नियुतः वह) घोडियोंको जोतो, (अच्छ याहि) हमारे पास आओ । और (मदाय सुतस्य अन्धसः पिब) आनंदके लिये सोमरस रूप अन्नरसका पान करो ॥ १ ॥

भावार्थ— मनुष्य किले जैसे सुरक्षित स्थानमें रहे और शत्रुओंसे अपना बचाव करे । जिसमें स्फुरण है, उत्साह है, वही प्रयत्न करके उन्नति प्राप्त करता है । दुःखसे पार होनेके तीन साधन हैं- सुरक्षित स्थान, आत्मिक बल और उत्साह ॥ २ ॥

प्रशस्त कर्म करनेकी शिथिलता ही मनुष्यकी अवनति करती है, इसलिए इस तरहकी दीनताको कोई मनुष्य अपने पास आने न दे ॥ ३ ॥

जिस तरह कोई पानीमें रहकर भी प्याससे तडपे, उसी तरह यह जीव भी परमात्माके आनन्दसागरमें रहते हुए भी आनन्दके लिए तडपता है तथा दुःखी होता है । पर उसका दुःख जब सीमाको पार कर जाता है, तब परमात्मा उसे आनन्दका भागी बनाता है ॥ ४ ॥

मनुष्योंका यह स्वभाव ही है कि वे दिव्य जनोंसे सदा द्रोह किया करते हैं तथा सदा अज्ञानमें रहकर अपने अपने कर्तव्यका लोप करते हैं, अर्थात् अपने कर्तव्योंको नहीं करते । यह पाप ही है, मनुष्य इस पापसे बचनेका प्रयत्न न करे ॥ ५ ॥

हे वायो ! तुम वीर हो, इसलिए तुम्हें अध्वर्युगण शुद्ध मधुर सोमरस प्रदान करते हैं, अतः तुम हमारे पास आओ और इस सोमरसरूप अन्नका पान करो ॥ १ ॥

७१७ ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट् शुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो ।
कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं जातोजातो जायते वाज्यस्य ॥ २ ॥
७१८ राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥ ३ ॥
७१९ उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः ।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः ॥ ४ ॥
७२० ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति ।
इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वामीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते ॥ ५ ॥

अर्थ— [७१७] हे (वायो) वायो ! (ईशानाय ते प्रहुतिं यः आनट्) ईश्वर रूप तुमको आहुति जो देता है । हे (शुचिपाः) शुद्ध रसका पान करनेवाले ! (तुभ्यं शुचिं सोमं) तुम्हारे लिये जो शुद्ध सोमरस देता है (तं मर्त्येषु प्रशस्तं कृणोषि) उसको तुम मर्त्योंमें प्रशंसनीय बना देते हो और वह (जातः जातः) सर्वत्र प्रसिद्ध होकर (अस्य वाजी जायते) इस धनको प्राप्त करनेवाला होता है ॥ २ ॥

[७१८] (इमे रोदसी यं राये जज्ञतुः) इन द्यावा पृथिवीने जिस वायुको ऐश्वर्यके लिये निर्माण किया, उस (देवं धिषणा देवी राये धाति) देवको तेजस्वी बुद्धि धनके लिये धारण करती है । (अध स्वाः नियुतः वायुं सश्चत) अपनी घोडियां उस वायुकी सेवा करती हैं । (उत श्वेत वसुधितिं निरेके) और वे उस तेजस्वी धनका धारण करनेवालेको दरिद्रके पास पहुंचाती हैं । [तब वह उसको धन देकर धनी बना देता है ।] ॥ ३ ॥

[७१९] उनके लिये (अरिप्राः सुदिनाः उषसः उच्छन्) निष्पाप दिनोंकी उषायें प्रकाशित हो गयी हैं । वे दिन (दीध्यानाः उरु ज्योतिः विविदुः) प्रकाशित होकर विशेष प्रकाशको प्राप्त हुए । उन्होंने (उशिज गव्यं ऊर्वं वि वव्रुः) इच्छा करके गौओंके समूहको प्राप्त किया । (तेषां प्रदिवः आपः अनुसस्रुः) उनका द्युलोकसे आये जल प्रवाहोंने अनुसरण किया । जल प्रवाह बहने लगे ॥ ४ ॥

[७२०] (ते सत्येन मनसा दीध्यानाः) वे सत्यनिष्ठ मनसे प्रकाशित होनेवाले (स्वेन क्रतुना युक्तासः वहन्ति) अपने यज्ञके साथ संयुक्त होनेके लिये अपने रथको चलाते हैं । हे (इन्द्रवायु) इन्द्र और वायो ! (वां ईशानयोः वीरवाहं रथ) आप स्वामी जैसोंके वीर बैठनेवाले रथको वे वहां ले चलते हैं जहां (पृक्षः अभि सचन्ते) अन्नका प्रदान होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे वायो ! जो तुम्हें शुद्ध सोमरस देता है, उसे तुम मनुष्योंमें प्रशंसनीय बनाते हो और वह सर्वत्र प्रसिद्ध होकर इस धनको प्राप्त करनेवाला होता है ॥ २ ॥

जिस प्राणशक्तिरूपी वायुको परमात्माने उत्पन्न किया, उसे बुद्धि धारण करके ऐश्वर्यशालिनी होती है । ये घोडियां-रूपी इन्द्रियां उस प्राणशक्तिकी सेवा करती हैं और उससे तेजरूपी धन प्राप्त करती हैं ॥ ३ ॥

जो मनुष्य प्राणशक्तिसे युक्त होकर उत्साहसे सम्पन्न होते हैं, उनके लिए दिन विशेषरूपसे प्रकाशित होते हैं, उनके लिए किरणें प्रकाशित होती हैं, उनके लिए जल प्रवाह बहते हैं, । जो मनुष्य सदा उत्साहसे पूर्ण होता है वही इस प्रकृतिमें सर्वत्र सौन्दर्यके दर्शन करता है । उसे दिनके प्रकाशमें परमात्माका तेज और नदियोंके जल प्रवाहोंमें परमात्माकी गति ही दिखाई देती है ॥ ४ ॥

जिनका मन सत्यसे प्रकाशित होता है, वे यज्ञ अर्थात् उत्तम कर्मसे संयुक्त होते हैं । जो अपने शरीरका स्वामी होता है, उसे इन्द्र और वायु अर्थात् जीवात्मा और प्राणशक्ति ऐसे स्थान पर ले जाते हैं, जहां सदा अन्न अर्थात् पोषण प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

७२१ ईशा॒नासो॒ ये दध॑ते॒ स्व॑र्णो॒ गोभि॒रश्वे॑भि॒र्वसु॑भि॒र्हिर॑ण्यैः ।
इन्द्र॑वायू सू॒रयो॒ विश्व॒मायु॒रर्व॑द्भिर्वी॒रैः पृत॑नासु स॒ह्युः ॥ ६ ॥
७२२ अर्व॑न्तो॒ न श्रव॑सो॒ भिक्ष॑माणा इन्द्रवा॒यू सु॑ष्टु॒तिभि॒र्वसि॑ष्ठाः ।
वा॒जयन्तः॒ स्वव॑से हुवेम यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ७ ॥

[९१]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- १, ३ वायुः, २, ४-७ इन्द्रवायू । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७२३ कु॒विद॒ङ्ग नम॑सा॒ ये वृ॒धासः॒ पु॒रा दे॒वा अ॑नव॒द्यास॒ आस॑न् ।
ते वा॒यवे॒ मन॑वे बाधि॒ताया॒ऽवा॑सयन्नु॒षसं॒ सूर्ये॑ण ॥ १ ॥
७२४ उ॒शन्ता॑ दू॒ता न दभा॑य गो॒पा मा॒सश्च॑ पा॒थः श॒रद॑श्च पू॒र्वीः ।
इन्द्र॑वायू सुष्टु॒तिर्वा॑मिया॒ना मा॑र्डी॒कमी॑ट्टे सुवि॒तं च॒ नव्य॑म् ॥ २ ॥

अर्थ— [७२१] हे (इन्द्रवायू) इन्द्र और वायो ! (ये ईशानासः) जो स्वामी (गोभिः अश्वैः वसुभिः हिरण्यैः) गौओं, घोडों, धनों और सुवर्णोंसे युक्त (स्वः नः दधते) सुख हमें देते हैं, वे (सूरयः) ज्ञानी लोग अपने (विश्वं आयुः) संपूर्ण जीवनको (अर्वद्भिः वीरैः पृतनासु सह्युः) अश्वारोही वीरोंके द्वारा शत्रु सैनिकोंके मध्यमें युद्धोंमें शत्रुका पराभव करके विजयी बनाते हैं ॥ ६ ॥

[७२२] (अर्वन्तः न) घोडोंके समान (श्रवसः भिक्षमाणाः) अन्नको ले जानेवाले (वाजयन्तः वसिष्ठाः) और अन्नसे अपना बल बढानेकी इच्छा करनेवाले वसिष्ठ ऋषि (सुष्टुतिभिः सु अवसे) उत्तम स्तोत्रोंके द्वारा हमारे उत्तम संरक्षणके लिये (इन्द्रवायू) इन्द्र और वायुको (हुवेम) बुलाते हैं । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारा सदा कल्याणके साधनोंसे संरक्षण करो ॥ ७ ॥

[९१]

[७२३] (पुरा ये वृधासः देवाः) प्राचीन समयके जो वृद्ध स्तोतागण (कुवित् अंग नमसा) बहुत बार प्रिय स्तोत्रोंके कारण (अनवद्यासः आसन्) प्रशंसित हुए थे वे (बाधिताय मनवे) दुःखी मानवोंके हितके लिये (वायवे) वायुको हवि देनेके समय (सूर्येण उषसं अवासयन्) सूर्यके साथ उषाकी स्तुति करते रहे ॥ १ ॥

[७२४] हे (इन्द्रवायू) इन्द्र वायु ! (उशंता दूता गोपा दभाय न) तुम हितकी इच्छा करनेवाले दूत हमारा संरक्षण करते हो, परंतु कदापि हिंसाके लिये तुम्हारी प्रवृत्ति नहीं होती । तुम (मासः पूर्वीः शरदः च पाथः) महिनों और पूर्ण वर्षोंमें हमारी सुरक्षा करते आये हो । तुम हमारी की हुई (सुष्टुतीः इयाना) उत्तम स्तुतिको सुनो । मैं (मार्डीकं नव्यं सुवितं च ईट्टे) सुखदायक नवीन सुविधाजनक धनकी प्रशंसा करता हूं । वैसा धन मुझे चाहिये ॥ २ ॥

भावार्थ— जो स्वामी गौओं, घोडों, धनों और स्वर्णोंसे युक्त होकर प्रजाओंको सुख देता है, वह ज्ञानी होकर सब शत्रुओंको जीतकर विजयी बनता है ॥ ६ ॥

अन्न खाकर घोडोंके समान पुष्ट होनेवाले ज्ञानीजन उत्तम स्तोत्रोंसे इन्द्र और वायुको बुलाते हैं और ये दोनों देव भी कल्याणकारी साधनोंसे उनकी रक्षा करते हैं ॥ ७ ॥

प्राचीन कालके जो ज्ञानी स्तोता थे, वे अपने प्रिय स्तोत्रोंके कारण प्रशंसित हुए, वे दुःखी मानवोंको सुखी बनानेके लिए वायुकी स्तुति करते थे ॥ १ ॥

ये इन्द्र और वायु अनन्त कालसे मनुष्योंका हित करते आए हैं, पर उनकी हिंसा कदापि नहीं करते । वे ऐसा धन मनुष्योंको प्रदान करते हैं, जो सुखदायक और हर तरहकी सुविधाओंको देनेवाला होता है ॥ २ ॥

७२५ पीवोअन्नाँ रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः ।
ते वायवे समनसो वि तस्थु- र्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ ३ ॥
७२६ यावत् तरस्तन्वो॒ यावदोजो यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः ।
शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे इन्द्रवायू सदतं बर्हिरेदम् ॥ ४ ॥
७२७ नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक् ।
इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्र- मध प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे ॥ ५ ॥
७२८ या वां शतं नियुतो याः सहस्र- मिन्द्रवायू विश्ववाराः सचन्ते ।
आभिर्यातं सुविदत्राभिरर्वाक् पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ॥ ६ ॥

अर्थ— [७२५] (पीवो अन्नान् रयिवृधः) बहुत अन्नवाले और धनसे समृद्ध जनोंकी (सुमेधाः नियुतां अभिश्रीः श्वेतः) उत्तम मेधावाला घोडोंकी शोभा बढानेवाला श्वेतवर्ण वायु (सिषक्ति) सेवा करता है । (ते नरः) वे नेता लोग (समनसः वायवे वि तस्थुः) समान विचारवाले होकर वायुकी उपासना करते हैं । उन लोगोंने (विश्वा सु अपत्यानि चक्रुः) सब सुप्रजा निर्माण करनेके कार्य उत्तम रीतिसे किये ॥ ३ ॥

[७२६] हे (इन्द्रवायू) इन्द्र वायु ! (यावत् तन्वः तरः) तुम्हारे शरीरका जितना वेग है, (यावत् ओजः) जितना बल है, (यावत् नरः चक्षसा दीध्यानाः) जितने मनुष्य ज्ञानसे तेजस्वी होते हैं, उस प्रमाणसे (शुचिपा अस्मे शुचिं सोमं पातं) शुद्ध सोमरसको पीनेवाले देव हमारे इस शुद्ध सोमरसको पीवें । (इदं बर्हिः आ सदतं) इस आसनपर आकर बैठें ॥ ४ ॥

[७२७] हे (इन्द्रवायू) इन्द्रवायू ! (स्पार्हवीरा) स्पृहणीय वीर ऐसे (नियुतः) घोडोंको अपने (सरथं नियुवाना) एकही रथमें जोतनेवाले तुम (अर्वाक् यातं) हमारे पास आओ । (इदं मध्वः अग्रं वां प्रभृतं) यह मधुर सोमका मुख्य भाग तुम्हारे लिये भरा रखा है । (अध प्रीणाना अस्मे वि मुमुक्तं) अब इससे संतुष्ट होकर तुम हमें पापसे मुक्त करो ॥ ५ ॥

[७२८] हे (इन्द्र वायू) इन्द्रवायू ! (याः नियुतः शतं वां) जो सौ घोडे तथा (याः विश्ववाराः सहस्रं सचन्ते) जो सबको वरणीय सहस्र घोडे तुम्हारी सेवा करते हैं, (आभिः सुविदत्राभिः अर्वाक् आ यातं) इन उत्तम धन देनेवाले घोडोंके साथ हमारे समीप आओ । हे (नरा) नेता लोगो ! (प्रतिभृतस्य मध्वः पातं) इस भरे रखे सोमरसका पान करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— पर्याप्त अन्न और धनवाले लोग उत्तम वायुका सेवन करते हैं और समान विचारवाले होकर सुप्रजा निर्माण करनेका कार्य करते हैं ॥ ३ ॥

जितना शरीरमें बल और सामर्थ्य है, तथा जहां तक दृष्टि जाती है, वहां तक शुद्धता और पवित्रताके प्रयत्न करना चाहिए ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और वायु ! तुम अपनी समस्त शक्तियोंके साथ हमारे पास आओ, यह मधुरतासे पूर्ण अन्नका भाग तुम्हारे लिए प्रस्तुत है, तुम इसे खाकर और सन्तुष्ट होकर हमें पापसे मुक्त करो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र और वायु ! जो सौ या हजारों शक्तियां तुम्हारी सेवा करती हैं, उन सब शक्तियोंसे युक्त होकर हमारे पास आओ और हमारे द्वारा दिए गए सोमरसको पीओ ॥ ६ ॥

७२९ अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[९२]

(ऋषि.- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वायुः, २,४ इन्द्रवायू । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७३० आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥ १ ॥

७३१ प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात् सोममिन्द्राय वायवे पिबध्यै ।
प्र यद् वां मध्वो अग्रियं भरन्त्यध्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः ॥ २ ॥

७३२ प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।
नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥ ३ ॥

अर्थ— [७२९] (अर्वन्तः न) घोडोंके समान (श्रवसः भिक्षमाणाः) अन्नको ले जानेवाले (वाजयन्तः वासेष्ठाः) और अन्नसे अपना बल बढानेकी इच्छा करनेवाले वसिष्ठ ऋषि (सुष्टुतिभिः सु अवसे) उत्तम स्तोत्रोंके द्वारा हमारे उत्तम संरक्षणके लिए (इन्द्रवायू) इन्द्र और वायुको (हुवेम) बुलाते हैं । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारा सदा कल्याणके साधनोंसे संरक्षण करो ॥ ७ ॥

[९२]

[७३०] हे (शुचिपाः वायो) शुद्ध सोमरसका पान करनेवाले वायो ! (नः उप आ भूष) हमारे समीप आओ । हे (विश्ववार) सबके सेवनीय ! (ते सहस्रं नियुतः) तेरी घोडियां सहस्रों हैं । (ते मद्यं अन्धः उपो अयामि) तुम्हारे लिये यह आनन्ददायक सोमरस पात्रमें भरकर लाता हूं । हे देव ! (यस्य पूर्वपेयं दधिषे) जिस रसका तुम प्रथम पान करते हो ॥ १ ॥

[७३१] (जीरः सोता) सत्वर कर्म करनेवाले रस निकालने वालेने (इन्द्राय वायवे च पिबध्यै) इन्द्र और वायुके पानेके लिये (अध्वरेषु सोमं प्र अस्थात् , यज्ञोंमें सोमको रखा है हे इन्द्रवायो ! (देवयन्तः अध्वर्यवः शचीभिः) देवत्व प्राप्तिकी कामना करनेवाले अध्वर्युगण अपनी शक्तियोंसे (यत् वां मध्वः अग्रियं प्रभरन्ति) इस सोमके प्रथम भागको आपके लिये भर रखते हैं ॥ २ ॥

[७३२] हे (वायो) वायो ! (दुरोणे इष्टये) यज्ञ स्थानमें इष्टिके लिये (दाश्वांसं याभिः नियुद्भिः अच्छ प्रयासि) दाताके पास जिन घोडियोंसे तुम जाते हो । वैसे हमारे पास आओ और (नः सुभोजसं रयिं) हमें उत्तम अन्नवाले धनको तथा (वीरं गव्यं अश्व्यं च राधः) वीर पुत्र गौ घोडे आदि वैभव (नि युवस्व) दो ॥ ३ ॥

भावार्थ— अन्न खाकर घोडोंके समान पुष्ट होनेवाले ज्ञानी जन उत्तम स्तोत्रोंसे इन्द्र और वायुको बुलाते हैं और ये दोनों देव भी कल्याणकारी साधनोंसे उनकी रक्षा करते हैं ॥ ७ ॥

सर्वत्र शुद्धता एवं पवित्रता करनेवाले वायु देवकी अनेकों शक्तियां हैं, इन शक्तियोंसे युक्त होकर वह आनन्द दायक सोमरसको पीता है ॥ १ ॥

हर काम शीघ्रतासे करनेवाले यज्ञकर्ता इन्द्र और वायुके लिए सोमको तैय्यार करते हैं । देवत्वको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले अध्वर्युगण अपनी शक्तियोंसे इस सोमको इन देवताओंके लिए प्रदान करते हैं ॥ २ ॥

हे वायो ! यज्ञस्थानमें यज्ञके समय दाताके पास जिन घोडियोंसे तुम जाते हो, वैसे हमारे पास आओ तथा हमें हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान करो ॥ ३ ॥

७३३ ये वायव इन्द्रमादनास आदेवासो नितोशनासो अर्यः ।
घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम सासह्वांसो युधा नृभिरमित्रान् ॥ ४ ॥
७३४ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
वायो अस्मिन् त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[९३]

(ऋषि- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्राग्नी । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७३५ शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्ये न्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।
उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा ॥ १ ॥
७३६ ता सानसी शवसाना हि भूतं साकंवृधा शवसा शूशुवांसा ।
क्षयन्तौ रायो यवसस्य भूरेः पृङ्क्तं वाजस्य स्थविरस्य घृष्वेः ॥ २ ॥

अर्थ— [७३३] (ये इन्द्र-मादननासः) जो इंद्रको आनंद देनेवाले तथा (वायव) वायुको प्रसन्न करनेवाले हैं तथा (ये आ देवासः) वे देवके भक्त (अर्यः नितोशनासः) शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं, वैसे हम सब (सूरिभिः वृत्राणि घ्नन्तः स्याम) विद्वान वीरोंके साथ रहकर शत्रुओंका नाश करनेवाले तथा (युधा अमित्रान् नृभिः ससह्वांसः) युद्धमें शत्रुओंका वीरोंसे पराभव करनेवाले हों ॥ ४ ॥

[७३४] हे (वायो) वायो ! (नः अध्वरं यज्ञं) हमारे हिंसा रहित यज्ञके पास तुम (शतनीभिः सहस्रणीभिः नियुद्भिः उप आ याहि) सौ अथवा सहस्र घोडियोंके साथ आओ (अस्मिन् सवने मादयस्व) इस सवनमें रस पीकर आनन्दित हो (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारी सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षा करो ॥ ५ ॥

[९३]

[७३५] हे (वृत्रहणा इन्द्राग्नी) शत्रुका नाश करनेवाले इन्द्र और अग्नि ! (शुचिं नवजातं स्तोमं अद्य जुषेथां) शुद्ध नवीन स्तोत्रका तुम अब सेवन करो । (सुहवा उभा हि वां जोहवीमि) उत्तम प्रशंसा योग्य तुम दोनोंको मैं बुलाता हूँ । (ता उशते वाजं धेष्ठा) वे तुम दोनों उन्नतिकी इच्छा करनेवालेके लिये अन्न बल वा सामर्थ्य धारण करनेवाले बनो ॥ १ ॥

[७३६] हे इन्द्र और अग्नि ! (ता सानसी शवसाना भूतं) वे आप दोनों सेवाके योग्य और बलवान् हैं । तथा (साकं वृधा शूशुवांसा) साथ साथ बढनेवाले तथा प्रभावी बनो । और (रायः भूरेः यवसस्यं क्षयन्तौ) धन और बहुत अन्नको अपने पास रखनेवाले बनो और (स्थविरस्य वाजस्य धृष्वेः पृक्तं) बहुत अन्न और शत्रुनाशक बल हमें दे दो ॥ २ ॥

भावार्थ— हम विद्वान् वीरोंकी सहायतासे प्रबल हों और युद्धमें शत्रुओंका पराभव करें । हम इन्द्र और वायुको आनन्द प्रदान करके शत्रुओंको पराजित करें ॥ ४ ॥

हे वायो ! अपनी अनेक तरहकी शक्तियोंसे युक्त होकर हमारे यज्ञमें आओ । प्रातःसवनमें निचोडे गए रसको पीकर तुम आनन्दित होओ । प्रातःसवनमें सोमरस निचोडा जाता है और उसी समय पीया जाता है, इसलिए उसमें मूर्छा लानेवाली मादकता नहीं होती ॥ ५ ॥

हे इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनों आवरण डालनेवाले वृत्रको मारनेवाले हो । तुम दोनों इस नवीन स्तोत्रका सेवन करो । तथा उन्नतिकी इच्छा करनेवालोंको तुम अन्न, बल और सामर्थ्य दो ॥ १ ॥

इन्द्र और अग्नि दोनों साथ साथ बढनेवाले होनेके कारण प्रभावशाली हैं तथा धन तथा अन्नको अपने पास रखनेवाले हैं तथा शत्रुविनाशक हैं । इसी तरह जो एक दूसरेको सहकार देकर बढाते हैं, वे प्रभावशाली होते हैं, धन-धान्यसे युक्त होते हैं और सामर्थ्यसे युक्त होनेके कारण शत्रुविनाशक होते हैं ॥ २ ॥

७३७ उपो ह यद् विदथं वाजिनो गु--र्धीभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः ।
अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ॥ ३ ॥

७३८ गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईट्टे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।
इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥ ४ ॥

७३९ सं यन्मही मिथती स्पर्धमाने तनूरुचा शूरसाता यतैते ।
अदेवयुं विदथे देवयुभिः सत्रा हतं सोमसुता जनेन ॥ ५ ॥

७४० इमामु षु सोमसुतिमुप न एन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।
नू चिद्धि परिमम्नाथे अस्मा--ना वां शश्वद्भिर्ववृतीय वाजैः ॥ ६ ॥

अर्थ— [७३७] (वाजिनः विप्राः प्रमतिं इच्छमानाः) बलवान ज्ञानी उत्तम बुद्धिकी इच्छा करनेवाले (यत् विदथं उपो गुः) यज्ञके पास जाते हैं, यज्ञमें भाग लेते हैं। वैसे (ते नरः) वे नेता लोग (अर्वन्तः न काष्ठां) घोडे युद्ध भूमिमें जानेके समान (नक्षमाणाः इन्द्राग्नी जोहुवन्त) जाते हुए इन्द्र और अग्निको बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[७३८] हे इन्द्र और अग्नि ! (प्रमतिं इच्छमानः विप्रः) विशेष बुद्धिकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला ज्ञानी (यशसं पूर्वभाजं रयिं ईट्टे) यशस्वी और प्रथम उपभोग लेने योग्य धनकी प्रशंसा गाता है। हे (वृत्रहणा सुवज्रा इन्द्राग्नी) वृत्रका वध करनेवाले उत्तम वज्रधारी इन्द्र और अग्नि !(नव्येभिः देष्णैः नः प्रतिरतं) नवीन तथा देने योग्य धनोंसे हमें संवर्धित करो ॥ ४ ॥

[७३९] (मही मिथती) विशाल और परस्पर स्पर्धा करनेवाली (शूरसाता तनूरुचा सं यतैते) शूरोंके लिये भाग लेने योग्य शत्रुसेनाओंके मध्यमें वीर अपने शरीरके तेजसे मिलकर यशके लिये यत्न करते हैं, वहां (सोमसुता जनेन सत्रा) यज्ञ करनेवाले मनुष्यके साथ रहकर तथा (देवयुभिः) देव भक्तोंके साथ रहकर वीर (अदेवयुं विदथे हतं) देव विरोधी शत्रुका नाश करें ॥ ५ ॥

[७४०] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (इमां नः सोमसुतिं) इस हमारे सोमयागके पास (सौमनसाय सु आयातं) उत्तम मनके भावको बढानेके लिये आओ। (अस्मान् नूचित् परि मम्नाथे) हमारा त्याग करनेका विचार भी तुम कदापि नहीं करते हो। (वां शश्वद्भिः वाजै आ ववृतीय) इसलिये तुम्हें बार बार अन्नोंसे इधर बुलाता हूं। हमारी ओर आनेके लिये प्रवर्तित करता हूं ॥ ६ ॥

भावार्थ— बलवान् ज्ञानी अपनी बुद्धिको उत्कृष्ट बनानेकी इच्छासे स्पर्धा क्षेत्रमें जाते हैं और वहां अपनी बुद्धिको प्रकट करते हैं। घोडे जिस तरह प्रगति करते हैं, वैसे ही नेतागण अपनी प्रगति करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ३ ॥

बुद्धिको उत्तम बनानेकी इच्छा करनेवाला ज्ञानी पुरुष प्रथम उपभोग करने योग्य यशस्वी धनका ही गुणगान करता है। यशकी वृद्धि करनेवाला धन ही प्राप्त करने योग्य है। जिनके पास उत्तम शस्त्रास्त्र होते हैं, वे ही शत्रुओंका नाश करते हैं ॥ ४ ॥

बडी विशाल लडनेवाली और भाग लेने योग्य शत्रुसेनाओंके युद्धके समय जिन वीरोंमें अपना तेज है, वे ही वीर मिलकर विजयके लिए प्रयत्न करते हैं। भक्तोंके साथ और यज्ञकर्ताओंके साथ रहकर देव द्वेष्टा शत्रुओंका नाश करते है ॥ ५ ॥

हे इन्द्र और अग्नि देवो ! हमारे मनोंमें उत्तम भावोंको बढानेके लिए सदा हमारे पास रहो। हमारा त्याग करनेका विचार भी मत करो। मैं तुम्हें बार बार अपनी ओर बुलाता हूँ ॥ ६ ॥

७४१ सो अ॑ग्न ए॒ना नम॑सा॒ समि॑द्धो॒ ऽच्छा॑ मि॒त्रं वरु॑ण॒मिन्द्रं॑ वोचेः ।
यत् सी॒माग॑श्चकृ॒मा तत् सु मृ॑ळ॒ तद॑र्य॒मादि॑तिः शिश्रथन्तु ॥ ७ ॥
७४२ ए॒ता अ॑ग्न आशुषा॒णास॑ इ॒ष्टी॒र्यु॒वोः सचा॒भ्य॑श्याम॒ वाजा॑न् ।
मेन्द्रो॑ नो॒ विष्णु॑र्म॒रुतः॒ परि॑ ख्यन् यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ८ ॥

[९४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्राग्नी । छन्दः- गायत्री, १२ अनुष्टुप् ।)

७४३ इ॒यं वा॑म॒स्य मन्म॑न॒ इन्द्रा॑ग्नी पू॒र्व्यस्तु॑तिः । अ॒भ्राद् वृ॒ष्टिरि॑वाजनि ॥ १ ॥
७४४ शृ॒णु॒तं ज॑रि॒तुर्हव॒मिन्द्रा॑ग्नी॒ वन॑तं॒ गिरः॑ । ई॒शा॒ना पि॑प्यतं॒ धियः॑ ॥ २ ॥

अर्थ— [७४१] हे (अग्ने) अग्ने ! (सः एना मनसा समिद्धः) वह तू उत्तम मनसे प्रदीप्त होकर (मित्रं इन्द्रं वरुणं च वोचेः) मित्र इन्द्र और वरुणके पास जाकर कह कि हमने (यत् आगः सीं चकृम) जो अपराध किया है (तत् सु मृळ) उससे हमें बचाकर सुखी करो तथा (तत् अर्यमा अदितिः शिश्रथन्तु) उसको अर्यमा अदिति हमसे पृथक् करें। उस अपराधको हमसे दूर करें। हम निर्दोष हों ॥ ७ ॥

[७४२] हे (अग्ने) अग्ने ! (एताः इष्टीः आशुषाणासः) इन इष्टियोंका शीघ्र सेवन करनेवाले हम (युवोः वाजान् सचा अभि अश्याम) तुम्हारे अन्नोंको हम साथ साथ प्राप्त करेंगे। (इन्द्रः विष्णुः मरुत्) इन्द्र, विष्णु, और मरुत (नः मा परिख्यन्) हमारा त्याग न करें। यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याणके साधनोंसे सदा हमारा संरक्षण करो ॥ ८ ॥

[९४]

[७४३] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (इयं पूर्व्यस्तुतिः) यह पहिली स्तुति (अस्य मन्मनः) इस मननशील ऋषिसे (वां अभ्रात् वृष्टिः इव अजनि) आप दोनोंके लिये मेघसे वृष्टि होनेके समान हुई है, उसका श्रवण करो ॥ १ ॥

[७४४] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (जरितुः हवं शृणुतं) स्तोताकी प्रार्थना सुनो ! (गिरः वनतं) उनके वचन श्रवण करो। और (ईशाना धियः पिप्यतं) तुम स्वामी हो इसलिये हमारी बुद्धि पूर्वक किये कर्मोंको सफल बनाओ ॥ २ ॥

भावार्थ— हम अग्नि देवकी नित्य पूजा करें और मित्र, इन्द्र, वरुणकी भी स्तुति करें ताकि हमने जो अपराध किया हो, उससे हम मुक्त होकर सुखी हों, अर्यमा और अदिति भी हमें अपराधोंसे मुक्त करें। हम निर्दोष होकर व्यवहार करें ॥ ७ ॥

हम सदा ही अनेक तरहका यज्ञ करनेवाले हों, इन्द्र, विष्णु आदि देव हमारा परित्याग न करें। अपितु अपने कल्याणकारी साधनोंसे हमारी सदा रक्षा किया करें ॥ ८ ॥

हे इन्द्र और अग्ने ! यह पहली स्तुति इस मननशील ज्ञानी ऋषिके मुंहसे प्रकट हुई है, इसलिये तुम इन स्तुतियोंको स्वीकार करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनों स्तोताओंकी प्रार्थना सुनो, उनके वचन सुनो। तुम दोनों स्वामी हो, इसलिए बुद्धिपूर्वक किए गए कर्मोंको सफल बनाओ ॥ २ ॥

७४५ मा पापत्वार्य नो नरे—न्द्राग्नी माभिशस्तये । मा नौ रीरधतं निदे ॥ ३ ॥
७४६ इन्द्रें अग्ना नमों बृहत् सुवृक्तिमेरयामहे । धिया धेनां अवस्यवः ॥ ४ ॥
७४७ ता हि शश्वन्त ईळत इत्था विप्रास ऊतये । सबाधो वाजसातये ॥ ५ ॥
७४८ ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे । मेधसाता सनिष्यवः ॥ ६ ॥
७४९ इन्द्राग्नी अवसा गत—मस्मभ्यं चर्षणीसहा । मा नौ दुःशंस ईशत ॥ ७ ॥
७५० मा कस्य नो अररुषो धूर्तिः प्रणङ्‌मर्त्यस्य । इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [७४५] हे (नरा इन्द्राग्नी) नेता इन्द्र और अग्नि ! (नः पापत्वाय) हमारे पापके लिये (अभिस्तये) पराभवके कारण, शत्रुकृत हीनभावके प्रदर्शनके लिये, तथा (नः निदे) हमारी निंदा हो रही तो उसके कारण (मा मा मा रीरधतं) हमें परवश न करो । हम किसी भी कारण पराधीन होना नहीं चाहते । हमारा विनाश न हो ॥ ३ ॥

[७४६] (अवस्यवः इन्द्रे अग्ना) सुरक्षाकी इच्छा करनेवाले हम इन्द्र और अग्निके पास (बृहत् नमः) बहुत अन्न, (सु वृक्तिं) उत्तम स्तुति और (धिया धेनाः) बुद्धि पूर्वक बोले वचनोंको (आ ईरयामः) प्रेरित करते हैं । उनकी स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं ॥ ४ ॥

[७४७] (ता हि) उन इन्द्र और अग्निकी सचमुच (शश्वंतः विप्रासः) बहुतही ज्ञानी जन (ऊतये इत्था ईळते) अपने संरक्षणके लिये इस तरह स्तुति गाते हैं । तथा (सबाधः वाजसातये) समान पीडासे युक्त हुए लोग अन्न प्राप्तिके लिये उन्हीकी प्रशंसा करते हैं ॥ ५ ॥

[७४८] (विपन्यवः प्रयस्वन्तः) विशेष ज्ञानी ज्ञानी और प्रयत्नशील (सनिष्यवः) धनप्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हम लोग (मेधसाता) यज्ञमें (ता वां गीर्भिः हवामहे) तुम दोनोंको अपनी स्तुति प्रार्थनाके वचनोंसे बुलाते हैं ॥ ६ ॥

[७४९] हे (चर्षणीसहा इंद्राग्नी) शत्रुसेनाका पराभव करनेवाले इन्द्र और अग्नि ! (अस्मभ्यं अवसा आ गतं) हमारे पास अपने संरक्षणके साधनोंके साथ आओ । (दुःशंसः नः मा ईशते) दुष्टोंका शासन हमपर न हो ॥ ७ ॥

[७५०] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (कस्य अररुषः मर्त्यस्य) किसी भी शत्रुरूप मानवकी (धूर्तिः नः मा प्रणक्) धूर्तता या हिंसा हमारा नाश न करे । हमें (शर्म यच्छतं) सुख दो, हमें सुखी करो ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और अग्ने ! हमारे पापके दण्डस्वरूप हमारा पराभव करनेके लिए हमें ऐसे लोगोंके अधीन मत कर, जो हमारी निन्दा करता हो अर्थात् हे प्रभो ! हमारा पराभव तुम यदि करना भी चाहते हो, तो हमें ऐसे लोगोंके वशमें करो कि जो सज्जन हों ॥ ३ ॥

सुरक्षा प्राप्त करनेकी इच्छासे हम इन्द्र और अग्निकी बहुत अन्न उत्तम स्तुति और बुद्धिपूर्वक बोले गए वचनोंसे स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

उन इन्द्र और अग्निकी ज्ञानीजन अपनी सुरक्षाके लिए उत्तम स्तुति करते हैं । बुभुक्षारूपी समान पीडासे युक्त लोग अन्न प्राप्तिके लिए उन्हीं देवोंकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

विशेष ज्ञानी और उन्नतिके लिये प्रयत्न करनेवाले तथा धनप्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हम यज्ञमें इन्द्र और अग्नि इन दोनों देवोंकी स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

दुष्टोंका राज्यशासन हमपर न हो, हम दुष्टोंके अधीन न हों । शत्रुका पराभव करनेवाले वीर अपनी सुरक्षाके साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास आकर रहें ॥ ७ ॥

हे इन्द्र और अग्नि देवो ! किसी भी शत्रुरूप मानवकी धूर्तता या हिंसा हमारा नाश न करे । सभी हमें सुखी करें ॥ ८ ॥

७५१ गोमद्धिरण्यवद् वसु यद् वामश्वावदीमहे । इन्द्राग्नी तद् वनेमहि ॥ ९ ॥
७५२ यत् सोम आ सुते नर इन्द्राग्नी अजोहवुः । सप्तीवन्ता सपर्यवः ॥ १० ॥
७५३ उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा । आङ्गूषैराविवासतः ॥ ११ ॥
७५४ ताविद् दुःशंसं मर्त्यं दुर्विद्वांसं रक्षस्विनम् ।
आभोगं हन्मना हतमुदधिं हन्मना हतम् ॥ १२ ॥

[९५]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- सरस्वती, ३ सरस्वान् । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७५५ प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
प्रबाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥ १ ॥

अर्थ— [७५१] हे (इन्द्राग्नी) इंद्र और अग्नि ! (गोमत् हिरण्यवत् अश्ववत् वसु) गौओं, सुवर्ण और घोडोंसे युक्त धन (यत् वां ईमहे) जो तुम्हारे पास हम मांगते हैं (तत् वनेमहि) वह हमें प्राप्त हो ॥ ९ ॥

[७५२] (सोमे सुते) सोमका रस निकालनेपर (सपर्यवः नरः) पूजा करनेवाले मनुष्य (सप्तीवन्ता इंद्राग्नी) प्रशंसित घोडोंवाले इंद्र और अग्निको (आ अजोहवुः) बुलाते हैं ॥ १० ॥

[७५३] (वृत्रहन्तमा मंदाना या) शत्रुका हनन करनेवाले और आनंदित होनेवाले इन्द्र और अग्निकी (उक्थेभिः गिरा आंगूषैः आ आविवासतः) स्तोत्रों, वचनों और काव्योंके गानसे प्रशंसा करते हैं ॥ ११ ॥

[७५४] हे इंद्र और अग्नि ! (ता) वे तुम दोनों (दुःशंसं दुर्विद्वांसं) दुष्ट और दुष्ट विद्वान् (आ भोगं रक्षस्विनं) अपहरणशील राक्षसरूप शत्रुका (हन्मना हतं) घातक शस्त्रसे नाश करो । (उदधिं हन्मना हतं) पानीसे भरे घडेका जैसा विनाशक साधनसे नाश करते हैं वैसा शत्रुका नाश करो ॥ १२ ॥

[९५]

[७५५] (एषा सरस्वती) यह सरस्वती नदी (आयसी पूः) लोहेके प्रकारवाली नगरीके समान (धरुणं) सबकी सुरक्षाका धारण करती है । यह अपने (धायसा क्षोदसा प्र सस्रे) धारक जलके साथ दौड रही है । यह (सिन्धुः) नदी अपनी (महिना) महिमासे (विश्वाः अन्याः अपः) दूसरे सब जलोंको (रथ्या इव प्रबाधाना) रथ चलानेवाले सारथीकी तरह बाधा पहुंचाती हुई (याति) जाती है ॥ १ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और अग्ने ! गौओं सुवर्ण और घोडोंसे युक्त धन हम,तुमसे मागते हैं, वह धन हमें प्राप्त हो ॥ ९ ॥

सोमका रस निकालनेके बाद पूजा करनेवाले मनुष्य उत्तम घोडोंवाले इन्द्र और अग्निको बुलाते हैं ॥ १०

शत्रुओंको विनष्ट करनेवाले और आनन्दित होनेवाले इन्द्र और अग्निकी लोग स्तोत्रों, वचनों और काव्योंसे प्रशंसा करते हैं ॥ ११ ॥

हे इन्द्र और अग्ने ! जो दुष्ट हों, दुष्ट विद्वान् हों अर्थात् विद्वान् होकर भी दुष्टता करें तथा जो दूसरोंकी मालमत्ता या प्राणादिका अपहरण करनेवाले राक्षस हों, उनका इसी तरहसे नाश करो जिस तरह पानीसे भरे घडेको फोडते हैं ॥ १२ ॥

सरस्वती नदीका प्रवाह अखण्ड है । यह लोहे और पत्थरोंसे बने हुए दुर्गके समान अपने पास रहनेवालोंकी रक्षा करती है । जिस तरह कोई सारथी मार्गके पत्थरों और गड्ढोंको दूर करके सरल मार्गसे रथको ले जाता है, इसी तरह यह सरस्वती नदी अपने प्रवाहके वेगसे मार्गको काटती हुई बीचके विघ्नोंको दूर करती हुई जाती है । इसी तरह मनुष्यको चाहिए कि वह विघ्नोंको दूर करके आगे बढता जाए ॥ १ ॥

७५६ एकाचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥ २ ॥
७५७ स वावृधे नर्यो योषणासु वृषा शिशुर्वृषभो यज्ञियासु ।
स वाजिनं मघवद्भ्यो दधाति वि सातये तन्वं मामृजीत ॥ ३ ॥
७५८ उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत् सुभगा यज्ञे अस्मिन् ।
मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥ ४ ॥
७५९ इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व ।
तव शर्मन् प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [७५६] (नदीनां शुचिः) नदियोंमें शुद्ध (गिरिभ्यः आ समुद्रात् यती) पहाडोंसे समुद्र पर्यंत जानेवाली (एका सरस्वती अचेतत्) यह एकही सरस्वती नदी चेतनायुक्त सी चल रही है । (भुवनस्य भूरेः रायः चेतंती) इस पृथ्वीपरके बहुत धनोंको बताती है और (नाहुषाय पयः घृतं दुदुहे) नहुषके लिये दूध और घी देती रही ॥ २ ॥

[७५७] (नर्यः वृषा) मानवोंके लिये हितकारी बलवान् (सः शिशुः वृषभः) वह बछडे बैलके समान तरुण (यज्ञियासु योषणासु) यज्ञके लिये रखी स्त्रियोंमें गौओंमें (वावृधे) बढता है । (सः मघवद्भ्यः वाजिनं दधाति) वह यज्ञकर्ताओंके लिये बलवान् पुत्र प्रदान करता है और (सातये तन्वं वि ममृजीत) लाभ करनेके लिये शरीरकी विशेष प्रकारसे शुद्धता करता है ॥ ३ ॥

[७५८] (उत जुषाणा सुभगा स्या सरस्वती) और प्रसन्न हुई वह भाग्यवाली सरस्वती (नः अस्मिन् यज्ञे उप श्रवत्) हमारे इस यज्ञमें हमारी की हुई स्तुति सुने । (मितज्ञुभिः नमस्यैः इयाना) घुटने टेककर नमन करनेवाले उपासक उस नदीके पास जाते हैं । (युजा राया चित्) वह नदी योग्य धनसे युक्त है और (सखिभ्यः उत्तरा) मित्रभावसे रहनेवालोंके लिये उच्चतर अवस्था देती है ॥ ४ ॥

[७५९] हे (सरस्वति) सरस्वती नदी ! (इमा जुह्वाना) इन अन्नोंका यज्ञ करनेवाले हम (नमोभिः युष्मत् आ) नमस्कार पूर्वक तुमसे अधिक अन्न प्राप्त करते हैं । (स्तोमं प्रति जुषस्व) हमारे स्तोत्रका श्रवण कर । हम अपने आपको (तव प्रियतमे शर्मन् दधानाः) तुम्हारे अत्यंत प्रिय सुखमें धारण करते हैं, (शरणं न वृक्षं उप स्थेयां) और आश्रय भूत वृक्षकी तरह तुम्हारे साथ रहें । जैसे पक्षी वृक्षके आश्रयसे रहते हैं वैसे हम तुम्हारे आश्रयसे रहें ॥ ५ ॥

भावार्थ— सरस्वती नदी सब नदियोंमें अधिक शुद्ध है । यह नदी पर्वतसे निकलकर समुद्रमें मिलती है । इसके दौडको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह कोई चेतनावान् प्राणी हो । पृथ्वीसे उत्पन्न होनेवाले सभी धान्यरूपी धनको यह प्रदान करती है और अपने तीर पर रहनेवालोंको यह पर्याप्त घी और दूध देती है ॥ २ ॥

तरुण मनुष्य सब मानवोंका कल्याण करनेमें तत्पर बलवान् बैल जैसा पुष्ट, तरुण बैल जैसा सामर्थ्यवान् तथा पूजनीय और पवित्र स्त्रीके साथ रहनेवाला हो । जो सब तरहसे पुष्ट होता है वह उत्तम, बलवान् और वीर पुत्र उत्पन्न करता है । ऐसा तरुण अन्दर और बाहरसे शुद्ध रहे ॥ ३ ॥

सरस्वती नदीके तीरपर उपासना करनेवाले लोग घुटने टेककर नमस्कार करते हुए स्तुति–प्रार्थना और उपासना करते हैं । सरस्वती नदी उत्तम भाग्य देनेवाली है । योग्य धन धान्य होनेसे परस्पर प्रेमभावसे रहनेवालोंके लिए उच्चतर अवस्था देनेवाली यह नदी है ॥ ४ ॥

हे सरस्वती देवी ! हम तेरी सेवा करके तुझसे अधिक धान्य प्राप्त करें । नदीकी यदि सेवा की जाएगी, और उसकी अच्छी तरह रक्षा की जाएगी तो उसके जलका अधिक लाभ उठाया जा सकेगा । उस हालतमें पक्षी जिस तरह वृक्षके आश्रयसे रहते हैं, उसी तरह मनुष्य नदीके आश्रयसे रह सकते हैं ॥ ५ ॥

७६० अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः ।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[९६]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- सरस्वती, ४-६ सरस्वान् । छन्दः- १-२ प्रगाथः = (१ बृहती, २ सतोबृहती), ३ प्रस्तारपङ्क्तिः, ४-६ गायत्री ।

७६१ बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम् ।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥ १ ॥
७६२ उभे यत् ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः ।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥
७६३ भद्रमिद् भद्रा कृणवत् सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती ।
गृणाना जमदग्निवत् स्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥ ३ ॥

अर्थ— [७६०] हे (सुभगे सरस्वति) उत्तम भाग्यशाली सरस्वती नदी ! (अयं वसिष्ठः) यह वसिष्ठ ऋषि (ते ऋतस्य द्वारौ वि आवः) तुम्हारे लिये यज्ञके दोनों द्वार खोलता है । हे (शुभ्रे ! स्तुवते वर्ध) शुभ्रवर्णवाली देवि ! स्तोताके हित करनेके लिये बढो तथा (वाजान् रासि) उसको अन्न दो । (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात) तुम कल्याणके साधनोंसे हमारी सदा सुरक्षा करो ॥ ६ ॥

[९६]

[७६१] हे (वसिष्ठ) वसिष्ठ ! तुम (नदीनां असुर्या बृहत् उ वचः गायिषे) नदियोंमें बलवती नदीके बडे स्तोत्रोंका गान करो । (रोदसी सरस्वतीं) द्युलोक और भूलोकमें रहनेवाली सरस्वतीका महत्व (सुवृक्तिभिः स्तोमैः महय) उत्तम वचनोंके स्तोत्रोंसे वर्णन करो ॥ १ ॥

[७६२] हे (शुभ्रे) शुभ्र वर्णवाली सरस्वती नदी ! (यत् ते महिना) जिस तुम्हारी महिमा द्वारा (उभे अंधसी) दोनों प्रकारके दिव्य और पार्थिव अन्नको (पूरवः अधि क्षियन्ति) नागरिक लोग प्राप्त होते हैं। (सा अवित्री नः बोधि) वह रक्षण करनेवाली नदी हमारा रक्षण करना है यह जाने । (मरुत्सखा मघोनां राधः चोद) मरुतोंके साथ मित्रता करनेवाली वह नदी यज्ञ करनेवाले धनिकोंके पास धनको प्रेरित करे ॥ २ ॥

[७६३] (भद्रा सरस्वती भद्रं इत् कृणवत्) कल्याण करनेवाली सरस्वती निःसंदेह कल्याण करती है । तथा (अकवारी वाजिनीवती चेतति) सीधी जानेवाली और अन्न देनेवाली यह सरस्वती हमारे अन्दर चेतना उत्पन्न करे, प्रज्ञा बढावे । (जमदग्निवत् गृणाना) जमदग्नि ऋषिके द्वारा प्रशंसित होनेके समान (वसिष्ठवत् च स्तुवाना) वसिष्ठके योग्य स्तुतिसे प्रशंसित हो ॥ ३ ॥

भावार्थ— ज्ञानी जन नदीके किनारे यज्ञकी रचना करते थे । प्राचीन ऋषिगण सरस्वती नदीके किनारे यज्ञोंका अनुष्ठान करते थे । उन यज्ञोंसे पवित्र हुए जलवाली वह नदी उन ऋषियोंको प्रचुर धान्य देकर समृद्ध करती थी ॥ ६ ॥

हे ज्ञानी मनुष्य ! तुम नदियोंमें श्रेष्ठ नदी सरस्वतीकी स्तुति करो । द्युलोक और भूलोकको समृद्ध बनानेवाली इस सरस्वतीके महत्वका गान करो ॥ १ ॥

सोमरस दिव्य अन्न है और चावल पार्थिव अन्न है । ये दोनों अन्न सरस्वती नदीपर होते हैं और यज्ञ करनेवालोंको प्राप्त होते हैं । नागरिक जन पूर्वोक्त दोनों तरहके अन्नोंको प्राप्त करते हैं । इस प्रकार सरस्वती नदी सब लोगोंका संरक्षण करनेवाली है । जो यज्ञ करता है, उनकी तरफ धनको यह सरस्वती प्रेरित करती है ॥ २ ॥

सरस्वती सबका कल्याण करनेवाली है, वह सबका कल्याण करे । यह सरस्वती एक नदी भी है और विद्या भी । जिस तरह सरस्वती नदी अन्नादिसे सबका कल्याण करती है, उसी तरह विद्या भी सब मानवोंका कल्याण करती है । सरस्वती सीधा उन्नतिका मार्ग बताती है । वह मनुष्योंको टेढी चाल चलनेसे रोकती है ॥ ३ ॥

७६४ जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः । सरस्वन्तं हवामहे ॥ ४ ॥
७६५ ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः । तेभिर्नोऽविता भव ॥ ५ ॥
७६६ पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः । भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ६ ॥

[९७]

(ऋषि:- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- १ इन्द्रः; २, ४-८ बृहस्पतिः; ३, ९ इन्द्राब्रह्मणस्पती, १० इन्द्राबृहस्पती । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७६७ यज्ञे दिवो नृषदने पृथिव्या नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
इन्द्राय यत्र सवनानि सुन्वे गमन्मदाय प्रथमं वयश्च ॥ १ ॥
७६८ आ दैव्या वृणीमहेऽवांसि बृहस्पतिर्नो मह आ सखायः ।
यथा भवेम मीळ्हुषे अनागा यो नो दाता परावतः पितेव ॥ २ ॥

अर्थ— [७६४] (जनीयन्तः) पत्नीवाले (पुत्रीयन्तः) पुत्रकी कामना करनेवाले (सुदानवः अग्रवः) उत्तम दान देनेवाले हम अग्रेसर होकर (सरस्वन्तं हवामहे) सरस्वान् समुद्र देवकी विद्वानकी प्रशंसा गाते हैं ॥ ४ ॥

[७६५] हे (सरस्वः) समुद्र देव ! (ये ते ऊर्मयः) जो तुम्हारी लहरियाँ (मधुमन्तः घृतश्च्युतः) मीठी और घीवाली हैं, (तेभिः नः अविता भव) उनसे हमारे संरक्षक बनो ॥ ५ ॥

[७६६] (यः विश्वदर्शतः) जो विश्वका दर्शन करता है उस (सरस्वतः पपिवांसं स्तनं) सरस्वान्-समुद्रके परिपुष्ट स्तनका हम पान करते हैं और (प्रजां इषं भक्षीमहि) सुप्रजा तथा अन्न प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

[९७]

[७६७] (यत्र देवयवः नरः मदन्ति) जहां देवत्वकी प्राप्ति करनेवाले नेता लोग आनंदित होते हैं, (यत्र इन्द्राय सवनानि सुन्वे) जहां इन्द्रके लिये सोमका रस निकालते हैं, वहां (पृथिव्याः नृषदने यज्ञे) पृथ्वी परके मनुष्योंको कल्याण करनेके यज्ञ स्थानमें (दिवः प्रथमं मदाय गमत्) द्युलोकसे सबसे प्रथम इन्द्र आनंदित होनेके लिये आवे और (वयः च) उसके शीघ्रगामी घोडे भी आजांये ॥ १ ॥

[७६८] हे (सखायः) मित्रो ! हम (दैव्या अवांसि आवृणीमहे) दिव्य संरक्षणोंको प्राप्त करना चाहते हैं । (नः बृहस्पतिः आ महे) हमारे यज्ञको बृहस्पति स्वीकार करे । (यः परावतः पिता इव नः दाता) जो बृहस्पति दूरदेशसे पिता पुत्रोंको धन देता है उस तरह हमें धन देता है । उस (मीळ्हुषे यथा अनागाः भवेम) सुखदायी बृहस्पतिके सन्मुख हम जिस तरह निष्पाप होकर जांय वैसा आचरण करें ॥ २ ॥

भावार्थ— मनुष्य पत्नीवाले, पुत्रकी कामना करनेवाले और उत्तम दान देनेवाले होकर आगे बढें तथा विद्याकी उपासना करें ॥ ४ ॥

सरस्वान्का अर्थ समुद्र और महाज्ञानी दोनों ही है । विद्याकी नदियां उस महाज्ञानीके हृदयमें आकर मिलती हैं । उसके हृदयमें जो ऊर्मियां है, वह ऊर्मियां मधुरिमाको प्रकट करनेवाली और घीके समान स्नेहको फैलानेवाली होती हैं । विद्याके समुद्र महाज्ञानीके ये ही कर्तव्य हैं ॥ ५ ॥

समुद्र, महाज्ञानी और मेघ ये तीनोंही सरस्वान् हैं । इसका स्तन वर्षा करनेवाला मेघ तथा ज्ञानरसको प्रवाहित करनेवाला उस महाज्ञानीका हृदय है । इस स्तनको पीकर मनुष्य हृष्टपुष्ट हों ॥ ६ ॥

पृथ्वी पर यज्ञका स्थान ऐसा है जो सब मानवोंका कल्याण करता है । यहां दैवी भावको लपनानेका यत्न करनेवाले लोग एकत्रित होते हैं । सोमरस निकालते हैं, वहां द्युलोकसे इन्द्र आता है और अपने घोडोंवाले रथमें बैठकर अतिशीघ्र वहां पहुंचता है । जहां यज्ञ होता है, वहां लोगोंका हित करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष अवश्य जावें ॥ १ ॥

हम दिव्य संरक्षणोंको प्राप्त करना चाहते हैं, अतः हमारे यज्ञको बृहस्पति स्वीकार करे । वह बृहस्पति, जिस तरह कोई पिता दूर देशसे भी अपने पुत्रको धन देता है, उसी तरह हमें भी धन देवे । हम ऐसा आचरण करें कि जिससे निष्पाप होकर सुखदाता बृहस्पतिके पास जाएं ॥ २ ॥

७६९ तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।
इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥ ३ ॥
७७० स आ नो योनिं सदतु प्रेष्ठो बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति ।
कामो रायः सुवीर्यस्य तं दात् पर्षन्नो अति सश्चतो अरिष्टान् ॥ ४ ॥
७७१ तमा नो अर्कममृताय जुष्टमिमे धासुरमृतासः पुराजाः ।
शुचिक्रन्दं यजतं पस्त्यानां बृहस्पतिमनर्वाणं हुवेम ॥ ५ ॥
७७२ तं शग्मासो अरुषासो अश्वा बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति ।
सहश्चिद् यस्य नीलवत् सधस्थं नभो न रूपमरुषं वसानाः ॥ ६ ॥

अर्थ— [७६९] (तं ज्येष्ठं सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं) उस श्रेष्ठ सेवा करने योग्य ज्ञान पतिकी (हविर्भिः नमसा गृणीषे) हवनों और नमस्कारोंके साथ स्तुति गाता हूँ । (महि इन्द्रं दैव्यः श्लोकः सिषक्तु) महान् इन्द्रकी यह दिव्य श्लोक–मन्त्र–सेवा करे । गुणगान करे । (यः देवकृतस्य ब्रह्मणः राजा) यह इंद्र देवके द्वारा किये स्तोत्रका राजा है, अधिकारी है ॥ ३ ॥

[७७०] (प्रेष्ठः सः बृहस्पतिः नः योनिं आ सदतु) वह श्रेष्ठ ज्ञानपति हमारे यज्ञस्थानमें आकर बैठे । (यः विश्ववारः अस्ति) जो सबके द्वारा स्वीकार करने योग्य है । (सुवीर्यस्य रायः कामः तं दात्) उत्तम वीर्य-युक्त धनकी जो हमारी अभिलाषा है उसको वह पूर्ण करता है । तथा वह (नः सश्चतः अरिष्टान् अतिपर्षत्) हमारे ऊपर आये उपद्रवोंसे हमें पार करे, हमारे शत्रुओंको वह हमसे दूर करे ॥ ४ ॥

[७७१] (तं अमृताय जुष्टं अर्कं) उस अमरत्वके लिये सेवन करने योग्य पूजनीय अन्नको (इमे पुराजाः अमृतासः) ये प्राचीन कालसे प्रसिद्ध अमर देव (नः आ धासुः) हमें देवें । हम (शुचिक्रन्दं पस्त्यानां यजतं) शुद्धताके लिये प्रशंसित, गृहस्थियोंके लिये पूजनीय (अनर्वाणं बृहस्पतिं हुवेम) पीछे न हटनेवाले बृहस्पतिकी स्तुति गाते हैं ॥ ५ ॥

[७७२] (शग्मासः अरुषासः) सुखदायी तेजस्वी (सहवाहः अश्वाः) साथ रहकर वहन करनेवाले घोडे (तं बृहस्पतिं वहन्ति) उस ज्ञान पतिको वहन करते हैं । (यस्य सहः चित्) जिसका बल विशाल है, (यस्य नीलवत् सधस्थं) जिसका निवास स्थान निवासके लिये सुयोग्य है । जिसके घोडे (नभः अरुषं रूपं वसानाः) आदित्यके समान तेजस्वी रूप धारण करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— मैं सेवा करने योग्य ब्रह्मणस्पति देवकी नमस्कार पूर्वक स्तुति गाता हूँ, ये दिव्य मंत्र महान् इन्द्रकी स्तुति करें । यह इन्द्र देवके द्वारा किए गए स्तोत्रका राजा है, अधिकारी है । इस मंत्रमें वेदमंत्रोंको देवकृत बताया गया है । मुख्य देव वही परमात्मा है, अतः उसीसे इन मंत्रोंकी रचना हुई है, यह ज्ञात होता है ॥ ३ ॥

हमारी इच्छा यह है कि हमें उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति प्राप्त हो और वीरतायुक्त धन हमें मिले । हमारे ऊपर आए हुए दुःख दूर हों । श्रेष्ठ ज्ञानपति हमारे यज्ञमें आकर आसन पर बैठें और हमें संरक्षणके सब साधन प्रदान करें ॥ ४ ॥

देवगण हमें सदा ऐसा अन्न दें कि जिसका सेवन करके हम अमरत्व प्राप्त करें । योग्य और श्रेष्ठ अन्न खाकर मृत्युको भी दूर किया जा सकता है । हम अपने मनको पवित्र करनेके लिए कभी पीछे न हटनेवाले ज्ञानीके समान आचरण करें ॥ ५ ॥

बृहस्पतिका बल अनन्त है । उसके बलकी कोई सीमा नहीं है, उसका निवास स्थान रहनेके लिए उत्तम है । उसके घोडे आदित्यके समान तेजस्वी हैं । वे घोडे बृहस्पति देवको हमारे पास ले आवें ॥ ६ ॥

७७३ स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्यु- र्हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः ।
बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः पुरू सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥ ७ ॥
७७४ देवी देवस्य रोदसी जनित्री बृहस्पतिं वावृधतुर्महित्वा ।
दक्षाय्याय दक्षता सखायः करद् ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा ॥ ८ ॥
७७५ इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्ति- र्ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधी- र्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ९ ॥
७७६ बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

अर्थ— [७७३] (सः हि शुचिः शतपत्रः) वह शुद्ध है और बहुत प्रकारके वाहन अपने पास रखनेवाला है। (सः शुन्ध्युः हिरण्यवाशीः) वह शुद्धि करनेवाला और सुवर्ण जैसे आयुधोंवाला है। वह (इषिरः स्वर्षाः) प्रगतिशील और आत्मतेज देनेवाला है। (सः बृहस्पतिः स्वावेशः ऋष्वः) वह बृहस्पति उत्तम निवासस्थानवाला और दर्शनीय सुन्दर है। वह (सखिभ्यः पुरु आसुतिं करिष्ठः) मित्रोंके लिये बहुत अन्न देता है ॥ ७ ॥

[७७४] (देवस्य जनयित्री देवी रोदसी) बृहस्पति देवकी जननी द्यौ और पृथिवी ये देवता हैं। (महित्वा बृहस्पतिं ववृधतुः) महिमासे युक्त बृहस्पतिको ये बढाती हैं। हे (सखायः) मित्रो! (दक्षाय्याय दक्षत) बलके योग्य बृहस्पतिको बलके साथ बढाओ। वह (ब्रह्मणे) ज्ञान और अन्नके संवर्धनके लिये (सुतरा सुगाधा करत्) जलको तैरने योग्य और स्नानके योग्य पर्याप्त प्रमाणमें करता है ॥ ८ ॥

[७७५] हे (ब्रह्मणस्पते) ब्रह्मणस्पते! तुम्हारे लिये और (वज्रिणे इन्द्राय) वज्रधारी इन्द्रके लिये अर्थात् (वां) तुम दोनोंके लिये (इयं सुवृक्तिः ब्रह्म अकारि) यह उत्तम वचन युक्त स्तोत्र किया है। (धियः अविष्टं) हमारे बुद्धियुक्त कर्मोंका संरक्षण करो, (पुरंधीः जिगृतं) बहुत प्रकारकी बुद्धिका श्रवण करो और (वनुषां अर्यः अरातीः जजस्तं) भक्तोंके शत्रुओंकी सेनाओंका विनाश करो ॥ ९ ॥

[७७६] हे (बृहस्पते) बृहस्पते! तू (इन्द्रः च) और इन्द्र तुम दोनों (दिव्यस्य वस्वः ईशाथे) द्युलोकमें उत्पन्न धनके तुम स्वामी हो। (उत पार्थिवस्य) और पृथ्वीपर उत्पन्न हुए धनके भी तुमही स्वामी हो। (स्तुवते कीरये चित् रयिं धत्तं) स्तुति करनेवाले कविके लिये धन दो। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याणके साधनोंसे सदा हमारी सुरक्षा करो ॥ १० ॥

भावार्थ— बृहस्पति देवकी तरह वीर स्वयं शुद्ध रहे, अनेक वाहन अपने पास रखे, अन्योंको शुद्ध बनावे, उत्तम शस्त्रास्त्र अपने पास रखे, प्रगति करता रहे, अपनी शक्तिसे आगे बढे, उत्तम निवासमें रहे, उत्तम आभूषण धारण करके अपनी शोभा बढावे और अपने मित्रोंको उत्तम अन्न देता रहे ॥ ७ ॥

ज्ञानीकी माता द्युलोक और पृथ्वीलोक है। ये दोनों लोक ज्ञानकी रक्षा करते हैं, इसलिए ज्ञानी भी महिमासे सम्पन्न होकर बढता है। इसलिए सभी मनुष्योंको चाहिए कि वे भी ज्ञानीको बढायें ॥ ८ ॥

हे ज्ञानी! हमारी बुद्धिका संरक्षण करो, हमारे द्वारा बुद्धिपूर्वक योजनापूर्वक किए गए कर्मोंका संरक्षण करो। हमारी विशाल बुद्धिकी प्रशंसा करो। हमारे मित्रोंकी शत्रुओंकी सेनाओंका नाश करो ॥ ९ ॥

हे बृहस्पते! तू और इन्द्र दोनोंही द्युलोकमें उत्पन्न होनेवाले धनके स्वामी हो तथा पृथ्वीपर उत्पन्न होनेवाले धनके भी तुम स्वामी हो। अतः तुम्हारी स्तुति करनेवालेको तुम भरपूर धन दो और सदा उसकी रक्षा करो ॥ १० ॥

×

[९८]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः, ७ इन्द्राबृहस्पती । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७७७ अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद् वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद् याति सुतसोममिच्छन् ॥ १ ॥

७७८ यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि सोमान् ॥ २ ॥

७७९ जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।
एन्द्र पप्राथोर्वन्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ३ ॥

७८० यद् योधया महतो मन्यमानान् त्साक्षाम तान् बाहुभिः शाशदानान् ।
यद् वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्या -स्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥ ४ ॥

---

[९८]

अर्थ— [७७७] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्युओ ! (क्षितीनां वृषभाय) मानवोंमें अधिक बलिष्ठ ऐसे इन्द्रके लिये (अरुणं दुग्धं अंशुं जुहोतन) तेजस्वी दुहे हुए सोमरसका हवन करो । (अवपानं गौरात् वेदीयान् इन्द्रः) पीने योग्य रसको गौरमृगसे भी दूरसे जाननेमें समर्थ इन्द्र (सुतसोमं इच्छन्) सोम याग करनेवालेकी इच्छा करता हुआ (विश्वहा इत् याति) सर्वदा उसके पास जाता है ॥ १ ॥

[७७८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (प्रदिवि चारुं अन्नं दधिषे) पूर्व समयमें सुंदर अन्न रूप सोमरसका तुम अपने उदरमें धारण करते हो, (दिवे दिवे अस्य पीतिं वक्षि इत्) प्रतिदिन इसके पानकी तुम इच्छा करते ही हो । (उत् हृदा उत् मनसा) हृदयसे और मनसे (जुषाणः उशन्) उसका सेवन करके हमारी इच्छा करके (प्रस्थितान् सोमान् पाहि) यहां रखे हुए सोम रसोंका पान करो ॥ २ ॥

[७७९] हे इन्द्र ! तुम (जज्ञानः सहसे सोमं पपाथ) उत्पन्न होते ही बल बढानेके लिये सोम पीते हो । (माता ते महिमानं प्र उवाच) माता तुम्हारी महिमाका वर्णन करती है । (उरु अन्तरिक्षं आ पप्राथ) विस्तीर्ण अन्तरिक्षको तुमने अपने तेजसे भर दिया । और (युधा देवेभ्यः वरिवः चकर्थ) युद्ध करके देवोंके लिये तुमने धन भी उत्पन्न किया था ॥ ३ ॥

[७८०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (महतः मन्यमानान् यत् योधयाः) अपने आपको बहुत बडे करके माननेवाले शत्रुओंके साथ जब तुम्हारा युद्ध हुआ (तान् शाशदानान् बाहुभिः साक्षाम) उन हिंसक शत्रुओंका हम अपने बाहुओंसे ही प्रतीकार करेंगे (यत् वा नृभिः वृतः अभियुध्याः) जिस समय तुम वीरोंके साथ रहकर शत्रुसे युद्ध करोगे उस समय (त्वया तं सौश्रवसं आजिं जयेम) तुम्हारे साथ हम रहेंगे और उस यश बढानेवाले युद्धको जीतेंगे । हम विजय प्राप्त करेंगे ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! मनुष्योंमें अत्यधिक बलशाली ऐसे इन्द्रके लिए तेजस्वी सोमरस प्रदान करो । क्योंकि वह सोमरसको पीनेकी इच्छासे लोगोंके पास जाता है ॥ १ ॥

इन्द्र सदासे सोमरसका पान करता है, वह प्रतिदिन सोमरस पीनेकी इच्छा करता है । इसलिए वह दिए गए सोमरसोंको प्रेमपूर्वक पीता है ॥ २ ॥

बालपनमें इन्द्रने अपना बल बढाया, अपने तेजसे जगत्‌को तेजस्वी बनाया और तरुण होतेही युद्धमें शत्रुओंका पराभव करके बहुत धन प्राप्त किया ॥ ३ ॥

जो लोग युद्धमें इन्द्रके साथ रहेंगे, वे यश देनेवाले उस संग्राममें विजयी होंगे । जब वे लोग घमंडी शत्रुओंके साथ युद्ध करते हैं, तब ज्ञानीजन भी उन वीरोंके साथ रहते हैं और अपने बाहुबलसे हिंसक शत्रुओंका पराभव करते हैं ॥ ४ ॥

७८१ प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत् केवलः सोमो अस्य ॥ ५ ॥
७८२ तवेदं विश्वमभितः पशव्यं१ यत् पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥ ६ ॥
७८३ बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[९९]

(ऋषि- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- विष्णुः, ४-६ इन्द्राविष्णू । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७८४ परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ॥ १ ॥

अर्थ— [७८१] (इन्द्रस्य प्रथमा कृतानि प्रवोचं) इंद्रके पूर्व समयमें किये पराक्रमोंका मैं वर्णन करता हूं । (या नूतना मघवा चकार) जो नूतन पराक्रम धनवान् इन्द्रने किये उनका भी मैं वर्णन करता हूं । (यदा इत् अदेवीः मायाः असहिष्ट) जिस समय आसुरी कुटिल कपटी आक्रमणोंको उसने परास्त किया (अथ केवलः सोमः अस्य अभवत्) तबसे केवल सोम इसीके लिये मिलने लगा है ॥ ५ ॥

[७८२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (इदं विश्वं पशव्यं तव इत्) यह सब विश्व जो सब पशुओंके लिये हितकारी है वह तुम्हारा ही है । (यत् सूर्यस्य चक्षसा पश्यति) जो सूर्यके तेजसे दीखता है । तू (गवां एकः गोपतिः असि) तू गौओंका एक ही गोपाल है अतः (ते प्रयतस्य वस्वः भक्षीमहि) तुम्हारे दिये धनका भोग हम करेंगे ॥ ६ ॥

[७८३] (बृहस्पते) बृहस्पते ! तू (इन्द्रः च) और इन्द्र दोनों (दिव्यस्य वस्वः ईशाथे) द्युलोकमें उत्पन्न धनके स्वामी हो, (उत पार्थिवस्य) और पृथ्वीपर उत्पन्न हुए धनके भी तुम्हीं स्वामी हो । (स्तुवते कीरये चित् रयिं धत्तं) स्तुति करनेवाले कविके लिए धन दो । (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पातं) तुम कल्याणके साधनोंसे सदा हमारी रक्षा करो ॥ ७ ॥

[९९]

[७८४] (परः मात्रया तन्वा वृधान विष्णो) हे अपने श्रेष्ठ शरीरसे बढनेवाले विष्णो ! (ते महित्वं न अनु अश्नुवन्ति) तुम्हारी महिमाको कोई जान नहीं सकता । (ते उभे पृथिव्याः रोदसी विद्म) तुम्हारे दोनों लोक पृथिवी और अन्तरिक्षको हम जानते हैं । परंतु हे (देव) देव ! तुम तो (त्वं परमस्य वित्से) परम लोकको भी जानते हो ॥ १ ॥

भावार्थ— इन्द्रके अनेक पराक्रम हैं । उसने जब कपटी और कुटिल शत्रुओंके आक्रमणोंको मार हटाया, तबसे इसका सोमपर प्रथमाधिकार हुआ । वीरता प्रकट किए बिना किसीका सम्मान नहीं होता ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! सभी प्राणीमात्रका हित करनेवाला जो यह विश्व है, वह सब तेराही है । इन गौओं अर्थात् किरणोंसे युक्त जो सूर्यका तेज है, उसका भी स्वामी तू ही है ॥ ६ ॥

हे बृहस्पते ! तू और इन्द्र दोनोंही द्युलोकमें उत्पन्न होनेवाले धनके स्वामी हो, तथा पृथ्वी पर उत्पन्न होनेवाले धनके भी तुम स्वामी हो । अतः तुम्हारी स्तुति करनेवालेको तुम भरपूर धन दो और सदा उसकी रक्षा करो ॥ ७ ॥

अपने श्रेष्ठ शरीरसे बढनेवाले विष्णो ! तुम्हारी महिमा अनन्त है, इसलिए तुम्हारी महिमाका अन्त कोई भी नहीं पा सकता । हम तो केवल पृथ्वी और अन्तरिक्ष लोकको ही जानते हैं, उन दोनों लोकोंके परे कौनसा लोक है, वह हम नहीं जानते, पर तुम तो उस परम लोकको भी जानते हो ॥ १ ॥

७८५ न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप ।
उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहन्तं दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः ॥ २ ॥
७८६ इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या ।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ॥ ३ ॥
७८७ उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम् ।
दासस्य चिद् वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ॥ ४ ॥
७८८ इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम् ।
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥ ५ ॥

अर्थ— [७८५] हे (विष्णो देव) विष्णु देव ! (ते महिम्न परं अन्तं) तेरी महिमाका परम अन्तिम भाग (न जायमानः न जातः आप) न तो जन्म लेनेवाले नाही जिन्होंने जन्म लिया है वे जानते हैं। (ऋष्वं बृहन्तं नाकं उत् अस्तभ्नाः) दर्शनीय विशाल ऐसे इस द्युलोकको तुमने ऊपर ही स्थिर किया है। तथा (पृथिव्याः प्राचीं ककुभं दाधर्थ) तुमने पृथिवीकी पूर्व दिशाका भी धारण किया है ॥ २ ॥

[७८६] हे (रोदसी) द्यावा पृथ्वी ! (मनुष्ये दशस्या) मनुष्योंका हित करनेकी इच्छासे तुम (इरावती धेनुमती सुयवसिनी) अन्नवाली, गौओंवाली तथा जौवाली (हि भूतं) हुई हो। हे (विष्णो) विष्णो ! (एते रोदसी वि अस्तभ्नाः) तुमने इन द्युलोक तथा पृथिवीलोकको धारण किया है तथा (मयूखैः पृथिवीं अभितः दाधर्थ) पर्वतोंसे पृथिवीको स्थिर किया है ॥ ३ ॥

[७८७] (यज्ञाय ऊरुं लोकं चक्रथुः उ) यज्ञके लिये तुमने विस्तृत स्थान बनाया है। (सूर्यं उषासं अग्निं) सूर्य, उषा और अग्निको तुम दोनों (जनयन्तौ) उत्पन्न करते हो। हे (नरा) नेताओ ! हे इन्द्र और विष्णु ! (वृषशिप्रस्य दासस्य चित्) बलवान् और सुरक्षित शत्रुकी (मायाः पृतनाज्येषु जघ्नतुः) कुटिल कपटी आक्रमक योजनाओंको युद्धोंमें तुमने विनष्ट किया ॥ ४ ॥

[७८८] हे (इन्द्राविष्णु) इन्द्र और विष्णु ! तुमने (शंबरस्य दृंहिताः नव नवतिं च पुरः श्नथिष्टं) शंबर असुरकी नौ और नब्बे सुदृढ पुरियोंका विनाश किया। और (वर्चिनः असुरस्य) वर्चस्वी असुरकी (शतं सहस्रं च वीरान्) सौ और हजारों वीरोंको (अप्रति साकं हथः) अप्रतिमरीतिसे तुमने मारा ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे तेजस्वी विष्णो ! तेरी महिमा इतनी अपार है कि आज तक जितनोंने जन्म लिया है तथा आगे भी जितने जन्म लेंगे, उनमेंसे कोई भी तुम्हारी महिमाका पार नहीं पा सकता। यह तुम्हारी ही महिमा है कि तुमने इस विशाल और तेजस्वी द्युलोकको बिना आधारके ऊपर ही स्थिर किया और बिना किसी आधारके दिशाओंको भी स्थिर किया ॥ २ ॥

मनुष्योंका हित करनेके लिए ही ये द्युलोक और पृथिवीलोक अन्न तथा पशु आदियोंसे भरपूर हुए हैं। ये दोनों लोक विष्णुके कारणही स्थिर हैं और पर्वतोंके कारण पृथिवी स्थिर है ॥ ३ ॥

सृष्टिरूपी यज्ञको चलानेके लिए द्युलोक और पृथ्वीलोकने विस्तृत स्थान बनाया। इन्हीं दोनों लोकोंने सूर्य, उषा और अग्निको स्थान दिया। तब इन्द्र और विष्णुने बलवान् और सुरक्षित शत्रुकी कुटिल और कपटपूर्ण आक्रमणोंको नष्ट कर दिया ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और विष्णु ! तुमने असुरोंकी अनेक नगरियोंका नाश किया तथा असुरोंके असंख्य वीरोंको तुमने अप्रतिम रूपसे नष्ट किया ॥ ५ ॥

७८९ इयं मनीषा बृहती बृहन्तो॒रुक्रमा तवसा वर्धयन्ती ।
ररे वां स्तोमं विदथेषु विष्णो पिन्वतमिषो वृजनेष्विन्द्र ॥ ६ ॥
७९० वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[१००]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- विष्णुः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७९१ नू मर्तो दयते सनिष्यन् यो विष्णव उरुगायाय दाशत् ।
प्र यः सत्राचा मनसा यजात एतावन्तं नर्यमाविवासात् ॥ १ ॥
७९२ त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्या॒मप्रयुतामेवयावो मतिं दाः
पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरे॒रश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः ॥ २ ॥

अर्थ— [७८९] (इयं बृहती मनीषा) यह बडी भारी मननपूर्वक की स्तुति है। यह (बृहन्ता उरुक्रमा तवसा वर्धयन्ती) बडे महापराक्रमी और बलवान् ऐसे इन्द्र और विष्णुका यश बढाती है। हे (इन्द्र विष्णो) इन्द्र और विष्णु ! (विदथेषु वां स्तोमं ररे) यज्ञोंमें आपका स्तोत्र गानेके लिये देता हूं। (वृजनेषु इषः पिन्वतं) युद्धोंमें तुम हमारा अन्न बढाओ ॥ ६ ॥

[७९०] हे (विष्णो) विष्णो ! (ते आसः वषट् आ कृणोमि) तुम्हारे लिये मुखसे मैंने वषट् किया है। वषट् बोल कर अन्नका अर्पण किया है। हे (शिपिविष्ट) तेजवाले विष्णु ! (तत् मे हव्यं जुषस्व) उस मेरे दिये हविष्यान्नका सेवन करो। (मे सुष्टुतयः गिरः त्वा वर्धन्तु) मेरी उत्तम स्तुतियां तुम्हारे यशका संवर्धन करें। (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम हमारा कल्याणमय साधनोंसे सदा संरक्षण करो ॥ ७ ॥

[१००]

[७९१] (सः मर्तः सनिष्यन् नु दयते) वही मनुष्य धनकी इच्छा करके सत्वर धनको प्राप्त करता है (यः उरुगायाय विष्णवे दाशत्) जो बहुतों द्वारा प्रशंसनीय विष्णुके लिये हवि देता है। (यः सत्राचा मनसा प्र यजाते) जो साथ साथ कहे जानेवाले मन्त्रोंसे मननपूर्वक विष्णुके लिये यज्ञ करता है, (यः एतावन्तं नर्यं आविवासत्) जो ऐसे मनुष्योंके हितकर्ता विष्णुकी पूजा करता है ॥ १ ॥

[७९२] हे (एवयावः विष्णो) कामनाओंकी पूर्णता करनेवाले विष्णु ! तुम (विश्वजन्यां अप्रयुतां सुमतिं मतिं दाः) हमें सर्वजन हितकारी दोष रहित उत्तम विचारोंसे युक्त ऐसी बुद्धि दो। तुम (सुवितस्य अश्वावत् पुरुश्चन्द्रस्य भूरेः रायः) सुखसे प्राप्त होने योग्य घोडोंसे युक्त अत्यंत आल्हाददायक विपुल धनका (पर्चः यथा) संपर्क जिस तरह हो सके ऐसा करो। ऐसा धन हमें मिले ॥ २ ॥

भावार्थ— मनुष्यों द्वारा की जानेवाली स्तुति इन्द्र और विष्णुका यश बढाती है। ये दोनों देव युद्धके समय हमारा अन्न बढायें ॥ ६ ॥

हे विष्णो ! मैंने स्तुति करके तुम्हारे लिए यह अन्न समर्पित किया है। हे तेजस्वी विष्णो ! तुम मेरे दिए गए हविको स्वीकार करो, मेरी उत्तम स्तुतियां तुम्हारे यशको बढावें। तुम सब देवोंके साथ मिलकर हमारी रक्षा करो ॥ ७ ॥

जो मनुष्य बहुतों द्वारा प्रशंसनीय विष्णुको हवि देता है, वही मनुष्य धनकी इच्छा होनेपर शीघ्र धनको प्राप्त करता है। जो मनुष्योंका हित करनेवाले विष्णुकी पूजा करता है, वह शीघ्र ऐश्वर्यशाली होता है ॥ १ ॥

हे कामनाओंके पूरक हमें ऐसी बुद्धि दो, कि जिससे हम सार्वजनिक हित करनेमें तत्पर रहें। हमारी बुद्धि प्रमाद करनेवाली न हो, उत्तम विचारोंसे युक्त हो और मननशील हो। घोडे, गौ आदि पशुओंसे युक्त आल्हादकारक धन हमें प्राप्त हो ॥ २ ॥

७९३ त्रिर्देवः पृ॒थि॒वीमे॒ष ए॒तां वि च॑क्रमे श॒तर्च॑सं महि॒त्वा ।
प्र विष्णु॑रस्तु त॒वस॒स्तवी॑यान् त्वे॒षं ह्य॑स्य॒ स्थवि॑रस्य॒ नाम॑ ॥ ३ ॥

७९४ वि च॑क्रमे पृथि॒वीमे॒ष ए॒तां क्षेत्रा॑य॒ विष्णु॒र्मनु॑षे दश॒स्यन् ।
ध्रु॒वासो॑ अस्य की॒रयो॒ जना॑स उरुक्षि॒तिं सु॒जनि॑मा चकार ॥ ४ ॥

७९५ प्र तत् ते॑ अ॒द्य शि॑पिविष्ट॒ नामा॒ऽर्यः शं॑सामि व॒युना॑नि वि॒द्वान् ।
तं त्वा॑ गृणामि त॒वस॒मत॑व्या॒न् क्षय॑न्तम॒स्य रज॑सः परा॒के ॥ ५ ॥

७९६ किमित् ते॑ विष्णो परि॒चक्ष्यं॑ भू॒त् प्र यद् व॑व॒क्षे शि॑पिवि॒ष्टो अस्मि॑ ।
मा वर्पो॑ अ॒स्मदप॑ गूह ए॒तद् यद॒न्यरू॑पः समि॒थे ब॒भूथ॑ ॥ ६ ॥

अर्थ— [७९३] (एषः देवः विष्णुः) इस विष्णु देवने (शतर्चसं एतां पृथिवीं) सैकडों तेजोंवाली इस भूमीपर (महित्वा त्रिः वि चक्रमे) अपनी महिमासे तीन वार पराक्रम किया । (तवसः तवीयान् विष्णुः प्र अस्तु) बडोंसे बडा यह विष्णु हमारा सहायक हो । (अस्य स्थविरस्य नाम त्वेषं हि) इस बडे देवका नाम तेजस्वी है ॥ ३ ॥

[७९४] (एषः विष्णुः एतां पृथिवीं) यह विष्णुदेव इस पृथिवीको (क्षेत्राय मनुषे दशस्यन्) निवासके लिये मनुष्योंको देनेकी इच्छासे (विचक्रमे) पराक्रम करता रहा । (अस्य कीरयः जनासः ध्रुवासः) इसके स्तोता गण यहां सुस्थिर होते हैं । यह (सुजनिमा उरुक्षितिं चकार) उत्तम जन्म लेनेवाला विस्तीर्ण निवास स्थान बनाता है ॥ ४ ॥

[७९५] हे (शिपिविष्ट) तेजस्वि विष्णो ! (ते तत् नाम) तुम्हारे उस नामको तथा (वयुनानि विद्वान्) सब कर्मोंको जानता हुआ (अर्यः अद्य प्रशंसामि) मैं श्रेष्ठ बनकर तुम्हारी प्रशंसा करता हूं । मैं (अतव्यान् तं तवसं त्वा गृणामि) बडा नहीं हूं, पर तुम बडे हो, इसलिये मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं । तुम (अस्य रजसः पराके क्षयन्तं) इस लोकसे दूर रहते हो ॥ ५ ॥

[७९६] हे विष्णो ! (किं इत् ते परिचक्ष्यं भूत्) क्या यह तुम्हारा नाम त्यागने योग्य हुआ है ? (यत् प्रववक्षे शिपिविष्टः अस्मि) जो तुम ऐसा कहते हो कि मैं शिपिविष्ट हूं । (एतत् वर्पः अस्मत् मा अप गूहः) यह अपना रूप हमसे दूर न करो (यत् अन्यरूपः समिथे बभूथ) जो तुम युद्धके समय अन्य अन्य रूप धारण करते हो । अर्थात् हमारे सामने तुम्हारा एक ही दिव्य रूप रहे ॥ ६ ॥

भावार्थ— इस विष्णुने इस विशाल भूमिको अपने महत्त्वसे नापा । अत्यधिक शक्तिशाली यह विष्णु हमारा सहायक हो यह विष्णु अत्यन्त तेजस्वी है अतः जो इसका ध्यान करता है, वह तेजस्वी होता है ॥ ३ ॥

विष्णुने यह पृथ्वी मनुष्योंको निवासके लिए देनी चाही, असुरोंको नहीं, इसलिए उसने असुरोंके साथ प्रबल युद्ध किया और उनसे भूमि लेकर मानवोंको दी । इस प्रकार उत्तम जन्म लेनेवाले विष्णुने इस पृथिवीको उत्तम निवासके योग्य बनाया ॥ ४ ॥

हे तेजयुक्त विष्णो ! तुम्हारी महिमा और सब कर्मोंको जानता हुआ मैं तुम्हारी स्तुति करके श्रेष्ठ बनता हूँ । मैं बडा नहीं हूँ, बडे तो तुम्हीं हो, इसीलिए मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

विष्णुके तेजका वर्णन करना असंभव है । क्योंकि यह अनेक रूप धारण करता है । पर जो इसका आल्हादायक रूप है, वह हमारी नजरोंसे दूर न हो ॥ ६ ॥

७९७ वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[१०१]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः (वृष्टिकामः), कुमार आग्नेयो वा । देवता- पर्जन्यः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७९८ तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा या एतद् दुह्रे मधुदोघमूधः ।
स वत्सं कृण्वन् गर्भमोषधीनां सद्यो जातो वृषभो रोरवीति ॥ १ ॥

७९९ यो वर्धन ओषधीनां यो अपां यो विश्वस्य जगतो देव ईशे ।
स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत् त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्ट्य१स्मे ॥ २ ॥

अर्थ— [७९७] हे (विष्णो) विष्णो ! (ते आसः वषट् आ कृणोमि) तुम्हारे लिए मुखसे मैंने वषट् किया है, वषट् बोलकर अन्नका अर्पण किया है । हे (शिपिविष्ट) तेजस्वी विष्णो ! (तत् मे हव्यं जुषस्व) इस मेरे दिए गए हविर्द्रव्यका सेवन करो । (मे सुष्टुतयः गिरः त्वा वर्धन्तु) मेरी उत्तम स्तुतियां तुम्हारे यशका संवर्धन करें । (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम हमारा कल्याणमय साधनोंसे सदा संरक्षण करो ॥ ७ ॥

[१०१]

[७९८] (ज्योतिरग्राः तिस्रः वाचः प्र वद) ज्योति जिनके अग्र भागमें है ऐसी तीन वाणियोंका उच्चारण करो । (याः एतत् मधुदोघं ऊधः दुह्रे) जो वाणियां इस मधुर रस देनेवाले दुग्धाशयको दुहती हैं । (सः वत्सं कृण्वन्) वह विद्युत् अग्निरूप वत्सको निर्माण करता है और (ओषधीनां गर्भं) औषधियोंके गर्भको स्थापन करता है, (सद्यः जातः वृषभः रोरवीति) वह तत्काल उत्पन्न हुआ वर्षा करनेवाला मेघ शब्द करता है ॥ १ ॥

[७९९] (यः ओषधीनां वर्धनः) जो पर्जन्य औषधियोंको बढानेवाला है और (यः अपां) जो जलोंको बढानेवाला है, (यः देवः विश्वस्य जगतः ईशे) जो पर्जन्य देव सब जगत्का स्वामी है । (सः त्रिधातु शरणं शर्म यंसत्) वह पर्जन्य तीन धारक शक्तियोंसे युक्त घर तथा सुख हमें देवे । वह (त्रिवर्तु स्वभिष्टि ज्योतिः अस्मे) तीन ऋतुओंमें रहनेवाली, उत्तम प्रकारसे प्रिय ज्योति हमें देवे ॥ २ ॥

भावार्थ— हे विष्णो ! मैंने स्तुति करके तुम्हारे लिए यह अन्न समर्पित किया है । हे तेजस्वी विष्णो ! तुम मेरे दिए गए हविको स्वीकार करो, मेरी उत्तम स्तुतियां तुम्हारे यशको बढावें । तुम सब देवोंके साथ मिलकर हमारी रक्षा करो ॥ ७ ॥

मेघ जब गरजता है, तो उससे पूर्व ज्योति चमकती है । पहले बिजलीकी चमक दिखाई देती है, फिर मेघोंका गर्जन सुनाई देता है । ये मेघ मधुर जलरूपी रसके भंडार हैं । वृष्टि इन मेघोंका दूध है । यह मेघ विद्युत् रूप अग्निको उत्पन्न करता है, वही मानों उसका वत्स है । यही औषधियोंमें गर्भ स्थापित करता है । जब वृष्टिका जल औषधी वनस्पतियोंमें प्रविष्ट होता है, तब उनमें फल-फूल उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

पर्जन्यसे औषधियां बढती हैं, भूमिपर जल होता है । इस जलसे तीन प्रकारका सुख होता है । खानेके लिए अन्न, पीनेके लिए जल और आरोग्यके लिए औषधियां इससे मिलती हैं । तीनों ऋतुओंमें इससे सुख होता है । इसप्रकार यह पर्जन्य मानवोंका हितकारी है ॥ २ ॥

८०० स्तरीरु त्वद् भवति सूतं उ त्वद् यथावुशं तुन्वं चक्र एषः ।
पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः ॥ ३ ॥
८०१ यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुस्तिस्रो द्यावस्त्रेधा सुस्रुरापः ।
त्रयः कोशास उपसेचनासो मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥ ४ ॥
८०२ इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे हृदो अस्त्वन्तरं तज्जुजोषत् ।
मयोभुवो वृष्टयः सन्त्वस्मे सुपिप्पला ओषधीर्देवगोपाः ॥ ५ ॥
८०३ स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्थुषश्च ।
तन्मं ऋतं पातु शतशारदाय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

अर्थ— [८००] (त्वत् स्तरीः उ भवति) तुम्हारा मेघका एक रूप न प्रसवनेवाली गौकी तरह होता है। (त्वत उ सूते) तुम्हारा दूसरा रूप प्रसूत होनेवाली गौ जैसा है। (एषः तन्वं यथावशं चक्रे) यह पर्जन्य अपने शरीरको जैसा चाह वैसा आकारवाला बनाता है। (पितुः पयः माता प्रति गृभ्णाति) पितारूपी द्युलोकसे जल भूमिमाता प्राप्त करती है। (तेन पिता वर्धते) उससे पिता भी बढता है और (तेन पुत्रः) उसीसे पुत्र भी बढता है ॥ ३ ॥

[८०१] (यस्मिन् विश्वानि भूतानि तस्थुः) जिसमें सब भूतमात्र रहे हैं, जिसमें (तिस्रः द्यावः) तीनों लोक रहे हैं, जिससे (आपः त्रेधा सस्रुः) जल तीन प्रकारसे चल रहा है। जिसके (उपसेचनासः कोशासः त्रयः) सिंचन करनेवाले कोश तीन हैं, जो (विरप्शं मध्वः अभितः श्चोतन्ति) बडे मधुर रसको चारों ओरसे बरसाते हैं ॥ ४ ॥

[८०२] (इदं वचः स्वराजे पर्जन्याय) यह स्तोत्र स्वयं तेजस्वी पर्जन्यके लिये है। यह स्तोत्र (हृदः अन्तरं अस्तु) इनके लिये हृदयंगम हो, वह (तत् जुजोषत्) इसका स्वीकार करे। (मयोभुवः वृष्टयः अस्मे सन्तु) सुखदायी वृष्टियां हमारे लिये होती रहें और इससे (देवगोपाः सुपिप्पलाः ओषधीः) देवों द्वारा सुरक्षित हुई औषधियां उत्तम फलवाली बने ॥ ५ ॥

[८०३] (सः शश्वतीनां रेतोधा वृषभः) वह पर्जन्य अनंत औषधियोंमें वीर्य-जल-रखनेवाला महा बलवान देव है। इसलिये (जगतः तस्थुषः च तस्मिन् आत्मा) जंगम और स्थावरका उसमें आत्मा ही निवास करता है। (तत् ऋतं शतशारदाय मा पातु) वह पर्जन्यका जल सौ वर्षोंके दीर्घ जीवनमें मेरा संरक्षण करे। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारी सुरक्षा कल्याण करनेवाले साधनोंसे करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— मेघ दो प्रकारके होते हैं- एक केवल गर्जनेवाले तथा मेघ रूपमें दीखनेवाले, दूसरे वृष्टि करनेवाले। मेघोंके शरीर भी बदलते रहते हैं। अन्तरिक्षमें रहकर ये मेघ वृष्टि करते हैं और वह जल पृथ्वीपर आता है। इससे पृथ्वीपर धान्य उत्पन्न होता है और धान्यसे यज्ञ होते हैं। इन यज्ञोंसे वायुजल आदि देवताओंकी शक्ति बढती है और उनसे सब पृथ्वीपरके प्राणियोंकी भी शक्ति बढती है ॥ ३ ॥

मेघपर ही सब प्राणी अवलंबित हैं। मेघके बिना वे रह नहीं सकते। मेघोंसे जो जल आता है वह नदी, कुंए और तालाबोंमें जाता है, और वहांसे सबको प्राप्त होता है। ये कोश जलसे परिपूर्ण होते हैं और वहांसे लोगोंको यह जल मिलता रहता है। मेघमें रहनेवाला जल बडा मधुर होता है और वही चारों ओर वृष्टिके द्वारा पहुंचता है ॥ ४ ॥

यह स्तोत्र पर्जन्य राजाके लिए किया गया है, इन स्तोत्रोंको स्वीकार करे। सुखदायी वृष्टियां हमारे लिए होती रहें तथा इन वृष्टियोंका जल पीकर तथा देवोंके द्वारा सुरक्षित होकर ये औषधियां उत्तम फलफूलवाली बने ॥ ५ ॥

इस वृष्टिजलके कारण औषधि वनस्पतियोंमें अनेक तरहके गुणधर्मोंका निर्माण होता है, जिनसे स्थावरजंगम जगत्का उत्तम पालन हो रहा है। इसलिए यह पर्जन्य मानों सबकी आत्मा ही है। इस अमृत जलका सेवन करके मनुष्य सुखसे रहते हैं। इस तरह पर्जन्य सबका हित करता है ॥ ६ ॥

[१०२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठ (वृष्टिकामः), कुमार आग्नेयो वा । देवता- पर्जन्यः ।
छन्दः- गायत्री, २ पादनिचृत् ।)

८०४ पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे । स नो यवसमिच्छतु ॥ १ ॥
८०५ यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम् । पर्जन्यः पुरुषीणाम् ॥ २ ॥
८०६ तस्मा इदास्ये हवि- र्जुहोता मधुमत्तमम् । इळां नः संयतं करत् ॥ ३ ॥

[१०३]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- मण्डूकाः (पर्जन्यः) । छन्दः- त्रिष्टुप् १ अनुष्टुप् ।)

८०७ संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥ १ ॥

---

[१०२]

अर्थ— [८०४] (दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे) द्युलोकके पुत्र और सिंचन करनेवाले (पर्जन्याय प्रगायत) पर्जन्यके लिये काव्यगान करो, (सः नः यवसं इच्छतु) वह हमारे लिये औषधि वनस्पतियां तथा धान्य देवे ॥ १ ॥

[८०५] (यः पर्जन्यः) जो पर्जन्य (ओषधीनां गवां अर्वतां पुरुषीणां) औषधियों, गौवों, घोडों और मानवी स्त्रियोंमें (गर्भं कृणोति) गर्भ धारण कराता है । सबमें वीर्य उत्पन्न करके गर्भ धारण करनेवाला यह पर्जन्य है ॥२॥

[८०६] (तस्मै इत् आस्ये) उसके लिये अग्निरूप मुखमें (मधुमत्तमं हविः जुहोत) मधुर हविका हवन करो । (नः इळां संयतं करत्) वह हमारे लिये नियत अन्न देवे ॥ ३ ॥

[१०३]

[८०७] (व्रतचारिणः ब्राह्मणाः) व्रताचरण करनेवाले ब्राह्मण (संवत्सरं शशयानाः) एक वर्ष तक सत्रमें गुप्त होकर सोये हुए जैसे ये (मंडूकाः) मेंडक (पर्जन्य-जिन्वितां वाचं) पर्जन्यको प्रसन्न करनेवाली वाणी (अवादिषुः) बोलने लगे हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! अन्तरिक्षमें निवास करनेवाले तथा अपने जलसे भूमिका सिंचन करनेवाले पर्जन्यके लिए काव्योंका गान करो, ताकि वह प्रसन्न होकर हमारे लिए औषधि-वनस्पतियां तथा इतर प्रकारके धान्य प्रदान करे ॥ १ ॥

यह पर्जन्य औषधियोंमें गर्भकी स्थापना करता है, उनसे उत्पन्न फल-फूल खाकर नर प्राणियोंमें वीर्य उत्पन्न होता है और वे नरप्राणी फिर मादाओंमें गर्भ स्थापित करते हैं । इस प्रकार पर्जन्य ही सबमें गर्भ-स्थापनाका मूल कारण है ॥ २ ॥

अग्निरूप मुखमें हवन करनेसे मेघोंकी उत्पत्ति होती है और उन मेघोंसे वृष्टि होनेपर प्राणियोंको अन्नकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥

जिस तरह व्रतका आचरण करनेवाले ब्राह्मण एक वर्ष तक चलनेवाले सत्रमें व्रती होनेके कारण मौन धारण करके शान्त रहते हैं, और वर्षसमाप्तिके पश्चात् स्तोत्रपाठ करने लगते हैं, उसीतरह ये मेंढक अपने अपने स्थानोंमें वर्षभर चुपचाप रहते हैं और पर्जन्यके शुरु होतेही शब्द करने लगते हैं । मण्डूक शब्द ' मण्ड्-सुशोभित करना ' इस धातुसे बना है । सुभूषित करनेवालेको मण्डूक कहते हैं । तालावका भूषण मण्डूक अर्थात् मेंढक है और सभाका भूषण पंडित ब्राह्मण है । इसलिए यहां मेंढकको ब्राह्मणकी उपमा दी गई है ॥ १ ॥

×

८०८ दिव्या आपो अभि यदेनमायन् दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम् ।
गवामह न मायुर्वत्सिनीनां मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति ॥ २ ॥
८०९ यदीमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत् तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम् ।
अक्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति ॥ ३ ॥
८१० अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनो—रपां प्रसर्गे यदमन्दिषाताम् ।
मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन् पृश्निः संपृङ्क्ते हरितेन वाचम् ॥ ४ ॥
८११ यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः ।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत् सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥ ५ ॥

अर्थ— [८०८] (शुष्कं दृतिं न) सूखे चमडेकी थैलीके समान (सरसी शयानं) सूखे तालावमें सोनेवाले (एनं) इस मेंढकके पास (यत् दिव्याः आपः अभि आयान्) जिस समय आकाशस्थानीय मेघके वृष्टीजल पहुंचते हैं, तब (वत्सिनीनां गवां मायुः न) बछडोंवाली गौवोंके शब्दके समान (अत्र मंडूकानां वग्नुः सं एति) यहां मेंढकोंका शब्द होने लगता है ॥ २ ॥

[८०९] (उशतः) जल चाहनेवाले (तृष्यावतः) प्यास जिनको लगी है ऐसे (एनान् प्रावृषि) इन मेंढकोंके पास वर्षाका समय (आगतायां) आनेपर (यत् ईं अभिवर्षीत्) जब मेघ बरसने लगता है, तब (पुत्रः पितरं न) पुत्र पिताके साथ जैसा बोलता है, उस तरह (अक्खली कृत्य) 'अक्खल' ऐसा शब्द करता हुआ (अन्यः अन्यं उपवदन्तं एति) एक मेंढक दूसरेके पास जाता है ॥ ३ ॥

[८१०] (एनोः अन्यः अन्यं अनु गृभ्णाति) इनमेंसे एक दूसरेपर अनुग्रह करता है, (यत् अपां प्रसर्गे अमंदिषातां) जब पानी बरसनेपर ये मेंढक आनंदित होते हैं। (यत् अभिवृष्टः मण्डूकः कनिष्कन्) जब वृष्टि होनेपर मेंढक कूदने लगता है, तब (पृश्निः हरितेन वाचं संपृक्ते) चितकबरा मेंढक हरित वर्णके मेंढकके साथ बातें करनेके समान शब्द करता है ॥ ४ ॥

[८११] (यत् एषां अन्यः) जब इनमेंसे एक मेंढक (अन्यस्य वाचं वदति) दूसरेके साथ बोलने लगता है, (शिक्षमाणः शाक्तस्य इव) तब शिष्य गुरुके शब्द पुनः बोलनेके समान प्रतीत होता है। (यत् अप्सु अधि सुवाचः वदथन) जब पानीके ऊपर कूदते हुए उत्तम शब्द तुम मेंढक बोलते हो, (तत् एषां पर्व समृधा इव) तब इनका शरीर समृद्ध हुआ सा दीखता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— गर्मीमें जब तालाब सूख जाते हैं, तब मेंढक भी सूखे चमडेकी थैलीके समान सूख जाते हैं, पर पर्जन्य कालमें जब वृष्टीजल उन मेंढकोंके पास पहुंचता है, उस समय ये मेंढक प्रसन्न होकर उसी तरह शब्द करते हैं कि जिस तरह बछडोंवाली गायें शब्द करती हैं ॥ २ ॥

गर्मीमें जलके न मिलनेसे मेंढक प्यासे रहते हैं । पर वर्षाकालमें जब वृष्टि होती है, तब पर्याप्त जल उन्हें मिलता है और उन्हें बडा आनन्द होता है । उस आनन्दके कारण वे मेंढक शब्द करते हुए एक दूसरेसे मिलते हैं ॥ ३ ॥

जब बरसात होती है, तब मेंढक आनन्दित होते हैं और आनन्दसे एक दूसरेके साथ कूदने लगते हैं और इस प्रकार शब्द करते हैं, मानों कि वे आपसमें बातें कर रहे हों ॥ ४ ॥

जब भरपूर पानी बरसता है, तब मेंढक आनन्दसे इधर उधर कूदते हैं। उस समय ये मेंढक जो शब्द करते हैं, उस परसे प्रतीत ऐसा होता है कि मानों कोई गुरु मंत्र बोल रहा हो और शिष्यगण उसीको दुहरा रहे हों ॥ ५ ॥

८१२ गोमा॑युरेको॑ अ॒जमा॑युरेकः॒ पृश्नि॑रेको॒ हरि॑त॒ एक॑ एषाम् ।
स॒मा॒नं नाम॒ बिभ्र॑तो॒ विरू॑पाः पुरु॒त्रा वाचं॑ पिपिशु॒र्वद॑न्तः । ॥ ६ ॥

८१३ ब्रा॒ह्म॒णासो॑ अतिरा॒त्रे न सोमे॒ सरो॒ न पू॒र्णम॒भितो॒ वद॑न्तः ।
सं॒व॒त्स॒रस्य॒ तदहः॒ परि॑ ष्ठ॒ यन्म॑ण्डूकाः प्रावृ॒षीणं॑ ब॒भूव॑ ॥ ७ ॥

८१४ ब्रा॒ह्म॒णासः॑ सो॒मिनो॒ वाच॑मक्रत॒ ब्रह्म॑ कृ॒ण्वन्तः॑ परिवत्स॒रीण॑म् ।
अ॒ध्व॒र्यवो॑ घ॒र्मिणः॑ सिष्विदा॒ना आ॒विर्भ॑वन्ति॒ गुह्या॒ न के चि॑त् ॥ ८ ॥

८१५ दे॒वहि॑तिं जुगुपुर्द्वाद॒शस्य॑ ऋ॒तुं नरो॒ न प्र मि॑नन्त्ये॒ते ।
सं॒व॒त्स॒रे प्रा॒वृष्याग॑तायां त॒प्ता घ॒र्मा अ॑श्नुवते विस॒र्गम् ॥ ९ ॥

अर्थ— [८१२] (एकः गोमायुः) एक मेंढक गौके समान शब्द करता है, (एकः अजमायुः) दूसरा बकरेके समान शब्द करता है, (पृश्निः एकः) एक चितकबरा है तो (एषां एकः हरितः) इनमेंसे दूसरा हरिद्वर्णवाला होता है। इस तरह ये (विरूपाः) अनेक रूपोंवाले होते हुए भी (समानं नाम बिभ्रतः) एक ही मेंढक यह नाम सब धारण करते हैं। और ये (पुरुत्रा वाचं वदंतः पिपिशुः) अनेक प्रकारके शब्द करते हुए दिखाई देते हैं ॥ ६ ॥

[८१३] (अतिरात्रे सोमेन) अतिरात्र नामक सोमयागमें जैसे (ब्राह्मणासः अभितः वदन्तः) ब्राह्मण मंत्र बोलते हैं, उस तरह (पूर्णं प्रावृषीणं सरः न) सरोवर वर्षामें परिपूर्ण भरनेपर, हे (मण्डूकाः) मेंढकों ! (संवत्सरस्य तत् अहः) वर्षका वह दिन तुम्हारे लिये (परि स्थ बभूव) चारों ओर घूमनेके लिये होता है ॥ ७ ॥

[८१४] (संवत्सरीणं ब्रह्म कृण्वन्तः) एक वर्ष चलनेवाला यज्ञ करनेवाले (सोमिनो ब्राह्मणासः) सोमयाजी ब्राह्मण जैसे (वाचं अक्रत) मन्त्र बोलते हैं और (घर्मिणः अध्वर्यवः सिष्विदानाः) यज्ञ करनेवाले अध्वर्यु पसीनेसे भीगे हुए (केचित् गुह्याः) कई याजक गुप्त स्थानमें बैठते हैं और (आविः न भवन्ति) बाहर नहीं आते हैं ॥ ८ ॥

[८१५] (एते नरः) ये नेता लोग (देवहितिं जुगुपुः) दैवी नियमका संरक्षण करते हैं। इसलिये (द्वादशस्य ऋतुं न प्रमिनन्ति) बारह महिनोंके ऋतुओंको विनष्ट नहीं करते हैं। (संवत्सरे प्रावृषि आगतायां) वर्षमें वृष्टिका समय आते ही (तप्ताः घर्माः विसर्गं अश्नुवते) तपे हुए मेंढक बाहर आते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— मेंढकोंमें कोई मेंढक गौके समान शब्द करता है, तो दूसरा बकरीके समान आवाज करता है। कोई मेंढक चितकबरे रंगका होता है तो कोई मेंढक हरे रंगका होता है। अनेक रूपोंवाले होनेपर भी इन मेंढकोंका नाम तो एक ही है। बरसातमें ये सभी मेंढक अनेक तरहके शब्द करते हुए दिखाई देते हैं ॥ ६ ॥

सोमयज्ञमें जिस तरह अनेक ब्राह्मण एक स्वरसे वेदमंत्रोंका पाठ करते हैं, उसी तरह ये मेंढक एक स्वरसे शब्द करते हैं। वर्षाकालमें ये मेंढक चारों ओर कूदते फिरते हैं ॥ ७ ॥

एक वर्ष तक चलनेवाले यज्ञमें जैसे वेदपाठी एक स्वरसे मंत्रका पाठ करते हैं। उनमें कुछ याजक तो यज्ञाग्निके पास बैठनेके कारण पसीनेसे भीग जाते हैं, तो कुछ अन्दर ही बैठकर मंत्रपाठ करते हैं, उसी तरह मेंढक एक स्वरसे शब्द करते हैं। उनमें कुछ तो बाहर निकलकर शब्द करते हैं, वे मेंढक बरसातसे भीग जाते हैं, पर दूसरे कुछ मेंढक बिलोंमें छिपे रहकर ही शब्द करते हैं ॥ ८ ॥

ये मेंढक गर्मीके ऋतुमें खूब तपते हैं, पर वृष्टि होते ही अपने बिलोंसे बाहर निकल आते हैं और खूब आनन्दसे इधर उधर कूदते हैं और शब्द करते हुए नाचते हैं। इसप्रकार ये ईश्वरीय नियमका पालन करते हैं ॥ ९ ॥

८१६ गोमा॑युरदादुजमा॑युरदा॒त् पृश्नि॑रदा॒द्धरि॑तो नो॒ वसू॑नि ।
गवां॑ म॒ण्डूका॒ दद॑तः श॒तानि॑ सहस्रसा॒वे प्र ति॑रन्त॒ आयुः॑ ॥ १० ॥

[१०४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- (राक्षोघ्नं) इन्द्रासोमौ; ८, १६, १९-२२ इन्द्रः, ९, १२-१३ सोमः; १०, १४ अग्निः, ११ देवाः, १७ ग्रावाणः, १८ मरुतः, २३ (पूर्वार्धस्य) वसिष्ठाशीः, (उत्तरार्धस्य) पृथिव्यन्तरिक्षे। छन्दः- त्रिष्टुप्; १-६, १८, २१, २३ जगती; ७ जगती त्रिष्टुब्वा; २५ अनुष्टुप्।)

८१७ इन्द्रा॑सोमा॒ तप॑तं॒ रक्ष॑ उ॒ब्जतं॒ न्य॑र्पयतं वृषणा त॒मो॒वृधः॑ ।
परा॑ शृणीतम॒चितो॒ न्यो॑षतं ह॒तं नु॒देथां॒ नि शि॑शीतम॒त्रिणः॑ ॥ १ ॥

८१८ इन्द्रा॑सोमा॒ सम॒घशं॑सम॒भ्य१॒॑घं तपु॑र्ययस्तु च॒रुर॑ग्नि॒वाँ इ॑व ।
ब्र॒ह्म॒द्विषे॑ क्र॒व्यादे॑ घो॒रच॑क्षसे॒ द्वेषो॑ धत्तमनवा॒यं कि॑मी॒दिने॑ ॥ २ ॥

अर्थ— [८१६] (गोमायुः अदात्) गौ जैसा शब्द करनेवालेने हमें धन दिया, (अजमायुः अदात्) बकरेके शब्दके समान शब्द करनेवालेने हमें धन दिया, (पृश्निः अदात्) चितकबरेने दिया है, (हरितः नः वसूनि अदात्) हरिद्वर्णवालेने हमें धन दिया है। (सहस्रसावे) सहस्रों औषधियोंको बढानेवाले वर्षा ऋतुमें (गवां शतानि ददतः मंडूकाः) सैंकडों गौवें देनेवाले मेंढक हमारी (आयुः प्रतिरते) आयु बढाते हैं ॥ १० ॥

[१०४]

[८१७] हे (इन्द्रासोमौ) इन्द्र और सोम ! (रक्षः तपतं) राक्षसोंको जला दो। (उब्जतं) मारो। हे (वृषणा) बलवानो ! (तमोवृधः नि अर्पयतं) अज्ञानमें बढनेवालोंको हीन बना दो। (अचितः परा शृणीतं) अज्ञानियोंको दूर करो। उनको (नि ओषतं हतं) जलाकर निःशेष करो। (नुदेथां) भगा दो। (अत्रिणः नि शिशीतं) दूसरोंको खानेवालोंको निर्बल करो ॥ १ ॥

[८१८] हे (इन्द्रासोम) इन्द्र और सोम ! (अघशंसं अघं सं अभि) पाप करनेके लिये प्रसिद्ध, महापापी दुष्टको मिलकर विनष्ट करो। वह दुष्ट (तपुः) दुःखसे तप जानेपर (अग्निवान् चरुः इव ययस्तु) अग्निमें डाली हुई भातकी आहुतिके समान जलकर विनष्ट हो जावे। (ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे किमीदिने) ज्ञानका द्वेष करनेवाले कच्चा मांस खानेवाले भयंकर विरूपवाले सबकुछ खानेवालेके प्रति (अनवायं द्वेषः धत्तं) निरंतर द्वेषभाव धारण करो ॥ २ ॥

भावार्थ— मेंढकोंके प्रकट होनेसे वर्षा ऋतुके आनेकी सूचना मिल जाती है। उत्तम वर्षासे उत्तम घास उत्पन्न होती है, उत्तम घास खाकर गायें पुष्ट होती हैं। वर्षासे उत्तम धान्य उत्पन्न होकर उससे धन प्राप्त होता है ॥ १० ॥

हे इन्द्र और सोम देवो ! तुम दोनों सज्जनोंको कष्ट देनेवाले राक्षसोंको जला डालो जो ज्ञानी न बनकर अज्ञानमें ही बढना चाहते हैं, उन्हें हीन कर दो। अज्ञानियोंको दूर करो। दूसरोंको खानेवालोंको निर्बल करो। ज्ञानी न बनकर सदा अज्ञानमें ही रहनेकी इच्छा करनेवाले, दूसरोंको खानेवाले अर्थात् अपने स्वार्थके लिए दूसरोंको हानि पहुंचानेवाले सभी राक्षस होते हैं। ऐसे राक्षसोंका विनाश आवश्यक है ॥ १ ॥

पापकर्म करनेमें जो प्रसिद्ध हैं, जो पापमय जीवनवाले हैं, जो ज्ञानसे द्वेष करनेवाले हैं, जो कच्चा मांस खानेवाले हैं, जिनका रूप भयंकर है, जो बहुत खाऊ हैं, ये सभी राक्षस हैं, इनका नाश अवश्य करना चाहिए ॥ २ ॥

८१९ इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्त—रनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।
यथा नातः पुनरेकश्चनोदयत् तद् वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥ ३ ॥
८२० इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम् ।
उत् तक्षतं स्वर्यं1 पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥ ४ ॥
८२१ इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्य—ग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः ।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम् ॥ ५ ॥
८२२ इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना ।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधये—मा ब्रह्माणि नृपतीव जिन्वतम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [८१९] हे (इन्द्रासोमौ) इन्द्र और सोम ! (दुष्कर्म कारिणः) दुष्ट कर्म करनेवालोंको (अनारम्भणे तमसि अन्तः प्र विध्यतं) अगाध अन्धकारमें विद्ध करो, (यथा एकः चन पुनः अतः न उदयत्) जिससे एक भी फिरसे वहांसे न आसके। (तत् वां मन्युमत् शवः शवसे अस्तु) वह तुम दोनोंका उत्साह पूर्ण बल शत्रुविजयके लिये समर्थ हो ॥ ३ ॥

[८२०] हे (इन्द्रासोमौ) इन्द्र और सोम ! (दिवः वधं सं वर्तयतं) अन्तरिक्षसे घातक आयुध उत्पन्न करो। (पृथिव्याः तर्हणं अघशंसाय) चाहे पृथिवीसे विनाशक आयुध राक्षसोंके विनाशार्थ उत्पन्न करो। अथवा (पर्वतेभ्यः स्वर्यं उत् तक्षतं) पर्वतोंसे शत्रु विनाशक आयुध तैयार करो, (येन वावृधानं रक्षः निजूर्वथः) इनसे बढनेवाले राक्षसको तुम मारो ॥ ४ ॥

[८२१] हे (इन्द्रासोमौ) इन्द्र और सोम ! (दिवः परिवर्तयतं) आकाशमेंसे चारों ओर आयुध फेंको। (युवं) तुम दोनों (अग्नितप्तेभिः अश्महन्मभिः) अग्निके समान तपानेवाले पत्थरोंके समान मारनेवाले (तपुर्वधेभिः अजरेभिः) तापकारक प्रहारवाले क्षीण न होनेवाले आयुधोंसे (अत्रिणः पर्शाने नि विध्यतं) भक्षक दुष्ट शत्रुओंके पीठ बींधो। वे बींधे गये शत्रु (निस्वरं यन्तु) चुपचाप भाग जावें ॥ ५ ॥

[८२२] हे (इन्द्रासोमौ) इन्द्र और सोम ! (कक्ष्या अश्वा इव) जैसी रस्सी घोडोंको बांधती है उस तरह (इयं मतिः) यह स्तुति (वाजिना वां विश्वतः परि भूतु) तुम दोनों बलवानोंको चारों ओरसे प्राप्त हो। (यां होत्रां वां मेधया परिहिणोमि) इस स्तुतिको मैं अपनी मेधासे आपके पास भेजता हूं। (नृपती इव इमा ब्रह्माणि जिन्वतं) राजालोगोंके समान इन काव्योंको सफल करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— दुष्ट कर्म करनेवाले मनुष्य अगाध अन्धकारमें ही सदा रहते हैं, उस अन्धकारसे वे कभी बाहर नहीं निकल सकते ॥ ३ ॥

मनुष्य सभी तरहके राक्षसोंका विनाश करनेके लिए अपने पास शस्त्रास्त्र उत्तम स्थितिमें रखें और उन दुष्टोंका नाश करें ॥ ४ ॥

हरेकको लूटलूटकर खानेवाले लोग ' अत्रिण ' कहलाते हैं। इनका हर तरहसे नाश करना चाहिए। अपने पास ऐसे शस्त्रास्त्र हों कि जिससे वे राक्षस हमें कभी भी कष्ट न दे सकें ॥ ५ ॥

जिस तरह राजागण कवियोंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर उन्हें धन देते हैं, उसी तरह हमारी स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर देवगण हमें धन दें ॥ ६ ॥

८२३ प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवै-र्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद् यो नः कदा चिदभिदासति द्रुहा ॥ ७ ॥

८२४ यो मा पाकेन मनसा चरन्त-मभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥ ८ ॥

८२५ ये पाकशंसं विहरन्त एवै-र्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहये वा तान् प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥ ९ ॥

८२६ यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस्तनूनाम् ।
रिपुः स्तेनः स्तेयकृद् दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३ तना च ॥ १० ॥

अर्थ— [८२३] हे (इन्द्रासोमौ) इन्द्र और सोम ! (तुजयद्भिः एवैः प्रति स्मरेथां) वेगवान् घोडोंसे शत्रुपर आक्रमण करो। (भंगुरावतः द्रुहः रक्षसः हतं) विनाशकारी द्रोही दुष्टोंको मारो। (दुष्कृते सुगं मा भूत्) कर्म करनेवालेके लिये सुखसे गमन करनेकी सुविधा न हो। (यः नः कदाचित् द्रुहा अभिदासति) जो हमें किसी समय द्रोहसे विनष्ट करना चाहता है उसको विनष्ट करो ॥ ७ ॥

[८२४] (पाकेन मनसा चरन्तं मा) पवित्र मनसे चलनेपर भी मुझे (यः अनृतेभिः वचोभिः अभिचष्टे) जो असत्य वचनोंसे दोषी ठहराना चाहता है, हे इन्द्र ! (काशिना संगृभीताः आपः इव) मुट्ठीमें पकडे जलके समान वह (असतः वक्ता असन् अस्तु) असत्यभाषी नहीं जैसा हो जावे। पूर्णतासे विनष्ट हो जावे ॥ ८ ॥

[८२५] (ये पाकशंसं एवैः विहरन्ते) जो मुझ सत्यवादी पवित्र आचारवालेको भी अपने स्वार्थके कारण कष्ट देते हैं। (वा ये स्वधाभिः भद्रं दूषयन्ति) अथवा जो अपने पासके अन्नादि साधनोंसे मुझ जैसे कल्याण करनेवालेको भी दूषण लगाते हैं। (सोमः तान् अहये वा प्रददातु) सोम उनको शत्रुके अधीन करे (वा निर्ऋतेः उपस्थे वा दधातु) अथवा निर्धन अवस्थामें उसको पहुंचा देवे ॥ ९ ॥

[८२६] हे (अग्ने) अग्ने ! (यः नः पित्वं रसं दिप्सति) जो हमारे अन्नके सारभूत रसका नाश करता है (यः अश्वानां) जो घोडोंका, (यः गवां) जो गौओंका और (यः तनूनां) जो अपने शरीरोंका नाश करता है वह (स्तेयकृत् स्तेनः रिपुः दभ्रं एतु) चोरी करनेवाला चोर समाजका शत्रु विनाशको प्राप्त होवे, (सः तन्वा तना च नि हीयतां) वह अपने शरीर और संतानके साथ विनष्ट हो जावे ॥ १० ॥

भावार्थ— तोडने फोडनेवाला तथा नाश करनेवाला भी राक्षस ही होता है, ऐसे राक्षसों पर घोडोंकी सहायतासे आक्रमण करना चाहिए अर्थात् दुष्टोंकी अपेक्षा रक्षकगण अधिक बलशाली हों। तोडफोड करनेवाले दुष्टोंको समाजमें सुख और सम्मानका स्थान प्राप्त न हो ॥ ७ ॥

पवित्र मनसे आचरण करनेवाले सज्जनको जो असत्यवचनोंसे दोषी ठहराना चाहता है, ऐसे असत्यभाषीको समाजमें कोई सम्मान न दे। इस प्रकार वह स्वयमेव नष्ट हो जाए ॥ ८ ॥

जो दुष्ट ' मैं तो साधनसम्पन्न हूं ' इस प्रकार सोचकर पवित्र मनुष्यको भी पापी बनाना चाहता है और अपने साधनोंका उपयोग सज्जनोंको कष्ट देनेके कार्यमें करता है, वह अपराध करता है, ऐसे दुष्टोंका विनाश अवश्य करना चाहिए ॥ ९ ॥

जो हमारे अन्नके रसको नष्ट करता है, जो हमारे घोडों, गायों और शरीरोंको हानि पहुंचाता है, वह समाजके साथ शत्रुता करनेवाला चोर विनाशको प्राप्त हो। वह अपने शरीर तथा सन्तानके सहित नष्ट हो जाए ॥ १० ॥

८२७ प॒रः सो अ॑स्तु त॒न्वा॒३॑ तना॑ च ति॒स्रः पृ॑थि॒वीर॒धो अ॑स्तु॒ विश्वाः॑ ।
प्रति॑ शुष्यतु॒ यशो॑ अस्य देवा॒ यो नो॒ दिवा॒ दिप्स॑ति॒ यश्च॒ नक्त॑म् ॥ ११ ॥

८२८ सु॒वि॒ज्ञा॒नं चि॑कि॒तुषे॒ जना॑य स॒च्चास॑च्च॒ वच॑सी पस्पृधाते ।
तयो॒र्यत् स॒त्यं य॑त॒रदृजी॑य॒स्तदित् सोमो॑ऽवति॒ हन्त्यास॑त् ॥ १२ ॥

८२९ न वा उ॒ सोमो॑ वृजि॒नं हि॑नोति॒ न क्ष॒त्रियं॑ मिथु॒या धा॒रय॑न्तम् ।
हन्ति॒ रक्षो॒ हन्त्यास॒द् वद॑न्त॒मुभा॒विन्द्र॑स्य॒ प्रसि॑तौ शयाते ॥ १३ ॥

८३० यदि॑ वा॒हमनृ॑तदेव॒ आस॒ मोघं॑ वा दे॒वाँ अ॑प्यू॒हे अ॑ग्ने ।
किम॒स्मभ्यं॑ जातवेदो हृणीषे द्रोघ॒वाच॑स्ते निॠ॒थं स॑चन्ताम् ॥ १४ ॥

अर्थ— [८२७] (सः तन्वा तना च परः अस्तु) वह दुष्ट राक्षस अपने शरीरसे और संतानसे रहित हो जावे, विनष्ट हो जावे । (विश्वाः तिस्रः पृथिवीः अधः अस्तु) सब तीनों पृथिवीके स्थानोंसे नीचे गिर जावे । हे (देवाः) देवो ! (अस्य यशः प्रति शुष्यतु) इसका यश सूखकर विनष्ट हो जाय । (यः नः दिवा दिप्सति, यः नक्तं) जो दिन रात हमें कष्ट देता है उसका नाश हो जाय ॥ ११ ॥

[८२८] (चिकितुषे जनाय इदं सु विज्ञानं) ज्ञानी मनुष्यके लिये यह सुविदित है कि (सत् च असत् च वचसी पस्पृधाते) सत्य और असत्य वचनोंकी स्पर्धा होती है । (तयोः यत् सत्यं) उनमें जो सत्य होता है, तथा (यतरत् ऋजीयः) जो सरल होता है, (तत् इत् सोमः अवति) उसका सोम संरक्षण करता है और जो (असत् हन्ति) असत होता है उसका वह नाश करता है ॥ १२ ॥

[८२९] (सोमः वृजिनं न वै हिनोति) सोम पापीको कभी नहीं छोडता । तथा (मिथुया धारयन्तं क्षत्रियं न) मिथ्या व्यवहार करनेवाले बलवानको भी नहीं छोडता । वह (रक्षः हन्ति) राक्षसको मारता है तथा (असत् वदन्तं हन्ति) असत्य भाषण करनेवालेको भी मारता है । (उभौ इन्द्रस्य प्रसितौ शयाते) ये दोनों अपराधी इन्द्रके बन्धनमें रहते हैं ॥ १३ ॥

[८३०] (यदि वा अहं अनृतदेवः आस) यदि मैं असत्यको ही देव माननेवाला बनूंगा । अथवा यदि मैं (देवान् मोघं अपि-ऊहे) देवोंकी व्यर्थ कपट भावसे उपासना कर रहा हूं, तो हे अग्ने ! हे (जातवेदः) वेद जिससे बने हैं । वास्तवमें ऐसा नहीं है फिर (अस्मभ्यं किं हृणीषे) हमारे ऊपर तुम क्रोध क्यों करते हो ? (द्रोघवाचः ते निर्ऋथं सचन्तां) द्रोहपूर्ण मिथ्याभाषी जो हैं वेही तुम्हारे द्वारा बुरी अवस्थाको प्राप्त हों ॥ १४ ॥

भावार्थ— जो दुष्ट सज्जनोंको दिन-रात कष्ट देता है, वह दुष्ट राक्षस अपने शरीर और सन्तानसे रहित हो जाए । वह एकदम पृथ्वीसे भी नीचे रसातलमें जाकर गिरे । उसका यश सूख जाए अर्थात् वह यशसे रहित हो जाए ॥ ११ ॥

ज्ञानी मनुष्य यह अच्छी तरहसे जानता है, कि सत्य और असत्य वचनोंमें सदा स्पर्धा होती है । पर उनमें जो वचन सत्य और सरल होते हैं, उन्हीं वचनोंकी रक्षा सोमदेवता करते हैं और असत्य वचनोंका नाश करते हैं ॥ १२ ॥

सोमदेव पापीको कभी नहीं छोडते, तथा मिथ्या व्यवहार करनेवालेको भी कभी नहीं छोडते । वे राक्षस और असत्य व्यवहार करनेवालेको भी मारते हैं । ये दोनों ही अपराधी इन्द्रके बन्धनमें रहते हैं ॥ १३ ॥

जो असत्यको ही अपना आराध्य देव मानता है, अथवा जो देवोंकी उपासना कपट भावसे करता है, उसका विनाश अग्नि करता है । जो द्रोहके कारण मिथ्याभाषण करते हैं, वे भी नष्ट हो जाएं ॥ १४ ॥

८३१ अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुपस्य ।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥ १५ ॥

८३२ यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥ १६ ॥

८३३ प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहा तन्वं गूहमाना ।
वव्राँ अनन्ताँ अव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥ १७ ॥

८३४ वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वि१च्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥ १८ ॥

अर्थ--[८३१] (यदि यातुधानः अस्मि अद्य मुरीय) यदि मैं दुष्ट राक्षस हूं तो मैं आज ही मर जाऊं। (यदि पूरुपस्य आयुः ततप) यदि मैंने किसी मनुष्यके जीवनको कष्ट दिये हैं, तो भी मैं आज ही मर जाऊं। (यः मा मोघं यातुधान इति आह) जो मुझे व्यर्थ ही राक्षस करके कहता है (अध सः दशभिः वीरैः वि यूयाः) वह अपने दिसों वीरपुत्रोंसे वियुक्त हो जावे। उसके सब परिवारके लोग विनष्ट हो जांय ॥ १५ ॥

[८३२] (यः मा अयातुं यातुधान इति आह) जो मुझ दैवी स्वभाववालेको राक्षस करके कहता है तथा (यः रक्षाः वा शुचिः अस्मि इति आह) जो राक्षस होनेपर भी अपने आपको पवित्र कहता है, (इन्द्रः तं महता वधेन हन्तु) इंद्र उसे बडे शस्त्रसे विनष्ट करे। वह (विश्वस्य जन्तोः अधमः पदीष्ट) सब प्राणियोंसे नीच होकर गिरे ॥ १६ ॥

[८३३] (या नक्तं खर्गला इव) जो राक्षसी रात्रीके समय उल्लूकी तरह (तन्वं गूहमाना) अपने शरीरको छिपाकर (अप प्र जिगाति) चलती है (सा अनंतान् वव्रान् अवपदीष्ट) वह राक्षसी अनंत गढोंमें गिरे। और (ग्रावाणः उपब्दैः रक्षसः घ्नन्तु) पत्थर शब्द करते हुए उन राक्षसोंको मारें ॥ १७ ॥

[८३४] हे (मरुतः) मरुत् वीरो ! तुम (विक्षु वि तिष्ठध्वं) प्रजाओंमें रहो, (इच्छत) राक्षस कहां है यह जाननेकी इच्छा करो और उनको (गृभायत) पकडो और उन (रक्षसः सं पिनष्टन) राक्षसोंको चूर्ण करो। (ये वयः भूत्वा नक्तभिः पतयन्ति) जो पक्षी बनकर रात्रीके समय आते हैं। और (ये वा अध्वरे देवे रिपः दधिरे) जो हिंसा रहित यज्ञ शुरू होनेपर उसमें हिंसा करते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थ-- मैं यदि वास्तव दुष्ट या राक्षस हूं, तो मैं आज ही मर जाऊं, अथवा यदि मैंने किसी सज्जन पुरुषको कष्ट दिया हो तो भी आज ही मैं मर जाऊं। पर मेरे कुछ न करनेपर भी जो मुझपर मिथ्या दोषारोपण करता है, उसके सब परिवारके सदस्य नष्ट हो जाएं ॥ १५ ॥

मेरा स्वभाव दैवी या दिव्य होनेपर भी जो मुझे राक्षस कहता है, तथा स्वयंका स्वभाव राक्षसी होनेपर भी जो स्वयंको देव बताता है, उसे इन्द्र अपने शस्त्रसे विनष्ट करे ॥ १६ ॥

जो दुष्ट स्वभाववाली स्त्री तथा दुष्ट स्वभावी पुरुष रातमें उल्लूकी तरह लुकता छिपता लोगोंको कष्ट देता है, वह पतनके गर्तमें ऐसा गिरे कि वह फिर कभी उठ ही नहीं सके ॥ १७ ॥

हे वीरो ! तुम प्रजाओंकी रक्षा करनेके लिए सदा तैय्यार रहो। जो राक्षस हों, तथा जो यज्ञ आदि सत्कर्मोंमें विघ्न डालते हों, उनका तुम विनाश करो ॥ १८ ॥

८३५ प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन् त्सं शिशाधि ।
प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्ता ऽभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥ १९ ॥

८३६ एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥ २० ॥

८३७ इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरो हविर्मथीनामभ्या३विवासताम् ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन् त्सत एति रक्षसः ॥ २१ ॥

८३८ उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥ २२ ॥

अर्थ— [८३५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (दिवः अश्मानं प्रवर्तय) आकाशसे पत्थरोंको फेंको। हे (मघवन्) धनवान् ! (सोमशितं सं शिशाधि) सोमयाजोंको संस्कार संपन्न करो। (प्राक्तात् अपाक्तात्) पूर्व और पश्चिमसे (अधरात् उदक्तात्) दक्षिण और उत्तरसे (रक्षसः पर्वतेन अभि जहि) राक्षसोंको पर्वतास्त्रसे विनष्ट करो ॥ १९ ॥

[८३६] (त्ये एते श्वयातवः उ पतयन्ति) वे ये राक्षस कुत्तोंसे काटे जाकर गिरते हैं। (ये दिप्सवः अदाभ्यं इंद्रं दिप्सन्ति) जो मारनेकी इच्छासे अदम्य इन्द्रकी भी हिंसा करना चाहते हैं। (शक्रः पिशुनेभ्यः वधं शिशीते) इन्द्र उन कपटियोंका वध करनेके लिये अपने शस्त्रको तीक्ष्ण करता है। और वह (यातुमद्भ्यः अशनिं नूनं सृजत्) दुष्ट राक्षसोंपर निश्चयसे वज्र फेंकता है ॥ २० ॥

[८३७] (इंद्रः यातूनां पराशरः अभवत्) इंद्र राक्षसोंको दूर करनेवाला है। (हविर्मथीनां आविवासतां अभि) हविका नाश करनेवाले और आक्रमणकारियोंका पराभव करनेवाला इंद्र है। (परशुः यथा वनं) परशु जैसे वनको काटता है और (पात्रा भिंदन्) मिट्टीके बर्तनोंको जैसे मुद्गर तोडता है, उस तरह (शक्रः सतः रक्षसः अभि एति) इंद्र सामने आये राक्षसोंका नाश करता है ॥ २१ ॥

[८३८] (उलूकयातुं) उल्लूके समान आचरण करनेवाले मोहवाले, (शुशुलूकयातुं) भेडियेके समान आचरण करनेवाले क्रोधी, (श्वयातुं) कुत्तेके समान आचरण करनेवाले मत्सरग्रस्त, (उत कोकयातुं) कोकपक्षीके समान आचरण करनेवाले कामी, (सुपर्णयातुं) गरुडके समान आचरणवाले गर्विष्ठ, (उत गृध्रयातुं) गीधके समान लोभी जो राक्षस हैं उनको (जहि) मारो। (दृषदा इव प्रमृण) पत्थरसे मारते हैं वैसे मारो और हे इंद्र ! हमारी रक्षा करो ॥ २२ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! यज्ञ करनेवालोंको समृद्ध करो, पर जो दुष्ट राक्षस हों उनका चारों दिशाओंसे संहार करो ॥ १९ ॥

जो दुष्ट कुत्तोंके समान मनुष्योंपर हमला करते हैं, जो मारनेकी इच्छावाले होकर शक्तिशालियोंको भी मारना चाहते हैं, इन्द्र उन कपटी शत्रुओंका वध करे और उन दुष्ट राक्षसोंको नष्ट करे ॥ २० ॥

इन्द्र यज्ञमें दी जानेवाली हवियोंको नष्ट करनेवाले तथा आक्रमणकारी शत्रुओंका पराभव करनेवाला है। जैसा फरसा पेडोंको काटता है अथवा मुद्गर जिस प्रकार मिट्टीके वर्तनोंका सफाया करता है उसी तरह इन्द्र सामने आए दुष्ट राक्षसोंका संहार करता है ॥ २१ ॥

उल्लूके समान आचरण करनेवाले अर्थात् मोहवाले, भेडियेके समान आचरण करनेवाले अर्थात् क्रोधी, कुत्तेके समान ईर्ष्यालु, गौरैयाके समान कामी, गरुडके समान घमंडी, गीधके समान लोभी दुष्ट हैं, उन्हें इन्द्र मारे ॥ २२ ॥

×

८३९ मा नो रक्षो अभि नंड्यातुमावंता—मपोच्छतु मिथुना या किमीदिनां ।
पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसो ऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ॥ २३ ॥

८४० इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानं—मुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन् त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥ २४ ॥

८४१ प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वे—न्द्रश्च सोम जागृतम् ।
रक्षोभ्यो वधमस्यत—मशनिं यातुमद्भ्यः ॥ २५ ॥

॥ इति सप्तमं मण्डलं समाप्तम् ॥

अर्थ— [८३९] (रक्षः नः अभिनट्) राक्षस हमें विनष्ट न करें, (यातुमावतां मिथुना अप उच्छतु) यातना देनेवालोंके स्त्री पुरुषोंके जोडे हमसे दूर हों। (या किमीदिना) जो यावक हैं वे भी दूर हों। (पृथिवी पार्थिवात् अंहसः पातु) पृथिवी पार्थिव पापसे हमें बचावे। (अन्तरिक्षं दिव्यात् अस्मान् पातु) अन्तरिक्ष आकाशमें होनेवाले पापसे हमें बचावे ॥ २३ ॥

[८४०] हे (इन्द्र) इंद्र ! (पुमांसं यातुधानं जहि) पुरुष राक्षसका नाश करो। (उत मायया शाशदानां स्त्रियं) और कपटसे हिंसा करनेवाली स्त्री राक्षसीका भी नाश करो। (मूरदेवाः विग्रीवासः ऋदन्तु) दूसरोंको मारना ही जिनका खेल है वे राक्षस गला कट जानेपर विनष्ट हों, (ते सूर्यं उच्चरन्तं मा दृशन्) वे उदय होनेवाले सूर्यको न देख सकें। सूर्यके उदय होनेके पूर्व ही वे दुष्ट मर जांय ॥ २४ ॥

[८४१] हे (सोम) सोम ! तू और (इंद्रः च) इंद्र (प्रति चक्ष्व) प्रत्येक राक्षसको देखो। (जागृतं) जागते रहो। (रक्षोभ्यः वधं अस्यतं) राक्षसोंपर वध करनेवाले अस्त्र फेंको और (यातुमद्भ्यः अशनिं) यातना देनेवालेपर वज्र फेंको और उनका नाश करो ॥ २५ ॥

भावार्थ— राक्षस हमें नष्ट न करें, यातना देनेवाले स्त्री पुरुष हमसे दूर रहें, खाऊ भी हमसे दूर ही रहें। पृथ्वी पार्थिव पापोंसे हमारी रक्षा करे तथा अन्तरिक्ष अन्तरिक्षके बारेमें होनेवाले पापोंसे हमें बचाये ॥ २३ ॥

हे इन्द्र ! यातना देनेवाले राक्षस पुरुषका नाश करो, तथा स्त्री राक्षसीका भी नाश करो। दूसरोंको मारना जो खेल समझते हैं, वे विनष्ट हो जाएं, वे उदय होनेवाले सूर्यको न देख सकें ॥ २४ ॥

हे सोम ! तू और इन्द्र दोनों मिलकर राक्षसोंपर निगरानी रखो, तुम दोनों सदा जागते रहकर हमारी रक्षा करो और दुष्ट राक्षसोंपर अपने शस्त्रास्त्रोंका प्रहार करके उनका संहार करो ॥ २५ ॥

॥ सप्तम मंडल समाप्त ॥



ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

सप्तम मण्डल

सुभाषित

१ सुजाता नरः समासते— (४) कुलीन पुरुष संघटित रहते हैं।

२ यातुमावान् यात्रा यं रयिं न तरति—(५) हिंसक डाकू जिस धनको लूट नहीं सकता (ऐसा धन हमें दो)।

३ जरूथं अदहः- (७) कठोर भाषीको जला दो (दूर करो)।

४ यो अनीकं आ इधते— (८) जो अपनी सेनाको तेजस्वी करता है (वह वीर है।)

५ प्रशस्तां धियं पनयन्त— (१०) प्रशंसित बुद्धिका वर्णन करते हैं।

६ वृत्रहत्येषु शूराः नरः— (१०) युद्धोंमें शूर पुरुष नेता होते हैं।

७ शुने मा निषदाम— (११) पुत्र, पौत्ररहित घरमें हम न रहें।

८ प्रजावन्तं स्वपत्यं स्वजन्मना शेषसा वावृधानं क्षयं— (१२) सेवकोंसे युक्त, बालबच्चोंसे भरा औरस सन्तानोंसे बढनेवाला घर हो।

९ अररुषः अघायोः धूर्तेः पाहि- (१३) दुष्ट, पापी, धूर्तसे हम सुरक्षित हों।

१० वाजी वीळुपाणिः सहस्रपाथः तनयः—(१४) बलवान्, सुदृढ, हजारों धनोंसे युक्त पुत्र हो।

११ तनयः अक्षरा समेति— (१४) पुत्र विद्या सीखता रहे।

१२ अग्निः अग्नीन् अत्यस्तु— (१४) हमारा अग्निके समान तेजस्वी पुत्र अन्य पुत्रोंसे श्रेष्ठ बने।

१३ अवीरता नः मा दाः— (१९) वीर संतान न होनेका कष्ट हमें न हो।

१४ दुर्वाससे नः मा दाः- (१९) बुरा वस्त्र पहननेका दुर्भाग्य हमें न प्राप्त हो।

१५ अमतये नः मा दाः— (१९) बुद्धिहीनता हमें प्राप्त न हो।

१६ सखा दुर्मतये मा प्रवोचः—(२२) कोई मित्र अपने साथियोंके भरणपोषणमें बाधा डालनेका भाषण न करे।

१७ भ्रमात् चित् सचा मा नशन्त— (२२) भ्रमसे भी कोई मित्रका नाश न करें।

१८ अर्थी सूरिः यं पृच्छमानः एति स मर्तः रेवान्— (२३) धनप्राप्तिकी इच्छा करनेवाला जिसके विषयमें पूछताछ करता हुआ जिसके पास जाता है, वह मनुष्य सच्चा धनवान् है।

१९ दिव्यं सानु रश्मिभिः उपस्पृश— (२३) दिव्य उच्चताको अपने किरणोंसे स्पर्श करो। (अपने तेजसे उच्चता प्राप्त करो।

२० ह्विये योषणे मही बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी यज्ञिये सुविताय आश्रयेतां— (६१) दिव्य स्त्रियां, जो बडी सभाओंमें बैठती हैं, प्रशंसित और धनवाली होकर पूजनीय होती हैं, उनका आश्रय अपने कल्याणके लिये करो।

२१ विप्रा जातवेदसा मानुषेषु कारू— (६२) ज्ञानी विद्वान् मनुष्योंमें प्रशस्त कार्य करनेवाले होते हैं।

२२ अध्वरं ऊर्ध्वं कृतं— (६२) कुटिलतारहित कर्म अधिक श्रेष्ठ बनाओ।

२३ देवैः मनुष्येभिः इळा सजोषा— (६३) दिव्य गुण संपन्न मानवोंके साथ मातृभूमि सेवाके योग्य है।

२४ सारस्वतेभिः सरस्वती सजोषा— (६३) सरस्वतीके भक्तोंके साथ सरस्वती सेवनीय है।

२५ सत्यतरः देवानां जनिमानि वेद— (६५) सत्य-पर अधिक निष्ठा रखनेवाला देवोंके जन्मवृत्तान्त जानता है।

२६ अतिथिं दोषा उषसि मर्जयन्तः— (४१) अतिथिकी रात्रीमें और सबेरे सेवा करो।

२७ स्वनीक! यत् रुक्मः रोचसे, ते प्रतीकं सुसंदृक्— (४२) हे उत्तम सेनापते! जब तू प्रकाशता है, तब तेरा रूप अत्यंत सुंदर दीखता है।

२८ पूता शुचिः स्वधितिः रोचमानः— (४५) पवित्र शस्त्र तेजस्वी होता है।

२९ तरुणः गृत्सः अस्तु— (४८) तरुण ज्ञानी हो।

३० अनीके संसदि मर्तासः पौरुषेयीं गृभं न्युवोच— (४९) सैनिक वीरोंकी सभामें युद्धमें मरनेके लिये तैयार हुए वीर पौरुषकी ही बातें करते हैं।

३१ अवीरा वयं त्वा मा परिषदाम— (५२) पुत्रहीन होकर हम तेरी सेवा करनेके लिये न बैठें। (पुत्रपौत्रोंसे युक्त होकर हम प्रभुकी भक्ति करें।)

३२ अ-प्स्वः मा, अदुवः मा— (५२) हम सुरूपरहित न हों, और भक्तिहीन भी न हों।

३३ अरणस्य रेक्णः परिषद्यं— (५३) ऋणरहित मनुष्यका धन पर्याप्त होता है। (अतः हम ऋणरहित हों।)

३४ अन्यजात शेषः नास्ति— (५३) दूसरेका पुत्र औरस नहीं कहलाता।

३५ अन्योदर्यः सुशेवः अरणः ग्रभाय नहि— (५४) दूसरेका पुत्र उत्तम सेवा करनेवाला, ऋण न करनेवाला होनेपर भी, औरसपुत्र करके स्वीकार करने योग्य नहीं होता।

३६ विश्वामरः मानुषीः विशः अभिविभाति— (५८) विश्वका नेता मानवी प्रजाओंको प्रकाशित करता है।

३७ आर्याय ज्योतिः जनयन्— (६२) आर्योंके लिए प्रकाश उत्पन्न किया।

३८ अक्रतून्, ग्रथिनः, मृध्रवाचः पणीन्, अश्र-द्धान्, अवृधान्, अयज्ञान् दस्यून् प्र विवाय, अपरान् चकार— (६८) सत्कर्म न करनेवाले, वृथाभाषी, हिंसक, सूदका व्यवहार करनेवाले, अश्रद्ध, हीन, यज्ञ न करनेवाले शत्रुओंको दूर करें और हीन अवस्थाको पहुंचा देवें।

३९ नृतमः अपाचीने तमसि मदन्तीः शचीभिः प्राचीः चकार— (६९) उत्तम नेता अज्ञानान्धकारमें पडी प्रजाको अपने सामर्थ्योंसे ज्ञानाभिमुख करता है।

४० वस्वः ईशानं अनानतं पृतन्यून् दमयन्तं गृणीषे— (६९) धनके स्वामी, संयमी तथा सेनासे आक्रमण करनेवाले शत्रुका दमन करनेवाले वीरकी प्रशंसा होती है।

४१ वैश्वानरः वरं आससाद— (७१) सब जनोंका हित करनेवाला श्रेष्ठ स्थानपर बैठता है।

४२ अर्यः राजा समिन्धे— (८०) श्रेष्ठ राजा प्रकाशता है।

४३ विश्वेभिः अनीकैः सुमना भुवः- (८४) सब सैनिकोंके साथ प्रसन्नतासे वर्ताव कर।

४४ आरः मन्द्रः कवितमः पावकः उषसां उप-स्थात् अबोधि— (८७) वृद्ध, आनन्द बढानेवाला, उत्तम कवि पवित्र वीर उषःकालके पहिले उठता है।

४५ मन्द्रः दमूनाः विशां तमः तिरः ददृशे- (८८) आनन्ददायी संयमी वीर प्रजाजनोंके अन्धकारको दूर करता हुआ दीखता है।

४६ गणेन ब्रह्मकृतः मा रिषण्यः- (९१) संघसे ज्ञान प्रसार करनेवालोंका विनाश नहीं होता।

४७ पुरंधिं राये यक्षि— (९२) बहुत बुद्धिवालेका धन देकर सत्कार कर।

४८ धियः हिन्वानः भासा आभाति— (९३) बुद्धिसे सबको शुभ प्रेरणा करनेवाला अपने तेजसे प्रकाशित होता है।

४९ उशिजः विशः मंद्रं यविष्ठं ईळते- (९७) सुख चाहनेवाली प्रजा आनन्द प्रसन्न तरुण वीरकी प्रशंसा करती है।

५० यस्य बर्हिः देवैः आसदः अस्मै अहानि सुदिना भवन्ति- (९९) जिसके आसनपर दिव्य विबुध बैठते हैं उसके लिये सब दिन शुभ दिन ही होते हैं।

५१ महा विश्वा दुरितानि साह्वान्— (१०४) अपने बडे सामर्थ्योंसे सब दुरवस्थाओंको दूर कर।

५२ विश्वशुचे धियंधे असुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वं— (१०६) विश्वमें पवित्र, बुद्धियोंके धारणकर्ता, राक्षसोंके विनाशक वीरके लिये प्रशंसाके वाक्य बोलो और उसके आदरार्थ शुभ कर्म करो।

५३ जातवेदा वैश्वानरः- (१०७) ज्ञानी विश्वका नेता होता है।

५४ जातः परिज्मा ईर्यः— (१०८) उत्पन्न होनेपर चारों ओर भ्रमण करो और सबको शुभ कर्मकी प्रेरणा दो।

५५ शुक्रशोचिः शुचिः पावकः ईड्यः— (१२१) बल और तेजसे युक्त स्वयं पवित्र और दूसरोंको पवित्र करनेवाला वीर प्रशंसायोग्य है।

५६ ईशानः नः राधांसि आभर- (१२२) ईश्वर हमें धन देवे।

५७ हे अदाभ्य! दिवानक्तं अंहसः अघायतः नः पाहि— (१२६) हे अदम्य वीर! दिनरात पापसे तथा पापियोंसे हमें बचा।

५८ ऊर्जः न-पातं प्रियं चेतिष्ठं अरतिं स्वध्वरं विश्वस्य अमृतं दूतं नमसा आहुवे — (१२७) बलका नाश न करनेवाले, प्रिय उत्तम चेतना देनेवाले गतिशील, उत्तम हिंसारहित कार्य करनेवाले सबके अमर सहायकको नमस्कार करके बुलाते हैं।

५९ सूरयः प्रियासः सन्तु— (१३३) विद्वान् सबको प्रिय हों।

६० द्रुहः निदः त्रायस्व— (१३४) द्रोही निंदकोंसे सबको बचाओ।

६१ दीर्घश्रुत शर्म यच्छ— (१३४) विशाल कीर्तिवाला सुख या घर हमें दे दो।

६२ येषां दुरोणे घृतहस्ता इळा प्राता आ निषीदति तान् त्रायस्व— (१३४) जिनके घरमें घी और अन्नसे भरे पात्र लेकर परोसनेवाली रहती है, उनकी सुरक्षा करो।

६३ विदुष्टरः मन्द्रया आसा जिह्वया नः रयिं— (१३५) श्रेष्ठ ज्ञानी प्रसन्न मुख तथा मधुरभाषणसे हमें ज्ञानरूप धन देवे।

६४ स्वध्वरा कृणुहि— (१४१) कुटिलता हिंसारहित कार्य कर।

६५ सुमतौ शर्मन् स्याम— (१४८) उत्तम बुद्धिसे और सुखसे हम युक्त हों।

६६ सखा सखायं अतरत्- (१५१) मित्र मित्रको कष्टसे पार करता है।

६७ दुराध्यः अचेतसः श्रेवयन्तः— (१५३) दुष्ट बुद्धिवाले मूढ लोग विनाश ही करते हैं।

६८ राजा श्रवस्या वैकर्णयोः जनान् न्यस्त— (१५६) राजाने यशके लिये बिलकुल न सुननेवाले शत्रुके वीरोंका नाश किया।

६९ मृध्रवाचं जेष्म— (१५८) असत्यभाषीपर हम विजय करें।

७० शर्धन्तं अनिन्द्रं परानुदे— (१६१) ईश्वरके हिंसक द्वेषी शत्रुको दूर किया।

७१ मन्यमानं देवकं जघन्थ— (१६५) घमंडी तुच्छ देवके पूजकका नाश कर।

७२ क्षत्रं दूणाशं अजरं— (१७०) क्षात्रबल नष्ट न हो, पर बढता जाय।

७३ एकः भीमः विश्वाः कृष्टीः च्यावयति— (१७१) एक ही वीर सब शत्रु सैनिकोंको भगा देता है।

७४ आगृधः गयस्य च्यावयति— (१७१) कंजूस शत्रुके घरको वीर उखाड देता है।

७५ दभीतये भूर्णिषु हंसि— (१७४) भयभीत लोगोंकी सुरक्षाके लिये बहुत दुष्टोंका वध कर।

७६ सूरिषु प्रियासः स्याम— (१७७) विद्वानोंमें हम प्रिय हों।

७७ तन्वा ऊती बावृधस्व — (१८१) शारीरिक शक्ति तथा संरक्षक बल बढाओ।

७८ स्वधावान् उग्रः वीर्याय जज्ञे— (१८२) अपनी धारकशक्तिसे युक्त वीर पराक्रम करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ होता है।

७९ नर्यः यत् करिष्यन् अपः चक्रिः— (१८२) मानवोंका हित करनेवाला जो करना चाहता है, वह कार्य कर जाता है।

८० युध्मः अनर्वा खजकृत्, समद्वा शूरः अनुषा सत्राषाट् अषाळ्हः स्वोजाः पृतना व्यासे, विश्वं शत्रूयन्तं जघान— (१८४) युद्ध करनेवाला, युद्धसे पीछे न हटनेवाला, युद्धमें कुशल, युद्धमें जानेमें डरनाहीं, शूर, जन्मसे ही शत्रुका पराभव करनेवाला, स्वयं कभी पराभूत न होनेवाला, निजबलसे समर्थ वीर शत्रुसेनाको अस्तव्यस्त करता है, और सब शत्रुओंका वध करता है।

८१ महित्वा तविषीभिः आ पप्राथ— (१८५) वीर अपने महत्त्वसे अपनी शक्तियोंके द्वारा विश्वमें प्रसिद्ध होता है।

८२ वृषा वृषणं रणाय जजान— (१८६) बलवान् पिता बलशाली पुत्रको युद्ध करनेके लिये उत्पन्न करता है।

८३ नारी नर्यं ससूव— (१८६) पत्नी मानवोंका हित करनेवाला पुत्र उत्पन्न करती है।

८४ यः नृभ्यः सेनानीः प्रास्ति— (१८६) वह मानवोंका हित करनेवाला वीर सेनापति होता है।

८५ यः अस्य घोरं मनः आविवासत्, स जनः नुचित् भ्रेजते, न रेषत्— (१८७) जो इसके प्रभावी मनको प्रसन्न रखता है वह मनुष्य स्थानभ्रष्ट नहीं होता और नाही क्षीण होता है।

८६ यः इन्द्रे दुवांसि दधते स ऋतपा ऋतेजा राये क्षयत्— (१८७) जो प्रभुपर भक्ति रखता है, वह सत्यपालक, सत्यप्रवर्तक धनके लिये रहता है, धन प्राप्त करता है।

८७ घस्वी शक्तिः स्वस्तु— (१९१) सुखसे निवास करनेकी शक्ति हमारे अन्दर अच्छी तरहसे रहे।

८८ इन्द्रः नर्याणि विश्वा अपांसि विद्वान्— (१९५) इन्द्र वीर जनताके हित करनेके सब कार्य जानता है।

८९ वंदना वेद्याभिः नः न जुजुवुः- (१९६) वंदन करके नम्रभाव दिखाकर हमारे अन्दर रहनेवाले हमारे अन्तःशत्रु, उनके ज्ञानपूर्वक बर्ते गये साधनोंके साथ हमारे अन्दर न रहें।

९० शिश्नदेवा नः ऋतं मा गुः— (१९६) शिश्नको ही देव माननेवाले कामी लोग हमारे सत्यधर्मके स्थानपर न आवें।

९१ ते महिमानं रजांसि न विव्यक्- (१९७) प्रभुकी महिमाको भोगी लोग नहीं जान सकते।

९२ शत्रुः युधा ते अन्तं न विविदत्- (१९७) शत्रु युद्ध करके तेरी शक्तिका अन्त न जान सके (ऐसी शक्ति धारण कर।)

९३ भूरेः सौभगस्य अवः- (१९९) सब प्रकारके ऐश्वर्योंका संरक्षण होना चाहिये।

९४ नमोवृधासः विश्वहा सखायः स्याम- (२००) अन्नकी अधिक उपज करनेवाले सब सर्वदा आपसमें मित्र होकर रहें। एक ही कार्यमें दत्तचित्त रहें।

९५ मन्यमानस्य ते महिमानं नू चित् उद्-श्नुवन्ति- (२०९) सन्मान योग्य ऐसी इस प्रभुकी महिमाका कोई पार नहीं कर सकता।

९६ ते राधः वीर्यं न उदश्नुवन्ति- (२०९) प्रभुके धन और पराक्रमका पार कोई नहीं पा सकता।

९७ ते सख्यानि अस्मे शिवानि सन्तु— (२१०) प्रभुकी मित्रता हमारे लिये कल्याण करनेवाली होगी।

९८ शुरुधः इरज्यन्त— (२१२) शोकको रोकनेवाली कृतियाँ बढायी जाय।

९९ शुष्मिणं तुविराधसं— (२१५) बलवान् तथा सिद्धि जिसे प्राप्त है ऐसा पुत्र प्राप्त हो।

१०० देवत्रा एकः मर्तान् दयते— (२१५) देवोंमें एक ही (इन्द्र) मनुष्योंपर दया करता है।

१०१ वज्रबाहुं वृषणं अर्चन्ति— (२१६) वज्रधारी बलवान् वीरकी सब पूजा करते हैं।

१०२ ते महीं सुमतिं प्रवेविदाम— (२२२) प्रभुकी प्रसन्नता हमें प्राप्त हो।

१०३ मनः विष्वद्र्यक् मा विचारीत्— (२२३) मन इधर उधर न भटकता रहे (किसी एक कार्यमें मन लगे।)

१०४ निनित्सोः शंसं आरे कृणुहि— (२२४) निंदककी निंदा हमसे दूर रहे।

१०५ अस्मे प्रियाणि भद्राणि सश्चत— (२२२) हमें प्रिय कल्याण प्राप्त हों।

१०६ नरः पार्या धियः युञ्जते— (२२४) नेता लोग संकटोंसे पार होनेके लिये अपनी बुद्धियोंका उपयोग करते हैं।

१०७ यः ते शुष्मः अस्ति, सखिभ्यः नृभ्यः शिक्ष— (२२५) जो तेरा सामर्थ्य है वह अपने मित्र नेताओंको सिखा।

१०८ जगतः चर्षणीनां इन्द्रः राजा— (२२६) जंगम पदार्थों और मानवोंका इन्द्र राजा है।

१०९ अधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति— (२२६) पृथिवीपर जो कुरूप या सुरूप वस्तुमात्र है (उसका भी राजा वही प्रभु है।)

११० हे विश्वमिन्व ! त्वा विश्वे मर्ताः चित् विह्वन्त— हे विश्वको संतोष देनेवाले वीर ! तुझे सब मानव बुलाते हैं।

१११ तूतुजिः अतू तुजिं अशिश्नत्— उदार कंजूसको पीछे रखता है।

११२ अनेनाः मायी वरुणः— निष्पाप कर्ममें कुशल वरुण है।

(ऋ० ७।३०)

११३ विश्वेषु जनेषु शूरः सेन्यः— सब मनुष्योंमें शूर ही सेनामें भरती करने योग्य है।

११४ अहा सुदिना व्युच्छात्— दिन अच्छे दिन होकर प्रकाशित होते रहें।

११५ स्वाभुवः जरणां अश्नवंत— उत्तम ऐश्वर्यवाले वृद्धावस्थाका भोग करें।

(ऋ० ७।३१)

११६ प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं— विशेष ज्ञानीकी प्रशंसा करो।

११७ चर्षणिप्राः विशः प्रचर— किसानोंकी इच्छाएं पूर्ण करना है तो प्रजाजनोंके भ्रमण करो।

११८ विप्राः ब्रह्म जनयन्त— ज्ञानी ज्ञानका प्रचार करते हैं।

११९ तस्य व्रतानि धीराः न मिनन्ति— उस प्रभुके नियमोंका धीर पुरुष निषेध नहीं करते।

१२० अनुत्तमन्युः राजा— राजा उत्साही हो।

(ऋ० ७।३२)

१२१ श्रुत्कर्णं वसूनां ईयते— प्रार्थना सुननेवाले प्रभुके पास वीर धनके लिये जाते हैं।

१२२ दित्सन्तं न किः आ मिनत्— वह देने लगा तो उसे कोई रोक नहीं सकता।

१२३ तरणिः इत् जयति— त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला विजयी होता है।

१२४ तरणिः इत् क्षेति — त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला ही सुखसे यहां रहता है।

१२५ तरणिः इत् पुष्यति— त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला ही यहां पुत्र पौत्र धन धान्यसे पुष्ट होता है।

१२६ कयत्नवे देवासः न— कुत्सित कर्म करनेवालेकी देव सहायता नहीं करते।

१२७ सुदासः रथं नकिः पर्यास— उत्तम दाताके रथको कोई रोक नहीं सकता।

१२८ हे इन्द्र ! त्वं यस्य अविता भुवः, मर्तः वाजयन् वाजं गमत्— हे प्रभो ! तू जिसका संरक्षक होता है वह मनुष्य अपना बल बढाकर बलवान् होता है।

१२९ सूरिभिः विश्वा दुरिता तरेम— विद्वानोंकी सहायतासे सब कष्टोंको पार करें।

१३० हे इन्द्र ! त्वं अवमं मध्यमं वसु पुष्यसि विश्वस्य परमस्य राजसि— हे प्रभो ! तू निकृष्ट मध्यम और श्रेष्ठ धनको बढाता है और उसपर प्रभुत्व करता है।

१३१ पापत्वाय न रासीय— पाप बढानेके लिये धनका उपयोग नहीं करूंगा।

१३२ हे मघवन् ! नः आप्यं त्वत् अन्यत् नहि— हे प्रभो ! तू ही हमारा बन्धु है, तेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं।

१३३ दुष्टुती मर्त्यः वसुः न विन्दते— दुष्टकी प्रशंसा करनेवाला मनुष्य धन नहीं प्राप्त कर सकता।

१३४ स्रेधन्तं रयिः न नशत्— हिंसकको धन नहीं मिलता।

१३५ पार्ये सुशक्तिः देष्णं विन्दते— दुःखसे पार होनेके समयमें अच्छी शक्तिवाला ही धन प्राप्त करता है।

१३६ अस्य तस्थुषः जगतः स्वर्दृशं ईशानं अभिनोनुमः— इस स्थावर जंगम विश्वके दिव्य दृष्टिवाले ईश्वरको हम सब प्रमाण करते हैं।

१३७ दिव्यः पार्थिवः त्वावान् अन्यः न जातः न जनिष्यते— द्युलोकमें अन्तरिक्षमें और पृथ्वीपर तेरेसे भिन्न कोई दूसरा ईश्वर न हुआ और न होगा।

१३८ पुत्रेभ्यः पिता, तथा त्वं नः क्रतुं शिक्ष, आभर— हे प्रभो, जैसा पुत्रोंको पिता वैसा तू हमें शुभकर्मोंकी शिक्षा दो और हमारी शक्ति बढा दो।

१३९ अज्ञाता अशिवासः दुराध्यः वृजनाः नः मा अवक्रमुः— अज्ञातमार्गसे अशुभ दुष्ट हिंसक हमपर आक्रमण न करें।

१४० वयं प्रवतः शश्वतीः अपः अतितराम— हम सब अपना संरक्षण करनेमें समर्थ होकर, सदा कर्मोंको निर्विघ्नतया कर सकेंगे।

(ऋ० ७।३३)

१४१ ज्योतिरग्राः आर्याः तिस्र प्रजाः— ज्योतिको अग्रभागमें रखनेवाले आर्य (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) ये तीन प्रकारके प्रजाजन हैं ।

१४२ भुवनेषु त्रयः रेतः कृण्वन्ति— भुवनोंमें ये तीन (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) वीर्य शक्ति बढाते हैं ।

१४३ सूर्यस्य ज्योतिः, समुद्रस्य गंभीरः, वातस्य प्रजवः— सूर्यकी ज्योति, समुद्रकी गंभीरता, वायुका वेग ये शक्तियां हैं । मनुष्यमें तेज गंभीरता और वेग हो ।

१४४ हृदयस्य प्रकेतैः निण्यं सहस्रवल्शं अभिसंचरन्ति— हृदयकी ज्ञानशक्तियोंसे गुप्तरीतिसे सहस्रों वर्षोंतक (ज्ञानी इस विश्वमें) चारों ओर संचार करते हैं ।

१४५ यमेन ततं परिधिं वयन्तः— यमके द्वारा फैलाये आयुष्य रूपी वस्त्रको लोग बुनते जाते हैं ।

१४६ वः वसिष्ठः आगच्छाति, सुमनस्यमानाः एनं आध्वं— तुम्हारा निवास करानेवाला ज्ञानी तुम्हारे पास आरहा है, प्रसन्नचित्तसे तुम उसका आदर करो ।

१४७ शुक्रा मनीषा देवी— बल बढानेवाली बुद्धि देवी है ।

१४८ वृत्रेषु उग्राः शूराः मंसन्ते— शत्रुओंका हमला होनेपर शूर वीर ही आगे होते हैं ।

१४९ जनाय केतुं यज्ञं दधात— लोगोंके हितके लिये ज्ञान और कर्म करते रहो ।

१५० शुष्मात् पृथिवी भारं बिभर्ति— अपने सामर्थ्यसे ही पृथ्वी भारको धारण करती है ।

१५१ भूम शुष्मात् भारं बिभर्ति— उत्पन्न हुए भूत बलसे भार उठाते हैं ।

१५२ देवत्रा वाचं प्रकृणुध्वं— दिव्य भावोंको प्रकट करनेवाली वाणी बोलो ।

१५३ तनूनां रपः विष्वक् वियुयोत— शारीरिक पाप हमसे दूर हो ।

१५४ अरां न-पातं सखायं कृध्वं— जीवनको न गिरानेवालोंको अपना मित्र बनाओ ।

१५५ अस्य क्रतायोः यशः मा स्रिधत्— सत्यके लिये जिसने अपनी आयु दी है उसका यश नष्ट न हो ।

(ऋ० ७।३५)

१५६ पुरंधिः नः शं— विशाल बुद्धि हमें शान्ति देनेवाली हो ।

१५७ सुयमस्य सत्यस्य शंसः शं— उत्तम संयम पूर्वक किया हुआ सत्यका वर्णन शान्ति बढानेवाला हो ।

१५८ सुकृतां सुकृतानि नः शं सन्तु— सत्पुरुषोंकी पुण्यकारक कृतियां हमें शान्ति देनेवाली हों ।

१५९ क्षेत्रस्य पतिः नः प्रजाभ्यः शं अस्तु— देशका राजा हमारी सब प्रजाके लिये शान्ति देनेवाला हो ।

१६० सत्यस्य पतयः नः शं— सत्यके पालन करनेवाले हमारे लिये शान्ति देनेवाले हों ।

(ऋ० ७।३६)

१६१ इनः अद्भ्वः पदवीः— स्वामी न दबनेवाला हो और लोगोंका परीक्षा करके उनको योग्यस्थान देनेवाला हो ।

१६२ मही अमतिं प्रकृणुध्वं— पृथ्वीपर विशाल कार्यक्षेत्र अपने लिये निर्माण करो ।

१६३ धियः अवितारं भगं प्रकृणुध्वं — बुद्धिपूर्वक किये कर्मका संरक्षण करनेवाले भाग्यवान् पुत्रको निर्माण करो ।

१६४ सूनृता दस्रव्या न नियमते— सत्यभाषण करनेवाली वाणीको धन देनेसे समय कोई नहीं रोकता ।

१६५ युज्याभिः ऊता ववृम्म— योग्य साधनोंसे संरक्षण हम प्राप्त करें ।

(ऋ० ७।३८)

१६६ नृभ्यः मर्तभोजनं आसुवानः— मनुष्योंको मानवोंके योग्य भोजन दो ।

(ऋ० ७।३९)

१६७ वस्वः सुमतिं अश्रेत्— निवासके उपयोगी धन प्राप्त करनेकी सुबुद्धिका आश्रय किया जाय ।

१६८ शुभ्राः मर्जयन्त— शुद्ध वीर अधिक स्वच्छता करते हैं ।

१६९ ऊमाः यजियासः— वीर संरक्षण करते हैं वे पूज्य हैं ।

१७० मर्त्यानां कामं असिन्वन् अक्षन्— मानवोंकी उन्नतिकी इच्छाका प्रतिबंध न करो प्यार हलसे प्रगति करो ।

(ऋ० ७।४०)

१७१ यं मर्त्यं अवाथः, स उग्रः शुष्मी— जिस मनुष्यकी परतारक्षा सुरक्षा करता है, वह शूरवीर और बलवान् होता है ।

१७२ सरस्वती ईं जुनाति— विद्यादेवी उसे प्रशस्त-कर्ममें प्रेरित करती है ।

(ऋ० ७।४१)

१७३ तुरः राजा मन्यमानः— त्वरासे उत्तम कार्य करनेवाला राजा माननीय होता है ।

१७४ प्रणेतः सत्यराधः भगः— उत्तम नेता सच्चे धनवाला भाग्यवान है ।

(ऋ० ७।४२)

१७५ सनवित्तः अध्वा सुगः— बहुत समयसे चला हुआ मार्ग सुगम होता है ।

(ऋ० ७।४३)

१७६ विप्राः देवयन्तः— ज्ञानी देव बननेका यत्न करते हैं ।

१७७ समनसः यति स्थ— एक विचारसे यत्न करो ।

(ऋ० ७।४६)

१७८ दिव्यस्य जन्मनः साम्राज्येन स चेतति— दिव्य जीवनवाले मनुष्योंके साम्राज्यसे वह प्रकाशित होता है ।

१७९ सः स्ववतीः अवन्— अपना रक्षण करनेवाली प्रजाका वह प्रभु रक्षण करता है ।

(ऋ० ७।४९)

१८० राजा वरुणः जनानां सत्यानृते अवपश्यन् याति— राजा वरुण लोगोंके पुण्य पाप देखता हुआ जाता है ।

१८१ आपः मधुश्चुतः शुचयः पावकाः मां अवन्तु— जलप्रवाह मधुर रसमय स्वयं शुद्ध और पवित्र करनेवाले हैं वे मेरी सुरक्षा करें ।

(ऋ० ७।५२)

१८२ अन्यजातं एनः मा भुजेम— दूसरेका किया पाप हमें न भोगना पडे ।

(ऋ० ७।५५)

१८३ विश्वा रूपाणि आविशन्, नः सुशेवः सखा एधि— सब रूपोंमें प्रविष्ट होकर हमारा सुखदायी मित्र बन ।

१८४ माता, पिता, विश्पतिः, जनः ससतु, सर्वज्ञातयः ससन्तु— (सुरक्षित नगरमें) माता, पिता, प्रजापालक राजा, सब जनता, सब जातियां सुखसे सो जायें ।

१८५ प्रोष्ठेशयाः वह्येशयाः, तल्पशीवरीः पुण्यगन्धाः स्त्रियः ताः सर्वाः स्वापयामसि— आंगनमें, वाहनमें, बिस्तरोंपर सोनेवाली जो उत्तम सुगन्धवाली स्त्रियां हैं, वे सब स्त्रियां (सुरक्षित नगरमें) सुखसे सोजाय ।

(ऋ० ७।५६)

१८६ वः शुष्मः उग्रः, मनांसि क्रुध्मी— आपका बल उग्र है और मन क्रोधसे भरे हैं ।

१८७ धृष्णोः शर्धस्य शुष्मिः— शत्रुका नाश करनेवाले सांधिक बलका आपका वेग प्रचण्ड है ।

१८८ ऋतसापः शुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ऋतेन सत्यं आयन्— ये वीर सत्यका पालन करनेवाले, शुद्ध जन्मवाले, स्वयं शुद्ध और दूसरोंको पवित्र करनेवाले हैं, ये सरलतासे सत्यको प्राप्त करते हैं ।

१८९ ईवतः अद्वयावी गोपाः— प्रगतिशीलोंका अनन्य भावसे संरक्षण करनेवाला वीर है ।

१९० सहः सहसः आनमन्ति— अपनी शक्तिसे साहसी शत्रुको विनम्र करते हैं ।

(ऋ० ७।५७)

१९१ अनवद्यासः शुचयः पावकाः— निष्पाप शुद्ध और पवित्र ये वीर हैं ।

(ऋ. ७।५८)

१९२ तुविष्मान् दैव्यस्य धाम्नः— बलवान् दिव्य धामको प्राप्त करता है ।

१९३ साकं उक्षे गणाय प्रार्चत— साथ रहकर अपनी उन्नति करनेवाले संघका सत्कार करो ।

(ऋ. ७।५९)

१९४ यस्मै अराध्वं, वः ऊतीः पृतनासु नहि मर्धति— जिसका तुम संरक्षण करते हो, तुम्हारे संरक्षणसे वह युद्धोंमें सुरक्षित रहता है ।

१९५ मृत्योः बन्धनात् मुक्षीय— मृत्युके बंधनसे छुडाओ ।

(ऋ० ७।६०)

१९६ हे सूर्य ! उद्यन् अद्य अनागाः ब्रवः— उदय होनेपर हमें प्रथम निष्पाप करके घोषित करो ।

१९७ हे अर्यमन ! तव प्रियासः स्याम— हे आर्य मनवाले ! हम तेरे प्रिय होकर रहें ।

१९८ विश्वस्य स्थातुः जगतः च गोपा— यह सब स्थावर जंगमका संरक्षक है ।

१९९ मर्त्येषु ऋजु वृजिना च पश्यन्— मनुष्योंमें सरल और टेढा कौन है यह देखता है ।

२०० इमे दिवः पृथिव्याः अचेतसं अनिमिषा चिकित्वांसः नयन्ति— ये ज्ञानी वीर द्युलोक तथा भूलोकको न जाननेवाले अज्ञानीको अविलंबसे ज्ञानी बना देते हैं ।

×

२०१ यः वेदिं अवयजेत स रिपः धित्— जो वेदीमें यज्ञ नहीं करता वह शत्रु है।

२०२ एषां सम्भृतिः सस्वः स्वेषी— इन वीरोंकी मित्रता परस्पर सहायक तथा तेजस्वी होती है।

(ऋ ७।६१)

२०३ सूर्यः विश्वा भुवना अभिचष्टे— सूर्य सब भुवनोंको देखता है।

२०४ सः मर्त्येषु मन्युं आचिकेत— वह मानवोंमें रहनेवाला उत्साह जानता है।

२०५ सुक्रतू ब्रह्माणि अवाथः— उत्तम कर्म करनेवाले ज्ञानोंको रक्षण करते हैं।

२०६ ऋधक् यतः अनिमिषं रक्षमाणा— वे सत्यमार्गसे चलनेवालोंका सतत संरक्षण करते हैं।

२०७ अयज्वनां मासाः अवीरा आयन्— यज्ञ न करनेवालोंके महिने वीरतारहित अवस्थामें जायगे।

२०८ यक्षमन्मा वृजनं प्रतिराते— यज्ञ करनेमें जिनका मन लगता है वे अपना बल बढाते हैं।

२०९ वां निण्यानि अचिते न अभूवन्— तुम्हारे कार्य अज्ञान बढानेके लिये न हों।

(ऋ० ७।६२)

२१० सूर्यः मानुषाणां विश्वा जनिम— सूर्य मनुष्योंके जन्मवृत्त जानता है।

२११ जीवसे गव्यूतिं घृतेन औक्षतं— दीर्घजीवनके लिये गौओंका आनेजानेका मार्ग जलसे सिंचित करो।

२१२ नः विश्वाः सुपथानि सुगाः सन्तु— हमारे लिये सब मार्ग जानेके लिये सुगम हों।

(ऋ० ७।६३)

२१३ सूर्येण प्रसूताः जनाः अर्थानि अयन् अपांसि कृण्वन्— सूर्यसे उत्पन्न हुए ये मनुष्य अर्थोंको प्राप्त करके उत्तम कर्मोंको करते हैं।

(ऋ० ७।६४)

२१४ सुक्षत्रः राजा वरुणः— उत्तम क्षात्रबलसे युक्त राजा वरुण है।

२१५ ऊर्ध्वां धृतिं कृणवत् धारयत्— उच्च धैर्यकी स्थिति करनी और उसको धारण करना चाहिए।

(ऋ० ७।६५)

२१६ अक्षितं ज्येष्ठं असुर्यं विश्वस्य जिगत्नु— अक्षय रहनेवाला श्रेष्ठ बल विश्वका विजय करनेवाला है।

२१७ असुरा अर्या क्षितिः ऊर्जयन्ती करतं— बलवान् आर्य वीरोंको सामर्थ्यवान् निर्माण कर।

२१८ अनृतस्य सेतुः— असत्यसे पार होनेका सेतु बन।

२१९ ऋतस्य पथा दुरिता तरेम— सत्यके मार्गसे हम पापोंसे बचें।

(ऋ० ७।६६)

२२० सूरे उदिते रिशादसं अर्यमणं प्रतिगृणीषे— सूर्यका उदय होते ही शत्रुनाशक श्रेष्ठ मनवाले आर्य वीरका काव्यगान करो।

२२१ सूरिभिः सह स्याम— विद्वानोंके साथ हम रहें।

२२२ अनाप्यं क्षत्रं राजानः आशत— शत्रुके लिये प्राप्त करना कठिन ऐसा क्षात्रबल राजा लोग प्राप्त करें।

२२३ ऋतस्य रथ्यः यूयं ओहते तत् मनामहे— सत्यके पथ प्रदर्शक आप जिसका विचार करते हैं, उसीका हम मनन करते हैं।

२२४ ऋतावानः ऋतजाताः ऋतावृधः अनृतद्विषः घोरासः, वः सुच्छर्दिष्टमे सुम्ने सूरयः नरः स्याम— सत्यपालक, सत्यके लिये जन्मे, सत्यका संवर्धन करनेवाले, असत्यका द्वेष करनेवाले बडे घोर दीखनेवाले वीरोंके उत्तम घरमें रहनेसे प्राप्त होनेवाले सुखको हम सब ज्ञानी नेता प्राप्त करें।

२२५ तत् देवहितं शुक्रं चक्षुः उच्चरत्— वह देवोंका हित करनेवाला बलवान् शुद्ध आंख जैसा तेज उदय हुआ है।

२२६ पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं— सौ वर्षतक देखें और जीवें।

२२७ अदाभ्या द्युमत्— तुम न दबनेवाले हो इस लिये तेजस्वी हो।

(ऋ० ७।६७)

२२८ नृपती धिष्ण्या— राजा बुद्धिमान होने चाहिये।

२२९ तमसः अन्ताः उपादृशन्— अज्ञानान्धकारका अन्त दिखाई दिया है।

२३० शचीभिः नः शक्तं— शक्तियोंके योगसे हमें समर्थ बनाओ।

२३१ तोके तनये तूतुजाना— बालबच्चोंको त्वरासे समर्थ बनाओ।

(ऋ० ७।६८)

२३२ ऊतीं वर्पः अधि धत्थः— मृत्युसे बचानेवाला रूप तुमने उसे दे दिया।

२३३ यौ शचीभिः शक्ती स्तर्यं अघ्न्यां अपिन्वतं— तुम दोनोंने अपने सामर्थ्योंसे वंध्या गौओंको दुधारू बना दिया।

(ऋ० ७।७०)

२३४ कृतब्रह्मा समर्यः भवति- ज्ञानका प्रचार करने-वाला मनुष्योंका संघटन करनेवाला होता है।

(ऋ० ७।७२)

२३५ पित्र्या सख्यानि, उत समानः बन्धुः, तस्य वित्तं— पितासे चली आयीं मित्रताएं, और समानतासे उत्पन्न होनेवाला बन्धुभाव, इनको भूलना नहीं।

(ऋ० ७।७३)

२३६ वीळुपाणी रक्षोहणा संभृता— शस्त्रधारी शत्रुका नाश करनेवाले वीर इकट्ठे हों।

(ऋ० ७।७५)

२३७ दिवः दुहिता भुवनस्य पत्नी- द्युलोककी पुत्री भुवनोंका पालन करनेवाली है।

२३८ वाजिनीवती चित्रामघा वसूनां रायः ईशे- अन्नवाली और धनवाली यह स्त्री धनोंकी स्वामिनी है।

२३९ पुरुपता नः बर्हिः निदे मा कः— पुरुषोंमें हमारे कर्मोंकी निन्दा न हो।

(ऋ. ७।७६)

२४० देवानां चक्षुः क्रत्वा अजनिष्ट— देवोंकी आंख सूर्य-उत्तम कर्मके साथ प्रकट हुआ है।

२४१ देवयानाः पन्थाः अमर्धन्त— दिव्य मार्ग हिंसा रहित होते हैं।

(ऋ. ७।७७)

२४२ युवतिः योषा न उपो रुरुचे— तरुणी स्त्री अलंकारोंसे सुशोभित होकर तरुण पतिके साथ चमकती है।

(ऋ. ७।७९)

२४३ देवं देवं राधसे चोदयन्ती— प्रत्येक कर्म-कर्ताको ऐश्वर्य प्राप्तिके लिये प्रेरणा देती है।

(ऋ. ७।८२)

२४४ विश्वे देवासः ओजः बलं संदधुः— सब देव ओज और बल धारण करते हैं।

२४५ तं मर्तं न अंहः, न दुरितानि, न तपः, नशते यस्य अध्वरं गच्छथः- उस मनुष्यको पाप, दुष्कृत्य, संताप कष्ट नहीं देते, जिसके यज्ञमें देव जाते हैं।

(ऋ० ७।८३)

२४६ आजौ किंचन प्रियं न भवति- युद्धसे कुछ भी प्रिय नहीं होता।

२४७ यत्र स्वर्दृशः भुवना भयन्ते— युद्धसे ज्ञानी लोग भयभीत होते हैं।

२४८ भूम्याः अन्ताः ध्वसिताः समदृक्षत- भूमीके ऊपरसे प्रदेश ध्वस्त हो जाते हैं।

२४९ सुदासं प्रावतं— उत्तम दानी सज्जनको सुरक्षित रखो।

(ऋ० ७।८६)

२५० नः पित्र्या द्रुग्धानि अवसृज— हमारे पिताके पापोंको दूर कर।

२५१ वयं तनूभिः या चकृम अवसृज— हमने अपने शरीरोंसे जो पाप किये हों, उनको दूर कर।

२५२ स्वप्नः अनृतस्य प्रयोता- सुस्ती असत्यका प्रवर्तन करती है।

२५३ अर्यः देवः अचितः अचेतयत्— श्रेष्ठ ईश्वर अज्ञानियोंको ज्ञान देता है।

(ऋ. ७।८७)

२५४ ते विश्वा धाम प्रियाणि—तुम्हारे सब धाम हमारे लिये प्रिय हैं।

२५५ वरुणस्य स्पशः समदिष्टाः सुमेके उभे रोदसी परिपश्यन्ति— वरुणके दूत चलते हुए द्यावा पृथिवीमें सबको देखते हैं।

२५६ विद्वान् विप्रः उपराय युगाय शिक्षन् पदस्य गुह्या वोचत्— विद्वान् विशेष बुद्धिवान् समीप आनेवाले शिष्यको सिखानेकी इच्छासे पदके गुह्य अर्थको समझाता है।

२५७ सुपारक्षत्रः गंभीर शंसः अस्य सतः राजा- उत्तम रीतिसे दक्षतासे दुःखके पार होनेवाला, गंभीर कीर्तिसे युक्त ऐसा यह इस विश्वका राजा है।

२५८ आगः चक्रुषे मिळयाति, वरुणे वयं अनागा स्याम— पाप करनेवालेको भी सुख देता है, उस वरुणके सामने हम निष्पाप होकर रहेंगे।

(ऋ० ७।८८)

२५९ पुरा चित् अनृकं सचामहे— प्राचीन कालसे चलता आया अकुटिल सत्य हो ऐसा हम चाहते हैं।

(ऋ. ७।८९)

२६० अहं मृण्मयं गृहं मो गमं— मुझे मिट्टीके घरमें रहना न पडे।

२६१ समृळ शुचे ! क्रत्वः दीनता प्रतीपं जगम मृळय— हे धनवान् पवित्र देव ! कर्म शक्तिकी न्यूनताके कारण मैं दुःखको प्राप्त हुआ हूं, इसलिये मुझे सुखी कर।

२६२ दैव्ये जने यत् मनुष्या अभिद्रोहं चरामसि अचित्ती तव यत् धर्मा युयोपिम, तस्मात् एनसः नः मा रीरिषः— दिव्य मनुष्यके संबंधमें जो द्रोह हम मनुष्योंने किया हो, न समझते हुए जो कर्तव्यका लोप हमसे हुआ हो, उस पापसे हमारा नाश न कर।

(ऋ. ७।९१)

२६३ बाधिताय मनवे अनवद्यासः आसन्— दुःखी मनुष्यके हितके लिये यत्न करनेवाले प्रशंसित होते हैं।

(ऋ. ७।९३)

२६४ नरः काष्ठां नक्षमाणाः- नेता लोग उन्नतिकी पराकाष्ठाको पहुंचना चाहते हैं।

(ऋ० ७।९४)

२६५ पापत्वाय अभिशस्तये निदे मा रीरधतं— पाप निंदा हीनत्व आदिके कारण हमारा नाश न हो।

२६६ धिया धेनाः पेरयामः- बुद्धिसे वाणीको हम प्रेरित करते हैं।

२६७ दुःशंसः नः मा ईशत— दुष्ट हमारे ऊपर प्रभुत्व न करे।

(ऋ० ७।९५)

२६८ एषा सरस्वती आयसी पूः धरुणं- यह विद्या देवी लोहेके किलेके समान सबका रक्षण करनेवाली है।

२६९. एका सरस्वती अचेतत्— यह एकही विद्या-देवी चेतना उत्पन्न करती है।

२७० भुवनस्य भूरेः रायः चेतन्ती— विश्वके अनेक प्रकारके धनोंको यह विद्यादेवी बताती है।

२७१ सुभगा सरस्वती— उत्तम भाग्यवाली यह विद्या देवी है।

(ऋ. ७।९६)

२७२ मघोनां राधः चोद— धनवानोंके धनको सत्कर्ममें प्रेरित कर।

२७३ भद्रा सरस्वती भद्रं इत् कृणवत्— कल्याण करनेवाली सरस्वती अधिक कल्याण करती है।

२७४ अकवारी वाजिनीवती चेतति— सीधा मार्ग बतानेवाली अन्न देनेवाली विद्या देवी स्फुरण देती है।

(ऋ. ७।९७)

२७५ मीळ्हुषे अनागाः भवेम— सुख देनेवाले उस प्रभुके सामने हम निष्पाप होकर रहें।

(ऋ ७।९९)

२७६ ते महित्वं न अश्नुवन्ति— प्रभुकी महिमाको कोई नहीं जान सकता।

२७७ त्वं परमस्य वित्से— प्रभु परम श्रेष्ठ ज्ञानको जानता है।

२७८ ते महिम्नः परं अन्तं न जायमानः न जातः आप— हे प्रभो, तेरी महिमाके पारको कोई न जन्मनेवाला और न कोई जन्मा हुआ जान सकता है।

२७९ यज्ञाय उरुं लोकं चक्रथुः— यज्ञके लिये प्रभुने विस्तृत स्थान बनाया है।

(ऋ. ७।१००)

२८० तवसः तवीयान् विष्णुः प्रास्तु— समर्थसे समर्थ यह व्यापक प्रभु हमारा सहायक हो।

२८१ अस्य स्थविरस्य नाम त्वेषं हि— इस बडे देवका नाम बडा तेजस्वी है।

२८२ एष विष्णुः एतां पृथिवीं मनुषे क्षेत्राय दशस्यन्— इस व्यापक प्रभुने इस बडी पृथिवीको मानवोंके लिये निवासार्थ दिया है।

२८३ अस्य कीरयः जनासः ध्रुवासः— इसके भक्त यहां स्थिर होते हैं।

२८४ सुजनिमा उरुक्षितिं चकार— कुलीन वीर इस पृथिवीको निवासके लिये उत्तम बनाता है।

(ऋ. ७ १०४)

२८५ ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे किमीदिने अनवायं द्वेषः धत्तं— ज्ञानके द्वेषी, कच्चा मांस खानेवाले, भयंकर रूपवाले, सब कुछ खानेवालेके संबंधमें निरंतर द्वेष धारण करो।

२८६ दुष्कृतः अनारंभणे तमसि अन्तः प्रविध्यतं— दुष्टकर्म करनेवालेका अगाध अन्धकारमें विनाश करो।

२८७ पाकेन मनसा चरन्तं मां, यः अनृतेभिः वचोभिः अभिचष्टे, असतः वक्ता असन् अस्तु— पवित्र मनसे व्यवहार करनेवाले मुझे भी, जो असत्यभाषणोंसे निंदा करता है, उसका वह असत्यभाषण असत्यही सिद्ध हो।

२८८ ये पाकशंसं एवैः विहरन्ते, ये स्वधाभिः भद्रं दूषयन्ति, तान् अहये प्रददातु, निर्ऋतेः उपस्थे वा दधातु— मुझ जैसे सत्यवादीको अनेक उपायोंसे जो कष्ट देते हैं, जो अपनी शक्तिके कारण हितकर्ताको भी दूषण देते हैं, उनको अधीन करो अथवा उनको निर्धन अवस्थाको पहुंचा दो।

२८९ सत् च असत् च वचसी पस्पृधाते, तयोः यत् सत्यं, यतरत् ऋजीयः, तत् सोमः अवति, असत् हन्ति— सत् और असत भाषणोंकी स्पर्धा होती है, जो सत्य और जो सरल होता है, उसका रक्षण सोम करता है जो असत् होता है उसका नाश करता है।

२९० सोमः वृजिनं नैव हिनोति— सोम पापीको नहीं छोडता।

२९१ मिथुया धारयन्तं क्षत्रियं न हिनोति— मिथ्या व्यवहार करनेवाले क्षत्रियको भी वह नहीं छोडता।

२९२ रक्षः असत् वदन्तं हन्ति, उभौ इन्द्रस्य प्रसितौ शयाते— राक्षसों और असत्यभाषण करनेवालेका वह वध करता है। ये दोनों इन्द्रके बन्धनमें पडते हैं।

२९३ यदि यातुधानः अस्मि अद्य मुरीय— यदि मैं राक्षस बनूं तो आज ही मर जाऊं।

२९४ यदि पुरुषस्य आयुः ततप— यदि मैंने किसीको कष्ट दिये हैं (तो मैं आजही मर जाऊं।)

२९५ यः मा मोघं यातुधान इति आह, सः दशभिः वीरैः वियूयाः— जो मुझे व्यर्थ राक्षस करके कहता है वह अपने दसों पुत्रोंके साथ मर जांय।

२९६ यः मा अयातुं यातुधान इत्याह, यः रक्षः शुचिः अस्मि इत्याह, इन्द्रः तं महता वधेन हन्तु, सः विश्वस्य जन्तोः अधमः पदीष्ट— जो मैं राक्षस न होते हुए मुझे राक्षस कहता है, जो स्वयं राक्षस होते हुए अपनेको शुद्ध करके पुकारता है, इन्द्र उसका वध बडे शस्त्रोंसे करे, वह सब प्राणियोंमें हीन दशाको प्राप्त हो जाय।

२९७ उलूकयातुं, शुशुलूकयातुं, श्वयातुं, कोकयातुं, सुपर्णयातुं, उत गृध्रयातुं प्रमृण, रक्ष च— उल्लूके समान, भेडियेके समान, कुत्तेके समान, चिडियेके समान, गरुडके समान, गीधके समान चाल चलनवाले जो राक्षस हैं, उनका वध कर और हमारी रक्षा कर।





ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

सप्तम मण्डल

ऋषिवार सूक्त संख्या

ऋषि	सूक्त
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः ३१ + ७१ =	१०२
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः शक्तिर्वासिष्ठो वा	१
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः वसिष्ठपुत्राः वा	१
	१०४

ऋषिवार मंत्र संख्या

ऋषि	मंत्रसंख्या
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः	८३४
शक्तिर्वासिष्ठः	२
वसिष्ठपुत्राः	५
	८४१

देवतावार मंत्रसूची

देवता	मंत्रसंख्या
१ इन्द्रः	१७२
२ अग्निः	११८
३ विश्वेदेवाः	८१
४ अश्विनौ	५६
५ मरुतः	५०
६ उषसः	४१
७ मित्रावरुणौ	३८
८ इन्द्रावरुणौ	३०
९ वरुणः	२७
१० इन्द्राग्नी	२०
११ वैश्वानरोऽग्निः	१९
१२ आदित्याः	१६
१३ सूर्यः	११
१४ विष्णुः	११
१५ सविता	१०
१६ इन्द्रवायू	१०
१७ मण्डूकः (पर्जन्यः)	१०
१८ इन्द्रासोमौ	१०
१९ पर्जन्यः	९
२० वायुः	९
२१ सरस्वती	८
२२ आपः	८
२३ बृहस्पतिः	६
२४ रुद्रः	५
२५ भगः	५
२६ वसिष्ठः	५

देवता	मंत्रसंख्या
२७ सरस्वान्	४
२८ सुदाः पैजवनः	४
२९ दधिक्रा	४
३० वास्तोष्पतिः	४
३१ द्यावापृथिवी	३
३२ ऋभवः	३
३३ इन्द्राविष्णू	३
३४ सोमः	३
३५ इन्द्राब्रह्मणस्पतिः	२
३६ इन्द्राबृहस्पती	२
३७ वाजिनः	२
३८ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा	१
३९ नराशंसः	१
४० इळः	१
४१ बर्हिः	१
४२ देवीर्द्वारः	१
४३ उषासानक्ता	१
४४ दैव्या होतारौ प्रचेतसौ	१
४५ सरस्वतीळाभारत्यः	१
४६ त्वष्टा	१
४७ वनस्पतिः	१
४८ स्वाहाकृतयः	१
४९ अहिः	१
५० अहिर्बुध्न्यः	१
५१ अग्नीन्द्रमित्रावरुणाश्विनाभगपूषब्रह्मणस्पतिसोमरुद्राः	१
५२ दधिक्राश्व्युषोऽग्निभगेन्द्रविष्णुपूषब्रह्मणस्पत्यादित्यद्यावापृथिव्यापः	१
५३ मरुतः	१
५४ सूर्यमित्रावरुणाः	१
५५ मित्रावरुणौ अर्यमा	१
५६ देवाः	१
५७ ग्रावाणः	१
५८ पृथिव्यन्तरिक्षे	१
	८४१

वसिष्ठ ऋषिका परिचय

वसिष्ठ ऋषिकी उत्पत्तिके संबंधमें बृहद्देवता ग्रन्थमें इस तरह लिखा है—

तयोरादित्ययोः सत्रे दृष्ट्वाप्सरसमुर्वशीम् ।
रेतश्चस्कंद तत्कुम्भे न्यपतद्वासतीवरे ॥ ७८३
तेनैव तु मुहूर्तेन वीर्यवन्तौ तपस्विनौ ।
अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च तत्रर्षी संबभूवतुः ॥ ७८४
बहुधा पतितं रेतः कलशे च जले स्थले ।
स्थले वसिष्ठस्तु मुनिः संभूत ऋषिसत्तमः ॥ ७८५
कुम्भे त्वगस्त्यः संभूतो जले मत्स्यो महाद्युतिः ।
उदियाय ततोऽगस्त्यः शम्यामात्रो महातपाः ॥ ७८६
मानेन संमितो यस्मात् तस्मान्मान्य इहोच्यते ।
यद्वा कुम्भादृषिर्जातः कुम्भेनापि हि मीयते ॥ ७८७
कुम्भ इत्यभिधानं च परिमाणाय लक्ष्यते ।
ततोऽप्सु गृह्यमाणासु वसिष्ठः पुष्करे स्थितः ॥ ७८८
सर्वतः पुष्करे तं हि विश्वेदेवा अधारयन् ॥ ७८९

बृहद्देवता ५।७८३–७८९

निरुक्तमें भी है—

तस्या दर्शनान्मित्रावरुणयो रेतश्चस्कंद ।

निरुक्त ५।१३

तथा सर्वानुक्रमणीमें—

मित्रावरुणयोर्दीक्षितयोरुर्वशीमप्सरसं दृष्ट्वा
वासतीवरे कुम्भे रेतोऽपतत्ततोऽगस्त्यवसिष्ठा-
वजायेताम् । सर्वानुक्रमणी १।१६६

“ मित्र और वरुण यज्ञ कर रहे थे । उन्होंने यज्ञकी दीक्षा ली थी । इतनेमें उर्वशी अप्सरा यज्ञस्थानमें आगई । मित्र और वरुणोंने उसे वहां देख लिया । उनका मन विचलित हो गया और उस कारण उनका वीर्य वासतीवर नामक यज्ञपात्रमें गिर पडा । वहां वह वीर्य कुछ समयतक रहा । उसी समय उससे अगस्त्य और वसिष्ठ उत्पन्न हुए । ये बडे तपस्वी तथा विशेष सामर्थ्यवान् थे । यह वीर्य वासतीवर नामक कुम्भमें गिरा, वैसाही वहांके जलमें तथा स्थलमें भी गिर गया था । जो वीर्य भूमि पर गिरा था, उससे महामुनि वसिष्ठ ऋषिका जन्म हुआ । अगस्त्य ऋषि उस कुम्भमें उत्पन्न हुआ और उस जलमें तेजस्वी मत्स्य

उत्पन्न हुआ। महातपस्वी अगस्त्य ऋषि शम्याके समान उत्पन्न हुआ। [शम्या वह खीलक है जो गाडीको बैल जोतनेके स्थानपर लगाया होता है। इसकी लंबाई बीस अंगुल होती है। अगस्ति ऋषि जन्मके समय इतना सा था। इसका नाप लिया था इसलिये इसको यहां 'मान्य' कहा गया है। अथवा यह कुम्भसे उत्पन्न हुआ इसलिये कुम्भसे भी उसका परिमाण हुआ। कुम्भ यह भी एक मापनेका साधन है। वहांसे जल ले जानेपर वसिष्ठ कमलमें खडा रहा और उस कमलको चारों ओरसे देवोंने सहारा दिया था।" वहांसे निकलनेपर वसिष्ठने बडा तप किया।

यह कथा जैसी यहां लिखी है वैसी ही हुई होगी, ऐसा दीखता नहीं है। क्योंकि उर्वशीको देखते ही मित्र और वरुण इन दो आदित्योंका वीर्य पतन हो गया हो और वह कुम्भमें इकट्ठा हुआ हो और वहां इकट्ठा होते ही उस वीर्यसे इन दो ऋषियोंका जन्म हुआ हो, यह ठीक दीखता नहीं है।

मित्र और वरुण ये दो देव परस्पर पृथक् हैं, ये एक ही नहीं हैं। इसलिये इन दोनोंका वीर्य एक समय ही किसी एक पात्रमें गिरना यह असंभवसा प्रतीत होता है। अतः यह कथा रूपकात्मक होगी। तथापि इसकी पूरी खोज यहां नहीं हो सकती।

अगस्ति ऋषि दक्षिण दिशाको निर्भय करनेवाले थे। इन्होंने समुद्रके पार भी प्रवास किया था। आज 'कंबोडिया' जिस भूविभागको कहते हैं, वह 'कुम्भज-द्वीप' ही है। वहां अगस्ति गये थे। दक्षिणमें आतापी वातापी ये राक्षस प्रवासियोंका वध करते थे। वहां अगस्ति गये और इस अगस्त्यको उन्होंने नरमांस खिलाया। यह बात जब इसको विदित हुई तब इन्होंने दायां हाथ अपने पेटपर फिराया और कहा कि इसको तो मैंने हजम किया है। इस तरह यह अगस्त्य ऋषि वीर वृत्तिका था। इसका प्रवास दक्षिण भारत, बालीद्वीप, जावा, सुमात्रा आदितक हुआ था और वहां उन्होंने वैदिकधर्मका खूब प्रचार किया था। वसिष्ठके कुटुंबी भाई ऐसे प्रभावशाली थे।

वसिष्ठके पूर्वज

यहां वसिष्ठके पूर्वजोंका विचार करना चाहिये। इसका वंशवृक्ष इस तरह है—

प्रजापति
|
मरीची
|
कश्यप (इसकी १३ स्त्रियां थी। अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, मुनि, क्रोधा, विश्वा, वरिष्ठा, सुरभि, विनता, कद्रू। ये दक्षकी पुत्रियां थी और कश्यपके साथ विवाहित हुई थी।)

कश्यप×अदिति
|
१२ आदित्य
[भग-अर्यमा-अंश-" मित्र-वरुण " -धाता-विधाता-विवस्वान्-त्वष्टा-पूषा-इन्द्र-विष्णु]

अर्थात् अपने मित्रावरुण कश्यपके पुत्र हैं। इन मित्रावरुणोंसे पूर्वोक्त प्रकार अगस्त्य और वसिष्ठका जन्म उर्वशीके कारण हुआ। वसिष्ठके पूर्वजोंके विषयमें इतने ही नाम मिलते हैं। मित्र-वरुण देव थे, आदित्य थे, ऐसा ऊपर कहा है। ये राजा थे ऐसा निरुक्तकार लिखते हैं—

दक्षस्य वाऽदिते जन्मनि व्रते राजाना मित्रावरुणा विवाससि। ऋ० १०।६४।५
जन्मनि व्रते कर्मणि राजानौ मित्रावरुणौ परिचरसि। निरुक्त

यहां मन्त्रके पदोंके आधारसे मित्रावरुण राजा हैं ऐसा निरुक्तकारने कहा है। मंत्रोंमें भी मित्र वरुणको राजा कहा है। विश्वराज्यके शासन कर्ममें ये नियुक्त हुए हैं यह इसका अर्थ है।

ऊपर जो वसिष्ठकी उत्पत्तिकी कथा दी है वह मंत्रोंके पदोंसे भी वैसी ही दीखती है, वे मंत्रभाग ये हैं—

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधिजातः। द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥ (ऋ० ७।३३।११)

"हे ब्रह्मन् वसिष्ठ! तू (मैत्रावरुणः) तू मित्र और वरुणसे जन्मा और (उर्वश्याः मनसः अधिजातः) उर्वशीके मनसे उत्पन्न हुआ है। (द्रप्सं स्कन्नं त्वा) जलमें गिरे हुए तुझे (दैव्येन ब्रह्मणा) दिव्य ज्ञानसे (विश्वेदेवाः त्वा पुष्करे आददन्त) सब देवोंने तुझे कमलमें धारण किया था।"

मित्र और वरुणका मिलकर वसिष्ठ पुत्र है, उर्वशीका प्रभाव मनपर पडा और उससे रेतका पतन हुआ। कमलमें देवोंने इसका धारण किया। इत्यादि कथाके सूचक पद मंत्रमें हैं। इन शब्दोंसे ही पता चलता है कि यह रूपकालंकार है और वास्तविक कथा नहीं है। वसिष्ठके महत्त्वके विषयमें तैत्तिरीय संहितामें निम्न लिखित वचन देखने योग्य हैं—

ऋषयो वा इन्द्रं प्रत्यक्षं नापश्यन्।
तं वसिष्ठः प्रत्यक्षं अपश्यत्। ...
तस्मै एतान् स्तोमभागानब्रवीत्। तै० सं० ३।५।२

'ऋषि इन्द्रका—आत्माका—प्रत्यक्ष दर्शन न कर सके। उसका दर्शन वसिष्ठने किया।' यह वसिष्ठकी श्रेष्ठताका सूचक वचन है। सबसे प्रथम वसिष्ठने इन्द्रका साक्षात् दर्शन किया, इसलिये वसिष्ठ सब ऋषियोंमें श्रेष्ठ और माननीय बना।

वसिष्ठ ऋषिका तत्त्वविज्ञान

अब वसिष्ठ ऋषिके तत्त्वज्ञानका विचार करना है। इसका विचार करनेके समय 'ऋत और सत्य' का विचार प्रथम आता है। इस विषयमें निम्न लिखित वचन देखने योग्य हैं।

२१८ ऋतं मक्षन्।

'ऋतका फैलाव करो,' ऐसा करो कि लोगोंके व्यवहारमें ऋत आ जावे। यह इन्द्रके वर्णनमें वचन है। इन्द्र ऋतको बढाता है, वैसा मनुष्य करे। वैसा राजा अपने राष्ट्रमें ऋतको बढावे। ऋतका अर्थ 'सत्य, सरलता, सीधापन और कुटिलता रहित व्यवहार' है। मनुष्य सरल व्यवहार करें, उसमें छल, कपट, टेढापन, कुटिलता' न हो। ऐसा मानवोंका व्यवहार हुआ तो इस पृथ्वीपर स्वर्गधाम आ जायगा। ऋत और सत्य ये दो अटल तथा स्थायी नियम हैं। सब विश्व इनपर चल रहा है। अतः ये नियम मानवोंके व्यवहारमें आने चाहियें। ऋतका भाव 'गति, प्रगति' है। 'ऋ गतौ' यह धातु इस पदमें है। गतिमान्, प्रगतिमान् यह भाव इसमें है। सत्यका भाव 'सच्चा, जो जैसा है।' 'अस् भुवि' यह धातु इस पदमें हैं, जो है, जो अस्तित्ववान् है। अतः 'ऋत और सत्य' का मूल यौगिक भाव यह है कि 'प्रगति और अस्तित्व'। मनुष्यको अपना अस्तित्व टिकाना चाहिये और मनुष्यको प्रगति भी करनी चाहिये। यह प्रगति सरल सत्य श्रेष्ठ मार्गसे होनी चाहिये। संपूर्ण विश्व ऋत और सत्यपर ठहरा और वह सतत गति कर रहा है। मनुष्यको यह देखना चाहिये और ये दो अटल नियम अपने जीवनमें ढालना चाहिये, उषादेवीके वर्णनमें भी यह आया है—

६१९।१ दिविजाः ऋतेन महिमानं आविष्कृण्वानाः आ अगात्।

'द्युलोकमें उत्पन्न हुई उषा ऋतसे अपनी महिमाको प्रकट करती हुई आ गयी है।' उषा आती है, वह ऋतके साथ आती है। इसलिये वह आते ही ऋतके कारण वह प्रकाश फैला सकती है और उसको देखते ही सब जगत्को अत्यंत आनंद होता है। जो ऋतवान् है, उससे इसी तरह जगत्में आनंद फैलता है। इसी तरह—

८२८ सत् च असत् च वचसी पस्पृधाते, तयोः यत् सत्यं, यतरद् ऋजीयः, तत् इत् सोमो अवति, हन्ति असत्।

'सत् और असत् भाषण परस्पर स्पर्धा करते हुए मनुष्यके पास आते हैं, उनमें एक सत्य और दूसरा असत्य होता है, सत्यमें भी एक सत्य है और दूसरा ऋजु है। इस सत्य और ऋजुका तो ईश्वर संरक्षण करता है और असत्यका तथा कुटिलका नाश करता है। अर्थात् ईश्वर सत्य और ऋतका संरक्षक है और असत्यका और कुटिलताका नाश करनेवाला है। यहां 'ऋत' के लिये 'ऋजीयः, ऋजु' ये पद आये हैं। इनका अर्थ 'सरलता' है। इसके आगेके मंत्रमें और कहा है—

८२९ सोमः वृजिनं, मिथुया धारयन्तं क्षत्रियं, रक्षः असद्वदन्तं हन्ति।

'सोम कुटिलताको, मिथ्या व्यवहार करनेवाले क्षत्रियको भी, जो असत्य बोलता है उसको विनष्ट कर देता है।' यहाँ असत्का अधिक स्पष्टीकरण है। 'वृजिन, मिथुया धारयन्, असत् वदन्' कपटी, मिथ्या व्यवहारी और असत्यभाषणी' इनका नाश होता है। इसलिये मनुष्य ऋत और

सत्यका पालन करे। मनुष्यकी शुद्धि आचार व्यवहारमें दीखनी चाहिये। मन-वचन-कर्ममें मनुष्यको ऋत और सत्यका पालन करना चाहिये।

इस विषयमें वसिष्ठ ऋषिके देखे मंत्रोंमें बहुत उपदेश है, पर यहां संक्षेपसे ही देखना है। इसलिये यहां संक्षेपसे ही दिग्दर्शन किया है। इसी तरह आगे भी संक्षेपसे ही बतायेंगे-

अपनी पवित्रता

अपनी पवित्रता रखनेके विषयमें ऋषियोंके उपदेश स्पष्ट हैं। 'शौच-संतोष' ये नियमोंमें प्रथम आ गये हैं। इनका अनुष्ठान इस तरह होता है—

४८ स शुचिदन् भूरिचित् अन्ना सद्यः समत्ति।

अग्निके वर्णनमें यह मन्त्रभाग है। 'वह शुद्ध दांतवाला अग्नि तत्काल बहुत अन्न खाता है।' इस मन्त्रभागका 'शुचि-दन्' यह पद महत्त्वपूर्ण है। देवताके दांत शुद्ध रहते हैं, वैसे उपासकके हों यह प्रेरणा यहां है। उपास्यके समान उपासकने बनना है। अथर्ववेदमें अ-शोणा दन्ताः' (अ० कां० १९।६०।१) दांत स्वच्छ रहने चाहिये। दांत मलीन होनेसे शरीरमें नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। उनको दूर करनेके लिये यह प्रेरक वाक्य इस मंत्रमें है। सब दांतोंकी, मुख तथा जिह्वाकी स्वच्छता, तथा सब इंद्रियों और अवयवोंकी स्वच्छता इस तरह सूचित होती है।

चलनेका वेग

अथर्ववेदमें (१९।६०।१ में) कहा है कि 'अघयो-र्जवः' जंघाओंमें वेग हो। अर्थात् चलनेका वेग अच्छा होना चाहिये। मन्दगतिसे चलना उचित नहीं है। वही बात हम वसिष्ठके मंत्रोंमें देखते हैं।

३११ यज्ञं अभि प्रस्थात, त्मना यात, पत्मन् त्मना हिनोत।

"यज्ञके स्थानपर वेगसे जाओ, शत्रुपर हमला वेगसे करो और मार्गपरसे भी वेगसे जाओ।' मनुष्यमें वेग और उत्साह होना चाहिये। शिथिलता नहीं दीखनी चाहिये। चलना हो तो वेगसे चलो, शत्रुपर हमला करना हो तो वेगसे करो, यज्ञस्थानपर जाना हो तो भी वेगसे जाओ। वेग अपने जीवनमें रहे, सुस्ती नहीं चाहिये। वेगसे चलनेसे शरीर स्वस्थ रहता है यह यहां पाठक समझें। जो प्रतिदिन ४।५ मील चलते हैं वे स्वस्थ तथा दीर्घायु होते हैं।

कामक्रोधादि अन्तः शत्रु

कामक्रोधादि अन्तःशत्रुओंका दमन करनेके लिये एक मंत्रमें वसिष्ठ ऋषिने कहा है, वह मंत्र देखिये—

८३८ उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातु-मुत कोकयातुम्। सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र॥

(कोकयातुं) कोकपक्षीके समान आचरण अर्थात् काम, (शुशुलूकयातुं) भेडियेके समान आचरण अर्थात् क्रोध, (गृध्रयातुं) गीधके समान आचरण अर्थात् लोभ, (उलूकयातुं) उल्लूके समान आचरण अर्थात् मोह (सुपर्णयातुं) गरुडके समान आचरण अर्थात् गर्व, (श्वयातुं) कुत्तेके समान आचरण अर्थात् मत्सर ये छः अन्तःशत्रु हैं। इनका दमन करना चाहिये।

'कोक' पक्षी बडा कामी होता है यह चीडिया जैसा है। भेडिया क्रोधके लिये प्रसिद्ध है। गीध लोभी है, स्वार्थ साधनके लिये प्रसिद्ध है, कथाओंमें इसका यही गुण लिखा है। उल्लूको अमाडी माना है, गरुड गर्वसे आकाशमें भ्रमण करता है, वह किसीकी पर्वा नहीं करता। और कुत्ता स्वजातियोंसे झगडता रहता है और अन्य जातियोंके संरक्षणके लिये दत्तचित्त रहता है। ये अन्तःशत्रु दमनसे शान्त करने चाहिये। इनको प्रबल होने नहीं देना चाहिये।

९८० वरुणस्य हेळः नः परिवृज्याः

'वरुण देवका क्रोध हमें न कष्ट देवे।' अर्थात् हमसे ऐसा दुराचरण कभी न होवे कि जिससे वरुणके क्रोधका आघात हमपर हो जाय। वरुण देव श्रेष्ठ प्रभु है। वह हमारे आचरणसे प्रसन्न चित्त हो अथ ऐसा उत्तम आचरण हमारा हो जाय।

८३१ (१) यदि यातुधानः अस्मि, अद्य मुरीय।
(२) यदि पुरुषस्य आयुः ततप, अद्य मुरीय।
(३) यः मा मोघं यातुधान इत्याह, स दशभिः वीरैः वियूयाः।

(१) यदि मैं सचमुच राक्षस हूं, तो मैं आज ही मर जाऊं तो अच्छा है, (२) यदि किसी मनुष्यकी आयुको मैंने कष्ट दिये हैं, तो भी मैं आज ही मर जाऊं तो अच्छा ही होगा। (३) पर यदि कोई दुष्ट मनुष्य निष्कारण

राक्षस करके मेरी व्यर्थ निंदा करता है, तब तो वह दुष्ट अपने दसों वीर पुत्रोंके साथ नष्ट हो जाय ।

अर्थात् मैं किसीको कष्ट नहीं दूंगा और कोई मुझे कष्ट न दे । हम परस्पर सहकार्यसे मित्रभावसे रहेंगे और आनंद प्राप्त करेंगे । यह परस्पर सहकारका उद्देश्य इस मंत्रमें दीखता है और यही मनुष्यका ध्येय होना चाहिये । इसी तरह—

८३२ (१) यः मा अयातुं यातुधान इत्याह,
(२) यः रक्षः शुचिः अस्मि इत्याह,
(३) स अधमः पदीष्ट

' (१) मैं राक्षस नहीं हूं, तथापि जो मुझे राक्षस कहके निंदता है, (२) और जो स्वयं राक्षस होता हुआ भी अपने आपको पवित्र करके घोषित करता है, (३) वह अधम है, वह नीच अवस्थाको पहुंचे । '

किसीकी व्यर्थ निंदा नहीं करनी चाहिये, ऐसी निंदा करना बहुत बुरा है, ऐसा निंदक अधम कहलाता है और नीच अवस्थाको पहुंचता है । इसलिये कोई मनुष्य किसीकी निंदा न करे । निंदा करनेसे जिसकी वह निंदा करता है उसका कुछ भी बिगडता नहीं, पर उसकी वाणी प्रथम बिगड जाती है और पश्चात् मन बिगडता है और इस कारण उसकी अवस्था निकृष्ट बनती है, इसलिये निंदा करना किसीको भी योग्य नहीं है ।

समाजमें किसीको शोक न हो ऐसा प्रबंध होना चाहिये । इस विषयमें वसिष्ठका मन्त्र देखने योग्य है—

२१२ यत् शुरुधः इरज्यन्त, देवजामिः घिवाघि घोषः अयामि ।

' जब (शु-रुधः) शोकको रोकनेकी स्पर्धा समाजमें चलती है, तब देवोंतक वह घोषणा पहुंचती है । ' समाजमें शोकके सब कारण दूर करनेकी स्पर्धा होनी चाहिये । समाजका प्रत्येक मनुष्य अपने समाजसे सब शोक दुःखके कारण दूर करनेका यत्न करें और इस समाज सेवा करनेमें वे सब स्पर्धा करें । इससे समाज दुःखोंसे दूर हो जायगा और समाजमें सुख बढेगा । सब जनताकी एक ही पुकार, एक ही घोषणा देवोंतक पहुंच जायगी कि दुःखके दूर करनेमें हमें यश मिले । और यह घोषणा देव सुनेंगे और उनको यश देंगे । इस तरह मनुष्योंमें इस विषयकी स्पर्धा होना अच्छा है । मनुष्य यत्न करके सब प्रकारका सुधार कर सकते हैं और व्यक्तिकी तथा समाजकी अर्थात् राष्ट्रकी सुस्थिति बहुत सुधार सकते हैं ।

शिस्नदेव समाजमें न रहें ।

१९६।५ शिश्नदेवा नः ऋतं मा गुः ।

' शिश्नदेव हमारे यज्ञस्थानमें न आवें । ' वे हमारे समाजसे दूर रहें । हमारा समाज ' ऋत ' मार्गसे जानेका यत्न करता है, उसमें शिश्न देवोंसे विघ्न होगा, इसलिये शिश्नदेव हमारे समाजसे दूर हो जांय ! व्यभिचारी, स्त्री विषयक अत्याचार करनेवालोंका नाम शिश्नदेव है । इनसे समाजमें कैसे दुःख फैलता है इसका पता सबको है । इसलिये अपने राष्ट्रमें ऐसे दुष्ट रहने नहीं चाहिये । यह वसिष्ठने देखा हुआ समाजस्वास्थ्यका सिद्धान्त तीनों कालोंमें सत्य है । समाजमें व्यभिचारी दुराचारी लोग नहीं रहने चाहिये ।

अज्ञानीकी निंदा

वसिष्ठ ऋषिके मंत्रोंमें अज्ञानकी निंदा और ज्ञानकी प्रशंसा बहुत है पीछे बताया गया है कि वसिष्ठ ऋषि ज्ञान विज्ञानमें सबसे अधिक थे, इसलिये अज्ञानकी निंदा करना उनके लिये स्वभाविक ही है । देखिये—

५३।४ अचेतसस्य पथः मा विदुक्षः

" मूर्खोंके मार्गसे हम न जांय । " यह इच्छा प्रत्येक मनुष्यको अपने अन्तःकरणमें धारण करनी चाहिये । तथा—

५०९।२ चिकित्वांसः अचेतसं अनिमिषा नयन्ति—
ज्ञानी लोग अज्ञानियोंको जागते हुए सुमार्गसे ले जाते हैं । ज्ञानी अज्ञानियोंको सन्मार्गसे प्रमाद न करते हुए चलाते हैं । राष्ट्रमें ज्ञानियोंका यही कर्तव्य है कि वे अज्ञानियोंको सज्ञान करें और जाग्रत रहकर उनको सन्मार्गसे अभ्युदय तक ले जांय ।

६९५ अर्यः देवः अचितः अचेतयत्— श्रेष्ठ ज्ञानी अज्ञानीको ज्ञान देता है और ज्ञान विज्ञान संपन्न बना देता है । राष्ट्रमें ज्ञानीको यही करना चाहिये ।

८१७ अचितः परा शृणीत्— अज्ञानियोंको दूर करो, अपने समाजमें कोई अज्ञानी न रहे ऐसा यत्न करना चाहिये ।

अपने समाजमें सब ज्ञानी बनें। अतः जो अज्ञानी होंगे अथवा अज्ञानी ही रहना पसंद करेंगे, उनको समाजसे बहिष्कृत करना चाहिये। तथा—

५१२।४ वां निण्यानि अचितं न अभूवन्— तुम्हारे गुप्त प्रयत्न अज्ञान बढानेके लिये न होते रहें। तुम्हारे प्रयत्नसे तुम्हारे अज्ञान न बढे।

इस तरह अज्ञानकी निंदा करके राष्ट्रमें सब लोगोंको ज्ञान मिले इसलिये किस तरहके प्रयत्न होने चाहिये और इस राष्ट्रोपयोगी कार्यके लिये ज्ञानी लोगोंने किस तरहके महान प्रयत्न करने चाहिये, इस विषयमें ये निर्देश विचार करने योग्य हैं।

सुशिक्षा

२९१ यथा पुत्रेभ्यः पिता, (तथा त्वं) नः शिक्ष, अस्मिन् यामनि ज्योतिः अशीमहि— जिस तरह अपने पुत्रोंको पिता सुशिक्षण देता है, वैसा तू हमें ज्ञान दे, हम इसी समय ज्ञान तेज प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसा विचार अज्ञानी लोगोंके मनमें चाहिये।। वे अज्ञानी ज्ञान लेनेकी इच्छा करें। ज्ञान तेज प्राप्त करनेकी आतुरता उनमें हो और ज्ञानी लोग उनको ज्ञान देनेका यत्न करें। इस तरह दोनों ओरसे प्रयत्न होना चाहिये।

यदि ज्ञानी अपने ज्ञानी होनेकी घमंडमें रहें और अज्ञानियोंको ओर न जांय, अथवा अनाडी लोग ज्ञान लेनेकी इच्छा न करें और अपनी स्थितिमें ही सन्तुष्ट रहें, ज्ञानीके पास जानेका यत्न भी न करें, तो कुछ भी उन्नति नहीं हो सकती। इसलिये इस मंत्रमें कहा है कि अनाडी लोगोंमें ' अस्मिन् यामनि ज्योतिः अशीमहि ' — हम शीघ्रातिशीघ्र ज्ञान तेज प्राप्त करके तेजस्वी विद्वान बनेंगे ऐसी प्रबल इच्छा चाहिये। ऐसे लोगोंकी सहायता विद्वानोंको करनी चाहिये। इस तरह दोनों ओरसे प्रयत्न हुए तो राष्ट्रका राष्ट्र ज्ञान विज्ञान संपन्न होनेमें देरी नहीं लगेगी।

विद्या देवी

३५३।२ अक्षरा चरन्ती नः परि मा ययत्— अक्षर मयवाणी विद्यादेवी प्रगति करती हुई हमें न छोड देवे।

३८१।२ सरस्वती ईं जुनाति— विद्यादेवी हमें उत्तम कर्ममें प्रेरित करती है।

यह विद्याकी प्रशंसा है। विद्याका स्वरूप ' अक्षरा ' है, अक्षरोंके रूपमें विद्या रहती है। ' अक्ष र ' आंख जिसमें रमते हैं ऐसे सुंदर अक्षरोंमें ज्ञान रहता है। यह प्रगति करनेवाला ज्ञान हमें न छोडे और किसी अन्यके पास न पहुंचे। ज्ञानमें हम प्रवीण हों और प्रगति करें। क्योंकि सरस्वती सत्कर्म करनेकी प्रेरणा करती है। विद्या न रही, ज्ञान न मिला तो मनुष्य असंस्कृत रहनेके कारण किसी तरह अपनी उन्नति नहीं कर सकता। इसलिये ज्ञानीके पास जाकर मनुष्यको उचित है कि वह विद्याकी उपासना करे।

सरस्वती वह है कि जो किसी जातिके पास हजारों वर्षोंसे ज्ञान परंपरा द्वारा रहती और प्रवाहरूपसे चलती रहती है। इसलिये विद्यासे सरस्वतीका महत्त्व अधिक है। विद्या केवल ज्ञानरूप है, परंतु सरस्वती जीवित प्रवाहरूप है जो सहस्रों वर्षोंसे चलती रहती है, परंतु सूखती नहीं। हजारों वर्षोंका लाखों विद्वानोंका ज्ञानमय जीवन सरस्वतीके प्रवाहमें मिला रहता है। विद्या ही नदी जैसी अखंड ज्ञान विज्ञानके प्रवाहरूप बनी और सहस्रों वर्ष टिकने लगी तो वह सरस्वती बनती है।

ऊपरके दो मंत्रोंमें ' अक्षरा ' और ' सरस्वती ' ये दो पद हैं। इनका यह भाव मनन करने योग्य है। ' अक्षरा ' का अर्थ ' शब्द विद्या, अक्षरोंमें-शब्दोंमें-रहनेवाली विद्या। ' और ' सरस्वती ' वह है जो ज्ञान नदी सहस्रों वर्ष प्रवाह रूपसे चलती रहती है। राष्ट्रमें अक्षरा विद्या भी बढनी चाहिये और सरस्वतीका प्रवाह भी अखंड चलता रहना चाहिये। दोनोंसे मानवी मनोंपर संस्कार होते हैं, इन संस्कारोंसे मानवी संस्कृति अथवा सभ्यता बनती है। यही संस्कृति मानवी मनपर संस्कार करते करते उसको नारायण भाव तक पहुंचाती है, वही मनुष्यकी अन्तिम अवस्था है कि जहां पहुंचनेके लिये मनुष्य वारंवार जन्म लेता है और अनुभव अपने अन्दर संगृहित करता जाता है।

तीन देवियां

३३।१ भारतीभिः भारती— उपभाषाओंके साथ भारती यह राष्ट्र भाषा है।

३३।२ देवेभिः मनुष्यैः इला— दिव्य मनुष्योंके साथ मातृभूमि पूज्य है।

३३।२ सारस्वतीभिः सरस्वती— विद्या-सरस्वती-देवीके उपासकोंके साथ विद्या देवी मनुष्योंको आदरणीय होनी चाहिये।

ये तीन देवियां सब मनुष्योंको आदर करने योग्य हैं। मातृभूमि, मातृभाषा और मातृसंस्कृति ये तीन देवियां हैं जो मनुष्यको सुख देती हैं। इनमेंसे एक न रही तो मनुष्य अधूरा बन जाता है। मातृभूमि न रही तो मनुष्यके रहनेके लिये स्थानही नहीं मिलेगा, मातृभाषा न रही तो वह बोलेगा किस तरह और ज्ञान कैसे प्राप्त करेगा? मातृसभ्यता न रही तो मनुष्य पशुवत् ही बन जायगा। इसलिये वेदने कहा है कि ये तीन देवियां मनुष्योंको उपासनीय हैं। मातृभाषा माताकी गोदमें बैठा बैठा बालक सीखता जाता है, मातृभूमि उसको रहनेके लिये स्थान-घर तथा खानेके लिये अन्न देती है। और मातृसभ्यता उसको सभ्य संस्कार संपन्न तथा मानवोप बना देती है। इसलिये ये तीनों आदरणीय हैं।

सुमति

१४८।४ ते सुमतौ शर्मन् स्याम— हम सब तेरी सुमतिमें रहकर सुखी हो जांय।

१५१।४ नः सुमतिं इन्द्रः आगन्तु— हमारी सुमतिसे बने स्तोत्र सुननेके लिये इन्द्र हमारे पास आ जाय।

१८९।३ अग्ने नः चनिष्ठाः वयं सुमतौ स्याम— हम अहिंसक रीतिसे रहनेवाले धनधान्यसंपन्न होकर तेरी सुमतिमें रहेंगे। तेरी प्रसन्नता हमपर रहे।

२२४।२ ते महीं सुमतिं प्रवेविदाम— तेरा बडा उत्तम आशीर्वाद हमें मिले।

५६३।२ यज्ञियेन मनसा अच्छ विवक्मि— पवित्र मनसे मैं बोलता हूं।

मातृभूमि, मातृभाषा और मातृसभ्यतासे मनुष्यके मनपर जो स्वाभाविक रीतिसे संस्कार होते हैं, उससे उसकी मति सुसंस्कारोंसे संपन्न होती है। जो विशेष सुमतिसंपन्न होते हैं उनको देव कहते हैं, उनसे जो कम होते हैं वे विबुध अथवा संस्कारसंपन्न ज्ञानी कहते हैं। मनुष्य देवों तथा विबुधोंकी सुमति प्राप्त करें, उनकी प्रसन्नता संपादन करें, जिससे मनुष्यकी उन्नति होनेका मार्ग सुगम होगा। देवोंके साथ रहकर देव बन जानेकी संभावना होती है। मनुष्य जब अपने अन्दर सुमति बढायेगा, तभी तो देव उसको अपने साथ रहने देंगे और उसपर अपनी प्रसन्नता प्रकट करेंगे। सुमति मानवी उन्नतिके लिये सहायक है इसीलिये उसको प्राप्त करना चाहिये।

देवत्वकी प्राप्ति

९५।१ देवयन्तीः मतयः— देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली बुद्धियाँ हों।

८९९ देवयन्तः विप्राः— देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले विप्र होते हैं।

'देव इव आचरन्ति इति देवयन्तः' देवके समान जो आचरण करते हैं उनको 'देवयन्तः' कहते हैं। इसीका स्त्रीलिंग नाम 'देवयन्तीः' है। बृहस्पति जैसा ज्ञान विज्ञान-संपन्न होना, इन्द्र जैसा शूरवीर और शत्रुका पराभव करनेमें समर्थ होना, मरुतों जैसा शत्रुपर वेगसे आक्रमण करना, सूर्यके समान प्रकाशना और अन्धकार-अज्ञानान्धकार-को दूर करना, अग्निके समान अग्रणी बनकर लोगोंको सन्मार्गसे ले चलना, और अन्तिम सिद्धितक पहुंचाना, वायुके समान शत्रुका विध्वंस करना और लोकोंको सुरक्षित रखकर उनको प्राणदान देना।

देवत्व प्राप्त करनेका यह भाव है। देवोंका जन्मवृत्तांत देखना और स्वयं वैसा आचरण करना। यह देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान है। यह मनुष्यको ऊंचा बना देता है। देव मनुष्यको अपने आचरणसे सन्मार्ग बताते हैं, मनुष्य वह उपदेश लें और वैसा आचरण करें और उन्नत हो जांय।

सन्मार्ग

३७१ तृप्ताः देवयानैः पथिभिः यात— संतुष्ट होकर देवयान मार्गोंसे वापस जाओ।

३७२।३ ऋतस्य पथां भेजाते— वीथीके मार्गका सेवन करो; कुमार्गसे न जाओ।

३७४ पथः अर्वाक् कृणुध्वं— मार्ग समीपका करो। जो मार्ग समीपसे पहुंचाता है वैसा मार्ग बनाओ।

३९४ सनवित्तः अध्वा सुगः— चिरकालसे चलता हुआ मार्ग सुगम होता है।

५२७।२ नः विश्वा सुपथानि सुगा सन्तु— हमारे सब सुपथ सुगम हों।

५३६।१ साधिष्ठेभिः पथिभिःप्र नयन्तु— इसलिये सहायक मार्गोंसे हमें वे ले जावें।

५१५ ऋतस्य रथ्यः यत् ओहते, तत् मना महे— सत्यके मार्गसे जो मिलता है, उसीका हम विचार करेंगे।

६१७।३ अंगिरस्तमाः पथ्याः अजीगः— यथा प्रकाशसे मार्ग बताती है।

६२८।१ देवयानाः पन्था. अमर्धन्त— देवोंके मार्ग हिंसा रहित हैं।

६२८।२ देवयानाः पन्थाः वसुभिः इष्कृतासः— देवयान मार्ग धनोंसे युक्त हैं।

देवोंके जाने आनेके मार्ग अच्छे स्वच्छ सुगम और आनंददायक होते हैं। उस मार्गसे जाने आनेवालोंको सुख होता है। जो मार्ग (सनवित्तः) बहुत वर्षोंसे, अनंतकालसे चालू है वह सुगम होता है। इसीलिये वह चालू रहा है। उस मार्गसे जाना सुखकर है। मनुष्य मार्ग ऐसे बनावे कि जो (सुगः अध्वा) जाने आनेके लिये सुगम हो, जाने आनेवालोंको कष्ट न हों। (पन्थाः वसुभिः इष्कृतासः) मार्ग धनोंसे सुखदायी होते हैं। धनका उपयोग करनेसे मार्ग बनते हैं और उनपर सुख साधन उपस्थित किये जा सकते हैं। देवयान मार्ग प्रकाशका मार्ग है और दूसरा पितृयान मार्ग है वह अन्धकारमय है। तीसरा असुरमार्ग है वह गाढ अन्धकारका और घातपातका मार्ग है वह बड़ा दुःखदायी है इसलिये असुरमार्गसे कोई न जाय। पितृमार्गपर अन्धकार रहता ही है, पर वहां (पितरः पातारः) संरक्षक रहते हैं इसलिये वह असुरमार्गके समान दुःखदायी नहीं होगा। यद्यपि वह देवयानके समान सुखदायक भी नहीं है। अस्तु यहां तीन मार्ग हैं, उनमें देवयान मार्ग सबसे सुगम है। अतः वैसा मार्ग बनाया जाय और वह समीपका हो। (रथ्यः) रथ जाने आनेके लिये सुखकर मार्ग हो। यहां अपने देशमें और नगरमें मार्ग कैसे हों इसका भी वर्णन है और नरका नारायण बननेवाले मार्गका भी उपदेश है। साधक इसका विचार करें और अपने लिये सन्मार्ग पकडें और सुखसे आगे बढें।

बुद्धि

१०।१ प्रशस्तां धियं पनयन्त— प्रशस्त बुद्धि तथा कर्म शक्तिकी प्रशंसा करो।

१३४।८ नरः पार्याः धियः युञ्जते— नेता लोग संकटोंसे पार होनेके लिये बुद्धिपूर्वक प्रयत्न करते हैं।

२३३।२ प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं— बुद्धिमान ज्ञानीके विषयमें सुमति धारण करो, उनकी प्रशंसा करो।

३०७ शुक्रा मनीषा देवी — पवित्र बुद्धि दिव्य होती है।

३१४ धियं दधामि— धारणवती बुद्धिका धारण करता हूं।

३१५ देवीं धियं अभि दधिध्वं, देवत्रा वाचं प्रकृणुध्वं— दिव्य बुद्धि धारण करो और देवोंका गुण वर्णन वाणीसे करो।

३६०।१ धीभिः विवेष— अपनी बुद्धियों और कर्मोंसे व्याप्त होओ, सब ओर परिणाम करो। सबको प्रभावित करो।

३७२।२ वस्वः सुमतिं भरेत्— धनके साथ सुमतिको धारण करो।

३८८।२ ददत् धियं उत् अव— दान देते हुए बुद्धिका संरक्षण कर।

४०२।२ समनसः यति स्थ— एक विचारसे यत्नमें रहो, यत्न करो।

५२८।१ धियः अविष्टं— बुद्धियोंकी सुरक्षा करो।

५३८।२ पुरंधीः जिगृतं— नगरधारक बुद्धि जगाओ। सार्वजनिक हित करनेकी बुद्धि जाग्रत करो। विधायक बुद्धि धारण करो।

५६८।१ धीषु नः अविष्टं— बुद्धिके कर्मोंमें हमें सुरक्षित रखो।

६८४।१ अरक्षसं मनीषां पुनीषे— राक्षस भावसे रहित बुद्धिको पवित्र करो।

७०४ शुन्ध्युवं प्रेष्ठां मतिं प्रभरस्व— शुद्ध करनेवाली श्रेष्ठ बुद्धिको भर दो परिपुष्ट कर दो।

बुद्धि संकटोंसे पार करनेवाली हो, संकटोंके समय भ्रांत न हो जाय। प्रशंसा करने योग्य बुद्धि हो, बलिष्ठ वीर्यवती मनन करनेमें समर्थ दिव्य सामर्थ्यसे युक्त बुद्धि हो। विधायक बुद्धि हो तथा सर्वजनोंका हित करनेवाली बुद्धि हो। बुद्धिमें राक्षसी और आसुरीभाव न हों। अत्यंत इष्ट मति हो अनिष्ट विचार उसमें न आवें। यह बुद्धिका वर्णन देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि इन मंत्रोंमें बुद्धिकी शक्तिके विषयमें कितना सूक्ष्म विचार भरा है।

सज्जनोंके साथ रहनेसे, उत्तम गुरुके पास रहनेसे, सुविद्याके संस्कार होनेसे, स्वयं पवित्रता और शुद्धता धारण करनेसे बुद्धि अच्छी सूक्ष्म होती है। इस समयतक क्रमसे जो प्रकरण आये हैं और उनमें जो मार्ग दर्शन हुआ है, उस प्रकार करनेसे उत्तम विशाल प्रभावी बुद्धि प्राप्त हो सकती है।

बुद्धिमें सद्भावना चाहिये, दिव्यता चाहिये शुद्धता चाहिये, कार्यक्षमता चाहिये, अत्यंत कठिन प्रसंगमें भी उसमें डर उत्पन्न होना नहीं चाहिये। जितना भयानक अवसर प्राप्त हो, उतनी क्षमता बुद्धिमें चाहिये, क्योंकि अपना संरक्षण (स्वस्तिभिः पात) प्रशस्त संरक्षणके साधनोंसे होना चाहिये। ऐसी बुद्धि होनी चाहिये कि जिससे यह सब सहजहीसे हो सके।

ज्ञान

२०८ तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि— तुम्हारे लिये ये ज्ञानके सूक्त मैं शक्ति वर्धनके लिये करता हूं।

२४३१२ ब्रह्मकृतिं अविष्ठः— ज्ञानपूर्वक की हुई कृतिका संरक्षण कर।

२४५ हे ब्रह्मन् वीर! ब्रह्मकृतिं जुषाणः— हे ज्ञानी वीर! ज्ञान पूर्वक कृतिका तू सेवन कर।

२४७ येषां पूर्वेषां ऋषीणां अशृणोः, ते पुरुष्या आसन्— जिन पूर्व ऋषियोंका स्तोत्र तुमने सुन लिया था, वे ऋषि मानवोंका हित करनेवाले थे।

३४७ ऋतस्य सदनात् ब्रह्म प्र पतु— सत्यके केन्द्रसे ज्ञान फैले।

इन मंत्रोंमें (ब्रह्माणि वर्धनानि) ज्ञानके सूक्त शक्तिका संवर्धन करनेवाले होते हैं, इसलिये (ब्रह्म-कृतिं अविष्ठः) ज्ञानकी कृतिका संरक्षण करो। क्योंकि (ऋषयः पुरुष्याः) जो ऋषि हैं वे सब मानवोंका हित करनेवाले होते हैं, इसलिये (ब्रह्मकृतिं जुषाणः) उनकी जो ज्ञानकी कृति स्तोत्र रूप होती है, उसका आदर करना योग्य है। इसका कारण यह है कि, इस ज्ञानसे ही सब मानवोंका हित होनेवाला है। यह ज्ञान (ऋतस्य सदनात्) सत्य यज्ञके स्थानसे फैलता है, विश्वमें चारों ओर जाता है और वहां इस ज्ञानसे सबका कल्याण होता है। इसलिये यह ज्ञान सबको आदरके योग्य है। ऐसा यह ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य स्वयं ज्ञानी बने। जो ज्ञानी होगा वही वंदनीय होता है।

ज्ञानीका आदर

२४।१ महः सुवितस्य विद्वान्— बडे कल्याणका मार्ग जो जानता है वह ज्ञानी है।

८८।२ मन्द्रः दमूनाः विशां राम्याणां तमः तिरः ददृशे— आनंदित तथा मनका संयम करनेवाला ज्ञानी वीर प्रजाजनोंके लिये रात्रियोंका अन्धेरा दूर करता है। सबके लिये प्रकाश करता है। ज्ञानी अज्ञान दूर करके अपने ज्ञानसे सबको मार्ग दर्शन करता है। सूर्य वा अग्नि जैसा अन्धेरा दूर करता है वैसा ज्ञानी अज्ञान दूर करें।

८९ अमूरः कविः अदितिः विवस्वान् सुसंसत् मित्रः अतिथिः चित्रभानुः शिव उषसां अग्रे भाति— ज्ञानी दूरदर्शी अदीन-उत्साही, तेजस्वी, उत्तम साथी मित्र पूज्य प्रभावी हमारे लिये कल्याणकारी ऐसा ज्ञानी उषःकालके पहिले ही जागता है।

९४ उशिजः यज्ञं मन्म च तन्वानाः, घनिष्ठः विद्वान् देवयात्रा वि आ द्रवत्— सुखकी इच्छा करनेवाला विद्वान् प्रशस्त कर्म और सुविचारोंका प्रचार करता है, यही दानशील विद्वान् देवत्व प्राप्तिकी इच्छासे विशेष प्रगति करता है। विशेष प्रयत्न करता है।

१७७।४ सूरिषु प्रियासः स्याम— विद्वानोंमें हम अधिक प्रिय हों। हम अधिक ज्ञानी हों और हम विद्वानोंमें प्रिय हों।

४०८ विश्वे महिषाः अमूराः शृण्वन्तु— सब बलवान् ज्ञानी सबका सुनें। ज्ञानी शक्तिशाली हों और वे सबका सुनें और उनको योग्य उपदेश दें।

५१६।१ ऋतावा दीर्घश्रुत् विप्रः— सत्यनिष्ठ बहुश्रुत ज्ञानी होता है।

इन वेद वचनोंमें ज्ञानीका वर्णन है। ये वचन मनन पूर्वक देखने योग्य हैं। (सूरिभ्यः बृहन्त रयिं आवह) ज्ञानियोंको धन दो, पर्याप्त दक्षिणा दो। यह आदेश है। ज्ञानी लोग विचारे मांगेंगे नहीं, चुप बैठेंगे; इसलिये उनको भूखा रहना पडेगा। इसलिये यह सूचना दी है कि उनकी आजीविकाका प्रबंध करो। ज्ञानियोंके घरमें विद्यार्थी पढनेके लिये आते हैं, अतः ज्ञानीयोंका सब समय पढाईमें जाता है,

वे धन किस तरह कमा सकते हैं ? इस कारण उनको घर बैठे ही धन मिलना चाहिये । ये ज्ञानी (महः सुवितस्य विद्वान्) बडी सुविधाका प्रबंध करनेका ज्ञान रखते हैं । ज्ञानी निश्चिंत हुए तो वे उपदेश द्वारा सबके कल्याणका मार्ग सबको बता सकते हैं । इसलिये उनको धन मिलना चाहिये अर्थात् आजीविकाकी तंगी उनको न सतावे, इतना प्रबंध होना चाहिये ।

(अमृतः सहस्वः प्रचेताः कविः अकविषु मर्तेषु निधायि) अमरबलसे युक्त विशेष बुद्धिमान् ज्ञानी अज्ञानी मानवोंमें अपना ज्ञान रखता है और उनको सज्ञान करता है । समाजमें वा राष्ट्रमें ज्ञानीका यह कार्य है । अज्ञानीयोंको ज्ञानी बनाना । यह कार्य महत्त्वपूर्ण कार्य है, इसलिये ज्ञानीको धन देना चाहिये और उसका आदर करना चाहिये ।

(कवितमः पावकः) अत्यंत ज्ञानी जो होता है वह पवित्र करनेवाला होता है । बाह्य आभ्यंतर शुद्धता वह करता है । अपवित्र भाव कहीं भी रहने नहीं देता । पवित्र करके उन्नतिको पहुंचा देता है । (केतुं दधाति) अज्ञानियोंको वह ज्ञान देता है । ज्ञान ही पवित्रता करनेका उत्तम साधन है । (मन्द्रः विशां तमः तिरः ददृशे) यह सदा प्रसन्न रहनेवाला ज्ञानी प्रजा जनोंके अज्ञानको दूर कर देता है । सदुपदेश द्वारा वह सबको ज्ञान देता है ।

ज्ञानी कैसा होता है देखिये । (अमूरः कविः) वह मूढता रहित होता है, कवि अर्थात् क्रांतदर्शी, दूरदर्शी होता है, (अदितिः=अदीनः) दीनता उसके पास नहीं होती तथा (अदितिः=अदनात्) अन्न उत्पन्न करनेकी आयोजना यशस्वी करता है । (विवस्वान्) सूर्यके समान तेजस्वी होता है, (सुसंसत् मित्रः) उसकी संगतिमें रहने योग्य है, वह उत्तम साथी होता है, हित करनेवाला मित्र होता है, (अतिथिः=अतति) जो उपदेश करता हुआ सतत भ्रमण करता है, भ्रमण करके जनताको सदुपदेश देता है, (शिवः) कल्याण करनेवाले उपदेश देता है कल्याण करनेका मार्ग बताता है । ये पद ज्ञानी कैसा होता है, क्या करता है और उसको क्या करना चाहिये इस विषयका वर्णन करते हैं । इसका मनन करनेसे ज्ञानीके सामाजिक कर्तव्योंका बोध प्राप्त हो सकता है ।

(ब्रह्मणे गातुं विंद) ज्ञानके प्रसारका मार्ग वह जानता है और वैसा ज्ञानका प्रसार वह करता है । (सूरिभ्यः सुदिना) ज्ञानियोंके लिये उत्तम दिन प्रकाशित होते हैं क्योंकि उनके ज्ञानसे दुरवस्था दूर होती है और उन्नतिका मार्ग उनके लिये सुगम होता है । इसलिये (सूरयः प्रियासः) ज्ञानी प्रिय होते हैं सबको उचित है कि वे ज्ञानियोंके साथ प्रेमका व्यवहार करें और उनको प्रसन्न रखें ।

(ऋतावा दीर्घश्रुत् विप्रः) सन्मार्गसे जानेवाला जो बहुश्रुत होता है उसको विप्र कहते हैं । (सत्य-मन्त्राः) इनके विचार सत्य होते हैं, असत् विचार वे अपने पास नहीं रखते । ऐसे ज्ञानी (गुह्या पदा प्रवोचत्) गुह्य विद्याका उपदेश करता है, सबको गुप्तज्ञान देता है और विद्वान् बना देता है । (विद्वान् विप्रः मेधिराय युगाय शिक्षन्) उक्त प्रकारका विद्वान् ज्ञानी बुद्धिमान शिष्यको उपदेश देकर ज्ञान देता है । धारणा शक्तिवाला शिष्य हुआ तो ही वह उत्तम गुरुसे उत्तम विद्या प्राप्त करता है । जो बुद्धिहीन होता है वह गुरुके प्रयत्न करनेपर भी ज्ञानमें विशेष प्रगति नहीं कर सकता ।

इस तरह ज्ञानीके कर्तव्योंका वर्णन वसिष्ठके सूक्तोंमें हमें मिलता है । ज्ञानी बननेसे ही सब प्रकारका हित होनेकी संभावना है । यह अनुभव इन वचनोंमें टपकता है । ज्ञानके बिना मनुष्यका अभ्युदय या निःश्रेयस कुछ भी बनना नहीं है । इसलिये यावत् शक्य मनुष्यको ज्ञानीके पास रहकर ज्ञान विज्ञान प्राप्त करना चाहिये । यह इन वचनोंका तात्पर्य है ।

ज्ञानके साथ भक्ति

९२१५ वयं अदुवः मा— हम भक्तिहीन न हों ।

ज्ञानका महात्म्य इससे पूर्व वर्णन किया है । अब इस वचनमें कहते हैं कि हम भक्तिहीन न हों । ज्ञान और भक्तिका सामंजस्य होना चाहिये । इसका कारण यह है कि ज्ञान भक्तिके साथ न रहा तो नास्तिकता बढ जाती है और भक्ति ज्ञानके साथ न रही तो वह अन्धविश्वास बढाती है । इसलिये अविश्वास भी न बढे और अन्धविश्वास भी न बढे, ऐसा मध्यम मार्ग प्राप्त करनेके लिये ज्ञानसे आंखें भी खोल दी हैं और भक्तिसे हृदयकी सहृदयता भी सिद्ध की है । इस तरह यहां ज्ञान और भक्तिका समन्वय बताया है ।

समाजमें ज्ञानहीन भक्ति न बढे, ज्ञानहीन भक्ति बढनेसे लोग भोले बनेंगे, जिनको कोई आकर लूट सकेगा । इसी

तरह भक्तिहीन ज्ञान भी बुरा है जो नास्तिकता और भोगी जीवन बढाता है, इससे अश्रद्ध क्रूर राक्षस पैदा होते हैं इसलिये राष्ट्रमें ज्ञान सार्वत्रिक होना चाहिये और साथ साथ भक्ति भी चाहिये। प्रारंभसे ही ऐसा शिक्षा प्रबंध रहना चाहिये।

घुटने टेककर प्रार्थना

६६२ मितज्ञवः क्षेमस्य प्रसवे युवां हुवन्ते— घुटने जोडकर कल्याणके लिये तुम्हारी स्तुति करते हैं।

७५८ सरस्वती मितज्ञुभिः नमस्यै इयाना सुभगा दाग्रा युजा— घुटने टेककर प्रार्थना करनेवालोंसे सरस्वती भाग्यवान बनी है

यहां 'मितज्ञु, मितज्ञवः' पद हैं। घुटने जोडकर बैठना या घुटने टेककर बैठना और प्रार्थना करना ऐसा इसका भाव है। घुटने जोडकर वीरासन होता है और घुटने टेककर भी एक प्रकारका प्रार्थनासन बनता है। मध्यकालीन पद्धतिके अनुसार पुण्याहवाचन नामक कर्ममें एक ऐसा कर्म किया जाता है कि जिसमें यजमान घुटने टेककर ही बैठता है और वह कर्म करता है। 'अवनिकृत जानुः' ऐसे पद उक्त कर्मके समय बोलते हैं इसका अर्थ– घुटनोंसे भूमिको स्पर्श करके बैठना चाहिये। यही वीरासन या प्रार्थनासन होता है। इस समय ईसाई अथवा मुसलमान ऐसे बैठकर प्रार्थना करते हैं। पर ऐसे घुटने टेककर बहुत देरतक बैठा नहीं जाता। दस पंद्रह निमेष या ऐसा ही बैठना संभव है। अधिक बैठनेके लिये दूसरे ही स्वस्तिकासन, सुखासन, पद्मासन आदि आसन उपयोगी है।

जय विजय

२७५।३ तरणिः इज्जयति— जो स्वयं तैर जाता है, त्वरासे कर्म करता है, वह विजय प्राप्त करता है।

२७५।४ तरणिः इत् क्षेति— जो स्वयं तैरकर दुःखोंसे पार जाता है वह अपने घरमें आनंदसे रहता है। और पुष्यति पुष्ट होता है, बलिष्ट भी होता है।

२७५।६ कवत्नवे देवासः न— कुत्सित कर्म करनेवालेके लिये देव सहायता नहीं करते। अच्छा कर्म करनेसे देवसहायक होते हैं जिससे विजय मिलता है।

२७७ जिग्युषः धनं— विजयी वीरका ही धन होता है। यहां विजय किसका होता है उसका वर्णन 'तरणि' शब्दसे किया है। 'तरणि' नाम सूर्यका है, वह अन्धकारसे लडता है और उसका पराभव करके स्वयं विजयी होता है। तरणि उत्तम तैरनेवालेका नाम है। आकाश रूपी महासागरमें उत्तम रीतिसे तैरता है इसलिये सूर्य विजयी होता है। जो ऐसा दुःखों, संकटों और शत्रुओंसे पार होगा, इनको परास्त करेगा वही विजयी होगा और वही (क्षेति) यहां आनंदसे रह सकेगा। त्वरासे अपना कर्तव्य करना और शत्रुओंसे पार होना सोचमें डूबना नहीं, इतनी बातें हैं जिनसे विजय होता है। मनुष्यको विजय चाहिये और विजयसे भी मनुष्यको धन चाहिये। यह धन (जिग्युषः धनं) विजयी वीरको ही मिलता है। इसलिये धन चाहनेवाले मनुष्य वीर बने तथा दुःखोंसे पार होनेका पुरुषार्थ करें।

शरीरका संवर्धन

८४।२ हे सुजात ! स्वयं तन्वं वर्धस्व— हे कुलीन ! तू स्वयं अपने शरीरका संवर्धन कर। अपने शरीरको हृष्ट पुष्ट तथा बलवान् बनाओ।

१२७ ऊर्जः न-पात्— बलको कम न करनेवाला बन। इस जगत्में जय, यश या धन जो भी कमाना होगा, वह शरीर स्वस्थ तथा बलवान् होनेसे ही होगा। सब यशोंके लिये शरीरकी आवश्यकता है। बिना शरीर स्वस्थ रहे कुछ भी नहीं हो सकता। शरीरमें ऊर्ज, ओज, और बल रहना चाहिये। यह (स्वयं तन्वं वर्धस्व) स्वयं यत्न करो, स्वयं प्रयत्न करो तब हो सकता है। तुम्हारे लिये दूसरा कोई व्यायाम करे और अच्छा अन्न खाये, तो तुम्हारा शरीर हृष्टपुष्ट नहीं हो सकता, उसके प्रयत्नसे उनका शरीर स्वस्थ रहेगा। इसलिये मंत्रमें कहा है (स्वयं) स्वयं प्रयत्न करके शरीरको बढाओ। यह स्वकीय प्रयत्नसे सिद्ध होनेवाली बात है। विचार, उच्चार, आचार अच्छे रहनेसे शरीर अच्छा रहता है और शरीर बलवान् रहनेसे यश प्राप्त हो सकता है।

तेजस्विता

९३ वृषा शुचिः धियः हिन्वति, भासा आभाति, पृथु पाजः अश्रेत्— बलवान् पवित्र वीर अपनी बुद्धियों द्वारा शुभ कर्मोंको करता है, अपने तेजसे प्रकाशता है, और बहुत बल या सामर्थ्य प्राप्त करता है।

९४।१ वस्तोः स्वः न अरोचि— दिनके समय जैसा सूर्य प्रकाशता है वैसा प्रकाशित हो जाओ।

१०७।१ त्वं शोचिषा शोशुचानः रोदसी आपृणः— तू तेजस्वी होकर अपने तेजसे विश्वको परिपूर्ण कर दो।

२९.१।२ अस्मिन् यामनि जीवाः ज्योतिः अशीमहि इसी समयमें हम सब जीव, मनुष्य तेजस्विता प्राप्त करना चाहते हैं।

५२२।१ सूर्यः बृहत् पुरु अर्चींषि अश्रेत्— सूर्य बहुत बडे तेजोंको प्राप्त करता है, वैसा तुम तेजस्वी बनो।

५२२।२ सूर्यः मानुषाणां विश्वा जनिमा ददृशे — सूर्य मनुष्योंके सब जन्म देखता है।

५२२।३ दिवा रोचमानः समः ददृशे— दिनके समय प्रकाशता है और सबको समान दीखता है।

बल, शुचिता और बुद्धि होनेसे तेजस्विता मनुष्यमें रहती है। (वृषा शुचिः धियः मा.) ये चार शब्द मननीय हैं। बल, पवित्रता, बुद्धि और तेजस्विता मनुष्यको अपने अन्दर धारण करनी चाहिये। शारीरिक बल, अन्तर्बाह्य पवित्रता, बुद्धियाँ और तेजस्विता मनुष्यको अपने अन्दर बढानी चाहिये। इसके लिये (पृथु पाजः) बहुत पर्याप्त अन्न चाहिये, यह अन्न शुद्ध और पवित्र चाहिये।

सब मनुष्य चाहते हैं कि (जीवाः ज्योतिः अशीमहि) हम तेजस्विता प्राप्त करें। कोई ऐसा नहीं चाहता है कि मैं निस्तेज निर्वीर्य बनूं। परंतु ' अन्न बल, शुचिता, बुद्धि और पश्चात् तेजस्विता ' यह क्रम है। योग्य अन्न न मिला तो शरीरमें बल नहीं बढेगा, शुचिता न रही तो वह बल प्राप्त होनेपर भी टिकेगा नहीं, बुद्धि न रही तो बल प्राप्त होनेपर भी उससे अपनी उन्नति नहीं हो सकती। इस तरह ' अन्न, बल, पवित्रता, बुद्धि ' इनका योग्य साहचर्य मिला तो ही तेजस्विता प्राप्त होती है। यहां बुद्धिमें ज्ञान तथा विद्याका समावेश हुआ है।

(मानुषाणां विश्वा जनिमा ददृशे) मनुष्योंके सब जन्म-वृत्त देखो। इस इतिहासके मननसे पता लग जायगा कि किन दिव्य विभूतियोंने तेजस्विता प्राप्त की थी, वैसा बननेका यत्न करो। और जिन्होंने वैसा आचरण नहीं किया इस कारण जो अवनतिको प्राप्त हुए उनके मार्गसे न जाओ। तेजस्वी पुरुषही श्रेष्ठ होते हैं।

कीर्ति

५२६।२ अनु नः आश्रवयतं— लोगोंमें हमारी कीर्ति हो। लोगोंमें, राष्ट्रमें, समाजमें हमारा यश चारों ओर फैले। केवल इच्छा मात्रसे वह यश नहीं फैल सकता। ज्ञान, विज्ञान, संपन्नता जिसके पास होगी, जो शौर्य, वीर्य पराक्रममें विशेष प्रभावी होगा, जिसके पास बहुत धन होगा और जो उसका उपयोग दानमें करता जायगा; जनताके कल्याणके कार्य जो करता रहेगा, जो शिल्पी होगा और अप्रतिम कुशल होगा, उसका यश फैलता है। चारों दिशाओंमें ऐसे मनुष्योंकी कीर्ति गाते हैं।

जिन्होंने जनहितके महान महान कार्य किये हैं, उनकाही यश गाया गया है। जो जनताका अहित करते हैं, जो आत्म-भोगके लिये दूसरोंको कष्ट देते हैं। उनका नाम भी कोई नहीं लेता। प्रत्येक मनुष्य यश और कीर्ति तो चाहते हैं, परंतु जनहित करनेके लिये आत्म समर्पण नहीं करते उनका यश कैसे फैलेगा? इसलिये मनुष्य कीर्ति चाहें और उसके लिये आवश्यक आत्म यज्ञ भी करें।

सौंदर्यकी इच्छा

५२१४ वयं अप्सवः मा— हम सौंदर्यहीन न हों। अर्थात् हम सुन्दर बने, अपनी सुंदरता बढावें।

१४७ पिशा अस्मान् अभिशिशीहि— सौंदर्यसे हमें युक्त करो।

सब लोग सुंदरता चाहते हैं। (वयं अ-प्सवः मा) हम कुरूप न बनें। हमारी सुंदरता बढे। हम सुंदर दीखें। (पिशा अस्मान् अभिशिशीहि) सौंदर्यसे हम सुंदर दीखें। ऐसी इच्छा मनुष्यकी रहती है। परमेश्वर (सु-रूप-कृत्नु। ऋ०) सुंदर रूप बनानेवाला है। जो सुंदरता इस विश्वमें दीखती है वह परमेश्वर बनाता है। प्रत्येक रूपमें जो आक-र्षकता है वह ईश्वरसे प्राप्त है। विश्वभरमें सौंदर्य ओतप्रोत भरा है। आकाशमें सूर्य चन्द्र नक्षत्रका सौंदर्य, पृथ्वीपर पर्वत, नदियां, वृक्ष, वनस्पति, फूलपत्तों आदिकी सुंदरता अपूर्व है। प्रत्येक फूल पत्ता, तृण, वनस्पति आदि सबमें सौंदर्य है। इस विश्वमें सुन्दर नहीं ऐसा कोई पदार्थ नहीं है। चारों ओर सब वस्तुएं सज धज कर सुन्दर बनकर ऊपर आ रही है, ऐसे सुंदर विश्वमें कोई मनुष्य आना चाहे तो वह सुंदर बनकरही आ जावे। अपनी सुंदरता बढानेका यत्न करना मनुष्यको योग्य है। विश्व परमेश्वरका रूप है अतः वह सुंदर है, उसमें सुंदर बनकरही आना चाहिये। वस्त्र, अलंकार, पुष्पमाला आदि धारण करके मनुष्य अपनी

सुंदरता बढावे और वह यज्ञादि समारंभ जहां होते हैं वहां जाय।

मं० ६१४-१५ ये मंत्र उषाका वर्णन करते हुए तरुण स्त्रीका वर्णन करते हैं। तरुण स्त्री किस तरह बर्ताव करे यह उपदेश उषाके मंत्रोंसे विदित हो सकता है। इसलिये यहां उषाके कुछ मंत्र देखिये—

उषा

६२९।१ सूर्यस्य प्राचीना उदिता बहुलानि अहानि आसन्— सूर्यके पूर्व उदित बहुत दिन थे। सूर्यके उदय होनेके पूर्व बहुत दिन उषःकालके जाते हैं।

६२९।२ उषा जारः इव पर्याचरन्ती, यतीव न— उषा जारकी सेवा करनेके समान पतिसेवा करती है, संन्यासिनीके समान पतिके विषयमें उदास नहीं रहती।

६३२ गवां नेत्री वाजपत्नी— गौओंको चलानेवाली उषा अन्न पकाती है।

सूर्यका उदय होनेके पूर्व (बहुलानि अहानि आसन्) बहुत दिन होते हैं। इन दिनोंमें उषःकालही होता है और सूर्य दर्शन नहीं होता है। उत्तर ध्रुवके पास ऐसी स्थिति है। ३० दिन तक वहां उषःकाल ही रहता है और पश्चात् सूर्यका उदय होता है। इस तरह उदित हुआ सूर्य छः मासतक ऊपरही रहता है। यहां सूर्यके उदय होनेके पूर्व उषा उठती है। इससे पतिके पूर्व प्रातःकाल पत्नीको उठना चाहिये यह बोध मिलता है।

उषा उठकर गौओंकी सेवा करती है, अन्नपानका प्रबंध करती है, वैसा स्त्री उठे, गौओंसे दूध निकाले और प्रातः-कालके उपहारका प्रबंध करे। जैसी जारिणी अपने जारकी सेवा करती है वैसी प्रत्येक स्त्री अपने पतिकी सेवा करे, संन्यासिनी जैसी पतिके विमुख न होवे। यद्यपि जारिणीकी उपमा हीन है तथापि सेवाकी तत्परताकी दृष्टिसे वह उत्तम है। तत्परताही यहां देखनी है बाकी बातें लेनी या देखनी नहीं है।

धनवाली स्त्री

२१ मघोनी योषणे नः सुविताय आश्रयेतां- धन-वाली दो स्त्रियोंका हमारी सुविधाके लिये हम आश्रय करें। यहां स्त्रियां भी धनवाली होती हैं और वे लोगोंको आश्रय देती हैं। ऐसा कहा हैं।

१४७ जनिभिः राजा— अनेक स्त्रियोंके साथ राजा रहता है।

६२० मानुषी देवी मर्तेषु अवस्युं धेहि— हे मनुष्योंमें देवि उषा! मानवोंमें संरक्षक संतान दे।

६२३।२ (स्त्री) ऋषिस्तुता— ऋषियोंद्वारा प्रशंसित स्त्री हो।

६२३।३ मघोनी वसूनां ईशे— धनवती स्त्री धनोंपर स्वामित्व करती है।

६२४ शुभ्रा विश्वपिशा रथेन याति- शुभ्र उषा सबसे तेजस्वी रथसे जाती है।

६२५ विधते जनाय रत्नं दधाति— प्रयत्नशील मनुष्यको उषा धन देती है।

स्त्री ऐसी विदुषी हो कि वह धनकी स्वामिनी बन कर रहे। स्त्रीके पास धन हो या न हो इस विषयमें आजके लोग संदेह करते हैं। इस विषयमें वेदने निर्णय दिया है कि (मघोनी योषणे) स्त्री धनवाली हो, स्त्रीके अधिकारमें धन रहे। (मघोनी वसूनां ईशे) धनवाली स्त्री धनोंपर अधिकार चलावे। इस तरह स्त्री धनकी स्वामिनी होती है और उसके अधिकारमें नाना प्रकारके धन होते हैं।

स्त्री (ऋषि-स्तुता) ऋषियों द्वारा प्रशंसित होने योग्य हो। ऐसी विदुषी और ऐसी कर्तृत्व शालिनी हो कि सब विद्वान् उसकी प्रशंसा करें। ऐसी धनवती स्त्री (विधते जनाय रत्नं दधाति) प्रयत्नशील मनुष्यको वह रत्न देती है, धन देती है। (शुभ्रा विश्वपिशा रथेन याति) श्वेत वस्त्र पहनकर वह सुंदर रथमें बैठकर बाहर जाती है।

यह विदुषी स्त्री (मानुषी देवी) मनुष्योंके घरमें देवीके समान पूज्य होकर रहती है और (अवस्युं दधाति) संरक्षक वीर पुत्र उत्पन्न करती है। विदुषी स्त्रीके अंदर विद्वान् सुयोग्य पतिके द्वारा उत्तम वीर संतान उत्पन्न होते हैं।

(जनिभिः राजा) स्त्रियोंके साथ राजा रहता है, इस वेदवचनसे ऐसा प्रतीत होता है कि राजा लोग अनेक स्त्रियां भी करते हैं। एक पुरुषकी एक स्त्री यह नियम होगा, परंतु कई प्रसंगमें एक पुरुषको अनेक स्त्रियां करनेका भी अधिकार होगा। दशरथकी अनेक स्त्रियां थी, चन्द्रकी अनेक स्त्रियोंका आलंकारिक वर्णन है। इस तरह अनेक स्त्रियां भी होनेके

भी वर्णन हैं। विचार करना चाहिये कि इन दोनों प्रकारके वचनोंकी संगति किस तरह लगानी है।

अपना घर।

११।३ नृणां मा निषदाम— दूसरोंके घरमें हम न रहें। हम अपने घरमें रहें। रहनेका घर अपना हो।

१०३।१ स्वे दुरोणे समिद्धः दीदाय— अपने घरमें प्रदीप्त होकर तेजस्वी बन। अपने स्थानमें जागते हुए प्रकाशित हो। अग्नि अपने वेदीरूप घरमें रहकर प्रदीप्त होता है वैसा मनुष्य अपने घरमें रहे और प्रकाशित होवे।

१७८।२ सखायः प्रियासः नरः शरणे मदेम— हम सब एक कार्य करनेवाले, परस्पर प्रीति करनेवाले नेता, अग्रगामी होकर अपने घरमें आनंदसे रहेंगे।

३६१।२ नः अस्तं सुवीरं रयिं पृक्षः— हमारा घर उत्तम वीर संतानसे युक्त हो और धन तथा अन्नसे भरपूर हो।

३६२ मर्ताः यं अस्ववेशं कृण्वन्तः— मनुष्य उसको अपने निज घरमें रहने नहीं देते। उसको सब बुलाते हैं।

दूसरेके घरमें नहीं रहेंगे

यहां कहा है कि (नृणां मा निषदाम) दूसरोंके घरमें न रहें। दूसरोंके घरमें रहनेकी आपत्ति हमपर न आवे। हम अपने घरमें रहें। मनुष्योंकी प्राप्ति जहां नहीं होती वहां हम न रहें। जहां मानवोंका आना जाना होता है ऐसे स्थानपर हम रहें, क्योंकि हमें मानवोंमें संघटना करना है। अतः जहां मानव न होंगे वहां रहकर हमें करना क्या है?

(स्वे दुरोणे समिद्धः) अपने निजके घरमें हम प्रकाशित होंगे, जैसा अग्नि अपने घरमें, वेदीमें रहता है और वहां प्रदीप्त होता है, वैसे हम अपने घरमें रहकर प्रकाशित होते रहेंगे, दूसरोंको सन्मार्ग दिखाते जांयगे।

(सखायः नरः शरणे मदेम) एक कार्य करनेवाले अर्थात् सुसंघटित होकर, नेता अग्रणी बनकर हम अपने घरमें आनन्द प्राप्त करेंगे और अपने अनुयायियोंको भी आनन्द प्राप्तिका मार्ग बतायेंगे।

(नः अस्तं सुवीरं रयिं पृक्षः) हमारा घर उत्तम वीर संतानों-पुत्र पौत्रोंसे, धनसे और अन्नसे भरपूर हो। किसी प्रकारकी न्यूनता न हो। वीर पुत्रोंसे युक्त घरमें हम रहेंगे।

मिट्टीके घरमें नहीं रहेंगे

(७११ अहं मृन्मयं गृहं मो, गमं सु)- मैं मिट्टीकी झोपडीमें नहीं रहूंगा, परन्तु सुन्दर पक्के घरमें मैं निवास करूंगा। जो समझते हैं कि ऋषि कौन मिट्टीके घरोंमें रहते हैं और वैदिक सभ्यता हमें मिट्टीके झोपडीमें रहना सिखाती है, वे इस मंत्रको देखें और समझें कि वसिष्ठ ऋषि तो कहते हैं कि मैं मिट्टीके घरमें नहीं रहूंगा। परन्तु सुन्दर पक्के घरमें रहूंगा। यह ठीक भी है क्योंकि वसिष्ठ ऋषिके गुरुकुलमें हजारों छात्र पढते थे, वे सब मिट्टीकी झोपडीमें किस तरह रह सकेंगे।

हजार द्वारोंवाला घर

आगे वे ही कहते हैं कि (७०८ बृहन्तं मानं सहस्रद्वारं गृहं जगम) बडे विशाल आकारवाले हजार द्वार जिसमें हैं ऐसे घरमें जाकर हम निवास करेंगे। (६१७ ध्रुवं छर्दिः) स्थिर टिकनेवाला घर हो। आज तैयार किया, जोरसे हवा आयी, नदीका प्रवाह बढ गया और वह घर बह गया, तो वसिष्ठ ऋषिके गुरुकुलका-कि जहां सहस्रों छात्र पढते थे— क्या बनेगा। इसलिये पक्के मकानोंमें रहना ही योग्य है। ' बृहन्तं मानं सहस्रद्वारं ' बडे विशाल परिणामवाला घर हो जिसको हजार द्वार हैं ऐसा विशाल घर हो। जहां हजारों छात्रोंको पढना है वहां हजार द्वारोंवालाही घर होना चाहिये। एक एक कमरेके लिये दो तीन द्वार रहे तो ३००।४०० कमरेवाला तो यह घर होगाही। ऐसे घरोंमें रहनेका इच्छा करना योग्य है। सहस्रों छात्रोंके साथ रहनेवाले ऋषि ऐसे ही विशाल मकानोंमें रहते होंगे, इसमें संदेह नहीं हो सकता।

घरोंका संरक्षण

१३४ द्रुहः निदः त्रायस्व।

५४८ क्षयः सुप्रावीः अस्तु।

' निंदकोंसे और द्रोहियोंसे घरका संरक्षण कर। घर सुरक्षित हो। ' उस घरपर कोई हमला न करे चोर लुटेरे डाकू उस घरको कष्ट न पहुंचा सकें। ऐसा सुरक्षित घर हो।

यशस्वी घर हो

(१६४ दीर्घश्रुत् शर्म) अत्यंत कीर्तिसे युक्त घर हो। यशस्वी घर हो। जिसकी कीर्ति सुनकर लोग उसकी ओर आकृष्ट होते हों ऐसा घर हो।

(४१४ क्षयेण चेतति) घरसे उत्तेजना मिले, घर देखनेसे उत्साह बढ जाय ऐसा घर हो। घर देखनेसे सब उत्साह दूर हो ऐसा घर न हो।

मंत्र १९२ कहा है कि 'घोडे गौवें तथा बालबच्चे घरके चारों ओर घूमें, उषःकालके सूर्य किरण (सदं उच्छन्तु) घरको प्रकाशित करें ऐसा घर हो।

(५७२ इरावत् वर्तिः) घर धनधान्यसे संपन्न हो। दरिद्रता दुःख हानि घरके पास न आवे। ऐसे घर मनुष्यके हों। मनुष्य ऐसे उत्तम घरमें रहें और आनन्द प्रसन्न हों, घर बालबच्चे, पुत्रपौत्रसे युक्त हों और ऐश्वर्यसे संपन्न हों।

उत्तम पुत्र

११।१ शूने मा निषदाम— संतानरहित घरमें हम न रहें।

११।२ नृणां अशेषसः अवीरता मा— मनुष्योंको संतान-हीनता और अवीरता न प्राप्त हो।

११।४ प्रजावतीषु दुर्यासु परि निषदाम— पुत्रपौत्रोंसे युक्त घरोंमें हम रहें।

१२ यं अश्वी नित्यं उपयाति, प्रजावन्तं स्वपत्यं स्वजन्मना शेषसा वावृधानं क्षयं नः धेहि— जिस घरके पास घोडेपर बैठे वीर नित्य आते हैं, वैसा सन्तानवाला उत्तम पुत्रोंवाला औरस संतानोंसे बढनेवाला अपना निवास स्थान हो।

१४ वाजी वीळुपाणिः सहस्रपाथः तनयः अक्षरा समेति— बलवान शस्त्रधारी सहस्रों धनोंसे युक्त पुत्र ज्ञानोंको प्राप्त करता है। पुत्र ज्ञानी भी हो और वीर तथा धनवान् भी हो।

१५।३ सुजातासः वीराः परिचरन्ति— उत्तम कुलीन वीरपुत्र ईश्वरकी पूजा करते हैं। वीर ईश्वरकी भक्ति करें।

२१।१ तनये मा आधक्— हमारा पुत्र न मरे।

२१।२ नर्यः वीरः अस्मत् मा विदासीत्— मानवोंका हित करनेवाला पुत्र हमसे दूर न हो।

२१।३ सुहवः रण्वसंदृक् सहसः सूनुः— प्रेमसे बुलाने योग्य रमणीय और बलवान् पुत्र हो।

३४ तत् तुरीयं पोषयित्नु विष्यस्व, यतः कर्मण्यः सुदक्षः देवकामः वीरः जायते— वह सत्वर पोषण करनेवाला वीर्य हमें दो, कि जिससे कर्ममें कुशल, उत्तम दक्ष और ईश्वर भक्ति करनेवाला वीरपुत्र उत्पन्न होता है। पुरुषका वीर्य उत्तम निर्दोष हुआ तो संतान उत्तम होती है, इसलिये पुत्रकी कामना करनेवाले लोग अपना वीर्य उत्तम प्रभावशाली बनानेका यत्न करें।

३६ सुपुत्रा अदितिः बर्हिः आस्ताम्— जिसके उत्तम तेजस्वी पुत्र हैं वह माता अदिति यहां आसनपर बैठे। सुपुत्रोंकी माताका सब सत्कार करें।

४५।२ मात्रोः सुक्रतुः पावकः देवयज्याय आजनिष्ठ— मातापितासे उत्तम कर्म करनेवाला पवित्र पुत्र दिव्य कर्म करनेके लिये ही उत्पन्न होता है। ऐसा ही दो अरणियोंसे अग्नि यज्ञ करनेके लिये उत्पन्न होता है।

५२।३ वयं अवीराः मा— हम निर्वीर्य न बनें, हम पुत्र हीन न बनें।

५३।२ अन्यजातं शेषः नास्ति— दूसरेका पुत्र अपना औरस पुत्र नहीं हो सकता, औरस पुत्रकी योग्यता दत्तक पुत्रको नहीं हो सकती।

५४।१ अन्योदर्यः सुशेवः अरणः ग्रभाय नहि— दूसरेका पुत्र उत्तम सेवा करनेवाला, अपने पास आनेवाला होनेपर भी औरस पुत्रके समान ग्रहण करने योग्य नहीं होता।

५४।२ अन्योदर्यः मनसा मन्तवै नहि— दूसरेका पुत्र मनसे अपने औरस पुत्रके समान मानने योग्य नहीं होता।

५४।३ सः (अन्योदर्यः) ओकः एति— वह दूसरेका पुत्र अपने मातापिताके घरही जायगा। उसका मन इधर नहीं लगेगा।

५४।४ नव्यः वाजी अभीषाट् नः एतु— नवीन बलवान् और शत्रुका पराभव करनेवाला औरस पुत्र हमें उत्पन्न हो।

१८६।१ वृषा वृषणं रणाय जजान— बलवान् पिताने बलवान् पुत्रको युद्ध करके शत्रुनाश करनेके लिये निर्माण किया है।

१८६।२ नारी नर्यं ससूव— स्त्री मानवोंका हित करनेवाला पुत्र उत्पन्न करे। मनुष्यका यह ध्येय रहे।

१८६।३ यः नृभ्यः सेनानीः प्र अस्ति— जो मानवों का हित करनेवाला तथा सेनाका संचालन करनेवाला प्रभावी नेता हो सकता है ऐसा पुत्र मातापिता उत्पन्न करें।

१८६।४ स इनः सत्वा गवेषणः धृष्णुः— वह पुत्र स्वामी, सत्ववान्, गौओंकी खोज करनेवाला तथा शत्रुका धर्षण करनेवाला हो।

२१५ जरित्रे शुष्मिणं तुविराधसं— ज्ञानीको बलवान् कलाओंमें प्रवीण पुत्र हो।

२२७।१ वृषणं शुष्मं वीरं दधत्— हमें बलवान् और सामर्थ्यवान् पुत्र चाहिये।

२२०।२ हर्यश्वः सुशिप्रः— पुत्र शीघ्रगामी घोडे और उत्तम कवच धारण करनेवाला हो।

२२०।३ विश्वाभिः ऊतिभिः सजोषाः स्थविरेभिः परीवृजत्— वह वीर पुत्र सब प्रकारके संरक्षक साधनोंसे युक्त, उत्साही और निपुणोंके साथ रहे और शत्रुओंको दूर करे।

२२१।४ नः श्रोमतं अधिधाः— हमें धन कमानेवाला पुत्र चाहिये।

२३० पुत्राः पितरं न सबाधः समान दक्षाः अवसे हवन्ते— पुत्र जैसे पिताको बुलाते हैं, उस तरह इकट्ठे मिले समान भावसे दक्ष रहनेवाले वीर अपनी सुरक्षाके लिये इन्द्रको बुलाते हैं।

३२६ सुपाणिः त्वष्टा पत्नीः वीरान् दधातु— निर्माता प्रभु हमारी पत्नियोंमें उत्तम वीर निर्माण करे।

४०१ विभृतासः पुत्रासः मातरं— भरण पोषण होनेवाले पुत्र माताकी गोदमें बैठते हैं।

४४३ पिता पुत्रान् इव नः जुषस्व— पिता पुत्रोंका पालन करता है वैसा तुम हमारा पालन कर।

५१०।२ तस्मिन् तोकं तनयं दधानाः— उस शुभ कर्ममें हम अपने बालबच्चोंको रखेंगे, प्रवीण बनायेंगे।

५६३।३ सूनुः पितरा न विवक्मि— पुत्र पिताके साथ जैसा बोलता है, वैसा मैं बोलता हूँ।

५६८।३ तोके तनये तूतुजानाः— बालबच्चोंके लिये त्वरा करो।

७६४ जनीयन्तः पुत्रीयन्तः सुदानवः अग्रवः— स्त्रीवाले पुत्र चाहनेवाले दाता अग्रेसर हों।

संतानोंसे भरे हुए घर हों

घरका भूषण संतान है। जिसमें बालबच्चे हैं ऐसा घर हो। (११ शूने मा निषदाम) हम संतान रहित घरमें नहीं रहेंगे। हम ऐसे घरमें रहेंगे कि जिस घरमें बाल बच्चे बहुत हों। बाल बच्चोंसे शून्य घरमें रहनेका दुर्भाग्य हमें कदापि प्राप्त न हो। (११ प्रजावतीषु दुर्यासु परि निषदाम) जिस घरमें बाल बच्चे बहुत हैं उस घरमें हम रहेंगे। (११ नृणां अशेपसः मा) मनुष्योंके दैवमें पुत्रहीनता न हो। पुत्र हीनता बडी बुरी अवस्था है। यह महादुर्दैव है। पुत्र-हीनता हमें कदापि प्राप्त न हो। (१२ प्रजावन्तं स्वपत्यं स्वजन्मना शेपसा वावृधानं क्षयं नः धेहि) बालबच्चोंसे भरा, अपने निज संतानोंसे परिपूर्ण, औरस पुत्रोंसे बढनेवाला घर हमें मिले। हमारे घरमें औरस पुत्र पौत्र तथा प्रपौत्र हों। पुत्र पौत्रोंसे हमारा घर भरा हो। (५२ वयं अवीरा मा) हम कभी वीर संतानसे रहित न हों अर्थात् हमें सन्तान हों और वीर सन्तान हों।

दत्तक पुत्र नहीं चाहिये

दत्तक पुत्रकी निंदा वसिष्ठ मंत्रोंमें दीखती है। (५३ अन्यजातं शेषः नास्ति) दूसरेका गोदमें लिया दत्तक पुत्र औरस संतानकी योग्यता नहीं पा सकता। औरस संतानका मूल्य कुछ और ही है।

५४ अन्योदर्यः सुशेवः अरणः ग्रभाय नहि।

दूसरेके पेटसे जन्मा उत्तम सेवा करनेवाला, प्रेमसे पास आनेवाला होनेपर भी वह औरसपुत्र जैसा स्वीकारके योग्य नहीं होता! वह (अ-रणः) न लडनेवाला भी हुआ तो भी वह औरस जैसा नहीं समझा जायगा। जो दूसरेका पुत्र है वह दूसरेकाही रहेगा और जो अपना होगा वह अपनाही रहेगा। इसलिये दत्तक पुत्र लेनेका दुर्दैव हमारे नसीबमें न हो। हमारे पास अपना औरस वीर पुत्र हो। ऐसे सुपुत्रोंसे हमारा घर भरा रहे।

५४ अन्योदर्यः मनसा मन्तवै नहि।

'दूसरेका पुत्र दत्तक लेनेकी बात मनमेंभी लाने योग्य नहीं है।' वह दूसरेका पुत्र (५४ सः ओकः एति) अपने घर ही जायगा। अपने मातापिताओंके पास ही आकर्षित होगा। वह हमारे पास कदापि नहीं रहेगा। इस दत्तक पुत्र लेनेकी बात मनमें लाने योग्य भी नहीं है।

ज्ञानी वीर धनी पुत्र हो

केवल औरस सन्तान नहीं चाहिये, परंतु वह ज्ञानी वीर पुरुषार्थी विजयी धन प्राप्त करनेमें समर्थ ऐसा संतान हो—

१८ वाजी वीळुपाणी सहस्रपाथः तनयः
अक्षरा समेति।

बलवान्, शस्त्रधारी, सहस्रों मार्गोंसे धन कमानेवाला पुत्र ज्ञानी भी हो। पुत्र ऐसा सुलक्षणी होना चाहिये। (१५ सुजातासः वीराः परिचरन्ति) उत्तम कुलीन सुपुत्र जिस समय अपनी सेवा करनेके लिये तत्पर रहते हैं उस समय अपने घरका सच्चा आनंद मिल सकता है। इस तरह हम संसारसे आनंद प्राप्त करना चाहिये।

२१ नर्यः वीरः अस्मत् मा विदासीत् ।

' जनताका हित करनेवाला वीर पुत्र हमें उत्पन्न हो और वह हमसे दूर न जाय । ' यही पुत्र घरकी शोभा है। (२१ सुहवः रण्व-संदृक् सहसः सूनुः)— उत्तम प्रेमसे बुलानेयोग्य रमणीय और बलवान् पुत्र हो (३४ कर्मण्यः सुदक्षः देवकामः वीरः) पुरुषार्थी, दक्ष, ईश्वरभक्त और वीर पुत्र हो ।

५४ नव्यः वाजी अभीषाट् नः एतु ।

' नवीन बलवान् शत्रुका पराभव करनेमें समर्थ पुत्र हमें उत्पन्न हो । ' (१८६ वृषा रणाय जज्ञे) बलवान् पुत्र शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिये उत्पन्न होता है ऐसा वीरपुत्र हमें चाहिये । (१८६ नारी नर्यं ससूव) पत्नी जनताका हित करनेवाले सुपुत्रको उत्पन्न करती है । सब लोगोंके कल्याण करनेवालेको ' नर्य ' (नरेभ्यो हितं) कहते हैं । 'पाञ्च-जन्यं' (पञ्चजनेभ्यो हितं) पांचों प्रकारके मनुष्योंका हित करनेवाल पुत्र हो, सार्वजनिक हित करनेके कार्यमें तत्पर पुत्र हो यह भाव यहां है ।

१८६ यः नृभ्यः सेनानीः अस्ति ।

जो पुत्र मानवोंका हित करनेके लिये सेनानीका कार्य कर सकता है ऐसा पुत्र हो । मनुष्य (७६४ जनीयन्तः पुत्री-यन्तः सुदानवः अग्रवः) पत्नी करें, पुत्रवाले हों, दान दें और अग्रभागमें रहकर धुराका कार्य करें ।

यह इच्छा होनी चाहिये । मेरे पुत्र विद्वान् हों, वीर हों, युद्धमें जानेके लिये उत्सुक हों, अनेक उद्योग करके धन कमानेवाले हों, धन कमाकर उत्तम रीतिसे दान दें, उत्तम सत्पात्रमें दान दें, जनताका सुख बढानेके कार्य करें, कार्य करनेमें तत्परतासे आगे बढें, अनुयायियोंको लेकर आगे बढें, अपना, अपने घरका तथा राष्ट्रका संरक्षण करें, अपने घरको शत्रुकी बाधा होने न दें (२१ तनये मा आधक्) घरके बालबच्चे न मरें । वे दीर्घजीवी हों ।

(३६ सुवृधा बर्हिः आस्तां) उत्तम वीर पुत्रोंकी माताका सन्मान होता रहे । समाजमें वीर पुत्रोंका प्रसव करनेवाली माताका आदर हो ।

वसिष्ठ मंत्रोंमें पुत्रके विषयमें ये भाव प्रकट हुए हैं । अच्छे श्रेष्ठ वीर (७२५ सु अपत्यानि चक्रुः) उत्तम संतान निर्माण करते हैं । सुप्रजा निर्माण करनेका यत्न हरएकको करना चाहिये ।

गोरक्षण

१४९।१ दुधुक्षन् सुयवसे धेनुं उपससृजे— दूध दुहनेकी इच्छा करनेवाला उत्तम घासके पास अपनी गौको पहुंचाता है ।

१४९।२ विश्वः इन्द्रं गोपतिं आह— सब कोई इन्द्रको गौओंका स्वामी करके वर्णन करता है ।

१५२।१ यः आर्यस्य सधमाः गव्याः तृत्सुभ्यः आ अनयत्— जो इन्द्र आर्यके घरमें रहनेवाले गौओंके झुण्ड हिंसक शत्रुओंसे वापस लाता है । ' सध-माः गव्याः '— गौवें घरमें रहती थीं । गोशालामें साथ साथ बांधी जाती थीं ।

२१४।१ स्तर्यः गावः न आपः चित् पिप्युः— प्रसूत न हुई गौओंकी तरह जल प्रवाह बढते हैं ।

२३६।७ नः गोमति व्रजे त्वं आभज— हमें गौओंके बाडेमें स्थान दे ।

२७५ यस्य रक्षिता इन्द्रः मरुतः स स गोमति व्रजे गमत्— जिसके रक्षक इन्द्र और मरुत् हैं, वह गौओं-वाले बाडेमें जाता है, उसके पास बहुत गौवें होती हैं ।

३८८।३ गोभिः अश्वैः नृभिः प्रजनय, नृवंतः स्याम— गौएं, घोडे और वीरोंसे हमें युक्त कर, इनसे हम वीरवान बनें ।

५८० शचीभिः स्तर्यं अघ्न्यां अपिन्वतं— अपनी अद्भुत शक्तियोंसे वंध्या गौको दुधारू बनाया ।

५८१ अघ्न्या पयोभिः तं वर्धतु— गौ दूधसे उसे पुष्ट करती है ।

६२५।३ उस्रियाणां ददत्, गावः उपमं वावशांत— उषा गौओंको देती है, गौवें उषाको चाहती हैं ।

७०० अघ्न्या त्रिःसप्त नाम बिभर्ति— गौके २१ नाम हैं ।

९१९ गोसनिं वाचं उदेयं, वर्चसो मां अभ्युदिहि, त्वष्टा मे पोषं दधातु— गोसेवाकी प्रतिज्ञा मैं करता हूं, मुझे तेजस्वी कर, त्वष्टा मेरा पोषण करे ।

१०८ पशून् गोपाः— पशुओंका संरक्षण कर ।

वैदिक धर्ममें गोरक्षणका महत्त्व अत्यंत है । विना गौके यज्ञ नहीं और विना यज्ञके वैदिक धर्म नहीं । इतना गोरक्षणके साथ धर्मका संबंध है (१४९ सुयवसे धेनुं

उपसृजे) उत्तम जौके घासको खानेके लिए गौको छोडता हूं । गौ बिना बंधनके घासके खेतमें जाय और पर्याप्त घास स्वेच्छासे खाय । इस तरह गौवें हृष्टपुष्ट हों ।

(२३४ नः गोमति व्रजे आभज) हमें गौओंके वाडेमें रख । जहां गौवें हों वहां हम रहेंगे । इतना प्रेम गौओंपर होना चाहिये । जैसे घरके मनुष्य वैसी ही गौवें घरमें रहें । घरके मनुष्य और उनकी गौओंके कोई फरक नहीं होना चाहिये । जिसका संरक्षण इन्द्र करता है, वह गौओंके वाडेमें रहता है ।

वन्ध्या गौको दुधारू बनाना

अश्विनी कुमार इस वन्ध्या गौको दुधारू बनानेकी विद्याको जानते थे । उन्होंने ' स्तर्यं अघ्न्यां शचीभिः अपिन्वतं ' (५८०) वंध्या गौको पुष्ट करके दुधारू बनाया था । (५८१ अघ्न्या पयोभिः तं वर्धयत्) गौ अपने दूधसे उस कृश मनुष्यको पुष्ट करती है । मनुष्यको हृष्ट पुष्ट बनानेके लिये गौका दूध अच्छा होता है । इसलिये (९१९ गोसर्गि त्राघं उदेयं) गोसेवा की ही बात करनी चाहिये । गोसेवा करना ही मनुष्योंका धर्म है । मनुष्य पुष्ट होना चाहता है और तेजस्वी होना चाहता है । यह गौके दूधसे हो सकता है, इसलिये गौसेवा करना मनुष्योंका कर्तव्य है ।

गौसे पञ्चगव्य उत्पन्न होता है जो मनुष्यके लिये अत्यंत हितकारी है । गौके शरीरसे उत्पन्न होनेवाले सभी पदार्थ हितकारी हैं । इस तरह गौ मनुष्यके लिये हितकारी है ।

उत्तम दिन

९९।२ यस्य बर्हिः देवैः आससाद अस्मै सुदिनानि भवन्ति— जिसके घरके आसनपर श्रेष्ठ विबुध आकर बैठते हैं, उसके लिये उत्तम दिन आते हैं ।

२५१।१ अहा सुदिना व्युच्छात्— दिन अच्छे दिन हों ।

जिसके घरमें आकर ज्ञानी पुरुषार्थी वीर बैठते हैं वे दिन उस घरके लिये सुदिन होते हैं । श्रेष्ठोंकी संगतिसे दिन सुदिन बनते हैं । श्रेष्ठ पुरुषोंकी अनुकूलतासे सब दिन सुदिन होते हैं । प्रत्येक दिनको सुदिन करनेका यही एक उपाय है । आप श्रेष्ठ सत्पुरुषोंकी संगतिमें अपने दिन व्यतीत कीजिये, तो वे दिन आपके लिये सुदिन हो जायगे । अर्थात् दुष्ट मनुष्योंके साथ जो दिन जायगे वे दिन अच्छे होनेपर भी वे कुदिन या दुर्दिन ही कहे जायगे ।

दीर्घ आयु

२६ आयुषा अविक्षितासः— आयुसे हम क्षीण न हों । हम दीर्घायु बनें ।

५१६।३ क्रत्वा शरदः आपृणेथे— पुरुषार्थसे अनेक वर्षोंको पूर्णतया प्राप्त कर सकते हैं ।

५२६ नः जीवसे गव्यूतिं घृतेन आ उक्षतं— हमारे दीर्घ जीवनके लिये हमारा मार्ग घीसे सिंचित हो । हमें भरपूर घी मिले ।

५१९ पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं— सौ वर्ष देखें और सौ वर्ष जीवें ।

९४७ सुवीराः शतहिमाः मदेम— उत्तम वीर होकर सौ वर्ष आनन्दमें रहेंगे ।

(आयुषा अविक्षितासः) आयुसे हम क्षीण न हों, हमारी आयु कम न हो । जो आयु हमें मिले वह रोगादि पीडाओंसे जर्जरित न हो । उत्तम स्वास्थ्यके साथ हमें दीर्घ आयु मिले । (क्रत्वा शरदः आपृणेथे) पुरुषार्थकी भरपूर आयु हमें प्राप्त हो । हमें दीर्घ आयु मिले और उसमें हमसे भरपूर पुरुषार्थ होते रहें । घी, गौका घी दीर्घ आयु देनेवाला है इसलिये वह हमें भरपूर मिलता रहे । हम सौ वर्ष जीते रहें और वीरताके कर्म करते हुए आनन्दसे रहें । हमारी दीर्घ आयु हो ।

२१२ जनेषु स्वं आयुं नहि चिकेत— लोगोंमें अपनी आयुको कोई नहीं प्रकाशित करता ।

६३८।१ नः आयुः प्रतिरंती— हमें दीर्घ आयु चाहिये ।

लोगोंको अपनी आयु कितनी होगी, अर्थात् मैं कितनी आयुतक जीवित रहूंगा, इसका पता नहीं होता । इसी तरह अपनी आयु इतनी है यह भी ठीक ठीक कोई नहीं बताना चाहता । पर प्रत्येक चाहता है कि हमें अतिदीर्घ आयु प्राप्त हो । केवल इच्छासे दीर्घ आयु प्राप्त होगी ऐसा मानना उचित नहीं है । (क्रत्वा शरदः आपृणेथे) पुरुषार्थसे सौ वर्ष पूर्ण हो सकते हैं । इसके लिये प्रयत्न करना चाहिये । सुनियमोंका पालन करना चाहिये, मनका संयम करना चाहिये, विचार उच्चार आचार पर स्वाधीनता चाहिये । सत्पुरुषोंकी संगतिमें रहना चाहिये । मन पवित्र विचारोंसे भर देना चाहिये । इत्यादि रीतिसे रहनेवाला पुरुष दीर्घ आयु प्राप्त कर सकता है।

ईश्वर

२८७ अस्य तस्थुषः जगतः ईशानं स्वर्दृशं अभि नोनुमः— इस स्थावर जंगम विश्वके अपनी दृष्टीसे देखनेवाले स्वामी ईश्वरको हम प्रणाम करते हैं।

२८८ दिव्यः पार्थिवः त्वावान् अन्यः न जातः न जनिष्यते— द्युलोकमें तथा पृथिवीपर तुम्हारे समान दूसरा कोई सामर्थ्यवान् न हुआ और न होगा। और न इस समय है।

३८३ अस्य विष्णोः देवस्य वयाः— इस विष्णु सर्वव्यापक देवकी शाखाएं अन्य देव हैं। सब विश्वही उस विष्णु देवकी शाखाएं है।

५०४।१ एष नृचक्षाः सूर्यः उभे जमन् उदेति— वह मनुष्योंका निरीक्षक सूर्य दोनों लोकोंमें उदय होता है। वह सबका निरीक्षण करता है।

५०४।२ सः विश्वस्य स्थातुः जगतः च गोपाः— वह ईश्वर स्थावर जंगमका रक्षक है।

५०४।३ मर्त्येषु ऋजु वृजिना पश्यन्— वह ईश्वर मानवोंमें सरल और कुटिल को देखता है।

इससे पूर्व जो आकांक्षाएं प्रकट की हैं, सुपुत्र हो, वह वीर और ज्ञानी तथा प्रभावी हो, दीर्घायु प्राप्त हो, जीवन यशस्वी होना आदि जो मनुष्यकी आकांक्षाएं हैं वे सिद्ध होने और करनेके लिये ईश्वरकी भक्ति करना एक प्रमुख साधन है। अन्य अनेक साधन हैं पर उन सबमें ईश्वरकी भक्ति मुख्य साधन है।

ईश्वर कैसा है यह जानना, उसके श्रेष्ठ गुणोंका मनन करना और उन गुणोंको अपने जीवनमें ढालना यह साधन है। जीवका शिव बनना है, वह शिवके गुण जीवमें ढालनेसे ही होनेकी संभावना है।

वह स्थावर जंगम विश्वका स्वामी है (जगतः तस्थुषः ईशानं) सब विश्वका वह सच्चा अधिपति है। वह अधिपति अपने सामर्थ्यसे बना है, किसीकी दयासे नहीं। उसके समान दूसरा कोई सामर्थ्यवान नहीं है इसलिये वह सबका स्वामी है। वह (स्वःदृशं) अपनी दृष्टीसे सबका निरीक्षण करता है, दूसरे प्रेषितकी शिफारस उसको नहीं लगती। वह सर्वत्र है और सबको अपनी आंखसे देखता है और (मर्त्येषु ऋजु वृजिना पश्यन्) मानवोंमें सरल कौन हैं और कुटिल कौन है यह जानता है। यह कार्य वह अपनी शक्तिसे करता है। (त्वावान् अन्यः न जातः जनिष्यते) तुम्हारे समान दूसरा कोई न समर्थ हुआ और न है तथा न कोई होगा। वह स्थावर जंगमका रक्षक है और सब अन्य देव तथा पदार्थ वृक्षके आश्रयसे शाखाएं रहती हैं वैसे हैं। संपूर्ण विश्व इसीके आश्रयसे रहता है। वह सबका उपास्य है।

ईश्वर उपासना

१४८।१-२ त्वा पस्पृधानासः देवयन्तीः मन्द्रा गिरः उपस्थुः— तुम्हारे वर्णन करनेकी स्पर्धा करनेवाली देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छुक आनंद बढानेवाली हमारी वाणियां तुम्हारी उपासना करती हैं।

१९७।२ ते महिमानं रजांसि न विव्यक्— तेरी महिमाको रजोगुणी लोक नहीं जान सकते। तेरी महिमाको ये लोक नहीं जान सकते।

२०९ मन्यमानस्य ते महिमानं नू चित् उत् अश्नुवन्ति— सन्माननीय ऐसी तेरी महिमाका कोई पार नहीं लगा सकते। तुम्हारी संपूर्ण महिमा कोई जान नहीं सकता।

२०९ ते राधः वीर्यं न उत् अश्नुवन्ति— तेरे धन और पराक्रमका पार नहीं लग सकता।

२२१ महे उग्राय वाहे वाजयन् एष स्तोमः अधायि— बडे उग्र वीरके अर्थात् तुम्हारे प्रभावका वर्णन करनेवाला यह काव्य किया है। यह प्रभुकी स्तुति है।

२५७।१ हर्यश्वाय शूषं कुत्साः— उत्तम घोडोंको वेगवान् साधनोंको अपने पास रखनेवाले वीरकी प्रशंसा गाते हैं।

१२९ नवीयः उक्थं जनये— नवीन स्तोत्र मैं बनाता हूं। नृवत् शृणवत्— वह मनुष्योंमें बैठकर सुने।

२३६ क्षमि अधि यत् विपुरूपं अस्ति, तस्य जगतः चर्षणीनां राजा इन्द्रः— पृथ्वीपर जो विरूप या सुरूप है उस जंगम प्रजाओंका राजा इन्द्र है। स्थावरका भी वही प्रभु है।

२४०।२ ते महिमा व्यानट्, ऋषिणां ब्रह्म पाति— तेरी महिमा जिनमें फैली है उन ऋषियोंके काव्योंका संरक्षण तू करता है।

२९६।१ वः ब्रह्मणा पितॄणां जुष्टी— तुम्हारे काव्यसे पितरोंकी प्रसन्नता होती है। तुम्हारे काव्योंका गान सुननेसे सब आनंदित होते हैं।

२९६।४ शाक्वरीषु बृहता रवेण इन्द्रे शुष्मं आदधातन— बडे स्वरसे सामगान करके इन्द्रका यशगान करो। उच्च स्वरसे प्रभुका यश गाओ।

इस तरह वेदमें तथा वसिष्ठ ऋषिके मंत्रोंमें ईश्वरके गुणोंका वर्णन अर्थात् उस प्रभुकी महिमाका वर्णन है। यह इसलिये किया है कि मनुष्य इस आदर्श पुरुषका वर्णन देखे और सुनें और वैसा बननेका यत्न करे।

ईश्वर अपने सामर्थ्यसे सब विश्वका राज्य करता है। इससे स्पष्ट है कि जिसमें सामर्थ्य होगा, वह इस पृथ्वीपर राज्य करेगा। ईश्वरसे अधिक सामर्थ्यवान् कोई दूसरा नहीं है, वैसेही हम अद्वितीय सामर्थ्यवान बनें तो हम भी अपने स्थानपर टिके रहेंगे। सामर्थ्यसे सब कोई टिक सकता है। वह ईश्वर सबका निरीक्षण करता है हम भी अपने आधीन जो हैं उसका निरीक्षण करें और योग्य कौन है और अयोग्य कौन है यह जाने। इस तरह ईश्वरके गुण अपने अन्दर ढाले जाते हैं। यही उपासनासे लाभ होता है।

मातृभूमि

३७४ वसवः देवाः ज्मया रन्त— धनवान् निवास कर्ता विबुध मातृभूमिके साथ रमते रहते हैं।

जो निवास करानेवाले होते हैं उनको वसु कहते हैं। (ये निवासयन्ति ते वसवः) जनताका निवास सुखका करनेमें जो यत्न करते हैं, सहायक होते हैं वे 'वसु' हैं। ये वसुदेव सबका निवास करानेवाले हैं। ये (ज्मया रन्त) भूमिके साथ रमते हैं। मातृभूमिके साथ रहनेमें प्रसन्न होते हैं। जो मातृभूमिके साथ रहनेसे प्रसन्न रहते हैं वेही जनताका सुखसे निवास करनेवाले होते हैं। जो अपनी मातृभूमिका द्रोह करेंगे, जो मातृभूमिके शत्रुओंका हित करनेके लिये तत्पर रहेंगे वे जनताका निवास सुखमय करनेवाले नहीं होंगे।

'वसवः ज्मया रन्त' निवास करानेवाले मातृभूमिके साथ रमते हैं। मातृभूमिके साथ रमनेवाले, मातृभूमिकी भक्ति करनेवाले जनताका निवास मातृभूमिमें सुखसे हो, इसके लिये यत्नवान् होंगे। अथर्ववेदमें काण्ड १२।१ में मातृभूमिका सूक्त है। उस सूक्तमें ६२ मंत्र हैं। उन मंत्रोंका मनन पाठक यहां करें। 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।' 'तुभ्यं बलिहृतः स्याम' यह मातृभूमि हमारी है और मैं उसका पुत्र हूं। मैं इस माताके लिये अपना बलि देता हूं। ये उस सूक्तके मंत्र हैं। यह सब सूक्त यहां देखने योग्य है।

संघटना

९१ गणेन ब्रह्मकृतः मा रिषण्यः— संघके द्वारा ज्ञानका प्रसार करनेवालोंका नाश न कर। संघसे ज्ञान प्रचार करनेवालोंकी सहायता करो।

२९८।१-२ गो-अजनासः दण्डा इव भरताः परिच्छिन्नाः अर्भकासः आसन्— गौएं चलानेके दण्डे जैसे भरत लोग निर्बल, तथा बालक जैसे थे। असंघटित और बिखरे हुए थे।

२९८।३-४ तृत्सूनां पुरएता वसिष्ठः अभवत्, आत् इत् तृत्सूनां विशः अप्रथन्त— तृत्सुओंका नेता वसिष्ठ हुआ, तबसे तृत्सुओंकी प्रजाएं बढ गयीं, उन्नत हुईं, संघटित हुईं, समर्थ बनी।

३७५ विश्वेदेवाः सधस्थं अभिसन्ति— सब देव एक स्थानपर रहते हैं। नियत समय एक स्थानपर आकर बैठना यह संघटनाके लिये आवश्यक है।

४०२ सधमादः अ-रिष्टाः— संघटित होनेवाले विनष्ट नहीं होंगे।

६३१।१ समाने ऊर्वे अधिसंगतासः— वे एकही बडे कार्यमें मिलकर संघटित हुए।

६३१।१-३ संजानते, ते मिथः न यतन्ते— जो ज्ञानी होते हैं वे आपसमें लडते नहीं।

६७२।१ अप्रति भेदं वधनाभिः वन्वन्ता— अप्रास भेदको वधसे नष्ट करो। आपसमें भेद बढ जानेके पूर्व ही उसको दूर करो, नष्ट करो। आपसमें फूट रहने न दो।

७७७ सबाधः विप्राः वाजसातये ईळते— समान दुःखमें रहे ज्ञानी बलके लिये प्रार्थना करते हैं। समान दुःखमें रहनेवाले संघटित होते हैं और अन्न तथा बल प्राप्त करते हैं।

९१९ नः सर्व इत् जनः संगत्या सुमना असत्— हमारे सब लोग अपनी संघटना करनेके लिये उत्तम मनसे मिलते रहते हैं।

वसिष्ठ मन्त्रोंमें संघटनाके विषयमें ऐसे उत्तम निर्देश मिलते हैं। (९१ गणेन मा रिषण्यः) संघमें, गणमें रहनेसे तुम्हारा नाश नहीं होगा। यह संघटनाका पहिलाही सूत्र यहां कहा है। गणशः अपनी संघटना बलवती करनी चाहिये।

प्रथम (भरताः परिच्छिन्नाः अर्भकासः आसन्) भारत लोग आपसमें असंघटित थे, इसलिये वे बालक जैसे निर्बल थे। परिच्छिन्न होना, छोटे छोटे फिरकोंमें समाजका बंट जाना यह निर्बलताका चिन्ह है। इस कारण समाजको परिच्छिन्न, छिन्न विच्छिन्न नहीं होने देना चाहिये। (पुरएता वसिष्ठः अभवत्) फिर उन भारतीयोंका नेता वसिष्ठ हुआ। वसिष्ठ उसको कहते हैं कि (वासयति इति वसिष्ठः) जो संघटना करनेमें चतुर होता है, वसानेमें चतुर हो। भारतीयोंको ऐसा उत्तम पुरोहित मिला और उन्होंने जो भारतीय बालक जैसे निर्बल थे उनको बलवान और सुसंघटित बनाया। तब भरतोंकी (विशः अप्रथन्त) प्रजाएं सामर्थ्यवान् बनी और बढने लगी। सामर्थ्यवान् हो गयी।

जो (सध- स्थं अभिसंश्रित—) एक स्थानपर आकर नियत समयपर बैठते और अपनी संघटना करनेका विचार करते हैं, वे (सध-मादः अ-रिष्टाः) एक स्थानपर जमा होनेवाले, संघटित होकर अपने आपको विनाशसे बचाते हैं। संघटन होनेसे विनाशसे बच सकते हैं। अपने अन्दरका भेद दूर करना, अपने अन्दर एकात्मता उत्पन्न करना और एक कार्यमें अपने आपको बांध लेना ये संघटनाके लिये आवश्यक है। (समाने ऊर्वे अधिसंगतासः)एक बडे कार्यके अन्दर संमिलित होना, उस कार्यके लिये अपने आपको समर्पित करना यह संघटनके लिये अत्यंत आवश्यक है। (सबाधः विप्राः) एक बाधामें एक आपत्तिका अनुभव जिनको होगा, वे उस बाधाको दूर करनेके लिये संघटित होंगे। इस लिये जिनको संघटित करना है, उन सबको एक कष्टमें वे सब है, सबके संघटित होनेसे वह सबको सतानेवाला भय दूर हो सकता है, इसका यथार्थ ज्ञान देना चाहिये। इससे उन सबकी उत्तम संघटना होगी। (सर्वः जनः संगत्यां सुमनाः) संघटित होनेवाले सब लोग अपने संघटनमें उत्तम मनसे संमिलित हों। किसीका किसीके विषयमें विपरीत मनोभाव न हो। इस तरह संघटित समाज करनेके विषयमें वसिष्ठके मंत्रोंमें सूचना मिलती हैं। जो सदा ध्यानमें धरने योग्य हैं।

अग्रणी कैसा हो !

१ नरः दूरेदृशं प्रशस्तं गृहपतिं अथर्युं अग्निं जनयन्तः— नेता लोग अपनेमेंसे दूरदर्शी प्रशंसायोग्य गृहस्थी प्रगतिशील अग्रणीको प्रमुख बनाते हैं।

अग्रणी वह बने कि जो दूरका देखनेवाला, प्रशंसायोग्य कार्य करनेवाला, गृहस्थ धर्म पालन करनेवाला, अचंचल अर्थात् स्थिर पद्धतिसे अपना कर्तव्य करनेवाला, अग्निके समान तेजस्वी तथा अपने प्रकाशसे दूसरोंको मार्ग बतानेवाला हो।

यहां अग्रणी गृहपति हो ऐसा कहा है। ब्रह्मचारी या संन्यासी नहीं। क्योंकि ब्रह्मचारी और संन्यासीको आगापीछा नहीं होता, इसलिये ग्रामकार्य अथवा राष्ट्रकार्यमें वह ठीक तरह अपना कर्तव्य नहीं कर सकता, पर जो गृहस्थी होता है उसके सर्वत्र संबंधी होते हैं, इसलिये वह जानता है कि अपना उत्तरदायित्व क्या है। इसलिये अध्यक्ष अथवा नेता गृहस्थीही होना उचित है।

दूरदर्शी प्रशंसायोग्य गृहस्थी प्रगतिशील तेजस्वी अग्रणी हो।

८ वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक अग्ने— जनताका निवास करानेवाला, बलवान् वीर्यवान्, तेजस्वी, पवित्रता करनेवाला अग्रणी हो।

२७ सुकृतवः शुचयः धियंधाः वयं नराशंसस्य यजतस्य महिमानं उपस्तोषाम— उत्तम कर्म करनेवाले, पवित्र बुद्धिमान होकर हम सब मानवोंमें प्रशंसित और पूजनीय नेताकी महिमाका वर्णन करें। हम उत्तम कर्म करें, पवित्र बनें, ज्ञानी बनें और श्रेष्ठ महात्माका ही वर्णन करें।

२८ ईळेन्यं असुरं सुदक्षं सत्यवाचं अध्वराय सदं इत् सं महेम– प्रशंसनीय, बलवान, उत्तम दक्ष, सत्य भाषण करनेवाला जो है उसी नेताका हम सदा वर्णन करते हैं।

५१।१ यः क्रत्वा अमृतान् अतारीत् सः देवकृतं योनिं आससाद— जो अपने पुरुषार्थसे दिव्य विबुधोंका तारण करता है वह देवोंके बनाये श्रेष्ठ स्थानमें विराजता है। वह मुख्य स्थानपर बैठता है। वही नेता होता है।

५८ वैश्वानरः वरेण वावृधानः मानुषीः विशः अभि विभाति— सब मनुष्योंका श्रेष्ठ नेता श्रेष्ठ साधनसे बढता हुआ अपने मानवी प्रजाजनोंको अधिक प्रकाशित करता है। सब लोगोंका अग्रणी अपना सामर्थ्य बढाकर अपने अनुयायियोंका भी तेज बढाता है।

[illegible] नृतमः अपाचीने तमसि मदन्तीः शचीभिः [illegible]— मनुष्योंमें श्रेष्ठ वह है कि जो अज्ञानान्ध[illegible] [illegible]नेपर भी उसीमें आनंद माननेवाले [illegible] उदयोन्मुख करता है।

६९।२ यस्य: ईशानं अनानतं पृतन्यून् दमयन्तं गृणीषे— उनके स्वामी उन्नत और सेनासे हमला करनेवाले शत्रुका दमन करनेवाले नेताकी प्रशंसा करो।

७१।१ विश्वे जनासः शर्मन् यस्य सुमतिं भिक्षमाणाः- सब लोग अपनी सुरक्षाके सुखके लिये जिसकी सद्बुद्धिको चाहते हैं वह श्रेष्ठ पुरुष है।

७१।८ विश्वे जनासः एवैः यं उपतस्थुः— सब लोग अपने कर्मोंके साथ जिसके पास पहुंचते हैं वह श्रेष्ठ पुरुष है। अपने कर्मोंकी परीक्षा यहां होगी, ऐसा जिसके संबंधमें सब मानते हैं वह श्रेष्ठ है।

७१।३ वैश्वानरः वरं आससाद— सबका जो श्रेष्ठ नेता है, वह श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करता है। श्रेष्ठ स्थानमें विराजता है।

७३ सहमानं देवं अग्निं नमोभिः प्रहिषे— शक्तिमान दिव्य अग्रणीको मैं नमस्कार करता हूं। उसका मैं सम्मान करता हूं।

७६।१ विचेतसः मानुषासः अध्वरे रथिरं सद्यः जनन्त— ज्ञानी मनुष्य हिंसारहित शुभकर्ममें रथमें बैठकर आनेवालेको तत्काल नियुक्त करते हैं। मुख्य स्थानमें रखते हैं। नेता बनाते हैं।

७६।२ यः एषां मन्द्रः विश्पतिः मधुवचा ऋतावा विशां दुरोणे अधायि — जो इन लोगोंका आनन्ददायक प्रजापालक है वह मधुरभाषणी सत्यपालक प्रजाओंके घरमें सम्मानके स्थानमें स्थापित होता है। बैठता है।

९५।२ सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहं मनुष्याणां अरतिं अच्छ यन्ति— सुन्दर, सुडौल, प्रगतिशील, बलवान् मानवोंके नेताके पास मनुष्य जाते हैं। उनके साथ रहें और उन्नतिके कार्य करें।

९८।४ इह प्रथमः निषद्— यहां पहिला मुख्य बनकर रह। नेताको मुख्य स्थानपर बिठलाना योग्य है।

१०६।१ विश्वशुचे धियंधे असुरघ्ने अग्नये मन्म धीतिं प्रभरध्वम्— विश्वमें तेजस्वी बुद्धिमान् पुरुषार्थी दुष्टोंका नाश करनेवाले अग्रणी नेताका सम्मान करो।

१०६।२ प्रीणानः वैश्वानराय हविः भरे— मैं सन्तुष्ट होकर सबके नेताके लिये अर्पण करता हूँ, सम्मान करता हूं।

१०७।२ जातवेदः वैश्वानरः— जो ज्ञानी है वह विश्वका नेता होता है।

१०८।१ जातः परिज्मा ईर्यः— प्रकट होते ही चारों ओर घूमनेवाला नेता सबको प्रेरणा करता है।

११३ कविः गृहपतिः युवा पंचचर्षणीः दमे दमे निषसाद— ज्ञानी गृहस्थ तरुण पांचों प्रजाजनोंके घरोंमें जाकर बैठता है।

२४१।१ तव प्रणीती नृन् रोदसी सं निनेथ— तुम्हारी पद्धति मानवोंको इस विश्वमें सम्यक् रीतिसे उन्नतिकी ओर ले चलती है।

यहां प्रायः अग्निके वर्णनमें ही नेताका वर्णन किया है। अग्नि ही अग्रणी है। अग्-र-णी, अग्-नी, अग्नि। इस तरह अग्नि ही अग्रणी अथवा अग्रणी ही अग्नि है। अग्नि अपने प्रकाशसे सब विश्वको मार्गदर्शन करता है और उनको उन्नतिके मार्गसे चलाता है। इसलिये अग्नि ही अग्रणी है। इस कारण अग्निके वर्णनमें 'अग्रणी' के गुण दिये हैं।

अग्रणी (दूरे-दृशः) दूरदर्शी, दूरका देखनेवाला, भविष्यमें क्या होगा, इसकी जिसको यथार्थ कल्पना है, ऐसा (प्रशस्तः) प्रशंसित, प्रशंसाके योग्य, सबको आदरणीय (अ-यवुः) जो चंचल नहीं, जो क्षणक्षणमें बदलता न हो, जो स्थायीरूपसे उन्नतिके कार्य करता हो, (अग्निः) जो प्रगतिशील है, अपने तेजसे अज्ञानान्धकारको दूर हटाता है, मार्ग बताता है और प्राप्तव्यस्थान पर पहुंचाता है, बीचमें ही नहीं छोडता, (वसिष्ठः) जो अनुयायियोंको सुखपूर्वक निवास कराता है, जो (पावकः) पवित्रता करनेवाला है, अन्तर्बाह्य शुद्धता करनेवाला है, (शुक्रः) जो बलवान् वीर्यवान् तथा पराक्रमी है। (दीदिवः) जो तेजस्वी है, प्रकाशमान है, (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाला, (शुचिः) जो शुद्ध है, (धियं धाः) जो बुद्धिमान है, योग्य समय पर योग्य संमति देता है, (असु-रः) जो बलवान् है, प्राणके बलसे सामर्थ्यवान् है, (सु-दक्षः) जो उत्तम दक्ष है, प्रत्येक कार्य उत्तम दक्षतासे जो करता है, शिथिलता जिसमें होती नहीं, (सत्य-वाक्) जो सत्यभाषण करता है, जो असत्य भाषण करता नहीं, (वैश्वा-नरः) सब नरोंका सब मनुष्योंका जो नेता है, (नृ-तमः) सब मानवोंमें जो अत्यंत श्रेष्ठ है, (ईशानः) शासन शक्तिसे जो युक्त है, जो प्रमुख होने योग्य है, (अनानतः) जो उच्च है, जो श्रेष्ठ है, (पृतन्यून दमयन्) जो शत्रुसेनाका दमन कर करता है, शत्रुसेनाका पराभव करनेवाला, (सहमानः) शत्रुका पराभव करनेवाला, शत्रुका

आक्रमण रोकनेवाला, (वि-चेता:) जो विशेष ज्ञानी है, सामर्थ्यवान चित्तवाला, (अ-ध्वरे रथिरं) हिंसारहित, अकुटिल श्रेष्ठ कर्ममें सत्वर आनेवाला, (मन्द्रः) आनंददायक, प्रसन्नचित्त, (मधु-वचाः) मधुर भाषण करनेवाला, (ऋता वा) सरल स्वभाव, सत्य कर्मको करनेवाला, (विश्-पतिः) प्रजाका उत्तम पालन करनेवाला, (सु संदृशं) सुन्दर दीखनेवाला, (सु-प्रतीकं) उत्तम आदर्शवान, (स्वञ्चं, सु-अञ्चं) प्रगतिशील, (मनुष्याणां उरुशिः) मनुष्योंको उच्च स्थान तक ले जानेवाला, (प्रथमः) जो प्रथम स्थानमें रहनेयोग्य है, (विश्व-शुच्) सबमें शुद्ध, सबका प्रकाशक, (अं सुरघ्न) दुष्ट आततायियोंका नाश करनेवाला, (जात-वेदः) जिससे वेद प्रकट होते हैं, जिससे ज्ञान फैलता है, जो ज्ञानका प्रचार करता है, (परि ज्मा) अनुयायियोंमें चारों ओर घूमनेवाला, घूम घूमकर चारों ओर आकर अनुयायियोंकी परिस्थिति देखनेवाला, (कविः) ज्ञानी दूरदर्शी, विद्वान्, अतीन्द्रिय विषयोंका ज्ञाता, (गृहपतिः) अपने घरका पालन करनेवाला, गृहरक्षक, (युवा) तरुण, जो वृद्ध अतएव कार्य करनेमें असमर्थ नहीं हुआ है, (पञ्च-चर्षणिः) पांचों जातियोंके मनुष्योंका हित करनेवाला, जो (अपाचीने तमसि मदन्तीः शर्वाभिः प्राचीः चकार) गाढ अन्धकारमें पडे लोगोंको ज्ञानका प्रकाश दिखाता है, यह जिसके अन्दर शक्तियां है, (यस्य सुमतिं भिक्षमाणाः शर्मन्) जिसकी संमतिके अनुसार चलनेवालोंको निःसंदेह सुख ही प्राप्त होता है। (विश्वे जनासः यं उपतस्थुः) सब लोग कठिन प्रसंगके समय जिसके पास जाते हैं और जो शुभसंमति प्रदान करके उनका योग्य मार्गदर्शन करता है, जो (विशां दुरोणे अधायि) जो प्रजाजनोंके घरमें जाता है और वहां आदरका स्थान पाता है। इस तरहके शुभगुणोंसे जो युक्त होगा वह नेता, अग्रणी, प्रमुख, अध्यक्ष होने योग्य है। पाठक इन गुणोंका मनन करें और ऐसे गुण जिसमें होंगे उसीको अध्यक्ष बनाएँ।

ये गुण प्रायः ऊपर दिये मंत्रोंमें क्रमशः आये हैं। ऐसे श्रेष्ठ पुरुषको ही अपना नेता बनाना उचित है। इसके विपरीत जो होगा वह नेता बनने अयोग्य है।

राष्ट्रकी तैयारी

६८०।१ बृहत् राष्ट्रं इन्वति— बडा राष्ट्र प्रसन्नता देता है।

६८०।४ इन्द्रः नः उरुं लोकं कृणवत्— इन्द्र हमारे लिये विस्तृत स्थान बनावे। हमारा राष्ट्र विस्तृत करे।

९२४ त्रयोदश भौवनाः पञ्चमानवाः— हमारे राष्ट्रमें तेरह प्रांत हैं और पांच जातियां है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पांच प्रकारके लोग हमारे राष्ट्रमें हैं, हमारे राष्ट्रमें तेरह भुवन हैं, तेरह प्रांत है। राष्ट्रके तेरह विभाग है।

'बृहत् राष्ट्र' बडा राष्ट्र ये शब्द अन्य छोटे छोटे राष्ट्रोंका भी बोध कराते हैं। अर्थात् बडे और छोटे राष्ट्र होते हैं। दाशराज्ञयुद्ध इस वसिष्ठके मंत्रोंमेंही पाठक देखेंगे। सूक्त ३३ और ८३ देखो। यहां दश राजाओंके संघका सुदासके साथ युद्ध हुआ और इसमें सुदासका विजय हुआ। अर्थात् यहां दस छोटे छोटे राष्ट्र थे और उनकी अपेक्षासे सुदासका राष्ट्र बडा था। अनेक राष्ट्रोंका संघटना होना, उनके संमिलित सैन्यसे चढाई होनी और दश राजाओंके संघका पराभव होना यह वर्णन इन सूक्तोंमें है। इससे सिद्ध है कि राष्ट्र छोटे भी होते थे और बडे भी होते थे। सुदास राजा भारतियोंका था, वह निर्बल था, क्योंकि भारतीयोंमें आपसकी फूट थी और छोटी छोटी दलबंदी भी थी। इन्होंने वसिष्ठको अपना पुरोहित बनाया, वसिष्ठने राष्ट्रीय संघटना भारतियोंकी बनायी, और वे प्रबल बने और दिग्विजय करने लगे। पुरोहित लोग राष्ट्रीय संघटनाका कार्य करते थे।

यह पुरोहितका कार्य है, वसिष्ठके अथर्ववेदके मंत्रोंमें यह बात स्पष्ट लिखी है--

९०१ जिनका मैं पुरोहित हूं, उनका क्षात्रबल मैं तीक्ष्ण बनाता हूं अक्षय बल उनका मैं निर्माण करता हूं।

९०३ इनका राष्ट्र मैं तेजस्वी बना देता हूं। इनका ओज-बल और वीर्य मैं बढाता हूं। इनके शत्रुओंके बाहुओंको मैं काटता हूं।

९०४ इनके शत्रु नीचे गिर जाय. मैं ज्ञानसे अपने लोगोंको उन्नत करता हूं और शत्रुओंको क्षीण करता हूं।

९०५ जिनका मैं पुरोहित हूं, उनके शस्त्र मैं तीक्ष्ण बनाता हूं।

९०६ इनके शस्त्र तीक्ष्ण करता हूं, इनका राष्ट्र उत्तम वीरतासे समर्थ बनाता हूं,। इनका क्षात्र तेज कभी क्षीण नहीं होगा।

९०७ अपने अपने ध्वज लो, उत्साहमय हर्षसे शत्रुपर चढाई करो। अपनी सेना शत्रुपर आक्रमण करे।

९०८ चलो, चढाई करो, विजय प्राप्त करो। तुम्हारे बाहुओंमें बडा बल है। तुम्हारे शत्रुओंका बल क्षीण हुआ है। इसलिये उनको मारो।

९०९ शत्रुपर टूट पडो, आगे बढो, शत्रुके सैनिकोंमेंसे मुख्य मुख्य वीरको मारो। उनमेंसे कोई न बचे।

यह सेना तैयार करना, उनके शस्त्रास्त्र तैयार करना, शत्रुके शस्त्रोंसे अपने शस्त्र अधिक प्रभावी करना, शत्रुपर आक्रमण किस समय कैसा करना, इसका निश्चय करना आदि ये सब कार्य पुरोहितके हैं। राजा युद्ध करेगा, सैनिक भी युद्ध करेंगे, परंतु सब तैयारी प्रथम पुरोहित करेगा। यह वैदिक व्यवस्था यहां वसिष्ठके मंत्रोंमें दीखती है। इस तरह राष्ट्र निर्माणका कार्य पुरोहितका है, राष्ट्रमें सेनाको तैयार करना, उसको उत्साहसे भर देना, शत्रुपर करनेके आक्रमणोंकी सब तैयारी करना, यह सब पुरोहितके कार्य है। रामेश्वर जानेवाले यात्री भी धनुष्यबाण और दक्षिणा पुरोहितकोही देते हैं। गणेश पुराणमें काशीराजाके पुरोहित श्रीगणेशनेही सेनाकी तैयारी की थी और जिससे उसको विजय मिला। ये कार्य पुरोहितके हैं।

किसानोंका पालक

राजा केवल प्रजाका स्वामी नहीं है वह 'कृष्टीनां पतिः' वह प्रजाजनोंका पालक है, विशेषतः कृषि करनेवालोंका प्रतिपाल करनेवाला है। क्षत्रिय अपने अधिकारके बलसे तथा वैश्य अपने धनके बलसे अपना पालन करनेमें समर्थ होते हैं। कृषक वर्ग ही निर्बल रहता है। इसलिये निर्बलोंका पालन करनेवाला राजा है ऐसा कहनेसे सब प्रजाका पालक वह है यह सिद्ध हुआ। यही राजाका कर्तव्य है। अधिकार चलाना यह राजाका कर्तव्य नहीं है, प्रत्युत उत्तम प्रकारसे प्रजाका पालन करना और उनमें भी कृषकोंका पालन करना राजाका मुख्य कर्तव्य है।

'रयीणां रथ्यः' वह राजा धनोंके रथपर बैठता है, उसका अधिकार नाना प्रकारके धनोंपर रहता है। प्रजाका-पालन धनसे ही हो सकता है। इसलिये राजाके पास धन, कोश भरपूर होना ही चाहिये। इसकी सूचना इस पदसे मिलती है। 'वैश्वा-नरः' यह राजा सब राष्ट्रका नेता, अगुआ, अग्रगामी, अग्रणी है, प्रजाका योग्य रीतिसे संचालन करनेवाला यह है।

यह प्रजापालक राजा (अनेनाः = अन्+एनाः) निष्पाप रहना चाहिये। किसी तरहका पापाचरण उसके जीवनमें उससे न हो। राजा राष्ट्रमें आदर्श पुरुष है इसलिये उससे पाप कदापि होना नहीं चाहिये। (मायी) प्रवीण, कुशल, कर्म करनेमें कुशल राजा हो। किसी तरह अपने प्रजापालन कर्ममें न्यून न हो। (सत्रा-राजा) साथ साथ सब प्रजाजनोंको लेकर प्रकाशित होनेवाला राजा हो। प्रजाजनोंके साथ मिलकर रहे, अपने आपको पृथक् न समझे। (अनु-त्तमन्युः) जिसका उत्साह अत्यंत हो, जिसके पास निराशा कभी आती न हो। यहां 'मन्यु' का अर्थ 'उत्साह' है। इसका दूसरा अर्थ, 'क्रोध' भी है। राजाका क्रोध और प्रसाद विफल न होनेवाला हो। (उग्रः) राजा उग्र हो, निस्तेज न हो, अजागलके स्तन जैसा निरर्थक न हो। (सहस्राक्षः) हजारों आंखोंसे देखनेवाला हो। 'चारैः पश्यन्ति राजानः' गुप्त चरोंसे राजा सबका निरीक्षण करता है। गुप्तचर विभाग राजाके पास उत्तम कार्यक्षम हो। जो अपने देशके अन्दरकी सब बातें जाने और परदेशमें क्या चल रहा है यह सब यथावत् जाने। यह ज्ञान प्राप्त करनेमें राजा कसर न करे।

३१७ राजा राष्ट्रानां पेशः— राजा राष्ट्रोंका सौंदर्य है, राष्ट्रको सुंदर रूप देनेवाला राजा हो। राजा उत्तम रहा और उसका शासनप्रबंध अच्छा रहा तो राष्ट्र तेजस्वी होता हैं। इसके विपरीत शासनप्रबंध ढीला रहा तो प्रबल राष्ट्र भी क्षीण और दुर्बल होता है। (अस्मै अनुत्तं क्षत्रं) राजाके पास उत्तम क्षत्रियोंका सामर्थ्य हो, उत्तम सेना हो और उसमें उत्तम वीर पुरुष हो।

३४८ इनः अ-दृध्रः— राजा किसीके दबावसे न दब जानेवाला हो। किसीके दबावसे न दबे। सत्य पालन करे और दुष्टोंके दबावमें कभी न फंसे।

इसप्रकार वसिष्ठऋषिने मानवके जीवनको उन्नत करनेवाली अनेक व्यावहारिक बातें बताई हैं।



ऋग्वेदका सुबोध–भाष्य

सप्तम मण्डल

मंत्रवर्णानुक्रम-सूची





ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

अष्टम – मण्डल ।

[१]

[ऋषिः– १-२ प्रगाथो (घौरः) काण्वः; ३-२९ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ, ३०-३३ प्लायोगिरासङ्गः, ३४ आङ्गिरसी शश्वती ऋषिका । देवता– इन्द्रः, ३०-३४ आसङ्गः । छन्द– १-४ प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), ५-३२ बृहती, ३३-३४ त्रिष्टुप् ।]

१ मा चि॒द॒न्यद्वि शं॑सत॒ सखा॑यो॒ मा रि॑षण्यत ।
इन्द्र॒मित्स्तो॑ता॒ वृष॑णं॒ सचा॑ सु॒ते मुहु॑रु॒क्था च॑ शंसत ॥ १ ॥

२ अ॒व॒क्र॒क्षिणं॑ वृष॒भं य॑था॒जुरं॒ गां न च॑र्षणी॒सह॑म् ।
वि॒द्वेष॑णं सं॒वन॑नोभयंक॒रं मंहि॑ष्ठमुभया॒विन॑म् ॥ २ ॥

[१]

अर्थ– [१] हे (सखायः) मित्रो ! (अन्यत् चित् मा शंसत) तुम किसी दूसरे देवकी स्तुति मत करो । किसी दूसरे देवकी स्तुति करके (मा रिषण्यत) दुःखी मत होओ । (सुते) सोमरसके निचोडे जानेवाले यज्ञमें (वृषणं इन्द्रं इत्) बलशाली इन्द्रकी ही (सचा स्तोत) एक साथ मिलकर स्तुति करो, (च) और (उक्था) इन्द्रके स्तोत्रोंको (मुहुः शंसत) बार बार बोलो ॥ १ ॥

१ अन्यत् चित् मा शंसत, मा रिषण्यत– ऐश्वर्यशाली परमात्माको छोडकर और किसी देवकी स्तुति मत करो और दुःखी मत होओ ।

[२] (यथा वृषभं अवक्रक्षिणं) बलशाली बैलके समान शत्रुओंके विनाशक (अजुरं) कभीभी क्षीण या वृद्ध न होनेवाले (गां न चर्षणीसहं) गौके समान मनुष्योंका पालन पोषण करनेवाले, (विद्वेषणं) उपासकोंके हृदयोंसे द्वेषको दूर करनेवाले, (संवनना) सबके द्वारा सजनीय (उभयंकरं) निग्रह-अनुग्रह दोनों करनेवाले (मंहिष्ठं) अत्यन्त महिमाशाली (उभयाविनं) चर-अचर इन दोनों जगत्की रक्षा करनेवाले इन्द्रकी स्तुति करो ॥ २ ॥

भावार्थ— ऐश्वर्यशाली परमात्माको छोडकर अन्य देवकी उपासना करनेसे मनुष्य संकटमें पडकर दुःखी होता है । वही परमात्मा संकटोंसे उपासकको उबारनेवाला है, अतः हर यज्ञमें उसी एक परमात्माकी स्तुति करनी चाहिए और बार बार स्तुति करनी चाहिए ॥ १ ॥

यह इन्द्र बलशाली बैलके समान शत्रुओंका विनाशक, कभी क्षीण न होनेवाला, गौके समान मनुष्योंका पालनपोषण करनेवाला, भक्तोंके हृदयोंसे द्वेषको दूर करनेवाला, शत्रुओंका निग्रह करके भक्तों पर अनुग्रह करनेवाला, अत्यन्त महिमाशाली तथा चर और अचर दोनों जगत्की रक्षा करनेवाला है । ऐसे ही इन्द्रकी स्तुति करनी चाहिए ॥ २ ॥

३ यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु ते ऽहा विश्वा च वर्धनम् ॥ ३ ॥
४ वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितो ऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ ४ ॥
५ महे चन त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयाम् ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥ ५ ॥
६ वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥ ६ ॥

अर्थ— [३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् चित्) यद्यपि (इमे जनाः) ये सभी प्रजायें (ऊतये) अपनी रक्षाके लिए (त्वा नाना हवन्ते) तुझे अनेक प्रकारसे बुलाते हैं, तो भी (अस्माकं ब्रह्म इत्) हमारी स्तुति ही (विश्वा अहा) सब दिन (ते वर्धनं भूतु) तेरी महिमाको बढानेवाली हो ॥ ३ ॥

[४] हे (मघवन्) ऐश्वर्यशाली प्रभो ! (विपश्चितः अर्यः) विद्वान् और आर्य अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष, (जनानां विपः) मनुष्योंका विशेष रूपसे पालन करनेवाले तेरे उपासक तेरी कृपा पाकर (तर्तूर्यन्ते) संकटोंसे पार हो जाते हैं। हे इन्द्र ! तू (उप क्रमस्व) हमारे पास आ तथा (ऊतये) हमारी रक्षाके लिए (पुरुरूपं) अनेकों रूपोंवाले (नेदिष्ठं) अत्यन्त समीप रहनेवाले (वाजं) बलको (आ भर) हमें प्रदान कर ॥ ४ ॥

१ विपश्चितः अर्यः जनानां विपः तर्तूर्यन्ते— विद्वान्, श्रेष्ठ और प्रजाओंका पालन करनेवाले भक्त प्रभुकी कृपासे संकटोंसे पार हो जाते हैं।

[५] हे (अद्रिव, शतामघ) वज्रको धारण करनेवाले तथा सैंकडों तरहके ऐश्वर्यवाले प्रभो ! मैं (त्वा) तुझे (महे शुल्काय चन) बहुत बडी संपत्तिके लिए भी (परा दयां) दूसरोंको न दूं। हे (वज्रिव) वज्रधारी इन्द्र ! मैं तुझे (सहस्राय न) हजारके लिए भी न दूं, (अयुताय न) दस हजारके लिए भी न दूं, (शताय न) असंख्य या अपरिमितके लिए भी न दूं ॥ ५ ॥

१ शतामघ-त्वा महे शुल्काय चनन परा देयाम्— हे सैंकडों तरहके ऐश्वर्यवाले प्रभो ! मैं तुम्हें बहुत बडे धनके लिए भी न बेचूं।

[६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (मे पितुः वस्याँ असि) मेरे पिताकी अपेक्षा भी अधिक धनवान् है, (अभुंजतः भ्रातुः उत) धनका उपभोग न करनेवाले अर्थात् कंजूस भाईकी अपेक्षा भी तू अधिक धनवान् है, पर (मे माता च समा) मेरी माता और तू दोनों समान हैं अतः हे (वसो) सबको बसानेवाले प्रभो ! (राधसे वसुत्वनाय) धन और निवासकी प्राप्तिके लिए मुझे (छदयथः) तुम दोनों समर्थ बनाओ ॥ ६ ॥

१ मे माता च समा— माता और प्रभु दोनों समान होते हैं।

भावार्थ— इस प्रभुकी सभी प्रजायें स्तुति करती हैं, पर जब एक सच्चा उपासक हृदयसे इस प्रभुकी उपासना करता है, तभी उस प्रभुकी महिमा बढती है ॥ ३ ॥

विद्वान्, श्रेष्ठ तथा प्रजाओंके रक्षक मनुष्यों पर प्रभुकी कृपा होती है और वे हर तरहके संकटोंसे पार हो जाते हैं। वह प्रभु हमें भी अनेक तरहका बल प्रदान करे, ताकि हम अपनी रक्षा करनेमें समर्थ हों ॥ ४ ॥

प्रभु कोई बेचनेकी वस्तु नहीं है, वह तो भक्तका सर्वस्व होता है। अतः यदि कोई हजार, दसहजार या अपरिमित धन लेकर आए, और उस धनको देकर प्रभुको खरीदना चाहे, तो भक्त उस धनको ठुकराकर प्रभुको ही अपनाता है। भक्तके लिए प्रभुका मूल्य उस धनकी तुलनामें कहीं अधिक है ॥ ५ ॥

प्रभुका महत्त्व पिता और भाईसे भी बढकर है, पर माताका महत्त्व प्रभुके महत्त्वके समान ही है। माताका महत्त्व इतना अधिक होता है कि वह प्रभुके समान ही होती है। क्योंकि वह प्रभुकी तरह संसारका निर्माण करती है ॥ ६ ॥

७ क्वे॑यथ॒ क्वेद॑सि पुरु॒त्रा चि॒द्धि ते॒ मनः॑ ।
अल॑र्षि युध्म खजकृत् पुरंदर॒ प्र गा॑य॒त्रा अ॑गासिषुः ॥ ७ ॥
८ प्रास्मै॑ गाय॒त्रम॑र्चत वा॒वातु॒र्यः पु॑रंद॒रः ।
याभि॑ः का॒ण्वस्योप॑ ब॒र्हिरा॒सद॒ं यास॑द् व॒ज्री भि॒नत् पुरः॑ ॥ ८ ॥
९ ये ते॒ सन्ति॑ दश॒ग्विनः॑ श॒तिनो॒ ये स॑ह॒स्रिणः॑ ।
अश्वा॑सो॒ ये ते॒ वृष॑णो रघु॒द्रुव॒स्तेभि॑र्नस्तू॒यमा ग॑हि ॥ ९ ॥
१० आ त्व१॒॑द्य स॑ब॒र्दुघा॑ हु॒वे गा॑य॒त्रवे॑पसम् ।
इन्द्र॑ धे॒नुं सु॒दुघा॒मन्या॒मिष॑मु॒रुधा॑राम॒रंकृ॑तम् ॥ १० ॥

अर्थ— [७] (क्व इयथ) हे इन्द्र ! तू कहां जाता है और (क्व इत् असि) कहां रहता है, यह नहीं जाना जा सकता, (हि) क्योंकि (ते मनः पुरुत्रा चित्) तेरा मन सभी जगह जानेवाला है । हे (युध्म खजकृत् पुरंदर) युद्ध करनेमें कुशल, युद्ध करके शत्रुओंकी नगरियोंको तोडनेवाले इन्द्र ! तू हमारे पास (अलर्षि) आ, क्योंकि (गायत्राः) स्तुति गानेमें कुशल हम (प्र अगासिषुः) तेरी स्तुति गाते हैं ॥ ७ ॥

[८] (यः पुरंदरः वावातुः) जो शत्रुओंकी नगरियोंको तोडनेवाला इन्द्र भक्त पर कृपा करता है, (अस्मै) उस इन्द्रके लिए (गायत्रं अर्चत) गायत्री छन्दसे बनी हुई स्तुतिको गाओ । (याभिः) जिन स्तुतियोंसे प्रेरित होकर वह (काण्वस्य) कण्वके पुत्रके (बर्हिः उप आसदं यासत्) यज्ञके आसनके पास जाए, तथा (वज्री पुरः भिनत्) हाथोंमें वज्र धारण करके शत्रुके नगरोंको तोडे ॥ ८ ॥

[९] हे इन्द्र ! (ते) तेरे (ये दशग्विनः सन्ति) जो दस योजन तक जानेवाले (शतिनः) सैकडों योजन भागनेवाले तथा (सहस्रिणः) हजारों योजन जानेवाले घोडे हैं, तथा (ते) तेरे (ये वृषणः अश्वासः) जो बलवान् घोडे हैं तथा (रघुद्रुवः) तेज दौडनेवाले हैं, (तेभिः) उन घोडोंके द्वारा तू (नः तूयं आ गहि) हमारे पास शीघ्रतासे आ ॥ ९ ॥

[१०] (अद्य इन्द्रं आ) आज इन्द्रका सत्कार करनेके लिए ([१]सबर्दुघां) हर तरहकी कामनाओंको दुहनेवाली (गायत्रवेपसं) गायत्री रूपी छन्दसे युक्त शरीरवाली, (सुदुघां) सरलतासे फल देनेवाली (अन्यां) सब गुणोंसे युक्त (इषं) अन्न प्रदान करनेवाली (उरुधारां) अनेको धाराओंवाली तथा (अरंकृतां) अलंकारसे युक्त (धेनुं हुवे) स्तुति रूपी वाणीको बोलता हूं ॥ १० ॥

१ सबर्दुघा सुदुघा अन्या अलंकृता— वाणी कामनाओंको दुहनेवाली, उत्तम फल देनेवाली, गुणोंसे युक्त तथा उत्तम अक्षरोंसे युक्त हो ।

भावार्थ— परमात्मा सर्वव्यापी होनेसे वह कब कहां जाता है और कब कहां रहता है, यह कहना या उसका पता लगाना ही असंभव है क्योंकि वह तो सदा ही सर्वत्र संचार किया करता है । वह तो सबके पास जाता है, पर सब उसकी स्तुति नहीं करते, केवल भक्त ही उसकी स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

वह इन्द्र अपने भक्तों पर कृपा करता है, अतः उसके भक्त भी उसकी स्तुति करते हैं । इसी तरह राजा भी अपने अनुयायियोंकी हर तरहसे रक्षा करे, तभी उसके अनुयायी उस राजाकी प्रशंसा करेंगे ॥ ८ ॥

इन्द्र अर्थात् राजाओंके पास तेजीसे दौडनेवाले तथा एकही समयमें सैकडों मीलका रास्ता तय करनेवाले घोडे होने चाहिए, ताकि वह राज्यमें सर्वत्र संचार कर सके । अध्यात्ममें आत्माके वाहन इन्द्रिय रूपी घोडे इतने बलवान् हों कि कई वर्षों तक कार्यक्षम रह सकें ॥ ९ ॥

सब कामनाओंको देनेवाली, गायत्री छन्दवाली, सरलतासे उत्तम फल देनेवाली, सब गुणोंसे युक्त, अन्न प्रदान करनेवाली तथा उत्तम अक्षरोंसे युक्त वेदवाणीसे स्तुति करने पर इन्द्र-प्रभु प्रसन्न होते हैं ॥ १० ॥

×

११ यत् तुदत् सूर एतशं वङ्कू वातस्य पर्णिना ।
वहत् कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुः त्सरद् गन्धर्वमस्तृतम् ॥ ११ ॥
१२ य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसु- रिष्कर्ता विहुतं पुनः ॥ १२ ॥
१३ मा भूम निष्ट्या इवे- न्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥ १३ ॥
१४ अमन्महीदनाशवो ऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सकृत् सु ते महता शूर राधसा ऽनु स्तोमं मुदीमहि ॥ १४ ॥

अर्थ— [११] (यत्) जब (सूरः) सूर्यने (वातस्य) वायुके (वंकू पर्णिना) टेढी मेढी गतिवाले पत्तोंसे (एतशं तुदत्) मेघको झकझोरा, तब (शतक्रतुः) सैंकडों उत्तम काम करनेवाले इन्द्र अर्थात् विद्युत् (आर्जुनेयं कुत्सं) अत्यन्त चमकीले प्रकाशको (वहत्) ले गया, और तब वह (अस्तृतं गन्धर्वं) किसीसे भी हिंसित न होनेवाले मेघके पास (त्सरत्) पहुंचा ॥ ११ ॥

आर्जुनेय— अर्जुन = सफेद— अर्जुनसे उत्पन्न आर्जुनेय = चमकीला.
कुत्सः = कु – अन्धकारको त्स = दूर करनेवाला प्रकाश.

[१२] (यः) जिस इन्द्रने (अभिश्रिषः ऋते चित्) पट्टीके बिना भी (जत्रुभ्यः आतृदः पुरा) गर्दनसे खूनकी धारा बहनेसे पूर्व ही (संधिं संधाता) उस घावकी संधियोंको जोड दिया, वही (मघवा पुरूवसुः) ऐश्वर्यवान् तथा अनेक तरहके धन अपने पास रखनेवाला इन्द्र (विहुतं पुनः इष्कर्ता) घावको फिर सुधार देता है ॥ १२ ॥

[१३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हम (निष्ट्या इव मा भूम) नीच मनुष्योंकी तरह न हों । तथा (त्वत्) तेरी कृपासे (अरणाः इव) आनन्दसे रहित भी न हों (प्रजहितानि वनानि न) शाखा आदिसे रहित ठूंठे वृक्षोंकी तरह हम न हों । हे (अद्रिवः) वज्रधारी इन्द्र ! (दुः ओषासः अमन्महि) दूसरोंके द्वारा न जलाये जाने योग्य घरोंमें रहकर हम तुम्हारी स्तुति करें ॥ १३ ॥

[१४] हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! हम (अनाशवः) शीघ्रता न करते हुए (अनुग्रासः) उग्र न होते हुए (अमन्महि) तेरी स्तुति करें । हे (शूर) शूर इन्द्र ! (ते) तेरे लिए हम (सकृत्) एक बारके लिएही सही, पर (महता राधसा) अत्यधिक धनसे (सु स्तोमं अनु मुदीमहि) उत्तम यज्ञको सम्पन्न करें ॥ १४ ॥

१ अनाशवः अनुग्रासः अमन्महि— शीघ्रता न करते हुए तथा उग्र न होते हुए हम प्रभुकी स्तुति करें ।

भावार्थ— जब सूर्यने वायुकी टेढी मेढी लहरोंको प्रेरित करके मेघको झकझोरा, तब मेघोंके घर्षणसे विद्युत्की उत्पत्ति हुई और उससे चमकीला प्रकाश चारों ओर फैल गया, तब मेघ भी नीचे गिरने लगा ॥ ११ ॥

इन्द्र शल्य क्रिया और घावोंकी चिकित्सामें भी प्रवीण है । वह युद्धमें अपने वीरोंके कहीं घाव लगने पर उस घावमेंसे खून रिस भी नहीं पाता कि टांके आदि लगा कर उस घावको जोड देता है और उसे चिकित्साके द्वारा भर देता है । इस मंत्रसे स्पष्ट होता है कि वैदिककालमें शल्य क्रिया या शल्य चिकित्सा की जाती थी ॥ १२ ॥

हम इन्द्रकी कृपासे कभी भी नीच मनुष्योंकी तरह व्यवहार न करें, तथा कभी भी आनन्द रहित न हों । नीच मनुष्योंकी तरह व्यवहार करनेवाले लोग सदा आनंदसे रहित ही होते हैं । इन्द्र प्रभुकी कृपासे हम शाखा आदिसे रहित ठूंठे पेडकी तरह पुत्रपौत्रादिसे रहित भी न हों । हम अपने पुत्रपौत्रादिकोंके साथ उत्तम और विशाल घरमें रहते हुए प्रभुकी स्तुति किया करें ॥ १३ ॥

प्रभुकी स्तुति करते समय मनुष्य शीघ्रता न करे, और न अपने मनमें क्रोध, द्वेष आदि दुष्ट भावनाओंकोही उत्पन्न होने दे । सदा प्रेमपूर्वकही प्रभुकी स्तुति करे । मनुष्य अपने जीवनमें एक बारही सही, पर बहुत साधन खर्च करके यज्ञ करे और उसे प्रभुको समर्पित कर दे ॥ १४ ॥

१५ यदि स्तोमं मम श्रव-दस्माकमिन्द्रमिन्दवः ।
तिरः पवित्रं ससृवांस आशवो मन्दन्तु तुग्र्यावृधः ॥ १५ ॥
१६ आ त्वद्य सधस्तुतिं वावातुः सख्युरा गहि ।
उपस्तुतिर्मघोनां प्र त्वावत्वधा ते वश्मि सुष्टुतिम् ॥ १६ ॥
१७ सोता हि सोममद्रिभि-रेमेनमप्सु धावत ।
गव्या वस्त्रेव वासयन्त इन्नरो निर्धुक्षन् वक्षणाभ्यः ॥ १७ ॥
१८ अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा ऽऽ जाता सुक्रतो पृण ॥ १८ ॥

अर्थ— [१५] (यदि) जब वह इन्द्र (मम स्तोमं श्रवत्) मेरे स्तोत्रको सुने, तथा (अस्माकं) हमारे स्तोत्रको सुने, तब (तिरः पवित्रं ससृवांसः) उत्साह देनेवाले, छलनीमें जानेवाले (आशवः) शीघ्रतासे बहनेवाले तथा (तुग्र्या वृधः) जलसे बढनेवाले (इन्दवः इन्द्रं मन्दन्तु) सोमरस इन्द्रको आनन्दित करें ॥ १५ ॥

[१६] हे इन्द्र ! (वावातुः सख्युः) तेरी सेवा करनेवाले मेरे मित्रकी (सधस्तुतिं) साथ मिलकर की गई स्तुतिको (अद्य) आज सुनकर तू (आ गहि) हमारे पास आ। (मघोनां उप स्तुतिः) दूसरे धनवानोंकी स्तुति भी (त्वा प्र अवतु) तेरे पास पहुंचे। (अध) अब तो मैं (सुष्टुतिं वश्मि) तेरी उत्तम स्तुति करना चाहता हूँ ॥ १६ ॥

[१७] हे ऋत्विजो ! (अद्रिभिः सोमं सोत) पत्थरोंसे कूटकर सोमको निचोडो, (आ) उसके बाद (एनं अप्सु धावत) इस सोमको जलोंमें मिलाओ। (गव्या वस्त्रा इव) जैसे बैलके चमडेसे लोग भूमिको ढकते हैं, उसी तरह मेघोंको (आच्छादयन्तः) व्यापते हुए (नरः) मरुत् गण (वक्षणाभ्यः निर्धुक्षन्) नदियोंके लिए जलकी धाराओंको दुहते हैं ॥ १७ ॥

[१८] हे इन्द्र ! (अध) इस समय तू चाहे (ज्मः) पृथ्वीपर हो, (अध वा) अथवा (दिवः) अंतरिक्षमें हो अथवा (बृहतः रोचनात् अधि) इस विशाल तथा प्रकाशमान द्युलोकसे भी ऊपर हो, तो भी (अया तन्वा गिरा) इस छोटीसी स्तुतिसे भी तू (वर्धस्व) वृद्धिको प्राप्त हो, तथा हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! तू (मम जाता पृण) मुझसे उत्पन्न मेरे पुत्रादिकोंको तू पूर्ण कर, उन्हें स्वस्थ एवं सुखी कर ॥ १८ ॥

भावार्थ— जब जब मनुष्य इन्द्रकी स्तुति करें, तब तब वे अच्छी तरह छाने हुए तथा शीघ्र आनन्द उत्पन्न करनेवाले सोमरस इन्द्रको देकर उसे आनन्दित करें ॥ १५ ॥

मेरे तथा अन्योंके द्वारा मिलकर की गई इन्द्रकी स्तुति उसके पास पहुंचकर उसे आनन्दित करे ॥ १६ ॥

जिस तरह लोग पशुओंके चर्मसे पृथ्वीको आच्छादित करते हैं, उसी तरह मरुत् अर्थात् वायु प्रथम मेघोंको व्यापते हैं, और फिर उनसे जलको बरसाते हैं, जिससे नदियोंमें जल आता है ॥ १७ ॥

हे इन्द्र ! तू चाहे इस समय पृथ्वीपर हो, अन्तरिक्षमें हो, या द्युलोकमें हो, तो भी तू मेरी इस स्तुतिको सुन और वृद्धिको प्राप्त हो, तथा स्तुतिसे प्रसन्न होकर हमारी सन्तानोंको पुष्ट कर ॥ १८ ॥

१९ इन्द्राय सु मदिन्तमं सोमं सोता वरेण्यम् ।
शक्र एणं पीपयद् विश्वया धिया हिन्वानं न वाजयुम् ॥ १९ ॥
२० मा त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा ।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥ २० ॥
२१ मदेनेषितं मद्—मुग्रमुग्रेण शवसा ।
विश्वेषां तरुतारं मदच्युतं मदे हि ष्मा ददाति नः ॥ २१ ॥
२२ शेवारे वार्या पुरु देवो मर्ताय दाशुषे ।
स सुन्वते च स्तुवते च रासते विश्वगूर्तो अरिष्टुतः ॥ २२ ॥

अर्थ— [१९] हे स्तोताओ ! (इन्द्राय) इस इन्द्रके लिए (मदिन्तमं) अत्यन्त आनन्द देनेवाले (वरेण्यं सोमं सोत) तथा श्रेष्ठ सोमरसको निचोडो ! ताकि (शक्रः) यह इन्द्र (विश्वया धिया हिन्वानं) अपनी संपूर्ण बुद्धिसे स्तुति करनेवाले, तथा (वाजयुं) अन्न प्राप्तकी इच्छा करनेवाले इस यजमानको (पीपयत्) पूर्ण करे ॥ १९ ॥

[२०] हे इन्द्र ! (अहं) मैं (सवनेषु) यज्ञोंमें (सोमस्य गल्दया गिरा) सोमको छानने रूप क्रिया तथा स्तुतिसे (त्वा) तुझे सदा प्रसन्न करूं, पर मैं (सदा याचन्) 'मुझे यह दे, मुझे वह दे' इस प्रकार हमेशा कुछ न कुछ मांगता हुआ मैं (मृगं न भूर्णिं) सिंहके समान भयंकर स्वामी (त्वा मा चुक्रुधं) तुझे क्रुद्ध न कर दूं। अथवा (ईशानं कः न याचिषत्) अपने प्रभुसे कौन नहीं मांगता ? अर्थात सभी मांगते हैं ॥ २० ॥

१ ईशानं कः न याचिषत्— अपने प्रभुसे कौन नहीं मांगता ?

[२१] (मदेन इषितं) आनन्दसे तैय्यार किए गए इस (उग्रं मदं) वीर्यशाली तथा आनन्ददायक सोमरसको इन्द्र पीए और (उग्रेण शवसा) अत्यधिक शक्तिसे युक्त हो फिर वह (मदे) आनन्दमें (नः) हमें (विश्वेषां तरुतारं) सभी शत्रुओंका विनाश करनेवाले, तथा (मदच्युतं) शत्रुओंके मद-अभिमानको क्षीण करनेवाले पुत्रको (ददाति) दे ॥ २१ ॥

[२२] (विश्वगूर्तः अरिष्टुतः देवः) संसारकी रक्षा करनेवाला तथा शत्रुओंसे भी प्रशंसित होनेवाला देव इन्द्र (शेवारे दाशुषे मर्ताय) सुखदायक कर्म करनेवाले तथा दान देनेवाले मनुष्यको (पुरु वार्या रासते) बहुत सा वरणीय अर्थात् श्रेष्ठ धन प्रदान करता है । (सः) वही देव (सुन्वते स्तुवते च) सोम देनेवाले तथा स्तुति करनेवाले मनुष्यको भी धन प्रदान करता है ॥ २२ ॥

भावार्थ— जिस यजमानकी ओरसे उसके स्तोता इन्द्रको अत्यन्त आनन्द देनेवाले तथा श्रेष्ठ सोमरसको प्रदान करते हैं, वह इन्द्र प्रसन्न होकर उस यजमानकी सारी अभिलाषायें पूर्ण करता है ॥ १९ ॥

मनुष्य अपने प्रभुसे अवश्य याचना करे, पर जो प्रभुसे हमेशा कुछ न कुछ मांगता ही रहता है, उससे प्रभु भी क्रुद्ध हो जाते हैं । अतः मनुष्य प्रभुसे मर्यादित याचना ही करे ॥ २० ॥

सोमरस शक्ति बढानेवाला तथा आनन्द बढानेवाला होता है । इस सोमरसको पीकर इन्द्र यथेच्छ वर प्रदान करता है ॥ २१ ॥

इस इन्द्रकी शत्रु भी प्रशंसा करते हैं । वीर ऐसा हो कि उसकी वीरता देखकर शत्रु भी प्रशंसा करें । यह वीर इन्द्र कल्याणकारी कर्म करनेवाले, दान देनेवाले, यज्ञ करनेवाले तथा स्तुति करनेवालेको अनेक तरहके श्रेष्ठ धन प्रदान करता है ॥ २२ ॥

२३ एन्द्रं याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा ।
सरो न प्रास्युदरं सपीतिभि--रा सोमेभिरुरु स्फिरम् ॥ २३ ॥

२४ आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥ २४ ॥

२५ आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ॥ २५ ॥

२६ पिबा त्व१स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुति--श्चारुर्मदाय पत्यते ॥ २६ ॥

अर्थ— [२३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (आ याहि) तू आ और हे (देव) तेजस्वी इन्द्र ! (चित्रेण राधसा मत्स्व) चाहने योग्य धन देकर तू हमें आनन्दित कर। (सपीतिभिः सोमेभिः) सुनहरे रंगके सोमरसोंसे तू (उरु स्फिरं उदरं) विशाल और बडे पेटको (सरः न) तालाबके समान (प्रासि) पूर्ण कर डाल ॥ २३ ॥

[२४] (हिरण्यये रथे युक्ताः) सोनेके रथमें जोडे गए (ब्रह्मयुजः केशिनः) मंत्रसे जुडनेवाले तथा अयालवाले (सहस्रं हरयः) हजारों घोडे (सोमपीतये त्वा आ वहन्तु) सोम पीनेके लिए तुझे ले आवें, तथा (शतं आ) सौ घोडे तुझे ले आवें ॥ २४ ॥

[२५] हे इन्द्र ! (विवक्षणस्य मध्वः अन्धसः) जिसकी तू इच्छा करता है, ऐसे आनन्दकारी सोमरसको (पीतये) पीनेके लिए (त्वा) तुझे (मयूरशेप्या शितिपृष्ठा) मोरके समान रंगवाले तथा सफेद पीठोंवाले (हरी) दो घोडे (त्वा हिरण्यये रथे आ वहतां) तुझे सोनेके रथमें यहां ले आवें ॥ २५ ॥

[२६] हे (गिर्वणः) वाणियोंसे स्तुत्य इन्द्र ! (पूर्वपाः इव) जिस तरह तू पहले पीता था, उसी तरह आज भी (अस्य सुतस्य परिष्कृतस्य रसिनः) इस निचोडे गए तथा अच्छी तरहसे तैयार किए गए इस सोमरसको तू (पिब) पी। (इयं चारुः आसुतिः) यह सुन्दर और निचोडा गया सोमरस (मदाय पत्यते) तुझे आनन्द देनेके लिए बह रहा है ॥ २६ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू हमारे पास आकर हमारे द्वारा दिए गए सोनेके रंगवाले सोमरसको खूब पी और हमें उत्तम धन देकर हमें आनन्दित कर ॥ २३ ॥

इन्द्रका रथ सोनेका है, जिसमें हजारों घोडे जोडे जाते हैं और वे घोडे इन्द्रको सर्वत्र ले जाते हैं ॥ २४ ॥

जिन आनन्दकारी सोमरसोंको इन्द्र पीना चाहता है, उन्हें पीनेके लिए मोर जैसे रंगवाले तथा सफेद पीठवाले घोडे तुझे सोनेके रथमें बिठाकर हमारे पास ले आवें ॥ २५ ॥

हे इन्द्र ! अच्छी तरहसे निचोडे गए तथा दूध आदि डालकर अच्छी तरहसे तैय्यार किए गए ये सोमरस तेरे लिए हैं, तू इन्हें पी और आनन्दित हो ॥ २६ ॥

२७ य एको अस्ति दंसना महाँ उग्रो अभि व्रतैः ।
गमत् स शिप्री न स योषदा गमद्धवं न परि वर्जति ॥ २७ ॥
२८ त्वं पुरं चरिष्ण्वं वधैः शुष्णस्य सं पिणक् ।
त्वं भा अनु चरो अध द्विता यदिन्द्र हव्यो भुवः ॥ २८ ॥
२९ मम त्वा सूर उदिते मम मध्यंदिने दिवः ।
मम प्रपित्वे अपिशर्वरे वसवा स्तोमासो अवृत्सत ॥ २९ ॥
३० स्तुहि स्तुहीदेते घा ते मंहिष्ठासो मघोनाम् ।
निन्दिताश्वः प्रपथी परमज्या मघस्य मेध्यातिथे ॥ ३० ॥

अर्थ – [२७] (यः) जो इन्द्र ! (एकः) अकेला-अद्वितीय (दंसना महान्) अपने उत्तम कर्मोंके कारण सबसे बडा (उग्रः) पराक्रमी तथा (व्रतैः अभि) अपने व्रतोंके कारण सबसे श्रेष्ठ है, ऐसा (सः शिप्री) सुन्दर रूपवाला वह इन्द्र (गमत्) हमारे पास आवे, (सः न योषत्) वह हमसे दूर न हो, (हवं आ गमत्) हमारे यज्ञमें वह आवे, (न परिवर्जति) वह हमारे यज्ञको न छोडे ॥ २७ ॥

[२८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् त्वं) जब तूने (वधैः) अपने शस्त्रास्त्रोंसे (शुष्णस्य चरिष्ण्वं पुरं) शुष्ण असुरके चलते फिरते नगरको (सं पिणक्) तोडा, तथा (त्वं) तूने (भाः अनुचरः) प्रकाश मार्गका अनुसरण किया (अधः) उसके बादही तू (द्विता हव्यः भुवः) दो तरहसे प्रशंसनीय हुआ ॥ २८ ॥

१ भाः अनु चरत्, हव्यः भुवत्— जो प्रकाश मार्गका अनुसरण करता है, वह हर तरहसे प्रशंसनीय होता है ।

[२९] हे (वसो) सबको बसानेवाले इन्द्र ! (सूरे उदीते) सूर्यके उदय होनेपर (मम स्तोमासः) मेरे स्तोत्र (त्वा अवृत्सत) तुझे प्राप्त हों, (दिवः मध्यन्दिने मम) दिनके मध्यान्ह कालमें भी मेरे स्तोत्र तुझे प्राप्त हों, (प्रपित्वे अपि शर्वरि) दिनके अस्त होने तथा रात्रिके शुरु होनेपर भी (मम आ) मेरे स्तोत्र तुझे प्राप्त हों ॥ २९ ॥

[३०] हे (मेध्यातिथे) मेध्यातिथे ! (ते एते) तेरे, ये लोग (मघोनां मघस्य मंहिष्ठासः) धनवानोंके बीचमें धनोंको अत्यधिक देनेवाले, (निन्दिताश्वः) दूसरोंको नीचा दिखानेवाले घोडोंसे युक्त (प्रपथी) उत्तम मार्गवाले तथा (परमज्या) उत्तम धनुषवाले हैं, अतः तू इनकी (स्तुहि स्तुहि) बार बार प्रशंसा कर ॥ ३० ॥

मेध्य-अतिथिः– ज्ञानवान् अतिथि

भावार्थ— वह इन्द्र अद्वितीय है, उसके समान कोई नहीं है, पर वह अपने उत्तम कर्मोंके कारणही सबसे बडा हुआ है तथा उत्तम व्रतोंका आचरण करनेके कारणही वह अन्योंसे श्रेष्ठ भी हुआ है । वह इन्द्र सदा हमारे पासही रहे कभी भी हमसे दूर या अलग न हो ॥ २७ ॥

इस इन्द्र-अर्थात् सूर्यने अन्धकाररूपी असुरकी चलती फिरती नगरी रात्रिको तोडा और सर्वत्र प्रकाश फैलाया । प्रातः होते ही चर-अचर दोनों प्रकारकी सृष्टियां इस इन्द्र-सूर्यकी स्तुति करने लगीं ॥ २८ ॥

सूर्यके उदय होनेके समय अर्थात प्रातःकाल, दिनके मध्यमें-मध्यान्ह तथा सूर्य अस्त होने तथा रात्रीके शुरु होनेके समय अर्थात् सायं सन्ध्याके समय इन्द्रकी स्तुति करनी चाहिए । इस मंत्रमें प्रातः सवन माध्यन्दिन सवन तथा सायंसवन का विधान है ॥ २९ ॥

ज्ञानवान् अतिथि जहांपर भी और जिस घरमें भी जाए, वहींसे उसे अत्यधिक धन मिले और वह अतिथि सबकी प्रशंसा करे ॥ ३० ॥

३१ आ यदश्वान् वनन्वतः श्रद्धयाहं रथे रुहम् ।
उत वामस्य वसुनश्चिकेतति यो अस्ति याद्वः पशुः ॥ ३१ ॥
३२ य ऋज्रा मह्यं मामहे सह त्वचा हिरण्यया ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु सौभगा ऽऽसंगस्य स्वनद्रथः ॥ ३२ ॥
३३ अध प्लायोगिरति दासदन्या नासंगो अग्ने दशभिः सहस्रैः ।
अधोक्षणो दश मह्यं रुशन्तो नळा इव सरसो निरतिष्ठन् ॥ ३३ ॥
३४ अन्वस्य स्थूरं ददृशे पुरस्ता दनस्थ ऊरुरवरम्बमाणः ।
शश्वती नार्यभिचक्ष्याह सुभद्रमर्य भोजनं बिभर्षि ॥ ३४ ॥

अर्थ— [३१] (यत्) जब (अहं) मैं (वनन्वतः) मेरी भक्ति करनेवाले मनुष्यके (अश्वान् श्रद्धया आरुहम्) घोडोंपर श्रद्धासे चढा, और (रथे आ) रथ पर चढा, तब (यः) जो (याद्वः) मनुष्योंमें श्रेष्ठ और (पशुः) पशुओंवाला है, उसने (वामस्य वसुनः चिकेतति) सुन्दर धनको देना चाहा ॥ ३१ ॥

[३२] (यः) जिसने (मह्यं) मुझे (ऋज्रा) सत्ययुक्त (हिरण्यया) सोने तथा (त्वचा सह) मृगचर्म आदिसे युक्त धन (ममहे) दिए, (एषः) वह यह मनुष्य (विश्वानि सौभगा अभि अस्तु) सम्पूर्ण सौभाग्योंको प्राप्त करके सबसे श्रेष्ठ बन जाए, तथा (आसंगस्य) इस धनवान्का (स्वनत् रथः) रथ सदा आवाज करता रहे ॥ ३२ ॥

[३३] हे (अग्ने) तेजस्वी देव ! (अध) अतः (प्लायोगिः आसंगः) प्लयोगके पुत्र आसंगने (दशभिः सहस्रैः) दसों, हजारों तरहके धन देकर (अन्यान् अति दासत्) दूसरे दानियोंसे ऊपर उठ गया है, (अधः) इसके बाद (मह्यं) मुझे दिए गए (दश रुशन्तः उक्षणः) दस तेजस्वी बैल (सरसः नळाः इव) तालाबसे जैसी घास उगती है, उसी तरह ((निरतिष्ठन्) अत्यधिक विस्तृत हुए ॥ ३३ ॥

[३४] (शश्वती नारी) ज्ञानसे युक्त स्त्री (अभिचक्ष्य आह) सब कुछ देखकर कहती है कि (अस्य) इस इन्द्रका (स्थूरं पुरस्तात् ददृशे) स्थूलरूप पहले दिखाई देता है, पर इस स्थूलरूपके पीछे (अनस्थः ऊरुः अवरम्बमाणः) अस्थिसे रहित, विस्तृत तथा सर्वत्र व्याप्त रूप है। हे (अर्य) श्रेष्ठ इन्द्र ! तू ही (सुभद्रं) उत्तम कल्याणकारी (भोजनं विभर्षि) भोजन धारण करता है ॥ ३४ ॥

भावार्थ— जब जब कोई ज्ञानी अतिथि किसीके घरमें प्रेमसे पधारे, तब तब वह यजमान उस अतिथिका धनादिसे सत्कार करे ॥ ३१ ॥

धन प्राप्त करके वह ज्ञानी अतिथि यजमानको इस प्रकार आशीर्वाद दे कि जिस यजमानने मुझे सोना, मृगचर्म आदि अनेक तरहके धन दिए हैं, वह दाता सदा सौभाग्योंसे युक्त रहे और उसका रथ सदा गति करता रहे अर्थात् वह सदा रथपर चढकर घूमा करे ॥ ३२ ॥

मनुष्य यथाशक्ति दान देनेकी कोशिश करे तथा बैल यदि देने हों, तो ऐसे गाय बैल दे कि जिनसे सन्तति होकर उनका विस्तार हो। बूढी गायें या बूढे बैल दानमें न दे ॥ ३३ ॥

ज्ञानसे युक्त स्त्री अपनी सूक्ष्म दृष्टिसे प्रभुके रूपको जानकर कहती है कि आंखोंके सामने जो संसार है, वह प्रभुका स्थूलरूप है, पर इस संसारके पीछे जो प्रभूका सूक्ष्मरूप है, वह पंचतत्वसे परे, विस्तृत और सर्वव्यापक है। वही सूक्ष्मरूप प्रभु सारे संसारके लिए भोजनादि प्रदान करता है ॥ ३४ ॥

[२]

(ऋषिः- १-४० मेधातिथिः काण्वः, आङ्गिरसः प्रियमेधश्च, ४१-४२ मेधातिथिः काण्वः ।
देवताः- इन्द्रः, ४१-४२ विभिन्दुः । छन्द- गायत्री, २८ अनुष्टुप् ।)

३५ इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयिन् ररिमा ते ॥ १ ॥
३६ नृभिर्धूतः सुतो अश्नै रव्यो वारैः परिपूतः । अश्वो न निक्तो नदीषु ॥ २ ॥
३७ तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः । इन्द्र त्वास्मिन् त्सधमादे ॥ ३ ॥
३८ इन्द्र इत् सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः । अन्तर्देवान् मर्त्यांश्च ॥ ४ ॥
३९ न यं शुक्रो न दुराशी र्न तृप्रा उरुव्यचसम् । अपस्पृण्वते सुहार्दम् ॥ ५ ॥
४० गोभिर्यदीमन्ये अस्मन् मृगं न व्रा मृगयन्ते । अभित्सरन्ति धेनुभिः ॥ ६ ॥

---

[२]

अर्थ— [३५] हे (वसो) सबको बसानेवाले इन्द्र ! (इदं सुतं अन्धः) इस निचोडे गए अन्नरूपी सोमरसको (सुपूर्णं उदरं पिब) पूरे पेट भरने तक पी । हे (अन् आभयिन्) किसीसे भी न डरनेवाले इन्द्र ! (ते ररिम) तुझे हम ये रस प्रदान करते हैं ॥ १ ॥

[३६] ये सोम (नृभिः धूतः) मनुष्योंके द्वारा तोडकर लाए गए (अश्नैः सुतः) पत्थरोंसे कूटे गए तथा (अव्यः वारैः परिपूतः) भेडके बालोंसे छानकर पवित्र किए गए तथा (अश्वः न) घोडेके समान (नदीषु निक्तः) जलोंमें मिलाए गए हैं ॥ २ ॥

[३७] हे इन्द्र ! (ते) तेरे लिए हम (यवं यथा) जौसे बने पुरोडासके समानही (तं) उस सोमरसको (गोभिः श्रीणन्तः) गायके दूधमें मिश्रित करके (स्वादुं अकर्म) स्वादिष्ट बनाते हैं । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वां अस्मिन् सधमादे) तुझे इस यज्ञमें हम बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[३८] (देवान् मर्त्यान् च अन्तः) देवों और मनुष्योंके बीचमें (एकः इन्द्रः इत्) एक इन्द्रही (सोमपाः) सोमरसको पीनेवाला है । (सुतपाः इन्द्रः विश्वायुः) सोमरसको पीनेवाला इन्द्रही दीर्घायु होता है ॥ ४ ॥

[३९] (यं उरुव्यचसं सुहार्दं) जिस अत्यन्त विस्तृत और उत्तम हृदयवाले इन्द्रको (शुक्रः न अपस्पृण्वते) तेजस्वी सोमरस प्रसन्न नहीं करता हो, ऐसी बात नहीं, (दुराशीः न) कठिनतासे पीनेके लिए मिलनेवाला सोमरस प्रसन्न नहीं करता हो, ऐसी बात नहीं, तथा (तृप्राः) तृप्त करनेवाले सोमरस (न) तृप्त न करते हों, ऐसी भी बात नहीं ॥ ५ ॥

[४०] (अस्मत् अन्ये) हमारे अलावा दूसरे लोग भी (यत्) जब (ईं) इस इन्द्रको (गोभिः) गौदुग्ध आदि लेकर (व्राः मृगं न) जिस प्रकार शिकारी हिरणोंको खोजते हैं, उसी प्रकार (मृगयन्ते) खोजते फिरते है, तब वे (धेनुभिः) उत्तम स्तुतियोंसे युक्त होकर उस इन्द्रके पास (अभित्सरन्ति) जाते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम तुझे ये सोमरस प्रदान करते हैं, तू इन रसोंको पेट भरने तक पी ॥ १ ॥

सोम पहले तोडकर लाए जाते हैं, फिर पत्थरों द्वारा कूटकर उनका रस निकाला जाता है, फिर भेडके ऊनसे बनी हुई छलनीसे उसे छाना जाता है, फिर जिस प्रकार घोडेको नदीमें नहलाया जाता है, उसी तरह उस सोमरसमें पानी मिलाया जाता है ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हम इस सोमरसको उसमें दूध आदि मिश्रित करके स्वादिष्ट बनाते हैं और तुम्हें बुलाते हैं ॥ ३ ॥

देवों और मनुष्योंमें यह इन्द्रही भरपूर सोमरस पीनेवाला है, इसीलिए उसकी आयु भी दीर्घ होती है । सोमरसका पान करनेवाले की आयु दीर्घ होती है ॥ ४ ॥

इस अत्यन्त विस्तृत तथा उत्तम हृदयवाले इन्द्रको सोमरस हर तरहसे तृप्त करते हैं ॥ ५ ॥

दूसरे लोगभी इस इन्द्रको जाननेका प्रयत्न करते हैं, फिर जान लेनेके बाद उसकी स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

४१ त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य । स्वे क्षये सुतपाव्नः ॥ ७ ॥
४२ त्रयः कोशासः श्चोतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः । समाने अधि भार्मन् ॥ ८ ॥
४३ शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः । दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य ॥ ९ ॥
४४ इमे त इन्द्र सोमास्तीव्रा अस्मे सुतासः । शुक्रा आशिरं याचन्ते ॥ १० ॥
४५ ताँ आशिरं पुरोळाशमिन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि । रेवन्तं हि त्वा शृणोमि ॥ ११ ॥
४६ हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् । ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥ १२ ॥

अर्थ— [४१] (सुतपाव्नः देवस्य इन्द्रस्य) सोमरसोंको पीनेवाले देव इन्द्रके पीनेके लिए (स्वे क्षये) मनुष्योंके सुखदायक घरोंमें (त्रयः) तीनों समयमें (सुतासः सोमाः सन्तु) निचोडे हुए सोम तैय्यार रहें ॥ ७ ॥

[४२] (समाने भार्मन् अधि) एक ही यज्ञमें (त्रयः कोशासः श्चोतन्ति) तीन बर्तन सोमरस चुआते हैं और (तिस्रः सुपूर्णाः चम्वः) तीन सोमरससे पूर्ण चमचे आहुति देते हैं ॥ ८ ॥

[४३] हे सोम ! तू (शुचिः असि) शुद्ध और पवित्र है, (पुरु निष्ठा) अनेकोंके हृदयोंमें तू रहनेवाला है तथा (मध्यतः क्षीरैः आशीर्तः) बीच बीचमें दूधसे मिश्रित होता है, तथा (दध्ना) दहीसे भी मिश्रित होता है, और तू (शूरस्य मन्दिष्ठः) शूरको और उत्साह देनेवाला होता है ॥ ९ ॥

[४४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (अस्मे सुतासः) हमारे द्वारा निचोडे गए (इमे तीव्राः शुक्राः सोमाः) ये तीखे और तेजस्वी सोमरस (आशिरं याचन्ते) दूध आदिकी इच्छा करते हैं ॥ १० ॥

[४५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (इमं पुरोडाशं) इस पुरोडाश तथा (आशिरं सोमं) दूधसे मिश्रित सोमरस अर्थात् (तान्) उन सबको तू (श्रीणीहि) भक्षण कर, (हि) क्योंकि मैं (त्वां रेवन्तं शृणोमि) तुझे धनवान् सुनता हूँ ॥ ११ ॥

[४६] (सुरायां दुर्मदासः न) सुरा पीनेके बाद दुष्ट मस्त होकर परस्पर युद्ध करते हैं, उसी तरह हे इन्द्र ! (पीतासः) पिए गए ये सोमरस (हृत्सु) तेरे हृदयमें (युध्यन्ते) परस्पर युद्ध करते हैं । तथा (ऊधः न) जिस तरह भरे हुए थनोंवाली गायकी जिस तरह लोग प्रशंसा करते हैं, उसी तरह (नग्नाः जरन्ते) स्तोता तेरी स्तुति करते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ— हर मनुष्यके घरमें प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीन यज्ञ हों और उन यज्ञोंमें इन्द्रको सोमरस अर्पित किया जाए ॥ ७ ॥

तीनों सवनोंमें इस इन्द्रके लिए सोमरसकी आहुति दी जाती है ॥ ८ ॥

यह सोम पीनेवालेके हृदयोंको उत्साहसे भर देता है । ये सोमरस स्वादमें तीखे होनेके कारण इसमें दूध और दही आदि मिलाकर पिया जाता है ॥ ९ ॥

सोमरस तेजस्वी और स्वादमें तीखे होते हैं, अतः जब उनमें गायका दूध मिलाया जाता है, तभी वे पीनेके योग्य होते हैं ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तू धनवान् है अतः मेरे द्वारा दिए गए इस पुरोडाश तथा दुग्धमिश्रित सोमरसको पीकर हमें धन प्रदान कर ॥ ११ ॥

सोम पीनेके बाद ये सोमरस शरीरमें उत्साहका संचार करते हैं ॥ १२ ॥

×

४७ रेवाँ इद् रेवतः स्तोता स्यात् त्वावतो मघोनः । प्रेदु हरिवः श्रुतस्य ॥ १३ ॥
४८ उक्थं चन शस्यमानमगोररिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानं ॥ १४ ॥
४९ मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः । शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥ १५ ॥
५० वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १६ ॥
५१ न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमं चिकेत ॥ १७ ॥
५२ इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ १८ ॥

अर्थ— [४७] हे (हरिवः) तेजसे युक्त इन्द्र ! तेरी (स्तोता रेवान् स्यात्) स्तुति करनेवाला धनवान् हो, क्योंकि (त्वावतः रेवतः मघोनः) तेरे जैसे धनवान् और ऐश्वर्यशालीका स्तोता भी (प्र इत् उ) धनवान् होताही है ॥ १३ ॥

[४८] (अगोः अरिः) स्तुति न करनेवालोंका शत्रु वह इन्द्र (गीयमानं गायत्रं) गाये जाते हुए तथा (शस्यमानं उ चन) बोले जाते हुए स्तोत्रको भी (आ चिकेत न) जानताही है ॥ १४ ॥

[४९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः पीयत्नवे मा दाः) हमें हिंसकोंके हाथोंमें मत सौंप, (शर्धते मा परा) जो अत्याचारी है उसके हाथोंमें भी हमें मत सौंप, अपितु हे (शचीवः) शक्तियोंसे सम्पन्न इन्द्र ! (शचीभिः शिक्ष) अपनी शक्तियोंसे युक्त होकर हमें ऐश्वर्य प्रदान कर ॥ १५ ॥

[५०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वायन्तः सखायः) तेरी शरणमें रहनेवाले तेरे मित्र (कण्वाः) ज्ञानीजन (तत् इत् अर्थाः) उसी ऐश्वर्य प्राप्तिकी इच्छासे (उक्थेभिः जरन्ते) स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं, तथा (वयं उ त्वा) हम भी तेरी स्तुति करते हैं ॥ १६ ॥

[५१] हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! (अपसः न विष्टौ) कार्यको तथा स्तुति करनेके समय (अन्यत् न घ ईं आपपन) और दूसरा कुछ भी काम न करूं, मैं केवल (तव इत् स्तोमं उं चकेत) तेरेही स्तोत्रको करना जानता हूँ ॥ १७ ॥

[५२] (देवाः) देवगण (सुन्वन्तं इच्छन्ति) यज्ञ करनेवालेकीही इच्छा करते हैं (स्वप्नाय न स्पृहयन्ति) सोनेवाले मनुष्यके पास जानेकी इच्छा वे कभी नहीं करते, (अतन्द्राः) स्वयं कभी आलस्य न करनेवाले वे देवगण (प्रमादं यन्ति) आलसीको छोड जाते हैं ॥ १८ ॥

१ देवाः सुन्वन्तं इच्छन्ति, न स्वप्नाय— देवगण सदा यज्ञ करनेवालेके पासही जाना चाहते हैं, कभी आलसीके पास नहीं ।

२ अतन्द्राः प्रमादं यन्ति— आलस्य न करनेवाले देव आलसीका परित्याग कर देते हैं ।

भावार्थ— कोई मनुष्य किसी धनवानकी प्रशंसा या स्तुति करता है, तो वह भी धनवानही होता है, तो फिर उस प्रभुकी स्तुति करनेवाला धनवान् क्यों न हो ॥ १३ ॥

प्रभु नास्तिकोंका शत्रु है । जो प्रभुकी स्तुति नहीं करते, वे नष्ट हो जाते हैं । वह प्रभु तो सर्वव्यापी है, अतः वह सबकी स्तुतियों और प्रार्थनाओंको जानता है ॥ १४ ॥

हिंसकों और अत्याचारियोंके अधीन होना भी प्रभुकी अवकृपाही है, अतः मनुष्यको चाहिए कि वह कभी भी हिंसकों और अत्याचारियोंके वशमें न हो ॥ १५ ॥

इस प्रभुसे मित्रता करनेवाले ज्ञानी जन भी ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए इसी प्रभुकी प्रार्थना करते हैं, फिर साधारण लोगोंकी तो बातही क्या ? ॥ १६ ॥

प्रभुकी स्तुति रूप कार्य करते समय मनुष्य और कोई काम न करे, अपितु उस समय वह केवल प्रभुकी स्तुतिही करे ॥ १७ ॥

जो सदा यज्ञरूप सत्कर्म करता रहता है, वही देवगणोंका प्रिय होता है, और देवगण उसीके पास जाते हैं । पर जो आलस्य और प्रमाद करता है, उसका वे परित्याग कर देते हैं ॥ १८ ॥

५३ ओ षु प्र याहि वाजेभि र्मा हृणीथा अभ्य१स्मान् । महाँ इव युवजानिः ॥ १९ ॥
५४ यो त्य॒द्य दुर्हृणावान् त्सायं करदारे अस्मत् । अश्रीर इव जामाता ॥ २० ॥
५५ विद्मा ह्यस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिम् । त्रिषु जातस्य मनांसि ॥ २१ ॥
५६ आ तू षिञ्च कण्वमन्तं न घा विद्म शवसानात् । यशस्तरं शतमूतेः ॥ २२ ॥
५७ ज्येष्ठेन सोतरिन्द्राय सोमं वीराय शक्राय । भरा पिबन्नर्याय ॥ २३ ॥
५८ यो वेदिष्ठो अव्यथि ष्वश्वावन्तं जरितृभ्यः । वाजं स्तोतृभ्यो गोमन्तम् ॥ २४ ॥

अर्थ— [५३] हे इन्द्र ! (अस्मान् अभि मा हृणीथा) तू हमारे ऊपर कभी भी क्रोधित मत हो, अपितु (महान् युवजानिः इव) जिस तरह कोई मनुष्य महान् होनेपर भी अपनी पत्नीके पास जाता है, उसी तरह तू (वाजेभिः) घोडोंसे (ओ सु प्र याहि) हमारी तरफ आ ॥ १९ ॥

[५४] (दुर्हृणावान्) शत्रुओंसे असह्य बलवाला इन्द्र (अस्मत् आरे) हमारे पास आवे, वह (अश्रीरः जामाता इव) लक्ष्मीहीन दरिद्र जामाताके समान (सायं मा करत्) सायंकाल न करे ॥ २० ॥

[५५] हम (अस्य वीरस्य) इस वीर इन्द्रकी (भूरिदावरीं सुमतिं) बहुत ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली उत्तम बुद्धि तथा (त्रिषु जातस्य) तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध इस इन्द्रके (मनांसि) मनोंको भी (विद्म) जानते हैं ॥ २१ ॥

[५६] हे मनुष्य तू (कण्वमन्तं) ज्ञानसे युक्त इन्द्रको (तु आ सिंच) सोमरससे सींच क्योंकि (शवसानात् शतं ऊतेः) अत्यन्त बलशाली तथा सैंकडों तरहके रक्षाके साधनोंसे युक्त इस इन्द्रकी अपेक्षा (यशस्तरं) अधिक यशस्वी (न घा विद्म) हम नहीं जानते ॥ २२ ॥

[५७] हे (सोतः) सोम तैय्यार करनेवाले मनुष्य ! (ज्येष्ठेन) सबसे श्रेष्ठ होनेके कारण (वीराय शक्राय अर्याय इन्द्राय) वीर, शक्तिशाली तथा श्रेष्ठ इन्द्रके लिए (सोमं भर) सोमरस प्रदान कर, तथा वह इन्द्र ((पिबत्) पीए ॥ २३ ॥

[५८] (यः) जो इन्द्र (अव्यथिषु) कभी दुःखी न होनेवाले लोगोंकी (वेदिष्ठः) यज्ञवेदी पर जाकर बैठता है, वह इन्द्र (जरितृभ्यः स्तोतृभ्यः) मंत्र बोलकर स्तुति करनेवालोंको (अश्वावन्तं गोमन्तं वाजं) घोडे और गायोंसे युक्त ऐश्वर्यको प्रदान करता है ॥ २४ ॥

भावार्थ— मनुष्य कभी ऐसा काम न करे कि जिससे इन्द्र उसके ऊपर क्रोधित हो, अपितु जिस प्रकार कोई पुरुष अपनी पत्नी की तरफ आकर्षित होता है, उसी तरह इन्द्र उसकी तरफ आकर्षित होकर जाए ॥ १९ ॥

जिस तरह कोई दरिद्र जामाता अपने ससुराल आनेमें आनाकानी करता है, उसी तरह इन्द्र हमारे पास आनेमें आनाकानी न करे ॥ २० ॥

तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध प्रभुका मन सभी प्राणियों पर उदार होता है, तथा वह सब प्राणियोंको उदार मनसे सहायता देता है, यह बात विद्वान् जानते हैं ॥ २१ ॥

इस बलशाली तथा सुरक्षाके साधनोंसे युक्त इन्द्रकी अपेक्षा अधिक यशस्वी और कोई नहीं है, इसलिए वही एक पूजाके योग्य है ॥ २२ ॥

यह इन्द्र सबसे श्रेष्ठ, सबसे अधिक शक्तिशाली तथा तेजस्वी होनेके कारण पूजाके योग्य है । जो शक्तिशाली और तेजस्वी होता है, वही पूजाके योग्य होता है ॥ २३ ॥

जिस मनुष्यके यज्ञमें इन्द्र जाता है, वह कभी भी दुःखी नहीं होता अपितु घोडे, गाय आदि ऐश्वर्योंसे युक्त होता है ॥ २४ ॥

५९ पन्यंपन्यमित् सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ॥ २५ ॥
६० पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् । नि यमते शतमूतिः ॥ २६ ॥
६१ एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् । गीर्भिः श्रुतं गिर्वणसम् ॥ २७ ॥
६२ स्वादवः सोमा आ याहि श्रीताः सोमा आ याहि ।
शिप्रिन्नृषीवः शचीवो नायमच्छा सधमादम् ॥ २८ ॥
६३ स्तुतश्च यास्त्वा वर्धन्ति महे राधसे नृम्णाय । इन्द्र कारिणं वृधन्तः ॥ २९ ॥
६४ गिरश्च यास्ते गिर्वाह उक्था च तुभ्यं तानि । सत्रा दधिरे शवांसि ॥ ३० ॥

अर्थ— [५९] हे (सोतारः) सोमरस निचोडनेवाले मनुष्यो ! (मद्याय वीराय शूराय) आनन्दयुक्त, वीर तथा शूर इन्द्रके लिए (पन्यं पन्यं सोमं इत्) प्रशंसाके योग्य सोमको ही (आ धावत) प्रदान करो ॥ २५ ॥

[६०] (सुतं पाता) सोमरसको पीनेवाला तथा (वृत्रहा) वृत्रको मारनेवाला इन्द्र (अस्मत् आ गमत्) हमारे पास आवे, (न आरे) हमसे दूर न जाए। तथा (शतं ऊतिः) सैंकडों तरहके रक्षाके साधनोंसे युक्त होकर वह इन्द्र (नियमते) हमारे शत्रुओंपर नियंत्रण करे ॥ २६ ॥

[६१] (ब्रह्मयुजा शग्मा हरी) ज्ञानसे युक्त, सुखकारी घोडे (गीर्भिः श्रुतं) स्तुतियोंसे प्रसिद्ध तथा (गिर्वणसं सखायं) स्तुतिके योग्य मित्रके समान हितकारी इन्द्रको (इह आ वक्षतः) यहां ले आवें ॥ २७ ॥

[६२] हे (शिप्रिन् ऋषीवः शचीवः) सुन्दर रूपवाले, ज्ञानयुक्त और शक्तियुक्त इन्द्र ! (स्वादवः सोमाः) स्वादिष्ट सोम तैय्यार हैं, तू (आ याहि) आ जा, (सोमाः श्रीताः) सोम निचोड दिए गए हैं, तू (आ याहि) आ जा। (न) अब (अयं) यह तेरा भक्त (सधमादं) आनन्द प्रदान करनेवाले तुझे (अच्छ) बुलाता है ॥ २८ ॥

[६३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (कारिणं) उत्तम कर्मोंके कर्ता तुझे (वर्धन्तः) बढाती हुई (याः) जो स्तुतियां (त्वा वर्धन्ति) तुझे बढाती हैं, वह तू (स्तुतः) स्तुतिको प्राप्त करके (महे राधसे नृम्णाय) महान् ऐश्वर्य तथा मनुष्योंके लिए हितकारी धन प्रदान कर ॥ २९ ॥

[६४] हे (गिर्वाहः) प्रशंसनीय इन्द्र ! (याः ते गिरः सन्ति) जो तेरी स्तुतियां हैं, (तुभ्यं उक्था च) तेरे लिए लिए जानेवाले स्तोत्र हैं, (तानि सत्रा) वे एक साथ मिलकर (शवांसि दधिरे) तुझमें शक्तिको उत्पन्न करते हैं ॥ ३० ॥

भावार्थ— यह इन्द्र आनन्दसे युक्त, वीर और शूर है, ऐसे श्रेष्ठ देवके लिए प्रशंसा योग्य पदार्थ ही देने चाहिए ॥ २५ ॥

सोमरसको पीनेवाला वह इन्द्र प्रसन्न होकर हमारे पास आवे और हमारे शत्रुओंको दूर करें ॥ २६ ॥

इन्द्रके पशु भी ज्ञानसे युक्त तथा सुखकारी हैं। इसी तरह वीर या राजाके घोडे भी समझदार तथा सुख देनेवाले हों ॥ २७ ॥

हे सुन्दर रूपवाले ज्ञानी तथा शक्तिशाली इन्द्र ! ये सोमरस निचोडकर तैय्यार कर दिए गए हैं, और भक्त तुझे बुला भी रहा है, अतः तू आ ॥ २८ ॥

उत्तम कर्मोंको करनेवाला यह इन्द्र स्तुतियोंसे शक्तिशाली एवं प्रसन्न होकर मनुष्योंको उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ २९ ॥

जो भी स्तुतियां या स्तोत्र इन्द्रके लिए किए जाते हैं, वे इन्द्रकी शक्तिको बढाते हैं ॥ ३० ॥

६५ एवेदेष तुविकूर्मि—र्वाजाँ एको वज्रहस्तः । सनादमृक्तो दयते ॥ ३१ ॥
६६ हन्ता वृत्रं दक्षिणेने—न्द्रः पुरू पुरुहूतः । महान् महीभिः शचीभिः ॥ ३२ ॥
६७ यस्मिन् विश्वाश्चर्षणय उत च्यौत्ना ज्रयांसि च । अनु घेन्मन्दी मघोनः ॥ ३३ ॥
६८ एष एतानि चकारे—न्द्रो विश्वा योऽति शृण्वे । वाजदावा मघोनाम् ॥ ३४ ॥
६९ प्रभर्ता रथं गव्यन्त—मपाकाच्चिद् यमवति । इनो वसु स हि वोळ्हा ॥ ३५ ॥
७० सनिता विप्रो अर्वद्भि—र्हन्ता वृत्रं नृभिः शूरः । सत्योऽविता विधन्तम् ॥ ३६ ॥

अर्थ— [६५] (एषः एव इत्) यह ही इन्द्र (तुविकूर्मिः) अनेक तरहके उत्तम कर्मोंको करनेवाला है, यह (एकः) अद्वितीय (वज्रहस्तः) वज्रको हाथोंमें धारण करनेवाला (सनात् अमृक्तः) सदासे शत्रुओंसे अहिंसित है, ऐसा इन्द्र (वाजान् दयते) अन्नोंको प्रदान करता है ॥ ३१ ॥

[६६] (दक्षिणेन वृत्रं हन्ता) चतुरतासे वृत्रको मारनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (महीभिः शचीभिः) अपनी बडी बडी शक्तियोंके कारण (महान्) महान् है, इसलिए (पुरू) सर्वत्र व्यापी वह इन्द्र (पुरुहूतः) अनेकों प्राणियोंके द्वारा बुलाया जाता है ॥ ३२ ॥

[६७] (विश्वाः चर्षणयः) सारी प्रजायें (उत च्यौत्ना) और सारी शक्तियां (च) तथा (ज्रयांसि) विजय (यस्मिन्) जिस इन्द्रमें स्थित हैं, (मघोनः) उस ऐश्वर्यशाली इन्द्रको (अनु घ इत् मन्दी) निश्चयसे आनन्दित करना चाहिए ॥ ३३ ॥

[६८] (यः अति शृण्वे) जो अत्यन्त शक्तिशाली और पराक्रमी सुना जाता है (एषः) उसी (इन्द्रः) इन्द्रने (एतानि विश्वा चकार) इन सभी पराक्रमोंको किया । वही (मघोनां) ऐश्वर्यशालियोंको भी (वाजदावा) अन्न देनेवाला है ॥ ३४ ॥

[६९] (प्रभर्ता) सबका पोषण करनेवाला इन्द्र (यं गव्यन्तं रथं) जिस जाते हुए रथकी (अपाकात् चित्) शत्रुसे भी (अवति) रक्षा करता है, (इनः) सबका स्वामी होकर (सः हि) वही इन्द्र (वसु वोळ्हा) धनको ले जानेवाला होता है ॥ ३५ ॥

[७०] (विप्रः) वह ज्ञानी इन्द्र (अर्वद्भिः सनिता) घोडोंसे सर्वत्र जाता है, (शूरः) वह शूरवीर इन्द्र (नृभिः) नेताओंकी सहायतासे (वृत्रं हन्ता) वृत्र-शत्रुको मारता है, तथा वह (सत्यः) अविनाशी इन्द्र (विधन्तं अविता) अपनी सेवा करनेवालेकी रक्षा करनेवाला है ॥ ३६ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र अनेक उत्तम कर्मोंको करनेवाला, अद्वितीय, वज्रको हाथोंमें धारण करनेवाला तथा शत्रुओंके लिए अजेय है ॥ ३१ ॥

महान् शक्तिशाली होनेपर भी इस इन्द्रने वृत्रको चतुरतासे मारा । वह सर्वत्र व्यापी है और सबसे बुलाया जाता है ॥ ३२ ॥

उसी इन्द्रमें सारी प्रजायें, सारी शक्तियां और विजय प्राप्त करनेका पराक्रम स्थित हैं । ऐसे ऐश्वर्यशाली इन्द्रको प्रसन्न करना चाहिए ॥ ३३ ॥

अपने प्रसिद्ध पराक्रमके कार्योंके कारण यह इन्द्र सर्वत्र विख्यात है । धनीसे धनी मनुष्यको भी वही इन्द्र अन्न देता है । कोई चाहे जितना भी धनी हो पर उसे अन्न देनेवाला तो परमात्मा ही है ॥ ३४ ॥

जो वीर तेजीसे दौडते हुए अपने रथकी शत्रुओंसे रक्षा करता है, अर्थात् युद्धमें पराक्रम दिखाता है, वही वीर सबका स्वामी होकर धनवान् होता है ॥ ३५ ॥

वह ज्ञानी इन्द्र अपने सहायकोंकी सहायतासे शत्रुओंको मारता है और अपने सहायकोंकी रक्षा करता है इसी तरह राजा घोडे पर चढकर अपने वीरोंकी सहायतासे शत्रुओंको मारे और अपने सहायकोंकी रक्षा करे ॥ ३६ ॥

७१ यजध्वैनं प्रियमेधा इन्द्रं सत्राचा मनसा । यो भूत् सोमैः सत्यमद्वा ॥ ३७ ॥
७२ गाथश्रवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुत्मानम् । कण्वासो गात वाजिनम् ॥ ३८ ॥
७३ य ऋते चिद् गास्पदेभ्यो दात् सखा नृभ्यः शचीवान् । ये अस्मिन् काममश्रियन् ॥ ३९ ॥
७४ इत्था धीवन्तमद्रिवः काण्वं मेध्यातिथिम् । मेषो भूतो३ऽभि यन्नयः ॥ ४० ॥
७५ शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत् । अष्टा परः सहस्रा ॥ ४१ ॥
७६ उत सु त्ये पयोवृधा माकी रणस्य नप्त्या । जनित्वनाय मामहे ॥ ४२ ॥

अर्थ— [७१] (यः सोमैः सत्यमद् वा भूत्) जो इन्द्र सोमरस पीनेके कारण सच्ची शक्तिसे युक्त होता है, (एनं इन्द्रं) इस इन्द्रकी हे (प्रियमेधाः) यज्ञसे प्रेम करनेवाले मनुष्यो ! (सत्राचा मनसा) यज्ञसे युक्त मनसे (यजध्वं) पूजा करो ॥ ३७ ॥

[७२] हे (कण्वासः) ज्ञानी मनुष्यो ! तुम (गाथश्रवसं) जिसका यश सर्वत्र गाया जाता है, (सत्पतिं) जो सत्पुरुषोंका पालक है, (श्रवस्कामं) जो यशकी कामना करनेवाला है, (पुरुत्मानं) बहुत आत्मशक्तिवाले इन्द्रके यशका (गात) गान करो ॥ ३८ ॥

[७३] (पदेभ्यः ऋते चित्) पैर आदि अवयवोंके न होने पर भी (यः सखा शचीवान्) जिस मित्र और शक्तिशाली इन्द्रने (नृभ्यः गाः दात्) मनुष्योंके लिए वाणियां प्रदान की। (ये अस्मिन् कामं अश्रियन्) जो मनुष्य इस इन्द्रमेंही अपनी सारी कामनायें स्थापना करते हैं ॥ ३९ ॥

[७४] हे (अद्रिवः) वज्रधारी इन्द्र ! (इत्था धीवन्तं) इस प्रकार स्तुति करते हुए (काण्वं) ज्ञानी (मेध्यातिथिं) पूजाके योग्य अतिथिके पास तू (मेषः भूतः अभि यन् अयः) मेष होकर गया ॥ ४० ॥

[७५] हे (विभिन्दो) शत्रुओंको भेदनेवाले इन्द्र ! तूने (अस्मै) इस ज्ञानीके लिए (चत्वारि अयुता ददत्) चार गुना दस हजार अर्थात् चालीस हजारकी संख्यामें धन दिया, (परः) उसके अलावा (अष्टा सहस्रा) आठ हजार धन और भी दिए ॥ ४१ ॥

[७६] (उत) और (पयोवृधा) जलको बढानेवाले (माकी) सबके निर्माता (रणस्य नप्त्या) स्तोताके पतनको न होने देनेवाले द्यावा पृथ्वीकी मैं (जनित्वनाय) उत्तम धान्य आदिकी उत्पत्तिके लिए (मामहे) स्तुति करता हूँ ॥ ४२ ॥

भावार्थ— सोमरसोंको पीनेसे शक्ति आती है, इन्हीं सोमरसोंके कारण इन्द्र शक्तिशाली है, इसीलिए इसकी सब लोग पूजा करते हैं ॥ ३७ ॥

राजाके यशको सभी गाएं, वह सज्जनोंका पालन करे, वह यश की कामना करनेवाला हो, तथा आत्मशक्तिसे युक्त हो। ऐसे वीर राजाके यशका गान ज्ञानी जन भी करते हैं ॥ ३८ ॥

ऐश्वर्यशाली प्रभु मनुष्योंका मित्रके समान हित करनेवाला है। निराकार होनेके कारण पैर आदि अवयवोंसे रहित होनेपर भी उसने मनुष्योंको वाणी प्रदान की, अतः ज्ञानीजन अपने मनोरथोंकी पूर्तिके लिए उसी प्रभुकी प्रार्थना करते हैं ॥ ३९ ॥

ज्ञानी और पूज्य अतिथिका सदा सत्कार करना चाहिए ॥ ४० ॥

ऐश्वर्यशाली इन्द्र ज्ञानीके लिए असंख्य धन प्रदान करता है ॥ ४१ ॥

द्युलोक और पृथ्वीलोक ये दोनों ही लोक सभीके निर्माता तथा उत्तम धान्यको उत्पन्न करनेवाले हैं ॥ ४२ ॥

[३]

(ऋषिः- मेध्यातिथिः काण्वः । देवता- इन्द्रः, २१-२४ कौरयाणः पाकस्थामा । छन्द- प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), २१ अनुष्टुप्, २२-२३ गायत्री, २४ बृहती ।)

७७ पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधे३ ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥ १ ॥

७८ भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये ।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभि रा नः सुम्नेषु यामय ॥ २ ॥

७९ इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितो ऽभि स्तोमैरनूषत ॥ ३ ॥

८० अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ ४ ॥

---

[३]

अर्थ— [७७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः सुतस्य) हमारे द्वारा निचोडे गए तथा (गोमतः) गायके दूधसे मिश्रित (रसिनः) रससे युक्त सोमरसको (पिब) पी और (मत्स्व) आनन्दित हो । (सधमाद्यः आपिः) आनन्दित होनेवाला तथा भाईके समान हितकारी तू (नः वृधे) हमारी उन्नतिके लिए (बोधि) सदा जागता रह । (ते धियः) तेरी बुद्धियां (अस्मान् अवन्तु) हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

[७८] हे इन्द्र ! (वयं) हम (ते सुमतौ) तेरी उत्तम बुद्धिमें रहकर (वाजिनः भूयाम) अन्नादिसे युक्त हों । तू (अभिमातये) किसी शत्रुका हित करनेके लिए (नः मा स्तः) हमें मत मार, अपितु (अभिष्टिभिः) ग्रहण करने योग्य तथा (चित्राभिः) अनेक तरहके संरक्षणके साधनोंसे तू (अस्मान् अवतात्) हमारी रक्षा कर, तथा (नः सुम्नेषु आ यामय) हमें सुखोंमें रहनेवाला कर ॥ २ ॥

[७९] हे (पुरुवसो) बहुत धनवान् इन्द्र ! (याः मम इमाः) जो मेरी ये स्तुतियां हैं, वे (गिरः) स्तुतियां (त्वा वर्धन्तु) तुझे बढावें ! (पावकवर्णाः शुचयः विपश्चितः) अग्निके समान तेजस्वी तथा पवित्र ज्ञानीजन (स्तोमैः अभि अनूषत) स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

[८०] (अयं) यह इन्द्र (सहस्रं ऋषिभिः) हजारों ऋषियोंके द्वारा (सहः कृतः) बलवान् बनाया गया, अतः वह (समुद्रः इव पप्रथे) समुद्रके समान विस्तृत हो गया । (अस्य) इस इन्द्रकी (सः सत्यः महिमा) वह अविनाशी महिमाका (यज्ञेषु विप्रराज्ये) यज्ञोंमें तथा ब्राह्मणोंकी सभामें (गृणे) वर्णन किया जाता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू हमारे द्वारा निचोडे गए तथा गायके दूधसे मिश्रित होनेके कारण रससे युक्त सोमरसको पी तथा हमारी उन्नति कर । तेरी बुद्धि मेरी सदा रक्षा करे ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! हम सदा तेरी बुद्धिमें रहें, तथा धन-धान्यसे समृद्ध हों । तू शत्रुका हित करनेके लिए हमारी हिंसा मत कर अपितु अपने अनेक तरहके सुरक्षाके साधनोंसे हमारी रक्षा कर ताकि हम सदा सुखमें ही रहें ॥ २ ॥

हमारे द्वारा की गई स्तुतियां इन्द्रके यशको बढावे । भक्तोंके द्वारा की गई स्तुति प्रभुकी महिमाको बढाती है । उस प्रभुकी सभी ज्ञानी स्तुति करते हैं और अग्निके समान तेजस्वी होते हैं ॥ ३ ॥

जब ऋषियोंने इस इन्द्रको बलसे युक्त किया तो वह समुद्रके समान विस्तृत हो गया और उसकी कभी नष्ट न होनेवाली महिमाका वर्णन यज्ञों और ज्ञानियोंकी सभामें होने लगा ॥ ४ ॥

८१ इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ५ ॥

८२ इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः ॥ ६ ॥

८३ अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ ७ ॥

८४ अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवो ऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ ८ ॥

अर्थ— [८१] (देवतातये) देवोंके लिए किए जानेवाले यज्ञमें हम (इन्द्रं इत् हवामहे) इन्द्रको ही बुलाते हैं, (अध्वरे प्रयति इन्द्रं) यज्ञके शुरु होनेपर हम इन्द्रको ही बुलाते हैं, (समीके) युद्धमें भी (वनिनः) इन्द्रकी स्तुति करनेवाले हम (इन्द्रं) इन्द्रकोही बुलाते हैं, तथा (धनस्य सातये) धनको प्राप्त करनेके कार्यमें भी हम (इन्द्रं) इन्द्रकोही बुलाते हैं ॥ ५ ॥

[८२] (इन्द्रः) इन्द्रने (शवः मह्ना) बलकी महिमासे (रोदसी पप्रथत्) द्युलोक और पृथिवी लोकको विस्तृत किया, (इन्द्रः) इन्द्रने (सूर्यं अरोचयत्) सूर्यको प्रकाशित किया। (विश्वा भुवनानि) सारे भुवन या लोक (इन्द्रे ह येमिरे) इन्द्रमें ही नियंत्रित होते हैं, (सुवानासः इन्द्रवः) निचोडे जाते हुए सोमरस भी (इन्द्रे) इन्द्रमें ही रहते हैं ॥ ६ ॥

[८३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (आयवः) सभी मनुष्य (पूर्वपीतये) सोमरसका पान सर्वप्रथम करनेके लिए (त्वा स्तोमेभिः अभि) तुझे स्तोत्रोंसे बुलाते हैं। (समीचीनासः ऋभवः) परस्पर संगठित हुए ऋभुगण तथा (रुद्राः) रुद्र भी (सं अस्वरन्) एकस्वरसे तेरी स्तुतिका गान करते हैं और (पूर्व्यं गृणन्त) सबसे प्राचीन तथा सनातन तेरी स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

[८४] (विष्णवि सुतस्य मदे) यज्ञमें निचोडे गए सोमरसको पीकर उसके आनंदमें यह (इन्द्रः) इन्द्र (अस्य इत् वृष्ण्यं शवः) इस यज्ञ करनेवालेके वीर्य और बलको (वावृधे) बढाता है। (आयवः) सभी मनुष्य (अद्य) आज मिलकर (पूर्वथा) पहलेकी तरह ही (अस्य) इस इन्द्रकी (तं महिमानं अनु स्तुवन्ति) उस महिमाका गान करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— देवोंके लिए किए जानेवाले किए जानेवाले यज्ञके प्रारंभ होने पर, युद्धके शुरु होने पर तथा धनको प्राप्त करनेके कार्यमें भी हम इन्द्रको बुलाते हैं ॥ ५ ॥

ऐश्वर्यशाली प्रभुने अपने सामर्थ्यसे द्यु और पृथ्वी इन दोनों लोकोंको विस्तृत किया तथा द्युलोकमें सूर्यको प्रकाशित किया। सारे लोक उसी प्रभुमें स्थित हैं और उसी प्रभुके द्वारा नियंत्रित हो रहे हैं ॥ ६ ॥

यह इन्द्र सबसे प्राचीन और सनातन है, अतः यही देव सोमरसको पीनेका सबसे पहला अधिकारी है। सभी ऋभु और रुद्र आदि देव इसी इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

इस प्रभुकी महिमा प्राचीन कालसे ऋषिमुनि गाते चले आ रहे हैं, उसी तरह आज भी लोग गारहे हैं। प्रभुका गुण गानेसे मनुष्योंमें संगठन होता है और ऐसे संगठनसे मनुष्योंका बल बढता है ॥ ८ ॥

८५ तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ९ ॥
८६ येना समुद्रमसृजो महीरप-स्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ १० ॥
८७ शग्धी न इन्द्र यत् त्वा रयिं यामि सुवीर्यम् ।
शग्धि वाजाय प्रथमं सिषासते शग्धि स्तोमाय पूर्व्य ॥ ११ ॥
८८ शग्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविथ धिय इन्द्र सिषासतः ।
शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृप-मिन्द्र प्रावः स्वर्णरम् ॥ १२ ॥

अर्थ— [८५] हे इन्द्र! तूने (येन) जिस बलसे (यतिभ्यः भृगवे) यतियोंको और भृगुके लिए ऐश्वर्य दिया था, तथा (धने हिते) संग्राममें (येन) जिस बलसे तूने (प्रस्कण्वं आविथ) ज्ञानीकी रक्षा की थी, (तत् वीर्यं) उस बल तथा (तत् ब्रह्म) उस ज्ञानको मैं (पूर्वचित्तये) सबसे प्रथम ज्ञानी होनेके लिए (त्वा यामि) तुझसे मांगता हूं ॥ ९ ॥

[८६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तूने (येन) जिस बलसे (समुद्रं) समुद्रको और (महीः अपः असृजः) बडी बडी नदियोंको रचा, वह (ते शवः) तेरा बल (वृष्णि) सब कामनाओंको प्रदान करनेवाला है। (यं) इन्द्र की जिस महिमाका (क्षोणीः अनुचक्रदे) द्यु और पृथिवी अनुकरण करते हैं, (अस्य सः महिमा) इस इन्द्रकी उस महिमाका अन्त (सद्यः न संनशे) शीघ्रतासे कोई नहीं पा सकता ॥ १० ॥

[८७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वा) तुझसे मैं (यत् सुवीर्यं रयिं यामि) जिस उत्तम पराक्रम या बलसे युक्त ऐश्वर्यको मांगता हूँ, उस ऐश्वर्यको तू (नः शग्धि) हमें प्रदान कर । (प्रथमं वाजाय सिषासते) सर्व प्रथम अन्न प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको तू (शग्धि) अन्न प्रदान कर, हे (पूर्व्य) सर्वश्रेष्ठ इन्द्र देव ! (स्तोमाय) तेरी स्तुति करनेवालेके लिए तू (शग्धि) ऐश्वर्य प्रदान कर ॥ ११ ॥

[८८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् ह) जिस बलसे तूने (पौरं आविथ) अपने पुरजनोंकी रक्षा की, उस बलको तू (धियः सिषासतः अस्य) बुद्धिपूर्वक काम करनेवाले इस मनुष्यको तथा (नः) हमें (शग्धि) प्रदान कर । (यथा) जिस बलकी सहायतासे तूने (रुशमं) तेजस्वी (श्यावकं) बच्चेके समान पवित्र (स्वर्णरं) धनोंके दाता तथा (कृपं) अन्यों पर कृपा करनेवाले मनुष्यकी (प्र अवः) अच्छी तरहसे रक्षा की थी वही बल तू हमें भी (शग्धि) प्रदान कर ॥ १२ ॥

भावार्थ— हे प्रभो ! तुम अपने जिस बलसे ज्ञानियोंकी रक्षा करते हो उस बल और ज्ञानको मैं तुमसे मांगता हूं, ताकि मैं लोगोंमें सर्व श्रेष्ठ ज्ञानी होऊं ॥ ९ ॥

यह प्रभुकी महिमा है कि उसने इतने भारी भारी सागरोंको बनाया और इतनी बडी बडी नदियां प्रवाहित कीं । उसीकी महिमाके कारण ये द्यु और पृथ्वी लोक उसका अनुकरण करते हैं ॥ १० ॥

हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! तुम हमें ऐसा ऐश्वर्य प्रदान करो कि जो बलसे युक्त हो और प्राप्त हुए ऐश्वर्यकी रक्षा करनेके लिए हमें बलवान् भी बनाओ, साथ ही हमें अन्न भी प्रदान करो ॥ ११ ॥

हे प्रभो ! जिस बलसे तुम सब प्राणियोंकी रक्षा करते हो, तथा बुद्धिपूर्वक काम करनेवाले तेजस्वी, बच्चेके समान पवित्र हृदयवाले, दयावान् मनुष्यकी रक्षा करते हो, वही बल हमें देकर हमें भी सामर्थ्यशाली बनाओ ॥ १२ ॥

×

८९ कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥ १३ ॥

९० कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥ १४ ॥

९१ उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥ १५ ॥

९२ कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद् धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ १६ ॥

अर्थ— [८९] (अतसीनां तुरः) स्तुतियोंको प्रकट करनेवाला (मर्त्यः) मनुष्य (कत् नव्यः गृणीतः) भला कौनसी नवीन स्तुति करे ? (स्वः गृणन्तः) प्राचीन कालसे स्तुति करनेवाले भी (अस्य) इस इन्द्रकी (महिमानं इन्द्रियं) महिमासे युक्त शक्तिको (न हि आनशुः) नहीं जान सके ॥ १३ ॥

[९०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (कत् उ देवता) ऐसा कौनसा देवता है कि जो (स्तुवन्तः) तेरी स्तुति करते हैं और (ऋतयन्तः) यज्ञ करते हैं । (कः ऋषिः विप्रः ओहते) कौनसा मंत्रद्रष्टा ज्ञानी तेरी कृपा प्राप्त करता है ? हे (मघवन्) ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तू (सुन्वतः) सोमरस निचोडनेवालेकी (हवं) प्रार्थनाको (कदा) कब सुनता है ? तथा (स्तुवतः) स्तुति करनेवालेके पास तू (कत् उ आ गमः) कब आता है ? ॥ १४ ॥

[९१] जिस प्रकार (सत्राजितः) युद्धोंको जीतनेवाले (धनसा) धनसे युक्त (अक्षित-ऊतयः) नाशरहित सुरक्षाके साधनोंसे युक्त तथा (वाजयन्तः) बलशाली (रथाः इव) रथ युद्धमें दौडते चले जाते हैं, उसी तरह हे इन्द्र ! (मधुमत्तमाः गिरः स्तोमासः) अत्यन्त मधुरतासे पूर्ण वाणियां और स्तुतियां (त्ये उत् उ ईरते) तेरी तरफ जाती हैं ॥ १५ ॥

[९२] (कण्वाः इव) ज्ञानी जिस तरह सर्वत्र संचार करते हैं, तथा (भृगवः सूर्याः इव) गाय अर्थात् किरणोंको धारण करनेवाले सूर्यकी किरणें जिस तरह सर्वत्र व्यापती हैं, उसी तरह (प्रियमेधासः आयवः) प्रिय मेधाबुद्धिवाले मनुष्य (स्तोमेभिः महयन्तः) स्तोत्रोंसे स्तुति करते हुए (इन्द्रं अस्वरन्) इन्द्रकी एक स्वरसे उपासना करते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थ— जब प्राचीन कालसे स्तुति करते हुए चले आनेवाले ऋषि मुनि भी जब इस प्रभुकी महिमा और शक्तिको जान नहीं पाए, तब आज स्तोता भला ऐसी कौनसी नवीन स्तुति करे, ताकि वह प्रभुकी महिमाका पूरी तरह गान कर सके ? अर्थात् शब्दोंके द्वारा उसकी महिमा या शक्तिका पूरी तरह वर्णन करना असंभव है ॥ १३ ॥

जो प्रभुकी उपासना करते हैं, और यज्ञ करके सोम प्रदान करते हैं, वे ही सच्चे देव, ज्ञानी और मंत्रद्रष्टा होते हैं, ऐसे ज्ञानियोंके ऊपर ही प्रभुकी कृपा होती है ॥ १४ ॥

जिस तरह युद्धके आरंभ होनेपर सभी रथ उस युद्धकी तरफ ही दौडे जाते हैं, उसी तरह मनुष्योंके द्वारा की गई स्तुतियां उसी एक प्रभुकी तरफ जाती हैं ॥ १५ ॥

जिस तरह सूर्यकी किरणें सर्वत्र घूम फिर कर सब स्थानोंको पवित्र करती हैं, उसी तरह ज्ञानी सर्वत्र घूम फिर कर सबको ज्ञान देकर पवित्र बनावें ॥ १६ ॥

९३ युक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।
अर्वाचीनो मघवन् त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥ १७ ॥
९४ इमे हि ते कारवो वावशुर्धिया विप्रासो मेधसातये ।
स त्वं नो मघवन्निन्द्र गिर्वणो वेनो न शृणुधी हवम् ॥ १८ ॥
९५ निरिन्द्र बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः ।
निरर्बुदस्य मृगयस्य मायिनो निः पर्वतस्य गा आजः ॥ १९ ॥
९६ निरग्नयो रुरुचुर्निरु सूर्यो निः सोम इन्द्रियो रसः ।
निरन्तरिक्षादधमो महामहिं कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥ २० ॥

अर्थ— [९३] हे (वृत्रहन्तम इन्द्र) शत्रुओंके संहारक इन्द्र ! तू (हरी युक्ष्व) अपने रथमें घोडे जोड और (परावतः अर्वाचीनः) दूरके देशसे भी हमारी तरफ आ। हे (उग्र मघवन्) वीर तथा ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! (सोमपीतये) सोमरसका पान करनेके लिए (ऋष्वेभिः आ गहि) सुन्दर रूपवाले मरुतोंके साथ आ ॥ १७ ॥

[९४] हे (गिर्वणः इन्द्र) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (कारवः इमे विप्रासः) स्तुति करनेवाले ये ज्ञानी (मेधसातये) मेधा बुद्धिको प्राप्त करनेके लिए (धिया ते वावशुः) बुद्धिपूर्वक तेरी उपासना करते हैं। हे (मघवन्) ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! (सः त्वं) वह तू (वेनः न) जिस तरह कोई कामी अपनी प्रियाकी बातें ध्यानपूर्वक सुनता है, उसी तरह [तू] (नः हवं शृणुधी) हमारी प्रार्थनाओंको सुन ॥ १८ ॥

[९५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तूने (बृहतीभ्यः धनुभ्यः) बडे बडे धनुषोंसे (वृत्रं निः अस्फुरः) वृत्रको मारा। उसी तरह (अर्बुदस्य मायिनः मृगयस्य) अर्बुद तथा माया करनेवाले मृगयको भी (निः) मारा तथा (पर्वतस्य) पर्वतके द्वारा छिपायी गई (गाः) गायोंको (आजः) प्रकट किया ॥ १९ ॥

[९६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! जब तूने (महां अहिं) बहुत शक्तिशाली अहिको (अन्तरिक्षात् निः अधमः) अन्तरिक्षसे नीचे गिरा दिया और (तत् पौंस्यं कृषे) उस अपने पराक्रमको प्रकट किया, तब (अग्नयः निः रुरुचुः) सभी अग्नियां अच्छी तरह प्रदीप्त हुईं, (सूर्यः निः) सूर्य भी अच्छी तरह प्रकाशित हुआ तथा (इन्द्रियः रसः सोमः निः) इन्द्रको प्रिय लगनेवाला रससे युक्त सोम भी अच्छी तरह उत्पन्न हुआ ॥ २० ॥

भावार्थ— हे शत्रुओंके संहारक इन्द्र ! तू दूर देशसे भी हमारे पास आ। मरुतोंके साथ आकर हमारी सहायता कर ॥ १७ ॥

सभी ज्ञानी मेधा बुद्धिको प्राप्त करनेके लिए बुद्धिपूर्वक उस प्रभुकी उपासना करते हैं। हे प्रभो ! तुम हमारी प्रार्थनायें सुनो ॥ १८ ॥

इन्द्रने अपने शक्तिशाली शस्त्रोंसे शत्रुओंको मारा और गायोंकी रक्षा की। राजा भी अपने राष्ट्रमें गायोंका वध करनेवालोंका वध करके गायोंकी रक्षा करे ॥ १९ ॥

अन्तरिक्षमें जब अहि अर्थात् मेघ चारों ओर छा गया, तब इन्द्र अर्थात् विद्युत्ने उस अहिको मारकर पानीके रूपमें नीचे गिरा दिया, तो चतुर्मासके कारण जो यज्ञ बंद हो गए थे, वे फिरसे शुरू हो गए, सूर्य अच्छी तरह प्रकाशित होने लगा, और इन्द्रियोंकी शक्ति बढानेवाला सोम पानी पाकर अत्यधिक उत्पन्न हुआ ॥ २० ॥

९७ यं मे दुरिन्द्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः ।
विश्वेषां त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमानम् ॥ २१ ॥

९८ रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कक्ष्यप्राम् ।
अदाद् रायो विबोधनम् ॥ २२ ॥

९९ यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहन्ति वह्नयः ।
अस्तं वयो न तुग्र्यम् ॥ २३ ॥

१०० आत्मा पितुस्तनूर्वास ओजोदा अभ्यञ्जनम् ।
तुरीयमिद् रोहितस्य पाकस्थामानं भोजं दातारमब्रवम् ॥ २४ ॥

अर्थ— [९७] (दिवि धावमानं उप इव) द्युलोकमें दौडते हुए सूर्यके समान तेजस्वी तथा (विश्वेषां त्मना शोभिष्ठं) सभी ऐश्वर्योंमें अपने तेजसे अत्यन्त सुशोभित होनेवाले (यं) जिस धनको (इन्द्रः मरुतः मे दुः) इन्द्र और मरुतोंने मुझे दिया, वही धन मुझे (कौरयाणः पाकस्थामा) शत्रुओंपर आक्रमण करनेवाले तथा पवित्र बलवाले वीरने मुझे दिया ॥ २१ ॥

[९८] (पाकस्थामा) पवित्र बलवाले वीरने मुझे (रोहितं अदात्) सोना दिया (सुधुरं कक्ष्य प्रां) उत्तम धुरावाले और चारों ओरसे दृढतासे बंधे हुए रथ मुझे दिए तथा (विबोधनं रायः) ज्ञान देनेवाला धन मुझे दिया ॥ २२ ॥

[९९] (वयः तुग्र्यं अस्तं न) जिस प्रकार तुग्र्यको पक्षी उसके घर ले गए थे उसी प्रकार (यस्मै) जिस वीरको (अन्ये दश वह्नयः) दूसरे दस घोडे (धुरं प्रति वहन्ति) रथके जुवेको घरकी ओर ले जाते हैं ॥ २३ ॥

[१००] यह (आत्मा) आत्मा (पितुः तनूः) अपने पिता परमात्माका सच्चा पुत्र है, वह (वासः) निवास करानेवाला (ओजोदा) ओज और तेजको देनेवाला (अभ्यं जनं) प्रकट होनेवाला है । ऐसे (तुरीयं) अत्यन्त श्रेष्ठ (रोहितस्य दातारं) तेजको देनेवाले (भोजं) बल देनेवाले (पाकस्थामानं) पवित्र बलवाले आत्माकी मैं (अब्रवम्) स्तुति करता हूं ॥ २४ ॥

भावार्थ— धन ऐसा हो जो सूर्यके समान तेजस्वी हो और अपने ही तेजसे सभी ऐश्वर्योंमें प्रकाशित होता हो । वीर राजा शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला और पवित्र बलवाला हो । वीरका बल लोगोंपर अत्याचार करनेके लिए न होकर लोगोंकी रक्षा करनेके लिए हो । रक्षक बल ही पवित्र होता है ॥ २१ ॥

रथ उत्तम धुरावाले और चारों ओरसे दृढ बंधनोंवाले हों तथा ऐश्वर्य ज्ञानको देनेवाला हो । धन ऐसा हो कि जो मद या अहंकार उत्पन्न न करके ज्ञान प्रदान करनेवाला हो ॥ २२ ॥

वीरके पास अनेक घोडे हों और वे सुशिक्षित होकर रथकी धुराको खींचनेवाले हों ॥ २३ ॥

यह मनुष्यका आत्मा परमात्माका सच्चा पुत्र है । यह जब तक शरीरमें रहता है, तभी तक मनुष्य जीवित रहता है इसलिए मनुष्यको निवास करानेवाला यही आत्मा है यह शरीरमें रहकर शरीरको ओज और तेज प्रदान करता है । यह शरीरके माध्यमसे प्रकट होता है । यह रोहित-लोहित अर्थात् रक्त आदि धातुओंका उत्पादक है, और पवित्र बल बल देनेवाला है ॥ २४ ॥

[४]

(ऋषिः- देवातिथिः काण्वः । देवता- इन्द्रः, १५-१८ पूगा वा, १९-२१ कुरुङ्गः ।
छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), २१ पुर उष्णिक् ।)

१०१ यदिन्द्र प्रागपागुदङ्ङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवे ऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥
१०२ यद् वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥
१०३ यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥ ३ ॥
१०४ मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते ।
आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद् दधिषे सहः ॥ ४ ॥

---

[४]

अर्थ— [१०१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तू (नृभिः) मनुष्योंके द्वारा (प्राक् अपाक्) पूर्व पश्चिम (उदक् न्यक् वा) ऊपर और नीचेसे (हूयसे) बुलाया जाता है, तब हे (सिम) श्रेष्ठ इन्द्र ! तू (आनवे) अत्यन्त नम्र हुए उपासकके लिए (पुरू नृषूतः असि) अत्यधिक सोमरस पीनेवाला होता है, हे (प्रशर्ध) शत्रुओंके हिंसक इन्द्र ! तू (तुर्वशे) शत्रुओंके संहारक वीरके लिए सोमरस पीनेवाला होता है ॥ १ ॥

[१०२] (वा) अथवा (यत्) जब तू हे (इन्द्र) इन्द्र ! (रुमे रुशमे श्यावके कृपे) स्तुति करनेवाले, तेजस्वी, बच्चेके समान निर्मल हृदयवाले तथा दयालु मनुष्यके पास जाकर (सचा मादयसे) उनके पास बैठकर आनन्दित होता है, तब (स्तोमवाहसः) स्तोत्रोंका ज्ञान रखनेवाले (कण्वासः) ज्ञानी जन (ब्रह्मभिः त्वा आ यच्छन्ति) स्तुतियां तुझे प्रदान करते हैं अतः हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (आ गहि) आ ॥ २ ॥

[१०३] (यथा) जिस प्रकार कोई (गौरः) हिरण (तृष्यन्) प्यासा होकर (अपा कृतं) जल पीनेके लिए (इरिणं अव एति) नदीके तृणसे रहित प्रदेशमें आता है, उसी तरह हे इन्द्र ! (नः आपित्वे प्रपित्वे) हमारे साथ भाईपनके स्थापित होने पर (तूयं आ गहि) तू शीघ्र ही आ और (कण्वेषु सचा सु पिब) ज्ञानियोंमें आकर एक साथ बैठकर अच्छी तरह सोमरस पी ॥ ३ ॥

[१०४] हे (मघवन् इन्द्र) ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! ये (इन्दवः) सोमरस (सुन्वते राधोदेयाय) सोम यज्ञ करनेवालेको धन देनेवाले (त्वा) तुझे (मन्दन्तु) आनंदित करें । तू (चमू सुतं) निचोडकर बर्तनमें रखे गए (सोमं) सोमको (आमुष्य अपिबः) जबर्दस्तीसे पी लिया, (तत्) इसीकारण (तत् ज्येष्ठं सहः दधिषे) उस श्रेष्ठ बलको तूने धारण किया ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह वीर इन्द्र जोकि मनुष्योंके द्वारा सब ओरसे बुलाया जाता है पर वह जाता उसीके पास है कि जो अत्यन्त नम्र या विनीत होता है या जो शूरवीर होता है । उसके पास जाकर वह सोमरसका पान करता है ॥ १ ॥

जब इन्द्र सज्जन पुरुषोंके पास जाकर आनन्दित होता है, तब ज्ञानी जन भी उसे बुलाते हैं ॥ २ ॥

जिस तरह कोई प्यासा हिरण किसी नदीके किनारे जाता है, उसी तरह तू हे इन्द्र ! हमारे पास आकर सोमरसका पान कर ॥ ३ ॥

जब इन्द्र सोमरस पीकर आनन्दित होता है, तब वह सोमरस निचोडनेवालेको ऐश्वर्य प्रदान करता है और वह इन्द्र स्वयं भी सोमरसको पीकर श्रेष्ठ बलको धारण करता है ॥ ४ ॥

१०५ प्र चक्रे सहसा सहो बभञ्ज मन्युमोजसा ।
विश्वे त इन्द्र पृतनायवो यह्रो नि वृक्षा इव येमिरे ॥ ५ ॥

१०६ सहस्रेणेव सचते यवीयुधा यस्त आनळुपस्तुतिम् ।
पुत्रं प्रावर्गं कृणुते सुवीर्ये दाश्नोति नमउक्तिभिः ॥ ६ ॥

१०७ मा भेम मा श्रमिष्मो- ग्रस्य सख्ये तव ।
महत् ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥ ७ ॥

१०८ सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।
मध्वा संपृक्ताः सारघेण धेनव- स्तूयमेहि द्रवा पिब ॥ ८ ॥

अर्थ— [१०५] इस इन्द्रने (सहसा) अपने बलसे (सहः) शत्रुके बलको (चक्रे) क्षीण कर दिया तथा (ओजसा) अपने ओजसे (मन्युं बभंज) शत्रुओंके क्रोधको तोड दिया । हे (यह्व इन्द्र) महान् इन्द्र ! (ते) तेरे (विश्वे पृतनायवः) सारे शत्रु (वृक्षाः इव नि येमिरे) वृक्षोंके समान स्थिर हो गए ॥ ५ ॥

[१०६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः) जो मनुष्य (ते) तेरे लिए (उपस्तुतिं आनट्) स्तुतिको प्रदान करता है, वह (सहस्रेण यवीयुधा) हजारों शस्त्रोंसे (इव सचते) मानों युक्त हो जाता है । जो (नमः उक्तिभिः दाश्नोति) नम्र होकर उत्तम वचनोंके द्वारा तुझे हवि देता है, वह (सुवीर्ये प्रावर्गं पुत्रं) उत्तम पराक्रमवाले संग्राममें शत्रुओंको नष्ट करनेवाले पुत्रको (कृणुते) प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

[१०७] हे इन्द्र ! हम (उग्रस्य तव) पराक्रमी तेरी (सख्ये) मित्रतामें रहकर किसीसे भी (मा भेम) न डरें और (मा श्रमिष्म) न दुःखी हों, अपितु (वृष्णः ते) बलशाली तेरे (महत् कृतं अभिचक्ष्यं) महान्का वर्णन सर्वत्र करें और (तुर्वशं यदुं पश्येम) शत्रुओंके संहारक तथा पराक्रमी पुत्रको हम देखें ॥ ७ ॥

[१०८] यह बलशाली इन्द्र (सव्यां स्फिग्यं अनु वावसे) अपने बाईं कमरके इतने हिस्सेसे सारे जगत्को व्याप्त करता है । (दानः अस्य न रोषति) दानशील मनुष्य इसे कभी क्रोधित नहीं कर सकता । हे इन्द्र ! ये सोमरस (सारघेण मध्वा संपृक्ताः) मधुमक्खीके शहदसे संयुक्त और (धेनवः) गायोंके दूधसे मिश्रित हैं, अतः तू (तूयं एहि, द्रव, पिब) शीघ्र आ, दौड और पी ॥ ८ ॥

भावार्थ— इन्द्रने अपने बल और पराक्रमसे शत्रुओंको बलको क्षीण करके उनका क्रोध और अहंकार तोड डाला, तब उसके सारे शत्रु निर्वीर्य होकर वृक्षोंके समान जडवत् हो गए ॥ ५ ॥

जो विनम्रभावसे स्तुतिवचनोंको कहता हुआ इन्द्रको आहुतियाँ प्रदान करता है, वह इतना बलशाली हो जाता है कि मानो वह अनेक तरहके शस्त्रास्त्रोंसे युक्त हो और वह ऐसा पुत्र प्राप्त करता है जो कठिनसे कठिन संग्राममें भी शत्रुओंका विनाशक होता है ॥ ६ ॥

जो प्रभुकी मित्रतामें रहता है, वह न तो कभी डरता है और न कभी दुःखी ही होता है, अपितु प्रभुके उत्तम कर्मोंका वर्णन करता हुआ वह पुत्र पौत्रोंके बीच आनंदसे रहता है ॥ ७ ॥

इन्द्र अपने विराट् शरीरके एक छोटेसे भागसे सारे विश्वको व्याप्त करता है । जो विनम्रतापूर्वक इस इन्द्रको हवि देता है, उसपर यह इन्द्र कभी भी क्रोध नहीं करता ॥ ८ ॥

१०९ अश्वी रथी सुरूप इद् गोमाँ इदिन्द्र ते सखा ।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रो याति सभामुप ॥ ९ ॥
११० ऋश्यो न तृष्यन्नवपानमा गहि पिबा सोमं वशाँ अनु ।
निमेघमानो मघवन् दिवेदिव ओजिष्ठं दधिषे सहः ॥ १० ॥
१११ अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।
उप नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥ ११ ॥
११२ स्वयं चित् स मन्यते दाशुरिर्जनो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ।
इदं ते अन्नं युज्यं समुक्षितं तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥ १२ ॥

अर्थ— [१०९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते सखा) तेरा मित्र (अश्वी रथी) घोडोंवाला, रथोंवाला, (सुरूपः इत्) उत्तम रूपवाला (गोमान् इत्) गायोंवाला होता है। वह (वयसा श्वात्रभाजा सचते) उत्तम आयु देनेवाले अन्नसे संयुक्त होता है और वह (सदा) हमेशा (सभां) सभामें (चन्द्रः) चन्द्रके समान आल्हादकारक होकर (उप याति) जाता है ॥ ९ ॥

ते सखा चन्द्रः सभां उप याति— इस इन्द्रका मित्र चन्द्रके समान आनन्द देनेवाला होकर सभामें जाता है।

[११०] हे (मघवन्) ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! (ऋश्यः न तृष्यन्) मृगके समान प्यासा होकर तू (अवपानम् आ गहि) इस सोमरसके पास आ और (सोमं) को (वशां अनु पिब) इच्छानुसार पी। तू (दिवेदिवे निमेघमानः) प्रतिदिन वृष्टि करता हुआ (ओजिष्ठं सहः दधिषे) ओजसे युक्त बलको धारण करता है ॥ १० ॥

[१११] हे (अध्वर्यो) अध्वर्यो ! (त्वं द्रावय) तू शीघ्रता कर, (इन्द्रः सोमं पिपासति) इन्द्र सोम पीना चाहता है। उसने (नूनं) निश्चयसे (वृषणा हरी) बलवान् घोडोंको रथमें जोड लिया है और वह (वृत्रहा) वृत्रको मारनेवाला इन्द्र (आ च जगाम) आ भी गया है ॥ ११ ॥

[११२] हे इन्द्र ! (यत्र सोमस्य तृम्पसि) जिसके घरमें जाकर तू सोमरससे तृप्त होता है, (सः दाशुरिः जनः) वह दानशील व्यक्ति (स्वयं चित् मन्यते) स्वयंको अत्यन्त श्रेष्ठ मानता है। हे इन्द्र ! (ते युज्यं) तेरे लिए योग्य (इदं अन्नं समुक्षितं) यह अन्न तैयार किया गया है, (एहि, द्रव) आ, शीघ्र आ और (तस्य पिब) उस रसको पी ॥ १२ ॥

भावार्थ— इस इन्द्र-प्रभुका मित्र अश्व, रथ, गाय, आयु और अन्य ऐश्वर्योंसे सदा युक्त रहता है और वह प्रभुका भक्त जहां जाता है, वहीं आनन्द फैल जाता है और वहीं वह चन्द्रके समान सुशोभित होता है ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! तू हिरणके समान प्यासा होकर पीनेके लिए इस सोमरसके पास आ और इस रसको इच्छानुसार पी। तथा प्रतिदिन उत्तम जलकी वर्षा कर तथा बलसे युक्त हो ॥ १० ॥

हे अध्वर्यु ! तू शीघ्रता कर क्योंकि यह इन्द्र सोम पीना चाहता है। सोम पीनेकी इच्छासे उसने अपने रथमें घोडे जोड लिए हैं और वह यहां आ भी गया है ॥ ११ ॥

जिस मनुष्यके घरमें जाकर यह इन्द्र सोमरसका पान करता है, वह मनुष्य स्वयंको अत्यन्त श्रेष्ठ समझता है। इसी लिए सभी उसे प्रार्थना करते हैं कि- हे इन्द्र ! तेरे योग्य यह सोमरस रूपी अन्न हमने तैयार किया हुआ है, अतः तू हमारे पास शीघ्र आ और इन रसोंको पी ॥ १२ ॥

११३ रथेष्ठायाध्वर्यवः सोममिन्द्राय सोतन ।
अधि ब्रध्नस्याद्रयो वि चक्षते सुन्वन्तो दाश्वध्वरम् ॥ १३ ॥

११४ उप ब्रध्नं वावाता वृषणा हरी इन्द्रमपसु वक्षतः ।
अर्वाञ्चं त्वा सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ॥ १४ ॥

११५ प्र पूषणं वृणीमहे युज्याय पुरूवसुम् ।
स शक्र शिक्ष पुरुहूत नो धिया तुजे राये विमोचन ॥ १५ ॥

११६ सं नः शिशीहि भुरिजोरिव क्षुरं रास्व रायो विमोचन ।
त्वे तन्नः सुवेदमुस्रियं वसु यं त्वं हिनोषि मर्त्यम् ॥ १६ ॥

अर्थ— [११३] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु गणो ! (रथेष्ठाय इन्द्राय) रथमें बैठनेवाले इन्द्रके लिए (सोमं सोतन) सोमको निचोडो । (ब्रध्नस्य अधि) ऊंचे स्थानपर रखे हुए (सुन्वन्तः अद्रयः) सोमरस निचोडनेवाले पत्थर (दाश्वध्वरं) दानशील यजमानके यज्ञको (वि चक्षते) विशेष रूपसे प्रकाशित करते हैं ॥ १३ ॥

[११४] (ब्रध्नं वावाता) अन्तरिक्षमें संचार करनेवाले (वृषणा हरी) दो बलवान् घोडे (इन्द्रं अपसु उप वक्षतः) इन्द्रको इस यज्ञके समीप ले आएं । हे इन्द्र ! (अध्वरश्रियः सप्तयः) यज्ञके आश्रयसे रहनेवाले घोडे (त्वा) तुझे (अर्वाचं) हमारी ओर (सवना इत् उप) हमारे यज्ञके पास ले आवें ॥ १४ ॥

[११५] (युज्याय) योग्य मित्रताके लिए (पुरूवसुं पूषणं) बहुत धनवाले तथा पोषण करनेवाले इन्द्रको हम बुलाते हैं । हे (पुरुहूत शक्र) बहुतोंके द्वारा बुलाये जानेवाले शक्तिशाली तथा (विमोचन) संकटोंसे मुक्त करनेवाले इन्द्र ! (तुजे राये) शत्रुओंकी हिंसा तथा ऐश्वर्यकी प्राप्ति करनेके लिए (सः) वह तू (नः धिया शिक्ष) हमें बुद्धिपूर्वक धन प्रदान कर ॥ १५ ॥

[११६] हे (विमोचन) संकटसे मुक्त करनेवाले इन्द्र (भुरिजोः क्षुरं इव) नाईके छुरेके समान (नः सं शिशीहि) हमारी बुद्धियोंको तू तीक्ष्ण कर तथा (रायः रास्व) धन प्रदान कर । हे इन्द्र ! (यं त्वं मर्त्यं हिनोषि) जिस धनको तू मनुष्यकी ओर प्रेरित करता है, (त्वे) तुझमें स्थित (तत् उस्रियं वसु) वह गायसे युक्त धन (नः सुवेदं) हमें आसानीसे प्राप्त होनेवाला हो ॥ १६ ॥

भावार्थ— हे अध्वर्यु गण ! रथमें बैठनेवाले इन्द्रके लिए सोमरसको निचोडो ! ऊंचे स्थानपर रखे हुए पत्थरोंसे जान पडता है कि यज्ञ चल रहा है ॥ १३ ॥

इन्द्रके घोडे यज्ञके आश्रयसे रहते हैं, यज्ञके द्वारा वे बल प्राप्त करते हैं, अतः वे हमेशा इन्द्रको यज्ञकी ओर ही ले जाते हैं ॥ १४ ॥

यह इन्द्र बहुत धनवाला तथा पोषण करनेवाला है, ऐसे इन्द्रको हम अपनी मैत्रीके लिए बुलाते हैं । वह इन्द्र हमें ऐश्वर्यकी प्राप्ति कराकर तथा शत्रुओंका नाश करके हमें संकटसे मुक्त करे ॥ १५ ॥

हे इन्द्र ! तू हमें संकटसे मुक्त करनेवाला है, अतः हमारी बुद्धिको तू तीक्ष्ण कर । जिन धनोंको तू मनुष्यकी ओर प्रेरित करता है, वे सब धन तुझमेंही प्रतिष्ठित हैं, अतः वे सब हमें आसानीसे प्राप्त होनेवाले हों ॥ १६ ॥

११७ वेमि त्वा पूषन्नृञ्जसे वेमि स्तोतव आघृणे ।
न तस्य वेम्यरणं हि तद् वसो स्तुषे पज्राय साम्ने ॥ १७ ॥

११८ परा गावो यवसं कच्चिदाघृणे नित्यं रेक्णो अमर्त्य ।
अस्माकं पूषन्नविता शिवो भव मंहिष्ठो वाजसातये ॥ १८ ॥

११९ स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु ।
राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि ॥ १९ ॥

१२० धीभिः सातानि काण्वस्य वाजिनः प्रियमेधैरभिद्युभिः ।
षष्टिं सहस्रानु निर्मजामजे निर्यूथानि गवामृषिः ॥ २० ॥

अर्थ— [११७] हे (वसो पूषन्) सबको बसानेवाले तथा पुष्ट करनेवाले इन्द्र ! (स्तुषे पज्राय साम्ने) स्तुतिके योग्य, शत्रुओंके विनाशक तथा सज्जनोंके लिए सुखदायक (त्वा) तुझे (ऋंजसे वेमि) मैं प्रसन्न करना चाहता हूं, हे (आघृणे) सभी ओरसे तेजस्वी इन्द्र ! तेरी (स्तोतवे) स्तुति करनेके लिए (वेमि) मैं इच्छा करता हूं। (तस्य न वेमि) तेरे अलावा और किसीकी स्तुति करना नहीं चाहता, (हि) क्योंकि (तत् अरणं) अन्य देवकी स्तुति असुखकारक होती है ॥ १७ ॥

[११८] हे (आघृणे) सब ओरसे तेजस्वी इन्द्र ! (कच्चित्) कभी कभी (गावः) हमारी गायें (यवसं) घास खानेके लिए (परा) दूर जाती हैं, तब हे (अमर्त्य) मरणरहित इन्द्र ! वह हमारा (रेक्णः) गौ रूपी धन (नित्यं) अक्षय रहे। हे (पूषन्) सबके पोषक इन्द्र ! तू (अस्माकं अविता) हमारी रक्षा करनेवाला, तथा (शिवः भव) सुखकारी हो, (वाजसातये) हमारी अन्न प्राप्तिके समय तू (मंहिष्ठः) अत्यधिक देनेवाला हो ॥१८॥

[११९] (त्वेषस्य शुभगस्य) तेजस्वी, उत्तम ऐश्वर्यवाले (कुरुंगस्य) शत्रुओंको जीतनेवाले (राज्ञः) राजाके (दिविष्टिषु रातिषु) दिव्य दानोंमें अर्थात् दिव्य दानको देनेके समय (तुर्वशेषु) मनुष्योंके बीचमें हमही (स्थूरं शताश्वं राधः) अत्यधिक तथा सैंकडों घोडोंसे युक्त ऐश्वर्यको (अमन्महि) प्राप्त करें ॥ १९ ॥

[१२०] (काण्वस्य वाजिनः सातानि) ज्ञानी और बलवान्‌के द्वारा प्राप्त किए जाने योग्य तथा (प्रियेमेधैः अभि द्युभिः धीभिः) उत्तम मेधाबुद्धिवाले तथा तेजस्वी एवं उत्तम धारणा शक्तिसे युक्त मनुष्यों द्वारा प्राप्त किए जानेवाले (निर्मजां गवां) अत्यन्त पवित्र गायोंके (षष्टिं सहस्रा यूथानि) साठ हजारके झुण्डोंको (ऋषिः अनु निः अजे) ऋषिने प्राप्त किया ॥ २० ॥

भावार्थ— यह इन्द्र सबको बसानेवाला, शत्रुओंका संहारक तथा सज्जनोंके लिए सुखदायक है, अतः उसीकी उपासना करनी चाहिए। अन्य देवकी उपासना दुःखदायक होती है ॥ १७ ॥

हे इन्द्र ! जब हमारी गायें घास चरते चरते दूर चली जाएं, तो वहां भी वे सुरक्षित रहें। उन्हें मारनेवाला कोई न हो। गोरूपी धन हमारे पास सदा बना रहे। उनके कारण हम अन्नसे युक्त हों ॥ १८ ॥

जबको तेजस्वी राजा दान देनेकी इच्छा करे, तब उस दिव्य दानको प्राप्त करनेके अधिकारी हमही हों ॥ १९ ॥

जिन गायोंको ज्ञानी और उत्तम मेधाबुद्धिवाले तेजस्वी जन प्राप्त करते हैं, उन पवित्र गायोंको मैं भी प्राप्त करूं ॥२०॥

×

१२१ वृक्षाश्चिन्मे अभिपित्वे अरारणुः ।
गां भजन्त मेहना ऽश्वं भजन्त मेहना ॥ २१ ॥

[५]

(ऋषिः- ३९ ब्रह्मातिथिः काण्वः । देवताः- अश्विनौ, ३७ (उत्तरार्धस्य)- ३९ चैद्यः कशुः । छन्दः- गायत्री, ३७-३८ बृहती, ३९ अनुष्टुप् ।)

१२२ दूरादिहेव यत् सत्यरुणप्सुरशिश्वितत् । वि भानुं विश्वधातनत् ॥ १ ॥
१२३ नृवद् दस्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा । सचेथे अश्विनोषसम् ॥ २ ॥
१२४ युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रति स्तोमा अदृक्षत । वाचं दूतो यथोहिषे ॥ ३ ॥
१२५ पुरुप्रिया ण ऊतये पुरुमन्द्रा पुरूवसू । स्तुषे कण्वासो अश्विना ॥ ४ ॥

अर्थ— [१२१] (मे अभि पित्वे) मेरे द्वारा गौरूपी धनको प्राप्त कर लिए जानेपर (वृक्षाः चित् अरारणुः) वृक्ष भी चिल्लाने लगे कि इन्होंने (मेहना गां भजन्त) प्रशंसनीय गायोंको प्राप्त कर लिया । इन्होंने (मेहना अश्वं भजन्त) प्रशंसनीय घोडोंको प्राप्त कर लिया ॥ २१ ॥

[५]

[१२२] (यत्) जब (अरुणप्सुः) लाल रंगवाली उषा (दूरात् इह इव सती) दूरसेही मानों इधरही आती हुई सी (अशिश्वितत्) क्रमशः श्वेत वर्णवाली हुई, तब वह (भानुं) सूर्यको (विश्वधा) सभी प्रकारसे (वि अतनत्) फैला चुकी थी ॥ १ ॥

[१२३] हे (दस्रा अश्विना) शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! (नृवत्) तुम नेताके समान हो और (मनोयुजा) मनमें इच्छा करतेही आते हो और (पृथुपाजसा रथेन) बडे विशाल बल या अन्नवाले रथसे (उषसं सचेथे) उषाके साथ साथ चलने लगते हो ॥ २ ॥

[१२४] हे (वाजिनी-वसू) धनको बसानेवाले अश्विदेवो ! (युवाभ्यां प्रति) तुम्हारी ओर (स्तोमाः अदृक्षत) स्तोत्र आते हुए दीख पडते हैं; (दूतः यथा) दूत जैसा करता है, वैसेही (वाचं ओहिषे) वाणीको मैं तुम्हारतक पहुंचाता हूँ ॥ ३ ॥

[१२५] (नः ऊतये) हमारी सुरक्षाके लिये (पुरुप्रिया) बहुतोंके प्यारे (पुरुमन्द्रा) बहुतोंको अत्यन्त हर्षित करनेवाले (पुरुवसू) अधिक धन देनेवाले अश्विदेवोंकी (कण्वासः स्तुषे) ज्ञानी मैं स्तुति करता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ— जब ऋषि या ज्ञानी सज्जन पुरुष उत्तम धन प्राप्त करते हैं, तब सभीको यहां तक कि वृक्ष आदि स्थावरोंको भी प्रसन्नता होती है, क्योंकि ये जानते हैं कि ज्ञानियोंको धन मिलनेपर वे उससे दूसरोंको सुखही देंगे ॥ २१ ॥

जब लाल रंगवाली उषा श्वेत वर्णव की बनने लगी, तब विशेष प्रकाश हुआ और सूर्य भी चमकने लगा ॥ १ ॥

ये अश्विदेव नेता हैं, लोगोंको सन्मार्ग पर ले जानेवाले हैं । जो मनसे इनकी भक्ति करता है, उसके पास ये जाते हैं ॥ २ ॥

अश्विदेव धनको देते हैं, इसलिये उनके स्तोत्र गाये जाते हैं, और सेवकके समान उनके विषयमें वर्णन करते हैं ॥ ३ ॥

ये अश्विनीकुमार हमारी रक्षा करनेवाले, बहुतोंको प्रिय और अपने उपासकोंको अत्यन्त हर्षित करनेवाले हैं, अतः वे स्तुतिके योग्य हैं ॥ ४ ॥

१२६ मंहिष्ठा वाजसातमे॒षयन्ता शुभस्पती । गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥ ५ ॥
१२७ ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणीम् । घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ॥ ६ ॥
१२८ आ नः स्तोममुप द्रवत् तूयं श्येनेभिराशुभिः । यातमश्वेभिरश्विना ॥ ७ ॥
१२९ येभिस्तिस्रः परावतो दिवो विश्वानि रोचना । त्रीँरक्तून् परिदीयथः ॥ ८ ॥
१३० उत नो गोमतीरिष उत सातीरहर्विदा । वि पथः सातये सितम् ॥ ९ ॥
१३१ आ नो गोमन्तमश्विना सुवीरं सुरथं रयिम् । वोळ्हमश्वावतीरिषः ॥ १० ॥
१३२ वावृधाना शुभस्पती दस्रा हिरण्यवर्तनी । पिबतं सोम्यं मधु ॥ ११ ॥

अर्थ— [१२६] (मंहिष्ठा) अत्यन्त महनीय, (वाजसातमा) यथेष्ट अन्न, बल देनेहारे (शुभस्पती) शुभ कार्योंके पालनकर्ता (इषयन्ता) अन्न उत्पन्न करनेहारे और (दाशुषः गृहं) दानी पुरुषके-घरपर (गन्तारा) जानेवाले अश्विदेव हैं ॥ ५ ॥

[१२७] (सुदेवाय) अच्छे तेजस्वी (दाशुषे) दानीके लिये (ता) वे विख्यात तुम दोनों अश्विदेव (अवितारिणीं) नष्ट न होनेवाली (सुमेधां) अच्छी बुद्धि तथा (गव्यूतिं घृतैः उक्षतं) गौओंकी सुरक्षा करनेवाली शक्तिको घृतोंसे सींच देवें ॥ ६ ॥

[१२८] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (श्येनेभिः) श्येनपक्षीके समान (आशुभिः अश्वेभिः) शीघ्रगामी घोडोंसे (नः स्तोमं उप) हमारे यज्ञके समीप (तूयं द्रवत्) जल्दी और दौडते दौडते (आ यातं) आओ ॥ ७ ॥

[१२९] (तिस्रः दिवः) तीन दिन और (त्रीन् अक्तून्) तीन रातोंतक (परावतः) दूर देशसे (येभिः) जिन यानोंकी सहायतासे (विश्वानि रोचना) सभी जगमगाते तेजो-गोलोंके (परि-दीयथः) इर्दगिर्द तुम संचार करते हो उन्हींपर बैठकर इधर आओ ॥ ८ ॥

[१३०] हे (अहर्विदा) दिनको जतलानेहारे ! (उत) और एक बात है कि (नः गोमतीः इषः) हमें गायोंसे युक्त अन्न (उत सातीः) और बाँटनेयोग्य संपत्तियाँ दो, (सातये) ठीक दान करनेके लिये (पथः वि सितं) मार्ग बतला दो ॥ ९ ॥

[१३१] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (नः) हमें (अश्वावतीः इषः) घोडोंसे पूर्ण अन्न (सुरथं सुवीरं रयिं) अच्छे रथ तथा वीर संतानसे युक्त धन (आ वोळ्हं) पहुँचा दो ॥ १० ॥

[१३२] हे (शुभः- पती) शुभ कार्योंके अधिपति ! (दस्रा) शत्रुविनाशक ! (हिरण्यवर्तनी) स्वर्णमय रथवाले अश्विदेवो ! (वावृधाना) बढते हुए तुम दोनों (सोम्यं मधु पिबतं) सोमरससे मिलाये शहदका पान करो ॥ ११ ॥

भावार्थ— बडे, अन्नदान करनेवाले, शुभ कार्य करनेवाले, अन्न उत्पन्न करनेवाले, दाताकी सहायतार्थ उसके घर जानेवाले, अश्वि देव हैं । (वैसेही मनुष्य बनें) ॥ ५ ॥

अच्छे दाताकी तारक और गोरक्षक-बुद्धिको और संरक्षकशक्तिको अश्विदेव घृतादिसे अधिक समर्थ बनावें, घृतादि पदार्थोंका सेवन करके अपनी तारक-शक्ति, सुबुद्धि और गोरक्षणकी शक्ति बढावें ॥ ६ ॥

इन देवोंके घोडे पक्षियोंके समान बहुत वेगवान् हैं । अतः वे जहां जाना चाहते हैं, वहां वे शीघ्रतासे पहुंच जाते हैं ॥ ७ ॥

अश्विदेवोंके यान श्येनपक्षीके सदृश आकाशमें तीन दिन और तीन रातोंतक अविकल रूपसे संचार करते थे ॥ ८ ॥

हे देवो ! तुम दोनों हमें गायोंसे युक्त उत्तम ऐश्वर्य दो, साथही यह भी मार्ग बतलाओ कि हम किस तरह उस ऐश्वर्यका सदुपयोग करें ॥ ९ ॥

हे अश्विदेवो ! हमें तुम घोडे, गाय, रथ तथा वीर संतानोंसे युक्त धन प्रदान करो ॥ १० ॥

ये दोनों सदा शुभ कार्य करते हैं, इसीलिए ये दोनों शुभ कार्यके स्वामी हैं तथा ये दोनों ही देव शत्रुओंके विनाशक भी हैं ॥ ११ ॥

१३३ अस्मभ्यं वाजिनीवसू मघवंद्भ्यश्च सप्रथः । छर्दिर्यन्तमदाभ्यम् ॥ १२ ॥
१३४ नि षु ब्रह्म जनानां याविष्टं तूयमा गतम् । मो ष्वन्याँ उपारतम् ॥ १३ ॥
१३५ अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः । मध्वो रातस्य धिष्ण्या ॥ १४ ॥
१३६ अस्मे आ वहतं रयिं शतवन्तं सहस्रिणम् । पुरुक्षुं विश्वधायसम् ॥ १५ ॥
१३७ पुरुत्रा चिद्धि वां नरा विह्वयन्ते मनीषिणः । वाघद्भिरश्विना गतम् ॥ १६ ॥
१३८ जनासो वृक्तबर्हिषो हविष्मन्तो अरंकृतः । युवां हवन्ते अश्विना ॥ १७ ॥
१३९ अस्माकमद्य वामयं स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः । युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥ १८ ॥
१४० यो ह वां मधुनो दृतिराहितो रथचर्षणे । ततः पिबतमश्विना ॥ १९ ॥

अर्थ— [१३३] हे (वाजिनी-वसू) सेनारूपी धनवाले ! (अस्मभ्यं) हमें (मघवद्भ्यः च) और धनिकोंको (सप्रथः) अत्यन्त विस्तीर्ण (अदाभ्यं छर्दिः यन्तं) दबानेमें असंभव याने सुदृढ घर दो ॥ १२ ॥

[१३४] (या) जो तुम दोनों (जनानां ब्रह्म) जनताके ज्ञानको (सु नि अविष्टं) भली भाँति खूब सुरक्षित रख चुके, ऐसे तुम (तूयं आगतं) बहुत जल्दी आओ (अन्यान्) दूसरोंके (उप) समीप (मो सु आरतं) कभी मत जाओ ॥ १३ ॥

[१३५] हे (धिष्ण्या अश्विना) पूजनीय अश्विदेवो ! (अस्य चारुणः) इस सुन्दर (मदस्य मध्वः) हर्षजनक, मीठे सोमको जोकि (रातस्य) दान दिया जा चुका है (पिबतं) तुम पीजाओ ॥ १४ ॥

[१३६] हे अश्विदेवो ! (पुरुक्षुं) बहुतोंको निवास देनेवाले (विश्वधायसं) सभीका धारण करनेहारे (शतवन्तं सहस्रिणं रयिं) सैकडों हजारों संख्यावाले धनको (अस्मे आ वहतम्) हमें पहुँचा दो ॥ १५ ॥

[१३७] (मनीषिणः नराः) मननशील नेता (वां) तुम्हें (पुरुत्रा चित् हि) सभी स्थानोंमें जरूर (विह्वयन्ते) विशेष रूपसे बुलाते हैं, इसलिए (वाघद्भिः आ गतं) वाहनोंसे आओ ॥ १६ ॥

[१३८] (वृक्तबर्हिषः) कुशासन फैलाये हुए (हविष्मन्तः अरंकृतः) हविवाले, अलंकृत (जनासः) लोग (युवां हवन्ते) तुम्हें बुलाते हैं ॥ १७ ॥

[१३९] (अद्य) आज हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (अस्माकं अयं) हमारा यह (वां वाहिष्ठः) तुम्हारे प्रति अत्यन्त आतुरतासे जानेवाला (स्तोमः) स्तोत्र (युवाभ्यां अन्तमः भूतु) तुम्हारे अतीव निकट चला जाय ॥ १८ ॥

[१४०] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वां रथचर्षणे) तुम्हारे रथके देखनेयोग्य भागमें (यः मधुनः दृतिः) जो मधुका बर्तन (आहितः ह) रखा हुआ है, (ततः पिबतं) उससे पान करो ॥ १९ ॥

भावार्थ— इन दोनों देवोंका धन इनकी सेना ही है। इस धनके सहारे ये देव अन्य भी धन प्राप्त करते हैं और अपने उपासकोंको भी हर तरहसे आनन्दमें रखते हैं ॥ १२ ॥

मनुष्योंके पास जो बुद्धि एवं ज्ञान है, उसे ये देव और अधिक पुष्ट करते और सुरक्षित रखते हैं। ऐसे ये देव सदा सज्जनोंके पासही जाते हैं, दुष्टोंके पास कभी नहीं जाते ॥ १३ ॥

हे देवो ! तुम्हारे लिए ये आनन्ददायक और मधुर सोमरस अर्पित किए गए हैं, उन्हें तुम पीओ ॥ १४ ॥

हे देवो ! हमें ऐसा धन दो जो बहुतोंको जीवन देनेवाला तथा उनके जीवनको धारण करनेवाला हो ॥ १५ ॥

मननशील ज्ञानी जन इन अश्विदेवोंको सभी स्थानोंमें पुकारते हैं और उनसे सहायताकी प्रार्थना करते हैं ॥ १६ ॥

सभी लोग हवि लेकर और आसन तैयार करके इन दोनों देवोंको आदरसे बुलाते हैं ॥ १७ ॥

हे अश्विदेवो ! हमारा यह स्तोत्र तुम्हारी ओर आतुर होकर जाए और तुम्हें प्राप्त कर ले ॥ १८ ॥

हे देवो ! तुम दोनों उत्तम बर्तनमें रखे हुए सोमरसका पान करो ॥ १९ ॥

१४१ तेन॑ नो वाजिनीवसू पश्वे॑ तोकाय॒ शं गवे॑ । वह॑तं पीव॑रीरिषः ॥ २० ॥
१४२ उत नो॑ दिव्या इष॑ उत सिन्धूँ॑रहर्विदा । अप॒ द्वारे॑व वर्षथः ॥ २१ ॥
१४३ कदा वां॑ तौग्र्यो विधत् समुद्रे जहितो॑ नरा । यद् वां॒ रथो॒ विभि॒ष्पतात् ॥ २२ ॥
१४४ युवं कण्वा॑य नासत्या ऽपिरिप्ताय हर्म्ये॑ । शश्व॑दूतीर्द॑शस्यथः ॥ २३ ॥
१४५ ताभि॒रा या॑तमूति॒भि॒र्नव्य॑सीभिः सुश॒स्तिभिः । यद् वां॑ वृषण्वसू हुवे ॥ २४ ॥
१४६ यथा॑ चि॒त् कण्व॒माव॑तं प्रि॒यमे॑धमुपस्तुतम् । अत्रिं॑ शि॒ञ्जार॑मश्विना ॥ २५ ॥
१४७ यथो॒त कृत्व्ये॒ धने॒ऽंशुं गोष्व॒गस्त्य॑म् । यथा॒ वाजे॑षु॒ सोभ॑रिम् ॥ २६ ॥

अर्थ— [१४१] हे (वाजिनी-वसू) यज्ञक्रियाको धन माननेवाले अश्विदेवो ! (नः पश्वे तोकाय) हमारे पशु तथा संतान और (गवे) गौके लिए (शं) सुखकारक हो इस ढंगसे (पीवरीः इषः) पुष्ट अन्नसामग्रियाँ (तेन वहतं) उस रथसे इधर ले आओ ॥ २० ॥

[१४२] हे (अहः विदा) दिनको जतलानेहारे ! (उत) और (नः) हमें (दिव्याः इषः) उच्चकोटिकी अन्नसामग्रियाँ (उत सिन्धुन्) तथा बहनेवाले जलसमूहोंको, (द्वारा इव) मार्गसे जल जैसे छोडे जाते हैं वैसे ही, (अप वर्षथः) तुम बारिश लगातार कर देते रहो ॥ २१ ॥

[१४३] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (समुद्रे जहितः तौग्र्यः) समुन्दरमें फेंका हुआ तुग्रका पुत्र (वां कदा विधत्) तुम्हारी स्तुति भला कब कर चुका ? (वां रथः) तुम्हारा रथ (यत् विभिः पतात्) जब पक्षी जैसा उडते हुए आगया था ॥ २२ ॥

[१४४] हे (नासत्या) सत्यपालक अश्विदेवो ! (अपिरिप्ताय कण्वाय) दुःखी कण्वको (युवं) तुम (शश्वत्) हमेशा (हर्म्ये) ऊँचे महलमें (ऊतीः दशस्यथः) अनेक संरक्षण देते हो ॥ २३ ॥

[१४५] हे (वृषण्वसू !) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवो ! (यत् वां हुवे) चूँकि मैं तुम्हें बुला रहा हूँ इसलिए (नव्यसीभिः सुशस्तिभिः) नई भलीभाँति प्रशंसनीय बातोंसे और (ताभिः ऊतिभिः) उन संरक्षणोंसे युक्त होकर (आ यातं) इधर आओ ॥ २४ ॥

[१४६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (यथा शिञ्जारं अत्रिं) जैसे शिंजारको, अत्रिको, (उपस्तुतं प्रियमेधं कण्वं चित्) उपस्तुतको, प्रियमेधको और कण्वको भी (आवतं) तुमने सुरक्षित किया ॥ २५ ॥

[१४७] (उत) और (यथा कृत्व्ये धने) जैसे संपादन करनेयोग्य धनको पानेमें (अंशुं) अंशुको (गोषु अगस्त्यं) गौवोंकी प्राप्तिमें अगस्त्यको (यथा सोभरिं वाजेषु) जैसे सोभरिको युद्धोंमें तुमने बचाया था ॥ २६ ॥

भावार्थ— ये अश्विदेव यज्ञ क्रियाको ही सच्चा धन मानते हैं। ये देव सभी प्राणियोंका कल्याण करके उन्हें सुख देनेवाले हैं और अपने रथ अन्न-सामग्री रखकर उसे सर्वत्र पहुंचाते हैं ॥ २० ॥

हे देवो ! तुम ऐसी कृपा करो कि समयपर वृष्टि होती रहे और हमें भरपूर अन्न मिलता रहे ॥ २१ ॥

तुग्रके पुत्रको उसके शत्रुओंने समुद्रमें फेंक दिया था। उसने वहींसे अश्विदेवोंकी प्रार्थना की, तब अश्विदेव पक्षियों पर सवार होकर गए और उन्होंने उसे बचाया ॥ २२ ॥

ये देव सदा सत्यवक्ताकी रक्षा करके सत्यका पालन करते हैं, इसीलिए इन्हें न-असत्या कहा जाता है। अश्विदेव असत्यकी रक्षा कभी नहीं करते। जो सत्य बोलता है, उसे ऊंचे ऊंचे महल अर्थात् धनैश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ २३ ॥

हे अश्विदेवो ! मैं तुम्हें बुलाता हूँ, अतः तुम मेरी रक्षा करनेके लिए उत्तम शस्त्रास्त्रोंसे युक्त होकर आओ ॥ २४ ॥

इन अश्विदेवोंने अत्रि, उपस्तुत आदि अनेकों ऋषियोंकी रक्षा की ॥ २५ ॥

धनको प्राप्त करनेके कार्यमें अंशुको, गो-प्राप्तिके कार्यमें अगस्त्यको तथा युद्धमें सोभरिकी इन अश्विदेवोंने रक्षा की थी ॥ २६ ॥

१४८ एतावद् वां वृषण्वसू अतो वा भूयो अश्विना । गृणन्तः सुम्नमीमहे ॥ २७ ॥
१४९ रथं हिरण्यवन्धुरं हिरण्याभीशुमश्विना । आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥ २८ ॥
१५० हिरण्ययी वां रभिरीषा अक्षो हिरण्ययः । उभा चक्रा हिरण्यया ॥ २९ ॥
१५१ तेन नो वाजिनीवसू परावतश्चिदा गतम् । उपेमां सुष्टुतिं मम ॥ ३० ॥
१५२ आ वहेथे पराकात् पूर्वीरश्नन्तावश्विना । इषो दासीरमर्त्या ॥ ३१ ॥
१५३ आ नो द्युम्नैरा श्रवोभिरा राया यातमश्विना । पुरुश्चन्द्रा नासत्या ॥ ३२ ॥
१५४ एह वां प्रुषितप्सवो वयो वहन्तु पर्णिनः । अच्छा स्वध्वरं जनम् ॥ ३३ ॥

अर्थ— [१४८] वैसेही हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वां गृणन्तः) तुम्हारी सराहना करते हुए (एतावत्) इतना (अतः भूयः वा) वा इससे भी अधिक (सुम्नं ईमहे) सुखकी याचना हम करते हैं ॥ २७ ॥

[१४९] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (हिरण्यवन्धुरं) सुवर्णमय कटहवाले (हिरण्य-अभीशुं) सुनहरे चाबुक या लगामवाले (दिवि-स्पृशं) द्युलोकको छूनेवाले (रथं आ स्थाथः हि) रथपर तुम अवश्य चढ जाते हो ॥ २८ ॥

[१५०] (वां रभिः इषा हिरण्ययी) तुम्हारी आलंबन देनेवाली लकडी सुनहली है, (अक्षः हिरण्ययः) पहियेकी धुरी सुवर्णमय है (उभा चक्रा हिरण्यया) दोनों पहिये भी सुवर्णके बने हुए हैं ॥ २९ ॥

[१५१] हे (वाजिनी-वसू) बलको धन समझनेवाले ! (तेन) उस रथसे (इमां मम सुष्टुतिं) इस मेरी अच्छी स्तुतिको सुननेके लिये (नः) हमारे पास (परावतः चित्) दूर देशसे भी (उप आ गतं) समीप आओ ॥ ३० ॥

[१५२] हे (अमर्त्या) अ-मरणशील अश्विदेवो ! (पूर्वीः दासीः इषः) बहुतसी दासोंकी अन्नसामग्रियाँ (अश्नन्तौ) प्राप्त करते हुए (पराकात् आ वहेथे) सुदूर देशसे इधर आ पहुँचते हो ॥ ३१ ॥

[१५३] हे (पुरु-चन्द्रा अश्विना) बहुतोंको आनन्द देनेवाले एवं सत्यपूर्ण अश्विदेवो ! (नः) हमारे समीप (द्युम्नैः श्रवोभिः राया) धनों, यशों तथा वैभवसे युक्त होकर (आ यातं) आओ ॥ ३२ ॥

[१५४] (इह) इधर (पर्णिनः) पंखवाले (प्रुषितप्सवः वयः) स्निग्धरूपवाले एवं गतिशील पक्षी जैसे घोडे (स्वध्वरं जनं अच्छ) अच्छे अहिंसक कार्य करनेवाले लोगोंके प्रति (वां आ वहन्तु) तुम्हें ले जायँ ॥ ३३ ॥

भावार्थ— हे देवो ! तुम दोनों धनकी रक्षा करनेवाले हो, अतः हम सब तुम्हारी स्तुति करते हुए यही प्रार्थना करते हैं कि तुम हमें इतना धन दो कि हम सदा सुखी रहें ॥ २७ ॥

इन अश्विनौ देवोंके रथोंमें सोनेके दण्ड लगे होते हैं, इनकी चाबुक भी सोनेकी ही होती है । ऐसे रथों पर चढकर वे सर्वत्र संचार करते हैं ॥ २८ ॥

इन देवोंके रथोंकी लकडी सुनहली है, उस रथके पहिए भी सुनहरे हैं और धुरा भी सोनेकी ही है । इसप्रकार इनका पूरा रथ ही सुनहरा है ॥ २९ ॥

हे अश्विनौ देवो ! हमारी इन अच्छी स्तुतियोंको सुनकर तुम दूर देशसे भी हमारे पास आओ ॥ ३० ॥

हे देवो ! दासोंके पास जितनी भी अन्न सामग्री हो, वह उनसे छीनकर हम आर्योंको दो । कोई भी मनुष्य दास न बने, क्योंकि सभी देव दासोंके शत्रु हैं ॥ ३१ ॥

हे अश्वि देवो ! हमारे पास यश देनेवाले धनोंसे युक्त होकर तुम आओ । धन पाकर मनुष्यकी कीर्ति फैले, ऐसे काम वह करे । धनमदमें कुकर्म न करे ॥ ३२ ॥

पंखवाले गतिशाली पक्षी तुम्हें मनुष्योंके पास ले आएं कि जो अहिंसक हों । हिंसा न करनेवालोंसे वे देव स्नेह करते हैं ॥ ३३ ॥

१५५ रथं वामनुगायसं य इषा वर्तते सह । न चक्रमभि बाधते ॥ ३४ ॥
१५६ हिरण्ययेन रथेन द्रवत्पाणिभिरश्वैः । धीजवना नासत्या ॥ ३५ ॥
१५७ युवं मृगं जागृवांसं स्वदथो वा वृषण्वसू । ता नः पृङ्क्तमिषा रयिम् ॥ ३६ ॥
१५८ ता मे अश्विना सनीनां विद्यातं नवानाम् ।
यथा चिच्चैद्यः कशुः शतमुष्ट्रानां ददत् सहस्रा दश गोनाम् ॥ ३७ ॥
१५९ यो मे हिरण्यसंदृशो दश राज्ञो अमंहत ।
अधस्पदा इच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्मम्ना अभितो जनाः ॥ ३८ ॥

अर्थ— [१५५] (यः इषा सह वर्तते) जो अन्नके साथ रहता है उस (वां अनुगायसं रथं) तुम्हारे रथको जिसके पीछे स्तुति करनेवाले लोग रहते हैं (चक्रं न अभि बाधते) शत्रुसैन्य कष्ट नहीं पहुँचाता है ॥ ३४ ॥

[१५६] हे (धी जवना नासत्या) बुद्धिके तुल्य वेगवाले सत्यपूर्ण अश्विदेवों ! (द्रवत्-पाणिभिः अश्वैः) दौडते हुए घोडोंसे और (हिरण्ययेन रथेन) सुवर्णमय रथसे आओ ॥ ३५ ॥

[१५७] हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे ! (युवं वा) तुम तो (जागृवांसं मृगं स्वदथः) जागृत एवं ढूँढनेयोग्य सोमका सेवन करते हो, ऐसे (ता) वे दोनों तुम (नः रयिं) हमारे धनको (इषा पृङ्क्तं) अन्नसे जोड दो ॥ ३६ ॥

[१५८] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! ऐसे तुम विख्यात (ता) वे दोनों (मे) मेरे लिए (नवानां सनीनां) नये और देनेके योग्य धनोंको (विद्यातं) जान लो। (यथा) जिस तरह (चैद्यः) चित् अर्थात् ज्ञानके पुत्र ज्ञानी तथा (कशुः) तेजस्वी दाताने मुझे (उष्ट्रानां शतं) सौ ऊंट तथा (गोनां दशसहस्रा) दस हजार गायें मुझे (ददत्) दीं ॥ ३७ ॥

[१५९] (यः) जिस तेजस्वी राजाने (मे) मुझे (हिरण्यसंदृशः) सोनेके समान वर्णवाले अर्थात् तेजस्वी (दशः राज्ञः) दस राजाओंको (अमंहत) प्रदान किया। (चैद्यस्य) ऐसे ज्ञानीके (कृष्टयः अधः पदाः इत्) सारी प्रजायें नीचेही रहती हैं और (अभितः जनाः) चारों ओरके लोग (चर्मम्ना) उसके पास शरणमें आते हैं ॥ ३८ ॥

भावार्थ— इन अश्विदेवोंके रथोंमें अन्न सदा भरपूर प्रमाणमें रहता है और इन रथोंके पीछे सदा इन देवोंके अनुयायी चलते हैं, अतः शत्रुगण इनके रथोंको कोई भी नुकसान नहीं पहुंचा पाते ॥ ३४ ॥

अश्विदेवोंके रथ मनके समान शीघ्र गतिवाले हैं। ऐसे सुनहरे और वेगवान् रथोंमें बैठकर ये देव सर्वत्र संचार करते हैं ॥ ३५ ॥

दोनों अश्विदेव धनकी वर्षा करनेवाले हैं, अतः ये दोनों ऐसे व्यक्तिकी खोज करते हैं कि जो सदा जागृत रहकर इन्हें सोम प्रदान करता है। आलसी लोगोंके पास ये दोनों देव नहीं जाते ॥ ३६ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम दोनों सर्वज्ञ हो अतः तुम मेरे मनोरथोंको जानतेही हो। जिस प्रकार मुझे दूसरे ज्ञानी और तेजस्वी दाता दान देते हैं, उसी तरह या उससे भी अधिक दान तुम दोनों मुझे दो ॥ ३७ ॥

उत्तम ज्ञानीके पास बडे बडे राजा भी दासके समान आकर रहते हैं। सारी प्रजायें ऐसे ज्ञानीके अधीन रहती हैं। और चारों तरफके लोग इस ज्ञानीकी शरणमें आकर रहते हैं ॥ ३८ ॥

१६० माकिरेना पथा गाद् येनेमे यन्ति चेदयः ।
अन्यो नेत् सूरिरोहते भूरिदावत्तरो जनः ॥ ३९ ॥

[६]

(ऋषिः- वत्सः काण्वः । देवता- इन्द्रः, ४६ ४८ तिरिन्दिरः पार्शव्यः । छन्दः- गायत्री ।)

१६१ महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥

१६२ प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ २ ॥

अर्थ— [१६०] (येन इमे चेदयः यन्ति) जिस मार्गसे ये ज्ञानी जाते हैं, (एना पथा माकिः गात्) उस मार्गसे दूसरे मूर्ख जन नहीं जा सकते । इन ज्ञानियोंकी अपेक्षा (भूरिदावत्तरः) और अधिक दान देनेवाला तथ (सूरिः) विद्वान् (अन्यः जनः न) और कोई मनुष्य नहीं है ॥ ३९ ॥

[६]

[१६१] (यः इन्द्रः) जो इन्द्र (ओजसा) अपने बलके कारण (वृष्टिमान् पर्जन्यः इव) वृष्टि करनेवाले बादलके समान (महान्) श्रेष्ठ है, [वह इन्द्र] (वत्सस्य स्तोमैः) वत्सऋषिकी स्तुतियोंसे (वावृधे) महान् प्रतीत होता है ॥ १ ॥

१ यः इन्द्रः ओजसा वृष्टिमान् पर्जन्यः इव महान्— जो इन्द्र अपने बलके कारण, वर्षा करनेवाले बादलके समान, महान् है ।

२ वत्सस्य स्तोमैः वावृधे— वह इन्द्र वत्सकी स्तुतियोंसे महान् होता है ।

३ वत्स— पुत्र, बछडा, ऋषि,

[१६२] (ऋतस्य प्रजां) यज्ञके प्रजारूपी इन्द्रको [मार्गको अपनी गतिसे] (पिप्रतः) भर देनेवाले (वन्हयः) घोडे (यत् प्रभरन्त) जब ढोते हैं, [तब] (विप्राः) ज्ञानी (ऋतस्य वाहसा) यज्ञको सिद्ध करनेवाले स्तोत्रसे [उस इन्द्रका गुणगान करते हैं] ॥ २ ॥

१ ऋतस्य प्रजा— इन्द्र यज्ञमें आता है । यज्ञमे इन्द्रका अस्तित्व प्रकट होता है । इसलिये इन्द्रको यज्ञकी प्रजा माना है ।

२ पिप्रतः— पूर्ण करते हुए ' पृृ पूरणे '

३ वन्हिः— अग्नि, घोडा, ' वन्हिरिति अश्व नाम ' (निघं. १।१४)

भावार्थ— जिस श्रेष्ठ मार्गसे ज्ञानी जाता है, उस मार्गसे मूर्ख लोग नहीं जा सकते । तथा इस ज्ञानीकी अपेक्षा अधिक दाता और विद्वान् भी दूसरा कोई नहीं होता ॥ ३९ ॥

वृष्टि करनेवाला मेघ वृष्टीद्वारा अन्न उत्पन्न करके सबका पालन करता है, इस कारण पालन कर्ता होनेसे मेघ महान् है । वैसाही इन्द्र सबका रक्षक होनेसे महान् है ॥ १ ॥

जहां जहां यज्ञ होता है और सोम निचोडा जाता है, वहां वहां इन्द्र प्रकट होता है, अतः इन्द्रको यज्ञका पुत्र माना जाता है । ऐसे सभी यज्ञोंमें इन्द्रके गुणोंका गान किया जाता है ॥ २ ॥

१६३ कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधम् ॥ ३ ॥
१६४ समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ॥ ४ ॥
१६५ ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ५ ॥
१६६ वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा । शिरो बिभेद वृष्णिना ॥ ६ ॥

अर्थ— [१६३] (कण्वाः) ज्ञानी जनोंने (यत्) जब (ऋतस्य साधनं इन्द्रं) यज्ञको सिद्ध करनेवाले इन्द्रको (स्तोमैः अक्रत) स्तोत्रोंसे प्रार्थना की तब शत्रुके (आयुधं) शस्त्र (जामि ब्रुवत) भाई हुए ऐसा कहने लगे ॥ ३ ॥

१ ऋतस्य साधनं इन्द्रम्— इन्द्र यज्ञको सिद्ध करनेवाला है। यज्ञका साधन है।

२ आयुधं जामि ब्रुवत— शत्रुके शस्त्रको भाई है ऐसा कहने लगे।

[१६४] (अस्य मन्यवे) इस इन्द्रके क्रोधित हो जानेपर (विश्वाः कृष्टयः विशः) सभी मानवी प्रजायें (सिन्धवः समुद्राय इव) जैसे नदियां समुद्रके लिए उसी प्रकार (सं नमन्ते) नमन करती हैं ॥ ४ ॥

१ अस्य मन्यवे विश्वाः कृष्टयः विशः सं नमन्ते— इन्द्रके क्रोधित हो जानेपर सभी मनुष्य उसको प्रणाम करते हैं।

[१६५] (अस्य तत् ओजः) इसका वह बल (तित्विषे) प्रकाशित होता है, (यत्) जिस बलसे (इन्द्रः) यह इन्द्र (उभे रोदसी) दोनों द्यु और पृथिवीके साथ (चर्म इव) चमडेके समान (सं-अवर्तयत्) व्यवहार करता है ॥ ५ ॥

१ इन्द्रः रोदसी चर्म इव सं अवर्तयत्— इन्द्र अपने बलसे द्यु और पृथ्वीसे चमडेके समान व्यवहार करता है। अर्थात् चमडेके समान वह कभी इनको फैला देता है, और कभी समेट लेता है।

२ अस्य तत् ओजः— इस इन्द्रका ऐसा बल है।

[१६६] इस इन्द्रने (दोधतः वृत्रस्य चित्) [जगत्को] कंपानेवाले वृत्रासुरके (शिरः) शिरको (शतपर्वणा वृष्णिना वज्रेण) सकडों धाराओंवाले, बलवान् वज्रसे (वि बिभेद) काट डाला ॥ ६ ॥

१ दोधतः— कंपानेवाले 'धूञ् कम्पने'

२ शतपर्वणा वृष्णिना वज्रेण— सैकडों धारावाले बलवान वज्रसे। अपने शस्त्र शत्रुके शस्त्रोंसे अधिक मारक चाहिये।

भावार्थ— जब ज्ञानियोंके द्वारा स्तुति किए जानेपर उनके पास इन्द्र आता है, तब इन्द्र उनकी रक्षा करता है और तब शत्रुके शस्त्र भी इन ज्ञानियोंके मित्र बन जाते हैं अर्थात् शत्रुके शस्त्र भी उन ज्ञानियोंका कुछ बिगाड नहीं सकते ॥ ३ ॥

जब इन्द्र क्रोधित होता है, तब सारे प्राणि घबराने लगते हैं। सभी उसके क्रोधसे डरते हैं, अतः सब उसके क्रोधको शांत करनेके लिए उसे प्रणाम करते हैं, उसके पास विनीत भावसे जाते हैं ॥ ४ ॥

इस इन्द्रका बल अप्रमेय है। उसको कोई सीमा नहीं है। उसके बलके आगे सारा जगत् तुच्छ है। इसीलिए वह द्युलोक और पृथ्वी जैसे बडे बडे लोकोंको भी चमडेके समान कभी लपेट देता है, तो कभी फैला देता है। प्रलयकालमें वह इन दोनों लोकोंको समेट देता है तो सृष्टिकालमें फैला देता है ॥ ५ ॥

जो दुष्ट कर्म करनेवाले होते हैं, उनसे सारा जगत् कांपता है। ऐसे दुष्टोंको इन्द्र मारता है और जगत्को भयरहित करता है ॥ ६ ॥

×

१६७ इमा अभि प्र णोनुमो विपामग्रेषु धीतयः । अग्नेः शोचिर्न दिद्युतः ॥ ७ ॥
१६८ गुहा सतीरुप त्मना प्र यच्छोचन्त धीतयः । कण्वा ऋतस्य धारया ॥ ८ ॥
१६९ प्र तमिन्द्र नशीमहि रयिं गोमन्तमश्विनम् । प्र ब्रह्म पूर्वचित्तये ॥ ९ ॥
१७० अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ । अहं सूर्य इवाजनि ॥ १० ॥
१७१ अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् । येनेन्द्रः शुष्ममिद् दधे ॥ ११ ॥

अर्थ— [१६७] (विपां अग्रेषु) विद्वानोंके आगे (इमाः) इन (अग्नेः शोचिः न) अग्निकी ज्वालाके समान (दिद्युतः) तेजस्वी (धीतयः) स्तोत्रोंको हम (अभि प्र णो नुमः) बारंबार बोलते हैं ॥ ७ ॥

[१६८] (गुहा सतीः) बुद्धिमें रहनेवाली (यत् धीतयः) स्तुतियां (उप प्र शोचन्त) प्रकाशित होती हैं, उनको (कण्वाः) ज्ञानी जन (ऋतस्य धारया) यज्ञको धारण करनेवाली [वाणी] से बोलते हैं ॥ ८ ॥

१ शोचन्त— प्रदीप्त होती है, प्रकाशित होती हैं। ' शुच् दीप्तौ '।

२ कण्वाः— कण्व ऋषिके पुत्र, ज्ञानी, ' कण्व इति मेधावि नाम ' (निघं. ३।१५)

३ गुहा सतीः धीतयः— अन्तःकरणमें रहनेवाली भक्तोंकी स्तुतियां।

[१६९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हम (गोमन्तं अश्विनं) गौवोंवाले, घोडोंवाले (तं रयिं) उस ऐश्वर्यको (प्र नशीमहि) अच्छी तरह प्राप्त करें। तथा (पूर्व चित्तये) पूर्ण ज्ञानकी प्राप्तिके लिए (ब्रह्म) ज्ञानको भी (प्र) प्राप्त करें ॥ ९ ॥

[१७०] (ऋतस्य पितुः) यज्ञके पालक [इन्द्र] की (मेधां) बुद्धिको (अहं इत्) मैंनेही (परिजग्रभ) प्राप्त किया है [इस कारण] (अहं सूर्य इव अजनि) मैं सूर्यके समान [तेजस्वी] हो गया हूँ ॥ १० ॥

१ ऋतस्य पितुः मेधां अहं जग्रभ, सूर्य इव अजनि— यज्ञ तथा सत्यके पालक इन्द्रकी बुद्धि प्राप्त करनेसे मनुष्य सूर्यके समान तेजस्वी हो जाता है।

[१७१] (कण्ववत् अहं) ज्ञानीके समान मैं (प्रत्नेन मन्मना) प्राचीन स्तोत्रसे अपने (गिरः) वाणीको (शुम्भामि) अलंकृत करता हूँ। (येन इन्द्रः) जिससे इन्द्र (शुष्मं इत् दधे) बलको धारण करता है ॥ ११ ॥

१ मन्मना गिरः शुम्भामि— परमात्माकी स्तुतिसे वाणीको उत्तम सुशोभित करता हूं।

भावार्थ— विद्वानोंके आगे अग्निदेवके गुणोंका वर्णन करना चाहिए। अग्निदेवके गुणोंको और महत्त्वको विद्वान्‌ही समझ सकते हैं, मूर्ख नहीं ॥ ७ ॥

प्रभुकी की जानेवाली स्तुतियां भक्तके अन्तःकरणमें रहती हैं। पर वे भक्तके अन्तःकरणको सदा पवित्र किए रहती हैं और उसके अन्तःकरणसेही वे स्तुतियां सदा प्रकट होती रहती हैं। ज्ञानी जन इस प्रकार अपने अन्तःकरणमें स्थित स्तुतियोंको अपनी वाणीके द्वारा प्रकट किया करते हैं ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! हम एक तरफ गाय और घोडोंवाले भौतिक ऐश्वर्यको भी प्राप्त करें, तो दूसरी तरफ उस ऐश्वर्यका सदुपयोग करनेके लिए ज्ञानको भी प्राप्त करें तथा पूर्णज्ञानी बनें ॥ ९ ॥

जो मनुष्य इन्द्रकी स्तुति करके उससे ज्ञान और बुद्धिको प्राप्त करता है, वह सूर्यके समान तेजस्वी होता है ॥ १० ॥

परमात्माकी स्तुति करनेसे मनुष्यकी वाणी उत्तम और पवित्र होती है और मनुष्यके द्वारा की गई स्तुतिसे प्रभुका महत्त्व सब ओर प्रकाशित होता है ॥ ११ ॥

१७२ ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवु ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ॥ १२ ॥
१७३ यदस्य मन्युरध्वनीद् वि वृत्रं पर्वशो रुजन् । अपः समुद्रमैरयत् ॥ १३ ॥
१७४ नि शुष्ण इन्द्र धर्णसिं वज्रं जघन्थ दस्यवि । वृषा ह्युग्र शृण्विषे ॥ १४ ॥
१७५ न द्याव इन्द्रमोजसा नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् । न विव्यचन्त भूमयः ॥ १५ ॥
१७६ यस्त इन्द्र महीरपः स्तभूयमान आशयत् । नि तं पद्यासु शिश्नथः ॥ १६ ॥

अर्थ— [१७२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ये) जो मनुष्य (त्वां न तुष्टुवुः) तेरी स्तुति नहीं करते और (ये च ऋषयः तुष्टुवुः) जो ऋषि स्तुति करते रहे, [उन सबसे] (मम इत्) मेरीही स्तुतिसे (सुष्टुतः) अच्छी प्रकार प्रशंसित हुआ तू (वर्धस्व) बढ ॥ १२ ॥

[१७३] (यत् अस्य मन्युः) जब इसका क्रोध (वृत्रं पर्वशः वि रुजन्) वृत्रको टुकडे टुकडे करके मारता हुआ (अध्वनीद्) शब्द करता है, [तब इन्द्र] (अपः) जलोंको (समुद्रं ऐरयत्) समुद्रकी तरफ प्रेरित करता है ॥ १३ ॥

१ अपः समुद्रं ऐरयत्— तब जल समुद्र तक प्रवाहित होता है ।
२ वृत्रः— मेघ, घेरनेवाला शत्रु
३ मन्युः— क्रोध, उत्साह

[१७४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तुमने (शुष्णे दस्यवि) शुष्णनामक राक्षस पर (धर्णसिं वज्रं) धारवाले वज्रको (नि जघन्थ) मारा [इसमे] हे (उग्र वृषा) वीर तथा बलवान् इन्द्र ! तुम (शृण्विषे) प्रसिद्ध हुए ॥ १४ ॥

१ इन्द्र ! शुष्णे दस्यवि धर्णसिं वज्रं नि जघन्थ— हे इन्द्र तू शुष्ण असुरको तीक्ष्ण वज्रसे मारता है ।
२ उग्र शृण्विषे— तब वह वीर इन्द्र प्रसिद्ध होता है ।
३ धर्णसि— तीक्ष्ण धारवाला
४ शुष्णः— शोषण करनेवाला,

[१७५] (द्यावः) द्युलोक (ओजसा) बलसे (इन्द्रं) इन्द्रको (न विव्यचन्त) व्याप्त नहीं कर सकते, (अन्तरिक्षाणि) अन्तरिक्ष लोक इस (वज्रिणं) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रको (न) नहीं घेर सकते, (भूमयः न) और भूमियां भी [इस इन्द्रको] नहीं घेर सकती ॥ १५ ॥

[१७६] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (ते महीः अपः) तुम्हारे बडे बडे जलप्रवाहोंको (यः) जो वृत्रासुर (स्तभूयमान आशयत्) रोक करके रह रहा था, (तं) उसको तुमने (पद्यासु) बहनेवाले जलोंसेही (नि शिश्नथः) मार डाला ॥ १६ ॥

भावार्थ— कुछ लोग ऐसे नास्तिक होते हैं कि जो प्रभुकी स्तुतिही नहीं करते तो कुछ लोग आस्तिक तो होते हैं और वे प्रभुकी स्तुति भी करते हैं, पर उनकी स्तुति प्रेमभरी और हृदयसे नहीं होती, तीसरे लोग वे होते हैं, कि जो प्रभुकी स्तुति बडेही प्रेमसे और हृदयसे करते हैं । प्रभु ऐसे तीसरे वर्गके लोगोंकी स्तुतिही सुनता है ॥ १२ ॥

जब इन्द्र क्रोधित होता है, अर्थात् बिजली चमकती है, तब मेघके टुकडे टुकडे होते हैं और उनसे जल बरसता है और वे जल समुद्रकी तरफ बहते हैं ॥ १३ ॥

जब इन्द्रने शुष्ण नामक असुरपर अपने तीक्ष्ण धारवाले वज्रको गिराया, तब वह असुर मर गया और तब वह बलवान् इन्द्र प्रसिद्ध हुआ । इसी तरह राजा अपने शत्रुओंको मारकरही प्रसिद्ध होता है ॥ १४ ॥

द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी लोक इस इन्द्रको घेर नहीं सकते, इतना वह इन्द्र अनन्त सामर्थ्यवाला है, अथवा वह सब जगह व्याप्त होनेसे ये तीनों लोक उसको घेर नहीं सकते ॥ १५ ॥

इन्द्रने बडे बडे जल प्रवाहोंको रोककर पडे हुए बादलोंको फाडा और पानीके रूपमें उन्हें बहाया ॥ १६ ॥

१७७ य इमे रोदसी मही समीची समजग्रभीत । तमोभिरिन्द्र तं गुहः ॥ १७ ॥
१७८ य इन्द्र यतयस्त्वा भृगवो ये च तुष्टुवुः । ममेदुग्र श्रुधी हवम् ॥ १८ ॥
१७९ इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् । एनामृतस्य पिप्युषीः ॥ १९ ॥
१८० या इन्द्र प्रस्वस्त्वाऽऽसा गर्भमचक्रिरन् । परि धर्मेव सूर्यम् ॥ २० ॥
१८१ त्वामिच्छवसस्पते कण्वा उक्थेन वावृधुः । त्वां सुतास इन्दवः ॥ २१ ॥
१८२ तवेदिन्द्र प्रणीतिषूत प्रशस्तिरद्रिवः । यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥ २२ ॥

अर्थ— [१७७] (यः) जिस वृत्रने (इमे मही समीची) इन विस्तृत तथा मिले हुए द्यावा पृथ्वीको (सं- अजग्रभीत्) पकड लिया, हे इन्द्र ! (तं) उस वृत्रको (तमोभिः गुहः) अन्धकारोंसे ढक दे ॥ १७ ॥

[१७८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ये यतयः त्वा) जिन यतियोंने तेरी (तुष्टुवुः) स्तुति की, (च) और (ये भृगवः) जिन भृगुओंने [तेरी स्तुति की] उनमें हे (उग्र) शूरवीर इन्द्र ! (मम हवं श्रुधी) मेरे स्तोत्रको सुन ॥ १८ ॥

[१७९] हे (इन्द्र) इन्द्र (ते) तुम्हारी (ऋतस्य पिप्युषीः) यज्ञको बढानेवाली (इमा पृश्नयः) ये गायें (एनां आशिरं घृतं) इस दूध और घीको (दुहत) दुहती हैं ॥ १९ ॥

१ ते इमा पृश्नयः आशिरं घृतं दुहत— इन्द्रके पास अनेक गायें हैं, जो घी दूध देती हैं ।

२ ऋतस्य पिप्युषीः— गायें यज्ञको बढाती हैं, अतः हर यज्ञ करनेवालेको गायें पालनी चाहिए ।

[१८०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (याः प्रस्वः) जो [बच्चे] उत्पन्न करनेवाली गायें (सूर्यं परि घर्म इव) सूर्यके चारों ओर पानीके समान, (त्वा) तेरे वीर्यको (आसा) मुखसे खाकर (गर्भं अचक्रिरन्) गर्भमें धारण करती है ॥ २० ॥

[१८१] हे (शवसस्पते) बलके स्वामिन् (त्वां इत्) तुझको ही (कण्वाः) ज्ञानी (उक्थेन वावृधुः) स्तोत्रसे उत्साहित करते हैं और (सुतासः इन्दवः त्वां) सोमरस भी तुझे हर्षित करते हैं ॥ २१ ॥

[१८२] हे (अद्रि-वः इन्द्र) पर्वतोंके किलोंमें वास करनेवाले इन्द्र ! जो (वितन्तसाय्यः यज्ञः) विस्तृत यज्ञ किये जाते हैं, [उन] (प्रणीतिषु) यज्ञोंमें (तव प्रशस्तिः) तेरी ही प्रशंसा [गाई जाती है] ॥ २२ ॥

१ प्रणीतिषु तव प्रशस्तिः— यज्ञोंमें इन्द्रकी प्रशंसा होती है । वीरकी प्रशंसा की जाती है ।

भावार्थ— वृत्र अर्थात् मेघने जब द्यु और पृथ्वी लोकको आच्छादित कर लिया, तब सर्वत्र अन्धकार छा गया ॥ १७ ॥

सब यति अर्थात् त्यागी जन भी इसी इन्द्रकी स्तुति करते हैं, और सबका भरण पोषण करनेवाले संसारी जन भी इसी इन्द्रकी स्तुति करते हैं । अर्थात् सभी लोग इसी प्रभुकीही स्तुति करते हैं ॥ १८ ॥

इन्द्र गायोंका पालन करनेवाला है, अतः उसकी गायें भरपूर प्रमाणमें दूध देती हैं । उन दूध और घृतसे यज्ञकी अग्नि प्रदीप्त होती है । इसी तरह राष्ट्रमें गायोंका पालन हो, तथा उन गायोंके दूध, दही और घृतसे यज्ञकी वृद्धि हो ॥ १९ ॥

सूर्यकी गायें अर्थात् किरणें इन्द्र अर्थात् विद्युत्के वीर्य अर्थात् जलको अपने मुंहसे पीती हैं और उस जलको बादलोंमें स्थापित करती हैं । इस प्रकार वे बादल उन जलोंके द्वारा गर्भित होते हैं ॥ २० ॥

इस इन्द्रको ज्ञानी जन अपने स्तोत्रोंसे उत्साहित करते है और सोमरस उसे हर्षित करते हैं ॥ २१ ॥

मेघरूपी किलेमें यह विद्युत्रूपी इन्द्र वास करता है और उन मेघोंसे पानी बरसानेपर सर्वत्र अन्न धान्यकी समृद्धि होती है, और उस अन्न-धान्यसे यज्ञ आदि किए जाते हैं, उन यज्ञोंमें इन्द्रकी स्तुति गाई जाती है ॥ २२ ॥

१८३ आ नं इन्द्र महीमिषं पुरं न दर्षि गोमंतीम् । उत प्रजां सुवीर्यम् ॥ २३ ॥
१८४ उत त्यदाश्वश्व्यं यदिन्द्र नाहुंषीष्वा । अग्रे विक्षु प्रदीदयत् ॥ २४ ॥
१८५ अभि व्रजं न तंत्निषे सूर उपाकचंक्षसम् । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ २५ ॥
१८६ यदुङ्ग तंविषीयस इन्द्रं प्रराजंसि क्षितीः । महाँ अपार ओजंसा ॥ २६ ॥

अर्थ— [१८३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः) हमें (महीं गोमतीं पुरं) बडे गौवोंसे युक्त नगरको, (इषं) अन्नको (उत) और (प्रजां सु-वीर्यं) प्रजा तथा उत्तम बलको (नः आदर्षि) दे ॥ २३ ॥

१ महीं गोमतीं पुरं— बडे गौओंसे भरे नगरको हमें दो।

२ इष— अन्नको दे दो।

३ प्रजां सुवीर्यं नः आदर्षि— प्रजा और उत्तम वीर्यको हमें दे दो।

नगरमें बहुत गौवें हैं तथा अन्न। प्रजा और उत्तम वीर्य लोगोंके पास हो।

[१८४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तुमने (अग्रे) पहले (नाहुषीषु विक्षु) नहुष राजाकी प्रजाओंको (यत् आशु अश्व्यं) जिस शीघ्र दौडनेवाले घोडेके समूहको (प्रदीदयत्) दिया था, (उत त्यद् आ) उसकोही [हमें दो] ॥ २४ ॥

नहुष— इस नामका एक राजा, मनुष्य 'नहुष इति मनुष्यनाम' (निघं. २।३)
शीघ्र दौडनेवाले घोडे अपने पास होने चाहिये।

[१८५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् नः मृळयासि) जब हमें सुखी करते हो, तब (सूर) हे विद्वान् इन्द्र ! तुम (उपाक चक्षसं व्रजं न) पासमें दीखनेवाले गोष्ठको (अभितत्निषे) विस्तृत करते हो ॥ २५ ॥

१ उपाक- चक्षसं गोष्ठं अभितत्निषे— वह इन्द्र समीपके गोष्ठको गायोंसे भरकर विस्तृत करता है। गायोंका पालन करना चाहिये।

[१८६] हे (अंग इन्द्र) प्रिय इन्द्र ! तुम (यत् तविषीयसे) जब अपना बल प्रकट करते हो तब (महाँ अपार ओजसा) अपने महान्, अनन्त बलसे (क्षितीः प्रराजसि) मनुष्योंपर शासन करते हो ॥ २६ ॥

१ महां अपार ओजसा क्षितीः प्रराजसि— यह महान् इन्द्र अपने अनन्त बलसे सब मनुष्योंपर शासन करता है।

२ क्षितयः— मनुष्य, पृथ्वी, 'क्षितयः मनुष्यनाम' (निघं. २।३)

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू हमें गायोंसे युक्त नगर, अन्न, उत्तम सन्तान तथा उत्तम बल प्रदान कर ॥ २३ ॥

मनुष्योंके राजाओंके पास दौडनेवाले घोडे हों, ताकि शत्रुपर आक्रमण करनेके समय वे उपयोगमें आ सकें ॥ २४ ॥

इन्द्र जिस मनुष्यको सुखी करना चाहता है, उसके गोष्ठको गायोंसे भर देता है। गायोंकी समृद्धिमेंही मनुष्योंकी समृद्धि है ॥ २५ ॥

यह इन्द्र अपने महान् और अनन्त बलके सहारेही सब विश्वपर शासन करता है। जो बलशाली है, वही प्रजाओंपर शासन कर सकता है ॥ २६ ॥

१८७ तं त्वा॑ ह॒विष्म॑ती॒र्विश॒ उप॑ ब्रुवत ऊ॒तये॑ । उ॒रु॒ज्रय॑स॒मिन्दु॑भिः ॥ २७ ॥
१८८ उ॒प॒ह्व॒रे गि॑री॒णां सं॒ग॒थे च॑ न॒दीना॑म् । धि॒या विप्रो॑ अजायत ॥ २८ ॥
१८९ अतः॑ समु॒द्रमु॒द्वत॑श्चिकि॒त्वाँ अव॑ पश्यति । यतो॑ वि॒पा॒न एज॑ति ॥ २९ ॥
१९० आदित् प्र॒त्नस्य॒ रेत॑सो ज्योति॑ष्पश्यन्ति वास॒रम् । प॒रो यदि॒ध्यते॑ दि॒वा ॥ ३० ॥

अर्थ— [१८७] हे इन्द्र ! (तं) उस (उरुज्रयसं त्वा) महान् बलवाले तुझको (हविष्मतीः विशः) हवि देनेवाली प्रजायें (ऊतये) अपने रक्षणके लिए (इन्दुभिः उपब्रुवत) सोमरसोंको तयार करके पास बुलाती है ॥ २७ ॥

१ उरु - ज्रयस्— विशाल बलवाला,

२ हविष्मतीः विशः— हवि तैयार करके यज्ञ करनेवाली प्रजायें ।

३ उरुज्रयसं विशः ऊतये अपब्रुवत— अधिक बलवान् वीरको प्रजाएं अपने संरक्षणके लिये बुलाती हैं ।

[१८८] (गिरीणां उपह्वरे) पहाडोंके उतार पर (च) और नदीनां संगथे) नदियोंके संगमपर [मनुष्य] (धिया) बुद्धिसे (विप्रः अजायत) ज्ञानी बनता है ॥ २८ ॥

१ गिरीणां उपह्वरे— पहाडोंकी उतराईपर ।

२ नदीनां संगमे— नदीयोंके संगमपर

३ धिया विप्रः अजायत— बुद्धिको बढानेसे मनुष्य ज्ञानी बनता है ।

[१८९] (विपानः यतः एजति) व्यापक इन्द्र जिस स्थानसे गति करता है (उद्वतः अतः) ऊपरवाले उस स्थानसे (चिकित्वान्) बुद्धिमान् इन्द्र (समुद्रं अव पश्यति) जल मिश्रित सोमको या समुद्रको नीचे मुख करके देखता है ॥ २९ ॥

समुद्र— जल, समुद्र

[१९०] (दिवा परः) द्युलोकसे भी परे [यह इन्द्र] (यत् इध्यते) जब प्रकाशित होता है (आत् इत्) उसके अनन्तरही (प्रत्नस्य रेतसः) अति पुरातन वीर्यवान् [इस इन्द्रकी] (वासरं ज्योतिः) दिनको बनानेवाली ज्योतिको [मनुष्य] (पश्यन्ति) देखते हैं ॥ ३० ॥

१ परः दिवा यत् इध्यते— द्युलोकके ऊपर जब प्रकाशित होता है तब

२ प्रत्नस्य रेतसः वासरं ज्योतिः पश्यन्ति— पुरातन वीर्यसंपन्न इन्द्रकी दिनको बनानेवाली ज्योतिको मनुष्य देखते हैं ।

भावार्थ— अपनी रक्षा करनेके लिए सारे प्राणी इसी बलशाली इन्द्रकी स्तुति करते हैं । बलशालीका सारी प्रजायें सत्कार करती हैं ॥ २७ ॥

पहाडोंकी उतराईपर अथवा नदीयोंके संगमपर मनुष्य ध्यान धारणा करके, विद्याध्ययन द्वारा अपनी बुद्धि बढानेसे ज्ञानी होता है ॥ २८ ॥

यह इन्द्र जहां जहां गति करता है, वहां वहांसे जलके समुद्रको खाली कर देता है । जहां जहां विद्युत् गति करती है, वहां वहांके बादल जलसे खाली हो जाते हैं । उनका सारा पानी पृथ्वीपर बरस जाता है ॥ २९ ॥

जब द्युलोकमें इन्द्र-सूर्य प्रकाशित होता है, तब चारों ओर उसका तेजस्वी प्रकाश फैल जाता है और उसकी ज्योति दिनको प्रकट करती है ॥ ३० ॥

१९१ कण्वा॑स इन्द्र ते म॒तिं विश्वे॑ वर्धन्ति॒ पौंस्य॑म् । उ॒तो श॑विष्ठ वृष्ण्य॑म् ॥ ३१ ॥
१९२ इ॒मां मे॑ इन्द्र सुष्टु॒तिं जु॒षस्व॒ प्र सु माम॑व । उ॒त प्र व॑र्धया म॒तिम् ॥ ३२ ॥
१९३ उ॒त ब्र॑ह्म॒ण्या व॒यं तुभ्यं॑ प्रवृद्ध वज्रिवः । विप्रा॑ अतक्ष्म जी॒वसे॑ ॥ ३३ ॥
१९४ अ॒भि कण्वा॑ अनूषता॒ऽऽपो॒ न प्र॒वता॑ य॒तीः । इन्द्रं॒ वन॑न्वती म॒तिः ॥ ३४ ॥

अर्थ— [१९१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (विश्वे कण्वासः) सब ज्ञानी जन (ते मतिं पौंस्यं) तेरी बुद्धि और बलको (वर्धन्ति) बढाते हैं, (उत) और हे (शविष्ठ) बलशाली इन्द्र ! (वृष्ण्यं) तेरे पराक्रमको भी [बढाते हैं] ॥ ३१ ॥

१ विश्वे कण्वासः ते मतिं पौंस्यं वृष्ण्यं वर्धन्ति— सभी ज्ञानी जन तेरी बुद्धि, बल और वीर्यको बढाते हैं। पौंस्यं, वृष्ण्यं, शवः— बल, पराक्रम, वीर्य ' शवः पौंस्यं मिति बलनाम ' (निघं. २।९). बल बढाना मनुष्यका कर्तव्य है।

[१९२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मे इमां सुष्टुतिं जुषस्व) मेरी इन स्तुतियोंको स्वीकार कर और (मां सु प्र अव) मेरा अच्छी तरह संरक्षण कर (उत) और (मतिं प्रवर्धय) मेरी बुद्धिको बढा ॥ ३२ ॥

१ मे सुष्टुतिं जुषस्व— मेरी इस उत्तम स्तुतिको स्वीकार कर।

२ मां सु प्र अव— मेरा उत्तम संरक्षण कर।

३ मतिं प्रवर्धय— मेरी बुद्धिका संरक्षण कर।

बुद्धिका संवर्धन करना और अपना संरक्षण करना चाहिये।

[१९३] हे (प्रवृद्ध वज्रिवः) सबसे बडे तथा वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! (ब्रह्मण्याः विप्राः वयं) ब्रह्म ज्ञानी हम (जीवसे) अपने दीर्घ जीवनके लिए (तुभ्यं अतक्ष्म) तेरी स्तुति करते हैं ॥ ३३ ॥

१ प्रवृद्ध वज्रिवः— बडे और वज्रधारी शूर।

२ ब्रह्मण्याः विप्राः— ब्रह्मज्ञानी विप्र, ज्ञानी।

३ जीवसे तुभ्यं अतक्ष्म— हम दीर्घ जीवनके लिये और तेरी प्राप्तिके लिये स्तोत्र करते हैं।

[१९४] (कण्वाः) ज्ञानी जन (अभि अनूषत) [इन्द्रकी ही] स्तुति करते हैं, [उनके द्वारा की हुई] (मतिः) स्तुति (यतीः आपः प्रवता न) जैसे बहते हुए जल प्रवाह नीची भूमिकी ओर जाते हैं, उसी तरह (इन्द्रं वनन्वती) इन्द्रकोही प्राप्त होती है ॥ ३४ ॥

१ मतिः इन्द्रं वनन्वती— सारी स्तुतियां उसी एक परमात्माकोही प्राप्त होती हैं।

भावार्थ— सभी ज्ञानी अपनी अपनी स्तुतियोंसे इस इन्द्रके बल, बुद्धि, पराक्रम और उत्साहको बढाते हैं। राष्ट्रमें विद्वान ब्राह्मण भी अपने ओजस्वी वचनोंसे राजाके बल और पराक्रमको बढावे ॥ ३१ ॥

हे इन्द्र ! मेरी इन स्तुतियोंको स्वीकार कर और मेरी अच्छी तरह रक्षा कर तथा मेरी बुद्धिको बढा ॥ ३२ ॥

ब्रह्मज्ञानी और शूर होकर दीर्घ जीवनके लिये स्तोत्र गान करना योग्य है ॥ ३३ ॥

सभी ज्ञानी उसी एक ऐश्वर्यशाली परमात्माकी स्तुति करते हैं। जिस तरह विभिन्न दिशामें बहनेवाली सारी नदियां उसी एक समुद्रमें जाकर मिलती हैं, उसी तरह ज्ञानियोंके द्वारा अनेक तरहसे की गई स्तुतियां उसी एक प्रभुके पास जाती हैं ॥ ३४ ॥

१९५ इन्द्रमुक्थानि वावृधुः समुद्रमिव सिन्धवः । अनुत्तमन्युमजरम् ॥ ३५ ॥
१९६ आ नो याहि परावतो हरिभ्यां हर्यताभ्याम् । इममिन्द्र सुतं पिब ॥ ३६ ॥
१९७ त्वामिद् वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः । हवन्ते वाजसातये ॥ ३७ ॥
१९८ अनु त्वा रोदसी उभे चक्रं न वर्त्येतशम् । अनु सुवानास इन्दवः ॥ ३८ ॥
१९९ मन्दस्वा सु स्वर्णर उतेन्द्र शर्यणावति । मत्स्वा विवस्वतो मती ॥ ३९ ॥

अर्थ— [१९५] (सिन्धवः समुद्रं इव) जैसे नदियां समुद्रको बढाती हैं, उसी प्रकार सब (उक्थानि) स्तोत्र (अनुत्तमन्युं अ-जरं इन्द्रं) सबसे अधिक उत्साहित, सदा तरुण इन्द्रको ही (वावृधुः) बढाते हैं ॥ ३५ ॥

१ अनुत्तमन्युः— जिसका उत्साह कभी कम नहीं होता। उत्साह कम नहीं होना चाहिये।
२ अ-जरः— क्षीण नहीं होना चाहिये। सदा तरुण रहना योग्य है।
३ उक्थानि अनुत्तमन्युं अजरं वावृधुः— स्तोत्र उत्साहित जरारहित वीरका सामर्थ्य बढाते हैं।

[१९६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (हर्यताभ्यां हरिभ्यां) तेजस्वी दो घोडोंसे (परावतः) दूर देशसे (नः आ याहि) हमारे पास आओ, और (इमं सुतं पिब) इस सोम रसको पिओ ॥ ३६ ॥

[१९७] हे (वृत्रहन्तम) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (वृक्तबर्हिषः जनासः) ऋत्विक् जन (वाजसातये) धन तथा अन्नकी प्राप्तिके लिए (त्वां इत्) तुझेही (हवन्ते) बुलाते हैं ॥ ३७ ॥

१ वृक्तबर्हिषः— ऋत्विग्, जिन्होंने आसन फैलाये हैं 'वृक्तबर्हिष इति ऋत्विङ्नाम' (निघं ३।१८)
२ वाजसातये त्वां हवन्ते— अन्न प्राप्तिके लिए तेरी प्रार्थना करते हैं। परमात्माकी प्रार्थनासे धन तथा अन्नकी प्राप्ति होती है।

[१९८] हे इन्द्र ! (चक्रं न एतशं वर्ति) चक्र जैसे घोडेके पीछे चलता है, उसी प्रकार (उभे रोदसी त्वा अनु) ये दोनों द्यावापृथ्वी तेरे अनुकूल होकर चलते हैं, तथा (सुवानासः इन्दवः) निचोडे जानेवाले सोम भी (अनु) [तेरे] अनुकूल [चलते हैं] ॥ ३८ ॥

१ एतशः— घोडा 'एतश इति अश्व नाम' (निघं. १।१४)
उभे रोदसी त्वा अनु— ये दोनों द्यावापृथिवी तेरे अनुकूल होकर चलते हैं।

[१९९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (शर्यणावति स्वर्ण-रे) शर्यणावत् प्रदेशमें होनेवाले यज्ञमें (सु मन्दस्व) अच्छी तरह आनन्दित हो, (उत) तथा (विवस्वतः) यज्ञ करनेवालेकी (मतीः) स्तुतिसे भी (मत्स्व) आनन्दित हो ॥ ३९ ॥

भावार्थ— जिस तरह नदियोंका पानी समुद्रको बढाता है उसी तरह सब स्तोत्र इन्द्रके उत्साह और पराक्रमको बढाते है ॥ ३५ ॥

हे इन्द्र ! तुम अपने तेजस्वी दो घोडोंसे दूर देशसे हमारे पास आओ ॥ ३६ ॥

आसनादि बिछाकर उत्तम रीतिसे सत्कार करनेवाले ऋत्विज अन्न तथा धनकी प्राप्तिके लिए इन्द्रकोही बुलाते हैं ॥ ३७ ॥

रथके घोडे जिस तरफ जाते हैं, उसी तरफ रथके पहिए भी जाते हैं, उसी तरह जिधर इन्द्र चाहता है, उधरही सारा विश्व जाता है। यह सारा विश्व इन्द्रके शासनमेंही चलता है ॥ ३८ ॥

हे इन्द्र ! तू उत्तम यज्ञोंमें जाकर आनन्दित हो और उन यज्ञोंमें की जानेवाली स्तुतियोंसे भी तू आनंदित हो ॥ ३९ ॥

२०० वावृधान उप द्यवि वृषा वज्र्यरोरवीत् । वृत्रहा सोमपातमः ॥ ४० ॥
२०१ ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा । इन्द्र चोष्कूयसे वसु ॥ ४१ ॥
२०२ अस्माकं त्वा सुताँ उप वीतपृष्ठा अभि प्रयः । शतं वहन्तु हरयः ॥ ४२ ॥
२०३ इमां सु पूर्व्यां धियं मधोर्घृतस्य पिप्युषीम् । कण्वा उक्थेन वावृधुः ॥ ४३ ॥
२०४ इन्द्रमिद् विमहीनां मेधे वृणीत मर्त्यः । इन्द्रं सनिष्युरूतये ॥ ४४ ॥

अर्थ— [२००] (वावृधानः) सबसे बडे (वृषा) बलवान् (वज्री) वज्रको धारण करनेवाले (वृत्रहा) वृत्रको मारनेवाले, (सोम-पा-तमः) बहुत अधिक सोम पीनेवाले इस इन्द्रने (उप द्यवि) पासही युलोकमें (अरोरवीत्) शब्द किया ॥ ४० ॥

[२०१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पूर्वजाः) सबसे पहले उत्पन्न होनेवाले तुम (ऋषिः असि) सर्वज्ञ हो, तथा (एकः) अकेले ही (ओजसा) अपने बलसे (ईशानः) सब पर शासन करनेवाले हो, तुम [मनुष्योंको] (वसु) धन (चोष्कूयसे) देते हो ॥ ४१ ॥

१ पूर्वजाः— इस इन्द्रकी सत्ता पहलेसे है।

२ एकः ओजसा ईशानः— वह अकेले ही अपने बलसे सब जगत् पर शासन करता है।

३ वसु चोष्कूयसे— वह धन भी देता है।

४ चोष्कूयसे — देना ' चोष्कूयमाण इन्द्र भूरिवामं ददिन्द्र वहु वननीयम् (निरु. ६।२२)

५ इन्द्रः एकः पूर्वजाः ऋषिः ओजसा ईशानः— इन्द्र अकेलाही सबसे प्रथम था, वह ज्ञानी अपनी शक्तिसे सबका ईश्वर है।

[२०२] हे इन्द्र ! (त्वा) तुझे तेरे (वीत पृष्ठाः शतं हरयः) उत्तम पीठवाले सैंकडों घोडे (अस्माकं सुतान् प्रयः) अभि हमारे द्वारा तैयार किये सोम रसरूपी अन्नकी ओर (उप वहन्तु) ले आवें ॥ ४२ ॥

प्रयः— अन्न ' प्रय इति अन्न नाम '' (निघं. २।७)

[२०३] (सु-पूर्व्यां) अति प्राचीन, (मधोघृतस्य पिप्युर्षी) मीठे जलको बढानेवाले (इमां धियं) इस [यज्ञ] कर्मको (कण्वाः) ज्ञानी जन (उक्थेन वावृधु) मंत्रोंसे बढाते हैं ॥ ४३ ॥

घृतं जल, घी ' घृतमिति उदक नाम ' (निघं. १।१२)

[२०४] (वि-महीनां) बडे बडे [देवों]के बीचमेंसे (इन्द्रं इत्) इन्द्रको ही (मेधे) यज्ञमें (मर्त्यः वृणीत) मनुष्य वरण करते हैं, चुनते हैं, तथा (सनिष्युः) युद्ध करनेकी इच्छावाला [मनुष्य] भी (ऊतये) संरक्षणके लिए [इन्द्रको ही चुनता है] ॥ ४४ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र सबसे महान्, बलवान्, वज्रको धारण करनेवाला, वृत्रको मारनेवाला तथा सोमको पीनेवाला है। ऐसा यह इन्द्र अपने पराक्रमको सर्वत्र प्रकट करता है ॥ ४० ॥

यह इन्द्र- प्रभु सबसे पहला ऋषि मंत्रद्रष्टा ज्ञानी है और यह अकेले ही अपने बलसे सारे संसार पर शासन करता है। संसार पर शासन करनेके लिए इसे किसी दूसरेके बलकी आवश्यकता नहीं पडती ॥ ४१ ॥

हे इन्द्र ! तेरे उत्तम पीठवाले सैंकडो घोडे हमारे द्वारा तैय्यार किए गए सोमरसोंकी ओर तुझे ले आवें ॥ ४२ ॥

यज्ञके द्वारा जल बढता है। यज्ञसे बादल बनते हैं, और बादलोंसे वृष्टि होती है। (' यज्ञाद्भवति पर्जन्यः ' भ. गी.) अतः ज्ञानी जन यज्ञोंको अपने मंत्रोंसे उद्योत करते हैं ॥ ४३ ॥

यज्ञमें इन्द्रको ही मनुष्य स्वीकारते हैं। संग्राममें भी संरक्षणके लिए इन्द्रको ही बुलाया जाता है। धनेच्छुक मनुष्य भी इन्द्रको ही पास बुलाते हैं ॥ ४४ ॥

×

२०५ अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी । सोमपेयाय वक्षतः ॥ ४५ ॥
२०६ शतमहं तिरिन्दिरे सहस्रं पर्शावा ददे । राधांसि याद्वानाम् ॥ ४६ ॥
२०७ त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् । ददुष्पज्राय साम्ने ॥ ४७ ॥
२०८ उदानट् ककुहो दिवमुष्ट्राञ्चतुर्युजो ददत् । श्रवसा याद्वं जनम् ॥ ४८ ॥

[७]

(ऋषिः- पुनर्वत्सः काण्वः । देवता- मरुतः । छन्दः- गायत्री ।)

२०९ प्र यद् वस्त्रिष्टुभमिषं मरुतो विप्रो अक्षरत् । वि पर्वतेषु राजथ ॥ १ ॥
२१० यदङ्ग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वम् । नि पर्वता अहासत ॥ २ ॥

अर्थ— [२०५] हे (पुरुष्टुत) बहुतोंके द्वारा प्रशंसित (त्वा) तुझे (प्रियमेध स्तुता हरी) प्रियमेधके द्वारा प्रशंसित घोडे (अर्वाचं) हमारी ओर (सोमपेयाय वक्षतः) सोम पीनेके लिए ले आवें ॥ ४५ ॥

[२०६] (याद्वानां अहं) मनुष्योंमें उत्तम मैं (पर्शौ तिरिन्दिरे) परशुके पुत्र तिरिन्दिरके यज्ञमें (शतं सहस्रं राधांसि) सैंकडों और हजारों धन (आ ददे) स्वीकार करता हूँ ॥ ४६ ॥

[२०७] (साम्ने) यज्ञमें (पज्राय) पज्रको लोगोंमें (अर्वतां त्रीणि शतानि) तीन सौ घोडे तथा (गोनां दश सहस्रा) दस हजार गायें (ददुः) दीं ॥ ४७ ॥

[२०८] (याद्वं जनं) अनेक मनुष्योंका तथा (चतुर्युजः उष्ट्रान्) चार सोनेके भोरोंसे लदे हुए ऊंटोंको देकर मनुष्य (श्रवसा) अपने यशसे (ककुहः) उन्नत होकर (दिवं उत् आनट्) द्युलोक तक पहुंच गया ॥ ४८ ॥

[७]

[२०९] हे (मरुतः) वीर मरुत गण ! (यत् विप्रः) जब ज्ञानी पुरुष (वः) तुम्हारे लिये (त्रिष्टुभं) त्रिष्टुभ् छन्दके बनाया हुआ स्तोत्र पढकर (इषं प्र अक्षरत्) अन्न अर्पण कर चुका, तब तुम (पर्वतेषु विराजथ) पर्वतोंमें विराजमान होते हो ॥ १ ॥

[२१०] (तविषी-यवः) बलवान् (शुभ्राः) सुहानेवाले (अङ्ग) प्रिय तथा वीर मरुतो ! (यत्) जब तुम अपना (यामं) गमनके लिए निश्चित किया हुआ रथ (अचिध्वं) सुसज्ज करते हो, तब (पर्वता नि अहासत) पर्वत भी चलायमान हो उठते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! उत्तम मेधा बुद्धिवाले ज्ञानियोंके द्वारा प्रशंसित घोडे तुझे हमारे पास ले आवें ॥ ४५ ॥

मनुष्योंमें जो उत्तम होता है, उसेही सब तरहका ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

यज्ञमें विद्वान् ज्ञानीको भरपूर प्रमाणमें धन और पशु आदि देने चाहिए ॥ ४७ ॥

उत्तम दान देनेसे मनुष्यका यश सर्वत्र फैलता है और उसका यश द्युलोक तक जा पहुंचता है । ४८ ।

एक समय जब ज्ञानी उपासकने मरुतोंको लक्ष्यमें रखकर त्रिष्टुभ छन्दका सामगायन किया और उन्हें अन्न प्रदान किया तब वे वीर पर्वत श्रेणियोंमें आनन्दपूर्वक दिन बिताने लगे थे ॥ १ ॥

बल बढानेवाले वीर जब शत्रु पर चढाई करनेकी लालसासे अपना रथ सुसज्जित कर देते हैं, तब ऐसा प्रतीत होने लगता है कि, मानों पहाड भी हिलने लगते हैं ॥ २ ॥

२११ उदीरयन्त वायुभि॒र्वा॒श्रासः॒ पृश्नि॑मातरः । धु॒क्षन्त॑ पि॒प्युषी॒मिष॑म् ॥ ३ ॥
२१२ वप॑न्ति म॒रुतो॒ मिहं॒ प्र वे॑पयन्ति॒ पर्व॑तान् । यद् याम॒ यान्ति॑ वा॒युभिः॑ ॥ ४ ॥
२१३ नि यद् यामा॑य वो गि॒रिर्नि सिन्ध॑वो॒ विध॑र्मणे । म॒हे शुष्मा॑य येमि॒रे ॥ ५ ॥
२१४ यु॒ष्माँ उ॒ नक्त॑मू॒तये॑ यु॒ष्मान् दिवा॑ हवामहे । यु॒ष्मान् प्र॑य॒त्य॑ध्व॒रे ॥ ६ ॥
२१५ उदु॒ त्ये अ॑रु॒णप्स॑व॒श्चि॒त्रा यामे॑भिरीरते । वा॒श्रा अधि॒ ष्णुना॑ दि॒वः ॥ ७ ॥
२१६ सृ॒जन्ति॑ र॒श्मिमोज॑सा॒ पन्थां॒ सूर्या॑य॒ यात॑वे । ते भा॒नुभि॒र्वि त॑स्थिरे ॥ ८ ॥

अर्थ— [२११] (वाश्रासः) गर्जना करनेवाले (पृश्नि-मातरः) भूमिको माता माननेवाले वीर मरुत् (वायुभिः) वायु-प्रवाहोंकी सहायतासे (उद् ईरयन्त) मेघोंको इधर-उधर ले चलते हैं और तदनुसार (पिप्युषीं इषं धुक्षन्त) पुष्टिकारक अन्नका सृजन करते हैं ॥ ३ ॥

[२१२] (मरुतः) वीर मरुतोंका यह दल (यत् वायुभिः) जब वायुओंके साथ (यामं यान्ति) दौडने लगते हैं, तब (मिहं वपन्ति) वे वर्षा करने लगते हैं, और (पर्वतान् प्र वेपयन्ति) पर्वतश्रेणियोंको कंपायमान कर देते हैं ॥ ४ ॥

[२१३] (यद्) जब (वः यामाय) तुम्हारी गतिशीलता एवं प्रगतिसे भयभीत होकर (गिरिः नि) पर्वत एवं (वि-धर्मणे) विशेष ढंगसे अपना धारण करनेवाले तुम्हारे (महे) बडे एवं महनीय (शुष्माय) बलसे डरकर (सिन्धवः) नदियाँ (नि येमिरे) अपने आपको नियंत्रित कर देती हैं, [अर्थात् रुक जाती हैं, तब तुम यथेष्ट वर्षा करते हो ।] ॥ ५ ॥

[२१४] हमारी (ऊतये) रक्षाके लिए (युष्मान् उ) तुम्हें ही हम (नक्तं) रात्रीके समय (हवामहे) बुलाते हैं, (दिवा) दिनकी वेलामें भी (युष्मान्) तुम्हेंही हम पुकारते हैं (प्रयति अध्वरे) प्रारंभित हिंसारहित कर्मोंके समय भी हम (युष्मान्) तुम्हींको बुलाते हैं ॥ ६ ॥

[२१५] (त्ये) वे (अरुण-प्सवः) लालिमायुक्त (चित्राः) आश्चर्यकारक (वाश्राः) गर्जना करनेवाले वीर मरुत् (यामेभिः) अपने रथोंमेंसे (दिवः अधि) द्युलोकके ऊपर (स्नुना) पर्वतोंकी ऊँची चोटियों परसे (उद् ईरते उ) उडान लेने लगते हैं ॥ ७ ॥

[२१६] (सूर्याय यातवे) सूर्यके जानेके लिए (रश्मिं पन्थां) किरणरूपी मार्गको (ओजसा सृजन्ति) वो अपनी शक्तिसे बना देते हैं, (ते) वे (भानुभिः वि तस्थिरे) तेजद्वारा संसारको व्याप्त कर देते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— पवनकी झकोरोंसे बादल इधर-उधर जाने लगते हैं और कुछ कालके उपरान्त उनसे वर्षा होती है, तथा अन्न भी यथेष्ट मात्रामें उत्पन्न होता है। इसी अन्नसे जीवसृष्टिका भरणपोषण होता है। निस्संदेह मरुतोंका यह कार्य वर्णनीय है ॥ ३-४ ॥

मरुतोंमें विद्यमान वेग तथा बलसे भयभीत होकर पर्वत स्थिर हुए और नदियाँ धीमी चालसे चलने लगी ॥ ५ ॥

कार्य करते समय, दिन एवं रात्रीकी वेलामें अपने संरक्षणके लिए परम पिता परमात्मासे प्रार्थना करनी चाहिए ॥ ६ ॥

लाल वर्णवाला गणवेश पहनकर और रथ पर बैठकर ये वीर पर्वतों परसे भी संचार करने लगते हैं ॥ ७ ॥

मरुतोंमें यह शक्ति विद्यमान है कि, वे सूर्यको भी प्रकाशका मार्ग बतलाते हैं और सभी जगह तेजस्वी किरणोंको फैला देते हैं ॥ ८ ॥

२१७ इमां मे मरुतो गिर — मिमं स्तोममृभुक्षणः । इमं मे वनता हवम् ॥ ९ ॥
२१८ त्रीणि सरांसि पृश्नयो दुदुह्रे वज्रिणे मधु । उत्सं कवन्धमुद्रिणम् ॥ १० ॥
२१९ मरुतो यद्ध वो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे । आ तू न उप गन्तन ॥ ११ ॥
२२० यूयं हि ष्ठा सुदानवो रुद्रा ऋभुक्षणो दमे । उत प्रचेतसो मदे ॥ १२ ॥
२२१ आ नो रयिं मदच्युतं पुरुक्षुं विश्वधायसम् । इयर्ता मरुतो दिवः ॥ १३ ॥
२२२ अधीव यद् गिरीणां यामं शुभ्रा अचिध्वम् । सुवानैर्मन्दध्व इन्दुभिः ॥ १४ ॥

अर्थ— [२१७] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (इमां मे गिरं) इस मेरी स्तुतिपूर्ण वाणीको (वनत) स्वीकार करो; हे (ऋभु-क्षणः) शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्ज वीरो ! तुम (इमं स्तोमं) इस मेरे स्तोत्रका और (मे इमं हवं) मेरी इस प्रार्थनाका स्वीकार करो ॥ ९ ॥

[२१८] (पृश्नयः) मरुतोंकी माताओंने (वज्रिणे) इन्द्रके लिए (त्रीणि सरांसि) तीन झीलें, (मधु) मिठासभरा (उत्सं) जलपूर्ण कुंड और (उद्रिणं) पानीसे भरा हुआ (कवन्धं) जल धारण करनेवाला बृहदाकार पात्र या मेघ (दुदुह्रे) दोहन कर भरा है ॥ १० ॥

[२१९] हे (मरुतः) वीर मरुद्गण ! (यत् ह) जब (वः) तुम्हें, (सुम्नायन्तः) सुखी होनेकी लालसा करनेवाले हम (दिवः हवामहे) द्युलोकसे बुलाते हैं, उस समय (आ तु) तुरन्त ही तुम (नः उप गन्तन) हमारे समीप आ जाओ ॥ ११ ॥

[२२०] हे (सु-दानवः !) भली प्रकार दान देनेवाले (रुद्राः) शत्रुसंघको रुलानेवाले तथा (ऋभु-क्षणः) शस्त्र धारण करनेवाले वीरो ! (यूयं उत हि) तुम सचमुचही जब अपने (दमे) घरमें या यज्ञमें (मदे) आनन्दमें रहते हो, एवं सोमरसका सेवन करते हो, तब (प्र-चेतसः स्थ) तुम्हारी बुद्धि अधिक चेतनायुक्त बन जाती है ॥ १२ ॥

[२२१] हे (मरुतः) मरुत् संघ ! (नः) हमारे लिए (मद-च्युतं) शत्रुओंके गर्वका भंग करनेवाले, (पुरु-क्षुं) सबके लिए पर्याप्त (विश्व-धायसं) तथा सबके पोषणकी क्षमता रखनेवाले (रयिं) धनको (दिवः आ इयर्त) द्युलोकसे ला दो ॥ १३ ॥

[२२२] हे (शुभ्राः) तेजस्वी वीरो ! (गिरीणां अधिइव) पर्वतमय प्रदेश पर चढ जानेके समय जिस ढंगसे सुसज्ज कर रखते हैं वैसेही (यत्) जब तुम (यामं अचिध्वं) रथको तैयार कर चुकते हो, उस समय (सुवानैः इन्दुभिः) निचोडे हुए सोमरसकी धाराओंसे (मन्दध्वे) तुम हर्षित होते हो ॥ १४ ॥

भावार्थ-- भूमि, गौ तथा वाणी मरुतोंकी माताएँ हैं। भूमिसे अन्न तथा जल, गौसे दुग्ध और वाणीसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है। तीनोंके तीन सेवनीय तथा उपादेय वस्तुएँ हैं। मरुतोंकी माताओंने त्रिविध दुग्धसे तीन झीलें भरकर तैयार कर रखी हैं ताकि वीर मरुतोंका भरणपोषण सुचारु रूपसे एवं भली भाँति हो जाए ॥ ९-१० ॥

ये वीर बडे उदार, शत्रुओंका नाश करनेवाले सदैव शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्ज हैं और जिस समय ये अपने प्रासादोंमें तथा निवासस्थलोंमें सुखपूर्वक दिन बिताते हैं अथवा यज्ञभूमिमें सोमरसका सेवन करते हैं, तब इनकी बुद्धि अतीव चेतनाशील होती है ॥ ११-१२ ॥

हमें जो धन मिले वह, इस भाँतिका हो कि (१) उस धनसे शत्रुदलका गर्व विनष्ट हो जाए, (२) वह इतनी मात्रामें उपलब्ध हो कि सब सुखपूर्वक रह सकें, (३) सबकी पुष्टि हो जाए, सभी बलिष्ठ बनें। यदि ये तीन बातें हो जायँ, तो ही वह धन समीप रखनेयोग्य समझना उचित है, अन्य किसी प्रकारका नहीं ॥ १३ ॥

पर्वतोंपर चढते समय जैसे रथको तैयार करना पडता है, वैसेही वीर मरुत् जब रथको पूर्णतया सिद्ध या लैस बना रखते हैं, तब वे सोमरसके सेवनसे प्रसन्न एवं हर्षित हो उठते हैं। प्रथमतः सोमरस पीकर पश्चात् रथको तैयार रखकर पार्वतीय सबको परसे शत्रुदलपर धावा करके, उनकी धज्जियाँ उडानेके लिए मरुत् गमन करते हैं ॥ १४ ॥

२२३ एतावतश्चिदेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः । अदाभ्यस्य मन्मभिः ॥ १५ ॥
२२४ ये द्रप्सा इव रोदसी धमन्त्यनु वृष्टिभिः । उत्सं दुहन्तो अक्षितम् ॥ १६ ॥
२२५ उदु स्वानेभिरीरत उद् रथैरुदु वायुभिः । उत् स्तोमैः पृश्निमातरः ॥ १७ ॥
२२६ येनाव तुर्वशं यदुं येन कण्वं धनस्पृतम् । राये सु तस्य धीमहि ॥ १८ ॥
२२७ इमा उ वः सुदानवो घृतं न पिप्युषीरिषः । वर्धान् काण्वस्य मन्मभिः ॥ १९ ॥
२२८ क्व नूनं सुदानवो मदथा वृक्तबर्हिषः । ब्रह्मा को वः सपर्यति ॥ २० ॥

अर्थ— [२२३] (मर्त्यः) मानव (एतावतः चित्) इस प्रकार सचमुचही (अ-दाभ्यस्य) न दबाये जानेवाले प्रभुके (मन्मभिः) मननीय काव्योंसे (एषां) इनसे (सुम्नं भिक्षेत) उत्तम सुखकी याचना करे ॥ १५ ॥

[२२४] (ये) जो (अ-क्षितं उत्सं) कभी न घटनेवाले झरनेको-मेघको (दुहन्तः) दुहते हैं, वे वीर (वृष्टिभिः) वर्षाओंकी सहायतासे (द्रप्साः इव) मानों बारिशकी बूँदोंसे (रोदसी अनु धमन्ति) समूचे आकाश एवं भूमंडलको व्याप्त कर देते हैं ॥ १६ ॥

[२२५] (पृश्नि-मातरः) भूमिको माता माननेवाले वीर (स्वानेभिः उ) अपने शब्दों तथा अभिभाषणोंसे (उत् ईरते) ऊपर चढते हैं, (रथैः उत्) रथोंसे ऊर्ध्वगामी बनते हैं, (वायुभिः उ उत्) वायुओंसे ऊंचे पदपर आरूढ होते हैं, (स्तोमैः उत्) यशोंसे भी ऊपर उठ जाते हैं ॥ १७ ॥

[२२६] (येन) जिस शक्तिके सहारे (तुर्वशं यदुं) तुर्वश उपाधिधारी यदुनरेशका तुमने (आव) प्रतिपालन किया, (येन) जिससे (धन-स्पृतं कण्वं) धनको चाहनेवाले कण्वका संरक्षण किया, (तस्य) उस तुम्हारी संरक्षणक्षम शक्तिका हम (राये) धनकी प्राप्तिके लिये (सु धीमहि) भली भाँति ध्यान करते हैं ॥ १८ ॥

[२२७] हे (सु-दानवः) उत्तम दानी वीरो ! (घृतं न) घीके समान (इमाः पिप्युषीः इषः) ये पुष्टिकारक अन्न (कण्वस्य मन्मभिः) कण्वपुत्रके मनन करनेयोग्य काव्य या स्तोत्रद्वारा (वः वर्धान्) तुम्हारे यशकी वृद्धि करें ॥ १९ ॥

[२२८] हे (सु-दानवः) सुचारु रूपसे दान देनेवाले तथा (वृक्त-बर्हिषः) कुशासनोंपर बैठनेवाले वीरो ! (क्व नूनं मदथ) भला तुम किधर हर्षित हो रहे थे ? (कः ब्रह्मा) भला वह कौन ब्राह्मण है, जो (वः सपर्यति) तुम्हारी पूजा उपासना करता है ? ॥ २० ॥

भावार्थ— परम पिता परमात्मा किसी भी शत्रुके दबावसे दबनेवाला नहीं है, क्योंकि वह असीम सामर्थ्यवान् है। मानव उसके सम्बन्धमें मननीय काव्यकी निर्मिति करें तथा तल्लीनचेता बन गायन करें। मनकी उन्नत दशामें जो सुख मिल सकता है, उसे पानेकी चेष्टा करनी चाहिए ॥ १५ ॥

मरुत् मेघोंसे वर्षा करते हैं और वर्षाकी बूँदोंसे अखिल विश्वको परिपूर्ण कर डालते हैं ॥ १६ ॥

ये वीर भूमिको अपनी माता समझकर उसकी सेवा करनेवाले हैं और अपने अभिभाषणों, रथों, वायुयानों एवं यशोंसे ऊंची दशा पाते हैं। इन्हीं साधनोंद्वारा वे अपनी प्रगति करनेमें पर्याप्त सफलता पाते हैं ॥ १७ ॥

इन वीरोंने तुर्वश यदु तथा धनेच्छुक कण्वकी यथावत् रक्षा की। हमारी इच्छा है कि ये वीर उसी तरह हमें बचा दें, ताकि हम उनकी छत्रछायामें अधिकाधिक धनधान्यसंपन्न हों और उस वैभव एवं संपत्तिके बलबूतेपर विविध यज्ञ संपन्न कर समूची जनताका कल्याण करेंगे ॥ १८ ॥

उच्च कोटिके पुष्टिकारक अन्नोंके प्रदान एवं मननीय काव्योंके गायनसे वीरोंका यश बढने लगता है ॥ १९ ॥

हे वीरो ! चूँकि तुम शीघ्र मेरे समीप नहीं आ सके, अतः यह सवाल हठात् मेरे मनमें उठ खडा होता है कि किस जगह भला ये आनन्दोल्लासमें चूर हो बैठे हों और शायद ऐसा कौन उपासक इनसे प्रार्थना करता होगा कि, वहांसे शीघ्र प्रस्थान करना इन वीरोंको दूभर प्रतीत होता हो ॥ २० ॥

२२९ नहि ष्म यद्ध वः पुरा स्तोमेभिर्वृक्तबर्हिषः । शर्धाँ ऋतस्य जिन्वथ ॥ २१ ॥
२३० समु त्ये महतीरपः सं क्षोणी समु सूर्यम् । सं वज्रं पर्वशो दधुः ॥ २२ ॥
२३१ वि वृत्रं पर्वशो ययुर्वि पर्वताँ अराजिनः । चक्राणा वृष्णि पौंस्यम् ॥ २३ ॥
२३२ अनु त्रितस्य युध्यतः शुष्ममावन्नुत क्रतुम् । अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये ॥ २४ ॥
२३३ विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन् हिरण्ययीः । शुभ्रा व्यञ्जत श्रिये ॥ २५ ॥

अर्थ— [२२९] (वृक्त-बर्हिषः) हे दर्भासनपर बैठनेवाले वीरो ! (नहि स्म) क्या यह सच नहीं है कि (यत् ह) सचमुच यहाँपर (पुरा) पहले तुम (व स्तोमेभिः) अपने प्रशंसा करनेवाले अभिभाषणोंसे (ऋतस्य शर्धान्) सत्यके सैनिकोंको अर्थात् धर्मके लिए लडनेवाले सिपाहियोंको (जिन्वथ) प्रोत्साहित कर चुके हो ॥ २१ ॥

[२३०] (त्ये) इन वीरोंने (महतीः आपः) बहुतसा जल (उ सं दधुः) धारण किया, (क्षोणी सं [दधुः]) पृथ्वीको धर दिया और (सूर्यं उ सं [दधुः]) सूर्यको भी आधार दिया; इन्होंनेही (वज्रं पर्वशः सं [दधुः]) अपने वज्रको हर पोरसें या गांठमें सुदृढ बना दिया है ॥ २२ ॥

[२३१] (वृष्णि) बलशाली (पौंस्यं) पौरुषपूर्ण कार्य (चक्राणाः) करनेवाले इन (अ-राजिनः) संघशासक वीरोंने (वृत्रं पर्वशः वि ययुः) वृत्रके हर गांठके टुकडे टुकडे किये और (पर्वतान् वि [ययुः]) पहाडोंको भी विभिन्न कर राह बना डाली ॥ २३ ॥

[२३२] (युध्यतः त्रितस्य) लडते हुये त्रितके (शुष्मं उत क्रतुं) बल एवं कार्यशक्तिका तुमने (अनु आवन्) संरक्षण किया और (वृत्र-तूर्ये) वृत्रहत्याके अवसरपर (इन्द्रं अनु) इन्द्रको भी सहायता दी ॥ २४ ॥

[२३३] (विद्युत्-हस्ताः) बिजलीकी नाईं चमकनेवाले हथियार हाथमें धारण करनेवाले (अभि-द्यवः) तेजस्वी तथा (शुभ्राः) गौरवर्णवाले ये वीर (शीर्षन्) अपने सरपर (हिरण्ययीः शिप्राः) सुवर्णके बने साफे (श्रिये) शोभाके लिये (वि अञ्जत) रख देते हैं ॥ २५ ॥

भावार्थ— सद्धर्मके लिए लडनेवाले सैनिकोंको प्रोत्साहन मिले, इसलिए वीर उत्तम प्रभावोत्पादक भाषणों द्वारा उनका उत्साह बढाते हैं ॥ २१ ॥

इन मरुतोंने मेघोंको, द्यावापृथिवीको, सूर्यको अपनी अपनी जगह भली भाँति धर दिया है और उनका स्थान अटल तथा स्थिर किया है। इन्हीं वीर मरुतोंने अपने वज्र नामक शस्त्रको स्थानस्थानपर ठीक तरह जोडकर उसे बलिष्ठ बना डाला है। अन्य वीर भी अपने हथियार अच्छी तरह तैयार करनेमें सतर्क रहें और शत्रुके हथियारोंसे भी अत्यधिक मात्रामें उन्हें प्रबल तथा कार्यक्षम बना दें ॥ २२ ॥

ये वीर ऐसे पराक्रमपूर्ण कार्य कर दिखलाते हैं कि, जिनमें बल, वीर्य तथा शूरताकी अतीव आवश्यकता प्रतीत होती है। ये किसी एक नियामक राजाकी छत्रछायामें नहीं रहते हैं। [इन्हें संघशासक नाम दिया जा सकता है, अर्थात् इनका समूचा संघही इनपर शासन करता है। ऐसे] इन वीरोंने वृत्रके टुकडे टुकडे कर डाले और पर्वतोंका भेदन कर आगे बढनेके लिए सडक बना दी ॥ २३ ॥

इन वीरोंने त्रित नरेशको लडाईमें सहायता पहुँचाकर उसके बल, उत्साह तथा कर्तृत्वशक्तिको अक्षुण्ण बना रखा, अतः त्रित विजयी बन गया और इसी भाँति इन्द्रको भी वृत्रवधके मौकेपर मदद करके उसे भी विजयी बना दिया ॥२४॥

ये वीर चमकीले शस्त्र हाथोंमें रखते हैं। ये तेजस्वी तथा गौरकाय हैं और उनके सिरपर स्वर्णमय शिरस्त्राण सुहाते हैं। अन्य वीर भी इसी भाँति अपने शस्त्रोंको पुराने या जीर्ण होने न दें, सदैव विद्युल्लताके समान प्रकाशमान एवं चमकीले रूपमें रख दें ॥ २५ ॥

२३४ उशना यत् परावत उक्ष्णो रन्ध्रमयातन । द्यौर्न चक्रदद् भिया ॥ २६ ॥
२३५ आ नो मखस्य दावनेऽश्वैर्हिरण्यपाणिभिः । देवास उप गन्तन ॥ २७ ॥
२३६ यदेषां पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः । यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः ॥ २८ ॥
२३७ सुषोमे शर्यणावत्यार्जीके पस्त्यावति । ययुर्निचक्रया नरः ॥ २९ ॥
२३८ कदा गच्छाथ मरुत इत्था विप्रं हवमानम् । मार्डीकेभिर्नाधमानम् ॥ ३० ॥

अर्थ— [२३४] तुम हित करनेकी (उशनाः) इच्छा करनेवाले (यत्) जब (परावतः) दूरके प्रदेशोंसे (उक्ष्णः रन्ध्रं) मेघोंमें (अयातन) आते हो, तब (द्यौः न) द्युलोकके समानही अन्य सभी लोग (भिया चक्रदत्) डरके मारे विकंपित हो उठते हैं ॥ २६ ॥

[२३५] हे (देवासः) देवतागण ! तुम (नः मखस्य दावने) हमारे यज्ञकी देन देनेके समय (हिरण्य-पाणिभिः) हाथों एवं पैरोंमें सुवर्णके अलंकार पहने हुए (अश्वैः) घोडोंके साथ (उप आ गन्तन) हमारे समीप आओ ॥ २७ ॥

[२३६] (यत् एषां रथे) जब इनके रथमें (पृषतीः) धब्बे धारण करनेवाली हरिणियाँ लगाई जाती हैं, तब (प्रष्टिः) धुराको कंधेपर धारण करनेवाला (रोहितः) एक लाल रंगका हिरन भी आगे (वहति) खींचने लगता है, उस समय अति वेगके कारण (अपः रिणन्) पसीनेका जल बहने लगता है और (शुभ्राः यान्ति) वे गौरवर्णके वीर आगे बढने लगते हैं ॥ २८ ॥

[२३७] (सु-सोमे) उत्कृष्ट सोमवल्लियोंसे युक्त (आर्जीके) ऋजीक नामक भूविभागमें (शर्यणावति) शर्यणावत् नामक झीलके समीप विद्यमान (पस्त्या-वति) गृहमें (नरः) नेतृत्वगुणयुक्त वीर (निचक्रया) पहियोंसे रहित रथमें बैठकर (ययुः) चले जाते हैं ॥ २९ ॥

[२३८] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (इत्था) इस ढंगसे (हवमानं) प्रार्थना करते हुए, पुकारते हुये तथा (नाधमानं) सहायताकी लालसा रखनेवाले (विप्रं) ज्ञानी पुरुषके समीप भला तुम (कदा) कब (मार्डीकेभिः सुखवर्धक धनवैभवोंके साथ (गच्छाथ) जानेवाले हो ? ॥ ३० ॥

भावार्थ— सबका कल्याण करनेकी इच्छासे जब मरुत वर्षाका प्रारम्भ करनेके लिये मेघोंमें संचार करने लगते हैं, उस समय आकाशमें भीषण दहाड शुरू होती है, जिससे हरएकके दिलमें भयका संचार होता है ॥ २६ ॥

इन वीरोंके घोडे सुनहले आभूषणोंसे विभूषित होते हैं। ऐसे घोडोंपर बैठ इस हमारे यज्ञमें वीर मरुत् आ उप-स्थित हों ॥ २७ ॥

वीर मरुतोंका रंग गोरा है और उनके रथमें धब्बेवाली हरिणियाँ लगी रहती हैं। उनके आगे एक लाल रंगका हरिण जोता जाता है। इस भाँति उनका रथ सज्ज हो जाए, तो अति वेगसे वह आगे बढने लगता है, जिससे उसे खींचने-वाले पसीनेसे तर हो जाते हैं। ऐसे रथोंपर बैठकर मरुत् जाने लगते हैं ॥ २८ ॥

ऋजीक देशके एक सूबेको ' आर्जीक ' कहते हैं। ' शर्यणावत् ' शर्यणा नदी या बडे झीलके तटपर अवस्थित भूविभाग। ' पस्त्यावत् ' जहाँ रहनेके लिए मकान हों, उस जगह ये शूर मरुत् चक्ररहित रथमें बैठकर जाते हैं ॥ २९ ॥

प्रार्थना करनेवाले तथा सहायता पानेके लिए उत्सुक ज्ञानी लोगोंको ये वीर सहायता पहुंचाते हैं और अपने साथ सुखको वृद्धिगत करनेवाले धनोंको लेकर गमन करते हैं ॥ ३० ॥

२३९ कद्ध नूनं कधप्रियो यदिन्द्रमजहातन । को वः सखित्व ओहते ॥ ३१ ॥
२४० सहो षु णो वज्रहस्तैः कण्वासो अग्निं मरुद्भिः । स्तुषे हिरण्यवाशीभिः ॥ ३२ ॥
२४१ ओ षु वृष्णः प्रयज्यूना नव्यसे सुविताय । ववृत्यां चित्रवाजान् ॥ ३३ ॥
२४२ गिरयश्चिन्नि जिहते पर्शानासो मन्यमानाः । पर्वताश्चिन्नि येमिरे ॥ ३४ ॥
२४३ आक्ष्णयावानो वहन्त्यन्तरिक्षेण पततः । धातारः स्तुवते वयः ॥ ३५ ॥
२४४ अग्निर्हि जानि पूर्व्यश्छन्दो न सूरो अर्चिषा । ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥ ३६ ॥

अर्थ— [२३९] हे (कध-प्रियः) कथाप्रिय वीर मरुतो ! (इन्द्रं) इन्द्रको (नूनं) सचमुच (अजहातन) तुम छोड चुके हो, (यत् कत् ह) भला कभी ऐसा भी हुआ होगा ? (कभी नहीं) तो फिर (वः सखित्वे) तुम्हारी मित्रता पानेके लिए (कः ओहते) कौन भला दूसरा लालायित हो उठा है ? ॥ ३१ ॥

[२४०] हे (नः कण्वासः) हमारे कण्वो ! (वज्र-हस्तैः हिरण्य-वाशीभिः) हाथमें वज्र धारण करनेवाले तथा सुवर्णरंजित कुल्हाडियोंका उपयोग करनेवाले (मरुद्भिः सहो) मरुतोंके साथ विद्यमान (अग्निं) अग्निकी (सु स्तुषे) भली भाँति सराहना करो ॥ ३२ ॥

[२४१] (वृष्णः) वीर्यवान् (प्र-यज्यून्) अत्यंत पूजनीय तथा (चित्र-वाजान्) आश्चर्यजनक बलसे युक्त ऐसे तुम्हें (नव्यसे सुविताय) नये धनकी प्राप्तिके लिए (सु आ ववृत्यां उ) मेरे निकट आनेके लिए आकर्षित करता हूँ ॥ ३३ ॥

[२४२] (मन्यमानाः पर्शानासः) अभिमान करनेवाले शिखरोंके साथ (गिरयः चित्) बडे पर्वत भी इन वीरोंके आगे (नि जिहते) अपने स्थानसे विचलित होते हैं और (पर्वताः चित्) पहाड भी (नि येमिरे) नियमपूर्वक रहते हैं ॥ ३४ ॥

[२४३] (अक्ष्ण-यावानः) नेत्रोंकी निगाहकी भाँई अति वेगसे दौडनेवाले और (अन्तरिक्षेण पततः) आकाशमेंसे उडनेवाले साधन (स्तुवते) उपासकके लिए (वयः धातारः) अन्नकी समृद्धि करनेवाले इन वीरोंको (आ वहन्ति) ढोते हैं ॥ ३५ ॥

[२४४] (अग्निः हि) अग्नि सचमुच (अर्चिषा) तेजसे (छन्दः) ढका हुआ है और (सूरः न) सूर्यके समान वह (पूर्व्यः जानि) पहले प्रकट हुआ तथा पश्चात् (ते भानुभिः) वे वीर मरुत अपने तेजोंसे (वि तस्थिरे) स्थिर हो गये ॥ ३६ ॥

भावार्थ— ये वीर बहुतही कथाप्रिय हैं, अर्थात् ऐतिहासिक वीरगाथाओंको सुनना इन्हें अत्यधिक प्रिय प्रतीत होता है। इन्द्रको इन्होंने कभी छोडा नहीं। एक बार यदि वे वीर किसीको अपना लें, तो उसे ये कभी त्यागने या छोडनेके लिए तैयार नहीं होते हैं। वीरोंको इसी भाँति बर्ताव रखना चाहिए। जो सत्यधर्मके अनुसार कार्य करने लगता है, वह शीघ्र ही मरुतोंका प्रेमपात्र बनता है ॥ ३१ ॥

ये वीर वज्र एवं कुठारको काममें लाते हैं और अग्निके उपासक तथा सहायक हैं ॥ ३२ ॥

ये वीर अतीव वीर्यवान्, पूजनीय तथा भाँति भाँतिकी विलक्षण शक्तियोंसे युक्त हैं। वे हमारे निकट आ जायँ और हमें नया धन प्रदान करें ॥ ३३ ॥

इन वीरोंके आगे बडे बडे शिखरोंवाले पर्वत एवं छोटेमोटे पहाड भी मानों झुक जाते हैं। इन वीरोंका पराक्रम इतना महान् है और इनमें इतना प्रचंड पुरुषार्थ समाया हुआ है कि, बडे बडे पर्वतोंको लाँघना इनके लिए कोई असंभव तथा दुरूह बात नहीं है, क्योंकि ये बडी सुगमतासे सभी कठिनाइयोंको हटा देते हैं ॥ ३४ ॥

इन वीरोंके वाहन बडे वेगवान् तथा शीघ्रगामी होते हैं और उन पर चढकर ये आकाशपथमेंसे विहार करते हैं, तथा भक्तोंको पर्याप्त अन्न देते हैं ॥ ३५ ॥

सूर्यके समानही अग्नि अपने तेजसे प्रकाशमान होता है और यज्ञमें पहले पहले व्यक्त हो जाता है। पश्चात् वीर मरुतोंका समुदाय अपने अपने स्थान पर आ बैठ जाता है। (अध्यात्म) व्यक्तिके शरीरमें भी प्रथम उष्णता संचारित हुआ करती है और पश्चात् प्राणोंका आगमन होता है। ध्यानमें रहे कि, व्यक्तिमें प्राण मरुत् ही हैं ॥ ३६ ॥

[८]

(ऋषिः- सध्वंसः काण्वः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- अनुष्टुप् ।)

२४५ आ नो विश्वाभिरूतिभि- रश्विना गच्छतं युवम् ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी पिबतं सोम्यं मधु ॥ १ ॥
२४६ आ नूनं यातमश्विना रथेन सूर्यत्वचा ।
भुजी हिरण्यपेशसा कवी गम्भीरचेतसा ॥ २ ॥
२४७ आ यातं नहुषस्पर्या ऽऽन्तरिक्षात् सुवृक्तिभिः ।
पिबाथो अश्विना मधु कण्वानां सवने सुतम् ॥ ३ ॥
२४८ आ नो यातं दिवस्पर्या ऽन्तरिक्षादधप्रिया ।
पुत्रः कण्वस्य वामिह सुषाव सोम्यं मधु ॥ ४ ॥

---

[८]

अर्थ— [२४५] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! हे (दस्रा) शत्रुविध्वंसक ! हे (हिरण्यवर्तनी) सुवर्णमय रथवाले ! (युवं) तुम दोनों (विश्वाभिः ऊतिभिः) सभी संरक्षण आयोजनाओंके साथ (नः आगच्छतं) हमारे समीप आओ और (सोम्यं मधु पिबतं) सोमरसरूपी मीठे रसका पान करो ॥ १ ॥

[२४६] हे (भुजी) भोगयोग्य साधनोंसे पूर्ण ! हे (हिरण्यपेशसा) सुवर्णके बने अलंकार धारण करनेहारे ! हे (कवी गंभीरचेतसा) क्रांतदर्शी विशाल मनवाले अश्विदेवो ! (नूनं) अब सचमुच (सूर्यत्वचा रथेन आ यातं) सूर्यसदृश कांतिवाले रथपर चढकर इधर पधारो ॥ २ ॥

[२४७] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (सुवृक्तिभिः) सुन्दर स्तुतियोंके कारण आकर्षित होकर (अन्तरिक्षात् नहुषः परि) अन्तरिक्षमेंसे या मानवी लोकमेंसे भी (आ यातं) आओ और कण्वोंके (सवने सुतं) यज्ञमें निष्पादित (मधु पिबाथः) मीठे सोमरसको पी जाओ ॥ ३ ॥

[२४८] (दिवः परि) द्युलोकसे तथा (आ अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्षसे भी (नः आ यातं) हमारे समीप आओ; हे (अधप्रिया) अधोभाग अर्थात् भूलोकको चाहनेवालो ! (कण्वस्य पुत्रः) कण्वके पुत्रने (इह) इस जगह (वां) तुम्हारे लिए (सोम्यं मधु सुषाव) सोमसे युक्त शहदका सृजन किया है ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुम अपने सुवर्णमय रथपर चढकर तथा संरक्षणके अपने उत्तम साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास आओ और मीठे सोमरसका पान करो ॥ १ ॥

ये दोनों देव सभी तरहके उपभोगके साधनोंसे युक्त और ज्ञानी तथा उदार मनवाले हैं। वे इन भोगसाधनोंका वितरण करनेके लिए सर्वत्र संचार करते हैं ॥ २ ॥

हे देवो ! तुम चाहे अन्तरिक्षमें होओ या उससे भी परे और किसीलोकमें, वहींसे तुम हमारी इन प्रार्थनाओंको सुनो और यहां आकर मीठे सोमरसोंको पीओ ॥ ३ ॥

हे देवो ! तुम द्युलोक या अन्तरिक्षलोकमें जहांपर भी हो, वहींसे हमारे पास आओ और मीठे सोमरसोंका पान करो ॥ ४ ॥

×

२४९ आ नो यातमुपश्रुत्यश्विना सोमपीतये ।
स्वाहा स्तोमस्य वर्धना प्र कवी धीतिभिर्नरा ॥ ५ ॥
२५० यच्चिद्धि वां पुर ऋषयो जुहूरेऽवसे नरा ।
आ यातमश्विना गतमुपेमां सुष्टुतिं मम ॥ ६ ॥
२५१ दिवश्चिद् रोचनादध्या नो गन्तं स्वर्विदा ।
धीभिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ॥ ७ ॥
२५२ किमन्ये पर्यासतेऽस्मत् स्तोमेभिरश्विना ।
पुत्रः कण्वस्य वामृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥ ८ ॥
२५३ आ वां विप्र इहावसेऽह्वत् स्तोमेभिरश्विना ।
अरिप्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं मयोभुवा ॥ ९ ॥

अर्थ— [२४९] हे (नरा कवी) नेता और क्रान्तदर्शी अश्विदेवों ! तुम (स्वाहा स्तोमस्य प्र वर्धना) सर्वस्व त्यागद्वारा स्तोत्रके बढानेहारे हो, इसलिए (नः उपश्रुति) हमारे यज्ञमें (धीतिभिः सोम-पीतये आ यातं) कर्मोंके साथ किये जानेवाले सोमपानके लिए आओ ॥ ५ ॥

[२५०] हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (पुरा ऋषयः) पहले ऋषियोंने (यत् चित्) जब कभी (अवसे) रक्षाके लिए (वां हि जुहूरे) तुम्हेंही पुकारा था तब तुमने उसे सुन लिया था, इसलिए अब भी (आ यातं) आओ; (मम इमां सुस्तुतिं) मेरी इस अच्छी स्तुतिको सुनकर (उप आ गतं) समीप आजाओ ॥ ६ ॥

[२५१] (स्वः-विदा) हे स्वकीय शक्तिको जाननेवाले ! (हवनश्रुता) हमारी पुकारको सुननेवालो ! (वत्स-प्रचेतसा) पुत्रपर करनेयोग्य प्रेम करनेवाले ! (स्तोमेभिः धीभिः) स्तोत्रोंसे और कर्मोंसे (रोचनात् दिवः चित्) जगमगाते द्युलोकसे भी (नः अधि आ गन्तम्) हमारे समीप आओ ॥ ७ ॥

[२५२] (अस्मत् अन्ये) हमे छोडकर दूसरे लोग (किं स्तोमेभिः) क्या स्तोत्रोंसे (अश्विना परि आसते) अश्विदेवोंके चारों ओर प्रार्थना करनेके लिए बैठते हैं ? (कण्वस्य पुत्रः) कण्वके पुत्र वत्स ऋषिने (वां) तुम्हें (गीर्भिः अवीवृधत्) स्तुतिसे खूब बढाया है- प्रोत्साहित किया है ॥ ८ ॥

[२५३] हे (अ-रिप्रा) दोषरहित तथा (वृत्रहन्तमा) वृत्रके अत्यन्त विनाशकर्ता अश्विदेवों ! (इह अवसे) इधर रक्षाके लिए (विप्रः) ज्ञानी पुरुष (वां आ अह्वत्) तुम्हें बुलाता है (ता) वे विख्यात तुम दोनों (नः मयोभुवा भूतं) हमारे लिये सुखदायक बनो ॥ ९ ॥

भावार्थ— ये दोनोंही देव लोगोंको सन्मार्ग पर ले जानेवाले तथा ज्ञानी हैं। जो इनकी स्तुति करता है, उसके सामर्थ्यको ये बढाते हैं ॥ ५ ॥

ऋषियोंने जब जब इन्हें अपनी रक्षाके लिए पुकारा तब तब वे देव उनकी रक्षाके लिए उनके पास गए। ये स्तुति करनेवालोंकी रक्षा करनेके लिए सदा तैय्यार रहते हैं ॥ ६ ॥

अश्विदेव सदा अपने सामर्थ्यसे परिचित रहते हैं, भक्तोंकी पुकार सुननेवाले हैं और अपने उत्तम कर्मोंके कारण ये तेजस्वी हैं। उत्तम कर्म करनेवाला सदा तेजस्वी होता है ॥ ७ ॥

ज्ञानीयोंसे ज्ञान प्राप्त किए विना ही जो अश्विदेवोंकी स्तुति करता है, वह उनकी यथार्थ स्तुति नहीं कर पाता, अतः वे देव उनकी स्तुति सुनते भी नहीं। अतः प्रथम ज्ञान प्राप्त करके स्तुति करनी चाहिए। ज्ञानपूर्वक की गई स्तुतिसे देवोंका बल बढता है ॥ ८ ॥

हे दोष रहित तथा शत्रुके संहारक अश्विदेवो ! जो तुम्हें भक्तिसे अपनी रक्षाके लिए तुम्हें बुलाता है, उसके लिए तुम सुख देने वाले बनो ॥ ९ ॥

२५४ आ यद् वां योषणा रथ—मतिष्ठद् वाजिनीवसू ।
विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतम् ॥ १० ॥
२५५ अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ।
वत्सो वां मधुमद् वचो ऽशंसीत् काव्यः कविः ॥ ११ ॥
२५६ पुरुमन्द्रा पुरूवसू मनोतरा रयीणाम् ।
स्तोमं मे अश्विनाविम—मभि वह्नी अनूषाताम् ॥ १२ ॥
२५७ आ नो विश्वान्यश्विना धत्तं राधांस्यह्रया ।
कृतं न ऋत्वियावतो मा नो रीरधतं निदे ॥ १३ ॥
२५८ यन्नासत्या परावति यद् वा स्थो अध्यम्बरे ।
अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ॥ १४ ॥

अर्थ— [२५४] हे (वाजिनी-वसू) बलशाली धनवाले अश्विदेवों ! (यत् वां रथं) जब तुम्हारे रथपर (योषणा आ अतिष्ठत्) महिला पूर्णतया चढ गयी थी, तब (युवं) तुम दोनों (विश्वानि धीतानि) सभी स्थानमें रखे हुए विषयोंके समीप (प्र अगच्छतं) प्रकर्षसे चले गये थे ॥ १० ॥

[२५५] (कविः) विद्वान् (काव्यः वत्सः) कविका पुत्र ऋषि वत्स (वां) तुम दोनोंके लिए (मधुमत् वचः अशंसीत्) मधुर भाषण कह चुका, (अतः) इसलिए हे (अश्विना) अश्विदेवों ! (सहस्र—निर्णिजा रथेन आ यातं) सहस्र प्रकारसे तेजस्वी रथपर चढकर आओ ॥ ११ ॥

[२५६] हे (रयीणां मनोतरा) धनसंपदाओंके मनःपूर्वक देनेवाले ! (पुरुमन्द्रा) बहुत आनन्द देनेवाले ! (पुरूवसू) अधिक धनवाले अश्विदेवों ! तुम (वह्नी ढोनेवाले हो और (मे इमं स्तोमं) मेरे इस स्तोत्रको (अभि अनूषातां) सुनकर प्रशंसित करो ॥ १२ ॥

[२५७] हे (अश्विना) अश्विदेवों ! (नः) हमें (विश्वानि अह्रया राधांसि) सभी प्रकारके लज्जा न करनेवाले धन (आ धत्तं) लाओ, (नः ऋत्वियावतः कृतं) हमें समयके अनुकूल कार्य करनेवाले बना दो और (निदे) निन्दकके लिए (नः मा रीरधतं) हमें न दे डालो [अर्थात् हम निन्दकसे कोसों दूर रह सकें ऐसा प्रबंध कर डालो] ॥ १३ ॥

[२५८] हे (सहस्रनिर्णिजा = नासत्या अश्विना) हजारों तरहके धन रखनेवाले तथा असत्यका पालन न करनेवाले अश्विदेवो ! तुम चाहे (परावति) दूर देशमें हो, (यद् वा) अथवा तो (अम्बरे अधिस्थः) द्युलोकमें हो, (अतः) उस स्थानसे तुम (रथेन आ यातं) रथके द्वारा आ जाओ ॥ १४ ॥

भावार्थ— ये अश्विदेव सबके रक्षक होनेके कारण स्त्रियोंकी भी रक्षा करनेवाले हैं ॥ १० ॥

ज्ञानीकी तरह उसका पुत्र भी इन देवोंकी उपासना करता है। अर्थात् घरके सभी जन इन देवोंकी उपासना करें ॥ ११ ॥

ये देव जिसे भी धनसंपत्ति देते हैं, उसे प्रेमपूर्वक ही देते हैं, साथ ही बहुत आनंदके देनेवाले हैं ॥ १२ ॥

हम पवित्रता और उत्तम मार्गसे धन कमायें, ताकि हमें उस धनके कारण लज्जा न उठानी पडे, उसी तरह हम समयके अनुकूल कार्य करें और हम किसीकी निन्दा न करें, और जो हमारी निन्दा करनेवाला हो, उससे हम सदा दूर रहें ॥ १३ ॥

हे देवो ! तुम चाहे कहीं भी रहो, पर हमारी प्रार्थना सुनकर हमारे पास आ जाओ और हमें सुखी करो ॥ १४ ॥

२५९ यो वां नासत्यावृषि-र्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ।
तस्मै सहस्रनिर्णिज-मिषं धत्तं घृतश्चुतम् ॥ १५ ॥
२६० प्रास्मा ऊर्जं घृतश्चुत-मश्विना यच्छतं युवम् ।
यो वां सुम्नाय तुष्टवद् वसूयाद् दानुनस्पती ॥ १६ ॥
२६१ आ नो गन्तं रिशादसे-मं स्तोमं पुरुभुजा ।
कृतं नः सुश्रियो नरे-मा दातमभिष्टये ॥ १७ ॥
२६२ आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।
राजन्तावध्वराणा-मश्विना यामहूतिषु ॥ १८ ॥
२६३ आ नो गन्तं मयोभुवा ऽश्विना शंभुवा युवम् ।
यो वां विपन्यू धीतिभि-र्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥ १९ ॥

अर्थ— [२५९] हे (नासत्या) सत्यके पालक देवो ! (यः ऋषिः वत्सः) जिस ज्ञानी और सबको प्रिय मनुष्यने (वां गीर्भिः अवीवृधत्) तुम दोनोंको स्तुतियोंसे बढाया, (तस्मै) उस मनुष्यको तुम (सहस्रनिर्णिजं) हजारों बल बढानेवाला (घृतश्चुतं) घीसे युक्त (इषं धत्तं) अन्न प्रदान करो ॥ १५ ॥

[२६०] हे (दानुनस्पती) दानके अधिपति अश्विदेवो ! (यः सुम्नाय) जो सुखके लिए (वां तुष्टवत्) तुम्हारी स्तुति कर चुका है और (वसू-यात्) धनकी कामना करने लगे, (अस्मै) इसके लिए (युवं) तुम दोनों (घृतश्चुतं ऊर्जं प्र यच्छतं) घी टपकानेवाले बलकारी अन्न देओ ॥ १६ ॥

[२६१] हे (नरा) नेता ! (रिशादसा पुरुभुजा) हिंसकोंके विनाशकर्ता और बहुत भोगवाले ! (नः इमं स्तोमं) हमारे इस स्तोत्रको सुनकर (आ गन्तं) आओ, (नः सुश्रियः कृतं) हमें सुन्दर शोभासे युक्त करो और (अभिष्टये इमा दातं) सुखकी प्राप्तिके लिए इन आवश्यक वस्तुओंको ये दो ॥ १७ ॥

[२६२] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (अध्वराणां राजन्तौ वां) हिंसारहित कार्योंमें विराजमान तुम्हें (याम-हूतिषु) यात्रामें सम्मिलित होनेके लिए किये जानेवाले स्तोत्रपाठोंमें (विश्वाभिः ऊतिभिः) सभी संरक्षण आयोजनाओंके साथ आनेके लिये (प्रियमेधाः आ अहूषत) प्रियमेध लोगोंने पूर्णतया तुम्हें बुलाया है ॥ १८ ॥

[२६३] हे (विपन्यू) प्रशंसनीय (अश्विना) अश्विदेवो ! (युवं नः आ गन्तं) तुम दोनों हमारे समीप आओ; (यः वत्सः) जो वह वत्स ऋषि (मयो-भुवा शंभुवा वां) सुखदायक एवं शान्तिदायक तुम्हें (धीतिभिः गीर्भिः अवीवृधत्) कर्मोंसे तथा भाषणोंसे प्रशंसित करता है ॥ १९ ॥

भावार्थ— हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! जो ज्ञानी तथा सबसे स्नेह करनेवाला मनुष्य तुम्हें स्तुतियोंसे बढाता है, ऐसे मनुष्यको तुम उत्तम अन्न तथा घी दूधसे बढाओ ॥ १५ ॥

अश्विदेव दानके स्वामी हैं । अतः जो उनकी स्तुति करता है और धनकी कामना करता है, उसे ये देव धन प्रदान करते हैं ॥ १६ ॥

हे शत्रुओंके संहारक तथा उत्तम नेता अश्विदेवो । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं, अतः हमें सुखकी प्राप्तिके लिए सभी आवश्यक साधन प्रदान करो ॥ १७ ॥

उत्तम मेधा बुद्धिवाले लोग इन दोनों देवोंको हिंसारहित कार्योंमें, स्तोत्रपाठोंमें तथा सभी संरक्षणकी आयोजनाओंमें बुलाते हैं ॥ १८ ॥

ज्ञानी तथा सबसे स्नेह करनेवाले हम, हे देवो ! तुम्हें बुलाते हैं, अतः तुम आकर हमें सुख और शान्ति प्रदान करो ॥ १९ ॥

२६४ याभिः कण्वं मेधातिथिं याभिर्वशं दशव्रजम् ।
याभिर्गोशर्यमावतं ताभिर्नोऽवतं नरा ॥ २० ॥

२६५ याभिर्नरा त्रसदस्यु — मावतं कृत्व्ये धने ।
ताभिः ष्व१स्माँ अश्विना प्रावतं वाजसातये ॥ २१ ॥

२६६ प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गिरो वर्धन्त्वश्विना
पुरुत्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं पुरुस्पृहा ॥ २२ ॥

२६७ त्रीणि पदान्यश्विनो — राविः सान्ति गुहा परः ।
कवी ऋतस्य पत्मभि — रर्वाग्जीवेभ्यस्परि ॥ २३ ॥

[९]

(ऋषिः- शशकर्णः काण्वः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- अनुष्टुप्; १, ४, ६, १४-१५ बृहती; २, ३, २०, २१ गायत्री; ५ ककुप्; १० त्रिष्टुप्; ११ विराट्; १८ जगती ।)

२६८ आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दि — र्युयुतं या अरातयः ॥ १ ॥

अर्थ— [२६४] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (याभिः) जिनकी सहायतासे मेधातिथि कण्वकी (याभिः दशव्रजं वशं) जिनसे दस बाडे रखनेवाले वश की और (याभिः गो-शर्यं आवतं) जिनसे जीर्णशीर्ण गायें रखनेवालेकी रक्षा की थी, (ताभिः नः अवतं) उनसे हमारी रक्षा करो ॥ २० ॥

[२६५] (कृत्व्ये धन) निष्पादनीय धनके बारेमें जिनसे त्रसदस्युकी (आवतं) रक्षा की थी, (ताभिः) उनसे (अस्मान्) हमें (वाजसातये) धनका बँटवारा करनेके लिए (सु प्र अवतं) भलीभाँति सुरक्षित रखो ॥२१॥

[२६६] हे (पुरुत्रा) बहुत लोगोंके त्राणकर्ता और (वृत्रहन्तमा) वृत्रके अत्यन्त विनाशकर्ता अश्विदेवो ! (वां सुवृक्तयः गिरः) तुम दोनोंको भलीभाँति रचे हुए भाषण और (स्तोमाः प्र वर्धयन्तु) स्तोत्र खूब बढावें, (ता) वे विख्यात तुम दोनों (नः पुरुस्पृहा भूतं) हमारे लिए अत्यन्त स्पृहणीय बनो ॥ २२ ॥

[२६७] अश्विदेवोंके (गुहा) गुहामें रचे हुए (त्रीणि पदानि) तीन पद (परः आविः सन्ति) परके स्थानमें प्रकट हुए हैं; (ऋतस्य पत्मभिः) ऋतके मार्गोंसे (कवी) विद्वान् अश्विदेव (जीवेभ्यः अर्वाक्) जीवोंके लिए अभिमुख होकर (परि) ऊपरसे आते हैं ॥ २३ ॥

[९]

[२६८] हे अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनों (नूनं) अब सचमुच (वत्सस्य अवसे आगतं) वत्सकी रक्षाके लिए आओ (अस्मै) इसे (पृथु) विस्तीर्ण (अवृकं छर्दिः प्र यच्छतं) वृक-भेडिये जैसे क्रोधी लोगोंसे रहित घर देदो; पश्चात् (याः अरातयः युयुतं) जो शत्रु हैं, उन्हें दूर कर दो ॥ १ ॥

भावार्थ— हे देवो ! तुमने जिन सुरक्षाके साधनोंसे उत्तम मेधावाले ज्ञानीके पशुओंकी रक्षा की थी, उन्हीं साधनोंसे हमारी भी रक्षा करो ॥ २० ॥

हे देवो ! तुम दुष्टोंको भयभीत करनेवाले वीरकी हर तरहसे रक्षा करते हो, अतः तुम हमारी भी रक्षा करो ॥ २१ ॥

हे देवो ! हमारे द्वारा भलीप्रकार बोले गए स्तोत्र तुम्हारे सामर्थ्यको बढावें तथा तुम दोनों हमारे लिए बहुत पूज्य बनो ॥ २२ ॥

अश्विदेवोंके तीन पद आंखोंसे ओझल रहते हैं, और उनका चौथा पद सत्यके मार्गसे जीवोंके सामने प्रकट होता है । विराट् परमात्माके तीन पद अप्रकटही रहते हैं और चौथे पदसे वह इस संसारके रूपमें प्रकट होता है ॥ २३ ॥

हे देवो ! जो सबसे प्यार करनेवाला है, उसे ऐसा विस्तीर्ण घर दो, जो क्रोधी मनुष्योंसे रहित हो । तथा उसके जो शत्रु हों, उन्हें तुम दूर करो ॥ १ ॥

२६९ यदुन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषाँ अनु । नृम्णं तद् धत्तमश्विना ॥ २ ॥
२७० ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः । एवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ३ ॥
२७१ अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।
अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥ ४ ॥
२७२ यदुप्सु यद् वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् ।
तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥
२७३ यन्नासत्या भुरण्यथो यद् वा देव भिषज्यथः ।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥ ६ ॥

अर्थ— [२६९] हे अश्विदेवो ! (यत् नृम्णं अन्तरिक्षे) जो धन अन्तरिक्षमें (यत् दिवि) जो द्युलोकमें (यत् पञ्च मानुषान् अनु) जो पांच तरहके मानव–वर्गोंके पास पाया जाता है, (तत् धत्तं) उसे हमारे लिए धर दो ॥ २ ॥

[२७०] हे अश्विदेवो ! (ये विप्रासः) जो ज्ञानी (वां दंसांसि) तुम्हारे कर्मोंको (परि ममृशुः) पूर्णतया सोच चुके हैं, (एव इत्) उसी प्रकार (कण्वस्य बोधतं) कण्व पुत्रकी प्रार्थनाको जान लो ॥ ३ ॥

[२७१] हे (वाजिनी-वसू) सेनारूपी धनवाले ! (वां) तुम्हारेलिए (अयं घर्मः) यह यज्ञ (स्तोमेन) स्तोत्रपाठके साथ (परि सिच्यते) पूर्णतया सींचा जाता है; (मधुमान् अयं सोमः) मधुरिमामय यह सोम है (येन) जिससे, तुम (वृत्रं चिकेतथः) वृत्रको पहचान लेते हो ॥ ४ ॥

[२७२] हे (पुरु-दंससा) विविध कार्यवाले ! (यत् ओषधीषु) जो औषधियोंमें (यत् वनस्पतौ) जो बड़े भारी पेड़में तथा (यत् अप्सु) जो जलोंमें (कृतं) तुमने कार्य किया है, (तेन) उसीसे (मा अविष्टं) मेरी भी रक्षा करो ॥ ५ ॥

[२७३] हे (देवा) दानी या द्योतमान सत्यपूर्ण अश्विदेवो ! (यत् भुरण्यथः) जो तुम भरणका कार्य करते हो, (यत् वा) या जो तुम (भिषज्यथः) औषध देकर वैद्यका कार्य करते हो (अयं वत्सः) यह वत्स (वां) तुम्हें (मतिभिः न विन्धते) बुद्धियोंसे नहीं पाता है, क्योंकि तुम (हविष्मन्तं हि गच्छथः) हवि साथ रखनेवालेके पासही जाते हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे देवो ! जो धन अन्तरिक्ष, द्युलोक तथा अन्य लोगोंके पास पाया जाता है, उस धनसे हमें समृद्ध बनाओ ॥ २ ॥

ज्ञानीजन इन देवोंके सभी कर्मोंको जान जाते हैं, अतः वे उसके अनुकूल ही प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

जब ये देव स्तुतिके साथ साथ निचोडे जानेवाले सोमरसका पान करते हैं, तब वे सामर्थ्यसे युक्त हो जाते हैं और अपने शत्रुओंका संहार करते हैं ॥ ४ ॥

हे देवो ! जिस सामर्थ्यसे तुम औषधी, पेड तथा जल आदिकी रक्षा करते हो, उसी सामर्थ्यसे हमारी रक्षा करो ॥५॥

सबका भरणपोषण करनेवाले तथा सबको स्वस्थ रखनेवाले इन अश्विदेवोंको केवल ज्ञानके द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता, इन्हें तो स्तुति या भक्तिके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है ॥ ६ ॥

२७४ आ नूनमश्विनोर्ऋषिः स्तोमं चिकेत वामया ।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥ ७ ॥
२७५ आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना ।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ ८ ॥
२७६ यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि ।
यद् वा वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ९ ॥
२७७ यद् वां कक्षीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद् वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद् वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥ १० ॥
२७८ यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥ ११ ॥

अर्थ— [२७४] (नूनं) सचमुच ऋषि (अश्विनोः स्तोम) अश्विदेवोंके स्तोत्रको (वामया आ चिकेत) उत्कृष्ट बुद्धिसे पूर्णतया पहचाना है (मधुमत्तमं सोमं घर्मं) अत्यन्त मीठे सोमको तथा घर्मको (अथर्वणि आ सिंचत्) अथर्वामें सींच चुका है ॥ ७ ॥

[२७५] (नूनं) सचमुच (रघुवर्तनिं रथं) शीघ्रगामी रथपर हे अश्विदेवों ! (आ तिष्ठाथः) तुम चढते हो; (मम इमे स्तोमाः) मेरे ये स्तोत्र (नभः न) आकाशकी तरह विशाल (वां) तुम्हारे (आ चुच्यवीरत) पास पहुँचे हैं ॥ ८ ॥

[२७६] हे असत्यसे रहित अश्विदेवों ! (यत्) जब (उक्थैः) स्तोत्रोंसे (अद्य वां) आज दिन हम तुम्हें (आचुच्युवीमहि) अपनी ओर प्रवृत्त करते हैं, (यत् वा वाणीभिः) या साधारण भाषणोंसे ऐसा करते हैं, तो (काण्वस्य एव इत् बोधतं) निश्चय जानो कि यह कण्वपुत्रकाही कार्य है ॥ ९ ॥

[२७७] हे अश्विदेवो ! (वां यत्) तुम्हें जब कक्षीवान्ने (उत यत्) और जब व्यश्वने तथा (यत् वां दीर्घतमाः जुहाव) जिस समय तुम्हें दीर्घतमाने बुलाया था; (सदनेषु यत् वैन्यः पृथी) घरोंमें जब कि वेनपुत्र पृथीने (वां) तुम्हें पुकारा था, तब तुमने उधर ध्यान दिया, (अतः एव) इसीलिए अबकी बार भी (चेतयेथां) हमारी पुकारको पहचान लो ॥ १० ॥

[२७८] हे (छर्दिःपौ) घरके संरक्षक ! (यातं) जाओ (उत) और (नः परःपा भूतं) हमारे अत्यन्त उच्च कोटिके रक्षक बनो, तथा (जगत्पौ) गतिशीलके रक्षक (उत नः तनूपाः) एवं हमारे शरीरके संरक्षक हो-जाओ, (तोकाय तनयाय) पुत्रपौत्रके हितके लिए (वर्तिः यातं) घरपर जाया करो ॥ ११ ॥

भावार्थ— ज्ञानियोंने प्रथम अपनी बुद्धि और ज्ञानके द्वारा अश्विदेवोंके स्तोत्रोंको रचा, फिर उन स्तोत्रोंके द्वारा अश्विदेवोंको प्रसन्न किया ॥ ७ ॥

जब ये अश्विदेव अपने शीघ्रगामी रथपर चढते हैं, तब ज्ञानी जन इनकी प्रशंसा करके इनका सामर्थ्य बढाते हैं ॥ ८ ॥

हे देवो ! जब कभी कोई तुम्हें भक्ति और प्रेमसे बुलाता है, तब तुम यह समझ लो कि वह काव्य किसी ज्ञानी-काही है ॥ ९ ॥

इन देवोंको सभी लोग बुलाते हैं, और ये देव भी उनकी प्रार्थनाको सुनकर तथा उनके मनोगत प्रेमपूर्ण भावोंको जानकर उनके पास जाते हैं ॥ १० ॥

दोनों देव अपने भक्तके घरोंकी रक्षा करते हैं, साथही उसकी भी रक्षा करते हैं ॥ ११ ॥

२७९ यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद् वा वायुना भवथः समोकसा ।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद् वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥ १२ ॥
२८० यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये ।
यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥ १३ ॥
२८१ आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥ १४ ॥
२८२ यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥ १५ ॥
२८३ अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १६ ॥

अर्थ— [२७९] हे अश्विदेवों ! (यत् इन्द्रेण) जो तुम इन्द्रके साथ (सरथं याथः) एक रथपर बैठकर चले जाते हो, (यत् वा) अथवा (वायुना समोकसा भवथः) वायुके साथ एकही घरमें रहते हो, (यत्) या जब (आदित्येभिः ऋभुभिः) अदितिके पुत्रों या ऋभु-संज्ञक कारीगरोंके (सजोषसा) साथ प्रेमपूर्वक निवास करते हो, (यत् वा) किंवा जब (विष्णोः विक्रमणेषु तिष्ठथः) विष्णुके विशेष संचारोंमें तुम उपस्थित होते हो, [पर हमारे समीप अवश्य आओ] ॥ १२ ॥

[२८०] (अद्य यत्) आज जब कि (वाजसातये) अन्नका बँटवारा करनेके लिए (अहं अश्विनौ हुवेय) मैं अश्विदेवोंको बुलाऊँ तो वे अवश्य आयेंगे, क्योंकि (अश्विनोः तत् अवः) अश्विदेवोंका वह संरक्षण (श्रेष्ठं यत् पृत्सु) उत्कृष्ट है, जो युद्धोंमें (तुर्वणे सहः) शत्रुवध करनेमें पूर्ण क्षमता रखता है ॥ १३ ॥

[२८१] हे अश्विदेवों ! (नूनं) अवश्य (आ यातं) आओ, (वां इमा हव्यानि हिता) तुम दोनोंके लिए ये हविर्भाग रखे हुए हैं; (इमे सोमासः) ये सोम (तुर्वशे यदौ अधि) तुर्वश एवं यदुके घरपर पाये जाते हैं, (इमे कण्वेषु) ये कण्वोंके मकानपर विद्यमान हैं (अथ वां) और अब ये तुम्हारे लिए रखे हैं ॥ १४ ॥

[२८२] हे (प्रचेतसा नासत्या) उत्कृष्ट मनवाले तथा असत्यसे दूर रहनेवाले अश्विदेवों ! (यत् पराके) जो दूर देशमें (अर्वाके) समीप भी (भेषजं अस्ति) औषध विद्यमान है, (तेन) उससे (विमदाय वत्साय) मदसे रहित ऋषि वत्सके लिए (नूनं) निश्चयसे (छर्दिः यच्छतं) घर दे डालो ॥ १५ ॥

[२८३] (अहं) मैं (अश्विनोः) अश्विदेवोंकी (देव्या वाचा साकं) दिव्यगुणसंपन्न वाणीके साथ (प्र अभुत्सि) विशेष रीतिसे जागृत हो चुका हूँ, इसलिए हे (देवि) द्योतमान उषे ! (मर्त्येभ्यः) मानवोंको (मतिं रातिं) बुद्धि तथा देनको (वि आवः) अँधेरा हटाकर स्पष्ट करो ॥ १६ ॥

भावार्थ— ये दोनों देव इन्द्र, वायु, ऋभु और विष्णुके साथ रथोंमें बैठकर सर्वत्र संचार करते हैं । अर्थात् अन्य देव भी अश्विदेवोंके उत्तम कार्योंमें उसकी सहायता करते हैं ॥ १२ ॥

अश्विदेवोंके पास संरक्षणके साधन बहुत उत्तम हैं और वे शत्रुवध करनेके कार्यमें पूर्ण रूपसे सामर्थ्यशाली भी हैं ॥ १३ ॥

हे देवो ! तुम्हारे ज्ञानी भक्तोंने ये सोमरस तैय्यार करके तुम्हारे लिए रखे हैं, अतः तुम आकर पिओ ॥ १४ ॥

हे अश्विदेवो ! जो तुम्हारे पास या दूर देशमें औषध हैं, उन औषधोंसे तुम मद अर्थात् अहंकारसे रहित भक्तको सामर्थ्यशाली बनाओ ॥ १५ ॥

अश्विदेवोंके लिए की जानेवाली स्तुति उत्तम गुणोंसे युक्त होती है, और वह स्तोताको उत्तम ज्ञानसे युक्त करती है । हे उषे ! तुम भी अश्विदेवोंके उपासकोंकी बुद्धिको ज्ञानसे युक्त करके अज्ञानान्धकारको दूर करो ॥ १६ ॥

२८४ प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।
प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥ १७ ॥
२८५ यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥ १८ ॥
२८६ यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः ।
यद् वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥ १९ ॥
२८७ प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे । प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥ २० ॥
२८८ यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः । यद् वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥ २१ ॥

अर्थ— [२८४] हे द्योतमान ! (सूनृते) भलीभाँति के चलनेवाली (महि) पूजनीय उषे ! तू अश्विदेवोंको (प्र बोधय) जागृत कर; हे (यज्ञहोतर्) यज्ञमें हवन करनेवाले ! (आनुषक्) सततरूपसे (मदाय) हर्ष उत्पन्न करनेके लिए (बृहत् श्रवः) बडे भारी अन्नको भी दे दो ॥ १७ ॥

[२८५] हे उषे ! (यत् भानुना यासि) जो तू किरणसे युक्त हो चली जाती है, और (सूर्येण सं रोचसे) सूर्यके साथ अत्यन्त जगमगाती है उसी समय (अश्विनोः अयं रथः ह) अश्विदेवोंका यह रथ निश्चयसे (नृपाय्यं वर्तिः आ याति) मानवोंने पालन करनेयोग्य घर चला जाता है ॥ १८ ॥

[२८६] (ऊधभिः गावः न) थनोंसे गायें जिस प्रकार दूध देती हैं वैसेही (यत्) जब (आपीतासः अंशवः) पीये हुए सोमरस (दुह्रे) दोहन करते हैं, (यत् वा) या जब (देवयन्तः) देवोंकी कामना करनेहारे (वाणीः) वाणियोंसे (अश्विना प्र अनूषत) अश्विदेवोंकी खूब स्तुति करते हैं ॥ १९ ॥

[२८७] हे (प्रचेतसा) उत्कृष्ट ज्ञानवाले अश्विदेवो ! (द्युम्नाय) धनके लिए, (शवसे) बलके लिए (नृ-साह्याय शर्मणे) जिससे मानवोंमें सहनशक्ति बढे ऐसे सुखके लिए (दक्षाय) दक्षताके लिए (प्र) खूब आयोजना करो ॥ २० ॥

[२८८] (उक्थ्या अश्विना !) हे प्रशंसनीय अश्विदेवो ! (नूनं यत्) सचमुच जब (पितुः योना) पिताके स्थानमें (धीभिः यत् वा सुम्नेभिः) कार्योंसे अथवा सुखोंसे (नि-सीदथः) बैठ जाते हो ॥ २१ ॥

भावार्थ— हे उषे ! तू अश्विदेवोंको जगा, उन्हें प्रेरित कर और मनुष्योंमें हर्षको उत्पन्न करनेके लिए उन्हें उत्तम अन्न प्रदान कर ॥ १७ ॥

जब उषाकी किरणें प्रकट होती हैं और सूर्य भी उदय होनेको होता है, उस समय अश्विदेव सबके पास जाकर सबको स्वास्थ्य प्रदान करते हैं। प्रातःकाल उठना स्वास्थ्यके लिए लाभदायक होता है ॥ १८ ॥

गायें जिस प्रकार दूध देती हैं, उसी प्रकार यज्ञ करनेवाले भी इन अश्विदेवोंको सोमरस प्रदान करते हैं और उनकी खूब स्तुति करते हैं ॥ १९ ॥

हे देवो ! तुम हमें ऐसे कर्म करनेकी प्रेरणा दो कि जिससे हमें धन, बल, सहनशक्ति तथा उत्तम कार्य करनेकी कुशलता प्राप्त हो ॥ २० ॥

हे देवो ! तुम हमारे पिता होकर हमारा पालन करते हो, अतः जैसे पिता अपने पुत्रको हर तरहके सुख प्रदान करता है, उसी तरह तुम हमें सुख प्रदान करो ॥ २१ ॥

×

[१०]

(ऋषिः- प्रगाथो (घौरः) काण्वः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- १ बृहती, २ मध्येज्योतिः, ३ अनुष्टुप् (पिंगलमतेन-शंकुमती), ४ आस्तारपंक्तिः, ५-६ प्रगाथः = (५ बृहती, ६ सतोबृहती) ।)

२८९ यत् स्थो दीर्घप्रसद्मनि यद् वादो रोचने दिवः ।
यद् वा समुद्रे अध्याकृते गृहे ऽत आ यातमश्विना ॥ १ ॥
२९० यद् वा यज्ञं मनवे संमिमिक्षथुरेवेत् काण्वस्य बोधतम् ।
बृहस्पतिं विश्वान् देवाँ अहं हुव इन्द्राविष्णू अश्विनावाशुहेषसा ॥ २ ॥
२९१ त्या न्व१श्विना हुवे सुदंससा गृभे कृता ।
ययोरस्ति प्र णः सख्यं देवेष्वध्याप्यम् ॥ ३ ॥
२९२ ययोरधि प्र यज्ञा असूरे सन्ति सूरयः ।
ता यज्ञस्याध्वरस्य प्रचेतसा स्वधाभिर्या पिबतः सोम्यं मधु ॥ ४ ॥

---

[१०]

अर्थ— [२८९] हे अश्विदेवो ! (यत्) जो तुम (दीर्घप्रसद्मनि) लंबे घरोंसे युक्त लोकमें (यत् वा) अथवा (अदः दिवः रोचने) उस द्युलोकके जगमगाते स्थानमें (स्थः) रहते हो, (यत् वा) या (अकृते गृहे) चारों ओर ठीक बनाये घरमें, (समुद्रे अधि) समुन्दरमें रहो, परन्तु (अतः) वहाँसे (आ यातम्) इधर आओ ॥ १ ॥

[२९०] (मनवे यज्ञं) मनुके लिए यज्ञको (यत् वा संमिमिक्षथुः) जिस ढंगसे तुमने ठीक तरह सिक्त किया था, (काण्वस्य एव इत्) कण्वपुत्रके यज्ञको भी उसी तरह (बोधतं) समझ लो; (अहं) मैं बृहस्पतिको (विश्वान् देवान्) सभी देवोंको, इन्द्र एवं विष्णुको तथा (आशुहेषसा अश्विनौ हुवे) शीघ्रगामी घोडोंसे युक्त अश्विदेवोंको बुलाता हूँ ॥ २ ॥

[२९१] (त्या) उन दोनों (सुदंससा) अच्छे कर्म करनेवाले (गृभे कृता अश्विना) ग्रहण करनेके लिए उत्पन्न हुए अश्विदेवोंको, (ययोः) जिनकी (नः सख्यं) हमसे मित्रता (देवेषु अधि आप्यं) देवोंमें प्राप्त करनेयोग्य (प्र अस्ति) उच्च कोटिकी है, (नु हुवे) अभी बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

[२९२] (ययोः अधि) जिन दोनोंके (यज्ञा प्र सन्ति) प्रकर्षसे होते हैं, जो (असूरे सूरयः) अविद्वानोंमें विद्वान् बनकर कार्य करते हैं, (ता) वे दोनों (अध्वरस्य यज्ञस्य) हिंसारहित यज्ञके (प्रचेतसा) अच्छे ज्ञाता हैं, तथा (या) जो (स्वधाभिः) अपनी धारक शक्तियोंसे (सोम्यं मधु पिबतः) सोमयुक्त मधु पी लेते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुम चाहे अपने जगमगाते घर अर्थात् द्युलोकमें रहो, अथवा अन्तरिक्ष लोकमें रहो, पर हमारे द्वारा सहायताके लिए बुलाये जाने पर हमारे पास आओ ॥ १ ॥

मननशील ज्ञानी मनुष्यके यज्ञको ये देव पूर्णता तक पहुँचाते हैं। तथा ऐसे मनुष्यके यज्ञमें ये दोनों देव इन्द्र, विष्णु तथा इतर देवोंके साथ आते हैं ॥ २ ॥

ये दोनों देव उत्तम कर्म करनेवाले हैं, अतः इनके साथ सदा हमारी मैत्री रहे और वह मैत्री भी उच्च कोटिकी रहे। मनुष्य सदा उत्तम कर्म करनेवालोंके साथ निश्छल और निष्कपट मैत्री करे ॥ ३ ॥

ये दोनों देव अज्ञानियोंमें जाकर ज्ञानका प्रचार करके उन्हें ज्ञानी बनाते हैं और हिंसारहित यज्ञका संचालन बडी कुशलतासे करते हैं ॥ ४ ॥

२९३ यदुद्याश्विनावपाग् यत् प्राक् स्थो वाजिनीवसू ।
यद् द्रुह्यव्यनवि तुर्वशे यदौ हुवे वामथ मा गतम् ॥ ५ ॥
२९४ यदन्तरिक्षे पतथः पुरुभुजा यद् वेमे रोदसी अनु ।
यद् वां स्वधाभिरधितिष्ठथो रथ—मत आ यातमश्विना ॥ ६ ॥

[११]

(ऋषिः- वत्सः काण्वः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री, १ प्रतिष्ठा, २ वर्धमाना, १० त्रिष्टुप् ।)

२९५ त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥ १ ॥
२९६ त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य । अग्ने रथीरध्वराणाम् ॥ २ ॥
२९७ स त्वमस्मदप द्विषो युयोधि जातवेदः । अदेवीरग्ने अरातीः ॥ ३ ॥
२९८ अन्ति चित् सन्तमह यज्ञं मर्तस्य रिपोः । नोप वेषि जातवेदः ॥ ४ ॥

अर्थ— [२९३] हे (वाजिनीवसू) सेवारूपी धनवाले अश्विदेवों ! (अद्य यत्), आज जो तुम (अपाक्) पश्चिम दिशामें (यत् प्राक्) या पूर्व दिशामें (स्थः) रहो, (यत्) जो तुम द्रुह्यु, अनु, तुर्वश यदुके पास रहो, पर (वां हुवे) मैं तुम्हें बुलाता हूँ (अथ) अच्छा अब (मा आ गतम्) मेरे निकट आओ ॥ ५ ॥

[२९४] हे (पुरुभुजा) बहुत बडी भुजावाले अश्विदेवों ! (यत्) जो तुम (अन्तरिक्षे पतथः) अन्तरिक्षमें उड्डान करते हो, (यत् वा इमे रोदसी अनु) अथवा इन दो द्युलोक या भूलोकके बीच चले जाते हो, (यत् वा) या कभी (रथं स्वधाभिः अधितिष्ठथः) रथपर अपनी धारक शक्तियोंसे चढ जाते हो, (अतः आ यातं) उधरसे इधर आओ ॥ ६ ॥

(१)

[२९५] हे (देव अग्ने) दिव्यगुण युक्त अग्ने ! (त्वं मर्त्येषु आ व्रतपा असि) तू मनुष्यों तथा देवोंके मध्यमें उत्तम व्रतोंका रक्षक है, इसलिये (यज्ञेषु त्वं ईड्यः) यज्ञोंमें तू स्तुतिके योग्य है ॥ १ ॥

[२९६] हे (सहन्त्य अग्ने) शत्रुओंको पराजित करनेवाले अग्ने ! (त्वं विदथेषु प्रशस्यः अध्वराणां रथीः असि) तू यज्ञोंमें स्तुति करनेके योग्य और हिंसारहित यज्ञोंका नेता है ॥ २ ॥

[२९७] हे (जातवेदः अग्ने) संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले अग्ने ! (सः त्वं अस्मत् द्विषः अप युयोधि) वह तू हमसे शत्रुओंको दूर कर । तथा (अदेवीः अरातीः) आसुरी शत्रु सेनाको भी हमसे परे हटा ॥ ३ ॥

[२९८] हे (जातवेदः) स्वभावसे ज्ञानवान् प्रकाशशील अग्ने ! तू (अह रिपोः मर्तस्य) हमारे शत्रुजनके (अन्ति चित् सन्तं) समीपस्थ विद्यमान रहनेवाले (यज्ञं न उप वेषि) यज्ञकी कामना नहीं करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे देवो ! तुम पूर्व, पश्चिम या किसी भी दिशामें रहो, पर हमारी प्रार्थना सुनकर हमारे पास आओ ॥ ५ ॥

हे शक्तिशाली भुजावाले देवो ! जब भूलोक और द्युलोकके मध्यके अन्तरिक्ष लोकसे जाते हो, तब अपनी संपूर्ण धारक शक्तियोंसे युक्त होकर हमारे पास आओ ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! तू देवों और मनुष्योंके द्वारा किए जानेवाले उत्तम व्रतोंका रक्षक है और तू शत्रुओंको पराजित करनेवाला है, इसलिए सभी तरहके यज्ञोंमें तेरी ही स्तुति होती है ॥ १-२ ॥

हे अग्ने ! तू हमसे शत्रुओंको दूर कर और असुरोंकी सेनाको भी हमसे दूर ही रख । अपने शत्रुके यज्ञमें, चाहे वह कितने ही पासके स्थानमें हो रहा हो, तू कभी नहीं जाता, इसके विपरीत अपने भक्तके यज्ञमें, भले ही वह दूर हो, अवश्य जाता है ॥ ३-४ ॥

२९९ मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे । विप्रासो जातवेदसः ॥ ५ ॥
३०० विप्रं विप्रासोऽवसे देवं मर्तास ऊतये । अग्निं गीर्भिर्हवामहे ॥ ६ ॥
३०१ आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित् सधस्थात् । अग्ने त्वांकामया गिरा ॥ ७ ॥
३०२ पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे ॥ ८ ॥
३०३ समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे । वाजेषु चित्रराधसम् ॥ ९ ॥
३०४ प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि ।
त्वां चाग्ने तन्वं पिप्रयस्वा ऽस्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥ १० ॥

अर्थ— [२९९] हे अग्ने ! (जातवेदसः विप्रासः मर्ताः) ज्ञानसे उत्पन्न हुए हुए ज्ञानी ब्राह्मणजन (अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे) मरणरहित तेरे विस्तृत नामका मनन करते हैं ॥ ५ ॥

[३००] (विप्रासः मर्तासः) विप्र और मरणधर्मवाले मनुष्य हम (विप्रं देवं अग्निं) मेधावी, दिव्यगुणयुक्त अग्निको (अवसे ऊतये गीर्भिः हवामहे) हव्यके द्वारा प्रसन्न करके, अपनी रक्षाके निमित्त स्तुतियों द्वारा बुलाते हैं ॥ ६ ॥

[३०१] हे (अग्ने) अग्ने (परमात् चित् सधस्थात्) परम उत्कृष्ट उत्तम वास स्थान द्युलोकसे भी (ते मनः वत्सः) तेरे मनको पुत्ररूप उपासक जन (त्वां कामया गिरा) तेरी अभिलाषा करनेवाली वाणीसे (आ यमत्) अपनी ओर आकर्षित करते हैं ॥ ७ ॥

[३०२] हे अग्ने ! (हि पुरुत्रा सदृङ्ङसि) निश्चयसे तू बहुत देशोंमें समानरूपसे देखनेवाला है । (विश्वाः विशः अनु प्रभुः) समस्त प्रजाओंका अधिपति है । ऐसे तुझको हम (समत्सु हवामहे) संग्राममें बुलाते हैं ॥ ८ ॥

[३०३] हम (वाजयन्तः वाजेषु समत्सु अवसे चित्रराधसं अग्निं हवामहे) अन्नकी कामनावाले होकर अन्न और बलके प्राप्त होनेवाले संग्राममें अपनी रक्षाके लिये अनेक ऐश्वर्योंको धारण करनेवाले अग्निको बुलाते हैं ॥ ९ ॥

[३०४] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (अध्वरेषु ईड्यः च हि कं प्रत्नः) यज्ञोंमें स्तुत्य और सुखदायक और अत्यन्त प्राचीन है (च सनात् होता च नव्यः सत्सि) और चिरकालसे ही होता एवं स्तुतिके योग्य होकर यज्ञमें विराजमान होता है । तू (त्वां तन्वं पिप्रयस्व) अपने शरीरको हविसे संतुष्ट कर (च अस्मभ्यं सौभगं आ यजस्व) और हमको भी सौभाग्यशाली बना ॥ १० ॥

भावार्थ— अग्निका नाम मनन करने योग्य है उसके अनेक नाम होनेसे वह बडा विस्तृत है । ऐसे उस अग्निको सभी ज्ञानी अपनी रक्षाके लिए स्तुतियों द्वारा बुलाते हैं ॥ ५-६ ॥

यह अग्नि सबको समान दृष्टिसे देखता है, इसके लिए न कोई शत्रु है न मित्र है । इसलिए यह सब प्रजाओंका स्वामी है । इसे सभी मनुष्य अपनी उत्तम उत्तम स्तुतियोंके द्वारा बुलाते हैं और इसकी सहायताको पानेकी इच्छा करते हैं ॥ ७-८ ॥

यह अग्नि यज्ञोंमें स्तुतिके योग्य, सुखदायक और अत्यन्त प्राचीन होनेके कारण सभीके द्वारा बुलाया जा कर यज्ञमें लाता है तथा स्वयं हविसे सन्तुष्ट होकर यज्ञ करनेवालोंको भी सौभाग्यशाली बनाता है । इसीलिए अन्न और बल प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्य इस अग्निको बुलाते हैं ॥ ९-१० ॥

[१२]

(ऋषिः- पर्वतः काण्वः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- उष्णिक्, ३३ शंकुमती (पिंगलमतेन) ।)

३०५ य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति । येना हंसि न्य१त्रिणं तमीमहे ॥ १ ॥

३०६ येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् । येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥ २ ॥

३०७ येन सिन्धुं महीरपो रथाँ इव प्रचोदयः । पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥ ३ ॥

---

[१२]

अर्थ— [३०५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यं) जो तुम (सोमपातमः) अत्यधिक सोम पीनेवाले (शविष्ठः) बलवान् (मदः चेतति) आनन्दित होनेवाले तथा सब जाननेवाले हो, [उस तुमने] (येन) जिस [बल] से (अत्रिणः न हंसि) राक्षसोंको मारा (तं) उस बलको [हम तुमसे] (ईमहे) मांगते हैं ॥ १ ॥

१ येन अत्रिणः नि हंसि— जिस बलसे तुमने राक्षसोंको मारा ।

२ तं ईमहे— हम उस बलको मांगते हैं ।

३ अत्रिणः— खानेवाले, खाऊ, दूसरेके भोगोंको स्वयं खानेवाले ।

[३०६] हे इन्द्र ! (येन) जिस [बल] से (दशग्वं अध्रिगु) दशग्व तथा अध्रिगु ऋषि और (वेपयन्तं स्वर्ण-रम्) [भयसे] कांपते हुए दान दाता [यजमान] की (आविथ) रक्षा की थी और (येन) जिस [बलसे] (समुद्रं) समुद्रकी [रक्षा की थी] (तं ईमहे) उस बलको हम मांगते हैं ॥ २ ॥

१ ईमहे— मांगते हैं, ' ईमह इति याच्ञा कर्मा ' (निघं. ३।१९)

२ स्वर्ण-रं— धनका दान करनेवाला, सुवर्णका दान करनेवाला ।

३ अध्रि-गु— आगे जानेवाला, प्रगति करनेवाला ।

४ दश-ग्वं— दस गौओंका पालन करनेवाला ।

५ समुद्रः (सं-उत्-र)— मिलकर उन्नति करनेके लिये दान देनेवाला, समुद्र ।

६ येन स्वर्ण-रं अविथ तं ईमहे— जिस बलसे तुमने धन दाताकी रक्षा की वह बल हम चाहते हैं ।

[३०७] हे इन्द्र ! (येन) जिस सामर्थ्यसे (रथान् इव) रथोंके समान (महीः अपः) बडे बडे जलप्रवाहोंको (सिन्धुं) समुद्रकी [ओर] (प्रचोदयः) प्रेरित किया बहाया (ऋतस्य पन्थां यातवे) यज्ञके मार्गपर जानेके लिए (तं ईमहे) उस सामर्थ्यको मांगते हैं ॥ ३ ॥

१ ऋतस्य पन्थां यातवे तं ईमहे— यज्ञके मार्गपर जानेके लिए सामर्थ्यको हम प्राप्त करते है ।
सत्य या यज्ञके मार्गपरसे जानेके लिये सामर्थ्य चाहिये ।

भावार्थ— हे बलशाली तथा आनंदयुक्त रहनेवाले इन्द्र ! जिस बलसे तुमने राक्षसोंको मारा था, उस बलसे हमें युक्त करो ॥ १ ॥

जो गौओंका पालन करता है और सदा आगे उन्नति करता जाता है, उसकी रक्षा इन्द्र करता है । इन्द्रके उस बलको हम भी मांगते हैं ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! अपने जिस सामर्थ्यसे तुमने बडी बडी नदियोंको प्रवाहित किया, उसी तेरे सामर्थ्यको हम इसलिए मांगते है कि हम सत्यके मार्गमें चल सकें । सत्य मार्गके अनुसरणमें ही अपनी शक्ति लगानी चाहिए ॥ ३ ॥

३०८ इमं स्तोमम॒भिष्टये घृतं न पूतमद्रिवः । येना नु स॒द्य ओज॑सा व॒वक्षिथ ॥ ४ ॥
३०९ इमं जुषस्व गिर्वणः समुद्र इव पिन्वते । इन्द्र विश्वाभिरूतिभिर्ववक्षिथ ॥ ५ ॥
३१० यो नो देवः परावतः सखित्वनाय मामहे । दिवो न वृष्टिं प्रथयन् व॒वक्षिथ ॥ ६ ॥
३११ व॒वक्षुरस्य केतवं उत वज्रो गभस्त्योः । यत् सूर्यो न रोदसी अवर्धयत् ॥ ७ ॥
३१२ यदि प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अघः । आदित् त इन्द्रियं महि प्र वावृधे ॥८॥

अर्थ— [३०८] हे (अद्रि-वः) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! (घृतं न पूतं) घीके समान पवित्र (इमं स्तोमं) इस स्तोत्रको (अभिष्टये) हमें इष्ट धनका दान देनेके लिए सुनो (येन) जिससे [तुम] (ओजसा) बलसे युक्त होकर (सद्यः ववक्षित) शीघ्र [इष्ट धनको] दे सकते हो ॥ ४ ॥

१ पूतं स्तोमं अभिष्टये— पवित्र स्तुति अर्थात् शुद्ध मनसे की गई स्तुतिसेही इच्छित पदार्थकी प्राप्ति हो सकती है ।

२ अभिष्टिः— सब प्रकारसे इष्ट ।

[३०९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! [तुम] (विश्वाभिः ऊतिभिः ववक्षिथ) संपूर्ण संरक्षणोंके साथ हमारा संरक्षण करते हो, अतः हे (गिर्वणः) स्तुतियोंके द्वारा सेवनके योग्य इन्द्र ! जैसे (समुद्र इव पिन्वते) समुद्र बढता है, वैसेही बढनेवाले [तुम] (इमं) इस स्तुतिको (जुषस्व) सुनो ॥ ५ ॥

१ विश्वाभिः ऊतिभिः ववक्षिथ— इन्द्र अपने भक्तका हर प्रकारसे संरक्षण करता है ।

[३१०] (यः देवः) जो देव इन्द्र (परावतः) दूर देशसे (नः सखित्वनाय) हमारी मित्रताके लिए [धनोंको] (मामहे) देता है, ऐसे तुम हे इन्द्र ! (दिवः वृष्टिं न) जैसे द्युलोकसे वर्षाको [फैलाते हो] वैसेही [धनोंको] (प्रथयन्) फैलाते हुए [तुम] (ववक्षिथ) [हमारे पास] पहुंचाते हो ॥ ६ ॥

१ देवः सखित्वनाय मामहे— देव मित्रताके लिए धन देता है । इन्द्र अपने भक्तोंको ऐश्वर्य देता है ।

२ मामहे— देता है .' मंहतेर्दानकर्मणः ' (निघ. ३।२०) मामहे — पूजा करना ' मह पूजायाम् '

[३११] (यत्) जब यह इन्द्र (सूर्यः न) सूर्यके समान (रोदसी अवर्धयत्) द्यावा-पृथिवीको बढाता है, तब (अस्य केतवः ववक्षुः) इसकी किरणें फैलती हैं (उत) और (गभस्त्योः वज्रः) हाथोंमें वज्र भी वह लेता है ॥ ७ ॥

केतुः— पताका, किरण,
गभस्ती— बाहू- गभस्ती इति बाहुनामं (निघं. २।४)

[३१२] (प्रवृद्ध सत्पते) हे महान् तथा सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (यदि) जब तुमने (सहस्रं महिषान्) हजारों बडे बडे शक्तिशाली असुरोंको (अघः) मारा, (आत् इत्) उसके बाद ही (ते इन्द्रियं) तुम्हारा बल (महि प्र वावृधे) अत्यधिक बढा ॥ ८ ॥

१ यदि सहस्रं महिषान् अघः— इन्द्रने जब हजारों बडे बडे सामर्थ्यवान् असुरोंको मारा ।

२ ते इन्द्रियं वावृधे— तेरी शक्ति बढी ।

भावार्थ—किसी मनोरथकी सिद्धि करनी हो, तो सच्चे और पवित्र मनसेही प्रभुकी भक्ति करनी चाहिए, तभी उस मनोरथ की सिद्धि हो सकती है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! जिस तरह समुद्र नदियोंके पानीसे बढता है, उसी तरह तुम स्तुतियोंसे बढो और हमारी हर तरहसे रक्षा करो ॥ ५ ॥

यह ऐश्वर्यशाली देव दूर देशसे भी हमें धन प्रदान करता है । इसलिए हम उससे सदा मैत्री रखना चाहते हैं ॥ ६ ॥

जिस तरह सूर्य जब अपनी किरणोंको फैलाता है, तब द्युलोक और भूलोक प्रकाशित होकर विस्तृतसे दिखाई पडते हैं, उसी तरह इन्द्रकी किरणें चारों ओर फैलकर सारे विश्वको विस्तृत करती हैं ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! जब तूने सहस्रों राक्षसोंको मारा तब तेरा सामर्थ्य बढा । शत्रुओंको मारनेसे अपना सामर्थ्य बढता है ॥ ८ ॥

३१३ इन्द्रः सूर्यस्य रश्मिभि-र्न्यर्शसानमोषति । अग्निर्वनेव सासहिः प्र वावृधे ॥ ९ ॥
३१४ इयं त ऋत्वियावती धीतिरेति नवीयसी । सपर्यन्ती पुरुप्रिया मिमीत इत् ॥ १० ॥
३१५ गर्भो यज्ञस्य देवयुः क्रतुं पुनीत आनुषक् । स्तोमैरिन्द्रस्य वावृधे मिमीत इत् ॥ ११ ॥
३१६ सनिर्मित्रस्य पप्रथ इन्द्रः सोमस्य पीतये । प्राची वाशीव सुन्वते मिमीत इत् ॥ १२ ॥
३१७ यं विप्रा उक्थवाहसो ऽभिप्रमन्दुरायवः । घृतं न पिप्य आसन्यृतस्य यत् ॥ १३ ॥

अर्थ— [३१३] (इन्द्रः) इन्द्र (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्यकी किरणोंसे (अर्शसानं) त्रासदायक शत्रुको (अग्निः वना इव) जैसे अग्नि वनोंको जला डालती है, उसी प्रकार (नि ओषति) बिल्कुल जला डालता है, और (सासहिः) शत्रुको पराजित करनेवाला वह इन्द्र (प्र वावृधे) बढता है ॥ ९ ॥

१ इन्द्रः अर्शसानं सूर्यस्य रश्मिभिः नि ओषति— इन्द्र त्रासदायक शत्रुको सूर्यकी किरणोंसे जलाता है।

२ ओषति— जलाना ' उष दाहे '

[३१४] हे इन्द्र (इयं) यह (ऋत्वियावती) यज्ञमें की जानेवाली (नवीयसी) नवीन (सपर्यन्ती) सत्कार करनेवाली, (पुरु-प्रिया) बहुतोंको प्रिय (धीतिः) स्तुति (ते एति) तेरे पास जाती है, और (मिमीते इत्) तेरे गुणोंका वर्णन करती है ॥ १० ॥

[३१५] (यज्ञस्य गर्भः) यज्ञको उत्पन्न करनेवाला तथा (देवयुः) देवोंकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला ऋत्विज् (आनुषक्) निरन्तर [अपने] (क्रतुं) कर्मको (पुनीते) पवित्र रीतिसे करता रहता है, तथा (इन्द्रस्य स्तोमैः वावृधे) इन्द्रकी स्तुतिसे वह बढता है, तथा (मिमीते इत्) [इन्द्रके] गुणोंका वर्णन करता है ॥ ११ ॥

[३१६] (मित्रस्य सनिः) मित्रको धन देनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (सोमस्य पीतये) सोम पानके लिए (सुन्वते प्राची वाशी इव) सोमयाग करनेवालेकी उत्तम स्तुतिको सुननेसे (पप्रथे) प्रसिद्ध होता है और उसमें (मिमीते इत्) उसका गुण वर्णन होता है ॥ १२ ॥

मित्रस्य सनिः— मित्रको सहायता करनी योग्य है।

[३१७] (विप्राः उक्थवाहसः आयवः) ज्ञानी तथा स्तुतिकर्ता मनुष्य (यं अभिप्रमन्दुः) जिसको आनन्दित करते हैं। [उसके] (आसनि) मुखमें (ऋतस्य यत्) यज्ञका जो हव्य सोमरस है उसे (घृतं न) घीके समान (पिप्ये) पिलाता हूँ ॥ १३ ॥

भावार्थ— सूर्यकी किरणोंसे त्रासदायक शत्रु अर्थात् रोगके कीटाणु मर जाते हैं। रोज सूर्य स्नान करनेसे शरीर स्वस्थ रहता है ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! यज्ञमें की जानेवाली यह तुझसे ही सम्बन्धित है। इसमें तेरे ही उत्तम गुणोंका वर्णन है ॥ १० ॥

देवोंकी प्राप्तीकी कामना करनेवाला ऋत्विज् निरन्तर अपने कर्मको पवित्र रीतिसे करता है। अच्छे गुणोंको प्राप्त करनेवाले मनुष्यको अपना कर्म पवित्र हो ऐसा करना चाहिए। वह इन्द्रकी स्तुतिसे बढता है, परमात्माकी स्तुतिसे मनुष्यकी उन्नति होती है ॥ ११ ॥

यह इन्द्र देव सदा ही मित्रको धन देकर उसकी सहायता करता है। धनादिसे अपने मित्रकी सदा सहायता करनी चाहिए ॥ १२ ॥

ज्ञानी और स्तुति करनेवाले लोग सदा इस इन्द्रकी स्तुति करते हैं और उसे सोमरस प्रदान करते हैं ॥ १३ ॥

३१८ उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत् । पुरुप्रशस्तमूतय ऋतस्य यत् ॥१४॥
३१९ अभि वह्नय ऊतये ऽनूषत प्रशस्तये । न देव विव्रता हरी ऋतस्य यत् ॥१५॥
३२० यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद् वा घ त्रित आप्त्ये । यद् वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥१६॥
३२१ यद् वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे । अस्माकमित् सुते रणा समिन्दुभिः ॥१७॥
३२२ यद् वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते । उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥१८॥

अर्थ— [३१८] (उत) और (अ-दितिः) अखण्डनीय स्तोताने (स्व- राजे इन्द्राय) स्वयं प्रकाशमान इन्द्रके लिए (ऊतये) संरक्षणके लिए (ऋतस्य यत् पुरु-प्रशस्तं स्तोमं), यज्ञका जो बहुत प्रशंसित स्तोत्र है [उसे] (जीजनत्) बनाया है ॥ १४ ॥

[३१९] (वह्नयः) ऋषिगण (ऊतये प्रशस्तये) संरक्षण तथा प्रशंसाके लिए [इन्द्रकी] (अभि अनूषत) स्तुति करते हैं, हे (न देव) प्रशंसित देव इन्द्र ! (विव्रता हरी) विविध कर्म करनेवाले तेरे घोडे (ऋतस्य यत्) यज्ञका जो स्थान है [उसकी तरफ तुझे ले आवें] ॥ १५ ॥

१ वह्नि- अग्नि, पाचन, गाडी, यज्ञकर्ता, मरुतोंका विशेषण, सोम, घोडा

[३२०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (विष्णवि) यज्ञमें (यत् सोमं मन्दसे) जिस सोमको पीकर आनन्दित होते हो, (वा घ) और (यत् त्रित आप्त्ये) जिसको त्रित आप्त्यके यज्ञमें पीते हो, (वा) और (यत् मरुत्सु) जिसको मरुतोंमें [बैठकर] पीते हो, [उसी प्रकार हमारे] (इन्दुभिः सं) सोमोंसे भी अच्छी तरह आनन्दित होओ ॥ १६ ॥

[३२१] (यदि वा) जैसे (परावति) दूर देशमें (समुद्रे अधिमन्दसे) बहनेवाले सोमसे आनन्दित होते हो, वैसे (अस्माकं सुते इत्) हमारे सोमयागमें भी (इन्दुभिः सं रण) सोमरस द्वारा अच्छी तरह आनन्दित होओ ॥ १७ ॥

[३२२] हे (सत्पते) सज्जनोंके पालन करनेवाले इन्द्र ! (यद् यस्य उक्थे) जब जिसके यज्ञमें तुम (इन्दुभिः वा) सोमरसोंसे (सं रण्यसि) अच्छी प्रकार आनन्दित होते हो, उस समय (सुन्वतः यजमानस्य) सोम याग करनेवाले यजमानको (वृधः असि) बढाते हो ॥ १८ ॥

भावार्थ— अखण्डनीय स्तोताने स्वराजके उद्देश्यसे अपने संरक्षणके लिये प्रशंसनीय स्तोत्र बनाये। जिससे स्वराज्यकी शक्ति बढेगी और अपना संरक्षण हो जायगा ॥ १४ ॥

संरक्षणके लिये तथा प्रशंसाके लिये स्तुति करते हैं। स्तुतिमें जो गुण वर्णन किये जाते हैं, उनको अपनानेसे अपना संरक्षण होता है और अपनी प्रशंसा जनतामें भी होती है ॥ १५ ॥

हे इन्द्र ! तुम अन्य यज्ञकर्ताओंके यज्ञमें जिस प्रकार सोम पीकर आनन्दित होते हो, उसी तरह हमारे यज्ञमें भी सोम पीकर आनन्दित होओ ॥ १६ ॥

हे इन्द्र ! जिस प्रकार तुम दूरके देशोंमें सोमरस पीकर आनन्दित होते हो, उसी प्रकार हमारे यज्ञमें सोम पीकर आनन्दित होओ ॥ १७ ॥

जिस यज्ञकर्ताके यज्ञमें यह इन्द्र सोम पीकर आनन्दित होता है, उसी तरह यह हमारे यज्ञमें भी सोम पीकर आनन्दित हो ॥ १८ ॥

३२३ देवंदेवं वोऽवस इन्द्रमिन्द्रं गृणीषणि । अधा यज्ञाय तुर्वणे व्यानशुः ॥१९॥
३२४ यज्ञेभिर्यज्ञवाहसं सोमेभिः सोमपातमम् । होत्राभिरिन्द्रं वावृधुर्व्यानशुः ॥२०॥
३२५ महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः । विश्वा वसूनि दाशुषे व्यानशुः ॥२१॥
३२६ इन्द्रं वृत्राय हन्तवे देवासो दधिरे पुरः । इन्द्रं वाणीरनूषता समोजसे ॥२२॥
३२७ महान्तं महिना वयं स्तोमेभिर्हवनश्रुतम् । अर्कैरभि प्र णोनुमः समोजसे ॥२३॥
३२८ न यं विविक्तो रोदसी नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् । अमादिदस्य तित्विषे समोजसः ॥२४॥

अर्थ— [३२३] (वः अवसे) तुम सबके रक्षणके लिए (देवं देवं इन्द्रं इन्द्रं) देव देव इन्द्रकी (गृणीषणि) स्तुति करता हूँ, वे स्तुतियां (अधा) पश्चात (तुर्वणे) शत्रुको मारनेके लिए तथा (यज्ञाय) यज्ञके लिए [इन्द्रको] (वि- आनशुः) पहुंचे ॥ १९ ॥

[३२४] (यज्ञवाहसं सोमपातमं इन्द्रं) यज्ञमें बुलाने योग्य तथा सबसे अधिक सोम पीनेवाले इन्द्रको [याजक] (यज्ञेभिः, सोमेभिः, होत्राभिः) यज्ञोंसे, सोमोंसे तथा स्तुतियोंसे (वावृधुः) बढाते हैं, तथा [इन्द्रको] (व्यानशुः) प्राप्त करते हैं ॥ २० ॥

[३२५] (अस्य प्रणीतयः महीः) इसकी नीतियां बहुत हैं, (उतः) और इसकी (प्रशस्तयः) प्रशंसाएं भी (पूर्वीः) पूर्वकालसे आयी हैं, इसके (विश्वा वसूनि) सम्पूर्ण धन (दाशुषे) दाताको (वि-आनशुः) प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

१ विश्वा वसूनि दाशुषे वि आनशुः— इन्द्रके सम्पूर्ण धन दान देनेवालेको प्राप्त होते हैं।

[३२६] (देवासः) देवोंने (वृत्राय हन्तवे) वृत्रको मारनेके लिए (इन्द्रं पुरः दधिरे) इन्द्रको आगे किया, अतः [उसके] (ओजसे) बलके लिए (वाणी सं अनूषत) वाणियां इसीकी स्तुति करती हैं ॥ २२ ॥

[३२७] (महिना महान्तं) अपने बल तथा यशसे बडे (हवनश्रुतं) प्रार्थनाको सुननेवाले इन्द्रका (ओजसे) उसके बलके लिए (वयं स्तोमेभिः अर्कैः) हम यज्ञोंसे तथा स्तोत्रोंसे (अभि प्र णोनुमः) सत्कार करते हैं ॥ २३ ॥

[३२८] (यं वज्रिणं) जिस वज्रधारी इन्द्रको (रोदसी न विविक्तः) द्यावा पृथिवी अपनेसे पृथक् नहीं कर सकते, (अन्तरिक्षाणि न) अन्तरिक्ष लोक भी पृथक् नहीं कर सकते। ऐसे (अस्य अमात् ओजसः इत्) इस इन्द्रके बल तथा ओजसेही [सब जगत्] (तित्विषे) प्रकाशित हो रहा है ॥ २४ ॥

भावार्थ— मेरी स्तुतियां शत्रुको मारनेके लिए और यज्ञके लिए इन्द्रको प्राप्त हों, अर्थात् मेरी स्तुतियां शत्रुको मारनेके लिए तथा यज्ञमें आनेके लिए इन्द्रको प्रेरित करें। संरक्षणके लिये मैं ईश्वरकी स्तुति करता हूं। देवताकी स्तुतिके साथ अपने संरक्षण होनेका बडा संबंध है। स्तुतिमें वर्णित गुण अपनेमें बढानेसे अपना संरक्षण होता है ॥ १९ ॥

देवोंमें सबसे अधिक सोम इन्द्र ही पीता है, इसीलिए वह सब यज्ञोंमें सोमपानके लिए बुलाया जाता है ॥ २० ॥

इन्द्रकी नीतियां बहुत हैं। वह बहुत चतुर है। इसीलिए बहुत प्राचीनकालसे इसकी प्रशंसा होती आ रही है। जो दान देता है, उसीको इसके धन प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

देवोंने वृत्रको मारनेके लिए इन्द्रको नेता बनाया, इन्द्र इतना बलवान् है। बलके लिये हमारी वाणियां उस इन्द्रकी मिलकर स्तुति करती हैं ॥ २२ ॥

वह अपने बलसे बडा है, उसे बडे होनेके लिए किसी दूसरेसे सहायता लेनेकी आवश्यकता नहीं। वह हवनमें, यज्ञमें प्रसिद्ध है। हम बलके लिये उस वीरका सत्कार करते हैं। बलके कारण सत्कार होता है ॥ २३ ॥

इन्द्रके सब जगह व्याप्त होनेसे, द्यावा पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष अपनेसे उसको पृथक् नहीं कर सकते। इसके बल तथा ओजसेही सारा संसार प्रकाशित हो रहा है ॥ २४ ॥

३२९ यदिन्द्र पृतनाज्ये देवास्त्वा दधिरे पुरः । आदित् ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥२५॥
३३० यदा वृत्रं नदीवृतं शवसा वज्रिन्नवधीः । आदित् ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥२६॥
३३१ यदा ते विष्णुरोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे । आदित् ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥२७॥
३३२ यदा ते हर्यता हरी वावृधाते दिवेदिवे । आदित् ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥२८॥
३३३ यदा ते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे । आदित् ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥२९॥
३३४ यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः । आदित् ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥३०॥

अर्थ— [३२९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (देवाः) देवोंने (पृतनाज्ये संग्राममें (त्वा) तुझे (यत्) जब (पुरः दधिरे) आगे किया (आत् इत्) उसके अनन्तर ही (हर्यता हरी) दो तेजस्वी घोडे (ते ववक्षतुः) ले तुझे गये ॥ २५ ॥

[३३०] हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! (यदा) जब तुमने (नदी वृतं वृत्रं) नदीके पानीको रोकनेवाले वृत्रको (शवसा अवधीः) बलसे मारा, (आत् इत्) उसी समय (हर्यता हरी) दो तेजस्वी घोडे (ते ववक्षतुः) तुम्हें ले चले ॥ २६ ॥

[३३१] हे इन्द्र ! (यदा ते विष्णुः) जब तुम्हारे विष्णुने (ओजसा) बलसे (त्राणि पदा) तीन पावोंसे (विचक्रमे) विक्रम किया (आत् इत्) तबही (हर्यता हरी) दो तेजस्वी घोडे (ते) तुम्हें (ववक्षतुः) ढोकर ले गए ॥ २७ ॥

१ विष्णु उपेन्द्र है । इन्द्र देवेन्द्र है । विष्णु सूर्य है ।

[३३२] हे इन्द्र ! (यदा ते हर्यता हरी) जब तेरे तेजस्वी घोडे (दिवे दिवे वावृधाते) प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त हुए, (आत् इत्) तभी (त) तूने (विश्वा भुवनानि) सम्पूर्ण लोकोंको (येमिरे) नियमोंमें रखा ॥ २८ ॥

१ ते विश्वा भुवनानि येमिरे– तूने सब भुवनोंको नियमोंमें रखा है ।

[३३३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यदा) जब (ते मारुतिः विशः) तुम्हारी मरुद् रूपी प्रजायें (तुभ्यं) तेरे लिए [सारे प्राणियोंको] (नि येमिरे) नियंत्रित करती हैं, (आत् इत्) तभी (ते) तुम (विश्वा भुवनानि येमिरे) सम्पूर्णलोकोंका नियमन करते हो ॥ २९ ॥

[३३४] हे इन्द्र ! (यदा) जब तुमने (अमुं शुक्रं, ज्योतिः सूर्यं) इस तेजस्वी तथा प्रकाशमान् सूर्यको (दिवि अधारयः) द्युलोकमें स्थापित किया, (आत् इत्) तभी (ते) तुमने (विश्वा भुवनानि येमिरे) सम्पूर्ण भुवनोंको नियमित किया ॥ ३० ॥

शुक्रं ज्योतिः सूर्यं दिवि अधारयः– शुद्ध प्रकाशमान सूर्यको तुमने द्युलोकमें स्थापित किया है ।

भावार्थ— देवोंने सेनाके हमला होनेपर इन्द्रको आगे धर दिया, युद्धका नेता बनाया । इसी प्रकार वीर शत्रुओंके साथ होनेवाले युद्धमें सबसे आगे रहे ॥ २५ ॥

इन्द्रने नदीके पानीको रोकनेवाले वृत्रको अपने बलसे मारा । नदीके जलका बर्फ करनेवाले वृत्रको इन्द्रने मारा । बर्फको पिघलाया ॥ २६ ॥

सूर्यने अपने बलसे तीन पावोंसे आक्रमण किया । सूर्य मध्यान्ह समयमें ऊपर चढ गया ॥ २७ ॥

इन्द्र जब सामर्थ्यशाली होता है, तब उसने सब भुवनोंको अपने शासनमें रखा । जब मनुष्य सामर्थ्यशाली होता है, तब वह लोगोंको शासनमें रखता है ॥ २८ ॥

संपूर्ण लोकोंको नियंत्रित करनेके कार्यमें इन्द्रकी सहायता मरुत् करते हैं । इसी तरह सब प्रजाओंको शासनमें रखनेके कार्यमें वीर राजाकी सहायता उसके सैनिक करें ॥ २९ ॥

जब इन्द्रने द्युलोकमें प्रकाशमान् सूर्यको स्थापित किया तभी सारा विश्व प्रकाशित हुआ और उस पर इन्द्रका शासन हुआ ॥ ३० ॥

३३५ इमां त इन्द्र सुष्टुतिं विप्र इयर्ति धीतिभिः । जामिं पदेव पिप्रतीं प्राध्वरे ॥३१॥
३३६ यदस्य धामनि प्रिये समीचीनासो अस्वरन् । नाभा यज्ञस्य दोहना प्राध्वरे ॥३२॥
३३७ सुवीर्यं स्वश्व्यं सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः । होतेव पूर्वचित्तये प्राध्वरे ॥३३॥

[१३]

(ऋषिः- नारदः काण्वः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- उष्णिक् ।)

३३८ इन्द्रः सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीत उक्थ्यम् । विदे वृधस्य दक्षसो महान् हि षः ॥१॥
३३९ स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः । सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥२॥

अर्थ— [३३५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (जामिं पदा इव) जैसे कोई अपने बन्धुको उत्कृष्ट स्थान पर ले जाता है, उसी प्रकार (विप्रः) ज्ञानी (इमां पिप्रतिं) इस प्रसन्नता वर्धक (सु-स्तुतिं) उत्तम स्तुतिको (धीतिभिः) धारोंके कर्मोंके साथ (अध्वरे इयर्ति) यज्ञमें ले जाता है ॥ ३१ ॥

[३३६] (यज्ञस्य नाभा दोहना) यज्ञके केन्द्रमें [सोमका] रस निकालने पर (अस्य प्रिये धामनि अध्वरे) इस [इन्द्र] के प्रिय यज्ञस्थानमें [स्तोता] (समीचीनासः) संघटित होकर (अस्वरन्) स्तुति करते हैं ॥ ३२ ॥

[३३७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः) हमें (सु-वीर्यं, सु-अश्व्यं, सु-गव्यं) उत्तम बल, उत्तम घोडे और उत्तम गायोंवाला धन (दद्धि) दो, मैं (अध्वरे) यज्ञमें (होता इव) होताके समान (पूर्व चित्तये) सबसे प्रथम ज्ञानलाभ, होनेके लिए तुम्हारी (प्र) उत्तम स्तुति करता हूँ ॥ ३३ ॥

१ नः सुवीर्यं स्वश्व्यं सुगव्यं दद्धि- हमें उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति, उत्तम घोडे और उत्तम गायें दे दो ।

[१३]

[३३८] (इन्द्रः) इन्द्र (सोमेषु सुतेषु) सोमका रस निकालने पर (वृधस्य दक्षसः विदे) बढानेवाले बलको प्राप्त करनेके लिए (क्रतुं उक्थ्यं पुनीते) यज्ञ तथा स्तोत्रको पवित्र करता है (हि) क्योंकि (सः महान्) वह महान् है ॥ १ ॥

१ दक्षः- बल " दक्ष इति बल नाम " (निघं. २।९)

२ विदे- प्राप्त करनेके लिए " विदॢ लाभे "

[३३९] (सु-पारः) उत्तमतासे [दुःखोंसे] पार करानेवाला, (सु-श्रव-स्तमः) उत्तम यशवाला तथा (सं-अप्सुजित्) अन्तरिक्षमें शत्रुओंको जीतनेवाला (सः) वह इन्द्र (देवानां सदने) देवोंके स्थान (प्रथमे व्योमनि) विस्तृत आकाशमें [रहकर सबका] (वृधः) बढानेवाला है ॥ २ ॥

१ अप्सु- अन्तरिक्ष लोकोंमें ' आप इति अन्तरिक्षनाम् ' (निघं १।३)

भावार्थ—जिस तरह कोई मनुष्य ऊंचे स्थान पर पहुंचकर अपने भाईको भी ऊंचे स्थान पर पहुंचाता है, उसी तरह ज्ञानी स्वयं उन्नत होकर इस इन्द्रको भी अपनी स्तुतियोंसे ऊंचा उठाते हैं ॥ ३१ ॥

जब यज्ञ शुरु होते हैं, तब इन्द्रके प्रिय स्थान उन यज्ञोंमें इन्द्रको सोमरस देनेके लिए सब लोग संघटित होकर स्तुति करते हैं ॥ ३२ ॥

हे इन्द्र ! हमें तू उत्तम बल, उत्तम घोडे तथा उत्तम गायोंवाला धन दे । हे देव ! मैं यज्ञमें ज्ञान प्राप्त करनेके लिए तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥ ३३ ॥

इन्द्र बल बढानेके लिये यज्ञ या पवित्र कर्म करता है । पवित्र कर्मसे बल बढता है ॥ १ ॥

वह इन्द्र उत्तम यशवाला तथा अन्तरिक्षमें रहनेवाले शत्रुओंको जीतनेवाला है । दुःखोंसे पार करनेवाला और शत्रुओंको जीतनेवाला बडा होता है ॥ २ ॥

३४० तमह्वे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् । भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥३॥
३४१ इयं त इन्द्र गिर्वणो रातिः क्षरति सुन्वतः । मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥४॥
३४२ नूनं तदिन्द्र दद्धि नो यत् त्वा सुन्वन्त ईमहे । रयिं नश्चित्रमा भरा स्वर्विदम् ॥५॥
३४३ स्तोता यत् ते विचर्षणिरतिप्रशर्धयद् गिरः । वया इवानु रोहते जुषन्त यत् ॥६॥
३४४ प्रत्नवज्जनया गिरः शृणुधी जरितुर्हवम् । मदेमदे ववक्षिथा सुकृत्वने ॥७॥
३४५ क्रीळन्त्यस्य सूनृता आपो न प्रवता यतीः । अया धिया य उच्यते पतिर्दिवः ॥८॥

अर्थ— [३४०] मैं (तं शुष्मिणं इन्द्रं) उस बलवान् इन्द्रको (वाजसातये भराय) धन प्राप्त होनेवाले संग्रामके लिए (अह्वे) बुलाता हूँ । हे इन्द्र ! तुम (सुम्ने) सुखके लिए (नः अन्तमः भव) हमारे समीप आ जाओ, तथा (वृधे) हमें बढानेके लिए (सखा) हमारे मित्र बन जाओ ॥ ३ ॥

[३४१] हे (गिर्वणः इन्द्र) प्रशंसनीय इन्द्र ! (सुन्वतः इयं रातिः) सोम यागमें दी हुई यह सोमाहुति (ते) तुम्हारे लिए (क्षरति) बह रही है । तुम (मन्दानः) आनन्दित होते हुए (अस्य बर्हिषः वि राजसि) इस आसन पर विराजमान हो ॥ ४ ॥

[३४२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् त्वा) जिस धनको तुमसे (सुन्वन्तः ईमहे) सोम याग करते हुए हम मांगते हैं, (तत् नः नूनं दद्धि) उस धनको हमें अवश्य दो । तथा (स्वः विदं चित्रं) सुखको प्राप्त करानेवाले अनेक प्रकारके (रयिं नः आ भर) ऐश्वर्यको हमें दो ॥ ५ ॥

स्वर्विदं चित्रं रयिं नः आभर- सुख देनेवाला अनेक प्रकारका धन हमें भरपूर दो । धन सुख देनेवाला चाहिये ।

[३४३] हे इन्द्र ! (यत् विचर्षणिः स्तोता) जब बुद्धिमान् स्तोता (ते गिरः) तेरी स्तुति (अति प्रशर्धयत्) शत्रुके पराजय करनेके लिए करता है, और (यत् जुषन्त) जब [वे स्तुतियां तेरे पास] पहुंचती हैं, तब [तुझमें सारे गुण] (वयाः इव) शाखाओंके समान (अनु रोहते) अनुकूलतासे बढते हैं ॥ ६ ॥

[३४४] (प्रत्नवत्) पहलेके समान (गिरः जनय) स्तुतियाँ करो (जरितुः हवं शृणुधी) स्तोताकी प्रार्थना सुनो । (मदे मदे) आनन्दित होने पर (सु-कृत्वने) अच्छे कर्म करनेवालेको धन (ववक्षिथ) दे दो ॥ ७ ॥

सुकृत्वने ववक्षिथ- अच्छे कर्म जो करता है उसे धन दे दो ।

[३४५] (अस्य) इस इन्द्रकी (सूनृताः) स्तुतियां [इसकी ओर] (प्रवता यतीः आपः न) नीचेकी ओर बहनेवाले जलप्रवाहोंकी तरह (क्रीळन्ति) जाती हैं, (यः दिवः पतिः) जो द्युलोकका स्वामी (अया धिया उच्यते) इस स्तुति द्वारा प्रशंसित होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ— उस बलवान् इन्द्रको धन प्राप्त होनेवाले संग्रामके लिए सहायार्थ बुलाता हूँ । सुखके लिए हमारे पास आ जाओ । परमात्माके समीप होनेसे आनन्द मिलता है ॥ ३ ॥

हे स्तुतिके योग्य इन्द्र ! यज्ञमें दी गई यह सोमाहुति तेरे लिए बह रही है । तू इस रसको पीकर आनन्दित हो ॥४॥

हे इन्द्र ! हम तुझे सोम देते हैं, और यही तुझसे मांगते हैं कि हमें वही धन दे कि जो हमें सुख प्राप्त करानेवाला है । धन सदा सुख देनेवाला ही होना चाहिए ॥ ५ ॥

जब इन्द्र शत्रुका पराजय करनेके लिए जाता है, तब स्तोता उसकी स्तुति करते हैं, उन स्तुतियोंसे इन्द्रका बल पेडोंकी शाखाओंकी तरह बढता है । इसी तरह राष्ट्रका राजा जब शत्रुओंसे युद्ध करने जाए, तब कवि गण अपनी कविताओंसे राजा और सैनिकोंका सामर्थ्य और उत्साह बढायें ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम हमारी उत्तम स्तुतियां सुनो और हमारे बीचमें जो उत्तम कर्म करनेवाला हो, उसे ही धन दो ॥ ७ ॥

जब द्युलोकके स्वामी इन्द्रकी स्तुति की जाती है, तब ये स्तुतियां उसकी तरफ उसी तरह बहती हैं कि जिस तरह नीचे स्थानकी तरफ नदियां ॥ ८ ॥

३४६ उतो पतिर्य उच्यते कृष्टीनामेक इद् वशी । नमोवृधैरवस्युभिः सुते रण ॥९॥
३४७ स्तुहि श्रुतं विपश्चितं हरी यस्य प्रसक्षिणा । गन्तारा दाशुषो गृहं नमस्विनः ॥१०॥
३४८ तूतुजानो महेमते ऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः । आ याहि यज्ञमाशुभिः शमिद्धि ते ॥११॥
३४९ इन्द्र शविष्ठ सत्पते रयिं गृणत्सु धारय । श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम् ॥१२॥
३५० हवे त्वा सूर उदिते हवे मध्यंदिने दिवः । जुषाण इन्द्र सप्तिभिर्न आ गहि ॥१३॥

अर्थ— [३४६] (यः) जो इन्द्र (नमोवृधैः) गुणवर्णनसे बढानेवालों तथा (अवस्युभिः) संरक्षणकी इच्छा करनेवालोंके द्वारा (वशी) सबको वशमें करनेवाला (उत) और (कृष्टीनां एक इत् पतिः उच्यते) मनुष्योंका एक ही राजा कहलाता है, वह तू (सुते रण) सोमयागमें आनन्दित हो ॥ ९ ॥

[३४७] हे मनुष्य ! (विपश्चितं श्रुतं स्तुहि) विद्वान् तथा प्रसिद्ध इन्द्रका गुणवर्णन करो, (यस्य प्रसक्षिणा हरी) जिसके शत्रुको पराजित करनेवाले घोडे (नमस्विनः दाशुषः गृहं) स्तुति करनेवाले तथा दान देनेवाले यजमानके घरको (गन्तारा) जाते हैं ॥ १० ॥

[३४८] हे (महे मते) महान् बुद्धिवाले इन्द्र ! (तूतुजानः) शीघ्रता करते हुए तुम (प्रुषितप्सुभिः आशुभिः अश्वेभिः) तेजस्वी रूपवाले तथा तेज दौडनेवाले घोडोंसे (यज्ञं आ याहि) हमारे यज्ञमें आओ (हि) क्योंकि (ते शं इत्) तुम्हारा आना कल्याणकारक है ॥ ११ ॥

१ महामतिः— इन्द्र महान् विद्वान् है । मतिमान है ।
२ ते शं इत्— तुम्हारा आना कल्याणकारक है ।
३ प्रुषित-प्सुः— तेजस्वी रूप “ प्सुरिति रूप नाम (निघं. ३।७)

[३४९] हे (शविष्ठ सत्पते इन्द्र) बलवान् तथा सज्जनोंके पालन करनेवाले इन्द्र ! (गृणत्सु रयिं धारय) स्तोताओंको धन दे दो । तथा (सूरिभ्यः) विद्वानोंको (अ-मृतं वसु-त्वनं श्रवः) नष्ट न होनेवाले धनके साथ यश दो ॥ १२ ॥

१ सूरिभ्यः अमृतं वसुत्वनं श्रवः— विद्वानोंको नष्ट न होनेवाला धनसे युक्त यशवाला अन्न दे दो ।
२ गृणत्सु रयिं धारय— उपासकोंको धन दे दो ।
३ सत्पतिः शविष्ठः— उत्तम पालन करनेवाला बलवान होता है ।

[३५०] हे इन्द्र ! मैं (त्वा) तुझे (सूरे उदिते) सूर्यके उदय होने पर (हवे) बुलाता हूँ और (दिवः मध्यन्दिने हवे) दिनके मध्यभागमें भी बुलाता हूँ, हे (इन्द्र) इन्द्र ! (जुषाणः) [हमारी प्रार्थनाओंको] सुनते हुए (सप्तिभिः न आ गहि) घोडोंसे हमारे पास आओ ॥ १३ ॥

भावार्थ— वह इन्द्र सबको वशमें करनेवाला तथा मनुष्योंका एक ही राजा है । अपने इन्द्रिय आदिको वशमें रखनेवाला मानवोंका उत्तम राजा होता है ॥ ९ ॥

शत्रुको पराजित करनेवाला अपने भक्तके घर जाता है । राजाको भी अपने अनुयायियोंके घर जाकर समय समय पर उनकी पूछताछ करनी चाहिए ॥ १० ॥

हे उत्तम बुद्धिवाले इन्द्र ! तुम अपने तेजस्वी घोडोंसे हमारे यज्ञमें आओ, क्योंकि तुम्हारा आना कल्याणकारक है । महापुरुषोंका किसीके घर जाना सदा कल्याणकारक ही होता है ॥ ११ ॥

हे बलवान् तथा सज्जनोंके पालक इन्द्र ! तुम स्तोताओंको तथा विद्वानोंको धन दो । राजा बलवान् और सज्जनोंका पालक हो, तथा वह ज्ञानियोंको धन देकर उनका पालन पोषण करे ॥ १२ ॥

मैं प्रातःकाल, मध्याह्न अर्थात् सब समय इन्द्रको बुलाता हूं । वह मेरे पास आवे सबेरे और मध्य दिनमें प्रार्थना करनी चाहिये ॥ १३ ॥

३५१ आ तू नहि प्र तु द्रव मत्स्वा सुतस्य गोमतः । तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं यथा विदे ॥१४॥
३५२ यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् । यद् वा समुद्रे अन्धसोऽवितेदसि ॥१५॥
३५३ इन्द्रं वर्धन्तु नो गिर इन्द्रं सुतास इन्दवः । इन्द्रे हविष्मतीर्विशो अराणिषुः ॥१६॥
३५४ तमिद् विप्रा अवस्यवः प्रवत्वतीभिरूतिभिः । इन्द्रं क्षोणीरवर्धयन् वया इव ॥१७॥
३५५ त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद् वर्धन्तु नो गिरः सदावृधम् ॥१८॥
३५६ स्तोता यत् ते अनुव्रत उक्थान्यृतुथा दधे । शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुतः ॥१९॥
३५७ तदिद् रुद्रस्य चेतति यह्वं प्रत्नेषु धामसु । मनो यत्रा वि तद् दधुर्विचेतसः ॥२०॥

अर्थ— [३५१] हे इन्द्र ! (तु आ गहि) तू आ और (प्र तु द्रव) दौडकर आ, फिर (गोमतः सुतस्य मत्स्व) गोदुग्ध मिश्रित सोम रससे आनन्दित हो, फिर (यथा पूर्व्यं) पहलेके समान (विदे) धनकी प्राप्तिके लिए (तन्तुं तनुष्व) यज्ञका प्रसार कर ॥ १४ ॥

[३५२] हे (शक्र) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! (यत् परावति असि) जो तुम दूर देशमें हो, हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (यत् अर्वावति) जो पासके देशमें हो (वा) अथवा (यत् समुद्रे) जो अन्तरिक्षमें हो, वहांसे (अन्धसः) सोम पीकर हमारा (अविता इत् असि) संरक्षण करनेवाले बनो ॥ १५ ॥

[३५३] (नः गिरः इन्द्रं वर्धन्तु) हमारी स्तुतियां इन्द्रका वर्णन करें, तथा (सुतासः इन्दवः इन्द्रं) सोम निचोडे हुए रस इन्द्रको बढावें । (हविष्मतीः विशः) यज्ञ करनेवाली प्रजायें (इन्द्रे अराणिषुः) इन्द्रमें आनन्दित होती हैं ॥१६॥

[३५४] (अवस्यवः विप्राः) संरक्षणकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी जन (प्रवत्वतीभिः ऊतिभिः) शीघ्रकार्य करनेवाले संरक्षणके साधनोंके साथ रहनेवाले (तं इत्) उस इन्द्रका (अवर्धयन्) वर्णन करते हैं । तथा (क्षोणीः) पृथिवी पर रहनेवाले लोक भी (वयाः इव) वृक्षकी शाखाओंके समान (इन्द्रं) इन्द्रका ही वर्णन करते हैं ॥ १७ ॥

[३५५] (त्रिकद्रुकेषु) यज्ञोंमें (देवासः) याजकोंने (यज्ञं चेतनं) पूजनीय तथा ज्ञानवान् इन्द्रका (अत्नत) वर्णन किया (तं सदावृधं इत्) उस सदा बढनेवाले इन्द्रका ही (नः गिरः वर्धन्तु) हमारी स्तुतियां वर्णन करें ॥१८॥

[३५६] (ते अनुव्रतः स्तोता) तेरे नियमके अनुसार चलनेवाला स्तोता (ऋतुथा) ऋतुओंमें (यत् उक्थानि दधे) जब स्तोत्रोंसे तेरा गुणवर्णन करता है तब (सः) वह (अद्भुतः शुचिः पावकः उच्यते) अद्भुत शुद्ध तथा पवित्र करनेवाला कहा जाता है ॥ १९ ॥

[३५७] (यत्र) जिसमें (विचेतसः) ज्ञानी जन (तत् मनः विदधुः) उस मनको लगाते हैं, (रुद्रस्य तत् इत् यह्वं) रुद्रका वह ही महान् बल (प्रत्नेषु धामसु) प्राचीन स्थानोंमें (चेतति) प्रसिद्ध होता है ॥ २० ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू हमारे पास आ और सोमपान करके हमारे यज्ञको विस्तृत कर ॥ १४ ॥

हे इन्द्र ! दूरसे, पाससे अथवा अन्तरिक्षसे अर्थात् सब ओरसे हमारा संरक्षण करो ॥ १५ ॥

यज्ञ करनेवाली प्रजायें इन्द्रमें रमती हैं । यज्ञ करनेवाले इन्द्रमें प्रेम रखते हैं और यज्ञसे इन्द्रको बढाते हैं ॥ १६ ॥

अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी उत्तम रक्षणके साधनोंके साथ रहनेवाले इन्द्रका उत्तम वर्णन करते हैं । जैसे वृक्षकी शाखायें वृक्षके आश्रयसे रहती हैं, उसी तरह सभी लोक इसी इन्द्रके आश्रयसे रहते हैं ॥ १७ ॥

यज्ञोंमें इस इन्द्रकी स्तुति देवोंने की थी, उसी इन्द्रको हमारी स्तुतियां भी बढायें ॥ १८ ॥

इन्द्रके नियमके अनुसार चलनेवाला तथा ऋतुके अनुसार आचरण करनेवाला मनुष्य अद्भुत, शुद्ध और पवित्र होता है ॥ १९ ॥

ज्ञानी जहां मन लगाते हैं, रुद्रका वह ही महान् बल लोकोंमें प्रसिद्ध हो रहा है ॥ २० ॥

३५८ यदि मे सख्यमावर इमस्य पाह्यन्धसः । येन विश्वा अति द्विषो अतारिम ॥२१॥
३५९ कदा त इन्द्र गिर्वणः स्तोता भवाति शंतमः । कदा नो गव्ये अश्व्ये वसौ दधः ॥२२॥
३६० उत ते सुष्टुता हरी वृषणा वहतो रथम् । अजुर्यस्य मदिन्तमं यमीमहे ॥२३॥
३६१ तमीमहे पुरुष्टुतं यह्वं प्रत्नाभिरूतिभिः । नि बर्हिषि प्रिये सदद्ध द्विता ॥२४॥
३६२ वर्धस्वा सु पुरुष्टुत ऋषिष्टुताभिरूतिभिः । धुक्षस्व पिप्युषीमिषमवा च नः ॥२५॥
३६३ इन्द्र त्वमवितेदसी—त्था स्तुवतो अद्रिवः । ऋतादियर्मि ते धियं मनोयुजम् २६॥

अर्थ— [३५८] हे इन्द्र ! (यदि) यदि तुम (मे सख्यं आवर) मेरी मित्रता स्वीकारते हो तो (इमस्य अन्धसः पाहि) इस सोमको पिओ (येन) जिससे हम (विश्वा द्विषः) सम्पूर्ण शत्रुओंको (अति अतारिम) पराजित कर सके ॥ २१ ॥

१ विश्वा द्विषः अति अतारिम— हम सम्पूर्ण शत्रुओंको जीते ।

[३५९] हे (गिर्वणः इन्द्र) प्रशंसनीय इन्द्र ! (ते स्तोता कदा शंतमः भवाति) तेरा स्तोता कब अत्यन्त सुखी होगा ? तथा (नः) हमें (गव्ये अश्व्ये वसौ) गायों, घोडों और ऐश्वर्यमें (कदा दधः) कब रखेगा ॥ २२ ॥

१ नः गव्ये अश्व्ये वसौ कदा दधः ?— हमें गौवे, घोडे और धन कब देगा ? इनकी प्राप्तिसे स्तोता सुखी होगा ।

[३६०] (उत) और (मदिन्तमं यं ईमहे) अधिक आनंद युक्त ऐसे जिस इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं, उस (अजुर्यस्य ते) जरारहित तुम इन्द्रको (रथं) रथको (सु-स्तुता वृषणा हरी) अच्छी प्रकार प्रशंसित तथा बलवान् घोडे (वहत) ले जावें ॥ २३ ॥

१ अ-जुर्य— बुढापा रहित । यह इन्द्र सदा तरुण रहता है ।

[३६१] (पुरु-स्तुतं यह्वं तं) बहुत प्रशंसित उस महान् इन्द्रकी (प्रत्नाभिः ऊतिभिः) प्राचीन संरक्षणके साधनोंके साथ (ईमहे) हम उपासना करना चाहते है । वह हमारे (प्रिये बर्हिषि) प्रिय यज्ञमें (द्विता अध नि सदद्) दो बार आकर बैठे ॥ २४ ॥

[३६२] हे (सु-पुरु-स्तुत) अत्यधिक प्रशंसित इन्द्र ! (ऋषिस्तुताभिः ऊतिभिः) ऋषियों द्वारा प्रशंसित संरक्षणके साधनोंसे हमें (वर्धस्व) बढाओ (च) और (पिप्युषीं इषं) पोषक अन्नको (नः अवधुक्षस्व) हमें दो ॥ २५ ॥

१ ऊतिभिः वर्धस्व— संरक्षक साधनोंसे हमें बढाओ !

२ पिप्युर्षी इषं नः अवधुक्ष— पुष्ट करनेवाला अन्न हमें दो ।

[३६३] हे (अद्रि-वः इन्द्र) वज्रको हाथमें धारण करनेवाले इन्द्र ! (त्वं) तुम (इत्था स्तुवतः) इस प्रकार स्तुति करनेवाले यजमानके (अविता इत् असि) संरक्षण करनेवाले हो, अतः मैं भी (ते मनोयुजं धियं) तुम्हारे मनको प्रसन्न करनेवाला स्तुति (इयर्मि) करता हूँ ॥ २६ ॥

त्वं अविता असि— तू रक्षण करनेवाला है ।

भावार्थ— इन्द्रसे मैत्री करने वाला सब शत्रुओंका नाश करता है ॥ २१ ॥

हे इन्द्र ! तू अपने स्तोताको गाय, घोडे, आदि पशु प्रदान करके उसे शीघ्र सुखी कर ॥ २२ ॥

इन्द्र सदा तरुण रहता है वह कभी वृद्ध नहीं होता । ऐसे इन्द्रको सभी उत्साहित करते हैं ॥ २३ ॥

बहुतोंके द्वारा प्रशंसित उस इन्द्रकी हम स्तुति करना चाहते हैं, वह आकर हमारे पास बैठे ॥ २४ ॥

हे इन्द्र ! अपने संरक्षणके साधनोंसे हमें बढाओ और पोषण अन्न हमें दो । अन्न वही है, जो पोषण करता है ॥ २५ ॥

यह इन्द्र देव उसकी स्तुति करनेवाले यज्ञ कर्ताओंका संरक्षण करनेवाला है, उसके संरक्षणको प्राप्त करनेकी इच्छासे मैं भी उसकी स्तुति करता हूँ ॥ २६ ॥

३६४ इह त्या सधमाद्या युजानः सोमपीतये । हरी इन्द्र प्रतद्वसू अभि स्वर ॥२७॥
३६५ अभि स्वरन्तु ये तव रुद्रासः सक्षत श्रियम् । उतो मरुत्वतीर्विशो अभि प्रयः ॥२८॥
३६६ इमा अस्य प्रतूर्तयः पदं जुषन्त यद् दिवि । नाभा यज्ञस्य सं दधुर्यथा विदे ॥२९॥
३६७ अयं दीर्घाय चक्षसे प्राचि प्रयत्यध्वरे । मिमीते यज्ञमानुषग्विचक्ष्य ॥३०॥
३६८ वृषायमिन्द्र ते रथ उतो ते वृषणा हरी । वृषा त्वं शतक्रतो वृषा हवः ॥३१॥
३६९ वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः । वृषा यज्ञो यमिन्वसि वृषा हवः ॥३२॥

अर्थ— [३६४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्या सधमाद्या प्रतद्वसू) उन साथ-साथ आनन्दित होनेवाले तथा विशेष धनयुक्तवाले (हरी) घोडोंको [अपने रथमें] (युजानः) जोडकर (सोमपीतये) सोमपानके लिए (इह अभि स्वर) यज्ञकी ओर आओ ॥ २७ ॥

[३६५] हे इन्द्र ! (ये तव रुद्रासः) जो तुम्हारे रुद्रवीर हैं, वे (अभि स्वरन्तु) हमारी ओर आवें और (श्रियं सक्षत) शोभाको प्राप्त हों । (उत) और (मरुत्वतीः विशः) मरुतोंसे युक्त प्रजायें (प्रयः अभि) यज्ञकी ओर आवें ॥ २८ ॥

[३६६] (अस्य) इस इन्द्रकी (इमाः प्रतूर्तयः) ये शत्रुका पराभव करनेवाली प्रजायें (दिवि यत् पदं) द्युलोकमें जो स्थान है, उसको (जुषन्त) प्राप्त करती हैं और (यथा विदे) जिससे धन प्राप्त हो, उसके लिए (यज्ञस्य नाभा संदधुः) यज्ञके केन्द्रमें संघटित होकर रहती हैं ॥ २९ ॥

[३६७] (अयं) यह विद्वान् (प्राचि अध्वरे प्रयति) पूर्व दिशामें यज्ञके प्रारम्भ होने पर (दीर्घाय चक्षसे) दूर दृष्टिके लिए (यज्ञं आनुषक् विचक्ष्य) यज्ञको निरन्तर देख कर (मिमीते) इन्द्रका गुणवर्णन करता है ॥ ३० ॥

[३६८] हे (इन्द्र) इन्द्र (अयं ते रथः) यह तुम्हारा रथ (वृषा) बलवान् है, (उत) और (ते हरी वृषणा) तुम्हारे घोडे भी बलवान हैं, हे (शतक्रतो) अनेकों उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! (त्वं वृषा) तुम स्वयं भी बलवान् हो तथा (हवः वृषा) तुम्हारी प्रार्थना कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है ॥ ३१ ॥

हवः वृषा— इन्द्रकी प्रार्थना बल बढानेवाली है ।

[३६९] (ग्रावा वृषा) [सोम पीसनेके] पत्थर मजबूत हैं, (अयं सुतः सोमः वृषा) यह निकाला हुआ सोमरस बलवान् है, तथा (मदः वृषा) [सोमपानसे उत्पन्न] आनन्द भी उत्तम है, (यं यज्ञं इन्वसि) जिस यज्ञमें तुम जाते हो वह भी (वृषा) कामनाओंको पूर्णकरनेवाला है, (हवः वृषा) तुम्हारी प्रार्थना भी कामनाको पूर्ण करनेवाली है ॥ ३२ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! एक साथ रहकर आनन्दित होनेवाले तथा पर तरहसे तुम्हारी सहायता करनेवाले घोडोंसे हमारे पास आओ । घोडों ऐसे हों कि जो सदा आनन्दमें रहें और अपने स्वामीकी सहायता करनेवाले हों ॥ २७ ॥

हे इन्द्र ! जो तुम्हारे वीर सहायक हैं, वे शत्रुओंको रुलानेवाले हैं और शोभासे युक्त हैं । प्रजायें भी इन मरुतोंकी सहायता प्राप्त करें । राजाके भी जो सहायक हों, वे वीर और शत्रुओंको रुलानेवाले हों तथा हमेशा सजे धजे रहें, वे सभी प्रजाकी सहायता करनेवाले हों ॥ २८ ॥

शत्रुओंको पराजित करनेवाले वीर सैनिक द्युलोकको प्राप्त करते हैं, अर्थात् उनका यश द्युलोक तक जा पहुंचता है । इन वीरोंसे रक्षित होकर प्रजाएं यज्ञके शुभ कार्यको संघटित होकर करती हैं ॥ २९ ॥

प्राची दिशामें सूर्यके उदय होते ही विद्वान् जन यज्ञका प्रारंभ करते हैं, उन यज्ञोंमें दूर दृष्टीवाले ज्ञानी इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ ३० ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारा रथ और घोडे सभी बलवान् हैं, तथा तुम स्वयं भी बलवान् हो, अतः तुम्हारी स्तुति स्तोताके कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है । वीरोंके सभी साधन बलवान् हों और वे स्वयं भी बलवान् हों ॥ ३१ ॥

इन्द्रके लिए सोम पीसनेके साधन, सोमरस, उसे पीनेसे उत्पन्न होनेवाला आनंद, यज्ञ और यज्ञमें की जानेवाली स्तुती सभी बलदायक हैं ॥ ३२ ॥

३७० वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः । वावन्थ हि प्रतिष्टुतिं वृषा हवः ॥३३॥

[१४]

(ऋषिः- गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

३७१ यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥१॥

३७२ शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे । यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥

३७३ धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते । गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥

३७४ न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः । यद् दित्ससि स्तुतो मघम् ॥ ४ ॥

अर्थ— [३७०] हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! (वृषा) बलवाला मैं (वृषणं) बलवाले (चित्राभिः ऊतिभिः) अनेक प्रकारके संरक्षण साधनोंके साथ रहनेवाले (त्वा) तुमको (हुवे) बुलाता हूँ । (हि) क्योंकि (प्रति स्तुतिं) तुम्हारे प्रति की गई स्तुतिको तुम (वावन्थ) सुनते हो (हवः वृषा) तुम्हारी प्रार्थना कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है ॥ ३३ ॥

[१४]

[३७१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यथा त्वं) जैसे तुम (वस्वः एक इत्) धनके अकेले ही स्वामी हो उसी प्रकार (यत् अहं ईशीय) जब मैं स्वामी हो जाऊं तो (मे स्तोता) मेरा स्तोता (गो सखा स्यात्) गायोंसे युक्त हो जावे ॥ १ ॥

[३७२] हे (शचीपते) इन्द्र ! शक्तियोंके स्वामी (यत् अहं गोपतिः स्यां) यदि मैं गायोंका स्वामी हो जाऊं, तो मैं (अस्मै मनीषिणे) इस बुद्धिमान्के लिए (दित्सेयं) धन देनेकी इच्छा करूं और (शिक्षेयं) उसकी सहायता करूं ॥ २ ॥

१ शिक्ष्- समर्थ होनेकी इच्छा, चेष्टा करना सीखना, सहायता करना, सिखाना ।

[३७३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते पिप्युषी सूनृता धेनुः) तेरी बढनेवाली वाणी रूपी गाय (सुन्वते यजमानाय) सोम याग करनेवाले यजमानके लिए (गां अश्वं दुहे) गाय, घोडे आदि [ऐश्वर्यों] को देती है ॥ ३ ॥

[३७४] (यत् स्तुतः) जब प्रशंसित हो कर (मघं दित्ससि) ऐश्वर्य देनेकी इच्छा करते हो, तब हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते राधसः) तुम्हारे धनको (न देवः वर्ता अस्ति) न देव रोक सकता है, (न मर्त्यः) न मनुष्य ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! चूं कि तुम अपने भक्तोंकी प्रार्थनाओंको ध्यानपूर्वक सुनते हो, और उनकी हर कामनाओंको पूर्ण करते हो, अतः मैं बलशाली होते हुए भी तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ ॥ ३३ ॥

यह इन्द्र सब धनोंका अकेला ही स्वामी है, अतः उसकी उपासना करके मैं भी धनका अकेला ही स्वामी बन जाऊं, तब मेरी स्तुति करनेवाला भी धनसम्पन्न हो जाए । धन किसी एक ही के पास न रहे अपितु सबके पास बहता रहे ॥ १ ॥

यदि मैं गायोंका स्वामी बनूं तो इस विद्वान्को धन दे दूं । मुझे धन मिलेगा तो मैं उसका दान सत्पुरुषोंको करूंगा ॥ २ ॥

इन्द्रकी स्तुति करनेसे सभी तरहके पशु आदि धन मिलते हैं । स्तुति करनेसे वाणी शुद्ध होती है और वाणीके शुद्ध होनेसे हरतरहका ऐश्वर्य मिलता है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! जब प्रशंसित होकर तुम यजमानको धन देना चाहते हो, तब तुम्हारे धन दानको न देव रोक सकता है, न मनुष्य, अर्थात् कोई भी नहीं रोक सकता ॥ ४ ॥

×

३७५ यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥ ५ ॥
३७६ वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः । ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥
३७७ व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥ ७ ॥
३७८ उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ८ ॥
३७९ इन्द्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि च । स्थिराणि न पराणुदे ॥ ९ ॥

अर्थ— [३७५] इन्द्रने (दिवि ओपशं चक्राणः) द्युलोकमें विश्राम स्थान बनाकर (यत्) जब (भूमिं व्यवर्तयत्) भूमिको फैलाया, तब (यज्ञः इन्द्रं अवर्धयत्) यज्ञने इन्द्रके यशको बढाया ॥ ५ ॥

१ यज्ञः इन्द्रं अवर्धयत्- यज्ञने इन्द्रको बढाया। " इन्द्र इदं हविरजुषतावीवृधत महो ज्यायोऽकृत" (तै. ब्रा. ३।५।१०।३)

२ ओपश- विश्राम स्थान, गद्दी, तकिया, सहारा, सरमा।

[३७६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वावृधानस्य विश्वा धनानि जिग्युषः) वृद्धिको प्राप्त होनेवाले तथा सम्पूर्ण [शत्रुओंके] धनोंको जीतनेवाले (ते) तुम्हारे (ऊतिं) संरक्षणको (वयं वृणीमहे) हम वरना चाहते हैं ॥ ६ ॥

ते ऊतिं वयं वृणीमहे- तेरे संरक्षणको हम वरना चाहते हैं।

[३७७] (इन्द्रः) इन्द्रने (सोमस्य मदे) सोमके उत्साहमें (यत् वलं अभिनद्) जब बलको मारा, तब (रोचना अन्तरिक्षं) प्रकाशमान् अन्तरिक्षको (वि अतिरत्) विस्तृत किया ॥ ७ ॥

[३७८] इन्द्रने (गुहा सतीः गाः) गुफामें रखी हुई गायोंको (आविष्कृण्वन्) प्रकाशित करते हुए (अंगिरोभ्यः) अंगिरा ऋषियोंके लिए उन्हें (उद् आजद्) बाहर निकाला, और (वलं अर्वाञ्चं नुनुदे) बलको नीचे मुखवाला किया ॥ ८ ॥

१ गुहा सतीः गाः अंगिरोभ्यः उद् आजद्- इन्द्रने गुहामें छिपाई हुई गायोंको अंगिरा ऋषियोंके लिए बाहर निकाला।

[३७९] (इन्द्रेण) इन्द्रने (दिवः) द्युलोकके सभी (रोचना) प्रकाशमान नक्षत्रोंको (दृळ्हानि दृंहितानि च) दृढ किया और बढाया, अब (स्थिराणि) स्थिर नक्षत्रोंको कोई (न पराणुदे) गिरा नहीं सकता ॥ ९ ॥

१ इन्द्रेण दिवः रोचना दृळ्हानि दृंहितानि च- इन्द्रने द्युलोकके प्रकाशमान नक्षत्रोंको दृढ किया और बढाया।

दृंहितानि- बढाया ' दृह दृंहि बृहि बृंहि वृद्धौ '

भावार्थ— सर्वशक्तिमान् प्रभुने जब द्युलोक और पृथ्वीलोकका विस्तार किया, तब पृथ्वी पर यज्ञ होने लगे और उन यज्ञोंमें प्रभुकी स्तुति गाई जाने लगी ॥ ५ ॥

इन्द्रके संरक्षण सबकी सम्पन्नता बढानेवाले, उसे भौतिक ऐश्वर्यसे युक्त करनेवाले हैं। ऐसे संरक्षणकी सभी कामना करें ॥ ६ ॥

इन्द्रने सोमके उत्साहमें बलको मारा। प्रकाशमान् अन्तरिक्षको उसने फैलाया ॥ ७ ॥

इन्द्रने गुहामें छिपाकर रखी हुई गायोंको बाहर निकाला तथा बलको नीचे मुहवाला किया। विद्युत्ने काले मेघ रूपी गुहाओंमें छिपी हुई प्रकाश किरणोंको बाहर निकाला और मेघको नीचेकी तरफ मुंहवाला करके उसे निर्वीर्य कर दिया ॥ ८ ॥

प्रभुकी शक्ति इतनी बडी है कि उसने बहुत पहले द्युलोक और उसमें नक्षत्रोंको इस प्रकार दृढतासे स्थिर कर दिया कि आजतक भी कोई उन्हें गिरा नहीं सका है ॥ ९ ॥

३८० अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ॥ १० ॥
३८१ त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः । स्तोतृणामुत भद्रकृत् ॥ ११ ॥
३८२ इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः । उप यज्ञं सुराधसम् ॥ १२ ॥
३८३ अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजयः स्पृधः ॥ १३ ॥
३८४ मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः । अव दस्यूँरधूनुथाः ॥ १४ ॥
३८५ असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः । सोमपा उत्तरो भवन् ॥ १५ ॥

अर्थ— [३८०] हे (इन्द्र) इन्द्र (अपां ऊर्मिः मदन् इव) जैसे समुद्रकी लहर उत्तेजित होकर जाती है, उसी प्रकार (स्तोमः) तेरा स्तोत्रभी तेरे पास (अजिरायते) शीघ्र जाता है और (ते मदाः अराजिषुः) तेरे उत्साह उत्पन्न होते हैं ॥ १० ॥

[३८१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं हि) तुम ही (स्तोमवर्धनः) स्तोत्रको बढानेवाले (उक्थवर्धनः) तथा स्तुतिको बढानेवाले (उत) और (स्तोतृणा भद्रकृत्) स्तोताओंका कल्याण करनेवाले (असि) हो ॥ ११ ॥

[३८२] (केशिना हरी) बालोंवाले घोडे (सु-राधसं इन्द्रं इत्) उत्तम धनवाले इन्द्रको (सोमपेयाय) सोमपानके लिए (यज्ञं उपवक्षतः) यज्ञके पास ले आवें ॥ १२ ॥

[३८३] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (यत्) जब (विश्वा स्पृधः) सम्पूर्ण शत्रुसेनाको तुमने (अजयः) जीत लिया, तब (अपां फेनेन) जलके झागसे (नमुचेः शिरः उत् अवर्तयः) नमुचिका सिर काट दिया ॥ १३ ॥

[३८४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तुमने (मायाभिः उत् सिसृप्सतः) कुशलतासे सर्वत्र फैलनेकी इच्छा करनेवाले और (द्यां आरुरुक्षतः) द्युलोक पर चढनेकी इच्छावाले (दस्यून्) राक्षसोंको (अव अधूनुथाः) अच्छी तरह कंपाया ॥ १४ ॥

अधूनुथाः– कंपाया " धूञ् कंपने "
दस्यून् अव अधूनुथाः– दुष्टोंका नाश किया ।

[३८५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सोम-पाः उत्-तरः भवन्) सोम पीनेवाले तथा उत्तम होते हुए तुमने (अ-सुन्वां वि-षूचीं संसदं) सोमयाग न करनेवालोंके परस्पर विरोध करनेवालोंके संघटनको (वि अनाशयः) नष्ट किया ॥ १५ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार समुद्रकी लहरें सदा उत्तेजित होकर उछलती रहती हैं, उसी तरह वीरोंके हृदयोंमें उत्साह सदा उछलता रहे ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुम स्तोत्रको बढानेवाले और स्तोताओंका कल्याण करनेवाले हो । वीर राजा सदा अपने अनुयायियोंका कल्याण करे ॥ ११ ॥

उत्तम और सुन्दर रूपवाले घोडे इस इन्द्रको सोमपीनेके लिए यज्ञके पास ले जाते हैं ॥ १२ ॥

इन्द्रने समुद्रके झागसे नमुचिका सिर काट डाला । नमुचिका अर्थ है जल्दी न जानेवाला ऐसा रोग । रोग समुद्री झागके अनुपानसे नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥

इन्द्रने अपनी मायाके बलसे द्युलोक पर चढनेकी इच्छा करनेवाले राक्षसोंको अच्छी तरह नष्ट किया । मेघ असुर हैं, जो नानारूप धारण करके सारे आकाशमें छा जानेकी कोशिश करते हैं । बिजली इन मेघोंको कंपा कर नीचे गिरा देती और उन्हें नष्ट कर देती है ॥ १४ ॥

हे इन्द्र ! तुमने सोमयाग न करनेवालोंके और परस्पर विरोधसे भिन्न-भिन्न मार्गोंसे जानेवालोंके संघटनको नष्ट किया । यज्ञ न करनेके समाजका संगठन नहीं होता और संगठन अथवा अनुशासके न होनेसे समाज नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥

[१५]

(ऋषिः- गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । देवता- इन्द्रः । छन्दः- उष्णिक् ।)

३८६ तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतं । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ १ ॥
३८७ यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी । गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ २ ॥
३८८ स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे । इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ ३ ॥
३८९ तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् । उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ ४ ॥
३९० येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ । मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ ५ ॥

---

[१५]

अर्थ— [३८६] हे स्तोताओ ! (पुरु-हूतं पुरु-स्तुतं तं उ) बहुतोंके द्वारा बुलाये गए तथा बहुतों द्वारा प्रशंसित उस इन्द्रकेही [गुणोंको] (अभि प्र गायत) गाओ (तविषं इन्द्रं) महान् इन्द्रकी (गीर्भिः आ विवासत) स्तुतियोंसे सेवा करो ॥ १ ॥

[३८७] (द्विबर्हसः यस्य) दोनों स्थानोंमें बढनेवाले इन्द्रके (बृहत् सहः) बडे बलको (रोदसी दाधार) द्यावा पृथिवी धारण करते हैं, वह इन्द्र (वृषत्वना) अपने बलसे (अज्रान् गिरीन्) शीघ्र चलनेवाले मेघोंको तथा (स्वः अपः) बहनेवाले जलोंको [धारण करता है] ॥ २ ॥

[३८८] हे (पुरु-स्तुत इन्द्र) बहुतोंसे प्रशंसित इन्द्र ! (सः) वह तुम (राजसि) प्रकाशित होते हो, और (जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे) जीतने योग्य धन और यशको प्राप्त करनेके लिए (एकः वृत्राणि जिघ्नसे) अकेलेही वृत्रोंको मारते हो ॥ ३ ॥

[३८९] हे (अद्रि-वः) पर्वतोंके किलोंमें रहनेवाले इन्द्र ! हम (ते तं) तेरे उस (वृषणं, पृत्सु सासहिम्) बलवान्, युद्धोंमें शत्रुओंके जीतनेवाले (लोक-कृत्नुं) लोकोंको उत्पन्न करनेवाले और (हरि-श्रियं) घोडोंके आश्रयसे रहनेवाले (मदं) उत्साहका (गृणीमसि) वर्णन करते हैं । ॥ ४ ॥

१ अद्रि-वः ते तं मदं गृणीमसि- हे पर्वतोंके किलोंमें रहनेवाले इन्द्र ! हम तेरे उस उत्साहका वर्णन करते हैं ।

२ अद्रि-वः- वज्रधारी, किलेमें रहनेवाला

३ पृत्सु सासहिः- युद्धोंमें विजयी

[३९०] हे इन्द्र ! (येन) जिस सामर्थ्यसे तुमने (आयवे मनवे च) आयु और मनुके लिए (ज्योतींषि विवेदिथ) सूर्यादिकोंको प्रकाशित किया, (मन्दानः) उस सामर्थ्यसे आनंदित होकर (अस्य बर्हिषः) इस आसनपर (वि राजसि) विराजमान होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! बहुतों द्वारा अपनी रक्षाके लिए बुलाये जानेवाले तथा अत्यंत प्रशंसित इन्द्रकी स्तुति तुम गाओ, स्तुतियोंसे तुम उसकी सेवा करो ॥ १ ॥

वह इन्द्र अपने सामर्थ्यसे शीघ्र चलनेवाले मेघोंको और बहनेवाले जलोंको धारण करता है । ऐसे इन्द्रके बलको द्युलोक और पृथ्वीलोक धारण करते हैं ॥ २ ॥

वह इन्द्र जीतने योग्य धन और यशको प्राप्त करनेके लिए अकेलेही वृत्रोंको मारता है, इसीलिए वह तेजस्वी होता है । शत्रुओंको मारकरही तेज प्राप्त किया जाता है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! पर्वतोंके किलोंमें रहनेवाले, बलवान्, युद्धोंमें शत्रुओंको जीतनेवाले और घोडोंकी सहायतासे शत्रुओंपर आक्रमण करनेवाले इन्द्रके उत्साहका हम वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! जिस बलसे तुमने सूर्यादिको चमकाया, उस बलके साथ तुम इस आसन पर विराजमान होओ ॥ ५ ॥

१९१ तद॒द्या चि॑त्त उ॒क्थिनोऽनु॑ ष्टुवन्ति पू॒र्वथा॑ । वृष॑पत्नीर॒पो ज॑या दि॒वेदि॑वे ॥ ६ ॥
१९२ तव॒ त्यदि॑न्द्रि॒यं बृ॒हत्तव॒ शुष्म॑मु॒त क्रतु॑म् । वज्रं॑ शिशाति धि॒षणा॒ वरे॑ण्यम् ॥ ७ ॥
१९३ तव॒ द्यौरि॑न्द्र॒ पौंस्यं॑ पृथि॒वी व॑र्धति॒ श्रवः॑ । त्वामापः॒ पर्व॑तासश्च हिन्विरे ॥ ८ ॥
१९४ त्वां विष्णु॑र्बृ॒हन्क्षयो॑ मि॒त्रो गृ॑णाति॒ वरु॑णः । त्वां शर्धो॑ मद॒त्यनु॒ मारु॑तम् ॥ ९ ॥
१९५ त्वं वृषा॒ जना॑नां॒ मंहि॑ष्ठ इन्द्र जज्ञिषे । स॒त्रा विश्वा॑ स्वप॒त्यानि॑ दधिषे ॥ १० ॥
१९६ स॒त्रा त्वं पु॑रुष्टुतँ॒ एको॑ वृ॒त्राणि॑ तोशसे । नान्य इन्द्रा॒त्कर॑णं॒ भूय॑ इन्वति ॥ ११ ॥

अर्थ— [१९१] हे इन्द्र ! (ते तत्) तेरे उस बलकी (पूर्वथा अद्य चित्) पहलेके समान आज भी (उक्थिनः अनुष्टुवन्ति) स्तोतागण प्रशंसा करते हैं । तुम (वृष पत्नीः अपः) बरसनेवाले मेघोंकी पत्निरूप जलोंको (दिवे दिवे) प्रतिदिन (जय) जीतो ॥ ६ ॥

[१९२] हे इन्द्र ! (तव त्यद् बृहत् इन्द्रियं) उस तेरे महान् पराक्रम, (शुष्मं) बल (उत) और (क्रतुं) कर्म तथा (वरेण्यं वज्रं) स्वीकारने योग्य वज्रका (धिषणा शिशाति) स्तुति गुण वर्णन करती है ॥ ७ ॥

[१९३] हे इन्द्र ! (द्यौः) द्युलोक (तव पौंस्यं) तुम्हारे बलको तथा (पृथिवी) पृथिवी (श्रवः) तुम्हारे यशको (वर्धति) बढाती है । (त्वां) तुम्हें (आपः पर्वतासः च) जल तथा मेघ (हिन्विरे) प्रसन्न करते हैं ॥ ८ ॥

द्यौः तव पौंस्यं श्रवः वर्धति— द्युलोक तेरे पौरुषका और यशका वर्णन करता है ।

[१९४] हे इन्द्र ! (बृहन् क्षयः) महान् निवासका हेतु (विष्णुः मित्रः, वरुणः) विष्णु, मित्र और वरुण (त्वां गृणाति) तेरी स्तुति करते हैं (मारुतं शर्धः) मरुतोंका बल भी (अनु मदति) तुझे उत्साहित करता है ॥ ९ ॥

[१९५] हे इन्द्र ! (त्वं वृषा) तुम बलवान् हो, और (जनानां) जनोंके बीचमें (मंहिष्ठः जज्ञिषे) सबसे महान् समझे जाते हो, तुम (सु-अपत्यानि सत्रा) सुन्दर पुत्रादिके सहित (विश्वा) सम्पूर्ण धनोंको (दधिषे) धारण करते हो ॥ १० ॥

[१९६] हे (पुरु-स्तुत) बहुतोंसे प्रशंसित इन्द्र ! (त्वं) तुम (एकः) अकेलेही (वृत्राणि सत्रा) शत्रुओंको एक साथ (तोशसे) मारते हो, (इन्द्रात् अन्यः) इन्द्रसे भिन्न कोई दूसरा ऐसा (करणं) कर्म (भूयः न इन्वति) वारंवार नहीं कर सकता ॥ ११ ॥

सत्रा— एक साथ, महान् ' महन्नामैतत् इति सायणः '

भावार्थ— हे इन्द्र ! तेरे उस बलकी पहलेके समान आज भी स्तोतागण प्रशंसा करते हैं ! अतः तुम बरसनेवाले मेघोंके जलोंको प्रतिदिन बरसाओ ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तेरा पराक्रम, बल, कर्मशक्ति और श्रेष्ठ वज्र इनकी हमारी बुद्धि प्रशंसा करती है ॥ ७ ॥

द्युलोक इस इन्द्र बलका तथा पृथिवी इन्द्रके यशका वर्णन करके उसका यश बढाती है, तब जल तथा मेघ भी उस इन्द्रको प्रसन्न करते हैं ॥ ८ ॥

जो सब प्राणियोंके निवासको महान बनानेवाले हैं, ऐसे विष्णु, मित्र और वरुण भी इस इन्द्रकी स्तुति करते हैं और मरुतोंका बल भी इसइस इन्द्रको उत्साहित करता है ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! तुम जनोंके बीचमें सबसे महान् हो । उत्तम पुत्रोंके साथ सब धनोंको धारण करते हो । सभी प्राणी इन्द्रके पुत्र हैं, पर उत्तम कर्म करनेवाले पर इन्द्रका स्नेह अधिक रहता है ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुम अकेलेही वृत्रोंको एक साथ मार देते हो । ऐसे कार्यको इन्द्रसे भिन्न दूसरा कोई नहीं कर सकता ॥ ११ ॥

३९७ यदिन्द्र मन्मशस्त्वा नाना हवन्त ऊतये । अस्माकेभिर्नृभिरत्रा स्वर्जय ॥ १२ ॥
३९८ अरं क्षयाय नो महे विश्वा रूपाण्याविशन् । इन्द्रं जैत्राय हर्षया शचीपतिम् ॥ १३ ॥

[१६]

(ऋषिः- इरिम्बिठिः काण्वः । देवता:- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

३९९ प्र सम्राजं चर्षणीना- मिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १ ॥
४०० यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या । अपामवो न समुद्रे ॥ २ ॥
४०१ तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् । महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ३ ॥
४०२ यस्यानूना गभीरा मदा उरवस्तरुत्राः । हर्षुमन्तः शूरसातौ ॥ ४ ॥

अर्थ— [३९७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जिस समय (ऊतये) संरक्षणके लिए (त्वा) तुम्हें लोग (मन्मशः) स्तोत्रसे (नाना हवन्ते) अनेक प्रकारसे बुलाते हैं, (अत्र) उसी समय (अस्माकेभिः नृभिः) हमारे नेताओंके साथ रहकर (स्वः जय) धनोंको जीतो ॥ १२ ॥

[३९८] हे स्तोता ! (नः महे क्षयाय) हमारे बडे निवासके लिए तथा (जैत्राय) जयके लिए (विश्वा रूपाणि आ विशन्) सम्पूर्ण रूपोंमें रहकर तुम (अरं शचीपतिं इन्द्रं हर्षय) सामर्थ्यवान्, शक्तियोंके स्वामी इन्द्रको प्रसन्न करो ॥ १३ ॥

[१६]

[३९९] हे स्तोता ! (चर्षणीनां सम्राजं) मनुष्योंके सम्राट् (गीर्भिः नव्यं) स्तुतियोंसे प्रशंसनीय (नरं) नेता (नृ-षाहं) शत्रुको पराजित करनेवाले (मंहिष्ठं) सबसे महान् (इन्द्रं प्र स्तोत) इन्द्रकी प्रशंसा करो ॥ १ ॥

[४००] (यस्मिन्) जिस इन्द्रमें (विश्वानि उक्थानि श्रवस्या च) सम्पूर्ण स्तोत्र और यश (समुद्रे अपां अवः न) समुद्रमें जल तरङ्गके समान (रण्यन्ति) शोभित होते हैं ॥ २ ॥

[४०१] मैं (ज्येष्ठराजं) महान् राजा, (भरे महः कृत्नुं) संग्राममें महान् कर्म करनेवाले (वाजिनं) बलवान् (तं) उस इन्द्रकी (सनिभ्यः) धन प्राप्तिके लिए (सु-स्तुत्या) उत्तम वाणीसे (आ विवासे) प्रशंसा करता हूं ॥ ३ ॥

[४०२] (यस्य मदाः) जिसके पराक्रम (अ-नूनाः) महान्, (गभीराः) गम्भीर, (उरवः) विस्तृत (तरुत्राः) त्वरासे शत्रुको मारनेवाले (शूरसातौ हर्षुमन्तः) युद्धमें अधिक उत्तेजित होनेवाले हैं [ऐसे इन्द्रकी स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जिस समय तुझे लोग संरक्षणके लिए बुलाते हैं, उस समय तू उनके पास जा और शत्रुओंको जीतनेमें उनकी सहायता कर ॥ १२ ॥

सब रूपोंमें प्रविष्ट होकर सामर्थ्यवान् इन्द्रको प्रसन्न करो । सब रूपोंमें निरीक्षण करके सर्व व्यापक इन्द्रको वहां देखकर उसे प्रसन्न करो । महान् निवास तथा विजयके लिए इन्द्रको प्रसन्न करो ॥ १३ ॥

हे मनुष्यो ! मानवोंके सम्राट् नेता, शत्रुसेनाका पराभव करनेवाले बडे इन्द्रकी स्तुति करो ॥ १ ॥

जिस तरह समुद्रमें उठनेवाली लहरें समुद्रमेंसेही उठती हैं, और उसीमें लीन भी हो जाती हैं, उसी तरह सभी स्तोत्र उस इन्द्रमेंसे उठते हैं और उसीमें विलीन भी हो जाते हैं ॥ २ ॥

श्रेष्ठ राजा, युद्धमें महान् कर्म करनेवाले बलवान् उस वीरकी प्रशंसा करता हूं ॥ ३ ॥

इन्द्रका उत्साह कभी क्षीण नहीं होता, वह सदा गंभीर रहता है । उसी उत्साहसे प्रेरित होकर इन्द्र सदा शत्रुको मारता है ॥ ४ ॥

४०३ तमिद् धनेषु हितेष्वधिवाकाय हवन्ते । येषामिन्द्रस्ते जयन्ति ॥ ५ ॥
४०४ तमिच्च्यौत्नैरार्यन्ति तं कृतेभिश्चर्षणयः । एष इन्द्रो वरिवस्कृत् ॥ ६ ॥
४०५ इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषि-रिन्द्रः पुरू पुरुहूतः । महान् महीभिः शचीभिः ॥ ७ ॥
४०६ स स्तोम्यः स हव्यः सत्यः सत्वा तुविकूर्मिः । एकश्चित् सन्नभिभूतिः ॥ ८ ॥
४०७ तमर्केभिस्तं सामभि-स्तं गायत्रैश्चर्षणयः । इन्द्रं वर्धन्ति क्षितयः ॥ ९ ॥

अर्थ— [४०३] (धनेषु हितेषु) संग्रामोंके प्रारम्भ हो जाने पर (तं इत्) उसी इन्द्रकोही (अधिवाकाय) अपनी तरफसे लडनेके लिए लोग (हवन्ते) बुलाते हैं, क्योंकि (येषां इन्द्रः) जिनके पक्षमें इन्द्र होता है (ते जयन्ति) वे ही जीतते हैं ॥ ५ ॥

[४०४] (तं) उस इन्द्रको लोग (च्यौत्नैः इत्) बलके कार्योंसेही (आर्यन्ति) प्राप्त कर सकते हैं, और (चर्षणयः) मनुष्य (तं) उस इन्द्रको (कृतेभिः) कर्मोंसेही [पा सकते हैं] (एषः इन्द्रः वरिवः कृत्) यह इन्द्र धनका देनेवाला है ॥ ६ ॥

[४०५] (इन्द्रः ब्रह्मा) इन्द्र ज्ञानी है, (इन्द्रः ऋषिः) इन्द्र सर्व द्रष्टा है, (इन्द्रः पुरू पुरुहूतः) इन्द्र बहुतों द्वारा सहायार्थ बुलाया जाता है, तथा (महीभिः शचीभिः महान्) अपनी बडी बडी शक्तियोंसे वह महान् है ॥७॥

१ इन्द्रः ब्रह्मा— इन्द्र ज्ञानी है ।
२ इन्द्रः ऋषिः— इन्द्र द्रष्टा है ।
३ इन्द्रः पुरुहूतः— इन्द्र बहुतों द्वारा सहायार्थ बुलाया जाता है ।
४ महीभिः शचीभिः महान्— इन्द्र अपनी बडी शक्तियोंसे महान है ।

[४०६] (सः स्तोम्यः) वह इन्द्र स्तुतिके योग्य है, (सः हव्यः) वह बुलाने योग्य है, (सत्यः) अविनाशी (सत्वा) [अपने सामर्थ्यसे] बलवान् है, (तुवि-कूर्मिः) बहुत कर्म शीघ्र करनेवाला है, और (एकः चित् सन् अभिभूतिः) अकेला होते हुए भी शत्रुओंको हरानेवाला है ॥ ८ ॥

१ सत्वा— सत्ता, सत्य, सत्व गुण, प्राण, चैतन्यता, शक्ति, दृढता, उत्साह, आत्मानुशासन, शत्रुको दुःख पहुंचानेवाला ' शत्रूणां अवसादयिता इति सायणः '

[४०७] (चर्षणयः क्षितयः) ज्ञानी मनुष्य (अर्केभिः सामभिः गायत्रैः च) अर्चा, साम और गायत्री छंदमंत्रोंसे (तं तं तं इन्द्रं अभि वर्धन्ति) उस इन्द्रके यशको चारों ओर बढाते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— संग्रामके प्रारम्भ हो जाने पर उसी इन्द्रको लोग बुलाते हैं। जिनके पक्षमें इन्द्र होता है, वे जीतते हैं ॥५॥

इस इन्द्रकी प्राप्ति सदा उत्तम पराक्रम तथा उत्तम उत्साहसेही हो सकती है। इन्द्रको प्राप्त करनेके येही दो साधन हैं ॥ ६ ॥

इन्द्र ज्ञानी है, वह सर्वज्ञ और सब कुछ देखनेवाला है। इसीलिए वह सबके द्वारा बुलाया जाता है। वह अपनी शक्तियोंके कारणही महान् है। कोई भी मनुष्य अपनीही शक्तिके कारण महान् बन सकता है। दूसरोंकी शक्तिके आधार पर महान् बनना असंभव है ॥ ७ ॥

वह इन्द्र स्तुतिके योग्य है, इसीलिए वह बुलाने योग्य है। वह अविनाशी होते हुए भी अपनी शक्तिसेही बलवान् है। बलवान् होनेके लिए उसे दूसरेकी शक्तिकी आवश्यकता नहीं पडती। वह बहुत शीघ्र कर्म करनेवाला है, इसीलिए वह अकेला होते हुए भी अनेक शत्रुओंको हरानेवाला है ॥ ८ ॥

ज्ञानी मनुष्य अनेक छन्दोंसे स्तोत्रोंका गान करके इस इन्द्रका उत्साह बढाते हैं ॥ ९ ॥

४०८ प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु । सासह्वांसं युधामित्रान् ॥ १० ॥
४०९ स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः । इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥ ११ ॥
४१० स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च । अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥ १२ ॥

[१७]

(ऋषिः- इरिम्बिठिः काण्वः । देवता- इन्द्रः, १४ वास्तोष्पतिर्वा। छन्दः- गायत्री, प्रगाथः = (१४ बृहती, १५ सतोबृहती) ।)

४११ आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥

अर्थ— [४०८] (वस्यः अच्छ प्रणेतारं) धनका दान करानेवाले, (समत्सु ज्योतिः कर्तारं) युद्धोंमें प्रकाश करनेवाले (युधा अमित्रान् सासह्वांसं) युद्धसे शत्रुओंको जीतनेवाले [इन्द्रका मनुष्य यश बढाते हैं] ॥ १० ॥

१ समत्सु ज्योतिः कर्ता— युद्धोंमें प्रकाश करनेवाला,

२ युधा अमित्रान् सासह्वान् — युद्धसे शत्रुओंको पराजित करनेवाला इन्द्र है ।

[४०९] (सः नः पप्रिः) वह हमारी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है, (पुरु-हूतः इन्द्रः) ऐसा बहुतों द्वारा बुलायेजानेवाला वह इन्द्र (विश्वा द्विषः) सम्पूर्ण शत्रुओंसे हमें (नावा) नाव द्वारा (स्वस्ति) कल्याणपूर्वक (अति पारयाति) पार करा दे ॥ ११ ॥

१ इन्द्रः विश्वा द्विषः नावा स्वस्ति अति पारयाति— इन्द्र सब शत्रुओंसे हमें, नौका द्वारा जैसे पार करते हैं वैसे कल्याण पूर्वक पार कर दे ।

[४१०] हे (इन्द्र) इन्द्र (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (वाजेभिः दशस्य) बलोंसे, अन्नोंसे युक्त धन दे, (च) और (गातुय) जाने योग्य मार्ग दिखा । (च) तथा (नः) हमें (सुम्नं अच्छ नेषि) सुखके पास पहुंचा ॥ १२ ॥

१ वाजेभिः दशस्य— बलों और अन्नोंके साथ धन दे ।

२ गातुय— उत्तम मार्ग बता ।

३ सुम्नं अच्छनेषि— सुखके पास ले जा ।

[१७]

[४११] हे (इन्द्र) इन्द्र (आ याहि) आओ, और (ते हि सु-सुम) तुम्हारे लिए अच्छी प्रकार निकाले गए (इमं सोमं पिब) इस सोमको पिओ, (मम इदं बर्हि आसद) मेरे इस आसन पर बैठो ॥ १ ॥

भावार्थ— इन्द्र लोगोंके द्वारा धनका दान कराता है, युद्धोंमें सर्वत्र अपने तेजका प्रकाश फैलाता है और अपने तेजके सहारे शत्रुओंको जीतनेवाला है, इसीलिए लोग इस इन्द्रका यश बढाते हैं । जो वीर ऐसे गुणोंसे युक्त होगा, उस वीरकी प्रशंसा सब जगह होगी ॥ १० ॥

इन्द्र प्राणियोंकी हर कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है, इसीलिए सब प्राणी उसे बुलाते हैं । ऐसा वह इन्द्र हमें शत्रुओंसे भरे संग्रामके उस पार उसी तरह ले जाए, कि जिस तरह लोग नावसे नदीके उस पार जाते हैं ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! हमें तू उत्तम बल और अन्नसे युक्त धन देकर हमें आगे बढनेके लिए उत्तम मार्ग दिखा, उस उत्तम मार्गसे चलकर हम सुख प्राप्त करें ॥ १२ ॥

हे इन्द्र ! हमारे पास आकर इस आसन पर बैठो और हमारे द्वारा दिए गए सोमरसको पी । वीरोंका इसी तरह सत्कार करना चाहिए ॥ १ ॥

४१२ आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥
४१३ ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥
४१४ आ नो याहि सुतावतो ऽस्माकं सुष्टुतीरुप । पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥ ४ ॥
४१५ आ ते सिञ्चामि कुक्ष्यो रनु गात्रा वि धावतु । गृभाय जिह्वया मधु ॥ ५ ॥
४१६ स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वे तव । सोमः शमस्तु ते हृदे ॥ ६ ॥
४१७ अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः । प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ ७ ॥

अर्थ—[४१२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ब्रह्म-युजा) कहने मात्रसे [रथमें] जुड जानेवाले, (केशिना हरी) अयालवाले घोडे (त्वा आवहतां) तुम्हें यहाँ ले आवें, और तुम (नः ब्रह्माणि उप शृणु) हमारे स्तोत्रोंको पाससे सुनो ॥२॥

ब्रह्मयुजा हरी— कहने मात्रसे रथके साथ जुड जानेवाले घोडे ।

[४१३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सोमपां त्वा) सोम पीनेवाले तुमको (सोमिनः सुतावन्तः) सोमयाग करनेवाले (वयं ब्रह्माणः) हम ज्ञानी (युजा हवामहे) साथ बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[४१४] हे इन्द्र ! (सुतावतः नः) सोमयाग करनेवाले हमारी (सु-स्तुतीः उप आ याहि) उत्तम स्तुतियोंके पास आओ, और हे (सु-शिप्रिन्) उत्तम शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्र ! (अस्माकं अन्धसः पिब) हमारे सोमरसोंको पीओ ॥ ४ ॥

[४१५] हे इन्द्र ! मैं (ते कुक्ष्योः) तुम्हारी कुक्षियोंको (आ सिञ्चामि) सोमसे भरता हूँ, वह सोम तुम्हारे (गात्रा अनु वि धावतु) प्रत्येक अंगमें दौडे, तुम (मधु) सोम (जिह्वया गृभाय) जीभसे चखो ॥ ५ ॥

[४१६] हे इन्द्र ! (सं-सु-दे) उत्तम धनोंको देनेवाले तुम्हारे लिए यह (मधुमान्) शहद मिश्रित सोम (स्वादुः अस्तु) स्वादिष्ट हो, तथा (सोमः) यह सोम (तव तन्वे) तुम्हारे शरीर और (ते हृदे) तुम्हारे हृदयके लिए (शं अस्तु) सुखकारी हो ॥ ६ ॥

[४१७] हे (विचर्षण इन्द्र) दूरदर्शी इन्द्र ! (अयं सोमः) यह सोम (जनीः इव) जैसे स्त्रियां सफेद कपडोंसे ढकी रहती हैं, उसी प्रकार (अभि संवृतः) गायके दूधसे मिश्रित होकर (त्वा प्र सर्पतु) तुम्हारी ओर बहे ॥ ७ ॥

भावार्थ— संकेत मात्रसे जुडजानेवाले घोडे इन्द्रको हमारे पास ले आवें, ताकि वह हमारे स्तोत्रको पाससे सुन सकें। घोडे ऐसे सुशिक्षित हों ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! सोमपान करनेवाले तेरे लिए हमने यह सोमरस तैय्यार करके रखा हुआ है, और हम ज्ञानी तुझे बुलाते भी हैं ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! हमने सोमरसको निचोडकर तैय्यार करके रखा हुआ है, अतः तुम हमारे पास आकर इन सोमरसोंको पीओ ॥ ४ ॥

सोमरस पीनेके बाद इन्द्रके शरीरके प्रत्येक अंगमें उस रसके कारण उत्साह दौड जाता है। सोमरस उत्साह प्रदान करता है ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम उत्तम धनोंको देनेवाले हो, अतः यह शहदमिश्रित सोम तुम्हें स्वादिष्ट लगे और तुम्हारे शरीर और हृदयको सुख देनेवाला हो. सोमरस शरीर और हृदयको सुख देता है। अतः सोमरसको नशीला कहना दोषपूर्ण है, क्योंकि नशा हृदय और शरीरको सुख नहीं देता ॥ ६ ॥

जिस तरह स्त्रियां सफेद और शुभ्र कपडोंमें बहुत सुन्दर लगती हैं, उसी तरह, गायके दूधसे मिश्रित होनेके कारण शुभ्र और तेजस्वी हुआ सोमरस बहुत सुशोभित होता है। सोमरस तैय्यार करनेके बाद उसमें गायका दूध मिलाया जाता है ॥ ७ ॥

४१८ तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ ८ ॥
४१९ इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा । वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ॥ ९ ॥
४२० दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि । यजमानाय सुन्वते ॥ १० ॥
४२१ अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ११ ॥
४२२ शाचिगो शाचिपूजनाऽयं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥ १२ ॥

अर्थ— [४१८] (तुवि-ग्रीवः, वपु-उदरः, सु-बाहुः इन्द्रः) बलवान गलेवाला, बडे पेटवाला तथा उत्तम भुजाओंवाला इन्द्र (अन्धसः मदे) सोमके उत्साहमें (वृत्राणि जिघ्नते) वृत्रोंको मारता है ॥ ८ ॥

१ सु-बाहुः इन्द्रः वृत्राणि जिघ्नते – उत्तम भुजाओंवाला इन्द्र शत्रुओंको मारता है।

[४१९] (विश्वस्य ईशान इन्द्र) हे विश्व पर शासन करनेवाले इन्द्र ! (त्वं) तुम (ओजसा पुरः प्र इहि) सामर्थ्य युक्त होकर आगे आगे चलो और हे (वृत्र हन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! तुम (वृत्राणि जहि) शत्रुओंको मारो ॥ ९ ॥

[४२०] हे इन्द्र ! (येन सुन्वते यजमानाय) जिससे सोम पान करनेवाले यजमानके लिए (वसु प्रयच्छसि) धन देते हो, वह (ते अङ्कुशः) तुम्हारा आयुध (दीर्घः) बहुत बडा है ॥ १० ॥

१ ते अङ्कुशः दीर्घः– हे इन्द्र ! शासन करनेकी तुम्हारी शक्ति बहुत बडी है।

[४२१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (अयं सोमः) यह सोम (बर्हिषि अधि) यज्ञमें (नि-पूतः) पवित्र करके रखा है (ईं) अब (आ इहि, द्रव) आ, दौड, (अस्य पिब) इस सोमको पी ॥ ११ ॥

[४२२] हे (शाचि-गो) शक्तिशाली गौवोंवाले तथा (शाचि-पूजन) प्रसिद्ध यशवाले इन्द्र ! (ते रणाय) तुम्हें आनन्दित करनेके लिए (अयं सुतः) यह सोम है। हे (आखण्डल) शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्र ! तुम (प्र हूयसे) हमारे द्वारा बुलाये जाते हो ॥ १२ ॥

१ आखंडल– शत्रुके टुकडे टुकडे करनेवाला।
२ शाचि-गो— शक्तिशाली इंद्रियोंवाला, गौओंवाला।

भावार्थ— इन्द्रका शरीर देखनेमें बहुत सुन्दर है, उसकी गर्दन मोटी है, उत्तम भुजायें हैं, ऐसी भुजाओंसे वह इन्द्र सोमके उत्साहमें भरकर शत्रुओंको मारता है। ऐसा शरीर और उत्साह वीरोंका भी होना चाहिए ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! तुम बलसे युक्त होकर आगे आगे चलो। यह इन्द्र अत्यधिक बलवान् होनेसे युद्धोंमें सबसे आगे रहता है। हे इन्द्र ! शत्रुओंको मारो ॥ ९ ॥

इन्द्रकी शक्ति इतनी अधिक है कि वह दूर देशमें भी रहकर सारे विश्व पर शासन करता है। उसका अंकुश सबको नियंत्रणमें रखता है। इसी तरह राजाका नियंत्रण सारे राष्ट्रको शासित करे ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! यज्ञमें यह सोमरस तेरे लिए पवित्र करके रखा गया है, उसे तू पी ॥ ११ ॥

इन्द्रका स्वरूप शक्तिशाली है, अपनी शक्तिके कारणही वह सर्वत्र पूजा जाता है। इसी शक्तिके कारण लोग इसे सोमरस पीनेके लिए बुलाते हैं ॥ १२ ॥

४२३ यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः । न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥ १३ ॥
४२४ वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानाम् ।
द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥ १४ ॥
४२५ पृदाकुसानुर्यजतो गवेषण एकः सन्नभि भूयसः ।
भूर्णिमश्वं नयत् तुजा पुरो गृभेन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ १५ ॥

[१८]

(ऋषिः- इरिम्बिठिः काण्वः । देवता- आदित्याः; ४, ६, ७, अदितिः; ८ अश्विनौ; ९ अग्निसूर्यानिलाः । छन्द- उष्णिक् ।)

४२६ इदं ह नूनमेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः । आदित्यानामपूर्व्यं सवीमनि ॥ १ ॥

अर्थ— [४२३] हे (शृंगवृषः न- पात्) किरणोंकी वर्षा करनेवाले सूर्यको न गिरानेवाले इन्द्र ! (हे प्र-न-पात्) तुम्हें न गिरानेवाला (यः कुण्डपाय्यः) जो कुण्डपाय्य यज्ञ है, (अस्मिन्) इस यज्ञमें ऋषिगण (मनः आ निदध्रे) मनको लगाते हैं ॥ १३ ॥

१ शृंगवृषः— ऋषि, [शृंग] किरणोंको (वृषः) बरसाने वाला सूर्य ।
२ कुण्डपाय्यः— एक यज्ञ विशेष ।
३ प्र-न-पात्— न गिरानेवाला, ऊंचा उठानेवाला

[४२४] हे (वास्तोष्पते) गृहपते ! [हमारे घरका] (स्थूणा) खम्भा (ध्रुवा) दृढ हो, तथा (सोम्यानां) सोमपान करनेवाले हमारे (अंस-त्रं) शरीरका संरक्षक हो, (शश्वतीनां पुरां भेत्ता) बहुत कालसे बसी हुई शत्रुकी नगरियोंको तोडनेवाला (द्रप्सः) सोम पीनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (मुनीनां सखा) ऋषियोंको मित्र हो ॥ १४ ॥

१ शश्वतीनां पुरां भेत्ता इन्द्रः— बहुत कालसे बसी हुई शत्रुकी नगरियोंको तोडनेवाला यह इन्द्र है ।

[४२५] (पृदाकुसानुः) सर्पके समान ऊंचे सिरवाला, (यजतः) पूज्य (गवेषणः) संशोधन करनेवाला, यह इन्द्र (एकः सन्) एक होते हुए भी (भूयसः अभि) अनेक शत्रुओंको पराजित करता है, ऐसे (भूर्णि) भरण-पोषण करनेवाले (अश्वं) सर्वत्र व्याप्त (इन्द्र) इन्द्रको (सोमस्य पीतये) सोमपानके लिए (तुजा गृभा) साथ होकर (पुरः नयत्) आगे ले आओ ॥ १५ ॥

१ तुज्— पहुंचना, विस्तृत करना, पहुंचाना मारना, रक्षा करना, कपडे पहनना, रहना, देना, आगे बढ़ना
२ गवेषणः— संशोधन करनेवाला, ढूंढ निकालनेवाला, गायकी इच्छा करनेवाला

[१८]

[४२६] (इदं नूनं) यह निश्चित है कि (एषां आदित्यां) इन आदित्य देवोंके (सवीमनि) नियममें रहनेवाला (मर्त्यः) मनुष्य (अपूर्व्यं सुम्नं भिक्षेत) अपूर्व- जो पहले कभी प्राप्त नहीं किया, ऐसे सुखको प्राप्त करता है ॥ १ ॥

भावार्थ— प्रकाश किरणोंको सर्वत्र बिखरानेवाले सूर्यको यह इन्द्रही धारण करता है, और इस इन्द्रको यज्ञ धारण करते हैं, और उन यज्ञोंको धारण करनेवाले ऋषि हैं ॥ १३ ॥

हे गृह देवता ! हमारे घरके खंबे दृढ हों, तथा हमारे घरमें प्रतिदिन यज्ञ होता रहे, उस घरमें हमारे शरीरोंकी रक्षा हो । उस घरमें इन्द्र भी आकर रहे और हम ज्ञानियोंकी सदा रक्षा करे ॥ १४ ॥

जिस तरह सर्पके सिरमें शक्ति रहती है, उसी तरह इन्द्रके सिरमें शक्ति है । इन्द्रके सिरमें ज्ञानकी शक्ति है । अपने ज्ञानशक्तिके आधार पर वह अकेला होते हुए भी अनेक शत्रुओंसे युद्ध करता है । मनुष्य ज्ञानसे युक्त होकर अनेक शत्रुओंसे अकेला ही युद्ध कर सकता है ॥ १५ ॥

इन आदित्य देवोंकी प्रेरणाके अनुसार आचरण करनेवाला मनुष्य ऐसा सुख प्राप्त करता है कि जो उसने कभी प्राप्त न किया हो, यह बात सर्वथा निश्चित है ॥ १ ॥

४२७ अनर्वाणो ह्येषां पन्था आदित्यानाम् । अदब्धाः सन्ति पायवः सुगेवृधः ॥ २ ॥
४२८ तत् सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा । शर्म यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे ॥ ३ ॥
४२९ देवेभिर्देव्यदितेऽरिष्टभर्मन्ना गहि । स्मत् सूरिभिः पुरुप्रिये सुशर्मभिः ॥ ४ ॥
४३० ते हि पुत्रासो अदितेर्विदुर्द्वेषांसि योतवे । अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः ॥ ५ ॥
४३१ अदितिर्नो दिवा पशुमदितिर्नक्तमद्वयाः । अदितिः पात्वंहसः सदावृधा ॥ ६ ॥
४३२ उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्या गमत् । सा शंताति मयस्करदप स्रिधः ॥ ७ ॥

अर्थ— [४२७] (एषां आदित्यानां) इन आदित्य देवोंके (पंथाः) मार्ग (अनर्वाणः अदब्धाः सन्ति) कुटिलतासे रहित तथा हिंसासे रहित हैं। आदित्य देवोंके मार्ग (पायवः) मनुष्योंका पालन करनेवाले तथा (सुगेवृधः) सुखको बढानेवाले हैं ॥ २ ॥

[४२८] (सविता भगः वरुणः मित्रः अर्यमा) सविता, भग, वरुण, मित्र और अर्यमा देव (नः सप्रथः शर्म) उस अत्यन्त विस्तीर्ण सुखको (सु यच्छन्तु) प्रदान करें (यत् ईमहे) जिस सुखको हम चाहते हैं ॥ ३ ॥

[४२९] हे (देवि) उत्तम गुणोंवाली (अरिष्टभर्मन्) हिंसारहित मार्गसे सबका भरण-पोषण करनेवाली (पुरुप्रिये) बहुतोंसे स्नेह प्राप्त करनेवाली (अदिते) अविनाशी देवी ! तू (सूरिभिः) विद्वानोंके साथ (सुशर्मभिः) उत्तम सुखोंके साथ तथा (देवेभिः) सभी देवोंके साथ (स्मत् आ गहि) हमारे पास आ ॥ ४ ॥

[४३०] (अदितेः) अदिति माताके (ते) वे (उरुचक्रयः) विशाल कर्म करनेवाले (अनेहसः) पापसे रहित (पुत्रासः) पुत्र (द्वेषांसि अंहोश्चित्) अपने द्वेषियों-शत्रुओं तथा पापियोंको (यातवे) दूर करना (विदुः हि) निश्चयसे जानते हैं ॥ ५ ॥

[४३१] (अदितिः) अविनाशी देवी अदिति (नः पशुं दिवा) हमारे पशुओंकी दिनमें रक्षा करे, (अद्वयाः अदितिः) कपटसे रहित अदिति माता (नक्तं) रात्रीमें हमारे पशुओंकी रक्षा करे तथा (सदावृधा अदितिः) हमेशा अपने पुत्रों- प्राणियोंको बढानेवाली अदिति माता हमें (अंहसः पातु) पाप करनेसे बचावे ॥ ६ ॥

[४३२] (उत) और (स्या मतिः अदितिः) वह बुद्धिशालिनी अदिति (ऊत्या दिवा) अपनी संरक्षण शक्तिसे युक्त होकर (नः आ गमत्) हमारे पास आवे, और आकर (सा) वह अदिति (शंताति मयः) शान्ति प्रदान करनेवाले सुखको (करत्) हमें प्रदान करे तथा (स्रिधः अप) हमारे शत्रुओंको हमसे दूर करे ॥ ७ ॥

भावार्थ— इन देवोंके मार्ग कुटिलतासे रहित होनेके कारण हिंसासे भी रहित हैं। हिंसा वहीं होती है कि जहां कुटिलता भी हो। कुटिलता तथा हिंसासे रहित होनेके कारण ये मार्ग मनुष्योंका पालन करनेवाले तथा उनका सुख बढानेवाले हैं। राजाके मार्ग भी देवमार्गकी तरह हिंसा तथा कुटिलतासे रहित होकर मनुष्योंके सुखको बढानेवाले हों ॥ २ ॥

हम जिस सुखको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, उस विस्तृत सुखको हमें सभी देव प्रदान करें ॥ ३ ॥

देवी अदिति हिंसारहित उपायोंसे सबका भरणपोषण करती है, इसीलिए सभी प्राणी अदिति- प्रकृति माता पर प्रेम करते हैं। प्रकृति माताके सभी सुख विद्यमान हैं, पर प्रकृति माताके नियमोंके अनुसार चलनेवालाही उस सुखको प्राप्त कर सकता है ॥ ४ ॥

अदितिके पुत्र देव स्वयं अहिंसक रहकर बडे बडे काम करते हैं, पर जब उन्हें उनके शत्रु और पापी छेडते हैं, तब वे देव उन शत्रुओं और पापियोंको अपनेसे दूर करना भी जानते हैं। इसी तरह मनुष्य स्वयं अहिंसक हो, पर यदि कोई शत्रु उसे पीडित करे, तो शत्रुको नष्ट करनेका उपाय भी जाने ॥ ५ ॥

अदिति- प्रकृति माता अन्दर और बाहरसे एक होनेके कारण कुटिलतासे रहित है, ऐसी माता हमारे पशुओंकी रातदिन रक्षा करे और हमें भी पापकर्मोंसे बचावे ॥ ६ ॥

वह अदिति माता बुद्धिशालिनी है, वह अपनी संरक्षण शक्तिसे हमारी सदा रक्षा करे। वह हमें शान्ति देनेवाला सुख प्रदान करे। सुख दो प्रकारके होते हैं- अशान्तिकारक सुख- शान्तिकारक सुख। वैषयिक-सुख अशान्तिकारक हैं और पारलौकिक सुख शान्तिकारक है। ऐसा पारलौकिक सुख ही हमें चाहिए ॥ ७ ॥

४३३ उत त्या दैव्या भिषजा शं नः करतो अश्विना । युयुयातामितो रपो अप स्रिधः ॥ ८ ॥
४३४ शमग्निरग्निभिः करच्छं नस्तपतु सूर्यः । शं वातो वात्वरपा अप स्रिधः ॥ ९ ॥
४३५ अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम् । आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥ १० ॥
४३६ युयोता शरुमस्मदाँ आदित्यास उतामतिम् । ऋधग्द्वेषः कृणुत विश्ववेदसः ॥ ११ ॥
४३७ तत् सु नः शर्म यच्छता ऽऽदित्या यन्मुमोचति । एनस्वन्तं चिदेनसः सुदानवः ॥ १२ ॥
४३८ यो नः कश्चिद् रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः । स्वैः ष एवै रिरिषीष्ट युर्जनः ॥ १३ ॥

अर्थ— [४३३] (उत) और (त्या दैव्या भिषजा) वे दिव्य चिकित्सक (अश्विना) अश्विनी कुमार (नः शं करतः) हमें सुख प्रदान करें, तथा (इतः) हमसे (रपः) पापको (युयुयातां) पृथक् करें, तथा (स्रिधः अप) हमारे शत्रुओंको भी हमसे दूर करें ॥ ८ ॥

[४३४] (अग्निः) अग्नि (अग्निभिः) अपनी ज्वालाओं और तेजोंसे (शं करतु) हमारा कल्याण करे, (सूर्यः) सूर्य (नः शं तपतु) हमारे लिए सुखकारक होकर तपे, (अरपाः वातः) दोषोंसे रहित वायु (शं वातु) हमारे लिए सुख कारक होकर बहे तथा इस प्रकार हमारे (स्रिधः) शत्रुओंको ये देव (अप) दूर करें ॥ ९ ॥

[४३५] हे (आदित्यासः) आदित्य देवो ! तुम हमसे (अमीवां अप) रोगोंको दूर करो, (स्रिधं अप) शत्रुओंको दूर करो, (दुर्मतिं अप सेधत) हमसे दुष्ट बुद्धियोंको दूर करो, तथा (नः) हमें (अंहसः युयोतन) पापसे दूर करो ॥ १० ॥

[४३६] हे (आदित्यासः) आदित्यो ! (अस्मत्) हमसे (शरुं आ युयोत) शत्रुओंको दूर करो, (उत अमतिं) और बुरी बुद्धिको भी दूर करो । हे (विश्ववेदसः) सब विद्याओंके ज्ञाता देवो ! तुम (द्वेषः) हमसे द्वेष करनेवालोंको (ऋधक् कृणुत) अलग करो ॥ ११ ॥

[४३७] हे (सु दानवः आदित्याः) उत्तम दानदेनेवाले आदित्य देवो ! (यत्) जो सुख (एन स्वन्तं चित् एनसः मुमोचति) पापीको भी पाप कर्मसे छुडा देता है, (तत् शर्म नः सु यच्छत) वह सुख तुम हमें प्रदान करो ॥ १२ ॥

[४३८] (यः मर्त्यः) जो कोई मनुष्य (रक्षस्त्वेन) राक्षसभाव धारण करके (नः रिरिक्षति) हमें मारना चाहता है, (सः जनः) वह मनुष्य (स्वैः एवैः) अपने ही कर्मोंसे (रिरिषीष्ट) मारा जाये तथा वह हमसे (युः) दूर हो जाए ॥ १३ ॥

भावार्थ— दोनों अश्विनी कुमार उत्तम वैद्य होनेसे दिव्य भिषज कहाते हैं। वे दोनों हमारे अन्दरके रोगोंको दूर करके हमें सुख प्रदान करें, तथा हमसे पाप तथा शत्रुओंको दूर करें। रोग स्वयंमें बड़ा भारी पाप और शत्रु है, अतः इसे सर्वप्रयत्न दूर करना चाहिए ॥ ८ ॥

अग्नि अपनी ज्वालाओंके तेजसे, सूर्य अपनी किरणोंसे तथा वायु अपनी लहरोंसे हमारे शरीरके रोगरूपी शत्रुओंको नष्ट करें, तथा हमें सुख प्रदान करें ॥ ९ ॥

हे आदित्य देवो ! तुम हमारे शरीरोंमेंसे रोग-कीटाणुरूपी शत्रुओंको दूर करके हमें नीरोग करो, हमारी दुष्ट बुद्धियोंको दूर करके हमें उत्तम बुद्धि दो, इसप्रकार हमें पापोंसे दूर रखो ॥ १० ॥

हे देवो ! हमसे हमारे शत्रुओंको, दुष्ट बुद्धिको और हमसे द्वेष करनेवालोंको दूर करो ॥ ११ ॥

हे उत्तम दान देनेवाले आदित्यो ! जो अलौकिक सुख पापियोंको भी पापोंसे छुडा देता है, वह अलौकिक सुख हमें प्रदान करो ॥ १२ ॥

हे देवो ! जो मनुष्य मनमें राक्षसभाव धारण करके हमें मारना चाहता है, वह अपने भावोंके कारण स्वयं मारा जाए, या हमसे दूर हो जाए । जो मनुष्य किसी निरपराधीको मारना चाहता है, वह अपने कर्मोंसे स्वयं नष्ट हो जाता है ॥१३॥

४३९ समित् तमघमश्नवद् दुःशंसं मर्त्यं रिपुम् । यो अस्मत्रा दुर्हणावाँ उप द्वयुः ॥ १४ ॥
४४० पाकत्रा स्थन देवा हृत्सु जानीथ मर्त्यम् । उप द्वयुं चाद्वयुं च वसवः ॥ १५ ॥
४४१ आ शर्म पर्वतानामोतापां वृणीमहे । द्यावाक्षामारे अस्मद् रपस्कृतम् ॥ १६ ॥
४४२ ते नो भद्रेण शर्मणा युष्माकं नावा वसवः । अति विश्वानि दुरिता पिपर्तन ॥ १७ ॥
४४३ तुचे तनाय तत् सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे । आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥ १८ ॥
४४४ यज्ञो हीळो वो अन्तर आदित्या अस्ति मृळत । युष्मे इद् वो अपि ष्मसि सजात्ये ॥ १९ ॥

अर्थ— [४३९] (यः) जो मनुष्य (अस्मत्रा) हमसे (उपद्वयुः) कपटका व्यवहार करता है, तथा (दुर्हणावान्) हमारी हिंसा करना चाहता है, (तं दुःशंसं रिपुं मर्त्यं) उस दुष्ट और शत्रु मनुष्यको (अघं इत् सं अश्नवत्) उसका पाप ही खा जाए । १४ ॥

[४४०] हे (वसवः देवाः) सबको बसानेवाले देव आदित्यो ! (द्वयुं अद्वयुं च मर्त्यं) कपटी और कपट-रहित मनुष्यको तुम (हृत्सु जानीथ) अपने हृदयोंमें जान लो, तथा (पाकत्रा स्थन) जो पवित्र मनुष्य हों, उन्हींके पास तुम रहो ॥ १५ ॥

[४४१] हम (पर्वतानां उत अपां शर्म) पर्वतोंमें और जलोंमें जो सुख है, उसे (आ वृणीमहे) हम प्राप्त करना चाहते हैं । (द्यावाक्षामा) द्युलोक और पृथ्वीलोक (अस्मत्) हमसे (रपः आरे कृतं) पापोंको दूर करें ॥ १६ ॥

[४४२] हे (वसवः) सबको वास करानेवाले देवो ! (ते) वे तुम सब (भद्रेण शर्मणा) कल्याणकारक सुखरूपी (युष्माकं नावा) तुम्हारी नावके द्वारा (विश्वानि दुरिता अतिपिपर्तन) सम्पूर्ण दुष्कर्मोंके पार उतार दो ॥ १७ ॥

[४४३] (सुमहसः आदित्यासः) हे महान् आदित्य देवो ! (नः तुचे तनाय जीवसे) हमारे पुत्र और पौत्रोंके दीर्घ जीवनके लिए (तत् आयुः) उनकी आयुको (द्राघीयः सु कृणोतन) दीर्घ और उत्तम बनाओ ॥ १८ ॥

[४४४] हे (आदित्याः) आदित्यो ! (हीळः) जिस यज्ञमें तुम जाना चाहते हो, वह (यज्ञः) यज्ञ (वः अन्तरः अस्ति) तुम्हारे समीपही हो रहा है । (वः सजात्ये) तुम्हारी मित्रतामें रहनेवाले हम (युष्मे अपि स्मसि) तुम्हारी मित्रतामेंही सदा रहें ॥ १९ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य निरपराधी और साधु मनुष्यसे कपटका व्यवहार करता है, या उसे मारना चाहता है, उस दुष्टको उसका पापकर्म ही मार डालता है ॥ १४ ॥

हे देवो ! कपटी और कपट रहित मनुष्य कौन है, इसे अच्छी तरह जानकर जो कपट रहित पवित्र मनुष्य हो, उसीके पास रहो । देवगण पवित्रहृदयवाले मनुष्यके पास ही रहते हैं ॥ १५ ॥

पर्वतों और जलोंमें भी सुख निहित हैं, पर जो इनका अच्छा और ज्ञानपूर्वक उपयोग करता है, उसीको यह सुख मिलता है । द्युलोक और पृथ्वीलोक भी उसे सुखी करते हैं ॥ १६ ॥

ये संपूर्ण दुष्कर्मरूपी सागरसे पार जानेके लिए सुकर्मरूपी नाव ही है । उत्तम कर्म करनेवाला मनुष्य ऐसे सागरको पार कर सकता है ॥ १७ ॥

हमारे पुत्र पौत्रोंके जीवनको देवगण लम्बा और सुखपूर्ण बनायें ॥ १८ ॥

हे देवो ! हम तुम्हारे मित्र होकर तुम्हारे लिए यज्ञ करें, तथा तुम उन यज्ञोंमें सदा आते रहो, और हम भी सदा सदा तुम्हारी मित्रतामें रहें ॥ १९ ॥

४४५ बृहद् वरूथं मरुतां देवं त्रातारमश्विना । मित्रमीमहे वरुणं स्वस्तये ॥ २० ॥
४४६ अनेहो मित्रार्यमन् नृवद् वरुण शंस्यम् । त्रिवरूथं मरुतो यन्त नश्छर्दिः ॥ २१ ॥
४४७ ये चिद्धि मृत्युबन्धव आदित्या मनवः स्मसि । प्र सू न आयुर्जीवसे तिरेतन ॥ २२ ॥

[१९]

(ऋषिः- सोभरिः काण्वः । देवता- अग्निः, ३४-३५ आदित्याः, ३६-३७ त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः ।
छन्दः- १-२६ प्रगाथः = (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती), २७ द्विपदा विराट्,
२८-३३ प्रगाथः = (समा ककुप्, विषमा सतोबृहती), ३४ उष्णिक्,
३५ सतोबृहती, ३६ ककुप्; ३७ पङ्क्तिः ।)

४४८ तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्रा हव्यमोहिरे ॥ १ ॥
४४९ विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीळिष्व यन्तुरम् ।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ॥ २ ॥

अर्थ- [४४५] हम (मरुतां त्रातारं देवं) मरुतोंकी रक्षा करनेवाले इन्द्र देवको (अश्विना मित्रं वरुणं) अश्विदेवों, मित्र, वरुण तथा (बृहत् वरूथं) महान् गृहपति वास्तोष्पति देवको हम (स्वस्तये) अपने कल्याणके लिए (ईमहे) बुलाते हैं ॥ २० ॥

[४४६] हे (मित्र अर्यमन् वरुण) मित्र, अर्यमा तथा वरुण देवो ! तथा (मरुतः) हे मरुतो ! तुम (नः) हमें (अनेहः) हिंसासे रहित, (शस्यं) प्रशंसनीय (त्रिवरूथं छर्दिः यन्त) तीन मंजिलोंवाला घर दो ॥ २१ ॥

[४४७] हे (आदित्याः) आदित्यो ! (ये चित् हि मनवः) जो कि हम सब मनुष्य (मृत्युबंधवः स्मसि) मृत्युके भाईबंद है, तो भी (नः जीवसे) हमारे दीर्घजीवनके लिए (आयुः सु तिरेतन) हमारी आयुको अच्छी तरह दीर्घ करो ॥ २२ ॥

[१९]

[४४८] हे स्तोता लोगो ! जिस (स्वर्णरं देवं अरतिं देवासः दधन्विरे) सुवर्णको देनेवाले दिव्यगुण युक्त, स्वामी अग्निको देवगण अपने अन्दर धारण करते हैं । तथा (देवत्रा हव्यं आ ऊहिरे) विद्वान् मनुष्य जिस अग्निको हवि प्रदान करते हैं (तं गूर्धय) उस प्रसिद्ध अग्निकी तुम सब स्तुति करो ॥ १ ॥

[४४९] हे (विप्र सोभरे) मेधाविन् और उत्तम रीतिसे प्रजाके पोषण करनेवाले ऋषे ! तुम (अध्वराय) यज्ञके लिये (विभूतरातिं चित्रशोचिषं) बहुत दान देनेवाले अद्भुत तेजस्वी (अस्य सोम्यस्य, मेधस्य यन्तुरं पूर्व्यं) इस सोम यज्ञके नियन्ता और सबके पूर्वसे विद्यमान ऐसे गुणोंसे सम्पन्न (ईं अग्निं प्र ईळिष्व) इस अग्निकी अच्छी प्रकारसे पूजा करो ॥ २ ॥

भावार्थ— हम इन्द्र आदि देवोंको अपने कल्याणके लिए बुलाते हैं । वे आकर हमारा कल्याण करें ॥ २० ॥

हे देवो ! हमें एक बडा सा घर दो, ताकि हम उसमें सुखसे रह सकें ॥ २१ ॥

जो कि सभी मनुष्य मृत्युके भाईबंद हैं, अन्तमें मरनेवाले ही हैं, तो भी प्रयत्न करके यदि देवोंकी कृपा प्राप्त की जाए, तो आयुको दीर्घ किया जा सकता है और दीर्घकाल तक जीवित रहा जा सकता है ॥ २२ ॥

यह अग्नि स्वर्णको देनेवाला, उत्तम गुणोंसे युक्त सबका स्वामी, बहुत दान देनेवाला, अत्यन्त तेजस्वी और यज्ञोंको सिद्ध करनेवाला है । इसी कारण सब विद्वान् इसकी पूजा करते हैं और अपने अन्दर इसे धारण करते हैं ॥ १-२ ॥

४५० यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३ ॥
४५१ ऊर्जो नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निं श्रेष्ठशोचिषम् ।
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥ ४ ॥
४५२ यः समिधा य आहुती यो वेदेन ददाश मर्तो अग्नये । यो नमसा स्वध्वरः ॥ ५ ॥
४५३ तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आशवस्तस्य द्युम्नितमं यशः ।
न तमंहो देवकृतं कुतश्चन न मर्त्यकृतं नशत् ॥ ६ ॥
४५४ स्वग्नयो वो अग्निभिः स्याम सूनो सहस ऊर्जां पते । सुवीरस्त्वमस्मयुः ॥ ७ ॥

अर्थ— [४५०] हे अग्ने ! हम सब, (अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं, होतारं) इस यज्ञको उत्तमतासे पूरा करनेवाले, देवोंके बुलानेवाले (अमर्त्यं देवत्रा देवं, यजिष्ठं त्वा ववृमहे) कभी भी न मरनेवाले, देवताओंके मध्यमें अत्यन्त श्रेष्ठ गुणोंवाले, पूजनीय ऐसे तेरा वरण करते हैं ॥ ३ ॥

[४५१] (ऊर्जः नपातं सुभगं सुदीदितिं श्रेष्ठशोचिषं अग्निं) बलको न गिरने देनेवाले, ऐश्वर्यवान्, अच्छे प्रकाशसे युक्त श्रेष्ठ कान्तिवाले अग्निकी स्तुति करते हैं। (सः नः दिवि मित्रस्य वरुणस्य सुम्नं आ यक्षते) वह अग्नि हमारे लिये प्रदीप्त यज्ञमें मित्रके तथा वरुणके सुखको प्रदान करे। तथा (सः अपां) वह अग्नि जलके प्राप्त होनेवाले सुखोंको भी प्रदान करनेवाला हो ॥ ४ ॥

[४५२] (यः सु अध्वरः मर्तः) जो उत्तम अहिंसक यज्ञशील मनुष्य (नमसा) अन्नसे (यः समिधा) जो काष्ठसे, (यः आहुती) जो आहुतिसे, (यः वेदेन) जो ज्ञानसे, (अग्नये ददाश) अग्निके लिये आहुति प्रदान करता है, वह मनुष्य उत्तम सुखसे युक्त होता है ॥ ५ ॥

[४५३] जो मनुष्य अग्निका यजन करता है (तस्येत् आशवः अर्वन्तः रंहयन्ते) उसके ही वेगसे जानेवाले घोडे तेजी दौडते हैं (तस्य यशः द्युम्नितमं) उस मनुष्यका ही यश अत्यन्त उज्ज्वल होता है। (देवकृतं अंहः कुतश्चन तं न नशत्) देवताओंके प्रति किया हुआ पाप उसको किसी भी प्रकार नष्ट नहीं करता, और (न मर्त्यकृतं) न मनुष्योंके प्रति किया हुआ पाप ही उसे नष्ट करता है ॥ ६ ॥

[४५४] हे (सहसः सूनो ऊर्जां पते) बलके पुत्र, बलके स्वामी अग्ने ! हम लोग (वः अग्निभिः, सु अग्नयः स्याम) तेरे गार्हपत्यादि अग्नियोंसे सुन्दर अग्निवाले होवें। और (त्वं अस्मयुः सुवीरः) तू हम लोगोंको उत्तम वीर सन्तानोंसे युक्त बना ॥ ७ ॥

भावार्थ— यह अग्नि सब तरहके यज्ञोंको पूरा करनेवाला, देवोंको बुलाकर लानेवाला, अमर और देवोंके बीचमें सबसे अधिक श्रेष्ठ गुणवाला है, ऐसे बल प्रदान करनेवाले, ऐश्वर्यवान उत्तम तेजवाले अग्निकी स्तुति करनी चाहिए वह मित्र, वरुण और जलसे प्राप्त होनेवाले सुखोंको प्रदान करता है। मित्र-सूर्य, वरुण-वर्षा और जलसे आरोग्य प्राप्त होकर अनेक तरहके सुख मिलते हैं। इस मंत्रमें वेद प्राकृतिकचिकित्साकी ओर संकेत करता है ॥ ३-४ ॥

जो हिंसा न करनेवाला मनुष्य अन्नसे, समिधासे, आहुतिसे और ध्यानसे इस अग्निकी सेवा करता है, वह ऐश्वर्यवान् होता है, वह उत्तम घोडोंका स्वामी बनता है, वह यशस्वी होता है। यदि कभी प्रमादवश वह देवों और मनुष्योंके प्रति अपराध कर भी दे; तो भी वह उस अपराधके कारण नष्ट नहीं होता ॥ ५-६ ॥

यह अग्नि बलका स्वामी है, इसके सहारेसे भक्त अग्निके समान तेजस्वी होते हैं और वीर सन्तानोंसे युक्त होते हैं ॥ ७ ॥

४५५ प्रशंसमानो अतिथिर्न मित्रियोऽग्नी रथो न वेद्यः ।
त्वे क्षेमासो अपि सन्ति साधवस्त्वं राजा रयीणाम् ॥ ८ ॥
४५६ सो अद्धा दाश्वध्वरोऽग्ने मर्तः सुभग स प्रशंस्यः । स धीभिरस्तु सनिता ॥ ९ ॥
४५७ यस्य त्वमूर्ध्वो अध्वराय तिष्ठसि क्षयद्वीरः स साधते ।
सो अर्वद्भिः सनिता स विपन्युभिः स शूरैः सनिता कृतम् ॥ १० ॥
४५८ यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं चनो दधीत विश्ववार्यः । हव्या वा वेविषद्विषः ॥ ११ ॥
४५९ विप्रस्य वा स्तुवतः सहसो यहो मक्षूतमस्य रातिषु ।
अवोदेवमुपरिमर्त्यं कृधि वसो विविदुषो वचः ॥ १२ ॥

अर्थ— [४५५] (अग्निः अतिथिः न प्रशंसमानः) अग्नि अतिथिके समान प्रशंसाके योग्य, (रथः न वेद्यः) रथके समान सबसे जानने योग्य (मित्रियः) मित्रोंका हित साधक है। हे अग्ने ! (त्वे साधवः क्षेमासः अपि सन्ति) तेरे आश्रयमें रहकर साधना करनेवाले सब प्रकारके कल्याणसे युक्त होते हैं, क्योंकि (त्वं रयीणां राजा) तू सम्पूर्ण धनोंका राजा है ॥ ८ ॥

[४५६] हे (अग्ने) अग्ने ! जो (मर्तः दाशु-अध्वरः सः अद्धा) मनुष्य दानी और हिंसारहित कर्म करनेवाला है, वह सत्य फलसे भी युक्त हो। हे (सुभग) शोभन ऐश्वर्यवाले अग्ने ! (सः प्रशंस्यः) वह तू प्रशंसनीय है। तथा (सः धीभिः सनिता अस्तु) वह तू कर्मों और उत्तम बुद्धियोंसे हमारी रक्षा करनेवाला हो ॥ ९ ॥

[४५७] हे अग्ने ! जिस मनुष्यके (अध्वराय त्वं ऊर्ध्वः तिष्ठसि) यज्ञमें जानेके लिये तू तैय्यार रहता है (सः क्षयद्वीरः साधते) वह पुत्रादि वीरोंका स्वामी होकर अपने सब कामोंको सिद्ध करता है। (सः अर्वद्भिः कृतं सनिता) वह अपने अश्वोंसे किये हुये राज्यका भोक्ता होता है। (सः विपन्युभिः) वह मेधावी लोगोंसे युक्त होता है। तथा (सः शूरैः सनिता) वह बलवानोंसे भी आदरणीय होता है ॥ १० ॥

[४५८] (विश्ववार्यः वपुः अग्निः) सबसे वरण करनेयोग्य रूपवान् अग्नि (यस्य गृहे स्तोमं चनः दधीत) जिसके घरमें स्तोम और हव्यान्न ग्रहण करता है, उसका (हव्या वा विषः वेविषत्) हव्यादि पदार्थ सर्वत्र व्याप्त देवताओंको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

[४५९] हे (सहसः यहो वसो) बलके पुत्र और सबके निवास करानेवाले अग्ने ! (स्तुवतः) स्तुति करनेवाले (विविदुषः) विशेष विद्वान् (वा रातिषु मक्षूतमस्य) और हविदान करनेमें अतिशीघ्रकारी कुशल तथा (विप्रस्य) ज्ञानी पुरुषके (वचः) स्तुतियोंको (अवो देवं उपरिमर्त्यं कृधि) देवोंसे नीचे और मनुष्योंसे ऊपर कर ॥ १२ ॥

भावार्थ— यह अग्नि अतिथिके समान पूज्य, रथके समान जानने योग्य और अपने प्रिय भक्तोंका हित करनेवाला है। इसीके सहारे रहनेवाले भक्त सब प्रकारके कल्याणों और धनोंसे युक्त होते हैं ॥ ८ ॥

जो दान और हिंसारहित कर्म करता है, वह सत्य फलसे युक्त होता है, और यह अग्नि उसीके यज्ञमें जानेके लिए सदा तैय्यार रहता है। वही मनुष्य वीर पुत्रोंसे, घोडोंसे और मेधावी लोगोंसे युक्त होता है और वह सब वीर पुरुषोंके द्वारा आदरणीय होता है ॥ ९-१० ॥

यह अग्नि अत्यन्त रूपवान् और सबके द्वारा वरण करने योग्य है, इस अग्निमें जो द्रव्य डाले जाते हैं, वह सर्वत्र व्याप्त देवोंको पहुंचता है। हे अग्ने ! तू उत्तम ज्ञानी तथा प्रतिदिन हवि देनेवाले एवं स्तुति करनेवाले मनुष्यकी स्तुतियोंको देवोंकी वाणियोंसे भले ही ज्यादा महत्व न दे, पर साधारण मनुष्योंकी वाणियोंसे उसको महत्व अवश्य अधिक दे ॥ ११-१२ ॥

×

४६० यो अग्निं हव्यदातिभि॒र्नमो॑भिर्वा सु॒दक्ष॑मा॒विवा॑सति । गि॒रा वा॑जि॒रशो॑चिषम् ॥ १३ ॥

४६१ स॒मिधा॒ यो निशि॑ती॒ दाश॒ददि॑तिं॒ धाम॑भिरस्य॒ मर्त्यः॑ ।
विश्वेत् स धी॒भिः सु॒भगो॒ जना॒ँ अति॑ द्यु॒म्नैरु॒द्न इ॑व तारिषत् ॥ १४ ॥

४६२ तद॑ग्ने द्यु॒म्नमा भ॑र॒ यत् सा॒सह॒त् सद॑ने॒ कं चि॑द॒त्रिण॑म् । म॒न्युं जन॑स्य दू॒ढ्यः॑ ॥ १५ ॥

४६३ येन॒ चष्टे॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा येन॒ नास॑त्या॒ भगः॑ ।
व॒यं तत् ते॒ शव॑सा गातु॒वित्त॑मा॒ इन्द्र॑त्वोता विधेमहि ॥ १६ ॥

४६४ ते घेद॑ग्ने स्वा॒ध्यो॒३॒॑ ये त्वा॑ विप्र निद॒धि॒रे नृ॒चक्ष॑सम् । विप्रा॑सो देव सु॒क्रतु॑म् ॥ १७ ॥

अर्थ— [४६०] (यः हव्यदातिभिः वा नमोभिः सुदक्षं अग्निं आविवासति) जो हव्य पदार्थोंसे और नमस्कारोंसे कुशल अग्निकी पूजा करता है, (वा गिरा, अजिरशोचिषं) तथा वाणि द्वारा स्तोत्र पाठसे न नाश होनेवाले दीप्तिसे युक्त अग्निकी सेवा करता है वह धन धान्यादि उत्तम पदार्थोंसे समृद्ध होता है ॥ १३ ॥

[४६१] (यः मर्त्यः अदितिं अस्य निशिती समिधा दाशत्) जो मनुष्य अखण्डनीय इस अग्निके लिये अतितीक्ष्ण बुद्धिसे युक्त होकर समिधा प्रदान करता है (सः धामभिः धीभिः द्युम्नैः विश्वेत् जनान) वह मनुष्य तेजसामर्थ्योंसे, उत्तम कर्मोंके द्वारा ऐश्वर्यसे समस्त जनोंको (उद्नः इव तारिषत्) जलके समान पार कर जाता है। और (सुभगः) उत्तम ऐश्वर्यसे युक्त होता है ॥ १४ ॥

[४६२] हे (अग्ने) अग्ने ! तू अपने (तत् द्युम्नं आ भर) उस उज्ज्वल प्रकाश युक्त तेजको हमें भरपूर दे। (यत् सदने कंचित् अत्रिणं सासहत्) जो घरमें आये हुये किसी भी राक्षसको पराजित कर सके (दूढ्यः मन्युं) और पाप बुद्धिवाले मनुष्योंके क्रोधको नष्ट कर सकनेमें समर्थ हो ॥ १५ ॥

[४६३] हे अग्ने ! तेरे (येन वरुणः मित्रः अर्यमा चष्टे) जिस तेजसे वरुण, मित्र और अर्यमा प्रकाशित होते हैं। और (येन नासत्या भगः) जिससे दोनों अश्विनौ और भजनीय अन्य देव प्रकाशित होते हैं, ऐसे (ते तत्) तेरे उस तेजको (शवसा गातुवित्तमाः) अपने बलसे अपने जाने योग्य मार्गको उत्तम बनानेवाले तथा (इन्द्र त्वोताः वयं) इन्द्र और तुमसे रक्षित होकर हम (विधेमहि प्राप्त करें ॥ १६ ॥

[४६४] (विप्र देव अग्ने) ज्ञानी और तेजस्वी अग्ने ! (ये विप्रासः) जो ज्ञानी ब्राह्मण (नृचक्षसं सुक्रतुं त्वा नि दधिरे) मनुष्योंके सब कर्मोंका देखनेवाले और उत्तम कर्म करनेवाले तुझे अपने हृदयोंमें धारण करते हैं, (ते घ इत् सु आध्यः) वे ही उत्तम रीतिसे सबसे श्रेष्ठ होते हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ— जो बुद्धि और भक्तिसे इस अमर और अखण्डनीय अग्निकी सेवा करता है, वह मनुष्य तेज, सामर्थ्य, उत्तम कर्म और ऐश्वर्योंसे समस्त मनुष्योंसे ऊपर उठ जाता है और हर तरहके ऐश्वर्य प्राप्त करता है ॥ १३-१४ ॥

इस अग्निके तेजसे वरुण, सूर्य और चन्द्रमा तथा दोनों अश्विनीकुमार एवं भग देवता प्रकाशित होते हैं और जिस तेजके कारण सभी खाऊ शत्रु विनष्ट होते हैं, उस तेजसे युक्त होकर हम बलशाली हों और अपने मार्गोंको उत्तम बनानेमें समर्थ हों ॥ १५-१६ ॥

यह अग्नि मनुष्यके अन्दर रह कर उसके सभी कर्मोंका निरीक्षण करता है तथा स्वयं भी उत्तम कर्म करता हुआ दूसरोंको भी उत्तम कर्म करनेकी प्रेरणा देता है। जो हमेशा उस अग्निका ध्यान करते हुए उत्तम कर्म करते हैं वे ही श्रेष्ठ होते हैं ॥ १७ ॥

४६५ त इद् वेदिं सुभग त आहुतिं ते सोतुं चक्रिरे दिवि ।
त इद् वाजेभिर्जिग्युर्महद् धनं ये त्वे कामं न्येरिरे ॥ १८ ॥

४६६ भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ १९ ॥

४६७ भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहः ।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टिभिः ॥ २० ॥

४६८ ईळे गिरा मनुर्हितं यं देवा दूतमरतिं न्येरिरे । यजिष्ठं हव्यवाहनम् ॥ २१ ॥

४६९ तिग्मजम्भाय तरुणाय राजते प्रयो गायस्यग्नये ।
यः पिंशते सूनृताभिः सुवीर्यमग्निर्घृतेभिराहुतः ॥ २२ ॥

अर्थ— [४६५] हे (सुभग) उत्तम ऐश्वर्यवाले अग्ने ! (ये त्वे कामं न्येरिरे) जो तुझमें अपनी कामनायें स्थापित करते हैं, (ते इत् वेदिं चक्रिरे) वे ही तेरे लिये यज्ञ वेदी बनाते हैं। (त आहुतिं) वे तुझको आहुति प्रदान करते हैं। (ते दिवि सोतुं) तेज युक्त यज्ञमें तेरे लिये सोम रस निकालते हैं। इस प्रकार पुरुषार्थ करनेवाले (ते इत् वाजेभिः महत् धनं जिग्युः) वे ही बल पराक्रमसे बडे भारी धनको जीतते हैं ॥ १८ ॥

[४६६] (आहुतः अग्निः नः भद्रः) हविसे तर्पित अग्नि हमारे लिये कल्याणकारी हो। उसका दिया हुआ (रातिः भद्रा) दान हमारे लिए मंगलकारी हो। हे (सुभग) उत्तम ऐश्वर्यशालिन् अग्ने ! हमारा (अध्वरः भद्रः) यज्ञ सुखप्रद हो। (उत प्रशस्तयः भद्राः) और उत्तम स्तुतियाँ भी कल्याण करनेवाली हों ॥ १९ ॥

[४६७] हे अग्ने ! (येन समत्सु सासहः) जिस मनसे तू संग्राममें अपने शत्रुओंको पराजित करता है। (भद्रं मनः वृत्रतूर्ये कृणुष्व) उसी प्रकार कल्याणकारी शोभन मेरा मन भी दुष्टोंको नाश करनेवाले इस संग्राममें कर। और (शर्धतां भूरि स्थिरा अव तनुहि) हिंसक शत्रुओंके अधिक दृढ सैन्योंको भी पराजित कर जिससे हम (अभिष्टिभिः ते वनेम) अभिलषित सुखोंसे युक्त होकर तेरी सेवा करें ॥ २० ॥

[४६८] (यं यजिष्ठं हव्यवाहनं दूतं अरतिं देवाः न्येरिरे) जिस अतिपूज्य, उत्तम बलको ग्रहण करके ले जानेवाले, देवोंके दूत और ऐश्वर्यवान् अग्निको विद्वान् लोग स्तुति द्वारा प्रेरित करते हैं। ऐसे (मनुः हितं गिरा ईळे) मनुष्योंके हितकारी उस अग्निकी मैं भी वाणीके द्वारा स्तुति करता हूँ ॥ २१ ॥

[४६९] हे मनुष्य ! (यः) जो तू (तिग्मजम्भाय राजते अग्नये) तीक्ष्ण दाढवाले तथा प्रकाशमान् अग्निके लिए (प्रयः गायसि) आनन्दसे स्तोत्र गाता है, वह (सूनृताभिः घृतेभिः आहुतिः अग्निः) उत्तम स्तुतियों एवं घीसे आहुति हुआ अग्नि तुझे (सुवीर्यं पिंशते) उत्तम बलसे संयुक्त करता है ॥ २२ ॥

भावार्थ— जो यह समझते हैं कि तेरे प्रसन्न होने पर ही उनकी कामनायें पूरी होंगी, वे ही वेदि बनाकर उसमें तुझे प्रदीप्त करके तुझे आहुति देते हैं, वे ही सोम रस निचोडते हैं। उन्हींका तू कल्याण करता है, तेरे द्वारा दिया गया दान भी उन्हींका कल्याण करता है, यज्ञ भी उनके लिए सुखप्रद होता है और स्तुतियां भी उनका कल्याण करती हैं, ऐसे मनुष्य ही ऐश्वर्योंको जीतते हैं ॥ १८-१९ ॥

युद्धोंमें अपने मनको दृढ करके शत्रुओंसे युद्ध करना चाहिए और उनको पराजित करना चाहिए। यदि मनमें साहस हो तो दृढसे दृढ शत्रुसेनाका भी नाश किया जा सकता है। मनुष्य अपने मनकी संकल्पशक्तिसे कठिनसे कठिन कार्य भी आसानीसे कर सकता है। पर यह संकल्पशक्ति तभी बढ सकती है, जब मनुष्य उस तेजस्वी परमात्माका ध्यान करे ॥ २० ॥

यह अग्नि अति पूज्य, देवोंका दूत और मनुष्योंका हित करनेवाला है। ऐसे उत्तम ज्वालाओंवाले तेजस्वी अग्निको जो प्रदीप्त करता है और उसके लिए आनन्दसे स्तोत्र गाता है, वह अग्निके तेज और बलसे युक्त होता है ॥ २१-२२ ॥

४७० यदीं घृतेभिराहुतो वाशीमग्निर्भरत उच्चाव च । असुर इव निर्णिजम् ॥ २३ ॥
४७१ यो हव्यान्यैरयता मनुर्हितो देव आसा सुगन्धिना ।
विवासते वार्याणि स्वध्वरो होता देवो अमर्त्यः ॥ २४ ॥
४७२ यदग्ने मर्त्यस्त्वं स्यामहं मित्रमहो अमर्त्यः । सहसः सूनवाहुत ॥ २५ ॥
४७३ न त्वा रासीयाभिशस्तये वसो न पापत्वाय सन्त्य ।
न मे स्तोतामतीवा न दुर्हितः स्यादग्ने न पापया ॥ २६ ॥
४७४ पितुर्न पुत्रः सुभृतो दुरोण आ देवाँ एतु प्र णो हविः ॥ २७ ॥
४७५ तवाहमग्न ऊतिभिर्नेदिष्ठाभिः सचेय जोषमा वसो । सदा देवस्य मर्त्यः ॥ २८ ॥

अर्थ— [४७०] (घृतेभिः आहुतः अग्निः यदि उच्च च अव वाशीं भरत) घृत धाराओंसे आहुति प्राप्त कर अग्नि जब ऊपर और नीचेके स्थानोंको अपने शब्दोंसे भर देता है, तब वह (असुरः इव निर्णिजं) महा पराक्रमी सूर्यके समान अपने तेजको प्रकट करता है ॥ २३ ॥

[४७१] (यः मनुः हितः देवः सुगन्धिना आसा हव्यानि ऐरयत) जो अग्नि स्वयं मनुष्योंका हित करनेवाला, दिव्य गुण युक्त और अपने कोमल गन्धवाले मुखसे हव्योंको देवोंके प्रति पहुंचाता है; तथा जो (सु अध्वरः होता देवः अमर्त्यः) तथा जो सुन्दर और हिंसारहित कर्मोंको करनेवाला देवोंको बुलानेवाला, तेजस्वी और अविनाशी है। वह अग्नि (वार्याणि विवासते) वरण करने योग्य श्रेष्ठ धनोंको प्रदान करता है ॥ २४ ॥

[४७२] हे (सहसः सूनो, आहुतः मित्रमहः) बलके पुत्र, उपासना योग्य और मित्रके समान पूजनीय अग्ने! (मर्त्यः अहं यत् त्वं) मरणधर्मवाला मैं यदि तेरी उपासना करूं तो (अमर्त्यः स्यां) मैं भी अमर हो जाऊं ॥ २५ ॥

[४७३] हे (वसो) सबको बसानेवाले अग्ने! मैं (त्वा अभिशस्तये न रासीय) तेरी किसी हिंसात्मक कर्म करनेके लिए स्तुति न करूं, (पापत्वाय न) किसी पाप कर्म करनेके लिए तेरी स्तुति न करूं! हे (सन्त्य) पूज्य! (मे स्तोता अमतीवा न) मेरा स्तोता बुरी बुद्धिवाला न हो, (न दुर्हितः स्यात्) हमारा कोई शत्रु न हो, हे (अग्ने) अग्ने! (न पापया) वह हमें पापसे दुःख न दे ॥ २६ ॥

[४७४] (नः पितुः पुत्रः सुभृतः) जिस प्रकार पितासे पुत्र अच्छी प्रकारसे पालन पोषण करने योग्य होता है, उसी प्रकार हमसे धारण करने योग्य यह अग्नि (दुरोणे देवान् आ नः हविः प्र एतु) यज्ञगृहमें देवोंकी ओर हमारी हविको अच्छी प्रकारसे ले जाये ॥ २७ ॥

[४७५] हे (वसो अग्ने) सब प्राणियों और लोकोंको बसानेहारे अग्ने! (देवस्य तव नेदिष्ठाभिः ऊतिभिः) उत्तम गुणोंसे युक्त तेरी अति समीपतम रक्षाओंसे सुरक्षित होकर (मर्त्यः अहं) मरणधर्मवाला मैं (सदा जोषं आ सचेय) तेरी प्रसन्नताको प्राप्त करूं ॥ २८ ॥

भावार्थ— जब अग्निमें घृतकी आहुतियां दी जाती हैं, तब यह इतने जोरसे प्रज्वलित होता है, कि इसके जलनेके शब्दसे सारी जगह भर जाती है और तब यह दूसरे भी सूर्यके समान चमकता दिखाई देता है। इस प्रकार वह प्रदीप्त होकर वह मनुष्योंका हित करता और अपनी ज्वालाओंसे वह हवियोंको देवोंतक पहुंचाता है। वह हमेशा हिंसारहित कर्मोंको करता और तेजस्वी तथा अविनाशी है। ऐसा अग्नि श्रेष्ठ धनोंको प्रदान करता है ॥ २३-२४ ॥

जो मनुष्य इस अमर अग्निकी उपासना करता है, वह मनुष्य भी अमर हो जाता है। जो हमेशा उत्तम पुरुषों और ज्ञानियोंकी संगतिमें रहता है, वह भी उत्तम और ज्ञानी होता है ॥ २५ ॥

हे अग्ने! किसी बुरे काम, हिंसा या पापकर्म करनेके लिए तेरी सहायताकी इच्छा न करें और न उन कामोंके लिए तेरी स्तुतियां करें। मेरी स्तुति करनेवाला बुद्धिहीन न हो, तथा कोई भी हमारा शत्रु हमें कष्ट न दे ॥ २६ ॥

जिस प्रकार पुत्र पिताके द्वारा सदा पालन और पोषणके योग्य होता है, उसी प्रकार यह अग्नि मनुष्यों द्वारा पोषणीय है। यह अग्नि पुष्ट होकर देवों अर्थात् शरीरस्थ इन्द्रियोंतक हवि या जीवनरस पहुंचाता है। इस प्रकार इन्द्रियोंके पुष्ट होने पर मनुष्य हमेशा स्वस्थ एवं प्रसन्न रहता है ॥ २७-२८ ॥

४७६ तव क्रत्वा सनेयं तव रातिभिरग्ने तव प्रशस्तिभिः ।
त्वामिदाहुः प्रमतिं वसो ममाग्ने हर्षस्व दातवे ॥ २९ ॥
४७७ प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तिरते वाजभर्मभिः । यस्य त्वं सख्यमावरः ॥ ३० ॥
४७८ तव द्रप्सो नीलवान् वाश ऋत्वियः इन्धानः सिष्णवा ददे ।
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥ ३१ ॥
४७९ तमागन्म सोभरयः सहस्रमुष्कं स्वभिष्टिमवसे । सम्राजं त्रासदस्यवम् ॥ ३२ ॥
४८० यस्य ते अग्ने अन्ये अग्नयः उपक्षितो वया इव ।
विपो न द्युम्ना नि युवे जनानां तव क्षत्राणि वर्धयन् ॥ ३३ ॥

अर्थ— [४७६] हे (अग्ने) उत्तम कर्म अर्थात् यज्ञसे युक्त होऊं (तव रातिभिः) तेरे दानोंसे मैं युक्त होऊं। और (तव प्रशस्तिभिः) तेरी प्रशंसाओंसे मैं युक्त होऊं। हे (वसो) सबको बसानेवाले! ज्ञानीजन (त्वामित प्रमतिं आहुः) तुझकोही सबसे उत्कृष्ट और ज्ञानवाला बतलाते हैं। अतः हे (अग्ने) अग्ने! (मम दातवे हर्षस्व) मुझे देनेके लिए प्रसन्न हो ॥ २९ ॥

[४७७] हे (अग्ने) अग्ने! (त्वं यस्य सख्यं आवरः) तू जिसके मित्रभावको स्वीकार करता है (सः वाजभर्मभिः सुवीराभिः तव ऊतिभिः) वह मनुष्य ज्ञान, बल और अन्नादिसे भरण पोषण करनेवाली तथा उत्तम वीरोंका संरक्षण करनेवाली तेरी रक्षाओंके द्वारा (प्रतिरते) विशेष रूपसे बढता है ॥ ३० ॥

१ त्वं यस्य सख्यं आवरः प्रतिरते— तू जिसके साथ मित्रता करता है, वह बढता है।

[४७८] हे (सिष्णो) सबको जीवनसे सींचनेवाले अग्ने! (द्रप्सः नीलवान् वाशः ऋत्वियः इन्धानः) ज्वालाओंवाले, नीले रंगके धुँयेवाले; कान्तिसे युक्त, ऋतु ऋतुमें यज्ञ करने योग्य, प्रकाशित होनेवाले, ऐसे (तव आददे) तेरे लिये हम आहुतियोंको प्रदान करते हैं (त्वं महीनां उषसां प्रियः असि) तू पूजाके योग्य और उषाओंका प्रिय है। तथा (क्षपः वस्तुषु राजसि) रात्रीमें वस्तुओंको प्रकाशित करता है ॥ ३१ ॥

[४७९] (सोभरयः अवसे) उत्तम रीतिसे भरणपोषण करनेवाले हम लोग अपनी रक्षाके लिये सहस्र-मुष्कं सु-अभिष्टिं, सम्राजं, त्रासदस्यवं) हजारों तेजवाले, उत्तम अभिलाषावाले, सुन्दर रूपसे युक्त, दस्युओं अर्थात् चोर लुटेरे तथा अन्य दुष्कर्मियोंको दण्ड देनेवाले (तं आगन्म) उस अग्निको प्राप्त हों ॥ ३२ ॥

त्रासदस्युः— यह अग्नि दुष्कर्मियोंको दण्ड देकर उन्हें भय पहुंचानेवाला है।

[४८०] हे (अग्ने) अग्ने! (यस्य ते अन्ये अग्नयः वयाः इव उपक्षितः) जिस तेरी दूसरी अग्नियाँ वृक्षकी शाखाकी तरह तुझसे बल प्राप्त करती हैं उसी प्रकार मैं भी (तव जनानां क्षत्राणि वर्धयन्) तेरे मनुष्योंके बलों और धनोंकी वृद्धि करता हुआ (विपः न द्युम्ना नि युवे) अन्य स्तोताकी तरह बहुतसे धनों और यशोंको प्राप्त करूँ ॥ ३३ ॥

भावार्थ— हे अग्ने! मैं तेरी सेवा हमेशा करता रहूँ, तुझे हमेशा हवि देता रहूँ, तेरी स्तुति सदा करता रहूँ, क्योंकि तू उत्तम बुद्धिवाला है। मैं यह जानता हूँ कि तू जिसके साथ मित्रता करता है, उस मनुष्यको तू प्रसन्न होकर धन देता है और उसकी रक्षा करके तू उसे हर तरहसे बढाता है ॥ २९-३० ॥

यह अग्नि अपनी उष्णतासे शरीरमें जीवन रसका संचार करता है। कान्तिसे युक्त, ऋतुके अनुसार काम करनेवाला तथा उषाओंका प्रिय है। अग्नि उषःकालमें प्रदीप्त किया जाता है, उस समय इस यज्ञाग्निकी किरण उदय होते हुए सूर्यकी किरणोंके साथ संयुक्त होती है। यह अग्नि दिनमें प्रकाशित होता ही है, पर रातमें भी प्रकाशित होता हुआ अन्य पदार्थोंको भी प्रकाशित करता है ॥ ३१ ॥

यह अग्नि तेजस्वी, उत्तम रूपवान्, दुष्टोंको दण्ड देनेवाला है। यह अन्य अग्नियोंका पोषण करनेवाला है। मैं उस अग्निके भक्तोंकी उन्नति करता हुआ स्वयं भी उसकी कृपासे उन्नत होता जाऊं ॥ ३२-३३ ॥

४८१ यमादित्यासो अद्रुहः पारं नयथ मर्त्यम् । मघोनां विश्वेषां सुदानवः ॥३४॥
४८२ यूयं राजानः कं चिच्चर्षणीसहः क्षयन्तं मानुषाँ अनु ।
वयं ते वो वरुण मित्रार्यमन् स्यामेदृतस्य रथ्यः ॥३५॥
४८३ अदान्मे पौरुकुत्स्यः पञ्चाशतं त्रसदस्युर्वधूनाम् । मंहिष्ठो अर्यः सत्पतिः ॥३६॥
४८४ उत मे प्रयियोर्वयियोः सुवास्त्वा अधि तुग्वनि ।
तिसृणां सप्ततीनां श्यावः प्रणेता भुवद् वसुर्दियानां पतिः ॥३७॥

[२०]

ऋषिः- सोभरिः काण्वः । देवता- मरुतः । छन्द- प्रगाथः = (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती)
१४ सतो विराट् ।

४८५ आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थाता समन्यवः । स्थिरा चिन्नमयिष्णवः ॥ १ ॥

अर्थ— [४८१] हे (अद्रुहः सुदानवः आदित्यासः) द्रोह न करनेवाले तथा उत्तम दान देनेवाले आदित्यो ! (विश्वेषां मघोनां) सभी ऐश्वर्यवानोंके बीचमें (यं मर्त्यं) जिस मनुष्य पर तुम कृपा करते हो, उसे संकटोंके (पारं नयथ) पार ले जाते हो ॥ ३४ ॥

[४८२] हे (चर्षणीसहः राजानः) शत्रुओंका पराभव करनेवाले तेजस्वी देवो ! (यूयं) तुम सब (मानुषान् क्षयन्तं) मनुष्योंको क्षीण करनेवाले (कंचित् अनु) किसीको भी नष्ट करो । (वरुण मित्र अर्यमन्) हे वरुण, मित्र और अर्यमा देवो ! (ते वयं) वेरे हम सब (वः ऋतस्य) तुम्हारे यज्ञके (रथ्यः स्याम) संचालन करनेवाले हों ॥ ३५ ॥

[४८३] (मंहिष्ठः अर्यः सत्पतिः) अत्यंत पूज्य, श्रेष्ठ और सज्जनोंका पालन करनेवाले (पौरुकुत्स्यः त्रसदस्युः) पुरुकुत्सके पुत्र त्रसदस्युने (मे) मुझे (पंचाशतं वधूनां अदात्) पचास स्त्रियां दीं ॥ ३६ ॥

पुरुकुत्स— जो बहुत सी बुराइयोंको दूर करता है ।

त्रसदस्युः— जो दस्युओं- दुष्टोंको डराता है ।

[४८४] (उत) और (सुवास्त्वाः तुग्वनि अधि) सुवास्त्वा नदीके किनारे (वयियोः प्रयियोः मे) वस्त्रादि लेकर जाते हुए मुझे (तिसृणां सप्ततीनां) दोसौ दस गायें तथा (श्यावः प्रणेता) तथा उत्तम रीतिसे ले जानेवाला एक काला बैल यह सब (वसुः भुवत्) धन दिया, अतः वह दाता (दियानां पतिः) दाताओंका स्वामी हुआ ॥ ३७ ॥

[२०]

[४८५] हे (प्रस्थावानः) वेगपूर्वक जानेवाले वीरो ! (आ गन्त) हमारे समीप आओ, (मा रिषण्यत) जानेसे इनकार न करो । हे (स-मन्यवः !) उत्साहसे परिपूर्ण वीरो ! (स्थिरा चित्) जो शत्रु स्थिर एवं अटल हो चुके हों, उन्हें भी (नमयिष्णवः) तुम झुकानेवाले हो, अतः हमारी यह प्रार्थना है कि हमसे तुम (मा अप स्थात) दूर न रहो ॥ १ ॥

भावार्थ— किसीसे भी द्रोह न करनेवाले तथा उत्तम दान देनेवाले ये देव सभी मनुष्योंके बीचमें जिस पर कृपा करते हैं, उस पर किसी तरहका संकट नहीं आने देते ॥ ३४ ॥

हे देवो ! जो दुष्ट मनुष्योंको क्षीण करनेवाले हों, उन्हें तुम नष्ट करो और हम भी तुम्हारा सामर्थ्य बढानेवाले यज्ञोंको करें । यज्ञसे देवोंका सामर्थ्य बढता है ॥ ३५ ॥

अनेक तरहकी दुष्टताको दूर करनेवाले तथा दुष्टोंको डरानेवाले वीरने स्त्रियोंको भी शिक्षित किया । राष्ट्रमें स्त्रियां भी शिक्षित हों ॥ ३६ ॥

दाता गण ब्राह्मणोंको गाय और बैल आदि पशुओंका दान करें ॥ ३७ ॥

इन वीरोंमें इतनी क्षमता विद्यमान है कि प्रबल तथा सुस्थिर शत्रुको भी वे विनम्र कर डालते हैं । इनका यह महान् पराक्रम विख्यात है । हमारी यही लालसा है कि, ये हमारे समीप आ जाएँ और हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

४८६ वीळुपविभिर्मरुत ऋभुक्षण आ रुद्रासः सुदीतिभिः ।
इषा नो अद्या गता पुरुस्पृहो यज्ञमा सोभरीयवः ॥ २ ॥

४८७ विद्मा हि रुद्रियाणां शुष्ममुग्रं मरुतां शिमीवताम् । विष्णोरेषस्य मीळ्हुषाम् ॥ ३ ॥

४८८ वि द्वीपानि पापतन् तिष्ठद् दुच्छुनोभे युजन्त रोदसी ।
प्र धन्वान्यैरत शुभ्रखादयो यदेजथ स्वभानवः ॥ ४ ॥

४८९ अच्युता चिद् वो अज्मन्ना नानदति पर्वतासो वनस्पतिः । भूमिर्यामेषु रेजते ॥ ५ ॥

अर्थ [४८६] (हे ऋभुक्षणः) वज्रधारी (रुद्रासः) शत्रु संघको रुलानेवाले (मरुतः) वीर मरुतो ! (सुदीतिभिः) अत्यन्त तेजस्वी (वीळुपविभिः) सुदृढ वज्रोंसे युक्त होकर (आ गत) इधर आओ । हे (पुरुस्पृहः) बहुतों द्वारा अभिलषित तथा (सोभरीयवः) सोभरी ऋषि पर अनुग्रह करनेकी इच्छा करनेवाले वीरो ! (नः यज्ञं) हमारे यज्ञोंमें (अद्य इषा आ आ) आज अन्नके साथ आओ ॥ २ ॥

[४८७] (विष्णोः एषस्य) व्यापक आकांक्षाओंकी पूर्ति करनेवाले (मीळ्हुषां) वृष्टि करनेवाले (शिमीवतां) उद्योगशील (रुद्रियाणां) रुद्रके पुत्र ऐसे (मरुतां) मरुतोंके (उग्रं) वीर भाव पैदा करनेवाले (शुष्मं) बलको (विद्महि) हम जानतेही हैं ॥ ३ ॥

[४८८] हे (शुभ्र-खादयः) सुफेद हस्तभूषण धारण करनेवाले (स्व-भानवः !) स्वयं तेजस्वी वीरो ! (यत्) जब तुम (एजथ) जाते हो, शत्रुदल पर धावा बोलनेके लिए हलचल करते हो, तब (द्वीपानि वि पापतन्) टापू तक नीचे गिर जाते हैं । (तिष्ठत्) सभी स्थावर चीजें (दुच्छुना) विपत्तिसे युक्त बन जाते हैं; (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक तथा भूलोक कांपने (युजन्त) लगते हैं । (धन्वानि) मरुभूमिकी बालू (प्र ऐरत) अधिक वेगसे उडने लगती है ॥ ४ ॥

[४८९] (वः अज्मन्) तुम्हारी चढाईके मौके पर (अच्युता चित्) न हिलनेवाले बडे बडे (पर्वतासः) पहाड तथा (वनस्पतिः) पेड भी (आ नानदति) दहाडने लगते हैं, वैसेही तुम (यामेषु) जब शत्रुदलपर आक्रमणार्थ यात्रा करना शुरु करते हो, तब (भूमिः रेजते) पृथ्वी विकंपित हो उठती है ॥ ५ ॥

भावार्थ— वज्र धारण करनेवाले तथा समूची जनताके प्यारे ये वीर मरुत् अपने तेजस्वी एवं प्रभावशाली हथियारोंके साथ इधर चले आवें और वे इस यज्ञमें यथेष्ट अन्न लावें ताकि यह यज्ञ उचित ढंगसे पूर्ण हो ॥ २ ॥

मरुत् वर्षा करनेवाले वीर उद्योगमें निरत तथा पराक्रमी हैं । उनका बल अनूठा है ॥ ३ ॥

साफसुथरे गहने पहन कर ये तेजःपूर्ण वीर जब शत्रुबल पर चढाई करनेके लिए अति वेगसे प्रस्थान करना शुरू करते हैं, तब भूमिके ऊपरी भाग नीचे गिर पडते हैं, वृक्ष जैसे स्थावर भी टूट गिरते हैं, आकाश एवं पृथ्वीमें कँपकँपी पैदा हो जाती है और रेगिस्तानकी बालुका तक वेगसे ऊपर उडने लगती है । इतनी भारी हलचल विश्वमें मचा देनेकी क्षमता वीरोंके आन्दोलनमें रहती है ॥ ४ ॥

(आधिदैविक क्षेत्रमें) वायु जोरसे बहने लग जाए, आँधी या तूफान प्रवर्तित हो जाए, तो पर्वतोंपरके वृक्ष तक डावाँडोल हो जाते हैं, तथा ऊँची पहाडी चोटियों पर पवनकी गति अतीव तीव्र प्रतीत होती है । वृक्षोंके परस्पर एक दूसरेसे घिस जानेसे भीषण ध्वनि प्रादुर्भूत होती है, तथा भूमि भी चलायमान प्रतीत होती है । (आधिभौतिक क्षेत्रमें) शत्रुओं पर जब वीर सैनिक धावा बोलते हैं, तब दृढमूल होने पर भी शत्रु विचलित हो जडमूलसे उखड जाता है ॥ ५ ॥

४९० अमाय वो मरुतो यातवे द्यौर्जिहीत उत्तरा बृहत् ।
यत्रा नरो देदिशते तनूष्वा त्वक्षांसि बाह्वोजसः ॥ ६ ॥
४९१ स्वधामनु श्रियं नरो महि त्वेषा अमवन्तो वृषप्सवः । वहन्ते अह्रुतप्सवः ॥ ७ ॥
४९२ गोभिर्वाणो अज्यते सोभरीणां रथे कोशे हिरण्यये ।
गोबन्धवः सुजातास इषे भुजे महान्तो नः स्परसे नु ॥ ८ ॥
४९३ प्रति वो वृषदञ्जयो वृष्णे शर्धाय मारुताय भरध्वम् । हव्या वृषप्रयाव्णे ॥ ९ ॥
४९४ वृषणश्वेन मरुतो वृषप्सुना रथेन वृषनाभिना ।
आ श्येनासो न पक्षिणो वृथा नरो हव्या नो वीतये गत ॥ १० ॥

अर्थ— [४९०] हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वः अमाय) तुम्हारी सेनाको (यातवे) जानेके लिए (यत्र) जिस ओर (बाहु-ओजसः) बाहु बलसे युक्त (नरः) तथा नेताके पद पर अधिष्ठित तुम वीर (त्वक्षांसि) सभी शक्तियोंको अपने (तनूषु) शरीरोंमें एकत्रित कर (आ देदिशते) प्रहार करते हो उधर (द्यौः) आकाश भी (उत्तरा) ऊपर ऊपर (बृहत्) विस्तृत एवं बृहदाकार बनते बनते (जिहीते) जा रहा है, ऐसा प्रतीत होता है ॥ ६ ॥

[४९१] (त्वेषाः) तेजस्वी, (अमवन्तः) बलवान्, (वृषप्सवः) बैलके जैसे हृष्टपुष्ट तथा (अ-ह्रुत-प्सवः) सरल स्वभाववाले (नरः) नेताके नाते वीर (स्व धां अनु) अपनी धारकशक्तिके अनुकूल अपनी (श्रियं महि) शोभा एवं आभाको अत्यधिक मात्रामें (वहन्ति) बढाते हैं ॥ ७ ॥

[४९२] (सोभरीणां हिरण्यये रथे) ऋषि सोभरिके सुवर्णमय रथके (कोशे) आसनपर (गोभिः) स्वरोंके साथ अर्थात् गानोंसहित (वाणः अज्यते) वाण नामक बाजा बजाया जाता है, (गो-बन्धवः) गौके बंधु याने गौको अपनी बहनके समान आदरकी दृष्टिसे देखनेवाले (सु-जातासः) अच्छे कुलमें उत्पन्न (महान्तः) और बडे प्रभावशाली ये वीर (नः इषे) हमारे अन्नके लिए (भुजे) भोगोंके लिए तथा (स्परसे) फलोंके लिए (नु) तुरन्त ही हमारे सहायक बनें ॥ ८ ॥

[४९३] (वृषत्-अञ्जयः !) सोमको सम्मानपूर्वक अर्पण करनेवाले हे याजको ! तुम (वः) तुम्हारे समीप जानेवाले (वृष्णे) बलवान् तथा (वृष-प्रयाव्णे) बैलके समान इठलाते हुए जानेवाले (मारुताय) मरुतोंके समुदायके (शर्धाय) बल बढानेके लिए (हव्या प्रति भरध्वं) हविष्यान्न प्रत्येकको पर्याप्त मात्रामें प्रदान करो ॥ ९ ॥

[४९४] हे (नरः मरुतः !) नेतृत्वगुणसे संपन्न वीर मरुतो ! (वृषन्-अश्वेन) बलिष्ठ घोडोंसे युक्त, (वृषे-प्सुना) बैलके समान सुदृढ दिखाई देनेवाले (वृष-नाभिना) और प्रबल नाभिसे युक्त (रथेन) रथसे (नः हव्या) हमारे हविर्द्रव्योंके (वीतये) सेवनार्थ (श्येनासः पक्षिणः न) बाज पंछियोंकी नाई वेगसे (वृथा आ गत) बिना किसी कष्टके आओ ॥ १० ॥

भावार्थ— इन वीरोंकी सेना जिस ओर मुड कर जाने लगती है और जिस दिशामें ये वीर शत्रु पर चढाई करते हैं, उसी ओर मानों स्वयं आकाशही विस्तृत एवं चौडा मार्ग बना दे रहा है, ऐसा प्रतीत होता है ॥ ६ ॥

तेजयुक्त बलिष्ठ जीवनका बलिदान करनेवाले और सरल प्रकृतिवाले वीर अपनी शक्तिके अनुसार निज शोभा बढाते हैं ॥ ७ ॥

सोभरी नामसे विख्यात ऋषियोंके सुवर्णविभूषित रथमें आसनपर बैठकर रमणीय गायनके स्वरोंसे वाण, बाजा बजाया जा रहा है, उस गानको सुनकर गोसेवामें निरत एवं उच्च परिवारमें उत्पन्न महान् वीर हमें अन्न, उपभोग तथा उत्साह दे दें ॥ ८ ॥

शक्तिमान् तथा प्रतापी मरुतोंको याजक बडे सम्मान एवं आदरसे हविसे परिपूर्ण अन्नकूट पर्याप्त रूपसे दें ॥ ९ ॥

बलवान् घोडोंसे युक्त एवं सुदृढ रथ पर बैठकर हविष्यान्नके सेवनार्थ वीर पुरुष बहुत जल्द एवं बडे वेगसे हमारे समीप आ जाएँ ॥ १० ॥

४९५ समानमञ्ज्येषां वि भ्राजन्ते रुक्मासो अधि बाहुषु । दविद्युतत्यृष्टयः ॥ ११ ॥
४९६ त उग्रासो वृषण उग्रबाहवो नकिष्टनूषु येतिरे ।
स्थिरा धन्वान्यायुधा रथेषु वोऽनीकेष्वधि श्रियः ॥ १२ ॥
४९७ येषामर्णो न सप्रथो नाम त्वेषं शश्वतामेकमिद् भुजे । वयो न पित्र्यं सहः ॥ १३ ॥
४९८ तान् वन्दस्व मरुतस्ताँ उप स्तुहि तेषां हि धुनीनाम् ।
अराणां न चरमस्तदेषां दाना मह्ना तदेषाम् ॥ १४ ॥

अर्थ— [४९५] (एषां) इन सभी वीरोंका (अञ्जि) गणवेश (समानं) एकरूप है, इनके गलेमें (रुक्मासः) सुवर्णके बने हुए सुन्दर हार (वि भ्राजन्ते) चमकते हैं और (बाहुषु अधि) भुजाओं पर (ऋष्टयः) हथियार (दविद्युतति) प्रकाशमान हो रहे हैं ॥ ११ ॥

[४९६] (उग्रासः) मनमें किंचित् भयका संचार करानेवाले, (वृषणः) बलिष्ठ (उग्र-बाहवः) तथा सामर्थ्ययुक्त बाहुओंसे युक्त (ते) वे वीर मरुत् (तनूषु) अपने शरीरोंकी रक्षा करनेके कार्यमें (नकिः येतिरे) सुतरां प्रयत्न नहीं करते हैं। हे वीरो ! (वः रथेषु) तुम्हारे रथोंमें (स्थिरा) अनेक अटल एवं दृढ (धन्वानि) धनुष्य तथा (आयुधा) कई हथियार हैं, अतएव (अनीकेषु अधि) सेनाके अग्रभागोंमें तुम्हें (श्रियः) विजयजन्य शोभा अलंकृत करती है ॥ १२ ॥

[४९७] (अर्णः न) हलचलसे युक्त जलप्रवाहकी नाईं (सप्रथः) चतुर्दिक् फैलनेवाले (त्वेषं) तेजःपूर्ण ढंगका जो (शश्वतां येषां) इन शाश्वत वीरोंका (नाम) यशोवर्णन है, (एकं इत्) यही एकमात्र (सहः) सामर्थ्य देनेवाला है और (पित्र्यं वयः न) पितासे प्राप्त अन्नके समान (भुजे) उपभोगके लिए सर्वथैव योग्य है ॥ १३ ॥

[४९८] (तान् मरुतः) उन मरुतोंका (वन्दस्व) अभिवादन करो, (तान् उपस्तुहि) उनकी सराहना करो, (हि) क्योंकि (धुनीनां तेषां) शत्रुओंको हिलानेवाले उन वीरोंमें (अराणां चरमः न) श्रेष्ठ एवं कनिष्ठ यह भेदभाव नहीं के बराबर है, अर्थात् सभी समान हैं और किसी भी प्रकारकी विषमताके लिए जगह नहीं है, (तत् एषां तत् एषां) इनके (दाना मह्ना) दान बडे महत्त्वपूर्ण होते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ— इन सभी वीरोंकी वेशभूषोंमें कहीं भी विभिन्नताका नाम तक नहीं पाया जाता है। इनके गणवेषकी एकरूपता या समानता प्रेक्षणीय है। सबके गलेमें समान रूपके हार पडे हुए हैं और सभीके हाथोंमें सदा हथियार झिलमिल कर रहे हैं ॥ ११ ॥

ये वीर बडे ही बलिष्ठ तथा उग्र हैं और इनकी भुजाओंमें असीम बल एवं शक्ति विद्यमान है। शत्रुदलसे जूझते समय अपने प्राणोंकी भी पर्वाह ये नहीं करते हैं। इनके रथोंमें सुदृढ धनुष्य रखे जाते हैं, तथा हथियार भी पर्याप्त मात्रामें रखे जाते हैं। यही कारण है कि, युद्धभूमिमें ये ही हमेशा विजयी ठहरते हैं ॥ १२ ॥

जिसमें वीरोंके तेजस्वी तथा शाश्वत यशका बखान किया हो, वही काव्य शक्ति बढानेमें सहायक होता है। वह जलके समान सभी जगह फैलनेवाला तथा बपौतीके जैसे भोग्य और स्फूर्तिदायक है ॥ १३ ॥

मरुतोंका अभिवादन करके उनकी सराहना करनी चाहिए। सभी प्रकारके शत्रुओंको विकंपित तथा विचलित करनेकी क्षमता इन वीरोंमें है। उनमें किसी प्रकारकी विषमता नहीं है, अतः कोई भी ऊँचा या नीचा मरुतोंके संघमें नहीं पाया जाता है। सभी साम्यावस्थाकी अनुभूति पाते हैं। इनके दान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं ॥ १४ ॥

×

४९९ सुभगः स व ऊतिष्वास पूर्वासु मरुतो व्युष्टिषु । यो वा नूनमुतासति ॥ १५ ॥
५०० यस्य वा यूयं प्रति वाजिनो नर आ हव्या वीतये गथ ।
अभि ष द्युम्नैरुत वाजसातिभिः सुम्ना वो धूतयो नशत् ॥ १६ ॥
५०१ यथा रुद्रस्य सूनवो दिवो वशन्त्यसुरस्य वेधसः । युवानस्तथेदसत् ॥ १७ ॥
५०२ ये चार्हन्ति मरुतः सुदानवः स्मन्मीळ्हुषश्चरन्ति ये ।
अतश्चिदा न उप वस्यसा हृदा युवान आ ववृध्वम् ॥ १८ ॥
५०३ यून ऊ षु नविष्ठया वृष्णः पावकाँ अभि सोभरे गिरा । गाय गा इव चर्कृषत् ॥ १९ ॥

अर्थ— [४९९] हे (मरुतः !) मरुतो ! (उत पूर्वासु व्युष्टिषु) पहलेके दिनोंमें (यः) जो (वा नूनं असति) तुम्हारा ही बनकर रहा, (सः) वह (वः ऊतिषु) तुम्हारी संरक्षणकी आयोजनाओंसे सुरक्षित होकर सचमुच (सु- भगः आस) भाग्यशाली बन गया ॥ १५ ॥

[५००] हे (धूतयः नरः !) शत्रुओंको विकम्पित कर देनेवाले वीर नेतागण ! (यूयं) तुम (यस्य वा वाजिनः) जिस अन्नयुक्त पुरुषके समीप विद्यमान (हव्या) हविर्द्रव्योंके (वीतये) सेवनार्थ (आ गथ) जाते हो, (सः) वह (द्युम्नैः) रत्नोंके (उत) तथा (वाज-सातिभिः) अन्न-दानोंके फलस्वरूप (वः सुम्ना) तुम्हारे सुखोंको (अभि नशत्) पूर्ण रूपसे भोगता है ॥ १६ ॥

[५०१] (असु-रस्य वेधसः) जीवन देनेवाले ज्ञानी (रुद्रस्य युवानः सूनवः) वीरभद्रके पुत्र तथा युवा वीर मरुत् (दिवः) स्वर्गसे आकर (यथा) जैसे (वशन्ति) इच्छा करेंगे, (तथा इत्) उसी प्रकार हमारा बर्ताव (असत्) रहे ॥ १७ ॥

[५०२] (ये) जो (सु-दानवः मरुतः) भली भाँति दान देनेवाले मरुतोंका (अर्हन्ति) सत्कार करते हैं (ये च) और जो (मीळहुषः) उन दयासे विचरनेवाले वीरोंके अनुकूल (स्मत् चरन्ति) आचरण रखते हैं, हम भी ठीक उन्हींके समान बर्ताव रखते हैं, (अतः चित्) इसीलिए हे (युवानः !) नवयुवक वीरो ! (वस्यसा हृदा) उदार अन्तःकरणपूर्वक (नः) हमारी ओर (उप आ आ ववृध्वं) आगमन करके हमारी समृद्धि करो ॥ १८ ॥

[५०३] हे (सोभरे !) ऋषि सोभरि ! (यूनः) युवक (वृष्णः) बलवान् तथा (पावकान्) पवित्रता करनेवाले वीरोंको लक्ष्यमें रखकर (नविष्ठया गिरा) अभिनव वाणीसे, स्वरसे, (चर्कृषत्) खेत जोतनेवाला किसान (गाः इव) जिस प्रकार बैलोंके लिए गाने या तराने कहता है, वैसे ही (सु अभि गाय) भली भाँति काव्य गायन करो ॥ १९ ॥

भावार्थ— यदि कोई एक बार इन वीरोंका अनुयायी बन जाए, तो सचमुच उसे भाग्यवान् समझनेमें कोई आपत्ति नहीं । उसके भाग्य खुल जाएँगे, इसमें क्या संशय ? ॥ १५ ॥

ये वीर जिसके घरका सेवन करते हैं, वह रत्न, अन्न तथा सुखोंसे युक्त होता है ॥ १६ ॥

दूसरोंकी रक्षाके लिए अपना जीवन देनेवाले नवयुवक वीर स्वर्गीय स्थानमेंसे हमारे निकट आ जायँ और हमारा आचरण भी उनकी निगाहमें अनुकूल एवं प्रिय बने ॥ १७ ॥

वीर मरुत् दानी हैं और करुणाभरी निगाहसे सहायता करते हैं । चूँकि हम उनका सत्कार करते हैं, अतः ये वीर हमारे समीप आ जायँ और हम पर अनुग्रह करें ॥ १८ ॥

हल चलाते समय जैसे काश्तकार बैलोंको रिझानेके लिए गाना गाता रहता है, वैसे ही युवक, बलिष्ठ एवं पवित्र वीरोंके वर्णनोंसे युक्त वीरगीतोंका गायन तुम करते रहो ॥ १९ ॥

५०४ साहा ये सन्ति मुष्टिहेव हव्यो विश्वासु पृत्सु होतृषु ।
वृष्णश्चन्द्रान्न सुश्रवस्तमान् गिरा वन्दस्व मरुतो अह ॥ २० ॥
५०५ गावश्चिद् घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः । रिहते ककुभो मिथः ॥ २१ ॥
५०६ मर्तश्चिद् वो नृतवो रुक्मवक्षस उप भ्रातृत्वमायति ।
अधि नो गात मरुतः सदा हि व आपित्वमस्ति निध्रुवि ॥ २२ ॥
५०७ मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता सुदानवः । यूयं सखायः सप्तयः ॥ २३ ॥
५०८ याभिः सिन्धुमवथ याभिस्तूर्वथ याभिर्दशस्यथा क्रिविम् ।
मयो नो भूतोतिभिर्मयोभुवः शिवाभिरसचद्विषः ॥ २४ ॥

अर्थ— [५०४] (होतृषु) शत्रुको चुनौती देनेवाले (विश्वासु पृत्सु) सभी सैनिकोंमें (हव्यः मुष्टि-हा इव) चुनौती देनेवाले मुष्टियोद्धा - सरीखे नाईं (सहाः सन्ति , जो) शत्रुदलके भीषण आक्रमणको सहन करनेकी क्षमता रखते हैं, उन (वृष्णः) बलिष्ठ (चन्द्रान् न) चन्द्रमाके समान आनन्ददायक (सु-श्रवस्तमान्) निर्मल यशसे युक्त (मरुतः अह) मरुत् वीरोंकी ही (गिरा वन्दस्व) सराहना अपनी वाणीसे करो ॥ २० ॥

[५०५] हे (स-मन्यवः मरुतः !) उत्साही वीर मरुतो ! (गावः चित्) तुम्हारी माताएँ गौएँ (स-जात्येन) एकही जातिकी होनेके कारण (स-बन्धवः) अपनेही ज्ञातिभाइयोंको, बैलोंको (ककुभः) विभिन्न दिशाओंमें जाने पर भी (मिथः रिहते घ) एक दूसरको प्रेमपूर्वकही चाटती रहती हैं ॥ २१ ॥

[५०६] हे (नृतवः) नृत्य करनेवाले तथा (रुक्म-वक्षसः मरुतः !) सुवर्णोंके हार छाती पर धारण करनेवाले वीर मरुत् गण ! (मर्तः चित्) मानव भी (वः भ्रातृत्वं) तुम्हारे भाईपनको (उप आ अयति) पानेके लिए योग्य ठहरता है, इसीलिए (नः अधि गात) हमारे साथ रहकर गायन करो, (हि) क्योंकि (वः आपित्वं) तुम्हारी मित्रता (सदा) हमेशा (नि-ध्रुवि अस्ति) न टलनेवाली है ॥ २२ ॥

[५०७] (सु-दानवः) दानी, (सखायः) मित्रवत् बर्ताव रखनेवाले तथा (सप्तयः) सात सात पुरुषोंकी एक पंक्ति बनाकर यात्रा करनेवाले (मरुतः !) वीर मरुतो ! (यूयं) तुम (नः) हमारे लिए (मारुतस्य भेषजस्य) वायुमें विद्यमान औषधि द्रव्यको (आ वहत) ले आओ ॥ २३ ॥

[५०८] हे (मयो-भुवः) सुख देनेवाले (अ-सच-द्विषः) एवं अजातशत्रु वीरो ! (याभिः ऊतिभिः) जिन संरक्षक शक्तियोंसे तुम (सिन्धुं अवथ) समुद्रकी रक्षा करते हो (याभिः तूर्वथ) जिन शक्तियोंके सहारे शत्रुका विनाश करते हो, (याभिः) जिनकी सहायतासे (क्रिविं दशस्यथ) जलकुंड तैयार कर देते हो, उन्हीं (शिवाभिः) कल्याणप्रद शक्तियोंके आधार पर (नः मयः भूत) हमें सुख देनेवाले बनो ॥ २४ ॥

भावार्थ— शत्रुओंपर धावा करनेवाले सभी सैनिकोंमें जिस भाँति मुष्टियोद्धा पहलवान अधिक बलवान् होता है, उसी प्रकार सभी वीर शत्रुदलका आक्रमण बरदाश्त कर सकें ऐसे बलिष्ठ, आनन्द बढानेवाले तथा कीर्तिमान् वीरोंकी प्रशंसा करो ॥ २० ॥

मरुतोंकी माताएँ-गौएँ भले ही किसी भी दिशामें चली जाएँ, तो भी प्यारसे एक दूसरेको चाटने लगती हैं। (अधिभूतमें) वीरोंकी दयालु माताएँ अपने भाइयों, बहनों एवं वीर पुत्रों और सभी वीरोंको प्यारसे गले लगाती हैं ॥ २१ ॥

वीर सैनिक हर्षपूर्वक नृत्य करनेवाले तथा कई अलंकार अपने वक्षःस्थल पर धारण करनेवाले हैं। मानवको भी उनकी मित्रता पाना सुगम है, योग्यता बढने पर वह मरुतोंका साथी बन जाता है और वह मित्रतापूर्ण सम्बन्ध एक बार प्रस्थापित होने पर अटूट बना रहता है ॥ २२ ॥

ये वीर एक एक पंक्तिमें सात सात इस तरह मिलकर चलनेवाले हैं और अच्छे ढंगके उदारचेता मित्र भी हैं। हमारी इच्छा है कि ये हमारे लिए वायुमंडलमें विद्यमान औषधिको ले आएँ ॥ २३ ॥

ये वीर अपनी शक्तियोंसे समुद्र एवं नदियोंकी रक्षा करते हैं, शत्रुदलको मटियामेट कर देते हैं, जनताको पानी पीनेको मिले, इसलिए सुविधाएँ पैदा कर देते हैं और सभी लोगोंकी सुविधाका प्रबन्ध कर डालते हैं ॥ २४ ॥

५०९ यत् सिन्धौ यदसिक्न्यां यत् समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः । यत् पर्वतेषु भेषजम् ॥ २५ ॥
५१० विश्वं पश्यन्तो बिभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत ।
क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न इष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥ २६ ॥

[२१]

ऋषिः-१८ सोभरिः काण्वः । देवता- इन्द्र १७-१८ चित्रः । छन्द-प्रगाथः-(विषमा ककुप्, समा सतो बृहती)।

५११ वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः । वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥
५१२ उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवो-ग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥
५१३ आ याहीम इन्दवो ऽश्वपते गोपत उर्वरापते । सोमं सोमपते पिब ॥ ३ ॥

अर्थ— [५०९] हे (सु-बर्हिषः मरुतः !) उत्तम तेजस्वी वीर मरुतो ! (यत्) जो (सिन्धौ भेषजं) सिन्धुनदीमें औषधिद्रव्य है, (यत् असिक्न्यां) जो असिक्नीके प्रवाहमें है, (यत् समुद्रेषु) जो समुद्रमें है और (यत् पर्वतेषु) जो पर्वतों पर है, वह सभी औषधिद्रव्य तुम्हें विदित है ॥ २५ ॥

[५१०] हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (विश्वं पश्यन्तः) सब कुछ देखनेवाले तुम (तनूषु) हमारे शरीरोंमें (आ बिभृथ) पुष्टि उत्पन्न करो और (तेन) उस ज्ञानसे (नः अधि वोचत) हमसे बोलो; इसी प्रकार (नः आतुरस्य) हममें जो बीमार हो, उसके (रपः क्षमा) दोषकी शांति करके (विह्रुतं) टूटे हुए अवयवको (पुनः इष्कर्त) फिरसे ठीक बिठाओ ॥ २६ ॥

[२१]

[५११] हे (अ-पूर्व्य) अपूर्व इन्द्र ! (भरन्तः अवस्यवः वयं) अन्न देनेवाले, तथा रक्षाकी इच्छा करनेवाले हम (चित्रं त्वां) विलक्षण शक्तिवाले तुमको (कच्चिद् स्थूरं न) जैसे लोग किसी विद्वान्को बुलाते हैं, उसी तरह (वाजे) संग्राममें (हवामहे) बुलाते हैं ॥ १ ॥

[५१२] हे इन्द्र ! हम (कर्मन्) संग्रामादि कामोंमें (ऊतये) संरक्षणके लिए (त्वा उप) तुमकोही पास [बुलाते हैं], (यः धृषत्) जो शत्रुओंको मारता है, (सः उग्रः युवा) वह वीर तथा तरुण इन्द्र (नः चक्राम) हमारे पास आवे। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सखायः) हम सब मित्रगण (सानसिं) दान देनेवाले और (अवितारं) संरक्षण करनेवाले (त्वां इत् ववृमहे) तुम्हें ही वरण करते हैं ॥ २ ॥

[५१३] हे (अश्व-पते, गो-पते, उर्वरा-पते) घोडे, गाय और भूमिके स्वामिन् इन्द्र ! (इमे इन्दवः) ये सोम [तुम्हारे लिए हैं] अतः (आ याहि)-आओ और हे (सोम-पते) सोमके पालक इन्द्र ! (सोमं पिब) सोम पिओ ॥ ३ ॥

भावार्थ— सिन्धु, असिक्नी, समुद्र तथा पर्वतों पर जो रोगनिवारक औषधि हों, उन्हें जानना वीरोंके लिए आनिवार्य है ॥ २५ ॥

ये वीर चिकित्सा करनेवाले कविराज या वैद्य हैं और विविध औषधियोंसे भली भाँति परिचित हैं। वे हमें पुष्टिकारक औषध प्रदान कर हृष्टपुष्ट बना दें । जो कोई रोगग्रस्त हो, उसके शरीरमें पाये जानेवाले दोषको हटाकर और छिन्नविच्छिन्न अंगको फिर ठीक प्रकारसे जोडकर पहले जैसे कार्यक्षम बना दें ॥ २६ ॥

हे अपूर्व शक्तिशाली इन्द्र ! संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम तुम्हें संग्राममें सहायार्थ बुलाते हैं ॥ १ ॥

वह वीर और तरुण इन्द्र हमारे समीप आवे, हम सब मित्रगण संरक्षण करनेवाले तुम इन्द्रका ही वरण करते हैं ॥ २ ॥

हे पशुओंके स्वामिन् इन्द्र ! तुम्हारे लिए ये सोमरस निचोडकर रखे हुए हैं, अतः तुम इन्हें पीओ ॥ ३ ॥

५१४ वयं हि त्वा बन्धुमन्तमबन्धवो विप्रास इन्द्र येमिम ।
या ते धामानि वृषभ तेभिरा गहि विश्वेभिः सोमपीतये ॥ ४ ॥
५१५ सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे । अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ५ ॥
५१६ अच्छा च त्वैना नमसा वदामसि किं मुहुश्चिद् वि दीधयः ।
सन्ति कामासो हरिवो ददिष्ट्वं स्मो वयं सन्ति नो धियः ॥ ६ ॥
५१७ नूत्ना इदिन्द्र ते वयमूती अभूम नहि नू ते अद्रिवः । विद्मा पुरा परीणसः ॥ ७ ॥
५१८ विद्मा सखित्वमुत शूर भोज्य१मा ते ता वज्रिन्नीमहे ।
उतो समस्मिन्ना शिशीहि नो वसो वाजे सुशिप्र गोमति ॥ ८ ॥

अर्थ— [५१४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अ-बन्धवः वयं) बन्धु- बान्धव रहित हम (विप्रासः) ज्ञानी (बन्धुमन्तं त्वा हि) भाइयोंवाले तुमकोही [भाईके रूपमें] (येमिम) मानते हैं, हे (वृषभः) कामनाओंको पूर्ण करनेवाले इन्द्र ! (ते या धामानि) तुम्हारे जो तेज हैं, (तेभिः विश्वेभिः) उन समस्त तेजोंके साथ (सोम पीतये) सोम- पानके लिए (आ गहि) आओ ॥ ४ ॥

[५१५] हे (इन्द्र) इन्द्र! (गो-श्रीते) गौके दूध, दहीसे मिश्रित हुए, (मदिरे) उत्साहको देनेवाले, (विवक्षणे) अत्यन्त प्रिय (ते मधौ) तेरे इस सोमके यज्ञमें (वयः यथा) पक्षियोंके समान (सीदन्तः) बैठे हुए हम (त्वां अभि नोनुमः) तुम्हारी ही स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

[५१६] हे इन्द्र हम (एना नमसा) इस स्तुतिके द्वारा (त्वा च अच्छ वदामसि) तुम्हारी उत्तम प्रशंसा करते हैं, तुम (मुहुः किंचिद् वि दीधयः) बार बार क्या सोचते हो ? हे (हरिवः) घोडोंवाले इन्द्र ! हमारी (कामासः सन्ति) अभिलाषायें हैं, (त्वं ददिः) तुम [उनको] देनेवाले हो (वयं स्मः) हम हैं, तथा (नः धियः सन्ति) हमारी स्तुतियां भी हैं ॥ ६ ॥

[५१७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते ऊती) तुम्हारे संरक्षणमें (वयं नूत्नाः इत् अभूम) हम [सर्वदा] नये ही होते हैं । हे (अद्रि-वः) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! (पुरा) पहले तुमको (परीणसः न हि विद्म) सर्वत्र व्याप्त नहीं जानते थे, (नु) पर अब (ते) तुमको वैसा जानते हैं ॥ ७ ॥

[५१८] हे (शूर वज्रिन्) शूरवीर तथा वज्रधारी इन्द्र ! हम (सखित्वं उत भोज्यं विद्म) तुम्हारी मित्रता और भोग्य पदार्थोंको जानते हैं, अतः (ते ता आ ईमहे) तुमसे उनको मांगते हैं, (उत) और हे (वसो शिप्रिन्) सबको बसानेवाले तथा शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्र ! (गो-मति अस्मिन् वाजे) गौवोंवाले इस अन्नमें (नः सं आ शिशीहि) हमें रख ॥ ८ ॥

भावार्थ— भाइयोंसे रहित हम, हे इन्द्र ! तुम्हें ही भाईके रूपमें स्वीकार करते हैं, अतः तुम्हारे जो तेज हैं, उन समस्त तेजोंके साथ आओ ॥ ४ ॥

सोमरसमें गायका दूध और दही मिलाया जाता है, तब वे रस पीनेके योग्य स्वादिष्ट होते हैं । इन सोमरसोंको तैय्यार करनेके साथ ही साथ स्तोत्र भी बोले जाते हैं ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! हम कबसे तुम्हारी प्रार्थना कर रहे हैं, तुम फिर सोच विचार क्या करते हो, तुम शीघ्र आकर हमारी अभिलाषायें पूर्ण करो ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तेरे संरक्षणमें हम सदा नये ही रहते हैं । अतः सर्वत्र व्याप्त तुमको हम पूरी तरह नहीं जान सकते । भगवान्को पूर्ण रीतिसे जानना सर्वथा असंभव है ॥ ७ ॥

हे शूरवीर इन्द्र ! हम तुमसे मित्रता और भोग्य पदार्थोंको मांगते हैं । हे निवासक तथा शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्र ! गौओंसे मिलनेवाले इस अन्नमें हमें सम्यक् रीतिसे रख । हमें ऐसा अन्न मिले ऐसा कर ॥ ८ ॥

५१९ यो न॑ इ॒दमि॑दं पु॒रा प्र वस्य॑ आ॒नि॒नाय॒ तमु॑ वः स्तुषे । सखा॑य॒ इन्द्र॑मू॒तये॑ ॥ ९ ॥

५२० हर्य॑श्वं॒ सत्प॑तिं चर्षणी॒सहं॒ स हि ष्मा॒ यो अम॑न्दत ।
आ तु न॒ः स व॑यति॒ गव्य॒मश्व्यं॑ स्तो॒तृभ्यो॑ म॒घवा॑ श॒तम् ॥ १० ॥

५२१ त्वया॑ ह स्वि॒द् यु॒जा व॒यं प्रति॑ श्व॒सन्तं॑ वृषभ ब्रुवीमहि । सं॒स्थे जन॑स्य॒ गोम॑तः ॥ ११ ॥

५२२ जये॑म का॒रे पु॑रुहूत का॒रिणो॒ ऽभि ति॑ष्ठेम दू॒ढ्यः॑ ।
नृभि॑र्वृ॒त्रं ह॒न्याम॑ शूशु॒याम॒ चा ऽवे॑रिन्द्र॒ प्र णो॒ धियः॑ ॥ १२ ॥

५२३ अ॒भ्रा॒तृ॒व्यो अ॒ना त्व मना॑पिरिन्द्र ज॒नुषा॑ स॒नाद॑सि । यु॒धेदा॑पि॒त्वमि॑च्छसे ॥ १३ ॥

५२४ नकी॑ रे॒वन्तं॑ स॒ख्याय॑ विन्दसे॒ पीय॑न्ति ते सु॒राश्वः॑ ।
य॒दा कृ॒णोषि॑ नद॒नुं समू॑ह॒स्या दित् पि॒तेव॑ हूयसे ॥ १४ ॥

अर्थ— [५१९] हे (सखायः) मित्रो ! (यः) जो इन्द्र (पुरा) पहले (इदं इदं वस्यः) इस धनको (नः) हमारे लिए (प्र आ निनाय) लाया था, (तं इन्द्रं उ) उसी इन्द्रकी (वः ऊतये) तुम्हारे संरक्षणके लिए (स्तुषे) मैं स्तुति करता हूँ ॥ ९ ॥

[५२०] (यः अमन्दत) जो आनन्दित होता है, (सः हि) वह ही (हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं) हरित वर्णके घोडेवाले, सज्जनोंके पालक, शत्रुओंका पराजय करनेवाले इन्द्रकी (स्म) स्तुति करता है (सः) वह (मघवा) ऐश्वर्यवान् इन्द्र (नः स्तोतृभ्यः) हम स्तोताओंके लिए (शतं गव्यं अश्व्यं) सैकडों गायों और घोडोंसे युक्त धन (तु आ वयति) देता है ॥ १० ॥

[५२१] हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! (त्वया युजा स्वित्) तुम्हारी सहायतासे ही (वयं) हम (गोमतः जनस्य संस्थे) गायोंवाले मनुष्योंकी संस्थामें रहकर (श्वसन्तं) लम्बी सांसें लेनेवाले थके शत्रुको (प्रति ब्रुवीमहि) योग्य उत्तर दें ॥ ११ ॥

[५२२] हे (पुरु-हूत) बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! हम (कारे) युद्धमें (कारिणः) हिंसा कर्म करनेवाले शत्रुओंको (जयेम) जीतें, तथा (दु-ढ्यः) दुष्ट बुद्धिवालों पर भी (अभि तिष्ठेम) शासन करें। (नृभिः) मरुतोंकी सहायतासे (वृत्रं हन्याम) वृत्रको मारें, फिर तुम्हारा (शूशुयाम) यश बढावें। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः धियः प्र अव) हमारी बुद्धियोंकी रक्षा करो ॥ १२ ॥

[५२३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं जनुषा अ-भ्रातृव्यः) तुम जन्मसे ही शत्रुरहित हो , तथा (सनात्) चिरकालसे (अना अनापिः असि) बन्धुरहित हो, तुम (आपित्वं) बन्धुत्वको (युधा इत् इच्छसे) युद्धसे ही चाहते हो ॥ १३ ॥

[५२४] हे इन्द्र तुम (रेवन्तं) धनवान्को ही (सख्याय न किः विन्दसे) मित्रताके लिए प्राप्त नहीं करते हो, क्योंकि (सुरा-श्वः) शराब पीकर धनकी वृद्धिको प्राप्त हुए वे लोग (ते पीयन्ति) तुम्हारी हिंसा करना चाहते हैं, (यदा) जब (नदनुं) स्तुति करनेवालेको (कृणोषि) धनवाला करते हो, (सं ऊहसि) और उसका पोषण करते हो, (आत् इत्) तब (पिता इव हूयसे) पिताके समान बुलाये जाते हो ॥ १४ ॥

भावार्थ— जो इन्द्र हमें धन प्रदान करता है, उसी इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं, ताकि वह हमारी रक्षा करे ॥ ९ ॥

सज्जनोंके पालन करनेवाले इन्द्रकी सदा हर्षयुक्त चित्तसे प्रार्थना करनी चाहिए। तब वह प्रसन्न होकर हमें ऐश्वर्य प्रदान करेगा। दूसरोंकी प्रशंसा सदा निर्मल चित्तसे ही करनी चाहिए ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुमसे अच्छी तरह सुरक्षित होकर हम युद्धोंमें शत्रुओंका पराभव करें ॥ ११ ॥

युद्धमें शत्रुता करनेवाले शत्रुओंको हम जीतें। दुष्टबुद्धिवालोंपर शासन करें। वीरोंके साथ रहकर शत्रुको मारें, यश बढायें। अतः हे इन्द्र ! हमारी बुद्धियोंकी सुरक्षा कर ॥ १२ ॥

हे इन्द्र ! तुम जन्मसे ही शत्रुरहित हो। तुम सदा बन्धुरहित-शत्रुरहित हो। तुम बन्धुपन युद्धसे चाहते हो ॥ १३ ॥

यज्ञ न करनेवाले धनवान्को तुम मित्र नहीं बनाते हो, क्योंकि वे शराबसे मस्त होकर तुम्हारी हिंसा करना चाहते हैं। इन्द्र अहंकारियोंका सहायक कभी नहीं होता ॥ १४ ॥

५२५ मा ते अमाजुरो यथा मूरास इन्द्र सख्ये त्वावतः । नि षदाम सचा सुते ॥ १५ ॥
५२६ मा ते गोदत्र निरराम राधस इन्द्र मा ते गृहामहि ।
दृळहा चिदर्यः प्र मृशाभ्या भर न ते दामान आदभे ॥ १६ ॥
५२७ इन्द्रो वा घेदियन्मघं सरस्वती वा सुभगा ददिर्वसु । त्वं वा चित्र दाशुषे ॥ १७ ॥
५२८ चित्र इद् राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।
पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्टया सहस्रमयुता ददत् ॥ १८ ॥

[२२]

(ऋषि- १८ सोभरिः काण्वः । देवता- अश्विनौ १-६ प्रगाथ = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), छन्द- ७ बृहती, ८ अनुष्टुप्. ११ ककुप्, १२ मध्येज्योतिः प्रगाथः= (९, १३, १५, १७ ककुप्; १०, १४, १६, १८ सतोबृहती) ।

५२९ ओ त्यमह्व आ रथ- मद्या दंसिष्ठमूतये ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी आ सूर्यायै तस्थथुः ॥ १ ॥

अर्थ— [५२५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तुम्हारे हम (त्वावतः सख्ये) तुम्हारी मित्रतामें (मूरासः यथा) मूर्खोंके समान (अमाजुरः मा) घरमेंही वृद्ध न हों, हम (सुते) सोमयागमें (सचा निषदाम) संघटित होकर बैठेंगे ॥ १५ ॥

[५२६] हे (गो-दत्र) गाय आदिको देनेवाले इन्द्र ! (ते राधसः मा निरराम) तेरे धनसे हम पृथक् न हों । हे (इन्द्र) इन्द्र ! हम (ते) तुझसे भिन्न मनुष्यसे धन (मा गृहामहि) न लें । हे (अर्यः) स्वामिन् ! तू (दृळहा चित् प्रमृश) बलशाली धनोंको हमें दे; (आ भर) अच्छी तरह भर दे, (ते दामानः न आ दभे) तेरे दानको कोई दबा नहीं सकता ॥ १६ ॥

[५२७] (दाशुषे) दान देनेवाले मुझे (इयत् मघं) इतना सारा ऐश्वर्य (इन्द्रः वा घ इत्) या तो इन्द्रने दिया, (वा) अथवा (वसुः) इतना धन (सुभगा सरस्वती ददिः) उत्तम ऐश्वर्यशालिनी सरस्वतीने दिया (वा) या फिर हे (चित्र) वरणीय राजन् ! (त्वं) तूने दिया ॥ १७ ॥

[५२८] (सरस्वतीं अनु) सरस्वतीके पास रहनेवाले (अन्यके राजकाः यके इत्) दूसरे राजा तो छोटे ही हैं, केवल (चित्रः इत् राजा) चित्र ही बडा राजा है, क्योंकि उसने (पर्जन्यः वृष्टया ततनत् इव) जिस तरह मेघ वृष्टिके द्वारा जलको चारों ओर फैलाता है, उसी तरह (सहस्रं अयुता ददत्) हजारों और लाखों धन दिए ॥ १८ ॥

[२२]

[५२९] (ओ) आह, (अद्य) आज (त्यं) उस (दंसिष्ठं रथं) अत्यन्त दर्शनीय रथको, (यं) जिसपर (सुहवा) सुखपूर्वक बुलानेयोग्य (रुद्रवर्तनी) दुःखको दूर करनेके मार्गसे जानेहारे अश्विदेव (सूर्यायै आ तस्थथुः) सूर्याके लिए चढ चुके थे, (ऊतये आ अह्वे) संरक्षणके लिए मैं उसको बुलाता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तुम्हारी मित्रतामें रहकर हम घरमें ही निष्क्रिय बैठकर वृद्ध न हों, अपितु सदा याग करते हुए संघटित होकर बैठेंगे ॥ १५ ॥

हे इन्द्र ! तेरा जो ऐश्वर्य है, उस ऐश्वर्यसे हम कभी दूर न हों । अतः तू हमें सदा बलसे युक्त धन दे । हम उस धनकी रक्षा करनेमें समर्थ हों और उसे कोई शत्रु छीन न सके ॥ १६ ॥

दान देनेवाले दाताको सभी देव तो ऐश्वर्य प्रदान करते ही हैं, पर मनुष्य भी उसकी धन द्वारा सहायता करते हैं ॥ १७ ॥

जो राजा या ऐश्वर्यशाली ज्ञानसे युक्त होकर भी अच्छी तरह दान नहीं देते, वे बडे होते हुए भी छोटे ही है । पर जो मेघकी तरह दानकी वर्षा करते हैं, वेही सच्चे राजा और सबके द्वारा वरणीय होते हैं ॥ १८ ॥

अश्विदेव उषाके प्रकाशक हैं । इन्हींके कारण सर्वत्र प्रकाश होता है, इसीलिए ये बुलानेयोग्य हैं ॥ १ ॥

५३० पूर्वापुषं सुहवं पुरुस्पृहं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ।
सचनावन्तं सुमतिभिः सोभरे विद्वेषसमनेहसम् ॥ २ ॥
५३१ इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना ।
अर्वाचीना स्ववसे करामहे गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥ ३ ॥
५३२ युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद् वामिषण्यति ।
अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु ॥ ४ ॥
५३३ रथो यो वां त्रिवन्धुरो हिरण्याभीशुरश्विना ।
परि द्यावापृथिवी भूषति श्रुत—स्तेन नासत्या गतम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [५३०] हे (सोभरे) सोभरी ऋषि ! (पूर्वा-पुषं) पहले आनेवाले स्तोताओंके पोषणकर्ता, (सुहवं) सुगमतापूर्वक बुलानेयोग्य, (पुरु-स्पृहं) बहुतसे लोग जिसकी इच्छा करते हैं ऐसे, (भुज्युं) भुज्युको, भोजन देनेवाले, (वाजेषु पूर्व्यं) युद्धोंमें सबसे पहले जाकर खडे होनेवाले, (सचनावन्तं) साथी लोगोंसे युक्त, (वि-द्वेषसं) शत्रुओंका विशेष रूपसे द्वेष करनेवाले एवं (अनेहसं) त्रुटिरहित अश्विदेवोंके रथको तू (सुमतिभिः) अच्छी मननीय स्तुतियोंसे प्रशंसित कर ॥ २ ॥

[५३१] (त्या) वे दोनों (दाशुषः गृहं गन्तारा) दानी पुरुषके घर जानेवाले, (देवा) तेजस्वी और (पुरु-भूतमा) बहुत अधिक मात्रामें उपस्थित होनेवाले अश्विदेवोंको (इह) इधर (नमोभिः) नमनपूर्वक (स्ववसे) भलीभाँति रक्षा करनेके लिए (अर्वाचीना करामहे) हमारे अभिमुख करते हैं ॥ ३ ॥

[५३२] (युवोः रथस्य चक्रं) तुम्हारे रथका चक्र (परि ईयते) चारों ओर चला जाता है और (अन्यत्) दूसरा पहिया (ईर्मा वां इषण्यति) प्रेरणकर्ता तुम्हें प्राप्त होता है इसलिए हे (शुभस्पती) शुभके अधिपति ! (वां सुमतिः) तुम्हारी अच्छी बुद्धि, (धेनुः इव) गायके तुल्य जोकि अपने बछडेके समीप दौडी चली जाती है, (अस्मान् अच्छ आ धावतु) हमारे समीप जल्द दौडती आजाय ॥ ४ ॥

[५३३] हे (नासत्या अश्विना) सत्यमय अश्विदेवों ! (वां यः) तुम दोनोंका जो (त्रिवन्धुरः हिरण्य-अभीशुः) तीन स्थानोंमें सुन्दर प्रतीत होनेवाला और सुवर्णमय चाबूकसे युक्त रथ (श्रुतः) विख्यात है तथा (द्यावा-पृथिवी परि भूषति) द्युलोक एवं भूलोकको अलंकृत करता है (तेन आ गतं) उससे इधर पधारो ॥ ५ ॥

भावार्थ— अश्विनौने भुज्युकी रक्षा की, अतः हे ऋषि ! तू इन देवोंकी रक्षा कर, जो अपने भोजन देनेवालेकी रक्षा करता है, उसकी रक्षा ज्ञानी करते हैं ॥ २ ॥

दोनों देव तेजस्वी और सर्वत्र संचार करनेवाले हैं और वे दानी पुरुषोंके घर ही जानेवाले हैं । अतः हम भी दानी होकर उन्हें अपने घर बुलावें ॥ ३ ॥

हे देवो ! तुम्हारा रथ सर्वत्र जानेवाला है, ये सब जगह जाकर कल्याणका विस्तार करते हैं । अतः उनकी अच्छी बुद्धि हमें भी प्राप्त हो और हम भी सबका कल्याण करें ॥ ४ ॥

चारों ओर दृढतासे बंधा हुआ अश्वि देवोंका रथ सब जगह बिना किसी रुकावटके जाता है, इनके रथके कारण द्यु और पृथ्वी दोनों लोक सुशोभित होते हैं । इसी तरह मनुष्योंके रथ भी सर्वत्र जानेवाले हों, तथा जहां वे जाएं वहां वे सुशोभित हों ॥ ५ ॥

५३४ दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः ।
ता वामद्य सुमतिभिः शुभस्पती अश्विना प्र स्तुवीमहि ॥ ६ ॥
५३५ उप नो वाजिनीवसू यातमृतस्य पथिभिः ।
येभिस्तृक्षिं वृषणा त्रासदस्यवं महे क्षत्राय जिन्वथः ॥ ७ ॥
५३६ अयं वामद्रिभिः सुतः सोमो नरा वृषण्वसू ।
आ यातं सोमपीतये पिबतं दाशुषो गृहे ॥ ८ ॥
५३७ आ हि रुहतमश्विना रथे कोशे हिरण्यये वृषण्वसू । युञ्जाथां पीवरीरिषः ॥ ९ ॥
५३८ याभिः पक्थमवथो याभिरध्रिगुं याभिर्बभ्रुं विजोषसम् ।
ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं भिषज्यतं यदातुरम् ॥ १० ॥

अर्थ— [५३४] हे (शुभस्पती) शुभके पालनकर्ता अश्विदेवों ! (मनवे पूर्व्यं) मनुको पहले विद्यमान धन आदि (दिवि दशस्यन्ता) द्युलोकमें देते हुए तुम (वृकेण यवं कर्षथः) हलसे जौको भूमिपर खींचते हो अर्थात् कृषिकर्म करते हो (अद्य) आज (ता वां) ऐसे विख्यात तुम दोनोंको (सुमतिभिः) अच्छी प्रसन्न बुद्धियोंसे (प्र स्तुवीमहि) खूब प्रशंसित करते हैं ॥ ६ ॥

[५३५] हे (वाजिनी-वसू) अन्न या सेनारूपी धनवाले और (वृषणा) बलिष्ठ अश्विदेवों ! (येभिः ऋतस्य पथिभिः) जिन ऋतके मार्गोंसे त्रसदस्युके पुत्र तृक्षिको (महे क्षत्राय) बडेभारी क्षत्रियोचित वीरताके लिए (जिन्वथः) प्रेरित करने जाते हो उन्हीं मार्गोंसे (नः उप यातं) हमारे समीप आओ ॥ ७ ॥

[५३६] हे (नरा) नेता एवं (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवों ! (अयं सोमः) यह सोमरस (वां) तुम दोनोंके लिए (अद्रिभिः सुतः) पत्थरोंसे कूटकर निचोडा गया है; (सोमपीतये आ यातं) सोमपानके लिए आजाओ और (दाशुषः गृहे पिबतं) दाताके घर उसका पान करो ॥ ८ ॥

[५३७] हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवों ! (हिरण्यये कोशे रथे) सुवर्णमय भांडारवत् रथपर (आ रुहतं हि) चढकर बैठो और (पीवरीः इषः युञ्जाथां) पुष्ट करनेवाली सुसमृद्ध अन्नसामग्रियोंका संयोग करदो ॥ ९ ॥

[५३८] हे अश्विदेवों ! (याभिः) जिन शक्तियोंसे (पक्थं अवथः) पक्थ नरेशकी रक्षा करते हो, (याभिः अध्रिगुं) जिनसे ऐसे नरेशको बचाते कि जिसकी गतिमें कोई रुकावट न डाल सकता हो और (याभिः वि-जोषसं बभ्रुं) जिनकी मददसे विशेष सेवा करनेवाले बभ्रु नरेशकी सेवा करते हो, (ताभिः) उनसे युक्त होकर (नः तूयं) हमारे समीप शीघ्र (मक्षु आ गतं) तुरन्त आओ तथा (यत् आतुरं) जो कोई बीमार दीख पडे उसकी (भिषज्यतं) औषधादिद्वारा चिकित्सा करो ॥ १० ॥

भावार्थ— ये दोनों कल्याणका पालन करनेवाले हैं। ये दोनों देव होकर खेतीका काम करते हैं। खेतीका काम सर्व श्रेष्ठ काम है, जिसे देव भी करते हैं ॥ ६ ॥

अश्विदेव लोगोंको उत्तममार्गसे चलकर वीरता प्राप्त करनेके लिए प्रेरणा देते हैं। मनुष्य वीरता प्राप्त करें, पर अधर्म मार्गसे नहीं, अपितु सत्यके मार्ग पर चलकर ही वीर बनें ॥ ७ ॥

ये दोनों देव धनकी वर्षा करनेवाले हैं, पर ये धनकी वर्षा उसी पर करते हैं, जिसके घर सोम पीते हैं, और ये सोम उसीके घर पीते हैं, जो दानी होता है ॥ ८ ॥

इनका रथ स्वर्णके भांडारसे समृद्ध है, तथा पोषण करनेवाले अन्नसे भी युक्त है ॥ ९ ॥

अश्विदेवोंने पवित्र मार्गसे चलनेवालेकी, लोगोंका भरण पोषण करनेवालेकी, तथा ऐसे क्षत्रिय वीरकी कि जिसकी गति कहीं रुकती नहीं, रक्षा की थी। सब एक दूसरेका भरण पोषण करें, स्वयं पवित्र मार्गसे चलें ॥ १० ॥

×

५३९ यदुद्रिगावो अद्रिगू इदा चिदह्नो अश्विना हवामहे । वयं गीर्भिर्विपन्यवः ॥ ११ ॥
५४० ताभिरा यातं वृषणोप मे हवं विश्वप्सुं विश्ववार्यम् ।
इषा मंहिष्ठा पुरुभूतमा नरा याभिः क्रिविं वावृधुस्ताभिरा गतम् ॥ १२ ॥
५४१ ताविदा चिदहानां तावश्विना वन्दमान उप ब्रुवे । ता ऊ नमोभिरीमहे ॥ १३ ॥
५४२ ताविद् दोषा ता उषसि शुभस्पती ता यामन् रुद्रवर्तनी ।
मा नो मर्ताय रिपवे वाजिनीवसू परो रुद्रावति ख्यतम् ॥ १४ ॥
५४३ आ सुग्म्याय सुग्म्यं प्राता रथेनाश्विना वा सक्षणी । हुवे पितेव सोभरी ॥ १५ ॥

अर्थ— [५३९] (यत्) जबकि (विपन्यवः) बुद्धिमान् (अध्रिगावः वयं) रुकावटका अनुभव न करते हुए हम (गीर्भिः) भाषणोंसे (अह्नः इदा चित्) दिनके इस समय भी (अध्रिगू अश्विना) अप्रतिहत गतिवाले अश्विदेवोंको (हवामहे) बुलाते हैं तो वे अवश्यही आयेंगे ॥ ११ ॥

[५४०] हे (वृषणा) बलवानो ! (मे) मेरी (विश्वप्सुं) सभी रूप धारण करनेवाली एवं (विश्ववार्यं हवं) सबने स्वीकरणीय पुकारको सुनकर (आ) हमारे अभिमुख होकर (ताभिः उप यातं) उन शक्ति या युक्तियोंसे सज्ज हो या समीप आओ, हे (पुरु-भूतमा) अधिकतया उपस्थित होनेवाले ! (मंहिष्ठा नरा) अतिशय दान देनेवाले एवं नेता अश्विदेवो ! (याभिः क्रिविं वावृधुः) जिन शक्तियोंसे तुमने कुएँको जलपूर्ण कर दिया (ताभिः इषा आ गतम्) उनसे और अन्नसे युक्त हो इधर आओ ॥ १२ ॥

[५४१] (अह्नां इदा चित्) दिनोंके इस अवसरपरही (तौ) उन दोनों अश्विदेवोंको (वन्दमानः) नमन करता हुआ, (तौ उप ब्रुवे) उनके समीप जाकर मैं अपना वक्तव्य कहता हूँ, (नमोभिः) नमनपूर्वक (तौ उ ईमहे) उन्हींको हम चाहते हैं ॥ १३ ॥

[५४२] (तौ शुभस्पती) उन दो अच्छोंके पालक अश्विदेवोंको (दोषा इत्) रात्रीके मौकेपर भी, (तौ उषसि) उन्हें प्रातःकाल भी, (ता रुद्रवर्तनी) उन दो वीरभद्रके पथपर चलनेवाले अश्विदेवोंको (यामन्) यात्रा करते समय हम बुलाते हैं । हे (वाजिनी-वसू रुद्रौ) बलरूपी धनवाले ! शत्रुको रुलानेवाले ! (नः) हमें (रिपवे मर्ताय) शत्रुभूत मानवके लिए (मा परः अति ख्यतं) न कभी आगे कह दो । शत्रुको हमारा पता न लगे ॥ १४ ॥

[५४३] मैं सोभरी (पिता इव हुवे) पिता जिस तरह पुत्रोंको बुलाता है वैसेही बुलाता हूँ; (सक्षणी) सेवनीय अश्विदेवों (सुग्म्याय) सुख पानेकी योग्यता रखनेवालेको (प्रातः) सुबह (रथेन वा) चाहे तो रथपरसे (सुग्म्यं आ) सुख पहुँचानेके लिए आओ ॥ १५ ॥

भावार्थ— यदि बुद्धिमान् मनुष्य हृदयसे अश्विदेवोंको बुलाये तो वे उसकी प्रार्थना अवश्य सुनते हैं और वे अवश्यही आते हैं ॥ ११ ॥

हे बलवान् देवो ! हमारी प्रार्थनाको सुनकर तुम सभी शक्तियोंसे सज्ज होकर आओ । जिस प्रकार कुंआ जलसे पूर्ण होता है, उसी तरह तुम अन्नसे पूर्ण होकर हमारे पास आओ ॥ १२ ॥

प्रतिदिन मैं अश्विदेवोंको नमन करता हूँ, नम्रतापूर्वक उनकी वंदना करता हूँ ॥ १३ ॥

शुभका पालन करो, वीरोंके मार्गसे गमन करो, बलको धन मानो, शत्रुको अपना पता न दो, अपना स्थान सुरक्षित रखो ॥ १४ ॥

पिता जैसे अपने पुत्रोंका पालन करता है, उसी तरह अश्विदेव हमारा पालन करें ॥ १५ ॥

५४४ मनोजवसा वृषणा मदच्युता मक्षुंगमाभिरूतिभिः ।
आरात्ताच्चिद् भूतमस्मे अवसे पूर्वीभिः पुरुभोजसा ॥ १६ ॥
५४५ आ नो अश्वावदश्विना वर्तिर्यासिष्टं मधुपातमा नरा । गोमद् दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥
५४६ सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्ठु वार्यमनाधृष्टं रक्षस्विना ।
अस्मिन्ना वामायाने वाजिनीवसू विश्वा वामानि धीमहि ॥ १८ ॥

[२३]

(ऋषि- ३० विश्वमना वैयश्वः । देवता- अग्निः । छन्द- उष्णिक् ।)

५४७ ईळिष्वा हि प्रतीव्यं यजस्व जातवेदसम् । चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥ १ ॥
५४८ दामानं विश्वचर्षणे ऽग्निं विश्वमनो गिरा । उत स्तुषे विष्पर्धसो रथानाम् ॥ २ ॥

अर्थ— [५४४] हे (मनो-जवसा) मनवत् वेगसे जानेवाले ! (वृषणा) बलवान् ! (पुरु-भोजसा) बहुत लोगोंको भोगके साधन देनेवाले ! (मदच्युता) शत्रुके मदको हटानेवाले ! अश्विदेवो ! (अस्मे अवसे) हमारी रक्षाके लिए (पूर्वीभिः) बहुतसी तथा (मक्षुं-गमाभिः ऊतिभिः) शीघ्र गतिवाली रक्षणकी शक्तिसे युक्त होकर (आरात्तात् चित्) समीपही (भूतं) तुम रहने लगो ॥ १६ ॥

[५४५] हे (मधु-पातमा) अत्यन्त मधुर सोमरस पीनेहारे ! दस्रा) शत्रुविनाशक ! (नरा) नेता अश्विदेवो ! (नः गोमत् अश्वावत्) हमारे गोधन एवं वाजिधनसे पूर्ण (हिरण्यवत् वर्तिः आ यासिष्टं) सुवर्णयुक्त निवासस्थलमें आओ ॥ १७ ॥

[५४६] हे (वाजिनी-वसू) बलरूपी धनवाले ! (रक्षस्विना अनाधृष्टं) रक्षणशक्तिसे युक्त पुरुषके द्वारा भी जिसपर हमला करना असंभव हुआ हो, (सुप्रावर्गं) सुगमतासे प्रदान करनेयोग्य और (सुवीर्यं सुष्ठु वार्यं) अच्छी वीरतासे युक्त अतः भलीभाँति स्वीकरणीय ऐसे गुणोंसे युक्त (विश्वा वामानि) सभी धनोंको (वां अस्मिन् आयाने) तुम दोनोंके इस आगमनसे (आ धीमहि) हम धारण करते हैं ॥ १८ ॥

[२३]

[५४७] हे स्तोताओ ! तुम सब (प्रतीव्यं ईळिष्व) शत्रुओंपर आक्रमण करनेवाले अग्निकी स्तुति करो । और (चरिष्णुधूमं, अगृभीतशोचिषं जातवेदसं हि यजस्व) जिसका धूम सब ओर फैलता है, जिसकी ज्वाला पकडनेमें कोई समर्थ नहीं ऐसे संसारके सब पदार्थोंके जाननेवाले अग्निकी स्तुति और पूजा करो ॥ १ ॥

[५४८] हे (विश्वचर्षणे विश्वमनः) संसारके सब पदार्थोंको देखनेवाले तथा सबपर मनन करनेवाले मनुष्य तुम (विस्पर्धसः, रथानां दामानं अग्निं) विविध प्रकारकी स्पर्धा करनेवाले मनुष्योंको रथादियोंके देनेवाले अग्निकी (उत गिरा स्तुषे) स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करो ॥ २ ॥

१ विस्पर्धसः रथानां दामानः— यह अग्नि स्पर्धा करनेवाले मनुष्योंको रथ प्रदान करता है ।

भावार्थ— ये दोनों देव मनके समान वेगवाले, बलवान्, लोगोंको सुखके साधन देनेवाले और शत्रुके अभिमानको चूर चूर करनेवाले हैं । वे हमारे पास रक्षण शक्तिसे युक्त होकर आवें ॥ १६ ॥

हे सोमपान करनेवाले देवो ! तुम शत्रुविनाशक हो, अतः तुम स्वर्ण आदि धनसे युक्त होकर हमारे पास आओ ॥१७॥

धन ऐसा हो कि जिसे शत्रु हमला करके छीन न सकें, जो आसानीसे दूसरोंको दिया जा सके, अच्छी वीरतासे युक्त हो और उत्तम गुणोंसे युक्त हो ॥ १८ ॥

यह अग्नि संसारमें उत्पन्न हुए हुए सब पदार्थोंको जानने और देखनेवाला है । इसकी ज्वालाको कोई पकड नहीं सकता । ऐसा यह अग्नि उन्हीं लोगोंको धन प्रदान करता है, जो संसारमें स्पर्धा करते हुए आगे बढते हैं । इसके विपरीत जो सदा सुस्त होकर बैठे रहते हैं, कुछ भी परिश्रम नहीं करते, उन्हें यह किसी प्रकारकी सहायता नहीं देता ॥ १-२ ॥

५४९ येषामाबाध ऋग्मियं इषः पृक्षश्च निग्रभे । उपविदा वह्निर्विन्दते वसु ॥ ३ ॥
५५० उदस्य शोचिरस्थाद् दीदियुषो व्य१जरम् । तपुर्जम्भस्य सुद्युतो गणश्रियः ॥ ४ ॥
५५१ उदु तिष्ठ स्वध्वर स्तवानो देव्या कृपा । अभिख्या भासा बृहता शुशुक्वनिः ॥५॥
५५२ अग्ने याहि सुशस्तिभिर्हव्या जुह्वान आनुषक् । यथा दूतो बभूथ हव्यवाहनः ॥ ६ ॥
५५३ अग्निं वः पूर्व्यं हुवे होतारं चर्षणीनाम् । तमया वाचा गृणे तमु वः स्तुषे ॥ ७ ॥

अर्थ—[५४९] (आबाधः ऋग्मियः वह्निः) दुष्टोंको सब ओरसे पीडित करनेवाला, ऋचाओंसे स्तुति करने योग्य अग्नि (येषां इषः च पृक्षः निग्रभे) जिनके अन्न और सोमरसको ग्रहण करता है वे (उपविदा वसु विन्दते) विवेकपूर्वक हवि प्रदान द्वारा धन प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

१ आबाधः येषां इषः निग्रभे वसु विन्दते— दुष्टोंको सब ओरसे पीडित करनेवाला यह अग्नि जिस मनुष्यकी हवि स्वीकार करता है, वह धन प्राप्त करता है।

[५५०] (दीदियुषः तपुः जम्भस्य सुद्युतः, गणश्रियः) देदीप्यमान, शत्रुओंको संताप देनेवाले दाढोंसे युक्त, शोभनकान्तियुक्त, दर्शनीय शोभासे व्याप्त, (अस्य वि अजरं शोचिः उत् अस्थात्) इस अग्निका अविनाशी तेज ऊपर प्रदीप्त होता है ॥ ४ ॥

१ दीदियुषः गणश्रियः तपुः जम्भस्य शोचिः उत् अस्थात्— जो मनुष्य तेजस्वी दलके अन्दर रहकर शत्रुओंको पीडित करता है, उसका तेज सबसे श्रेष्ठ हो जाता है।

[५५१] हे (सु अध्वर) सुन्दर यज्ञ करनेवाले मनुष्य ! तू (अभिख्या, भासा बृहता, शुशुक्वनिः स्तवानः) कीर्ति, तेज और महानतासे युक्त होकर निरन्तर तेजस्वी रहते हुए एवं अग्निकी स्तुति करते हुए (देव्या कृपा उत्तिष्ठ उ) इस अग्नि देवकी कृपासे उन्नत हो ॥ ५ ॥

१ देव्या कृपा अभिख्या, भासा बृहता उत्तिष्ठ— मनुष्य अग्नि देवकी कृपासे कीर्ति, तेज, महानतासे युक्त होकर उन्नत होता है।

[५५२] हे (अग्ने) अग्ने ! (यथा हव्यवाहनः दूतो बभूथ) चूंकि तू देवोंके लिए हव्य ले जानेवाला दूत बना है, अतः (सुशस्तिभिः हव्या आनुषक् जुह्वानः याहि) शोभन स्तोत्रोंके साथ, उत्तम हव्योंको निरन्तर ग्रहण करते हुये देवोंको हव्य प्रदान करनेके लिए जा ॥ ६ ॥

[५५३] मैं (चर्षणीनां होतारं पूर्व्यं अग्निं हुवे) मनुष्योंके होता अत्यन्त प्राचीन अग्निको बुलाता हूँ। और (तं अया वाचा वः गृणे) इस अग्निको बुला करके इस पवित्र वाणीसे तुम सबके लिये स्तुति करता हूँ। तथा (तं उ वः स्तुषे) उसका ही तुम सब मनुष्योंको स्तुति करनेके लिये उपदेश देता हूँ ॥ ७ ॥

१ तं उ वः स्तुषे— उस अग्निकी स्तुति करनेके लिए तुम्हें उपदेश देता हूँ।

भावार्थ—इस अग्निकी प्रसन्नता वरदान रूप होती है। यह जिस मनुष्यकी हवि स्वीकार करता है, वह हर तरहके ऐश्वर्यसे युक्त होता है। उसी तरह जिस मनुष्यके द्वारा खाया हुआ भोजन जाठराग्नि स्वीकार कर लेती है, अर्थात् पचा डालती है, वह मनुष्य उत्तम स्वास्थ्यरूपी ऐश्वर्यको प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

जो समाजमें या अपने दलके सदस्योंके साथ हिलमिल कर रहता है, और समाजके शत्रुओंको पीडित करता है, उसका तेज उसके अन्य साथियोंकी अपेक्षा बढ जाता है और वह उस समाजका अग्नि- अग्रणी बन जाता है ॥ ४ ॥

तेजस्वी और श्रेष्ठतम होनेके लिए अग्निकी उपासना एकमात्र उपाय है। जो इस अग्निको मनसे बुद्धिपूर्वक उपासना करता है, उसपर इस अग्निदेवकी कृपा बरसती है और वह उस कृपासे तेज, महानता, कीर्ति और शोभासे युक्त होकर हर तरहसे उन्नत होता है ॥ ५ ॥

यह अग्नि प्राचीनकालसे देवोंका दूत बना हुआ है। यह अग्नि देवोंका मुखरूप है। अतः इसमें डाली गई हवि देवोंतक पहुंचती है। जिस प्रकार कोई दूत प्रजाका संदेश राजातक और राजाका संदेश प्रजातक पहुंचाता है, उसी तरह यह अग्नि मनुष्योंकी हवि देवोंतक और देवोंकी कृपा मनुष्योंतक पहुंचाता है। इसीलिए यह पूज्य है ॥ ६-७ ॥

५५४ यज्ञेभिरद्भुतक्रतुं यं कृपा सूदयन्त इत् । मित्रं न जने सुधितमृतावनि ॥ ८ ॥
५५५ ऋतावानमृतायवो यज्ञस्य साधनं गिरा । उपो एनं जुजुषुर्नमसस्पदे ॥ ९ ॥
५५६ अच्छा नो अङ्गिरस्तमं यज्ञासो यन्तु संयतः । होता यो अस्ति विक्ष्वा यशस्तमः ॥ १० ॥
५५७ अग्ने तव त्ये अजरेन्धानासो बृहद् भाः । अश्वा इव वृषणस्तविषीयवः ॥ ११ ॥
५५८ स त्वं न ऊर्जां पते रयिं रास्व सुवीर्यम् । प्राव नस्तोके तनये समत्स्वा ॥ १२ ॥
५५९ यद् वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशि । विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥ १३ ॥

अर्थ— [५५४] (अद्भुतक्रतुं, मित्रं न, सुधितं, यं) अद्भुत ज्ञान और कर्मवाले, मित्रके समान हितकारी, उत्तम रीतिसे तर्पित जिस अग्निको, उपासक लोग (यज्ञेभिः सूदयन्ते) यज्ञोंके द्वारा घृत प्रदान करते हैं, उस (ऋतावनि जने) यज्ञ करनेवाले मनुष्य पर अग्नि (कृपा) अपनी कृपा बरसाता है ॥ ८ ॥

१ ऋतावनि जने कृपा— यज्ञ करनेवाले मनुष्य पर अग्निकी कृपा रहती है ।

[५५५] (ऋतायवः) यज्ञकी कामना करनेवाले उपासको ! (ऋतावानं यज्ञस्य साधनं नमसः पदे) सत्य ज्ञानके दाता, यज्ञके साधनभूत, प्रतिष्ठाके पद पर स्थापित (एनं गिरा उपो जुजुषुः) इस अग्निकी स्तोत्रों द्वारा पूजा करो ॥ ९ ॥

१ ऋतावानः नमसः पदे— सत्यके मार्ग पर चलनेवाला मनुष्य प्रतिष्ठाके पद पर अधिष्ठित होता है ।

[५५६] (यः विक्षु होता यशस्तमः अस्ति) जो अग्नि प्रजाओंमें होमका कर्ता और अत्यन्त यशस्वी है । उसी (अङ्गिरस्तमं अच्छ नः यज्ञासः आ संयतः यन्तु) सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी अग्निके पास हमारे सब यज्ञ सब ओरसे पहुँचे ॥ १० ॥

[५५७] हे (अजर अग्ने) जरारहित अग्ने ! (तव त्ये इन्धानासः वृषणः बृहत् भाः) तेरा वह अत्यन्त देदीप्यमान, शुभ कामनाओंको पूर्ण करनेवाला रश्मियोंका महान् प्रकाश जाल (अश्वाः इव) अनेक अश्वोंकी तरह (तविषीयवः) अधिक शक्तिशाली है ॥ ११ ॥

[५५८] हे (ऊर्जां पते) अन्नोंके स्वामी अग्ने ! (सः त्वं नः सुवीर्यं रयिं रास्व) वह तू हमें उत्तम वीर्य युक्त ऐश्वर्य प्रदान कर। और (समत्सु नः तोके तनये प्राव) संग्राममें हमारे पुत्र पौत्रोंकी अच्छी प्रकार रक्षा कर ॥ १२ ॥

[५५९] (यद्वै उ विश्पतिः शितः सुप्रीतः मनुषः विशि) जब भी प्रजाओंका पालक हवियोंसे तीक्ष्ण हुआ अग्नि अच्छी प्रकार प्रसन्न होकर गृहमें निवास करता है, उस समय वह (अग्निः विश्वेत् रक्षांसि प्रति सेधति) अग्नि समस्त दैत्योंका नाश कर देता है ॥ १३ ॥

भावार्थ— इस अग्निका काम बडा आश्चर्यकारक है ; यह अपने ज्ञान द्वारा मनुष्योंका हित करता है । जो उपासक इसकी विशेष सेवा करता है, वह इस अग्निकी कृपासे हर तरहसे उन्नत एवं समृद्ध होता है ॥ ८ ॥

सत्यको प्राप्त करनेकी इच्छावाले जो मनुष्य सत्यके मार्ग पर चलते हैं, वे यज्ञको सिद्ध करके उत्तम पद पर प्रतिष्ठित होते हैं और अग्निके समान पूजित होते हैं ॥ ९ ॥

इस अग्रणीकी किरणें अश्वके समान बहुत अधिक शक्तिशाली हैं । इन्हीं किरणोंके कारण यह अत्यन्त तेजस्वी और जरारहित है । इसी कारण यह प्रजाओंमें सबसे अधिक यशस्वी है । सारे उत्तम कर्म इसीको लक्ष्य करके किए जाते हैं ॥ १०-११ ॥

घरमें जब यह यज्ञाग्नि उत्तम सामग्री आदि हवियोंसे अच्छी तरह प्रदीप्त होता है, तब उस अग्निके प्रभावसे घरके सारे कृमि-जन्तु आदि नष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार रोगजन्तुओंके नष्ट हो जानेसे उस घरके स्वामी उसके पुत्र एवं पौत्र आदि सन्ततियां स्वास्थ्यरूपी ऐश्वर्य पाकर आनन्दसे उस घरमें रहते हैं । इस प्रकार यह यज्ञाग्नि प्रजाओंका पालन करती है ॥ १२-१३ ॥

५६० श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते । नि मायिनस्तपुषा रक्षसो दह ॥ १४ ॥
५६१ न तस्य मायया चन रिपुरीशीत मर्त्यः । यो अग्नये ददाश हव्यदातिभिः ॥ १५ ॥
५६२ व्यश्वस्त्वा वसुविदमुक्षण्युरप्रीणादृषिः । महो राये तमु त्वा समिधीमहि ॥ १६ ॥
५६३ उशना काव्यस्त्वा नि होतारमसादयत् । आयजिं त्वा मनवे जातवेदसम् ॥ १७ ॥
५६४ विश्वे हि त्वा सजोषसो देवासो दूतमक्रत । श्रुष्टी देव प्रथमो यज्ञियो भुवः ॥ १८ ॥
५६५ इमं घा वीरो अमृतं दूतं कृण्वीत मर्त्यः । पावकं कृष्णवर्तनिं विहायसम् ॥ १९ ॥

अर्थ— [५६०] हे (वीर विश्पते अग्ने) शूरवीर प्रजाओंके पालक अग्ने ! तू (मे स्तोमस्य श्रुष्टी) मेरे स्तोत्र वचनोंको श्रवण करके शीघ्र ही (मायिनः रक्षसः तपुषा नि दह) मायावी राक्षसोंको अपने सन्तापक तेजसे भस्म कर दे ॥ १४ ॥

[५६१] (यः हव्यदातिभिः अग्नये ददाश) जो उपासक ऋत्विजोंके द्वारा हविको अग्निके लिये प्रदान करता है (तस्य रिपुः मर्त्यः मायया चन) उस पर शत्रु मनुष्य भी अपनी कुटिल बुद्धिसे (ईशीत न) अपना अधिकार भी नहीं कर सकता है ॥ १५ ॥

१ यः अग्नये ददाश तस्य रिपुः मर्त्यः मायया चन न ईशीत— जो अग्निको प्रेमपूर्वक हवि देता है, उस पर शत्रु मनुष्य मायासे भी अधिकार नहीं जमा सकता है ।

[५६२] हे अग्ने ! (उक्षण्युः ऋषिः वि-अश्वः, वसु विदं त्वा अप्रीणात्) समस्त संसारको अपनी शक्तिसे सिंचित करनेवाले और सुखोंके वर्धक तुझको, चाहनेवाला ऋषि ऐश्वर्यके प्रदाता तुझको हव्योंसे तृप्त करता है । (तं उ महः राये त्वा समिधीमहि) उसी प्रकार हम भी बडे ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये तुझको सम्यक् प्रकारसे प्रज्वलित करते हैं ॥१६॥

[५६३] हे अग्ने ! (काव्यः उशना) स्तुति करनेवाले तथा कामना करनेवाले उपासकने (मनवे) मनुष्य-मात्रके कल्याणके लिये, (होतारं आयजिं, जातवेदसं त्वा नि असादयत्) होमनिष्पादक, यजन योग्य, संसारके सब पदार्थोंके ज्ञाता तुझको अपने गृहमें स्थापित किया ॥ १७ ॥

[५६४] हे (देव) प्रकाश स्वरूप अग्ने ! (सजोषसः विश्वे देवासः हि त्वा दूतं अक्रत) समान प्रीतिसे एक साथ रहनेवाले देवगणोंने तुझको अपना दूत बनाया । तू (श्रुष्टी प्रथमः यज्ञियः भुवः) शीघ्रतासे करनेके कारण यज्ञमें सबसे प्रथम पूज्य हुआ ॥ १८ ॥

[५६५] (वीरः मर्त्यः) कर्म करनेमें समर्थ पराक्रमशील हे मनुष्य ! तू (अमृतं, पावकं, कृष्णवर्तनिं, विहायसं) मरणधर्मरहित, पवित्र करनेवाले, जानेके पश्चात् जाने मार्गको काला करके छोडनेवाले और महान् शक्ति-वाले ऐसे (इमं घ दूतं कृण्वीत) इस अग्निकोही अपना दूत बना ॥ १९ ॥

भावार्थ— यह अग्नि अच्छी तरह प्रदीप्त होकर उपासकके सब शत्रुओंको नष्ट कर देता है । इसलिए अग्निके उपासकपर शत्रु मायासे भी अपना अधिकार नहीं कर सकते । इस प्रकार अग्नि अपने उपासककी हर तरहसे रक्षा करता है ॥ १४–१५ ॥

देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी ऋषिने मनुष्य मात्रके कल्याणके लिए इस यज्ञाग्निका आविष्कार किया और गृह गृहमें यज्ञ करनेकी पद्धति शुरु की । उस ऋषिने इस यज्ञाग्निको हविसे तृप्त किया और स्वयं भी शक्तिमान् हो गया । अतः शक्तिको प्राप्त करनेकी इच्छावाले हर मनुष्यको चाहिए कि वह ऐसे अग्निको प्रदीप्त करे ॥ १६–१७ ॥

राष्ट्रका दूत अमर, पवित्र, समय आने पर भेद आदि कुटिल मार्गोंका भी अनुसरण करनेवाला, विशाल हृदयवाला तथा महान् शक्तिवाला हो । ऐसे मनुष्यकोही राजा अपना दूत बनावे । ऐसा राजा सर्वत्र पूजा जाता है तथा उसकी प्रजायें भी एक साथ संघटित होकर रहनेके कारण उत्तम गुणवाली होती हैं ॥ १८–१९ ॥

५६६ तं हुवेम यतस्रुचः सुभासं शुक्रशोचिषम् । विशामग्निमजरं प्रत्नमीड्यम् ॥ २० ॥
५६७ यो अस्मै हव्यदातिभि-राहुतिं मर्तोऽविधत् । भूरि पोषं स धत्ते वीरवद् यशः ॥ २१ ॥
५६८ प्रथमं जातवेदस-मग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् । प्रति स्रुगेति नमसा हविष्मती ॥ २२ ॥
५६९ आभिर्विधेमाग्नये ज्येष्ठाभिर्व्यश्ववत् । मंहिष्ठाभिर्मतिभिः शुक्रशोचिषे ॥ २३ ॥
५७० नूनमर्च विहायसे स्तोमेभिः स्थूरयूपवत् । ऋषे वैयश्व दम्यायाग्नये ॥ २४ ॥
५७१ अतिथिं मानुषाणां सूनुं वनस्पतीनाम् । विप्रा अग्निमवसे प्रत्नमीळते ॥ २५ ॥

अर्थ— [५६६] (सुभासं, शुक्रशोचिषं विशां ईड्यं अजरं प्रत्नं तं अग्निं) उत्तम कान्तिमान्, सुन्दर दीप्तिसे युक्त, मनुष्योंके द्वारा स्तुति किए जानेके योग्य, जरारहित, पुरातन उस अग्निको हम (यतस्रुचः हुवेम) हाथमें स्रुचा उठाकर बुलाते हैं ॥ २० ॥

[५६७] (यः मर्तः हव्यदातिभिः अस्मै आहुतिं अविधत्) जो मनुष्य ऋत्विजोंके द्वारा इस अग्निके लिये आहुति प्रदान करता है (सः भूरिपोषं वीरवत् यशः धत्ते) वह बहुत पुष्टिकारक धन और वीर पुत्र पौत्रादिसे युक्त यश प्राप्त करता है ॥ २१ ॥

१ यः मर्तः अस्मै आहुतिं अविधत्, स भूरिपोषं यशः धत्ते— जो मनुष्य इस अग्निको आहुति देता है, वह अनेकोंकी पुष्टि करनेवाला अन्न प्राप्त करता है।

[५६८] (प्रथमं जातवेदसं पूर्व्यं अग्निं) देवोंमें प्रधान, सब उत्पन्न पदार्थोंके ज्ञाता, सबसे पुरातन अग्निको लक्ष्य करके (यज्ञेषु हविष्मती स्रुक् नमसा प्रति एति) यज्ञोंमें हविसे युक्त चमचा नमस्कारपूर्वक स्तोत्रोंसे अग्निके प्रति जाता है ॥ २२ ॥

१ जातवेदसं यज्ञेषु पूर्व्यम्— सब प्रकारके ज्ञानसे युक्त मनुष्य पूजनीय मनुष्योंमें सर्व प्रथम या सर्व श्रेष्ठ होता है।

[५६९] हम (शुक्रशोचिषे अग्नये) शुद्ध तेजवाले अग्निके लिये (व्यश्ववत् जेष्ठाभिः मंहिष्ठाभिः आभिः मतिभिः विधेम) अश्वके समान बलवान् होकर सर्वश्रेष्ठ व महान् इन वाणियों और बुद्धियोंसे उपासना करते हैं ॥ २३ ॥

[५७०] हे (वैयश्व ऋषे) जितेन्द्रिय ज्ञानदर्शिन् ऋषे ! तू (दम्याय विहायसे अग्नये) शत्रुओंके दमन करनेमें समर्थ महान् अग्निका (नूनं स्थूरयूपवत् स्तोमेभिः अर्च) इस समय ही स्थूलयूपके समान वेदमंत्रोंसे पूजन कर ॥ २४ ॥

[५७१] (मानुषाणां अतिथिं, वनस्पतीनां सूनुं प्रत्नं अग्निं) मनुष्योंके लिए अतिथिवत् पूज्य, वनस्पतियों द्वारा उत्पन्न, प्राचीन अग्निकी (विप्राः अवसे ईळते) विद्वान् पुरुष अपनी रक्षाके लिये स्तुति करते हैं ॥ २५ ॥

भावार्थ— यह अग्नि उत्तम कान्तिमान्, सुन्दर दीप्तिसे युक्त, जरारहित तथा सबसे प्राचीन है। ऐसे इस अग्निको जो आहुति देता है, वह पुष्टिकारक अन्न प्राप्त करता है ॥ २०-२१ ॥

जो मनुष्य हर तरहके ज्ञानसे युक्त होता है, वह सब मनुष्योंसे श्रेष्ठ होता है। इसी प्रकार जिस राष्ट्रमें सब प्रजायें शिक्षित होती हैं, वह राष्ट्र विश्वके सब राष्ट्रोंमें सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ होता है ॥ २२ ॥

यह अग्नि शत्रुओंका दमन करनेवाला, महान् है। इसी प्रकार राष्ट्रका अग्रणी भी शत्रुओंका दमन करनेवाला, महान् और जितेन्द्रिय होना चाहिए। इस प्रकार जो जितेन्द्रिय नेता अश्वके समान बलवान् होता है, वह सबके द्वारा पूजित होता है ॥ २३-२४ ॥

यह अग्नि मनुष्योंके लिए अतिथिके समान पूज्य, वनस्पतियोंका पुत्र अर्थात् लकडियों अरणियोंसे उत्पन्न और प्राचीन है। इसकी सब अपनी रक्षाके लिए स्तुति करते हैं ॥ २५ ॥

५७२ मुहो विश्वाँ अभि षुतोऽ ऽभि हुव्यानि मानुषा । अग्ने नि षत्सि नमुसाधि बुर्हिषि ॥२६॥
५७३ वंस्वा नो वार्या पुरु वंस्व रायः पुरुस्पृहः । सुवीर्यस्य प्रजावतो यशस्वतः ॥ २७ ॥
५७४ त्वं वरो सुषाम्णे ऽग्ने जनाय चोदय । सदा वसो रातिं यविष्ठ शश्वते ॥२८॥
५७५ त्वं हि सुप्रतूरसि त्वं नो गोमतीरिषः । मुहो रायः सातिमग्ने अपा वृधि । २९॥
५७६ अग्ने त्वं युशा अ—स्या मित्रावरुणा वह । ऋतावाना सम्राजा पूतदक्षसा ॥३०॥

[२४]

(ऋषिः- विश्वमना वैयश्वः । देवता- इन्द्रः, २८-३० वरुः सौषाम्णिः । छन्दः- उष्णिक्, ३० अनुष्टुप् ।)
५७७ सखाय आ शिषामहि ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे । स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥ १ ॥

अर्थ— [५७२] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (महः विश्वान् सतः अभिषत्सि) अपने सामर्थ्यसे सभी विद्यमान पदार्थोंको व्यापता है । तू (मानुषा हव्यानि अभि) मनुष्यसम्बन्धी हव्योंको स्वीकार करता है । तथा (अधि बर्हिषि नमसा नि सत्सि) इस यज्ञमें स्तुति द्वारा पूजित होकर विराजता है ॥ २६ ॥

[५७३] हे अग्ने ! (नः पुरु वार्या वंस्व) हमें बहुतोंसे वरणीय ऐसे उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर । तथा (पुरुस्पृहः प्रजावतः, सुवीर्यस्य यशस्वतः रायः वंस्व) अनेकोंसे स्पृहणीय, पुत्र पौत्रादि प्रजाओंका उत्पादक, शौर्य पराक्रमका देनेवाला, यशकीर्ति, अन्नादिसे युक्त धन प्रदान कर ॥ २७ ॥

[५७४] हे (वरो वसो यविष्ठ अग्ने) वरण करने योग्य, निवासप्रद, अतिशय बलशाली अग्ने ! (त्वं शश्वते सुषाम्णे जनाय) तू बहुतसे स्तोतृजनोंके हितके लिये (सदा रातिं चोदय) हमेशा धनको प्रेरित कर ॥ २८ ॥

[५७५] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं हि सु प्रतूः असि) तू ही उत्तम रीतिसे धन प्रदान करनेहारा दानी है । (त्वं नः गोमतीः इषः महः रायः सातिं अपा वृधि) तू हमें गायोंसे युक्त सुमधुर अन्नादिसे युक्त अपने बडे ऐश्वर्यके भागको प्रदान कर ॥ २९ ॥

[५७६] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं यशा असि) तू देवोंके मध्यमें यशस्वी है । तू (ऋतावाना, सम्राजा पूतदक्षसा मित्रावरुणा आ वह) सत्यनिष्ठ, अत्यन्त तेजस्वी, पवित्र बलवाले मित्र और वरुणको यहां ले आ ॥ ३० ॥

[२४]

[५७७] हे (सखायः) मित्रो ! (वज्रिणे इन्द्राय) वज्रधारी इन्द्रके लिए हम (ब्रह्म आ शिषीमहि) स्तोत्रका गान करें । (वः) तुम भी (धृष्णवे नृतमाय) शत्रुओंके संहारक तथा अत्यन्त श्रेष्ठ नेता इन्द्रके लिए (सु स्तुष) अच्छी तरह स्तुति करो ॥ १ ॥

भावार्थ— यह अग्नि अपनी महत्तासे सब पदार्थोंमें व्याप्त रहता है और मनुष्यों द्वारा दिए गए सब हव्योंको स्वीकार करता है और यज्ञमें बैठता है । उसी तरह राष्ट्रके नेताको चाहिए, कि वह अपनी महत्तासे सब प्रजाओंमें पूजा जाए और प्रजाओं द्वारा चलाये गए सब उत्तम कर्मोंमें सम्मिलित हो ॥ २६ ॥

हे सबके द्वारा वरणीय तथा सबको निवास करनेवाले बलशाली अग्ने ! तू स्तोत्र करनेवालोंके लिए उत्तम ऐश्वर्य, उत्तम प्रजायें और पराक्रम आदि सद्गुण प्रदान कर ॥ २७-२८ ॥

हे अग्ने ! तू सबको उत्तम धन प्रदान करता है, अतः हमें भी उत्तम उत्तम गायोंसे युक्त धन प्रदान कर तथा मित्रके समान हितकारी और वरण करने योग्य श्रेष्ठ जनोंको हमारे पास बुला ला ॥ २९-३० ॥

इन्द्र वज्रको धारण करनेवाला, शत्रुओंका संहारक तथा सर्व श्रेष्ठ नेता है, ऐसे वीरकी ज्ञानपूर्वक स्तुति करनी चाहिए ॥ १ ॥

५७८ शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा । मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥ २ ॥
५७९ स नः स्तवान आ भर रयिं चित्रश्रवस्तमम् । निरेके चिद्यो हरिवो वसुर्ददिः ॥ ३ ॥
५८० आ निरेकमुत प्रियमिन्द्र दर्षि जनानाम् । धृषता धृष्णो स्तवमान आ भर ॥ ४ ॥
५८१ न ते सव्यं न दक्षिणं हस्तं वरन्त आमुरः । न परिबाधो हरिवो गविष्टिषु ॥ ५ ॥
५८२ आ त्वा गोभिरिव व्रजं गीर्भिर्ऋणोम्यद्रिवः । आ स्मा कामं जरितुरा मनः पृण ॥ ६ ॥
५८३ विश्वानि विश्वमनसो धिया नो वृत्रहन्तम । उग्र प्रणेतरधि षू वसो गहि ॥ ७ ॥

अर्थ— [५७८] हे इन्द्र ! (वृत्रहा) वृत्रको मारनेवाला तू (वृत्रहत्येन शवसा) अपने वृत्रको मारनेवाले बलके कारण (श्रुतः असि) सर्वत्र प्रसिद्ध है । हे (शूर) शूरवीर इन्द्र ! तू (मघोनः) ऐश्वर्यशालीको (मघैः अति दाशसि) और अधिक ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ २ ॥

[५७९] हे इन्द्र ! (सः) वह तू (स्तवानः) हमारे द्वारा स्तुत होता हुआ (चित्र श्रवस्तमं रयिं) ग्रहण करने योग्य और अत्यन्त उत्तम यश देनेवाले ऐश्वर्यको (नः आ भर) हमें भरपूर दे । हे (हरिवः) उत्तम घोडोंसे युक्त इन्द्र ! (यः) जो तू (निरेके चित् वसुः ददिः) ऐश्वर्यशालियोंको ही धन देता है ॥ ३ ॥

[५८०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू हम (जनानां) जनोंको (प्रियं निरेकं) उस प्रिय धनको (आ दर्षि) भरपूर दे । हे (धृष्णो) शत्रुनाशक इन्द्र ! तू (स्तवमानः) हमसे स्तुत या प्रशंसित होता हुआ धृषता (बलके साथ उस धनको हमें (आ भर) प्रदान कर ॥ ४ ॥

[५८१] हे (हरिवः) उत्तम घोडोंवाले इन्द्र ! (आमुरः) तुझसे युद्ध करनेवाले शत्रु (गविष्टिषु) युद्धोंमें (ते सव्यं न वरन्त) तेरे बायें हाथको नहीं रोक सकते (न दक्षिणं हस्तं) और न तेरे दायें हाथकोही हटा सकते हैं, तथा (परिबाधः न) तेरे कार्योंमें बाधा डालनेवाले भी तेरा कुछ नहीं बिगाड सकते ॥ ५ ॥

[५८२] हे (अद्रिवः) वज्रधारी इन्द्र ! (गोभिः व्रजं इव) जिस तरह कोई गोपाल गायोंके साथ गायोंके बाडेको जाता है, उसी तरह मैं (गीर्भिः त्वा आ ऋणोमि) स्तुतियोंसे युक्त होकर तेरे पास आता हूँ । तू (जरितुः कामं आ) स्तोताकी इच्छाको पूरा कर और उसके (मनः आ पृण) मनको भी शान्तिसे पूर्ण कर दे ॥ ६ ॥

[५८३] हे (वृत्रहन्तम) शत्रुओंको बुरी तरह नष्ट करनेवाले (उग्र) वीर (प्रणेतः) उत्तम रीतिसे आगे ले जानेवाले और (वसो) सबको बसानेवाले इन्द्र ! (विश्वमनसः नः) सबसे मनःपूर्वक प्रेम करनेवाले हमारे (विश्वानि) सब कर्म (धिया) बुद्धिपूर्वक हों, उन्हें तू (सु अधि गच्छ) अच्छी तरह जान ॥ ७ ॥

भावार्थ— इन्द्र अपने शत्रुवधरूप बलके कारण ही सर्वत्र प्रसिद्ध हुआ । जो अपने शत्रुओंका विनाश करता है, उसका यश सर्वत्र फैलता है । जो ऐश्वर्यशाली होते हुए भी दान देते हैं उनका ऐश्वर्य और अधिक बढता है ॥ २ ॥

धन ऐसा हो जो ग्रहण करने योग्य हो और उत्तम यशको देनेवाला हो । ऐसा धन मनुष्यको सच्चा ऐश्वर्यशाली बनाता है ॥ ३ ॥

धन प्रिय हो और बलसे युक्त हो । धन प्राप्त करके उसकी रक्षाके लिए सामर्थ्यकी भी आवश्यकता होती है, अतः धन सदा बलसे युक्त हो ॥ ४ ॥

इन्द्रके शत्रु युद्धोंमें इस इन्द्रको रोक नहीं सकते । ऐसी अप्रतिहत शक्तिवाला यह इन्द्र है ॥ ५ ॥

जिस तरह कोई ग्वाल अपनी गायोंपर पूर्ण प्रेम करता है, उसी तरह जो इन्द्र पर पूर्ण रूपसे प्रेम करता है, उसकी सब इच्छायें पूरी होती हैं और उसका मन शांतिसे पूर्ण होता है ॥ ६ ॥

जो सबको अपना समझकर व्यवहार करता है, उसके सभी कर्म बुद्धिपूर्वक होते हैं । उदारचेता मनुष्य बिना विचारे कोई कर्म नहीं करता । इसीकारण ऐसे मनुष्यके पास सभी देवगण आते हैं ॥ ७ ॥

×

५८४ वयं ते अस्य वृत्रहन् विद्याम शूर नव्यसः । वसोः स्पार्हस्य पुरुहूत राधसः ॥८॥
५८५ इन्द्र यथा ह्यस्ति तेऽपरीतं नृतो शवः । अमृक्ता रातिः पुरुहूत दाशुषे ॥ ९ ॥
५८६ आ वृषस्व महामह महे नृतम राधसे । दृळ्हश्चिद् दृह्य मघवन् मघत्तये ॥१०॥
५८७ नू अन्यत्रा चिदद्रिवस्त्वन्नो जग्मुराशसः । मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिः ॥११॥
५८८ नह्यङ्ग नृतो त्वदन्यं विन्दामि राधसे । राये द्युम्नाय शवसे च गिर्वणः ॥१२॥
५८९ एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु । प्र राधसा चोदयाते महित्वना ॥१३॥

अर्थ— [५८४] हे (वृत्रहन् शूर पुरुहूत) वृत्रको मारनेवाले, शूरवीर तथा अनेकों द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र ! (वयं) हम (ते) तेरे (अस्य) इस (नव्यसः) प्रशंसनीय (स्पार्हस्य) चाहने योग्य (राधसः वसोः) सब मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाले धनको (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ८ ॥

[५८५] हे (नृतः इन्द्र) उत्तम नेता इन्द्र ! (यथा ते शवः) जिस प्रकार तेरा बल (अपरीतं हि अस्ति) शत्रुओंके द्वारा नहीं मापा जा सकता, उसी तरह हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा बुलाये जाने योग्य इन्द्र ! (दाशुषे) दाताको दिए जानेवाले तेरे (रातिः अमृक्ता) दान भी अविनाशी हैं ॥ ९ ॥

[५८६] हे (महामह नृतम) बडोंके लिए भी पूज्य और उत्तम नेता इन्द्र ! (महे राधसे) महान् ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए हमें (आ वृषस्व) बलयुक्त कर । हे (मघवन्) ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तू हमें (मघत्तये) ऐश्वर्य प्रदान करनेके लिए (दृळ्हश्चित् दृह्य) दृढसे दृढ शत्रुको भी नष्ट कर ॥ १० ॥

[५८७] हे (अद्रिवः) वज्रधारी इन्द्र ! (नः आशसः) हमारी अभिलाषायें (नु त्वत् अन्यत्र) तुझे छोडकर अन्यके पास (जग्मुः) गईं पर अब हे (मघवन्) ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तू (तव ऊतिभिः) अपने संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर (तत् शग्धि) उस धनको हमें प्रदान कर ॥ ११ ॥

[५८८] हे (अंग नृत गिर्वणः) प्रिय, नेता और स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (राधसे राये द्युम्नाय शवसे च) सिद्धि, ऐश्वर्य, तेज और बलकी प्राप्तिके लिए (त्वत् अन्यं नहि विन्दामि) तुझसे भिन्न और किसीको मैं नहीं पाता ॥ १२ ॥

[५८९] हे मनुष्यो ! (इन्द्राय इन्दुं सिंचत) इन्द्रके लिए सोमरस तैयार करो, वह (सोम्यं मधु पिबाति) शान्तिदायक सोमरसको पीता है और (महित्वना) अपने बलसे और (राधसा) ऐश्वर्यसे (प्र चोदयाते) लोगोंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करता है ॥ १३ ॥

भावार्थ— धन प्रशंसाके योग्य है । धनका उपयोग जब लोकहितके लिए होगा, तभी लोग उस धनकी प्रशंसा करेंगे और वैसा धनही लोगोंके ऐश्वर्यको बढानेवाला होगा ॥ ८ ॥

इन्द्रका बल अपरिमित होनेसे शत्रु इसे किसी तरह नष्ट नहीं कर सकते, उसी तरह इन्द्रके दानको भी कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥ ९ ॥

यह इन्द्र महान् है अतः जो महान् है, उनके लिए भी यह पूज्य है । यह इन्द्र अपने भक्तोंको बल प्रदान करता है, ताकि वे ऐश्वर्यको प्राप्त कर सकें । उनकी सहायताके लिए वह दृढसे दृढ शत्रुको भी नष्ट करता है ॥ १० ॥

जब मनुष्य इन्द्रको छोडकर किसी अन्यके पास अपनी इच्छाओंकी पूर्तिके लिए जाता है, तब उसकी इच्छायें अपूर्ण ही रह जाती हैं क्योंकि उनकी इच्छाओंको केवल इन्द्र ही पूर्ण कर सकता है ॥ ११ ॥

इन्द्रसे अभिन्न और कोई ऐसा नहीं है, जो स्तुतिकर्ताओंके मनोरथोंकी सिद्धि करके उन्हें ऐश्वर्य, तेज और बल आदि दे सके ॥ १२ ॥

इन्द्र जब शान्तिदायक सोम पीता है, तब वह प्रसन्न होकर अपने बल और ऐश्वर्यसे लोगोंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करता है ॥ १३ ॥

५९० उपो हरीणां पतिं दक्षं पृञ्चन्तमब्रवम् । नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥१४॥
५९१ नह्यङ्ग पुरा चन जज्ञे वीरतरस्त्वत् । नकी राया नैवथा न भन्दना ॥१५॥
५९२ एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः । एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः ॥१६॥
५९३ इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् । उदानंश शवसा न भन्दना ॥१७॥
५९४ तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः । अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥१८॥
५९५ एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् । कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥१९॥

अर्थ— [५९०] (हरीणां पतिं) घोडोंके स्वामी (दक्षं) चतुर, कार्यकुशल तथा (पृंचन्तं) सबसे हिलमिलकर रहनेवाले, हे इन्द्र, तेरा (उप अब्रवम) वर्णन मैंने किया, तू भी (अश्व्यस्य) घोडे प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले तथा (स्तुवतः) स्तुति करनेवाले मेरी प्रार्थनाको (नूनं श्रुधि) निश्चयसे सुनो ॥ १४ ॥

[५९१] हे (अंग) वीर इन्द्र ! (पुरा चन) पहले भी (त्वत् वीरतरः नहि जज्ञे) तुझसे अधिक वीर और कोई पैदा नहीं हुआ, (राया नकि) ऐश्वर्यमें तुझसे अधिक कोई नहीं हुआ (एवथा नकि) बलमें भी कोई नहीं हुआ और (न भन्दना) न तुझसे अधिक स्तुत्य स्तुतिके योग्य कोई हुआ ॥ १५ ॥

[५९२] हे (अध्वर्यो) अध्वर्यु ! (मध्वः अन्धसः) मीठे अन्नसे (मदिन्तरं) आनन्ददायी रससे पूर्ण सोमरसको (आ इत् सिंच) निश्चयसे इन्द्रको प्रदान कर ; (एवा हि) क्योंकि (सदावृधः वीरः स्तवते) सोम देनेवालेको सदा बढानेवाला वह वीर इन्द्र प्रशंसित होता है ॥ १६ ॥

[५९३] (हरीणां स्थातः इन्द्र) हे घोडोंके स्वामिन् इन्द्र ! (ते पूर्व्यस्तुतिं) तेरी पहले की गई स्तुतिको कोई भी दूसरा (शवसा न भन्दना) बलसे न योग्यतामें भी (उदानंश) आजतक प्राप्त कर सका ॥ १७ ॥

[५९४] (वः) तुम्हारे (तं वाजानां पतिं) उस बलोंके स्वामी तथा (वावृधेन्यं) वृद्धिके योग्य इन्द्रको (श्रवस्यवः) अन्न और यशको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले हम (अप्रायुभिः यज्ञेभिः) सम्मिलित होकर किए जानेवाले यज्ञोंके द्वारा (अहूमहि) बुलाते हैं ॥ १८ ॥

[५९५] हे (सखायः) मित्रो ! (एत) आओ, (यः एकः इत्) जो अकेला होते हुए भी (विश्वाः कृष्टीः अभि अस्ति) सम्पूर्ण प्राणियों पर शासन करता है, उस (स्तोम्यं इन्द्रं स्तवाम) स्तुतिके योग्य उत्तम नेता इन्द्रकी स्तुति करें ॥ १९ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र अपने कार्य करनेमें बहुत ही कुशल तथा लोगोंसे हिलमिलकर रहनेवाला है । राजा भी इसी तरह अपने कार्यमें कुशल तथा अपनी प्रजासे मिलजुलकर रहनेवाला हो ॥ १४ ॥

इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है । इसकी श्रेष्ठता प्राचीन कालसे चली आ रही है । बल, वीरता, धन और प्रशंसामें उससे अधिक आजतक कोई नहीं हुआ ॥ १५ ॥

सोमका रस मीठा और आनन्दको देनेवाला होता है । इसको प्राप्त करके इन्द्र यज्ञकर्ताको बढाता है ॥ १६ ॥

इस इन्द्र की स्तुति प्राचीन कालसे ऋषिमुनि करते आ रहे हैं, आज तक उस स्तुतिको और कोई दूसरा देव प्राप्त न कर सका, क्योंकि दूसरा कोई भी देव योग्यता और बलकी दृष्टिसे इन्द्रसे अधिक नहीं है ॥ १७ ॥

इन्द्र सब तरहके बलोंका स्वामी है और वृद्धिके योग्य है । उसकी स्तुतिसे हम यश और अन्नको प्राप्त करें ॥ १८ ॥

इस संसारमें करोडों अरबों प्राणी हैं, उन सब प्राणियों पर इन्द्र अकेला ही शासन करता है । इसी कारण वह स्तुतिके योग्य है ॥ १९ ॥

५९६ अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः । घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥२०॥
५९७ यस्यामितानि वीर्या न राधः पर्येतवे । ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥२१॥
५९८ स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् । अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥२२॥
५९९ एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् । सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥२३॥
६०० वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् । अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥२४॥
६०१ तदिन्द्राव आ भर येना दंसिष्ठ कृत्वने । द्विता कुत्साय शिश्नथो नि चोदय ॥२५॥

अर्थ— [५९६] (अगोरुधाय) गायोंको नष्ट न करनेवाले तथा (गविषे) गायोंकी रक्षा करनेवाले (द्युक्षाय) तेजस्वी इन्द्रके लिए (घृतात् मधुनश्च स्वादीयः) घी और शहदसे भी अधिक मधुर और स्वादिष्ट (वचः वोचत) स्तोत्रोंको गाओ ॥ २० ॥

[५९७] (यस्य वीर्या अमितानि) जिसके पराक्रम अपरिमित हैं, (राधः न परि एतवे) जिसके ऐश्वर्यके चारों ओर चक्कर नहीं लगाया जा सकता, तथा जिसका (दक्षिणा) दान (ज्योतिः न) प्रकाशके समान (विश्वं अभि अस्ति) सबको व्याप्त करता है ॥ २१ ॥

[५९८] (अनूर्मिं वाजिनं यमं) हिंसित न होनेवाले बलशाली तथा सब विश्वको नियंत्रणमें रखनेवाले (इन्द्रं) इन्द्रकी (व्यश्ववत्) व्यश्व ऋषिके समान (स्तुहि) स्तुति करो । वह (अर्यः) श्रेष्ठ इन्द्र (दाशुषे) दाताको (मंहमानं गयं) प्रशंसनीय धनको प्रदान करता है ॥ २२ ॥

[५९९] हे (वैयश्व) वैयश्व ऋषि ! (चरणीनां नवं दशमं) मनुष्योंमें नौ प्राणोंके अलावा दसवें प्राणरूपसे रहनेवाले (सुविद्वांसं चर्कृत्यं) उत्तम ज्ञानी तथा पूजाके योग्य इस इन्द्रकी (एव नूनं उप स्तुहि) निश्चयसे तू उपासना कर ॥ २३ ॥

[६००] हे (वज्रहस्त) वज्रको हाथोंमें धारण करनेवाले इन्द्र ! जिस प्रकार (शुंध्युः) सबको शुद्ध करनेवाला सूर्य (अहरहः) प्रतिदिन (परिपदां इव) प्राणियोंके स्थानसे अपवित्रता दूर करता है, उसी तरह तू हे इन्द्र ! (निर्ऋतीनां परिवृजं वेत्थ) दारिद्रताके दूर करनेके उपायको जानता है ॥ २४ ॥

[६०१] हे (दंसिष्ठ इन्द्र) उत्तम कर्म करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ इन्द्र ! (कृत्वने येन) उत्तम कर्म करनेवालोंकी जिससे तू रक्षा करता है, (तत् अवः) उस संरक्षणके साधनको (आ भर) हमें प्रदान कर । जिस साधनसे तूने (कुत्साय) कुत्सकी रक्षाके लिए (द्विता शिश्नथः) दो प्रकारसे शत्रुओंको मारा था, उस साधनको तू हमारी ओर (नि चोदय) प्रेरित कर ॥ २५ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र गायोंको नष्ट नहीं करता, इसके विपरीत वह गायोंकी रक्षा ही करता है । ऐसे इन्द्रके लिए प्रेमसे ऐसे स्तोत्रोंको गाना चाहिए कि जो घी और शहदसे भी मीठे और स्वादिष्ट हों ॥ २० ॥

इस इन्द्रके बल अनन्त हैं, अतः इनकी सीमाका पता नहीं लगाया जा सकता, इसका ऐश्वर्य भी अनन्त होनेके कारण उसके चारों ओर जाकर उसका भी अन्त नहीं पाया जा सकता । जिस तरह प्रकाश सारे विश्वको व्याप्त करता है, उसी तरह इस इन्द्रके दान सभी विश्वमें व्याप्त हो रहे हैं ॥ २१ ॥

यह इन्द्र अहिंसित है, कोई भी इसका विनाश नहीं कर सकता, क्योंकि यह बलशाली है, इसीलिए यह सारे विश्व पर नियंत्रण करता हुआ उसे अपने शासनमें रखता है ॥ २२ ॥

मनुष्योंके शरीरमें नौ प्राणोंके अलावा जीवात्माके रूपमें यह इन्द्र दसवां प्राण है । यह जीवात्मा उत्तम ज्ञानी है, क्योंकि इसका स्वरूप ही ज्ञान है, अत एव यह पूजाके योग्य भी है । आत्माकी सदा पूजा करनी चाहिए ॥ २३ ॥

सूर्यके उदय होने पर उसकी किरणें जिस जगह जाकर गिरती हैं, उस जगहकी अपवित्रता दूर होकर वह स्थान पवित्र हो जाता है, उसी तरह मनुष्य इन्द्रकी उपासना करके अपने घरमें जहां जहां दरिद्रता हो, वहां वहांसे उस दरिद्रताको दूर करके अपने घरको सम्पन्न और समृद्ध बनावे ॥ २४ ॥

हे इन्द्र ! जिस संरक्षणके साधनसे तूने उत्तम कर्म करनेवालेकी रक्षा की थी, तथा कु-त्स अर्थात् बुराइयोंको दूर करनेवाले श्रेष्ठ जनकी रक्षा की थी, उसी साधनसे तू हमारी भी रक्षा कर ॥ २५ ॥

६०२ तमु त्वा नूनमीमहे नव्यं दंसिष्ठ सन्यसे । स त्वं नो विश्वा अभिमातीः सक्षणिः ॥२६॥
६०३ य ऋक्षादंहसो मुचद्यो वार्यात् सप्त सिन्धुषु । वधर्दासस्य तुविनृम्ण नीनमः ॥२७॥
६०४ यथा वरो सुषाम्णे सनिभ्य आवहो रयिम् । व्यश्वेभ्यः सुभगे वाजिनीवति ॥२८॥
६०५ आ नार्यस्य दक्षिणा व्यश्वाँ एतु सोमिनः । स्थूरं च राधः शतवत् सहस्रवत् ॥२९॥
६०६ यत् त्वा पृच्छादीजानः कुहया कुहयाकृते । एषो अपश्रितो वलो गोमतीमव तिष्ठति ॥३०॥

अर्थ— [६०२] हे (दंसिष्ठ) अत्यन्त श्रेष्ठ दानी इन्द्र ! (तं उ त्वा) उस तुझसे (नव्यं सन्यसे) स्तुत्य धन प्रदान करनेके लिए (नूनं ईमहे) निश्चयसे प्रार्थना करते हैं। (सः त्वं) वह तू (विश्वाः अभिमातीः सक्षणिः) संपूर्ण शत्रुओंको विनष्ट कर ॥ २६ ॥

[६०३] (यः) जिस इन्द्रने अपने उपासकोंको (ऋक्षात् अंहसः मुचत्) राक्षसों और पापोंसे छुडाया, तथा (यः) जिस इन्द्रने (सप्त सिन्धुषु) सातों नदियोंमें (आर्यात्) जलको प्रवाहित किया, तथा (दासस्य वधः) दास बनानेवाले दुष्टोंका वध किया, उस तुझे हे (तुविनृम्ण) अत्यधिक बलशाली इन्द्र ! हम (नीनमः) बार बार नमन करते हैं ॥ २७ ॥

[६०४] हे (वरो) श्रेष्ठ मनुष्य ! तू (सुषाम्णे सनिभ्यः) उत्तम और शांत मनुष्यको तथा मांगनेवाले (व्यश्वेभ्यः) उत्तम प्रगतिवाले मनुष्योंको (रयिं आ वह) धन प्रदान कर, तथा (सुभगे वाजिनीवति) उत्तम भाग्यवाली तथा समृद्धिसे युक्त स्त्री ! तू भी (यथा) यथा योग्य दान दे ॥ २८ ॥

व्यश्व- वि-विशेष रूपसे; अश-गति प्रगति करनेवाला।

[६०५] (नार्यस्य सोमिनः) नरों-मनुष्योंका हित करनेवाले तथा सोमयज्ञ करनेवाले मनुष्यके (दक्षिणा) दान (वि-अश्वान् आ एतु) उत्तम रीतिसे प्रगति करनेवाले मनुष्योंके पास पहुंचे, तथा (शतवत् सहस्रवत्) सैंकडों और हजारोंकी संख्यामें (स्थूरं राधः च) स्थूल धन भी पहुंचे ॥ २९ ॥

[६०६] हे (कुहयाकृते) मायावीको नष्ट करनेवाली देवि ! (यः ईजानः) जो यज्ञ करता हुआ (कुहया त्वा पृच्छात्) मायासे तुझसे कुछ पूछना चाहे, तो (एषः) ऐसा (वलः) वल असुर (अपश्रितः) निराश्रित होकर (गोमतीं अव तिष्ठति) गायोंके प्रदेशमें जाकर रहे ॥ ३० ॥

कुह— माया, जादूभरी।

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम तेरी उपासना करते हैं, अतः तू हमें प्रशंसनीय धन प्रदान कर और हमारे संपूर्ण शत्रुओंको मार ॥ २६ ॥

इस इन्द्रने अपने उपासकोंको पाप और राक्षसोंके डरसे मुक्त किया, इसी इन्द्रने नदियोंमें जलको प्रवाहित किया तथा लोगोंको अपना दास बनाकर उन्हें कष्ट देनेवाले दुष्टोंको नष्ट किया। दूसरोंको दास बनाना बहुत बडी दुष्टता है ॥२७॥

पति-पत्नी दोनोंही उत्तम रीतिसे दान देनेवाले हों, पर ये दान उन्नतिशील मनुष्योंकोही दें ॥ २८ ॥

जो मनुष्योंका हित करनेवाला है और यज्ञ करनेवाला है, ऐसे उत्तम मनुष्यका श्रेष्ठ धन उन्नतिशील आदमीकोही मिले, अधमको नहीं। ऐसे उन्नतिशीलको रुपया आदि स्थूल धन भी प्राप्त हो, ताकि उससे मनुष्य समाजका हित हो सके ॥ २९ ॥

जो झूठमूठका यज्ञ करनेका ढोंग करके माया या धोखेबाजीसे लोगोंको ठगना चाहे, वह बल हीन और निराश्रित होकर जंगलमें चला जाए। ऐसे दुष्टको समाजमें न रहने दिया जाए ॥ ३० ॥

[२५]

(ऋषिः- विश्वमना वैयश्वः । देवता- मित्रावरुणौ, १०-२ विश्वे देवाः । छन्दः- उष्णिक्, २८ उष्णिग्गर्भा ।)

६०७ ता वां विश्वस्य गोपा देवा देवेषु यज्ञिया । ऋतावाना यजसे पूतदक्षसा ॥ १ ॥
६०८ मित्रा तना न रथ्या३ वरुणो यश्च सुक्रतुः । सनात् सुजाता तनया धृतव्रता ॥ २ ॥
६०९ ता माता विश्ववेदसा ऽसुर्याय प्रमहसा । मही जजानादितिर्ऋतावरी ॥ ३ ॥
६१० महान्ता मित्रावरुणा सम्राजा देवावसुरा । ऋतावानावृतमा घोषतो बृहत् ॥ ४ ॥
६११ नपाता शवसो महः सूनू दक्षस्य सुक्रतू । सृप्रदानू इषो वास्त्वधि क्षितः ॥ ५ ॥

[२५]

अर्थ- [६०७] हे मित्रावरुण ! (वां) तुम दोनों (विश्वस्य गोपा) विश्वके रक्षक, (देवा) दिव्य तेजस्वी (देवेषु यज्ञिया) देवोंमें भी पूजनीय (ऋतावाना) सत्य तथा यज्ञके पालक तथा (पूतदक्षसा) पवित्र बलवाले हो। हे मनुष्य ! (ता यजसे) उन दोनों देवोंकी तू पूजा कर ॥ १ ॥

[६०८] (सुक्रतुः मित्रा वरुणः) उत्तम कर्म करनेवाला मित्र और वरुण दोनों (तना) अत्यन्त विशाल (रथ्या) रथसे सर्वत्र जानेवाले, (सनात् सुजाता) प्राचीन कालसे उत्तम रीतिसे उत्पन्न (तनया) अदिति देवीके पुत्र और (धृतव्रता) व्रतोंको धारण करनेवाले हैं ॥ २ ॥

[६०९] (ऋतावरी मही अदिति माता) सत्य मार्गपर चलनेवाली बडी अदिति माताने (असुर्याय) असुरोंके नाश करनेके लिए (विश्ववेदसा) सम्पूर्ण जगत्को जाननेवाले (प्रमहसा) अत्यन्त महान् और तेजस्वी मित्रा वरुणको (जजान) पैदा किया ॥ ३ ॥

[६१०] (महान्ता सम्राजा) महान्, अत्यन्त तेजस्वी (देवा) दिव्य गुणोंसे युक्त (असुरा) प्राणशक्ति देनेवाले और (ऋतावाना) यज्ञके रक्षक [मित्रावरुणा] (बृहत् ऋतं आ घोषतः) महान् यज्ञको और तेजस्वी बनाते है ॥ ४ ॥

[६११] (महः शवसः नपाता) महान् बलको नष्ट न करनेवाले, (दक्षस्य सूनू) बलसे उत्पन्न (सुक्रतू) उत्तम कर्म करनेवाले (सुप्रदानू) दानका विस्तार करनेवाले ये मित्रावरुण (इषः वास्तु अधि क्षितः) अन्नके स्थानमें रहते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ- हे मित्र और वरुण ! तुम दोनों संसारके रक्षक, उत्तम तेजस्वी, देव होते हुए भी देवोंमें सर्व श्रेष्ठ. सत्यके मार्गका अनुसरण करनेवाले हो। इसीलिए उपासक तुम्हारी पूजा करता है ॥ १ ॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव उत्तम कर्म करनेवाले, अत्यन्त महान्, रथसे सर्वत्र संचार करनेवाले और व्रतोंको धारण करनेवाले हैं ॥ २ ॥

सत्यमार्गपर चलनेवाली, श्रेष्ठ अदिति माताने अपने तेजस्वी पुत्र मित्रावरुणको इसलिए उत्पन्न किया कि वे असुरोंका नाश करें। इसी तरह राष्ट्रमरकी मातायें सत्यमार्गपर चलनेवाली हों, और वे सब अपनी सन्तानोंको तेजस्वी बनाकर उन्हें दुष्टों और शत्रुओंके विनाश कार्यकी तरफ प्रेरित करें ॥ ३ ॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव अत्यन्त तेजस्वी, दिव्य गुणोंसे युक्त, प्राण शक्तिको बलवान् बनाकर मानवजीवनरूपी यज्ञके रक्षक और उसे तेजस्वी बनानेवाले हैं ॥ ४ ॥

मित्र और वरुण दोनों देव महान् बलको उत्पन्न करके उसकी रक्षा करनेवाले हैं। दोनों ही उत्तम कर्म करनेवाले हैं तथा पाप आदि दुष्कर्मोंको फैलानेवाले हैं ॥ ५ ॥

६१२ सं या दानूनि येमथुर्दिव्याः पार्थिवीरिषः । नभस्वतीरा वां चरन्तु वृष्टयः ॥ ६ ॥
६१३ अधि या बृहतो दिवोऽभि यूथेव पश्यतः । ऋतावाना सम्राजा नमसे हिता ॥ ७ ॥
६१४ ऋतावाना नि षेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू । धृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः ॥ ८ ॥
६१५ अक्ष्णश्चिद् गातुवित्तरा ऽनुल्बणेन चक्षसा । नि चिन्मिषन्ता निचिरा नि चिक्यतुः ॥ ९ ॥
६१६ उत नो देव्यदितिरुरुष्यतां नासत्या । उरुष्यन्तु मरुतो वृद्धशवसः ॥ १० ॥
६१७ ते नो नावमुरुष्यत दिवा नक्तं सुदानवः । अरिष्यन्तो नि पायुभिः सचेमहि ॥ ११ ॥

अर्थ— [६१२] हे मित्र और वरुण ! (या) जो तुम दोनों (दानूनि) देने योग्य दानोंको (सं येमथुः) प्रदान करते हो, (दिव्याः पार्थिवीः इषः) दिव्य और पार्थिव अन्नोंको प्रदान करते हो । ऐसे (वां) तुम दोनोंकी (नभस्वतीः वृष्टयः) आकाशसे गिरनेवाली वृष्टियां (चरन्तु) सेवा करें ॥ ६ ॥

[६१३] (ऋतावाना सम्राजा) सत्य मार्गके अनुयायी, उत्तम तेजस्वी (नमसे हिता) नम्रभावके मनुष्योंका हित करनेवाले (या) जो मित्र और वरुण (बृहतः दिवः) महान् द्युलोकसे (यूथा इव) जैसे नेता अपने अनुयायियोंके समूहोंको देखता है, उसी तरह (अधि अभि पश्यतः) अच्छी प्रकारसे देखते हैं ॥ ७ ॥

[६१४] (ऋतावाना सुक्रतू) सत्यका पालन करनेवाले तथा उत्तम कर्म करनेवाले दोनों मित्र और वरुण (साम्राज्याय) उत्तमतासे शासन करनेके लिए ही (नि सेदतुः) अपने स्थानपर बैठे हैं । (धृतव्रता क्षत्रिया) व्रतोंको धारण करनेवाले तथा संकटोंसे लोगोंकी रक्षा करनेवाले दोनों देवोंने (क्षत्रं आशतुः) बल प्राप्त किया ॥ ८ ॥

[६१५] (अक्ष्णः चित् गातुवित्तरा) आंखोंवालोंकी अपेक्षा भी अधिक उत्तमतासे सन्मार्गको जाननेवाले (मिमिषन्ता) सबको जागृत करनेवाले (निचिरा) अत्यन्त प्राचीन मित्र और वरुण दोनों देव (अनुल्बणेन चक्षसा) अत्यन्त दुःसह तेजसे (नि चिक्यतुः) बहुत पूजित होते हैं ॥ ९ ॥

[६१६] (उत) और (देवी अदितिः) तेजसे युक्त अदिति माता (नः) हमारी रक्षा करे, (नासत्या उरुष्यतां) सत्यका पालन करनेवाले अश्विनीदेव हमारी रक्षा करें, (वृद्धशवसः मरुतः उरुष्यन्तु) बढे हुए बलवाले मरुत् हमारी रक्षा करें ॥ १० ॥

[६१७] हे (सुदानवः) उत्तम दान देनेवाले मरुतो ! (ते) वे तुम (नावं) नावकी तरह (दिवानक्तं नः उरुष्यतः) रातदिन हमारी रक्षा करो, तथा (अरिष्यन्तः) हिंसित न होते हुए हम (पायुभिः सचेमहि) संरक्षणके साधनोंसे संयुक्त हों ॥ ११ ॥

भावार्थ— आकाशसे समय पर बरसात गिरे तथा उस बरसातसे द्युलोकसे और पृथ्वीलोकसे उत्पन्न होनेवाले अन्न तथा अन्य दान भी हमें प्राप्त हों ॥ ६ ॥

मित्र और वरुण दोनों देव सदा सत्य मार्गसे चलनेवाले, उत्तम तेजस्वी, नम्रभावसे युक्त मनुष्योंका हित करनेवाले हैं । वे दोनों द्युलोकपरसे जगत्का निरीक्षण करते हुए उसका संपालन करते हैं ॥ ७ ॥

सत्यके मार्गपर चलनेवाला तथा उत्तम कर्म करनेवाला मनुष्य ही उत्तमतासे शासन कर सकता है और वही साम्राज्यके सर्वोच्च शासनपर बैठ सकता है । ऐसा उत्तम व्रतधारी शासक जब अपनी प्रजाओंको संकटोंसे बचाता है, तब उसे सारी प्रजाओंका बल प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

आंखोंवाले प्राणियोंकी अपेक्षा भी ये दोनों देव अपने मार्गको अधिक उत्तमतासे जान लेते हैं, ये ही देव सबको जागृत करके अपने अपने कामोंमें संयुक्त करते हैं । इनका तेज बहुत दुस्सह है, इसी तेजके कारण वे सर्वत्र पूजित होते हैं ॥ ९ ॥

तेजसे युक्त अदिति, अश्विनी कुमार तथा उत्तम बलवाले मरुद्गण हमारी रक्षा करें ॥ १० ॥

मरुतगण दिनरात हमारी रक्षा करें और उनके द्वारा सुरक्षित होकर हमारा उत्तम रीतिसे पालन होता रहे ॥ ११ ॥

६१८ अघ्नते विष्णवे वयमरिष्यन्तः सुदानवे । श्रुधि स्वयावन्त्सिन्धो पूर्वचित्तये ॥ १२ ॥
६१९ तद्वार्यं वृणीमहे वरिष्ठं गोपयत्यम् । मित्रो यत्पान्ति वरुणो यदर्यमा ॥ १३ ॥
६२० उत नः सिन्धुरपां तन्मरुतस्तदश्विना । इन्द्रो विष्णुर्मीढ्वांसः सजोषसः ॥ १४ ॥
६२१ ते हि ष्मा वनुषो नरोऽभिमातिं कयस्य चित् । तिग्मं न क्षोदः प्रतिघ्नन्ति भूर्णयः ॥ १५ ॥
६२२ अयमेक इत्था पुरूरु चष्टे वि विश्पतिः । तस्य व्रतान्यनु वश्चरामसि ॥ १६ ॥
६२३ अनु पूर्वाण्योक्या साम्राज्यस्य सश्चिम । मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत् ॥ १७ ॥

अर्थ— [६१८] (अरिष्यन्तः वयं) अहिंसित होते हुए हम (अघ्नते सुदानवे) अहिंसक और उत्तम दान देनेवाले (विष्णवे) विष्णुके लिये हवि देते हैं। हे (स्वयावन् सिन्धो) स्वयं प्रवाहित होनेवाली नदी! (पूर्वचित्तये) हमारी इच्छाओंको सबसे पहले जाननेके लिए तू हमारी प्रार्थना (श्रुधि) सुन ॥ १२ ॥

[६१९] (यत् मित्रः वरुणः) जिस धनकी मित्र, वरुण (यत् अर्यमा पान्ति) जिस धनकी अर्यमा रक्षा करते हैं, (तत् वरिष्ठं) उस सत्यगत श्रेष्ठ (गोपयत्यं) सबकी रक्षा करनेवाले तथा (वार्यं) संग्रहणीय धनको हम (वृणीमहे) मांगते हैं ॥ १३ ॥

[६२०] (उत) और (नः) हमारे (तत्) उस धनकी रक्षा (अपां सिन्धुः) जलसे भरी हुई नदियां, (मरुतः) मरुद् गण (तत् अश्विना) उस धनकी रक्षा अश्विदेव (इन्द्रः विष्णुः) इन्द्र विष्णु (मीढ्वांसः सजोषसः) मनोरथोंकी पूर्ति करनेवाले तथा साथ साथ रहनेवाले देव करें ॥ १४ ॥

[६२१] (ते हि वनुषः) वे पूजाके योग्य (भूर्णयः) वेगवान् गतिवाले (नरः) उत्तम नेता देव (कयस्य चित् अभिमातिं) किसी भी शत्रुके अभिमानको उसी प्रकार (प्रतिघ्नन्ति) तोड देते हैं, जिस प्रकार (तिग्मं क्षोदः न) तेज जलका प्रवाह वृक्षोंको तोड देता है ॥ १५ ॥

[६२२] मित्रावरुणमेंसे (एकः) एक (विश्पतिः) प्रजाओंका पालक (अयं) यह मित्र (इत्था) इस प्रकार (पुरु उरु) बहुतसे और विस्तृत विश्वको (वि चष्टे) देखता है, विश्वका निरीक्षण करता है, हे मनुष्यो! हम (वः) तुम्हारे कल्याणके लिए (तस्य व्रतानि चरामसि) उस मित्रके व्रतोंका आचरण करते हैं ॥ १६ ॥

[६२३] (साम्राज्यस्य दीर्घश्रुत् वरुणस्य) सबपर शासन करनेवाले बहुत प्रसिद्ध वरुणके (ओक्या व्रता) इस विश्वरूपी घरका हित करनेवाले व्रतोंका (अनु सश्चिम) आचरण करते हैं, उसी तरह (मित्रस्य) मित्रके व्रतोंका भी आचरण करते हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ— हम उत्तम दाता और अहिंसक विष्णुकी स्तुति करते हैं अतः विष्णुके साथ अन्य देवगण भी हमारी स्तुतियोंको सुनें ॥ १२ ॥

धन ऐसा हो कि जो देवोंके द्वारा रक्षित हो। सत्यमार्गसे अर्जित धनकी ही देव रक्षा करते हैं। अतः ऐसा ही धन मनुष्य अर्जन करे, ऐसा ही धन सबसे श्रेष्ठ और उस धनवानकी रक्षा करनेवाला होता है ॥ १३ ॥

हमारे उस श्रेष्ठ धनकी रक्षा सिन्धु, अश्विनौ, इन्द्र विष्णु आदि देव करें ॥ १४ ॥

देवों गति बहुत ही वेगवान् होनेके कारण उनके आगे कोई भी शत्रु नहीं टिक पाता अपितु सभी शत्रुओंका अभिमान उसी तरह टूट जाता है, जिस तरह वेगवान् जलप्रवाहकी चपेटमें आकर बडे बडे वृक्ष भी टूटकर गिर जाते हैं। इसी तरह मनुष्यको भी वेगयुक्त शक्तिसे युक्त होना चाहिए ॥ १५ ॥

मित्र और वरुण इन दोनों देवोंमेंसे एक देव मित्र सभी प्रजाओंका पालक होकर इस विस्तृत जगत्का निरीक्षण करता है। इस मित्रके व्रत-नियमोंके अनुसार आचरण करनेसे मनुष्योंका कल्याण होता है ॥ १६ ॥

सबपर शासन करनेवाले प्रसिद्ध वरुणके नियम इस संसारका हित करनेवाले हैं, उसी तरह मित्रके नियम भी जगत्के लिए हितकारक हैं, ऐसे मित्र और वरुणके नियमोंका हम आचरण करें ॥ १७ ॥

६२४ परि यो रश्मिना दिवो ऽन्तान् ममे पृथिव्याः । उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ॥ १८ ॥
६२५ उदु ष्य शरणे दिवो ज्योतिरयंस्त सूर्यः । अग्निर्न शुक्रः समिधान आहुतः ॥ १९ ॥
६२६ वचो दीर्घप्रसद्मनी—शे वाजस्य गोमतः । ईशे हि पित्वोऽविषस्य दावने ॥ २० ॥
६२७ तत् सूर्यं रोदसी उभे दोषा वस्तोरुप ब्रुवे । भोजेष्वस्माँ अभ्युच्चरा सदा ॥ २१ ॥
६२८ ऋज्रमुक्षण्यायने रजतं हरयाणे । रथं युक्तमसनाम सुषामणि ॥ २२ ॥
६२९ ता मे अश्व्यानां हरीणां नितोशना । उतो नु कृत्व्यानां नृवाहसा ॥ २३ ॥

अर्थ — [६२४] (यः) जिस मित्रने अपनी (रश्मिना) मापनेकी डोरीसे (दिवः पृथिव्याः अन्तान् परि ममे) द्यु और पृथिवीके अन्तको माप लिया, वह और वरुण (उभे) ये दोनों देव (महित्वा) अपनी महिमासे (रोदसी) द्युलोक और पृथ्वी लोकको (आ पप्रौ) पूर्ण कर देते हैं ॥ १८ ॥

[६२५] (स्यः सूर्यः) वह सूर्य (दिवः शरणे) द्युलोकरूपी घरमें जब (ज्योतिः उत् अयंस्त) अपनी ज्योति या तेजको ऊपर प्रकट करता है, तब (अग्निः न शुक्रः) अग्निके समान तेजस्वी वह सूर्य (समिधानः) और तेजस्वी होनेके कारण (आहुतः) सबके द्वारा बुलाया जाता है ॥ १९ ॥

[६२६] हे मनुष्य ! (दीर्घप्रसद्मनि) विशाल यज्ञगृहमें (वचः) तू स्तोत्र कह । यह मित्र (गोमतः वाजस्य) गायसे युक्त अन्नका (ईशे) स्वामी है, (हि) वही (अविषस्य पित्वः) विषसे रहित अन्नको (दावने) देनेमें (ईशे) समर्थ है ॥ २० ॥

[६२७] मैं (तत् सूर्यं) उस सूर्यके तेज तथा (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोककी (उप ब्रुवे) स्तुति करता हूं । हे देव ! (भोजेषु) भोजनके विषयमें तू (सदा) सदा (अस्मान् अभि उत् चर) हमारी ओर ही गति कर ॥ २१ ॥

[६२८] (उक्षण्यायने) बैलोंके समूहसे युक्त (हरयाणे) तथा घोडोंके समूहसे युक्त (सुषामणि) यज्ञमें हमने (ऋज्रं) वेगसे चलनेवाले (रजतं युक्तं) चांदी सोनेसे सुशोभित (रथं असनाम) रथको प्राप्त किया ॥ २२ ॥

[६२९] (हरीणां कृत्व्यानां अश्व्यानां) तेजस्वी, कर्ममें कुशल घोडोंके समूहमें (मे) मुझे (ता) वे (नितोशना) शत्रुओंके विनाशक तथा (नृवाहसा) नेताओंको ले जानेवाले दो घोडे (नु) निश्चयसे मिले ॥ २३ ॥

भावार्थ— मित्र अपनी मापनेकी डोरी अर्थात् किरणोंसे द्युलोक और पृथ्वीलोकको नाप लेता है और मित्र और वरुण ये दोनों देव द्यु और पृथ्वीको अपनी महिमासे भर देते हैं ॥ १८ ॥

जब वह सूर्य द्युलोकमें ऊपर उठकर अपने तेजको प्रकट करता है, तब उस सूर्यका तेज अग्निके समान देदीप्यमान हो जाता है, उसी समय यज्ञ शुरु होते हैं, जिनमें सूर्यके लिए आहुतियां दी जाती हैं ॥ १९ ॥

यही मित्र सभी तरहके अन्नोंका स्वामी होनेके कारण उत्तम और विषरहित अन्न देनेमें यही समर्थ है, अतः इसीकी स्तुति करनी चाहिए । सूर्य अन्नका स्वामी है । सूर्यकिरणोंके कारण ही अन्नमें स्थित जन्तु आदि नष्ट होकर अन्न विषरहित बनता है । सूर्यकी किरणोंको पीनेवाले अन्न अधिक पुष्टिकारक होते हैं ॥ २० ॥

मैं सूर्यके तेज तथा दोनों लोकोंकी स्तुति करता हूं, अतः वे देव हमें उत्तम अन्न प्रदान करें ॥ २१ ॥

बडे बडे यज्ञ जब किए जाते हैं, तब उसका विस्तार बहुत होता है और उसमें सम्मिलित होनेवालोंकी संख्या अत्यधिक होनेके कारण उस यज्ञस्थलके आसपास आनेवालोंके घोडों और बैलोंका समूह हो जाता है । ऐसे यज्ञोंमें ब्राह्मणोंको रथ आदि भी दक्षिणामें दिए जाते हैं ॥ २२ ॥

तेजस्वी और कर्मकुशल घोडोंके समूहमें भी वे ही घोडे अधिक प्रशंसनीय होते हैं कि जो शत्रुओंके विनाशक और वीर क्षत्रियोंको ले जानेवाले अर्थात् बलशाली होते हैं ॥ २३ ॥

+

६३० स्पर्दंश्वीशू कशावन्ता विप्रा नविष्ठया मती । मुहो वाजिनावर्वन्ता सचासनम् ॥ २४ ॥

[२६]

(ऋषिः- विश्वमना वैयश्वः, व्यश्वो वाङ्गिरसः । देवता- अश्विनौ, २०-२५ वायुः । छन्दः- उष्णिक्; १६-१९, २१, २५ गायत्री; २० अनुष्टुप् ।)

६३१ युवोरु षू रथं हुवे सुधस्तुत्याय सूरिषु । अतूर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसू ॥ १ ॥
६३२ युवं वरो सुषाम्णे मुहे तने नासत्या । अवोभिर्याथो वृषणा वृषण्वसू ॥ २ ॥
६३३ ता वामद्य हवामहे हव्येभिर्वाजिनीवसू । पूर्वीरिष इषयन्तावति क्षपः ॥ ३ ॥
६३४ आ वां वाहिष्ठो अश्विना रथो यातु श्रुतो नरा । उप स्तोमान् तुरस्य दर्शथः श्रिये ॥ ४ ॥
६३५ जुहुराणा चिदश्विना ऽऽमन्येथां वृषण्वसू । युवं हि रुद्रा पर्षथो अति द्विषः ॥ ५ ॥

अर्थ— [६३०] मैंने (महः) महान् दाताके पाससे (न विष्ठया मती) अत्यन्त नवीन स्तुतिकी सहायतासे (स्पद्‌श्वीशू) सुन्दर लगामोंवाले (कशावन्ता) उत्तम चाबुकवाले (विप्रा) ज्ञानसे युक्त (अर्वन्ता) वेगसे दौडनेवाले (वाजिना) दो बलवान् घोडोंको (सचा असनम्) एक साथ प्राप्त किया ॥ २४ ॥

[२६]

[६३१] हे (अतूर्त-दक्षा) ऐसे बल धारण करनेवाले कि जिसे दूसरा कोई नष्ट न कर सके और (वृषणा) बलवान् तथा (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवों ! (सूरिषु) विद्वानोंमें (सधस्तुत्याय) एकही साथ प्रशंसा करनेके लिए (युवोः रथं उ) तुम्हारे रथको ही (सु हुवे) भलीभाँति बुलाता हूँ ॥ १ ॥

[६३२] हे (नासत्या) असत्यसे दूर रहनेवाले ! (वृषणा) बलिष्ठ तथा (वृषण्वसू) धनकी वृष्टि करनेवाले अश्विदेवों ! (युवं) तुम (सुसाम्ने महे तने) सुसामनके लिए बडा धन मिले इस इच्छासे (अवोभिः याथः) संरक्षणोंसे युक्त होकर यात्रा करते हो उसी तरह मेरे लिए भी प्रयत्न करो, ऐसी प्रार्थना (वरो) हे वरु नरेश ! तू कर ॥ २ ॥

[६३३] हे (वाजिनी-वसू) बलयुक्त धनवाले अश्विदेवो ! (क्षपः अति) रात्रीके बीत जानेपर (अद्य ता वां) आज उन विख्यात तुम्हें जोकि (पूर्वीः इषः इषयन्तौ) बहुतसी अन्नसामग्रियोंको चाहते हो (हव्येभिः हवामहे) हवनीय वस्तुओंके प्रदानके साथ हम बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[६३४] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (वां वाहिष्ठः) तुम्हें खूब जगह जगह पहुँचानेवाला और (श्रुतः) विख्यात रथ (आ यातु) इधर चला आये; पश्चात् (तुरस्य स्तोमान्) शीघ्रतया कार्य करनेवालेके स्तोत्रोंका (श्रिये) शोभाके लिए (उप दर्शथः) समीप आकर दर्शन करो ॥ ४ ॥

[६३५] हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवों ! (जुहुराणा चित् आ मन्येथां) कुटिल प्रकृतिके लोगोंको भी मान्यता दे दो क्योंकि (युवं रुद्रा हि) तुम जो शत्रुको रुलानेवाले हो और (द्विषः अति पर्षथः) द्वेष करनेवाले शत्रुओंको पार करके आगे बढते हो ॥ ५ ॥

भावार्थ— घोडे वही उत्तम होते हैं, जो बलवान्, वेगवान् और ज्ञानी हों अर्थात् समयके अनुसार काम करनेवाले हों ॥ २४ ॥

अश्विदेव ऐसे बलको धारण करते हैं कि जिसे कोई नष्ट नहीं कर सकता । इसीलिए विद्वानोंमें इनकी स्तुति होती है ॥ १ ॥

हे असत्यसे दूर रहकर धनकी वृष्टि करनेवाले देवो ! जिस तरह उत्तम सामगान करनेवालेकी रक्षा करते हो, उसी तरह तुम मेरी भी करो ॥ २ ॥

हे बलवान् अश्विदेवो ! रातके बीत जाने पर प्रभातमें हम यज्ञ करके उसमें तुम्हें हविको ग्रहण करनेके लिए बुलाते हैं ॥ ३ ॥

अश्विदेवोंका रथ इन्हें ये जहाँ जाना चाहते हैं, वहाँ पहुँचा देता है और ये देव सर्वत्र जाकर स्तुति श्रवण करते हैं ॥ ४ ॥

हे देवो ! तुम दोनों शत्रुओंको रुलानेवाले हो और द्वेष करनेवाले शत्रुओंको पराभूत करके आगे बढ जाते हो, उसी तरह जो कुटिल प्रकृतिके लोग हैं, उन्हें भी शत्रु मानकर उन्हें रुलाओ ॥ ५ ॥

६३६ दस्रा हि विश्वमानुषङ् मक्षूभिः परिदीयथः । धियंजिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती ॥ ६ ॥
६३७ उप नो यातमश्विना राया विश्वपुषा सह । मघवाना सुवीरावनपच्युता ॥ ७ ॥
६३८ आ मे अस्य प्रतीव्य१मिन्द्रनासत्या गतम् । देवा देवेभिरद्य सचनस्तमा ॥ ८ ॥
६३९ वयं हि वां हवामह उक्षण्यन्तो व्यश्ववत् । सुमतिभिरुप विप्राविहा गतम् ॥ ९ ॥
६४० अश्विना स्वृषे स्तुहि कुवित् ते श्रवतो हवम् । नेदीयसः कूळयातः पणीँरुत ॥ १० ॥
६४१ वैयश्वस्य श्रुतं नरोतो मे अस्य वेदथः । सजोषसा वरुणो मित्रो अर्यमा ॥ ११ ॥

अर्थ— [६३६] हे (दस्रा) दर्शनीय ! (मधु-वर्णा) मधुर वर्णवाले ! (धियं-जिन्वा) बुद्धि या कर्मोंको ठीक पालन पोषण करनेवाले ! (शुभः पती) शुभ कर्मोंके अधिपति ! अश्विदेवों ! (मक्षुभिः) शीघ्रगामी घोडोंके साथ (विश्वं आनुषक्) सबके समीप लगातार (परि दीयथः) चतुर्दिक् चले जाते हो इसमें संशय नहीं है ॥ ६ ॥

[६३७] हे (मघवाना) ऐश्वर्यसंपन्न ! (अन्-अपच्युता) न पदभ्रष्ट हुए (सुवीरौ) अच्छे वीर अश्विदेवों ! (नः) हमारे समीप (विश्वपुषा राया सह) सबकी पुष्टि करनेवाले धनसे युक्त होकर (उप यातं) आओ ॥ ७ ॥

[६३८] हे (इन्द्र नासत्या) इन्द्र एवं सत्यभक्त अश्विदेवों ! तुम (देवा) दानी और (देवेभिः सचनः तमा) विद्वानोंसे अत्यन्त अधिक मात्रामें युक्त होनेवाले हो, अतः (अद्य मे अस्य प्रतीव्यं) आज मेरे इस स्तोत्रके प्रत्युत्तरके रूपमें (आ गतं) इधर पधारो ॥ ८ ॥

[६३९] हे (विप्रौ) ज्ञानी अश्विदेवों ! (वयं व्यश्ववत्) हम व्यश्वके समान ही, (उक्षण्यन्तः) इच्छा करते हुए (वां हि हवामहे) तुम्हें ही बुलाते हैं, इसलिए (सुमतिभिः इह) अच्छी बुद्धियों एवं विचारोंसे युक्त होकर इधर (उप आ गतं) समीप आओ ॥ ९ ॥

[६४०] हे ऋषिवर ! तू अश्विदेवोंकी (सु स्तुहि) अच्छीभाँति सराहना कर, क्योंकि वे दोनों (ते हवं) तेरी पुकारको (कुवित् श्रवतः) बहुत बार सुन लेते हैं, (उत) और (पणीन्) स्वार्थी व्यापारियोंको एवं (नेदीयसः) समीप पहुँचे हुए शत्रुओंको (कूळयातः) विनष्ट कर डालते हैं ॥ १० ॥

[६४१] हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (वैयश्वस्य श्रुतं) व्यश्वके पुत्रके कथनको सुन लो (उत) और (अस्य मे वेदथः) इस मेरे भाषणको ठीक तरह जान लो; (वरुणः मित्रः अर्यमा) वरुण, मित्र एवं अर्यमा (सजोषसा) इकट्ठे हो इधर आजायँ ॥ ११ ॥

भावार्थ— दोनों अश्विदेव मधुर वाणीवाले, बुद्धिको उत्तम ज्ञानसे तृप्त करनेवाले, शुभ कर्मोंके स्वामी और सर्वत्र संचार करनेवाले हैं ॥ ६ ॥

हे ऐश्वर्यशाली तथा पदभ्रष्ट न होनेवाले वीर अश्विदेवो ! तुम सब तरहका पोषण करनेवाले धनसे युक्त होकर हमारे पास आओ ॥ ७ ॥

हे ऐश्वर्यशाली तथा सत्यकी भक्ति करनेवाले देवो ! तुम विद्वत्तासे अत्यधिक युक्त हो, अतः तुम हमारे बुलाने पर आओ ॥ ८ ॥

हे ज्ञानी अश्विदेवो ! हम व्यश्वके समान ही उत्तम ऐश्वर्यको पानेकी इच्छा करते हुए तुम्हें बुलाते हैं, अतः उत्तम बुद्धि एवं विचारोंसे युक्त होकर हमारे पास आओ ॥ ९ ॥

हे ज्ञानी ! तू अश्विनौ देवोंकी अच्छी तरह स्तुति कर, क्योंकि ये दोनों देव तेरी प्रार्थनाको अनेक बार सुनकर स्वार्थी व्यापारियों और शत्रुओंको नष्ट कर चुके हैं । राज्यमें अधिक मुनाफा करनेवाले जो स्वार्थी व्यापारी हों, उन्हें नष्ट कर देना चाहिए ॥ १० ॥

हे अश्विदेवो ! मेरी इस प्रार्थनाको ठीक तरह सुनो और वरुण, मित्र और अर्यमा एक साथ मिलकर मेरे पास आवें ॥ ११ ॥

६४२ युवादत्तस्य धिष्ण्या युवानीतस्य सूरिभिः । अहरहर्वृषणा मह्यं शिक्षतम् ॥ १२ ॥
६४३ यो वां यज्ञेभिरावृतोऽधिवस्त्रा वधूरिव । सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना ॥ १३ ॥
६४४ यो वामुरुव्यचस्तमं चिकेतति नृपाय्यम् । वर्तिरश्विना परि यातमस्मयू ॥ १४ ॥
६४५ अस्मभ्यं सु वृषण्वसू यातं वर्तिर्नृपाय्यम् । विषुद्रुहेव यज्ञमूहथुर्गिरा ॥ १५ ॥
६४६ वाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा । युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥ १६ ॥
६४७ यददो दिवो अर्णव इषो वा मदथो गृहे । श्रुतमिन्मे अमर्त्या ॥ १७ ॥

अर्थ— [६४२] हे (धिष्ण्या वृषणा) प्रशंसाई एवं इच्छापूर्ति करनेहारे अश्विदेवो ! (सूरिभिः) विद्वानोंको (युवानीतस्य युवा दत्तस्य) तुम लाकर जो धन दे चुके हो उसे (अहः अहः) हरदिन (मह्यं शिक्षतं) मुझे दे डालो ॥ १२ ॥

[६४३] (अधि-वस्त्रा वधूः इव) कपडे ओढी हुई नववधूके समान (यः) जो मानव (वां यज्ञेभिः आवृतः) तुम्हारे यज्ञोंसे पूर्णतया ढका हुआ हो, उसे (सपर्यन्ता) अभीष्ट चीजोंके प्रदानसे पूजित करते हुए अश्विदेव (शुभे चक्राते) अच्छी दशामें वह रहे ऐसा प्रबन्ध कर देते हैं ॥ १३ ॥

[६४४] हे अश्विदेवो ! (यः) जो (उरुव्यचस्तमं) अत्यन्त विस्तीर्ण तथा (नृ-पाय्यं) नेताओंद्वारा सुरक्षित रखनेयोग्य स्थानको (वां चिकेतति) तुम्हारे लिए बतलाता है, उसके (वर्तिः) घरतक (अस्मयू) हमारी चाह रखनेवाले तुम (परि यातं) चारों ओरसे चले जाओ ॥ १४ ॥

[६४५] हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवो ! (नृपाय्यं वर्तिः) नेताओंसे रक्षणीय घरको (अस्मभ्यं) हमारे हितके लिए (सु यातं) भलीभाँति जाओ क्योंकि तुम (गिरा यज्ञं) भाषणसे यज्ञको (वि-षु-द्रुहा इव ऊहथुः) सभी शत्रुओंके वधकर्ता बाणकी तरह उठा ले गये ॥ १५ ॥

[६४६] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (हवानां) तुम्हें जो बुलावे भेजे जाते हैं उनमें (वां वाहिष्ठः) तुम्हें अत्यधिक मात्रामें प्राप्त होनेवाला (स्तोमः दूतः हुवत्) हमारा स्तोत्र दूत बनकर इधर बुलाए और वह (युवाभ्यां) तुम्हें प्रिय (भूतु) प्रतीत हो ॥ १६ ॥

[६४७] हे (अ-मर्त्या) अमर अश्विदेवो ! (यत् दिवः) जो तुम द्युलोकमें (अर्णवे) समुद्रमें (इषः गृहे वा) या अभीष्टके घरमें (मदथः) हर्षित होते हो, परन्तु (मे अदः) मेरा यह भाषण (श्रुतं इत्) तुम अवश्य सुन लेना ॥ १७ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! विद्वान्को तुम जैसा उत्तम धन देते हो, वैसा ही उत्तम धन तुम मुझे भी दो ॥ १२ ॥

जिस तरह नववधू अच्छे कपडोंमें अच्छी तरह लिपटी हुई होती है, उसी तरह जो लोग उत्तम कर्मोंसे युक्त होते हैं वे सदा ही अच्छी दशामें रहते हैं ॥ १३ ॥

जो नेता या उत्तम ज्ञानी मनुष्य अश्विदेवोंके लिए स्थान सुरक्षित रखता है, उसके घर अश्विदेव सदा जानेकी इच्छा करते हैं ॥ १४ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम जिसके भी घर जाते हो, वहां पहुंचकर वहां होनेवाले यज्ञमें इकट्ठे हुए जनसमूहको अपने मधुर भाषणोंसे अपनी ओर आकर्षित कर लेते हो ॥ १५ ॥

हे अश्विदेव ! जितने भी लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं, उन सबमें हमारी ही स्तुति तुमतक पहुंचे और तुम हमारे पास आओ ॥ १६ ॥

हे अमर अश्विदेवो ! चाहे तुम द्युलोकमें हो, चाहे समुद्रमें या चाहे तुम अपने किसी भक्तके घरमें आनंद कर रहे होओ, तो भी तुम हमारी प्रार्थना सुनकर हमारे पास चले आओ ॥ १७ ॥

६४८ उत स्या श्वे॑तयाव॑री वाहि॑ष्ठा वां॑ न॒दीना॑म् । सिन्धु॒र्हिर॑ण्यवर्तनिः ॥ १८ ॥
६४९ स्मदे॑तया सुकी॒र्त्या ऽश्वि॑ना श्वे॒तया॑ धि॒या । वहे॑थे शुभ्रयावाना ॥ १९ ॥
६५० यु॒क्ष्वा हि त्वं र॑थासहा॑ यु॒वस्व॒ पोष्या॑ वसो ।
आत्रो॑ वायो॒ मधु॑ पिबा॒ ऽस्माकं॒ सव॒ना ग॑हि ॥ २० ॥
६५१ तव॑ वायवृतस्पते॒ त्वष्टु॑र्जामातरद्भुत । अवां॒स्या वृ॑णीमहे ॥ २१ ॥
६५२ त्वष्टु॒र्जामा॑तरं व॒य मीशा॑नं रा॒य ई॑महे । सुताव॑न्तो वा॒युं द्यु॒म्ना जना॑सः ॥ २२ ॥
६५३ वायो॑ या॒हि शि॒वा दि॒वो वह॑स्वा॒ सु स्वश्व्य॑म् । वह॑स्व म॒हः पृ॑थु॒पक्ष॑सा॒ रथे॑ ॥ २३ ॥

अर्थ— [६४८] (उत) और भी (नदीनां वां वाहिष्ठा) नदियोंमें तुम्हें ही अधिक इष्ट स्थानपर पहुँचानेवाली (स्या श्वेतयावरी) वह शुभ-निर्मल गतिवाली (हिरण्यवर्तनिः) सुवर्णतुल्य तेजस्वी मार्गवाली (सिन्धुः) नदी है ॥ १८ ॥

[६४९] हे (शुभ्र-यावाना अश्विना) निष्कलंक गतिवाले अश्विदेवों ! (एतया सुकीर्त्या) इस अच्छी कीर्तिवाली (श्वेतया धिया) सफेद-निष्कलंक बुद्धिसे तुम दोनों (स्मत् वहेथे) कल्याणकी ओर-जाते हो- शुभ एवं हितप्रद मार्गके पथिक बनते हो ॥ १९ ॥

[६५०] हे (वसो) सबको बसानेवाले वायो ! (त्वं) तू (रथा सहा) रथको खींचनेमें समर्थ दो घोडियोंको (युक्ष्वा) जोड तथा (पोष्या) अच्छी तरहसे पुष्ट दो घोडियोंको (युवस्व) जोड । हे (वायो) वायो ! (आत्) उसके बाद (अस्माकं सवना आ गहि) हमारे यज्ञमें आओ और (नः मधु पिब) हमारे मीठे सोमरसोंको पीओ ॥ २० ॥

[६५१] हे (ऋतः पते) सत्कर्मोंके पालन कर्ता (त्वष्टुः जामाता अद्भुत वायो) त्वष्टाके जामाता अपूर्व वायो ! हम (तव आवांसि वृणीमहे) तेरे संरक्षणके साधनोंकी इच्छा करते हैं ॥ २१ ॥

[६५२] (त्वष्टुः जामातारं ईशानं वायुं) त्वष्टाके जामाता तथा ऐश्वर्यशाली वायुकी (जनासः) हम लोग (राये ईमहे) ऐश्वर्य प्राप्तिके लिए प्रार्थना करते हैं । (वयं) हम सब (द्युम्ना) उसके तेजसे (सुतावन्तः) ऐश्वर्यशाली हों ॥ २२ ॥

[६५३] (वायो) हे वायो ! तुम हमारे पास (दिवः शिवः) दिव्य कल्याणको लेकर (आ याहि) आओ, तथा (सुअश्व्यं) उत्तम अश्वोंके समूहको (वहस्व) चारों ओर ले जाओ । (महः) हे महान् वायो ! तुम (रथे) अपने रथमें (पृथु पक्षसा) महान् बलसे युक्त दो घोडियोंको (वहस्व) जोडो ॥ २३ ॥

भावार्थ — नदियोंमें शुभ्र निर्मल तथा सुनहरे रंगकी प्रवाहवाला सिन्धु नदी सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि वह नदी ही अश्विनी देवोंकी हर तरहसे सहायता करती है ॥ १८ ॥

अश्विदेव सदा सन्मार्गसे चलनेवाले हैं, इसीलिए इनकी गति निष्कलंक है । यह अपनी कीर्तिवाली तथा कलंकरहित बुद्धिके द्वारा लोगोंको कल्याणके मार्गमें प्रेरित करते हैं ॥ १९ ॥

वायुके कारण ही सब जीवन धारण करते हैं । यह वायुदेव अपनी लहररूपी घोडियोंपर चढकर सर्वत्र संचार करता है और इस मनुष्य जीवनरूपी यज्ञको धारण करता है ॥ २० ॥

वायुदेव उत्तम कर्मोंका पालन करनेवाले हैं । अतः हम चाहते हैं कि उसके संरक्षणके साधन हमें प्राप्त हों ॥ २१ ॥

ऐश्वर्य प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हम ऐश्वर्यशाली वायुकी प्रार्थना करते हैं, उस वायुके तेजसे हम समृद्ध और सम्पन्न हों ॥ २२ ॥

हे वायो ! तुम हमें श्रेष्ठ कल्याणको प्रदान करो, हम सदा कल्याणके मार्गपर ही चलें । तुम चारों ओर अच्छी तरह संचार करो ॥ २३ ॥

६५४ त्वां हि सुप्सरस्तमं नृषदनेषु हूमहे । ग्रावाणं नाश्वपृष्ठं मंहना ॥ २४ ॥
६५५ स त्वं नो देव मनसा वायो मन्दानो अग्रियः । कृधि वाजाँ अपो धियः ॥ २५ ॥

[२७]

(ऋषिः- मनुर्वैवस्वतः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- प्रगाथः (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

६५६ अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पतिं देवाँ अवो वरेण्यम् ॥ १ ॥
६५७ आ पशुं गासि पृथिवीं वनस्पतीनुषासा नक्तमोषधीः ।
विश्वे च नो वसवो विश्ववेदसो धीनां भूत प्रावितारः ॥ २ ॥
६५८ प्र सू न एत्वध्वरोऽग्ना देवेषु पूर्व्यः ।
आदित्येषु प्र वरुणे धृतव्रते मरुत्सु विश्वभानुषु ॥ ३ ॥

अर्थ— [६५४] हे वायो ! (सुप्सरस्तमं) अत्यन्त रूपवान् (मंहना अश्वपृष्ठं) और अपने महत्त्वसे सर्वत्र व्याप्त (त्वां) तुम्हें (नृषदनेषु) मानवोंके घरोंमें-यज्ञोंमें (ग्रावाणं न) सोम पीनेके पत्थरके समान (हूमहे) बुलाते हैं ॥ २४ ॥

[६५५] (देव अग्रियः वायो) कान्तिमान् तथा देवताओंमें अग्रणी वायो ! (सः त्वं) वह तू (मनसा मन्दानः) स्वयं मनसे प्रसन्न होता हुआ (नः) हमारे लिए (वाजान् अपः धियः कृधि) अन्न, पानी तथा बुद्धिको प्रदान कर ॥ २५ ॥

[२७]

[६५६] (उक्थे अध्वरे) इस प्रशंसनीय यज्ञमें (अग्निः पुरोहितः ग्रावाणः बर्हिः) अग्नि, पुरोहित, सोम कूटनेके पत्थर और आसन आदि सबकुछ तैय्यार है । अब मैं (ऋचा) वेदमंत्रोंके द्वारा (मरुतः ब्रह्मणस्पतिं देवान्) मरुत्, ब्रह्मणस्पति तथा अन्य देव और (वरेण्यं अवः) चाहने योग्य संरक्षणको (यामि) मांगता हूँ ॥ १ ॥

[६५७] हे अग्ने ! तू हमें (पशुं) पशुको (पृथिवीं) भूमि (वनस्पतीन्) उत्तम वनस्पति (उषासानक्ता) उत्तम प्रातःकाल और उत्तम रात्री तथा (ओषधीः) उत्तम औषधियाँ (आ गासि) प्रदान कर । हे (विश्ववेदसः विश्वे वसवः) सब पदार्थोंको जाननेवाले सभी वसुगण ! (नः धीनां प्र अवितारः भूत) तुम हमारी बुद्धियोंकी उत्तम रीतिसे रक्षा करनेवाले होओ ॥ २ ॥

[६५८] (नः पूर्व्यः अध्वरः) हमारा यह श्रेष्ठ यज्ञ (अग्ना) अग्निके पास तथा (आदित्येषु) आदित्य (धृतव्रते वरुणे) व्रतोंको धारण करनेवाले वरुण और (विश्वभानुषु मरुत्सु) सर्वत्र व्याप्त तेजवाले मरुतोंके पास तथा (देवेषु) अन्य देवोंके पास (प्र सु एतु) उत्तम रीतिसे जाए ॥ ३ ॥

भावार्थ— वायुदेव अपने महत्त्वसे सर्वत्र व्याप्त हैं । जगके प्रत्येक कण कणमें वायु व्याप्त हो रहा है ॥ २४ ॥

हे वायो ! प्रसन्न होता हुआ तू हमें अन्न, पानी और उत्तम बुद्धिको प्रदान कर । मनुष्योंको भोजनके लिए उत्तम अन्न, पीनेके लिए उत्तम पानी और अनेक कर्म करनेके लिए उत्तम बुद्धि चाहिए ॥ २५ ॥

इस प्रशंसनीय यज्ञको पूर्ण करनेके लिए सभी सामग्रियां तैय्यार हैं, अतः अब मैं सभी देवोंको बुलाकर उनसे मैं संरक्षणकी प्रार्थना करता हूं ॥ १ ॥

अग्नि हमें पशु, जमीन, उत्तम वनस्पति और औषधी आदि प्रदान करे, तथा वसु हमें उत्तम बुद्धि प्रदान करें, ताकि हम अग्निसे प्राप्त ऐश्वर्यका सदुपयोग कर सकें और दिन और रात उत्तम रीतिसे बिता सकें ॥ २ ॥

हमारा यज्ञ अग्नि, आदित्य, वरुण तथा तेजस्वी मरुत् एवं अन्य देवोंको प्रसन्न करनेके लिए उनके पास पहुंचे ॥ ३ ॥

६५९ विश्वे हि ष्मा मनवे विश्ववेदसो भुवन् वृधे रिशादसः ।
आरिष्टेभिः पायुभिर्विश्ववेदसो यन्ता नोऽवृकं छर्दिः ॥ ४ ॥

६६० आ नो अद्य समनसो गन्ता विश्वे सजोषसः ।
ऋचा गिरा मरुतो देव्यदिते सदने पस्त्ये महि ॥ ५ ॥

६६१ अभि प्रिया मरुतो या वो अश्व्या हव्या मित्र प्रयाथन ।
आ बर्हिरिन्द्रो वरुणस्तुरा नर आदित्यासः सदन्तु नः ॥ ६ ॥

६६२ वयं वो वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आनुषक् ।
सुतसोमासो वरुण हवामहे मनुष्वदिद्धाग्नयः ॥ ७ ॥

६६३ आ प्र यात मरुतो विष्णो अश्विना पूषन् माकीनया धिया ।
इन्द्र आ यातु प्रथमः सनिष्युभि र्वृषा यो वृत्रहा गृणे ॥ ८ ॥

अर्थ— [६५९] (विश्ववेदसः रिशादसः) सब विश्वके ज्ञाता तथा शत्रुओंके विनाशक (विश्वे हि) सभी देवगण (मनवे वृधे भुवन्) मनुष्यको बढानेवाले हों । (विश्ववेदसः) सब तरहके धनको प्राप्त करनेवाले देवगण (अरिष्टेभिः पायुभिः) नष्ट न होनेवाले संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा करें, तथा (नः) हमें (अवृकं छर्दिः यन्त) हिंसकोंसे रहित घर प्रदान करें ॥ ४ ॥

[६६०] (समनसः विश्वे) समान मनवाले अर्थात् पक्षपात रहित सभी देव (नः ऋचा गिरा) हमारे द्वारा बोले जानेवाले वेदमंत्रों और स्तुतियोंसे आकृष्ट होकर (सजोषसः आ गन्त) संघटितरूपसे हमारे पास आवें । (मरुतः) हे मरुतो ! (महि देवि अदिते) पूज्य देवी अदिति ! तुम भी (पस्त्ये सदने) हमारे उत्तम घरमें आओ ॥ ५ ॥

[६६१] हे (मरुतः) मरुतो ! (वः) तुम्हारे (या प्रिया अश्व्या) जो प्रिय घोडोंके समूह हैं, उनके द्वारा (अभि प्रयाथन) हमारे यज्ञकी तरफ आओ । हे (मित्र) मित्र ! (हव्या) हविभक्षणके लिए तू भी आ (इन्द्रः) इन्द्र (वरुणः) वरुण (तुराः नरः) शीघ्रतासे कर्म करनेवाले नेता ऋभु तथा (आदित्यासः) आदित्य (नः बर्हिः आ सदन्तु) हमारे यज्ञमें आकर बैठें ॥ ६ ॥

[६६२] हे (वरुण) वरुण आदि देवो ! (मनुष्वत्) ज्ञानीके समान (सुतसोमासः) सोमरस तैय्यार करके (वृक्त बर्हिषः) आसन बिछाकर (इद्धाग्नयः) यज्ञाग्नियां प्रज्वलित करके तथा (हितप्रयसः) उनमें आहुति आदि दे करके (वयं) हम (वः) तुम सबको (आनुषक् हवामहे) बार बार बुलाते हैं ॥ ७ ॥

[६६३] (मरुतः विष्णो अश्विना पूषन्) मरुत, विष्णु, अश्विदेव तथा पूषा देवो ! (मामकीनया धिया) मेरी स्तुतिसे आकृष्ट होकर (आ प्र यात) मेरे पास आओ । (यः वृषा) जो बलवान् है और (वृत्रहा गृणे) वृत्रको मारनेवालेके रूपमें जो प्रसिद्ध होता है, वह (इन्द्रः) इन्द्र (सनिष्युभिः) अपने सहायकोंके साथ (प्रथमः आ यातु) सबसे पहले हमारे पास आवे ॥ ८ ॥

भावार्थ— सब संसारको जाननेवाले तथा शत्रुओंके विनाशक देव मनुष्योंकी उत्तम साधनोंसे रक्षा करें और इस प्रकार मनुष्योंकी वृद्धि हो । साथ ही वे देवगण हिंसकोंसे रहित घर भी मनुष्योंको प्रदान करें ॥ ४ ॥

सभी देवोंका मन सब प्राणियोंके प्रति समान रहता है, अर्थात् वे किसीके प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार नहीं करते । ऐसे वे देव सदा संघटित होकर रहते हैं । उन देवोंकी माता अदिति घरमें रहती है । सभी मनुष्योंका पारस्परिक व्यवहार पक्षपातरहित हो, सभी संघटित होकर रहें ॥ ५ ॥

सभी देवगण हमारे यज्ञोंमें आकर बैठें और हमारे द्वारा दी गई हविका भक्षण करें ॥ ६ ॥

अपने यज्ञमें देवोंके सत्कारके लिए सभी सामग्रियां तैय्यार करके हम देवोंको बुलाते हैं, वे हमारे यज्ञोंमें आवें ॥ ७ ॥

वृत्रको मारनेवालेके रूपमें जो प्रसिद्ध है, वह इन्द्र अपने सहायक अन्य देवोंके साथ मेरी स्तुतिसे आकृष्ट होकर आवे ॥ ८ ॥

६६४ वि नो देवासो अद्रुहो ऽच्छिद्रं शर्म यच्छत ।
न यद् दूराद् वसवो नू चिदन्तितो वरूथमादधर्षति ॥ ९ ॥

६६५ अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसो देवासो अस्त्याप्यम् ।
प्र णः पूर्वस्मै सुविताय वोचत मक्षू सुम्नाय नव्यसे ॥ १० ॥

६६६ इदा हि व उपस्तुतिमिदा वामस्य भक्तये ।
उप वो विश्ववेदसो नमस्युराँ असृक्ष्यन्यामिव ॥ ११ ॥

६६७ उदु ष्य वः सविता सुप्रणीतयो ऽस्थादूर्ध्वो वरेण्यः ।
नि द्विपादश्चतुष्पादो अर्थिनो ऽविश्रन् पतयिष्णवः ॥ १२ ॥

६६८ देवंदेवं वोऽवसे देवंदेवमभिष्टये ।
देवंदेवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥ १३ ॥

अर्थ — [६६४] हे (अ-द्रुहः वसवः देवासः) किसीसे द्रोह न करनेवाले तथा सबको बसानेवाले देवो ! (यत् वरूथं) जिस घरको कोई शत्रु (दूरात् नु चित् अन्तितः) दूरसे और पाससे भी (न आ दधर्षति) नष्ट नहीं कर सकता, ऐसे (अच्छिद्रं शर्म) छिद्र अर्थात् दोषरहित घरको (नः वि यच्छत) हमें प्रदान करो ॥ ९ ॥

[६६५] हे (रिशादसः देवासः) हिंसकोंके शत्रु देवो ! (वः सजात्यं अस्ति) तुममें आपसमें एक जातीयता है, (आप्यं अस्ति) आपसमें भाईपन भी है। अतः तुम (पूर्वस्मै सुविताय) सबसे श्रेष्ठ अभ्युदय तथा (नव्यसे सुम्नाय) अत्यन्त नवीन सुखके लिए (मक्षु) शीघ्र ही (नः प्रवोचत) हमें उत्तम उपदेश दो ॥ १० ॥

[६६६] हे (विश्ववेदसः) सब पदार्थको जाननेवाले देवो ! (नमस्युः) अन्नकी इच्छा करनेवाला मैं (इदा वामस्य भक्तये) अभी सुन्दर धनकी प्राप्तिके लिए (अन्यां इव उपस्तुतिं) अनन्य अर्थात् अद्भुत स्तुतिको (वः) तुम्हारे लिए (आ असृक्षि) करता हूँ ॥ ११ ॥

[६६७] हे (सु प्रणीतयः) उत्तम नेता देवो ! (वः) तुम्हारे मध्यमें (ऊर्ध्वः) श्रेष्ठ (वरेण्यः) उत्तम वरणीय (स्यः सविता) वह सूर्य देव (उत् अस्थात्) उदय होता है, तब (अर्थिनः) इच्छा करनेवाले (द्विपादः चतुष्पादः पतयिष्णवः) दोपाये- मनुष्य, चौपाये- पशु तथा उडनेवाले पक्षी (अविश्रन्) अपने अपने काममें लग जाते हैं ॥ १२ ॥

[६६८] हम (देव्या धिया गृणन्तः) दिव्य स्तुतिसे स्तुति करते हुए (वः) तुममेंसे (देवं देवं) अत्यन्त तेजस्वी देवको (अवसे) अपनी रक्षाके लिए (हुवेम) बुलाते हैं (देवं देवं अभिष्टये) तेजस्वी देवको (अभिष्टये) अपनी इच्छित वस्तुको प्राप्त करनेके लिए बुलाते हैं, (देवं देवं) अत्यन्त तेजस्वी देवको (वाज-सातये) अन्नकी प्राप्तिके लिए बुलाते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ— घर ऐसी कुशलतासे बांधा गया हो, कि जिसे कोई शत्रु तोड फोड न सके। ऐसे दृढ और दोषरहित घरमें हम रहें ॥ ९ ॥

इन देवोंमें आपसमें एक जातीयता है, अर्थात् इनमें छोटापन और बडप्पनका भेदभाव नहीं है, इसी कारण इनमें भाईचारा भी है। ये देव हमें शीघ्र ही सबसे श्रेष्ठ अभ्युदयके लिए तथा नवीनतम सुखके लिए शीघ्र ही हमें उत्तम उपदेश दें ॥ १० ॥

अन्नकी इच्छा करनेवाला मैं सुन्दर धनकी प्राप्तिके लिए इन देवोंकी अद्भुत स्तुति करता हूँ ॥ ११ ॥

जब देवोंमें श्रेष्ठ और वरणीय सूर्य देव उदय होते हैं, तब विश्वके सभी प्राणी अपने अपने कामोंमें लग जाते हैं और काम करके अपनी इच्छाओंकी पूर्ति करते हैं ॥ १२ ॥

हम अपनी रक्षाके लिए, इच्छित वस्तुकी प्राप्तिके लिए तथा अन्नकी प्राप्तिके लिए अत्यन्त तेजस्वी देवको बुलाते हैं ॥ १३ ॥

६६९ दे॒वासो॒ हि ष्मा॒ मन॑वे॒ सम॑न्यवो॒ विश्वे॑ सा॒कं सरा॑तयः ।
ते नो॑ अ॒द्य ते अ॑प॒रं तु॒चे तु नो॒ भव॑न्तु वरिवो॒विदः॑ ॥ १४ ॥

६७० प्र वः॑ शंसाम्यद्रुहः सं॒स्थ उप॑स्तुतीनाम् ।
न तं धू॒र्तिर्व॑रुण मित्र॒ मर्त्यं॒ यो वो॒ धाम॒भ्योऽवि॑धत् ॥ १५ ॥

६७१ प्र स क्षयं॑ तिरते॒ वि म॒हीरिषो॒ यो वो॒ वरा॑य॒ दाश॑ति ।
प्र प्र॒जाभि॑र्जायते॒ धर्म॑ण॒स्पर्यरि॑ष्टः॒ सर्व॑ एधते ॥ १६ ॥

६७२ ऋ॒ते स वि॑न्दते यु॒धः सु॒गेभि॑र्यात्यध्व॑नः ।
अ॒र्य॒मा मि॒त्रो वरु॑णः॒ सरा॑तयो॒ यं त्राय॑न्ते स॒जोष॑सः ॥ १७ ॥

अर्थ— [६६९] (समन्यवः विश्वे देवासः) शत्रुओं पर क्रोध करनेवाले सभी देव (मनवे) मननशील ज्ञानीके लिए (साकं सरातयः) एक साथ धन देनेवाले हों। (ते) वे देव (नः) हमारे लिए (अद्य) आज भी ऐश्वर्य देनेवाले हों, (ते) वही देव (अपरं) दूसरे दिन भी ऐश्वर्य देनेवाले हों। वे देव (नः तुचे) हमारे पुत्रादियोंके लिए भी (वरिवोविदः) धन प्राप्त करानेवाले हों ॥ १४ ॥

[६७०] हे (अद्रुहः) द्रोह न करनेवाले देवो ! (उपस्तुतीनां संस्थे) स्तुतियोंके स्थानमें (वः प्र शंसामि) तुम्हारी मैं स्तुति करता हूँ हे (वरुण मित्र) वरुण और मित्र ! (यः) जो मनुष्य (वः धामभ्यः अविधत्) तुम्हारे तेजसे युक्त होता है, (तं मर्त्यं न धूर्तिः) उस मनुष्यको कोई नहीं मार सकता ॥ १५ ॥

[६७१] हे देवो ! (यः) जो मनुष्य ! (वराय) श्रेष्ठता प्राप्त करनेके लिए (वः दाशति) तुम्हें आहुति देता है, (सः) वह (महीः इषः) महान् पोषकतासे युक्त अन्नोंको प्राप्त करके (क्षयं वि तिरते) अपने घरको समृद्ध बनाता है। (सः धर्मणः परि) वह उत्तम धर्मसे युक्त होकर (प्रजाभिः प्र जायते) प्रजाओंके कारण वृद्धिको प्राप्त होता है, (अरिष्टः) अहिंसित होकर (सर्वः एधते) हर तरहसे बढता है ॥ १६ ॥

[६७२] (सरातयः मित्रः वरुणः अर्यमा) उत्तम दान देनेवाले मित्र, वरुण और अर्यमा देव (सजोषसः यं त्रायन्ते) संघटित होकर जिसकी रक्षा करते हैं, (सः) वह मनुष्य (युधः ऋते) युद्धके बिना भी (विन्दते) धन प्राप्त कर लेता है और (सुगेभिः) उत्तम गतियोंसे (अध्वनः याति) सुमार्ग पर चलता है ॥ १७ ॥

भावार्थ— शत्रुओं पर क्रोध करनेवाले देवगण शत्रुओं पर क्रोध करें, पर हम पर प्रसन्न होकर हमें तथा हमारे पुत्रादियोंको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले हों ॥ १४ ॥

जो मनुष्य इन देवोंके तेजसे युक्त होता है, उन देवोंके तेजके कारण सुरक्षित होता है, उस मनुष्यको कोई नहीं मार सकता ॥ १५ ॥

जो मनुष्य श्रेष्ठता प्राप्त करनेके लिए इन देवोंको प्रसन्न करता है, वह पोषक अन्नसे अपने घरको समृद्ध करता है, वह धर्मसे युक्त होता है और पुत्रादियोंके कारण वृद्धिको प्राप्त होता है और अहिंसित होकर हर तरहसे बढता है ॥ १६ ॥

उत्तम दान देनेवाले देव संघटित होकर जिस मनुष्यकी रक्षा करते हैं, वह युद्धके बिना भी धन प्राप्त करता है और सदा सन्मार्ग पर चलता रहता है ॥ १७ ॥

४

६७३ अज्रे चिदस्मै कृणुथा न्यञ्चनं दुर्गे चिदा सुसरणम् ।
एषा चिदस्मादशनिः परो नु सास्रेधन्ती वि नश्यतु ॥ १८ ॥
६७४ यदुद्य सूर्ये उद्यति प्रियक्षत्रा ऋतं दुध ।
यन्निम्रुचि प्रबुधि विश्ववेदसो यद् वा मध्यंदिने दिवः ॥ १९ ॥
६७५ यद् वाभिपित्वे असुरा ऋतं यते छर्दिर्येम वि दाशुषे ।
वयं तद् वो वसवो विश्ववेदस उप स्थेयाम मध्य आ ॥ २० ॥
६७६ यदुद्य सूर उदिते यन्मध्यंदिन आतुचि ।
वामं धत्थ मनवे विश्ववेदसो जुह्वानाय प्रचेतसे ॥ २१ ॥
६७७ वयं तद् वः सम्राज आ वृणीमहे पुत्रो न बहुपाय्यम् ।
अश्याम तदादित्या जुह्वतो हवि र्येन वस्योऽनशामहै ॥ २२ ॥

अर्थ— [६७३] हे देवो ! (अस्मै) इस वीरके लिए (अज्रे चित्) न जीते जानेवाले शत्रुके किलेमें भी (नि अंचनं कृणुथ) आसानीसे जाने योग्य कर दो, (दुर्गे चित्) कठिनतासे प्रवेश पाने योग्य किलेको भी (सुसरणं) आसानीसे जाने योग्य बना दो, (एषा अशनिः) यह शत्रुका वज्र (अस्मात् परः) इस वीरसे दूर ही रहे, तथा (सा) वह शत्रुका वज्र (अस्रेधन्ती) किसी भी वीरका विनाश न करता हुआ (विनश्यतु) स्वयं नष्ट हो जाए ॥१८॥

[६७४] हे (प्रियक्षत्राः विश्ववेदसः) बलसे प्रेम करनेवाले सर्वज्ञ देवो ! तुम (अद्य यत् सूर्ये उद्यति) आज जब सूर्य उदय होता है, (यत् निम्रुचि) जब अस्त होता है (प्रबुधि) उषःकालमें (यद्वा) अथवा (दिवः मध्यन्दिने) दिनके मध्यभागमें (ऋतं दध) कल्याणको धारण करो ॥ १९ ॥

[६७५] हे (असु-राः) प्राणशक्ति देनेवाले देवो ! (यद्वा) अथवा (ऋतं यते अभिपित्वे) तुम्हारे कल्याण करने पर तुम (दाशुषे) दाताको (छर्दिः वि येम) घर प्रदान करो, (तत्) तब हे (विश्ववेदसः वसवः) सर्वज्ञ वसु देवो ! (वयं) हम (वः मध्ये आ उप स्थेयाम) तुम्हारे बीचमें जाकर बैठें ॥ २० ॥

[६७६] हे (विश्ववेदसः) सर्वज्ञ देवो ! (यत्) जब (अद्य सूर्ये उदिते) आज सूर्य उदय हो जाए, (यत् मध्यंदिने) जब मध्याह्न हो, तथा (आतुचि) सूर्यास्तके समय (जुह्वानाय प्रचेतसे) यज्ञ करनेवाले तथा ज्ञानी (मनवे) मनुष्यके लिए (वामं धत्थ) उत्तम धन प्रदान करो ॥ २१ ॥

[६७७] हे (सम्राजः) अत्यन्त तेजस्वी देवो ! (वयं आ वृणीमहे) हम तुमसे यही वर मांगते हैं कि हम (पुत्रः न) पुत्र जिस तरह अपने पितासे मांगता है, उसी तरह तुमसे (बहुपाय्यं तत्) बहुतोंका पालन करनेवाले उस धनको (अश्याम) प्राप्त करें, तथा (आदित्याः) हे आदित्य देवो ! (हविः जुह्वतः) हविकी आहुति देनेवाले हम (येन) जिस धनकी सहायतासे (वस्यः अनशामहै) सुख प्राप्त करें ॥ २२ ॥

भावार्थ— देवोंकी कृपासे हमारे वीर शत्रुओंके अपराजित तथा दुर्गम किलोंमें भी आसानीसे प्रविष्ट हो जाएं, तथा शत्रुओंके शस्त्रोंसे हमारे वीर सर्वथा सुरक्षित रहें, शत्रुओंके वे शस्त्र हमारे किसी भी वीरको न मार पायें और वे स्वयं नष्ट हो जाएं ॥ १८ ॥

क्षत्र अर्थात् बलसे प्रेम करनेवाले देवो ! तुम सुबह उषःकालमें सूर्योदयसे लेकर सूर्यके अस्त होने तक हमारा कल्याण ही करो ॥ १९ ॥

हे प्राणशक्ति देनेवाले देवो ! तुम हमारा कल्याण करो, तथा हमें एक अच्छासा घर प्रदान करो, तब हम भी तुम्हारे कल्याणके द्वारा देवत्व प्राप्त करके तुम्हारे बीचमें बैठनेके अधिकारी हों ॥ २० ॥

हे देवो, सूर्योदय, मध्यान्ह और सूर्यास्तके समय यज्ञ करनेवाले ज्ञानी मनुष्यके लिए उत्तम धन प्रदान करो ॥२१॥

धन वही उत्तम है कि जो अनेकोंका पालन करता है, जो परोपकारके लिए खर्च होता है। जो स्वार्थके लिए खर्च किया जाता है, वह धन तो पापमय होता है। ऐसे पापमय धनसे सुख प्राप्तिकी आशा नहीं की जा सकती। सच्चा सुख तो उत्तम धनसे ही मिल सकता है ॥ २२ ॥

[२८]

(ऋषिः- मनुर्वैवस्वतः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- गायत्री, ४ पुरउष्णिक् ।)

६७८ ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन् । विदन्नह द्वितासनन् ॥ १ ॥
६७९ वरुणो मित्रो अर्यमा स्मद्रातिषाचो अग्नयः । पत्नीवन्तो वषट्कृताः ॥ २ ॥
६८० ते नो गोपा अपाच्यास्त उदक्त इत्था न्यक् । पुरस्तात् सर्वया विशा ॥ ३ ॥
६८१ यथा वशन्ति देवास्तथेदसत् तदेषां नकिरा मिनत् । अरावा चन मर्त्यः ॥ ४ ॥
६८२ सप्तानां सप्त ऋष्टयः सप्त द्युम्नान्येषाम् । सप्तो अधि श्रियो धिरे ॥ ५ ॥

[२९]

(ऋषिः- मनुर्वैवस्वतः, कश्यपो वा मारीचः । देवताः- विश्वे देवाः । छन्दः- द्विपदा विराट् ।)

६८३ बभ्रुरेको विषुणः सूनरो युवाञ्ज्यङ्क्ते हिरण्ययम् ॥ १ ॥

---

[२८]

अर्थ- [६७८] (ये त्रिंशति परः त्रयः) जो तीससे अधिक तीन अर्थात् तैतीस (देवासः) देव (बर्हिः आसदन्) यज्ञमें आये, उन्होंने (विदन्) हमारी इच्छाओंको जाना और (द्विता असनन्) दो तरहके ऐश्वर्य प्रदान किए ॥ १ ॥

[६७९] (वरुणः मित्रः अर्यमा) वरुण, मित्र, अर्यमा और (स्मद्रातिषाचः) हमारी आहुतियोंको स्वीकार करनेवाली (पत्नीवन्तः अग्नयः) मनुष्योंका पालन करनेवाली अग्नियां (वषट् कृताः) हमारे द्वारा सत्कार प्राप्त करें ॥ २ ॥

[६८०] (ते) वे सब देव (सर्वया विशा) अपने अनुयायियोंके साथ (नः) हमारी (पुरस्तात् गोपाः) सामनेकी ओरसे रक्षा करनेवाले हों, (ते उदक्) वे देव उत्तर दिशासे (ते अपाच्याः) वे देव पश्चिम दिशासे (ते न्यक्) वे देव नीचेकी दिशाकी ओरसे हमारी रक्षा करनेवाले हों ॥ ३ ॥

[६८१] (देवाः यथा वशन्ति) देवगण जैसा इच्छा करते हैं, (तथा इत् असत्) वैसाही वह होता है, (एषां तत्) उन देवोंकी उस इच्छाको (अरावा मर्त्यः चन) शत्रु मनुष्य भी (न किः आ मिनत्) विपरीत नहीं कर सकता ॥ ४ ॥

[६८२] (सप्तानां) सात मरुतोंके (ऋष्टयः सप्त) शस्त्र भी सात तरहके हैं, (एषां) इन मरुतोंके (द्युम्नानि सप्त) तेज भी सात तरहके हैं, ये (सप्त श्रियः अधि धिरे) सात तरहके तेज धारण करते हैं ॥ ५ ॥

[२९]

[६८३] (एकः) एक देव (बभ्रुः) तेजस्वी (विषुणः) सर्वत्र संचार करनेवाला (सूनरः) उत्तम नेता (युवा) तरुण रहकर (हिरण्ययं अंजि अंक्ते) सुनहरे रूपमें प्रकट होता है ॥ १ ॥

भावार्थ— यज्ञमें तैतीस देव आकर बैठें और वे यज्ञकर्ताको अभ्युदय और निःश्रेयसको सिद्ध करनेवाले ऐश्वर्यको प्रदान करें ॥ १ ॥

सभी देव तथा द्यु-अग्नि, अन्तरिक्षाग्नि, पार्थिवाग्नि अथवा आत्माग्नि, प्राणाग्नि, तथा जठराग्नि ये तीन प्रकारकी अग्नियां हमारा पालन करें, तथा हम भी उनका सत्कार करें ॥ २ ॥

सभी देव गण हमारी पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण अर्थात् सभी ओरसे रक्षा करनेवाले हों ॥ ३ ॥

देवगण जैसा चाहते हैं, वैसाही वह होता भी है। उनकी इच्छाको शत्रु भी अन्यथा नहीं कर सकते फिर मित्र की तो बातही क्या ? ॥ ४ ॥

मरुतोंके सात गण हैं, वे सभी विभिन्न शस्त्रास्त्र धारण करके जब चलते हैं, तब लगता है कि मानों सात तेज चल रहे हों ॥ ५ ॥

वीर तेजस्वी, सर्वत्र संचार करनेवाला, उत्तम नेता और तरुण जैसा सदा उत्साही हो ॥ १ ॥

६८४ योनिमेक आ ससाद द्योतनो ऽन्तर्देवेषु मेधिरः ॥ २ ॥
६८५ वाशीमेको बिभर्ति हस्त आयसीमन्तर्देवेषु निध्रुविः ॥ ३ ॥
६८६ वज्रमेको बिभर्ति हस्त आहितं तेन वृत्राणि जिघ्नते ॥ ४ ॥
६८७ तिग्ममेको बिभर्ति हस्त आयुधं शुचिरुग्रो जलाषभेषजः ॥ ५ ॥
६८८ पथ एकः पीपाय तस्करो यथाँ एष वेद निधीनाम् ॥ ६ ॥
६८९ त्रीण्येक उरुगायो वि चक्रमे यत्र देवासो मदन्ति ॥ ७ ॥
६९० विभिर्द्वा चरत एकया सह प्र प्रवासेव वसतः ॥ ८ ॥
६९१ सदो द्वा चक्राते उपमा दिवि सम्राजा सर्पिरासुती ॥ ९ ॥

अर्थ— [६८४] (एकः) एक दूसरा देव (द्योतनः मेधिरः) तेजस्वी और बुद्धिशाली होकर (देवेषु अन्तः योनिं) देवोंके बीचवाले स्थानमें (आ ससाद) आकर बैठता है ॥ २ ॥

[६८५] (एकः) एक तीसरा देव (देवेषु अन्तः निध्रुविः) वीरोंके मध्यमें दृढतासे रहकर (हस्ते) अपने हाथमें (आयसीं वाशीं बिभर्ति) लोहेके शस्त्रका धारण करता है ॥ ३ ॥

[६८६] (एकः) एक चौथा देव (हस्ते) हाथमें (आहितं वज्रं बिभर्ति) रखे हुए वज्रको धारण करता है, और (तेन वृत्राणि जिघ्नते) उस वज्रसे शत्रुओंको मारता है ॥ ४ ॥

[६८७] (एकः) एक पांचवां (जलाष-भेषजः) जलके द्वारा रोगोंको दूर करनेवाला तथा (शुचिः उग्रः) पवित्र तथा वीर देव (हस्ते तिग्मं आयुधं बिभर्ति) हाथमें तीक्ष्ण शस्त्र धारण करता है ॥ ५ ॥

[६८८] (एकः) एक छठा देव (पथः पीपाय) मार्गोंको सुरक्षित रखता है और (तस्करः यथा) चोरके समान (एषः निधीनां वेद) यह देव सभी छिपे हुए खजानोंको जानता है ॥ ६ ॥

[६८९] (यत्र देवासः मदन्ति) जिन तीनों लोकोंमें देवगण आनंदसे रहते हैं, उन तीनों लोकोंको (उरुगायः एकः) बहुत ही स्तुत्य एक देवने (वि चक्रमे) अपने पदसे नाप दिया ॥ ७ ॥

[६९०] (द्वा) दो देव (विभिः चरतः) पक्षियों द्वारा सर्वत्र संचार करते हैं तथा (प्रवासा इव) जिस तरह दो प्रवासी पुरुष एक ही गाडीसे सर्वत्र जाते हैं, उसी तरह ये दोनों देव (एकया सह) एक ही गाडीसे (वसतः) सर्वत्र जाते हैं ॥ ८ ॥

[६९१] (उपमा द्वा) अत्यन्त तेजस्वी दो देव (सर्पिरासुती सम्राजा) घृतकी आहुति प्राप्त करनेवाले तथा सम्राट् हैं, वे दोनों (दिवि सदः चक्राते) द्युलोकमें स्थान बनाते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— दूसरा ज्ञानी, तेजस्वी और बुद्धिशाली होकर विद्वानोंके बीचमें बैठनेयोग्य हो ॥ २ ॥

तीसरा वीर सैनिक वीरोंके सामने भी दृढतासे खडा रहता है और अपने हाथमें सदा शस्त्रास्त्र धारण करता है ॥ ३ ॥

चौथा इन्द्र देव अपने हाथमें वज्रको धारण करके शत्रुओंका नाश करता है ॥ ४ ॥

पांचवां देव रुद्र जलचिकित्साके द्वारा रोगोंको दूर करता है, तथा वह वीर देव शत्रुओंका नाश करनेके लिए हाथमें तीक्ष्ण शस्त्रको भी धारण करता है ॥ ५ ॥

छठा देव पूषा सभी मार्गोंकी शत्रुओंसे सुरक्षा करता है और धनका स्वामी होनेसे सभी गुप्त और प्रकट खजानोंको जानता है ॥ ६ ॥

सातवें देव विष्णुने अपने पैरोंसे तीनों लोकोंको नाप दिया ॥ ७ ॥

दो देव अश्विनी कुमार पक्षीरूप विमानों पर चढकर सर्वत्र जाते हैं, तथा एक ही रथसे सब पृथ्वीका चक्कर लगाते हैं ॥ ८ ॥

दो देव मित्रावरुण इस जगत्के सम्राट् हैं तथा द्युलोकमें रहते हैं ॥ ९ ॥

६९२ अर्चन्त एके महि साम मन्वत तेन सूर्यमरोचयन् ॥ १० ॥

[३०]

(ऋषिः- मनुर्वैवस्वतः। देवताः- विश्वे देवाः । छन्दः- १ गायत्री, २ पुरउष्णिक्, ३ बृहती, ४ अनुष्टुप्।)

६९३ नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारकः । विश्वे सतोमहान्त इत् ॥ १ ॥

६९४ इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ त्रयश्च त्रिंशच्च । मनोर्देवा यज्ञियासः ॥ २ ॥

६९५ ते नस्त्राध्वं तेऽवत त उ नो अधि वोचत ।
मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परावतः ॥ ३ ॥

६९६ ये देवास इह स्थन विश्वे वैश्वानरा उत ।
अस्मभ्यं शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत ॥ ४ ॥

[३१]

(ऋषिः- मनुर्वैवस्वतः । देवता- १-४ यज्ञः यजमानश्च, ५-९ दंपती, १०-१८ दंपत्याशिषः ।
छन्दः- गायत्री; ९, १४ अनुष्टुप् १० पादनिचृत् १५-१८ पङ्क्तिः ।)

६९७ यो यजाति यजात इत्सुनवच्च पचाति च । ब्रह्मेदिन्द्रस्य चाकनत् ॥ १ ॥

अर्थ— [६९२] (एके महि साम मन्वत) कुछ ज्ञानी प्रशंसनीय सामका गान करते हैं, (अर्चन्तः) पूजा करते हुए उन्होंने (तेन) उस अपने कर्मसे (सूर्यं अरोचयन्) सूर्यको प्रकाशित किया ॥ १० ॥

[३०]

[६९३] हे (देवासः) देवो ! (वः) तुम्हारे मध्यमें (अर्भकः नहि अस्ति) कोई छोटा बच्चा नहीं है, (न कुमारकः) कोई किशोर भी नहीं है। (विश्वे सतः महान्तः इत्) सभी देव ज्ञानी और महान् हैं ॥ १ ॥

[६९४] हे (रिशादसः मनोः यज्ञियासः देवाः) हिंसकोंके विनाशक, ज्ञानीके द्वारा पूज्य देवो ! (ये) जो तुम (त्रिंशत् च त्रयः च) तीस और तीन अर्थात् तैंतीस हो, वे तुम (स्तुतासः असथ) स्तुतिके योग्य हो ॥२॥

[६९५] हे देवो ! (ते) वे तुम (नः त्राध्वं) हमारी रक्षा करो, (ते अवत) वे तुम हमें बचाओ, (ते नः अधि वोचत) वे तुम सब हमें उत्तम उपदेश दो (पित्र्यात् मानवात् पथः) हमारा पालन करनेवाले ज्ञानयुक्त मार्गसे (परावतः दूरं मा नैष्ट) दूसरी तरफ दूर मत ले जाओ ॥ ३ ॥

[६९६] हे (वैश्वानराः देवासः) सब मनुष्योंको उत्तम मार्गसे ले जानेवाले देवो ! (ये विश्वे) जो तुम सब (इह स्थन) यहां पर विद्यमान हो, वे तुम सब हमारे (गवे अश्वाय अस्मभ्यं) गाय घोडे आदि पशु तथा हमारे लिए (शर्म यच्छत) घर तथा सुख प्रदान करो ॥ ४ ॥

[३१]

[६९७] (यः) जो यजमान (यजाति यजात) स्वयं यज्ञ करता है, तथा दूसरोंसे करवाता है, (सुनवत् पचाति च) स्वयं सोमरस निचोडता है और दूसरोंसे तैय्यार करवाता है, वह (इन्द्रस्य ब्रह्म इत् चाकनत्) इन्द्रके ज्ञानकोही प्राप्त करता है ॥ १ ॥

भावार्थ— ऋषियोंने सभी देवोंकी सामगान द्वारा पूजाकी और सूर्यको प्रकट किया ॥ १० ॥

इन देवोंमें कोई भी बच्चा जैसा अज्ञानी नहीं है और कोई किशोर जैसा उच्छृंखल या अनुशासन हीन नहीं है, अपितु सभी देव ज्ञानी और महान् हैं ॥ १ ॥

जितने भी तैंतीस देव हैं, वे सब हिंसकोंके शत्रु, ज्ञानी और पूज्य होनेके कारण स्तुतिके योग्य हैं ॥ २ ॥

हे देवो ! हमें तुम बचाओ, हमारी रक्षा करो, हमें सदा सदुपदेश दो, तथा हमारा पालन करनेवाला जो कल्याणकारी मार्ग है, उससे हमें दूर ले जाकर कुमार्गमें प्रेरित मत करो ॥ ३ ॥

हे देवो ! तुम सदा हमारे पास ही रहो, तो हमारे पशु और मनुष्योंके लिए सुखपूर्ण घर प्रदान करो ॥ ४ ॥

जो ब्राह्मण स्वयं यज्ञ करता है और दूसरोंसे करवाता है, वह प्रभुके ज्ञानसे युक्त होता है ॥ १ ॥

६९८ पुरोळाशं यो अस्मै सोमं ररत आशिरम् । पादित् तं शक्रो अंहसः ॥ २ ॥
६९९ तस्य द्युमाँ असद् रथो देवजूतः स शूशुवत् । विश्वा वन्वन्नमित्रिया ॥ ३ ॥
७०० अस्य प्रजावती गृहे ऽसश्चन्ती दिवेदिवे । इळा धेनुमती दुहे ॥ ४ ॥
७०१ या दंपती समनसा सुनुत आ च धावतः । देवासो नित्ययाशिरा ॥ ५ ॥
७०२ प्रति प्राशव्याँ इतः सम्यञ्चा बर्हिराशाते । न ता वाजेषु वायतः ॥ ६ ॥
७०३ न देवानामपि ह्नुतः सुमतिं न जुगुक्षतः । श्रवो बृहद् विवासतः ॥ ७ ॥
७०४ पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः । उभा हिरण्यपेशसा ॥ ८ ॥

अर्थ—[६९८] (यः) जो यज्ञकर्ता (अस्मै) इस इन्द्रको (पुरोळाशं आशिरं सोमं ररत) पुरोडाश तथा गोदुग्ध मिश्रित सोमरस देता है, (तं इत्) उसी मनुष्यको (इन्द्रः) इन्द्र (अंहसः पात्) पापसे बचाता है ॥ २ ॥

[६९९] (तस्य) उस यज्ञकर्ताके पास (देवजूतः द्युमान् रथः असत्) देवों द्वारा प्रेरित तथा तेजस्वी रथ होता है। वह (विश्वा अमित्रिया) अपने सभी शत्रुओंको (वन्वन्) नष्ट करता है, और (सः शूशुवत्) हर तरहसे बढता है ॥ ३ ॥

[७००] (अस्य गृहे) इस यज्ञकर्ताके घरमें (प्रजावती असश्चन्ती धेनुमती) बछडोंसे युक्त, स्वैर संचार करनेवाली कामदुघा गाय (दिवे दिवे इळा दुहे) प्रतिदिन अन्न दुहती है ॥ ४ ॥

[७०१] (या समनसा दंपती) जो मिले हुए मनवाले पति-पत्नी (सुनुतः) सोम निचोडते हैं, (आ च धावतः) और सर्वत्र पवित्रता रखते हैं, हे (देवासः) देवो ! वे (नित्यया आशिरा) रोज गोदुग्धसे युक्त हों ॥ ५ ॥

[७०२] (ता) वे दोनों पतिपत्नी (प्राशव्यां प्रति इतः) खाने योग्य अन्नोंको प्राप्त करते हैं, तथा (सम्यंचा) समान मनवाले होकर वे (बर्हिः आशाते) यज्ञमें बैठते हैं, वे दोनों कभी भी (वाजेषु न वायतः) पोषक अन्नसे वियुक्त नहीं होते ॥ ६ ॥

[७०३] ऐसे उत्तम पति-पत्नी (देवानां न अपि ह्नुतः) देवोंका अपमान नहीं करते, (सुमतिं न जुगुक्षतः) अपनी उत्तम बुद्धिको नष्ट नहीं होने देते, और (बृहत् श्रवः विवासतः) महान् यशको प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥

[७०४] (ता उभा) वे दोनों पति-पत्नी (हिरण्यपेशसा) सोनेके अलंकारोंसे युक्त होकर (पुत्रिणा कुमारिणा) पुत्र और कुमारोंके साथ आनन्द करते हुए (विश्वं आयुः व्यश्नुतः) सम्पूर्ण दीर्घ आयुका भोग करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— जो यज्ञ करनेवाला मनुष्य इस इन्द्रको सोमरस देकर इसका सत्कार करता है, वह मनुष्य पाप कर्मोंसे बचता है ॥ २ ॥

जो यज्ञकर्ता है, उसके पास तेजस्वी रथ होता है और वह उस रथ पर बैठकर सभी शत्रुओंको मारता है और स्वयं वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

इस यज्ञकर्ताके घरमें बछडोंसे युक्त स्वैर संचार करनेवाली कामदुघा गाय प्रतिदिन भरपूर दूध देती है, अर्थात् यज्ञकर्ताके घरमें गायें रहती हैं ॥ ४ ॥

जिस घरमें पतिपत्नी प्रेमसे रहकर देवोंका पूजन करते हों, उस घरमें सदा देव निवास करते हैं और वह घर सदा गोदुग्ध आदि अन्नोंसे समृद्ध रहता है ॥ ५ ॥

जो पति-पत्नी परस्पर प्रेमपूर्ण मनसे युक्त होकर यज्ञ करते हैं, वे सदाही खाने योग्य अन्न प्राप्त करते हैं और ऐसे अन्नोंसे रहित वे कभी नहीं होते ॥ ६ ॥

ऐसे उत्तम पति-पत्नी कभी भी देवों या विद्वानोंका अपमान नहीं करते, ज्ञानियोंकी संगतिमें रहनेके कारण उनकी बुद्धि सदा उत्तम रहती है और उस उत्तम बुद्धिकी सहायतासे वे दोनों महान् यशको प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥

वे दोनों पतिपत्नी सोनेके अलंकारोंसे युक्त होकर अर्थात् ऐश्वर्यशाली होकर पुत्र-पौत्रोंसे युक्त होकर संपूर्ण मानवीय आयुको भोगते हैं ॥ ८ ॥

७०५ वीतिहोत्रा कृतद्वसू दशस्यन्तामृताय कम् ।
समूधो रोमशं हतो देवेषु कृणुतो दुवः ॥ ९ ॥
७०६ आ शर्म पर्वतानां वृणीमहे नदीनाम् । आ विष्णोः सचाभुवः ॥ १० ॥
७०७ एतु पूषा रयिर्भगः स्वस्ति सर्वधातमः । उरुरध्वा स्वस्तये ॥ ११ ॥
७०८ अरमतिरनर्वणो विश्वो देवस्य मनसा । आदित्यानामनेह इत् ॥ १२ ॥
७०९ यथा नो मित्रो अर्यमा वरुणः सन्ति गोपाः । सुगा ऋतस्य पन्थाः ॥ १३ ॥
७१० अग्निं वः पूर्व्यं गिरा देवमीळे वसूनाम् ।
सपर्यन्तः पुरुप्रियं मित्रं न क्षेत्रसाधसम् ॥ १४ ॥

अर्थ— [७०५] (वीतिहोत्रा) तेजयुक्त वाणीवाले (कृतद्वसू) धनका दान करनेवाले (कं दशस्यन्ता) लोगोंको सुखकारक अन्न देनेवाले वे पति-पत्नी (ऊधः रोमशं सं हतः) बडे बडे थनोंवाली गाय और बडे बडे रोमोंवाली भेड आदि पशुओंको प्राप्त करते हैं और (अमृताय) अमरत्वकी प्राप्तिके लिए (देवेषु दुवः कृणुतः) देवोंकी स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥

[७०६] (पर्वतानां शर्म) पर्वतों पर जो सुख है, (नदीनां) नदियोंमें जो सुख है तथा (सचाभुवः विष्णोः) देवोंके साथ रहनेवाले विष्णुका जो सुख है, उसे हम (आ वृणीमहे) मांगते हैं ॥ १० ॥

[७०७] (रयिः भगः स्वस्ति सर्वधातमः पूषा) धनवान्, ऐश्वर्यशाली, कल्याणकारी तथा सबको धारण करनेवाला पूषा देव (आ एतु) हमारे पास आवे, तथा उसकी कृपासे (उरु अध्वा स्वस्तये) विस्तीर्ण मार्ग भी हमारे कल्याणके लिए हो ॥ ११ ॥

[७०८] (अनर्वणः) शत्रु द्वारा पराजित न होनेवाले (देवस्य) देवकी (विश्वः) सभी लोग (मनसा अरमतिः) मनसे स्तुति करते हैं, (आदित्यानां अनेह इत्) अदितिके पुत्रों देवोंकी कृपा पापका नाश करनेवाली होती है ॥ १२ ॥

[७०९] (यथा) चूंकि (नः गोपाः) हमारी रक्षा करनेवाले (मित्रः अर्यमा वरुणः सन्ति) मित्र, अर्यमा और वरुण हैं, अतः हमारे (ऋतस्य पन्थाः सुगाः) सत्यके मार्ग सुगम हों ॥ १३ ॥

[७१०] (सपर्यन्तः वः) अर्चना करनेवाले तुम लोगोंके बीचमें मैं (वसूनां) धनकी प्राप्तिके लिए (पुरुप्रियं) बहुतोंको प्रिय (क्षेत्रसाधसं) मनुष्यशरीररूपी क्षेत्रको सिद्ध करनेवाले (पूर्व्यं देवं) मुख्य देव (अग्निं) अग्निकी (मित्रं न ईळे) मित्रके समान स्तुति करता हूँ ॥ १४ ॥

भावार्थ— रोज प्रभुकी स्तुति करनेवाले दोनों पतिपत्नी धनका दान करते हैं, लोगोंको सुखकारक अन्न देते हैं, तथा पशुओं समृद्ध होकर देवोंकी स्तुति करते हुए अमरताको प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

पर्वतके अन्दर, नदियोंके अन्दर निहित जो सुख है, वह सुख इन पतिपत्नीको मिले ॥ १० ॥

ऐश्वर्यवान् कल्याणकारी पूषा देव हम पर कृपा करे, ताकि सम्पूर्ण जीवनका मार्ग हमारे लिए कल्याणकारी हो ॥ ११ ॥

सभी जन पूषा देवकी मनसे स्तुति करें, तो पूषा देव भी उन पर अपनी पापनाशिनी कृपा करते हैं ॥ १२ ॥

जिनकी रक्षा मित्र, वरुण आदि देव करते हैं, उनका जीवन सत्यमय होता है, और उनके जीवनके मार्गमें कभी कठिनाइयां नहीं आतीं ॥ १३ ॥

धनकी प्राप्तिके लिये मुख्य देव अग्निकी स्तुति करनी चाहिए, क्योंकि वही मनुष्यशरीररूपी क्षेत्रका स्वामी है ॥ १४ ॥

७११ मक्षू देववतो रथः शूरो वा पृत्सु कासु चित् ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ १५ ॥
७१२ न यजमान रिष्यसि न सुन्वान न देवयो ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ १६ ॥
७१३ नकिष्टं कर्मणा नशन्न प्र योषन्न योषति ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ १७ ॥
७१४ असदत्र सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यम् ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ १८ ॥

अर्थ — [७११] (कासुचित् पृत्सु शूरः वा) किन्हीं युद्धोंमें जिस तरह शूर मनुष्य तेजीसे आगे बढता हैं, उसी तरह (देववतः रथः मक्षू) देवोंको प्रिय मनुष्यका रथ तेजीसे जाता है। (यः यजमानः) जो यजमान (देवानां मनः इयक्षति) देवोंकी मन-पूर्वक पूजा करता है, वह (अयज्वनः अभि भुवत्) यज्ञ न करनेवालोंको पराजित करता है ॥ १५ ॥

[७१२] हे (यजमान) यज्ञ करनेवाले ! (न रिष्यसि) तू कभी दुःखी नहीं होगा, हे (सुन्वानः) सोमरस तैय्यार करनेवाले ! (न) तू कभी दुःखी नहीं होगा, हे (देवयो) देवकी स्तुति करनेवाले ! (न) तू कभी दुःखी नहीं होगा। (यः यजमानः) जो यजमान (मनः देवानां इयक्षति) मनसे देवोंकी पूजा करता है, वह (अयज्वनः अभि भुवत्) यज्ञ न करनेवालोंको पराजित करता है ॥ १६ ॥

[७१३] (यः यजमानः) जो यजमान (मनः इत् देवानां इयक्षति) मनसे देवोंकी पूजा करता है, (तं कर्मणा नकिः नशत्) उसे अपने कर्मसे कोई नष्ट नहीं कर सकता, (न प्र योषत्) उसे ऐश्वर्यसे कोई भ्रष्ट नहीं कर सकता, (न योषति) न वह स्वयं भ्रष्ट होता है। अपितु वह (अयज्वनः इत् अभि भुवत्) यज्ञ न करनेवालोंको पराजितही करता है ॥ १७ ॥

[७१४] (यः यजमानः) जो यजमान (मनः इत् देवानां इयक्षति) मनसे देवोंकी पूजा करना चाहता है, (अत्र सुवीर्यं असत्) उसको उत्तम बल मिलता है, (त्यत् आश्वश्व्यं) उसे घोडोंका समूह मिलता है और वह (अयज्वनः अभि इत् भुवत्) यज्ञ न करनेवालोंको पराजित करता है ॥ १८ ॥

भावार्थ— जिस तरह यज्ञमें शूरवीरका रथ तेजीसे भागता है, उसी तरह देवोंके प्रिय मनुष्यका रथ तेजीसे दौडता है, जो मनुष्य देवोंको मनसे पूजा करता है, वह नास्तिकोंको पराजित करता है ॥ १५ ॥

यज्ञ करनेवाला, सोम प्रदान करनेवाला तथा देवोंकी स्तुति करनेवाला कभी दुःखी नहीं होता, अपितु जो सदा यज्ञ करता है, वह स्वयं उन्नत होकर नास्तिकोंको पराजित करता है ॥ १६ ॥

जो यजमान मनसे देवोंकी पूजा करता है, वह सदा पवित्र कर्मही करनेके कारण उसके कर्म उसे नष्ट नहीं कर सकते, न उसे कोई ऐश्वर्यसे भ्रष्ट कर सकता है, और न वह स्वयंही भ्रष्ट होता है। इसके विपरीत जो नास्तिक उस आस्तिकको नष्ट करना चाहता है, वह स्वयं नष्ट हो जाता है ॥ १७ ॥

जो मनुष्य मनसे देवोंकी पूजा करना चाहता है, वह उत्तम बल और घोडोंके समूहसे युक्त होकर अपने शत्रुओंको नष्ट करता है ॥ १८ ॥

[३२]

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

७१५ प्र कृतान्यृजीषिणः कण्वा इन्द्रस्य गाथया । मदे सोमस्य वोचत ॥ १ ॥
७१६ यः सृबिन्दुमनर्शनिं पिप्रुं दासमहीशुवम् । वधीदुग्रो रिणन्नपः ॥ २ ॥
७१७ न्यर्बुदस्य विष्टपं वर्ष्माणं बृहतस्तिर । कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥ ३ ॥
७१८ प्रति श्रुताय वो धृषत् तूर्णाशं न गिरेरधि । हुवे सुशिप्रमूतये ॥ ४ ॥
७१९ स गोरश्वस्य वि व्रजं मन्दानः सोम्येभ्यः । पुरं न शूर दर्षसि ॥ ५ ॥
७२० यदि मे रारणः सुत उक्थे वा दधसे चनः । आराहुप स्वधा गहि ॥ ६ ॥

---

[३२]

अर्थ—[७१५] हे (कण्वाः) हे कण्वो ! (ऋजिषिणः इन्द्रस्य) शीघ्रतासे काम करनेवाले इन्द्रके (सोमस्य मदे कृतानि) सोमपानसे उत्पन्न उत्साहमें किए गए कार्मोका वर्णन , गाथया प्रवोचत) गाथाके रूपमें गाओ ॥ १ ॥

[७१६] (यः उग्रः) जो उग्र वीर है, उस इन्द्रने (अपः रिणन्) जल प्रवाहोंको खुला करते हुए (सृबिन्दं अनर्शनिं पिप्रुं अहीशुवं दासं वधीत्) सृबिन्द, अनर्शनि, पिप्रु, अहीशु और दास इन शत्रुओंका वध किया था ॥ २ ॥

[७१७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (बृहतः अर्बुदस्य) बडे भारी अर्बुदके (वर्ष्माणं विष्टपं नि तिर) विशाल देहको और किलेको तुम गिरा दो, (तत् पौंस्यं कृषे) यह पराक्रम तुम्हीं करते हो ॥ ३ ॥

[७१८] (वः श्रुताय ऊतये) हे मनुष्यो ! तुम्हारे ज्ञान और संरक्षणके लिए (धृषत्) शत्रुका घर्षण करनेवाले (सुशिप्रं प्रति हुवे) शिरस्त्राणधारी वीर इन्द्रको मैं बुलाता हूँ, (तूर्णाशं गिरेः अधि न) जिस तरह स्रोतको पहाडसे लाते हैं ॥ ४ ॥

[७१९] हे (शूर) शूर इन्द्र ! (सः) वह तू (मन्दानः) आनन्दित होते हुए (गोः अश्वस्य व्रजं) गौ और घोडेके बाडेको (सोम्येभ्यः) सोमयाग करनेवालोंके लिए (पुरं) शत्रुनगरके द्वारको खोलनेके समान (वि दर्षसि) खोलता है ॥ ५ ॥

[७२०] (मे सुते उक्थे वा) मेरे सोमरसमें और स्तोत्रपाठमें (यदि रारणः) यदि तू अनुरक्त है, (चनः दधसे) और यदि मुझे अन्न देना चाहता है तो (आरात् स्वधा उप आ गहि , दूरसे भी अन्नके साथ हमारे पास आ ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र सोमपान करनेके बाद उत्साहमें आकर जल प्रवाह खुले करता है और इन जल प्रवाहोंके मार्गमें जो विघ्न डालते हैं, ऐसे असुरोंको मारता है ॥ १-२ ॥

असुरोंके शरीरों और किलोंको नष्ट करनेका पराक्रम केवल इन्द्रही कर सकता है, अतः लोग उसी शिरस्त्राणधारी इन्द्रको अपनी सुरक्षाके लिए बुलाते हैं । शूरवीरसेही सुरक्षा हो सकती है ॥ ३-४ ॥

सोमपानसे आनन्दित हुआ इन्द्र शत्रुके किलेको तोडकर शत्रुसेनाको विनष्ट करता है, और अपने अनुयायियोंको अन्न प्रदान करता है । ऐसे कार्यके लिए विचार करने योग्य मनकी आवश्यकता होती ही है ॥ ५-६ ॥

×

७२१ व॒यं घा॑ ते॒ अपि॑ ष्मसि स्तो॒तार॑ इन्द्र गिर्वणः । त्वं नो॑ जिन्व सोमपाः ॥ ७ ॥
७२२ उ॒त नः॑ पि॒तुमा भ॑र संररा॒णो अवि॑क्षितम् । मघ॑वन्भूरि॑ ते॒ वसु॑ ॥ ८ ॥
७२३ उ॒त नो॒ गोम॑तस्कृधि॒ हिर॑ण्यवतो अ॒श्विनः॑ । इळा॑भिः॒ सं र॑भेमहि ॥ ९ ॥
७२४ बृ॒बदु॑क्थं हवामहे सृ॒प्रक॑रस्नमू॒तये॑ । साधु॑ कृ॒ण्वन्त॒मव॑से ॥ १० ॥
७२५ यः सं॒स्थे चि॑च्छ॒तक्र॑तु॒रादीं॑ कृ॒णोति॑ वृत्र॒हा । ज॒रि॒तृभ्यः॑ पुरू॒वसुः॑ ॥ ११ ॥
७२६ स नः॑ श॒क्रश्चि॒दा श॑क॒द्दान॑वाँ अन्तराभ॒रः । इन्द्रो॒ विश्वा॑भिरू॒तिभिः॑ ॥ १२ ॥

अर्थ— [७२१] हे (गिर्वणः इन्द्र) स्तुत्य इन्द्र ! (ते वयं अपि घ स्तोतारः स्मसि) तेरे ही हम उपासक है ! हे (सोमपाः) सोमरस पीनेवाले इन्द्र ! (त्वं नः जिन्व) तू हमें तृप्त कर ॥ ७ ॥

[७२२] हे (मघवन्) ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! (उत संरराणः) और तू प्रसन्न होकर (अविक्षितं पितुं) अविनाशी धन (नः आ भर) हमें भरपूर दे ! क्योंकि (ते वसु भूरि) तेरे पास धन बहुत है ॥ ८ ॥

[७२३] (उत) और हे इन्द्र ! तू (नः गोमतः हिरण्यवतः अश्विनः कृधि) हमें गायवाला, सोनेवाला तथा घोडोंसे युक्त कर । हम (इळाभिः सं रभेमहि) अन्नोंसे युक्त होकर अच्छी तरहसे आनन्दित हों ॥ ९ ॥

[७२४] हम (ऊतये) अपने संरक्षणके लिए (सृप्रकरस्नं) सबसे प्रथम हाथ आगे करनेवाले (अवसे साधु कृण्वन्तं) संरक्षणके लिए उत्तम कर्म करनेवाले, (बृबदुक्थं) जिसके काव्य गाये जाते हैं ऐसे वीरको (हवामहे) हम बुलाते हैं ॥ १० ॥

[७२५] (यः संस्थे शतक्रतुः) जो राज्य संस्थामें सैकडों उत्तम कार्य करता है, (वृत्रहा) वृत्रको मारनेवाला है, (आत् ईं कृणोति चित्) वह ऐसे ही शत्रुवधके कार्य करता है, वह (जरितृभ्यः पुरुवसुः) स्तोताओंको बहुत धन देनेवाला है ॥ ११ ॥

[७२६] (सः शक्रः नः चित् आ शकत्) वह शक्तिशाली इन्द्र हमें भी शक्तिशाली करे । (दानवान् इन्द्रः) दान देनेवाला इन्द्र (विश्वाभिः ऊतिभिः अन्तः आ भरः) अपने संपूर्ण सुरक्षाके साधनोंसे हमारी आन्तरिक पूर्णता करे ॥ १२ ॥

भावार्थ— मनुष्य इन्द्रका सत्कार करके उसे सोमरस देकर तृप्त करें और इन्द्र भी प्रसन्न मनसे मनुष्योंको अविनाशी धन और पोषक अन्न देकर तृप्त करे । अन्न सदा नीरोग हो ॥ ७-८ ॥

अपनी सुरक्षाके लिए हम तत्काल सहाय्यार्थ अपना हाथ बढानेवाले वीरको बुलाते है, हम शुभ कर्म करनेवाले वीरको अपनी रक्षाके लिए बुलाते है । वह हमारे पास आकर गाय, घोडे और सुवर्ण प्रदान करे । यहां सुवर्ण पद सोनेके सिक्केका वाचक है ॥ ९-१० ॥

सैकडों प्रशस्त कर्मोंको करनेवाला अपनी संस्थामें निस्सन्देह शुभ कार्य करता है । किसी संस्थाको उन्नत करनेके लिए ऐसे ही पुरुषकी आवश्यकता होती है । जो स्वयं समर्थ होता है, वही दूसरोंको सामर्थ्यवान् कर सकता है । दाता वीर अपनी अनेक संरक्षक शक्तियोंसे हमारे अन्दरके छिद्र दूर कर सकता है । वीर तथा परहितके लिए आत्मार्पण करनेवाला ही अपने सामर्थ्यसे दूसरोंके दोष दूर कर सकता है और न्यूनताओंको पूर्ण कर सकता है ॥ ११-१२ ॥

७२७ यो रायो३वनिर्महान् त्सुपारः सुन्वतः सखा । तमिन्द्रमभि गायत ॥ १३ ॥
७२८ आयन्तारं महि स्थिरं पृतनासु श्रवोजितम् । भूरेरीशानमोजसा ॥ १४ ॥
७२९ नकिरस्य शचीनां नियन्ता सूनृतानाम् । नकिर्वक्ता न दादिति ॥ १५ ॥
७३० न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राशूनामस्ति सुन्वताम् । न सोमो अप्रता पपे ॥ १६ ॥
७३१ पन्य इदुप गायत पन्य उक्थानि शंसत । ब्रह्मा कृणोत पन्य इत् ॥ १७ ॥
७३२ पन्य आ दर्दिरच्छता सहस्रा वाज्यवृतः । इन्द्रो यो यज्वनो वृधः ॥ १८ ॥
७३३ वि षू चर स्वधा अनु कृष्टीनामन्वाहुवः । इन्द्र पिब सुतानाम् ॥ १९ ॥

अर्थ— [७२७] (यः) जो इन्द्र (रायः अवनिः) ऐश्वर्यशाली, संरक्षक तथा (महान् सुपारः) संकटोंसे पार होनेका बडा भारी साधन है, (सुन्वतः सखा) यज्ञ करनेवालोंका मित्र है, (तं इन्द्रं अभि प्रगायत) हे मनुष्यो ! उस इन्द्रके गुणोंका वर्णन करो ॥ ३ ॥

[७२८] (आयन्तारं) शत्रुओं पर नियमन करनेवाले, (महि पृतनासु स्थिरं) बडे बडे युद्धोंमें भी स्थिर रहनेवाले, (श्रवः जितं) यशको जीतनेवाले, (ओजसा भूरेः ईशानं) अपने तेजसे असंख्य शत्रुओं पर भी शासन करनेवाले इन्द्रके गुणोंका गान करो ॥ १४ ॥

[७२९] (अस्य) इस इन्द्रकी (सूनृतानां शचीनां) उत्तम और सत्य शक्तियोंपर (नियन्ता नकिः) शासन करनेवाला कोई नहीं है। (न दात्) यह इन्द्र धन नहीं देता, ऐसा भी कोई कहनेवाला (न किः) नहीं है ॥ १५ ॥

[७३०] (सुन्वतां प्राशूनां) सोमरस निकालनेवाले तथा सोमरस पीनेवाले (ब्रह्मणां नूनं ऋणं न अस्ति) ब्राह्मणों पर निश्चयसे कोई ऋण नहीं रहता। (अप्रता सोमः न पपे) कोई भी धनहीन मनुष्य सोमरस नहीं पी सकता ॥ १६ ॥

[७३१] (पन्ये इत् उप गायत) प्रशंसनीय वीर इन्द्रकाही यश गाओ, (पन्ये उक्थानि शंसत) प्रशंसनीय वीरके स्तोत्र पढो। (पन्ये इत् ब्रह्म कृणुत) प्रशंसनीय वीरकेही ज्ञानरूप काव्यका निर्माण करो ॥ १७ ॥

[७३२] (यः वाजी) जिस बलवान् इन्द्रने (शता सहस्रा आ दर्दिरत्) सैकडों और हजारों शत्रुओंका नाश किया, वह यह (इन्द्रः) इन्द्र (अवृतः पन्यः) शत्रुओं द्वारा न घिरनेवाला, स्तुत्य, (यज्वनः वृधः) यज्ञ करनेवालको बढानेवाला है ॥ १८ ॥

[७३३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अनु आहुवः) बुलाये जानेके अनुसार (कृष्टीनां स्वधा) मनुष्योंको स्वकीय धारक शक्तिको देनेवाले अन्नके (अनु) अनुकूल होकर (विचर) विचरण कर, और (सुतानां पिब) सोमरसका पान कर ॥ १९ ॥

भावार्थ— जो धनकी ठीक तरहसे रक्षा कर सकता है, वह दुःखोंसे पार करानेवाला बडा मित्र ही है। धन हर स्थानमें सहायता कर सकता है, इसलिए धनका रक्षक बडा सहायक है। ऐसे धनकी रक्षा वही कर सकता है जो वीर युद्धोंमें अपने स्थानमें स्थिर रहकर लडनेवाला, सबको नियंत्रणमें रखनेवाला और अपनी शक्तिसे महान् अधिपति होता है ॥ १३–१४ ॥

इस इन्द्रकी सच्ची शक्तियोंको नियमन करनेवाला कोई नहीं है। इन्द्रही सर्वोच्च देवता है, अतः उसके ऊपर शासन करनेवाला कोई नहीं है। उसे जो प्रसन्न करता है, वह ज्ञानी धनादिसे सम्पन्न होता है और उस पर कोई किसीका भी ऋण नहीं रहता ॥ १५–१६ ॥

यह बलवान् वीर इन्द्र स्वयं तो हजारों शत्रुओंका नाश करता है पर वह स्वयं किसी भी शत्रु समूहसे घेरा नहीं जा सकता। वह अपने अनुयायियोंको हर तरहसे बढाता है, इसीलिए वह हर जगह प्रशंसित होता है ॥ १७–१८ ॥

हे इन्द्र ! मनुष्य तुम्हें तुम्हारी धारक शक्तिके लिए बुलाते हैं, तुम उनको पौष्टिक अन्नका दान करके उनके लिये स्तुति योग्य होवो और उन्होंने दिया हुआ सोमरसका पान करो ॥ १९ ॥

७३४ पिबा स्वधैनवाना॒मुत यस्तुग्र्ये सचा । उताय॑मिन्द्र॒ यस्तव॑ ॥ २० ॥
७३५ अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांस॑मुपार॑णे । इमं रातं सुतं पिब ॥ २१ ॥
७३६ इहि तिस्रः परावत॑ इहि पञ्च जनाँ अति । धेना इन्द्रावचाकशत् ॥ २२ ॥
७३७ सूर्यो र॒श्मिं यथा सृजा ऽऽ त्वा यच्छन्तु मे गिरः । निम्नमापो न सध्र्यक् ॥ २३ ॥
७३८ अध्वर्यवा तु हि षिञ्च सोमं वीराय शिप्रिणे । भरा सुतस्य पीतये ॥ २४ ॥
७३९ य उद्नः फलिगं भिन॒न्न्यक् सिन्धूँरवासृजत् । यो गोषु पक्वं धारयत् ॥ २५ ॥
७४० अहन् वृत्रमृचीषम और्णवाभमहीशुवम् । हिमेनाविध्यदर्बुदम् ॥ २६ ॥

अर्थ— [७३४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (स्व- धैनवानां) अपने गायोंके दूधसे मिश्रित (उत) और (यः तुग्र्ये सचा) जो जलसे मिश्रित है, (उत यः अयं तव) और तुम्हारे लिए रखा हुआ है, उस सोमका तू पान कर ॥ २० ॥

[७३५] हे इन्द्र ! (मन्युषाविणं अति इहि)) क्रोधसे यज्ञ करनेवालेको लांघ कर चले जाओ, (उपारणे सुषुवांसं) और जो प्रतिकूल - हीन स्थानमें यज्ञ करता है, उसे भी लांघ जाओ। (इमं रातं सुतं पिब) हमारे द्वारा दिए गए इस सोमरसका पान कर ॥ २१ ॥

[७३६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (धेनाः अवचाकशत्) हमारी वाणियां सुन, और सुनकर (परावतः तिस्रः इहि) दूरसे भी हमारे तीनों सवनोंमें आ, (पंचजनान् अति इहि) पांचों प्रकारके मानवोंको लांघ कर हमारे पास आ ॥ २२ ॥

[७३७] (सूर्यः यथा रश्मिं) सूर्य जिस तरह किरणोंको देता है, इसी तरह हमें (सृज) धन दे। (मे गिरः त्वा सध्र्यक् आ यच्छन्तु) मेरी प्रशंसा परक वाणियां तेरे पास उसी तरह सीधे पहुंच जायें, जिस तरह (आपः निम्नं न) जलप्रवाह नीचेकी ओर बहते हैं ॥ २३ ॥

[७३८] हे (अध्वर्यो) अध्वर्यो ! (शिप्रिणे वीराय) शिरस्त्राणधारी वीरके लिए (सोमं तु हि आ सिंच) सोमरस शीघ्र ही अर्पण कर, (सुतस्य पीतये च भर) और सोमरसको पीनेके लिए पात्रमें भर ॥ २४ ॥

[७३९] (यः) जिस इन्द्रने (उद्नः फलिगं भिनत्) पानीके लिए मेघको छिन्नभिन्न किया, (सिन्धून् न्यक् अवासृजत्) नदियोंको नीचेकी ओर बहने दिया, तथा (यः) जिस इन्द्रने (गोषु पक्वं अधारयत्) गायोंमें पक्व दूधको स्थापित किया ॥ २५ ॥

[७४०] (ऋचीषमः) सर्वत्र समान रूपसे जिसकी प्रशंसा होती है, उस इन्द्रने (वृत्रं और्णवाभं महीशुवं अहन्) वृत्र, और्णवाभ, महीशु असुरको मारा, तथा (अर्बुदं हिमेन अविध्यत्) अर्बुद असुरको बर्फसे मारा ॥ २६ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम तुम्हारा सोमरस देकर सत्कार करते हैं, अतः तुम प्रसन्न होकर हमारे साथ ऐसा व्यवहार करो कि तुम्हारी सारी प्रजायें अर्थात् हम सब शक्तिताको धोकर करनेको तथा भरने राष्ट्रको धारण कर सकें ॥ २० ॥

हे इन्द्र ! हमारे सभी यज्ञोंमें तुम आओ तथा तुम जहां जहां जाओ, वहां वहांसे तुम क्रोधसे यज्ञ करनेवाले तथा निंदित तथा हीन स्थानमें यज्ञादि शुभ कार्य करनेवाले मनुष्योंको दूर करो। शुभ कार्य सदा प्रसन्न मनसे तथा शुभ स्थानोंमें करना चाहिए ॥ २१-२२ ॥

हे मनुष्यो ! तुम इस इन्द्रके लिए सोमरस देकर उसका सत्कार करो, ताकि वह सूर्य जिस तरह किरणें देता है तथा नदियां नीचेकी ओर बहती हैं, उसी तरह हमें धन प्रदान करे ॥ २३-२४ ॥

इन्द्रने अनेक शत्रुओंको मारा, तथा मेघको छिन्नभिन्न करके नदियोंमें जल प्रवाहोंको प्रेरित किया, और गायोंमें मधुर तथा सुपक्व अन्न स्थापित किया ॥ २५-२६ ॥

७४१ प्र वं उग्राय निष्टुरे ऽषाळ्हाय प्रसक्षिणे । देवत्तं ब्रह्मं गायत ॥ २७ ॥
७४२ यो विश्वान्यभि व्रता सोमस्य मदे अन्धसः । इन्द्रों देवेषु चेतति ॥ २८ ॥
७४३ इह त्या संधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या । वोळ्हामभि प्रयो हितम् ॥ २९ ॥
७४४ अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी । सोमपेयाय वक्षतः ॥ ३० ॥

[३२]

(ऋषिः- मेध्यातिथिः काण्वः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- बृहती, १६-१८ गायत्री, १९ अनुष्टुप्।)

७४५ वयं घं त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ १ ॥
७४६ स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ २ ॥

अर्थ— [७४१] हे स्तोताओ ! (वः) तुम सब (उग्राय) उग्र वीर (निष्टुरे) त्वरासे कार्य करनेवाले अषाळ्हाय प्रसक्षिणे) सदा साथमें रहनेवाले तथा शत्रुका नाश करनेवाले, इन्द्रके लिए (देवत्तं ब्रह्म गायत) देवोंको प्रसन्न करनेवाला स्तोत्र गाओ ॥ २७ ॥

[७४२] (अन्धसः सोमस्य मदे) अन्न रूप सोमके उत्साहमें (यः इन्द्रः) जो इन्द्र (विश्वानि व्रता) सम्पूर्ण कर्मोंका ज्ञान (देवेषु चेतति , देवोंमें जगाता है ॥ २८ ॥

[७४३] (त्या सधमाद्या) वे साथ साथ आनन्दित होनेवाले (हिरण्यकेश्या हरी) सुनहरे बालोंवाले दो घोडे (हितं प्रयः) हितकारी अन्नको (इह अभि वोळ्हां) यहां हमारी तरफ ले आवें ॥ २९ ॥

[७४४] हे (पुरुस्तुत) अनेकोंके द्वारा स्तुत होनेवाले इन्द्र ! (त्वा) तुझे (प्रिय मेधस्तुता) यज्ञसे प्यार करनेवाले मनुष्यके द्वारा स्तुत हुए (हरी) दो घोडे (सोमपेयाय) सोम पीनेके लिए (अर्वाचं वक्षतः) हमारी ओर ले आवें ॥ ३० ॥

[३२]

[७४५] हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (सुतवन्तः) सोमका रस निकालकर (आपः न) जल प्रवाहके पास बैठनेके समान (पवित्रस्य प्रस्रवणेषु) पवित्र छलनीसे नीचे स्रवनेवाले सोमरसोंके पास (वृक्तबर्हिषः) आसनोंको फैलाकर (वयं घ स्तोतारः त्वा परि उपासते) हम उपासक तेरे चारों ओर बैठते हैं ॥ १ ॥

[७४६] हे (वसो इन्द्र) निवासक इन्द्र ! (सुते निरेके) सोमरसके नीचे उतरनेके समय (उक्थिनः नरः) गायक नेतागण (त्वा स्वरन्ति) तेरा ही यशोगान करते हैं । (सुतं तृषाणः) सोम पीनेके लिए प्यासा होकर (स्वब्दी इव वंसगः) शब्द करते हुए आनेवाले बैलके समान (कदा ओकः आ गमः) कब तू हमारे घर आएगा ॥ २ ॥

भावार्थ— सोमपानके बाद होनेवाले उत्साहमें वह इन्द्र स्वयं उत्तम कर्म करता है और दूसरे देवोंको भी उत्तम कर्म करनेकी प्रेरणा देता है, ऐसे उग्रवीर, शीघ्रतासे कार्य करनेवाले, शत्रुपर प्रचंड आक्रमण करनेवाले और सदा सज्ज रहनेवाले वीर इन्द्रकी प्रशंसा करनी चाहिए ॥ २७-२८ ।

हे इन्द्र ! यज्ञको प्रेमपूर्वक करनेवाले उत्तम ज्ञानीके यज्ञमें तू जा, और तेरे घोडे भी तुझे उस यज्ञकी तरफ ले आयें ॥ २९-३० ॥

हे शत्रुओंको मारकर सज्जनोंका निवास करानेवाले इन्द्र ! हम आसन बिछाकर तुझे सोमरस अर्पण करके तेरा सत्कार करते हैं, अतः तू भी हमारे पास सोमका अभिलाषी होकर आ ॥ १-२ ॥

७४७ कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ३ ॥
७४८ पाहि गायान्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
यः संमिश्लो हर्योर्यः सुते सचा वज्री रथो हिरण्ययः ॥ ४ ॥
७४९ यः सुषव्यः सुदक्षिण इनो यः सुक्रतुर्गृणे ।
य आकरः सहस्रा यः शतामघ इन्द्रो यः पूर्भिदारितः ॥ ५ ॥
७५० यो धृषितो योऽवृतो यो अस्ति श्मश्रुषु श्रितः ।
विभूतद्युम्नश्च्यवनः पुरुष्टुतः क्रत्वा गौरिव शाकिनः ॥ ६ ॥
७५१ क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ ७ ॥

अर्थ— [७४७] हे (धृष्णो) शत्रुका धर्षण करनेवाले इन्द्र ! (कण्वेभिः सहस्रिणं वाजं आ दर्षि) कण्वोंके लिए हजार गुना सामर्थ्य दो । हे (मघवन् विचर्षणे) धनवान् और दूरदर्शी इन्द्र ! (धृषत् पिशंगरूपं गोमन्तं) शत्रुका पराभव करनेमें समर्थ, पीले रंगवाला, गौओंसे युक्त (वाजं मक्षु ईमहे) अन्न हम शीघ्र मांगते हैं ॥ ३ ॥

[७४८] हे (मेध्यातिथे) हे मेध्यातिथे ! (पाहि) सोमपान कर ! (अन्धसः मदे इन्द्राय गाय) इस अन्न रूप सोमके उत्साहमें इन्द्रका स्तोत्र गाओ । (यः) जो इन्द्र (हर्योः संमिश्लः) दो घोडे अपने रथमें जोतता है, (यः च सुते सचा) और जो सोमयागमें साथ रहता है, (वज्री) जो हाथमें वज्र धारण करता है और जिसका (रथः हिरण्ययः) रथ सोनेसे मंडित है ॥ ४ ॥

[७४९] (यः सुषव्यः सुदक्षिणः इनः) जिस इन्द्रका बांया हाथ उत्तम है, दाहिना हाथ भी उत्तम है, जो सबका स्वामी है, (यः सुक्रतुः) जो उत्तम कर्म करता है, (यः सहस्रा आकरः) जो सहस्रों शुभ गुणोंकी खान है, (यः शतमघः) जो सैंकडों तरहके धनोंसे युक्त हो, (यः पूर्भित्) जो शत्रुओंके किलोंको तोडता है, (आरितः) जो यज्ञोंमें जाता है, (इन्द्रः गृणे) उस इन्द्रकी स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

[७५०] (यः धृषितः) जो शत्रुओंका विनाश करता है, (यः अवृतः) जो शत्रुओंके द्वारा कभी घेरा नहीं जा सकता, (यः श्मश्रुषु अस्ति) जो दाढीमूंछवाले शत्रुओंमें घुसकर युद्ध करता है, (यः विभूत द्युम्नः च्यवनः) जो अनेक धनोंसे युक्त, शत्रुओंको हिलानेवाला, (पुरुस्तुतः) अनेकों द्वारा प्रशंसित है वह (क्रत्वा शाकिनः) प्रयत्न करनेवाले शक्तिमानोंके लिए (गौः इव) गायके समान है ॥ ६ ॥

[७५१] (सुते सचा) सोमरस साथ-साथ बैठकर पीनेवाले इन्द्रको (कः वेद) कौन जानता है ? (कत् वयः दधे) कौन उसे अन्नका अर्पण करता है ? (यः अयं इन्द्रः शिप्री) जो यह शिरस्त्राण धारण करनेवाला, (अन्धसः मन्दानः) अन्नरूप सोमरससे उत्साहित होनेवाला (ओजसा पुरः विभिनत्ति) अपने तेजसे शत्रुओंके नगरोंको तोडता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— वज्रको धारण करनेवाले तथा सोनेके रथ पर बैठनेवाले इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं और उससे हम शत्रु पर जिसकी सहायतासे हमला किया जा सके, तथा जिसके साथ गायें रहती हैं, ऐसा सामर्थ्य हम मांगते हैं ॥ ३-४ ॥

जिसके बायां और दाहिना दोनों हाथ उत्तम काम करते हों, वही स्वामी योग्य है । दोनों हाथोंसे उत्तम कर्म करना चाहिए । उत्तम कार्य करनेवाला, हजारों गुणोंकी खान, शत्रु नगरोंको तोडनेवाला वीर ही उत्तम होता है ॥ ५ ॥

शत्रुओं पर जोरदार हमला करनेवाला, पर शत्रुओंसे कभी न घिरनेवाला ऐसा पराक्रमी वीरही प्रशंसाके योग्य होता है, ऐसा वीर ही अपने बल और पराक्रमसे शत्रुओंके किलोंको तोडता है ॥ ६-७ ॥

७५२ दाना मृगो न वा॒र॒णः पु॑रु॒त्रा च॒रथं॑ दधे ।
न॒किष्ट्वा॒ नि य॑म॒दा सु॒ते ग॑मो म॒हाँश्च॑र॒स्योज॑सा ॥ ८ ॥

७५३ य उ॒ग्रः सन्ननि॑ष्टृतः स्थि॒रो रणा॑य॒ संस्कृ॑तः ।
यदि॑ स्तो॒तुर्म॒घवा॑ शृ॒णव॒द्धवं॒ नेन्द्रो॑ योष॒त्या ग॑मत् ॥ ९ ॥

७५४ स॒त्यमि॒त्था वृ॒षेद॑सि॒ वृष॑जूति॒र्नोऽवृ॑तः ।
वृषा॒ ह्यु॑ग्र शृण्वि॒षे प॑रा॒वति॒ वृषो॑ अर्वा॒वति॑ श्रु॒तः ॥ १० ॥

७५५ वृष॑णस्ते अ॒भीश॑वो॒ वृषा॒ कशा॑ हिर॒ण्ययी॑ ।
वृषा॒ रथो॑ मघव॒न्वृष॑णा॒ हरी॒ वृषा॒ त्वं श॑तक्रतो ॥ ११ ॥

अर्थ— [७५२] (दाना वारणः मृगः) मदकी धाराओंको धारण करनेवाला हाथी जिस तरह अपने शत्रुओंको ढूंढता फिरता है, उसी तरह इन्द्र सोमरसके उत्साहमें (पुरुत्रा चरथं दधे) अनेक स्थानोंमें जाता है। हे इन्द्र ! (त्वा नकिः नियमत्) तुझ पर कोई शासन नहीं कर सकता। (सुते आ गमः) सोमरस तैयार हो जाने पर आओ। (महान् ओजसा चरसि) तुम अपने महान् तेजसे युक्त होकर सर्वत्र विचरते हो ॥ ८ ॥

[७५३] (यः उग्रः सन् अनिष्टृतः) जो इन्द्र वीर होनेके कारण कभी भी पीछे नहीं हटता, अपितु (स्थिरः रणाय संस्कृतः) जो सदा युद्धमें स्थिर रहता है, वह (मघवा) इन्द्र (यदि स्तोतुः हवं शृणवत्) यदि स्तोताकी पुकारको सुन ले, तो वह कभी (न योषत्) अन्यत्र नहीं जाता, और (आ गमत्) वह अवश्यही स्तोताके पास आता है ॥ ९ ॥

[७५४] हे (उग्र) वीर इन्द्र ! (सत्यं) यह सत्य है कि तू (इत्था वृषा इत् असि) इस प्रकारका बलवान्ही है। तू (वृषजूतिः अवृतः) बलवानोंके पास आकर्षित होकर जाता है, और शत्रुओंके द्वारा कभी घेरा नहीं जाता। (वृषा हि शृण्विषे) तू बलवान्के रूपमेंही सर्वत्र प्रसिद्ध है, (परावति वृषा अर्वावति श्रुतः) दूरके देशोंमें और पासके देशोंमें भी तू बलवान्के रूपमें प्रसिद्ध है ॥ १० ॥

[७५५] हे (मघवन्) इन्द्र ! (ते अभीशवः वृषणः) तेरे लगाम बलशाली हैं, (हिरण्ययी कशा वृषा) सोनेकी चाबुक भी बलयुक्त है, (रथः वृषा, हरी वृषणा) तेरा रथ बलशाली है, तेरे दोनों घोडे भी बलशाली हैं तथा हे (शतक्रतो) सैंकडों उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! (त्वं वृषा) तू स्वयं भी बलवान् है ॥ ११ ॥

भावार्थ— शत्रुको ढूंढनेवाला वीर चारों ओर भ्रमण करता है, ऐसे शत्रुको कोई भी अपने शासनमें नहीं रख सकता अर्थात् ऐसा वीर कभी परास्त नहीं होता। वह अपने बलके कारणही बली होकर विचरता है। ऐसा प्रचंडवीर पराजित न होता हुआ युद्धमें स्थिर रहता है ॥ ८-९ ॥

सत्य और बलशाली वीर वही है कि जिसके रथ, घोडे, लगाम, चाबुक आदि सब युद्ध साहित्य उत्तम और श्रेष्ठ बलसे युक्त हो, किसीमें भी किसी तरहकी न्यूनता न हो और जो अपने देशमें और परदेशमें भी बलवान्के रूपमें प्रसिद्ध हो ॥ १०-११ ॥

७५६ वृषा सोता सुनोतु ते वृषन्नृजीपिन्ना भर ।
वृषा दधन्वे वृषणं नदीष्वा तुभ्यं स्थातर्हरीणाम् ॥ १२ ॥
७५७ एन्द्र याहि पीतये मधु शविष्ठ सोम्यम् ।
नायमच्छा मघवा शृणवद् गिरो ब्रह्मोक्था च सुक्रतुः ॥ १३ ॥
७५८ वहन्तु त्वा रथेष्ठामा हरयो रथयुजः ।
तिरश्चिदर्य सवनानि वृत्रहन्नन्येषां या शतक्रतो ॥ १४ ॥
७५९ अस्माकमद्यान्तमं स्तोमं धिष्व महामह ।
अस्माकं ते सवना सन्तु शंतमा मदाय द्युक्ष सोमपाः ॥ १५ ॥
७६० नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति । यो अस्मान् वीर आनयत् ॥ १६ ॥

अर्थ— [७५६] हे (वृषन्) बलवान् इन्द्र ! (वृषा सोता ते सुनोतु) बलवान् सोम निचोडनेवाला तेरे लिए सोमरस निचोडे । हे (ऋजीपिन् आभर) साम पीनेवाले इन्द्र ! हमें धन भरपूर दे । हे (हरीणां स्थातः) घोडोंको स्थिर करनेवाले इन्द्र ! (वृषा) बलवान् सोमयाजी (तुभ्यं) तेरे लिए (वृषणं नदीषु दधन्वे) बलवान् सोमको नदियोंमें रखता है ॥ १२ ॥

[७५७] हे (शविष्ठ इन्द्र) बलवान् इन्द्र ! (सोम्यं मधु पीतये आ याहि) शान्तिदायक सोमरसको पीनेके लिए आ । (अयं सुक्रतुः मघवा) यह उत्तम कर्म करनेवाला इन्द्र (गिरः ब्रह्म उक्था च अच्छ शृणवत्) हमारी वाणी, ज्ञान और स्तोत्रको अच्छी तरह सुने ॥ १३ ॥

[७५८] हे (वृत्रहन् शतक्रतो) वृत्रको मारनेवाले तथा सैंकडों उत्तम काम करनेवाले इन्द्र ! (रथस्थां अर्य त्वा) रथमें बैठनेवाले तुझ स्वामीको (रथयुजः हरयः) रथमें जुडे हुए घोडे (अन्येषां या सवनानि) दूसरोंके जो यज्ञ हैं, उनका (तिरः चित्) तिरस्कार करते हुए (आ वहन्तु) यहां हमारे यज्ञमें ले आवें ॥ १४ ॥

[७५९] हे (महामह) पूज्योंके लिए भी पूज्य इन्द्र ! (अद्य) आज (अन्तमं अस्माकं स्तोमं धिष्व) हमारे पासके इस स्तोत्रका श्रवण करो, हे (द्युक्ष सोमपाः) तेजस्वी सोमपान करनेवाले वीर ! (ते मदाय) तेरे आनन्दके लिए (अस्माकं सवना शंतमा सन्तु) हमारे यज्ञ सुखदायी हों ॥ १५ ॥

[७६०] (यः वीरः) जो वीर इन्द्र (अस्मान् आ नयत्) हमारा नेता हुआ है, (सः) वह इन्द्र (तव शास्त्रे) तेरे शासनमें रहना (नहि रण्यति) नही पसन्द करता, (मम न रण्यति) न मेरेही शासनमें रहना पसन्द करता है । (अन्यस्य अपि न रण्यति) न किसी दूसरेके शासनमें ही रहना पसन्द करता है ॥ १६ ॥

भावार्थ— सोमरस पहले निचोडे जाते हैं, फिर उनमें नदियोंका निर्मल जल मिलाया जाता है । फिर उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रको यह सोमरस मंत्रोंको गाकर दिया जाता है । यह रस शान्तिदायक है । इसे पीनेसे शान्ति मिलती है ॥ १२-१३ ॥

जो लोग मनसे यज्ञ न करके केवल यज्ञ करनेका ढोंग करते हैं, ऐसे यज्ञ कर्ताओंके यज्ञोंका इन्द्र तिरस्कार करता है, पर जो सच्चे मनसे यज्ञ करते हैं, उनके यज्ञमें जाकर इन्द्र सोमपान करता है, और ऐसे यज्ञ यज्ञकर्ताओंके लिए सुखदायी होते हैं ॥ १४-१५ ॥

इन्द्र वीर होनेके कारण वह किसीके शासनमें नहीं रहता । वीर तो दूसरों पर शासन करनेके लिए ही जन्म लेते हैं, दूसरोंके शासनमें रहनेके लिए नहीं । इसी लिए वे किसी दूसरे तीसरेके शासनमें रहना पसन्द नहीं करते ॥ १६ ॥

७६१ इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत् स्त्रिया अशास्यं मनः । उतो अह क्रतुं रघुम् ॥ १७ ॥
७६२ सप्ती चिद् घा मदच्युता मिथुना वहतो रथम् । एवेद् धूर्वृष्ण उत्तरा ॥ १८ ॥
७६३ अधः पश्यस्व मोपरि संतरां पादकौ हर ।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥ १९ ॥

[३४]

(ऋषिः- १-१५ नीपातिथिः काण्वः; १६-१८ सहस्रं वसुरोचिषोऽङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- अनुष्टुप्, १६-१८ गायत्री ।)

७६४ एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १ ॥
७६५ आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण यच्छतु ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ २ ॥

अर्थ- [७६१] (इन्द्रः चित् घ तत् अब्रवीत्) इन्द्रने भी वही बात कही थी कि (स्त्रियः मनः अशास्यं) स्त्रीके मन पर शासन करना असंभव है, (उत अह क्रतुं रघुं) और उसकी बुद्धि तथा कर्मशक्ति छोटी होती है ॥ १७ ॥

[७६२] (मदच्युता सप्ती) मदमत्त दो घोडे (रथं) इन्द्रके रथको (मिथुना चित् घ वहतः एव इत्) एक जोडमें ही ले जाते हैं । (वृष्णः) उस इन्द्रके रथकी (धूः उत्तरा) धुरा अधिक उत्तम है ॥ १८ ॥

[७६३] (अधः पश्यस्व) हे स्त्री ! तू सदा नीचे देखा कर (मा उपरि) ऊपर मत देख, (पादकौ संतरां हर) पैरोंके पास रखते हुए चल, (ते कशप्लकौ मा दृशन्) तेरे शरीरके दोनों भाग मुख और पिंडलियां (नहि दृशन्) न दिखाई दें, (हि) क्यों कि (ब्रह्मा स्त्री बभूविथ) तू ब्रह्माकी स्त्री थी ॥ १९ ॥

[३४]

[७६४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (हरिभिः) घोडोंसे (कण्वस्य सु-स्तुतिं उप आ याहि) कण्वकी उत्तम स्तुतिके पास आओ, हे (दिवा-वसो) द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ १ ॥

[७६५] हे इन्द्र ! (इह) इस यज्ञमें (सोमी ग्रावा) सोमको कूटनेवाला पत्थर (वदन्) शब्द करता हुआ (घोषेण) आवाजके साथ (त्वा आ यच्छतु) तुम्हारे पास आवे, हे (दिवा-वसो) हे द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकमें जाओ ॥ २ ॥

भावार्थ— स्त्रियोंके मनको संयममें रखना कठिन है, उनके मन पर काबू पाना असंभव है । उनके कर्म छोटे होते हैं, उनकी क्रियाशक्ति कम होती है और उनकी बुद्धि भी छोटी होती है ॥ १७ ॥

इस बलवान् इन्द्रके घोडे सदा संयुक्त होकर ही इसके रथको खींचते हैं । इसी कारण इस इन्द्रके रथकी धुरा सदा दृढ और उन्नत रहती है ॥ १८ ॥

स्त्री सदा विनम्रतासे व्यवहार करे, वह कभी उद्धत न हो, साथ ही लज्जाका भाव लेकर वह चले फिरे, वह कभी निर्लज्ज न हो । वह चलते समय पैर फैलाकर या लम्बे-लम्बे डग भरकर न चले अपितु पैर सटाकर तथा छोटे छोटे डग भरकर चले । उसके शरीरके सभी अवयव अच्छी तरह ढके रहें । स्त्रीका यदि कोई भाग खुला रहेगा, तो उसे देखकर पुरुषोंके मनमें कुभाव जगेंगे और कामवासना पैदा होगी । अतः स्त्रीके सभी अवयव ढके रहें । इस मंत्रमें स्त्रियोंके लिए उत्तम उपदेश है ॥ १९ ॥

हे इन्द्र ! इस यज्ञमें सोम कूटनेवाले पत्थरोंकी आवाज हो, और वह आवाज तुम तक पहुंचे, तब अपने घोडोंके द्वारा तुम इस यज्ञमें आकर सोमरसका पान करो ॥ १-२ ॥

७६६ अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ३ ॥
७६७ आ त्वा कण्वा इहावसे हवन्ते वाजसातये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ४ ॥
७६८ दधामि ते सुतानां वृष्णे न पूर्वपाय्यम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ५ ॥
७६९ स्मत्पुरंधिर्न आ गहि विश्वतोधीर्न ऊतये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ६ ॥
७७० आ नो याहि महेमते सहस्रोते शतामघ ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥
७७१ आ त्वा होता मनुर्हितो देवत्रा वक्षदीड्यः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ८ ॥

अर्थ — [७६६] (अत्र) इस यज्ञमें (एषां) इन पत्थरोंको (नेमिः) सोमलता (उरां वृकः न) भेडको भेडियेके समान (वि धूनुते) कंपाती है, हे (दिवावसो) द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ ३ ॥

[७६७] हे इन्द्र ! (इह) यहां यज्ञमें (त्वा कण्वाः) तुझे कण्वके पुत्र (अवसे वाजसातये) संरक्षण तथा अन्नकी प्राप्तिके लिए (आ हवन्ते) बुलाते हैं। हे (दिवावसो) द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतो) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ ४ ॥

[७६८] हे इन्द्र ! मैं (वृष्णे पूर्वपाय्यं न) जैसे वायुके लिए सबसे प्रथम पेय दिया जाता है, उसी प्रकार (ते सुतानां दधामि) तुझे सोम रस देता हूं। (दिवावसो) द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ ५ ॥

[७६९] हे (स्मत् पुरन्धिः विश्वतोधीः) हमारे बुद्धिमान् तथा चारों ओर बुद्धिको फैलानेवाले हे इन्द्र ! (नः ऊतये आ गहि) हमारे संरक्षणके लिए आओ। हे (दिवावसो) द्युलोकके वासी इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोक जाओ ॥ ६ ॥

[७७०] हे (महेमते) महान् बुद्धिवाले, (सहस्र ऊते) हजारों संरक्षणके साधन रखनेवाले, (शतामघ) सैकडों प्रकारके धनवाले इन्द्र ! (नः आ याहि) हमारे पास आओ, तथा (दिवावसो) हे द्युलोकके वासी इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकमें जाओ ॥ ७ ॥

[७७१] (देवत्रा ईड्यः) देवोंमें स्तुत्य (मनुः हितः) मनुष्योंका हित करनेवाला यह (होता) अग्नि हे इन्द्र ! (त्वा नः आ वक्षत्) तुम्हें हमारे पास ले आवे, हे (दिवा-वसो) द्युलोकमें वास करनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम (दिवं यय) द्युलोक जाओ ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तुम्हें ज्ञानीके पुत्र अपनी रक्षा तथा अन्नको प्राप्त करनेके लिए बुलाते हैं, उस समय वे पत्थरोंकी सहायतासे सोमरसको निचोडते हैं। अतः तुम आओ और सोमरसका पान करो ॥ ३-४ ॥

हे इन्द्र ! तुम हमारी बुद्धिको उत्तम करके उसका यश सर्वत्र फैलानेके लिए हमारे पास आओ। हम तुम्हें जैसे वायुके लिये सबसे प्रथम पेय दिया जाता है, उसी प्रकार सोमरस प्रदान करते हैं ॥ ५-६ ॥

यह अग्नि देवोंमें स्तुत्य, और मनुष्योंका हित करनेवाला है। इन्द्र बहुत बुद्धिमान्, हजारों तरहके संरक्षणके साधनोंसे युक्त है। इस प्रकार दोनों ही देव महिमाशाली हैं ॥ ७-८ ॥

७७२ आ त्वा मदच्युता हरी श्येनं पक्षेव वक्षतः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ९ ॥
७७३ आ याह्यर्य आ परि स्वाहा सोमस्य पीतये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १० ॥
७७४ आ नो याह्युपश्रुत्युक्थेषु रणया इह ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ११ ॥
७७५ सरूपैरा सु नो गहि संभृतैः संभृताश्वः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १२ ॥
७७६ आ याहि पर्वतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १३ ॥
७७७ आ नो गव्यान्यश्व्या सहस्रा शूर दर्दहि ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १४ ॥

अर्थ— [७७२] हे इन्द्र ! (श्येनं पक्षा इव) जैसे बाजको उसके पंख ले जाते हैं, उसी प्रकार (मदच्युता हरी) मद चुआनेवाले घोडे (त्वा आ वक्षतः) तुम्हें ले आवे । हे (दिवा-वसो) द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिव शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ ९ ॥

[७७३] हे (अर्यः) स्वामिन् इन्द्र ! (सु-आहा सोमस्य पीतये) उत्तमतासे समर्पित सोमको पीनेके लिए (आ परि आ याहि) आओ । हे (दिवावसो) द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिव शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ १० ॥

[७७४] हे इन्द्र ! (उक्थेषु श्रुति) स्तोत्रोंको सुनकर (इह) इस यज्ञमें (नः उप आ याहि) हमारे पास आओ और हमें (रणय) आनन्दित करो । हे (दिवा-वसो) द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस लोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ ११ ॥

[७७५] हे (संभृताश्वः) उत्तम घोडोंवाले इन्द्र ! (संभृतैः सरूपैः) पुष्ट तथा समान रूपवाले घोडोंसे (नः सु आगहि) हमारे पास आओ ! हे (दिवा-वसो) द्युलोकमें बसनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ १२ ॥

[७७६] हे इन्द्र ! (पर्वतेभ्यः समुद्रस्य विष्टपः अधि) पर्वतोंसे तथा अन्तरिक्षके प्रदेशोंसे (आ याहि) आओ, हे (दिवा-वसो) द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ १३ ॥

[७७७] हे (शूर) शूरवीर इन्द्र ! तुम (नः) हमें (सहस्रा गव्यानि अश्व्या) हजारों गाय और घोडे (आ दर्दहि) दो, हे (दिवा-वसो) द्युलोकके वासी इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ १४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तुम सोमरसको पीनेके लिए घोडोंसे उसी तरह आओ, जिस तरह पक्षी अपने पंखोंके आश्रयसे जाते हैं ॥ ९-१० ॥

हे इन्द्र ! अपने पुष्ट घोडोंसे हमारे पास आओ, और सोमरस पीकर हमें आनंदित करो ॥ ११-१२ ॥

हे इन्द्र ! तुम पर्वत, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक अर्थात् जहां पर भी हो, वहींसे तुम हमारे पास आकर हमें उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करो ॥ १३-१४ ॥

७७८ आ नः सहस्रशो भरा ऽयुतानि शतानि च ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १५ ॥
७७९ आ यदिन्द्रश्च दद्वहे सहस्रं वसुरोचिषः । ओजिष्ठमश्व्यं पशुम् ॥ १६ ॥
७८० य ऋज्रा वातरंहसो ऽरुषासो रघुष्यदः । भ्राजन्ते सूर्या इव ॥ १७ ॥
७८१ पारावतस्य रातिषु द्रवच्चक्रेष्वाशुषु । तिष्ठं वनस्य मध्य आ ॥ १८ ॥

[३९]

(ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवताः- अश्विनौ । छन्द - उपरिष्टाज्ज्योतिः (त्रिष्टुप्), २२, २४ पङ्क्तिः, २२ महाबृहती ।)

७८२ अग्निनेन्द्रेण वरुणेन विष्णुना ऽऽदित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ १ ॥
७८३ विश्वाभिर्धीभिर्भुवनेन वाजिना दिवा पृथिव्याद्रिभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ २ ॥

अर्थ— [७७८] हे इन्द्र ! (न) हमें (सहस्रशः) हजारों प्रकारसे (शतानि अयुतानि च) सैकडों तथा हजारों प्रकारके धन (आ भर) दो । हे (दिवा-वसो) द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ १५ ॥

[७७९] (वसु-रोचिषः) ऐश्वर्यसे तेजस्वी हुए हम तथा (इन्द्र च) इन्द्र (सहस्रं ओजिष्ठं अश्व्यं पशुं) हजारों प्रकारके बलवान् अश्व आदि पशुको (आ दद्वहे) प्राप्त करें ॥ १६ ॥

[७८०] (ये) जो (ऋज्राः) सरल (वातरंहसः) वायुके समान वेगवाले (अरुषासः) तेजस्वी (रघुष्यदः) शीघ्र चलनेवाले घोडे (सूर्याः इव) सूर्यके समान (भ्राजन्त) चमक रहे हैं ॥ १७ ॥

[७८१] (पारावतस्य रातिषु) पारावतके द्वारा दिए गए (आशुषु) घोडोंसे युक्त (द्रवत् चक्रेषु) दौडते हुए चक्रोंसे युक्त (वनस्य मध्ये) रथके बीचमें (आ तिष्ठं) मैं बैठूं ॥ १८ ॥

[३९]

[७८२] हे अश्विदेवों ! तुम (अग्निना इन्द्रेण वरुणेन विष्णुना आदित्यैः) अग्नि, इन्द्र, वरुण, विष्णु, आदित्यों (वसुभिः रुद्रैः) वसुओं एवं रुद्रोंके संघोंसे (सचा-भुवा) युक्त होकर (उषसा सूर्येण च सजोषसा) और उषा तथा सूर्यसे मिलकर (सोमं पिबतम) सोमरसका सेवन करो ॥ १ ॥

[७८३] हे (वाजिना) बलवान् अश्विदेवो ! (दिवा पृथिव्या) द्युलोक एवं भूलोकवर्ती लोगोंसे, (अद्रिभिः) न दौडनेवालोंसे, (विश्वाभिः धीभिः भुवनेन सचाभुवा) सभी बुद्धियों एवं भुवनसे युक्त हो तथा (उषसा सूर्येण सजोषसा) उषा और सूर्यसे सम्मिलित होकर (सोमं पिबतं) सोमपान करो ॥ २ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तुम हम पर कृपा करके हमें अनेक तरहके ऐश्वर्य प्रदान करो, हम भी ऐश्वर्यशाली होकर उत्तम यशवाले हों ॥ १५-१६ ॥

वीरके घोडे वायुके समान वेगवान्, तेजस्वी तथा सूर्यके समान कान्तियुक्त हों । ऐसे घोडोंको रथमें संयुक्त करके वीर उस रथमें बैठे ॥ १७-१८ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम उत्तम बुद्धिसे युक्त हो, अतः तुम अग्नि, इन्द्र आदि सभी देवोंके साथ मिलकर सोमरसका पान करो ॥ १-२ ॥

७८४ विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादशैरिहाद्भिर्मरुद्भिर्भृगुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ ३ ॥
७८५ जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ४ ॥
७८६ स्तोमं जुषेथां युवशेव कन्यनां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ५ ॥
७८७ गिरो जुषेथामध्वरं जुषेथां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ६ ॥
७८८ हारिद्रवेव पतथो वनेदुप सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ७ ॥
७८९ हंसाविव पतथो अध्वगाविव सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ८ ॥

अर्थ— [७८४] हे अश्विदेवो ! (इह) यहाँपर (त्रिभिः एकादशैः विश्वैः देवैः) सभी तैंतीस देवोंके, (भृगुभिः मरुद्भिः अद्भिः) भृगुओं, वीरमरुतों तथा जलोंसे (सचाभुवा) संगत होकर और (उषसा सूर्येण सजोषसा) उषा एवं सूर्यके साथ रहकर (सोमं पिबतम्) सोमपान करो ॥ ३ ॥

[७८५] हे अश्विदेवो ! (यज्ञं जुषेथां) यज्ञका सेवन करो, (मे हवस्य बोधतं) मेरी प्रार्थना जान लो, (देवौ) दानी तुम दोनों (इह विश्वा सवना अव गच्छतं) इधर सभी सवनोंके निकट आ पहुँचो, पश्चात् (उषसा सूर्येण सजोषसा) उषा एवं सूर्यके साथ (नः इषं वोळ्हं) हमें अन्न पहुँचा दो ॥ ४ ॥

[७८६] हे (देवौ) दानी या द्योतमान अश्विदेवो ! (कन्यनां युवशा इव) कन्या-कमनीय युवतियोंको युवक जैसे चाहते हैं वैसेही (स्तोमं जुषेथां) हमारे स्तोत्रका सेवन करो, तथा (विश्वा सवना) सभी सवनोंमें (इह अवगच्छतं) इधर आकर पहुँच जाओ; (उषसा सूर्येण च सजोषसा) सूर्य एवं उषःवेलाके समय तुम दोनों (नः इषं वोळ्ह) हमें अन्न पहुँचा दो ॥ ५ ॥

[७८७] (इह गिरः जुषेथां) यहाँपर हमारे भाषणोंको स्वीकार करो, (अध्वरं जुषेथां) हिंसारहित कार्यके लिए आदरपूर्वक उपस्थित रहो (देवौ) दानी होकर तुम (विश्वा सवना अव गच्छतं) सभी सवनोंमें आओ, हे अश्विनो ! (उषसा सूर्येण नः इषं वोळ्ह) सूर्योदय तथा उषःवेलामें हमें अन्न पहुँचा दो ॥ ६ ॥

[७८८] हे अश्विदेवो (सुतं सोमं) निचोडकर रखे हुए सोमके प्रति (महिषा इव अव गच्छथः) भैंसोंके तुल्य-बहुत प्यासे होकर जाते हो, (वना) जलोंके समीप (हारिद्रवा इव) पंछीके तुल्य (उप पतथः इत्) चले जाते हो, (उषसा सूर्येण सजोषसा) उषःकाल एवं सूर्योदयके समय (वर्तिः त्रिः यातं) घरके समीप तीन बार जाओ ॥ ७ ॥

[७८९] (हंसौ इव) हंसोंकी नाईं, (अध्वगौ इव) पथिकके तुल्य (पतथः) तुम ऊपरसे आगिरते हो (सुतं सोमं महिषा इव आ गच्छथः) निचोडकर रखे सोमको पीनेके लिए, जैसे दो भैंसे तालावके समीप जाते हैं वैसेही, तुम आते हो; (उषसा सूर्येण सजोषसा वर्तिः त्रिः यातं) उषा एवं सूर्यसे युक्त हो तीन बार घर चले जाओ ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुम दोनों दान देनेवाले हो, अतः हमारी प्रार्थना सुनकर हमारे यज्ञमें आओ, तथा तैंतीस देव तथा अन्य देवोंके साथ मिलकर हमें अन्न प्रदान करो ॥ ३-४ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम हमारे हिंसारहित कार्योंमें श्रद्धापूर्वक उपस्थित होओ, तथा हमारी प्रार्थनाओंको ध्यान पूर्वक सुनकर हमें उत्तम अन्न प्रदान करो ॥ ५-६ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम दोनों हंसोंके समान तेजस्वी हो, जिस तरह पक्षी सूर्योदयके होते ही दानेके लिए घर घर जाते हैं, उसी तरह ये देव सोमरस पान करनेके लिए सूर्योदय होने पर घर-घर जाते हैं ॥ ७-८ ॥

७९० श्येनाविव पतथो हव्यदातये सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ९ ॥

७९१ पिबतं च तृष्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ १० ॥

७९२ जयतं च प्र स्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ ११ ॥

७९३ हतं च शत्रून् यततं च मित्रिणः प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ १२ ॥

७९४ मित्रावरुणवन्ता उत धर्मवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाऽऽदित्यैर्यातमश्विना ॥ १३ ॥

७९५ अङ्गिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाऽऽदित्यैर्यातमश्विना ॥ १४ ॥

७९६ ऋभुमन्ता वृषणा वाजवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाऽऽदित्यैर्यातमश्विना ॥ १५ ॥

अर्थ— [७९०] (हव्य-दातये) अन्नका दान करनेके लिए (श्येनौ इव पतथः) बाज पंछीके समान वेगसे जाते हो, (सुतं सोमं महिषा इव गच्छथः) तैयार सोमरसको पीनेके लिए भैंसोंके तुल्य शीघ्रगतिसे जाते हो; हे अश्विदेवों ! (सूर्येण उषसा सजोषसा त्रिः वर्तिः यातं) उषःकाल एवं सूर्योदयकी वेलामें तीन बार जाओ ॥ ९ ॥

[७९१] (पिबतं तृष्णुतं च) सोमरस पी जाओ और तृप्त बनो तथा (आ गच्छतं च) आ जाओ; (प्रजां द्रविणं च धत्तं) सन्तान एवं धनवैभवको दे डालो; हे अश्विदेवों ! (उषसा सूर्येण च सजोषसा) सूर्य एवं उषाके साथ रहते हुए तुम (नः ऊर्जं धत्तं) हमें बल देओ ॥ १० ॥

[७९२] हे अश्विदेवों ! (जयतं, प्रस्तुतं च) तुम जीत लो और प्रशंसा करो, (प्र अवतं) खूब रक्षा करो, (प्रजां च द्रविणं च धत्तं) सन्तति तथा द्रव्यका दान करो, (उषसा सूर्येण सजोषसा नः ऊर्जं धत्तम्) उषा एवं सूर्यके साथ रहते हुए हमें बल दे दो ॥ ११ ॥

[७९३] (शत्रून् हतं) दुश्मनोंका वध करो और (मित्रिणः यततं) मित्रोंको पानेका यत्न करो (प्रजां च द्रविणं च धत्तं) प्रजा तथा धनका दान करो, हे अश्विदेवों ! (उषसा सूर्येण सजोषसा नः ऊर्जं धत्तं) उषा एवं सूर्यसे सम्मिलित हो हमें बल दो ॥ १२ ॥

[७९४] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! तुम (मित्रावरुणवन्ता) मित्र, वरुण (उत) और (धर्मवन्ता) धर्मसे युक्त (मरुत्वन्ता) वीर मरुतोंके साथ (जरितुः हवं गच्छथः) स्तोताकी पुकार सुनकर चले जाते हो, (उषसा सूर्येण आदित्यैः च सजोषसा यातम्) उषा, सूर्य तथा अदितिके पुत्रोंके साथ (यातं) तुम गमन करो ॥ १३ ॥

[७९५] (अंगिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता) अंगिरस तथा विष्णुके साथ तथा (मरुत्वन्ता) मरुतोंके साथ (जरितुः हवं गच्छथः) स्तोताकी पुकार सुनकर चले जाते हो। तुम (उषसा सूर्येण आदित्यैः च सजोषसा यातं) उषा, सूर्य तथा अदितिके पुत्रोंके साथ गमन करो ॥ १४ ॥

[७९६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! तुम (ऋभुमन्ता वाजवन्ता) ऋभुओं तथा बलके साथ (वृषणा) बलवान् बनकर (जरितुः हवं गच्छथः) स्तोताकी पुकार सुनकर चले जाते हो, (उषसा सूर्येण आदित्यैः च सजोषसा यातं) उषा, सूर्य तथा अदितिके पुत्रोंके साथ तुम गमन करो ॥ १५ ॥

भावार्थ— जिस तरह एक श्येनपक्षी वेगसे जाता है, उसी तरह तुम दान देनेके लिए वेगसे जाओ । तुम सोमरसको पी लीजिए हमें वैभव प्रदान करो ॥ ९-१० ॥

हे अश्विदेवो ! तुम शत्रुओंका वध करो, उन्हें जीत लो, तथा मित्रोंको प्राप्त करके उनकी प्रशंसा करो ॥ ११-१२ ॥

हे अश्विदेवों ! तुम इन्द्र, विष्णु आदि सभी तैंतीस देवोंके साथ हमारे पास आओ, तथा बलवान् बनकर स्तोताओंकी प्रार्थना सुनो ॥ १३-१४-१५ ॥

७९७ ब्रह्मं जिन्वतमुत जिन्वतं धियों हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १६ ॥
७९८ क्षत्रं जिन्वतमुत जिन्वतं नॄन् हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १७ ॥
७९९ धेनूर्जिन्वतमुत जिन्वतं विशों हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १८ ॥
८०० अत्रेरिव शृणुतं पूर्व्यस्तुतिं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाऽश्विना तिरोअह्न्यम् ॥ १९ ॥
८०१ सर्गाँ इव सृजतं सुष्टुतीरुपं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाऽश्विना तिरोअह्न्यम् ॥ २० ॥

अर्थ — [७९७] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (रक्षांसि हतं) राक्षसोंका वध करो, (अमीवाः सेधतं) रोगोंको दूर करो, (ब्रह्म जिन्वतं) ज्ञानको संतुष्ट रखो, (उत धियः जिन्वतं) और कार्यको संतुष्ट रखो, (सजोषसा) एक साथ रहनेवाले देवो ! तुम (उषसा सूर्येण च) उषा और सूर्यके साथ (सोमं सुन्वतः) सोम निचोडनेवालेके पास जाकर सोमपान करो ॥ १६ ॥

[७९८] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (रक्षांसि हतं) राक्षसोंका वध करो, (अमीवाः सेधतं) रोगोंको दूर करो (क्षत्रं जिन्वतं) क्षात्र तेजको संतुष्ट रखो, (उत) और (नॄन् जिन्वतं) नेतृत्वके गुणोंको संतुष्ट रखो । (सजोषसा) एक साथ रहनेवाले देवो ! तुम (उषसा सूर्येण च) उषा और सूर्यके साथ (सोमं सुन्वतः) सोमको निचोडनेवालेके पास जाओ ॥ १७ ॥

[७९९] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! तुम (रक्षांसि हतं) राक्षसोंको मारो, (अमीवाः सेधतं) रोगोंको दूर करो, (धेनूः जिन्वतं) गायोंको पुष्ट करो, (उत) और (विशः जिन्वतं) प्रजाओंको पुष्ट करो । हे (सजोषसा) एक साथ रहनेवाले देवो ! तुम (उषसा सूर्येण च) उषा और सूर्यके साथ (सोमं सुन्वतः) सोम निचोडनेवालेके पास जाओ ॥ १८ ॥

[८००] हे (मदच्युता अश्विना) शत्रुओंके गर्वको नष्ट करनेवाले अश्विदेवो ! (सुन्वतः श्यावाश्वस्य) सोमरस निचोडकर तैय्यार करते हुए श्यावाश्वकी (पूर्व्यस्तुतिं) प्रथम स्तुतिको (अत्रेः इव) जैसे तुम अत्रिकी प्रशंसाको सुन चुके थे, वैसेही (शृणुतं) सुनो ! (सजोषसौ) एक साथ रहनेवाले तुम दोनों (तिरः अन्ह्यं) कल तैय्यार किए गए सोमका (उषसा सूर्येण च) उषा और सूर्यके साथ पान करो ॥ १९ ॥

[८०१] हे (मदच्युता) शत्रुओंके गर्वका हरण करनेवाले अश्विदेवो ! (सुन्वतः श्यावाश्वस्य) सोमरस निचोडकर तैय्यार करते हुए श्यावाश्वकी (सुस्तुतिः उत्तम स्तुतिको, सर्गान् इव उप सृजतं) समीप आकर देवोंके समान दान दो । (सजोषसा) एक साथ रहनेवाले तुम दोनों (उषसा सूर्येण) उषा और सूर्यके साथ (तिरः अह्न्यं) कल तैय्यार किए गए सोमरसोंको पीओ ॥ २० ॥

भावार्थ — हे अश्विदेवो ! तुम मनुष्योंके रोगोंको दूर करके उनके ज्ञान, कार्य, क्षात्र तेज, नेतृत्वशक्ति, गौ आदि प्राणियों तथा उनके पुत्र पौत्रादिकोंको पुष्ट करो ॥ १६-१८ ॥

८०२ रश्मीँरिव यच्छतमध्वराँ उप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाऽश्विना तिरोअह्न्यम् ॥ २१ ॥

८०३ अर्वाग् रथं नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ २२ ॥

८०४ नमोवाके प्रस्थिते अध्वरे नरा विवक्षणस्य पीतये ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ २३ ॥

८०५ स्वाहाकृतस्य तृम्पतं सुतस्य देवावन्धसः ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ २४ ॥

अर्थ— [८०२] हे (मदच्युता) शत्रुओंके गर्वको नष्ट करनेवाले अश्विदेवो ! (सुन्वतः श्यावाश्वस्य) सोम निचोडनेवाले श्यावाश्वके (अध्वरान् उप) यज्ञोंको समीपसे (रश्मीन् इव यच्छतं) लगामके समान (यच्छतं) नियंत्रित करो । (सजोषसा) एक साथ रहनेवाले तुम दोनों (उषसा सूर्येण) उषा और सूर्यके साथ (तिरः अह्न्यं) कल तैय्यार किए गये सोमका पान करो ॥ २१ ॥

[८०३] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (आ यातं आ गतं) तुम आओ, चले आओ, (अहं अवस्युः) मैं रक्षणार्थी होकर (वां हुवे) तुम्हें बुलाता हूँ, (रथं) अपने रथको (अर्वाक् नि यच्छतं) हमारी ओर हांको, (सोम्यं मधु पिबतं) सोमरस मिलाये हुए मधुका पान करो तथा (दाशुषे रत्नानि धत्तं) दाताको रत्न प्रदान करो ॥ २२ ॥

[८०४] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! तुम (आ यातं आ गतं) आओ और चले आओ, (अहं अवस्युः) मैं रक्षणार्थी होकर (वां हुवे) तुम्हें बुलाता हूं । (विवक्षणस्य प्रस्थिते) विशेष ढंगसे हवि देनेवालेके द्वारा किए जानेवाले (नमोवाके अध्वरे) नमन तथा हिंसारहित कार्यमें (पीतये) सोमरस पीनेके लिए (नरा) हे नेता अश्विदेवो ! आओ तथा (दाशुषे रत्नानि धत्तं) दाताको रत्न प्रदान करो ॥ २३ ॥

[८०५] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (आ यातं आ गतं) आओ और अवश्य आओ, (अहं अवस्युः) मैं रक्षणार्थी होकर (वां हुवे) तुम्हें बुलाता हूं, (स्वाहाकृतस्य सुतस्य अन्धसः) हवन किए तथा निचोडे हुए अन्न रसका पान करके (देवौ तृम्पतं) दानी तुम तृप्त होओ, इसके बाद (दाशुषे रत्नानि धत्तं) दानीके लिए रत्न दो ॥ २४ ॥

भावार्थ— शत्रुओंके गर्वको नष्ट करनेवाले अश्विदेवो ! तुम सोमरस निचोडते हुए स्तोताकी स्तुति सुनकर उसके पास आओ और उसके यज्ञको उत्तम रीतिसे चलाकर उसे देवोंके समान भरपूर ऐश्वर्य प्रदान करो ॥ १९-२१ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम दोनो हमारे पास आओ, तथा यज्ञमें डाले गए अन्नरूप सोमरसका पान करके तृप्त होओ । हम तुमसे रक्षण चाहते हैं, अतः तुम हमारे इस हिंसारहित यज्ञमें आओ और तुम हमें रत्न आदि ऐश्वर्य दो ॥ २२-२४ ॥

[३६]

(ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवता:- इन्द्रः । छन्दः- शाक्वरी, ७ महापङ्क्तिः ।)

८०६ अवितासि सुन्वतो वृक्तबर्हिषः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ १ ॥

८०७ प्राव स्तोतारं मघवन्नव त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ २ ॥

८०८ ऊर्जा देवाँ अवस्योजसा त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ३ ॥

---

[३६]

अर्थ— [८०६] हे (शतक्रतो) सैकडों शुभकर्म करनेवाले इन्द्र ! तू (सुन्वतः वृक्तबर्हिषः अविता असि) सोम निचोडनेवालोंका और आसन फैलानेवालोंकी रक्षा करनेवाला है ; इसलिए तू (मदाय) आनन्दके लिए (कं सोमं पिब) सुखकारक सोमको पी । हे (सत्पते इन्द्र) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (यं भागं आधारयन्) सोमका जो भाग निश्चित कर दिया गया है, उसे (विश्वाः पृतनाः सेहानः) सम्पूर्ण शत्रुकी सेनाको हरानेवाला, (उरुज्रयः) सर्वत्र फैलनेवाला (सं अप्सुजित्) पानियोंको जीतनेवाला तथा (मरुत्वान्) मरुतोंके साथ तू पी ॥ १ ॥

[८०७] हे (शतक्रतो) सैकडों शुभकर्म करनेवाले तथा (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तू (स्तोतारं अव अव) स्तोताकी रक्षा कर, तथा (मदाय सोमं पिब) आनन्दके लिए सोम पी, यह सोम (त्वां कं) तुझे सुखकर हो । हे (सत्पते इन्द्र) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (यं भागं आधारयन्) सोमका जो भाग निश्चित कर दिया गया है, उसे (विश्वाः पृतनाः सेहानः) सब शत्रुसेनाको जीतनेवाला, (उरुज्रयः) सर्वत्र फैलनेवाला (अप्सु जित्) जलोंको जीतनेवाला तथा (मरुत्वान्) मरुतोंके साथ तू पी ॥ २ ॥

[८०८] हे (शतक्रतो) सैकडों यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! तू (ओजसा ऊर्जा देवान् अवसि) ओजसे और बलसे देवोंकी रक्षा करता है । अतः तू (मदाय सोमं पिब) आनन्दके लिए सोम पी, यह सोम (त्वां कं) तेरे लिए सुखकर हो । हे (सत्पते इन्द्र) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (यं भागं अधारयन्) जो भाग निश्चित कर दिया गया है, उसे (विश्वाः पृतनाः सेहानः) सम्पूर्ण शत्रुसेनाको हरानेवाला, (उरुज्रयः) सर्वत्र फैलनेवाला (अप्सुजित्) जलोंको जीतनेवाला तथा (मरुत्वान्) मरुतोंके साथ तू पी ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू सोम निचोडने तथा यज्ञ करनेवालोंकी रक्षा करनेवाला है । तू सज्जनोंकी रक्षा करनेवाला है । अतः तू मरुतोंके साथ सोमरसके दिए हुए भागको पी ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तू अपने सामर्थ्यसे स्तोताओंकी और देवोंकी रक्षा करनेवाला है । अतः तुझे हम सोमरसका भाग देते हैं, तू उसे पी ॥ २-३ ॥

×

८०९ जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजि न्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ४ ॥
८१० जनिताश्वानां जनिता गवामसि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजि न्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ५ ॥
८११ अत्रीणां स्तोममद्रिवो महस्कृधि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजि न्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ६ ॥
८१२ श्यावाश्वस्य सुन्वत स्तथा शृणु यथाशृणो रत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र ब्रह्माणि वर्धयन् ॥ ७ ॥

अर्थ— [८०९] हे (शतक्रतो) सैंकडों यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! तू (दिवः जनिता) द्युलोकको पैदा करनेवाला तथा (पृथिव्याः जनिता) पृथ्वीको उत्पन्न करनेवाला है, इसलिए तू (मदाय कं सोमं पिब) आनन्दके लिए सुखदायक सोमको पी । (हे सत्पते इन्द्र) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (ते) तेरे लिए सोमका (यं भागं अधारयन्) जो भाग निश्चित कर दिया गया है, उसे (विश्वाः पृतनाः सेहानः) सम्पूर्ण शत्रुसेनाको हरानेवाला (उरुज्रयः) सर्वत्र फैलनेवाला (सं अप्सुजित्) जलोंको जीतनेवाला तथा (मरुत्वान्) मरुतोंसे युक्त तू पी ॥ ४ ॥

[८१०] हे (शतक्रतो) सैंकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! तू (अश्वानां जनिता गवां जनिता असि) घोडोंको और गायोंको उत्पन्न करनेवाला है । तू (मदाय कं सोमं पिब) आनन्दके लिए सुखकारी सोमको पी । (हे सत्पते इन्द्र) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (ते) तेरे लिए सोमका (यं भागं अधारयन्) जो भाग निश्चित कर दिया गया है, उसे (विश्वाः पृतनाः सेहानः) सब शत्रुसेनाको जीतनेवाला, (उरुज्रयः) सर्वत्र फैलनेवाला (सं अप्सुजित्) जलोंके स्थानको जीतनेवाला और (मरुत्वान्) मरुतोंके साथ तू पी ॥ ५ ॥

[८११] हे (अद्रि-वः शतक्रतो) वज्रधारी तथा सैंकडों यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! तू (अत्रीणां स्तोमं महः कृधि) अत्रि ऋषियोंके स्तोत्रको महान् कर और (मदाय कं सोमं पिब) आनन्दके लिए सुखदायक सोम पी । हे (सत्पते इन्द्र) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (ते) तेरे लिए सोमका (यं भागं अधारयन्) जो भाग निश्चित कर दिया गया है, उसे (विश्वाः पृतनाः सेहानः) सम्पूर्ण शत्रुसेनाको हरानेवाला, (उरुज्रयः) बडा पराक्रम करनेवाला (सं अप्सुजित्) जलोंके स्थानको जीतनेवाला तथा (मरुत्वान्) मरुतोंके साथ तू पी ॥ ६ ॥

[८१२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तूने (कर्माणि कुर्वतः) यज्ञ कर्मोंको करते हुए (अत्रेः यथा अशृणोः) अत्रि ऋषिकी प्रार्थनाको जिस प्रकार सुना था, उसी प्रकार (सुन्वतः श्यावाश्वस्य) सोम निचोडते हुए श्यावाश्वकी प्रार्थना सुन । हे इन्द्र ! तूने (नृषाह्ये) युद्धमें (एकः इत्) अकेलेही (ब्रह्माणि वर्धयन्) ज्ञानोंको बढाते हुए (त्रसदस्युं आविथ) त्रसदस्युकी रक्षा की थी ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! द्यु, पृथिवी आदि लोक तथा गाय, घोडे आदि पशुओंको तू उत्पन्न करनेवाला है, अतः तू हमारे यज्ञमें आकर आनन्दित हो ॥ ४-५ ॥

हे वज्रधारी तथा अनेकों उत्तम यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! तू अत्रि ऋषियोंके स्तोत्रोंके महत्त्वको बढा, उसी तरह अन्य ऋषियोंकी प्रार्थनाओंको भी सुन तथा हमारे ज्ञानको बढाते हुए दस्युओंको त्रास देनेवालेकी तू रक्षा कर ॥ ६-७ ॥

[३७]

(ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः। देवता:- इन्द्रः। छन्दः- महापङ्क्तिः, १ अतिजगती।)

८१३ प्रेदं ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथ प्र सुन्वतः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ १ ॥

८१४ सेहान उग्र पृतना अभि द्रुहः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ २ ॥

८१५ एकराळस्य भुवनस्य राजसि शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ ३ ॥

८१६ सस्थावाना यवयसि त्वमेक इच्छचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ ४ ॥

---

[३७]

अर्थ— [८१३] हे (शचीपते इन्द्र) शक्तियोंके स्वामिन् इन्द्र ! तूने (वृत्रतूर्येषु) युद्धोंमें (इदं ब्रह्म) इस स्तोत्र बोलनेवालेका तथा (सुन्वतः) सोम यज्ञ करनेवालेको (विश्वाभिः ऊतिभिः) सम्पूर्ण रक्षणके साधनोंसे (आविथ) रक्षा की। हे (अनेद्य, वज्रिवः वृत्रहन्) अनिंद्य, वज्रधारिन् और वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (माध्यन्दिनस्य सवनस्य) माध्यन्दिन सवनके (सोमस्य पिब) सोमको पी ॥ १ ॥

[८१४] हे (उग्र शचीपते) वीर और शक्तियोंके स्वामिन् तथा (अनेद्य, वज्रिवः वृत्रहन्) अनिन्द्य, वज्रधारी और वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) सम्पूर्ण संरक्षणके साधनोंसे (द्रुहः पृतनाः सेहानः) शत्रुकी सेनाको हराते हुए (माध्यन्दिनस्य सवनस्य सोमस्य पिब) माध्यन्दिन सवनके सोमको पी ॥ २ ॥

[८१५] हे (शचीपते इन्द्र) शक्तियोंके स्वामिन् इन्द्र ! तू (अस्य भुवनस्य) इस भुवनका (एकराट् राजसि) एक राजाके रूपमें सुशोभित होते हो। हे (अनेद्य, वज्रिवः, वृत्रहन्) अनिन्द्य, वज्रधारी और वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) सम्पूर्ण संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर (माध्यन्दिनस्य सवनस्य) माध्यन्दिन सवनके (सोमस्य पिब) सोमको पी ॥ ३ ॥

[८१६] हे (शचीपते इन्द्र) शक्तियोंके स्वामिन् इन्द्र ! (त्वं एकः इत्) तू अकेलाही (सस्थावाना यवयसि) एक साथ जुडे हुए शत्रुके लोगोंको पृथक् करता है। हे (अनेद्य, वज्रिवः, वृत्रहन्) अनिन्द्य, वज्रधारिन्, वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब संरक्षणके साधनोंके साथ (माध्यन्दिनस्य सवनस्य) माध्यन्दिन सवनके (सोमस्य पिब) सोमको पी ॥ ४ ॥

१ त्वं एकः सस्थावाना यवयसि— तू अकेला संघटित रहे शत्रुओंको विभक्त करता है। शत्रुको निर्बल करनेकी यह युक्ति है।

२ विश्वाभिः ऊतिभिः— सब संरक्षणके साधन अपने पास सुरक्षित रखना।

भावार्थ— हे इन्द्र ! तूने शत्रुओंके साथ होनेवाले युद्धोंमें इस स्तोत्रको बोलनेवाले तथा यज्ञ करनेवालेकी रक्षा की थी, अतः तू अपने शस्त्रोंसे सभी शत्रुओंको हटाते हुए हमारे द्वारा दिए गए सोमरसको पी ॥ १-२ ॥

हे इन्द्र ! तू इस सम्पूर्ण विश्वका अकेलाही स्वामी है, तू अकेला होते हुए अच्छी तरहसे संघटित हुए शत्रुओंको छिन्न-भिन्न कर देता है। अतः हमारी रक्षाके लिए तू सोम पीकर पुष्ट हो ॥ ३-४ ॥

८१७ क्षेमस्य च प्रयुजश्च त्वमीशिषे शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ ५ ॥
८१८ क्षत्राय त्वमवसि न त्वमाविथ शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ ६ ॥
८१९ श्यावाश्वस्य रेभत स्तथा शृणु यथाशृणो रत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र क्षत्राणि वर्धयन् ॥ ७ ॥

[३८]

(ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवताः- इन्द्राग्नी । छन्दः- गायत्री ।)

८२० यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ १ ॥

अर्थ— [८१७] हे (शचीपते इन्द्र) शक्तियोंके स्वामिन् इन्द्र ! (त्वं) तू ही (क्षेमस्य प्रयुजः च ईशिषे) प्राप्त और अप्राप्त धनों पर स्वामित्व करता है । हे (अनेद्य, वज्रिवः, वृत्रहन्) अनिन्द्य, वज्रधारिन् और वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर (माध्यंदिनस्य सवनस्य) माध्यंदिन सवनके (सोमस्य पिब) सोमको पी ॥ ५ ॥

[८१८] हे (शचीपते इन्द्र) शक्तियोंके स्वामिन् इन्द्र ! (त्वं क्षत्राय अवसि) तू बलके लिए जगत्का रक्षण करता है, पर (त्वं) तू स्वयं (न आविथ) किसीसे रक्षित नहीं होता । हे (अनेद्य, वज्रिवः वृत्रहन्) अनिंद्य, वज्रधारिन्, वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) सम्पूर्ण संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर (माध्यंदिनस्य सवनस्य) माध्यंदिन सवनके (सोमस्य पिब) सोमको पी ॥ ६ ॥

१ त्वं क्षत्राय अवसि– तू क्षात्र तेजका रक्षण करता है ।

२ त्वं न आविथ– तू किसीसे रक्षित नही होता अर्थात् तू स्वयं सुरक्षित रहता है ।

३ विश्वाभिः ऊतिभिः– तू सब रक्षणके साधनोंसे युक्त हो ।

[८१९] हे इन्द्र ! तूने (कर्माणि कृण्वतः) कर्मोंको करते हुए (अत्रेः यथा अशृणोः) अत्रि ऋषिकी प्रार्थनाको जिस प्रकार सुना, (तथा) उसी प्रकार (रेभतः श्यावाश्वस्य) स्तुति करनेवाले श्यावाश्वकी प्रार्थना (शृणु) सुन । हे इन्द्र ! तूने (नृषाह्ये) युद्धमें (एकः इत्) अकेलेही (क्षत्राणि वर्धयन्) क्षात्रोंको बढाते हुए (त्रसदस्युं आविथ) त्रसदस्युकी रक्षा की थी ॥ ७ ॥

[३८]

[८२०] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (सस्नी) शुद्ध और पवित्र तुम दोनों (यज्ञस्य हि ऋत्विजा स्थः) यज्ञके ऋत्विज हो, अतः (वाजेषु कर्मसु) यज्ञादिक कर्मोंमें तुम जाओ, तथा (तस्य बोधतं) उस मेरी अभिलाषाको तुम जानो ॥ १ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जो धन हमें प्राप्त है, और जो प्राप्त नहीं है, उन सब धनोंका तू अकेलाही स्वामी है, । तू क्षात्र तेजकी रक्षा करनेवाला है, पर तू स्वयं सुरक्षित है अर्थात् तू दूसरोंकी रक्षा तो करता है, पर अपनी रक्षाके लिए तुझे किसी दूसरेके मददकी जरूरत नहीं होती, तू स्वसामर्थ्यसेही अपनी रक्षा कर लेता है ॥ ५–६ ॥

हे इन्द्र ! तूने उत्तम कर्मोंको करते हुए जिस प्रकार अत्रि ऋषिकी रक्षा की थी, उसी तरह तू उत्तम बोलोंको रखनेवाले वीरकी रक्षा कर तथा बुलाये जाने पर तू युद्धमें दस्युओंको नष्ट करनेवाले वीरकी रक्षा कर ॥ ७ ॥

८२१ तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ २ ॥
८२२ इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ ३ ॥
८२३ जुषेथां यज्ञमिष्टये सुतं सोमं सधस्तुती । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ४ ॥
८२४ इमा जुषेथां सवना येभिर्हव्यान्यूहथुः । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ५ ॥
८२५ इमां गायत्रवर्तनिं जुषेथां सुष्टुतिं मम । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ६ ॥
८२६ प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसू । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ७ ॥
८२७ श्यावाश्वस्य सुन्वतोऽत्रीणां शृणुतं हवम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ८ ॥

अर्थ— [८२१] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! तुम दोनों (तोशासा) शत्रुओंके विनाशक (रथयावाना) रथोंसे जानेवाले (वृत्रहणा) वृत्रोंको नष्ट करनेवाले पर स्वयं (अपराजित) पराजित न होनेवाले हो, वे तुम (तस्य बोधतं) उस मेरी अभिलाषाको जानो ॥ २ ॥

[८२२] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि (वां) तुम दोनोंके लिए (नरः) यज्ञकर्ताओंने (अद्रिभिः) पत्थरोंसे (इदं मदिरं मधु) इस आनन्ददायक मधुर सोमरसको (अधुक्षन्) निकाला है, तुम दोनों (तस्य) उस यज्ञ कर्ताके मनोरथको (बोधतं) समझो ॥ ३ ॥

[८२३] हे (सधस्तुती नरा इन्द्राग्नी) एक साथ बैठकर स्तुति सुननेवाले नेता इन्द्र और अग्नि ! (इष्टये यज्ञं जुषेथां) हमारी अभिलाषाको पूरा करनेके लिए हमारे यज्ञमें आओ, तथा (सुतं सोमं आ गतं) निचोडे हुए सोमको प्राप्त करो ॥ ४ ॥

[८२४] हे (नरा इन्द्राग्नी) नेता इन्द्र और अग्नि ! (येभिः हव्यानि ऊहथुः) जिन सामर्थ्योंसे तुम हवियोंको ले जाते हो, उन्हीं सामर्थ्योंसे (इमा सवनानि जुषेथां) इन यज्ञोंका सेवन करो, तथा (आ गतं) हमारे यज्ञोंमें पधारो ॥ ५ ॥

[८२५] हे (नरा इन्द्राग्नी) नेता इन्द्र और अग्नि ! (मम गायत्रवर्तनिं) मेरी गायत्री छन्दवाली (इमां सुस्तुतिं) इस उत्तम स्तुतिको (जुषेथां) तुम सुनो और (आ गतं) हमारे पास आओ ॥ ६ ॥

[८२६] हे (जेन्यावसू इन्द्राग्नी) शत्रुओंके धनोंको जीतनेवाले इन्द्र और अग्ने ! (प्रातः यावभिः देवेभिः) प्रातःकाल आनेवाले देवोंके साथ (सोमपीतये आ गतं) सोमपान करनेके लिए आओ ॥ ७ ॥

[८२७] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (सुन्वतः श्यावाश्वस्य) सोम निचोडनेवाले श्यावाश्वकी तथा (अत्रीणां शृणुतं हवं) अत्रि ऋषियोंके पुकारको सुनो तथा (सोमपीतये) सोमपान करनेके लिए आओ ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और अग्नि ! यज्ञोंको करनेवाले तुम दोनों यज्ञादिक कर्मोंमें आओ, तथा मेरी अभिलाषाको जानकर उसे पूरा करो ॥ १-२ ॥

हे देवो ! तुम दोनोंके लिए हमने यह सोमरस निकाला है, तुम उसे पीओ और हमारी अभिलाषाको पूरा करनेके लिए हमारे यज्ञमें आओ ॥ ३-४ ॥

हे देवो ! जिन सामर्थ्योंसे तुम हविको ले जाते हो, उन्हीं सामर्थ्योंसे तुम हमारे यज्ञोंमें आकर हमारी स्तुतियोंको सुनो ॥ ५-६ ॥

हे देवो ! प्रातःकाल आनेवाले देवोंके साथ तुम सोमपान करनेके लिए आओ तथा ऋषियोंकी प्रार्थनाओंको सुनो ॥ ७-८ ॥

८२८ एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ९ ॥
८२९ आहं सरस्वतीवतो-रिन्द्राग्न्योरवो वृणे । याभ्यां गायत्रमृच्यते ॥ १० ॥

[३९]

(ऋषिः- नाभाकः काण्वः । देवताः- अग्निः । छन्दः- महापङ्क्तिः ।)

८३० अग्निमस्तोष्यृग्मिय-मग्निमीळा यजध्यै ।
अग्निर्देवाँ अनक्तु न उभे हि विदथे कवि-
-रन्तश्चरति दूत्यं नभन्तामन्यके समे ॥ १ ॥
८३१ न्यग्ने नव्यसा वच-स्तनूषु शंसमेषाम् ।
न्यराती रराव्णां विश्वा अर्यो अराती-
-रितो युच्छन्त्वामुरो नभन्तामन्यके समे ॥ २ ॥

अर्थ- [८२८] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्ने ! (सोमपीतये) सोमपान करनेके लिए (यथा मेधिराः अहुवन्त) जिस तरह तुम्हें ज्ञानियोंने बुलाया था, (एवा) इसी तरह मैं (ऊतये वां अह्वे) अपनी रक्षाके लिए तुम्हें बुलाता हूँ ॥ ९ ॥

[८२९] (याभ्यां गायत्रं ऋच्यते) जिन देवोंको गायत्री छन्दवाले मंत्र बोले जाते हैं, उन (सरस्वतीवतोः इन्द्राग्न्योः) ज्ञानसे युक्त इन्द्र और अग्निके (अवः अहं वृणे) संरक्षणको मैं चाहता हूँ ॥ १० ॥

[३९]

[८३०] मैं (ऋग्मियं अग्निं अस्तोषि) ऋक्मंत्रोंके द्वारा पूजे जाने योग्य इस अग्निकी स्तुति करता हूँ, (यजध्यै अग्निं इळा) यज्ञके लिए भी इसी अग्निकी स्तुतिसे पूजा करता हूँ । यह (अग्निः नः विदथे देवान् अनक्तु) अग्नि हमारे यज्ञमें देवोंको द्रव्योंसे प्रकाशित करे । (कविः उभे अन्तः दूत्यं चरति) दूरदर्शी ज्ञानी मनुष्य और देव इन दोनोंके बीचमें दूतका कार्य करता हुआ विचरण करता है, उससे हमारे (समे अन्यके नभन्तां) अन्य समस्त शत्रुगण नाशको प्राप्त हों ॥ १ ॥

[८३१] हे (अग्ने) अग्ने ! हमारे (तनूषु एषां शंसं नव्यसा वचः नि) शरीरमें स्थिर हुए हुए इन शत्रुओंके प्रहारको अभिनव शस्त्रों द्वारा विनष्ट कर (च रराव्णां अरातीः नि) और दानशीलोंके बीचमें जो अदानशील हैं उन सबोंको नष्ट कर । हम पर (विश्वाः अर्याः आमुरः अरातीः इतः नि युच्छन्तु) आक्रमण करनेवाले सभी मूढ या हिंसक शत्रु यहाँसे दूर हो जावें । तथा (समे अन्यके नभन्तां) समस्त अन्य दुष्टाचारी लोग भी नष्ट हो जायँ ॥ २ ॥

१ तनूषु एषां नि- शरीरोंमें रहनेवाले इन रोगजन्तुरूप शत्रुओंका नाश हो जाए ।
२ रराव्णां अरातीः नि- दानशीलोंके बीचमें रहनेवाले अदानी नष्ट हो जायें ।

भावार्थ- हे देवो ! जिस तरह तुम्हें ज्ञानी बुलाते हैं, उसी तरह मैंने भी गायत्री छन्दोंमें मंत्रोंके द्वारा तुम्हें बुलाया है ॥ ९-१० ॥

राष्ट्रका दूत ऐसा हो जो अपने ज्ञानके द्वारा साधारण जनता और बडे बडे विद्वानोंके बीचमें सम्बन्ध स्थापित कर सके । विद्वानोंका ज्ञान साधारण जनता तक और साधारण जनताकी कठिनाईयां देशके नेताओं तक पहुंचा सके । ऐसे अग्रणी दूतकीही प्रजायें अपनी वाणियोंसे प्रशंसा करती हैं । ऐसा करनेसे राष्ट्रमें एकता होती है, उनके सारे शत्रु नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

इस शरीरमें रोगोंको पैदा करनेवाले अनेक शत्रु हैं, जो (अर्याः) मनुष्यों पर हमला करके उन्हें (आ-मुर) मरणावस्था तक पहुंचा देते हैं । ये शत्रु तभी नष्ट हो सकते हैं, जब शरीरकी अग्नि बलहीन हो । इसी प्रकार राष्ट्र शरीरमें जब विद्वान और वीर आदि अग्रणी बलवान् होते हैं, तब राष्ट्रके सभी शत्रु बलवान् हो जाते हैं । इसके साथही देशकी आर्थिक अवस्था भी सुधरी रहे, इसलिए राष्ट्रमें दानियोंको प्रोत्साहन मिलना चाहिए और जो संचयशीलता या पूंजीवादको बढावा देते हैं, उनका नाश करना चाहिए ॥ २ ॥

८३२ अग्ने मन्मा॑नि॒ तुभ्यं॒ कं घृ॒तं न जु॑ह्व आ॒सनि॑
स दे॒वेषु॒ प्र चि॑किद्धि॒ त्वं ह्यसि॑ पू॒र्व्यः
शि॒वो दू॒तो वि॒वस्व॑तो नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ ३ ॥

८३३ तत्त॑द॒ग्निर्वयो॑ दधे॒ यथा॑यथा कृप॒ण्यति॑ ।
ऊ॒र्जाहु॑ति॒र्वसू॑नां॒ शं च॒ योश्च॒ मयो॑ दधे॒
विश्व॑स्यै दे॒वहू॑त्यै॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ ४ ॥

८३४ स चि॑केत स॒हीय॑सा॒ ऽग्निश्चि॒त्रेण॒ कर्म॑णा ।
स होता॒ शश्व॑तीनां॒ दक्षि॑णाभिर॒भीवृ॑त
इ॒नोति॑ च प्र॒तीव्यं॑१ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ ५ ॥

अर्थ — [८३२] हे (अग्ने) अग्ने ! (तुभ्यं आसनि न कं घृतं मन्मानि जुह्वे) तेरे मुख अर्थात् ज्वालामें मैं जब सुखकारी घृतकी आहुति डालता हुआ मनन करनेयोग्य स्तोत्रोंको बोलता हूँ । (सः प्र चिकिद्धि) वह प्रसिद्ध तू इसको जान । (हि त्वं पूर्व्यः शिवः विवस्वतः दूतः असि) क्योंकि तू पूर्णज्ञानी, कल्याणकारी, विविध वसुओंका स्वामी और देवोंका दूत है । तेरे द्वारा हमारे (समे अन्यके नभन्तां) अन्य समस्त शत्रुगण नाशको प्राप्त हों ॥ ३ ॥

[८३३] (यथा यथा कृपण्यति) जिस जिस प्रकारका अन्न उपासक चाहता है (अग्निः तत्तत् वयः दधे) अग्नि उस उस प्रकारका अन्न उसे प्रदान करता है । (ऊर्जाहुतिः वसूनां शं योः मयः दधे) बलकी आहुति देनेवाला अग्नि देशवासियोंके कल्याणके लिये कल्याणकारी सुख और रोगनाशक पदार्थोंको धारण करता है । (च विश्वस्यै देवहूत्यै, समे अन्यके नभन्तां) और सब देवताओंके यज्ञोंमें बुलाया जानेवाला अग्नि हमारे सब शत्रुओंका संहार करे ॥ ४ ॥

१ ऊर्जाहुतिः वसूनां शं यो मयः दधे- अपने बलकी आहुति देनेवाला अग्रणी वीर अपने देशवासियोंके लिए सुखकारक और रोगनाशक पदार्थ धारण करता है ।

[८३४] (सः अग्निः सहीयसा चित्रेण कर्मणा चिकेत) वह अग्नि, अपने अत्यधिक बलवाले अद्भुत कर्मसे जाना जाता है । (च शश्वतीनां होता सः दक्षिणाभिः अभीवृतः प्रतीव्यं इनोति) और नित्यरूपसे रहनेवाले, देवोंको बुलानेवाला वह अग्नि अपनी बलवती शक्तियोंसे घिरा हुआ होकर आक्रमण करने योग्य शत्रुतक पहुँचता है । और अपने (समे अन्यके नभन्तां) समस्त छोटे मोटे शत्रुओंका नाश कर देता है ॥ ५ ॥

१ अग्निः सहीयसा कर्मणा चिकेत- वह अग्रणी अपने पराक्रम युक्त कर्मोंके द्वाराही पहचाना जाता है ।

भावार्थ — जो दूत पूर्णज्ञानी कल्याणकारी विविध विविध धनोंका स्वामी और विद्वान् हो, उसे हमेशा घृत आदिसे परिपुष्ट करना चाहिए, ताकि वह देशकी सेवा चिरकालतक कर सके और देशके शत्रुओंका नाश कर सके ॥ ३ ॥

जो अग्रणी देशकी सेवामें अपने बलकी भी आहुति दे देता है, अर्थात् जो तन, मन, धनसे देशकी सेवा करता है, वह देशको हर प्रकारके रोगोंसे दूर रखकर सदा खुशहाल और समृद्ध रखता है । तथा देशमें जिस प्रकारके अन्नोंकी आवश्यकता होती, वैसा वैसा धान्य वह उत्पन्न करता है ॥ ४ ॥

किसी भी राष्ट्रका नेता अपने पराक्रमसे युक्त कर्मोंके कारणही प्रजाओंमें प्रसिद्ध होता है । और तभी वह अपनी शक्तियोंसे युक्त होकर अपने शत्रुओंको परास्त करता है ॥ ५ ॥

८३५ अग्निर्जाता देवाना॑म॒ग्निर्वे॑द॒ मर्ता॑नामपी॒च्य॑म् ।
अ॒ग्निः स द्र॑विणो॒दा अ॒ग्निर्द्वारा॒ व्यू॑र्णुते
स्वा॑हुतो॒ नवी॑यसा॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ ६ ॥

८३६ अ॒ग्निर्दे॒वेषु॒ संव॑सुः॒ स वि॒क्षु य॒ज्ञिया॒स्वा ।
स मु॒दा काव्या॑ पु॒रु विश्वं॒ भूमे॑व पुष्यति
दे॒वो दे॒वेषु॑ य॒ज्ञियो॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ ७ ॥

८३७ यो अ॒ग्निः स॒प्तमा॑नुषः श्रि॒तो विश्वे॑षु॒ सिन्धु॑षु ।
तमाग॑न्म त्रि॒प॒स्त्यं॑ म॑न्धा॒तुर्द॑स्यु॒हन्त॑म॒—
—म॒ग्निं य॒ज्ञेषु॑ पू॒र्व्यं॑ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ ८ ॥

अर्थ— [८३५] (अग्निः देवानां जाता) अग्नि देवोंके जन्मोंको जानता है। (अग्निः मर्तानां अपीच्यं वेद) अग्नि मनुष्योंके रहस्योंको जानता है। इसी प्रकार (सः अग्निः द्रविणोदाः) वह अग्नि ऐश्वर्यका देनेवाला है। तथा (अग्निनवीयसा सु आहुतः द्वारा व्यूर्णुते) अग्नि नये नये मन्त्रादि द्वारा अच्छी प्रकार आहुत होकर धनके द्वारोंको खोल देता है। ऐसे गुणोंवाले अग्निके (समे अन्यके नभन्तां) समस्त शत्रु नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

१ अग्निः मर्तानां अपीच्यं वेद– अग्नि मनुष्योंके रहस्योंको जानता है।

[८३६] (अग्निः देवेषु संवसुः) अग्नि देवोंके मध्यमें अच्छी प्रकार निवास करता है। (सः यज्ञियासु विक्षु) वह यज्ञ करनेवाले प्रजाओंके बीच यज्ञाग्निके रूपमें विद्यमान रहता है। (सः भूम विश्वं इव मुदा पुरुकाव्या पुष्यति) वह, भूमि जैसे विश्वको पुष्ट करती है, उसी तरह अति प्रसन्नतापूर्वक बहुतसे योग्य कार्योंको पूर्णरूपसे पुष्ट करता है। इस लिये (देवेषु देवः यज्ञियः) देवोंके मध्यमें दिव्यगुण युक्त अग्नि पूजाके योग्य होता है। ऐसे गुणोंसे युक्त अग्निके (समे अन्यके नभन्तां) समस्त शत्रुनाशको प्राप्त हों ॥ ७ ॥

१ मुदा पुरुकाव्या पुष्यति, देवेषु यज्ञियः– जो प्रसन्नतासे उत्तम कार्योंको करता है, वह देवोंमें पूज्य होता है।

[८३७] (यः अग्निः सप्तमानुषः विश्वेषु सिन्धुषु श्रितः) जो अग्नि सात होताओं और समस्त नदियोंमें विद्यमान रहता है, तथा (त्रिपस्त्यं, मन्धातुः) भूमि, अन्तरिक्ष द्यौ वा उदर, हृदय और मूर्धा तीनों स्थानोंमें उपस्थित रहता हुआ ज्ञानी जनोंका धारण व रक्षण करता है। ऐसे (दस्युहन्तमं यज्ञेषु पूर्व्यं तं अग्निं आगन्म) अनिष्टकारी दुष्ट जनोंका सर्वोपरिनाशक व यज्ञमें सर्वश्रेष्ठ उस अग्निको हम प्राप्त करें। जिससे हमारे (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त शत्रु नाशको प्राप्त हों ॥ ८ ॥

भावार्थ— यह अग्नि मनुष्योंके सब जन्मोंको और उनके सब रहस्योंको जानता है। इसलिए उससे छिपकर कुछ भी काम नहीं किया जा सकता। मनमें सोची हुई बुरी बातको भी वह जान जाता है। इसीलिए जो उपासक उससे डरते हुए उसको आहुति प्रदान करते हैं, उनके लिए वह धनके द्वार खोल देता है और उनके सब शत्रुओंको नष्ट कर देता है ॥ ६ ॥

यह अग्नि देवोंमें अच्छी प्रकार निवास करता है। यज्ञ करनेवाले पुरुषोंके बीचमें वह यज्ञाग्निके रूपमें रहता है। जो ज्ञानी जन इस अग्निको प्रसन्न करना जानते हैं, उनके शरीरमें यह अग्नि प्रसन्नतासे रहता है। जो मनुष्य हर कामको प्रसन्नतासे करता है, रो रोकर नहीं, वह सब ज्ञानियोंमें पूजा जाता है और उसी परिश्रमीके सब शत्रु नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

यह अग्नि सभी नदियोंमें निवास करता है। तथा तीनों लोकोंमें रहनेवाला यह अग्नि ज्ञानी जनोंकी रक्षा करके उनका पालनपोषण करता है। वह शत्रुओंका अतिशय विनाशक है, इसीलिए यह अत्यन्त पूज्य है। जो अग्रणी अपने शत्रुओंका विनाश करता है, वह सर्वत्र पूजा जाता है ॥ ८ ॥

८३८ अग्निस्त्रीणि त्रिधातून्या क्षेति विदथा कविः ।
स त्रीँरेकादशाँ इह यक्षच्च पिप्रयच्च नो
विप्रो दूतः परिष्कृतो नभन्तामन्यके समे ॥ ९ ॥

८३९ त्वं नो अग्न आयुषु त्वं देवेषु पूर्व्य वस्व एक इरज्यसि ।
त्वामापः परिस्रुतः परि यन्ति स्वसेतवो नभन्तामन्यके समे ॥ १० ॥

[४०]

(ऋषिः- नाभाकः काण्वः । देवताः- इन्द्राग्नी । छन्दः- महापंक्तिः, २ शक्वरी, १२ त्रिष्टुप् ।)

८४० इन्द्राग्नी युवं सु नः सहन्ता दासथो रयिम् ।
येन दृळ्हा समत्स्वा वीळु चिद् साहिषीमह्य-
-ग्निर्वनेव वात इ-न्नभन्तामन्यके समे ॥ १ ॥

अर्थ— [८३८] (कविः अग्निः त्रीणि विदथा त्रि धातूनि आ क्षेति) दूरदर्शी अग्नि तीनों तैजस् रूपसे तीनों जानने योग्य स्थानोंमें रहता है, निवास करता है। (दूतः विप्रः सः परिष्कृतः इह यक्षत्) देवोंका दूत बुद्धिमान् वह अग्नि शुद्ध होकर इस यज्ञमें देवोंको हव्य प्रदान करता है। (च नः पिप्रयत) और हमें भी तृप्त करता है (समे अन्यके नभन्तां) ऐसे अग्निके द्वारा हमारे समस्त शत्रु नाशको प्राप्त हों ॥ ९ ॥

१ विप्रः परिष्कृतः दूतः यक्षत्— ज्ञानी और शुद्ध, पवित्र दूत पूज्य होता है।

[८३९] हे (पूर्व्यः अग्ने) प्राचीन अग्ने ! (त्वं आयुषु एकः नः वस्वः इरज्यसि) तू अकेलाही सब मनुष्योंके ऐश्वर्यका स्वामी है। (देवेषु त्वं) देवोंमें भी तू सबसे बढकर है। (परिस्रुतः स्वसेतवः आपः त्वां परियन्ति) सब ओरसे बहनेवाली स्वयं बद्ध जलधारायें तुझको प्राप्त होती है। इस प्रकारके तुम्हारे द्वारा हमारे (समे अन्यके नभन्तां) समस्त शत्रु नाशको प्राप्त हों ॥ १० ॥

[४०]

[८४०] हे (सहन्ता इन्द्राग्नी) शत्रुओंके संहारक इन्द्र और अग्नि ! (युवं नः सु रयिं दासथः) तुम दोनों हमें उत्तम धन दो (येन) जिस धनकी सहायतासे हम (समत्सु) युद्धोंमें (दळ्हा चित् वीळु) दृढ शत्रुसेनाको भी (वातः अग्निः वना इव) वायु और अग्नि जिस प्रकार वनको नष्ट कर देते हैं, उसी तरह (साहिषीमहि) विनष्ट करें (अन्यके समे नभन्तां) हमारे दूसरे शत्रु स्वयं नष्ट हो जाएं ॥ १ ॥

भावार्थ— यह अग्नि पृथिवीमें भौतिक अग्निके रूपमें, अन्तरिक्षमें विद्युत्के रूपमें और द्युमें सूर्यके रूपमें रहता है। वह शुद्ध और प्रदीप्त होकर देवोंको हवि पहुंचानेका अपना काम मुस्तैदीसे करता है, इसीलिए वह सर्वत्र पूजा जाता है ॥ ९ ॥

मनुष्योंमें जितना ऐश्वर्य है, उन सबका यह अग्नि एकही स्वामी है। इसी कारण देवोंमें भी सर्वोत्तम है। सब ओरसे बहनेवाली नदियां भी इसी अग्निकी सेवा करती हैं ॥ १० ॥

हे इन्द्र अग्नि ! तुम दोनों हमें उत्तम धन दो, ताकि उस धनकी सहायतासे हम दृढसे दृढ शत्रुओंको नष्ट कर सकें और निर्बल शत्रु स्वयं ही नष्ट हो जाएं ॥ १ ॥

+

८४१ नहि वां वव्रयामहे ऽथेन्द्रमिद् यजामहे शविष्ठं नृणां नरम् ।
स नः कदा चिदर्वता गमदा वाजसातये
गमदा मेधसातये नभन्तामन्यके समे ॥ २ ॥
८४२ ता हि मध्यं भराणा-मिन्द्राग्नी अधिक्षितः ।
ता उ कवित्वना कवी पृच्छ्यमाना सखीयते
सं धीतमश्नुतं नरा नभन्तामन्यके समे ॥ ३ ॥
८४३ अभ्यर्च नभाकव-दिन्द्राग्नी यजसा गिरा ।
ययोर्विश्वमिदं जग-दियं द्यौः पृथिवी मह्यु१-
-पस्थे बिभृतो वसु नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥
८४४ प्र ब्रह्माणि नभाकव-दिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत ।
या सप्तबुध्नमर्णवं जिह्मबारमपोर्णुत
इन्द्र ईशान ओजसा नभन्तामन्यके समे ॥ ५ ॥

अर्थ-[८४१] हे इन्द्र और अग्ने! (वां) तुम दोनोंका हम (नहि वव्रयामहे) तिरस्कार नहीं करते, (अथः इत्) अपितु (नृणां नरं) नेताओंमें सर्वोत्तम नेता तथा (शविष्ठं) सर्वश्रेष्ठ बलशाली (इन्द्रं यजामहे) इन्द्रकी पूजा करते हैं। (सः) वह इन्द्र (वाजसातये) अन्न आदि देनेके लिए (अर्वता) घोडेसे (नः कदा आ गमत्) हमारे पास कब आएगा ? (मेधसातये आ गमत्) यज्ञमें उपस्थित रहनेके लिए कब आएगा ? ताकि (अन्यके समे नभन्तां) हमारे दूसरे शत्रु स्वयमेव नष्ट हो जाएं ॥ २ ॥

[८४२] (ता इन्द्राग्नी) वे दोनों इन्द्र और अग्नि (भराणां मध्ये अधिक्षितः) संग्रामके मध्यमें निवास करते हैं। हे (नरा) नेताओ ! (कवित्वना कवी) अपने ज्ञानसे ज्ञानी बने हुए (पृच्छ्यमाना) सबके द्वारा पूछे जानेवाले (ता उ) वे तुम दोनों (सखीयते) तुमसे मित्रता चाहनेवाले अपने उपासकके हितके लिए (धीतं सं अश्नुतं) उसके कर्मको स्वीकार करो तथा (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सब शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ३ ॥

[८४३] हे मनुष्य ! तू (नभाकवत्) नभाक ऋषिके समान (यजसा गिरा) यज्ञ और स्तुतिसे (इन्द्राग्नी अभ्यर्च) इन्द्र और अग्निकी स्तुति कर, (ययोः) जिन देवोंमें (इदं विश्वं जगत्) यह सारा विश्व समाया हुआ है, (इयं मही द्यौः पृथ्वी) यह महान् द्युलोक और पृथिवीलोक समाये हुए हैं, जो दोनों (उपस्थे वसु बिभृतः) अपने पास धनको धारण करते है, उनके कारण (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ४ ॥

[८४४] उपासक (इन्द्राग्निभ्यां) इन्द्र और अग्निके लिए (नभाकवत्) नभाक ऋषिके समान (ब्रह्माणि प्र इरज्यत) स्तोत्रोंको प्रेरित करता है (या) दोनों देवोंने (सप्त बुध्नं जिह्मबारं अर्णवं) सात मूलवाले ढंके हुए द्वारवाले सागरको (अप ऊर्णुत) खोला। (इन्द्रः ओजसा ईशान) इन्द्र अपने ओज और तेजकी सहायतासे सब पर शासन करता है। (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और अग्ने ! हम तुम दोनोंका अपमान कभी न करें, अपितु इन दोनो देवोंकी सदा पूजा करें। वह इन्द्र हमारे पास आए, ताकि हमारे शत्रु स्वयमेव नष्ट हो जाएं ॥ २ ॥

इन्द्र और अग्नि दोनों ही देव सदा युद्धमें निवास करते हैं। सदा शत्रुओंसे युद्ध करते हैं। वे अपने ज्ञानसे ज्ञानी हैं, इसीलिए सब उनकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्र अग्नि इन दोनों देवोंमें यह सारा जगत् समाया हुआ है, ये द्युलोक और पृथ्वीलोक भी समाये हुए हैं। ऐसे इन देवोंकी अर्चना करनी चाहिए ॥ ४ ॥

इन्द्र और अग्नि इन दोनों देवोंने बन्द द्वारवाले सागर रूपी मेघोंके मुंहको खोल दिया, तो पानीकी धारा निकलने लगी। इन दोनों देवोंमें इन्द्र अपने तेजके कारण सब पर शासन करता है ॥ ५ ॥

८४५ अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पितमोजो दासस्य दम्भय ।
वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि भजेमहि नभन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥
८४६ यदिन्द्राग्नी जना इमे विह्वयन्ते तना गिरा ।
अस्माकेभिर्नृभिर्वयं सासह्याम पृतन्यतो
वनुयाम वनुष्यतो नभन्तामन्यके समे ॥ ७ ॥
८४७ या नु श्वेताववो दिव उच्चरात उप द्युभिः ।
इन्द्राग्न्योरनु व्रतमुहाना यन्ति सिन्धवो
यान् त्सीं बन्धादमुञ्चतां नभन्तामन्यके समे ॥ ८ ॥
८४८ पूर्वीष्ट इन्द्रोपमातयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः सूनो हिन्वस्य हरिवः ।
वस्वो वीरस्यापृचो या नु साधन्त नो धियो नभन्तामन्यके समे ॥ ९ ॥

अर्थ— [८४५] हे इन्द्र ! (पुराणवत्) पहलेके समानही तू अब भी (व्रततेः गुष्पितं इव) बेलसे ढकी हुई डालको जिस प्रकार काटते हैं, उसी तरह (अपि) तू भी शत्रुओंको (वृश्च) काट । (दासस्य ओजः दंभय) दासके तेजको नष्ट कर । (वयं) हम (इन्द्रेण) इन्द्रकी सहायतासे (अस्य) इस असुरके द्वारा (संभृतं तत् वसु) छिपाकर रखे हुए उस धनको (विभजेमहिं) प्राप्त करें (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ६ ॥

[८४६] (यत्) जब (इमे जनाः) ये मनुष्य । (तना गिरा) अपने शरीर तथा वाणीसे (इन्द्राग्नी विह्वयन्ते) इन्द्र और अग्निको बुलाते हैं, तब (वयं) हम (अस्माकेभिः नृभिः) अपने वीर सैनिकोंकी सहायतासे (पृतन्यतः सासह्यामः) शत्रुसेनाका पराभव करें । तथा (वनुष्यतः) हमारी भक्ति करनेवालोंकी (वनुयामः) हम भी भक्ति करें । (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ७ ॥

[८४७] (या श्वेतौ) जो सत्त्वगुणसे युक्त इन्द्र और अग्नि (द्युभिः ; अपने तेजोंसे , दिवः अवः) द्युलोकसे नीचे तथा (उप) उसके पास तथा उत्) ऊपर भी (चरतः) संचार करते हैं, (यान् सिन्धवः) जिन नदियोंको इन देवोंने (सीं बन्धात् अमुंच तां) चारों ओरके बंधनसे छुडाया, उन्हीं (इन्द्राग्न्योः) इन्द्र और अग्निके (कर्म अनु) कर्मके अनुसार (उहानाः) हवि देनेवाले यज्ञ कर्ता (यन्ति) चलते हैं । (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ८ ॥

[८४८] हे (हरिवः सूनो इन्द्र) वज्रवाले तथा सर्वोत्पादक इन्द्र ! (हिन्वस्य वीरस्य वस्वः आ पृचः) तू तुझे प्रसन्न करनेवाले वीरको धन प्रदान कर । (ते उपमातयः पूर्वीः) तेरी उपमायें बहुत हैं, (उत) और (प्रशस्तयः पूर्वीः) तेरी प्रशंसायें भी अनेक हैं, (याः नः धियः साधन्त) जिन्होंने हमारी बुद्धियोंको उत्तम बनाया । (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जिस तरह बेलाओंसे अच्छी तरह ढकी हुई डालको भी लोग काटते हैं, उसी तरह तू शक्तिसे अच्छी तरह शक्तिवाले शत्रुको भी काट डाल । इन्द्रकी सहायतासे हम असुरोंके धनको आपसमें बांट लें ॥ ६ ॥

हम अपने तन और मनसे इन्द्र-अग्निकी स्तुति करते हुए अपने वीरोंकी सहायतासे शत्रुओंका पराभव करें, पर जो हमसे प्रेम करते हैं, उनसे हम भी प्रेमपूर्वक व्यवहार करें ॥ ७ ॥

इन्द्र और अग्नि दोनों देव सत्त्वगुणसे युक्त हैं तथा ये द्युलोकमें सर्वत्र संचार करते हैं । ये दोनों देव नदियोंको प्रवाहित होनेके लिए बन्धनसे मुक्त करते हैं ॥ ८ ॥

हे वज्रधारी तथा सर्वोत्पादक इन्द्र ! तू तुझे प्रसन्न करनेवाले वीरको धन प्रदान कर । तेरी उपमायें तथा प्रशंसायें बहुत हैं । तेरी प्रशंसा करनेसे हमारी बुद्धि उत्तम हुई है और हमारे सब शत्रु नष्ट हो गए हैं ॥ ९ ॥

८४९ तं शिशीता सुवृक्तिभि॒स्त्वेषं सत्वा॑नमृग्मिय॑म् ।
उतो नु चिद् य ओज॑सा शुष्ण॑स्याण्डानि॒ भेद॑ति
जेष॒त् स्व॑र्वतीर॒पो नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ १० ॥

८५० तं शि॑शीता स्वध्व॒रं स॒त्यं सत्वा॑नमृत्वि॒यम् ।
उ॒तो नु चि॒द् य ओह॑त आ॒ण्डा शुष्ण॑स्य भेद॒त्यजैः स्व॑र्वतीर॒पो नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ ११ ॥

८५१ ए॒वेन्द्रा॒ग्निभ्यां॑ पितृ॒वन्नवी॑यो मन्धातृ॒वद॑ङ्गिर॒स्वद॑वाचि ।
त्रि॒धातु॑ना॒ शर्म॑णा पातम॒स्मान् व॒यं स्या॑म॒ पत॑यो रयी॒णाम् ॥ १२ ॥

[४१]

(ऋषिः- नाभाकः काण्वः । देवता- वरुणः । छन्दः- महापङ्क्तिः ।)

८५२ अ॒स्मा ऊ॒ षु प्रभू॑तये॒ वरु॑णाय म॒रुद्भ्यो॒ ऽर्चा॑ वि॒दुष्ट॑रेभ्यः ।
यो धी॒ता मानु॑षाणां प॒श्वो गा इ॑व॒ रक्ष॑ति नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ १ ॥

अर्थ—[८४९] (उत) और (यः) जिस इन्द्रने (ओजसा) अपने तेजसे (शुष्णस्य अण्डानि भेदति) शुष्ण असुरकी सन्तानोंको नष्ट किया, तथा (स्वर्वतीः अपः जेषत्) शब्द करनेवाली या सुख देनेवाली नदियोंको जीता, (तं त्वेषं सत्वानं ऋग्मियं) उस तेजस्वी, बलशाली और ऋचाओंके द्वारा स्तुत्य इन्द्रको (सुवृक्तिभिः) उत्तम वचनोंसे (सं शिशीत) उत्तम रीतिसे तेजस्वी करो। (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ १० ॥

[८५०] (उत) और (यः ओहते) जो सर्वत्र संचार करता है, तथा (शुष्णस्य आण्डा भेदति) शुष्ण असुरकी सन्तानोंको नष्ट करता है, (स्वर्वतीः अपः अजैः) सुख देनेवाले जलोंको जीतता है, (तं सु अध्वरं सत्यं सत्वानं ऋग्मियं) उस उत्तम मार्गके प्रदर्शक, अविनाशी, बलशाली और स्तुत्य इन्द्रको (शिशीत) तेजस्वी करो, (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ११ ॥

[८५१] (एव) इस प्रकार मैंने (इन्द्राग्निभ्यां) इन्द्र और अग्निके लिए (पितृवत् मन्धातृवत् अंगिरस्वत्) पिताके समान, मान्धाताके समान और अंगिराके समान (नवीयः अवाचि) नवीन स्तुति की है; वे दोनों देव (त्रिधातुना शर्मणा) तीन धातुओंसे समृद्ध अथवा तीन मंजिलोंवाले घरसे (अस्मान पातं) हमारी रक्षा करें, और हम (रयीणां पतयः स्याम) ऐश्वर्योंके स्वामी हों ॥ १२ ॥

[४१]

[८५२] हे स्तोता ! (यः) जो वरुण (धीता) अपने कर्मसे (मानुषाणां पश्वः) मनुष्योंके पशुओंकी (गाः इव रक्षति) गायोंके समान रक्षा करता है, (अस्मा प्रभूतये वरुणाय) उस बहुत धनवाले वरुणके लिए तथा (विदुष्टरेभ्यः मरुद्भ्यः अर्च) अत्यन्त विद्वान् मरुतोंकी पूजा कर, (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ १ ॥

भावार्थ— इस इन्द्रने अपने तेजसे शुष्ण असुरकी सन्तानोंको भी मारा, तथा नदियोंको बहनेके लिये मुक्त किया। इसी तरह शत्रुओंको कुल और वंशसहित नष्ट कर देना चाहिए, ताकि वे सर्वथा नष्ट हो जाएं ॥ १० ॥

शुष्ण असुरकी सन्तानोंको नष्ट करनेवाले तथा सुखदायक जलको प्रवाहित करनेवाले, सत्य मार्गके प्रदर्शक तथा स्वयं भी सत्यका पालन करनेवाले इन्द्रको तेजस्वी बनाना चाहिए ॥ ११ ॥

इन्द्र और अग्निकी उत्तम और नवीन स्तुति करनी चाहिए। हमारे घर सोना, चांदी और तांबा इन तीन धातुओंसे भरपूर हो, और तीन मंजिलोंवाला हो। इस प्रकार ऐश्वर्योंके स्वामी होकर रहें ॥ १२ ॥

जिस तरह मनुष्य अपने पशुओंकी रक्षा करता है, उसी तरह वरुण देव मनुष्योंकी रक्षा करते हैं। अतः उनकी पूजा-अर्चा करनी चाहिए ताकि उनकी कृपासे हमारे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ १ ॥

८५३ तमू षु समना गिरा पितॄणां च मन्मभिः ।
नाभाकस्य प्रशस्तिभि- र्यः सिन्धूनामुपोदये
सप्तस्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे ॥ २ ॥
८५४ स क्षपः परि षस्वजे न्युस्रो मायया दधे स विश्वं परि दर्शतः ।
तस्य वेनीरनु व्रत- मुषस्तिस्रो अवर्धयन् नभन्तामन्यके समे ॥ ३ ॥
८५५ यः ककुभो निधारयः पृथिव्यामधि दर्शतः ।
स माता पूर्व्यं पदं तद् वरुणस्य सप्त्यं
स हि गोपा इवेर्यो नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥
८५६ यो धर्ता भुवनानां य उस्राणामपीच्या३ वेद नामानि गुह्या ।
स कविः काव्या पुरु रूपं द्यौरिव पुष्यति नभन्तामन्यके समे ॥ ५ ॥

अर्थ— [८५३] (यः सिन्धूनां उप उदये) जो नदियोंके पास (सप्तस्वसा मध्यमः सः) सात बहिनोंवाला अन्तरिक्षस्थानीय वरुण है, (तं) उस वरुणकी (समना गिरा) मनःपूर्वक की गई स्तुतिसे, (पितॄणां च मन्मभिः) पितरोंके स्तोत्रोंसे तथा (नाभाकस्य प्रशस्तिभिः) नाभाक ऋषिकी प्रशंसाओंसे स्तुति करता हूँ। (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ २ ॥

[८५४] (सः) वह वरुण (क्षपः परिषस्वजे) रात्रियोंको संयुक्त करके रखता है, (दर्शतः उस्रः) दर्शनीय तथा त्यागशील वह वरुण (मायया) अपनी कुशलतासे (विश्वं परि दधे) सम्पूर्ण जगत्का निर्माण करता है। (वेनीः) ऐश्वर्य आदिकी कामना करनेवाले लोग (तस्य व्रतं) उस वरुणके कर्मको (तिस्रः उषः) तीन दिन तक (अनु अवर्धयन्) बढाते हैं। (अन्यके समे नभन्तां) सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ३ ॥

[८५५] (यः दर्शतः) जिस दर्शनीय वरुणने (पृथिव्यां अधि) पृथिवीके ऊपर (ककुभः निधारयः) दिशाओंको स्थापित किया, वही (माता) सबका निर्माता है, (वरुणस्य तत् पूर्व्यं पदं) वरुणका वह उत्तम स्थान (सप्त्यं) प्राप्य है (इर्यः सः) सबका स्वामी वह वरुण (गोपाः इव) गोपालके समान सबका रक्षक है। उसकी कृपासे (अन्यके समे नभन्तां) सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ४ ॥

[८५६] (यः) जो वरुण (भुवनानां धर्ता) भुवनोंको धारण करनेवाला है, (यः) जो वरुण (उस्राणां) किरणोंके (अपीच्या गुह्या नामानि) अप्रकाशित और छिपे हुए नामोंको (वेद) जानता है। (कविः सः) ज्ञानी वह वरुण (काव्या पुरु रूपं द्यौः इव पुष्यति) अपने ज्ञानसे अपने अनेक रूपोंको द्युलोकके समान पुष्ट करता है। उसकी कृपासे (अन्यके समे नभन्तां) सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ५ ॥

भावार्थ— वरुण सात किरणोंसे युक्त है, और अन्तरिक्षमें रहता है। इस वर्णन परसे प्रतीत होता है कि वरुण अन्तरिक्ष स्थानीय विद्युत् है। विद्युत्में स्थित सात रंगकी किरणेंही इस वरुणकी सात बहिनें हैं ॥ २ ॥

वह वरुण रात्रियोंको उत्तम बनाता है, और अपनी कुशलतासे सम्पूर्ण जगत्का निर्माण करता है। ऐश्वर्य प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले उस वरुणको हर तरहसे बढाते हैं ॥ ३ ॥

इसी वरुणने पृथिवीकी दिशाओंको स्थापित किया, उसीने सबका निर्माण किया। उस वरुणका स्थान उत्तम और सबके द्वारा प्राप्त करने योग्य है। सबका स्वामी होनेके कारण वह वरुण सबका रक्षक भी है ॥ ४ ॥

यह वरुण देव सभी भुवनोंको धारण करनेवाला है। वह ज्ञानी है। वह अपने ज्ञानसे अनेक तरहके रूप धारण करता है ॥ ५ ॥

८५७ यस्मिन् विश्वानि काव्या चक्रे नाभिरिव श्रिता ।
त्रितं जूती सपर्यत व्रजे गावो न संयुजे
युजे अश्वाँ अयुक्षत नभन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥
८५८ य आस्वत्क आशये विश्वा जातान्येषाम् ।
परि धामानि मर्मृशद् वरुणस्य पुरो गये
विश्वे देवा अनु व्रतं नभन्तामन्यके समे ॥ ७ ॥
८५९ स समुद्रो अपीच्य—स्तुरो द्यामिव रोहति नि यदासु यजुर्दधे ।
स माया अर्चिना पदा ऽस्तृणान्नाकमारुह—न्नभन्तामन्यके समे ॥ ८ ॥
८६० यस्य श्वेता विचक्षणा तिस्रो भूमीरधिक्षितः ।
त्रिरुत्तराणि पप्रतु—र्वरुणस्य ध्रुवं सदः
स सप्तानामिरज्यति नभन्तामन्यके समे ॥ ९ ॥

अर्थ— [८५७] (यस्मिन्) जिस वरुणमें (चक्रे नाभिः इव) चक्रमें नाभिके समान (विश्वानि काव्या श्रिता) सभी ज्ञान आश्रित हैं, उस (त्रितं) तीनों लोकोंका विस्तार करनेवाले वरुणको (जूती सपर्यत) शीघ्र ही स्तुति अर्पण करो, क्योंकि (गावः व्रजेन) गायें जिस तरह बाडेमें बांधी जाती हैं, उसी तरह शत्रुओंने (संयुजे युजे) अपने रथके जुएमें (अश्वान् अयुक्षत) अश्वोंको जोड लिया है ॥ ६ ॥

[८५८] (यः) जो वरुण (विश्वा जातानि) सम्पूर्ण पदार्थोंको (अत्कः) कवचके समान (आसु आशये) आच्छादित किए रहता है, वह (एषां धामानि परि मर्मृशन्) इन देवोंके सामर्थ्यको बढाता है, (पुरः गये) युद्धमें (विश्वे देवाः) सभी देव (वरुणस्य व्रतं) वरुणके कर्मका (अनु) अनुसरण करते हैं । (अन्यके समे नभन्तां) सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ७ ॥

[८५९] (समुद्रः अपीच्यः सः) समुद्रोंका राजा तथा सर्वव्यापक वह वरुण (तुरः) शीघ्र ही (द्यौः इव रोहति) सूर्यकी तरह ऊपर चढ जाता है । (यत् आसु यजुः दधे) जब वह इन दिशाओंमें कर्म स्थापित करता है, तब (सः) वह (मायाः) असुरोंकी मायाको (अर्चिना पदेन) प्रकाशमान् स्थानसे (अस्तृणात्) समाप्त कर देता है । (अन्यके समे नभन्तां) सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ८ ॥

[८६०] (अधिक्षितः यस्य) अन्तरिक्षमें रहनेवाले जिस वरुणके (श्वेता विचक्षणा) शुभ्र तेजने (तिस्रः भूमिः त्रिः उत्तराणि पिप्रतुः) तीन भूमि और तीन द्युलोकको विस्तृत किया, उस (वरुणस्य) वरुणका (सदः ध्रुवं) स्थान अचल है, (सः सप्तानां इरज्यति) वह वरुण नदियों पर शासन करता है । (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ९ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार रथचक्रकी नाभिमें उस चक्रके सभी अरे आश्रित रहते हैं, उसी तरह इस वरुणमें सभी ज्ञान आश्रित हैं । इसी वरुणने तीनों लोकोंका विस्तार किया है ॥ ६ ॥

जिस तरह मनुष्य कवचसे अपने सारे शरीरको आच्छादित करता है, उसी तरह वरुणने इस संसारको व्यापकर रखा है । वही देव सब देवोंके सामर्थ्यको बढाता है, इसलिए सभी देव वरुणके कर्मका अनुसरण करते हैं ॥ ७ ॥

यह वरुणदेव समुद्रोंका राजा, सर्व व्यापक तथा सूर्यकी तरह प्रकाशमान् है । वह चारों दिशाओंमें कर्मोंको स्थापित करता है और असुरोंसे पराक्रमोंको नष्ट करता है ॥ ८ ॥

इस वरुणके शुभ्र तेजके कारण ही भूमिके और द्युलोकके तीन–तीन स्तरोंको विस्तृत किया । उस वरुणका स्थान अचल है, अपने अचल स्थान पर बैठकर वह सभी नदियों पर शासन करता है ॥ ९ ॥

८६१ यः श्वेताँ अधिनिर्णिज श्चक्रे कृष्णाँ अनु व्रता ।
स धाम पूर्व्यं ममे यः स्कम्भेन वि रोदसी
अजो न द्यामधारय न्नभन्तामन्यके समे ॥ १० ॥

[४२]

(ऋषिः- नाभाकः काण्वः, अर्चनाना आत्रेयो वा । देवताः- १-३ वरुणः, ४-६ अश्विनौ ।
छन्दः- १-३ त्रिष्टुप्, ४-६ अनुष्टुप् ।)

८६२ अस्तभ्नाद् द्यामसुरो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः ।
आसीदद् विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत् तानि वरुणस्य व्रतानि ॥ १ ॥
८६३ एवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तं नमस्या धीरममृतस्य गोपाम् ।
स नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसत् पातं नो द्यावापृथिवी उपस्थे ॥ २ ॥
८६४ इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण सं शिशाधि ।
ययाति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम ॥ ३ ॥

अर्थ— [८६१] (यः) जिस वरुणने (व्रता अनु) अपने कर्मोंके अनुसार अपने (निर्णिजः) तेजोंको (श्वेतान कृष्णान चक्रे) सफेद और काला बनाया, (यः) जिस वरुणने (अजः द्यां न) सूर्य जिस तरह द्युलोकको धारण करता है, उसी तरह (स्कंभेन रोदसी वि धारयत्) स्कंभसे द्यु और पृथिवीको धारण किया, (सः पूर्व्यं धाम ममे) उसने उत्कृष्ट स्थानका निर्माण किया, उसकी कृपासे (अन्यके समे नभन्तां) सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ १० ॥

[४२]

[८६२] (विश्ववेदाः असु-रः) सबको जाननेवाले, प्राणोंके दाता वरुणने (द्यां अस्तभ्नात्) द्युलोकको स्थिर किया, (पृथिव्याः वरिमाणं अमिमीत) पृथिवीकी सीमाको नापा । उस (सम्राट्) तेजस्वी वरुणने (विश्वा भुवनानि आसीदत्) सम्पूर्ण भुवनों पर आधिपत्य किया, (तानि विश्वा व्रतानि वरुणस्य इत्) वे सभी पराक्रम वरुणके ही हैं ॥ १ ॥

[८६३] हे मनुष्य ! (बृहन्तं वरुणं एवा वन्दस्व) महान् वरुणको इस प्रकार वन्दन करो, (अमृतस्य गोपां) अमृतकी रक्षा करनेवाले तथा ((धीरं) धैर्यशाली वरुणको (नमस्य) नमन करो । (सः) वह वरुण (नः) हमें (त्रिवरूथं शर्म यंसत्) तीन मंजिलोंवाला घर प्रदान करे तथा (उपस्थे नः) पासमें ही वर्तमान हमारी (द्यावा-पृथिवी पातं) द्युलोक और पृथिवीलोक रक्षा करें ॥ २ ॥

[८६४] हे (देव वरुण) तेजस्वी वरुण देव (शिक्षमाणस्य) दान देनेवाले मेरी (इमां धियं) इस बुद्धिको (क्रतुं दक्षं) क्रियाशीलता तथा चतुरताको (सं शिशाधि) तीक्ष्ण कर । (यया) जिस बुद्धिकी सहायतासे हम (विश्वा दुरिता तरेम) सम्पूर्ण संकटोंको पार कर जाएं तथा (सुतर्माणं नावं अधि रुहेम) उत्तमतासे पार करानेवाली नाव पर हम चढें ॥ ३ ॥

भावार्थ— यह वरुण अपने कर्मोंके अनुसार अपने तेजको दिनके समय सफेद और रातके समय काला बनाता है तथा अपनी धारक शक्तिसे ही द्युलोकको धारण करता है, इसीलिए उसका स्थान उत्तम है ॥ १० ॥

सर्वज्ञ तथा प्राणस्वरूप परमेश्वरने द्युलोकको स्थिर किया, उसीने पृथ्वीकी सीमा नापी, वही सारे भुवनोंका स्वामी है । ये सब पराक्रम वरुणके ही हैं ॥ १ ॥

वरुण अमृतकी रक्षा करनेवाला तथा धैर्यशाली है, उसे नमन करना चाहिए । ताकि वह हम पर प्रसन्न होकर हमें तीन मंजिलोंवाला घर प्रदान करे ॥ २ ॥

हे वरुण देव ! दान देनेवाले मेरी बुद्धिको तू उत्तम कर तथा मेरी क्रियाशीलता और चतुरताको भी बढा । हम अपनी उत्तम बुद्धिकी सहायतासे सभी संकटोंको पार कर जाएं ॥ ३ ॥

८६५ आ वां ग्रावाणो अश्विना धीभिर्विप्रा अचुच्यवुः ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥
८६६ यथा वामत्रिरश्विना गीर्भिर्विप्रो अजोहवीत् ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ५ ॥
८६७ एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥

[४३]

(ऋषिः- विरूप आङ्गिरसः । देवताः- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

८६८ इमे विप्रस्य वेधसो ऽग्नेरस्तृतयज्वनः । गिरः स्तोमास ईरते ॥ १ ॥
८६९ अस्मै ते प्रतिहर्यते जातवेदो विचर्षणे । अग्ने जनामि सुष्टुतिम् ॥ २ ॥

अर्थ— [८६५] हे (नासत्या अश्विना) सत्यके प्रवर्तक अश्विदेवो ! (सोमपीतये) सोमपानके लिए (वां) तुम दोनोंके लिए (विप्राः ग्रावाणः) ज्ञानी और सोम कूटनेके पत्थर (आ अचुच्यवुः) रस टपकाते रहे हैं। तुम्हारी कृपासे (अन्यके समे नभन्तां) सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ४ ॥

[८६६] हे (नासत्या अश्विना) सत्यके प्रवर्तक अश्वि देवो ! (यथा विप्रः अत्रिः) जैसे ऋषि अत्रिने (वां गीर्भिः अजोहवीत्) तुम्हें भाषणों द्वारा बुलाया था, तथा तुम्हारी कृपासे (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे शत्रु नष्ट हो गए ॥ ५ ॥

[८६७] (नासत्या अश्विना) हे सत्यके प्रवर्तक अश्वि देवो ! (यथा मेधिराः अहुवन्त) जैसे विद्वानोंने तुम्हें बुलाया था, (एव) वैसे ही (वां ऊतये अह्वे) तुम्हें रक्षा करनेके लिए बुलाता हूँ । तुम्हारी कृपासे (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ६ ॥

[४३]

[८६८] (इमे स्तोमासः) ये स्तुति करनेवाले जन (विप्रस्य वेधसः अस्तृतयज्वनः अग्नेः) मेधावी विद्वान्, जगत्के कर्ता, दानशील, यज्ञ कर्ताके नाश न करनेवाले अग्निके लिए (गिरः ईरते) वेदवाणीका उच्चारण करते हैं ॥ १ ॥

[८६९] हे (जातवेदः विचर्षणे अग्ने) संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले सर्वज्ञ, सर्व प्रकाशक अग्ने ! (अस्मै प्रति हर्यते ते) इस प्रत्येक जीवको चाहनेवाले तेरे लिए, (सुष्टुतिं जनामि) मैं सुन्दर स्तोत्र बोलता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ— हे सत्यका पालन करनेवाले अश्विदेवो ! तुम दोनोंको प्रसन्न करनेके लिए ज्ञानी सोम कूटनेके पत्थरोंसे पीसकर सोमरस प्रदान करते हैं । तुम्हारी कृपा प्राप्त करके वे ज्ञानी अपने शत्रुओंको नष्ट करें ॥ ४ ॥

हे सत्यके पालक अश्वि देवो ! तुम्हें जैसे अत्रि ऋषिने बुलाया था, तथा जैसे ज्ञानियोंने बुलाया था, उसी प्रकार हम तुम्हे बुलाते हैं । तुम्हारी हमपर कृपा हो और हमारे शत्रुओंका नाश हो ॥ ५-६ ॥

जो सब पदार्थोंको जाननेवाला, अपनी प्रजाओंके सब कामोंको देखनेवाला और अपनी प्रजाओंको चाहनेवाला अग्रणी होता है, उस ज्ञानी और दानशील पुरुषकी आवाज देशमें सर्वत्र गूंजती है ॥ १-२ ॥

८७० आरोका इव घेदह तिग्मा अग्ने तव त्विषः । दद्भिर्वनानि बप्सति ॥ ३ ॥
८७१ हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि । यतन्ते वृथगग्नयः ॥ ४ ॥
८७२ एते त्ये वृथगग्नय इद्धासः समदृक्षत । उषसामिव केतवः ॥ ५ ॥
८७३ कृष्णा रजांसि पत्सुतः प्रयाणे जातवेदसः । अग्निर्यद् रोधति क्षमि ॥ ६ ॥
८७४ धासिं कृण्वान ओषधीर्बप्सदग्निर्न वायति । पुनर्यन् तरुणीरपि ॥ ७ ॥
८७५ जिह्वाभिरह नन्नमदर्चिषा जञ्जणाभवन् । अग्निर्वनेषु रोचते ॥ ८ ॥
८७६ अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे । गर्भे सञ्जायसे पुनः ॥ ९ ॥
८७७ उदग्ने तव तद् घृतादर्ची रोचत आहुतम् । निंसानं जुह्वो मुखे ॥ १० ॥

अर्थ— [८७०] हे (अग्ने) अग्ने ! (तव तिग्माः त्विषः) तेरी तीक्ष्ण और दीप्तिमान् ज्वालायें (आरोका इव) प्रकाशकी तरह (दद्भिः वनानि बप्सति) अपने दांतोंसे जंगलोंका भक्षण करती है ॥ ३ ॥

[८७१] (हरयः धूमकेतवः) रसोंको हरनेवाली, धूमरूप ध्वजावाली (वातजूताः अग्नयः) वायुसे प्रेरित हुई अग्नियां (द्यवि वृथक् उप यतन्ते) अन्तरिक्षमें अलग-अलग रूपसे गमन करती हैं ॥ ४ ॥

[८७२] (एते त्ये अग्नयः) ये वे अग्नियां पृथक् रूपसे प्रज्वलित हो करके (उषसा इव केतवः) उषाकालमें प्रकट होनेवाली ध्वजाओंके समान (समदृक्षत) दर्शनीय होती हैं ॥ ५ ॥

[८७३] (जातवेदसः अग्निः) संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाला अग्नि (यत् क्षमि रोधति) जब भूमिपर जाता है, तब जानेके पश्चात् (प्रयाणे) लौटने पर (पत्सुतः रजांसि कृष्णा) पत्ते धूली आदिको काले रंगसे युक्त कर देता है ॥ ६ ॥

[८७४] (अग्निः ओषधीः धासिं कृण्वानः बप्सत्) अग्नि नाना प्रकारकी ओषधियोंको अन्न मानकर उन्हें खाकर भी (न वायति) तृप्त नहीं होता, अपितु (पुनः अपि तरुणीः यन्) फिर भी तरुणावस्था प्राप्त करके औषधियोंमें व्याप्त होता है ॥ ७ ॥

[८७५] (अग्निः जिह्वाभिः अह नन्नमत्) अग्नि वनस्पतियोंको अपनी जिह्वाओंसे चाटता हुआ (अर्चिषा जञ्जणाभवन् वनेषु रोचते) स्वतेजसे अत्यधिक प्रदीप्त होता हुआ जंगलोंमें सुशोभित होता है ॥ ८ ॥

[८७६] हे (अग्ने) अग्ने ! (तव सधिः अप्सु) तेरा मेघस्थजलोंके अन्दर प्रवेश है (सः ओषधीः अनुरुध्यते) वह तू औषधियोंको प्राप्त होता है, और (पुनः गर्भे सन् जायसे) फिर गर्भमें होकर उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥

[८७७] हे (अग्ने) अग्ने ! (तव तत् अर्चि) तेरी वह ज्वाला (घृतात् आहुतं) घृतसे आहुति प्राप्त करके (जुह्वः मुखे निंसानं उत् रोचते) घृतपूर्ण चमचके मुखको चाटकर अत्यन्त सुशोभित होती है ॥ १० ॥

भावार्थ— अग्निकी किरणें रसोंका ग्रहण करती हैं, धुंवेसे पहचानी जाती हैं, तथा वायुसे प्रेरित होती हैं, अन्तरिक्षमें चलती हैं। अग्निकी ये किरणें समिधाओंको उसी तरह खा जाती हैं, जिस प्रकार प्रकाश अन्धकारको ॥ ३-४ ॥

उषःकालमें ये अग्नियां प्रज्वलित होती हैं, इसलिए मानो ये अग्नियां उषःकालके आगमनकी सूचना देनेवाली उसकी ध्वजायें हैं। जब यह अग्नि प्रदीप्त होकर भूमिपर चलता है, तब इसके जानेका पीछेका मार्ग काला पड जाता है ॥५-६॥

यह अग्नि काष्ठोंमें ही रहता है अर्थात् लकडियोंमें व्याप्त रहता है, पर उन्हीं लकडियोंको वह अपना भोजन मानकर खाता भी है, पर खूब खाकर भी तृप्त नहीं होता, इसके विपरीत उन काष्ठोंको अपनी जिह्वाओंसे चाटता हुआ प्रदीप्त होता है और पहलेकी अपेक्षा ज्यादा तरुण ही होता है ॥ ७-८ ॥

यह अग्नि मेघमें रहता है और वर्षाकी बूंदोंके द्वारा वह इस पृथ्वी पर आता है, वर्षाको जब वनस्पतियां पीती हैं, तब उस पानीके द्वारा वह वनस्पतियोंमें जाकर उनके अन्दर प्रविष्ट हो जाता है और उनके गर्भमें जाकर निवास करता है, फिर वही अग्नि अरणियों द्वारा अपने गर्भसे बाहर प्रकट किया जाता है, तब वह प्रदीप्त होकर घृतसे भरे चमचका मुंह चाटता है, अर्थात् प्रदीप्त अग्निमें चमचेसे घीकी आहुतियां दी जाती हैं ॥ ९-१० ॥

×

८७८ उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥ ११ ॥
८७९ उत त्वा नमसा वयं होतर्वरेण्यक्रतो । अग्ने समिद्भिरीमहे ॥ १२ ॥
८८० उत त्वा भृगुवच्छुचे मनुष्वदग्न आहुत । अङ्गिरस्वद्धवामहे ॥ १३ ॥
८८१ त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन् त्सता । सखा सख्या समिध्यसे ॥ १४ ॥
८८२ स त्वं विप्राय दाशुषे रयिं देहि सहस्रिणम् । अग्ने वीरवतीमिषम् ॥ १५ ॥
८८३ अग्ने भ्रातः सहस्कृत रोहिदश्व शुचिव्रत । इमं स्तोमं जुषस्व मे ॥ १६ ॥

अर्थ— [८७८] (उक्षान्नाय, वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे अग्नये) अन्नको रससे सिंचित करनेवाले तथा अन्नको रमणीय बनानेवाले सोम पीठवाले, जगत् विधाता अग्निकी (स्तोमैः विधेम) स्तोत्रोंसे उपासना करते हैं। ११॥

[८७९] (उत होतः वरेण्यक्रतो अग्ने) और हे देवोंके बुलानेवाले सर्व श्रेष्ठ ज्ञानवान् अग्ने ! (त्वा वयं) तुझको हम (नमसा समिद्भिः ईमहे) नम्रतापूर्वक समिधाओंसे प्रज्वलित कर स्तुति करते हैं ॥ १२ ॥

[८८०] (उत शुचे आहुत अग्ने) हे स्वभावसेही शुद्ध, बुलाये जानेवाले अग्ने ! हम लोग (भृगुवत् मनुष्वत् अङ्गिरस्वत् हवामहे) पापोंको दग्ध करनेमें समर्थ तपस्वी जनोंके समान, मननशील ज्ञानी पुरुषोंके समान और देहमें संचार करनेवाले रसोंके ज्ञाता तेजस्वी लोगोंके सदृश होकर तुमको बुलाते हैं ॥ १३ ॥

[८८१] जिस प्रकार (विप्रः विप्रेण) विद्वान् पुरुष विद्वान्से मिलकर अधिक ज्ञानका प्रकाश करता है। (सन् सता) सज्जन पुरुष, सज्जन लोगोंसे मिलकर प्रसन्न होता है। और (सखा सख्या) स्नेही मित्रसे स्नेहवान् जन मिलकर अधिक हर्षित होता है, उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं अग्निना हि) तुम भी अपने सदृश दूसरे अग्निसे मिलकर अधिक प्रकाशमान होते हो ॥ १४ ॥

१ विप्रः विप्रेण सन् सता, सखा सख्या— ज्ञानी ज्ञानीसे, सज्जन सज्जनसे और स्नेही अपने स्नेहीसे मिलकर प्रसन्न होता है।

[८८२] हे (अग्ने) अग्ने ! (स त्वं) वह प्रसिद्ध तू (विप्राय दाशुषे) मेधावी हवि प्रदान करनेवालेके लिये (सहस्रिणं रयिं) सहस्रोंकी संख्यासे युक्त ऐश्वर्य और (वीरवतीं इषं देहि) पुत्र पौत्रादि सहित अन्न प्रदान कर ॥ १५ ॥

[८८३] हे (भ्रातः सहस्कृत, रोहिदश्व, शुचिव्रत अग्ने) हे भ्रातृवत् स्नेहकारिन् , हे बलशाली, हे तेजस्वी ज्वालाओंवाले ! हे पवित्र व्रत धारिन् ! तू (मे इमं स्तोमं जुषस्व) मेरे इस स्तुति वचनको प्रेमपूर्वक स्वीकार कर ॥१६॥

भावार्थ— यह अग्नि सब धान्योंको रससे सिंचित करता है। यह अग्निही सूर्य और चन्द्रका रूप धारण कर धान्यों और वनस्पतियोंमें रस भरता है। इस प्रकार उन्हें रमणीय बनाता है। ऐसे अग्निको सब समिधाओंसे प्रज्वलित करते हैं ॥ ११-१२ ॥

समान शील स्वभाववालोंकी परस्पर संगति उत्तम होती है। विद्वान्की मूर्खके साथ, सज्जनकी दुष्टके साथ कभी संगति नहीं बैठ सकती। अपने समान शील स्वभाववालोंके साथ बैठकरही मनुष्य प्रकाशमान् होता है। उसी प्रकार एक अग्नि दूसरे अग्निके साथ मिलकर और ज्यादा प्रकाशित होता है। तब उसकी तपस्वीजन, मननशील ज्ञानी उपासना करते हैं ॥ १३-१४ ॥

अग्रणीको चाहिए कि वह सबके साथ भाईके समान स्नेह करनेवाला, बलयुक्त और तेजस्वितासे सम्पन्न बने, उसके द्वारा किए जानेवाले कर्म पवित्र हों, तथा वह अपने राष्ट्रके विद्वानोंको बहुत धन देकर उनका पालन पोषण करे ॥१५-१६॥

८८४ उत त्वाग्ने मम स्तुतो वाश्राय प्रतिहर्यते । गोष्ठं गाव इवाशत ॥ १७ ॥
८८५ तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे ॥ १८ ॥
८८६ अग्निं धीभिर्मनीषिणो मेधिरासो विपश्चितः । अद्मसद्याय हिन्विरे ॥ १९ ॥
८८७ तं त्वामज्मेषु वाजिनं तन्वाना अग्ने अध्वरम् । वह्निं होतारमीळते ॥ २० ॥
८८८ पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे ॥ २१ ॥
८८९ तमीळिष्व य आहुतो ऽग्निर्विभ्राजते घृतैः । इमं नः शृणवद्धवम् ॥ २२ ॥

अर्थ— [८८४] (उत अग्ने) और भी हे अग्ने ! (प्रतिहर्यते गोष्ठं गाव इव) पुकारनेवाले और माताको चाहनेवाले बछडेकी तरफ जिस तरह गायें भागती हैं, उसी प्रकार (मम स्तुतः त्वा आशत) मेरी स्तुतियाँ तुझको प्राप्त हों ॥ १७ ॥

[८८५] हे अग्ने) हे अग्ने ! हे (अङ्गिरस्तम) प्राणोंकी विद्याको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ (ताः विश्वाः सुक्षितयः) वे समस्त उत्तम प्रजायें (कामाय) कामना करने योग्य (तुभ्यं) तेरी अलग अलग रीतिसे पूजा करता हैं ॥ १८ ॥

[८८६] (मनीषिणः मेधिरासः विपश्चितः) मनको सन्मार्ग पर चलानेवाले मेधावी, विद्वान् लोग अपने (धीभिः अद्मसद्याय अग्निं हिन्विरे) उत्तम कर्मोंसे प्रत्येक घरमें रहनेवाले अग्निको प्रसन्न करते हैं ॥ १९ ॥

[८८७] हे (अग्ने) अग्ने ! (वाजिनं वह्निं होतारं तं त्वां) बलवान्, वहन करनेमें समर्थ, देवोंको बुलानेवाले ऐसे उस प्रसिद्ध तेरी (अज्मेषु अध्वरं तन्वानाः ईळते) घरोंमें यज्ञको विस्तृत करते हुये यजमान स्तुति करते हैं ॥ २० ॥

[८८८] हे अग्ने ! तू (हि पुरुत्रा विश्वाः विशः अनु सदृङ् प्रभुः असि) बहुतसे प्रदेशोंमें रहनेवाली सम्पूर्ण प्रजाओंको समान रूपसे देखनेवाला स्वामी है । अतः हम सब (त्वा समत्सु हवामहे) तुझको ही संग्रामोंमें बुलाते हैं ॥ २१ ॥

१ पुरुत्रा विश्वाः विशः अनु सदृङ् प्रभुः— जो विभिन्न प्रदेशोंमें रहनेवाली प्रजाओंको समान दृष्टिसे देखता है, वह ही प्रभु होता है ।

[८८९] (यः अग्निः घृतैः आहुतः विभ्राजते) जो अग्नि घृतसे आहुत किया गया होकर प्रदीप्त होता है । हे मनुष्य ! तू (तं ईळिष्व) उस अग्निकी ही स्तुति किया कर, क्योंकि वही (नः इमं हवं शृणवत्) हमारी इस स्तुतिको श्रवण करता है ॥ २२ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार चरकर लौटती हुई गायें अपने बछडोंका रंभाना सुनकर बाडेकी तरफ भागती हैं, उसी प्रकार सभी स्तुतियां इसी अग्निकी ओर जाती हैं और सब प्रकारकी कामना करनेवाली प्रजायें अपनी कामनाओंकी पूर्तिके लिए इसी अग्निकी उपासना करती हैं ॥ १७-१८ ॥

देशका अग्रणी मनन करके बुद्धिपूर्वक काम करनेवाला हो, तब स्वयं सन्मार्गपर चलता दूसरोंको भी सन्मार्ग पर चलानेवाला हो, घर घरमें उसकी पहुंच हो, अर्थात् वह कुछ ही व्यक्तियोंतक सीमित न रहकर सर्व साधारण जनताकी भी खोज खबर लेता रहे । ऐसे अग्रणीको देशकी प्रजायें अपने घरोंमें उत्तम उत्तम समारोहोंका आयोजन कर आदरपूर्वक बुलाती हैं ॥ १९-२० ॥

अग्रणीको चाहिए कि अपने राष्ट्रमें प्रान्तीयवाद या जातिवाद आदि वादोंको पनपने न दे । सभी प्रजाको समान दृष्टिसे देखे । किसीसे. पक्षपात न करे । वह सबकी प्रार्थना सुने । ऐसे अग्रणीकी सभी प्रशंसा करते हैं और उसे हर कामोंमें सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ २१-२२ ॥

८९० तं त्वा वयं हवामहे शृण्वन्तं जातवेदसम् । अग्ने घ्नन्तमप द्विषः ॥ २३ ॥
८९१ विशां राजानमद्भुत मध्यक्षं धर्मणामिमम् । अग्निमीळे स उ श्रवत् ॥ २४ ॥
८९२ अग्निं विश्वायुवेपसं मर्यं न वाजिनं हितम् । सप्तिं न वाजयामसि ॥ २५ ॥
८९३ घ्नन् मृध्राण्यप द्विषो दहन् रक्षांसि विश्वहा । अग्ने तिग्मेन दीदिहि ॥ २६ ॥
८९४ यं त्वा जनास इन्धते मनुष्वदङ्गिरस्तम । अग्ने स बोधि मे वचः ॥ २७ ॥
८९५ यदग्ने दिविजा अस्य प्सुजा वा सहस्कृत । तं त्वा गीर्भिर्हवामहे ॥ २८ ॥
८९६ तुभ्यं घेत् ते जना इमे विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । धासिं हिन्वन्त्यत्तवे ॥ २९ ॥
८९७ ते घेदग्ने स्वाध्यो ऽहा विश्वा नृचक्षसः । तरन्तः स्याम दुर्गहा ॥ ३० ॥

अर्थ— [८९०] हे (अग्ने) अग्ने ! (जातवेदसं शृण्वन्तं द्विषः अपघ्नन्तं तं त्वा) संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले, हमारी प्रार्थनाको सुननेवाले, समस्त शत्रुओंको विनष्ट करनेवाले ऐसे उस प्रसिद्ध तुझको (वयं हवामहे) हम लोग बुलाते हैं ॥ २३ ॥

[८९१] (विशां राजानं धर्मणां अद्भुतं अध्यक्षं) प्रजाओंके राजा समस्त धर्मोंके अद्भुत द्रष्टा (इमं अग्निं ईळे) इस अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ। (स उ श्रवत्) वही वस्तुतः हमारे वचनोंको सुननेवाला है ॥ २४ ॥

१ धर्मणां अध्यक्षः विशां राजा— धर्मका अध्यक्ष ही प्रजाओंका राजा होने योग्य है।

[८९२] (विश्वायुवेपसं) समस्त लोगोंको चलानेवाले (वाजिनं मर्यं न हितं) बलशाली, मनुष्यकी तरह सर्व हितकारी (सप्तिं न अग्निं वाजयामसि) अश्वकी तरह तीव्रगामी अग्निको हम अन्नरूप हव्यादिसे बलवान् बनाते हैं ॥ २५ ॥

[८९३] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (मृध्राणि द्विषः अपघ्नन्) हिंसकोंको, द्वेष करनेवालोंको मारता हुआ तथा (रक्षांसि दहन्) विघ्नकारी राक्षसोंको जलाता हुआ (विश्वहा तिग्मेन दीदिहि) सर्वदा तीव्र तेजसे प्रकाशित हो ॥२६॥

[८९४] हे (अङ्गिरः तम अग्ने) अति तेजस्विन् अग्ने ! (यं त्वा जनासः मनुष्वत् इन्धते) जिस तुझको मनुष्य, मननशील ज्ञानीके समान होकर प्रकाशित करते है। (सः मे वचः बोधि) वह तू मेरी स्तुतिको जान ॥ २७ ॥

[८९५] हे (अग्ने) अग्ने ! (यत् दिविजाः असि) तू आकाशमें उत्पन्न सूर्य है, (वा अप्सुजा) अथवा जलमें उत्पन्न विद्युत् है वही (सहस्कृतः) बलसे अर्थात् मन्थनसे उत्पन्न तू भौतिक अग्नि है। ऐसे (तं त्वा गीर्भिः हवामहे) उस प्रसिद्ध तेरी हम उत्तम वाणियोंसे स्तुति करते हैं ॥ २८ ॥

[८९६] हे अग्ने ! (घ इत् ते इमे जना) निश्चयसे ही वे और ये सब मनुष्य लोग तथा (विश्वाः सुक्षितयः) सम्पूर्ण प्रजायें (तुभ्यं धासिं अत्तवे पृथक् हिन्वन्ति) तेरे लिये अन्नको अलग अलग रूपसे प्रदान करती हैं ॥ २९ ॥

[८९७] हे (अग्ने) अग्ने ! (ते घेत् सु आध्यः) तेरे लिये निश्चयसे उत्तम कर्म करनेवाले और (विश्वा अहा नृचेक्षसः) सब दिन उत्तम पदार्थोंको देखनेवाले होकर हम (दुर्गहा तरन्तः स्याम) दुःखसे पार करने योग्य संकटोंको तर जानेवाले हों ॥ ३० ॥

सु-आध्यः नृचक्षसः दुर्गहा तरन्तः— उत्तम कर्म करनेवाले तथा मनुष्योंका हित करनेवाले मनुष्य दुःखसे पार करने योग्य संकटोंको भी पार कर जाते हैं।

भावार्थ— जो धर्मका पालन करता है, और धर्मके मार्गपर चलता है, वह ही प्रजाओंका उत्तम राजा हो सकता है। जो अधर्मके मार्गपर चलता है, वह कभी भी प्रजाओंका भला नहीं कर सकता। यह अग्नि भी अपने उपासकोंका भला करता है, क्योंकि वह सदा धर्मके मार्गपर चलता है। वह सब शत्रुओंका नाश करता है ॥ २३-२४ ॥

हिंसकोंको, द्वेष करनेवालों, राक्षसोंको मारना राष्ट्रकी सुरक्षाके लिए आवश्यक है। इस प्रकार राष्ट्रके सुरक्षित होने पर ही राष्ट्र निवासियोंका हित हो सकता है। राष्ट्रमें वेगवान् अश्व भी हों ॥ २५-२६ ॥

यह अग्नि आकाशमें सूर्यके रूपमें उत्पन्न होता है, मेघों या जलोंमें विद्युत् रूपमें उत्पन्न होता है, तथा पृथिवी पर वह मन्थनके द्वारा भौतिक अग्निके रूपमें प्रकट होता है। भौतिक अग्निको लोग प्रकाशित करते हैं ॥ २७-२८ ॥

सभी प्रजायें इस अग्निको हवि भक्षण करनेके लिये प्रेरित करती हैं। इस प्रकार अग्निको आदर्शके रूपमें सामने रखकर उत्तम कर्म करनेवाले तथा मनुष्योंका हित करनेवाले मनुष्य कठिनसे कठिन संकटोंसे भी पार हो जाते हैं ॥२८-३०॥

८९८ अ॒ग्निं म॒न्द्रं पु॑रुप्रि॒यं शी॒रं पा॑व॒कशो॑चिषम् । हृ॒द्भिर्म॒न्द्रेभि॑रीमहे ॥ ३१ ॥
८९९ स त्वम॑ग्ने वि॒भाव॑सुः सृ॒जन् त्सूर्यो॒ न र॒श्मिभि॑ः । शर्ध॒न् तमां॑सि जिघ्नसे ॥ ३२ ॥
९०० तत् ते॑ सहस्व ईमहे दा॒त्रं यन्नोप॒दस्य॑ति । त्वद॑ग्ने॒ वार्यं॒ वसु॑ ॥ ३३ ॥

[४४]

(ऋषिः- विरूप आङ्गिरसः । देवता:- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

९०१ स॒मिधा॒ग्निं दु॑वस्यत घृ॒तैर्बो॑धय॒ताति॑थिम् । आस्मि॑न् ह॒व्या जु॑होतन ॥ १ ॥
९०२ अग्ने॒ स्तोमं॑ जुषस्व मे॒ वर्ध॑स्वा॒नेन॒ मन्म॑ना । प्रति॑ सू॒क्तानि॑ हर्य नः ॥ २ ॥
९०३ अ॒ग्निं दू॒तं पु॒रो द॑धे ह॒व्य॒वाह॒मुप॑ ब्रुवे । दे॒वाँ आ सा॑दयादि॒ह ॥ ३ ॥
९०४ उत् ते॑ बृ॒हन्तो॑ अ॒र्चय॑ः समिधा॒नस्य॑ दीदिवः । अग्ने॑ शु॒क्रास॑ ईरते ॥ ४ ॥

अर्थ— [८९८] (मन्द्रं पुरुप्रियं पावकशोचिषं शीरं अग्निं) आनन्दप्रद, बहुतोंको प्रिय, पवित्रकारक तेजवाले, यज्ञमें अत्यन्त तेजस्वी अग्निको हम (हृद्भिः ईमहे) प्रसन्नताप्रद स्तोत्रों द्वारा हर्षित करते हैं ॥ ३१ ॥

[८९९] हे (अग्ने) अग्ने ! (स विभावसुः त्वं) वह तेजरूपी धनवाला तू (सृजन् सूर्यः न) उगते हुये सूर्यके समान (रश्मिभिः शर्धन्) अपनी किरणोंसे बलकी वृद्धि करते हुये (तमांसि जिघ्नसे) अन्धकारका नाश करता है ॥ ३२ ॥

[९००] हे (सहस्वः अग्ने) सबसे महान् बलवान् अग्नि ! (यत् ते वार्यं वसु न उपदस्यति) जो तेरा सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य कभी नष्ट नहीं होता है (तत् दात्रं त्वत् ईमहे) वह तेरा प्रदान करने योग्य ऐश्वर्य हम तुझसे मांगते हैं ॥ ३३ ॥

[४४]

[९०१] हे ऋत्विक् लोगो ! (अतिथिं अग्निं) अतिथिवत् प्रिय अग्निको (समिधा दुवस्यत) समिधाके द्वारा परिचर्या करो । और (घृतैः बोधयत) घृतसे प्रज्वलित करो । तथा (अस्मिन् हव्या आ जुहोतन) इस अग्निमें हव्य आदि उत्तम पदार्थोंकी आहुति दो ॥ १ ॥

[९०२] हे (अग्ने) अग्ने ! (मे स्तोमं जुषस्व) मेरे स्तोत्रको ग्रहण कर । (अनेन मन्मना वर्धस्व) इस मनन करने योग्य स्तोत्रसे वृद्धिको प्राप्त हो और (नः सूक्तानि प्रति हर्य) हमारे सूक्तोंकी अभिलाषा कर ॥ २ ॥

[९०३] (दूतं हव्यवाहं अग्निं पुरः दधे) देवोंके दूत, हव्यको देवोंके प्रति ले जानेवाले अग्निको अपने आगे स्थापित करता हूँ । और उसकी (उपब्रुवे) स्तुति करता हूँ । वह (इह देवान् आ सादयात्) इस यज्ञमें देवताओंको बुलाकर बैठावे ॥ ३ ॥

[९०४] हे (दीदिवः अग्ने) कान्तियुक्त अग्ने ! (समिधानस्य ते बृहन्तः शुक्रासः अर्चयः) अत्यन्त प्रदीप्त होने पर तेरी, अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुई शुभ्रवर्णवाली ज्वालायें (उत् ईरते) ऊपरकी ओर जाती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि लोगोंके लिए अत्यन्त प्रिय, पवित्रकारक तेजसे युक्त और अत्यन्त तेजस्वी है। जिस प्रकार उगता हुआ सूर्य अपनी किरणोंसे अन्धकारको दूर कर देता है, उसी तरह यह अग्नि भी अपनी किरणोंसे अन्धकारको दूर कर देता है। इसका दिया हुआ धन कभी नष्ट नहीं होता,सदा अक्षय बना रहता है, इसीलिए लोग इससे ऐश्वर्य मांगते हैं॥ ३१-३३ ॥

हे मनुष्यो ! समिधाओंसे इस अग्निको प्रदीप्त करके घीसे जगाओ और अतिथिकी तरह इसका सत्कार करो । हे अग्ने ! तू भी हमारे द्वारा किए जानेवाले मनन करने योग्य स्तोत्रोंको सुन और वृद्धिको प्राप्त हो ॥ १-२ ॥

हर उत्तम काममें अग्निको मुख्यता देनी चाहिए और उसकी स्तुति करनी चाहिए ताकि वह देवोंकी सहायता हमें दिला सके । हम भी इस पवित्रकारक अग्निको इतनी अच्छी तरह प्रदीप्त करें, कि उसकी उत्तम वर्णकी ज्वालायें ऊपरकी ओर उठें ॥ ३-४ ॥

९१९ त्वामग्ने मनीषिण॒स्त्वां हिन्वन्ति चित्तिभिः । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ १९ ॥
९२० अदब्धस्य स्वधावतो दूतस्य रेभतः सदा । अग्नेः सख्यं वृणीमहे ॥ २० ॥
९२१ अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः । शुची रोचत आहुतः ॥ २१ ॥
९२२ उत त्वा धीतयो मम गिरो वर्धन्तु विश्वहा । अग्ने सख्यस्य बोधि नः ॥ २२ ॥
९२३ यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम् । स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥ २३ ॥
९२४ वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः । स्याम ते सुमतावपि ॥ २४ ॥

अर्थ— [९१९] हे (अग्ने) अग्ने ! (मनीषिणः त्वां मनको सन्मार्ग पर चलानेवाले ज्ञानके अभिलाषी तुझको चाहते हैं। और (त्वां चित्तिभिः हिन्वन्ति) तुझको कर्मोंसे प्रसन्न करते हैं। (नः गिरः त्वां वर्धन्तु) हमारी स्तुतियाँ भी तुझको ही बढावें ॥ १९ ॥

[९२०] (अदब्धस्य, स्वधावतः दूतस्य रेभतः अग्नेः) विनाशरहित, बलवान्, देवोंके दूत, ज्ञानके उपदेष्टा अग्निके (सख्यं सदा वृणीमहे) मैत्रीको हम सदा स्वीकार करते हैं ॥ २० ॥

[९२१] (शुचिव्रततमः, शुचिः विप्रः, शुचिः कविः) अत्यन्त पवित्र कर्मोंवाला, पवित्र मेधावी विद्वान्, शुद्ध दूरदर्शी ऐसे गुणोंसे युक्त (अग्निः शुचिः आहुतः रोचते) अग्नि शुद्धतासे दिये आहुतियों द्वारा सुशोभित होता है ॥ २१ ॥

[९२२] (उत अग्ने) और भी हे अग्ने ! (मम धीतयः गिरः त्वा विश्वहा वर्धन्तु) मेरे उत्तम कर्म और मेरी वाणियाँ तुझको सर्वदा बढावें। और तू (नः सख्यस्य बोधि) हमारे मित्र भावको जान ॥ २२ ॥

[९२३] हे (अग्ने) अग्ने ! (यत् अहं त्वं स्यां) जो मैं तू हो जाऊँ, और (त्वं वा घ अहं स्याः) तू मैं बन जा, तब (इह ते आशिषः सत्याः स्युः) इस लोकमें तेरे आशीर्वाद सत्य हों ॥ २३ ॥

[९२४] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (विभावसुः वसुः वसुपतिः असि) दीप्तियुक्त, सबको बसानेवाला और समस्त धनोंका स्वामी है। (हि अपि कं ते सुमतौ स्याम) निश्चयसे हम सब भी सुखकी कामना करते हुये तेरी सुमतिमें रहनेवाले हों ॥ २४ ॥

१ कं ते सुमतौ स्याम— सुखकी कामना करनेवाले इस अग्निके उत्तम बुद्धिके अनुकूल चलें।

भावार्थ— यह अग्नि अविनाशी, बलवान् और हमेशा ज्ञानका उपदेश देता है। इसके साथ मैत्री करनेवाले हमेशा आनन्दमें रहते हैं, इसलिए ज्ञानीजन उसके साथ सदा मैत्री रखते हैं (मनीषी) मनको सदा उत्तम मार्ग पर चलानेवाले ज्ञानी इस अग्निको सदा अपने उत्तम कर्मोंसे सन्तुष्ट करते हैं ॥ १९-२० ॥

राष्ट्रका नायक अत्यन्त पवित्र कर्मोंको करनेवाला, पवित्र बुद्धिवाला तथा दूरदर्शी हो। उसकी बुद्धि सदा राष्ट्रोन्नतिके कामोंमें ही लगे, तथा हर काम दूरके परिणामोंपर विचार करके ही करे। इस प्रकार वह नायक अपने उत्तम उपदेशों द्वारा प्रजाको बढाता रहे, और सभी उसके मित्र बनें ॥ २१-२२ ॥

उपासककी तन्मयता अपने उपास्यमें इतनी प्रगाढ होनी चाहिए कि उपासक और उपास्यमें किसी प्रकारकी भिन्नता न रह जाए। जब उपासक उपास्यमें मिल जाता है और उपास्य उपासकमें, तब उन दोनोंमें सारी भिन्नतायें समाप्त हो जाती हैं और वे दोनों एक हो जाते हैं, तब उपासक उस तेजोमय परमात्माके अविनाशी आशीर्वाद अर्थात् आनन्दका उपभोग करता है ॥ २३ ॥

जो इस अग्निकी उत्तम बुद्धिके अनुकूल अपना आचरण बनाता है, वह उत्तम तेजसे युक्त होकर समस्त धनोंका स्वामी बनता है ॥ २४ ॥

९२५ अग्ने धृतव्रताय ते समुद्रायेव सिन्धवः । गिरो वाश्रास ईरते ॥ २५ ॥
९२६ युवानं विश्पतिं कविं विश्वादं पुरुवेपसम् । अग्निं शुम्भामि मन्मभिः ॥ २६ ॥
९२७ यज्ञानां रथ्ये वयं तिग्मजम्भाय वीळवे । स्तोमैरिषेमाग्नये ॥ २७ ॥
९२८ अयमग्ने त्वे अपि जरिता भूतु सन्त्य । तस्मै पावक मृळय ॥ २८ ॥
९२९ धीरो ह्यस्यद्मसद् विप्रो न जागृविः सदा । अग्ने दीदयसि द्यवि ॥ २९ ॥
९३० पुराग्ने दुरितेभ्यः पुरा मृध्रेभ्यः कवे । प्र ण आयुर्वसो तिर ॥ ३० ॥

[४५]

(ऋषिः— त्रिशोकः काण्वः । देवता— इन्द्रः, १ अग्नीन्द्रौ । छन्दः— गायत्री ।)

९३१ आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥

अर्थ— [९२५] हे (अग्ने) अग्ने ! (वाश्रासः गिरः धृतव्रताय ते ईरते) मेरी सुन्दर शब्दवाली स्तुतियाँ उत्तम कर्मोंको धारण करनेवाले तेरी ओर उसी तरह जाती हैं (इव सिन्धवः समुद्राय) जिस प्रकारसे नदियां समुद्रकी ओर जाती हैं ॥ २५ ॥

[९२६] (युवानं विश्पतिं कविं विश्वादं) नित्य तरुण, प्रजाओंके स्वामी, ज्ञानी, सम्पूर्ण हविको भक्षण करनेवाले और (पुरुवेपसं अग्निं मन्मभिः शुम्भामि) नाना प्रकारके उत्तम कर्मोंके कर्ता ऐसे अग्निको मैं मननीय स्तोत्रोंसे अलंकृत करता हूँ ॥ २६ ॥

[९२७] (यज्ञानां रथ्ये तिग्मजम्भाय वीळवे अग्नये) यज्ञोंके बीचमें नायक, तीक्ष्ण ज्वालावाले, बलवान् अग्निके लिये (वयं स्तोमैः इषेम) हम सब स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ २७ ॥

[९२८] हे (पावक सन्त्य अग्ने) शुद्ध करनेवाले भजनीय अग्ने ! (अयं जरिता, त्वे अपि भूतु) यह स्तुतिकर्ता तुझमें मग्न हो । तू (तस्मै मृळय) उस स्तुतिकर्ताको सुखी कर ॥ २८ ॥

[९२९] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (विप्रः न हि धीरः असि) मेधावी पुरुषके समान धीर है । (अद्मसत् जागृविः) हविको भक्षण करते हुये प्रजाके हितमें सदा चैतन्य रहता है । और (सदा द्यवि दीदयसि) हमेशा अन्तरिक्षमें प्रकाशता है ॥ २९ ॥

[९३०] हे (कवे वसो अग्ने) ज्ञानी तथा सबको बसानेहारे अग्ने ! (दुरितेभ्यः पुरा, मृध्रेभ्यः पुरा) पापोंसे पूर्व और हिंसकोंके आक्रमणके पूर्वही (नः आयुः प्रतिर) हमारी आयु अर्थात् जीवनशक्तिकी वृद्धि कर ॥ ३० ॥

[४५]

[९३१] (ये) जो मनुष्य (घ अग्निं आ इन्धते) उत्तमतासे अग्निको प्रज्वलित करते हैं, तथा (येषां युवा इन्द्रः सखा) जिनका तरुण इन्द्र मित्र है, वे (बर्हिः आनुषक् स्तृणन्ति) आसनको ठीक तरह बिछाते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— सभी उपासक अपनी अपनी रीतिसे नित्य तरुण, समस्त प्रजाओंके स्वामी, नाना प्रकारके उत्तम कर्मोंके कर्ता इस अग्निकी स्तुति करते हैं, पर सब स्तुतियां उत्तम व्रतोंको धारण करनेवाले इस अग्निकी तरफ उसी प्रकार जाती हैं, जिस प्रकार नदियां समुद्रकी तरफ ॥ २५-२६ ॥

यज्ञोंको उत्तम रीतिसे चलाकर उन्हें पूर्ण करनेवाला, तीक्ष्ण ज्वालाओंवाला बलवान् अग्नि उसी स्तोताको सुखी करता है, जो उसकी उपासनामें पूरी तरह मग्न हो जाता है ॥ २७-२८ ॥

यह अग्नि सदा उत्तम बुद्धिको प्रदान करता है और प्रजाओंमें सदा जागृत रहता है । मनुष्य भलेही सो जाए, पर यह अग्नि उसमें भी प्राणके रूपमें सदा जागता रहता है । यह अग्नि जिस मनुष्यमें जितना बलवान् होता है, वह मनुष्य उतनाही शक्तिमान् होता है । पापी और हिंसक उस मनुष्यका कुछ भी नहीं बिगाड सकते, इस प्रकार वह दीर्घायु प्राप्त करके चिरकालतक आनन्दसे जीवन गुजारता है ॥ २९-३० ॥

जो अग्नि जलाते हैं, और आसन बिछाते हैं, उनका तरुण इन्द्र मित्र होता है । यज्ञ करनेवालोंका इन्द्र मित्र होता है ॥ १ ॥

+

९३२ बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥
९३३ अयुद्ध इद् युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३ ॥
९३४ आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छद् वि मातरम् । क उग्राः के ह शृण्विरे ॥ ४ ॥
९३५ प्रति त्वा शवसी वदद् गिरावप्सो न योधिषत् । यस्ते शत्रुत्वमाचके ॥ ५ ॥
९३६ उत त्वं मघवञ्छृणु यस्ते वष्टि ववक्षि तत् । यद् वीळयासि वीळु तत् ॥ ६ ॥
९३७ यदाजिं यात्याजिकृदिन्द्रः स्वश्वयुरुप । रथीतमो रथीनाम् ॥ ७ ॥
९३८ वि षु विश्वा अभियुजो वज्रिन् विष्वग्यथा वृह । भवा नः सुश्रवस्तमः ॥ ८ ॥

अर्थ— [९३२] (येषां युवा इन्द्रः सखा) जिनका तरुण इन्द्र मित्र है (एषां) इनकी (इध्म बृहत् इत्) समिधा बडी होती है (शस्त भूरि) स्तोत्र बडा होता है और (स्वरुः पृथुः) यज्ञ भी विशाल होता है ॥ २ ॥

[९३३] (येषां युवा इन्द्रः सखा) जिनका तरुण इन्द्र मित्र होता है, वह (शूरः) वह वीर (अ-युद्धः इत्) युद्धके बिना ही (युधावृतं) योद्धाओंसे घिरे हुए शत्रुको (सत्वभिः) अपने बलोंसे (आजति) नम्र कर देता है ॥ ३ ॥

[९३४] (जातः वृत्र-हा) उत्पन्न होते ही इन्द्रने (बुन्दं आ ददे) धनुष्बाण हाथमें लिया और अपनी (मातरं विपृच्छत्) मातासे पूछा कि (के के उग्राः शृण्विरे) कौन कौन वीर सुने जाते हैं ॥ ४ ॥

बुन्दः-बाण "बुन्द इषुर्भवति, बुन्दो वा, भिन्दो वा, भयदो वा, भासमानो द्रवती ति वा" (निरु. ६।६।४) बुन्द बाण होता है, क्योंकि यह शत्रुओंको तोडता है, उन्हे डराता है, और चमकता हुआ चलता है।

[९३५] तब हे इन्द्र ! (त्वा शवसी प्रति वदत्) तुझसे तेरी बलवती माता बोली कि (यः ते शत्रुत्वं आ चके) जो तेरे साथ शत्रुता करता है, वह (गिरौ अप्सः न) पहाडमें हाथीके समान (यो धिषत्) युद्ध करता है ॥ ५ ॥

[९३६] (उत) और भी हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (त्वं शृणु) तुम सुनो, (यः ते वष्टि) जो तुमसे (धनादि) मांगता है, (तत् ववक्षि) वह उसे दो, तथा (यद् वीळयासि) जिसे तुम बलवान् करते हो, (तत् वीळु) वह सामर्थ्यवान् होता है ॥ ६ ॥

[९३७] (यत्) जब (आजि कृत इन्द्रः) युद्ध करनेवाला इन्द्र (सु-अश्व-युः) उत्तम घोडोंको जोडनेवाला (आजिं उप याति) युद्ध करनेके लिए जाता है, तब (रथीनां रथीतमः) सब रथियोंमें सर्वश्रेष्ठ रथी होता है ॥ ७ ॥

[९३८] हे (वज्रिन्) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! तुम (विश्वा अभियुजः) सम्पूर्ण शत्रुओंको (यथा) जैसे हो वैसे (विष्वग्) चारों ओरसे (वि वृह) मारो, तथा (नः सु-श्रवः तमः भव) हमारे मध्यमें उत्तम यशवाले बनो ॥ ८ ॥

भावार्थ— जिनका तरुण इन्द्र मित्र होता है, इनका स्तोत्र विशाल होता है और उनका यज्ञ भी विशाल होता है ॥ २ ॥

जिसका इन्द्र मित्र होता है, वह युद्धके बिना ही शत्रुको अपनी शक्तिसे नम्र कर देता है ॥ ३ ॥

इन दोनों मंत्रोंमें माता अपने पुत्रको वीर कैसे बना सकती है, यह बताया गया है। जब पुत्र अपनी मातासे शत्रुओंके बारेमें पूछे, तो वह अपने बच्चेको घबराहटमें न डालकर उसे प्रेरणा और उत्साह दे ॥ ४-५ ॥

जो इस इन्द्र धनादि मांगता है, उसे वह देता है और उस धनसे वह बलवान् और सामर्थ्यवान् होता है ॥ ६ ॥

युद्ध करनेवाला इन्द्र उत्तम घोडोंकी इच्छा करते हुए शत्रुओंसे युद्ध करता है, पश्चात् उन्हें हराकर उनके घोडे छीन लेता है ॥ ७ ॥

हे वज्रधारी इन्द्र ! सम्पूर्ण शत्रुओंको चारों ओरसे मारो और हमारे बीचमें उत्तम यशवाले होओ। जो वीर प्रजाओंके शत्रुओंको मारता है, वह प्रजाओंमें प्रशंसित होता है ॥ ८ ॥

९३९ अस्माकं सु रथं पुर इन्द्रः कृणोतु सातये । न यं धूर्वन्ति धूर्तयः ॥ ९ ॥
९४० वृज्याम ते परि द्विषो ऽरं ते शक्र दावने । गमेमेदिन्द्र गोमतः ॥ १० ॥
९४१ शनैश्चिद् यन्तो अद्रिवो ऽश्वावन्तः शतग्विनः । विवक्षणा अनेहसः ॥ ११ ॥
९४२ ऊर्ध्वा हि ते दिवेदिवे सहस्रा सूनृता शता । जरितृभ्यो विमंहते ॥ १२ ॥
९४३ विद्मा हि त्वा धनंजय मिन्द्र दृळहा चिदारुजम् । आदारिणं यथा गयम् ॥ १३ ॥
९४४ ककुहं चित् त्वा कवे मन्दन्तु धृष्णविन्दवः । आ त्वा पणिं यदीमहे ॥ १४ ॥

अर्थ— [९३९] (यं धूर्तयः न धूर्वन्ति) जिस इन्द्रकी शत्रु हिंसा नहीं कर सकते वह (इन्द्रः) इन्द्र (अस्माकं सातये) हमारे लाभके लिए (सु-रथं पुरः कृणोतु) अपने उत्तम रथको आगे करे ॥ ९ ॥

१ यं धूर्तयः न धूर्वन्ति- उस इन्द्रकी शत्रुके लोग हिंसा नहीं कर सकते ।

२ सुरथं पुरः कृणोतु- अपने उत्तम रथको आगे करता है ।

[९४०] हे (शक्र) सामर्थ्यवान इन्द्र ! हम (ते द्विषः अरं परि वृज्याम) तेरे शत्रुओंसे पूर्ण रीतिसे दूर रहेंगे । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (दावने) दानके समय (गोमतः ते) गौवोंवाले तुमको (गमेम इत्) अवश्य प्राप्त करेंगे ॥ १० ॥

द्विषः अरं परि वृज्याम- हम शत्रुओंसे दूर रहेंगे ।

[९४१] हे (अद्रि-वः) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! (शनैः चिद् यन्तः) धीरे धीरे चलते हुए हम (अश्वावन्तः) घोडोंसे युक्त, (शतग्विनः) सैकडों गौवोंसे युक्त (वि-वक्षणाः) संपत्ति लानेवाले तथा (अनेहसः) निष्पाप हों ॥ ११ ॥

शनैः चिद् यन्तः विवक्षणाः अनेहसः- धीरे धीरे चलकर हम संपत्तिवान तथा निष्पाप होंगे ।

[९४२] हे इन्द्र ! (ते जरितृभ्यः) तुम्हारे स्तोताओंको [यजमान] (दिवेदिवे) प्रतिदिन (शता सहस्रा ऊर्ध्वा सूनृता) सैकडों, हजारों प्रकारके उत्तम धन (हि वि मंहते) देता है ॥ १२ ॥

१ सूनृता- वाणीकी देवी, उत्तम गान, अन्न, धन

२ मंहते- देना ' मंहतिर्दानकर्मा '

[९४३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (धनंजयं) धनको जीतनेवाले, (दृळहा चित् आरुजं) दृढ दुर्गोंको भी तोडनेवाले, (आदारिणं) शत्रुओंको मारनेवाले (त्वा हि) तुमको हम (गयं यथा) घरके समान [आश्रय] (विद्म) समझते हैं ॥ १३ ॥

१ धनंजयं दृळहा चित् आरुजं आदारिणं त्वा विद्म- तू युद्धमें विजयी, दृढ शत्रुको तोडनेवाला, शत्रुको मारनेवाला है ऐसा हम जानते हैं ।

[९४४] हे (कवे, धृष्णो) दूरदर्शी तथा शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्र ! (यत्) जब हम (ककुहं त्वा) सर्वश्रेष्ठ तुमसे (पणिं) धन (ईमहे) चाहते हैं, तब हमारे (इन्दवः चित् त्वा मन्दन्तु) सोम तुम्हें तृप्त करें ॥ १४ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र इतना सामर्थ्यवान् है कि उसकी हिंसा दुष्ट नहीं कर सकते । उपासक भी इन्द्रके शत्रुओंसे दूर ही रहें, क्योंकि जो इन्द्रके शत्रुओंसे मैत्री करेगा, वह इन्द्रका शत्रु ही होगा ॥ ९-१० ॥

हे इन्द्र ! हम धीरे धीरे उन्नति करते हुए गायोंवाले और घोडोंवाले हों तथा निष्पाप हों, क्योंकि तू अपने उपासकोंको हजारों तरहके दान देता है ॥ ११-१२ ॥

हे इन्द्र ! तू युद्धमें विजयी, दृढ शत्रुओंको तोडनेवाला और शत्रुओंको मारनेवाला है, ऐसा हम जानते हैं । साथ ही यह भी जानते हैं कि सोमसे तृप्त होकर तुम धन देते हो, अतः तुम हमारे सोमसे तृप्त होओ ॥ १३-१४ ॥

९४५ यस्ते रेवाँ अदाशुरिः प्रममर्ष मघत्तये । तस्य नो वेद आ भर ॥ १५ ॥
९४६ इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः । पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥ १६ ॥
९४७ उत त्वाबधिरं वयं श्रुत्कर्णं सन्तमूतये । दूरादिह हवामहे ॥ १७ ॥
९४८ यच्छुश्रूया इमं हवं दुर्मर्षं चक्रिया उत । भवेरापिर्नो अन्तमः ॥ १८ ॥
९४९ यच्चिद्धि ते अपि व्यथिर्जगन्वांसो अमन्महि । गोदा इदिन्द्र बोधि नः ॥ १९ ॥
९५० आ त्वा रम्भं न जिव्रयो ररम्मा शवसस्पते । उश्मसि त्वा सधस्थ आ ॥ २० ॥
९५१ स्तोत्रमिन्द्राय गायत पुरुनृम्णाय सत्वने । नकिर्यं वृण्वते युधि ॥ २१ ॥
९५२ अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ २२ ॥

अर्थ— [९४५] हे इन्द्र ! (यः अदाशुरिः रेवान्) जो कंजूस परंतु धनवान् मनुष्य (मघत्तये ते) धन देनेवाले तुमसे (प्र ममर्ष) ईर्ष्या करता है, (तस्य वेदः न आ भर) उसका धन हमारे लिए ले आ ॥ १५ ॥

[९४६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (इमे सोमिनः सखायः) ये सोमयाग करनेवाले मित्रजन (पुष्टावन्तः) पुष्टीकारक अन्न लेकर (पशुं यथा) पशुको देखते है उस तरह (वि चक्षते) तुम्हें देखते हैं ॥ १६ ॥

[९४७] हे इन्द्र ! (अबधिरं) बधिरतासे रहित (उत) और (श्रुत् कर्णं सन्तं) अच्छी तरहसे सुननेवाले (त्वा) तुमको (वयं) हम (ऊतये) संरक्षणके लिए (दूरात् इह) दूरसे यहां (हवामहे) बुलाते हैं ॥ १७ ॥

वयं त्वा ऊतये हवामहे— हम तुझे संरक्षणके लिये बुलाते हैं ।

[९४८] हे इन्द्र ! (यत्) जब (इमं हवं शुश्रूयाः) इस प्रार्थनाको सुनोगे, तो तुम (दुर्मर्षं चक्रियाः) असहनीय बल दिखावोगे, (उत) और (न अन्तिमः आपिः भवेः) हमारे निकटतम बन्धु हो जावोगे ॥ १८ ॥

[९४९] (अपि चित्) और भी हे इन्द्र ! (यत्) जब (व्यथिः जगन्वांस) दुःखसे पीडित और प्रवासी अवस्थामें रहे हम (ते अमन्महि) तेरी स्तुति करते हैं, तब (इन्द्र) इन्द्र ! (गो-दा इत्) गायोंको देकर (नः बोधि) हमारी प्रार्थनाको समझ लो ॥ १९ ॥

[९५०] हे (शवसः पते) बलके स्वामिन् इन्द्र ! हम (त्वा) तेरा (जिव्रयः रम्भं न) जैसे बूढे डंडेका सहारा लेते हैं, उसी प्रकार तेरा (आ ररभ्म) सहारा लेते है, और (सधस्थे) यज्ञमें हम (त्वा) तुम्हारी (आ उश्मसि) कामना करते हैं ॥ २० ॥

जिव्रयः रम्भं न— बुढे डंडा लेते हैं उस प्रकार,

आ ररभ्म— हम तेरा सहारा लेते हैं ।

[९५१] (यं युधि न किः वृण्वते) जिसे युद्धमें कोई नहीं हटा सकता, उस (सत्वने) बलशाली (पुरु-नृम्णाय) बहुत बडे पराक्रम करनेवाले (इन्द्राय) इन्द्रके (स्तोत्रं गायत) गुणोंका गान करो ॥ २१ ॥

१ यं युधि न किः वृण्वते— उस इन्द्रको युद्धमें कोई हटा नहीं सकता ।

[९५२] हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! मैं (सुते) सोमयागमें (त्वा पीतये) तेरे पीनेके लिए (सुतं अभि सृजामि) सोमरसको तैय्यार करता हूँ । हे इन्द्र ! तुम (तृम्प) तृप्त हो और (मदं वि अश्नुहि) उत्साहको प्राप्त होवो ॥ २२ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य धनवान् होने पर भी कंजूसी करता है और यज्ञादि नहीं करता, उसका सारा धन इन्द्र ले लेता है । वह निर्धन हो जाता है । पर जो यज्ञ करते हैं, वे अन्न तथा पशुओंसे युक्त होकर समृद्ध होता है ॥ १५-१६ ॥

हे इन्द्र ! प्रार्थनाओंको ध्यानपूर्वक सुननेवाले तुम्हें हम अपनी रक्षाके लिए बुलाते हैं, तुम हमारे पास आकर अपने श्रेष्ठ सामर्थ्यको दिखाओ तथा हमारी रक्षा करके हमारे निकटतम बन्धु हो जाओ ॥ १७-१८ ॥

हे इन्द्र ! जब हम प्रवासीकी अवस्थामें होकर पीडित हो रहे हों और तब तुम्हारी शरणमें आनेकी इच्छासे तुम्हारी प्रार्थना करते हों, तब तुम हमें अपनी शरणमें लो और जिस तरह बूढोंके लिए डंडा सहारा देता है, उसी तरह तुम हमें सहारा दो ॥ १९-२० ॥

हे स्तोताओ ! जिस इन्द्रको युद्धमें कोई हटा नहीं सकता, उस इन्द्रकी स्तुति तुम गाओ और उसे सोमरस प्रदान करो, ताकि वह सोमके उत्साहमें तुम्हारी हर तरहकी सहायता करे ॥ २१-२२ ॥

९५३ मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् । माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥ २३ ॥
९५४ इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे । सरो गौरो यथा पिब ॥ २४ ॥
९५५ या वृत्रहा परावति सना नवा च चुच्युवे । ता संसत्सु प्र वोचत ॥ २५ ॥
९५६ अपिबत् कद्रुवः सुत–मिन्द्रः सहस्रबाह्वे । अत्रादेदिष्ट पौंस्यम् ॥ २६ ॥
९५७ सत्यं तत् तुर्वशे यदौ विदानो अह्नवाय्यम् । व्यानट् तुर्वणे शमि ॥ २७ ॥
९५८ तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः । समानमु प्र शंसिषम् ॥ २८ ॥
९५९ ऋभुक्षणं न वर्तव उक्थेषु तुग्र्यावृधम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २९ ॥
९६० यः कृन्तदिद् वि योन्यं त्रिशोकाय गिरिं पृथुम् । गोभ्यो गातुं निरेतवे ॥ ३० ॥

अर्थ —[९५३] हे इन्द्र ! (मूराः अविष्यवः) मूर्ख परंतु अपने रक्षणकी इच्छा करनेवाले मनुष्य (मा त्वा आ दभन्) तुझे कष्ट न दें। (उपहस्वानः मा) उपहास करनेवाले भी तुझे कष्ट न दें। तू (ब्रह्म द्विषः) ज्ञानका द्वेष करनेवालोंका (माकीं वनः) आश्रय मत बन ॥ २३ ॥

[९५४] हे इन्द्र ! (इह) यहां यज्ञमें मनुष्य (महे राधसे) बडे धनके लिए (गो–परीणसा) गौ–दुग्ध मिश्रित सोमके द्वारा (त्वा मन्दन्तु) तुम्हें आनन्दित करें, और तुम सोमको (गौरः सरः यथा) जैसे सफेद हिरण पानी पीता है उसी प्रकार (पिब) पियो ॥ २४ ॥

[९५५] (वृत्रहा) वृत्र वधकर्ता इन्द्रने (परावति) पूर्व समयमें (या) जो (सना नवा च) पुराने और नये धन (चुच्युवे) दिये (ता) उनका तुम (सं सत्सु) सभाओंमें (प्र वोचत) वर्णन करो ॥ २५ ॥

[९५६] (कद्रुवः सुतं) कद्रु ऋषि द्वारा निकाले गए सोमको (इन्द्रः अपिबत्) इन्द्रने पिया, और (सहस्र–बाह्वे) हजारों भुजाओंवाले [शत्रुको मारा] (अत्र) इस समय उग्र इन्द्रका (पौंस्यं अदेदिष्ट) पौरुष चमका ॥ २६ ॥

[९५७] हे इन्द्र ! (तुर्वशे यदौ) तुर्वश और यदुके (तत् सत्यं शमि विदानः) उस सत्य कर्मको जान कर [उनके लिए] (अह्नवाय्यं) अह्नवाय्य नामक शत्रुको तुर्वणे) संग्राममें (वि–आनट्) मारा ॥ २७ ॥

शमि–कर्म ' शची शमी इति कर्मनामसु पाठात् '

[९५८] मैं (वः जनानां) तुम मनुष्योंको (तरणिं) [दुःखोंसे] तारनेवाले, (त्रदं) शत्रुको मारनेवाले, (गो–मतः वाजस्य) गौयुक्त अन्न देनेवाले इन्द्रकी (समानं उ प्रशंसिषं) समान रूपसे प्रशंसा करता हूँ ॥ २८ ॥

जनानां तरणिं त्रदं प्रशंसिषम्– जनोंको दुःखोंसे तारनेवाले, शत्रुको मारनेवाले वीरकी प्रशंसा करता हूं।

[९५९] (ऋभुक्षणं) महान् (न) और (तुग्र्यावृधं) जलको बढानेवाले (इन्द्रं) इन्द्रका (सुते सोमे) सोम यज्ञमें (वर्तवे) वरण करनेके लिए (सचा) एक साथ बैठकर (उक्थेषु) स्तोत्रोंके द्वारा [गुणगान करते हैं] ॥ २९ ॥

१ ऋभु–क्षणः– कारीगरोंका निवास करनेवाला, महान्।

[९६०] (यः इत्) जिस इन्द्रने (योन्यं) जलके लिये (पृथुं गिरिं) महान् बादलको (त्रि शोकाय) त्रिशोक ऋषिके लिए (वि कृन्तद्) तोडा वही (गोभ्यः निरेतवे) जलोंके जानेके लिए लिए (गातुं) पृथ्वी पर [मार्ग बनाता है] ॥ ३० ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जिस किसी भी उपायसे अपनी रक्षा करनेवाले मूर्ख तथा तेरा उपहास करनेवाले तुझे कष्ट न दें अपितु जो सत्पुरुष हैं, वे तुम्हें सदा आनन्दित करते रहें ॥ २३–२४ ॥

इन्द्रने हजारों भुजाओंवाले शत्रुको मारा तब उसका बल चमका और तब उसने धन दिए और उसकी प्रशंसा सर्वत्र होने लगी ॥ २५–२६ ॥

इन्द्रने वीरोंके सत्य कर्मको जानकर उनके लिए अनेक शत्रुओंको मारा। ऐसे जनोंको दुःखोंसे तारनेवाले, शत्रुको मारनेवाले वीरकी प्रशंसा सर्वत्र होती है ॥ २७–२८ ॥

इन्द्र महान् और जलको बढानेवाला है। वही मेघोंको तोडकर पानी बरसाता है और उन बरसे हुए जलोंको प्रवाहित करनेके लिए पृथ्वी पर मार्ग बनाता है ॥ २९–३० ॥

९६१ यद् दधिषे मनस्यसि मन्दानः प्रेदियक्षसि । मा तद् करिन्द्र मृळय ॥ ३१ ॥
९६२ दुभ्रं चिद्धि त्वावतः कृतं शृण्वे अधि क्षमि । जिगातिविन्द्र ते मनः ॥ ३२ ॥
९६३ तवेदु ताः सुकीर्तयो ऽसन्नुत प्रशस्तयः । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ ३३ ॥
९६४ मा न एकस्मिन्नागसि मा द्वयोरुत त्रिषु । वधीर्मा शूर भूरिषु ॥ ३४ ॥
९६५ बिभया हि त्वावत उग्रादभिप्रभङ्गिणः । दस्मादहमृतीषहः ॥ ३५ ॥
९६६ मा सख्युः शूनमा विदे मा पुत्रस्य प्रभूवसो । आवृत्वद् भूतु ते मनः ॥ ३६ ॥

अर्थ— [९६१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मन्दानः) प्रसन्न होकर (यद् दधिषे) जिस धनको तुम धारण करते हो, (मनस्यसि) जिसकी इच्छा करते हो, (प्र इत् इयक्षसि) जिसका दान करते हो, (तत् मा कः) वह [मेरे लिए] क्यो नहीं करते हो, हे इन्द्र ! (मृळय) हमें सुखी करो ॥ ३१ ॥

[९६२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वावतः) तुम्हारे समान देवताका (दभ्रं चित् हि कृतं) थोडासा भी कार्य (क्षमि अधि) पृथ्वी पर (शृण्वे) प्रसिद्ध हो जाता है । (ते मनः) तुम्हारा ध्यान (जिगातु) मेरे ऊपर हो ॥ ३२ ॥

[९६३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् नः मृळयासि) जब हमें सुखी करते हो, तब (तव इत्) तुम्हारी ही (सु-कीर्तयः प्रशस्तयः असन्) उत्तम कीर्ति और प्रशंसा होती है ॥ ३३ ॥

[९६४] हे (शूर) शूरवीर इन्द्र ! (एकस्मिन् आ गसि) एक अपराधके होने पर (नः मा वधीः) हमें मत मार (द्वयोः उत त्रिषु मा) दो या तीन अपराधोंके होने पर भी हमें न मार और (भूरिषु मा) बहुत अपराध हो जाने पर भी हमें न मार ॥ ३४ ॥

[९६५] हे इन्द्र ! (त्वावतः) तुम्हारे समान (उग्राद्) वीरसे (अभि-प्रभंगिणः) शत्रुओं पर प्रहार करनेवाले, (दस्माद्) पापियोंके विनाशक (ऋतीषहः) शत्रुओंको पराजित करनेमें समर्थ देवसे (अहं) मैं (बिभय) हमेशा डरूं ॥ ३५ ॥

> उग्रात् अभि प्रभंगिणः दस्मात् ऋतीषाहः अहं बिभय– वीरसे, शत्रुओंपर प्रहार करनेवाले, शूरसे, पापियोंके विनाशकसे शत्रुओंको पराजित करनेवालेसे मैं डरता हूं ।

[९६६] हे (प्रभूवसो) बहुत ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! मैं (सख्युः शूनं मा चि आ विदे) अपने मित्रके धनको मैं नहीं मांगता (पुत्रस्य मा) न पुत्रके धनको मैं नहीं मांगता, (ते मनः आवृत्वद् भूतु) तेरा मन मेरी ओर हो जाए ॥ ३६ ॥

> १ सख्युः पुत्रस्य शूनं मा आ विदे– मैं अपने मित्र और पुत्रके धनको मैं नहीं मांगता हूं ।
> २ ते मनः आवृत्वात् भूतु– तेरा मन मेरी ओर अनुकूल होकर आ जाय ।

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू प्रसन्न होकर जिस धनको धारण करता है, तथा जिसकी इच्छा करता है, जिसका दान करता है, वह धन तू हमें प्रदान कर, तेरा छोटा भी कार्य पृथ्वी पर अत्यधिक प्रशंसित होता है ॥ ३१-३२ ॥

यह इन्द्र ! सत्पुरुषोंकी प्रशंसा करता है, इसीलिए इसकी सर्वत्र प्रशंसा होती है । हे इन्द्र ! यदि हमसे कोई छोटा-मोटा अपराध हो गया हो, तो उस अपराधके कारण हमें मत मारो ॥ ३३-३४ ॥

शत्रुओं पर प्रहार करनेवाले शूरसे, पापियोंके विनाशकसे और शत्रुओंको पराजित करनेवाले इन्द्रसे डरना चाहिए। मनुष्य अपने मित्र और पुत्रके धनको हडपनेका प्रयत्न कभी न करे ॥ ३५-३६ ॥

९६७ को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमब्रवीत् । जहा को अस्मदीषते ॥ ३७ ॥
९६८ एवारे वृषभा सुते असिन्वन् भूर्यावयः । श्वघ्नीव निवता चरन् ॥ ३८ ॥
९६९ आ त एता वचोयुजा हरी गृभ्णे सुमद्रथा । यदीं ब्रह्मभ्य इद्ददः ॥ ३९ ॥
९७० भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४० ॥
९७१ यद्वीळाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४१ ॥
९७२ यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४२ ॥

अर्थ— [९६७] हे (मर्याः) मनुष्यो ! (अ-मिथितः सखा) क्रोधरहित मित्र इन्द्र (सखायं अब्रवीत्) अपने मित्रसे पूछता है, कि मैंने (कः नु जहा) किस [निरपराध मनुष्य] को मारा, या (कः अस्मत् ईषते) कौन मुझसे दूर भागता है ॥ ३७ ॥

[९६८] हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! (एवारे सुते) एवार नामक मनुष्यके सोमयाग करने पर (निवता चरन् श्वघ्नी आवयः इव) पहाडोंमें विचरनेवाला शिकारी जैसे जवान पशुओंको प्राप्त करता है, उसी प्रकार उसको भी (भूरि असिन्वन्) बहुत धन तुमने दिया ॥ ३८ ॥

१ निवत्— घाटी, पर्वतकी उपत्यका

[९६९] हे इन्द्र ! मैं (ते) तुम्हारे (वचः युजा) कहनेसे ही रथमें जुड जानेवाले (सं-उद्-रथा) तथा रथको उत्तमतासे ढोनेवाले (एता हरी) इन घोडोंको मैं अपने पास (आ गृभ्णे) बुलाता हूँ (यत्) जब (ईं) इस धनको तुमने (ब्रह्मभ्यः इत् ददः) ब्राह्मणोंके लिए ही दिया ॥ ३९ ॥

[९७०] हे इन्द्र ! (विश्वाः द्विषः) सम्पूर्ण शत्रुओंको (अप भिन्धि) मार दो, तथा (बाधः मृधः परि जहि) हिंसक शत्रुओंको दूर करो, तथा (तत् स्पार्हं वसु आ भर) उस उत्तम धनको ले आओ ॥ ४० ॥

[९७१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् वीळौ) जो धन सुदृढ स्थानमें है, (यत् स्थिरे) जो धन स्थिर भूमिमें है, तथा (यत् स्पर्शाने पराभृतं) जो धन स्पर्श न करने योग्य ऐसे स्थानमें रखा हुआ है, (तत् स्पार्हं वसु आ भर) उस उत्तम धनको ले आओ ॥ ४१ ॥

[९७२] (ते) तुम्हारे द्वारा (दत्तस्य) दिए गए (यस्य भूरेः) जिस उत्तम धनको (विश्व मानुषः वेदति) सभी मनुष्य जानते हैं, (तत् स्पार्हं वसु आ भर) उस स्पृहणीय धनको ले आओ ॥ ४२ ॥

भावार्थ— इन्द्र निरपराधी पर कभी क्रोध नहीं करता, इस लिए निरपराधी और सत्कर्म करनेवाला मनुष्य उस इन्द्रसे कभी दूर नहीं भागता, अपितु उससे प्रेम ही करता है। वह इन्द्र भी ऐसे सत्पुरुषको हर तरहसे ऐश्वर्यशाली बनाता है ॥ ३७-३८ ॥

इन्द्रके दोनों घोडे अच्छी तरहसे सुशिक्षित, संकेतमात्रसे रथमें जुड जानेवाले हैं। इन घोडोंकी सहायतासे इन्द्र सभी हिंसक शत्रुओंको दूर करता है ॥ ३९-४० ॥

सुदृढ स्थान, स्थिर स्थान और स्पर्श करनेके लिए कठिन ऐसे तीन स्थानोंमें धन सुरक्षित रखा जाता है। ऐसे स्थानोंमें रखे हुए धनको भी इन्द्र जानता है तथा वह उत्तम धन अपने उपासकोंको देता है ॥ ४१-४२ ॥

[४६]

(ऋषिः- वशोऽश्व्यः । देवताः- इन्द्रः, २१-२४ कानीतः पृथुश्रवाः; २५-२८, ३२ वायुः । छन्दः- गायत्री, १ पादनिचृत्, ५ ककुप्, ७ बृहती, ८ अनुष्टुप्, ९ सतोबृहती, ११-१२ विपरीतोत्तरः प्रगाथः = (बृहती, विपरीता), १३ द्विपदा जगती, १४ बृहती पिपीलिकमध्या, १५ ककुम्न्यंकुशिरा, १६ विराट्, १७ जगती, १८ उपरिष्टाद् बृहती, १९ बृहती, २० विषमपदा बृहती, २१, २४ पङ्क्तिः; २२ संस्तारपङ्क्तिः, २५-२८ प्रगाथः = (बृहती, सतोबृहती), ३० द्विपदा विराट्, ३१ उष्णिक्, ३२ पङ्क्तिः ।)

९७३ त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः । स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥ १ ॥
९७४ त्वां हि सत्यमद्रिवो विद्म दातारमिषाम् । विद्म दातारं रयीणाम् ॥ २ ॥
९७५ आ यस्य ते महिमानं शतमूते शतक्रतो । गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ॥ ३ ॥
९७६ सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मित्रः पान्त्यद्रुहः ॥ ४ ॥
९७७ दधानो गोमदश्ववत् सुवीर्यमादित्यजूत एधते । सदा राया पुरुस्पृहा ॥ ५ ॥
९७८ तमिन्द्रं दानमीमहे शवसानमभीर्वम् । ईशानं राय ईमहे ॥ ६ ॥

---

[४६]

अर्थ— [९७३] हे (पुरूवसो प्रणेतः हरीणां स्थातः इन्द्र) बहुतोंके निवासक, उत्तम नेता तथा घोडों पर स्वामित्व करनेवाले इन्द्र ! (वयं त्वावतः स्मसि) हम तेरे होकर ही रहें ॥ १ ॥

[९७४] हे (अद्रिवः) वज्रधारी इन्द्र ! (सत्यं) यह सत्य है कि हम (त्वां हि) तुझे ही (इषां दातारं विद्म) अन्नोंका देनेवाला मानते हैं, तुझे ही (रयीणां दातारं विद्म) धनोंका देनेवाला मानते हैं ॥ २ ॥

[९७५] हे (शतमूते शतक्रतो) सैकडों संरक्षणके साधन अपने पास रखनेवाले तथा सैकडों शुभ कर्म करनेवाले इन्द्र ! (यस्य ते महिमानं) जिस तेरी महिमाका (कारवः गीर्भिः गृणन्ति) स्तोता स्तुतियोंसे वर्णन करते हैं ॥ ३ ॥

[९७६] (यं अ-द्रुहः मरुतः अर्यमा मित्रः पान्ति) जिस मनुष्यकी द्रोह न करनेवाले मरुत्, अर्यमा और मित्र रक्षा करते हैं, (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (सुनीथः) उत्तम मार्गसे जानेवाला है, (घा) यह सत्य है ॥ ४ ॥

[९७७] (आदित्यजूतः) अखण्डनीय इन्द्रसे रक्षित हुआ मनुष्य (गोमत् अश्ववत् सुवीर्यं) गाय और घोडोंसे युक्त बलको (दधानः) धारण करता हुआ (एधते) सदा बढता है, तथा (पुरुस्पृहा राया) बहुतोंके द्वारा चाहने योग्य धनसे भी (सदा) हमेशा बढता है ॥ ५ ॥

[९७८] हम (शवसानं, अभीर्वं, ईशानं तं इन्द्रं) बल युक्त, निडर, सबके स्वामी उस इन्द्रसे (दानं ईमहे) दान मांगते हैं, (रायः ईमहे) धन मांगते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू अविनाशी, वज्रधारी, अन्नोंको देनेवाला तथा धनोंको देनेवाला है, अतः हम सदा तेरे ही होकर रहें ॥ १-२ ॥

हे इन्द्र ! तेरी महिमाका वर्णन सभी स्तोता करते हैं । तू तथा अन्य देव जिस मनुष्यकी रक्षा करते हैं, वह सदा उत्तम मार्गसेही जाता है । जो उत्तम मार्गसे जाता है, उसीकी रक्षा देवगण करते हैं ॥ ३-४ ॥

जो मनुष्य इन्द्रसे रक्षित होता है वह गाय और घोडोंसे युक्त होकर बलको धारण करता है और धनसे भी सदा बढता रहता है । अतः हम भी उस इन्द्रसे रक्षा की तथा धनकी कामना करते हैं ॥ ५-६ ॥

९७९ तस्मिन् हि सन्त्यूतयो विश्वा अभीरवः सचा ।
तमा वहन्तु सप्तयः पुरूवसुं मदाय हरयः सुतम् ॥ ७ ॥
९८० यस्ते मदो वरेण्यो य इन्द्र वृत्रहन्तमः ।
य आददिः स्वर्नृभि- र्यः पृतनासु दुष्टरः ॥ ८ ॥
९८१ यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता ।
स नः शविष्ठ सवना वसो गहि गमेम गोमति व्रजे ॥ ९ ॥
९८२ गव्यो षु णो यथा पुरा ऽश्वयोत रथया । वरिवस्य महामह ॥ १० ॥
९८३ नहि ते शूर राधसो ऽन्तं विन्दामि सत्रा ।
दशस्या नो मघवन्नू चिदद्रिवो धियो वाजेभिराविथ ॥ ११ ॥
९८४ य ऋष्वः श्रावयत्सखा विश्वेत् स वेद जनिमा पुरुष्टुतः ।
तं विश्वे मानुषा युगे- न्द्रं हवन्ते तविषं यतस्रुचः ॥ १२ ॥

अर्थ— [९७९] (तस्मिन्) उस इन्द्रके आश्रयमें (ऊतयः विश्वाः अ-भीरवः) रक्षा करनेवाली सब निडर सेनायें (सचा) एकसाथ रहती हैं । (तं पुरूवसुं मदाय) उस बहुत धनवान् इन्द्रके आनन्दके लिए (सप्तयः हरयः) वेगसे दौडनेवाले घोडे (सुतं आ वहन्तु) सोम यज्ञके प्रति इन्द्रको ले आवें ॥ ७ ॥

[९८०] हे इन्द्र ! (ते यः वरेण्यः मदः) जो तेरा श्रेष्ठ उत्साह है और (यः वृत्रहन्तमः) जो शत्रुओंको मारनेवाला है और (यः नृभिः स्वः आददिः) जो शत्रुसे मनुष्योंसे धन लूट लेता है, तथा (यः पृतनासु दुस्तरः) जो युद्धोंमें शत्रुओंसे पराजित नहीं होता [ऐसा उत्साह हमें प्राप्त हो] ॥ ८ ॥

[९८१] (यः वाजेषु दुस्तरः) जो उत्साह युद्धोंमें कठिनतासे परास्त करने योग्य, (श्रवाय्यः) बलशाली और (तरुता अस्ति) मनुष्योंका दुःखोंसे तारण करानेवाला है, (सः) वह, हे (विश्ववार शविष्ठ वसो) सबके द्वारा वरणीय, अत्यन्त बलवान् और सबको बसानेवाले इन्द्र ! तू (नः सवना आ गहि) हमारे यज्ञोंमें आ हम (गोमति व्रजे गमेम) गायोंसे युक्त बाडोंमें जायें ॥ ९ ॥

[९८२] हे (महामह) बहुत धनवान् इन्द्र ! (पुरा यथा) पहलेके समानही तू (नः गव्या अश्वया उत रथया) हमें गायें घोडे और रथ देनेकी इच्छासे (सु वरिवस्य) आज भी अच्छी तरहसे आ ॥ १० ॥

[९८३] हे शूर इन्द्र ! (सत्राहि) वह सत्य है कि मैं (ते राधसः अन्तं न विन्दामि) तेरे ऐश्वर्यका अन्त नहीं पाता हूँ । इसलिए हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (नः दशस्य) हमें धन दे, तथा हे (अद्रि-वः) शस्त्रधारी इन्द्र ! तू (वाजेभिः धियः आविथ) अपने बलोंसे हमारे कर्मोंकी रक्षा कर ॥ ११ ॥

[९८४] (यः ऋष्वः श्रावयत्सखा पुरुष्टुतः) जो महान्, यशस्वियोंका मित्र तथा बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्र है, (सः जनिमा वेद) वह हमारे सब जन्मोंको जानता है । (यतस्रुचः विश्वे मानुषाः) स्रुचासे आहुति देनेवाले सब मनुष्य (तं तविषं इन्द्रं) उस बलवान् इन्द्रके लिए (युगा हवन्ते) सदा हवन करते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ— सभी सेनायें उस इन्द्रके आश्रयमें रहती हैं इसीलिए निडर भी होती हैं । इन्द्रका उत्साह श्रेष्ठ है, शत्रुओंको मारनेवाला है और शत्रुओंसे कभी पराजित नहीं होता ॥ ७-८ ॥

इन्द्रका उत्साह युद्धोंमें शत्रुओंके द्वारा अजेय, बलदायक और मनुष्योंको दुःखोंसे तारनेवाला है । वह इन्द्र हमारे यज्ञोंमें आकर हमें गौवें प्रदान करके समृद्ध बनावे ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! तेरे ऐश्वर्यकी कोई सीमा नहीं है । तेरे पास गाय आदि पशुरूप समृद्धिकी भी कोई सीमा नहीं है । तू अपने बलोंसे हमारे कर्मोंकी रक्षा कर ॥ १०-११ ॥

+

९८५ स नो वाजेष्वविता पुरूवसुः पुरःस्थाता । मघवा वृत्रहा भुवत् ॥ १३ ॥
९८६ अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥ १४ ॥
९८७ ददी रेक्णस्तन्वे ददिर्वसु ददिर्वाजेषु पुरुहूत वाजिनम् । नूनमथ ॥ १५ ॥
९८८ विश्वेषामिरज्यन्तं वसूनां सासह्वांसं चिदस्य वर्पसः । कृपयतो नूनमत्यथ ॥ १६ ॥
९८९ महः सु वो अरमिषे स्तवामहे मीळ्हुषे अरंगमाय जग्मये ।
यज्ञेभिर्गीर्भिर्विश्वमनुषां मरुतामियक्षसि गाये त्वा नमसा गिरा ॥ १७ ॥
९९० ये पातयन्ते अज्मभिर्गिरीणां स्नुभिरेषाम् ।
यज्ञं महिष्वणीनां सुम्नं तुविष्वणीनां प्राध्वरे ॥ १८ ॥

अर्थ— [९८५] (पुरूवसुः, पुरः स्थाता, मघवा वृत्रहा सः) बहुतोंको बसानेवाला, सदा आगे रहनेवाला, ऐश्वर्यवान् तथा वृत्रको मारनेवाला वह इन्द्र (वाजेषु नः अविता भुवत्) युद्धोंमें हमारी रक्षा करनेवाला हो ॥ १३ ॥

[९८६] हे मनुष्यो ! (वः) तुम (अन्धसः मदेषु) सोमको निचुडजाने पर (वीरं विचेतसं, नाम श्रुत्यं, शाकिनं) वीर, विद्वान्, यशस्वी, प्रसिद्ध तथा बलवान् (इन्द्रं) इन्द्रका (यथा) जैसे मालूम हो वैसे (महा गिरा वचः) महान् स्तुत्य वाणियोंसे (गाय) गुणवर्णन करो ॥ १४ ॥

[९८७] हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र ! तू (नूनं) शीघ्र ही (तन्वे रेक्णं ददिः) मेरे शरीरकी पुष्टिके लिए धन दे, (वसुः ददि) निवास करानेवाले धन दे, तथा (नूनं) शीघ्र ही (वाजेषु वाजिनं ददिः) युद्धोंमें बल दे ॥ १५ ॥

[९८८] हम (विश्वेषां वसूनां इरज्यन्तं) सम्पूर्ण धनों पर शासन करनेवाले, (अस्य कृपयतः सासह्वांसं) इस सामर्थ्यवान् शत्रुको भी हरानेवाले इन्द्रकी (नूनं अति) निश्चयसे सबसे ज्यादा स्तुति करते हैं ॥ १६ ॥

[९८९] हम (मीळ्हुषे अरंगमाय जग्मये) बलवान्, सहायक, तथा सर्वत्र जानेवाले इन्द्रकी (अरं इषे) पर्याप्त अन्नकी प्राप्तिके लिए (यज्ञेभिः गीर्भिः) पूजनीय स्तोत्रोंसे (स्तवामहे) स्तुति करते हैं; (वः) तुम भी (महः सु) उस महान् इन्द्रकी उत्तम स्तुति करो। हे इन्द्र ! (विश्व मनुषां मरुतां इयक्षसि) सब मनुष्योंके द्वारा और मरुतोंके द्वारा तुम पूजे जाते हो, मैं (नमसा गिरा त्वा गाये) नम्रवाणीसे तेरा गुणवर्णन करता हूँ ॥ १७ ॥

[९९०] (ये) जो मरुत (अज्मभिः स्नुभिः) बलों और प्रवाहोंसे युक्त (एषां) इन (गिरीणां) पर्वतोंके जलोंको (पातयन्ते) नीचे गिराते हैं, उन (महिष्वणीनां) बहुत गर्जना करनेवाले मरुतोंके लिए मैं (यज्ञं) यज्ञ करता हूँ, उन (तुविष्वणीनां) बडी गर्जना करनेवाले मरुतोंकी सहायतासे (अध्वरे सुम्नं) यज्ञमें सुख प्राप्त करता हूँ ॥ १८ ॥

भावार्थ — यह इन्द्र महान्, यशस्वियोंका मित्र, अनेकोंके द्वारा प्रशंसित और हमारे सब जन्मोंका ज्ञाता है। इस इन्द्रको सभी प्राणि युगों-युगोंसे बुलाते हैं और यह इन्द्र अपने उपासकोंकी रक्षा करता है ॥ ११-१३ ॥

हे स्तोता ! तू सोमको निचोडकर तू जैसा जानता है, वैसा ही तू अपने शब्दोंमें उस बलवान् इन्द्रकी स्तुति कर। वह इन्द्र भी तुझे तेरे शरीरकी पुष्टिके लिए धन देगा और युद्धोंमें शत्रुओंका नाश करनेके लिए बल देगा ॥ १४-१५ ॥

संपूर्ण धनों पर शासन करनेवाले सामर्थ्यशाली शत्रुको भी हरानेवाले इन्द्रकी हम सबसे अधिक स्तुति करें ॥ १६ ॥

बलवान्, सहायक और सर्वत्र जानेवाले इन्द्रकी उत्तम रीतिसे स्तुति करनी चाहिए, ताकि हमें उत्तम समृद्धि प्राप्त हो। इन्द्रकी सदा नम्रवाणीसे ही स्तुति करनी चाहिए ॥ १७ ॥

बलके प्रवाहोंसे युक्त तथा जलके प्रवाहोंको बहानेवाले, अत्यधिक गर्जना करनेवाले मरुतोंकी हर तरहसे पूजा और सत्कार करना चाहिए, ताकि यज्ञ कर्ताओंको सुख प्राप्त हो ॥ १८ ॥

९९१ प्रभङ्गं दुर्मतीना॒मिन्द्र॑ शविष्ठा भ॑र ।
र॒यिम॒स्मभ्यं॒ युज्यं॑ चोदयन्मते॒ ज्येष्ठं॑ चोदयन्मते ॥ १९ ॥
९९२ सनि॑तः सुसनितरुग्र॒ चित्र॒ चेति॑ष्ठ सूनृत ।
प्रा॒सहा॑ सम्राट् सहु॑रिं सह॑न्तं भु॒ज्युं वाजे॑षु पूर्व्य॑म् ॥ २० ॥
९९३ आ स ए॑तु॒ य ईव॒दाँ अदे॑वः पू॒र्तमा॑द॒दे ।
यथा॑ चि॒द्वशो॑ अ॒श्व्यः पृ॑थु॒श्रव॑सि कानी॒ते॒३ऽस्या व्युष्या॑द॒दे ॥ २१ ॥
९९४ ष॒ष्टिं स॒हस्रा॒श्व्य॑स्या॒युता॑सन॒मुष्ट्रा॑नां विंश॒तिं श॒ता ।
दश॒ श्यावी॑नां श॒ता दश॒ त्र्य॑रुषीणां॒ दश॒ गवां॑ स॒हस्रा॑ ॥ २२ ॥
९९५ दश॑ श्या॒वा ऋ॒धद्र॑यो वी॒तवा॑रास आ॒शवः॑ । म॒थ्रा नेमिं॒ नि वा॑वृतुः ॥ २३ ॥
९९६ दाना॑सः पृथु॒श्रव॑सः कानी॒तस्य॑ सु॒राध॑सः ।
रथं॑ हिर॒ण्ययं॒ दद॒न्मंहि॑ष्ठः सू॒रिर॑भू॒द्वर्षि॑ष्ठमकृत॒ श्रवः॑ ॥ २४ ॥

अर्थ— [९९१] हे (चोदयन्मते) प्रेरणा देनेवाली बुद्धिसे युक्त तथा (शविष्ठ) बलवान् इन्द्र ! तू (अस्मभ्यं) हमें (दुर्मतीनां प्रभंगं) दुष्ट बुद्धिवालोंको नष्ट करनेवाले, (ज्येष्ठं युज्यं रयिं) श्रेष्ठ और योग्य धनको (आ भर) भरपूर दे ॥ १९ ॥

[९९२] हे (सनितः) दानदाता, (सु-सनितः) बलवान् (उग्रः चित्र चेतिष्ठ सूनृत) वीर, विलक्षण सामर्थ्यवान् चेतनावान् तथा सत्य युक्त (प्रासहा सम्राट्) शत्रुओंको मारनेवाले और उत्तम तेजस्वी इन्द्र ! तू हमें (वाजेषु) संग्रामोंमें (सहुरिं सहन्तं भुज्युं पूर्व्यं) शत्रुओंको हरानेवाले, सहनशीलता देनेवाले, उपभोगके योग्य, तथा प्रवृद्ध धनको दे ॥ २० ॥

[९९३] (यथा चित्) जब (वशः अश्व्यः) अश्वके पुत्र वशने (पृथुश्रवसि कानीते) पृथुश्रवाके पुत्र कानीतसे (अस्याः व्युष्टौ) इस उषाके उदय होनेपर (आ ददे) धन प्राप्त किया, अतः (यः अदेवः) जिस मनुष्यने (ईवत् पूर्तं आ ददे) इतना भरपूर धन प्राप्त किया, (सः आ एतु) वह हमारे पास आवे ॥ २१ ॥

[९९४] मैंने (षष्टिं सहस्रा अयुता अश्व्यस्य असनं) साठ हजार और दस हजार अर्थात् सत्तर हजार घोडे प्राप्त किए, (विंशतिं शता उष्ट्रानां) बीस सौ अर्थात् दो हजार ऊंट प्राप्त किए, (शता दश श्यावीनां) एक हजार कृष्णवर्णकी घोडियों मुझे मिलीं, तथा (त्रि-अरुषीणां) तीन जगहसे सफेद पट्टोंवाली (दश सहस्रा गवां) दस हजार गायें मुझे मिलीं ॥ २२ ॥

[९९५] (ऋधत् रयः) अत्यन्त वेगवान् (वीतवारासः) बलवान् (मथ्राः) शत्रुओंको मथनेवाले (दश श्यावाः आशवः) दस काले घोडे (नेमिं वि वावृतुः) मेरे रथकी धुराको खींचते हैं ॥ २३ ॥

[९९६] (सुराधसः पृथुश्रवसः कानीतस्य) उत्तम ऐश्वर्यशाली पृथुश्रवस् कानीतके (दानासः) दान उत्तम हैं । उसने मुझे (हिरण्ययं रथं ददत्) सोनेका रथ दिया है, अतः वह (मंहिष्ठः सूरिः अभूत्) अत्यन्त श्रेष्ठ दाता और ज्ञानी हो गया, मैंने (वर्षिष्ठं श्रवः अकृत) उसके यशको अत्यन्त श्रेष्ठ बनाया ॥ २४ ॥

भावार्थ — हे प्रेरक बुद्धिसे युक्त तथा बलवान् इन्द्र ! हमें ऐसा धन दो कि हम दुष्ट बुद्धिवालोंको नष्ट करें । हे बलवान् इन्द्र ! तू वीर, विलक्षण सामर्थ्यशाली, चेतनावान् तथा सत्युक्त हैं, तू अपने जैसा ही हमें बना ॥ १९-२० ॥

मनुष्य सदा धनीके सम्पर्कमें रहे; ताकि वह भी धनीकी तरह ही ऐश्वर्यशाली हो ॥ २१ ॥

विद्वान्, मंत्रज्ञ ऋषिको ऐसी उत्तम दक्षिणा देनी चाहिए ॥ २२ ॥

ज्ञानी विद्वान्, पुरोहित ऐसे धनवान् हों । वे सदा रथ पर चढकर सर्वत्र घूमें ॥ २३ ॥

जब कोई दाता अपने पुरोहितको अनेक तरहके धन आदि देकर ऐश्वर्ययुक्त करे, तब पुरोहितका भी कर्तव्य है कि वह अपने यजमानकी कीर्तिको विस्तृत करे ॥ २४ ॥

९९७ आ नो वायो महे तने याहि मखाय पाजसे ।
वयं हि ते चकृमा भूरि दावने सद्यश्चिन्महि दावने ॥ २५ ॥
९९८ यो अश्वेभिर्वहते वस्त उस्रास्त्रिः सप्त सप्ततीनाम् ।
एभिः सोमेभिः सोमसुद्भिः सोमपा दानाय शुक्रपूतपाः ॥ २६ ॥
९९९ यो म इमं चिदु त्मनामन्दच्चित्रं दावने ।
अरट्वे अक्षे नहुषे सुकृत्वनि सुकृत्तराय सुक्रतुः ॥ २७ ॥
१००० उचथ्ये वपुषि यः स्वराळुत वायो घृतस्नाः ।
अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तदिदं नु तत् ॥ २८ ॥
१००१ अध प्रियमिषिराय षष्टिं सहस्रासनम् । अश्वानामिन्न वृष्णाम् ॥ २९ ॥
१००२ गावो न यूथमुप यन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रयः ॥ ३० ॥

अर्थ— [९९७] हे (वायो) वायो ! (महे तने) बहुत धनके दानके लिए (मखाय पाजसे) यज्ञरूप बलके लिए (नः आ याहि) हमारे पास आ । (भूरिदावने) बहुत धन देनेवाले (ते हि) तेरी (सद्यः चित् महि दावने) शीघ्रही महान धन देनेके लिए (वयं आचकृम) हम स्तुति करते हैं । २५ ॥

[९९८] (यः अश्वेभिः वहते) जो घोडोंसे विचरण करता है, तथा जो (सप्ततीनां त्रिः सप्त) तीन गुना सात बार फिर उसका सत्तर गुना (१४७०) (उस्राः वस्ते) गायोंका आश्रयस्थान है, वह (सोमपाः शुक्रपूतपाः) सोमपान करानेवाला, वीर्य संवर्धन और पवित्रता करनेवाला (एभिः सोमेभिः सोमसुद्भिः) इन सोमोंके तथा सोमरसके तैय्यार करनेवालोंके साथ (दानाय) दान देनेके लिए घूमता है ॥ २६ ॥

[९९९] (यः मे इमं) जो वायु मुझे इस (चित्रं दावने) विलक्षण दानको देनेके लिए (त्मना चित्) स्वयं ही (अमन्दत्) आनन्दित होता है, वह (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाला अपने धनको (अरट्वे) युवा (अक्षे) व्यवहार कुशल (सुकृत्वनि) उत्तम कार्यमें कुशल (नहुषे) मनुष्यमें (सुकृत्तराय) अधिक उत्तम कर्म करनेवालेके हितार्थ देता है ॥ २७ ॥

[१०००] (घृतस्नाः वायो) हे घृतके समान शुद्ध वायो ! (यः) जो पुरुष (उचथ्ये वपुषि) स्तुत्य शरीरमें (स्वराट्) स्वयं शासक होता है, उस पुरुषको तुम (अश्वेषितं, रजेषितं शुनेषितं) घोडे, ऊंट तथा कुत्ते आदि प्राणियोंद्वारा लाया गया (इदं तत् प्राज्म) यह वह अन्न प्रदान करते हो ॥ २८ ॥

[१००१] (अध) अब (इषिराय प्रियं) बलवान्‌के लिए प्रिय लगनेवाले (षष्टिं सहस्रानां वृष्णां अश्वानां) साठ हजार बलवान् घोडोंको (असनं) मैंने दानमें प्राप्त किया ॥ २९ ॥

[१००२] (गावः यूथं न) गायें जिस प्रकार अपने झुण्डमें जाती हैं, उसी तरह (वध्रयः मा उप यन्ति) बैल मेरे पास आते हैं ॥ ३० ॥

भावार्थ— हे वायुदेव ! बहुत सारा धन देनेके लिए हम तेरी स्तुति करते हैं, तू हमारे पास आकर बहुत सा धन दे ॥ २५ ॥

जो अनेक गाय और घोडोंका आश्रय स्थान है, वह शक्तिशाली और पवित्र वायुदेव हमें दान दे ॥ २६ ॥

यह वायु उत्तम कर्म करनेवाले, अवर्णनीय, आधार देनेवाले मनुष्यको उत्तमोत्तम कर्म करनेके लिए उत्साह देता है ॥ २७ ॥

जो शरीरका सच्चा स्वामी है, जो अपना शरीर अपने आधीन पूर्णतया रखता है, उसको उत्तम अन्न मिलता है । अपने शरीरपर अपनी पूर्ण स्वाधीनता रखना श्रेष्ठ कर्तव्य है ॥ २८ ॥

मुझे गाय घोडे आदि पशु अनेकोंकी संख्यामें प्राप्त हों ॥ २९-३० ॥

१००३ अध यच्चारथे गणे शतमुष्ट्राँ अचिक्रदत् । अध श्वित्नेषु विंशतिं शता ॥ ३१ ॥

१००४ शतं दासे बल्बूथे विप्रस्तरुक्ष आ ददे ।
ते ते वायविमे जना मदन्तीन्द्रगोपा मदन्ति देवगोपाः ॥ ३२ ॥

१००५ अध स्या योषणा मही प्रतीची वशमश्व्यम् । अधिरुक्मा वि नीयते ॥ ३३ ॥

[४७]

(ऋषिः- त्रित आप्त्यः । देवता- आदित्याः, १४-१८ आदित्योषसः (दुःस्वप्नघ्नं) ।
छन्दः- महापङ्क्तिः ।)

१००६ महि वो महतामवो वरुण मित्र दाशुषे ।
यमादित्या अभि द्रुहो रक्षथा नेमघं नश—
—दनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १ ॥

अर्थ— [१००३] (अध) बादमें (चारथे उष्ट्रां गणे) विचरनेवाले ऊंटोंके समूहमेंसे (शतं अचिक्रदत्) सौ ऊंट दिए, (अध) और (श्वित्नेषु) सफेद गायोंमेंसे (विंशति शता) बीस सौ गायें दीं ॥ ३१ ॥

[१००४] (तरुक्षः) सबको आश्रय देनेवाला (विप्रः) बुद्धिमान (बल्बूथे) बलशाली वायु (शतं दासे) सैंकडों जनोंको (आ ददे) आश्रय देता है । हे (वायो) वायो ! (ते इमे जन्मः) वे स्तुति करनेवाले ये जन (इन्द्रगोपाः) इन्द्रसे रक्षित होकर (मदन्ति) आनन्दित होते हैं तथा (देवगोपाः) देवों अर्थात् विद्वानोंसे रक्षित होकर (मदन्ति) आनन्दित होते हैं ॥ ३२ ॥

[१००५] (अध) इसके बाद (स्या) वह (अधिरुक्मा) स्वर्णालंकारोंसे सजी हुई वह (मही प्रतीची योषणा) बडी उत्कृष्ट स्त्री (अश्व्यं वशं विनीयते) अश्व्य वशके प्रति ले जाई जाती है ॥ ३३ ॥

[४७]

[१००६] हे (मित्र वरुण) मित्र और वरुण ! (महतां वः अवः) तुम जैसे श्रेष्ठोंका संरक्षण (दाशुषे महि) दाताके लिए बहुतही प्राप्त होता है । हे (आदित्याः) आदित्यो ! (यं द्रुहः अभि रक्षथ) जिसे द्रोही शत्रुसे तुम सुरक्षित रखते हो, (ई अघं न नशत्) उसे पाप कष्ट नहीं देता, (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारी सुरक्षायें निष्पाप हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारी रक्षायें उत्तम हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— मनुष्य ऊंट, गाय आदि अनेक पशु अपने पास पालें ॥ ३१ ॥

सबको आश्रय देनेवाला बुद्धिमान् तथा बलशाली वायु सबको प्राण प्रदान करता है । सभी प्राणि इन्द्रसे रक्षित होकर आनन्दित होते हैं ॥ ३२ ॥

उत्कृष्ट और स्वर्ण अलंकारोंसे सजी हुई स्त्री उसीको मिलती है कि जो पुरुष अश्वको भी वशमें कर सके अर्थात् वह इतना बलशाली हो ॥ ३३ ॥

हे देवो ! जिस दाताकी तुम रक्षा करते हो, तथा जिस शत्रुसे तुम उस दाताका बचाव करते हो, वह सभी तुम्हारे सुरक्षाके साधन निष्पाप हैं और उत्तम हैं ॥ १ ॥

१००७ विदा देवा अघानाम् आदित्यासो अपाकृतिम् ।
पक्षा वयो यथोपरि व्यस्मे शर्म यच्छता-
-नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ २ ॥
१००८ व्यस्मे अधि शर्म तत् पक्षा वयो न यन्तन ।
विश्वानि विश्ववेदसो वरूथ्या मनामहे
ऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ३ ॥
१००९ यस्मा अरासत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः ।
मनोर्विश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशते
ऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ४ ॥
१०१० परि णो वृणजन्नघा दुर्गाणि रथ्यो यथा ।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मण्यादित्यानामुतावसि-
-नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१००७] हे (देवाः आदित्यासः) हे देव आदित्यो ! (अघानां अपाकृतिं विद) हमारे पापोंको नष्ट करनेका ज्ञान तुम्हें है । (वयः यथा पक्षा उपरि) पक्षी जिस तरह अपने बच्चों पर पंखोंकी छाया करते हैं, वैसा (शर्म अस्मे यच्छत) सुख हमें दो । (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारी सुरक्षायें निष्पाप हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारी रक्षायें उत्तम हैं ॥ २ ॥

[१००८] (अस्मे अधि तत् शर्म) हमपर तुम्हारा वह सुख रहे, (पक्षा वयः न वि यन्तन) जिस तरह पक्षी अपने पंखोंसे बच्चोंको संरक्षण देते हैं, उसी प्रकार तुम हमें संरक्षण दो । हे (विश्ववेदसः) सर्वज्ञ देवो ! (विश्वानि वरूथ्या मनामहे) सब प्रकारके संरक्षण हम चाहते हैं । (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण निष्पाप हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ ३ ॥

[१००९] हे (प्रचेतसः) ज्ञानी देवो ! (यस्मै क्षयं जीवातुं च अरासत) जिसे आश्रय और जीवनसाधन तुम देते हो, उसके लिएही (इमे आदित्याः) ये आदित्य (विश्वस्य घ इत् मनोः रायः) सब मानवोंके धनों पर (ईशते) अधिकार स्थापित करते हैं । हे देवो ! (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पापरहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ ४ ॥

[१०१०] (दुर्गाणि यथा) जिस तरह कठिनताओंको दूर करते हैं, उसी तरह (नः अघा परि वृणजन्) हम पापोंको दूर करते हैं । (इन्द्रस्य शर्मणि स्याम) इन्द्रके आश्रयमें हम रहें (उत आदित्यानां अवसि) और आदित्योंकी सुरक्षामें भी हम रहें (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पाप रहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे देवो ! तुम जानते हो कि हमारे पाप किस रीतिसे नष्ट हो सकते हैं । अतः हमारे पापोंको नष्ट करके जिस तरह पक्षी अपने बच्चोंको सुख देते हैं, उसी तरह हमें भी सुख दो ॥ २ ॥

जिस तरह पक्षी अपने बच्चोंको उत्तम सुख और संरक्षण देते हैं, उसी तरह हमें भी देव सुख और संरक्षण प्रदान करें । हम देवोंके उत्तम और पापरहित संरक्षणको चाहते हैं ॥ ३ ॥

इन्हीं देवोंकी कृपासे मनुष्योंको आश्रय स्थान और जीवन साधन मिलते हैं । ये ही देव सब मानवोंके धनके स्वामी हैं ॥ ४ ॥

हम इन्द्रकी शरणमें जाएं तथा आदित्योंके संरक्षणमें हम सदा रहें, इसप्रकार हम पापोंको उसी तरह दूर करें कि जिस तरह लोग कठिनताको दूर करते हैं ॥ ५ ॥

१०११ परिह्वृतेदना जनो युष्मादत्तस्य वायति ।
देवा अदभ्रमाश वो यमादित्या अहेतना—
—नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ६ ॥

१०१२ न तं तिग्मं चन त्यजो न द्रासदभि तं गुरु ।
यस्मा उ शर्म सप्रथ आदित्यासो अराध्व—
—मनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ७ ॥

१०१३ युष्मे देवा अपि ष्मसि युध्यन्त इव वर्मसु ।
यूयं महो न एनसो यूयमर्भादुरुष्यता—
—नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ८ ॥

१०१४ अदितिर्न उरुष्यत्व—दितिः शर्म यच्छतु ।
माता मित्रस्य रेवतो ऽर्यम्णो वरुणस्य चा—
—नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ९ ॥

अर्थ—[१०११] (परिह्वृता इत् अना जनः) दुःखी अवस्थामें रह कर भी जीवित रहनेवाला तुम्हारा भक्त मानव (युष्मादत्तस्य धनं वायति) तुम्हारे दिए धनको प्राप्त करता है। हे (आशवः देवाः) शीघ्रगामी देवो ! (यं अहेतन) जिसके पास तुम जाते हो (सः अदभ्रं) वह विपुल धन प्राप्त करता है, (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पापरहित हैं (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं। ॥ ६ ॥

[१०१२] (तं तिग्मं चन त्यजः न द्रासत्) उसको तीक्ष्ण शस्त्र भी कष्ट नहीं देता, (तं गुरु) बडा कष्ट भी उसे नहीं सताता है (आदित्यासः) हे आदित्यो ! (सप्रथः यस्मा उ शर्म अराध्वं) जिसको तुम आश्रय देते हो वह सुखी होता है। (वः ऊतयः अनेहसः) हे देवो ! तुम्हारे संरक्षण पाप रहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ ७ ॥

[१०१३] हे (देवाः) देवो ! (युध्यन्त वर्मसु) जैसे युद्ध करनेवाले वीर कवचोंमें सुरक्षित रहते हैं, उसी तरह (युष्मे अपि स्मसि) तुम्हारे होकर हम रहें। (यूयं) तुम (नः महः एनसः उरुष्यत) हमें बडे पापसे बचाओ। (यूयं अर्भात्) तुम छोटे पापसे भी बचाओ। (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पापरहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ ८ ॥

[१०१४] (नः अदितिः उरुष्यतु) हमें अदिति बचावे, (अदितिः शर्म यच्छतु) अदिति हमें सुख देवे, (मित्रस्य रेवतः अर्यम्णः वरुणस्य च माता) मित्र, धनवान् अर्यमा और वरुणकी माता अदिति हमें सुख दें। (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पापरहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—दुःखी अवस्थामें रहकर भी जो मनुष्य इन देवोंकी भक्ति करता है, वह अन्तमें इन देवों द्वारा दिए गए धनको प्राप्त करता हैं, अर्थात् देवगण इसकी भक्ति पर प्रसन्न होकर अत्यधिक धन प्रदान करते हैं ॥ ६ ॥

ये देव जिसकी रक्षा करते हैं, उसे तीक्ष्ण शस्त्र या बडेसे बडे कष्ट भी कभी नहीं सताते, जिसे ये देव आश्रय देते हैं, वह सुखी होता है ॥ ७ ॥

हे देवो ! जिस तरह युद्धमें कवचसे सुरक्षित वीर हर तरह शस्त्रास्त्रोंसे सुरक्षित रहता है, उसी तरह तुमसे रक्षित हुआ मनुष्य छोटे और बडे पापोंसे सर्वथा सुरक्षित रहता है ॥ ८ ॥

हमें अदिति देवी पापोंसे बचाकर उत्तम सुख दे, मित्र, वरुण, अर्यमा आदि देव भी हमें सुख प्रदान करें ॥ ९ ॥

१०१५ यद्देवाः शर्म शरणं यद्भद्रं यदनातुरम् ।
त्रिधातु यद्वरूथ्यं तदस्मासु वि यन्तना—
—नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १० ॥

१०१६ आदित्या अव हि ख्यता—धि कूलादिव स्पशः ।
सुतीर्थमर्वतो यथा—नु नो नेषथा सुग—
—मनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ११ ॥

१०१७ नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत ।
गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यते
ऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १२ ॥

१०१८ यदाविर्यदपीच्यं देवासो अस्ति दुष्कृतम् ।
त्रिते तद्विश्वमाप्त्य आरे अस्मद् दधातना—
—नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १३ ॥

अर्थ-[१०१५] हे देवाः) देवो ! (यत् शर्म शरणं) जो कवच सुखदायी (यत् भद्रं) जो कल्याणकारी और यत् अनातुरं) जो निरोगिता देनेवाला है, (यत् त्रिधातु) जो तीन तरहसे धारण करनेवाला है, (यत् वरूथ्यं) जो सुरक्षा करनेवाला है, (तत् अस्मासु वि यन्तन) वह कवच हमें प्रदान करो । (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पापरहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ १० ॥

[१०१६] हे (आदित्याः) आदित्यो ! (कूलात् अधि स्पशः) नदीतीर परसे जैसे नीचे देखते हैं, वैसेही (अव हि ख्यत) तुम हमारी ओर नीचे देखो, (सुतीर्थं अर्वतः यथा) जैसे उतारके मार्गसे घोडोंको ले जाते हैं, उसी तरह (नः सुगं अनुनेषथ) हमें सुगम मार्गसे ले चलो, (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पाप रहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ ११ ॥

[१०१७] (इह रक्षस्विने भद्रं न) यहां राक्षसी जनोंका कल्याण न हो, (अवयै न) घातकोंका कल्याण न हो, (उत) और (उपयै न) उपद्रवी लोगोंका कल्याण न हो । (गवे च भद्रं) गायोंका कल्याण हो । (धेनवे, वीराय श्रवस्यते च) गाय, वीर और यशके लिए यत्न करनेवालेका कल्याण हो, (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण हे देवो ! पापरहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ १२ ॥

[१०१८] हे (देवासः) देवो ! (यत् आविः अस्ति) जो पाप प्रकट हुआ हो, तथा (यत् दुष्कृतं) जो पाप (अपीच्यं) गुप्त रूपसे हुआ हो, (तत् विश्वं आप्त्ये त्रिते) वह सब मुझ त्रित आप्त्यमें न रहे, (अस्मत् आरे दधातन) उस पापको हमसे दूर भेज दो । (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पापरहित हों, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हों ॥ १३ ॥

भावार्थ— हे देवो ! जो सुखदायी, कल्याणकारी और निरोगिता देनेवाला कवच है, उस कवचको हमें प्रदान करो, ताकि उससे हमें आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधि दैविक शान्ति मिले, और हमारी हर तरहसे सुरक्षा हो ॥ १० ॥

जैसे ऊंचे नदी तीरपर खडा होकर मनुष्य नीचेके सब दृश्योंको देखता है, उसी तरह देव हमारा निरीक्षण सदा करते रहते हैं । वे हमें सदा उत्तम मार्गमें प्रेरित करते हैं ॥ ११ ॥

इस संसारमें राक्षसों, घातकों और उपद्रवी लोगोंका कल्याण न हो, अपितु जो गाय, वीर और यशः प्राप्तिके लिए प्रयत्न करनेवाले हों उन्हींका कल्याण हो ॥ १२ ॥

हे देवो ! जो पाप हमसे प्रकटरूपसे हुआ हो अथवा गुप्त रूपसे हुआ हो, वे सभी पाप हमसे दूर रहें । हम कभी किसी तरहका पाप न करें ॥ १३ ॥

१०१९ यच्च गोषु दुष्ष्वप्न्यं यच्चास्मे दुहितर्दिवः ।
त्रिताय तद्विभावर्याप्त्याय परा वह–
–नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १४ ॥
१०२० निष्कं वा घा कृणवते स्रजं वा दुहितर्दिवः ।
त्रिते दुष्ष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परि दद्मस्य–
–नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १५ ॥
१०२१ तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुषे ।
त्रिताय च द्विताय चोषो दुष्ष्वप्न्यं वह–
–नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १६ ॥
१०२२ यथा कलां यथा शफं यथ ऋणं संनयामसि ।
एवा दुष्ष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये सं नयामस्य–
–नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १७ ॥

अर्थ— [१०१९] हे (दिवः दुहितः) द्युलोककी पुत्री उषे ! (यत् च गोषु यत् च अस्मे) जो गौओंमें और जो हममें (दुष्ष्वप्न्यं) बुरा स्वप्न बाधाकारी हो, हे (विभावरि) तेजस्विनि उषे ! (तत् आप्त्याय त्रिताय) उसे त्रित आप्त्यसे–मुझसे (परा वह) दूर कर । (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पापरहित हैं (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ १४ ॥

[१०२०] हे (दिवः दुहितः) द्युलोककी पुत्री उषे ! (निष्कं वा घ वा स्रजं कृणवते दुष्ष्वप्न्यं) अलंकार बनानेवाले सुनारके अथवा माला बनानेवाले मालीके जो दुष्ट स्वप्न हों, (सर्वं) वह सब (आप्त्ये त्रिते) त्रित आप्तको छोडकर (परि दद्मसि) दूर भगा देते हैं । (वः ऊतयः अनेहसः) हे देवो ! तुम्हारे संरक्षण पापरहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ १५ ॥

[१०२१] (तत् अन्नाय) वह अन्न लेनेवाला, (तत् अपसे) वह कर्म करनेवाला (तं भागं उपसेदुषे) अथवा उस भोगका अंश स्वीकार करनेवाला (त्रिताय द्विताय) त्रित और द्वित है, हे (उषः) उषे ! (दुष्ष्वप्न्यं वह) उसके पाससे वह दुष्ट स्वप्न दूर ले जा । हे देवो ! (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पापरहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण है ॥ १६ ॥

[१०२२] (यथा कलां) जैसे सूद (यथा ऋणं) जैसे ऋण (यथा शफं) जैसे मूल धन (संनयामसि) हम पूरी तरह दे डालते हैं, (एव) उसी तरह (सर्वं दुष्ष्वप्न्यं) सब दुष्ट स्वप्न (आप्त्ये सं नयामसि) आप्त्यके पास पूर्णतया दूर ले जाते हैं । हे देवो ! (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पाप रहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण है ॥ १७ ॥

भावार्थ— हे देवि उषे ! जो दुष्ट स्वप्न या विचार हममें और गौओंमें हों, वे सब मुझसे दूर हों और हम पाप रहित हों ॥ १४ ॥

अलंकार बनानेवाले सुनार अथवा मालायें बनानेवाले माली जो झूठ और चोरीका व्यापार करते हैं, उस पापसे हम दूर रहें तथा देवोंके उत्तम संरक्षणमें हम सदा रहें ॥ १५ ॥

अन्न सदा पापसे रहित होकर ही लिया और दिया जाए । अथवा उस अन्न–भोगके अंशको स्वीकार करनेवाला भी पापरहित हो ॥ १६ ॥

जिस तरह सूद, उसका मूलधन और अन्य तरहका ऋण मनुष्य पूरी तरह उतार देते हैं, उसी तरह मनुष्य पापोंको भी अपने पाससे दूर कर दे ॥ १७ ॥

+

१०२३ अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् ।
उषो यस्माद् दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छत्व-
-नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १८ ॥

[४८]

(ऋषिः- प्रगाथो घौरः काण्वः । देवता- सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ५ जगती ।)

१०२४ स्वादोरभक्षि वयसः सुमेधाः स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य ।
विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो मधु ब्रुवन्तो अभि संचरन्ति ॥ १ ॥
१०२५ अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवास्यवयाता हरसो दैव्यस्य ।
इन्दविन्द्रस्य सख्यं जुषाणः श्रौष्टीव धुरमनु राय ऋध्याः ॥ २ ॥
१०२६ अपाम सोममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान् कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥ ३ ॥

अर्थ— [१०२३] (वयं अद्य अजैष्म) हमने आज विजय प्राप्त कि है, (असनाम च) और लाभ प्राप्त किया है, (अनागसः अभूम) हम निष्पाप बन चुके हैं, हे (उषः) उषे ! (यस्मात् दुष्वप्न्यात् अभैष्म) जिस दुष्ट स्वप्नसे हम भय भीत हुए थे, (तत् अप उच्छतु) वह भय दूर हो। हे देवो ! (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पापरहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ १८ ॥

[१०२४] (यं) जिस सोमको (विश्वे देवाः उत मर्त्यासः) सभी देव और मनुष्य (मधु ब्रुवन्तः) 'मीठा है, मीठा है' ऐसा कहते हुए (अभि सञ्चरन्ति) घूमते हैं, उस (वरिवोवित्तरस्य स्वादोः वयसः) अत्यन्त पूज्य, और स्वादिष्ट अन्नरूप सोमरसको (सुआध्यः सुमेधाः अभक्षि) उत्तम अध्ययन करनेवाले तथा उत्तम मेधा-बुद्धिवाले मैंने खाया ॥ १ ॥

[१०२५] हे (इन्दो) सोम ! तू (अन्तः प्र अगाः) अन्दर जाता है. हे (अदितिः) अविनाशी सोम ! तू (दैव्यस्य हरसः अवयाता भवासि) दिव्य क्रोधको दूर करनेवाला है। (इन्द्रस्य सख्यं जुषाणः) इन्द्रकी मित्रताको स्वीकार करके (श्रौष्टी धुरं इव) घोडे जिस तरह रथकी धुरासें जोडे जाते हैं, उसी तरह तू (राये अनु ऋध्याः) धन प्रदान करनेके लिए प्रवृत्त होता है ॥ २ ॥

[१०२६] हमने (सोमं अपाम) सोमको पी लिया है और (अमृताः अभूम) अमर हो गए हैं (ज्योतिः अगन्म) ज्योतिको प्राप्त कर लिया है और (देवान् अविदाम) देवोंको जान लिया है। अब हे (अमृत) अमर सोम ! अब (अरातिः) शत्रु मनुष्य (किं नूनं अस्मान् कृणवत्) हमारा भला क्या बिगाड सकेगा ? (मर्त्यस्य) मुझ मनुष्यका (धूर्तिः किं) धूर्त मनुष्य क्या बिगाड सकेगा ? ॥ ३ ॥

भावार्थ— देवोंकी उत्तम सरक्षण शक्ति तथा उषाकी कृपा प्राप्त करके हमने विजय प्राप्त की, धन प्राप्त किया और जिससे हम भयभीत हुए थे, उन पापोंसे भी दूर हो गए ॥ १८ ॥

यह सोम अत्यन्त मीठा और उल्लासदायक होनेके कारण सभी देव और मानव इसकी प्रशंसा करते हैं। इसे उत्तम अध्ययनशील तथा उत्तम मेधाबुद्धिवाले ही प्राप्त कर सकते हैं ॥ १ ॥

जब सोमरस शरीरके अन्दर जाता है, तब मनुष्य चाहे कितना भी क्रोधी हो, वह शान्त हो जाता है। सोम इन्द्रका मित्र है, इसलिए सोमरस तैय्यार करनेवालेके पास इन्द्र आता है और वह धनवान् होता है ॥ २ ॥

मनुष्य इसको पीकर अमर हो जाता है, उसे प्रकाशका मार्ग मिल जाता है, उस मार्गपर चलकर वह देवोंकी महिमा जान लेता है। तब उस मनुष्यका उसके शत्रु और धूर्त लोग कुछ भी नहीं बिगाड सकते ॥ ३ ॥

१०२७ शं नो भव हृद आ पीत इन्दो पितेव सोम सूनवे सुशेवः ।
सखेव सख्य उरुशंस धीरः प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीः ॥ ४ ॥

१०२८ इमे मा पीता यशस उरुष्यवो रथं न गावः समनाह पर्वसु ।
ते मा रक्षन्तु विस्रसश्चरित्रादुत मा स्रामाद्यवयन्त्विन्दवः ॥ ५ ॥

१०२९ अग्निं न मा मथितं सं दिदीपः प्र चक्षय कृणुहि वस्यसो नः ।
अथा हि ते मद आ सोम मन्ये रेवाँ इव प्र चरा पुष्टिमच्छ ॥ ६ ॥

१०३० इषिरेण ते मनसा सुतस्य भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः ।
सोम राजन् प्र ण आयूंषि तारीरहानीव सूर्यो वासराणि ॥ ७ ॥

अर्थ— [१०२७] हे (इन्दो) सोम ! (हृदे आ पीतः) हृदय अर्थात् पेटमें पिए जानेपर तू (नः शं भव) हमारे लिए कल्याणकारी हो। हे (सोम) सोम ! (सूनवे पिता इव) पुत्रके लिए पिताके समान (सख्ये सखा इव) मित्रके लिए मित्रके समान तू हमारे लिए (सुशेवः) सुखकारी हो। हे (उरुशंस सोम) बहुतोंसे प्रशंसित सोम। (धीरः त्वं) बुद्धिमान् तू (जीवसे) हमारे जीनेके लिए (आयुः तारीः) आयुको दीर्घ कर ॥ ४ ॥

[१०२८] (यशसः उरुष्यवः) यशस्वी और रक्षाकी इच्छा करनेवाले (इमे पीताः) ये पिए गए सोमरस (गावः रथं न) बैल जैसे रथको खींचते हैं, उसी तरह (मा पर्वसु समनाह) मेरी सन्धियोंको सुदृढ करें। (उत) और (ते) वे सोमरस (विस्रसः चरित्रात्) डगमगाते हुए कदमोंसे (मा रक्षन्तु) मेरी रक्षा करें, (इन्दवः) ये सोमरस (स्रामात् मा यवयन्तु) रोगसे मुझे पृथक् करें ॥ ५ ॥

[१०२९] हे (सोम) सोमरस ! (मथितं अग्निं न) प्रदीप्त हुई अग्निके समान (मा सं दिदीपः) मुझे देदीप्यमान कर, (प्र चक्षय) मुझे तेजस्वी कर। (नः वस्यसः कृणुहि) हमें धनवान् कर। (अथ) इसके बाद हमें (मदे) आनन्दमें (ते मन्ये) तेरी स्तुति करता हूँ, तू (रेवान् इव) धनवान्के समान (प्रचर) सर्वत्र संचार कर और (पुष्टिं अच्छ) पोषण प्रदान कर ६ ॥

[१०३०] (इषिरेण मनसा) इच्छायुक्त मनसे (सुतस्य ते) निचोडे गए तुझे (पित्र्यस्य रायः इव) पिताके धनका उपभोग जिस तरह पुत्र करता है, उसी तरह हम (भक्षीमहि) खाएं, हे (राजन् सोम) तेजस्वी सोम ! (सूर्यः वासराणि अहानि इव) सूर्य जिस तरह निवास करानेवाले दिनोंका विस्तार करता है, उसी तरह तू (नः आयूंषि प्र तारीः) हमारी आयुको दीर्घ कर ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे सोम ! पेटमें जाकर तू हमारे लिए कल्याणकारी हो, जिस तरह एक पिता अपने पुत्रको, तथा एक मित्र अपने मित्रको हर तरहसे सुख देता है, उसी तरह हे सोम ! तू हमें सुख दे, और उत्तम रीतिसे जीनेके लिए तू हमारी आयु दीर्घ कर ॥ ४ ॥

सोमरसके पीनेसे शरीरमें उत्साह उत्पन्न होता है और शरीरके प्रत्येक जोड दृढ होते हैं। पैरोंमें भी शक्ति आती है और शरीर रोगोंसे सदा दूर रहता है। सोमरसको पीनेसे रोगोंका भय नहीं रहता ॥ ५ ॥

सोमपीनेसे मनुष्य जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी और देदीप्यमान होता है, वह धनवान् होता है। सोमरसमें पोषकतत्त्व भी भरपूर होते हैं ॥ ६ ॥

सोमरसको प्रेमपूर्वक पीनेसे मनुष्य पुष्ट होता है और उसकी आयु दीर्घ होती है ॥ ७ ॥

१०३१ सोम॑ राजन् मृ॒ळया॑ नः स्व॒स्ति तव॑ स्मसि व्र॒त्या॒३॑स्तस्य॑ विद्धि ।
अल॑र्ति॒ दक्ष॑ उ॒त म॒न्युरि॑न्दो॒ मा नो॑ अ॒र्यो अ॑नुका॒मं परा॑ दाः ॥ ८ ॥

१०३२ त्वं हि न॑स्त॒न्व॑: सोम गो॒पा गात्रे॑गात्रे निष॒सत्था॑ नृ॒चक्षाः॑ ।
यत् ते॑ व॒यं प्र॑मि॒नाम॑ व्र॒तानि॒ स नो॑ मृळ सुष॒खा दे॑व॒ वस्यः॑ ॥ ९ ॥

१०३३ ऋ॒दू॒दरे॑ण॒ सख्या॑ सचेय॒ यो मा॒ न रिष्ये॑द्धर्यश्व पी॒तः ।
अ॒यं यः सोमो॒ न्यधा॑य्य॒स्मे तस्मा॒ इन्द्रं॑ प्र॒तिर॑मे॒म्यायुः॑ ॥ १० ॥

१०३४ अप॒ त्या अ॑स्थुरनि॒रा अमी॑वा॒ निर॑त्रसन् तमि॒षीची॑रभैषुः ।
आ सोमो॑ अ॒स्माँ अ॑रुहद् विहा॑या॒ अग॑न्म॒ यत्र॑ प्रति॒रन्त॒ आयुः॑ ॥ ११ ॥

अर्थ— [१०३१] हे (राजन् सोम) तेजस्वी सोम ! (स्वस्ति नः मृळय) हमारे कल्याणके लिए हमें सुखी कर, (व्रत्याः तव स्मसि) व्रतका पालन करनेवाले हम तेरे हैं (तस्य विद्धि) इस बातको तू जान। हे (इन्दो) सोम ! (दक्षः उत मन्युः अलर्ति) चतुरता तथा सात्विक क्रोध हमें प्राप्त हो, (नः अर्यः अनुकामं मा परा दाः) हमें शत्रुओंकी इच्छाके अधीन मत कर ॥ ८ ॥

[१०३२] हे (सोम) सोम ! (त्वं हि नः तन्वः गोपाः) तू हमारे शरीरका रक्षक है । इसलिए (नृचक्षाः) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाला तू (गात्रे गात्रे) हमारे शरीरके प्रत्येक अंगमें (निषसत्था) प्रविष्ट हो । (यत्) यद्यपि (ते व्रतानि) तेरे नियमोंको (वयं प्रमिनाम) हम तोड देते हैं तो भी हे (देव) देव ! (सः) वह तू (वस्यः नः) श्रेष्ठ हमारा (सु सखा) उत्तम मित्र होकर (मृळ) हमें सुखी कर ॥ ९ ॥

[१०३३] हे (हर्यश्व) उत्तम घोडोंवाले इन्द्र मैं (ऋदूदरेण) आसानीसे पचने योग्य सोमकी (सख्या सचेय) मित्रतासे युक्त होऊं, (य पीतः) जो सोम पिए जाने पर (नः मा रिष्येत्) हमें दुःखी न करे । (अयं यः सोमः) यह जो सोम (अस्मे न्यधायि) हमारे अन्दर प्रविष्ट हुआ है, (तस्मै) उस सोमके लिए (प्रतिरं आयुः) दीर्घ आयुः (इन्द्रं एमि) इन्द्रसे मांगता हूँ ॥ १० ॥

[१०३४] (विहाया सोमः) महान् सोम (अस्मान् आ अरुहत्) हमें प्राप्त हो गया है, इसलिए (त्याः अनिराः अमीवाः) वे मुश्किलसे जानेवाले रोग भी (अप अस्थुः) दूर चले जायें, जिन (तमिषीचीः निः अत्रसन्) बलवान् रोगोने हमें पीडा दी है और (अभैषुः) हमें बहुत डराया है, वे चले जाएं और (यत्र आयुः प्रति रन्ते) जहां सोम आयुको बढाते हों, वहां (अगन्म) हम जाएं ॥ ११ ॥

भावार्थ— हे सोम ! हमारा कल्याण करनेके लिए ही हमें सुखी कर । व्रतका पालन करनेवाले हम तेरे अपने ही हैं, इस बातको तू अच्छी तरह जान ले । हमें तू चतुरता और सात्विक क्रोध प्रदान कर और हमें शत्रुओंकी इच्छा अधीन मत कर ॥ ८ ॥

यह सोम शरीरके प्रत्येक अंगमें जाकर उसे शक्ति प्रदान करता है, शरीरमें उत्साह भरता है । यदि कभी नियमका उल्लंघन भी हो जाए, तो भी इस सोमका सेवन करनेसे शरीर सशक्त ही रहता है ॥ ९ ॥

सोमरस आसानीसे पचने योग्य है । इसीलिए यह बहुत मात्रामें पिए जानेपर भी पीनेवालेको कष्ट नहीं देता । यह सोम आयुको दीर्घ करनेवाला भी है ॥ १० ॥

सोमरसका पान करनेसे कठिनसे कठिन और अत्यन्त पीडा देनेवाले रोग भी दूर हो जाते हैं और मनुष्यकी आयु दीर्घ होती है ॥ ११ ॥

१०३५ यो न इन्दुः पितरो हृत्सु पीतो ऽमर्त्यो मर्त्याँ आविवेश ।
तस्मै सोमाय हविषा विधेम मृळीके अस्य सुमतौ स्याम ॥ १२ ॥

१०३६ त्वं सोम पितृभिः संविदानो ऽनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ ।
तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १३ ॥

१०३७ त्रातारो देवा अधि वोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः ।
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ १४ ॥

१०३८ त्वं नः सोम विश्वतो वयोधा—स्त्वं स्वर्विदा विशा नृचक्षाः ।
त्वं न इन्द ऊतिभिः सजोषाः पाहि पश्चातादुत वा पुरस्तात् ॥ १५ ॥

अर्थ— [१०३५] हे (पितरः) ज्ञानीजन ! (यः अमर्त्यः इन्दुः) जो अमर सोमरस (पीतः) पिये जाने पर (नः मर्त्यान् हृत्सु आ विवेश) हम मनुष्योंके हृदयमें प्रविष्ट होता है, हम (तस्मै सोमाय) उस सोमकी (हविषा विधेम) हविद्वारा सेवा करते हैं, हम (अस्य मृळीके सुमतौ स्याम) इस सोमके सुख और उत्तम बुद्धिमें रहें ॥ १२ ॥

[१०३६] हे (सोम) सोम ! (त्वं पितृभिः सं विदानः) तू ज्ञानियोंसे संयुक्त होकर (द्यावापृथिवी अनु आ ततन्थ) द्युलोक और पृथ्वीलोकका विस्तार करता है । हे (इन्दो) सोमरस ! (तस्मै ते) उस तेरी हम (हविषा विधेम) हविसे सेवा करते हैं । (वयं) हम (रयीणां पतयः स्याम) धनोंके स्वामी हों ॥ १३ ॥

[१०३७] हे (त्रातारः देवाः) रक्षक देवो ! (नः अधि वोचत) हमें उत्तम उपदेश दो, (नः निद्रा मा ईशत) हम पर आलस्य अधिकार न करे, (उत मा जल्पिः) और व्यर्थका बडबडाना भी हम पर अधिकार न करे । (वयं) हम (विश्वह) प्रतिदिन (सोमस्य प्रियासः) सोमके प्रिय हों, तथा (सुवीरासः) उत्तम पुत्र-पौत्रोंसे युक्त होकर हम (विदथं आ वदेम) इस सोमकी स्तुति गायें ॥ १४ ॥

[१०३८] हे (सोम) सोम ! (त्वं नः विश्वतः वयोधाः) तू हमें सब ओरसे अन्नको देनेवाला हो, (स्वर्वित् नृचक्षाः त्वं) सुखको जाननेवाला तथा मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाला तू (आ विश) हमारे अन्दर प्रविष्ट हो, हे (इन्दो) सोम ! (सजोषाः) प्रसन्न होकर तू (ऊतिभिः) अपने संरक्षणोंसे (नः पश्चातात् पुरस्तात् पाहि) हमारी पीछेसे और आगेसे रक्षा कर ॥ १५ ॥

भावार्थ— यह सोमरस स्वयं अमर है और पीनेवालेको भी अमर बनाता है । ऐसे सोमकी सेवा करनेसे सुख और उत्तम बुद्धि प्राप्त होती है ॥ १२ ॥

ज्ञानियोंकी सहायतासे इस सोमने द्युलोक और पृथ्वी लोकका ज्ञान दिया । उस ज्ञानको प्राप्त करके मनुष्य धनी हों ॥ १३ ॥

मनुष्य अपना समय आलस्य और गप्प मारनेमें न गंवाये । वह ज्ञानियोंके पास जाकर सदा उत्तम उपदेश ग्रहण करता रहे । जो ऐसा करता है, वही सोमका प्रिय बनता है और उत्तम सन्तानोंसे युक्त होता है ॥ १४ ॥

सोम उदरमें प्रविष्ट होकर शरीरका पोषण करनेवाला होनेसे अन्नरूप ही है । वह हमें प्रतिदिन प्राप्त हो और हमारी सब ओरसे रक्षा करे ॥ १५ ॥

[४९]

(ऋषिः- प्रस्कण्वः काण्वः । देवता:- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१०३९ अभि प्र वः सुराधस॒मिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥
१०४० शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥
१०४१ आ त्वा सुतास इन्दवो मदा य इन्द्र गिर्वणः ।
आपो न वज्रिन्नन्वोक्यं१ सरः पृणन्ति शूर राधसे ॥ ३ ॥
१०४२ अनेहसं प्रतरणं विवक्षणं मध्वः स्वादिष्ठमीं पिब ।
आ यथा मन्दसानः किरासि नः प्र क्षुद्रेव त्मना धृषत् ॥ ४ ॥

---

[४९]

अर्थ— [१०३९] हे मनुष्यो ! (यः मघवा पुरू-वसुः) जो ऐश्वर्यवान् बहुतोंको बसानेवाला इन्द्र (जरितृभ्यः) स्तोताओंको (सहस्रेण इव) सहस्रों प्रकारसे धन शिक्षति) देता है, ऐसे (सु-राधसं) उत्तम धनवाले (वः इन्द्रं) अपने इन्द्रकी (यथा विदे) जैसा ज्ञान हो, वैसे (अभि प्र अर्च) उत्तम अर्चन करो ॥ १ ॥

[१०४०] (धृष्णुया) शत्रुओंको मारनेकी शक्तिसे युक्त इन्द्र (शत-अनीका-इव) सैंकडों शत्रुओंकी सेनाओंको (प्र जिगाति) अपने आधीन करता है । तथा (दाशुषे वृत्राणि हन्ति) दाताके शत्रुओंको मारता है, (अस्य पुरु-भोजसः) इस बहुत अन्नवाले इन्द्रके (दत्राणि) दिये धन, (गिरेः रसाः इव) जैसे वादलके पानी जगत्को तृप्त करते हैं, उसी प्रकार (प्र पिन्विरे) तृप्त करते हैं ॥ २ ॥

[१०४१] हे (वज्रिन्, शूर गिर्वणः इन्द्र) वज्रको धारण करनेवाले शूरवीर प्रशंसनीय इन्द्र ! (मदाः) उत्साहको देनेवाले (ये इन्दवः सुतासः) जो सोमरस निकाले गए हैं, वे (राधसे) संसिद्धिके लिए (ओक्यं) शरणमें जाने योग्य (त्वा) तुमको (सरः आपः न) तालावको जैसे जल पूर्ण करते हैं, वैसे (आ अनु पृणन्ति) पूर्ण करते हैं ॥ ३ ॥

[१०४२] हे (धृषत्) शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्र ! (अनेहसं) पाप रहित (प्र-तरणं) विशेष तारण करनेवाले (वि-वक्षणं) अत्यधिक प्रशंसनीय (मध्वः स्वादिष्ठं) शहदसे स्वादिष्ट (ईं पिब) इस सोमको पी । तथा (यथा मन्दसानः) जिससे आनन्द युक्त होकर (त्मना क्षुद्रा इव) जैसे निर्धनोंको अपने आप धन देते हो उसी प्रकार (नः आ किरासि) हमें भी धन दो ॥ ४ ॥

भावार्थ— वह इन्द्र अपने स्तोताओंको अनेक प्रकारकी शिक्षा देता है । अनेक प्रकारका धन देता है । अतः धन प्राप्तिके लिए इन्द्रका सत्कार करो । परमात्माकी स्तुति करनेसे धनकी प्राप्ति होती है । जैसा ज्ञान हो उसके अनुसार इन्द्रका सत्कार करो ॥ १ ॥

शत्रुको मारनेकी शक्तिसे युक्त इन्द्र सैंकडों सेनाओंको अपने आधीन करता है । दाताका कल्याण करनेके लिये शत्रुओंको मारता है । इसके धन दाताको संतुष्ट करते हैं ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तालावमें जल प्रवाह जाते हैं उस तरह ये सोमरस तेरे पेटमें चले जांय ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! शत्रुओंको मारनेवाले; निष्पाप, विशेष प्रशंसनीय रसको पीओ । ऐसा धरा सेवन करना योग्य है ॥ ४ ॥

१०४३ आ नः स्तोम॒मुप॑ द्र॒वद्धि॑या॒नो अश्वो॒ न सोतृ॑भिः ।
यं ते॑ स्वधावन्त्स्व॒दय॑न्ति धे॒नव॒ इन्द्र॒ कण्वे॑षु रा॒तयः॑ ॥ ५ ॥
१०४४ उ॒ग्रं न वी॒रं नम॒सोप॑ सेदिम॒ विभू॑ति॒मक्षि॑तावसुम् ।
उ॒द्रीव॑ वज्रिन्नव॒तो न सि॑ञ्च॒ते क्षर॒न्तीन्द्र॑ धी॒तयः॑ ॥ ६ ॥
१०४५ यद्ध॑ नू॒नं यद्वा॑ य॒ज्ञे यद्वा॑ पृथि॒व्यामधि॑ ।
अतो॑ नो य॒ज्ञमा॒शुभि॑र्महेमत उ॒ग्र उ॒ग्रेभि॒रा ग॑हि ॥ ७ ॥
१०४६ अ॒जि॒रासो॒ हर॑यो॒ ये त॑ आ॒शवो॒ वाता॑ इव प्रस॒क्षिणः॑ ।
येभि॒रप॑त्यं॒ मनु॑षः प॒रीय॑से॒ येभि॒र्विश्वं॒ स्व॑र्दृ॒शे ॥ ८ ॥

अर्थ— [१०४३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यं) जिस यज्ञको (ते धेनवः) तुम्हारी गायें तथा तुम्हारे द्वारा (कण्वेषु रातयः) कण्वोंको दिए गए धन (स्वदयन्ति) उत्तम बनाते हैं, हे (स्वधावन्) अन्नवाले इन्द्र ! (नः सोतृभिः स्तोमं उप) हमारे सोमयाग करनेवालोंके द्वारा किए गए स्तोत्रके पास (हियानः अश्वः न) प्रेरित हुए घोडेके समान (आ द्रवत्) दौडकर आओ ॥ ५ ॥

[१०४४] हम (वीरं वि-भूतिं अ-क्षित-वसुं) वीर, विविध ऐश्वर्यवाले, क्षीण न होनेवाले धनसे युक्त इन्द्रके (उप) पास (उग्रं न) जैसे मनुष्य, वीर मनुष्यकी शरणमें जाते हैं उसी प्रकार (नमसा) नमस्कार करते हुए (सेदिम) जाते हैं, हे (वज्रिन् इन्द्र) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! हमारी (धीतयः) अङ्गुलियां [सोमको] (उद्री अवतः इव न) जैसे कुंएमें पानी आता है, उसी प्रकार (सिंचते) धनादिसे युक्त करनेवाले तेरे लिए (क्षरन्ती) निचोडती हैं ॥ ६ ॥

१ धीति— पीना, प्यास, अंगुलिया, विचार, भक्ति, अनादर
२ उद्री— जल

[१०४५] हे (महेमते) महान् बुद्धिमान् इन्द्र ! तुम (यत् वा यज्ञे) यज्ञमें हो अथवा (यत् वा पृथिव्यां अधि) पृथिवी पर हो अथवा (यत् ह नूनं) जहां कहीं भी हो, (अतः) उस स्थानसे हे (उग्र) वीर इन्द्र ! (उग्रेभिः) तेज और (आशुभिः) शीघ्र चलनेवाले घोडोंके द्वारा (नः यज्ञं) हमारे यज्ञमें (आ गहि) आओ ॥ ७ ॥

[१०४६] हे इन्द्र ! (ये ते) जो तुम्हारे (वाताः इव प्रसक्षिणः) वायुके समान वेगसे जानेवाले, (अजिरासः आशवः) वेगवाले, शीघ्रगामी (हरयः) घोडे हैं, (येभिः मनुषः अपत्यं परि ईयसे) जिनसे मनुके पुत्र या यज्ञके पास जाते हो, (येभिः विश्वं स्वः दृशे) जिनसे सम्पूर्ण द्युलोकको देखते हो [उन घोडोंसे हमारे यज्ञमें आओ ॥ ८ ॥

मनुषः अपत्यं— मनुष्य पुत्र, मनुष्य द्वारा किया यज्ञ ।

भावार्थ— यज्ञको गायें उत्तम बनाती हैं। गायोंके द्वारा घृत आदि पदार्थ मिलते हैं और उनसे यज्ञ होते हैं ॥ ५ ॥
वीर विभूति मान, अक्षय धनवाले उग्रवीर जैसे इन्द्रके पास नम्र होकर हम जाते हैं ॥ ६ ॥
हे वीर इन्द्र ! तुम किसी यज्ञमें होओ, या पृथिवीपर हो, या कहीं भी हो, वहींसे हमारे पास आओ ॥ ७ ॥
इन्द्रके घोडे वायुके समान वेगवान् और बलवान् हैं, उन घोडोंके द्वारा इन्द्र सर्वत्र संचार करता है। वीरोंके घोडे उसी तरहके होने चाहिए ॥ ८ ॥

१०४७ एतावतस्त ईमह इन्द्रं सुम्नस्य गोमतः ।
यथा प्रावो मघवन् मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं धने ॥ ९ ॥
१०४८ यथा कण्वे मघवन् त्रसदस्यवि यथा पक्थे दशव्रजे ।
यथा गोशर्ये असनोर्ऋजिश्वनी न्द्र गोमद्धिरण्यवत् ॥ १० ॥

[५०]

(ऋषिः- पुष्टिगुः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः =(विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१०४९ प्र सु श्रुतं सुराधस मर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥ १ ॥
१०५० शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥ २ ॥

अर्थ-- [१०४७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (धने) संग्राममें (यथा मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं) जैसे मेध्यातिथि और पीनातिथिका (प्र अवः) उत्तम प्रकार संरक्षण किया [वैसा हमारा भी करो] हम (एतावतः ते) इन गुणोंसे युक्त तुमसे हम (गोमतः सुम्नस्य) गौवोंसे युक्त धनको (ईमहे) मांगते हैं ॥ ९ ॥

[१०४८] हे (मघवन् इन्द्र) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तुमने (यथा कण्वे) जैसे कण्वको (त्रसदस्यवि) त्रसदस्युको, (यथा पक्थे दशव्रजे) जैसे पक्थ और दशव्रजको तथा (यथा गोशर्ये ऋजिश्वनि) जैसे गोशर्य तथा ऋजिश्वी इनको (गोमत् हिरण्यवत्) गौ तथा सोनेसे युक्त धन दिया [उसी प्रकारके धनको हम मांगते हैं] ॥१०॥

[५०]

[१०४९] (यः) जो इन्द्र (सुन्वते स्तुवते) सोमयाग करनेवाले तथा स्तुति करनेवालेको (काम्यं वसु) अभिलषित धन (सहस्रेण इव मंहते) हजारों प्रकारसे देता है, उस (श्रुतं) प्रसिद्ध, (सु-राधसं) उत्तम धनवाले (शक्रं) शक्तिशाली इन्द्रकी (अभिष्टये) इच्छित धनकी प्राप्तिके लिए (प्र सु अर्च) अच्छी प्रकार सत्कार करो ॥ १ ॥

[१०५०] (यत् ईं सुताः अमन्दिषुः) जब इस इन्द्रको सोम उत्साह युक्त करते हैं, तब (अस्य इन्द्रस्य शतानीकाः) इस इन्द्रके सैंकडों धारावाले, (दुः-तराः) न हटाये जानेवाले, (समिषः) ठीकरीतिसे फेंके जानेवाले (महीः) बडे बडे (हेतयः) शस्त्रास्त्र (भुज्मा गिरिः न) जैसे उत्पादक मेघ भूमिको ऐश्वर्यसे पूर्ण करते हैं उसी प्रकार (मघवत्सु पिन्वते) ऐश्वर्यवालोंको पूर्ण करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ-- हे इन्द्र ! तुमने जिस प्रकार प्राचीन ऋषि मुनियोंकी रक्षा की थी, उसी तरह हमारी भी रक्षा करो । हम उत्तम गुणोंसे युक्त होकर ही तुमसे धन आदि मांगते हैं । उत्तम गुणवाला ही इन्द्रसे धन प्राप्त कर सकता है ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! तुमने जिस तरह अनेक ऋषियोंको धन दिया, उसी तरह तुम हमें भी धन दो ॥ १० ॥

सोमयाग करनेवाले तथा स्तुति करनेवालेको यह इन्द्र अभिलषित धन देता है । अतः अभिलषित धनकी प्राप्तिके लिए इन्द्रका अच्छी तरह सत्कार करना चाहिए ॥ १ ॥

इसके हजारों धाराओंवाले शस्त्र ऐश्वर्यवानोंको पूर्ण बलवान करते हैं । शत्रुपर फेंकाजानेवाला अस्त्र, जो शत्रुको मार कर पुनः मारनेवालेके पास आजाता है ॥ २ ॥

१०५१ यदीं सुतास इन्दवो ऽभि प्रियममन्दिषुः ।
आपो न धायि सवनं म आ वसो दुघा इवोप दाशुषे ॥ ३ ॥
१०५२ अनेहसं वो हवमानमूतये मध्वः क्षरन्ति धीतयः ।
आ त्वा वसो हवमानास इन्दव उप स्तोत्रेषु दधिरे ॥ ४ ॥
१०५३ आ नः सोमे स्वध्वर इयानो अत्यो न तोशते ।
यं ते स्वदावन् त्स्वदन्ति गूर्तयः पौरे छन्दयसे हवम् ॥ ५ ॥
१०५४ प्र वीरमुग्रं विविचिं धनस्पृतं विभूतिं राधसो महः ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो वसुत्वना सदा पीपेथ दाशुषे ॥ ६ ॥
१०५५ यद्ध नूनं परावति यद् वा पृथिव्यां दिवि ।
युजान इन्द्र हरिभिर्महेमत ऋष्व ऋष्वेभिरा गहि ॥ ७ ॥

अर्थ — [१०५१] (यद् जब (सुतासः इन्दवः) निकाले गए सोमोंने (ईं प्रियं अभि अमन्दिषुः) इस प्रिय इन्द्रको उत्साह युक्त किया, तब हे (वसो) सबको बसानेवाले इन्द्र ! तुमने (दाशुषे मे दान देनेवाले मेरे लिए (सवनं) यज्ञको (आपः न) जलके समान तथा (दुघा इव) दुधार गायके समान (आ धायि) सफल किया ॥३॥

१०५२] ऋत्विजो ! (वः धीतयः) तुम्हारी अंगुलियां (ऊतये) संरक्षणके लिए (हवमानं अनेहसं) प्रशंसनीय तथा शत्रुसे न मारे जानेयोग्य इन्द्रके लिए मध्वः क्षरन्ति) सोमको निचोड रही हैं। हे (वसो) बसानेवाले इन्द्र ! (त्वा) तेरे लिए (हवमानासः इन्दवः) प्रशंसाके योग्य ये सोम (स्तोत्रेषु उप आ दधिरे) यज्ञोंमें तेरे सामने रखे हुए हैं ॥ ४ ॥

[१०५३] हे (स्वदावन् दाता) इन्द्र ! (ते) तेरी (गूर्तयः) स्तुतियां (यं) जिस तुझको (स्वदन्ति) आनन्दित करती हैं, तथा तू (पौरे हवं छन्दयसे) मनुष्योंमें स्तुति की इच्छा करता है। वह इन्द्र (नः सोमे अध्वरे) हमारे सोम यागमें (अत्यः न इयानः) घोडेके समान चलता हुआ (आ तोशते) [हमारे शत्रुओंका] मारता है ॥ ५ ॥

[१०५४] मैं (वीरं, उग्रं विविचं, वीर, तेजस्वी ज्ञानवान् (धन स्पृतं, विभूतिं) धन देनेवाले, विविध ऐश्वर्यवाले इन्द्रसे (महः राधसः) बडे धनको (प्र) मांगता हूँ, क्योंकि हे वज्रिन्) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! तू (दाशुषे) दानशील मनुष्यको (वसुत्वना) धनसे (उद्री अवतः इव) जलसे युक्त कुंवेके समान (सदा पीपेथ) सदा तृप्त करता है ॥ ६ ॥

[१०५५] हे (महे मत इन्द्र) महा बुद्धिमान् इन्द्र ! (यद् पृथिव्यां दिविवा) यदि तुम पृथिवीमें या द्युलोकमें हो, (वा) अथवा (परावति नूनं) कहीं दूर देशमें हो, तो (ऋष्वः) महान् तू (ऋष्वेभिः हरिभिः युजानः) बलवान् घोडोंको [रथमें] जोडकर (आ गहि) आओ ॥ ७ ॥

भावार्थ — हे सबको बसानेवाले इन्द्र ! दान देनेवाले मेरे यज्ञको सफल करो। हम तुम्हें सोमरस देकर उत्साहित करते हैं ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! अपने संरक्षणके लिए हम तुझे यह सोमरस निचोडकर दे रहे हैं। ये प्रशंसाके योग्य सोमरस हम तुझे यज्ञोंमें देते हैं ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! हमारी स्तुतियां तुझे आनन्दित करती हैं, इसीलिए तू हमारी स्तुतियोंकी इच्छा करता हुआ हमारे पास शीघ्रतासे आ ॥ ५ ॥

हे वज्रधारी इन्द्र ! तू दानशील मनुष्यको धनसे सदा तृप्त करता है। अतः मैं इन्द्रसे बडे धनको मांगता हूँ ॥६॥

हे इन्द्र ! तू चाहे पासके देशमें हो या दूरके देशमें, तू हमारी स्तुतियोंको सुनकर हमारे पास आ ॥ ७ ॥

+

१०५६ रथिरासो हरयो ये ते अस्रिध ओजो वातस्य पिप्रति ।
येभिर्नि दस्युं मनुषो निघोषयो येभिः स्वः परीयसे ॥ ८ ॥
१०५७ एतावतस्ते वसो विद्याम शूर नव्यसः ।
यथा प्राव एतशं कृत्व्ये धने यथा वशं दशव्रजे ॥ ९ ॥
१०५८ यथा कण्वे मघवन् मेधे अध्वरे दीर्घनीथे दमूनसि ।
यथा गोशर्ये असिषासो अद्रिवो मयि गोत्रं हरिश्रियम् ॥ १० ॥

[५१]

(ऋषिः- श्रुष्टिगुः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१०५९ यथा मनौ सांवरणौ सोममिन्द्रापिबः सुतम् ।
नीपातिथौ मघवन् मेध्यातिथौ पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा ॥ १ ॥
१०६० पार्षद्वाणः प्रस्कण्वं समसादय च्छयानं जिव्रिमुद्धितम् ।
सहस्राण्यसिषासद् गवामृषि स्त्वोतो दस्यवे वृकः ॥ २ ॥

अर्थ— [१०५६] हे इन्द्र ! (ते) तेरे (ये रथिरासः अ-स्रिधः हरयः) जो रथके योग्य, शत्रुरहित घोडे हैं, (ये भिः) जिनके द्वारा तू (मनुषः दस्युं) मनुष्यके शत्रुको (नि निघोषयः) रुलाता है तथा (येभिः स्वः परि ईयसे) जिनसे द्युलोकमें चारों ओर जाते हैं वे घोडे (वातस्य ओजः पिप्रति) वायुके बलको [अपने अन्दर] भरते हैं ॥ ८ ॥

[१०५७] हे (वसो, शूर) सबको बसानेवाले शूरवीर इन्द्र ! तूने (यथा धन कृत्व्ये) जैसे संग्रामके आरम्भ हो जाने पर (एतशं प्र अवः) एतश ऋषिकी रक्षा की, (दशव्रजे यथा वशं) दस शत्रुओंसे घिर जाने पर वश ऋषिकी रक्षा की, (एतावतः नव्यसः ते विद्याम) इतने पराक्रमसे युक्त, स्तुतिके योग्य तुम हो ऐसा हम जानते हैं ॥ ९ ॥

[१०५८] हे (अद्रि-वः मघवन्) वज्रधारी ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (यथा) जैसे (मेधे) यज्ञमें (कण्वे) कण्वको, (अ-ध्वरे) यज्ञमें (दमूनसि दीर्घनीथे) परिवारको प्रिय दीर्घनीथको तथा (यथा गोशर्ये) जैसे गोशर्यको (हरिश्रियं गोत्रं असि-षासः) सोनेके समान कान्तिवाले धनको दिया था, उसी प्रकार (मयि) मुझे भी दो ॥१०॥

[५१]

[१०५९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तूने (यथा) जिस प्रकार (सांवरणौ मनौ) संवरणके पुत्र मनुके यज्ञमें (सुतं सोमं अपिबः) तैय्यार किए सोमको पिया था, उसी प्रकार हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (निपातिथौ मेध्यातिथौ पुष्टि गौ श्रुष्टिगौ सचा) नीपातिथि, मेध्यातिथि, पुष्टिगु और श्रुष्टिगु [आदि ऋषियोंके यज्ञ] में भी [सोम पी] ॥ १ ॥

[१०६०] हे इन्द्र ! जब (पार्षद्वाणः) पार्षद्वाण नामक शत्रुने (उद्धितं, शयानं जिव्रिं प्रस्कण्वं) ऊपरके देशमें सोए हुए वृद्ध प्रस्कण्वको (सं असादयत्) पीडित किया, तब (त्वा ऊतः) तुझसे रक्षित हुए (दस्यवे वृकः) शत्रुको काटनेवाले (ऋषिः) उस ऋषिने (गवां सहस्राणि) हजारों गौवोंको (असिषासद्) प्राप्त किया ॥ २ ॥

भावार्थ—इन्द्रके घोडे रथमें जोडे जाने योग्य और शत्रुओंको रुलानेवाले हैं। इन घोडोंके द्वारा वह सर्वत्र संचार करता है ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! संग्रामके शुरु होनेपर ऋषियोंकी रक्षा की थी। तुम इतने पराक्रमसे युक्त हो, यह सबको ज्ञात ही है ॥९॥

हे इन्द्र ! जैसे तूने ज्ञानी, दूरदर्शी, गोपालक मनुष्यको धन दिया था, उसी तरह तू मुझे भी दे ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तूने मनु, मेध्यातिथि आदि अनेकों ऋषियोंके यज्ञमें सोमरसका पान किया था। और प्रस्कण्वको इतना वीर बनाया कि उसने अपने शत्रुको मारकर अनेक गायें प्राप्त कीं। जो शत्रुका नाश करता है वह बलवान् होता है ॥१-२॥

१०६१ य उक्थेभिर्न विन्धते चिकिद्य ऋषिचोदनः ।
इन्द्रं तमच्छा वद नव्यस्या मत्यरिष्यन्तं न भोजसे ॥ ३ ॥

१०६२ यस्मा अर्कं सप्तशीर्षाणमानृचुस्त्रिधातुमुत्तमे पदे ।
स त्विमा विश्वा भुवनानि चिक्रददादिज्जनिष्ट पौंस्यम् ॥ ४ ॥

१०६३ यो नो दाता वसूनामिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
विद्मा ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं गमेम गोमति व्रजे ॥ ५ ॥

१०६४ यस्मै त्वं वसो दानाय शिक्षसि स रायस्पोषमश्नुते ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥ ६ ॥

अर्थ— [१०६१] (यः) जो इन्द्र ! (उक्थेभिः) स्तोत्रोंके द्वारा (नः चिकिद् विन्धते) हमारे ज्ञानको जानता है, (यः ऋषि-चोदनः) जो ऋषियोंका प्रेरक है, ऐसे (तं इन्द्रं) उस इन्द्रके लिए (नवस्या मती) नए नए स्तोत्रोंको (भोजसे अरिष्यन्तं न) [जैसे कोई मनुष्य] पालनके लिए अहिंसककी स्तुति करता है, उसी प्रकार (अच्छ वद) कहो ॥ ३ ॥

[१०६२] (यस्मै) जिस इन्द्रके लिए मनुष्य (उत्तमे पदे) उत्तम स्थानमें (सप्त शीर्षाणं) सात ऋचाओंवाले (त्रिधातुं) तीन धारण शक्तिवाले (अर्कं) स्तोत्रको (आनृचुः) पढते हैं, (सः तु) वह इन्द्र (इमा विश्वा भुवनानि) इन सारे भुवनोंको (चिक्रदत्) बनाता है, (आत् इत्) उसके बादही (पौंस्यं जनिष्ट) अपने बलको प्रकट करता है ॥ ४ ॥

[१०६३] (यः नः वसूनां दाता) जो हमें धनोंका देनेवाला है, ऐसे (इन्द्रं वयं हूमहे) इन्द्रको सहायार्थ हम बुलाते हैं, (हि) क्योंकि हम (अस्य नवीयसीं सुमतिं विद्म) इसकी नवीन उत्तम स्तुतिको जानते हैं, उसके द्वारा हम (गोमति व्रजे) गौवोंसे युक्त गोष्ठको (गमेम) प्राप्त हों ॥ ५ ॥

[१०६४] हे (वसो) भुवनोंको बसानेवाले इन्द्र ! (यस्मै दानाय शिक्षसि) जिसको दान देनेकी शिक्षा देते हो, (सः रायस्पोषं अश्नुते) वह धनसे पोषणको प्राप्त करता है, हे (गिर्वणः मघवन् इन्द्र) स्तुत्य, ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (तं त्वा) उस तुझको (सुतावन्तः वयं) सोम याग करनेवाले हम (हवामहे) सहायार्थ बुलाते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— स्तोत्रोंके द्वारा यह इन्द्र स्तोताओंके ज्ञानको जानता है। यही इन्द्र ऋषियोंका प्रेरक है। उन्हें नये नये स्तोत्र बनानेके लिए प्रेरणा देता है ॥ ३ ॥

प्रथम इन्द्र इन सारे भुवनोंका निर्माण करके अपने बलको प्रकट करता है, तब इस इन्द्रके लिए ऋचाओं द्वारा स्तुति की जाती है ॥ ४ ॥

यह इन्द्र धनोंको देनेवाला होनेके कारण इस इन्द्रको हम बुलाते हैं। हम इसकी स्तुति करके गौओंको प्राप्त करें ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! जिस मनुष्यको तुम दान देनेकी शिक्षा देते हो, वह पुष्टिकारक धनको प्राप्त करता है। जो दान देता है उसे ही धन मिलता है ॥ ६ ॥

१०६५ कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ७ ॥
१०६६ प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रिविं वधैः शुष्णं निघोषयन् ।
यदेदस्तम्भीत् प्रथयन्नमूं दिव—मादिज्जनिष्ट पार्थिवः ॥ ८ ॥
१०६७ यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत् सो अज्यते रयिः ॥ ९ ॥
१०६८ तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवो ऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥ १० ॥

अर्थ— [१०६५] हे (मघवन् इन्द्र) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तू (दाशुषे) दान दाता यजमानका (कदाचन न स्तरीः असि) कभी भी विनाशक नहीं होता, अपितु (सश्चसि) उसकी सहायता करता है, (ते देवस्य दानं) तुझ देवका दान (उप उप इत् नु) मेरे पास आता है, और (भूयः इत् नु पृच्यते) अधिक ही प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

१ दाशुषे कदाचन न स्तरीः असि— तू दान दाताका कभी नाश नहीं करता ।

[१०६६] (यदा इत्) जब (प्रथयन्) बढनेवाले असुरने (अमूं दिवं अस्तम्भीत्) इस द्युलोकको रोक दिया, तब (यः) जिस इन्द्रने (वधैः) अस्त्रोंसे (क्रिविं शुष्णं) हिंसा करनेवाले शुष्ण नामक राक्षसको (निघोषयन्) चिल्लाते हुए (ओजसा अभि प्र ननक्षे) अपने बलसे मारा उसी इन्द्रने (आत् इत्) उसके बादही (पार्थिवः जनिष्ट) पृथ्वीके पदार्थोंको पैदा किया ॥ ८ ॥

नक्ष्— समीप गमन करना मारना ।

[१०६७] (अयं विश्वः आर्यः दासः) ये सम्पूर्ण आर्य और दास (यस्य शेवधि-पाः) जिसके कोषकी रक्षा करते हैं, वह सबका (अरिः) स्वामी है, हे इन्द्र ! (अर्ये रुशमे पवीरवि) श्रेष्ठ रुशम और पवीरु ऋषियोंका (तिरः चित् सः रयिः) छिपा हुआ वह धन (तुभ्य इत् अज्यते) तेरे कारण ही प्रकट हुआ ॥ ९ ॥

[१०६८] (तुरण्यवः विप्रासः) शीघ्रतासे यज्ञ करनेवाले ज्ञानी (मधुमन्तं) मधुर (घृत श्चुतं) जलके प्रेरक तथा (अर्कं) पूजनीय इन्द्रकी (आनृचुः) अर्चना करते है, वह (अस्मे) हममें (रयिः, वृष्ण्य, शवः पप्रथे) धन, वीर्य तथा बलको बढावे तथा (अस्मे) हमें (सुवानासः इन्दवः) सोमरसोंको देवे ॥ १० ॥

भावार्थ— इन्द्र आदि देव दान देनेवालेकी कभी हिंसा नहीं करते, अपितु वे उस दानी की हर तरहसे सहायता ही करते हैं । इन्द्रसे एक वार प्राप्त किया हुआ दान सदा बढता ही जाता है, कभी कम नहीं होता ॥ ७ ॥

जब शुष्ण नामक असुरने सारे द्युलोकको आच्छादित कर दिया था, तब इन्द्रने उसे मारा तो वह असुर चिल्लाने लगा । जब मेघ सारेको ढंक लेता है, तब बिजली उस मेघको बरसाती है, उस समय वह मेघ जोर जोरसे गर्जना करने लगता है ॥ ८ ॥

ये सारे आर्य और दास इन्द्रके खजानेकी रक्षा करते हैं । श्रेष्ठ रुशम और पवीरु ऋषिका गुप्त धन इन्द्रके कारण ही प्रकट हुआ ॥ ९ ॥

इन्द्र देवका स्वभाव मधुर है और इसके द्वारा प्रेरित जल भी मधुर होता है । यह जल बरसाकर सारे संसारका पोषण करता है, इसलिए सारे प्राणी इसकी स्तुति करते हैं ॥ १० ॥

[५१]

(ऋषिः- आयुः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१०६९ यथा मनौ विवस्वति सोमं शक्रापिबः सुतम् ।
यथा त्रिते छन्द इन्द्र जुजोषस्यायौ मादयसे सचा ॥ १ ॥

१०७० पृषध्रे मेध्ये मातरिश्वनीन्द्र सुवाने अमन्दथाः ।
यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये स्यूमरश्मावृजूनसि ॥ २ ॥

१०७१ य उक्था केवला दधे यः सोमं धृषितापिबत् ।
यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम उप मित्रस्य धर्मभिः ॥ ३ ॥

१०७२ यस्य त्वमिन्द्र स्तोमेषु चाकनो वाजे वाजिञ्छतक्रतो ।
तं त्वा वयं सुदुघामिव गोदुहो जुहूमसि श्रवस्यवः ॥ ४ ॥

१०७३ यो नो दाता स नः पिता महाँ उग्र ईशानकृत् ।
अयामन्नुग्रो मघवा पुरूवसुर्गोरश्वस्य प्र दातु नः ॥ ५ ॥

---

[५१]

अर्थ— [१०६९] हे (शक्र) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! तूने (यथा विवस्वति मनौ) जिस प्रकार विवस्वानके पुत्र मनुके यज्ञमें (सुतं सोमं अपिबः) निकाले गए सोमको पिया, (यथा त्रिते छन्दः जुजोषसि) जिस प्रकार त्रित ऋषिके यज्ञमें छन्दोंको सुना, उसी प्रकार (आयौ) आयु ऋषिके यज्ञमें भी (सचा) एक साथ बैठकर (मादयसे) आनन्दित होते हो ॥ १ ॥

[१०७०] हे (इन्द्र) इन्द्र (यथा सुवाने पृषध्रे, मेध्ये, मातरिश्वनि, दश शिप्रे) जिस प्रकार सोमयाग करनेवाले पृषध्र, मेध्य, मातरिश्वा, दश शिप्र (दशोण्ये स्यूमरश्मौ ऋजूनसि) दशोण्य, स्यूमरश्मि, ऋजूनस् आदि ऋषियोंके यज्ञोंमें (सोमं अमन्द थाः) सोम पीकर तुम आनन्दित हुए ॥ २ ॥

[१०७१] (यः केवला उक्था दधे) जो केवल स्तोत्रोंको धारण करता है, (यः धृषिता सोमं अपिबत्) जिस शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्रने सोमको पिया, (यस्मै) तथा जिसके लिए (विष्णुः) विष्णुने (मित्रस्य धर्मभिः) मित्रके धर्मोंके द्वारा (त्रीणि पदा विचक्रमे) तीन पदोंसे सबको नाप लिया, [वह इन्द्र हमें सुखी करे] ॥ ३ ॥

[१०७२] (वाजिन् शतक्रतो इन्द्र) हे बलवान् तथा सैंकडो शुभ-कर्म करनेवाले इन्द्र ! (त्वं यस्य स्तोमेषु वाजे) तू जिसके स्तोत्रोंके पाठमें तथा यज्ञमें (चाकनः) तृप्त होता है, (तं त्वा) उस तुझको (श्रवस्यवः) अन्नकी इच्छा करनेवाले (वयं) हम (गोदुहः सु-दुघां इव) जैसे गायको दुहनेवाले गायको घास आदिसे तृप्त करते हैं, उसी प्रकार (जुहूमसि) [हविसे] तृप्त करते हैं ॥ ४ ॥

[१०७३] (यः नः दाता) जो इन्द्र हमें धन देनेवाला है, (सः महान्, उग्रः ईशान्-कृत्) वह महान्, वीर तथा ईशन करनेवाला इन्द्र (नः पिता) हमारा पिता है । (अ-यामन् उग्रः, मघवा, पुरु-वसुः) [युद्धमें] पीछे न हटनेवाला, वीर, ऐश्वर्यवान् तथा बहुतोंको आश्रय देनेवाला वह इन्द्र (नः) हमें (गोः अश्वस्य प्र दातु) गायें और घोडे देवे ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तूने जिस तरह मननशील ज्ञानीके यज्ञमें सोमरस पिया था और त्रित ऋषिके यज्ञमें स्तुतियोंको सुना था, उसीतरह तू आयु ऋषिके यज्ञमें भी आनदित हो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम ऋषियोंके यज्ञोंमें सोम पीकर आनन्दित होओ ॥ २ ॥

इस इन्द्रने सोमको पिया और अपने तीन कदमोंसे सभी भुवनोंको नाप लिया ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तू यज्ञमें स्तोत्रोंसे तृप्त होता है अतः हम तुझे गायको घाससे तृप्त करनेके समान स्तुतियोंसे तृप्त करते हैं ॥ ४ ॥

वह धन देनेवाला, महान्, वीर तथा सबका स्वामी इन्द्र हमारा पिता है । युद्धमें पीछे न हटनेवाला वीर, तथा ऐश्वर्यवान् वह इन्द्र हमें पशु आदि प्रदान करे ॥ ५ ॥

१०७४ यस्मै त्वं वसो दानाय मंहसे स रायस्पोषमिन्वति ।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥ ६ ॥
१०७५ कदा चन प्र युच्छस्युभे नि पासि जन्मनी ।
तुरीयादित्य हवनं त इन्द्रियमा तस्थावमृतं दिवि ॥ ७ ॥
१०७६ यस्मै त्वं मघवन्निन्द्र गिर्वणः शिक्षो शिक्षसि दाशुषे ।
अस्माकं गिर उत सुष्टुतिं वसो कण्ववच्छृणुधी हवम् ॥ ८ ॥
१०७७ अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ ९ ॥

अर्थ— [१०७४] हे वसो) हे सबके आश्रय इन्द्र ! (त्वं यस्मै दानाय मंहसे) तू जिसको दान देनेके लिए आज्ञा देता है, (सः रायः पोषं इन्वति) वह धन और पुष्टिको प्राप्त करता है, (वसू-यवः) धनको चाहनेवाले हम (वसु-पतिं शतक्रतुं इन्द्रं) धनके स्वामी, सैकडों कर्मोंके करनेवाले इन्द्रको (स्तोमैः हवामहे) स्तोत्रोंसे सहायार्थ बुलाते हैं ॥ ६ ॥

[१०७५] हे इन्द्र ! (कदाचन प्र युच्छसि) तुम कभी भी प्रमाद नहीं करते हो, (उभे जन्मनी नि पासि) दोनों तरहके प्राणियोंका पालन करते हो, हे (तुरीय) सर्वोत्तम (आदित्य) प्रकाशमान् इन्द्र ! (ते हवनं अ-मृतं इन्द्रियं) तुम्हारी प्रार्थनाके योग्य, न नष्ट होनेवाली शक्ति (दिवि आ स्थात्) द्युलोकमें स्थित है ॥ ७ ॥

१ कदाचन प्रयुच्छसि - इन्द्र कभी भी प्रमाद नहीं करता ।
२ ते हवनं अमृतं इंद्रियं दिवि आस्थात्- तेरी प्रार्थना करने योग्य नष्ट न होनवाली शक्ति द्युलोकमें दीखती है ॥।

[१०७६] हे (मघवन् गिर्वणः शिक्षः इन्द्र) ऐश्वर्यवान्, वाणियोंसे पूज्य, शिक्षक इन्द्र ! (यस्मै दाशुषे शिक्षसि) जिस दानशील यजमानको [धन] देनेकी इच्छा करते हो, उस धनके लिए ही (अस्माकं गिरः उत सु-स्तुतिं हवं) हमारी वाणी और उत्तम स्तुति तथा प्रार्थनाको भी हे (वसो) सबका निवास करनेवाले इन्द्र (कण्ववत्) जैसे कण्वकी प्रार्थना सुनी उसी प्रकार (शृणुधी) सुनो ॥ ८ ॥

[१०७७] (पूर्व्यं मन्म) जिस प्राचीन स्तोत्रसे [पहले इन्द्रकी] (अस्तावि) स्तुति की, उसी (ब्रह्म) स्तोत्रका [अब भी] (इन्द्राय वोचत) इन्द्रके लिए गान करो, (ऋतस्य पूर्वीः बृहतीः अनूषत) यज्ञके प्राचीन तथा बडे बडे गानोंको गाओ, और (स्तोतुः मेधा असृक्षत) स्तोताकी बुद्धिको बढाओ ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू जिसे धनका दान देता है, वह धनके साथ पुष्टिको भी प्राप्त करता है। अतः धनको चाहनेवाले हम स्तोत्रोंसे इन्द्रको बुलाते हैं ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम कभी भी प्रमाद नहीं करते हो, तथा दो पाये-चौपाये दोनों तरहके प्राणियोंका पालन करते हो। तुम्हारी कभी नष्ट न होनेवाली शक्ति द्युलोकमें स्थित है ॥ ७ ॥

हे ऐश्वर्यशाली, वाणियोंसे पूज्य इन्द्र ! तू दानशीलको धन देनेकी इच्छा करता है । उस धनको प्राप्त करनेके लिए ही हम तेरी स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

हे मनुष्य ! जिस प्राचीन स्तोत्रसे इन्द्रकी तुमने पहले स्तुति की थी, उसी स्तुतिका अब इन्द्रके लिए गान करो, यज्ञमें बडी बडी स्तुतियोंको गाओ, और स्तोताकी बुद्धिको बढाओ ॥ ९ ॥

१०७८ समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥ १० ॥

[५२]

(ऋषिः- मेध्यः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१०७९ उपमं त्वा मघोनां ज्येष्ठं च वृषभाणाम् ।
पूर्भित्तमं मघवन्निन्द्र गोविदमीशानं राय ईमहे ॥ १ ॥

१०८० य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयो वावृधानो दिवेदिवे ।
तं त्वा वयं हर्यश्वं शतक्रतुं वाजयन्तो हवामहे ॥ २ ॥

१०८१ आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिञ्चन्त्वद्रयः ।
ये परावति सुन्विरे जनेष्वा ये अर्वावतीन्दवः ॥ ३ ॥

अर्थ— [१०७८] जिस (इन्द्रः) इन्द्रने (बृहतीः रायः सं अधूनुत) बडे बडे ऐश्वर्योंको ठीक तरह रखा, (क्षोणी सं) द्यावा पृथिवीको उत्तम प्रकार बनाया, (उ) और (सूर्यं सं) सूर्यकी उत्तम प्रकार रचना की, उस (इन्द्रं) इन्द्रको, (शुक्रासः, शुचयः, गवाशिरः सोमाः) पवित्र, तेजस्वी, गौ दुग्ध मिश्रित सोमरस (सं सं सं अमन्दिषुः) अच्छी प्रकार आनन्दित करते हैं ॥ १० ॥

[५२]

[१०७९] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (मघोनां उपमं) ऐश्वर्यवानोंमें सर्वोत्कृष्ट उपमा देने योग्य (वृषभाणां च ज्येष्ठं) बलिष्ठोंमें सर्व श्रेष्ठ (पूः-भित्तमं) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले, (गो-विदं) गौवोंको प्राप्त करानेवाले (ईशानं) सबके स्वामी (त्वा) तुझसे हम (रायः ईमहे) धन मांगते हैं ॥ १ ॥

[१०८०] (यः) जिस तूने (आयुं, कुत्सं अतिथिग्वं) आयु, कुत्स और अतिथिग्वको (वावृधानः) बढाते हुए (दिवे दिवे) प्रतिदिन (अर्दयः) उच्च बनाया, (तं) उस (हरि-अश्वं शतक्रतुं) हरि नामक घोडोंवाले सैकडों शुभ कर्म करनेवाले (त्वा) तुझे (वाजयन्तः वयं) बलकी इच्छावाले हम सहायार्थ (हवामहे) बुलाते हैं ॥ २ ॥

[१०८१] (विश्वेषां नः) हम सभीके (अद्रयः) पत्थर (मध्वः रसं आ सिंचंतु) सोमके रसको निचोडें, (ये परावति जनेषु सुन्विरे) जो दूर देशके मनुष्योंमें निचोडे गए हैं, तथा (ये इन्दवः अर्वावति सुन्विरे) जो सोम पासके देशमें निचोडे गये हैं [वे सब इन्द्रको आनन्दित करें] ॥ ३ ॥

भावार्थ— इस इन्द्रने बडे बडे ऐश्वर्योंको स्थापित किया, द्यावा पृथिवीको उत्तम रीतिसे बनाया और सूर्यकी उत्तम प्रकारसे रचना की । उस इन्द्रको सब आनन्दित करें ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तू ऐश्वर्यशालियोंमें सर्वश्रेष्ठ, बलिष्ठोंमें भी बलिष्ठतम, शत्रुके नगरोंको तोडनेवाला तथा सबका स्वामी है, तुझसे हम धन मांगते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! जिस तूने आयु, कुत्स आदि ऋषियोंको उन्नत किया, उस सैंकडों शुभ कर्म करनेवाले तुझे बल प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले तुझे हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

सभी मनुष्य इन्द्रको आनन्दित करनेके लिए सोमरसको निचोडें और वे सोमरस इन्द्रको आनन्दित करें ॥ ३ ॥

१०८२ विश्वा द्वेषांसि जहि चाव चा कृधि विश्वे सन्वन्त्वा वसु ।
शीष्टेषु चित्ते मदिरासो अंशवो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ॥ ४ ॥

१०८३ इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।
आ शंतम शंतमाभिरभिष्टिभि-रा स्वापे स्वापिभिः ॥ ५ ॥

१०८४ आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम् ।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक् ॥ ६ ॥

१०८५ यस्ते साधिष्ठोऽवसे ते स्याम भरेषु ते ।
वयं होत्राभिरुत देवहूतिभिः ससवांसो मनामहे ॥ ७ ॥

अर्थ— [१०८२] (यत्र सोमस्य तृम्पसि) जिस [यजमान] के सोमसे तृप्त होते हो, उसके (विश्वा द्वेषांसि जहि) सारे शत्रुओंको पराजित करो, (अव च) और उसकी रक्षा करो (च) और (कृधि) [उसे उन्नत] करो, उसे (विश्वे) सभी मनुष्य (वसु आ सन्वन्तु) धन देवें, (शीष्टेषु चित्) ज्ञानियोंके (अंशवः) सोम (ते मादिरासः) तुम्हें आनन्दित करें ॥ ४ ॥

[१०८३] हे (शंतम सु-आपे इन्द्र) अत्यन्त सुखकर, उत्तम बन्धु इन्द्र ! तू (मित-मेधाभिः, शंतमाभिः, अभिष्टिभिः) अपरिमित बुद्धिसे युक्त, अत्यन्त सुख देनेवाले, इच्छित पदार्थ देनेवाले (सु-आपिभिः) अत्यन्त प्रिय मित्र जैसे (ऊतिभिः) रक्षाके साधनोंसे युक्त होकर (नेदीय इत् आ इहि) हमारे पास ही आ ॥ ५ ॥

[१०८४] हे इन्द्र ! (प्रजासु) प्रजाओंमें होनेवाले (आजितुरं) संग्रामोंको त्वरासे जीतनेवाले (सत्पतिं) सज्जनोंके पालनकर्ता (विश्व चर्षणिं) सम्पूर्ण मनुष्योंका हित करनेवाले (भगं) ऐश्वर्यका (आ कृधि) दान हमें करो, तथा (ये ते उक्थिनः) जो तुम्हारे स्तोता हैं, उन्हें (शचीभिः) अपनी शक्तियोंसे (प्र सू तिर) अच्छी तरहसे बढा, तथा (क्रतुं आनुषक् पुनत) यज्ञको निरन्तर पवित्र कर ॥ ६ ॥

[१०८५] (यः ते साधिष्ठः) जो तेरी साधना करता है, उसे हम (अवसे) रक्षणके लिए [बुलाते हैं] । हे इन्द्र ! (ते) वे हम (भरेषु ते स्याम) संग्रामोंमें तेरे ही होकर रहें, (स सवांसः) अन्नकी इच्छावाले हम (होत्राभिः उत देवहूतिभिः) स्तोत्र तथा प्रार्थनाओं द्वारा (वयं) इस इन्द्रकी (मनामहे) उपासना करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जिस मनुष्यके सोमसे तुम तृप्त होते हो, उसके सारे शत्रुओंका तुम नाश करो और उसकी रक्षा करके उसे उन्नत करो ॥ ४ ॥

हे उत्तम बन्धु इन्द्र ! अपरिमित बुद्धिवाला, अत्यन्त सुख देनेवाला और इच्छित पदार्थ देनेवाला तू उत्तम रक्षाके साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास आ ॥ ५ ॥

प्रजाओंमें होनेवाले संग्रामोंको त्वरासे जीतनेवाले सज्जनोंके पालनकर्ता, सब मनुष्योंके हितकरनेवाले धनको हमें दो । धन ऐसा चाहिये ॥ ६ ॥

जो साधना करता है, उसे हम अपनी रक्षाके लिए बुलाते हैं । हे इन्द्र! संग्रामोंमें हम तेरे ही होकर रहें और तेरी ही उपासना करें ॥ ७ ॥

१०८६ अहं हि ते हरिवो ब्रह्म वाजयु॒-राजिं यामि सदोतिभिः ।
त्वामिदेव तममे समश्वयु॒-र्गव्युरग्रे मथीनाम् ॥ ८ ॥

[५४]

(ऋषिः- मातरिश्वा काण्वः । देवताः- इन्द्रः, ३-४ विश्वे देवाः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१०८७ एतत् त इन्द्र वीर्यं गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ।
ते स्तोभन्त ऊर्जमावन् घृतश्चुतं पौरासो नक्षन् धीतिभिः ॥ १ ॥

१०८८ नक्षन्त इन्द्रमवसे सुकृत्यया येषां सुतेषु मन्दसे ।
यथा संवर्ते अमदो यथा कृश एवास्मे इन्द्र मत्स्व ॥ २ ॥

१०८९ आ नो विश्वे सजोषसो देवासो गन्तनोप नः ।
वसवो रुद्रा अवसे न आ गम-ञ्छृण्वन्तु मरुतो हवम् ॥ ३ ॥

अर्थ—[१०८६] हे (हरिवः) अश्ववान् इन्द्र! (वाजयुः) अन्नकी इच्छा करता हुआ (अहं) मैं (ते ऊतिभिः सदा) तेरे संरक्षणसे सदा रक्षित होता हुआ (ब्रह्म आजिं यामि) बडे बडे युद्धमें भी चला जाता हूँ । (अश्वयुः गव्युः) घोडे तथा गायोंकी इच्छावाला मैं (अमे) संग्राममें (मथीनां अग्रे) शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ (तं त्वा इत् एव) उस तेरा ही [आश्रय लेता हूँ] ॥ ८ ॥

[५४]

[१०८७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (कारवः) ऋत्विज (ते एतत् वीर्यं) तेरे इस वीर्यका (गीर्भिः) वाणियोंसे (गृणन्ति) वर्णन करते हैं, (ते स्तोभन्तः) उन स्तोताओंने (ऊर्जं आवन्) अन्नको प्राप्त किया, तथा (पौरासः) प्रजाओंने भी (धीतिभिः) स्तुतियोंसे (घृतः चुतं) घीको देनेवाली गायको (नक्षन्) प्राप्त किया ॥ १ ॥

कारवः ते वीर्यं गृणन्ति— कार्य करनेवाले तेरे पराक्रमोंका वर्णन करते हैं ।

[१०८८] हे इन्द्र ! (येषां सुतेषु मन्दसे) जिनके सोम यज्ञोंमें तू आनन्दित होता है, वे (अवसे) संरक्षणके लिए (सु-कृत्यया) अपने उत्तम कर्मोंसे (इन्द्रं) इन्द्रको (नक्षन्ते) प्राप्त करते हैं । (यथा संवर्ते अमदः) जैसे संवर्त ऋषिके यज्ञमें आनन्दित हुए, (यथा कृशे) जैसे कृश ऋषिके यज्ञमें [आनन्दित हुए] हे (इन्द्र) इन्द्र (एव) उसी प्रकार (अस्मे मत्स्वः) हमारे यज्ञमें आनन्दित होवो ॥ २ ॥

अवसे सुकृत्यया इन्द्रं नक्षन्ते— संरक्षणके लिये उत्तम कर्मोंको करनेवाले इन्द्रको प्राप्त करते हैं ।

[१०८९] (सजोषसः विश्वे देवासः) प्रीतिपूर्वक रहनेवाले सभी देव (नः उप आ गन्तन) हमारे पास आवें । (वसवः रुद्राः अवसे नः आ गमन्) वसु और रुद्र हमारी रक्षा करनेके लिए हमारे पास आवें । (मरुतः नः हवं शृण्वन्तु) मरुद्गण हमारी प्रार्थना सुनें ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! मैं तेरे संरक्षणोंसे सदा बडे युद्धोंमें भी जाता हूं । युद्धमें वीरोंके आगे मैं रहता हूं । मैं तुझसे रक्षित होकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ होऊं ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! ऋत्विज तेरे इस पराक्रमका वर्णन करते हैं । उन्होंने तुझसे अन्न प्राप्त किया तथा प्रजाओंने स्तुतियोंसे गायको प्राप्त किया ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! जिनके सोम यज्ञोंमें तू आनन्दित होता है, वे अपने उत्तम कर्मोंके कारण तेरी शक्तिको प्राप्त करते हैं । हे इन्द्र ! तू हमारे यज्ञमें आकर आनन्दित हो ॥ २ ॥

सभी देव हमारी रक्षा करनेके लिए हमारे पास आवें और हमारी प्रार्थना सुनें ॥ ३ ॥

+

१०९० पूषा विष्णुर्हवनं मे सरस्वत्यवन्तु सप्त सिन्धवः ।
आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हवम् ॥ ४ ॥
१०९१ यदिन्द्र राधो अस्ति ते माघोनं मघवत्तम ।
तेन नो बोधि सधमाद्यो वृधे भगो दानाय वृत्रहन् ॥ ५ ॥
१०९२ आजिपते नृपते त्वमिद्धि नो वाज आ वक्षि सुक्रतो ।
वीती होत्राभिरुत देववीतिभिः ससवांसो वि शृण्विरे ॥ ६ ॥
१०९३ सन्ति ह्यर्य आशिष इन्द्र आयुर्जनानाम् ।
अस्मान् नक्षस्व मघवन्नुपावसे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ॥ ७ ॥
१०९४ वयं त इन्द्र स्तोमेभिर्विधेम त्वमस्माकं शतक्रतो ।
महि स्थूरं शशयं राधो अह्रयं प्रस्कण्वाय नि तोशय ॥ ८ ॥

अर्थ— [१०९०] (पूषा विष्णुः सरस्वती सप्त सिन्धवः) पूषा, विष्णु, सरस्वती और सातों नदियां (मे हवनं अवन्तु) मेरे यज्ञकी रक्षा करें। (अपः वातः पर्वतासः वनस्पतिः पृथिवी हवं शृणोतु) जल, वायु, पर्वत, वनस्पति और पृथिवी मेरी प्रार्थना सुनें ॥ ४ ॥

[१०९१] हे (मघवत्तम इन्द्र) सर्वोत्कृष्ट ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (यत् ते) जो तेरा (माघोनं राधः अस्ति) ऐश्वर्य प्रद धन है, (तेन) उससे हे (सध माद्यः भगः, वृत्रहन्) साथ साथ यज्ञमें बैठकर आनन्दित होनेवाले, ऐश्वर्यवान् तथा वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (नः) हमें (वृधे) बढनेके तथा (दानाय) दान मिलनेके मार्गको (बोधि) बताओ ॥ ५ ॥

[१०९२] हे (आजिपते नृपते सु-क्रतो) संग्रामके स्वामी, प्रजापालक और उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! (वाजे) संग्राममें (त्वं इत् तू ही (नः आवक्षि) हमें सुरक्षित करता है, (स सवांसः) अन्नकी कामनावाले स्तोतागण (देव-वीतिभिः) देवोंके लिये यज्ञ करानेवालों; (वीतिभिः होत्राभिः ज्ञानयुक्त स्तुतियोंसे (वि शृण्वरे) प्रसिद्ध होते हैं ॥ ६ ॥

[१०९३] (हि) क्योंकि (जनानां आयुः आशिषः) प्राणियोंका जीवन तथा ऐश्वर्य (अर्ये इन्द्रे सन्ति) स्वामी इन्द्रके अधीन हैं, अतः हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (अवसे) संरक्षणके लिए (अस्मान्) हमें (उप नक्षस्व) अपने समीप करो तथा (पिप्युषीं इषं) पालन करनेवाले अन्नको हमें (धुक्षस्व) दो ॥ ७ ॥

[१०९४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वयं ते) हम तेरे हैं, और (त्वं अस्माकं) तू हमारा है, इसलिए हम (स्तोमेभि विधेम) स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं, हे (शतक्रतो) सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! (महि स्थूरं, शशयं अह्रयं राधः) महान् बडे सदा रहनेवाले, अनिंदनीय अथवा कम न होनेवाला धन (प्रस्कण्वाय नि तोशय) प्रस्कण्वके लिए दो ॥ ८ ॥

वयं ते— हम तेरे हैं
त्वं अस्माकं— तू हमारा है
महि स्थूरं शशयं अह्रयं राधः नितोशय— बडे महान् सदा रहनेवाले कम न होनेवाले धनको हमें दे दो ।

भावार्थ— पूषा, विष्णु आदि सभी देव मेरी प्रार्थना सुनें और मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! जो तेरा धन है, उसे प्राप्त करके हम आनन्दित हों । तू हमें आगे बढनेका मार्ग दिखा ॥५॥

हे युद्धमें प्रवीण नरपते उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! युद्धमें तू ही हमारी रक्षा करता है ॥ ६ ॥

सभी प्राणियोंका जीवन तथा ऐश्वर्य स्वामी इन्द्रके ही अधीन है । अतः हे इन्द्र ! हमारी रक्षा करनेके लिए तू हमें अपने पास कर और पुष्टि कारक अन्न दे ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! हम तेरे हैं और तू हमारा है, इसीलिए हम स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं । तू ज्ञानीको आनन्द देनेवाला धन प्रदान कर ॥ ८ ॥

[५५]

(ऋषिः- कृशः काण्वः । देवताः- इन्द्रः प्रस्कण्वश्च । छन्दः- गायत्री, ३, ५ अनुष्टुप् ।)

१०९५ भूरीदिन्द्रस्य वीर्यं॑ व्यख्यम॒भ्याय॑ति । राध॑स्ते दस्यवे वृक ॥ १ ॥

१०९६ श॒तं श्वे॒तास॑ उ॒क्षणो॑ दि॒वि तारो॒ न रो॑चन्ते । म॒ह्ना दि॒वं न त॑स्तभुः ॥ २ ॥

१०९७ श॒तं वे॒णूञ्छ॒तं शुनः॑ श॒तं चर्मा॑णि म्ला॒तानि॑ ।

श॒तं मे॑ बल्बजस्तु॒का अरु॑षीणां॒ चतुः॑शतम् ॥ ३ ॥

१०९८ सुदे॒वाः स्थ॑ काण्वायना॒ वयो॑वयो विच॒रन्तः॑ । अश्वा॑सो॒ न च॑ङ्क्रमत ॥ ४ ॥

१०९९ आदित् सा॒प्तस्य॑ चर्कि॒रन्नानू॑नस्य॒ महि॒ श्रवः॑ ।

श्यावी॑रतिध्व॒सन् प॒थश्चक्षु॑षा च॒न सं॒नशे॑ ॥ ५ ॥

---

[५५]

अर्थ— [१०९५] (इन्द्रस्य भूरि इत् वीर्यं) इन्द्रका महान् पराक्रम ही (अभि व्यख्यं आयति) चारों ओर प्रकाशित हो रहा है। हे (दस्यवे वृक) दस्युको काटनेवाले इन्द्र ! (ते राधः) तेरा धन [हमें प्राप्त हो] ॥ १ ॥

१ इन्द्रस्य भूरि इत् वीर्यं अभि व्यख्यं आयति— इन्द्रका महान् पराक्रम ही चारों ओर प्रकाशित हो रहा है।

२ दस्यवे वृक— दुष्टको काटनेवाला वीर।

[१०९६] हे इन्द्र ! [तेरे द्वारा दिए गए] (शतं श्वेतासः उक्षणः) सौ सफेद बैल (दिवि तारः न रोचन्ते) द्युलोकमें तारोंके समान चमक रहे हैं, वे अपनी (मह्ना) शक्तिसे (न) मानों (दिवं तस्तभुः) द्युलोकको आधार देते हैं ॥ २ ॥

[१०९७] [इन्द्रने कृश ऋषिको] (शतं वेणून्) सौ वेणू दिए, (शतं शुनः) सौ कुत्ते दिए, (शतं म्लातानि चर्माणि) सौ कोमल [हिरणकी] खालें दीं, (मे शतं बल्बजस्तुकाः) मुझे सौ घासोंके गट्ठे दिए, तथा (अरुषीणां चतुः शतं) चार सौ लाल घोडे दिए ॥ ३ ॥

[१०९८] हे (काण्वायनाः) कण्वके पुत्रो ! (वयः वयः विचरन्तः) पक्षियोंके समान विचरते हुए (सुदेवाः स्थ) उत्तम देव बनो, तथा (अश्वासः न) घोडोंके समान (चङ्क्रमत) विचरो ॥ ४ ॥

[१०९९] हे मनुष्यो ! (आत् इत्) इसके अनन्तर (साप्तस्य चर्किरन्) उस सातों लोकोंके स्वामी इन्द्रकी स्तुति करो, क्योंकि (अ-नूनस्य) उस पूर्ण पुरुषका (श्रवः महि) यश महान् है, और जो (श्यावीः पथः अति ध्वसन्) काले अर्थात् दोष पूर्ण मार्गोंको पार कर जाता है, [वह उस इन्द्रको] (चक्षुषा चन संनशे) आंखसे भी देख सकता है ॥ ५ ॥

१ अ-नूनस्य श्रवः महि— उस पूर्ण पुरुषका यश महान् है।

२ श्यावीः पथः अति ध्वसन् चक्षुषा चन संनशे— बुरे मार्गोंको पार करता हुआ मनुष्य इन्द्रको आंखसे भी देख सकता है।

भावार्थ— दुष्टोंका नाश करनेवाले इन्द्रका महान् पराक्रम चारों ओर प्रकाशित हो रहा है। जो दुष्टोंका नाश करता है, उसका पराक्रम चारों ओर प्रकाशित होता है ॥ १ ॥

इन्द्र द्वारा दिए गए सौ सफेद बैल अपनी शक्तिसे द्युलोकको थामे हुए हैं। सौ सफेद बैल- ये द्युलोकमें दीखनेवाले तारे होंगे ॥ २ ॥

इन्द्रने ऋषियोंको अनेक तरहके दान और पशु दिए ॥ ३ ॥

हे ज्ञानियो ! तुम उत्तम तेज और गुणोंसे युक्त होकर पक्षियोंके समान सर्वत्र घूम कर उत्तम उपदेश दो ॥ ४ ॥

जो ज्ञानी उत्तम मार्गपर चलता है, वह इन्द्रका साक्षात्कार कर सकता है। ऐसे ज्ञानी पुरुषका यश महान् होता है ॥ ५ ॥

[५६]

(ऋषिः- पृषध्रः काण्वः । देवताः- इन्द्रः, प्रस्कण्वस्थ ५ अग्निसूर्यौ । छन्दः- गायत्री, ५ पङ्क्तिः ।)

११०० प्रति ते दस्यवे वृक राधो अदर्श्यह्रयम् । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ १ ॥

११०१ दश मह्यं पौतक्रतः सहस्रा दस्यवे वृकः । नित्याद्रायो अमंहत ॥ २ ॥

११०२ शतं मे गर्दभानां शतमूर्णावतीनाम् । शतं दासाँ अति स्रजः ॥ ३ ॥

११०३ तत्रो अपि प्राणीयत पूतक्रतायै व्यक्ता । अश्वानामिन्न यूथ्याम् ॥ ४ ॥

११०४ अचेत्यग्निश्चिकितु- र्हव्यवाट् स सुमद्रथः ।
अग्निः शुक्रेण शोचिषा बृहत् सूरो अरोचत दिवि सूर्यो अरोचत ॥ ५ ॥

[५७]

(ऋषिः- मेध्यः काण्वः । देवताः- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

११०५ युवं देवा क्रतुना पूर्व्येण युक्ता रथेन तविषं यजत्रा ।
आगच्छतं नासत्या शचीभि- रिदं तृतीयं सवनं पिबाथः ॥ १ ॥

---

[५६]

अर्थ— [११००] हे (वृक) शत्रुको काटनेवाले इन्द्र ! (ते अ-ह्रयं राधः) तेरा उज्वल धन (दस्यवे प्रति अदर्शि) शत्रुके लिए प्रतिकूल देखा गया है, तथा तेरा (शवः) बल (प्रथिना) विस्तारमें (द्यौः न) द्युलोकके समान है ॥ १ ॥

[११०१] (पौत क्रतः) हे पवित्र कर्म करनेवाले इन्द्र ! तूने (मह्यं) मेरे लिए (दश सहस्रा दस्यवे) दस हजार शत्रुओंको (वृकः) काट डाला, और [शत्रुओंके] (नित्यात्) शाश्वत कोषसे (रायः) धन (अमंहत) दिया ॥ २ ॥

[११०२] (मे इन्द्रने मुझे (गर्दभानां शतं) सौ गधे दिए (ऊर्णायतीनां शतं) सौ भेडें दीं, (शतं दासान्) सौ दास दिए, तथा (अति स्रजः) अनेकों मालायें दीं ॥ ३ ॥

[११०३] (वि-अक्ता) अनेक प्रकारसे गति करनेवाले इन्द्रने (तत्र अपि) स्वर्गमें भी (पूत क्रतायै) पूतक्रताके लिए (अश्वानां यूथ्यं इत्) घोडोंके झुण्डको (प्र-आनीयत) ला करके दिया ॥ ४ ॥

[११०४] (हव्यवाट् सुमद्रथः सः अग्निः) हविको प्राप्त करनेवाला तथा स्वशक्तिसे सर्वत्र जानेवाला वह अग्नि (चिकितुः अचेति) ज्ञानीको जानता है । (बृहत् सूरः अग्निः) श्रेष्ठ ज्ञानी अग्नि (शुक्रेण शोचिषा) अपने शुभ्र तेजसे (अरोचत) पृथ्वीपर शोभित होता है, तो (सूर्यः दिवि अरोचत) सूर्य द्युलोकमें प्रकाशित होता है ॥५॥

[५७]

[११०५] हे (देवा) देवतारूपी ! (यजत्रा) हे पूजनीय ! हे सत्यके पालक ! (युवं) तुम दोनों (पूर्व्येण क्रतुना युक्ता) पूर्वकालीन कार्यसे युक्त होकर (रथेन तविषं आऽगच्छतं) रथपरसे बलपूर्वक हाँकते हुए आओ; (शचीभिः) शक्तियोंसे (इदं तृतीयं सवनं पिबाथः) इस तीसरे सवनमें सोम पी जाओ ॥ १ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तेरा धन शत्रुके लिए प्रतिकूल होता दीखता है। तेरा बल विस्तारसे द्युलोकके समान है ॥ १ ॥
पवित्र कर्म करनेवाला इन्द्र अपने उपासकोंके अनेकों शत्रुओंको नष्ट करता है और उन्हें अपरिमित धन देता है ॥२॥
इन्द्रने ज्ञानियोंको अनेक तरहके पशु प्रदान किए ॥ ३ ॥
पवित्र कर्म करनेवाले मनुष्यके लिए इन्द्र घोडे आदि अनेक पशुओंका समूह प्रदान करता है ॥ ४ ॥

अपनी शक्तिसे सर्वत्र जानेवाला अग्नि अपने शुभ्र तेजसे पृथ्वीपर सुशोभित होता है, तो सूर्य द्युलोकमें प्रकाशित होता है ॥ ५ ॥

हे तेजस्वी, पूज्य तथा सत्यके पालक अश्वि देवो ! अपने प्राचीन पराक्रमसे युक्त होकर तुम हमारे पास आओ और अपनी शक्तियोंसे युक्त होकर हमारे सोमको पीओ ॥ १ ॥

११०६ युवां देवास्त्रयं एकादुशासः सत्याः सत्यस्यं ददृशे पुरस्तांत् ।
अस्माकं युज्ञं सवनं जुषाणा पातं सोमंमश्विना दीद्यंग्नी ॥ २ ॥
११०७ पनाय्यं तदंश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजंसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसां उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत् ताँ उपं याता पिबंध्यै ॥ ३ ॥
११०८-अयं वां भागो निहिंतो यजत्रे—मा गिरों नासत्योपं यातम् ।
पिबंतं सोमं मधुंमन्तमस्मे प्र दाश्वांसमवतं शचींभिः ॥ ४ ॥

[५८]

(ऋषिः- मेध्यः काण्वः । देवताः- विश्वे देवाः, १ ऋत्विजो वा । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

११०९ यमृत्विजों बहुधा कुल्पयंन्तः सचेंतसो युज्ञमिमं वहंन्ति ।
यो अंनूचानो ब्राह्मणो युक्त आंसीत् का स्वित् तत्र यजमानस्य संवित् ॥ १ ॥

अर्थ— [११०६] (त्रयः एकादशासः) तीनगुने ग्यारह याने ३३ (सत्याः देवाः) सच्चे देव, (युवां) तुम दोनों (सत्यस्य पुरस्तात् ददृशे) सत्यके आगे दीख पडे, हे (दीद्यग्नी) जगमगाते अग्निके सदृश तेजस्वी अश्विदेवों ! (अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा) हमारे यज्ञ तथा सवनका सेवन करते हुए (सोमं पातं) सोमका पान करो ॥ २ ॥

[११०७] (अश्विना) हे अश्विदेवो ! (वां तत् कृतं) तुम्हारा वह कार्य (पनाय्यं) प्रशंसनीय है, जोकि (दिवः) द्युलोकसे (पृथिव्याः) भूमंडलके हितके लिए (रजसः वृषभः) जलकी वर्षा करनेवाला हुआ है; (ये गविष्टौ) जो गायोंके ढूंढनेमें (सहस्रं शंसाः) हजारों कहने योग्य कार्य होते हैं, (तान् सर्वान् इत्) उन सभी स्थलोंके समीप जरूर (पिबध्यै उप यात) पीनेके लिए चले जाओ ॥ ३ ॥

[११०८] हे (यजत्रा) पूजनीय अश्विदेवों ! (वां) तुम दोनोंके लिए (अयं भागः निहितः) यह भाग या हिस्सा रखा है (इमाः गिरः उप यातं) इन भाषणोंको सुननेके लिए हमारे समीप आओ (अस्मे मधुमन्तं सोमं पिबतं) हमारे लिए मधु डाले हुए सोमका पान करो और (दाश्वांसं शचीभिः) दानीको अपनी शक्तियोंसे (प्र अवतं) यथेष्ट मात्रामें सुरक्षित रखो ॥ ४ ॥

[११०९] (सचेतसः ऋत्विजः) ज्ञानसे युक्त ऋत्विज (यं बहुधा कल्पयन्तः) जिस यज्ञको अनेक प्रकारसे करते हुए (इमं यज्ञं वहन्ति) इस यज्ञको पूरा करते हैं, इस यज्ञकर्ममें (यः अनूचानः ब्राह्मणः) जो विद्वान् ब्राह्मण (युक्तः आसीत्) नियुक्त हुआ था, (तत्र यजमानस्य का स्वित् संवित्) उस विषयमें यज्ञ करनेवालेका ज्ञान कैसा था ? ॥ १ ॥

भावार्थ— हे अश्वि देवो ! तुम दोनों सत्यका पालन करनेवाले हो और जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी हो, तुम हमारे पास आकर सोमरसका पान करो ॥ २ ॥

हे अश्विदेवो ! तुमने पृथ्वीका हित करनेके लिए द्युलोकसे जलकी वर्षा की, यह तुम्हारा कार्य सचमुच प्रशंसाके योग्य है ॥ ३ ॥

हे पूजाके योग्य अश्विदेवो ! तुम दोनोंके लिए यह सोमरसका भाग रखा हुआ है, तुम हमारे पास आकर सोम रसका पान करो ॥ ४ ॥

ज्ञानवान् यज्ञ कर्ता अनेक तरहसे यज्ञोंको करते हुए यज्ञकार्यको पूर्ण करते हैं। जो भी विद्वान् यज्ञकर्ममें नियुक्त हुआ हो, उसे चाहिए कि वह यज्ञक्रियाका पूरा ज्ञान रखे ॥ १ ॥

१११० एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः ।
एकैवोषाः सर्वमिदं वि भा॒त्येकं वा इदं वि बभूव सर्वम् ॥ २ ॥
११११ ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारम् ।
चित्रामघा यस्य योगेऽधिजज्ञे तं वां हुवे अति रिक्तं पिबध्यै ॥ ३ ॥

[५९]

(ऋषिः- सुपर्णः काण्वः । देवताः- इन्द्रावरुणौ । छन्दः- जगती ।)

१११२ इमानि वां भागधेयानि सिस्रत इन्द्रावरुणा प्र महे सुतेषु वाम् ।
यज्ञेयज्ञे ह सवना भुरण्यथो यत् सुन्वते यजमानाय शिक्षथः ॥ १ ॥
१११३ निष्षिध्वरीरोषधीराप आस्ता॒मिन्द्रावरुणा महिमानमाशत ।
या सिस्रतू रजसः पारे अध्वनो ययोः शत्रुर्नकिरादेव ओहते ॥ २ ॥

अर्थ—[१११०] (एकः एव अग्निः) एकही अग्नि (बहुधा समिद्धः) अनेक तरहसे प्रदीप्त होता है, (एकः सूर्यः) एकही सूर्य (विश्वं अनु) सबमें प्रविष्ट होकर (प्रभूतः) अनेक तरहसे प्रकट होता है, (एका एव उषाः) अकेली ही उषा (इदं सर्वं वि भाति) इस सब विश्वको प्रकाशित करती है, (एकं वा) अकेला ही प्रभु (इदं सर्वं वि बभूव) इस सब विश्वके रूपमें प्रकट होता है ॥ २ ॥

[११११] (ज्योतिष्मन्तं) चमचमानेवाले (केतुमन्तं) ध्वजावाले (त्रिचक्रं) तीन चक्रोंवाले (सुखं) सुखदायक (सुषदं) उत्तमतासे बैठने योग्य, (यस्य रथं) जिस रथको (योगे) जोडनेके लिए (चित्रामघा अधिजज्ञे) विलक्षण ऐश्वर्यवाली उषा प्रकट हुई, (तं) उस रथमें बैठकर (अतिरिक्तं पिबध्यै) बाकी बचे हुए सोमरसको पीनेके लिए (वां हुवे) तुम देवोंको बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

[५९]

[१११२] (यत्) चूंकि हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! तुम दोनों (सुन्वते यजमानाय शिक्षथ) सोमयज्ञ करनेवाले यजमानको ऐश्वर्य देते हो; और (सवना यज्ञे यज्ञे) हर सवनके प्रत्येक यज्ञमें (भुरण्यथः) तुम जाते हो, इसलिए (इमानि भागधेयानि) ये हिस्से (वां सिस्रते) तुम दोनोंके लिए दिए हैं । (सुतेषु) सोमरसके तैय्यार हो जानेपर (महे) पूजाके लिए मैं (वां हुवे) तुम दोनोंको बुलाता हूँ ॥ १ ॥

[१११३] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (या) जो तुम दोनों (रजसः अध्वनः पारे सिस्रतुः) अन्तरिक्ष मार्गके उस पार हो, (ययोः) जिन दोनोंका (अदेवः शत्रुः नकिः ओहते) नास्तिक शत्रु कोई भी नहीं है, ऐसे तुम दोनों (आस्तां) रहते हो, तब (ओषधीः आपः निष्षिध्वरीः) ओषधी-वनस्पतियां और जल रससे युक्त होते हैं, और (महिमानं आशत) महिमाको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— पार्थिव, वाडव, दाव आदिके रूपमें अग्निके अनेक प्रकार हैं, पर इन सबमें रहनेवाला अग्नितत्व एकही है । जिस तरह एक सूर्य और उषा सारे विश्वको प्रकाशित करती है । इसी तरह एकही प्रभु इस सम्पूर्ण विश्वमें प्रकाशित हो रहा है ॥ २ ॥

वीरोंका रथ चमचमानेवाला, ध्वजावाला, अनेक चक्रोंवाला, सुखदायक और उत्तमतासे बैठने योग्य हो। उस रथमें ऐश्वर्य भरपूर हो ॥ ३ ॥

इन्द्र और वरुण दोनों सोमयज्ञ करनेवालेको ऐश्वर्य प्रदान करते हैं । इसीलिए ये दोनों देव प्रत्येक यज्ञमें जाते हैं, उन यज्ञोंमें इन दोनों देवोंको उनका हिस्सा दिया जाता है ॥ १ ॥

इन्द्र और वरुण ये दोनों देव अन्तरिक्षसे ऊपर द्युलोकमें रहते हैं । इन दोनों देवोंकी निन्दा करनेवाला इनका शत्रु कोई नहीं है । इन्हीं देवोंके कारण वनस्पतियोंमें और जलोंमें रस होता है और उन्हीं रसोंके कारण उनकी महिमा है ॥ २ ॥

१११४ सत्यं तदिन्द्रावरुणा कृशस्य वां मध्व ऊर्मिं दुहते सप्त वाणीः ।
ताभिर्दाश्वांसमवतं शुभस्पती यो वामदब्धो अभि पाति चित्तिभिः ॥ ३ ॥
१११५ घृतप्रुषः सौम्या जीरदानवः सप्त स्वसारः सदन ऋतस्य ।
या ह वामिन्द्रावरुणा घृतश्चुत स्ताभिर्धत्तं यजमानाय शिक्षतम् ॥ ४ ॥
१११६ अवोचाम महते सौभगाय सत्यं त्वेषाभ्यां महिमानमिन्द्रियम् ।
अस्मान् त्स्विन्द्रावरुणा घृतश्चुत स्त्रिभिः साप्तेभिरवतं शुभस्पती ॥ ५ ॥
१११७ इन्द्रावरुणा यदृषिभ्यो मनीषां वाचो मतिं श्रुतमदत्तमग्रे ।
यानि स्थानान्यसृजन्त धीरा यज्ञं तन्वानास्तपसाभ्यपश्यम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१११४] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (कृशस्य तत् सत्यं) कृश ऋषिका वह कथन सत्य है। (वां) तुम्हारे लिए (सप्तवाणीः) सात छन्दोंवाली स्तुतियां (वां) तुम्हारे लिए (मध्वः ऊर्मिं दुहते) सोमरसकी धारको दुहती हैं। (यः अदब्धः) जो भक्त आलस्यरहित होकर (चित्तिभिः) मनःपूर्वक (वां अभि पाति) तुमसे संरक्षण मांगता है, हे (शुभः पती) कल्याणकी रक्षा करनेवाले देवो ! तुम उस (दाश्वांसं) दानशीलकी (ताभिः अवतं) उन स्तुतियोंकी सहायतासे रक्षा करो ॥ ३ ॥

[१११५] (घृतप्रुषः) घी से सिंचित, (सौम्याः) शान्त (जीर दानवः) शीघ्रतासे बहनेवाली (सप्त स्वसारः) सात बहनें (ऋतस्य सदने) यज्ञ गृहमें रहती हैं। (याः घृतश्चुतः) जो घी चुआनेवाली बहनें, हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (वां) तुम दोनोंके लिएही हैं, (ताभिः) उनको सहायतासे (यजमानाय शिक्षतं धत्तं) यजमानको धन दो और उसे धारण करो ॥ ४ ॥

[१११६] हे (शुभः पती इन्द्रावरुणा) शुभका पालन करनेवाले इन्द्र और वरुण ! (त्वेषाभ्यां) अत्यन्त तेजस्वी तुम दोनोंकी (इन्द्रियं सत्यं महिमानं) इन्द्रकी शक्तिको बढानेवाली अविनाशी महिमाको हम (महते सौभगाय) अपने महान् सौभाग्यके लिए (अवोचाम) कहते हैं। तुम दोनों (घृतश्चुतः अस्मान्) घृत प्रदान करनेवाले हमारी (त्रिभिः साप्तेभिः) इक्कीस बार (अवतं) रक्षा करो ॥ ५ ॥

[१११७] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! तुमने (ऋषिभ्यः) ऋषियोंको (अग्रे) प्राचीन कालमें (यत् मनीषां) जो विचार (वाचः) वक्तृत्वशक्ति, (मतिं) बुद्धि और (श्रुतं अदत्तं) ज्ञान दिया था, तथा (यज्ञं तन्वानाः धीराः) यज्ञोंको करते हुए बुद्धिमानोंने (यानि स्थानानि असृजन्त) जिन स्थानोंका निर्माण किया, उन्हें मैंने (तपसा अभि अपश्यम्) तपसे अच्छी तरह देख लिया है ॥ ६ ॥

भावार्थ — इन्द्र और वरुणके लिए सात छन्दोंसे युक्त ऋचायें बोलकर सोमरस तैय्यार किया जाता है। जो मनसे इन देवोंका संरक्षण मांगते हैं, उनकी ये दोनों रक्षा करते हैं ॥ ३ ॥

सात छन्दोंवाली ऋचायेंही सात बहनें हैं। इन ऋचाओंको बोलकर यज्ञमें घृत डाला जाता है और सोम तैय्यार किया जाता है। फिर ये सोमरस और ऋचारूप स्तुतियां इन्द्र और वरुणको दी जाती हैं। उनसे प्रसन्न होकर वे दोनों देव यजमानको धन देकर उसका संरक्षण करते हैं ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और वरुण ! अत्यन्त तेजस्वी तुम दोनों देवोंकी शक्ति और अविनाशी महिमाका मैं वर्णन करता हूँ, उससे हमारा सौभाग्य बढे। हे देवो ! तुम दोनों हमारी सदा रक्षा करो ॥ ५ ॥

इन्द्र और वरुणने ऋषियोंको प्राचीन कालमें जो विचार, वक्तृत्वशक्ति, बुद्धि और ज्ञान दिया था, और उसके आधार पर उन ऋषियोंने जिन यज्ञस्थानोंका निर्माण किया था, उनको तपके द्वाराही देखा जा सकता है ॥ ६ ॥

१११८ इन्द्रा॑वरुणा सौमन॒सम॒दृ॑प्तं रा॒यस्पोषं॒ यज॑मानेषु धत्तम् ।
प्र॒जां पुष्टिं॑ भूतिम॒स्मासु॑ धत्तं दीर्घायु॒त्वाय॒ प्र ति॑रतं न॒ आयुः॑ ॥ ७ ॥

॥ इति वालखिल्यं समाप्तम् ॥

[६०]

(ऋषिः- भर्गः प्रागाथः । देवताः- अग्निः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१११९ अग्न॒ आ या॑ह्य॒ग्निभि॒र्होता॑रं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वाम॑नक्तु॒ प्रय॑ता ह॒विष्म॑ती॒ यजि॑ष्ठं ब॒र्हिरा॒सदे॑ ॥ १ ॥

११२० अच्छा॒ हि त्वा॑ सहसः सूनो अङ्गिरः॒ स्रुच॒श्चर॑न्त्यध्व॒रे ।
ऊ॒र्जो नपा॑तं घृ॒तके॑शमीमहे॒ ऽग्निं य॒ज्ञेषु॑ पू॒र्व्यम् ॥ २ ॥

११२१ अग्ने॑ क॒विर्वे॒धा अ॑सि॒ होता॑ पावक॒ यक्ष्यः॑ ।
म॒न्द्रो यजि॑ष्ठो अध्व॒रेष्वीड्यो॒ विप्रे॑भिः शुक्र॒ मन्म॑भिः ॥ ३ ॥

अर्थ- [१११८] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! तुम दोनों (यजमानेषु) यज्ञ करनेवालोंको (सौमनसं) नम्रता, (अदृप्तं) निरभिमानिता अर्थात् उदारता और (रायः पोषं) पुष्टि देनेवाला ऐश्वर्य (धत्तं) प्रदान करो, तथा (अस्मासु) हमें (प्रजां पुष्टिं भूतिं) प्रजा, पोषण और ऐश्वर्य (धत्तं) प्रदान करो, (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ आयु भोगनेके लिए (नः आयुः प्रतिरतं) हमारी आयु बढाओ ॥ ७ ॥

[६०]

[१११९] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (अग्निभिः आ याहि) अन्य अग्नियोंके साथ यहाँ आ। (होतारं त्वा वृणीमहे) देवोंके बुलानेवाले तेरा हम वरण करते हैं । (यजिष्ठं त्वां बर्हिः आसदे) पूजित तुझको यज्ञमें स्थापित करते हैं । यज्ञमें प्रज्वलित होनेवाले तुझको (प्रयता हविष्मती आ अनक्तु) अध्वर्युके हाथोंमें नियत घृतवाली स्रुवा सब ओरसे सींचे ॥ १ ॥

[११२०] हे (सहसः सूनोः अङ्गिरः) बलके पुत्र तथा अंगारसोंके ज्ञाता अग्ने ! (अध्वरे त्वा अच्छ स्रुचः चरन्ति) यज्ञमें तुझको अभिलक्ष्य करके स्रुचायें चलती हैं । हम (ऊर्जः नपातं, घृतकेशं पूर्व्यं अग्निं) बलको न गिरानेवाले, प्रदीप्त ज्वालारूपी केशोंको धारण करनेवाले, सबसे पुरातन श्रेष्ठ ऐसे तुझ अग्निकी (यज्ञेषु ईमहे) यज्ञोंमें उत्तम स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[११२१] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (कविः वेधाः असि) मेधावी और विधाता है । हे (पावक) पवित्र करनेहारे ! और हे (होता) होम निष्पादक अग्ने ! तू (यक्ष्यः) पूज्य है । हे (शुक्र) दीप्तिमान् ! तू (मन्द्रः) हर्ष प्रदाता है । तू (यजिष्ठः अध्वरेषु मन्मभिः विप्रेभिः ईड्यः) सबसे बडा तू यज्ञोंमें उत्तम मन्त्रोंद्वारा विद्वानोंसे स्तुत्य है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे देवो ! यज्ञ करनेवालोंको नम्रता, उदारता और पोषणकारक ऐश्वर्य प्रदान करो तथा हमें भी प्रजा, पोषण, ऐश्वर्य और दीर्घायु प्रदान करो ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! तू आहवनीय, गार्हपत्य आदि अग्नियोंके साथ हमारे यज्ञोंमें आकर विराजमान हो और वहां अच्छी तरह प्रदीप्त हो, ताकि हम स्रुचाओं द्वारा तुझे अच्छी तरह सींच सकें । तू बलपूर्वक मथनेपर प्रकट होता है, तू अंगोंमें रहते हुए उन्हें बल प्रदान करता है । तू सबसे श्रेष्ठ और सबसे प्राचीन है । अतः हम तेरी प्रार्थना करते हैं ॥ १-२ ॥

१९२२ अद्रोघमा वहोशतो यविष्ठ्य देवाँ अजस्र वीतये ।
अभि प्रयांसि सुधिता वसो गहि मन्दस्व धीतिभिर्हितः ॥ ४ ॥

११२३ त्वमित् सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतस्कविः ।
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥ ५ ॥

११२४ शोचा शोचिष्ठ दीदिहि विशे मयो रास्व स्तोत्रे महाँ असि ।
देवानां शर्मन् मम सन्तु सूरयः शत्रूषाहः स्वग्नयः ॥ ६ ॥

अर्थ— [११२२] हे (यविष्ठ्य,) अत्यन्त बलवान् अग्ने ! तू (अद्रोघं, उशतः देवान्) द्रोह न करनेवाले मेरे पास कामना करनेवाले देवोंको (वीतये अजस्र आ वह) हवि भक्षणके लिये प्रतिदिन ले आ । हे (वसो) सबको बसानेवाले अग्ने ! (सुधिता प्रयांसि अभि गहि) उत्तम भावसे रखे हुए अन्नोंको प्राप्त कर । और हमारी (धीतिभिः हितः मन्दस्व) स्तुतियोंसे पूजित होकर हर्षित हो ॥ ४ ॥

[११२३] हे अग्ने) अग्ने ! (त्वं इत् त्रातः ऋतः कविः सप्रथाः असि) तू ही हमारा रक्षक, सत्यस्वरूप, बुद्धिमान् और सबसे महान् है । हे (समिधान) देदीप्यमान् ! हे (दीदिवः) तेजस्विन् अग्ने ! (विप्रासः वेधसः त्वा आ विवासन्ति) मेधावी, विद्वान् स्तोतागण तेरी सब प्रकारसे सेवा करते हैं ॥ ५ ॥

[११२४] हे (शोचिष्ठ) अति तेजस्विन् अग्ने ! तू (शोच) उत्तम रीतिसे प्रकाशित हो । स्तोत्रे विशे मयः रास्व) स्तुति करनेवाली प्रजाके लिये सुख प्रदान कर । तू (देवानां महान् असि) देवोंके बीचमें सबसे महान् है । (मम शर्मन् सूरयः सन्तु) मेरे घरमें सदा विद्वान् रहें तथा । शत्रुषाहः सु-अग्नयः , शत्रुओंको परास्त करनेवाली उत्तम अग्नियाँ प्रज्वलित होती रहें ॥ ६ ॥

१ देवानां महान् असि— यह अग्नि सब देवोंमें महान् है ।
२ मम शर्मन् सूरयः शत्रुषाहः सु अग्नयः सन्तु— मेरे घरमें सदा विद्वान् और शत्रुओंको परास्त करनेवाली उत्तम अग्नियां निवास करती रहें । अर्थात् मेरे घरमें सदा विद्वान् निवास करते रहें और नित्य प्रति यज्ञ होता रहे ।

भावार्थ— अग्रणी मेधावी और परिस्थितियोंको पहचानकर काम करनेवाला हो, सर्वत्र पवित्रता रखनेवाला हो, सभीको हर्षित करनेवाला हो, और विद्वानों द्वारा प्रशंसनीय हो, ऐसा अग्रणी द्रोह न करनेवाले देवोंको अपने पास रखे । तथा हमेशा अन्नसे भरापूरा रहे । इस प्रकार प्रजाजनोंसे पूजित होकर वह हर्षित हो ॥ १-४ ॥

जो अग्रणी सब प्रजाओंका रक्षक , सत्यमार्गपर चलनेवाला, भविष्यकी ओर देखकर काम करनेवाला और उत्तम मार्गोंको विस्तृत करनेवाला और स्वयं तेजस्वी होकर सर्वत्र अपना तेज फैलाता है, उसकी सब विद्वान् प्रशंसा करते हैं ॥ ५ ॥

जिस घरमें सदा सर्वदा विद्वान् निवास करते हैं, और यज्ञाग्निकी पवित्र ज्वालायें प्रदीप्त होती रहती हैं, उस घरमें देवता निवास करते हैं और उस घरमें रहनेवाले सदा सुखी रहते हैं ॥ ६ ॥

+

११२५ यथा चिद् वृद्धमतस — मग्ने संजूर्वसि क्षमि ।
एवा दह मित्रमहो यो अस्मध्रुग् दुर्मन्मा कश्च वेनति ॥ ७ ॥
११२६ मा नो मर्ताय रिपवे रक्षस्विने माघशंसाय रीरधः ।
अस्रेधद्भिस्तरणिभिर्यविष्ठ्य शिवेभिः पाहि पायुभिः ॥ ८ ॥
११२७ पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ ९ ॥
११२८ पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥ १० ॥

अर्थ— [११२५] हे (अग्ने) अग्ने ! (यथाचित् क्षमि वृद्धमतसं संजूर्वसि) जिस प्रकार तू पृथ्वीपर पडे सूखे काष्ठको जला देता है, (एव मित्रमहः) उसी प्रकारसे हे मित्रोंमें पूज्यतम अग्ने ! (यः अस्मध्रुकः, कः च दुर्मन्मा वेनति दह) जो हमसे द्रोह करनेवाला है, और कोई भी दुष्टबुद्धिवाला जो हमारे पराभवकी इच्छा करता है उसको भी तू अपनी ज्वालासे जला दे ॥ ७ ॥

१ यः दुर्मन्मा अस्मध्रुक् वेनति, दह— जो दुष्ट बुद्धिवाला पुरुष हमसे द्रोह एवं हमारे पराभवकी कामना करता है, उसे हे अग्ने ! तू जला डाल ।

[११२६] हे (यविष्ठ्य) अतिशय बलशालिन् अग्ने ! तू (नः रिपवे मर्ताय रक्षस्विने, मा रीरिधः) हमें शत्रु मनुष्य और दुष्ट लोगोंके लिए पीडित न कर । तू हमें (अघशंसाय मा) पापकी शिक्षा देनेवालोंके अधीन न कर। तथा तू (अस्रेधभिः तरणिभिः शिवेभिः पायुभिः पाहि) अहिंसक, संकटोंसे पार उतारनेवाली कल्याणकारी अपनी रक्षाशक्तियोंसे हमारी रक्षा कर ॥ ८ ॥

१ रिपवे मर्ताय, रक्षस्विने, अघशंसाय नः मा रीरिधः— हे अग्ने ! शत्रुओं, राक्षसों और पापियोंको प्रसन्न करनेके लिए हमें पीडित मत कर ।

[११२७] हे (वसो) सबको बसानेवाले तथा (ऊर्जां पते अग्ने) नाना अन्नोंके पालक अग्ने ! तू (एकया नः पाहि) एक प्रार्थनासे हम लोगोंकी रक्षा कर । (उत द्वितीयया पाहि) दूसरी प्रार्थनासे रक्षा कर । (तिसृभिः गीर्भिः पाहि चतसृभिः पाहि) तीसरी प्रार्थनाओं और चौथी प्रार्थनाओंसे रक्षा कर ॥ ९ ॥

[११२८] हे अग्ने ! (विश्वस्मात् रक्षसः अराव्णः पाहि) सम्पूर्ण राक्षसों और अदानशील शत्रुओंसे हमारी रक्षा कर । (वाजेषु नः प्र अव स्म) संग्राममें हमें अच्छी प्रकारसे बचा । हम (देवतातये त्वामित् हि नेदिष्ठं आपिं वृधे नक्षामहे) यज्ञकी सिद्धिके लिये तुझको अतिनिकटका अपना बन्धु जानकर उन्नति करनेके लिए प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— अग्रणीको चाहिए कि वह सज्जनोंकी रक्षा करे, दुष्टों और राक्षसोंको प्रसन्न रखनेके लिए वह सज्जनोंको कभी पीडा न दे । जिस राष्ट्रमें पापकी शिक्षा देनेवालोंको प्रसन्न किया जाता है और विद्वानों तथा सज्जनोंको कष्ट दिया जाता है, वह राष्ट्र नष्ट हो जाता है । अतः राजा सज्जनोंको कभी कष्ट न दे, इसके विपरीत वह दुष्ट बुद्धिवालोंको नष्ट करके अपनी सकटोंसे तारनेवाली तथा कल्याणकारिणी शक्तियोंसे सज्जनोंकी रक्षा करे ॥ ७-८ ॥

हे अग्ने ! हमारी सभी प्रार्थनाओंको सुन और सभी राक्षसों और कंजूसोंसे हमारी रक्षा कर, संग्रामोंमें हमें बचा, ताकि हम सदा यज्ञोंमें घृतादियोंसे तुझे तृप्त करते रहें । तू ही हमारा सर्वश्रेष्ठ बन्धु है ॥ ९-१० ॥

११२९ आ नो॑ अग्ने वयो॒वृधं॑ र॒यिं पा॑वक॒ शंस्य॑म् ।
रास्वा॑ च न उपमाते पुरु॒स्पृहं॑ सुनी॑ती॒ स्वय॑शस्तरम् ॥ ११ ॥

११३० येन॒ वंसा॑म॒ पृत॑नासु॒ शर्ध॑त॒स्तर॑न्तो अ॒र्य आ॒दिशः॑ ।
स त्वं नो॑ वर्ध॒ प्रय॑सा शचीवसो॒ जिन्वा॒ धियो॑ वसु॒विदः॑ ॥ १२ ॥

११३१ शिशा॑नो वृष॒भो य॑था॒ऽग्निः शृङ्गे॒ दवि॑ध्वत् ।
ति॒ग्मा अ॑स्य॒ हन॑वो॒ न प्र॑ति॒धृषे॑ सु॒जम्भः॒ सह॑सो य॒हुः ॥ १३ ॥

११३२ न॒हि ते॑ अग्ने वृषभ प्रति॒धृषे॒ जम्भा॑सो॒ यद्वि॒तिष्ठ॑से ।
स त्वं नो॑ होतः सुहु॑तं ह॒विष्कृ॑धि॒ वंस्वा॑ नो॒ वार्या॑ पु॒रु ॥ १४ ॥

११३३ शेषे॒ वने॑षु मा॒त्रोः सं त्वा॒ मर्ता॑स इन्धते ।
अत॑न्द्रो ह॒व्या व॑हसि हवि॒ष्कृत॒ आदिद्दे॒वेषु॑ राजसि ॥ १५ ॥

अर्थ— [११२९] हे (पावक अग्ने) पवित्र करनेहारे अग्ने ! (नः वयोवृधं शंस्यं रयिं आ रास्व , हम लोगोंको आयुकी वृद्धि करनेवाला और प्रशंसनीय धन प्रदान कर। हे (उपमाते) मित्रवत् हितकारी अग्ने ! तू (नः सुनीतिः, पुरुस्पृहं च स्वयशस्तरम्) हम लोगोंको उत्तम रीतिसे बहुतोंसे चाहे जाने योग्य और स्वयशकी अत्यन्त वृद्धि करनेवाला धन प्रदान कर ॥ ११ ॥

[११३०] हे (शचीवसो) शक्तिके धनी अग्ने ! (सः त्वं नः प्रयसा वर्ध) वह प्रसिद्ध तू हमको अन्नसे बढा और हमारे (वसुविदः धियः जिन्व) ऐश्वर्य और प्रजाओंको प्राप्त करानेवाले बुद्धिको तृप्त कर। (येन पृतनासु शर्धतः आदिशः अर्यः तरन्तः वंसाम) ताकि हम संग्राममें वीरता दिखाते हुये तथा शस्त्रोंको फेंकते हुए शत्रुओंको पार करते हुए उन्हें मार सकें ॥ १२ ॥

[११३१] (वृषभः यथा शृङ्गे शिशानः दविध्वत्) जैसे बैल अपनी सींगोंको तीक्ष्ण करते समय अपने सिरको हिलाता है, उसी प्रकार (अग्निः) अग्नि भी अपनी ज्वालायें हिलाता है। (अस्य तिग्माः हनवः न प्रतिधृषे) इसके तीक्ष्ण शस्त्रोंका निवारण करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है। वह (सहसः यहुः सुजम्भः) बलका पुत्र एवं सुन्दर जबडोंवाला है ॥ १३ ॥

[११३२] हे (वृषभ) वर्धक अग्ने ! (ते जम्भासः नहि प्रतिधृषे) तेरे जबडे स्थानीय ज्वालाएं किसीसे कभी रोकी नहीं जा सकतीं। (यत् वितिष्ठसे) क्योंकि तू अपनी ज्वालाको अनेक प्रकारसे प्रवर्धित करता है। हे (होतः) होम निष्पादक ! (स त्वं हविः सुहुतं कृधि) वह प्रसिद्ध तू हमारे द्वारा दी हुई हविको सफल कर। (नः पुरुवार्या वंस्व) हमको बहुतोंसे वरण करने योग्य धन प्रदान कर ॥ १४ ॥

[११३३] हे अग्ने ! तू (वनेषु मात्रोः शेषे) वनोंमें माताओंमें शयन करता है। (त्वा मर्तासः सं इन्धते) तुझको मनुष्य अच्छे प्रकारसे प्रकाशित करते हैं। पश्चात् प्रज्वलित हुआ हुआ तू (अतन्द्रः हविष्कृतः हव्या वहसि) आलस्यरहित होकर यजमानोंके हव्योंको देवोंके प्रति ले जाता है। (आत् इत् देवेषु राजसि) फिर उन देवोंके बीचमें शोभायमान होता है ॥ १५ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! हमें आयु बढानेवाला और प्रशंसनीय धन दे, मित्रोंके समान हमारा हित कर, हमारे यशको बढा, हमें अन्नसे बलशाली बनाकर हमें बुद्धिमान् भी बना, ताकि बडे बडे संग्रामोंमें भी हम अपनी वीरता दिखाते हुए तथा शस्त्रोंको फेंकते हुए शत्रुओंको मार सकें ॥ ११-१२ ॥

जिस प्रकार बैल अपने सींगोंको तेज करता है, उसी प्रकार जब वह अग्नि अपनी ज्वालाओंको तेज करने लगता है, तब उसे रोकनेमें कोई भी समर्थ नहीं होता। इसकी ज्वालायें बडी तीक्ष्ण हैं ॥ १३-१४ ॥

११३४ सप्त होतारस्तमिदीळते त्वा ऽग्ने सुत्यजमह्रयम् ।
भिनत्स्यद्रिं तपसा वि शोचिषा प्राग्ने तिष्ठ जनाँ अति ॥ १६ ॥
११३५ अग्निमग्निं वो अध्रिगुं हुवेम वृक्तबर्हिषः ।
अग्निं हितप्रयसः शश्वतीष्वा ऽऽ होतारं चर्षणीनाम् ॥ १७ ॥
११३६ केतेन शर्मन् त्सचते सुषामण्य ग्ने तुभ्यं चिकित्वना ।
इषण्यया नः पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ १८ ॥
११३७ अग्ने जरितर्विश्पति स्तेपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान् गृहपतिर्महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥ १९ ॥
११३८ मा नो रक्ष आ वेशीदाघृणीवसो मा यातुर्यातुमावताम् ।
परोगव्यूत्यनिरामप क्षुध मग्ने सेध रक्षस्विनः ॥ २० ॥

अर्थ—[११३४] हे (अग्ने) अग्ने ! (सुत्यजं अह्रयं, तं त्वा इत् सप्त होतारः ईळते) उत्तमदाता, अक्षीण उस तेरीही सात ऋत्विक् गण स्तुति करते हैं। तू (अद्रिं तपसा शोचिषा विभिनत्सि) मेघको अपने तपके तेजसे विदीर्ण करता है। हे (अग्ने) अग्ने ! (जनान् अति प्रतिष्ठ) लोगोंको लाँघ कर आगे बढ ॥ १६ ॥

[११३५] हे मनुष्यो ! (वृक्तबर्हिषः वः अध्रिगुं अग्निं) आसन बिछाकर हम तुम्हारे लिये सदा गृहमें वर्तमान अग्निकी और (शाश्वतीषु होतारं अग्निं अग्निं) बहुतसी प्रजाओंमें होम निष्पादक तेजस्वी अग्निकेही (चर्षणीनां हितप्रयसः आ हुवेम) मनुष्योंके हितके लिये हवि धारण करनेवाले होकर बुलाते हैं ॥ १७ ॥

[११३६] हे (अग्ने) अग्ने ! (सुषामणि शर्मन् चिकित्वना केतेन तुभ्यं) उत्तम सामवाले सुखदायक यज्ञमें श्रेष्ठ ज्ञानवान् होतादिकोंके साथ यजमान् ज्ञापक स्तोत्रोंसे तेरे लिये यजन करता है। तू (इषण्यया नः पुरुरूपं वाजं) इच्छापूर्वक हमारे लिये नाना प्रकारके ऐश्वर्यको (नेदिष्ठं ऊतये आ भर) अति समीपतासे, हमारी रक्षाके लिये सब ओरसे प्रदान कर ॥ १८ ॥

[११३७] हे (देव, जरितः अग्ने) दिव्य गुणयुक्त तथा स्तुतिके योग्य अग्ने ! तू (रक्षसः तेपानः) राक्षसोंको संताप देनेवाला (विश्पतिः, अप्रोषिवान गृहपतिः) प्रजाओंका पालक, कभी भी घरको छोडकर न जानेवाला घरका स्वामी, (महान् दिवः पायुः दुरोणयुः असि) अत्यन्त पूज्य, द्युलोकका रक्षक और उपासकके घरमें सदा वर्तमान रहनेवाला है ॥ १९ ॥

[११३८] हे (आघृणीवसो) तेजस्वी धनोंसे युक्त अग्ने ! (रक्षः न) राक्षसादि हमारे अन्दर (आ मा वेशीत) किसी भी प्रकार न प्रवेश कर सकें। (यातुमावतां यातुः मा) पीडादायक दुःख रोग और राक्षसोंकी यातनायें भी हममें न प्रवेश करें। हे (अग्ने) अग्ने ! (अनिरां क्षुधं रक्षस्विनः परोगव्यूति अप सेध) विना अन्नके भुखमरी और राक्षसोंको हमसे कोसों दूर कर ॥ २० ॥

१ रक्षः यातुमावतां यातुः नः मा आवेशीत्— राक्षस और पीडा देनेवालोंकी पीडायें हममें प्रवेश न करें
२ अनिरां क्षुधं रक्षस्विनः परो गव्यूति अपसेध— अन्नके अभावमें भुखमरी तथा राक्षसोंको हमसे कोसों दूर कर।

भावार्थ— हे अग्ने ! तू ही उत्तम दाता और क्षीण न होनेवाला है, इसीलिए सब तेरी स्तुति करते हैं, तू ही सूर्य और विद्युत्के रूपमें मेघको अपनी किरणोंसे विदीर्ण करके पानी बरसाता है। इसी कारण सब मनुष्य तुझे अच्छी तरह प्रकाशित करते हैं। तू भी आलस्यरहित होकर हमारी हवियोंको देवोंके पास पहुंचा ॥ १५-१६ ॥

हे अग्ने ! जिसमें उत्तम उत्तम और मधुर साममंत्रोंका गान किया जाता है, ऐसे यज्ञोंमें हम तुम्हें प्रज्वलित करते हैं। तुम हमारे घरोंमें सदा रहो, कभी भी हमारे घरको छोडकर न जाओ। तुम्हीं मनुष्योंका हित करनेवाले हो ॥ १७-१८ ॥

हे अग्ने ! तू शत्रुओंको सन्ताप देनेवाला, प्रजाओंका पालक, कभी भी उपासकका घर छोडकर न जानेवाला, सभी घरोंका स्वामी, अत्यन्त पूज्य है। अतः हमें ऐसा बलवान् बना कि हममें राक्षस और पीडादायक शत्रु रोग आदि न घुस सकें, साथ ही भुखमरी आदि दुर्दैव भी कोसों दूर रख ॥ १९-२० ॥

[६१]

(ऋषिः- भर्गः प्रागाथः । देवता:- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती,) १७ शंकुमती ।)

११३९ उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥
११४० तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ २ ॥
११४१ आ वृषस्व पुरूवसो सुतस्येन्द्रान्धसः ।
विद्मा हि त्वा हरिवः पृत्सु सासहि-मधृष्टं चिद् दधृष्वणिम् ॥ ३ ॥
११४२ अप्रामिसत्य मघवन् तथेदस-दिन्द्र क्रत्वा यथा वशः ।
सनेम वाजं तव शिप्रिन्नवसा मक्षू चिद्यन्तो अद्रिवः ॥ ४ ॥

---

[६१]

अर्थ— [११३९] (इन्द्रः) वह इन्द्र (नः इदं उभयं वचः) हमारे इन दोनों प्रकारकी स्तुतियोंको (अर्वाग्) समीपसे (शृणवत्) सुने, तथा (शविष्ठः, मघवा) बलवान् और ऐश्वर्यवान् इन्द्र (सत्राच्या धिया) यज्ञमें साथ बैठकर की गई स्तुतिसे प्रेरित होकर (सोमपीतये आ गमत्) सोमपानके लिए आवे ॥ १ ॥

[११४०] (तं स्वराजं वृषभं तं) उस स्वयं प्रकाशित होनेवाले तथा बलवान् इन्द्रको (धिषणे) द्यावा पृथिवी (ओजसे) बलके लिए (निः-ततक्षतुः) उत्तम बनाते हैं, हे इन्द्र ! (उत) और (उपमानां) उपमाके योग्य देवोंके मध्यमें तुम (प्रथमः नि सीदसि) मुख्य होकर बैठते हो, (हि) क्योंकि (ते मनः सोमकामं) तेरा मन सोमकी इच्छा करता है ॥ २ ॥

[११४१] हे (पुरु-वसो इन्द्र) बहुत धनवान् इन्द्र (सुतस्य अन्धसः) सोमरूपी अन्नकी (आ वृषस्व) वर्षा कर, हे (हरि-वः) घोडोंसे युक्त इन्द्र ! (पृत्सु सासहिं) युद्धोंमें शत्रुको हरानेवाले, (अ-धृष्टं चिद् दधृष्वणिं) स्वयं न पराभूत होते हुए भी दूसरोंको मारनेवाले (त्वा) तुझको हम (विद्म) जानते हैं ॥ ३ ॥

[११४२] हे (अ-प्रामिसत्य मघवन् इन्द्र) सत्यका सदा पालन करनेवाले तथा ऐश्वर्यवाले इन्द्र ! तुम (क्रत्वा यथा वशः) कर्मसे जैसी कामना करते हो, (तथा इत् असत्) वैसाही होता है, हे (अद्रि-वः शिप्रिन्) वज्र धारण करनेवाले तथा शिरस्त्राण पहननेवाले इन्द्र ! (तव अवसा) तेरे संरक्षणमें (मक्षू चिद् यन्तः) शीघ्रही [शत्रुओंको] जीतते हुए (वाजं सनेम) अन्नको प्राप्त हों ॥ ४ ॥

भावार्थ— वह इन्द्र हमारे द्वारा प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपसे की गई स्तुतिको सुने । वह बलवान् और ऐश्वर्यवान् इन्द्र यज्ञमें बैठकर हमारे द्वारा की गई स्तुतिको वह इन्द्र सुनकर हमारे पास आवे ॥ १ ॥

उस स्वयं प्रकाशित तथा बलवान् इन्द्रको द्युलोक और पृथिवीलोक बलशाली और उत्तम बनाते हैं । इसलिए वह इन्द्र सब देवोंमें मुख्य है । जो बलशाली और उत्तम होता है, वह सबमें मुख्य होता है ॥ २ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तू हमें सोमरूप अन्न दे । हम जानते हैं कि तू युद्धोंमें शत्रुओंको हरानेवाला और स्वयं कभी पराभूत न होनेवाला है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तू कर्मसे जैसी कामना करता है, वैसा ही होता है । कर्मोंसे सब कामनायें पूर्ण होती हैं । तेरे संरक्षणसे चलनेवाले हम बल या अन्न प्राप्त करेंगे ॥ ४ ॥

११४३ शग्ध्यूर्षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदु-मनु शूर चरामसि ॥ ५ ॥
११४४ पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवाम-स्युत्सो देव हिरण्ययः ।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ ६ ॥
११४५ त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद् वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ ७ ॥
११४६ त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।
आ पुरंदरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥ ८ ॥
११४७ अविप्रो वा यदविध-द्विप्रो वेन्द्र ते वचः ।
स प्र ममन्दत् त्वाया शतक्रतो प्राचामन्यो अहंसन ॥ ९ ॥

अर्थ— [११४३] हे (शचीपते इन्द्र) शक्तियोंके स्वामी इन्द्र ! (विश्वाभिः ऊतिभिः) सम्पूर्ण संरक्षणोंसे हमें (शग्धि) समर्थ कर, हे (शूर) शूरवीर इन्द्र! हम (भगं न) भाग्यके समान (यशसं) यशस्वी (वसु-विदं) धनको प्राप्त करानेवाले होकर (त्वा) तेरी (अनुचरामसि) सेवा करते हैं ॥ ५ ॥

[११४४] हे (देव) देव ! तू (पौरः) प्रजाओंका स्वामी है, (गवां अश्वस्य पुरु कृत्) गायों तथा घोडोंको बहुत बनानेवाला है तथा (हिरण्ययः उत्सः असि) सोने आदि धनका स्रोत है, हे इन्द्र ! (त्वे दानं हि न कि परिमर्धिषत्) तेरे दानको कोई नष्ट नहीं कर सकता, तुझसे (यत् यत् यामि) जो जो मांगता हूँ, (तत् आ भर) उसे दो ॥ ६ ॥

[११४५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं हि एहि) तू आ, और (चेरवे) तेरी सेवा करनेवाले हमें (वसुत्तये) धन दानके लिए (भगं विद) ऐश्वर्य प्रदान कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (गविष्टये) गायकी इच्छा करनेवाले हमें (उत् आ वृषस्व) गाय दे तथा (अश्वं इष्टये उत्) अश्वकी इच्छा करनेवाले हमें घोडे दे ॥ ७ ॥

[११४६] हे इन्द्र ! (त्वं) तू (पुरू सहस्राणि शतानि च) बहुत, हजारों, सैंकडों (यूथा) गाय घोडोंके झुण्डोंको (दानाय मंहसे) दानके लिए देता है, (गायन्तः) गान करते हुए (विप्रवचसः) ज्ञान युक्त स्तुति करनेवाले हम (पुरन्दरं इन्द्रं) शत्रुओंकी नगरीको तोडनेवाले इन्द्रकी (अवसे) संरक्षणके लिए (चकृम) स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

[११४७] हे (शतक्रतो, प्राचा-मन्यो,) सैंकडों कर्म करनेवाले, अप्रतिहत क्रोधवाले तथा (अहं-सन इन्द्र) अपने अभिमानको प्रकट करनेवाले इन्द्र ! (अ-विप्रः विप्रः वा) अज्ञानी अथवा ज्ञानी (यत् वा) अथवा जो कोई भी (ते वचः अविधत्) तेरी स्तुति करता है, (सः) वह (त्वाया) तेरे कारण (प्र ममन्दत्) बहुत आनन्दित होता है ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! संपूर्ण रक्षणके साधनोंसे हमें सामर्थ्यवान कर। भाग्यवानके समान यशस्वी धनवान ऐसे तेरा अनुसरण करें ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तू सोने आदि धनका उद्गम स्थान है। इसलिए तेरे दानको कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! हम तेरी सेवा करते हैं, इसलिए तू हमें ऐश्वर्य प्रदान कर ताकि हम धनका दान कर सकें। तू हमें गाय और घोडे आदि पशु भी दे ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तू अनेक गायों और घोडोंके झुण्डोंको दानके लिए देता है, इसलिए ज्ञान पूर्वक स्तुति करनेवाले हम शत्रुओंकी नगरीको तोडनेवाले इन्द्रकी अपनी रक्षाके लिए स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

अज्ञानी या ज्ञानी जो कोई भी इन्द्रकी स्तुति करता है, वह आनन्दित होता है ॥ ९ ॥

११४८ उग्रबाहुर्म्रक्षकृत्वा पुरंदरो यदि मे शृणवद्धवम् ।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥ १० ॥
११४९ न पापासो मनामहे नारायासो न जल्हवः ।
यदिन्न्विन्द्रं सचा सुते सखायं कृणवामहै ॥ ११ ॥
११५० उग्रं युयुज्म पृतनासु सासहि- मृणकातिमदाभ्यम् ।
वेदा भृमं चित् सनिता रथीतमो वाजिनं यमिदू नशत् ॥ १२ ॥
११५१ यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभि- र्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ १३ ॥
११५२ त्वं हि राधस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधतः ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥ १४ ॥

अर्थ— [११४८] (उग्र बाहुः) बडी भुजाओंवाला, (म्रक्ष कृत्वा) शत्रुओंका वध करनेवाला, तथा उनकी (पुरं दरः) शत्रुकी नगरियोंको तोडनेवाला इन्द्र (यदि मे हवं शृणवत्) यदि मेरी प्रार्थना सुन ले, तो (वसूयवः) धनकी इच्छावाले हम (वसु-पतिं शतक्रतुं इन्द्रं) धनके स्वामी, सैकडों कर्मोंके करनेवाले इन्द्रको (स्तोमैः हवामहे) स्तोत्रोंसे सहायार्थ बुलावें ॥ १० ॥

[११४९] (यत् इत्) जिस कारण (वृषणं इन्द्रं) बलवान् इन्द्रको (सुते) सोमयागमें हम (सचा) एक साथ मिलकर (सखायं कृणवामहै) अपना मित्र बनाते हैं, इस कारण हम उसे (पापासः न मनामहे) पापी नहीं मानते, (न अ-रायसः) न दरिद्री मानते हैं, (न जल्हवः) न अ-यज्ञ कर्त्ता मानते हैं ॥ ११ ॥

[११५०] हम (पृतनासु सासहिं) युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेवाले (ऋणकातिं) ऋणको दूर करनेवाले (अ-दाभ्यं) न दबनेवाले (उग्रं) वीर इन्द्रको हम अपने पक्षमें (युयुज्म) संयुक्त करते हैं, वह (रथीतमः) रथियोंमें श्रेष्ठ इन्द्र (भृमं वाजिनं वेद दौडनेवाले घोडेकी परीक्षा करता है, तथा (यं इत्) जिसको (नशत्) वह प्राप्त होता है, [वह सुखी होता है] ॥ १२ ॥

[११५१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हम (यतः भयामहे) जहां जहांसे डरते हैं, (नः) हमें (ततः) वहां वहांसे (अभयं कृधि) भय रहित करो, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (तव तत् ऊतिभिः) अपने उन संरक्षणोंसे (नः) हमें (शग्धि) समर्थ कर, तथा (द्विषः मृधः जहि) हमारा द्वेष करनेवालोंको तथा हिंसकोंको पराभूत कर ॥ १३ ॥

[११५२] हे (राधस्पते) धनके स्वामी इन्द्र ! (त्वं हि तू ही (विधतः) यजमानके (महः राधसः क्षयस्य असि) बडे ऐश्वर्यको तथा घरको [बढानेवाला] है, हे (गिर्वणः मघवन् इन्द्र) स्तुत्य, ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (सुतावन्तः वयं) सोमयाग करनेवाले हम (तं त्वा) उस तुझको सहायार्थ (हवामहे) बुलाते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ— बडी भुजावाला, शत्रुओंका वध करनेवाला, शत्रुओंके नगर तोडनेवाला मेरी प्रार्थना सुने । वह हमारे स्तोत्रोंको सुनकर हमारे पास आवे ॥ १० ॥

हम इन्द्रको सोमयज्ञमें मित्र बनाते हैं, क्योंकि वह इन्द्र न पापी है, न दरिद्री है और न अयज्ञशील है । मनुष्य पुण्यशाली, धनवान् और आस्तिक मनुष्यको ही अपना मित्र बनाए ॥ ११ ॥

युद्धोंमें शत्रुओंका पराभव करनेवाले, ऋणको दूर करनेवाले, न दबनेवाले उग्र वीरको अपने पक्षमें लेते हैं । वह श्रेष्ठ रथी दौडनेवाले घोडेको जानता है ॥ १२ ॥

हे इन्द्र ! जहांसे हमें भय होता है वहांसे हमें निर्भय कर । अपने संरक्षणोंसे हमें बलवान् कर । द्वेष करनेवालों तथा हिंसकोंको पराभूत कर ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! तू यज्ञ करनेवालेके ऐश्वर्यको और घरको अधिक बढाता है । इसीलिए सोमयज्ञ करनेवाले हम तुझे अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ १४ ॥

११५३ इन्द्रः स्पळुत वृत्रहा परस्पा नो वरेण्यः ।
स नो रक्षिषच्चरमं स मध्यमं स पश्चात् पातु नः पुरः ॥ १५ ॥

११५४ त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात् पुर इन्द्र नि पाहि विश्वतः ।
आरे अस्मत् कृणुहि दैव्यं भय मारे हेतीरदेवीः ॥ १६ ॥

११५५ अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
विश्वा च नो जरितॄन् त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥ १७ ॥

११५६ प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः संमिश्लो वीर्याय कम् ।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥ १८ ॥

अर्थ— [११५३] (इन्द्रः) वह इन्द्र (स्पट्) सबका ज्ञाता है, (उत) और (वृत्र-हा) वृत्रको मारनेवाला है, (परः पा) श्रेष्ठोंका पालनेवाला है, तथा (नः वरेण्यः) हमारा स्वीकरणीय है, (सः) वह इन्द्र (नः) हममेंसे (चरमं रक्षिषत्) उत्तमकी रक्षा करे, (स मध्यमं) वह मध्यमकी रक्षा करे, तथा (सः नः पश्चात् पुरः पातु) वह हमारा पीछेसे और आगेसे सरक्षण करे ॥ १५ ॥

१ परस्पा नः वरेण्यः चरमं मध्यमं रक्षिषत्— वह संरक्षक और श्रेष्ठ वीर हमारे उत्तम और मध्यमका संरक्षण करे ।

[११५४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (पश्चात् , पुरः अधरात् , उत्तरात् विश्वतः) पीछे, आगे, नीचे, ऊपर और सब ओरसे (नः नि पाहि) हमारी रक्षा कर । तथा (दैव्यं भयं) दैवी भयको (अस्मत् आरे कृणुही) हमसे दूर कर, और (अ-देवीः हेतीः आरे) असुरोंके शस्त्रोंको भी हमसे दूर कर ॥ १६ ॥

[११५५] (अद्य अद्य श्वः श्वः) आज और कल तथा (परे) अन्य दिन भी हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः त्रास्व) हमारा संरक्षण कर । हे (सत्पते) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (विश्वा अहा दिवा नक्तं च) सम्पूर्ण दिन और रात (नः जरितॄन्) हम स्तुति करनेवालोंका (रक्षिषः) संरक्षण कर ॥ १७ ॥

१ अद्य श्वः परे नः त्रास्व— आज कल या दूसरे दिन हमारा संरक्षण कर ।

२ विश्वा अहा दिवा नक्तं च नः रक्षिषः— सर्वदा दिन रात हमारा संरक्षण कर ।

[११५६] वह इन्द्र (प्रभंगीः) शत्रुओंको मारनेवाला, (शूरः) वीर, (मघवा) ऐश्वर्यवान् (तुवीमघः) बहुत धनवाला तथा (वीर्याय) उत्साह प्राप्तिके लिए सोममें (कं सं मिश्लः) जलको मिलानेवाला है, हे (शतक्रतो) बहु ज्ञानवान् इन्द्र ! (या वज्रं नि मिमिक्षतुः) जो वज्रको धारण करते हैं, (ते उभा बाहू वृषणौ) तेरे वे दोनों भुजायें बलवान् हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ— वह इन्द्र सर्वज्ञ, सब शत्रुओंको मारनेवाला, श्रेष्ठोंका पालन करनेवाला होनेसे हमारे लिए स्वीकरणीय है । वह हममेंसे जो उत्तम और मध्यम वीर हों, उनकी रक्षा करे ॥ १५ ॥

हे इन्द्र ! तू सब शत्रुओंसे हमारा रक्षण कर, दैवी आपत्तिको हमसे दूर कर । असुरोंके शस्त्र हमसे दूर कर ॥ १६ ॥

हे इन्द्र ! आज, कल और अन्य भी दिन अर्थात् सदा सर्वदा तेरी स्तुति करनेवाले हमारी रक्षा कर ॥ १७ ॥

वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रकी दोनों भुजायें बलवान् हैं । वह इन्द्र ऐश्वर्यशाली तथा बहुत धनवाला है । वह उत्साह प्राप्त करनेके लिए सोमरसका पान करता है ॥ १८ ॥

[६२]

(ऋषिः- प्रगाथो घौरः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- पङ्क्तिः, ७-९ बृहती ।)

११५७ प्रो अ॑स्मा उप॑स्तुतिं भर॑ता यज्जुजो॑षति ।
उक्थैरिन्द्र॑स्य माहि॑नं वयो॑ वर्धन्ति सो॒मिनो॑ भद्रा इन्द्र॑स्य रा॒तयः॑ ॥ १ ॥

११५८ अयुजो अस॑मो नृभि॒रेकः॑ कृष्टीर॒यास्यः॑ ।
पूर्वी॒रति॒ प्र वा॑वृधे॒ विश्वा॑ जा॒तान्योज॑सा भद्रा इन्द्र॑स्य रा॒तयः॑ ॥ २ ॥

११५९ अहि॑तेन चि॒दर्व॑ता जी॒रदा॑नुः सिषासति ।
प्रवाच्य॑मिन्द्र॒ तत् तव॑ वी॒र्या॑णि करि॒ष्यतो॑ भद्रा इन्द्र॑स्य रा॒तयः॑ ॥ ३ ॥

११६० आ या॑हि कृ॒णवा॑म त॒ इन्द्र॒ ब्रह्मा॑णि॒ वर्ध॑ना ।
येभि॑: शविष्ठ चा॒कनो॑ भ॒द्रमि॒ह श्र॑वस्य॒ते भद्रा इन्द्र॑स्य रा॒तयः॑ ॥ ४ ॥

---

[६२]

अर्थ— [११५७] (यत्) यदि यह इन्द्र (जुजोषति) सेवन करे, तो हे ऋत्विजो ! (अस्मै उपस्तुतिं प्रो भरत) इसके लिए स्तुतिको कहो, (सोमिनः) सोमयाग करनेवाले (इन्द्रस्य) इस इन्द्रके (माहिनं वयः) महान् सोमरूपी अन्नको (उक्थैः वर्धन्ति) स्तुतियोंसे बढाते हैं, क्योंकि (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके दान कल्याणकारी हैं ॥ १ ॥

[११५८] (अ-युजः) अकेला (अ-समः) अद्वितीय (नृभिः एकः) मनुष्योंमें मुख्य (अयास्यः) अविनाशी इन्द्र (पूर्वीः कृष्टीः) प्राचीन मनुष्योंको तथा (विश्वा जातानि) सम्पूर्ण उत्पन्न हुओंको (ओजसा) बलसे (अति प्र वावृधे) अत्यधिक बढाता है । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके धन कल्याणकारी हैं ॥ २ ॥

[११५९] (जीर दानुः) शीघ्र दाता इन्द्र (अ-हितेन चिद् अर्वता) दौडनेवाले घोडेसे (सिषासति) जाना चाहता है, हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वीर्याणि करिष्यतः) पराक्रम करते हुए (तव) तेरा (तत्) वह यश (प्रवाच्यम्) प्रशंसनीय है । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके धन कल्याणकारी हैं ॥ ३ ॥

[११६०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (आ याहि) आ, हम (ते वर्धना ब्रह्माणि कृणवाम) तेरे उत्साह वर्धक उन स्तोत्रोंका गान करेंगे (येभिः) जिनके द्वारा हे (शविष्ठ) बलवान् इन्द्र ! तू (इह श्रवस्यते भद्रं चाकन) यहां यश की इच्छा करनेवाले (यजमान) का कल्याण करना चाहता है । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके धन कल्याणकारी हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— इस इन्द्रके दान कल्याणकारी हैं, अतः इससे धन प्राप्त करनेके लिए इस इन्द्रकी स्तुति करनी चाहिए ॥ १ ॥

इन्द्र सबको अपनी शक्तिसे विशेष उन्नत करता है । अकेला अद्वितीय एक अविनाशी वीर है ॥ २ ॥

धनादि शीघ्रतासे देनेवाला इन्द्र शीघ्रगामी घोडेसे सर्वत्र जाता है । उसका वह पराक्रम सचमुच प्रशंसनीय है और उसके दान कल्याणकारी हैं ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! हम तेरे उत्साहको बढानेवाले स्तोत्रोंका गान करेंगे, क्योंकि तू यशकी इच्छा करनेवाले यज्ञशील मनुष्यका कल्याण करना चाहता है, और तेरे दान भी कल्याणकारी हैं ॥ ४ ॥

+

११६१ धृषतश्चिद् धृषन्मनः कृणोषीन्द्र यत् त्वम् ।
तीव्रैः सोमैः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूषतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ५ ॥
११६२ अव चष्ट ऋचीषमो ऽवताँ इव मानुषः ।
जुष्ट्वी दक्षस्य सोमिनः सखायं कृणुते युजं भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ६ ॥
११६३ विश्वे त इन्द्र वीर्यं देवा अनु क्रतुं ददुः ।
भुवो विश्वस्य गोपतिः पुरुष्टुत भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ७ ॥
११६४ गृणे तदिन्द्र ते शव उपमं देवतातये ।
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ८ ॥

अर्थ— [११६१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् त्वं) जब तू (तीव्रैः सोमैः सपर्यतः) तीखे सोमरसोंसे [तेरा] सत्कार करनेवाले; (नमोभिः प्रतिभूषतः) नमस्कारोंसे तुझे सत्कृत करनेवाले (धृषतः) शत्रुओंके घर्षण करनेवाले [यजमानके] (मनः) मनको (धृषत् कृणोषि) और अधिक बलवान् करता है, तब तुझ (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके दान कल्याणकारी होते हैं ॥ ५ ॥

धृषतः मनः धृषत् कृणोषि— धैर्यवान् शूरका मन अधिक सामर्थ्यवान करता है ।

[११६२] (ऋचीषमः) ऋचाओंको पसन्द करनेवाला यह इन्द्र (मानुषः अवतान् इव) जैसे [प्यासा] मनुष्य कुंवोंको देखता है उसी प्रकार (अव चष्टे) सबको देखता है, और [देखकर] (जुष्ट्वी) प्रसन्न हुआ यह इन्द्र (दक्षस्य सोमिनः) समृद्ध हुए सोमयाग करनेवालेको (युजं सखायं कृणुते) अपना योग्य मित्र बना लेता है, (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके धन कल्याणकारी हैं ॥ ६ ॥

१ दक्षस्य सोमिनः युजं सखायं कृणुते— बलवान् तथा सोमयाग करनेवालेको यह अपना योग्य मित्र बना लेता है ।

[११६३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते अनु) तेरे पीछे चलकर (विश्वे देवाः) सभी देवोंने (वीर्यं क्रतुं ददुः) बल और बुद्धिको धारण किया, हे (पुरु-स्तुत) अनेकोंसे प्रशंसित इन्द्र ! तू (विश्वस्य भुवः गो-पतिः) सम्पूर्ण भुवनोंका और गायोंका स्वामी है । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके स्वामी धन कल्याणकारी हैं ॥ ७ ॥

[११६४] हे (शचीपते) शक्तियोंके स्वामी इन्द्र ! (यत्) जिस कारण तूने (ओजसा) बलसे (वृत्रं हंसि) वृत्रको मारा, (तत्) इसलिए हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते उपमं शवः) तेरे उत्तम बलका (देवतातये) यज्ञमें (गृणे) वर्णन करता हूँ । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके धन कल्याणकारी हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जो सोमरस देकर तेरा सत्कार करते है और नमस्कारोंसे तेरी पूजा करते हैं, उनके मनको तू अधिक बलवान् बनाता है और उन्हें कल्याणकारी धन देता है ॥ ५ ॥

ऋचाओंको पसन्द करनेवाला यह इन्द्र सभी मनुष्योंका निरीक्षण करता है, और सोमयज्ञ करनेवाले पर प्रसन्न होकर उसे अपना मित्र बना लेता है और उसे कल्याणकारी धन प्रदान करता है ॥ ६ ॥

जब देवोंने इन्द्रका अनुकरण किया, तब उन देवोंने बल और बुद्धिको धारण किया । इन्द्रके नियमोंका अनुकरण करनेसे बल और बुद्धि प्राप्त होती है ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! जिस शक्ति और बलसे तूने वृत्रको मारा, उस उत्तम बलकी मैं यज्ञमें प्रशंसा करता हूँ और तेरे उत्तम कल्याणकारी धनको प्राप्त करना चाहता हूँ ॥ ८ ॥

११६५ समनेव वपुष्यतः कृणवन्मानुषा युगा ।
विदे तदिन्द्रश्चेतनमध श्रुतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ९ ॥

११६६ उज्जातमिन्द्र ते शव उत् त्वामुत् तव क्रतुम् ।
भूरिगो भूरि वावृधु–र्मघवन् तव शर्मणि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १० ॥

११६७ अहं च त्वं च वृत्रह–न्त्सं युज्याव सनिभ्य आ ।
अरातीवा चिदद्रिवो ऽनु नौ शूर मंसते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ११ ॥

११६८ सत्यमिद् वा उ तं वय–मिन्द्रं स्तवाम नानृतम् ।
महाँ असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १२ ॥

अर्थ— [११६५] (समना इव वपुष्यतः कृणवत्) जैसे समान मनवाली स्त्री बलवान् पुरुषको वशमें करती है, उसी प्रकार (इन्द्रः) इन्द्र भी (मानुषा युगा) मनुष्योंको तथा युगोंको अपने वशमें (विदे) करता है, तथा (तत् चेतनं अध) उस ज्ञानयुक्त कर्मको करके वह (श्रुतः) प्रसिद्ध होता है, (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके धन कल्याणकारी हैं ॥ ९ ॥

[११६६] हे (भूरि-गो, मघवन् इन्द्र) बहुत गायवाले, ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (तव शर्मणि) तेरे सुखमें रहते हुए यजमान (ते जातं शवं उत् भूरि वावृधुः) तेरे उत्पन्न हुए बलको बहुत बढाते हैं, (त्वां उत्) तुझे भी बढाते हैं, (तव क्रतुं) तेरे कर्मको भी बढाते हैं । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके धन कल्याणकारी हैं ॥ १० ॥

[११६७] हे (वृत्रहन्) वृत्रके हन्ता इन्द्र ! (सनिभ्यः) धन प्राप्तिके लिए (अहं च त्वं च) मैं और तू दोनों (सं युज्याव) अच्छी तरह मिल जावें हे (अद्रि-वः शूर) वज्रधारी शूरवीर इन्द्र ! (अ-रातीवा चित्) अदानशील दरिद्र भी (नौ अनु मंसते) हम दोनोंका समर्थन करेगा । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके धन कल्याणकारी हैं ॥ ११ ॥

[११६८] (वयं) हम (तं सत्यं इन्द्रं उ स्तवाम) उस सच्चे इन्द्रकी ही स्तुति करते हैं, (न अनृतम्) झूठे की नहीं, (असुन्वन्तः महान् वधः) सोमयाग न करनेवालेका महान् नाश होता है, पर (भूरि ज्योतींषि सुन्वतः) बहुत सोमको तैय्यार करनेवालेके लिए (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके धन कल्याणकारी होते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ— सभी प्राणी और काल इन्द्रके वशमें हैं । वह इन सबका निरीक्षण करता रहता है । वह ज्ञानयुक्त कर्म करके सर्वत्र प्रसिद्ध होता है जो मनुष्य ज्ञानपूर्वक कर्म करता है, वह सर्वत्र यशस्वी होता है ॥ ९ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! यज्ञ करनेवाले मनुष्य तेरे सुखमें रहते हुए तेरे बलको बढाते हैं और तेरे कर्मको भी बढाते हैं ॥ १० ॥

इन्द्रके साथ एक हो जाने पर इन्द्र उस भक्तको धन प्रदान करता है । तब सभी लोग उस भक्तके समर्थक बन जाते हैं, क्योंकि इन्द्रके धन सबको कल्याण करते हैं ॥ ११ ॥

सोमयाग न करनेवालेका महान् नाश होता है । बहुत सोमरसोंको तैय्यार करनेवालोंके लिए इन्द्रके धन कल्याणकारी होते हैं ॥ १२ ॥

[६३]

(ऋषिः- प्रगाथः काण्वः । देवता:- इन्द्रः, १२ देवाः । छन्दः- गायत्री; १,४-५,७ अनुष्टुप्, १२ त्रिष्टुप् ।)

११६९ स पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे ।
यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे ॥ १ ॥
११७० दिवो मानं नोत्सदन् त्सोमपृष्ठासो अद्रयः । उक्था ब्रह्म च शंस्या ॥ २ ॥
११७१ स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप । स्तुषे तदस्य पौंस्यम् ॥ ३ ॥
११७२ स प्रत्नथा कविवृध इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः ।
शिवो अर्कस्य होमन्यस्मत्रा गन्त्ववसे ॥ ४ ॥
११७३ आदू नु ते अनु क्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः ।
श्वात्रमर्का अनूषतेन्द्र गोत्रस्य दावने ॥ ५ ॥
११७४ इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्वानि च । यमर्का अध्वरं विदुः ॥ ६ ॥

---

[६३]

अर्थ— [११६९] (यस्य द्वारा) जिस इन्द्रके पास पहुंचनेके (धियः) उपायोंको (देवेषु) देवोंमें (पिता मनुः) पालन कर्त्ता मनुने (आनजे) प्राप्त किया, (सः महानां) वह पूज्य (पूर्व्यः) प्राचीन (वेनः) कान्तिमान् इन्द्र (क्रतुभिः) कर्मोंके साथ [यज्ञको] (आनजे) प्राप्त हुआ है ॥ १ ॥

[११७०] (सोमपृष्ठासः अद्रयः) सोम पीसनेवाले पत्थर तथा (शंस्या उक्था ब्रह्म च) प्रशंसाके योग्य स्तोत्र और ज्ञान (दिवः मानं) द्युलोकको बनानेवाले इन्द्रको (न उत्सदन्) न छोडें ॥ २ ॥

[११७१] (सः विद्वान् इन्द्रः) उस विद्वान् इन्द्रने (अङ्गिरोभ्यः) अङ्गिरा ऋषियोंके लिए (गाः) गायोंको (अप अवृणोत्) बाहर निकाला, (तत्) इसलिए (अस्य पौंस्यं स्तुषे) इसके बलकी प्रशंसा करता हूँ ॥ ३ ॥

[११७२] (कविवृधः, वाकस्य वक्षणिः शिवः) ज्ञानियोंको बढानेवाला, स्तुतिको प्राप्त करनेवाला, सुखकारी (सः इन्द्रः) वह इन्द्र (प्रत्नथा) पहलेके समान (अस्मत्रा अर्कस्य होमनि) हमारे सोमके यज्ञमें (अवसे) संरक्षणके लिए (आ गन्तु) आवे ॥ ४ ॥

[११७३] (आत् ऊ) इसके बादही (स्वाहावरस्य यज्यवः) अग्निमें यज्ञ करनेवाले तथा (अर्काः) स्तोतागण (गोत्रस्य दावने) धनके दानके लिए हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते क्रतुं अनु श्वात्रं अनूषत) तेरे कर्मका शीघ्रही वर्णन करते हैं ॥ ५ ॥

[११७४] (अर्काः) स्तोतागण (यं) जिस इन्द्रको (अ-ध्वरं विदुः) अहिंसक मानते हैं, उस (इन्द्रे) इन्द्रमें (कृतानि कर्त्वानि च) किए गए तथा आगे किये जानेवाले (विश्वानि वीर्या) सम्पूर्ण पराक्रम हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— इन्द्रको प्राप्त करनेका मार्ग देवों और मनुष्योंमें सर्व प्रथम मननशील ज्ञानीने ही पता लगाया । वह इन्द्र प्राचीन, तेजस्वी प्रशंसाके योग्य और ज्ञानी है ॥ १-२ ॥

वह इन्द्र ज्ञानियोंको बढानेवाला और स्तुति करनेवालोंको सुख देनेवाला है । उसने अंगिरा ऋषियोंके लिए गायें प्रदान कीं ॥ ३-४ ॥

स्तोताओंकी यह इन्द्र कभी हिंसा नहीं करता, इसीलिए वे भूतकालमें किए गए और आगे किए जानेवाले पराक्रमके लिए इन्द्रकी स्तुति करते हैं । तब इन्द्र उन्हें धन प्रदान करता है ॥ ५-६ ॥

११७५ यत् पाञ्चजन्यया विशे―न्द्रे घोषा असृक्षत ।
अस्तृणाद्बर्हणा विपो३ऽर्यो मानस्य स क्षयः ॥ ७ ॥
११७६ इयमु ते अनुष्टुति―श्चकृषे तानि पौंस्या । प्रावश्चक्रस्य वर्तनिम् ॥ ८ ॥
११७७ अस्य वृष्णो व्योदन उरु क्रमिष्ट जीवसे । यवं न पश्व आ ददे ॥ ९ ॥
११७८ तद्दधाना अवस्यवो युष्माभिर्दक्षपितरः । स्याम मरुत्वतो वृधे ॥ १० ॥
११७९ बळृत्वियाय धाम्न ऋक्वभिः शूर नोनुमः । जेषामेन्द्र त्वया युजा ॥ ११ ॥
११८० अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः ।
यः शंसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ अवन्तु देवाः ॥ १२ ॥

अर्थ― [११७५] (यत् पांचजन्यया विशा) जब पंचजन प्रजाके द्वारा (इन्द्रे घोषा असृक्षत) इन्द्रके लिए स्तुतियां की जाती हैं, तब वह अपने (बर्हणा) सामर्थ्यसे शत्रुओंको (अस्तृणाद्) मारता है, ऐसा (अर्यः सः) सबका स्वामी वह इन्द्र (विपः) ज्ञानवान् मेरे (मानस्य क्षयः) सत्कारका पात्र होता है ॥ ७ ॥

[११७६] हे इन्द्र ! तूने (तानि पौंस्या चकृषे) उन [वृत्रवधादिके] पराक्रमोंको किया, इसलिए (इयं अनु स्तुतिः ते) यह अनुकूल स्तुति तेरे लिए है, हे इन्द्र ! हमारे रथके (चक्रस्य) पहियेके (वर्तनिं) मार्गका (प्र अव) उत्तमतासे संरक्षण कर ॥ ८ ॥

[११७७] सब मनुष्य (अस्य वृष्णः) इस बलवान् इन्द्रसे (पश्वः न) पशुके समान (यवं आ ददे) जौ आदि अन्न प्राप्त करते हैं, तथा (वि ओदने) अन्नके प्राप्त होनेपर ही (जीवसे) जीवनके लिए (उरु क्रमिष्ट) महान् कर्म करते हैं ॥ ९ ॥

[११७८] (मरुत्वतः वृधे) मरुतोंके स्वामी इन्द्रके यशको बढानेके लिए (तत् दधानाः) उस यशको धारण करते हुए (अवस्यवः) संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम (युष्माभिः) तुम लोगोंके साथ (दक्ष-पितरः स्याम) अन्नके स्वामी हों ॥ १० ॥

[११७९] हे (शूर) शूरवीर इन्द्र ! (ऋत्वियाय) यज्ञके पालक (धाम्ने) तेजस्वी तेरी (ऋक्वभिः) स्तोत्रोंसे (बट् नोनुम) निश्चयसे स्तुति करते हैं, हे (इन्द्र) इन्द्र (त्वया युजा) तेरी सहायतासे [हम शत्रुओंको] (जेषाम) जीतें ॥ ११ ॥

[११८०] (यः पज्रः) जो बलशाली इन्द्र (शंसते स्तुवते) प्रशंसा करनेवाले तथा स्तुति करनेवालेके पास (धायि) जाता है, वह तथा (रुद्राः) रुद्र (अस्मे मेहनाः पर्वतासः) हमारे लिए वृष्टि करनेवाले मेघ तथा (इन्द्र-ज्येष्ठाः सजोषाः देवाः) इन्द्र जिनमें मुख्य है, ऐसे एक साथ रहनेवाले देव (वृत्रहत्ये भरहूतौ) वृत्रको मारनेवाले संग्राममें (अस्मान् अवन्तु) हमारी रक्षा करें ॥ १२ ॥

भावार्थ― जब चार वर्ण और निषाद ये पांचजन मिलकर इन्द्रके लिए स्तुतियां करते हैं, तब वह इन्द्र उन स्तुतियोंसे वृद्धिको प्राप्त होकर अपने सामर्थ्यसे शत्रुओंको मारता है ॥ ७-८ ॥

सब मनुष्योंको अन्नका दान यही इन्द्र करता है। उस इन्द्रसे अन्न प्राप्त करनेके लिए सभी प्राणी कर्म करते हैं तथा इन्द्रकी प्रशंसा करके उसके यशको बढाते हैं और इस प्रकार अन्नके स्वामी होते हैं ॥ ९-१० ॥

हे शूरवीर इन्द्र ! यज्ञके पालक तथा तेजसे युक्त तेरी हम स्तुति करते हैं, तेरी सहायता प्राप्त करके हम शत्रुओंको जीतें ॥ ११ ॥

बलशाली इन्द्र, रुद्र, वृष्टि करनेवाले मेघ तथा अन्य देव आपत्तिके समय हमारी रक्षा करें ॥ १२ ॥

[६४]

(ऋषिः- प्रगाथः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

११८१ उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥
११८२ पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि । नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥
११८३ त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥
११८४ एहि प्रेहि क्षयो दिव्या३घोषञ्चर्षणीनाम् । ओभे पृणासि रोदसी ॥ ४ ॥
११८५ त्यं चित् पर्वतं गिरिं शतवन्तं सहस्रिणम् । वि स्तोतृभ्यो रुरोजिथ ॥ ५ ॥
११८६ वयमु त्वा दिवा सुते वयं नक्तं हवामहे । अस्माकं काममा पृण ॥ ६ ॥
११८७ क्व१ स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः । ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ॥ ७ ॥
११८८ कस्य स्वित् सवनं वृषा जुजुष्वाँ अव गच्छति । इन्द्रं क उ स्विदा चके ॥ ८ ॥

---

[६४]

अर्थ— [११८१] हे इन्द्र ! (त्वा स्तोमाः उत् मन्दन्तु) तुझे स्तोत्र आनन्दित करें, हे (अद्रि-वः) वज्रवान् इन्द्र ! हमारे लिए (राधः कृणुष्व) अन्न दे, (ब्रह्म द्विषः अव जहि) ज्ञानके द्वेषी मनुष्योंको मार दे ॥ १ ॥

[११८२] हे इन्द्र ! (पणीन् अ-राधसः) कंजूस तथा यज्ञके लिए धन न देनेवालोंको (पदा नि बाधस्व) पैरसे कुचल डालो, तू (महां असि) महान् हो, (त्वा कश्चन प्रति नहि) तेरा कोई प्रति द्वन्दी नहीं है ॥ २ ॥

१ त्वा कश्चन प्रति नहि— तेरा कोई प्रतिद्वन्दी नहीं है ।

२ पणीन् पदा नि बाधस्व— कंजूसोंको पैरसे कुचल डालो ।

[११८३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं सुतानां ईशीषे) तुम सोमरसोंके स्वामी हो, (त्वं अ-सुतानां) न निकाले गए सोमोंके भी स्वामी हो, (त्वं जनानां राजा) तुम मनुष्योंके राजा हो ॥ ३ ॥

[११८४] हे इन्द्र ! (चर्षणीनां एहि) मनुष्योंके यज्ञमें आओ, फिर (आघोषयन्) घोषणा करते हुए (दिवि क्षयः प्रेहि) द्युलोकमें अपने घर चले जाओ । (उभे रोदसी) तुम दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोकको [अपने तेजसे] (आ पृणासि) पूर्ण करते हो ॥ ४ ॥

[११८५] हे इन्द्र ! (त्वं चित्) उस (शतवन्तं सहस्रिणं पर्वतं) सैकडों तथा हजारों पर्ववाले (गिरिं) बादलको (स्तोतृभ्यः रुरोजिथ) स्तोताओंके हितके लिए तोडो ॥ ५ ॥

[११८६] हे इन्द्र ! (वयं उ) हम (सुते) सोमयागमें (त्वा) तुझे (दिवा हवामहे) दिनमें सहायार्थ बुलाते हैं, और (वयं नक्तं) हम तुझे रातमें भी बुलाते हैं, तुम (अस्माकं कामं) हमारी कामनाको (आ पृण) पूर्ण करो ॥ ६ ॥

[११८७] (स्यः) वह (वृषभः, युवा) बलवान्, तरुण (तुविग्रीवः अनानतः) विशाल गर्दनवाला, कभी न नीचा होनेवाला इन्द्र (क) कहां रहता है, तथा (तं) उसका (कः ब्रह्मा सपर्यति) कौन ज्ञानी सत्कार करता है ? ॥ ७ ॥

[११८८] (वृषा) वह बलवान् इन्द्र (कस्य स्वित् किसके (सवनं जुजुष्वान् अव गच्छति) यज्ञका सेवन करनेके लिये आता है ? और (क उ स्वित्) कौन मनुष्य (इन्द्रं आचक) इन्द्रको जानता है ? ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तेरा कोई शत्रु नहीं है । तू ज्ञानसे द्वेष करनेवालोंको और कंजूसोंको नष्ट कर डाल ॥ १-२ ॥

हे इन्द्र ! तू निकाले गए और न निकाले गए सभी तरहके सोमरसोंका स्वामी है और तू ही मनुष्योंका राजा है । तू अपने तेजसे द्यु और पृथ्वी इन दोनों लोकोंको भर देता है ॥ ३-४ ॥

हे इन्द्र ! तू मनुष्योंका हित करनेके लिए अनेक पर्तोंवाले मेघको तोड । हम सभी मनुष्य हमारी सहायता करनेके लिए तुझे हमेशा बुलाते हैं । अतः तू आकर हमारी कामनाओंको पूर्ण कर ॥ ५-६ ॥

बलवान्, तरुण तथा पराक्रमशाली इन्द्र कहां रहता है, किसके पास कब और कहां आता जाता है इसको कोई नहीं जानता । राष्ट्रनेताकी गतिविधियां इसी तरह हों कि उसे कोई भी मनुष्य जान न पाए ॥ ७-८ ॥

११८९ कं ते दाना असक्षत वृत्रहन् सुवीर्या । उक्थे क उ स्विदन्तमः ॥ ९ ॥
११९० अयं ते मानुषे जने सोमः पूरुषु सूयते । तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥ १० ॥
११९१ अयं ते शर्यणावति सुषोमायामधि प्रियः । आर्जीकीये मदिन्तमः ॥ ११ ॥
११९२ तमद्य राधसे महे चारुं मदाय घृष्वये । एहीमिन्द्र द्रवा पिब ॥ १२ ॥

[६५]

(ऋषिः- प्रगाथः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री)

११९३ यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः । आ याहि तूयमाशुभिः ॥ १ ॥
११९४ यद्वा प्रस्रवणे दिवो मादयासे स्वर्णरे । यद्वा समुद्रे अन्धसः ॥ २ ॥

अर्थ- [११८९] हे (वृत्र हन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (ते दानाः कं असक्षत) तेरे दिए हुए धन किस मनुष्यको प्राप्त होते हैं, और (कं सु-वीर्या) किसको बल प्राप्त होते हैं, तथा (उक्थे) यज्ञमें (क उ स्वित्) कौन मनुष्य तेरे (अन्तमः) पास बैठता है ॥ ९ ॥

[११९०] हे इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (अयं) यह सोम (मानुषे जने पूरुषु) मनुष्यों तथा श्रेष्ठ नागरिकोंके बीचमें (सूयते) निचोडा जाता है, (एहि प्र द्रव) आ, दौडकर आ और (तस्य पिब) उसको पी ॥ १० ॥

[११९१] (शर्यणावति सुषोमायां अधि) शर्यणावत प्रदशमें सुषोमा नदी पर होनेवाला तथा (आर्जीकीये) पात्रमें रखा हुआ (ते प्रियः मन्दिनमः) तुझे प्रिय तथा उत्साहको देनेवाला (अयं) यह सोम है ॥ ११ ॥

[११९२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (तं चारुं) उस उत्तम सोमको (महे राधसे) बडे धन देनेके लिए (घृष्वये) शत्रुओंको मारनेके लिए (मदाय) आनन्दके लिए (एहि द्रव पिब) दौडकर आओ और पियो ॥ १२ ॥

[६५]

[११९३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् नृभिः) जो तू मनुष्यों द्वारा (प्राग्, अपाग्, उदङ् न्यग् वा) आगे, पीछे, ऊपर और नीचेकी ओरसे [सहायार्थ] (हूयसे) बुलाया जाता है अतः (तूयं) शीघ्र ही (आशुभिः आ याहि) शीघ्रगामी घोडोंसे आ ॥ १ ॥

[११९४] (यत् वा दिवः प्रस्रवणे) अथवा द्युलोकके जलके उद्गम स्थानमें (मादयासे) आनन्दित होते हो, अथवा (स्वः नरे) स्वर्गको प्राप्त करानेवाले यज्ञमें (यत् वा) अथवा (अन्धसः समुद्रे) सोमरसके प्रवाहमें [आनन्दित होते हो] ॥ २ ॥

भावार्थ- इन्द्रके द्वारा दिए गए धनको कौन प्राप्त करता है, उसके बलको कौन प्राप्त करता है, यह भी जानना कठिन है, पर यह निश्चित है कि उसका सत्कार सभी मनुष्य करते हैं ॥ ९-१० ॥

हे इन्द्र ! तेरे लिए यह सोम अच्छी तरह तैय्यार करके पात्रमें रखा हुआ है, तू इसे पीकर आनन्दित हो और उस आनन्द या उत्साहको प्राप्त करके तू शत्रुओंको मार ॥ ११-१२ ॥

हे इन्द्र ! तुझे जब लोग चारों ओरसे बुलाते हैं, तब तू द्युलोकसे आकर हमारे साथ आनन्दित हो, और सोमरस पी कर उत्साहित हो ॥ १-२ ॥

१९९५ आ त्वा गीर्भिर्महामुरुं हुवे गामिव भोजसे । इन्द्र सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥
११९६ आ तं इन्द्र महिमानं हरयो देव ते महः । रथे वहन्तु बिभ्रतः ॥ ४ ॥
११९७ इन्द्रं गृणीष उ स्तुषे महाँ उग्र ईशानकृत् । एहि नः सुतं पिब ॥ ५ ॥
११९८ सुतावन्तस्त्वा वयं प्रयस्वन्तो हवामहे । इदं नो बर्हिरासदे ॥ ६ ॥
११९९ यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम् । तं त्वा वयं हवामहे ॥ ७ ॥
१२०० इदं ते सोम्यं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । जुषाण इन्द्र तत् पिब ॥ ८ ॥
१२०१ विश्वाँ अर्यो विपश्चितोऽति ख्यस्तूयमा गहि । अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ ९ ॥
१२०२ दाता मे पृषतीनां राजा हिरण्यवीनाम् । मा देवा मघवा रिषत् ॥ १० ॥

अर्थ— [११९५] मैं हे (इन्द्र) इन्द्र ! (महां उरुं) महान् विशाल (त्वा) तुझे (सोमस्य पीतये) सोमपानके लिए (गीर्भिः) वाणियोंसे (भोजसे गां इव) जैसे खिलानेके लिए गायको बुलाते हैं, उसी तरह (हुवे) बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

[११९६] हे (देव इन्द्र) दिव्य इन्द्र ! (महः महिमानं बिभ्रतः ते) महान् यशको धारण करनेवाले तेरे (ते हरयः) वे घोडे तुझे (रथे वहन्तु) रथमें ले आवें ॥ ४ ॥

[११९७] हे (उग्रः महान्, ईशान कृत् इन्द्र) वीर, महान् तथा सबके स्वामी इन्द्र ! मैं तेरा (गृणीषे) गुणवर्णन करता हूं (उ) और तेरी (स्तुषे) स्तुति करता हूँ, (एहि) तू आ और (नः सुतं पिब) हमारे सोमको पी ॥ ५ ॥

[११९८] (सुतावन्तः प्रयस्वन्तः वयं) सोमयाग करनेवाले तथा अन्नवाले हम (त्वां) तुझे (नः इदं बर्हिः आसदे) हमारे इस आसन पर बैठनेके लिए (हवामहे) बुलाते हैं ॥ ६ ॥

[११९९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् चित् हि) जिस कारण (त्वं) तू (शश्वतां) बहुतोंके द्वारा (साधारणः) एक साथ धारण किए जाता (असि) है; इसलिए (तं त्वा) उस तुझको (वयं हवामहे) हम बुलाते हैं ॥ ७ ॥

[१२००] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नरः) यज्ञकर्त्ता (ते) तेरे लिए (अद्रिभिः) पत्थरोंसे (इदं मधु सोम्यं) इस मीठे सोमको (अधुक्षन्) तैय्यार करते हैं, तू (जुषाणः) प्रसन्न होता हुआ (तत् पिब) उसको पी ॥ ८ ॥

[१२०१] हे (अर्यः) स्वामी इन्द्र ! तू (तूयं आ गहि) शीघ्र आ, तथा (विश्वान् विपश्चितः अतिख्यः) सभी ज्ञानियोंको देख, तथा (अस्मे बृहत् श्रवः धेहि) हमें बहुत अन्न दे ॥ ९ ॥

[१२०२] (हिरण्यवीनां पृषतीनां राजा) सुन्दर रंगवाली गौवोंका राजा वह इन्द्र (मे दाता) मुझे धन देनेवाला है, हे (देवाः) देवो ! (मघवा मा रिषत्) इन्द्र कभी हिंसित न हो ॥ १० ॥

१ मघवा मा रिषत्— वह इन्द्र कभी दुःखी न हो ।

भावार्थ— हे महान् इन्द्र ! सोमपानके लिए तुझे मैं स्तुतियोंसे बुलाता हूँ । तू अपने यशस्वी घोडोंकी सहायतासे हमारे पास आ ॥ ३-४ ॥

हे इन्द्र ! मैं तेरे गुणोंका वर्णन करता हूँ और तेरी स्तुति करता हूँ । तू आकर हमारे द्वारा दिए गए आसन पर बैठ ॥ ५-६ ॥

इन्द्र यज्ञकर्ताओंके मध्यमें आकर जब बैठता है, तब वह किसी तरहका घमण्ड नहीं करता, वह बडे प्रेमसे आकर उनके मध्यमें बैठता है । इसलिए यज्ञकर्ता भी उस इन्द्रके लिए बडे प्रेमसे सोमरस तैय्यार करते हैं ॥ ७-८ ॥

हे इन्द्र ! तू शीघ्र आकर सभी ज्ञानियोंका निरीक्षण कर । उन ज्ञानियोंकी तू कभी हिंसा मत कर, अपितु उन्हें धन आदि देकर सुखी कर ॥ ९-१० ॥

१२०३ सहस्रे पृषतीनामधि श्चन्द्रं बृहत् पृथु । शुक्रं हिरण्यमा ददे ॥ ११ ॥
१२०४ नपातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुराधसः । श्रवो देवेष्वक्रत ॥ १२ ॥

[६६]

(ऋषिः- कलिः प्रगाथः। देवताः- इन्द्रः। छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) १५ अनुष्टुप्।

१२०५ तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥ १ ॥
१२०६ न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदे सुशिप्रमन्धसः ।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥ २ ॥
१२०७ यः शक्रो मृक्षो अश्व्यो यो वा कीजो हिरण्ययः ।
स ऊर्वस्य रेजयत्यपावृतिमिन्द्रो गव्यस्य वृत्रहा ॥ ३ ॥

अर्थ— [१२०३] मैं (सहस्रे पृषतीनां अधि) हजारों गायोंपर आधारित (चन्द्रं बृहत् पृथु शुक्रं हिरण्यं) प्रसन्नताकारक, महान्, विस्तृत, तेजस्वी स्वर्णको (आ ददे) प्राप्त करता हूँ ॥ ११ ॥

[१२०४] (न-पातः दुः-गहस्य मे) असहाय तथा दुःखमें पडे हुए मेरे लोग (सहस्रेण सु-राधसः) हजारों प्रकारसे उत्तम धनवाले हों, और (देवेषु श्रवः अक्रत) देवोंमें यशको प्राप्त करें ॥ १२ ॥

[६६]

[१२०५] हे ऋत्विजो ! (वः) तुम (स बाधः ऊतये तरोभिः) बाधाओंसे संरक्षण करनेके लिए वेगवान् घोडोंसे आनेवाले (विदद्-वसुं इन्द्रं) धन प्राप्त करानेवाले इन्द्रके (बृहत्) बडे यशका (अ-ध्वरे सुत-सोमे) हिंसारहित सोमयज्ञमें (गायन्तः) गान करो, मैं (भरं) भरण पोषण करनेवाले इन्द्रको (कारिणं न) जैसे हित-कारी मनुष्यको लोग बुलाते हैं, उसी प्रकार सहायार्थ (हुवे) बुलाता हूँ ॥ १ ॥

[१२०६] (सु-शिप्रं यं) शिरस्त्राण धारण करनेवाले जिस इन्द्रको युद्धमें (न दुध्राः वरन्ते) न असुर हटा सकते हैं, (न स्थिराः) न देव हटा सकते हैं और (न मुरः) ना ही मनुष्य हटा सकते हैं, (यः) वह ही (अन्धसः मदे आदृत्य) सोमको आनन्दका आदर करके (शशमानाय जरित्रे सुन्वते) गान करनेवाले, स्तुति करनेवाले, सोमयाग करनेवाले यजमानके लिए (उक्थ्यं) स्तुत्य धनको (दाता) देता है ॥ २ ॥

[१२०७] (यः शक्रः, मृक्षः, अश्व्यः) जो इन्द्र सामर्थ्यशाली शत्रुको मारनेवाला, घोडोंवाला है (वा) तथा (यः कीजः हिरण्ययः) जो अद्भुत और धनवान् है, (सः वृत्रहा इन्द्रः) वह वृत्रको मारनेवाला इन्द्र (ऊर्वस्य गव्यस्य अपावृतिं) विशाल गौवोंके रोकनेवालेको (रेजयति) कंपाता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— इन्द्रकी कृपासे मुझे हजारों गायोंसे युक्त, प्रसन्नताको देनेवाला तेजस्वी स्वर्ण मिले, साथ ही असहायावस्था तथा दुःखमें पडे हुए मेरे अपने लोग भी इन्द्रकी कृपासे उत्तम धनवाले होकर यशस्वी हों ॥ ११-१२ ॥

हे मनुष्यो ! संकटके समय संरक्षण करनेवाले, धन देनेवाले इन्द्रके यशका गान सोमयज्ञमें करो। जैसे हितकारी मनुष्यको लोग बुलाते हैं, उसी तरह तुम इन्द्रको बुलाओ ॥ १ ॥

शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्रको असुर, देव और मनुष्य कोई भी युद्धमें नहीं हटा सकता। वह इन्द्र सोमरसके द्वारा आनन्द देनेवाले यज्ञकर्ताको प्रशंसनीय धन प्रदान करता है ॥ २ ॥

वह इन्द्र महान् गौसमूहके रोकनेवालेको कंपाता है। गौओंको चुरानेवालेको भयभीत कराता है। वह अद्भुत शक्तिशाली और धनवान् है ॥ ३ ॥

×

१२०८ निखातं चिद्यः पुरुसंभृतं वसूदिद्वपति दाशुषे ।
वज्री सुशिप्रो हर्यश्व इत् करदिन्द्रः क्रत्वा यथा वशत् ॥ ४ ॥

१२०९ यद्वावन्थ पुरुष्टुत पुरा चिच्छूर नृणाम् ।
वयं तत् त इन्द्र सं भरामसि यज्ञमुक्थं तुरं वचः ॥ ५ ॥

१२१० सचा सोमेषु पुरुहूत वज्रिवो मदाय द्युक्ष सोमपाः ।
त्वमिद्धि ब्रह्मकृते काम्यं वसु देष्ठः सुन्वते भुवः ॥ ६ ॥

१२११ वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भराऽऽ नूनं भूषत श्रुते ॥ ७ ॥

अर्थ— [१२०८] (यः) जो इन्द्र (दाशुषे) देनेवाले यजमानके लिए (निखातं पुरु-संभृतं वसु चित्) गाडकर बहुतसे इकट्ठे किए गए धनको (उत् इत् वपति) बाहर निकालता है । वह (सु-शिप्रः, वज्री, हर्यश्वः इन्द्रः) शिरस्त्राण धारण करनेवाला, वज्रधारी, घोडोंवाला इन्द्र (यथा वशत्) जैसा चाहता है, वैसा ही (क्रत्वा इत् करत्) कामोंको करता है ॥ ४ ॥

[१२०९] हे (पुरु-ष्टुत शूर इन्द्र) हे बहुतोंके द्वारा प्रशंसित, शूरवीर इन्द्र ! तूने (पुरा चित्) पहले (नृणां) यज्ञ कर्त्ताओंसे (यत् वावंथ) जिसकी इच्छा की, (ते) तेरे लिए (तत् यज्ञं उक्थं वचः) उस यज्ञ, स्तोत्र तथा प्रशंसाको (तुरं) शीघ्र ही (वयं सं भरामसि) हम करते हैं ॥ ५ ॥

[१२१०] हे (पुरु हूत, वज्रिवः द्युक्ष, सोमपाः) बहुतों द्वारा बुलाये जानेवाले, वज्रधारी, तेजस्वी, सोमको पीनेवाले इन्द्र ! तू (मदाय) आनन्दके लिए (सोमेषु) सोम यज्ञोंमें (सचा) संयुक्त हो, (हि) क्योंकि (त्वं इत्) तू ही (ब्रह्म कृते सुन्वते) स्तोत्रके करनेवाले तथा सोमयज्ञ करनेवालेको (काम्यं वसु) इष्ट धनको (देष्ठः भुवः) देनेवाला है ॥ ६ ॥

[१२११] (वयं) हमने (एनं वज्रिणं) इस वज्रधारी इन्द्रको (ह्यः इदा) कल और आज (इह) यहां यज्ञमें [सोमसे] (अपीपेम) तृप्त किया, हे ऋत्विजो ! (अद्य उ) आज भी (तस्मै) उस इन्द्रके लिए (स-मना) समान मनवाले होकर (सुतं भर) सोमको दो, वह (नूनं) निश्चयसे (श्रुते) स्तोत्रसे (आ भूषत) अलंकृत होगा ॥ ७ ॥

भावार्थ— दाताके लिए वह इन्द्र गडे हुए धनको भी बाहर निकालता है । इन्द्र जैसा चाहता है, वैसा ही कामोंसे करता है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तूने यज्ञ करनेवालोंसे जिस स्तोत्रकी कामना की थी, उस स्तोत्रको हम तेरे लिए बोलते हैं ॥ ५ ॥

हे वज्रधारी सोम ! तू आनंद प्राप्त करनेके लिए हमारे यज्ञोंमें आ, क्योंकि तू सोमयज्ञ करनेवालेको उसकी इच्छानुसार धन देनेवाला है ॥ ६ ॥

इन्द्रके लिए दिया जानेवाला वास्तविक अलंकार सोमरस ही है । सोमरससे इन्द्रका उत्साह और तेज बढता है और उस तेजसे वह अलंकृत होता है ॥ ७ ॥

१२१२ वृकश्चिदस्य वारण उरामथि॒रा वयुनेषु भूषति ।
सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥ ८ ॥
१२१३ कदू न्व१स्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥ ९ ॥
१२१४ कदू महीरधृष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम् ।
इन्द्रो विश्वान् बेकनाटाँ अहर्दृश उत क्रत्वा पणीँरभि ॥ १० ॥
१२१५ वयं घा ते अपूर्व्येन्द्र ब्रह्माणि वृत्रहन् ।
पुरूतमासः पुरुहूत वज्रिवो भृतिं न प्र भरामसि ॥ ११ ॥
१२१६ पूर्वीश्चिद्धि त्वे तुविकूर्मिन्नाशसो हवन्त इन्द्रोतयः ।
तिरश्चिदर्यः सवना वसो गहि शविष्ठ श्रुधि मे हवम् ॥ १२ ॥

अर्थ—[१२१२] (वारणः उरामथिः वृकः चित्) सबको हटानेवाला, पथिकोंका विनाशक चोर भी (अस्य वयुनेषु आ भूषति) इस इन्द्रके मार्गोंको [अनुकूल होकर] अलंकृत करता है, (इन्द्र) हे इन्द्र ! (सः) वह तू (नः इमं स्तोमं जुजुषाणः) हमारे इस स्तोत्रको सुनते हुए (चित्रया धिया) उत्तम बुद्धिसे युक्त होकर (प्र आ गहि) आ ॥ ८ ॥

[१२१३] (कत् नु पौंस्यं अस्ति) ऐसा कौनसा पौरुष है जो (अस्य इन्द्रस्य अकृतं) इस इन्द्रके द्वारा नहीं किया गया, तथा (केन उ श्रोमतेन) किस मनुष्यने इसके (कं न शुश्रुवे) किस पराक्रमको नहीं सुना, यह (वृत्र-हा) वृत्रको मारनेवाला इन्द्र (जनुषः परि) जन्मसे ही प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥

[१२१४] (अस्य महीः तविषीः) इसका महान् बल (कत् उ अ-धृष्टाः) कब शत्रुको मारनेवाला नहीं रहा ? (वृत्र-घ्नः) वृत्रके शत्रु इन्द्र द्वारा [मारा जानेवाला] (कत् उ अ-स्तृतम्) कब अहिंसित रहा है, यह (इन्द्रः) इन्द्र (विश्वान् बेकनाटान्) सभी सूदखोरोंका तथा (अहर्दृशः पणान्) दिन गिननेवाले कंजूसोंको (क्रत्वा) अपने कर्मसे (अभि) दबाता है ॥ १० ॥

[१२१५] हे (पुरु-हूत, वज्रिवः, वृत्रहन् इन्द्र) हे बहुतों द्वारा बुलाये गए, वज्र धारण करनेवाले, वृत्रहन्ता इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (पुरूतमासः वयं) उत्तम जन हम (अपूर्व्या ब्रह्माणि) नए नए स्तोत्रोंको (भृतिं न) कर अथवा वेतनके समान (प्र भरामसि) करते हैं ॥ ११ ॥

[१२१६] हे (तुवि कूर्मिन् इन्द्र) बहु कर्मा इन्द्र ! (हि) क्योंकि (त्वे) तुझमें (पूर्वीः चित् आशसः ऊतयः) बहुतसी आशायें तथा रक्षणके साधन हैं, अतः तुझे (हवन्ते) बुलाते हैं, हे (वसो शविष्ठ) बसानेवाले बलवान् इन्द्र ! (मे हवं श्रुधि) मेरी प्रार्थना सुन, और दूसरोंका (तिरः चित्) तिरस्कार करके हमारे (सवना आ गहि) यज्ञोंमें आ ॥ १२ ॥

भावार्थ — सबका निवारक, पथिकोंका विनाशक चोर भी इसके मार्गोंको अनुकूल होकर अलंकृत करता है। चोर जैसा दुष्ट भी इस इन्द्रके शासनमें आकर उसके अनुकूल हो जाता है ॥ ८ ॥

कौनसा ऐसा पराक्रम है, जो इस इन्द्रके द्वारा नहीं किया गया। किस कानवालेने इसके पराक्रमको नहीं सुना। वृत्रका हन्ता इन्द्र जन्मसे ही प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥

इसका महान् बल कब शत्रुको मारनेवाला नहीं रहा ? वृत्रके शत्रु इन्द्र द्वारा [मारा जानेवाला] कब अहिंसित रहा है। इन्द्र सम्पूर्ण सूदखोर तथा कंजूसोंको दबाता है ॥ १० ॥

जिस तरह कोई सेवक अपनी सेवाके बदले वेतन लेता है, उसी तरह हम इन्द्रकी सेवा करते हैं, अतः वह इन्द्र हमें धन प्रदान करे ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! तुझमें ही बहुतसी आशायें और रक्षणके साधन हैं। तू अनेक तरहसे पराक्रम दिखाता है। इसलिए हम तुझे बुलाते हैं। तू हमारी प्रार्थना सुनकर दूसरोंके यज्ञोंका तिरस्कार करके हमारे पास ही आ ॥ १२ ॥

१२१७ वयं घा ते त्वे इद्विन्द्र विप्रा अपि ष्मसि ।
नहि त्वदुन्यः पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मर्डिता ॥ १३ ॥
१२१८ त्वं नो अस्या अमतेरुत क्षुधो ऽभिशस्तेरव स्पृधि ।
त्वं न ऊती तव चित्रया धिया शिक्षा शचिष्ठ गातुवित् ॥ १४ ॥
१२१९ सोम इद्वः सुतो अस्तु कलयो मा बिभीतन ।
अपेदेष ध्वस्मायति स्वयं घैषो अपायति ॥ १५ ॥

[६७]

(ऋषिः- मत्स्यः साम्मदः, मैत्रावरुणिर्मान्यः, बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः । देवताः- आदित्याः, १०-१२ अदितिः । छन्दः- गायत्री ।)

१२२० त्यान् नु क्षत्रियाँ अव आदित्यान् याचिषामहे । सुमृळीकाँ अभिष्टये ॥ १ ॥
१२२१ मित्रो नो अत्यंहतिं वरुणः पर्षदर्यमा । आदित्यासो यथा विदुः ॥ २ ॥

अर्थ— [१२१७] हे (पुरु-हूत, मघवन् इन्द्र) बहुतों द्वारा बुलाये जानेवाले, ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (ते वयं घा विप्राः अपि) तेरे हम ज्ञानी जन भी (त्वे इत् स्मसि) तेरे ही अधीन रहें, क्योंकि (त्वत् अन्यः कश्चन) तुझसे भिन्न कोई दूसरा (मर्डिता नहि अस्ति) सुखी करनेवाला नहीं है ॥ १३ ॥

[१२१८] हे (शचिष्ठ गातु विद्) शक्तिशाली, तथा मार्गोंको जाननेवाले इन्द्र ! (त्वं) तू (नः) हमें (अस्याः अ-मतेः, क्षुधः अभि-शस्तेः) इस दरिद्रता, भूखके अभिशापसे (अव स्पृधि) छुडा, और (त्वं) तू (नः) हमें (तव ऊती, चित्रया धिया) अपने रक्षण तथा, विलक्षण कर्मोंसे (शिक्ष) समर्थ करो ॥ १४ ॥

[१२१९] हे (कलयः) कलि ऋषिके पुत्रो ! (वः इत् सुतः सोमः अस्तु) तुम्हारा तैय्यार किया गया सोम इन्द्रके लिए हो, (मा बिभीतन) मत डरो, क्योंकि (एषः ध्वस्मा) यह हिंसक मनुष्य (अप इत् अयाति) दूर भाग रहा है, (एषः स्वयं अप अयति) यह अपने आप दूर भागा जा रहा है ॥ १५ ॥

[६७]

[१२२०] हम (अभिष्टये) अपनी कामनाकी पूर्तिके लिए (सुमृळीकान्) उत्तम सुख देनेवाले, (क्षत्रियान्) शत्रुओंके आक्रमणसे रक्षा करनेवाले (त्यान् आदित्यान्) उन आदित्योंसे (अवः याचिषामहे) संरक्षण मांगते हैं ॥ १ ॥

[१२२१] (मित्रः वरुणः अर्यमा आदित्यासः) मित्र, वरुण, अर्यमा और आदित्य (यथा विदुः) जैसे जानते हों, उस तरह (नः) हमें (अंहतिं अति पर्षत्) पापसे पार ले जाएं ॥ २ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम ज्ञानी पुरुष तेरे अधीन ही रहें । तुझसे भिन्न और कोई सुखी करनेवाला नहीं है ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! तू हमें इस दरिद्रता और भूखके अभिशापसे छुडा, तथा अपने संरक्षण तथा विलक्षण कर्मोंसे हमें समर्थ और शक्तिशाली बना ॥ १४ ॥

हे मनुष्यो ! तुम इन्द्रको सोमरस प्रदान करो । इन्द्रको सोम प्रदान करनेके बाद तुम्हें किसीसे डरना नहीं पडेगा । इन्द्रके डरसे सभी हिंसक मनुष्य स्वयं दूर भाग जायेंगे ॥ १५ ॥

अपनी अभिलाषा की पूर्तिके लिए हम उत्तम सुख देनेवाले तथा शत्रुओंके आक्रमणसे रक्षा करनेवाले आदित्य आदि देवोंको बुलाते हैं । वे देव हमें पापसे पार ले जाएं ॥ १-२ ॥

१२२२ तेषां हि चित्रमुक्थ्यं१ वरूथमस्ति दाशुषे । आदित्यानामरंकृते ॥ ३ ॥
१२२३ महि वो महतामवो वरुण मित्रार्यमन् । अवांस्या वृणीमहे ॥ ४ ॥
१२२४ जीवान् नो अभि धेतना—ऽऽदित्यासः पुरा हथात् । कद्ध स्थ हवनश्रुतः ॥ ५ ॥
१२२५ यद्वः श्रान्ताय सुन्वते वरूथमस्ति यच्छर्दिः । तेना नो अधि वोचत ॥ ६ ॥
१२२६ अस्ति देवा अंहोरुर्व—स्ति रत्नमनागसः । आदित्या अद्भुतैनसः ॥ ७ ॥
१२२७ मा नः सेतुः सिषेदयं महे वृणक्तु नस्परि । इन्द्र इद्धि श्रुतो वशी ॥ ८ ॥
१२२८ मा नो मृचा रिपूणां वृजिनानामविष्यवः । देवा अभि प्र मृक्षत ॥ ९ ॥
१२२९ उत त्वामदिते म—ह्यहं देव्युप ब्रुवे । सुमृळीकामभिष्टये ॥ १० ॥

अर्थ— [१२२२] (दाशुषे अरंकृते) दाता और सामर्थ्यशालीको प्रदान करनेके लिए (तेषां आदित्यानां) उन आदित्योंके पास (चित्रं उक्थ्यं वरूथं अस्ति) स्वीकरणीय और प्रशंसनीय धन रहता है ॥ ३ ॥

[१२२३] हे (वरुण मित्र अर्यमन्) वरुण, मित्र और अर्यमा देवो ! (महतां वः) महान् तुम्हारे (अवः महि) संरक्षण भी महान् है। हम तुमसे (अवांसि आ वृणीमहे) संरक्षणोंको चाहते हैं ॥ ४ ॥

[१२२४] हे (हवन श्रुतः आदित्यासः) प्रार्थनाको सुननेवाले आदित्यो ! (नः जीवान् अभि धेतनः) हमारे जीवित रहते हुए ही तुम दौडो । (हथात् पुरा कत् स्थ) मारे जानेसे पूर्व ही कहीं भी होओ, आ जाओ ॥५॥

[१२२५] (श्रान्ताय सुन्वते) श्रम करनेवाले तथा सोमरस निचोडनेवालोंको (यत् वरूथं यत् छर्दिः अस्ति) जो धन और निवास गृह देने योग्य हो, (तेन नः अधि वोचत) उससे हमें भी युक्त करो ॥ ६ ॥

[१२२६] हे (देवाः) देवो ! (अंहोः) दुष्टोंका पाप (उरु अस्ति) महान् है, (अनागसः रत्नं) पापरहितोंके पुण्य रमणीय होते हैं । हे (आदित्याः) आदित्यो ! (अद्भुत-एनसः) हम निष्पाप – पाप रहित हैं ॥ ७ ॥

[१२२७] (नः) हमें (अयं सेतुः) यह बन्धन (मा सिषेत्) रुकावट न डाले, अपितु (नः महे) हमें उत्तम कार्य करनेके लिए (परि वृणक्तु) छोड दे । (श्रुतः इन्द्रः इत्) प्रसिद्ध इन्द्र ही (वशी) सबको वशमें करनेवाला है ॥ ८ ॥

[१२२८] हे (अविष्यवः देवाः) रक्षा करनेकी इच्छा करनेवाले देवो ! (वृजिनानां रिपूणां) कुटिल शत्रुओंकी (मृचा) हिंसा (नः मा) हमें कष्ट न दे, (अभि प्र मृक्षत) उस हिंसासे हमें मुक्त करो ॥ ९ ॥

[१२२९] (उत) और हे (महि देवि अदिते) बडी देवी अदिति ! (अभिष्टये) इच्छित मनोरथकी प्राप्तिके लिए (सुमृळीकां त्वां) उत्तम सुख देनेवाले तेरी (अहं उप ब्रुवे) मैं स्तुति करता हूँ ॥ १० ॥

भावार्थ— दाता और सामर्थ्यशाली मनुष्यको देनेके लिए आदित्य आदि देवोंके पास धन और संरक्षणके साधन रहते हैं ॥ ३–४ ॥

हे आदित्यो ! जबतक हम जीवित हैं, तभी तक तुम हमारी रक्षा करो । परिश्रम करनेवाले तथा सोमयज्ञ करनेवालोंको जो धन और निवासगृह तुम देते हो, उस धन और निवासगृहसे हमें युक्त करो ॥ ५–६ ॥

यदि पापियोंका पाप महान् होता है, तो पुण्यशालियोंका पुण्य भी बडा होता है । पर पुण्यशाली और पापी दोनोंपर इन्द्रका प्रभुत्व रहता है । उसकी कृपासे सभी पुण्यशाली बन्धनसे छूट जाते हैं और वे बडे बडे कार्य करते हैं ॥७-८॥

हे देवो ! कुटिल शत्रुओंकी हिंसा हमें कष्ट न दे, उस हिंसासे हमें मुक्त करो । हे देवी अदिति ! तुम महान् सुख देनेवाली हो, हमारे मनोरथोंको पूर्ण करो ॥ ९–१० ॥

१२३० पर्षि दीने गंभीर आँ उग्रपुत्रे जिघांसतः । माकिंस्तोकस्य नो रिषत् ॥ ११ ॥
१२३१ अनेहो न उरुव्रज उरूचि वि प्रसर्तवे । कृधि तोकाय जीवसे ॥ १२ ॥
१२३२ ये मूर्धानः क्षितीनामदब्धासः स्वयशसः । व्रता रक्षन्ते अद्रुहः ॥ १३ ॥
१२३३ ते न आस्नो वृकाणामादित्यासो मुमोचत । स्तेनं बद्धमिवादिते ॥ १४ ॥
१२३४ अपो षु ण इयं शरुरादित्या अप दुर्मतिः । अस्मदेत्वजघ्नुषी ॥ १५ ॥
१२३५ शश्वद्धि वः सुदानव आदित्या ऊतिभिर्वयम् । पुरा नूनं बुभुज्महे ॥ १६ ॥
१२३६ शश्वन्तं हि प्रचेतसः प्रतियन्तं चिदेनसः । देवाः कृणुथ जीवसे ॥ १७ ॥
१२३७ तत् सु नो नव्यं सन्यस आदित्या यन्मुमोचति । बन्धाद्बद्धमिवादिते ॥ १८ ॥

अर्थ— [१२३०] हे (उग्रपुत्रे) वीर पुत्रोंवाली देवी अदिति ! (दीने गभीरे) हमारी दीन या अच्छी दोनों ही अवस्थाओंमें (जिघांसतः) मारनेकी इच्छा करनेवाले लोग (नः तोकस्य मा किः रिषत्) हमारे पुत्रादियोंकी हिंसा न करें ॥ ११ ॥

[१२३१] हे (उरुव्रज) विस्तीर्ण अदिते ! (अनेहः नः) पाप रहित हमारे (प्र सर्तवे) जानेके लिए (उरु चि) तेरा विस्तार उपयोगी हो । (तोकाय जीवसे कृधि) हमारे पुत्रादियोंको जीनेके लिए समर्थ करो ॥ १२ ॥

[१२३२] (ये मूर्धानः) जो मुख्य (अदब्धासः) आलस्य रहित (अद्रुहः) द्रोह रहित तथा (स्व यशसः) उत्तम यशस्वी देव (क्षितीनां व्रता रक्षन्ते) हम मनुष्योंके व्रतकी रक्षा करते हैं ॥ १३ ॥

[१२३३] हे (आदित्यासः अदिते) आदित्यो और अदिति ! (बद्धं स्तेनं इव) बंधे हुए चोरको जैसे मुक्त करते हैं, इसी तरह (ते) वे तुम (नः) हमें (वृकाणां आस्नः मुमोचत) दुष्टोंके मुंहसे छुडाओ ॥ १४ ॥

[१२३४] हे (आदित्याः) आदित्यो ! (इयं शरुः) यह हिंसा (अजघ्नुषी) हमें न मारती हुई (अस्मत् सु अपः एतु) हमसे दूर चली जाए तथा (दुर्मतिः अपः) दुष्ट बुद्धि भी दूर चली जाए ॥ १५ ॥

[१२३५] हे (सुदानवः आदित्याः) उत्तम दान देनेवाले आदित्यो ! (वः ऊतिभिः) तुम्हारे संरक्षणोंसे सुरक्षित होकर (वयं) हम (पुरा नूनं) पहले और अब भी अर्थात् (शश्वत्) हमेशा (बुभुज्महे) भोगोंको भोगते रहें ॥ १६ ॥

[१२३६] हे (प्रचेतसः देवाः) ज्ञानी देवो ! (शश्वन्तं प्रतियन्तं चित्) सदा हम पर आक्रमण करनेवाले शत्रुको भी (जीवसे) दीर्घजीवनके लिए (एनसः कृणुथ) पापोंसे मुक्त करो ॥ १७ ॥

[१२३७] हे (आदित्याः अदिते) आदित्यो और अदिति ! (बद्धं बन्धात् इव) जिस तरह किसी बंधे हुए को बन्धनसे मुक्त करते हैं, उसी तरह (यत्) जो तुम्हारा सामर्थ्य (नः मुमोचति) हमें बन्धनोंसे छुडाता है, तुम्हारा (तत्) वह सामर्थ्य (नव्यं) स्तुतिके योग्य तथा (सन्यसः) सेवाके योग्य हो ॥ १८ ॥

भावार्थ— हे अदिति देवी ! अच्छी या बुरी दोनों ही अवस्थाओंमें हिंसकशत्रु हमारी हिंसा न कर सकें, इसके विपरीत-पापरहित हमारे जानेके मार्ग सर्वथा सुरक्षित हों और हमारे पुत्रादि भी दीर्घायु प्राप्त करें ॥ ११-१२ ॥

प्रधान, आलस्यरहित, उत्तम यशस्वी देव हमारे उत्तम व्रतोंकी रक्षा करें और हमें दुष्टोंके चुंगुलसे बचायें ॥ १३-१४ ॥

हे देवो ! हिंसा करनेवाले साधन हमारी हिंसा करते हुए हमसे दूर चले जाए और दुष्ट बुद्धि भी दूर चली जाए, तथा हम तुम्हारे संरक्षणोंसे सुरक्षित होकर हमेशा उत्तम भोगोंको भोगते रहें ॥ १५-१६ ॥

हे देवो ! जो हम पर सदा आक्रमण करता है, उसे भी तुम दुष्ट मार्गको छोडकर सन्मार्ग पर चलनेके लिए प्रेरित करो और उसे पापोंसे मुक्त करके उसका जीवन दीर्घ करो । जो तुम्हारा सामर्थ्य हमें बन्धनोंसे मुक्त करता है, उस सामर्थ्यकी हम स्तुति करें ॥ १७-१८ ॥

१२३८ नास्माकमस्ति तत् तर आदित्यासो अतिष्कदे । यूयमस्मभ्यं मृळत ॥ १९ ॥
१२३९ मा नो हेतिर्विवस्वत आदित्याः कृत्रिमा शरुः । पुरा नु जरसो वधीत् ॥ २० ॥
१२४० वि षु द्वेषो व्यंहति-मादित्यासो वि संहितम् । विष्वग्वि वृहता रपः ॥ २१ ॥

[९८]

(ऋषिः- प्रियमेध आङ्गिरसः । देवताः- इन्द्रः; १८-१९ ऋक्षाश्वमेधौ । छन्दः- गायत्री, अनुष्टुम्मुखः प्रगाथः = (अनुष्टुप् + गायत्र्यौ) १, ४, ७, १० अनुष्टुप्, १६ शंकुमती ।)

१२४१ आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि । तुविकूर्मिमृतीषह-मिन्द्र शविष्ठ सत्पते ॥१॥
१२४२ तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते । आ पप्राथ महित्वना ॥ २ ॥
१२४३ यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः । हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥ ३ ॥
१२४४ विश्वानरस्य वस्पति-मनानतस्य शवसः । एवैश्च चर्षणीना-मूती हुवे रथानाम् ॥४॥

अर्थ— [१२३८] हे (आदित्यासः) आदित्यो ! जो बल हमें (अतिष्कदे) संकटोंसे पार कर सकता है, (तत् तरः) वह बल (अस्माकं न अस्ति) हमारे पास नहीं है । अतः (यूयं अस्मभ्यं मृळत) तुम हमें सुखी करो ॥१९॥

[१२३९] हे (आदित्याः) आदित्यो ! (विवस्वतः) यमके (कृत्रिमाशरुः हेतिः) कृत्रिम और हिंसक शस्त्र (नः) हमें (जरसः पुरा मा वधीत्) बुढापेसे पहले न मारें ॥ २० ॥

[१२४०] हे (आदित्यासः) आदित्यो ! (द्वेषः सु वि) द्वेष करनेवालोंको अच्छी तरह नष्ट करो, (अंहतिं वि) पापीको नष्ट करो, (संहितं वि) ऐसे पापियोंके संगठनको नष्ट करो, तथा (रपः विष्वक् वि वृहत्) पापको चारों ओरसे नष्ट करो ॥ २१ ॥

[९८]

[१२४१] हे (शविष्ठ सत्पते इन्द्र) बलवान् और सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (रथं यथा) जिस प्रकार रथको लौटाते हैं, उसी प्रकार (तुविकूर्मिं, ऋतीषहं त्वा) बहुत बलवान्, और शत्रुओंके हरानेवाले तुझे (ऊतये सुम्नाय) अपने संरक्षण व सुखके लिए (आवर्तयामसि) अपने पास लौटाते हैं ॥ १ ॥

[१२४२] हे (तुविशुष्म, तुविक्रतो शचीवः मते) बहुत बलवान्, बहुत कर्म करनेवाले, बहुत शक्तिशाली तथा पूज्य इन्द्र ! तू अपने (विश्वया महित्वना आ पप्राथ) सम्पूर्ण महत्त्वसे सर्वत्र फैलता है ॥ २ ॥

[१२४३] (महः यस्य ते) महान् जिस तेरे (महिना) महत्वसे युक्त (हस्ता) हाथ (ज्मायन्तं हिरण्ययं वज्रं) सब जगह जानेवाले स्वर्णयुक्त वज्रको (ईयतुः) पकडते हैं ॥ ३ ॥

[१२४४] (विश्वानरस्य अनानतस्य शवसः पतिं) सम्पूर्ण शत्रुओंपर आक्रमण करनेवाले तथा स्वयं शत्रुके आगे कभी न झुकनेवाले बलके स्वामी तथा (रथानां एवैः च) रथोंमें बैठकर तेजीसे जानेवाले इन्द्रको मैं (वः चर्षणीनां ऊती) तुम मनुष्योंके रक्षणके लिए (हुवे) बुलाता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे देवो ! यमके हिंसक शस्त्र हमें बुढापेसे पूर्व नष्ट न करें, क्योंकि उन शस्त्रोंसे बचनेके लिए जो सामर्थ्य हमारे पास होना चाहिए, वह हमारे पास नहीं है, इसलिए तुम हमारी रक्षा करो ॥ १९-२० ॥

हे देवो ! हमसे द्वेष करनेवाले शत्रुओं, पापियों, उनके संघटनों तथा उनके द्वारा किए जानेवाले पापोंको नष्ट करो ॥ २१ ॥

हे इन्द्र ! बहुत बलवान् और शत्रुओंका पराभव करनेवाला तुझे अपने संरक्षणके लिए और सुखके लिए हम अपने पास बुलाते हैं ॥ १ ॥

बहुत बलवान्, बहुत कार्य करनेवाला, शक्तिशाली और बुद्धिमान् वीर अपने सपूर्ण महत्वसे प्रसिद्ध होता है । ऐसा वीर उत्तम कार्य करता है और विश्वमें प्रसिद्ध होता है ॥ २ ।

सब शत्रुओंसे लडनेवाले, पर किसीके सामने न झुकनेवाले बलवान् वीरको संरक्षणके लिये बुलाता हूँ । वह सामर्थ्यशाली हाथोंसे वज्रको पकडकर हमारे संरक्षणके लिए आवे ॥ १-४ ॥

१२४५ अभिष्टये सदावृधं स्वर्मीळ्हेषु यं नरः । नाना हवन्त ऊतये ॥ ५ ॥
१२४६ परोमात्रमृचीषम- मिन्द्रमुग्रं सुराधसम् । ईशानं चिद्वसूनाम् ॥ ६ ॥
१२४७ तंतमिद्राधसे मह इन्द्रं चोदामि पीतये । यः पूर्व्यामनुष्टुति- मीशे कृष्टीनां नृतुः ॥७॥
१२४८ न यस्य ते शवसान सख्यमानंश मर्त्यः । नकिः शवांसि ते नशत् ॥ ८ ॥
१२४९ त्वोतासस्त्वा युजा ऽप्सु सूर्ये महद्धनम् । जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥ ९ ॥
१२५० तं त्वा यज्ञेभिरीमहे तं गीर्भिर्गिर्वणस्तम ।
इन्द्र यथा चिदाविथ वाजेषु पुरुमाय्यम् ॥ १० ॥
१२५१ यस्य ते स्वादु सख्यं स्वाद्वी प्रणीतिरद्रिवः । यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥ ११ ॥

अर्थ— [१२४५] (स्वर्मीळ्हेषु) युद्धोंमें (ऊतये) संरक्षणके लिए तथा (अभिष्टये) इच्छित धनकी प्राप्तिके लिए (नरः) मनुष्य (यं सदावृधं) जिस सदा बढनेवाले इन्द्रको (नाना हवन्ते) अनेक प्रकारसे बुलाते हैं ॥ ५ ॥

[१२४६] (परो मात्रं) अपरिमित, (ऋचीषमं) स्तुति प्रिय, (उग्रं, सुराधसं, वसूनां चित् ईशानं इन्द्रं) वीर, उत्तम ऐश्वर्यवान्, धनोंके स्वामी इन्द्रको [हुवे] बुलाता हूँ ॥ ६ ॥

[१२४७] (यः नृतुः) जो नेता है तथा जो (कृष्टीनां पूर्व्यां अनुष्टुतिं ईशे) मनुष्यों द्वारा की गई प्राचीन स्तुतियोंका स्वामी है, ऐसे (तं तं इन्द्रं) उसी इन्द्रको (महे राधसे) महान् ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए (पीतये चोदये) सोम पीनेके लिए प्रेरित करता हूँ ॥ ७ ॥

[१२४८] हे (शवसान) बलवान् इन्द्र ! (यस्य ते) जिस तेरी (सख्यं) मित्रताकी बराबरी (मर्त्यः न आनंश) कोई मनुष्य नहीं कर सकता, उसी प्रकार (ते शवांसि) तेरे बलोंकी भी (न किः नशत्) कोई बराबरी नहीं कर सकता ॥ ८ ॥

[१२४९] (वज्रिवः) हे वज्रधारी इन्द्र ! (त्वा ऊतासः) तुझसे रक्षित होकर हम (त्वा युजा) तेरी सहायतासे (सूर्ये अप्सु) सूर्यके उदय होने पर होनेवाले यज्ञ कर्मोंमें तथा (पृत्सु) संग्रामोंमें (महत् धनं जयेम) बहुत धनको जीतें ॥ ९ ॥

१ पृत्सु महत् धनं जयेम— युद्धोंमें बडा धन जीत कर प्राप्त करेंगे ।

[१२५०] हे (गिर्वणस्तम) अत्यन्त पूजनीय इन्द्र ! (तं त्वा) उस तुझे (यज्ञेभिः ईमहे) यज्ञोंके द्वारा बुलाते हैं, तथा (तं) उस तुझे (गीर्भिः) स्तुतियोंके द्वारा बुलाते हैं, (यथा) जिससे तू (पुरुमाय्यं) बहुत ज्ञानवान् मेरी (वाजेषु) युद्धोंमें (चित् आविथ) रक्षा करे ॥ १० ॥

१ पुरुमाय्यं वाजेषु आविथ— बहुत कुशल वीरका युद्धोंमें रक्षण करते हो ।
२ पुरु-माय्यः— बहुत कुशल वीर, कुशलतासे युद्ध करनेवाला कपट प्रयोगोंसे युद्ध करनेवाला ।

[१२५१] (यस्य ते सख्यं स्वादु) जिस तेरी मित्रता मधुर है, तथा हे (अद्रिवः) वज्रवाले इन्द्र ! तेरा (प्रणीतिः स्वाद्वी) प्रेम भी मधुर है । अतः तेरे लिए (यज्ञः वितन्त साय्यः) यज्ञ विस्तृत करने योग्य होता है ॥ ११ ॥

१ प्रणीतिः स्वाद्वी— तेरी नीति उत्तम मधुर है ।

भावार्थ— युद्धोंमें संरक्षणके लिये और इष्टकी पूर्तिके लिये नेता लोग सदा बढनेवाले वीरको अपने सहाय्यके लिये बुलाते हैं ॥ ५ ॥

श्रेष्ठ उग्रवीर उत्तम दाता धनोंका स्वामी ऐसे इन्द्र वीरको हम अपनी सहायताके लिये बुलाते हैं ॥ ६ ॥

जो नेता है, प्रजाओंको सन्मार्गसे ले जाता है, वही प्रजाओंकी स्तुतिके योग्य होता है । वही प्रजाके द्वारा सत्कृत होता है । ऐसे नेताके मित्रताकी और उसके बलकी बराबरी कोई दूसरा मनुष्य नहीं कर सकता ॥ ७-८ ॥

हे इन्द्र ! तुझसे रक्षित होकर हम तेरी सहायता प्राप्त करके यज्ञ कर्मोंको करें तथा संग्रामोंमें बहुत सारे धनको जीतें । तुम अत्यन्त कुशल वीरका युद्धमें रक्षण करते हो ॥ ९-१० ॥

इन्द्रकी मैत्री मधुरतासे पूर्ण है, और उसका प्रेम भी मधुरतासे युक्त है । इसीलिए सभी उस इन्द्रका सत्कार करनेके लिए यज्ञ करते हैं ॥ ११ ॥

१२५२ उरु णस्तन्वे३ तने उरु क्षयाय नस्कृधि । उरु णो यन्धि जीवसे ॥ १२ ॥
१२५३ उरुं नृभ्य उरुं गव उरुं रथाय पन्थाम् । देववीतिं मनामहे ॥ १३ ॥
१२५४ उप मा षड् द्वाद्वा नरः सोमस्य हर्ष्या । तिष्ठन्ति स्वादुरातयः ॥ १४ ॥
१२५५ ऋज्राविन्द्रोत आ ददे हरी ऋक्षस्य सूनवि । आश्वमेधस्य रोहिता ॥ १५ ॥
१२५६ सुरथाँ आतिथिग्वे स्वभीशूँरार्क्षे । आश्वमेधे सुपेशसः ॥ १६ ॥
१२५७ षळश्वाँ आतिथिग्व इन्द्रोते वधूमतः । सचा पूतक्रतौ सनम् ॥ १७ ॥
१२५८ ऐषु चेतद्वृषण्वत्यन्तर्ऋज्रेष्वरुषी । स्वभीशुः कशावती ॥ १८ ॥
१२५९ न युष्मे वाजबन्धवो निनित्सुश्चन मर्त्यः । अवद्यमधि दीधरत् ॥ १९ ॥

अर्थ— [१२५२] हे इन्द्र ! (नः तन्वे) हमारे पुत्रोंके लिए (उरु तन) धनको विपुल कर, तथा (नः क्षयाय उरु कृधि) हमारे निवासके लिए घर विस्तृत कर तथा (नः जीवसे उरु यन्धि) हमारे जीनेके लिए दीर्घायु प्रदान कर ॥ १२ ॥

[१२५३] हम (नृभ्यः) अपने मनुष्योंके लिए (उरुं) विस्तीर्ण धन चाहते हैं, (गवे उरुं) गायोंके लिए विस्तीर्ण क्षेत्र चाहते हैं, तथा (रथाय उरुं पन्थां) रथके लिए विस्तीर्ण मार्ग चाहते हैं, और इसलिए (देववीतिं मनामहे) यज्ञको हम करते हैं ॥ १३ ॥

[१२५४] (सोमस्य हर्ष्या) सोम पीकर हर्षित हुए (षट् नरः) छै लोग (द्वाद्वा) दो-दो की जोडीमें (स्वादु रातयः) उत्तम दान लेकर (मा उप तिष्ठन्ति) मेरी तरफ आ रहे हैं ॥ १४ ॥

[१२५५] (इन्द्रोते ऋज्रौ आ ददे) इन्द्रोतके पाससे सरलतासे चलनेवाले दो घोडे मिले, (ऋक्षस्य सूनवि हरी) ऋक्षके पुत्रसे दो काले घोडे, तथा (आश्वमेधस्य रोहिता) अश्वमेधके पाससे दो लाल रंगके घोडे मिले ॥ १५ ॥

[१२५६] (आतिथिग्वे सुरथां) अतिथिग्वके पुत्रसे उत्तम रथ, (आर्क्षे सु अभीशून्) ऋक्षके पुत्रसे उत्तम लगाम, (आश्वमेधे सुपेशसः) अश्वमेधके पुत्रसे सुन्दर रूपवाले घोडे प्राप्त किए ॥ १६ ॥

[१२५७] (आतिथिग्वे इन्द्रोते) अतिथिग्वके पुत्र इन्द्रोतसे (पूतक्रतौ) उसके पवित्र यज्ञमें वधूमतः षट् अश्वान्) मादाओंसे युक्त छः घोडे मैंने (सचा सनम्) एक साथ प्राप्त किए ॥ १७ ॥

[१२५८] (एषु ऋज्रेषु अन्तः) इन सरलगामी घोडोंके बीचमें (वृषण्वती अरुषी) बलयुक्त, तेजयुक्त (सु अभीशुः कशावती) उत्तम लगाम और चाबुकवाली घोडी (आ चेतत्) दूरसे ही दीख पढ रही है ॥ १८ ॥

[१२५९] हे (वाजबन्धवः) युद्ध प्रिय बान्धवो ! (निनित्सुः मर्त्यः चन) निन्दा करनेवाला मनुष्य भी (युष्मे) तुम पर (अवद्यं न अधि दीधरत्) निन्दाका आरोप नहीं कर सकता ॥ १९ ॥

भावार्थ — हे इन्द्र ! हमें विपुल धन और विशाल गृह देकर उसे भोगनेके लिए दीर्घ आयु भी दे । साथ ही हमारे मित्रादिकोंको भी बहुत सा धन, पशुओंके लिए विस्तीर्ण क्षेत्र और हमारे वाहनोंके लिए विस्तृत मार्ग दे ॥ १२-१३ ॥

उत्तम ज्ञानी ब्राह्मणोंको सभी राजा तथा धनी लोगोंकी ओरसे उत्तम-उत्तम दान मिले ॥ १४-१५ ॥

ज्ञानी ब्राह्मणोंको उत्तम घोडे, रथ और उस वाहनके योग्य अन्य साधनोंको दानमें देना चाहिए ॥ १६-१७ ॥

जो सदा युद्धसे प्यार करते हैं, उनके पास सभी साधनोंसे युक्त घोडे आदि पशु तैय्यार रहने चाहिए । ऐसे वीरोंकी निन्दा वे भी नहीं कर सकते, जो सामान्यतया सबकी निन्दा करते रहते हैं ॥ १८-१९ ॥

×

[६९]

(ऋषिः- प्रियमेध आङ्गिरसः । देवताः- इन्द्रः, ११ (अर्धर्चस्य) विश्वे देवाः, ११ (उत्तरार्धस्य)-
१२ वरुणः । छन्दः- अनुष्टुप्, २ उष्णिक्, ४-६ गायत्री, ११, १६ पङ्क्तिः, १७ १८ बृहती ।)

१२६० प्रप्र॑ वस्त्रि॒ष्टुभ॒मिषं॑ म॒न्दद्वी॑राये॒न्द॑वे । धि॒या वो॑ मे॒धसा॑तये॒ पुरं॑ध्या वि॑वासति ॥ १ ॥

१२६१ न॒दं व॒ ओद॑तीनां न॒दं योयु॑वतीनाम् । पतिं॑ वो॒ अघ्न्या॑नां धे॒नूना॑मिषुध्यसि ॥ २ ॥

१२६२ ता अ॑स्य सू॒ददो॑हसः॒ सोमं॑ श्रीणन्ति॒ पृश्न॑यः ।
जन्म॑न् दे॒वानां॒ विश॑स्त्रि॒ष्वा रो॑च॒ने दि॒वः ॥ ३ ॥

१२६३ अ॒भि प्र गोप॑तिं गि॒रेन्द्र॑मर्च॒ यथा॑ वि॒दे । सू॒नुं स॒त्यस्य॒ सत्प॑तिम् ॥ ४ ॥

१२६४ आ हर॑यः ससृज्रि॒रेऽरु॑षी॒रधि॑ ब॒र्हिषि॑ । यत्रा॒भि सं॒नवा॑महे ॥ ५ ॥

१२६५ इन्द्रा॑य॒ गाव॑ आ॒शिरं॑ दुदु॒ह्रे व॒ज्रिणे॒ मधु॑ । यत् सी॑मुपह्व॒रे वि॒दत् ॥ ६ ॥

---

[६९]

अर्थ— [१२६०] हे मनुष्यो ! (वः) तुम (मन्दद् वीराय इन्दवे) वीरोंको हर्षित करनेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्रके लिए (त्रिष्टुभं इषं) स्तुतिके योग्य अन्नको (प्र प्र) दो । वह इन्द्र (वः मेधसातये) तुम्हारे यज्ञके लिए (पुरन्ध्या धिया) अपनी विशाल बुद्धिसे तथा कर्मसे तुम्हारी (आ विवासति) सहायता करता है ॥ १ ॥

[१२६१] वह इन्द्र (ओदतीनां नदं) उषाओंका उत्पादक है, (योयुवतीनां नदं) नदियोंका प्रेरक है, (अघ्न्यानां पतिं) अवध्य गायोंका स्वामी है, ऐसे इन्द्रको (वः) तुम्हारी सहायताके लिए बुलाते हैं । दू (धेनूनां इषुध्यसि) गायोंके दुग्धरूपी अन्नको लेना चाहता है ॥ २ ॥

[१२६२] (देवानां जन्मन्) देवोंके जन्मस्थान द्युलोकमें (दिवः रोचने) सूर्यके प्रकाशित होनेपर । विशः त्रिषु) मनुष्यके तीनों सवनोंमें (सूददोहसः ताः पृश्नयः) विपुल दूध देनेवाली वे गायें (अस्य सोमं श्रीणन्ति) इस इन्द्रके सोमको अपने दूधसे मिश्रित करती हैं ॥ ३ ॥

[१२६३] (यथा विदे) तुम जिस प्रकार जानते हो, उसी प्रकार (गोपतिं सत्यस्य सूनुं सत्पतिं) गायोंके स्वामी, सत्यके प्रचारक तथा सज्जनोंके पालक (इन्द्रं) इन्द्रकी (गिरा अर्च) अपनी वाणीसे स्तुति करो ॥ ४ ॥

१ गोपतिः— गौवोंका स्वामी, पृथिवीका पति, वाणीका पति ।

२ सत्यस्य सूनुः— सत्यका पुत्र, सत्यप्रिय, सत्यप्रसारक ।

[१२६४] (यत्र अभि संनवामहे) जिसमें हम इन्द्रकी स्तुति करते हैं, उस (अरुषीः बर्हिषि अधि) तेजस्वी यज्ञमें (हरयः) घोडे इन्द्रको (आ ससृज्रिरे) ले आवें ॥ ५ ॥

[१२६५] (यत्) जब इन्द्रने (उपह्वरे) समीपमें ही (सीं विदत्) इस सोमको प्राप्त किया, तब (गावः गायोंने (वज्रिणे इन्द्राय) वज्रधारी इन्द्रके लिए (मधु आशिरं दुदुह्रे) मधुर दूधको दुहा ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! वीरोंको हर्षित करनेवाले इन्द्रके लिए प्रशंसनीय अन्न प्रदान करो, क्योंकि वह इन्द्र तुम्हारे यज्ञकी पूर्णताके लिए तुम्हारी सहायता करता है । वही इन्द्र नदियोंमें प्रवाह लाता है और वही गायोंका स्वामी है ॥ १-२ ॥

द्युलोकमें सूर्यके प्रकाशित होनेपर पृथ्वी पर यज्ञ किए जाते हैं, उन यज्ञोंमें गो-दुग्धसे मिश्रित सोमकी आहुति दी जाती है तथा उन यज्ञोंमें अपने अपने ज्ञानके अनुसार इन्द्रकी स्तुति की जाती है ॥ ३-४ ॥

यज्ञोंमें हम इन्द्रकी स्तुति करते हैं और उन यज्ञोंमें इन्द्रको गो-दुग्धसे मिश्रित सोमरस प्रदान किया जाता है ॥ ५-६ ॥

१२६६ उद्यद्ब्रध्नस्य॑ वि॒ष्टपं॑ गृ॒हमिन्द्र॑श्च॒ गन्व॑हि ।
मध्वः॑ पी॒त्वा स॑चेवहि॒ त्रिः स॒प्त सख्युः॑ प॒दे ॥ ७ ॥

१२६७ अर्च॑त॒ प्रार्च॑त॒ प्रिय॑मेधासो॒ अर्च॑त । अर्च॑न्तु पु॒त्रका॑ उ॒त पुरं॒ न धृ॒ष्ण्व॑र्चत ॥ ८ ॥

१२६८ अव॑ स्वराति॒ गर्ग॑रो गो॒धा परि॑ सनिष्वणत् ।
पिङ्गा॒ परि॑ चनिष्कद॒दिन्द्रा॑य॒ ब्रह्मोद्य॑तम् ॥ ९ ॥

१२६९ आ यत् पत॑न्त्ये॒न्यः॑ सु॒दुघा॒ अन॑पस्फुरः ।
अ॒प॒स्फुरं॑ गृभायत॒ सोम॒मिन्द्रा॑य॒ पात॑वे ॥ १० ॥

१२७० अपा॒दिन्द्रो॒ अपा॑द॒ग्निर्विश्वे॑ दे॒वा अ॑मत्सत ।
वरु॑ण॒ इदि॒ह क्ष॑य॒त् तमापो॒ अ॒भ्य॑नूषत व॒त्सं सं॑शि॒श्वरी॑रिव ॥ ११ ॥

अर्थ—[१२६६] (यत्) जब (इन्द्रः) इन्द्र (च) और मैं दोनों (ब्रध्नस्य विष्टपंगृहं) सूर्यके मूल स्थान अथवा गृहको (उत् गन्वहि) जावें, तब (सख्युः) मित्र इन्द्रके (त्रिः सप्त पदे) इक्कीसवें स्थान पर हम दोनों (मध्वः पीत्वा) मधुर सोमरसको पीकर (सचेवहि) परस्पर मिलेंगे ॥ ७ ॥

[१२६७] (अर्चत प्र अर्चत) इन्द्रका विशेष सत्कार करो । हे (प्रियमेधासः) प्रियमेध ऋषिके पुत्रो ! तुम (अर्चत) इन्द्रकी स्तुति करो । (उत) और (पुत्रकाः) तुम्हारे पुत्र भी (अर्चन्तु) इन्द्रकी स्तुति करें। (धृष्णु पुरं न) जिस प्रकार लोग अपने मजबूत नगरकी प्रशंसा करते हैं, उसी तरह (अर्चत) तुम भी इन्द्रकी स्तुति करो ॥ ८ ॥

[१२६८] (गर्गरः अव स्वराति) गर्गर शब्दवाले बाजे बज रहे हैं, तथा (गोधाः) दस्तान (परि स निष्वणत्) चारों ओर शब्द कर रहे हैं, (पिंगा परि चनिष्कदत्) धनुषकी डोरियों भी चारों ओर शब्द कर रहीं हैं, ऐसे समय (इन्द्राय ब्रह्म उद्यतं) इन्द्रके लिए स्तोत्र कहो ।

गोधा— दस्ताने, हाथोंकी रक्षा करनेवाला चर्मनिर्मित एक प्रकारका साधन, जो युद्धके समय हाथोंमें पहना जाता है, ताकि धनुषकी डोरीसे हाथोंमें घाव न हों ।

पिंगा— धनुषकी डोरी, ज्या ।

[१२६९] (यत्) जब (सुदुघाः एन्यः) उत्तम प्रकारसे दूध देनेवालीं सफेद रंगकी गायें (अन्-अपस्फुरः न हिलती हुईं (आ पतन्ति) आती हैं, तब (इन्द्राय पातवे) इन्द्रको पिलानेके लिए (अपस्फुरं सोमं) हिलाते हुए सोमको (गृभायत) हाथमें लो ॥ १० ॥

[१२७०] (इन्द्रः अपात्) इन्द्रने सोमरस पिया, (अग्निः अपात्) अग्निने सोमरस पिया, तथा (विश्वे देवाः अमत्सत) सम्पूर्ण देव सोम पीकर आनन्दित हुए । (वरुणः इत् इह क्षयत्) वरुण भी यहीं रहे, (सं- शिश्वरीः वत्सं इव) बछडेकी ओर जानेवाली गायके समान (आपः) हमारे सभी कर्म (तं अभि अनुषत) उस वरुणकी महिमा प्रकट करें ॥ ११ ॥

भावार्थ— सभी मनुष्य इन्द्रकी बार बार स्तुति करें । स्तुति करनेवालोंके साथ इन्द्रकी मित्रता होती है ॥ ७-८ ॥
जब युद्धकी परिस्थिति हो, चारों ओर बाजे बज रहे हों, वीरोंके हाथमें पहने हुए दस्ताने भी शब्द कर रहे हों, चारों ओर धनुषकी टंकार सुनाई दे रही हो, तब इन्द्रकी मदद मांगनी चाहिए, और उसको गो-दुग्ध मिश्रित सोमरस देकर उसका सत्कार करना चाहिए ॥ ९-१० ॥

१२७१ सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥ १२ ॥
१२७२ यो व्यतींरफाणयत् सुयुक्ताँ उप दाशुषे ।
तक्वो नेता तदिद्वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥ १३ ॥
१२७३ अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।
भिनत् कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥ १४ ॥
१२७४ अर्भको न कुमारको ऽधि तिष्ठन्नवं रथम् ।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥ १५ ॥
१२७५ आ तू सुशिप्र दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् ॥ १६ ॥

अर्थ— [१२७१] हे (वरुण) वरुण ! (यस्य ते) जिस तेरे सामर्थ्यके कारण (सप्तसिन्धवः) सातों नदियां (सूर्म्यं सुषिरां इव) रश्मियोंका जाल जिस तरह सूर्यकी तरफ जाता है, उसी तरह (काकुदं अनुक्षरन्ति) समुद्रकी ओर बहती हैं ॥ १२ ॥

[१२७२] (यः) जो इन्द्र (व्यतीन् सुयुक्तान्) विविध प्रकारसे गति करनेवाले और रथमें अच्छी तरह जुडे हुए घोडोंको (दाशुषे उप) दानशील यजमानके पास जानेके लिए (अफाणयत्) प्रेरित करता है, तथा (यः) जो (तक्वः, नेता) गतिशील, नेता तथा (उपमा वपुः) उपमा देने योग्य शरीरवाला इन्द्र (तत् इत् अमुच्यत) उन घोडोंको वहां छोड देता है ॥ १३ ॥

[१२७३] (शक्रः इन्द्रः) सामर्थ्यवान् इन्द्र (विश्वाः द्विषः अति ओहते) सब शत्रुओंके परे जाता है तथा (गिरा परः) वर्णनसे भी परे तथा (कनीनः) अत्यन्त सुन्दर वह इन्द्र (पच्यमानं ओदनं) जलसे भरे मेघको (भिनत्) तोडता है ॥ १४ ॥

[१२७४] (सः) वह इन्द्र (अर्भकः कुमारकः न) छोटे कुमारके समान (नवं रथं अधि तिष्ठत्) नवीन रथ पर बैठा, तथा (पित्रे मात्रे) अपने पिता माताके लिए (विभुक्रतुं महिषं मृगं पक्षत्) बहुत पराक्रमी, बलवान् मृगासुरको मारा ॥ १५ ॥

[१२७५] हे (सुशिप्र दम्पते) सुन्दर ठोठीवाले पति पत्नी ! तुम (हिरण्ययं, द्युक्षं, सहस्रपादं) सोनेके कामवाले, तेजस्वी, हजारों किरणवाले (अरुषं, गां, अनेहसं रथं) चमकनेवाले, तेजीसे दौडनेवाले, अद्वितीय रथपर (स्वस्ति अधि तिष्ठ) उत्तम रीतिसे चढो, (अध) बादमें हम (सचेवहि) तुम्हारे साथ बैठेंगे ॥ १६ ॥

भावार्थ— सभी देव सोमरस पीकर तृप्त होकर आनन्दित होते हैं । मनुष्योंके सभी यज्ञ कर्मोंमें इन देवोंकी स्तुति होती है । उन देवोंमें जलके देवता वरुणके कारण जलके प्रवाह समुद्रकी ओर बहते हैं । इसी तरह सभी कर्मोंसे इन देवोंकी महिमा प्रकट हो रही है ॥ ११-१२ ॥

यह इन्द्र अनेक तरहसे गति करनेवाले घोडोंसे संयुक्त अपने रथको दानशील यजमानके पास जानेके लिए प्रेरित करता है । अर्थात् दानशील यज्ञकर्ताको धन देता है ॥ १३ ॥

सामर्थ्यशाली इन्द्र सब शत्रुओंका नाश करता हुआ आगे चला जाता है। वह अत्यन्त सुन्दर इन्द्र जलसे भरे मेघको तोडकर उससे वृष्टि करता रहता है ॥ १४ ॥

इन्द्र एक छोटे कुमारके समान उत्साहसे युक्त होकर रथपर चढता है और बलवान्से बलवान् राक्षसोंको भी आसानीसे मारता है ॥ १५ ॥

हे सुरूपवान् पतिपत्नी ! तुम सदा सोनेसे मढे हुए होनेके कारण चारों और प्रकाश फैलानेवाले, अत्यन्त वेगवान् रथपर बैठो और कल्याणको प्राप्त होओ । सभी दम्पती धन्य न् हों, और सम्पन्नताकी स्थितिमें रहें ॥ १६ ॥

१२७६ तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥ १७ ॥
१२७७ अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम् ।
पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥ १८ ॥

[७०]

(ऋषिः- पुरुहन्मा आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- बृहती; १-६ प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), १२ शंकुमती, १३ उष्णिक्, १४ अनुष्टुप्, १५ पुरउष्णिक् ।)

१२७८ यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ १ ॥
१२७९ इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ २ ॥

अर्थ— [१२७६] (नमस्विनः) नमन करनेवाले अध्वर्यु (स्वराजं तं ईं उपासते) स्वयं तेजस्वी उस इस इन्द्रकी उपासना करते हैं । (यत्) जब (एतवे) गतिशील इन्द्रको (दावने) सोम देनेके लिए (आवर्तयन्ति) अपनी तरफ लौटाते हैं, तब वे (अस्य सुधितं अर्थं) इसके बुद्धिसे युक्त धनको प्राप्त करते हैं ॥ १७ ॥

[१२७७] (पूर्वां प्रयतिं अनु) मुख्य यज्ञके लिए (वृक्तबर्हिषः) आसन बिछानेवाले तथा (हित प्रयासः) हितकारक अन्न देनेवाले (प्रियमेधासः) प्रियमेध ऋषिके पुत्रोंने (एषां प्रत्नस्य ओकसः) इन देवोंके प्राचीन घरोंको (अनु आशत) प्राप्त किया ॥ १८ ॥

[७०]

[१२७८] (यः चर्षणीनां राजा) जो मनुष्योंका राजा है, ऐसे (रथेभिः याता) रथोंसे जानेवाले (अध्रिगुः) अप्रतिहत गतिवाले, विश्वासां पृतनानां तरुता) सब शत्रुके वीरोंकी हिंसा करनेवाले, (ज्येष्ठः) श्रेष्ठ तथा (यः वृत्र हा) जो वृत्रको मारनेवाला है, ऐसे इन्द्रकी (गृणे) मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[१२७९] हे (पुरुहन्मन्) पुरुहन्मन् ऋषे ! (यस्य विधर्तरि द्विता) जिस तेरे धारण करनेवाले इन्द्रमें उग्र और सौम्य दो प्रकारकी शक्तियां हैं, (तं इन्द्रं) उस इन्द्रको (अवसे शुम्भ) अपने संरक्षणके लिए सत्कार कर । (दिवे सूर्यः न) प्रकाशके लिए जैसे सूर्य उदय होता है, उसी तरह वह अपने (हस्ताय) हाथमें (दर्शतः महः वज्रः प्रतिधायि) दर्शनीय महान् वज्रको धारण करता है ॥ २ ॥

भावार्थ— नम्रतापूर्वक उपासना करनेवाले लोग अपने तेजसे तेजस्वी उस इन्द्रकी उपासना करते हैं, तब इन्द्र प्रसन्न होकर उन्हें उत्तम धन और बुद्धि प्रदान करता है ॥ १७ ॥

मेधाबुद्धिको धारण करनेवाले ऋषियोंने भक्तिके द्वारा देवोंके स्थान स्वर्ग या मोक्षको प्राप्त किया ॥ १८ ॥

यह इन्द्र मनुष्योंका राजा, रथोंसे सर्वत्र जानेवाला, सर्वत्र बेरोकटोक गमन करनेवाला, सभी शत्रुवीरोंका विनाश करनेवाला और सब देवोंमें मुख्य है ॥ १ ॥

इन्द्रमें दो तरहकी शक्तियां हैं- उग्र और सौम्य । शत्रुओंके लिए उसकी शक्ति उग्र है, और मित्रके लिए उसकी शक्ति सौम्य है । वह शत्रुका संहार करनेके लिए अपने हाथमें वज्रको धारण करता है ॥ २ ॥

१२८० नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णवोजसम् ॥ ३ ॥

१२८१ अषाळ्हमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥ ४ ॥

१२८२ यद्द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन् त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ ५ ॥

१२८३ आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥ ६ ॥

अर्थ— [१२८०] (यः) जो (विश्व गूर्त, ऋभ्वसं) सबोंसे स्तुत्य, महान् (अधृष्टं धृष्णु-ओजसं) स्वयं कभी न हिंसित होनेवाले, पर दूसरोंको घर्षण करनेवाले बलसे युक्त, (सदावृधं) हमेशा बढनेवाले (इन्द्रं) इन्द्रको (यज्ञैः) यज्ञोंके द्वारा (चकार) अपने अनुकूल बना लेता है, (तं कर्मणा नकिः नशत्) उसे अपने कर्मसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

[१२८१] (यस्मिन् जायमाने) जिसके उत्पन्न होने पर (महीः उरुज्रयः) बडी बडी तथा वेगवाली (धेनवः) गायें (अनोनवुः) नमन करती हैं, तथा (द्यावः क्षामः अनोनवुः) द्युलोक और पृथ्वी लोक भी जिसे नमन करते हैं, उस (अषाळ्हं उग्रं) असह्य वीर तथा (पृतनासु सासहिं) युद्धोंमें शत्रुओंको हरानेवाले इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

[१२८२] हे इन्द्र ! (यद्) यदि (द्यावः शतं स्युः) द्युलोक सौ हो जायें (उत) अथवा (भूमिः शतं स्युः) भूमियां सौ हो जायें, (सहस्रं सूर्याः) हजारों सूर्य भी हो जाएं तो भी (त्वा न अष्ट) तेरी बराबरी कर नहीं सकते। और (जातं) प्रकट हुई तेरी (रोदसी न अष्ट) द्यावा पृथ्वी भी बराबरी नहीं कर सकते ॥ ५ ॥

[१२८३] हे (शविष्ठ वृषन्) बलवान् तथा अभिलषित फल देनेवाले इन्द्र ! तू अपने (महिना शवसा) महत्त्वसे और बलसे (विश्वा वृष्ण्या आ पप्राथ) सम्पूर्ण शत्रुकी सेनाओंको घेर लेता है। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र तथा (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! अपने (चित्राभिः ऊतिभिः) विलक्षण संरक्षणके साधनोंसे (गोमति व्रजे) गायोंके लिए होनेवाले युद्धमें (अस्मान् अव) हमारी रक्षा कर ॥ ६ ॥

१ महिना शवसा विश्वा वृष्ण्या आपप्राथ— अपने बलसे संपूर्ण शत्रुसेनाओंका पराभव करता है। इतना अपना बल बढाना चाहिये।

भावार्थ— जो सभीके द्वारा स्तुत्य, शत्रुओंके संहारक इन्द्रको अपने उत्तम कर्मोंसे अपने अनुकूल बना लेता है, उसको कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

इन्द्रके प्रकट होते ही बडे बडे प्राणी तथा सभी लोक भी उसे नमन करने लगते हैं ॥ ४ ॥

इन्द्र इतना महान् और वीर है कि यदि द्युलोक सौ हो जाएं, या पृथ्वी भी सौ हो जाएं अथवा सूर्य भी हजारोंकी संख्यामें हो जाएं, तो भी वे सब इन्द्रकी बराबरी नहीं कर सकते ॥ ५ ॥

हे बलशाली इन्द्र ! तू अपने महत्त्व और बलसे संपूर्ण शत्रुओंकी सेनाको घेर लेता है। तू अपने विलक्षण संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा कर ॥ ६ ॥

१२८४ न सीमदेव आप॒दिषं दीर्घायो मर्त्यः ।
एतग्वा चिद्य एतशा युयोजते हरी इन्द्रो युयोजते ॥ ७ ॥
१२८५ तं वो म॒हो म॒हाय्य॒मिन्द्रं दा॒नाय॑ स॒क्षणि॑म् ।
यो गाधेषु य आरणेषु हव्यो वाजेष्वस्ति हव्यः ॥ ८ ॥
१२८६ उदू षु णो वसो महे मृशस्व शूर राधसे ।
उदू षु मह्यै मघवन् मघत्तय उदिन्द्र श्रवसे महे ॥ ९ ॥
१२८७ त्वं न इन्द्र ऋतयु॒स्त्वानिदो नि तृम्पसि ।
मध्ये वसिष्व तुविनृम्णोर्वोर्नि दासं शिश्नथो हथैः ॥ १० ॥
१२८८ अन्यव्रतममानुष॒मयज्वानमदेवयुम् ।
अव स्वः सखा दुधुवीत पर्वतः सुघ्नाय दस्युं पर्वतः ॥ ११ ॥

अर्थ— [१२८४] (इन्द्रः) इन्द्र (हरी) जिन घोडोंको (युयोजते) अपने रथमें जोडता है, उन्हीं (एतग्वा एतशा) सर्वत्र गमन करनेवाले घोडोंको जो मनुष्य अपने रथमें (युयोजते) जोडता है, ऐसा (अ-देवः मर्त्यः) नास्तिक मनुष्य (सीं इषं न अपात्) इस अन्नको नहीं पा सकता ॥ ७ ॥

[१२८५] (यः गाधेषु हव्यः) जो साधारण स्थानोंमें बुलाने योग्य है, (यः आरणेषु हव्यः) जो आश्रयके योग्य स्थानमें बुलाने लायक है, (यः वाजेषु हव्यः अस्ति) जो युद्धोंमें बुलाने योग्य है, ऐसे (महाय्यं सक्षणिं इन्द्रं) पूज्य, मित्रभूत इन्द्रकी हे मनुष्यो ! (महः वः) महान् तुम (दानाय) दानके लिए स्तुति करो ॥ ८ ॥

[१२८६] हे (शूर, वसो) हे शूरवीर तथा धनवान् इन्द्र ! (नः महे राधसे उत् मृशस्व) हमें महान् धनकी प्राप्तिके लिए उन्नत कर । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (मह्यै मघत्तये उत्) महान् ऐश्वर्यके लिए उन्नत कर तथा (महे श्रवसे उत्) महान् अन्नकी प्राप्तिके लिए उन्नत कर ॥ ९ ॥

[१२८७] हे इन्द्र ! (ऋतयुः त्वं) यज्ञकी कामना करनेवाला तू (त्वा निदः) तेरी निन्दा करनेवालोंके धनसे (नः तृम्पसि) हमें तृप्त करता है । हे (तुविनृम्णः) बहुत बलशाली इन्द्र ! तू हमें (ऊर्वोः मध्ये वसिष्व) अपने विशाल आश्रयमें बसा ले, तथा (दासं हथैः शिश्नथः) दासको हथियारोंसे मार डाल ॥ १० ॥

[१२८८] (अन्यव्रतं) अधार्मिक कामोंको करनेवाले (अमानुषं) मनुष्यतासे रहित (अयज्वानं) यज्ञ न करनेवाले, (अदेवयुः) दिव्य अर्थात् उत्तम कर्म न करनेवाले मनुष्यको (सखा पर्वतः) तेरा मित्र पर्वतऋषि (स्वः अव दुधुवीत) स्वर्गसे नीचे गिरा देता है, तथा (दस्युं) ऐसे दस्युको (पर्वतः) पर्वतऋषि (सुघ्नाय) अच्छी तरह मारनेवाले वीरके हाथमें दे देता है ॥ ११ ॥

भावार्थ— जो इन्द्रके साथ अपनी तुलना करके उसके साथ अपनी बराबरी करना चाहता है, वह नास्तिक है, क्योंकि वह इन्द्रको नहीं मानता । ऐसा नास्तिक व्यक्ति समृद्धि प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ७ ॥

यह इन्द्र स्वयं अत्यन्त महान् होते हुए भी इसे अपनी महत्तापर घमंड नहीं है । इतना महान् होते हुए भी वह साधारण लोगोंके पास भी जाकर उनकी सहायता करता है । इसीलिए वह सबका पूज्य है और महान् है । जो वीर महान् होते हुए भी साधारण मनुष्यकी सहायता करता है. वही सबके लिए पूज्य होता है ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! हम महान् धन प्राप्त कर सकें, इसलिए तू हमें उन्नत कर । महान् अन्नकी प्राप्ति हम कर सकें, इसलिए हमें उन्नत कर ॥ ९ ॥

यह इन्द्र, जो इसकी निन्दा करता है, नास्तिक है, उसके धनको जीतकर अपने भक्तों-आस्तिकोंको प्रदान करता है । हे इन्द्र ! हमें अपने विशाल आश्रयमें ले ले तथा जो दुष्ट हों, उन्हें शस्त्रोंसे मार डाल ॥ १० ॥

जो अधार्मिक काम करता है, मनुष्यतासे रहित है, यज्ञ नहीं करता है, तथा उत्तम काम नहीं करता, वह कभी सुख प्राप्त नहीं कर सकता । ऐसा मनुष्य तो नाशको ही प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

१२८९ त्वं न॑ इन्द्रासां हस्ते॑ शविष्ठ दावने॑ ।
धानानां॒ न सं गृ॑भायास्मयु॒ द्विः सं गृ॑भायास्मयुः ॥ १२ ॥
१२९० सखा॑यः क्रतु॑मिच्छत कथा रा॑धाम शुरस्य॑ । उप॑स्तुतिं भोजः सूरिर्यो अह्र॑यः ॥१३॥
१२९१ भूरि॑भिः समह ऋषि॑भि॒र्ब॒र्हिष्म॑द्भिः स्तविष्यसे ।
यदि॒त्थमेक॑मेकमि॒च्छर॑ व॒त्सान् प॑राददः ॥ १४ ॥
१२९२ कर्ण॑गृह्या म॒घवा॑ शौरदेव्यो व॒त्सं न॑स्त्रिभ्य आन॑यत् । अ॒जां सू॒रिर्न धात॑वे ॥ १५ ॥

[७१]

(ऋषिः- सुदीति-पुरुमीळ्हावाङ्गिरसौ, तयोर्वान्यतरः । देवताः- अग्निः । छन्दः- गायत्री, १०-१५ प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१२९३ त्वं नो॑ अग्ने म॒होभिः पा॒हि विश्व॑स्या॒ अरा॑तेः । उ॒त द्वि॒षो मर्त्य॑स्य ॥ १ ॥

अर्थ- [१२८९] हे (शविष्ठ, अस्मयुः इन्द्र) बलवान् तथा हमारी कामना पूर्ण करनेवाले इन्द्र ! (त्वं) तू (नः दावने) हमें देनेके लिए (आसां हस्ते संगृभाय) इन गायोंको हाथमें, उसी तरह पकड (धानानां न) जिस तरह लोग खीलोंको पकडते हैं। हे (अस्मयुः) हमारी इच्छा करनेवाले इन्द्र ! (द्विः संगृभाय) फिर दूबारा हाथमें ले ॥१२॥

[१२९०] (यः भोजः सूरिः अह्रयः) जो अन्न देनेवाला, विद्वान् और कुटिलतासे रहित हो, ऐसे (क्रतुं इच्छतः) पराक्रम करनेकी इच्छा करनेवाले (शरस्य) शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले इन्द्रकी, हे (सखायः) मित्रो ! हम (कथा स्तुतिं उपराधामः) किस प्रकार स्तुति करें ॥ १३ ॥

[१२९१] हे (शर, समह) शत्रुओंके हिंसक और पूज्य इन्द्र ! (यत्) जब तू (इत्थं) इस प्रकार (एकं एकं इत्) एक एक करके (वत्सान् परा ददः) बछडोंसे युक्त बहुत सी गायोंको दे देता है, तब (भूरिभिः ऋषिभिः) बहुतसे ऋषियों द्वारा तथा (बर्हिष्मद्भिः) यज्ञ करनेवालोंके द्वारा (स्तविष्यसे) प्रशंसित होता है॥१४॥

[१२९२] (मघवा) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (शौर-देव्यः) शूरतासे प्राप्त होने योग्य, दिव्य गायोंको (वत्सं) बछडेके साथ (त्रिभ्यः) शत्रुओंसे छीनकर (कर्णगृह्य) कानोंसे पकडकर (नः आनयत्) उसी प्रकार लावे, (सूरिः धातवे अजां न) जिस प्रकार विद्वान् दूध पीनेके लिए बकरीको लाते हैं ॥ १५ ॥

१ त्रिभ्यः— हिंसकेभ्यः, हिंसक शत्रुओंसे

[७१]

[१२९३] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं नः महोभिः पाहि) तू हमारी अपने महान् शक्तियों द्वारा रक्षा कर । और (विश्वस्याः अरातेः मर्त्यस्य द्विषः) सब तरहके शत्रु और उत्तम मनुष्योंसे द्वेष करनेवालेसे भी हमको बचा ॥ १ ॥

१ अग्ने ! त्व नः महोभिः विश्वस्याः अरातेः उत मर्त्यस्य द्विषः पाहि— हे अग्ने ! तू हमें अपनी शक्तियोंका उपयोग करके सभी अदानशील और उत्तम मनुष्यसे द्वेष करनेवालोंसे बचा ।

भावार्थ— हे इन्द्र ! हमें देनेके लिए गायोंको अपने पास रख । तू विद्वान् है पर कुटिलतासे रहित है ॥१२-१३॥

यह इन्द्र यज्ञ करनेवाले ऋषियोंको बछडोंके सहित गायोंको दानमें दे ॥ १४-१५ ॥

यह अग्नि अपनी शक्तियोंका उपयोग सज्जनोंकी रक्षाके लिए करता है, वह कभी भी सज्जनोंको पीडित नहीं करता । इसी तरह देशके अग्रणीको भी चाहिए कि वह हमेशा सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंका संहार करे ॥ १ ॥

१२९४ नहि मन्युः पौरुषेय ईशे हि वः प्रियजात । त्वमिदसि क्षपावान् ॥ २ ॥
१२९५ स नो विश्वेभिर्देवेभि-रूर्जो नपाद्भद्रशोचे । रयिं देहि विश्ववारम् ॥ ३ ॥
१२९६ न तमग्ने अरातयो मर्तं युवन्त रायः । यं त्रायसे दाश्वांसम् ॥ ४ ॥
१२९७ यं त्वं विप्र मेधसाता-वग्ने हिनोषि धनाय । स तवोती गोषु गन्ता ॥ ५ ॥
१२९८ त्वं रयिं पुरुवीर-मग्ने दाशुषे मर्ताय । प्र णो नय वस्यो अच्छ ॥ ६ ॥

अर्थ— [१२९४] हे (प्रियजात) उत्पन्न होते ही सबको प्रिय लगनेवाले अग्ने ! (वः पौरुषेयः मन्युः न ईशे) तेरे उपासकोंपर किसी दुष्ट पुरुषका क्रोध प्रभुत्व न करे, (त्वं इत् क्षपाकान् असि) तू रात्रीमें भी अत्यन्त प्रकाशमान होता है ॥ २ ॥

१ वः पौरुषेयः मन्युः न ईशे– इस अग्निके भक्तोंपर किसी दुष्ट मनुष्यका क्रोध शासन नहीं कर सकता ।

[१२९५] हे (ऊर्जः नपात्) बलको न गिरने देनेहारे (भद्रशोचे) कल्याणकारी ज्वालाओंवाले अग्ने ! (सः नः विश्वेभिः देवेभिः) वह प्रसिद्ध तू हमें सब देवोंद्वारा (विश्ववारं रयिं देहि) सब जनोंसे वरण करने योग्य श्रेष्ठ ऐश्वर्य दिलवा ॥ ३ ॥

[१२९६] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (यं दाश्वांसं त्रायसे) जिस दाताकी रक्षा करता है (तं मर्तं अरातयः रायः न युवन्त) उस मनुष्यको अदानशील शत्रु कभी श्रेष्ठ धनोंसे पृथक् नहीं कर सकते ॥ ४ ॥

१ यं दाश्वांसं त्रायसे, तं मर्तं अरातयः रायः न युवन्त— जिस दानीकी यह अग्नि रक्षा करता है, उसे कोई भी अदानशील व्यक्ति ऐश्वर्यसे पृथक् नहीं कर सकता ।

[१२९७] हे (विप्र अग्ने) मेधाविन् अग्ने ! (त्वं यं धनाय मेधसातो) तू जिस मनुष्यको धनलाभके लिये यज्ञकर्ममें (हिनोषि) प्रेरित करता है (स तव ऊती गोषु गन्ता) वह तेरी रक्षाके द्वारा गौओंसे सम्पन्न होता है ॥५॥

[१२९८] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं दाशुषे) तू दान देनेवालेके लिये (पुरुवीरं रयिं) बहुतसे वीरोंसे सम्पन्न धन देता है, अतः (नः वस्यः अच्छ प्रणय) हमें भी उत्तम धन भरपूर प्रदान कर ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह अग्नि अपने भक्तोंकी रक्षा इतनी सावधानीसे करता है, कि उसपर कोई दुष्ट पुरुष शासन नहीं कर सकता, वह रात्रीमें भी सदा जाग्रत और प्रकाशमान रहकर उनकी रक्षा करता है । इसी प्रकार राष्ट्रका नेता भी दिनरात जाग्रत रहकर सावधानीसे अपने पक्षवाले सज्जनोंकी रक्षा करे, ताकि कोई दुष्ट पुरुष उन्हें सता न सके ॥ २ ॥

यह अग्नि बलको क्षीण न करके उसे बढानेवाला है, जबतक यह अग्नि शरीरमें उत्तमतासे रहता है, तबतक यह शरीर भी उत्तम रीतिसे काम करता है । इसकी ज्वालायें कल्याण करनेवाली हैं, जहां भी इसकी ज्वालायें प्रकाशित होती हैं, वहांके सब जन्तु नष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार वह सर्वत्र पवित्रता करता है । तब उस स्थलपर सभी देव आकर उस मनुष्यको उत्तम उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥

अग्निकी यह महिमा है कि वह जिस किसी भी दानी मनुष्यकी रक्षा करता है, उसे अदानी मनुष्य किसी भी तरहका नुकसान नहीं पहुंचा सकते, और न उसे ऐश्वर्योंसे हीन ही कर सकते हैं ॥ ४ ॥

यह अग्रणी देव जिस मनुष्यको यज्ञ करनेके लिये प्रेरित करता है, वह अनेक तरहकी गायें, उत्तम वीर पुत्र पौत्र और उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ ५–६ ॥

×

१२९९ उरुष्या णो मा परा दा अघायते जातवेदः । दुराध्ये३ मर्ताय ॥ ७ ॥
१३०० अग्ने माकिष्टे देवस्य रातिमदेवो युयोत । त्वमीशिषे वसूनाम् ॥ ८ ॥
१३०१ स नो वस्व उप मा स्यूर्जो नपान्माहिनस्य । सखे वसो जरितृभ्यः ॥ ९ ॥
१३०२ अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥ १० ॥
१३०३ अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ॥ ११ ॥

अर्थ— [१२९९] हे (जातवेदः) संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले अग्ने ! तू (नः उरुष्य) हमारी रक्षा कर। और हमको (अघायते, दुराध्ये मर्ताय मा परा दाः) पाप करनेवाले तथा हिंसा करनेवाले दुष्ट मनुष्यको मत सौंप ॥ ७ ॥

१ अघायते, दुराध्ये मर्ताय मा परा दाः— पाप करनेवाले तथा हिंसा करनेवाले मनुष्यके हाथोंमें हे अग्ने ! हमें न सौंप ।

[१३००] हे (अग्ने) अग्ने ! (देवस्य ते रातिं अदेवः माकिः युयोत) प्रकाशमान् तेरे द्वारा दिये हुये दानको अदानशील कोई भी दुष्ट व्यक्ति हमसे पृथक् न करे । (त्वं वसूनां ईशिषे) तू ही सब धनोंका स्वामी है ॥ ८ ॥

[१३०१] हे (ऊर्जः नपात्) बलके पुत्र (सखे) स्नेहकारिन् (वसो) सबको बसानेवाले अग्ने ! (सः जरितृभ्यः नः माहिनस्य वस्वः उपमासि) वह प्रसिद्ध तू, स्तुति करनेवाले हम लोगोंके लिये महिमासे युक्त उत्तम धन समीपसे प्रदान कर ॥ ९ ॥

[१३०२] (शीरशोचिषं, दर्शतं पुरुवसुं पुरुप्रशस्तं) भक्षणशील ज्वालावाले, दर्शनीय, प्रभूत धनवाले, बहुत प्रशंसनीय ऐसे अग्निको (यज्ञासः, नमसा नः गिरः ऊतये अच्छ यन्तु) हमारे सब यज्ञ, और नम्रतापूर्वक हमारी स्तुतियाँ हमारी रक्षाके लिए सरलतासे प्राप्त हों ॥ १० ॥

[१३०३] (यः मर्त्येषु अमृतः अभूत्) जो मरण धर्मवाले मनुष्योंमें रहते हुये भी अमर है । और (विशि होता मन्द्रतमः द्विता) प्रजाओंमें होम निष्पादक, अति हर्षयुक्त, दो रूपवाला है ऐसे (सहसः सूनुं जातवेदसं अग्निं वार्याणां दानाय) बलके पुत्र, संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले अग्निके वरणके योग्य, गवादि श्रेष्ठ धन दानके लिये मैं प्रार्थना करता हूँ ॥ ११ ॥

१ मर्त्येषु अमृतः— यह अग्नि मरणशील मनुष्योंके बीचमें रहता हुआ भी अमर है ।

भावार्थ— हे अग्ने ! तू सब तरहके धनोंका स्वामी है, इसलिए हम तुझसे प्रार्थना करते हैं कि तेरे द्वारा दिए गए धनसे हम कभी पृथक् न हों अर्थात् हम तेरी कृपासे दूर कभी न हों और तू भी कभी क्रोधित होकर हमें पापी या हिंसकोंके हाथोंमें मत सौंप ॥ ७–८ ॥

यह अग्निदेव श्रेष्ठ मनुष्योंसे स्नेह करनेवाला, तथा मित्रके समान हित करनेवाला है, और इस प्रकार वह सबको बसानेवाला है, उसकी कृपाके विना कोई जीवित नहीं रह सकता । पर जो उसकी कृपाका पात्र बन जाता है, वह बलवान् होकर उत्तम-उत्तम धन प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

यह अग्नि भक्षण करनेवाली ज्वालाओंसे युक्त, देखनेमें सुन्दर, प्रशंसनीय मरणशीलोंमें भी अमर, प्रजाओंको यज्ञमें प्रेरित करनेवाला तथा अत्यन्त आनन्दसे रहनेवाला है, ऐसे अग्निकी प्रार्थना करनेसे मनुष्य सुखी और सम्पन्न हो सकता है ॥ १०–११ ॥

१३०४ अ॒ग्निं वो॑ दे॒वय॒ज्यया॒ऽग्निं प्र॑य॒त्य॑ध्व॒रे ।
अ॒ग्निं धी॒षु प्र॑थ॒मम॒ग्निमर्व॒॑त्य॒ग्निं क्षैत्रा॑य॒ साध॑से ॥ १२ ॥

१३०५ अ॒ग्निरि॒षां स॒ख्ये द॑दातु न॒ ईशे॒ यो वार्या॑णाम् ।
अ॒ग्निं तो॒के तन॑ये॒ शश्व॑दीमहे॒ वसुं॒ सन्तं॑ तनू॒पाम् ॥ १३ ॥

१३०६ अ॒ग्निमी॑ळि॒ष्वाव॑से॒ गाथा॑भिः शी॒रशो॑चिषम् ।
अ॒ग्निं रा॒ये पु॑रुमीळ्ह श्रु॒तं नरो॒ऽग्निं सु॑दी॒तये॑ छ॒र्दिः ॥ १४ ॥

१३०७ अ॒ग्निं द्वेषो॒ योत॒वै नो॑ गृणीम॒स्य॒ग्निं शं योश्च॒ दात॑वे ।
विश्वा॑सु वि॒क्ष्व॑वि॒तेव॒ हव्यो॒ भुव॒द्वस्तु॑ऋ॒षूणाम् ॥ १५ ॥

अर्थ— [१३०४] (देवयज्यया अग्निं) देव यज्ञके निमित्तसे मैं अग्निकी स्तुति करता हूँ। (अध्वरे प्रयति अग्निं) यज्ञके प्रज्वलित होने पर भी अग्निकी स्तुति करता हूँ। (धीषु अर्वति अग्निं प्रथमं) सब कामोंमें विराजमान अग्निकी सबसे प्रथम पूजा करता हूँ। तथा (क्षैत्राय साधसे) क्षेत्रके लाभके निमित्त भी स्तुति करता हूँ ॥ १२ ॥

१ धीषु अर्वति अग्निं प्रथमं— सभी तरहके बुद्धियुक्त कार्योंमें इस अग्निकी पूजा प्रथम करनी चाहिए।

[१३०५] (यः अग्निः वार्याणां ईशे) जो अग्नि श्रेष्ठ धनोंका स्वामी है, वही (सख्ये इषां ददातु) अपने स्नेही मित्रोंके लिये अन्न प्रदान करे। हम (वसुं सन्तं तनूपां अग्निं तोके तनये शश्वत् ईमहे) सबके भीतर बसे हुए, सदा वर्तमान, सब देहोंके पालक उस अग्निके पुत्र पौत्रादिके लिए बहुत चाहते हैं ॥ १३ ॥

[१३०६] हे (पुरुमीळ्ह) बहुत स्तुति करनेवाले मनुष्य ! तू (शीरशोचिषं अग्निं अवसे राये गाथाभिः ईळिष्व) व्यापक तेजवाले अग्निकी अपनी रक्षाके लिये और धन प्राप्तिके लिये वेदवाणियोंसे स्तुति कर। इस (श्रुतं नरः) बहुत विद्वान् अग्निको अन्य लोग भी चाहते हैं। वह अग्नि (सुदीतये छर्दिः) उत्तम तेजवालेके लिये गृह प्रदान करता है ॥ १४ ॥

[१३०७] हम लोग (नः द्वेषः योतवै अग्निं गृणीमसि) अपने शत्रुओंको दूर करनेके लिये अग्निकी स्तुति करते हैं। और (शं च योः दातवे अग्निं) सुख देने तथा दुःख नाशके लिये अग्निकी उपासना करते हैं, वह अग्नि (विश्वासु विक्षु अविता इव ऋषूणां वस्तुः हव्यः भुवत्) सब प्रजाओं पर राजाकी तरह रक्षक, ऋषियोंको बसानेवाला और स्तुत्य है ॥ १५ ॥

भावार्थ— यह अग्नि देव अन्य सभी देवोंसे उत्कृष्ट होनेके कारण सबसे प्रथम पूज्य है। प्रज्वलित यज्ञमें, अन्य देवयज्ञोंमें इसकी पूजा की जाती है। इसी प्रकार बुद्धिपूर्वक किए जानेवाले कामोंमें भी इसीकी सर्व प्रथम पूजा की जाती है ॥ १२ ॥

यही सभी प्रकारके श्रेष्ठ धनोंका स्वामी है, वही अपने स्नेह करनेवाले मित्रोंके लिए अन्न देता है। मनुष्य भी सब शरीरोंमें रहनेवाले उस अग्निकी अपनी मनोकामनाओंकी पूर्तिके लिए पूजा करते हैं। अपनी रक्षाके लिए भी लोग उसीकी स्तुति करते हैं, तब वह प्रसन्न होकर उत्तम उत्तम आश्रय स्थान लोगोंको प्रदान करता है ॥ १३-१४ ॥

सभी श्रेष्ठ मनुष्य शत्रुओंको दूर करने, सुख प्राप्त करने तथा रोगोंके शमन और उनको दूर करनेके लिए, उसी अग्निकी शरणमें जाते हैं। वह अग्नि भी अपने भक्तोंकी उसी प्रकार रक्षा करता है, जिस प्रकार एक राजा अपनी प्रजाओंकी ॥ १५ ॥

[७२]

(ऋषिः- हर्यतः प्रागाथः। देवताः- अग्निः हवींषि वा। छन्दः- गायत्री।)

१३०८ हविष्कृणुध्वमा गमदध्वर्युर्वनते पुनः । विद्वाँ अस्य प्रशासनम् ॥ १ ॥
१३०९ नि तिग्ममभ्यंशुं सीदद्धोता मनावधि । जुषाणो अस्य सख्यम् ॥ २ ॥
१३१० अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया । गृभ्णन्ति जिह्वया ससम् ॥ ३ ॥
१३११ जाम्यतीतपे धनुर्वयोधा अरुहद्वनम् । दृषदं जिह्वयावधीत् ॥ ४ ॥
१३१२ चरन् वत्सो रुशन्निह निदातारं न विन्दते । वेति स्तोतव अम्ब्यम् ॥ ५ ॥
१३१३ उतो न्वस्य यन्महदश्वावद्योजनं बृहत् । दामा रथस्य ददृशे ॥ ६ ॥

---

[७२]

अर्थ— [१३०८] हे हविकर्ता लोगो ! तुम सब शीघ्र (हविः कृणुध्वं) हविका सम्पादन करो, जिससे अग्निका (आगमत्) आगमन हो। जो (अध्वर्युः अस्य प्रशासनं विद्वान्) अध्वर्यु इस हविको अग्निके लिये प्रदान करनेमें विद्वान् है, वह (पुनः वनते) फिर भी अग्निकी सेवा करता है ॥ १ ॥

१ अध्वर्युः अस्य प्रशासनं विद्वान्, वनते— जो अध्वर्यु इस अग्निकी पूजा करनेमें कुशल है, वही इसकी उत्तम सेवा करता है।

[१३०९] (होता तिग्मं अंशुं निषीदत्) यज्ञ करनेवाला तीक्ष्ण किरणवाले उस अग्निके पास बैठता है। वह (अस्य सख्यं मनावधि जुषाणः) इस अग्निके मित्रभावको प्राप्त होनेवाला और भक्तके प्रीतिका सम्पादन करनेवाला है ॥ २ ॥

१ होता अस्य सख्यं जुषाणः— होम करनेवाला ही उस अग्निकी मित्रता प्राप्त कर सकता है।

[१३१०] ऋत्विकलोक (तं रुद्रं जने मनीषया: परः इच्छन्ति) उस रुद्ररूप अग्निको यजमानके घरमें अपनी उत्तम बुद्धिसे स्थापित करनेकी इच्छा करते हैं। वे ही पश्चात् (ससं जिह्वया गृभ्णन्ति) सोये हुयेके समान व्याप्त अग्निको अपनी स्तुति द्वारा प्रज्वलित करते हैं ॥ ३ ॥

[१३११] (वयोधाः जामि) अन्नका दाता अग्नि अत्यन्त प्रज्वलित होकर (धनुः अतीतपे) अन्तरिक्षको तपाता है। (वनं अरुहत्) जलपर आरूढ होता है। तथा अपनी (जिह्वया दृषदं अवधीत्) ज्वालासे मेघको मारता है ॥ ४ ॥

[१३१२] अग्नि (वत्सः चरन् रुशन्) बछडेकी तरह विचरता उछलता कूदता हुआ तेजस्वी होकर (इह निदातारं न विदन्ते) इस लोकमें अपना कोई भी निन्दक नहीं प्राप्त करता किन्तु अग्नि अपने (स्तोतवे अम्ब्यं वेति) स्तुति करनेके लिए स्तोताकी इच्छा करता है ॥ ५ ॥

[१३१३] (उतो नु अस्य) और इस अग्निका (अश्वावत् यत् महत् बृहत् योजनं) घोडेसे युक्त जो महिमायुक्त और विस्तृत रथ है, वह और (रथस्य दामा ददृशे) उसके रथके लगाम भी दिखाई देने लगे हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह अग्नि, जहां यज्ञ होता है, वहां जाकर, विराजमान होता है। तथा जो मनुष्य इस अग्निकी एकाग्रतासे पूजा करता है, वही इसकी भक्ति और सेवा कर सकता है ॥ १ ॥

होम करनेवाला प्रथम इस तीक्ष्ण किरणवाले अग्निके पास जाकर बैठता है, तब उस रुद्ररूप अग्निको वेदीमें स्थापित करनेकी इच्छासे उसे अपनी स्तुतियोंसे प्रज्वलित करता है। इस प्रकार भक्तिसे कार्य करनेवाला ही उस अग्निकी मित्रता प्राप्त कर सकता है ॥ २-३ ॥

अन्नको उत्पन्न करनेवाला अग्नि जब अपनी ज्वालाओंको फैलाकर अन्तरिक्षमें जाकर मेघोंको मारकर पृथ्वीपर पानी बरसाता है, तब इस अग्निकी बिजलीके रूपमें उछल कूद देखकर लोग इसकी प्रशंसा करते हैं, इसकी कोई निन्दा नहीं करता, इसके विपरीत लोग इसकी स्तुति करते हैं ॥ ४-५ ॥

१३१४ दुहन्ति सप्तैका॒मुप॒ द्वा पञ्च॑ सृजतः । तीर्थे॒ सिन्धो॒रधि॑ स्व॒रे ॥ ७ ॥
१३१५ आ द॒शभि॑र्वि॒वस्व॑त॒ इन्द्रः॒ कोश॑मचुच्यवीत् । खेद॑या त्रि॒वृता॑ दि॒वः ॥ ८ ॥
१३१६ परि॑ त्रि॒धातु॑रध्व॒रं जू॒र्णिरे॑ति॒ नवी॑यसी । मध्वा॒ होता॑रो अञ्जते ॥ ९ ॥
१३१७ सि॒ञ्चन्ति॒ नम॑साव॒त॒मु॒च्चाच॑क्रं॒ परि॑ज्मानम् । नी॒ची॒नबा॑र॒मक्षि॑तम् ॥ १० ॥
१३१८ अ॒भ्या॒र॒मिदद्र॑यो॒ निषि॑क्तं॒ पुष्क॑रे॒ मधु॑ । अ॒व॒तस्य॑ वि॒सर्ज॑ने ॥ ११ ॥
१३१९ गाव॒ उपा॑वताव॒तं म॒ही य॒ज्ञस्य॑ र॒प्सुदा॑ । उ॒भा कर्णा॑ हिर॒ण्यया॑ ॥ १२ ॥

अर्थ – [१३१४] (**सप्त एकां दुहन्ति**) सात ऋत्विज मिलकर एकका ही दोहन करते हैं। उनके बीचमें (**द्वा पञ्च सिन्धोः तीर्थे स्वरे अधि उप सृजतः**) दो और पाँच नदियोंके तीर्थस्थानपर ऊँचे स्वरमें अग्निका स्तोत्र गान करके अन्योंको प्रेरित करते हैं ॥ ७ ॥

[१३१५] (**विवस्वतः दशभिः इन्द्रः**) यजमानके दसों अङ्गुलियोंसे पूजित होकर अग्निने (**कोशं दिवः त्रिवृता खेदया आ अचुच्यवीत्**) मेघको आकाशसे अपनी तीन रंगोंवाली रश्मियोंसे पूर्णरूपसे विदारित करके गिरा दिया ॥ ८ ॥

[१३१६] (**त्रिधातु जूर्णिः नवीयसी अध्वरं एति**) कृष्ण, लोहित और शुक्ल भेदसे तीन वर्णवाला वेगवान् यह अग्नि अपनी नवीन ज्वालासे यज्ञको जाता है। (**होतारः मध्वा परि अञ्जते**) होम निष्पादक अध्वर्यु आदि ऋत्विक-गण घृतादिकी आहुतिसे अग्निको सब ओरसे सींचते हैं ॥ ९ ॥

[१३१७] (**अवतं, उच्चाचक्रं परिज्मानं नीचीनवारं अक्षितं**) यज्ञीय देवता, जिसके ज्वालाओंका चक्र ऊपर घूमता है, जो चारों ओरसे व्याप्त है, नीचे पानीके द्वारवाला है, और क्षीण न होनेवाला है, ऐसे अग्निको ऋत्विक् आदि (**नमसा सिञ्चन्ति**) नमनपूर्वक घृतादिसे सींचते हैं ॥ १० ॥

[१३१८] (**अवतस्य विसर्जने**) कुओंके भी सूख जाने पर अग्निसे प्रेरित (**अद्रयः**) मेघ (**अभ्यारं इत्**) पृथ्वीके पास आकर (**पुष्करे**) तालाबोंको (**मधु निषिक्तं**) मीठे पानीसे भर देते हैं ॥ ११ ॥

[१३१९] हे (**गावः**) गायो ! तुम (**अवतं उप आवत**) तालाबोंके पास आओ, जहां तुम पुष्ट होती हो, उस (**यज्ञस्य**) यज्ञमय देशकी (**मही**) भूमि (**रप्सुदा**) अत्यन्त उपजाऊ अर्थात् फलप्रद होती है, उस देशके लोगोंके (**उभा कर्णा हिरण्ययाः**) दोनों कान सोनेके होते हैं ॥ १२ ॥

१ **यज्ञस्य मही रप्सुदा**— जहां गायें पुष्ट होती हैं उस यज्ञमय देशकी भूमि बडी उपजाऊ होती है।

२ **उभा कर्णा हिरण्यया**— उस देशके लोगोंके शरीर सोनेके अलंकारोंसे सजे रहते हैं।

भावार्थ - इस अग्निका रथ बडा विस्तृत और चमकीला है। जब यह अपने रथपर चढकर मेघोंमें संचार करने लगता है, तब इसके रथके बिजलीरूपी चमकीले लगाम दूरसे ही दीखने लगते हैं। तब सातों लोक इस अग्निसे पानी दुहते हैं अर्थात् सातों लोकोंको यह अग्नि जल प्रदान करता है। तब अन्य लोग भी सर्वत्र बैठकर ऊंचे स्वरसे इसकी स्तुति करते हैं ॥६–७॥

धुंवेकी अवस्थामें कृष्णवर्णवाला, थोडा जलनेपर लालवर्णवाला और अत्यन्त प्रज्वलित होनेपर अत्यन्त शुभ्रवर्णवाला यह अग्नि अपनी ज्वालाओं सहित यज्ञमें जाता है, वहां अध्वर्यु आदि इस अग्निको सब ओरसे घीसे सींचते हैं। तब दसों अंगुलियोंसे सिंचित होकर यह अग्नि मेघोंमें जाकर अपनी किरणोंसे उसे मार गिराता है और पानी बरसाता है॥ ८–९ ॥

इस अग्निकी ज्वालायें सदा ऊपर ही चलती हैं, उसकी ज्वालायें चारों तरफ व्याप्त होती हैं। वह पानीके द्वारोंको खोल देता है, तब उसकी सब ऋत्विज स्तुति करते हैं ॥ १० ॥

जब अवर्षासे कुंवे भी सूख जाते हैं, तब लोग इस अग्निकी स्तुति करते हैं, तब यह अग्नि अपनी किरणोंको फैलाता है और तब अग्निसे प्रेरित होकर मेघ पानीसे भरे होनेके कारण पृथ्वीपर झुक जाते हैं और तब वे खूब बरस बरसकर मीठे मीठे पानीसे तालाबोंको भर देते हैं ॥ ११ ॥

वर्षाके बरसनेपर जब सारे कुंवे और तालाब भर जाते हैं, तब गायें पानीके लिए उन तालाबोंके पास आती हैं तथा पानी पीकर और हरी घास खाकर वे पुष्ट होती हैं। इस प्रकार जिस देशमें ये गायें पुष्ट होती हैं, वहांकी भूमि उपजाऊ होकर वह देश धन-धान्यसे समृद्ध होता है और वहांके निवासी भी स्वर्ण आदि धनोंसे बडे सम्पन्न होते हैं, पर यह बात यज्ञमय देशमें ही हो सकती है ॥ १२ ॥

१३२० आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् । रसा दधीत वृषभम् ॥ १३ ॥
१३२१ ते जानत स्वमोक्यं१ सं वत्सासो न मातृभिः । मिथो नसन्त जामिभिः ॥ १४ ॥
१३२२ उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि । इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥ १५ ॥
१३२३ अधुक्षत् पिप्युषीमिषमूर्जं सप्तपदीमरिः । सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः ॥ १६ ॥
१३२४ सोमस्य मित्रावरुणोदिता सूर आ ददे । तदातुरस्य भेषजम् ॥ १७ ॥
१३२५ उतो न्वस्य यत् पदं हर्यतस्य निधान्यम् । परि द्यां जिह्वयातनत् ॥ १८ ॥

अर्थ— [१३२०] हे लोगो ! तुम (रोदस्योः अभिश्रियं, सुते श्रियं, आसिञ्चत) द्यावापृथ्वीके बीचमें सर्वत्र कान्तिमान तथा यज्ञके आश्रयसे रहनेवाले अग्निको सिञ्चित करो। जिससे (रसा वृषभं दधीत) पृथ्वी वर्षा करनेवाले मेघको धारण कर सके ॥ १३ ॥

[१३२१] (वत्सासः न मातृभिः मिथः) बछडे जिस प्रकार माताओंसे परस्पर मिलते हैं, उसी प्रकार (ते स्वं ओकं जानत जामिभिः) वे गौवें भी अपने निवास स्थानको जानती हुईं अपने बन्धुबान्धवों–परिवारोंके साथ (सं नसन्तः) मिलती हैं ॥ १४ ॥

[१३२२] (स्रक्वेषु बप्सतः धरुणं दिवि उप कृण्वते) इस अग्निके मुखमें डाली हुई हविको यह अग्नि अन्तरिक्षमें पहुंचाता है (इन्द्रे अग्ना नमः स्वः) इन्द्र और अग्निके आश्रयसेही पृथ्वीका अन्न और प्रकाश होता है ॥ १५ ॥

[१३२३] (अरिः) वेगसे चलनेवाला वायु (सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः) सूर्यकी सात किरणों द्वारा (पिप्युषीं इषं) पुष्टिकारक अन्न (ऊर्जं सप्तपदीं) रस और सर्पणशील चरणवाली अन्तरिक्षस्थ गौरूप मेघको (अधुक्षत्) दोहन करता है ॥ १६ ॥

[१३२४] हे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण ! (सूरे उदिता सोमस्य आ ददे) सूर्यके उदय होनेपर बलकारक सोम ओषधि मैं तैय्यार करता हूँ, क्योंकि (तत् आतुरस्य भेषजं) वह व्याधिपीडित अर्थात् रोगी मनुष्यकी औषधि है ॥ १७ ॥

[१३२५] (उतो नु) और भी निश्चय करके (अस्य हर्यतस्य) इस कान्तिमान् अग्निका (यत् पदं निधान्यं) जो स्थान निश्चित है, उसपर विराजमान होकर (द्यां परि जिह्वया अतनत्) समस्त आकाशमें अपनी ज्वालारूपी जीभको विस्तृत करता है ॥ १८ ॥

भावार्थ— यज्ञोंके करनेसे पृथ्वीमें भी शक्ति उत्पन्न होती है, और तब वह वर्षा जलको सोखकर बडी उपजाऊ बनती है। जितने ज्यादा यज्ञ किए जाएंगे, उतनी ज्यादा जलसोखनेकी शक्ति इस भूमिमें बढेगी। इस प्रकार उपजाऊ होने पर खूब धान्य और चारा उत्पन्न होगा, तब सभी गायें आपसमें मिलकर उस देशमें चरेंगी और पुष्ट होंगी ॥ १३–१४ ॥

इस अग्निके मुंहमें जो भी डाला जाता है, वह सूक्ष्म होकर अन्तरिक्षमें जा पहुंचता है, तब वहां इस अग्निके किरणोंका संयोग सूर्यकी किरणोंके साथ होता है जो मेघोंके दोहन करने उन्हें बरसानेमें कारण बनता है। इस प्रकार सूर्य और अग्नि दोनों जल बरसाकर इस पृथ्वीको धारण करते हैं ॥ १५–१६ ॥

सब मनुष्योंको चाहिए कि वे सबेरे उठकर रोज सोमरसका पान करें, क्योंकि वह सोम सब रोगोंके लिए अत्युत्तम औषध है ॥ १७ ॥

अपने निश्चित स्थान यज्ञकी वेदिमें बैठकर अग्नि अपनी ज्वालाओंको विस्तृत करता है और आकाशको पूर्ण रूपसे प्रकाशित करता है ॥ १८ ॥

[७३]

(ऋषिः- गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा । देवताः- अश्विनौ । छन्दः- गायत्री ।)

१३२६ उदीराथामृतायते युञ्जाथामश्विना रथम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १ ॥
१३२७ निमिषश्चिज्जवीयसा रथेना यातमश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ २ ॥
१३२८ उप स्तृणीतमत्रये हिमेन घर्ममश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ३ ॥
१३२९ कुह स्थः कुह जग्मथुः कुह श्येनेव पेतथुः । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ४ ॥
१३३० यदद्य कर्हि कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ५ ॥
१३३१ अश्विना यामहूतमा नेदिष्ठं याम्याप्यम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ६ ॥
१३३२ अवन्तमत्रये गृहं कृणुतं युवमश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ७ ॥
१३३३ वरेथे अग्निमातपो वदते वल्ग्वत्रये । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ८ ॥

[७३]

अर्थ— [१३२६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (ऋतायते उदीराथां) सरल मार्गसे जानेवालेके लिए तुम आओ, (रथं युंजाथां) रथको तैय्यार करो । (वां अवः अन्ति सत् भूतु) तुम्हारी रक्षा सदैव हमारे निकट रहे ॥ १ ॥

[१३२७] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (निमिषः चित् जवीयसा) पलकसे भी वेगवान् (रथेन आ यातं) रथसे आओ । (वां अवः अन्ति सत् भूतु) तुम्हारे संरक्षण सदा हमारे पास रहें ॥ २ ॥

[१३२८] (अत्रये) अत्रि ऋषिके लिए (घर्मं हिमेन) गर्म अग्निको बर्फसे (उप स्तृणीतं) ढक चुके हो । (वां अवः) तुम्हारे संरक्षण (अन्ति सत् भूतु) हमारे पास सदा रहें ॥ ३ ॥

[१३२९] (कुह स्थः) भला तुम कहां रहते हो ? (कुह जग्मथुः) तुम किधर गए थे ? (श्येना इव कुह पेतथुः) बाजकी तरह तुम किधर गए थे ? ॥ ४ ॥

[१३३०] (अद्य) आज (यत्) अगर (कर्हि चित्) कहीं भी (इमं हवं शुश्रुयातं) इस प्रार्थनाको सुनो तो (वां अवः) तुम्हारा संरक्षण (अन्ति सत् भूतु) हमारे पास आ जाए ॥ ५ ॥

[१३३१] (यामहूतमा अश्विना) बिलकुल ठीक समय बुलाने योग्य अश्विदेवोंको (नेदिष्ठं आप्यं यामि) अपना निकटतम बन्धु समझकर उनके पास जाता हूँ । (वां अवः अन्ति सत् भूतु) तुम्हारे संरक्षण हमारे पास सदैव रहें ॥ ६ ॥

[१३३२] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (युवं अत्रये) तुमने अत्रिके लिए (अवन्तं गृहं कृणुतं) रक्षणमें समर्थ घर बनाया । अब (वां अवः) तुम्हारे संरक्षण (अन्ति सत् भूतु) हमारे पास सदैव रहें ॥ ७ ॥

[१३३३] (वल्गु वदते अत्रये) सुन्दर ढंगसे भाषण करनेवाले अत्रिके लिए (आतपः अग्निं वरेथे) चारों ओरसे धधकती हुई अग्निको हटाते हो । (वां अवः अन्ति सत् भूतु) तुम्हारे संरक्षण हमारे पास सदा रहें ॥ ८ ॥

भावार्थ — हे देवो अश्विनीकुमारो ! तुम्हारे रथकी गति कहीं भी न रुके, अपितु सरल मार्गसे सर्वत्र जाए । ऐसे वेगवान् रथसे तुम हमारे पास आओ और अपने संरक्षणसे हमारी सदा रक्षा करो ॥ १-२ ॥

हे देवो ! तुमने अत्रि ऋषिको संकटोंसे बचाया । तुम्हारी गतिका वेग ऐसा है कि तुम किस समय कहां रहते हो, यह जानना कठिन है ॥ ३-४ ॥

हे देवो ! मैं तुम्हें अपना बांधव समझकरही तुमसे प्रार्थना करता हूँ । अतः तुम अपनी संरक्षणशक्तिसे युक्त होकर हमारे पास आओ और हमारी रक्षा करो ॥ ५-६ ॥

हे देवो ! तुम सुन्दर वचन बोलनेवालेकी रक्षा करते हो, तथा उसे गृह आदि हर तरहका सुख प्रदान करते हो ! तुम हमारी सदा रक्षा करो ॥ ७-८ ॥

१३३४ प्र सप्तवध्रिराशसा धारामग्नेरशायत । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ९ ॥
१३३५ इहा गतं वृषण्वसू शृणुतं म इमं हवम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १० ॥
१३३६ किमिदं वां पुराणव-ज्जरतोरिव शस्यते । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ११ ॥
१३३७ समानं वां सजात्यं समानो बन्धुरश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १२ ॥
१३३८ यो वां रजांस्यश्विना रथो वियाति रोदसी । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १३ ॥
१३३९ आ नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रैरुप गच्छतम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १४ ॥
१३४० मा नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रेभिरति ख्यतम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १५ ॥
१३४१ अरुणप्सुरुषा अभू-दकर्ज्योतिर्ऋतावरी । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १६ ॥

अर्थ— [१३३४] (सप्तवध्रिः) सप्तवध्रिने (आशसा) आशापूर्ण प्रशंसासे (अग्नेः धारां प्र अशायत) अग्निकी ऊंची लपटको भूमितक बिछाया । (वां अवः अन्ति सत् भूतु) तुम्हारे संरक्षण हमारे पास सदा रहें ॥ ९ ॥

[१३३५] हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेवाले ! (मे इमं हवं शृणुतं) हमारी इस प्रार्थनाको सुन लो और (इह आ गतं) यहां हमारे पास आओ, (वां अवः) तुम्हारे संरक्षण (अन्ति सत् भूतु) सदा हमारे पास रहें ॥ १० ॥

[१३३६] (वां) तुम दोनोंके बारेमें (किं इदं) यह क्या है ? (जरतोः पुराणवत् शस्यते) बूढोंको जैसी पुरानी बात अच्छी लगती है, वैसे ही बताया जाता है। (वां अवः) तुम्हारे संरक्षण (अन्ति सत् भूतु) हमारे पास सदा रहें ॥ ११ ॥

[१३३७] (वां सजात्यं समानं) तुम्हारा उत्पन्न होना समान है, और हे (अश्विना) अश्वि देवो ! (बन्धुः समानः) बांधव भी समान है । (वां अवः अन्ति सत् भूतु) तुम्हारे संरक्षण सदा हमारे पास रहें ॥ १२ ॥

[१३३८] (वां यः रथः) तुम्हारा जो रथ (रोदसी रजांसि वियाति) द्युलोक, भूलोक तथा अन्य लोकोंको पार करके चला जाता है, (वां अवः) तुम्हारा संरक्षण (अन्ति सत् भूतु) हमारे पास सदा रहे ॥ १३ ॥

[१३३९] (नः सहस्रैः) हमारे समीप हजारों (गव्येभिः अश्व्यैः) गायों और घोडोंके झुण्डोंके साथ (आ उप गच्छतं) समीप आओ (वां अवः) तुम्हारा संरक्षण (अन्ति सत् भूतु) सदा हमारे पास रहे ॥ १४ ॥

[१३४०] (सहस्रेभिः गव्येभिः अश्व्यैः) हजारों गौओं और घोडोंके झुण्डोंके साथ (नः मा अति ख्यतं) हमें छोड मत जाओ, (वां अवः) तुम्हारा संरक्षण (अन्ति सत् भूतु) सदा हमारे पास रहे ॥ १५ ॥

[१३४१] (उषाः अरुणप्सुः) उषःकाल लालरूपवाला (अभूत्) हो गया है, (ऋतावरी ज्योतिः अकः) ऋतसे युक्त वह उषा प्रकाशका सृजन कर चुकी है, अतः (वां अवः) तुम्हारा संरक्षण (अन्ति सत् भूतु) हमारे पास सदा रहे ॥ १६ ॥

भावार्थ— हम अग्निकी ज्वालाओंको प्रदीप्त करके, हे अश्विनी देवो ! हम तुम्हें बुलाते हैं, तुम हमारे यज्ञमें आकर हमें संरक्षण प्रदान करो ॥ ९-१० ॥

जिस तरह बूढोंको सदा पुरानी बातें ही अच्छी लगती हैं, उसी तरह अश्विदेवोंको प्राचीन स्तुतियां अच्छी लगती हैं । जो इनकी उपासना करता है, उसके साथ ये अपने भाईके समान व्यवहार करते हैं ॥ ११-१२ ॥

इन अश्विदेवोंका रथ सर्वत्र गमन करनेवाला है, उनके रथकी गति कहीं नहीं रुकती । हे देवो ! तुम हमारे समीप आकर हमारी रक्षा करो ॥ १३-१४ ॥

हे देवो ! हमारा त्याग मत करो, अपितु घोडे गाय आदि समूहोंके साथ हमारे पास आओ । जब उषा अपना प्रकाश प्रकट कर चुके, तब तुम हमारे पास आकर हमारी रक्षा करो ॥ १५-१६ ॥

१३४२ अश्विना सु विचाकश द्वृक्षं परशुमाँ इव । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १७ ॥
१३४३ पुरं न धृष्णवा रुज कृष्णया बाधितो विशा । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १८ ॥

[७४]

(ऋषिः- गोपवन आत्रेयः । देवताः- अग्निः, १३-१५ आर्क्षः श्रुतर्वा । छन्दः- १-१२ अनुष्टुम्मुखः प्रगाथः = (अनुष्टुप् + गायत्र्यौ), १३-१५ अनुष्टुप् ।)

१३४४ विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ १ ॥
१३४५ यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् । प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥
१३४६ पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्यैरयद्दिवि ॥ ३ ॥
१३४७ आगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।
यस्य श्रुतर्वा बृहन्नार्क्षो अनीक एधते ॥ ४ ॥

अर्थ— [१३४२] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (परशुमान् वृक्षं इव) हाथमें कुल्हाडी रखनेवाला जिस तरह पेडको तोड डालता है, वैसे ही सूर्य अन्धेरेको मिटाकर (विचाकशत्) प्रकाशित हो गया है । (वां अवः अन्ति सत् भूतु) तुम्हारा संरक्षण सदा हमारे पास रहे ॥ १७ ॥

[१३४३] हे (धृष्णो) साहसी ! (कृष्णया विशा बाधितः) काली प्रजासे पीडित तू (पुरं न रुज) शत्रुनगरीको जैसे इन्द्रने नष्ट किया था, वैसे ही उस काली प्रजाका नाश कर । (वां अवः अन्ति सत् भूतु) तुम्हारे संरक्षण सदा हमारे पास रहें ॥ १८ ॥

[७४]

[१३४४] हे मनुष्यो ! (वः वाजयन्तः विशोविशः अतिथिं पुरुप्रियं अग्निं) तुम सब अन्नकी कामना करते हुये, समस्त प्रजाओंके पूज्य अतिथि, बहुतोंके प्रिय अग्निका स्तुतियों द्वारा पूजन करो । और मैं भी (वः शूषस्य दुर्यं वचः मन्मभिः स्तुषे) तुम्हारे सुख लाभके लिये अरणिमें निहित अग्निकी वचन और मननीय स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[१३४५] (हविष्मन्तः जनासः) उत्तम हविको हाथमें लेकर मनुष्य लोग (यं सर्पिरासुतं मित्रं न) जिस घृतसे प्रदीप्त करने योग्य अग्निकी मित्रकी तरह (प्रशस्तिभिः प्रशसन्ति) श्रेष्ठ स्तोत्रोंसे प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

[१३४६] (यः देवताति उद्यता हव्यानि दिवि ऐरयत्) जो अग्नि, यज्ञमें उत्तम रीतिसे प्राप्त हव्यपदार्थोंको द्युलोकमें देवोंके लिये प्रेरित करता है, उस (जातवेदसं पन्यांसं) संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले सर्वज्ञ, स्तुतिके योग्य अग्निको हम सब प्राप्त करें ॥ ३ ॥

[१३४७] (यस्य अनीके बृहन् आर्क्षः श्रुतर्वा एधते) जिस अग्निके ज्वालाके संघरूप सेनासे महान् शत्रुको पीडित करनेमें समर्थ प्रसिद्ध योद्धा वृद्धिको प्राप्त होता है । (वृत्रहन्तमं ज्येष्ठं आनवं अग्निं आ आगन्म) उस पापोंको पूर्णरूपसे नष्ट करनेवाले, सबसे बडे मनुष्योंके हितैषी अग्निको सब ओरसे प्राप्त हों ॥ ४ ॥

भावार्थ— जिस तरह कोई परशुधारी मनुष्य पेडोंको आसानीसे काट डालता है, उसी तरह सूर्य अन्धकारका विनाश करता है । हे देवो ! तुम काली अर्थात् दुष्ट कर्म करनेवाले राक्षसोंकी प्रजाओंका नाश करके हमारी रक्षा करो ॥ १७-१८ ॥

हे मनुष्यो ! अन्नकी इच्छा करते हुए तुम इस पूज्य अग्निकी स्तुति करो और मैं भी तुम्हारे सुखके लिए तथा हितके लिए अग्निकी प्रशंसा और स्तुति करता हूँ ॥ १-२ ॥

यह अग्नि आहुतिरूपमें डाले गए हव्य पदार्थोंको बहुत सूक्ष्म बनाकर ऊपर द्युलोकमें पहुंचाता है, और उसके द्वारा वायुमण्डलको शुद्ध बनाकर सारे संसारका हित करता है । इसी अग्निकी सहायतासे वीर शत्रुओंका नाश करते हैं ॥ ३-४ ॥

+

१३४८ अमृतं जातवेदसं तिरस्तमांसि दर्शतम् । घृताहवनमीड्यम् ॥ ५ ॥
१३४९ सबाधो यं जना इमे ऽग्निं हव्येभिरीळते । जुह्वानासो यतस्रुचः ॥ ६ ॥
१३५० इयं ते नव्यसी मति-रग्ने अधाय्यस्मदा ।
मन्द्र सुजात सुक्रतो ऽमूर दस्मातिथे ॥ ७ ॥
१३५१ सा ते अग्ने शंतमा चनिष्ठा भवतु प्रिया । तया वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ८ ॥
१३५२ सा द्युम्नैर्द्युम्निनी बृह-दुपोप श्रवसि श्रवः । दधीत वृत्रतूर्ये ॥ ९ ॥
१३५३ अश्वमिद्गां रथप्रां त्वेषमिन्द्रं न सत्पतिम् ।
यस्य श्रवांसि तूर्वथ पन्यंपन्यं च कृष्टयः ॥ १० ॥

अर्थ— [१३४८] (अमृतं जातवेदसं तमांसि तिरः दर्शतं) अमृत स्वरूप, संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाला, अन्धकारको दूर करके सत्यज्ञानको दर्शानेवाला और (घृताहवनं ईड्यं) घृतसे आहुत किये जाने योग्य, स्तुत्य अग्निकी हम माननीय स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

[१३४९] (इमे सबाधः जुह्वानासः यतस्रुचः) ये सब लोग यज्ञ करते हुये हाथमें स्रुवेके दण्डको धारण किये हुये (यं अग्निं हव्येभिः ईळते) जिस अग्निकी हवियोंसे स्तुति करते हैं, उसे हम प्राप्त करें ॥ ६ ॥

[१३५०] हे (मन्द्र, सुजात, सुक्रतो, अमूर दस्म अतिथे अग्ने) हर्षजनक सुखस्वरूप शुभ कर्म और प्रज्ञावाले मेधावी दर्शनीय और अतिथिवत् पूज्य अग्ने ! (ते इयं नव्यसी मतिः अस्मत् अधायि) तेरी यह स्तुतिके योग्य ज्ञानमयी बुद्धि हमारेमें स्थिर हो ॥ ७ ॥

१ ते इयं नव्यसी मतिः अस्मत् अधायि— तेरी यह स्तुतिके योग्य बुद्धि हमारे अन्दर स्थिर हो ।

[१३५१] हे (अग्ने) अग्ने ! (सा शंतमा चनिष्ठा ते प्रिया भवतु) वह हमारे द्वारा की गई स्तुति अत्यन्त सुखकारी, अन्नवती और तेरे लिये प्रियकारी हो। (तया सुष्टुतः वर्धस्व) उस स्तुतिसे अच्छी प्रकार प्रशंसित होकर तू वृद्धिको प्राप्त हो ॥ ८ ॥

[१३५२] हे अग्ने ! हमारी (सा द्युम्नैः द्युम्निनी) वह प्रकाशमान यथेष्ट तेजवाली स्तुति (वृत्रतूर्ये श्रवसि बृहत् श्रवः उपोप दधीत) रणक्षेत्रमें यशोंमें श्रेष्ठ विशाल यशको शत्रुओंसे छीनकर हमें प्रदान करनेवाली हो ॥ ९ ॥

[१३५३] (गां अश्वं इव) गौके समान, अश्वके समान (रथप्रां) महारथीके समान (इन्द्रं न) इन्द्रके समान (सत्पतिं त्वेषं) सज्जनोंके पालक दीप्तिमान् अग्निकी मनुष्य परिचर्या करते हैं । (यस्य श्रवांसि च पन्यं पन्यं तूर्वथ) जिस अग्निके बलसे लोग श्रेष्ठ अन्नों और उत्तम ऐश्वर्योंको प्राप्त करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— यह अग्नि अपने मित्रकी शक्तिको बढानेवाला, अमृतरूप तथा अन्धकारको हटाकर सत्य ज्ञानको दिखानेवाला है । इस अग्निको प्रसन्न करनेके लिए मनुष्य यज्ञमें घृतकी आहुतियां देते हैं ॥ ५-६ ॥

हे अग्ने ! हमारे अन्दर तेरी स्तुतिके योग्य बुद्धि स्थिर हो और उस उत्तम बुद्धिसे प्रेरित होकर हम तेरी अत्यन्त उत्तम स्तुति करें । वह स्तुति हमारे लिए भी सुखकारी एवं अन्नको देनेवाली हो, साथ ही तुझे भी उन्नत करे ॥ ७-८ ॥

हे अग्ने ! हमें ऐसा बल दे कि हम शत्रुओंको हराकर विशाल यश प्राप्त करें तथा तेरी इन्द्रके समान सेवा करें और सज्जनोंका पालन करें । इस प्रकार तेरी कृपासे हम उत्तम ऐश्वर्योंको प्राप्त करें ॥ ९-१० ॥

१३५४ यं त्वा गोपवनो गिरा चनिष्ठदग्ने अङ्गिरः । स पावक श्रुधी हवम् ॥ ११ ॥
१३५५ यं त्वा जनास ईळते सबाधो वाजसातये । स बोधि वृत्रतूर्ये ॥ १२ ॥
१३५६ अहं हुवान आर्क्षे श्रुतर्वणि मदच्युति ।
शर्धांसीव स्तुकाविनां मृक्षा शीर्षा चतुर्णाम् ॥ १३ ॥
१३५७ मां चत्वार आशवः शविष्ठस्य द्रवित्नवः ।
सुरथासो अभि प्रयो वक्षन् वयो न तुग्र्यम् ॥ १४ ॥
१३५८ सत्यमित् त्वा महेनदि परुष्ण्यव देदिशम् ।
नेमापो अश्वदातरः शविष्ठादस्ति मर्त्यः ॥ १५ ॥

[७५]

(ऋषिः- विरूप आङ्गिरसः । देवताः- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

१३५९ युक्ष्वा हि देवहूतमाँ अश्वाँ अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्व्यः सदः ॥ १ ॥

अर्थ— [१३५४] हे (पावक अंगिरः अग्ने) पवित्र करनेवाले तेजस्विन् अग्ने ! (यं त्वा) जिस तुझे (गोपवनः) वाणीके पालक ऋषिने (गिरा चनिष्ठत्) अपनी वाणीके द्वारा अतिशय बलशाली बनाया। (सः हवं (श्रुधि वह प्रसिद्ध तू हमारे आह्वानको भी सुन ॥ ११ ॥

[१३५५] हे अग्ने ! (यं त्वा) जिस तुझे (जनासः सबाधः) स्तोतालोग तथा बाधासे पीडित दुःखीजन (वाजसातये ईळते) बलकी प्राप्तिके लिए बुलाते हैं, (सः वृत्रतूर्ये बोधि) वह तू शत्रुओंके नाश अथवा पापक्षयके लिए हमें ज्ञानयुक्त कर ॥ १२ ॥

[१३५६] (मदच्युति आर्क्षे श्रुतर्वणि) शत्रुओंके अहंकारको नष्ट करनेवाले ऋक्षके पुत्र श्रुतर्वाके यज्ञमें (हुवानः अहं) बुलाये गये मैंने (स्तुकाविनां शर्धांसि इव) भेडोंके बालोंके समान (चतुर्णां शीर्षा मृक्षा) चार घोडोंके सिरोंको शुद्ध किया ॥ १३ ॥

[१३५७] (शविष्ठस्य) बलशाली श्रुतर्वणके (सुरथासः) उत्तम रथोंवाले (द्रवित्नवः चत्वारः आशवः) शीघ्रगामी चार घोडोंने (मां) मुझे (प्रयः अभि वक्षन्) मेरे लक्ष्य स्थान पर उसी तरह पहुंचा दिया, (वयः तुग्र्यं न) जिस तरह पक्षियोंने तुग्रके पुत्र भुज्युको उसके स्थान पर पहुंचाया था ॥ १४ ॥

[१३५८] हे (महेनदि परुष्णि) महानदी परुष्णि ! (त्वां) तुझसे मैं (सत्यं इत् अव देदिशं) सचमुच ही कहता हूँ, हे (आपः) जलो ! तुमसे भी सच कहता हूँ कि (ईम् शविष्ठात्) इस बलवान् श्रुतर्वाकी अपेक्षा अधिक (अश्व दातरः) घोडे देनेवाला (मर्त्यः न अस्ति) मनुष्य और कोई नहीं है ॥ १५ ॥

[७५]

[१३५९] हे (अग्ने) अग्ने ! (देवहूतमान् अश्वान् रथी इव युक्ष्व) देवताओंको बुलाकर लानेवाले वेगवान् अश्वोंको सारथीके समान अपने रथमें जोड, और (होता पूर्व्यः निषदः) होम निष्पादक और सबसे मुख्य होकर रथमें विराजमान हो ॥ १ ॥

भावार्थ— जो ज्ञानी पुरुष उत्तम रीतिसे अपनी वाणीका पालन करता है, वही पुरुष अपने शरीरस्थ अग्निको प्रदीप्त करता है, वह कभी दुःखी नहीं होता, अपितु शक्तिशाली होता है । मौन पालन करनेसे मनुष्यकी शक्ति बढती है, इस कारण वह कभी दुःखी नहीं होता ॥ ११-१२ ॥

ज्ञानी वीरके यज्ञमें ज्ञानी ब्राह्मणोंको घोडे दानमें दिए जाते थे ॥ १३ ॥

घोडे शीघ्रगामी, बलशाली तथा रथके स्वामीको उसके लक्ष्य स्थान पर पहुंचानेवाले हों । ज्ञानी ब्राह्मणको अधिकसे अधिक घोडोंका दान किया जाए ॥ १४-१५ ॥

१३६० उत नो देव देवाँ अच्छा वोचो विदुष्टरः । श्रद्विश्वा वार्या कृधि ॥ २ ॥
१३६१ त्वं ह यद्यविष्ठ्य सहसः सूनवाहुत । ऋतावा यज्ञियो भुवः ॥ ३ ॥
१३६२ अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी रयीणाम् ॥ ४ ॥
१३६३ तं नेमिमृभवो यथा ऽऽनमस्व सहूतिभिः । नेदीयो यज्ञमङ्गिरः ॥ ५ ॥
१३६४ तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया । वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम् ॥ ६ ॥
१३६५ कमु ष्विदस्य सेनया ऽग्नेरपाकचक्षसः । पणिं गोषु स्तरामहे ॥ ७ ॥
१३६६ मा नो देवानां विशः प्रस्नातीरिवोस्राः । कृशं न हासुरघ्न्याः ॥ ८ ॥

अर्थ-- [१३६०] हे (देव) दिव्य गुण युक्त अग्ने! तू (विदुष्टरः नः देवान् अच्छा वोचः) उत्तम विद्वान् होकर हम सब विद्वानोंको उपदेश दे । (उत विश्वा वार्या श्रत् कृधि) और सम्पूर्ण वरण करने योग्य ज्ञानोंको सत्य रूपमें प्रकट कर ॥ २ ॥

[१३६१] हे (यविष्ठ्य, सहसः सूनो, आहुत) सबसे अधिक तरुण, बलके पुत्र और आहुति द्वारा प्रज्वलित किये गये अग्ने ! (त्वं यत् ह ऋतावा यज्ञियः भुवः) तू चूंकि सत्यका पालक और यज्ञके योग्य है, इसीलिए तेरी पूजा करते हैं ॥ ३ ॥

[१३६२] (अयं अग्निः) यह अग्नि (शतिनः सहस्रिणः, वाजस्य पति) सैंकडों और हजारों संख्यावाले अन्नका स्वामी (रयीणां मूर्धा कविः) ऐश्वर्योंका शिरःस्थानीय प्रमुख और मेधावी है ॥ ४ ॥

[१३६३] हे (अङ्गिरः) अंगरसोंके ज्ञाता अग्ने ! (यथा ऋभवः नेमि) जिस प्रकार विद्वान् शिल्पी लोग रथनेमिको उत्तम बनाते हैं, उसी प्रकार तू भी (सहूतिभिः नेदीयः तं यज्ञं नमस्व) समान रूपसे आह्वान करने योग्य देवोंके साथ अत्यन्त समीप उस यज्ञको उत्तम और पूज्य बना ॥ ५ ॥

[१३६४] हे (विरूप) विशेषरूपवान् जन ! तू (तस्मै अभिद्यवे वृष्णे) उस तेजस्वी बलवान् अग्निकी (नित्यया वाचा नूनं सुष्टुतिं चोदस्व) अविनाशी वाणीसे निश्चयरूपसे उत्तम स्तुति कर ॥ ६ ॥

[१३६५] (अस्य अपाकचक्षसः अग्नेः) इस विशाल दृष्टिवाले अग्निकी (सेनया) ज्वालासे हम (गोषु कमु स्वित् पणिं स्तरामहे) गौवोंके बीचमें स्थित किस पणिनामक राक्षसको उस गौवोंकी प्राप्तिके निमित्तसे मारें ॥७॥

[१३६६] हे अग्ने ! (देवानां विशः) सब देवोंकी प्रजाएं (प्रस्नातीः उस्राः इव नः मा हासुः) दूध देनेवाली गौवोंकी तरह हम लोगोंको न छोडें । जिस प्रकार (अघ्न्याः कृशं न) गायें अपने निर्बल बच्चोंको नहीं त्यागती हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार कुशल रथी उत्तम घोडोंको रथमें जोडकर उसपर विद्वानोंके साथ बैठते हैं, उसी प्रकार यह अग्नि भी यज्ञका सम्पादन उत्तम रीतिसे करता हुआ उस यज्ञमें श्रेष्ठ विद्वानोंके साथ विराजमान् होवे । अग्नि स्वयं भी विद्वान् और श्रेष्ठ धनोंका स्वामी है, इसलिए वह दूसरे विद्वानोंका सम्मान करता है और उनको सम्पत्तिमान् बनाना जानता है ॥ १–२ ॥

यह अग्रणी हमेशा सत्यके मार्गपर चलनेवाला और सत्यकी रक्षा करनेवाला होनेके कारण पूज्य है । इस प्रकार पूज्य होनेके कारण वह अनेक तरहके अन्नोंका स्वामी है और सभी तरहकी सम्पत्तियोंपर अधिकार करता है ॥ ३–४ ॥

जिस प्रकार कारीगर रथकी नाभिको नंवाकर उसे सुन्दर और सरलतासे चलने योग्य बनाते हैं, उसी प्रकार हे अग्ने ! तू भी हमारे यज्ञोंको सुन्दर बनाकर उनमें देवोंको बुला ला । हे सुन्दर रूपवान् मनुष्य ! तू भी अपनी उत्तम और मधुर वाणीसे इस बलवान् अग्निकी रोज स्तुति किया कर ॥ ५–६ ॥

यह अग्नि अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टिवाला है अर्थात् सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थोंके बारेमें भी सब कुछ जानता है । वह अपनी ज्वालाओंसे अन्धकाररूपी असुरोंको मार भगाता है । तथा अपने उपासकोंकी हर तरहसे रक्षा करता है जिस प्रकार दुधारु गायें अपने बछडोंपर बहुत ज्यादा प्रेम करती हैं और कभी भी उनका त्याग नहीं करतीं, उसी तरह अग्नि भी अपने उपासकोंका कभी त्याग नहीं करता ॥ ७–८ ॥

१३६७ मा नः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अंहतिः । ऊर्मिर्न नावमा वधीत् ॥ ९ ॥
१३६८ नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥ १० ॥
१३६९ कुवित् सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस्कृधि ॥ ११ ॥
१३७० मा नो अस्मिन् महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा । संवर्गं सं रयिं जय ॥ १२ ॥
१३७१ अन्यमस्मद्भिया इयमग्ने सिषक्तु दुच्छुना । वर्धा नो अमवच्छवः ॥ १३ ॥
१३७२ यस्याजुषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा । तं घेदग्निर्वृधावति ॥ १४ ॥
१३७३ परस्या अधि संवतोऽवराँ अभ्या तर । यत्राहमस्मि ताँ अव ॥ १५ ॥

अर्थ— [१३६७] (न ऊर्मिः नावं आ) जिस प्रकार समुद्रकी तरङ्ग नौकाको सब ओरसे आघात पहुंचाती है, उसी प्रकार (समस्य, परिद्वेषसः दूढ्यः अंहतिः मा वधीत्) सबसे सब प्रकारसे द्वेष करनेवाले पाप बुद्धिवालेकी आघात पहुँचनेकी प्रवृत्ति हम लोगोंको कभी भी पीडित न करे ॥ ९ ॥

[१३६८] हे (देव अग्ने) तेजस्विन् अग्ने ! (ते ओजसे कृष्टय नमः गृणन्ति) तेरे बलके लिये सब मनुष्य विनयपूर्वक नमस्कार करते हैं। तू अपने (अमैः अमित्रं अर्दय) बलोंसे शत्रुका नाश कर ॥ १० ॥

[१३६९] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (नः गविष्टये कुवित् रयिं संवेषिषः) हमको गौ अथवा भूमिको प्राप्त करनेके लिये बहुत धन अच्छी प्रकार प्रदान कर। तू (उरुकृत्, नः उरु कृधि) हर प्रकारकी उन्नति करनेवाला है अतः हमारे धनकी वृद्धि कर ॥ ११ ॥

[१३७०] हे (अग्ने) अग्ने ! (यथा भारभृत्) जिस प्रकार बोझको ढोनेवाला थककर बोझको दूर फेंक देता है, उसी प्रकार तू (नः अस्मिन् महाधने मा परा वर्क्) हमारा इस महा संग्राममें मत परित्याग कर, अपितु (संवर्गं रयिं संजय) शत्रुओंके धनका विजय कर ॥ १२ ॥

[१३७१] हे (अग्ने) अग्ने ! तेरी (इयं दुच्छुना असत् अन्यं भियै सिषक्तु) यह दुःखदायिनी शक्ति हमसे भिन्न दूसरेको भयभीत करे। तू (नः अमवत् शवः वर्ध) हमारे बलसे युक्त वेगको बढा ॥ १३ ॥

[१३७२] (यस्य नमस्विनः वा अदुर्मखस्य शमीं अग्निः अजुषत) जिस नमस्कारके करनेवाले अथवा अदोषयुक्त यज्ञके करनेवालेके कर्मको अग्नि स्वीकार कर लेता है, (तं घ इत् वृधा अवति) उसकी वह वृद्धियुक्त संपदासे रक्षा करता है ॥ १४ ॥

[१३७३] हे अग्ने ! (परस्याः संवतः अवरान् अभि अधि आ तर) शत्रुओंकी सेनाकी अपेक्षा हमारी सेनामें सम्मिलित होकर उसका उद्धार कर। और (यत्र अहं अस्मि तान् अव) जिस सेनामें मैं हूँ उसकी रक्षा कर ॥ १५ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! लोग तुझसे सामर्थ्यको प्राप्त करनेके लिए तेरी स्तुति करते हैं, अतः तू उन्हें सामर्थ्य प्रदान करके उनके शत्रुओंका नाश कर ताकि तेरे उपासकोंके शत्रु उपासकोंका नाश न कर सकें ॥ ९-१० ॥

हे अग्ने ! जिस प्रकार एक बोझ ढोनेवाला भारसे तंग आकर उसे दूर फेंक देता है, उसी प्रकार तू भी हमसे तंग आकर हमें दूर न फेंक दे, अपितु तू हमारी हर तरहसे सहायता करके हमें शत्रुओंका धन दिला, ताकि उस धनसे हम गाय और भूमि आदि प्राप्त कर सकें। इस प्रकार हमारी हर तरहसे उन्नति कर ॥ ११-१२ ॥

इस अग्निकी सन्ताप देनेवाली शक्ति शत्रुओंको ही भयभीत करती है, अपने मित्रोंको नहीं। इसके विपरीत जिस नम्रतापूर्वक उपासना करनेवाले और दोषरहित यज्ञ करनेवालेके कर्मकी यह अग्नि प्रशंसा करता है, उसकी सेनाकी शक्तिको बढाकर अग्नि उसकी हर तरहसे रक्षा करता है ॥ १३-१४ ॥

१३७४ विद्मा हि ते पुरा वयमग्ने पितुर्यथावसः । अधा ते सुम्नमीमहे ॥ १६ ॥

[७६]

(ऋषिः- कुरुसुतिः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

१३७५ इमं नु मायिनं हुव इन्द्रमीशानमोजसा । मरुत्वन्तं न वृञ्जसे ॥ १ ॥
१३७६ अयमिन्द्रो मरुत्सखा वि वृत्रस्याभिनच्छिरः । वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥
१३७७ वावृधानो मरुत्सखेन्द्रो वि वृत्रमैरयत् । सृजन् त्समुद्रिया अपः ॥ ३ ॥
१३७८ अयं ह येन वा इदं स्वर्मरुत्वता जितम् । इन्द्रेण सोमपीतये ॥ ४ ॥
१३७९ मरुत्वन्तमृजीषिणमोजस्वन्तं विरप्शिनम् । इन्द्रं गीर्भिर्हवामहे ॥ ५ ॥
१३८० इन्द्रं प्रत्नेन मन्मना मरुत्वन्तं हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥

अर्थ— [१३७४] हे (अग्ने) अग्ने ! (यथा अवसः पितुः) जिस प्रकार रक्षक पिताके उत्तम सुखको पुत्र चाहता है, उसी प्रकार (ते सुम्नं पुरा हि विद्म) रक्षक तेरे सुखको हम जैसे पहले जानते थे, वैसा ही अब भी जानते हैं। (अध ते ईमहे) अब उस सुखकी ही तुझसे हम याचना करते हैं ॥ १६ ॥

[७६]

[१३७५] मैं (मायिनं) प्रज्ञावाले (ओजसा ईशानं) बलसे सब पर शासन करनेवाले, (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त (न) प्रशंसित (इमं इन्द्रं) इस इन्द्रको (वृञ्जसे) शत्रुओंको मारनेके लिए (हुवे) बुलाता हूँ ॥१॥

[१३७६] (मरुत्सखा अयं इन्द्रः) मरुतोंकी सहायतासे युक्त इस इन्द्रने (शत पर्वणा वज्रेण) सैंकडों धाराओंवाले वज्रसे (वृत्रस्य शिरः) वृत्रके सिरको (वि अभिनत्) काट डाला ॥ २ ॥

[१३७७] (मरुत्सखा वावृधानः इन्द्रः) मरुतोंके मित्र, बढते हुए इन्द्रने (समुद्रिया अपः सृजन्) अन्तरिक्षमें स्थित पानियोंको बहाते हुए (वृत्रं ऐरयत्) वृत्रको मारा ॥ ३ ॥

[१३७८] (अयं ह) यह ही [वह इन्द्र है] (येन इन्द्रेण) जिस इन्द्रने (सोमपीतये) सोमपानके लिए (मरुत्वता इदं स्वः जितं) मरुतोंकी सहायतासे इस स्वर्गको जीत लिया था ॥ ४ ॥

[१३७९] (मरुत्वन्तं, ऋजीषिणं) मरुतोंसे युक्त, सरल स्वभाववाले (ओजस्वन्तं विरप्शिनं) ओजवाले तथा महान् (इन्द्रं) इन्द्रको हम (गीर्भिः) स्तुतियोंसे सहायार्थ (हवामहे) बुलाते हैं ॥ ५ ॥

[१३८०] हम (प्रत्नेन मन्मना) प्राचीन स्तोत्रसे (मरुत्वन्तं इन्द्रं) मरुतोंकी सहायतावाले इन्द्रको (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमको पीनेके लिए (हवामहे) बुलाते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! यह हम अच्छी तरह जानते थे और अब भी इस बातको अच्छी तरह जानते हैं कि तू ही एकमात्र सब सुखोंका प्रदान करनेवाला है। तेरे सिवाय और कोई सुख प्रदान करनेवाला नहीं है। इसीलिए हम तुझसे सुखकी कामना करते हैं। तू हमारी प्रार्थना पर ध्यान देकर हमारे पक्षमें आ मिल और हमारी उन्नति कर ॥ १५–१६ ॥

उत्तम बुद्धिवाले तथा बलसे सब पर शासन करनेवाले, मरुतोंकी सहायतासे युक्त इन्द्रने अपने उपासकोंकी प्रार्थना पर शत्रुओंका विनाश किया ॥ १–२ ॥

मरुतों अर्थात् वायुकी सहायतासे इस इन्द्र अर्थात् विद्युतने वृत्र मेघोंको मारकर अन्तरिक्षरूपी समुद्रमें भरे हुए जलोंको पृथ्वी पर बहनेके लिए मुक्त किया ॥ ३–४ ॥

हम अपनी मधुर प्रार्थनाओंसे सरल स्वभाववाले, ओजस्वी और महान् इन्द्रको सोमपान करनेके लिए बुलाते हैं ॥ ५–६ ॥

१३८१ मरुत्वाँ इन्द्र मीढ्वः पिबा सोमं शतक्रतो । अस्मिन् यज्ञे पुरुष्टुत ॥ ७ ॥
१३८२ तुभ्येदिन्द्र मरुत्वते सुताः सोमासो अद्रिवः । हृदा हूयन्त उक्थिनः ॥ ८ ॥
१३८३ पिबेदिन्द्र मरुत्सखा सुतं सोमं दिविष्टिषु । वज्रं शिशान ओजसा ॥ ९ ॥
१३८४ उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ १० ॥
१३८५ अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् । इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥ ११ ॥
१३८६ वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात् परि तन्वं ममे ॥ १२ ॥

[७७]

(ऋषिः- कुरुसुतिः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री १०-११ प्रगाथः = (बृहती, सतोबृहती) ।)

१३८७ जज्ञानो नु शतक्रतुर्वि पृच्छदिति मातरम् । क उग्राः के ह शृण्विरे ॥ १ ॥

अर्थ— [१३८१] हे (मरुत्वान् मीढ्वः शतक्रतो पुरु-स्तुत इन्द्र) मरुतोंसे युक्त, सुखकी वर्षा करनेवाले, सैंकडों शुभकर्मोंके कर्ता तथा अनेकोंसे बुलाये जानेवाले इन्द्र ! (अस्मिन् यज्ञे सोमं पिब) तू इस यज्ञमें सोम पी ॥७॥

[१३८२] हे (अद्रिवः इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र ! (मरुत्वते तुभ्या इत्) मरुतोंवाले तेरे लिए ही जिन्होंने (सोमासः सुताः) सोमोंको निचोडा है, ऐसे (उक्थिनः) स्तोता गण तुझे (हृदा हूयन्ते) हृदयसे बुलाते हैं ॥८॥

[१३८३] हे (मरुत्सखा इन्द्र) मरुतोंके मित्र इन्द्र ! हमारे (दिविष्टिषु इत्) यज्ञोंमें ही (ओजसा वज्रं शिशानः) बलसे वज्रको तीक्ष्ण करते हुए (सुतं सोमं पिब) सोमको पी ॥ ९ ॥

[१३८४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (चमू सुतं सोमं) पात्रमें निकाले गए सोमको (पीत्वी) पीकर (ओजसा सह उत्तिष्ठन्) बलके साथ उठकर अपने (शिप्रे अवेपयः) शिरस्त्राणको कंपा ॥ १० ॥

[१३८५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यद्) जब तू (दस्यु-हा भवः) राक्षसको मारते हो, तब (क्रक्षमाणं त्वा) शत्रुको मारनेवाले तुझको (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोक (अनु अकृपेताम्) समर्थ करते हैं ॥ ११ ॥

१ क्रक्षमाणं इन्द्रं उभे रोदसी अकृपेताम्— शत्रुको मारनेवाले इन्द्रको दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोक सामर्थ्यवान् करते हैं ।

[१३८६] (अष्टापदीं नवस्रक्तिं, ऋतस्पृशं तन्वं) आठ पदोंवाली, नौ स्रक्तियोंवाली, यज्ञमें प्रयुक्त, विस्तृत (वाचं) स्तुतिको (अहं) मैं (इन्द्रात् परि ममे) इन्द्रके लिए करता हूँ ॥ १२ ॥

[७७]

[१३८७] (जज्ञानः नु शतक्रतुः) उत्पन्न होते ही इन्द्रने अपनी (मातरं इति वि पृच्छत्) मातासे इस प्रकार पूछा, कि (के के ह उग्राः शृण्विरे) कौन कौन वीर सुने जाते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ — हे वज्रधारी इन्द्र ! मरुतोंकी सहायता प्राप्त करनेवाले तेरे लिए ही यह सोमरस निचोडकर रखा गया है, अतः सुखकी वर्षा करनेवाला और सैंकडों शुभ कर्मोंको करनेवाला तू हमारे पास आकर सोम पी ॥ ७-८ ॥

हे मरुतोंके मित्र इन्द्र ! यज्ञोंमें अपने बलको प्रकट करके तू इन सोमरसोंको पी और हर्षको प्राप्त हो ॥ ९-१० ॥

जब इन्द्र राक्षसोंको मारता है, तब सभी लोक इस इन्द्रकी शक्तिको बढाते हैं, और उसके लिए स्तुतियां की जाती हैं ॥ ११-१२ ॥

१३८८ आदीं शवस्यब्रवी—दौर्णवाभमहीशुवम् । ते पुत्र सन्तु निष्टुरः ॥ २ ॥
१३८९ समित् तान् वृत्रहाखिदत् खे अराँ इव खेदया । प्रवृद्धो दस्युहाभवत् ॥ ३ ॥
१३९० एकया प्रतिधापिबत् साकं सरांसि त्रिंशतम् । इन्द्रः सोमस्य काणुका ॥ ४ ॥
१३९१ अभि गन्धर्वमतृण—दबुध्नेषु रजःस्वा । इन्द्रो ब्रह्मभ्य इद्वृधे ॥ ५ ॥
१३९२ निराविध्यद्गिरिभ्य आ धारयत् पक्कमोदनम् । इन्द्रो बुन्दं स्वाततम् ॥ ६ ॥
१३९३ शतब्रध्न इषुस्तव सहस्रपर्ण एक इत् । यमिन्द्र चकृषे युजम् ॥ ७ ॥
१३९४ तेन स्तोतृभ्य आ भर नृभ्यो नारिभ्यो अत्तवे । सद्यो जात ऋभुष्ठिर ॥ ८ ॥

अर्थ— [१३८८] (आत्) पूछनेके बाद ही (शवसी ईं अब्रवीत्) बलवती माताने इन्द्रसे कहा, कि हे (पुत्र) पुत्र ! (और्णवाभं अहीशुवं) और्णवाभ और अहीशुव ये दो असुर (ते निस्तुरः सन्तु) तेरे द्वारा मारने योग्य हों ॥ २ ॥

[१३८९] तब (वृत्र-हा) वृत्रको मारनेवाले इन्द्रने (तान् सं इत्) उन असुरोंको एक साथ ही (खे अरान् इव) जैसे रथकी नाभिमें अरोंको बांधते हैं, उसी प्रकार (खेदया) बन्धनसे (अखिदत्) बांध दिया, और तब (दस्यु-हा) असुरोंको मारनेवाला वह इन्द्र (प्र-वृद्धः अभवत्) बढा ॥ ३ ॥

[१३९०] (इन्द्रः) यह इन्द्र (सोमस्य) सोमके (त्रिंशतं काणुका सरांसि) तीस सुन्दर पात्रोंको (साकं) एक साथ (एकया प्रतिधा अपिबत्) एक ही सांसमें पी गया ॥ ४ ॥

प्रतिधा— पीनेके लिए पात्रमें होठ लगाना

[१३९१] (इन्द्रः) इन्द्रने (ब्रह्मभ्यः इत् वृधे) ज्ञानियोंको बढानेके लिए (अ-बुध्नेषु रजः सु) मूल रहित लोकोंमें स्थित (गन्धर्वं) मेघको (अभि आ अतृणत्) चारों ओरसे मारा ॥ ५ ॥

[१३९२] (इन्द्रः) इन्द्रने (गिरिभ्यः निः अविध्यत्) मेघोंसे [पानीको] निकाला और (सु आततं बुन्दं) विस्तृत शस्त्रको तथा (पक्वं ओदनं) पके हुए अन्नको (आ धारयत्) धारण किया ॥ ६ ॥

[१३९३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यं युजं चकृषे) जिसको [अपने धनुषमें] संयुक्त करता है, वह (तव इषुः) तेरा बाण (शत ब्रध्नः) सैकडों धाराओंवाला, तथा (सहस्रपर्णः) हजारों पंखवाला तथा (एकः इत्) एक ही है ॥ ७ ॥

१ तव इषुः शतब्रध्नः, सहस्रपर्णः, एकः इत्— हे इन्द्र ! तेरा बाण सौ धाराओंवाला, हजारों पंखवाला तथा एक ही है।

[१३९४] हे (ऋभु-स्थिर) संग्राममें स्थिर रहनेवाले इन्द्र ! (सद्यः जातः) शीघ्र ही उत्पन्न होकर तू (तेन) उस बाणसे (स्तोतृभ्यः नृभ्यः नारिभ्यः) स्तोताओं, मनुष्यों और स्त्रियोंके (अत्तवे) खानेके लिए [अन्न] (आ भर) ले आ ॥ ८ ॥

भावार्थ— इन्द्रने उत्पन्न होते ही अपने शत्रुओंके बारेमें जानकर उनका नाश करना शुरु कर दिया। वीर वही होते है कि जो अपने शत्रुओंको नहीं रहने देते ॥ १-२ ॥

वीर इन्द्रने सब असुरोंको बन्धनमें उसी तरह बांध दिया कि जिस तरह रथकी नाभिमें अरे बंधे हुए होते हैं, और फिर उनको मारनेके लिए वह बलशाली हुआ। शत्रुओंका नाश करके यह इन्द्र सोम पीकर हर्षित होता है ॥ ३-४ ॥

इन्द्रने पृथ्वी पर ज्ञानियोंको सम्पन्न करनेके लिए निराधार होने पर भी टिके हुए अन्तरिक्षमें पडे हुए मेघोंको प्रेरित करके पानी बरसाया और उस वृष्टिसे अन्न उत्पन्न किया ॥ ५-६ ॥

इन्द्रके बाणोंमें अनेक धार हैं। उन बाणोंसे वह शत्रुओंका नाश करके अपने उपासकों और अन्य प्रजाओंको अन्नादिसे सम्पन्न करता है ॥ ७-८ ॥

१३९५ एता च्यौत्नानि ते कृता वर्षिष्ठानि परीणसा । हृदा वीड्वधारयः ॥ ९ ॥

१३९६ विश्वेत् ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेषितः ।
शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम् ॥ १० ॥

१३९७ तुविक्षं ते सुकृतं सूमयं धनुः साधुर्बुन्दो हिरण्ययः ।
उभा ते बाहू रण्या सुसंस्कृत ऋदूपे चिदृदूवृधा ॥ ११ ॥

[७८]

(ऋषिः- कुरुसुतिः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री, १० बृहती ।)

१३९८ पुरोळाशं नो अन्धस इन्द्र सहस्रमा भर । शता च शूर गोनाम् ॥ १ ॥

१३९९ आ नो भर व्यञ्जनं गामश्वमभ्यञ्जनम् । सचा मना हिरण्यया ॥ २ ॥

अर्थ— [१३९५] हे इन्द्र ! (एता वर्षिष्ठानि च्यौत्नानि ते कृता) ये बलवान् सेनायें तेरे द्वारा संगठित की गई हैं, अतः इनको (वीडु परीणसा हृदा) स्थिर तथा कोमल हृदयसे (अ धारयः) धारण कर ॥ ९ ॥

[१३९६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वा इषितः) तुझसे प्रेरित हुआ (उरु क्रमः) महान् पराक्रमवाला (विष्णुः) विष्णु (शतं महिषान्) सौ बलवान् बैलोंको (क्षीर-पाकं ओदनं) दूधमें पके हुए भात तथा (एमुषं वराहं) जलसे भरे हुए मेघ (ता विश्वा इत्) उन संपूर्ण पदार्थोंको (आभरत्) ले आया ॥ १० ॥

[१३९७] हे इन्द्र ! (ते धनुः) तेरा धनुष (तु विक्षं) बहुत बाण फेंकनेवाला, (सु-कृतं) अच्छी तरह बनाया हुआ और (सूमयं) अत्यन्त सुखकारी है, तथा तेरा (बुन्दः) बाण भी (साधुः) उत्तम और (हिरण्ययः) सोनेसे युक्त है, तथा (ते उभा बाहू) तेरी दोनों भुजायें (रण्या सु-संस्कृत) सुखकारी, उत्तम (ऋत् रूपे) शत्रुके नाशक तथा (ऋधूवृधा चित्) यज्ञको बढानेवाली हैं ॥ ११ ॥

[७८]

[१३९८] हे (शूर) शूर (इन्द्र) इन्द्र ! सोमरूप (अन्धसः) अन्नके (सहस्रम्) सहस्र (पुरोडाशम्) पुरोडाश और (गोनाम्) गौओंके (शता च) सैकडों झुण्ड (नः) हमारे लिये (आ भर) ला ॥ १ ॥

[१३९९] हे इन्द्र ! तू अन्नादिके संस्कारक (वि-अञ्जनम्) व्यञ्जन, (गाम्) गाय, (अश्वम्) घोडा (अभि-अञ्जनम्) तेल और (सचा) साथ ही (मना) मननीय (हिरण्यया) स्वर्ण-आदि वस्तु (नः) हमारे पास (आ भर) ला ॥ २ ॥

भावार्थ— इन्द्र एक उत्तम संगठनकर्ता है, इसलिए सबसे यथायोग्य वर्तन करता है। इसी इन्द्रसे प्रेरित होकर विष्णु भी शत्रुओंका संहार करता है ॥ ९-१० ॥

हे इन्द्र ! तेरा धनुष बहुत बाण फेंकनेवाला, अच्छी तरह बनाया हुआ, और अत्यन्त सुखकारी है। तेरा बाण उत्तम और सोनेवाला है। तेरी दोनों भुजाएं सुखकारी, उत्तम और शत्रुके नाशक तथा यज्ञको बढानेवाली हैं ॥ ११ ॥

इन्द्रके निमित्त पुरोडाश दिया जाता है वह भी इन्द्रसे ही प्राप्त होता है। राजा प्रजाको धन-सम्पन्न करे तभी उसे अधिक कर प्राप्त होगा ॥ १ ॥

इन्द्र दही, शाक, दाल आदि व्यञ्जन, पशु और स्वर्ण आदि धन प्रदान करता है ॥ २ ॥

×

१४०० उत नः कर्णशोभना पुरूणि धृष्णवा भर । त्वं हि शृण्विषे वसो ॥ ३ ॥
१४०१ नकीं वृधीक इन्द्र ते न सुषा न सुदा उत । नान्यस्त्वच्छूर वाघतः ॥ ४ ॥
१४०२ नकीमिन्द्रो निकर्तवे न शक्रः परिशक्तवे । विश्वं शृणोति पश्यति ॥ ५ ॥
१४०३ स मन्युं मर्त्यानामदब्धो नि चिकीषते । पुरा निदश्चिकीषते ॥ ६ ॥
१४०४ क्रत्व इत् पूर्णमुदरं तुरस्यास्ति विधतः । वृत्रघ्नः सोमपाव्नः ॥ ७ ॥
१४०५ त्वे वसूनि संगता विश्वा च सोम सौभगा । सुदात्वपरिह्वृता ॥ ८ ॥

अर्थ— [१४००] हे (धृष्णो) शत्रु-नाशक (वसो) धन-सम्पन्न इन्द्र ! (उत) और (पुरूणि) बहुतसे (कर्ण-शोभना) कानके आभूषण (नः) हमारे लिये (आ भर) ला, क्योंकि (त्वं हि) तू ही यजमानोंकी बात (शृण्विषे) सुनता है ॥ ३ ॥

[१४०१] हे (शूर) शूर (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तुझे (वृधीकः) बढा बनानेवाला कोई (नकीम्) नहीं है। तुझे (सु-साः) बाँटने और धनादि (सु-दाः) देनेवाला अन्य कोई (न न) नहीं है अर्थात् तू स्वतः महान् और सबका दाता है। (वाघतः) ऋत्विजोंका, (त्वत्) तुझसे (अन्यः) भिन्न, नेता भी (न) नहीं है ॥ ४ ॥

[१४०२] (इन्द्रः) इन्द्र (नि-कर्तवे) काटा (नकीम्) नहीं जा सकता, (शक्रः) शक्तिशाली वह (परि-शक्तवे) पराजित (न) नहीं किया जा सकता। वह (विश्वम्) सब कुछ (शृणोति) सुनता और (पश्यति) देखता है ॥ ५ ॥

[१४०३] (सः) वह (अदब्धः) न दबनेवाला इन्द्र, दुष्ट (मर्त्यानाम्) मनुष्योंका, (मन्युम्) क्रोध (नि चिकीषते) नीचा कर देता है। उनकी (निदः) निन्दासे (पुरा) पहलेही उनका क्रोध शान्त (चिकीषते) कर देता है ॥ ६ ॥

[१४०४] (तुरस्य) त्वरा करनेवालोंकी कामनाओंके (विधतः) पूरक, (वृत्र-घ्नः) वृत्र-नाशक (सोम-पाव्नः) सोम पीनेवाले (क्रत्वः) कर्म-शील इन्द्रका (इत् उदरम्) पेट सचमुच (पूर्णम्) भरा हुआ (अस्ति) है ॥ ७ ॥

[१४०५] हे (सोम) सोमवाले इन्द्र ! (अपरि-ह्वृता) कुटिलता-रहित (सु-दातु) उत्तम दान (वसूनि) धन (विश्वा च) और समग्र (सौभगा) सौभाग्य (त्वे) तुझमें (सम्-गता) संयुक्त हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— इन्द्र भोजन ही नहीं कर्ण आदिमें धारण करने योग्य आभूषण भी देता है। शरीरको यथाशक्ति आभूषणसे सजाना चाहिये, परन्तु आभूषणके भारसे शरीरको पीडित और घरको दरिद्र नहीं बनाना चाहिये ॥ ३ ॥

इन्द्र ही सबकी वृद्धि करता है उससे भिन्न वर्धक कोई नहीं। उसी प्रकार इन्द्र स्वतः महान् है उसे कोई धनादि नहीं देता, वही सबको देता है। वही स्तोताओंका एक-मात्र सहारा है। वीर लोग अपनी शक्तिसे ऐश्वर्य कमाते और लोगोंमें बाँटते हैं। वे दूसरोंसे दान नहीं माँगते ॥ ४ ॥

इन्द्र अपने चारों द्वारा शत्रुओंका सब वृत्तान्त सुनता और अपनी दृष्टिसे देखता है, उसे कोई शत्रु काट या हरा नहीं सकता। कोई शत्रु वीरको नीचा नहीं दिखा सकता, शस्त्रसे काट नहीं सकता, न हरा सकता है ॥ ५ ॥

दुष्ट लोग इन्द्र पर क्रोध करते हैं, वे उसकी निन्दा और हानि पर तत्पर होते हैं, परन्तु वह अपने दण्डसे उनके क्रोध और निन्दाको शान्त कर देता है। वीर लोग शत्रुको बढने नहीं देते, निन्दा करने योग्य होनेसे पूर्व ही उसे दबा देते हैं ॥ ६ ॥

इन्द्रका पेट सोम-रसादिसे भरा रहता है। उद्यमी कभी भूखा नहीं मरता ॥ ७ ॥

इन्द्र सोम पीकर ऐश्वर्य प्राप्त करता है अतः इन्द्रके ऐश्वर्य सोमके ही हैं। वीरोंके पास सर्व ऐश्वर्य स्थिर रहते हैं ॥ ८ ॥

१४०६ त्वामिद्यवयुर्मम कामो गव्युर्हिरण्ययुः । त्वामश्वयुरेषते ॥ ९ ॥
१४०७ तवेदिन्द्राहमाशसा हस्ते दात्रं चना ददे ।
दिनस्य वा मघवन् त्संभृतस्य वा पूर्धि यवस्य काशिना ॥ १० ॥

[७९]

(ऋषिः- कृत्नुर्भार्गवः । देवताः- सोमः । छन्दः- गायत्री, ९ अनुष्टुप् ।)

१४०८ अयं कृत्नुरगृभीतो विश्वजिदुद्भिदित् सोमः । ऋषिर्विप्रः काव्येन ॥ १ ॥
१४०९ अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्ति विश्वं यत् तुरम् । प्रेमन्धः ख्यन्निः श्रोणो भूत् ॥२॥
१४१० त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः । उरु यन्तासि वरूथम् ॥ ३ ॥
१४११ त्वं चित्ती तव दक्षैर्दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन् । यावीरघस्य चिद् द्वेषः ॥ ४ ॥

अर्थ— [१४०६] (मम) मेरा (यव-युः) जौ (गव्युः) गाय (हिरण्य-युः) सुवर्ण और (अश्व-युः) घोडेकी इच्छावाला (कामः) काम (त्वां त्वां इत्) तुझे ही (आ ईषते) चाहता है, प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

[१४०७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अहम्) मैं (तव इत्) तेरी ही (आ-शसा) आशासे (दात्रं चन) दात्रको (हस्ते) हाथमें (आ ददे) लेता हूँ । हे (मघ-वन्) धनी इन्द्र ! तू मेरे (दिनस्य वा) काटे या, कुचलकर (सम्-भृतस्य वा) रखे (यवस्य) जौकी (काशिना) मुट्ठीसे, मेरा घर (पूर्धि) पूर्ण कर दे ॥ १० ॥

[७९]

[१४०८] (अयं सोमः) यह सोम (कृत्नुः) सब कर्मोंको करनेवाला, (अगृभीतः) शत्रुओंसे पकडा न जानेवाला, पर (विश्वजित्) सम्पूर्ण शत्रुओंको जीतनेवाला (उत् भित्) पृथ्वीको फोडकर निकलनेवाला (ऋषिः विप्रः) मंत्रद्रष्टा, ज्ञानी तथा (काव्येन) स्तोत्रसे स्तुत्य है ॥ १ ॥

[१४०९] यह सोम (यत् नग्नं) जो वस्त्र रहित है, उसे वस्त्रसे (अभि ऊर्णोति) चारों ओरसे आच्छादित कर देता है । (यत् तुरं) जो रोगी है, उसके (विश्वं भिषक्ति) सब रोगोंकी चिकित्सा करता है । (अन्धः) जो अन्धा है, (ईं) उसे (प्र अख्यत्) देखने योग्य बनाता है, जो (श्रोणः) पंगु है, वह (निः भूत्) चलने लग जाता है ॥ २ ॥

[१४१०] हे (सोम) सोम ! (त्वं) तू (तनूकृद्भ्यः) शरीरको क्षीण करनेवाले, (अन्यकृतेभ्यः द्वेषोभ्यः) शत्रुओंके द्वारा किए जानेवाले द्वेषोंसे (यन्ता) संरक्षण करनेवाला, (उरु वरूथं असि) एक महान् कवच है ॥ ३ ॥

[१४११] हे (ऋजीषिन्) सरल गतिवाले सोम ! (त्वं) तू (तव चित्ती दक्षैः) अपने बुद्धि और चतुरतासे (दिवः पृथिव्याः) द्युलोक और पृथ्वीलोकसे (अघस्य द्वेषः यावीः) हमें मारनेवाले शत्रुओंको दूर कर ॥ ४ ॥

भावार्थ— मनकी अभिलाषाएं अनेक हैं । वे इन्द्रके पास ही पूर्ण हो सकती हैं, अतः यवादिके अभिलाषी इन्द्रको ही चाहते हैं या उसीके पास जाते हैं ॥ ९ ॥

कृषक प्रजा हाथमें दात्र (दरांती, हंसिया) लेती है और इन्द्रसे प्रभूत अन्नकी आशा करती है । कृषि स्वयं करनी चाहिये, तभी अन्नसे घर भर सकता है ॥ १० ॥

यह सोम निर्धनको धनवान्, रोगीको निरोगी, अज्ञानीको ज्ञानी और अविद्वानको विद्वान बनाता है । वह स्वयं भी अपने ज्ञानके कारण ज्ञानी और मंत्रद्रष्टा है ॥ १-२ ॥

यह सोम शरीरको क्षीण करनेवाले रोग रूप शत्रुओंको नष्ट करता है और एक कवचके समान वह शरीरका संरक्षण करता है । इन लोकोंमें जो भी रोग कारक कीटाणु हैं, उनका नाश यह सोमरस करता है ॥ ३-४ ॥

१४१२ अर्थिनो यन्ति चेदर्थं गच्छानिद्ददुषो रातिम् । ववृज्युस्तृष्यतः कामम् ॥ ५ ॥
१४१३ विदद्यत् पूर्व्यं नष्टमुदीमृतायुमीरयत् । प्रेमायुस्तारीदतीर्णम् ॥ ६ ॥
१४१४ सुशेवो नो मृळयाकुरदृप्तक्रतुरवातः । भवा नः सोम शं हृदे ॥ ७ ॥
१४१५ मा नः सोम सं वीविजो मा वि बीभिषथा राजन् । मा नो हार्दि त्विषा वधीः ॥ ८ ॥
१४१६ अव यत् स्वे सधस्थे देवानां दुर्मतीरीक्षे ।
राजन्नप द्विषः सेध मीढ्वो अप स्रिधः सेध ॥ ९ ॥

[८०]

(ऋषिः- एकद्यूर्नौधसः । देवताः- इन्द्रः १० देवाः । छन्दः- गायत्री, १० त्रिष्टुप् ।)

१४१७ नह्यन्यं बळाकरं मर्डितारं शतक्रतो । त्वं न इन्द्र मृळय ॥ १ ॥

अर्थ— [१४१२] (अर्थिनः चेत् अर्थं यन्ति) धनाभिलाषी जन धनकी तरफ जाते हैं, वे (ददुषः रातिं गच्छान्) दाताके दानकी ओर जाते हैं। (तृष्यतः) ऐसे अभिलाषी जन भी (कामं ववृज्युः) अपनी अभिलाषाको पूरा कर लेते हैं ॥ ५ ॥

[१४१३] सोमकी कृपासे मनुष्य (पूर्व्यं नष्टं विदत्) पहले नष्ट हुए धनको प्राप्त करता है, (ईं ऋतायुं ईरयत्) इस यज्ञको प्रेरित करता है, (ईं अतीर्णं आयुः तारीत्) तथा अपनी छोटी आयुको दीर्घ करता है ॥ ६ ॥

[१४१४] हे (सोम) सोम ! तू (नः हृदे) हमारे हृदयमें (मृळयाकुः भव) सुख देनेवाला हो, (सुशेवः) सुखकारक तू (अदृप्तक्रतुः) उन्मत्तताको नष्ट करनेवाला है, तू (अवातः शं) वातरहित होकर हमारे लिए शान्तिदायक हो ॥ ७ ॥

[१४१५] हे (सोम) सोम ! (नः मा सं वीविजः) हमें कंपित मत कर। हे (राजन्) तेजस्वी सोम ! हमें (मा वि बीभिषथा) भयभीत मत कर। (त्विषा) अपने तेजसे (नः हार्दि) हमारे हृदयमें (मा वधीः) घाव मत कर ॥ ८ ॥

[१४१६] (स्वे सधस्थे) हमारे घरों पर (देवानां दुर्मतीः अव) देवोंकी अवकृपा न हो, हे (राजन्) राजन् ! (यत् ईक्षे) जब तू देखता है, तब (द्विषः अप सेध) शत्रुओंको तू दूर कर, हे (मीढ्वः) सुखदायक सोम ! तू (स्रिधः अप सेध) हिंसकोंको दूर कर ॥ ९ ॥

[८०]

[१४१७] हे (शत-क्रतो) सैंकडों कर्मवाले इन्द्र ! (बळा) सत्यमेव, मैंने तुमसे (अन्यम्) भिन्नको अपना (मर्डितारम्) सुखदाता (नहि) नहीं (अकरम्) बनाया। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वम्) तू ही (नः) हमें (मृळय) सुखी कर ॥ १ ॥

भावार्थ— इस सोमदेवकी कृपासे धन प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले दाताके पास जाकर इच्छानुसार धन प्राप्त करते हैं। उसीकी कृपासे नष्ट हुए धन भी प्राप्त होते हैं, तथा आयु भी दीर्घ होती है ॥ ५-६ ॥

सोमरसको पीनेसे हृदयको सुख मिलता है। उसे पीनेसे उन्मत्तता उत्पन्न नहीं होती, अपितु शरीरमें पहलेसे जो उन्मत्तता होती है, वह नष्ट होकर उसकी जगह उत्साह उत्पन्न होता है। इसके पानसे वात आदि रोग भी नष्ट होते हैं। इस मंत्र परसे स्पष्ट है कि सोमरसको शराब समझना असंगत है ॥ ७ ॥

हे सोमरस ! हमारे शरीरमें जाकर हमारे शरीरको कंपित मत कर, हमें भयभीत भी मत कर, तथा अपने तेजसे हमारे शरीरको नुकसान भी मत पहुंचा। अपितु हमारे शरीरमें जो रोग – कीटाणु आदि हिंसक शत्रु हों, उन्हें दूर कर ॥ ८-९ ॥

इन्द्रके विना प्रजाओंका सुखदाता और कोई नहीं। परमेश्वर विना अन्यको सुखदाता मत मानो वही सबको सुख प्रदान करता है ॥ १ ॥

१४१८ यो नः शश्वत् पुराविथाऽमृध्रो वाजसातये । स त्वं न इन्द्र मृळय ॥ २ ॥
१४१९ किमङ्ग रध्रचोदनः सुन्वानस्यावितेदसि । कुवित् स्विन्द्र णः शकः ॥ ३ ॥
१४२० इन्द्र प्र णो रथमव पश्चाच्चित् सन्तमद्रिवः । पुरस्तादेनं मे कृधि ॥ ४ ॥
१४२१ हन्तो नु किमाससे प्रथमं नो रथं कृधि । उपमं वाजयु श्रवः ॥ ५ ॥
१४२२ अवा नो वाजयुं रथं सुकरं ते किमित् परि । अस्मान् त्सु जिग्युषस्कृधि ॥ ६ ॥
१४२३ इन्द्र दृह्यस्व पूरसि भद्रा त एति निष्कृतम् । इयं धीर्ऋत्वियावती ॥ ७ ॥

अर्थ— [१४१८] (यः) जिस (अमृध्रः) हिंसा-रहितने (शश्वत्) निश्चयसे (पुरा) पहले (नः) हमें (वाज-सातये) अन्न-प्राप्तिके लिये (आविथ) सुरक्षित किया था, हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सः) वह (त्वम्) तू (नः) हमें (मृळय) सुखी कर ॥ २ ॥

[१४१९] (किम्) क्यों हे (अङ्ग) प्रिय इन्द्र ! (रध्र-चोदनः) दाताका प्रेरक तू (सुन्वानस्य) यज्ञ कर्ताका (अविता इत्) रक्षक ही (असि) है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः) हमें (कुवित्) बहुत, देनेमें (सु शकः) समर्थ हो ॥ ३ ॥

[१४२०] हे (अद्रि-वः) वज्रधारिन् (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः) हमारे (पश्चात् चित्) पीछे भी (सन्तम्) रहनेवाले (रथम्) रथकी (प्र अव) रक्षा कर । तू (मे) मेरे लिए (एनम्) इसे सबके (पुरस्तात्) आगे (कृधि) कर दे ॥ ४ ॥

[१४२१] (हन्तो नु) हे शत्रुका हनन करनेवाले इन्द्र ! तू (किम्) क्यों चुप (आससे) बैठा है ? (नः) हमारा (रथम्) रथ (प्रथमम्) सर्वप्रथम (कृधि) कर दे । (वाज-यु) बलदेनेवाला (श्रवः) अन्न तेरे (उप-मम्) समीप है ॥ ५ ॥

[१४२२] हे इन्द्र ! (ते) तेरे लिये (किं इत्) कोई भी कर्म (परि) सब ओर (सु-करम्) सुगम है । तू (नः) हमारे (वाज-युम्) अन्नयुक्त (रथम्) रथकी (अव) रक्षा कर, तथा (अस्मान्) हमें (सुजिग्युषः) श्रेष्ठ विजेता (कृधि) कर ॥ ६ ॥

[१४२३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू कामनाओंका (पूः) पूरक (असि) है, अतः (दृह्यस्व) बढ, दृढ हो । (इयम्) यह (ऋत्विय-वती) यज्ञोपयोगी (भद्रा) कल्याणी (धीः) वाणी (ते) तेरे निमित्त (निः-कृतम्) किये कर्मके पास (एति) जाती है ॥ ७ ॥

भावार्थ— इन्द्र अन्न-प्राप्तिके लिये युद्धादिमें स्तोताओंकी रक्षा करता है । राजा शत्रुओंकी हिंसा करे, शत्रुको परास्त कर प्रजाको सुखी करे ॥ २ ॥

इन्द्र यज्ञ करनेवालोंकी रक्षा करता और उसे बहुत दान देता है । राजा उद्योगी प्रजाकी रक्षा करे ॥ ३ ॥

इन्द्र पिछडे सैनिकोंके रथोंकी रक्षाका प्रबन्ध करता है और उन्हें आगे कर देता है । सेनापति पिछडे और भूले-भटके सैनिकोंका ध्यान रखे और सहायता देकर उन्हें आगे बढाये ॥ ४ ॥

इन्द्र कभी चुप नहीं बैठता, वह स्तोताओंके रथको आगे बढाता है और शक्तिवर्धक अन्न प्राप्त करता है । जिसके पास अन्न है वही अन्नका उपयोग कर सकते हैं । वीर लोग भोजनसे उत्साहित होकर लडते हैं और विजयके अनन्तर प्रभूत धन प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रके लिये कोई कर्म दुष्कर नहीं है, वह रथकी रक्षा करता और सर्वोत्तम विजेता बनाता है । वीर सेनापति ही सेनाकी रक्षा और राष्ट्रको विजेता करनेमें समर्थ है ॥ ६ ॥

इन्द्र कामनाओंकी पूर्ति करता है, अतः कवि उसकी स्तुति करते जाते हैं । आतिथ्यमें भोजनके साथ मधुर भाषा भी अवश्य होनी चाहिये ॥ ७ ॥

१४२४ मा सीमवद्य आ भागु॒र्वी काष्ठा॒ हि॒तं धन॑म् । अ॒पावृ॑क्ता अर॒त्नयः॑ ॥ ८ ॥
१४२५ तु॒रीयं॒ नाम॑ य॒ज्ञियं॒ य॒दा क॒रस्तदु॑श्मसि । आदित् पति॑र्न ओहसे ॥ ९ ॥
१४२६ अवी॑वृधद्वो अमृ॒ता अम॑न्दी॒देक॒द्यूर्दे॑वा उ॒त याश्च॑ देवीः ।
तस्मा॑ उ॒ राधः॑ कृणुत प्रश॒स्तं प्रा॒तर्म॒क्षू धि॒याव॑सुर्जगम्यात् ॥ १० ॥

[८१]

(ऋषिः- कुसीदी काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री)

१४२७ आ तू न॑ इन्द्र क्षु॒मन्तं॑ चि॒त्रं ग्रा॒भं सं गृ॑भाय । म॒हाह॒स्ती दक्षि॑णेन ॥ १ ॥
१४२८ वि॒द्मा हि त्वा॑ तुविकू॒र्मिं तु॒विदे॑ष्णं तु॒वीम॑घम् । तु॒वि॒मा॒त्रमवो॑भिः ॥ २ ॥

अर्थ— [१४२४] इन्द्र (उर्वी) विशाल (काष्ठा) युद्ध-क्षेत्रोंमें (हितम्) स्थित (धनम्) धन (अवद्ये) निन्दित लोगोंमें (मा) न (आभाक्) बाँटे । हमसे (अरत्नयः) अप्रिय शत्रु (अप-आ वृक्ताः) दूर हो जायँ ॥ ८ ॥

[१४२५] हे इन्द्र ! (आत् इत) जिस कारण, हमारा (पतिः) स्वामी तू (नः) हमें (ओहसे) प्राप्त कराता है. अतः (यदा) जो तू ने (तुरीयम्) चौथा (यज्ञियम्) यज्ञ-सम्बन्धि (नाम) नाम (करः) किया है, हम (तत्) उसको (उश्मसि) चाहते हैं ॥ ९ ॥

[१४२६] हे (देवाः उत याः च देवीः) देवो और देवियो ! (एकद्यूः) एकद्यूने (अमृता अमन्दीत्) अमृतसे तुम्हें आनन्दित किया, तथा (वः अवीवृधत्) तुम्हारी महत्ता बढाई, अतः तुम (तस्मा प्रशस्तं राधः कृणुत) प्रशंसनीय ऐश्वर्य प्रदान करो । (धियावसुः) बुद्धिसे धन प्राप्त करनेवाला अग्नि (प्रातः मक्षू जगम्यात्) प्रातःकाल शीघ्र ही आवे ॥ १० ॥

[८१]

(१४२७) हे (इन्द्र) इन्द्र (महा-हस्ती) लम्बे हाथवाला तू अपने (दक्षिणेन) दाएँ हाथसे (क्षुमन्तम्) प्रशंसनीय, (चित्रम्) सुन्दर (ग्रामम्) धन (नः) हमारे लिये (आ तु सं गृभाय) दे दो ॥ १ ॥

[१४२८] हे इन्द्र ! (अवः-भिः) रक्षा साधनोंसे युक्त (तुवि-कूर्मिम्) बहुत कर्म (तुवि-देष्णम्) बहुत दान (तुवि-मघम्) बहुत धन और युद्धादि साधनोंकी (तुवि-मात्रम्) बहुत मात्रावाले (त्वा) तुझे, हम (विद्म हि) जानते ही हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— विजय हमारी हो, अर्थात् विजयभी हमें प्राप्त हो । शत्रु निन्दनीय हैं, उन्हें धन न मिले अपितु वे यहाँसे दूर भगा दिये जायँ । युद्धकुशल वीर ही शत्रुको राष्ट्रसे दूर भगाते और विजयलक्ष्मीका उपभोग करते हैं ॥ ८ ॥

इन्द्रने वस्तुओंके नाम और गुण निर्धारित किये हैं, नक्षत्रनाम गुह्यनाम प्रकाशनाम और सोमयाजी ये चार नाम हैं इनमें यज्ञ सम्बन्धि चौथा उत्तम है । यज्ञ सर्वोत्तम कर्म है, यज्ञमें ही देव अर्थात् विद्वान् और वीरोंकी पूजा होती है। यज्ञमें नाम कमाना ही उत्तम है ॥ ९ ॥

हे देवो ! जो अमृत रूपी सोमरस देकर तुम्हें तृप्त करता है, उसे तुम प्रशंसनीय धन देकर उसे सम्पत्तिशाली बनाओ ॥ १० ॥

इन्द्र अपने दक्षिण हाथसे उत्तम धन हमें देता है । राजा प्रजाके लिये उपयोगी पदार्थोंका संग्रह करे ॥ १ ॥

इन्द्रके पास रक्षाके अनेक साधन हैं । वह अनेक कर्म करता, बहुत देता, बहुत धनी और बहुत साधनोंवाला है। राजाके पास साधन और धनकी कोई कमी नहीं रहनी चाहिये ॥ २ ॥

१४२९	नहि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम्	भीमं न गां वारयन्ते	॥ ३ ॥
१४३०	एतो न्विन्द्रं स्तवामे-शानं वस्वः स्वराजम्	न राधसा मर्धिषन्नः	॥ ४ ॥
१४३१	प्र स्तोषदुप गासिष-च्छ्रवत् साम गीयमानम्	अभि राधसा जुगुरत्	॥ ५ ॥
१४३२	आ नो भर दक्षिणेना-ऽभि सव्येन प्र मृश	इन्द्र मा नो वसोर्निर्भाक्	॥ ६ ॥
१४३३	उप क्रमस्वा भर धृषता धृष्णो जनानाम्	अदाशूष्टरस्य वेदः	॥ ७ ॥
१४३४	इन्द्र य उ नु ते अस्ति वाजो विप्रेभिः सनित्वः	अस्माभिः सु तं सनुहि	॥ ८ ॥
१४३५	सद्योजुवस्ते वाजा अस्मभ्यं विश्वश्चन्द्राः	वशैश्च मक्षू जरन्ते	॥ ९ ॥

अर्थ— [१४२९] हे (शूर) शूर इन्द्र ! (देवाः) देवा और (मर्तासः) मनुष्य (दित्सन्तम्) देनेकी इच्छा वाले (त्वा) तुझे (भीमं गां न) जैसे भयंकर बैलको, वैसे (नहि न) नहीं (वारयन्ते) निवारण करते ॥ ३ ॥

[१४३०] हे मनुष्यो ! (एत) आओ। हम (वस्वः) धनके (ईशानम्) स्वामी और (स्व-राजन्) स्वतः तेजवाले (इन्द्रम्) इन्द्रकी (नु) शीघ्रतासे (स्तवाम) स्तुति करें। जिससे कोई दूसरा (राधसा) धनसे (नः) हमारी (मर्धिषत् न) बराबरी न कर सके ॥ ४ ॥

[१४३१] वह इन्द्र हमारे स्तोत्रोंको (प्र स्तोषत्) पढे, छन्दोंको (उप गासिषत्) गाये, हमारे (गीय-मानम्) गाये जानेवाले (साम) साम-गानको (श्रवत्) सुने और हमारे ऊपर (राधसा) धनसे (अभि (जुगुरत्) अनुग्रह करे ॥ ५ ॥

[१४३२] हे इन्द्र ! (नः) हमारे लिये (दक्षिणेन) दायें हाथसे धन (आ भर) ले आ। और (सव्येन) बायें हाथसे भी (अभि प्र मृश) दे। (नः) हमको (वसोः) ऐश्वर्यसे (मा निः भाक्) पृथक् मत कर ॥ ६ ॥

[१४३३] हे (धृष्णो) शत्रु-नाशक इन्द्र ! तू (उप क्रमस्व) तैय्यार हो। (जनानाम्) मनुष्योंमें जो (अदाशूः- तरस्य) अत्यन्त दान न करनेवाला है उसका (वेदः) धन अपने (धृषता) बलसे (आ भर) छीन ला ॥ ७ ॥

[१४३४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः उ नु) जो कि (ते) तेरा (विप्रेभिः) बुद्धिमानोंसे (सनित्वः) बाँटने योग्य (वाजः) धन है, (तम्) उसे (अस्माभिः) हमारेमें (सु सनुहि) बाँट ॥ ८ ॥

[१४३५] हे इन्द्र ! (ते) तेरे (सद्यः-जुवः) तत्काल प्राप्त होनेवाले और (विश्व-चन्द्राः) सबके आल्हाददायक (वाजाः) धन हैं वे (अस्मभ्यम्) हमें (वशैः च) और अन्य वशमें रहनेवालोंको (मक्षु) शीघ्र (जरन्ते) देते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— जब इन्द्र किसीको दान करना चाहता है तब देव या मनुष्य उसे रोक नहीं सकते, जैसे भयङ्कर साँढको कोई रोक नहीं सकते। महापुरुष जब कुछ करना चाहता है तब संसारकी विघ्न-बाधायें उसे रोक नहीं सकतीं ॥ ३ ॥

इन्द्रका स्तोता धनमें किसीसे कम नहीं रहता, जो मनुष्य राज-शक्ति बढाता है उसका अतुल ऐश्वर्य बढता है ॥ ४ ॥

इन्द्र स्तोताओं पर प्रसन्न होकर उनके स्तोत्र, गान और सामको गाता और सुनता है तथा उन्हें धन प्रदान करता है ॥ ५ ॥

इन्द्र दोनों हाथोंसे धन देता है। जो कोई अच्छा कार्य करे, उसे धन देना चाहिए ॥ ६ ॥

इन्द्र युद्धके लिये तैयार होता है और अपने अदानी शत्रुका धन छीन कर ले आता है। शत्रु बातसे धन नहीं छोडते, उनसे बलपूर्वक ही धन लेना चाहिये ॥ ७ ॥

मेधावीओंकी स्तुति होने पर इन्द्र आता है और धन देता है ॥ ८ ॥

इन्द्रका ऐश्वर्य स्तोताओंके पास स्वयं आकर उनकी प्रशंसा करता है ॥ ९ ॥

[८२]

(ऋषिः- कुसीदी काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

१४३६ आ प्र द्रव परावतो ऽर्वावतश्च वृत्रहन् । मध्वः प्रति प्रभर्मणि ॥ १ ॥
१४३७ तीव्राः सोमास आ गहि सुतासो मादयिष्णवः । पिबा दधृग्यथोचिषे ॥ २ ॥
१४३८ इषा मन्दस्वादु ते ऽरं वराय मन्यवे । भुवत् त इन्द्र शं हृदे ॥ ३ ॥
१४३९ आ त्वशत्रवा गहि न्यु१क्थानि च हूयसे । उपमे रोचने दिवः ॥ ४ ॥
१४४० तुभ्यायमद्रिभिः सुतो गोभिः श्रीतो मदाय कम् । प्र सोम इन्द्र हूयते ॥ ५ ॥
१४४१ इन्द्र श्रुधि सु मे हव मस्मे सुतस्य गोमतः । वि पीतिं तृप्तिमश्नुहि ॥ ६ ॥

[८२]

अर्थ— [१४३६] हे (वृत्र-हन्) वृत्र-घातक इन्द्र ! तू हमारे (प्र-भर्मणि) यज्ञमें (परावितः) दूर (अर्वा-वतः च) और निकट कहींसे भी (मध्वः प्रति) मधुर सोमके लिये (आ प्र द्रव) आ ॥ १ ॥

[१४३७] हे इन्द्र ! ये (तीव्राः) तीखे (मादयिष्णवः) आनंद देनेवाले (सोमासः) सोम (सुतासः) तैयार हैं, तू (आ गहि) आ । (यथा) जिस प्रकार तू सोमका (ऊचिषे) सेवन कर सकता है, वैसे (दधृक्) प्रगल्भ होकर उन्हें (पिब) पी ॥ २ ॥

[१४३८] हे (इन्द्र) इन्द्र (इषा) अन्नसे (मन्दस्व) प्रसन्न हो । वह अन्न खानेके (आत् उ) पश्चात् (ते) तेरे (वराय) उत्तम, तीक्ष्ण (मन्यवे) क्रोधके लिये (अरम्) पर्याप्त हो । वह (ते) तेरे (हृदे) हृदयके लिये (शम्) सुखकर (भुवत) हो ॥ ३ ॥

[१४३९] हे (अशत्रो) शत्रु-रहित इन्द्र ! तू (रोचने) तेजस्वी (उप-मे) यज्ञमें (उक्थानि च) स्तोत्रोंके पास (नि हूयसे) बुलाया जाता है, अतः (दिवः) द्यु-लोकसे यहां (आ तु आ गहि) आ ॥ ४ ॥

[१४४०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अयम्) यह (अद्रि-भिः) पाषाणोंसे (सुतः) रस निकाला और छान कर (गोभिः) गो-दुग्धसे (श्रीतः) पकाया हुआ (कम्) सुखदायी (सोमः) सोम (मदाय) आनन्दके लिये (तुभ्यं) तुझे (प्र हूयते) दिया जाता है ॥ ५ ॥

[१४४१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मे) मेरी (हवम्) पुकार (सु) सम्यक् (श्रुधि) सुन, (अस्मे) हमारे द्वारा (सुतस्य) बनाये हुए (गो-मतः) गो-दुग्ध मिश्रित सोमके (पीतिम्) पान और उससे उपलब्ध (तृप्तिम्) तृप्तिको (वि अश्नुहि) प्राप्त कर ॥ ६ ॥

भावार्थ— इन्द्र दूर हो या पास हो वह यज्ञमें सोमके लिये अवश्य आवे । वीर कहीं हों, उन्हें बुलाना ही चाहिये ! बुलाने पर सहायताके लिये वे आवे ॥ १ ॥

इन्द्रके लिये तैयार किये सोम तीखे और आनन्ददायक हैं । इन्द्र उन्हें वीरताके कार्य करनेके लिये पीता है भोजनमें शक्ति और आनन्दवर्धक सत्त्व अधिक होना चाहिये ॥ २ ॥

भोजन इन्द्रका उत्साह बढानेमें समर्थ होता और उसके हृदयमें शान्ति भी उत्पन्न करता है। भोजनमें उत्साहवर्धक और हृदयमें सुख उपजानेवाली शक्ति होनी चाहिये ॥ ३ ॥

इन्द्रने पराक्रमसे अपने शत्रु नष्ट कर दिये हैं, अब वह अशत्रु बन गया है । वह स्तुतिके लिये द्यु-लोकसे बुलाया जाता है । राष्ट्रका नेता अपने पराक्रमसे राष्ट्रको बाहरी शत्रुसे बचा कर, अन्त:शत्रुओंके नाशार्थ, यत्न करे ॥ ४ ॥

दूधमें पक सोम ही इन्द्रका अन्न है । इन्द्रको गो-दूध प्रिय है ॥ ५ ॥

इन्द्र गायके दूधसे मिलाये सोम-रसको पीता और उससे तृप्त होता है । गायके दूधमें सोम रस मिलाकर पीनेसे तृप्ति और आनन्द उपलब्ध होता है ॥ ६ ॥

१४४२ य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ७ ॥
१४४३ यो अप्सु चन्द्रमा इव सोमश्चमूषु ददृशे । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ८ ॥
१४४४ यं ते श्येनः पदाभरत् तिरो रजांस्यस्पृतम् । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ९ ॥

[८३]

(ऋषिः- कुसीदी काण्वः । देवताः- विश्वे देवाः । छन्दः- गायत्री ।)

१४४५ देवानामिदवो महत् तदा वृणीमहे वयम् । वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥ १ ॥
१४४६ ते नः सन्तु युजः सदा वरुणो मित्रो अर्यमा । वृधासश्च प्रचेतसः ॥ २ ॥
१४४७ अति नो विष्पिता पुरु नौभिरपो न पर्षथ । यूयमृतस्य रथ्यः ॥ ३ ॥
१४४८ वामं नो अस्त्वर्यमन् वामं वरुण शंस्यम् । वामं ह्यावृणीमहे ॥ ४ ॥

अर्थ— [१४४२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः) जो (सोमः) सोम (चमसेषु) चमसों और (चमूषु) पात्रोंमें (ते) तेरे लिये (आ सुतः) बनाया गया है, (त्वम्) तू (अस्य) इसका (ईशिषे) स्वामित्व करता है, अतः उसे (पिब इत्) पी ॥ ७ ॥

[१४४३] हे इन्द्र ! (यः) जो (सोमः) सोम (चमूषु) चमुओंमें, (अप्-सु) आकाशमें (चन्द्रमाः इव) चन्द्रमाके समान, (ददृशे) दिखाई देता है, (त्वम्) तू (अस्य) इसका (ईशिषे) स्वामी है, अतः इसे (पिब इत्) पी ही ॥ ८ ॥

[१४४४] हे इन्द्र ! (रजांसि) लोकोंको (तिरः) नीचे दबाते हुए (श्येनः) श्येन ने (ते) तेरे लिये (यम्) जिस (अस्पृतम्) स्पर्श रहित सोमको (पदा) पांवसे नीचे (आ अभरत्) ला दिया, (त्वम्) तू सबका (ईशिषे) स्वामी है, (अस्य) उसे (पिब इत्) पी ही ॥ ९ ॥

[८३]

[१४४५] (वृष्णां देवानां इत्) बलशाली देवोंके (महत् अवः) महान् संरक्षणकी (वयं) हम (अस्मभ्यं ऊतये) अपने संरक्षणके लिए (आ वृणीमहे) प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

[१४४६] (ते वरुणः मित्रः अर्यमा) वे वरुण, मित्र और अर्यमा देव (नः सदा युजः सन्तु) हमारी सदाही सहायता करनेवाले हों, (प्रचेतसः च वृधासः) वे ज्ञानी देव हमें बढानेवाले हों ॥ २ ॥

[१४४७] हे (ऋतस्या रथ्याः) यज्ञके नायको ! (नौ भिः अपः न) नावोंसे जिसतरह नदियोंको पार किया जाता है, उसी तरह (यूयं) तुम (विष्पिता पुरु) फैले हुए अनेक संकटोंसे (नः अति पर्षथ) हमें पार ले जाओ ॥ ३ ॥

[१४४८] हे (अर्यमन्) अर्यमा देव ! (नः वामं अस्तु) हमें सुन्दर पदार्थ प्राप्त हो, हे (वरुण) वरुण ! (शंस्यं वामं) हमें प्रशंसनीय धन प्राप्त हो, (हि) क्योंकि हम (वामं आ वृणीमहे) सुन्दर धन ही मांगते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ- इन्द्रके निमित्त चमसे और पात्रोंमें सोम भरा रहता है, इसका अधिकारी वही है। अतः वही इसे पीये ॥ ७ ॥

जिस प्रकार आकाशमें चन्द्रमा सुन्दर दिखाई देता है, उसी प्रकार सोमके कलशोंमें सोमकी शोभा होती है। इन्द्र उसे प्रेमसे पीता है ॥ ८

श्येन स्वर्गसे सोम ले आया, और ऋत्विजोंने उसे इन्द्रकी सेवामें समर्पित किया ॥ ९ ॥

वरुण, मित्र, अर्यमा आदि देव सदा ही हमारी सहायता करें, तथा हमें बढायें। हम उनके संरक्षणकी कामना करते हैं ॥ १-२ ॥

हे देवो ! तुम हमें हर संकटोंसे पार ले जाओ, तथा तुम्हारे आशीर्वादसे हमें सुन्दर पदार्थ तथा प्रशंसनीय धन प्राप्त हो ॥ ३-४ ॥

×

१४४९ वामस्य हि प्रचेतस ईशानासो रिशादसः । नेमादित्या अघस्य यत् ॥ ५ ॥
१४५० वयमिद्वः सुदानवः क्षियन्तो यान्तो अध्वन्ना । देवा वृधाय हूमहे ॥ ६ ॥
१४५१ अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम् । इता मरुतो अश्विना ॥ ७ ॥
१४५२ प्र भ्रातृत्वं सुदानवो ऽध द्विता समान्या । मातुर्गर्भे भरामहे ॥ ८ ॥
१४५३ यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः । अधा चिद्व उत ब्रुवे ॥ ९ ॥

[८४]

(ऋषिः- उशना काव्यः । देवताः- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

१४५४ प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्निं रथं न वेद्यम् ॥ १ ॥
१४५५ कविमिव प्रचेतसं यं देवासो अध द्विता । नि मर्त्येष्वादधुः ॥ २ ॥

अर्थ— [१४४९] हे (रिशादसः प्रचेतसः) शत्रुओंके विनाशक और ज्ञानी देवो ! तुम (वामस्य ईशानासः) सुन्दर धनके स्वामी हो । हे (आदित्याः) आदित्यो ! (अघस्य यत्) पापियोंके पास जो धन हो (ईं) उसे हमें दो ॥ ५ ॥

[१४५०] हे (सुदानवः देवाः) उत्तम दाता देवो ! (क्षियन्तः अध्वन् यान्तः) घरमें रहते हुए तथा मार्गमें जाते हुए (वयं) हम (वृधाय) अपनी उन्नतिके लिए (वः इत् आ हू महे) तुम्हें ही बुलाते हैं ॥ ६ ॥

[१४५१] (इन्द्र विष्णो मरुतः अश्विना) हे इन्द्र, विष्णु, मरुत् और अश्वि देवो ! (नः) हमें (एषां सजात्यानां आ अधि) इन स्वबांन्धवोंके बीचमें सर्वोपरि करो ॥ ७ ॥

[१४५२ हे (सुदानवः) उत्तम दाता देवो ! (मातुः गर्भे) माताके गर्भमें (द्विता) दो तरहसे रहनेवाले (समान्या) समान रूपसे व्यवहार करनेवाले तुम्हारे (भ्रातृत्वं) भाईपनका (प्रभरामहे) हम वर्णन करते हैं ॥८॥

[१४५३] हे (सुदानवः) उत्तम दानशील देवो ! (यूयं) तुम (इन्द्रज्येष्ठाः अभिद्यवः) इन्द्रको मुख्य माननेवाले तथा तेजस्वी हो, (अधा चित् उत) इसीलिए मैं (वः उप ब्रुवे) तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥ ९ ॥

[८४]

१४५४] हे मनुष्यो ! मैं (वः) तुम लोगोंके कर्मकी सिद्धिके लिये (प्रेष्ठं, अतिथिं, मित्रं इव प्रियं) सबसे अधिक प्रिय अतिथिवत् पूज्य, मित्रके समान प्रीतिकारक और (रथं न वेद्य अग्निं स्तुषे) रथके समान धन प्राप्तिके हेतु ऐसे अग्निकी स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[१४५५] (अध) और भी (देवासः कविं प्रचेतसं इव) इन्द्रादि देवोंने महान् ज्ञानी विद्वान्के समान (यं मर्त्येषु द्विता नि आदधुः) जिस अग्निको मनुष्योंके बीचमें दो प्रकारसे प्रतिष्ठित किया है ॥ २ ॥

भावार्थ— हे देवो ! हम घरमें रहते हुए तथा मार्गमें जाते हुए अपनी उन्नतिके लिए तुम्हारी उपासना करते हैं । अतः हे देवो ! तुम धनादि देकर हमें ऐश्वर्य सम्पन्न बनाओ ॥ ५–६ ॥

सभी देवोंकी कृपासे हम उन्नतिको प्राप्त हों तथा अपने सम्बन्धियोंके मध्यमें हम सर्वोपरि हों ॥ ७ ॥

ये सभी देव अदिति माताके पुत्र होनेके कारण परस्पर समान हैं और इनमें परस्पर भाईके समान प्रीति है । ये सभी देव इन्द्रको मुख्य मानते हैं और सभी तेजस्वी हैं ॥ ८–९ ॥

यह अग्नि मनुष्योंमें गार्हपत्य, आहवनीय; पति-पत्नी; पिता–पुत्र, भौतिक और जाठर इन रूपोंमें रहता है । यह दूरदर्शी, बुद्धिशाली मित्रके समान लोगोंका हित करनेवाला, अत्यन्त पूज्य तथा हर प्रकारकी ऐश्वर्य–प्राप्तिका कारण है । ऐसे इस अग्निकी पूजा हर एकको करनी चाहिए ॥ १–२ ॥

१४५६ त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ३ ॥
१४५७ कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् । वराय देव मन्यवे ॥ ४ ॥
१४५८ दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो । कदु वोच इदं नमः ॥ ५ ॥
१४५९ अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः । वाजद्रविणसो गिरः ॥ ६ ॥
१४६० कस्य नूनं परीणसो धियो जिन्वसि दंपते । गोषाता यस्य ते गिरः ॥ ७ ॥
१४६१ तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु । स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥
१४६२ क्षेति क्षेमेभिः साधुभिर्नकिर्यं घ्नन्ति हन्ति यः । अग्ने सुवीर एधते ॥ ९ ॥

अर्थ— [१४५६] हे (यविष्ठ) अत्यन्त बलवान् अग्ने ! (त्वं दाशुषः नॄन् पाहि) तू दान देनेवाले मनुष्योंकी रक्षा कर । उनकी (गिरः शृणुधि) स्तुतियोंको चित्तसे सुन । (उत तोकं त्मना रक्ष) और उनके पुत्रादि सन्ततिकी अपने आत्मसामर्थ्यसे रक्षा कर ॥ ३ ॥

१ दाशुषः नॄन् पाहि— यह अग्नि दानी मनुष्योंकी रक्षा करता है ।

२ तोकं त्मना रक्ष— तथा उनके सन्तानोंकी हर तरहसे रक्षा करता है ।

[१४५७] हे (अङ्गिरः ऊर्जः नपात्) देहमें रसका संचार करानेवाले बलको न गिरने देनेवाले ! (देव अग्ने) द्योतमान् अग्ने ! (वराय मन्यवे ते कया उपस्तुतिं) वरण करने योग्य, तेजस्वी, मननशील तेरे लिये, किस प्रकारकी वाणीसे स्तुति करूँ ॥ ४ ॥

[१४५८] हे (सहसः यहो) बलके पुत्र अग्ने ! (कस्य यज्ञस्य मनसा इदं नमः) किस मनुष्यके मनसे युक्त होकर हम तुझको यह हवि अथवा नमस्कार (कत् वोचे उ) किस समय दे सकेंगे अथवा कह सकेंगे ॥ ५ ॥

[१४५९] हे अग्ने ! (अध त्वं हि नः गिरः विश्वा सुक्षितीः करः) अनन्तर तू ही निश्चय करके हमारी स्तुतिसे प्रसन्न होकर सम्पूर्ण प्रजाओंके निवासके लिये उत्तम घर प्रदान कर और (अस्मभ्यं वाजद्रविणसः) हमारे लिये उस घरको उत्तम उत्तम अन्न और धनोंसे युक्त कर ॥ ६ ॥

[१४६०] हे (दंपते) गृहरक्षक अग्ने ! (यस्य ते गिरः गोषाता) जिस तेरी स्तुति गौवोंके लिये होती है वह (नूनं कस्य परीणसः धियः जिन्वसि) तू किस प्रकारके पुरुषकी उत्तम बुद्धियोंको तृप्त करता है ॥ ७ ॥

[१४६१] मनुष्य लोग (तं सुक्रतुं, आजिषु पुरः यावानं, वाजिनं , उस उत्तम कर्मवाले, संग्रामोंमें शत्रुके हननके लिये आगे प्रयाण करनेहारे और बलवान् अग्निका (स्वेषु क्षयेषु मर्जयन्त) अपने घरोंमें स्थापित करके उसको प्रज्वलित करते हैं ॥ ८ ॥

[१४६२] (यः क्षेमेभिः साधुभिः क्षेति) जो मनुष्य कल्याणकारी तथा सज्जन पुरुषोंके सहित अपने घरमें निवास करता है, (यं नकिः घ्नन्ति) जिसको कोई शत्रु मार नहीं सकता, और (यः हन्ति) जो अपने शत्रुको मार सकता है, हे (अग्ने) अग्ने ! ऐसा पुरुष तुझसे रक्षित होकर (सुवीरः एधते) उत्तम पुत्र-पौत्रादिकोंसे वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तुम दानी मनुष्योंकी रक्षा करते हो, तथा उनके सन्तानोंकी भी रक्षा करते हो, तुम अंगोंमें रसका संचार करते हो, और इस प्रकार शरीरके बलको गिरने नहीं देते, ऐसे गुणोंसे युक्त होनेके कारण तुम बहुत महान् हो और मैं बहुत अल्प हूँ । अतः तुम्हारी स्तुति मैं किस प्रकार करूं, वह मार्ग तुम मुझे बताओ ॥ ३-४ ॥

हे अग्ने ! तुम किस प्रकारकी स्तुतिसे प्रसन्न होते हो, हम किस प्रकार मन लगाकर स्तुति करें कि तुम प्रसन्न होकर सब प्रजाओंको उत्तम उत्तम घर प्रदान करो और धन धान्यसे युक्त करो ॥ ५-६ ॥

हे अग्ने ! तेरी स्तुति गौवोंको प्रदान करनेवाली होती है, यह हमें मालुम है, तथा सभी मनुष्य ऐश्वर्य प्राप्तिके लिये तुझे अपने अपने घरोंमें प्रदीप्त करते हैं, यह भी सत्य है । पर तू किस तरहके मनुष्य पर प्रसन्न होता है और किस तरहके मनुष्यकी बुद्धियोंको तू तृप्त करता है, यह हमें मालूम नहीं अतः हमें बता, ताकि हम उसी तरहसे तुझे प्रसन्न करें ॥ ७-८ ॥

कल्याण करनेवाले सज्जनोंको अपने साथ हमेशा रखना चाहिए, क्योंकि वे हमेशा कल्याणका ही मार्ग बताते हैं, उनके द्वारा दिखाए गए मार्गपर जो चलता है, वह अपने शत्रुओंसे कभी पराजित नहीं होता अपितु अपने शत्रुओंको हमेशा नष्ट करता रहता है । और ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होकर अपनी सन्तानोंके साथ बढता रहता है ॥ ९ ॥

[८५]

(ऋषिः- कृष्ण आङ्गिरसः । देवताः- अश्विनौ । छन्दः- गायत्री ।)

१४६३ आ मे हवं नासत्या ऽश्विना गच्छतं युवम् । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ १ ॥
१४६४ इमं मे स्तोममश्विने- मं मे शृणुतं हवम् । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ २ ॥
१४६५ अयं वां कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवसू । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥
१४६६ शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ४ ॥
१४६७ छर्दिर्यन्तमदाभ्यं विप्राय स्तुवते नरा । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥
१४६८ गच्छतं दाशुषो गृह- मित्था स्तुवतो अश्विना । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥
१४६९ युञ्जाथां रासभं रथे वीड्वङ्गे वृषण्वसू । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ७ ॥
१४७० त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेना यातमश्विना । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ८ ॥
१४७१ नू मे गिरो नासत्या ऽश्विना प्रावतं युवम् । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥

[८५]

अर्थ— [१४६३] हे (नासत्या) सत्यपालक वीरो ! (अश्विना) नेता अश्विदेवों ! (युवं) तुम दोनों (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुरिमामय सोमको पीनेके लिए (मे हवं आ गच्छतं) मेरी पुकारको सुनकर आओ ॥ १ ॥

[१४६४] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर सोमरसको पीनेके लिए (मे इमं हवं) मेरी इस पुकारको (मे इमं स्तोम) मेरे इस स्तोत्रको (शृणुतं) सुन लो ॥ २ ॥

[१४६५] हे (वाजिनीवसू अश्विना) सेनाको ही धन समझनेवाले अश्विदेवो ! (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर सोमरसको पीनेके लिए (अयं कृष्णः) यह कृष्ण ऋषि (वां हवते) तुम्हें बुलाता है ॥ ३ ॥

[१४६६] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर सोमरसको पीनेके लिए (जरितुः कृष्णस्य) स्तोता कृष्णके (स्तुवतः) प्रशंसा करते समय (हवं शृणुतं) उसकी पुकारको सुन लो ॥ ४ ॥

[१४६७] हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (स्तुवते विप्राय) प्रशंसा करनेवाले ज्ञानीको (अदाभ्यं छर्दिः) न दबनेवाला घर (मध्वः सोमस्य पीतये) मीठे सोमके पानके लिए (यन्तं) देदो ॥ ५ ॥

[१४६८] हे (अश्विना) अश्वि देवो ! (इत्था स्तुवतः) इस प्रकारसे सराहना करते हुए (मध्वः सोमस्य पीतय) मधुर सोमको पीनेके लिए (दाशुषः गृहं गच्छतं) दानीके घर पहुंचो ॥ ६ ॥

[१४६९] हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेवाले अश्वि देवो ! (वीडु- अंगे रथे) सुदृढ रथमें (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर सोमरसको पीनेके लिए (रासभं युंजाथां) हिनहिनानेवाले घोडोंको जोड दो ॥ ७ ॥

[१४७०] हे (अश्विना) अश्विनी देवो ! (त्रिवृता) तिकोने आकारके (त्रिवन्धुरेण रथेन) तीन लट्ठोंसे युक्त रथोंसे (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर सोमरसको पीनेके लिए (आ यातं) आओ ॥ ८ ॥

[१४७१] हे (नासत्या अश्विना) सत्यपूर्ण अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनों (मे गिरः) मेरे वचनोंको (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर सोमरसको पीनेके लिए (नु प्र अवतम्) प्रेमसे सुनो ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! मधुर सोमरसको पीनेके लिए मेरी इस प्रार्थनाको सुनो और हमारे पास आओ ॥ १-२ ॥

हे अश्विनौ ! इस मधुर सोमरसको पीनेके लिए ऋषि तुम्हें बुलाते हैं, तुम उनकी पुकार सुनकर आओ ॥ ३-४ ॥

हे देवो ! मीठे सोमरसको पीनेके लिए तुम दानीके घर जाओ और उसे उत्तम घर और ऐश्वर्य प्रदान करो ॥५-६॥

हे अश्विदेवो ! मधुर सोमरसको पीनेके लिए मेरे वचनोंको प्रेमसे सुनो, तथा अपने रथमें हिनहिनानेवाले घोडोंको जोडकर हमारे पास आओ ॥ ७-९ ॥

[८६]

(ऋषिः- कृष्ण आङ्गिरसः, विश्वको वा कार्ष्णिः । देवताः- अश्विनौ । छन्दः- जगती ।)

१४७२ उभा हि दस्रा भिषजा मयोभुवो॒भा दक्ष॑स्य॒ वच॑सो बभूवथुः ।
ता वां विश्व॑को हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोच॑तम् ॥ १ ॥
१४७३ कथा नूनं वां विम॑ना उप॑ स्तवद्युवं धियं॑ ददथुर्वस्य॑इष्टये ।
ता वां विश्व॑को हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोच॑तम् ॥ २ ॥
१४७४ युवं हि ष्मा॑ पुरुभुजेममे॑धतुं विष्णाप्वे॑ ददथुर्वस्य॑इष्टये ।
ता वां विश्व॑को हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोच॑तम् ॥ ३ ॥
१४७५ उत त्यं वीरं धनसामृजीषिणं दूरे चित्सन्तमवसे हवामहे ।
यस्य स्वादिष्ठा सुमतिः पितुर्यथा मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोच॑तम् ॥ ४ ॥

---

[८६]

अर्थ— [१४७२] हे (दस्रा) दर्शनीय वीरो ! (उभा हि मयोभुवा) तुम दोनोंही सुखदायक (भिषजा) वैद्य हो और (दक्षस्य वचसः) दक्षतासे किये भाषणके लिये (उभा बभूवथुः) तुम दोनों योग्य हो; (तनूकृथे ता वां) शरीरकी सुरक्षाके लिए तुम दोनोंको (विश्वकः हवते) यह विश्वक ऋषि बुलाता है (नः सख्या मा वि यौष्टं) हमें आपकी मित्रतासे दूर न करो और (मुमोचतं) हमें मुक्त करो । दुःखसे हमें मुक्त करो ॥ १ ॥

[१४७३] (विमना नूनं) विमना ऋषिने सचमुच (वां कथा उप स्तवत्) तुम्हारी कैसे प्रशंसा की थी ? (वस्य-इष्टये) प्रशस्त धनको पानेके लिए (युवं धियं ददथुः) तुमने हमें बुद्धि दी है । (विश्वकः तनूकृथे वां हवते) विश्वक शरीरकी सुरक्षाके लिये तुम्हें बुलाता है, (नः सख्या मा वि यौष्टं) हमारी मित्रताको मत दूर करो और हमें दुःखसे (मुमोचतं) मुक्त कर दो ॥ २ ॥

[१४७४] हे (पुरुभुजा) अनेकोंको भोजन देनेवाले वीरो ! (विष्णाप्वे) विष्णापूके लिए (युवं हि स्म) तुम दोनोंने सचमुच (इमं एधतुं) इस समृद्धिको (वस्य-इष्टये ददथुः) धनकी इष्टिके लिए दे दिया था । (ता वां) ऐसे तुम दोनोंको (तनूकृथे) शरीरकी सुरक्षाके हेतु विश्वक (हवते) बुलाता है (नः सख्या) हमारी मित्रताको (मा वि यौष्टं) दूर न करो और हमें (मुमोचतं) इस दुःखसे मुक्त करो ॥ ३ ॥

[१४७५] (उत त्यं) और उस (धनसां ऋजीषिणं वीरं) धनका बँटवारा करनेवाले और सोम अपने पास रखनेवाले वीरको, (यस्य सुमतिः) जिसकी अच्छी बुद्धि (यथा पितुः स्वादिष्ठा) पिताके समान अत्यन्त मधुर रहती है, उसको (दूरे सन्तं चित्) दूर रहनेपर भी (अवसे हवामहे) अपनी रक्षाके लिये हम बुलाते हैं । हे वीरो ! (सख्या) मित्रताके कारण (नः मा वि यौष्टं) हमें दूर न करो, (मुमोचतं) और हमें दुःखसे छुडाओ ॥ ४ ॥

भावार्थ— नासिकामें रहनेवाले प्राण ही अश्विनौ देव हैं, ये प्राण शरीरके लिए सुखदायक हैं और शरीरके समस्त रोगोंको दूर करते हैं । रोगोंको दूर करके ये शरीरकी सुरक्षा करते हैं ॥ १ ॥

जिस मनुष्यको ये अश्विदेव धन देना चाहते, उसे उत्तम बुद्धि प्रदान करते हैं, उत्तम बुद्धिके द्वारा वह धन भी प्राप्त कर लेता है ॥ २ ॥

विष्णा-पू- सर्व व्यापक परमात्माकी उपासना करनेवालेके प्राण उत्तम रहते हैं और उस उपासकको हर तरहकी समृद्धि प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

अपने पासके धनको सबको देनेवाले और सोमरस पीनेवालेकी बुद्धि उत्तम होती है । जिस तरह कोई पिता अपने पुत्रका पालन करता है, उसी तरह ये अश्वि देव सभी प्राणियोंका प्रेमसे पालन करते हैं ॥ ४ ॥

१४७६ ऋतेन देवः सविता शमायत ऋतस्य शृङ्गमुर्विया वि पप्रथे ।
ऋतं सासाह महि चित् पृतन्यतो मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ ५ ॥

[८७]

(ऋषिः- कृष्ण आङ्गिरसो, वासिष्ठो वा द्युम्नीकः, प्रियमेध आङ्गिरसो वा । देवताः- अश्विनौ ।
छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१४७७ द्युम्नी वां स्तोमो अश्विना क्रिविर्न सेक आ गतम् ।
मध्वः सुतस्य स दिवि प्रियो नरा पातं गौराविवेरिणे ॥ १ ॥

१४७८ पिबतं घर्मं मधुमन्तमश्विना ऽऽ बर्हिः सीदतं नरा ।
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ नि पातं वेदसा वयः ॥ २ ॥

१४७९ आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।
ता वर्तिर्यातमुप वृक्तबर्हिषो जुष्टं यज्ञं दिविष्टिषु ॥ ३ ॥

अर्थ— [१४७६] (देवः सविता) द्योतमान सूर्य (ऋतेन समायते) ऋतसे सायंकालके समय शान्त होता है और (ऋतस्य शृङ्गं) ऋतके ऊँचे भागको (उर्विया वि पप्रथे) अत्यन्त विशाल रीतिसे फैलाता है; (महि पृतन्यतः चित्) बडी बडी सेनाके साथ आक्रमण करनेवालोंको भी (ऋतं सासाह) ऋत पराभूत करता है, (नः मा वि यौष्टं) हमारा तुमसे विछोड न हो और (सख्या मुमोचतं) मित्रतासे हमें कष्टसे छुटकारा दो ॥ ५ ॥

[८७]

[१४७७] हे अश्विदेवों ! (सेके क्रिविः न) जल सींचनेपर कुआँ जिस प्रकार पानीसे भरा रहता है, वैसेही (वां स्तोमः द्युम्नी) तुम्हारा स्तोत्र तेजस्वी हो जाता है, (आ गतं) तुम आओ, हे (नरा) नेता वीरो ! (सुतस्य मध्वः) सोमका मधुर रस (सः दिवि प्रियः) द्युलोकमें भी प्यारा हो रहा है, (इरिणे गौरौ इव पातं) जल स्थानपर दो मृग जैसे पीते हैं वैसेही तुम भी इस रसका पान करो ॥ १ ॥

[१४७८] हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (मधुमन्तं घर्मं पिबतं) मीठे सोमरसका पान करो, (बर्हिः आ सीदतं) कुशासनपर आकर बैठ जाओ; (मनुषः दुरोणे) मानवके घरपर (मन्दसाना ता) हर्षित होनेवाले तुम दोनों (वेदसा वयः आ नि पातं) धनसे हमारी आयुका रक्षण करो ॥ २ ॥

[१४७९] (प्रियमेधाः) यज्ञको प्यारभरी दृष्टिसे देखनेवाले प्रियमेध ऋषियोंने (वां विश्वाभिः ऊतिभिः अहूषत) तुम्हें सभी संरक्षणआयोजनाओंके साथ अपने पास बुलाया है । (वृक्तबर्हिषः वर्तिः) कुशासन जिसने फैला रखा है, ऐसे मानवके घर (ता उप यातं) वे तुम दोनों वीर चले जाओ, (दिविष्टिषु यज्ञं जुष्टं) दिव्य स्थानमें किये जानेवाले कार्योंमें यज्ञका सेवन करो ॥ ३ ॥

भावार्थ— ऋत अर्थात् नैतिक नियम जगत्में सर्वत्र है । इसी नैतिक नियमके कारण तेजस्वी सूर्य सायंकालके समय अस्त होता है । इस ऋतका विस्तार सर्वत्र है । इस ऋतके प्रतिकूल चलनेवाले बडे बडे वीरोंका भी पराभव होता है, फिर सामान्य मनुष्यकी तो बातही क्या ? ॥ ५ ॥

हे देवो ! जिस तरह बारबार जल निकालने पर भी कुआं जलसे भराही रहता है, उसी तरह तुम्हारा स्तोत्र बारबार गाये जाने पर भी तेजसे भराही रहता है । देवोंकी स्तुति गानेसे तेज बढताही है ॥ ॥ १ ॥

हे देवो ! तुम हमारे घर आओ, हम तुम्हारा सत्कार करते हैं । जो तुम्हारा सत्कार करता हो, उसीके घर आओ ॥ २-३ ॥

१४८० पिब॑तं॒ सोमं॒ मधु॑मन्तमश्विना॒ ऽऽ ब॒र्हिः सी॑दतं सु॒मत् ।
ता वा॑वृधा॒ना उप॑ सुष्टु॒तिं दि॒वो गन्तं॑ गौ॒रावि॒वेरि॑णम् ॥ ४ ॥
१४८१ आ नू॒नं या॑तमश्वि॒ना ऽश्वे॑भिः प्रुषि॒तप्सु॑भिः ।
द॒स्रा हिर॑ण्यवर्तनी शुभस्पती पा॒तं सोम॑मृतावृधा ॥ ५ ॥
१४८२ व॒यं हि वां॒ हवा॑महे विप॒न्यवो॒ विप्रा॑सो॒ वाज॑सातये ।
ता व॒ल्गू द॒स्रा पु॑रु॒दंस॑सा धि॒या ऽश्वि॑ना श्रु॒ष्ट्या ग॑तम् ॥ ६ ॥

[८८]

(ऋषिः- नोधा गौतमः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१४८३ तं वो॑ द॒स्मम्ॠ॑ती॒षहं॒ वसो॑र्मन्दा॒नमन्ध॑सः ।
अ॒भि व॒त्सं न स्वस॑रेषु धे॒नव॒ इन्द्रं॑ गी॒र्भिर्न॑वामहे ॥ १ ॥

अर्थ— [१४८०] हे (अश्विना) अश्विदेवों ! (सुमत् बर्हिः आ सीदतं) सुखकारक कुशासनपर आकर बैठो। (मधुमन्तं सोमं पिबतं) मीठे सोमरसका पान करो । (इरिणं गौरौ इव) जलाशयके समीप दो हिरण जैसे जाते हैं, वैसेही (दिवः ता वावृधाना) द्युलोकसे आकर तुम दोनों बढते हुए (सुष्टुतिं उप गन्तं) अच्छी स्तुतिके समीप बैठकर सुनो ॥ ४ ॥

[१४८१] हे (दस्रा) शत्रुविनाशकर्ता ! (हिरण्यवर्तनी) सुवर्णके रथसे युक्त (शुभस्पती) सज्जनोंके पालक ! और (ऋतावृधा अश्विना) ऋतके बढानेहारे अश्विदेवों ! (नूनं) सचमुच अब (प्रुषितप्सुभिः अश्वेभिः) दीप्त स्वरूपवाले घोडोंसे (आ यातं) आओ, और (सोमं पातं) सोमका पान करो ॥ ५ ॥

[१४८२] हे (अश्विना) अश्विदेवों ! (वयं विपन्यवः विप्रासः) हम विद्वान्, ज्ञानी लोग (वाजसातये) अन्नका बँटवारा करनेके लिए (वां हि हवामहे) तुम्हेंही बुलाते हैं, इसलिए (ता वल्गू दस्रा) वे तुम सुन्दर रूपवाले शत्रुविध्वंसक (पुरु-दंससा) विविध कार्यवाले और (धिया) बुद्धिमान् तुम दोनों (श्रुष्टी आ गतं) जल्दी आ जाओ ॥ ६ ॥

[८८]

[१४८३] हम (दस्मं, ऋतीषहं) दर्शनीय और शत्रुको मारनेवाले, (वसोः अन्धसः मन्दानं) निवासक सोमरससे आनन्दित होनेवाले (तं वः इन्द्रं) उस तुम्हारे इन्द्रकी (स्वसरेषु) सब दिन (धेनवः वत्सं अभि न) जिस प्रकार गायें बछडेके लिए शब्द करती हैं, उसी प्रकार (गीर्भिः नवामहे) स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— ये दोनों देव शत्रुओंका विनाश करनेवाले और सज्जनोंके पालक तथा सत्यकी रक्षा करनेवाले हैं ॥ ४–५ ॥

विद्वानोंका स्वभाव ही यह होता है कि वे सदा कार्योंको परमार्थकी प्रवृत्तिसे करते हैं । वे सभी भोगोंका उपभोग बांटकर करते हैं । मनुष्य भी अपने समाजमें बांटकर भोगोंका उपभोग करें ॥ ६ ॥

यह इन्द्र दर्शनीय, शत्रुको नष्ट करनेवाला, सोमरससे आनन्दित होनेवाला है । उस इन्द्रकी सभी यज्ञोंमें स्तुति होती है ॥ १ ॥

१४८४ द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २ ॥

१४८५ न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळवः ।
यद्दित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते ॥ ३ ॥

१४८६ योद्धासि क्रत्वा शवसोत दंसना विश्वा जाताभि मज्मना ।
आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन् ॥ ४ ॥

१४८७ प्र हि रिरिक्ष ओजसा दिवो अन्तेभ्यस्परि ।
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमनु स्वधां ववक्षिथ ॥ ५ ॥

१४८८ नकिः परिष्टिर्मघवन् मघस्य ते यद्दाशुषे दशस्यसि ।
अस्माकं बोध्युचथस्य चोदिता मंहिष्ठो वाजसातये ॥ ६ ॥

अर्थ— [१४८४] (द्युक्षं सु-दानुं) तेजस्वी उत्तम दान करनेवाले (गिरिं न) जैसे पहाड मेघोंसे घिरे रहते हैं उसी प्रकार (तविषीभिः आवृत) बलोंसे घिरे हुए (पुरु भोजसं) बहुतोंके पालक (क्षुमन्तं) हर्षित होकर शब्द करनेवाले इन्द्रसे हम (शतिनं सहस्रिणं गोमन्तं) सैंकडों हजारों गौवोंवाले (वाजं) धनको (मक्षू ईमहे) शीघ्र मांगते हैं ॥ २ ॥

[१४८५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (बृहन्तः वीळवः अद्रयः) बडे बडे दृढ पर्वत भी (त्वा न वरन्ते) तुझे नहीं हटा सकते, (स्तुवते मावते) स्तुति करनेवाले मेरे जैसेके लिए तू (यत् वसु दित्ससि) जो धन देना चाहता है, (ते तत् न किः आ मिनोति) तेरे उस धनका कोई नाश नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

[१४८६] हे इन्द्र ! तू (क्रत्वा, शवसा योद्धा असि) कर्मसे और बलसे योद्धा है, (उत) और (दंसना मज्मना) कर्मसे और बलसे (विश्वा जाता) सम्पूर्ण प्राणियोंपर (अभि) शासन करता है। (यं) जिस तुझे (गोतमाः अजीजनन्) गोतमके पुत्रोंने प्रकट किया, उस (त्वा) तुझे (अर्कः अयं) स्तुति करनेवाला यह मनुष्य (ऊतये) संरक्षणके लिए (आ ववर्तति) बारंबार बोलता है ॥ ४ ॥

[१४८७] हे इन्द्र ! तू (ओजसा) अपने बलसे (दिवः अन्तेभ्यः परि) द्युलोककी सीमाओंसे आगे भी (प्र रिरिक्षे) शासन करता है, (त्वा) तुझे (पार्थिवं रजः) पृथ्वीका लोक भी (न विव्याच) नहीं व्याप्त कर सकता, हे इन्द्र ! हमारे लिए तू (स्वधां) अन्नका (अनुववक्षिथ) ले आ ॥ ५ ॥

[१४८८] हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तू (यत्) जब धनको (दाशुषे दशस्यसि) दानशीलके लिए देना चाहता है, तब (ते मघस्य) तेरे धनका (परिष्टिः) रोकनेवाला (न किः) कोई नहीं है, हे (चोदिता मंहिष्ठः) सबको प्रेरित करनेवाले, दातामें उत्तम इन्द्र (वाजसातये) अन्न दानके लिए (अस्माकं उचथस्य) हमारे स्तोत्रको (बोधि) जान ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र तेजस्वी, उत्तम दाता मेघोंसे घिरे हुए पहाडके समान सदा धनसे घिरा हुआ, विश्वका पालक तथा गौ रूपी धनका स्वामी है ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! बडे बडे दृढ पर्वत भी तुझे नहीं हिला सकते। तू जो धन देना चाहता है उसको कोई रोक नहीं सकता ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तू अपने कर्म और बलके कारण योद्धा कहाता है। तू कर्मसे और बलसे सम्पूर्ण प्राणियोंपर शासन करता है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तू अपने बलसे द्युलोककी सीमाओंसे परे भी शासन करता है। पृथिवीका विस्तृत लोक भी इस इन्द्रकी मर्यादाको नहीं प्राप्त कर सकता ॥ ५ ॥

जब यह इन्द्र किसीको धन देना चाहता है, तब उसे कोई रोक नहीं सकता। वही सब विश्वको प्रेरणा देता है। इसलिए उससे बढकर शक्तिशाली और कोई नहीं है। इसलिए इसके कामोंमें कोई बाधा नहीं डाल सकता ॥ ६ ॥

[८९]

(ऋषिः- नृमेध-पुरुमेधावाङ्गिरसौ । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- १-४ प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ५-६ अनुष्टुप्, ७ बृहती ।)

१४८९ बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ १ ॥

१४९० अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाऽथेन्द्रो द्युम्न्याभवत् ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥ २ ॥

१४९१ प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ३ ॥

१४९२ अभि प्र भर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित् ते असद्बृहत् ।
अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः ॥ ४ ॥

---

[८९]

अर्थ— [१४८९] हे (ऋतावृधः मरुतः) यज्ञको बढानेवाले मरुतो ! (येन जागृवि देवं ज्योतिः अजनयत्) जिस सामसे तुमने हमेशा जाग्रत रहनेवाले तेजपूर्ण ज्योतिको उत्पन्न किया, उस (वृत्रहन्तमं बृहत्) शत्रुको मारनेवाले बृहत् नामक सामको (देवाय इन्द्राय गायत) तेजस्वी इन्द्रके लिए गावो ॥ १ ॥

१ ऋतावृधः मरुतः— सत्य मार्गको बढानेवाले मरुत् होते है ।

२ येन जागृवि देवं ज्योतिः अजनयत्— जिसने सदा जाग्रत रहनेवाला दिव्य तेज फैलाया ।

[१४९०] हे (बृहद्भानो मरुद्गण) अत्यंत तेजस्वी मरुतगणो ! (अ-शस्ति-हा इन्द्रः) बुरे कार्य करनेवालोंको मारनेवाले इन्द्रने (अभिशस्तीः अपाधमत्) हिंसा करनेवाले सब शत्रुओंको मारा (अथ) और जिससे (द्युम्नी अभवत्) वह तेजस्वी हुआ । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (देवाः ते सख्याय येमिरे) सब देव तेरी मित्रताके लिए तेरे पास आते हैं ॥ २ ॥

[१४९१] हे (मरुतः) मरुतो ! (बृहते इन्द्राय ब्रह्म अर्चत) महान् इन्द्रके लिए स्तोत्र गाओ । वह (शतक्रतुः वृत्रहा) सैंकडों शुभ काम करनेवाला तथा शत्रुको मारनेवाला इन्द्र (शतपर्वणा वज्रेण) सैंकडों धारवाले वज्रसे (वृत्रं हनति) वृत्रको मारता है ॥ ३ ॥

[१४९२] हे (धृषन्मनः) सुदृढ मनवाले इन्द्र ! (बृहत् श्रवः) जो उत्तम अन्न है, वह (ते चित् असत्) तेरा ही है, उस अन्नको (धृषता) अपने शक्तिशाली मनसे हमें (अभि प्रभर) भरपूर दे । (मातरः आपः जवसा वि अर्षन्तु) मातारूपी जल प्रवाह वेगसे बहें, हे इन्द्र ! तू (वृत्रं हनः) वृत्रको मार और (स्वः जय) जलोंको जीत ॥ ४ ॥

भावार्थ— ऋत-नियमके अनुसार चलनेवाले वीर उस दिव्य तेजको प्राप्त करते हैं कि जो उन्हें सदा जागृत रखता है । वह दिव्य तेज उन्हें आलस्यसे दूर रखता है ॥ १ ॥

दुष्टोंके नाश करनेवाले इन्द्रने सब शत्रुओंका नाश किया । वह तेजस्वी बना । सब देव तेरे सख्यके लिए प्रयत्न करते हैं । जो शत्रुओंको मारकर यशस्वी होता है, उसकी मित्रता करनेकी सब अभिलाषा धारण करते है ॥ २ ॥

जो सैकडों शुभ कर्म करता है तथा उत्तम तीक्ष्ण शस्त्रसे शत्रुका वध करता है, उस वीरकी सब स्तुति करते हैं । अपने शस्त्र अति तीक्ष्ण रखने चाहिये । उससे शत्रुका वध करना चाहिये । जो वीर ऐसा करता है उसकी स्तुति होती है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! शत्रुका विनाश करनेके विचार हमारे मनमें स्थापित कर; तेरे धैर्यशाली मनसे हमें भरपूर अन्नका दान कर । शत्रुको मार । अपना जय हो ऐसा कर ॥ ४ ॥

×

१४९३ यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय ।
तत् पृथिवीमप्रथय-स्तदस्तभ्ना उत द्याम् ॥ ५ ॥
१४९४ तत् ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥ ६ ॥
१४९५ आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामन् तपता सुवृक्तिभि-र्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥ ७ ॥

[९०]

(ऋषि- नृमेध-पुरुमेधावाङ्गिरसौ । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१४९६ आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥ १ ॥

अर्थ— [१४९३] हे (अपूर्व्य मघवन्) हे विलक्षण काम करनेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तूने (वृत्रहत्याय) वृत्रको मारनेके लिए (यत् जायथाः) जिस बलको प्रकट किया (तत्) उसी बलसे (पृथिवीं अप्रथयः) तूने पृथिवीको विस्तृत किया (उत) और (तत् द्यां अस्तभ्नाः) उसी बलसे द्युलोकको स्थिर किया ॥ ५ ॥

[१४९४] हे इन्द्र ! (तत् ते यज्ञः अजायत) उस तेरे लिए यज्ञ हुआ, (तत् अर्कः) तेरे लिए मंत्र बोले गए, (उत) और (हस्कृतिः) वषट्कार पूर्वक मंत्र भी तेरे लिए बोले गए, (यत् जातं यच्च जन्त्वम्) जो कुछ पैदा हुआ या जो कुछ होनेवाला विश्व है, (तत् विश्वं अभिभूः असि) उस सबको तू अधिकारमें रखता है ॥ ६ ॥

१ यत् जातं यत् च जन्त्वं तत् विश्वं अभिभूः असि— जो बना और जो बननेवाला है उस सबपर तेरा अधिकार चलता है ।

[१४९५] हे इन्द्र ! तूने (आमासु पक्वं ऐरयः) गायोंमें पके दूधको प्रेरित किया, और (दिवि सूर्यं आ रोहयः) द्युलोकमें सूर्यको चढाया । (घर्मं सामन् न) घर्म अर्थात् प्रवर्ग्य यज्ञको जिस प्रकार सामोंसे बढाते हैं, उसी प्रकार हे मनुष्यो ! तुम इन्द्रको (सुवृक्तिभिः तपत) उत्तम स्तोत्रोंसे बढाओ और (गिर्वणसे जुष्टं बृहत्) पूज्य इन्द्रके लिए प्रिय लगनेवाले बृहत् नामक सामका गान करो ॥ ७ ॥

[९०]

[१४९६] (वृत्रहा, परमज्याः, ऋचीषमः) वृत्रको मारनेवाला, उत्तम धनुषकी डोरीवाला, सोम पीनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ तथा (विश्वासु समत्सु हव्यः) सब युद्धोंमें सहायार्थ बुलाये जाने योग्य वह (इन्द्रः) इन्द्र (नः ब्रह्माणि सवनानि आ उप भूषतु) हमारे मंत्रोंको तथा यज्ञोंको अलंकृत करे ॥ १ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तूने वृत्रको मारनेके लिए जिस बलको प्रकट किया था, उसी बलको तूने पृथिवीको विस्तृत करनेके लिए किया और उसी बलसे तूने द्युलोकको स्थिर किया ॥ ५ ॥

इस संसारमें जितना भी कुछ ज्ञान है, उस सबको इन्द्र जानता है । इसके अलावा इस विश्वमें जितना भी कुछ उत्पन्न हुआ पदार्थ है, अथवा जितना भी कुछ भविष्यमें होनेवाला है, उन सबका स्वामी इन्द्र ही है ॥ ६ ॥

यह इन्द्रकी महिमा है कि उसने गायोंमें पके हुए दूधको स्थापित किया । गोदुग्ध स्वयंमें एक पक्वान्न है । उसी इन्द्रने द्युलोकमें सूर्यको स्थापित किया ॥ ७ ॥

शत्रुओंका संहारक तथा उत्तम शस्त्रास्त्रोंको धारण करनेवाला होनेके कारण वह इन्द्र सभीके द्वारा युद्धमें सहायताके लिए बुलाया जाता है ॥ १ ॥

१४९७ त्वं दाता प्रथमो राधसाम॒स्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ २ ॥
१४९८ ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियन्ते अनतिद्भुता ।
इमा जुषस्व हर्यश्व योजने॒न्द्र या ते अमन्महि ॥ ३ ॥
१४९९ त्वं हि सत्यो मघवन्ननानतो वृत्रा भूरि न्यृञ्जसे ।
स त्वं शविष्ठ वज्रहस्त दाशुषे ऽर्वाञ्चं रयिमा कृधि ॥ ४ ॥
१५०० त्वमिन्द्र यशा अस्यृ॒जीषी शवसस्पते ।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इद॒नुत्ता चर्षणीधृता ॥ ५ ॥

अर्थ— [१४९७] हे इन्द्र ! तू (राधसां प्रथमः दाता असि) तू धनोंको सबसे पहले देनेवाला है, और तू (सत्यः ईशानकृत् असि) सत्य और सब पर शासन करनेवाला है। हम (तुविद्युम्नस्य शवसः पुत्रस्य महः) अत्यन्त तेजस्वी, बलके पुत्र और महान् तेरे (युज्या वृणीमहे) योग्य धनोंको चाहते हैं ॥ २ ॥

[१४९८] हे (गिर्वणः हर्यश्व इन्द्र) पूज्य तथा घोडोंको पासमें रखनेवाले इन्द्र ! हम (ते) तेरे लिए (या अनतिद्भुता ब्रह्मा) जिन यथार्थरूपवाले स्तोत्रोंको (अमन्महि) मनन पूर्वक बोलते हैं और (क्रियन्ते) दूसरोंके द्वारा यजन कराये जाते हैं, (इमा योजना जुषस्व) उन योजनाओंका तू सेवन कर ॥ ३ ॥

[१४९९] हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (त्वं हि सत्यः अनानतः) तू सचाईसे किसीके सामने न झुकनेवाला नहीं है, तू (भूरि वृत्रा न्यृंजसे) बहुतसे वृत्रोंको मारता है। हे (शविष्ठ वज्रहस्त) बलवान् और हाथोंमें वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! (सः त्वं) वह तू (दाशुषे रयिं अर्वाचं कृधि) दाताके लिऊ धनको उसकी तरफ प्रेरित कर ॥ ४ ॥

१ त्वं हि सत्यः अनानतः— तू किसीके सामने झुकता नहीं है।
२ त्वं भूरि वृत्रा न्यृंजसे— तू बहुत शत्रुओंका वध करता है।
३ त्वं दाशुषे रयिं अर्वाचं कृधि-- तू दाताके पास पर्याप्त धन रख।

[१५००] हे (शवसस्पते इन्द्र) बलोंके स्वामी इन्द्र ! (त्वं) तू (यशा ऋजीषी असि) यशस्वी और सोम पीनेवाला है। (त्वं एकः इत्) तू अकेला ही (चर्षणीधृता) मनुष्योंकी रक्षा करनेवाले अपने वज्रसे (अनुत्ता, अप्रतीनि वृत्राणि हंसि) जिनका मुकाबला नहीं किया जा सकता ऐसे कभी पीछे न हटनेवाले वृत्रोंको मारता है ॥ ५ ॥

१ त्वं एकः चर्षणीधृता अनुता अप्रतीनि वृत्राणि हंसि— तू अकेला ही शस्त्र धारण करके अप्रतिम शत्रुओंको मारता है।

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू धनोंका दान करनेमें पहिला दाता है। तू सच्चा स्वामी निर्माण करनेवाला है। तेजस्वी और बलके लिए प्रसिद्ध ऐसे महान योग्य सामर्थ्य हम चाहते हैं। हमें ऐसे सामर्थ्य प्राप्त हों ऐसा चाहते हैं कि जिनसे तेजस्विता और बल बढता रहता है ॥ २ ॥

इन्द्र इतना शूरवीर है कि उसे कोई भी शत्रु झुका नहीं सकता। वह सदा उत्साहमें भरकर शत्रुओंका वध करता है। इसलिए उसकी सब स्तुति करते हैं ॥ ३-४ ॥

यह इन्द्र अकेला होते हुए भी अपने वज्रसे अन्योंसे अपराजेय शत्रुओंको मारता है और अपने इस पराक्रमके कारण यशस्वी होता है ॥ ५ ॥

१५०१ तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नवन् ॥ ६ ॥

[९१]

(ऋषिः- आत्रेयी अपाला । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- अनुष्टुप्, १-२ पङ्क्तिः ।)

१५०२ कन्या३ वारवायती सोममपि स्रुताविदत् ।
अस्तं भरन्त्यब्रवी-दिन्द्राय सुनवै त्वा शक्राय सुनवै त्वा ॥ १ ॥
१५०३ असौ य एषि वीरको गृहंगृहं विचाकशत् ।
इमं जम्भसुतं पिब धानावन्तं करम्भिण-मपूपवन्तमुक्थिनम् ॥ २ ॥
१५०४ आ चन त्वा चिकित्सामो ऽधि चन त्वा नेमसि ।
शनैरिव शनकैरिवे-न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥
१५०५ कुविच्छकत् कुवित् करत् कुविन्नो वस्यसस्करत् ।
कुवित् पतिद्विषो यती-रिन्द्रेण संगमामहै ॥ ४ ॥

अर्थ— [१५०१] (भागं इव) जिस प्रकार पुत्र अपने पितासे धनका भाग मांगता है, उसी प्रकार हे (असुर) प्राण रक्षक इन्द्र ! (तं त्वा प्रचेतसं) उस तुझ बुद्धिमान्से (राधः ईमहे) हम धन मांगते हैं। हे इन्द्र ! (ते शरणा) तेरा आश्रय (मही कृत्तिः इव) बहुत बडे कवचके समान है, (ते सुम्ना नः अश्नवत्) तेरे सुख हम भोगें ॥ ६ ॥

[९१]

[१५०२] (वारवायती कन्या) नदीकी तरफ स्नानके लिये जाती हुई कन्याने (स्रुतौ) मार्गमें (सोमं अपि अविदत्) सोमको प्राप्त कर लिया । उसे (अस्तं भरन्ती अब्रवीत्) घरको लाती हुई बोली कि मैं (त्वा इन्द्राय सुनवै) तुझे इन्द्रके लिए निचोडूँगी, मैं (त्वा शक्राय सुनवै) तुझे सामर्थ्यवान् इन्द्रके लिए निचोडूंगी ॥ १ ॥

[१५०३] हे इन्द्र ! (यः असौ) जो यह (वीरकः) वीर तू (विचाकशत्) तेजस्वी होता हुआ (गृहं गृहं एषि) प्रत्येकके घर जाता है, वह तू (धानावन्तं, करम्भिणं, अपूपवन्तं उक्थिनं) खीलोंवाले, दही मिश्रित, पुओंसे युक्त तथा प्रशंसनीय (इमं जम्भसुतं पिब) इस पीनेके लिये निचोडे गए सोमको पी ॥ २ ॥

[१५०४] हे इन्द्र ! हम (त्वा चन चिकित्सामः) तुझे जानने की इच्छा करते हैं, पर (चन त्वा न अधि ईमसि) अभी तुझे हम पहचान नहीं सकते । हे (इन्दो) सोम ! तू (शनैः इव शनकैः इव) धीरे धीरे (इन्द्राय परिस्रव) इन्द्रके लिए बह ॥ ३ ॥

[१५०५] वह इन्द्र हमें (कुवित् शकत्) बहुत बार सामर्थ्य युक्त करे, (कुवित् करत्) हमें बहुत श्रेष्ठ करे तथा हमें (कुवित्) बहुत बार (वस्यसः करत्) धनवान् करे । (पतिद्विषः यतीः) पतिके क्रोधके कारण भाई हुई मैंने (इन्द्रेण) इन्द्रकी (कुवित् संगमामहै) बहुत बार उपासना की है ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तुझ बुद्धिमान्के पास पिताके धनका भाग पुत्र मांगता है, उस प्रकार धनका भाग हम मांगते हैं । तेरे आश्रयमें रहनेवाले हम, बडे कवचसे सुरक्षित होनेके समान सुरक्षित होकर तुझसे सुख प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

स्त्रियां भी स्नान आदिसे पवित्र होकर यज्ञ करे और उसमें सोम रस तैय्यार करके इन्द्रको बुलाकर उसका सत्कार करें । स्त्रियोंको भी यज्ञ करनेका अधिकार है, यह इन दो मंत्रोंसे प्रतिपादित होता है ॥ १-२ ॥

इन्द्रके रूप अनेक हैं । अतः वह अनेक रूपोंमें प्रकट होता है । इसी अनेकताके कारण वह सर्वत्र व्यापक होते हुए भी उसे पहचानना कठिन होता है । इसलिए उसे जाननेकी इच्छा करनेवाले ज्ञानीजन भी उसे पहचान नहीं सकते ॥ ३ ॥

उस इन्द्रकी उपासना हम करें, तो हम अनेक बार सामर्थ्यशाली तथा अनेक बार धनवान् हो सकते हैं ॥ ४ ॥

१५०६ इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय ।
शिरस्ततस्योर्वरा—मादिदं म उपोदरे ॥ ५ ॥
१५०७ असौ च या न उर्वरा—दिमां तन्वं मम ।
अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि ॥ ६ ॥
१५०८ खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पू—त्व्यकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ७ ॥

[९२]

(ऋषिः- श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री, १ अनुष्टुप् ।)

१५०९ पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥

अर्थ— [१५०६] हे इन्द्र! मेरे (ततस्य शिरः) पिताका सिर, (उर्वरां) उसकी सुपीक भूमि और (मे उदरे उप) मेरे पेटके पासका स्थान, (इमानि त्रीणि विष्टपा) ये तीन स्थान हैं, (तानि वि रोहय) उन्हें उत्तम कर ॥५॥

१ ततस्य सिरः विरोहय— पिताका सिर उन्नत कर ।
२ ततस्य उर्वरां विरोहय— पिताकी उपजाऊ भूमि धान्य उगे ऐसा कर ।
३ मे उदरे उप विरोहय— मेरे पेटका आरोग्य बढा ।
४ इमानि त्रीणि विष्टपा— ये तीन स्थान सुधरें ।

[१५०७] (नः) हमारे पिताकी (या उर्वरा) जो भूमि है उसे (आत् मम इमां तन्वां) और मेरे इस शरीरको (अथो ततस्य यत् शिरः) और पिताका जो सिर है, (ताः सर्वाः) उन सबको (रोमशाः कृधि) रोमोंवाला कर ॥ ६ ॥

[१५०८] (रथस्य खे) रथके छिद्रसे (अनसः खे) गाडीके छिद्रसे (युगस्य खे) रथके जुएके छिद्रसे, हे (शतक्रतो) सैकडों पराक्रमके कार्य करनेवाले इन्द्र ! तू (अपालां त्रिः पत्वी) अपालाको तीन वार पवित्र करके उसे (सूर्यत्वचं अकृणोः) सूर्यके समान तेजस्वी चमडीसे युक्त किया ॥ ७ ॥

[९२]

[१५०९] हे मनुष्यो ! (वः) तुम (अन्धसः पान्तं) सोमको पीनेवाले (विश्वासाहं) सभी शत्रुओंको पराजित करनेवाले (शतक्रतुं) सैकडों शुभ काम करनेवाले (चर्षणीनां मंहिष्ठं) मनुष्योंके लिए पूज्य ऐसे (इन्द्रं अभि प्रगायत) इन्द्रके स्तोत्रोंका गान करो ॥ १ ॥

भावार्थ— मनुष्य ऐसे कर्म करे कि जिससे उसके पिताका सिर सदा गर्वसे ऊंचा रहे, वह सम्पत्तिशाली बने तथा स्वास्थ्य उत्तम बने ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! हमारी उपजाऊ भूमिको पाकवाली कर । मेरे शरीरको बालोंवाला करो अर्थात् तरुण करो । पिताका सिर बालवाला करो । उसके बाल नष्ट न हों ॥ ६ ॥

रथ, गाडी और जूएके छिन्द्रसे अपालाको तीन वार पवित्र करके उसको सूर्यके समान तेजस्वी बनाया । अपालाको रथपर तथा गाडीपर बिठलाया, उससे जू ठीक किया । इससे अपाला कन्या सामर्थ्यवती बनी । उसका शरीर ठीक हुआ ॥७॥

हे मनुष्यो ! तुम सभी शत्रुओंको नष्ट करनेवाले, तथा अनेकों शुभ कार्य करनेके कारण मनुष्योंमें पूज्य इन्द्रकी स्तुति करो ॥ १ ॥

१५१० पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यं१ सनश्रुतम् । इन्द्र इति ब्रवीतन ॥ २ ॥
१५११ इन्द्र इन्नो महानां दाता वाजानां नृतुः । महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ॥ ३ ॥
१५१२ अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः । इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥ ४ ॥
१५१३ तम्वभि प्रार्चतेन्द्रं सोमस्य पीतये । तदिद्ध्यस्य वर्धनम् ॥ ५ ॥
१५१४ अस्य पीत्वा मदानां देवो देवस्यौजसा । विश्वाभि भुवना भुवत् ॥ ६ ॥
१५१५ त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥ ७ ॥
१५१६ युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् । नरमवार्यक्रतुम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [१५१०] हे मनुष्यो ! तुम (पुरुहूतं पुरुष्टुतं) बहुतोंद्वारा बुलाये जानेवाले, और बहुतोंद्वारा प्रशंसित, (गाथान्यं सनश्रुतं) यशस्वी और अनन्त कालसे प्रसिद्ध ऐसे (इन्द्रं ब्रवीतन) इन्द्रके गुणोंका वर्णन करो ॥ २ ॥

[१५११] (इन्द्रः इत् नः महानां वाजानां दाता) इन्द्र ही हमें बहुत अन्नोंको देनेवाला है, और (नृतुः) सबको आगे ले जानेवाला है, वह (महान्) महान् इन्द्र (अभिज्ञु आ यमत्) घुटनोंतक झुके हुए अर्थात् विनम्र हुए हुए हमें धन देवे ॥ ३ ॥

[१५१२] (शिप्री) शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्रने (प्रहोषिणः सुदक्षस्य) श्रद्धापूर्वक हवि देनेवाले सुदक्षके (यवाशिरः इन्दोः अन्धसः) जौके आटेसे मिश्रित चमकनेवाले सोमको (अपात्) पिया ॥ ४ ॥

सोमरसमें आटा मिलाकर पिया जाता है ।

[१५१३] (सोमस्य पीतये) सोम पीनेके लिए (तं इन्द्रं अभि प्र अर्चत) उस इन्द्र की स्तुति करो, (तत् अस्य वर्धनं इत्) वह सोम इस इन्द्रको बढानेवाला है ॥ ५ ॥

सोमरस पीनेसे शक्ति बढती है ।

[१५१४] यह (देवः) तेजस्वी इन्द्र (अस्य मदानां पीत्वा) इस सोमके आनन्द कारक रसोंको पीकर (देवस्य ओजसा) दिव्य ओजसे (विश्वा भुवना अभि भुवत्) सारे भुवनों पर शासन करता है ॥ ६ ॥

[१५१५] हे मनुष्य ! (सत्रासाहं) सब शत्रुओंको एक साथ हरानेवाले (वः विश्वासु गीर्षु आयतम्) तुम्हारे सभी स्तोत्रोंमें प्रशंसित होनेवाले (त्यं उ) उस इन्द्रकोही (ऊतये आच्यावयसि) अपने संरक्षणके लिए बुला ॥ ७ ॥

[१५१६] (अनर्वाणं सन्तं युध्मं) बिना घोडोंके भी उत्तमतासे युद्ध करनेवाले (सोमपां) सोमको पीनेवाले (अन्-अपच्युतम्) अपने स्थानसे न हिलनेवाले (नरं) उत्कृष्ट नेता (अवार्यक्रतुं) न हटाये जाने योग्य इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए बुलाओ ॥ ८ ॥

भावार्थ— इन्द्र ही बहुत सारे अन्नको देनेवाला तथा उत्तम नेता है । वह अनन्तकालसे प्रसिद्ध होनेके कारण अत्यन्त यशस्वी है । वह अत्यन्त विनम्र हुए हमें ऐश्वर्यसे सम्पन्न करे ॥ २-३ ॥

इन्द्र श्रद्धापूर्वक हवि देनेवालेके द्वारा दिए गए सोमरसको पीता है । जो हृदयसे इन्द्रकी स्तुति करता है, उसके सोमरसको इन्द्र स्वीकार करता है ॥ ४-५ ॥

तेजस्वी इन्द्र इन सोमरसोंको पीकर उत्साहमें भर जाता है और ओजस्वी होकर वह सारे भुवनों पर शासन करता है । उस वीर इन्द्रकी प्रशंसा सभी लोग स्तोत्रोंसे करते हैं । सोमको पीनेसे उत्साह और शक्ति बढती है ॥ ६-७ ॥

युद्ध करनेवाले, अपने स्थानसे न हटनेवाले नेता इन्द्रको उनके निश्चित किये कार्यसे हटाया नहीं जा सकता । वीर वही है कि वह एक बार जो निश्चित कर लेता है, उससे वह कभी भी पीछे नहीं हटता ॥ ७-८ ॥

१५१७ शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम । अवा नः पार्ये धने ॥ ९ ॥
१५१८ अतश्चिदिन्द्र ण उपा ऽऽ याहि शतवाजया । इषा सहस्रवाजया ॥ १० ॥
१५१९ अयाम धीवतो धियो ऽर्वद्भिः शक्र गोदरे । जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥ ११ ॥
१५२० वयमु त्वा शतक्रतो गावो न यवसेष्वा । उक्थेषु रणयामसि ॥ १२ ॥
१५२१ विश्वा हि मर्त्यत्वना ऽनुकामा शतक्रतो । अगन्म वज्रिन्नाशसः ॥ १३ ॥
१५२२ त्वे सु पुत्र शवसो ऽवृत्रन् कामकातयः । न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ १४ ॥
१५२३ स नो वृषन् त्सनिष्ठया सं घोरया द्रवित्न्वा । धियाविड्ढि पुरंध्या ॥ १५ ॥

अर्थ— [१५१७] हे (ऋचीषम इन्द्र) उत्तम मार्गसे जानेवाले इन्द्र ! (विद्वान्) विद्वान् तू (नः पुरु रायः शिक्ष) हमें बहुत सारा धन दे और (पार्ये धने) शत्रुओंके साथ होनेवाले युद्धमें (नः अव) हमारी रक्षा कर ॥ ९ ॥

[१५१८] (अतः चित्) इसी लिए हे इन्द्र ! (शतवाजया सहस्रवाजया इषा) सैकडों और हजारों प्रकार बल देनेवाले अन्नके साथ (नः उप आयाहि) हमारे पास आ ॥ १० ॥

अन्न बल बढानेवाला हो । वैसा अन्न हमें मिले ।

[१५१९] हे (शक्र गोदरे) शक्तिमान् और पर्वतोंको तोडनेवाले इन्द्र ! (धीवतः धियः अयाम) बुद्धिमान् हम कर्मोंको करें और हे (वज्रिवः) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! तेरे द्वारा दिए गए (अर्वद्भिः) घोडोंके द्वारा हम (पृत्सु जयेम) संग्रामोंमें विजय प्राप्त करें ॥ ११ ॥

[१९२०] हे (शतक्रतो) सैकडों शुभ कार्य करनेवाले इन्द्र ! (यवसेषु गावः न) जिस प्रकार जौके खेतोंमें गायें आनन्दित होती हैं, उसी प्रकार (वयं उ त्वा) हम तुझे (उक्थेषु रणयामसि) स्तोत्रोंमें आनन्दित करते हैं ॥ १२ ॥

स्तोत्र गानेसे इन्द्रका आनंद बढता है ।

[१५२१] हे (शतक्रतो) सैकडों शुभकर्म करनेवाले इन्द्र ! (विश्वा हि मर्त्यत्वना) सभी मनुष्य (अनुकामा) अभिलाषाके पीछे चलते हैं, हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! हम भी वैसे (आशसः अगन्म) धनकी अभिलाषा करते हैं ॥ १३ ।

[१५२२] हे (शवसः पुत्र इन्द्र) बलके पुत्र इन्द्र ! (कामकातयः) कामना करनेवाले मनुष्य (त्वे सु अवृत्रन्) तेरे साथ उत्तमतासे व्यवहार करते हैं । हे इन्द्र ! (त्वां न अति रिच्यते) तुझसे बढकर और कोई नहीं है ॥ १४ ॥

[१५२३] हे (वृषन्) बलवान् इन्द्र ! (सः) वह तू अपने (सनिष्ठया) धन देनेवाली पर शत्रुओंके लिए (घोरया) भयंकर और उन्हें (द्रवित्न्वा) भगानेवाली (पुरंध्या धिया) अनेक शुभ गुणोंको धारण करनेवाली बुद्धिसे (नः विड्ढि) हमारी रक्षा कर ॥ १५ ॥

भावार्थ— हे विद्वान् इन्द्र ! तू हमें ऐश्वर्यसे युक्त कर और साथ ही हमारी रक्षा कर । बल बढानेवाले अनेक तरहके अन्नसे युक्त होकर तू हमारे पास आ ॥ ९–१० ॥

हम बुद्धिमान् होकर बुद्धिके ही कार्य करते हुए आगे बढें । घोडोंसे युद्धमें जय प्राप्त करें । युद्धमें घोडोंका प्रयोग करें ॥ ११ ॥

जिस तरह जौसे भरे हुए खेतोंको देखकर गाय आनन्दित होती है, उसी प्रकार स्तोत्रोंको देखकर इन्द्र आनन्दित होता है और इसी तरह अपनी अभिलाषाओंको पूर्ण होते देखकर मनुष्य आनन्दित होते हैं ॥ १२–१३ ॥

ऐश्वर्यकी कामना करनेवाले मनुष्य इन्द्रकी भक्ति करते हैं, क्योंकि उस इन्द्रसे बढकर और कोई नहीं है । इन्द्रकी बुद्धि शत्रुओंके लिए भयंकर और सज्जनोंके लिए अनेक शुभ गुणोंको धारण करनेवाली है ॥ १४–१५ ॥

१५२४ यस्ते॑ नू॒नं श॑तक्रत॒विन्द्र॑ द्यु॒म्नित॑मो॒ मद॑ः । तेन॑ नू॒नं मदे॑ मदेः ॥ १६ ॥
१५२५ यस्ते॑ चि॒त्रश्र॑वस्तमो॒ य इ॑न्द्र वृत्र॒हन्त॑मः । य ओ॑जो॒दात॑मो॒ मद॑ः ॥ १७ ॥
१५२६ वि॒द्मा हि यस्ते॑ अद्रिव॒स्त्वाद॑त्तः सत्य सोमपाः । विश्वा॑सु दस्म कृ॒ष्टिषु॑ ॥ १८ ॥
१५२७ इन्द्रा॑य॒ मद्व॑ने सु॒तं परि॑ ष्टोभन्तु नो॒ गिर॑ः । अ॒र्कम॑र्चन्तु का॒रव॑ः ॥ १९ ॥
१५२८ यस्मि॒न् विश्वा॒ अधि॒ श्रियो॒ रण॑न्ति स॒प्त सं॒सद॑ः । इन्द्रं॑ सु॒ते ह॑वामहे ॥ २० ॥
१५२९ त्रिक॑द्रुकेषु॒ चेत॑नं दे॒वासो॑ य॒ज्ञम॑त्नत । तमिद्व॑र्धन्तु नो॒ गिर॑ः ॥ २१ ॥
१५३० आ त्वा॑ विशन्त्वि॒न्दव॑ः समु॒द्रमि॑व॒ सिन्ध॑वः । न त्वामि॑न्द्राति॑ रिच्यते ॥ २२ ॥
१५३१ वि॒व्यक्थ॑ महि॒ना वृ॑षन् भ॒क्षं सोम॑स्य जागृवे । य इ॑न्द्र ज॒ठरे॑षु ते ॥ २३ ॥

अर्थ— [१५२४] हे (शतक्रतो इन्द्र) सैकडों तरहके शुभकर्म करनेवाले इन्द्र ! (यः द्युम्नितमः मदः) जिस तेजस्वी आनन्ददायक सोमरसको (ते नूनं) तेरे लिए निश्चयसे दिया, (तेन) इस कारण उस सोमके (मदे) आनन्दमें (नूनं मदेः) तू निश्चयसे आनन्दित हो ॥ १६ ॥

[१५२५] हे इन्द्र ! (यः चित्र श्रवस्तमः) जो विलक्षण तथा अत्यन्त यशस्वी सोमरस है, (यः वृत्रहन्तमः) जो वृत्रको मारनेवाला रस है, तथा (यः ओजदातमो मदः) जो ओजको देनेवाला आनन्दायक रस है, उसे (ते) तेरे लिए हमने तैय्यार किया है ॥ १७ ॥

१ चित्रः श्रवस्तमः वृत्रहन्तम· ओजदातमः मदः ते— विलक्षण, यशस्वी, शत्रुको मारनेवाला, बल बढानेवाला यह आनन्ददायक रस तेरे लिए तैयार किया है ।

[१५२६] हे (अद्रिवः सत्य सोमपाः दस्म) वज्र धारण करनेवाले, अविनाशी, सोम पान करनेवाले तथा दर्शनीय इन्द्र ! (विश्वासु कृष्टिषु) सब मनुष्योंको (त्वा दत्तः) तेरे द्वारा दिया गया (यः) जो धन है, उस (तं) तेरे धनको (विद्म) हम जानते है ॥ १८ ॥

[१५२७] (मद्वने इन्द्राय) आनन्दित होनेवाले इन्द्रके लिए (सुतं) निचोडे गए सोमको (नः गिरः परिष्टोभन्तु) हमारी स्तुतियाँ प्रशंसित करें, तथा (कारवः) स्तोता (अर्कं अर्चन्तु) उस तेजस्वी सोमका सत्कार करें ॥ १९ ॥

[१५२८] (यस्मिन् विश्वाः श्रियः अधि) जिस इन्द्रके पास सब तरहके ऐश्वर्य हैं, तथा (सप्त संसदः) सात होता (रणन्ति) जिसकी स्तुति करते हैं, उस (इन्द्रं) इन्द्रको हम (सुते हवामहे) सोम यागमें बुलाते हैं ॥ २० ॥

[१५२९] (देवासः) देवगण (त्रिकद्रुकेषु) तीन दिनतक चलनेवाले उत्सवोंमें (यज्ञं अत्नत) यज्ञका विस्तार करते हैं । (नः गिरः) हमारी स्तुतियां भी (तं इत् वर्धन्तु) उस इन्द्रको ही बढायें ॥ २१ ॥

[१५३०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सिन्धवः समुद्रं इव) जिसप्रकार नदियां समुद्रमें घुसती हैं, उसी तरह (इन्दवः त्वा आ विशन्तु) सोमरस तुझमें प्रविष्ट हों, (त्वां न अतिरिच्यते) तुझसे बढकर और कोई पूज्य नहीं है ॥ २२ ॥

[१५३१] हे (वृषन् जागृवे इन्द्र) बलवान् और सदा जागृत रहनेवाले इन्द्र ! (यः ते जठरेषु) जो सोमरस तेरे पेटमें जाता है, उस (सोमस्य भक्षं) सोमके पानको तू अपनी (महिना) महिमासे (विव्यक्थ) प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

भावार्थ— सोमरस तेजस्वी और आनन्दायक होते हैं । उन्हें पीकर इन्द्र भी विलक्षण शक्तिशाली, यशस्वी, शत्रुको मारने तथा अपने भक्तोंके बलको बढानेवाला होता है ॥ १६-१७ ॥

हम जानते हैं कि हमें जो कुछ ऐश्वर्य मिला हुआ है, वह सब इन्द्रकी कृपासे ही मिला हुआ है, इसी लिए हम उस इन्द्र की स्तुति करते हैं ॥ १८-१९ ॥

उस इन्द्रके पास सब तरहके ऐश्वर्य भरे पडे हैं । वही सब यज्ञोंमें प्रशंसित होनेवाला है, इसलिए तीनों सवनोंमें किए जानेवाले यज्ञ भी उसी इन्द्रके लिए किए जाते हैं ॥ २०-२१ ॥

जिस तरह सभी नदियोंका प्रवाह समुद्रकी तरफ ही जाता है, उसी तरह सबके द्वारा दिए गए सोमरस इन्द्रके पास ही पहुंचते हैं, और उस सोमकी महिमासे इन्द्र यशस्वी होता है ॥ २२-२३ ॥

१५३२ अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् । अरं धामभ्य इन्दवः ॥ २४ ॥
१५३३ अरमश्वाय गायति श्रुतकक्षो अरं गवे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ २५ ॥
१५३४ अरं हि ष्मा सुतेषु णः सोमेष्विन्द्र भूषसि । अरं ते शक्र दावने ॥ २६ ॥
१५३५ पराकात्ताच्चिदद्रिव स्त्वां नक्षन्त नो गिरः । अरं गमाम ते वयम् ॥ २७ ॥
१५३६ एवा ह्यसि वीरयु रेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥ २८ ॥
१५३७ एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः । अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥ २९ ॥
१५३८ मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयु र्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३० ॥

अर्थ— [१५३२] हे (वृत्रहन् इन्द्र) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (सोमः) हमारे द्वारा दिया गया सोम (ते कुक्षये) तेरे पेटके लिए (अरं भवतु) पर्याप्त हो, तथा (इन्दवः) ये चमकनेवाले सोमरस तेरे (धामभ्यः अरं) तेजोंको बढानेके लिए पर्याप्त हों ॥ २४ ॥

[१५३३] (श्रुत कक्षः) श्रुतकक्ष नामका ऋषि (अश्वाय अरं गायति) घोडेको पानेके लिए पर्याप्त स्तुति करता है, (गवे अरं) गायको पानेके लिए पर्याप्त स्तुति करता है, और (इन्द्रस्य धाम्ने अरं) इन्द्रके तेजको पानेके लिए पर्याप्त स्तुति करता है ॥ २५ ॥

[१५३४] हे इन्द्र ! (नः सुतेषु सोमेषु) हमारे द्वारा निचोडे गए सोमरसोंको तू (अरं भूषसि) अच्छी तरह सुशोभित करता है । (ते शक्रदावने अरं) धन आदिको देनेवाले तुझे हमारे सोम पर्याप्त हों ॥ २६ ॥

[१५३५] हे (अद्रिवः) वज्रवाले इन्द्र ! (नः गिरः) हमारी स्तुतियां (पराकातात् चित्) दूरसे भी (त्वां नक्षन्त) तुझे प्राप्त हो जाती हैं । हे इन्द्र ! (वयं) हम (ते) तेरे धनको (अरं गमाम) अधिक तादादमें प्राप्त करें ॥ २७ ॥

[१५३६] हे इन्द्र ! तू (वीरयुः एव असि) वीरोंकी कामना करनेवाला है, (शूरः उत स्थिरः) तू शूर और युद्धमें स्थिर रहनेवाला है । (ते मनः राध्यं एव) तेरा मन आराधना करने योग्य है ॥ २८ ॥

[१५३७] हे (तुवीमघ) बहुत धनवान् इन्द्र ! (विश्वेभिः धातृभिः) धारण पोषण करनेवाले यजमानोंके द्वारा तेरा (रातिः धायि एव) धन धारण किया जाता है, (अध) इसलिए हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मे चित् सचा) मुझे भी धनसे संयुक्त कर ॥ २९ ॥

[१५३८] हे (वाजानां पते) बलोंके स्वामी इन्द्र ! तू (तन्द्रयुः ब्रह्म इव) आलसी ब्राह्मणके समान (मा सु भुव) मत हो, अपितु (गोमतः सुतस्य) गायके दूधसे मिश्रित सोम पीकर (मत्स्व) आनन्दित हो ॥ ३० ॥

१ ब्रह्म तन्द्रयुः मा सु भव— ज्ञानी होकर आलसी न बन । ज्ञानी प्रयत्नशील होना चाहिये ।

भावार्थ— सोमरसको पीकर उसे पचानेसे तेजको बढाते हैं । क्योंकि इन्हीं सोमरसोंको पीकर इन्द्र तेजस्वी हुआ ॥ २४-२५ ॥

हे इन्द्र ! हमारे द्वारा दिए गए सोमरसोंको तू प्रीतिपूर्वक स्वीकार कर । हम तेरी स्तुति करके अधिक प्रमाणमें हम तुझसे धन प्राप्त कर सकें ॥ २६ २७ ॥

हे इन्द्र ! तू वीरोंसे युक्त है, तुम्हारे साथ अनेक वीर हैं । तू युद्धमें शूर है और स्थिर रहता है । भागता नहीं । तेरा मन आराधना करने योग्य है । -वीर युद्धमें स्थिर रहे, पलायन न करे । ऐसे वीरका मन आराधना करने योग्य है ॥ २८ ॥

सब धारणकर्ताओंके द्वारा तेरा दान धारण किया जाता है । इस जगतमें जितने धनी हैं, उन सबके धनोंका स्वामी यही इन्द्र है । इसी इन्द्रसे सब लोग धन प्राप्त करते हैं ॥ २९ ॥

×

१५३९ मा नं इन्द्राभ्या३दिशः सूरो अक्तुष्वा यमत् । त्वा युजा वनेम तत् ॥ ३१ ॥
१५४० त्वयेदिन्द्र युजा वयं प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः । त्वमस्माकं तव स्मसि ॥ ३२ ॥
१५४१ त्वामिद्धि त्वायवो ऽनुनोनुवतश्चरान् । सखाय इन्द्र कारवः ॥ ३३ ॥

[९३]

(ऋषिः- सुकक्ष आङ्गिरसः । देवताः- इन्द्रः, ३४ इन्द्र-ऋभवश्च । छन्दः- गायत्री ।)

१५४२ उद्धेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥
१५४३ नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २ ॥
१५४४ स न इन्द्रः शिवः सखा ऽश्वावद्गोमद्यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥

अर्थ— [१५३९] हे इन्द्र ! (आ दिशः सूरः) उपदेश करनेवाले विद्वान् मनुष्य (अक्तुषु) रात्रिमें भी (नः मा यमन्) हमसे दूर न जाएं अपितु (अभि आ) हमारे पास ही आवें, हम (त्वा युजा) तेरी सहायतासे (तत् वनेम) उस विद्वानोंके समूहको प्राप्त करें ॥ ३१ ॥

[१५४०] हे इन्द्र ! (वयं त्वया युजा) हम तेरी सहायतासे ही (स्पृधः प्रतिब्रुवीमहि) शत्रुओंका मुकाबला करें । (त्वं अस्माकं) तू हमारा है और (तव स्मसि) हम तेरे हैं ॥ ३२ ॥

१ वयं त्वया स्पृधः प्रतिब्रुवीमहि— हम तेरे साथ रह कर स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका मुकाबला करेंगे ।

२ त्वं अस्माकं, तव स्मसि— तू हमारा सहायक हो और हम तेरे साथी हैं ।

[१५४१] हे इन्द्र ! (त्वायवः) तेरी कामना करनेवाले, (अनोनुवतः) क्रमशः स्तुति करनेवाले (सखायः कारवः) मित्र स्तोता (त्वां इत् हि चरान्) तेरी ही स्तुति करते हैं ॥ ३३ ॥

[९३]

[१५४२] हे (सूर्य) तेजस्वी इन्द्र ! तू (श्रुतामघं, वृषभं नर्यापसं) प्रसिद्ध धनवाले, बलवान् और मनुष्योंके हितकारी कामोंको करनेवाले तथा (अस्तारं) उदार मनुष्यके कार्यमें ही (अभि उत् एषि) जानेवाला है ॥ १ ॥

[१५४३] (यः वृत्रहा) जिस वृत्रको मारनेवाले इन्द्रने अपने (बाह्वोजसा) भुजाओंके बलसे (नवनवतिं पुरः) शत्रुकी निन्यानवे नगरियोंको (बिभेद) तोडा और (अहिं अवधीत्) अहिको मारा ॥ २ ॥

[१५४४] (शिवः सखा सः इन्द्रः) कल्याणकारी मित्र वह इन्द्र (नः) हमारे लिए (उरु धारा इव) बहुत दूध देनेवाली गायके समान (अश्वावत् गोमत् यवमत् दोहते) घोडे, गाय और धान्यसे युक्त धनको दुहता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— ब्राह्मणका आलसी होना उसके विनाशका कारण बनता है । इसलिए ब्राह्मणको सदा उत्साही और आनन्दसे युक्त होना चाहिए । ऐसे ज्ञानीको सब लोग अपने पास ही रखना चाहते हैं ॥ ३०-३१ ॥

हे इन्द्र ! तेरी सहायता प्राप्त करके हम शत्रुओंका मुकाबला करें । हम सदा तेरे प्रिय होकर ही रहें । क्योंकि जो तेरी स्तुति करता है, वही तेरा प्रिय होता है ॥ ३२-३३ ॥

हे इन्द्र ! तू प्रसिद्ध और यशस्वी धनवाला, बलवान् और मनुष्योंके लिए हितकारी कामोंको सदा करनेवाला है, तथा उदार है, दाता है, उसके कार्यमें जानेवाला है ॥ १ ॥

इस वृत्रनाशक इन्द्रने अपने बाहुबलसे शत्रुके निन्यानवे नगर तोडे और अहिको भी मारा। निन्यानवे नगरोंको तोडना यह कितने सामर्थ्यका कार्य है उसका विचार कीजिये । शत्रुके ९९ कीले, उनसें रहा सैन्य यह सविनष्ट करनेके लिये जितना सैन्य और अन्य युद्ध सामान जितना चाहिये उतना इन्द्रके पास था, उसका उपयोग करके वह शत्रुका पराजय करता था ॥२॥

इन्द्र हमें घोडे, गौवें, जौ आदि देता है, अतः वह हमारा उत्तम मित्र है ॥ ३ ॥

१५४५ यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ ४ ॥
१५४६ यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे । उतो तत् सत्यमित् तव ॥ ५ ॥
१५४७ ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि ॥ ६ ॥
१५४८ तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥ ७ ॥
१५४९ इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ ८ ॥
१५५० गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ ९ ॥
१५५१ दुर्गे चिन्नः सुगं कृधि गृणान इन्द्र गिर्वणः । त्वं च मघवन् वशः ॥ १० ॥

अर्थ— [१५४५] हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले (सूर्य) तेजस्वी इन्द्र ! (अद्य) आज (यत् कत् च अभि उत् अगाः) जिस किसी पदार्थको लक्ष्य करके तू उदय हुआ है, हे इन्द्र ! (सर्वं तत् ते वशे) वह सब तेरे वशमें है ॥ ४ ॥

[१५४६] हे (प्रवृद्ध सत्पते) उन्नतिशील तथा सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (न मरै इति यत् मन्यसे) मैं मरनेवाला नहीं, ऐसा जो तू मानता है, (तव तत् सत्यं इत्) तेरा वह मानना सत्य ही है ॥ ५ ॥

[१५४७] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (ये सोमासः) जो सोमरस (परावति सुन्विरे) दूरके देशमें निचोडे जाते हैं, (ये अर्वावति) और जो पासके देशमें निचोडे जाते हैं, (तान् सर्वान् गच्छसि) उन सभी सोमरसोंके पास तू जाता है ॥ ६ ॥

[१५४८] (महे वृत्राय हन्तवे) महान् वृत्रको मारनेके लिए हम (तं इन्द्रं वाजयामसि) उस इन्द्रको बलवान् बनाते हैं। (सः वृषा वृषभः भुवत्) वह बलवान् इन्द्र और अधिक बलशाली होता है ॥ ७ ॥

[१५४९] (सः इन्द्रः) वह इन्द्र (दामने कृतः) दान देनेके लिए उत्पन्न हुआ है, (सः ओजिष्ठः मदे हितः) वह अत्यन्त तेजस्वी इन्द्र आनन्दमें रहता है। (सः सोम्यः द्युम्नी श्लोकी) वह सोमको पीनेवाला इन्द्र तेजस्वी और सुप्रसिद्ध है ॥ ८ ॥

[१५५०] (वज्रः न) वज्रके समान (गिरा संभृतः) स्तुतिसे तीक्ष्ण किया गया, (सबलः अनपच्युतः) बलशाली, अपने स्थानसे न हटनेवाला (ऋष्वः) दर्शनीय (अस्तृतः) और शत्रुसे न हारनेवाला वह वीर इन्द्र (ववक्षे) मनुष्योंको धन देना चाहता है ॥ ९ ॥

[१५५१] हे (गिर्वणः मघवन् इन्द्रः) स्तुत्य और ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (गृणानः त्वं वशः) प्रशंसित होता हुआ तू वशमें रह, प्रसन्न हो और (नः) हमारे लिए (दुर्गे चित् सुगं कृधि) कठिन स्थान भी सरलतासे जाने योग्य कर ॥ १० ॥

भावार्थ— सूर्यका उदय होता है और उसके आधीन सब पदार्थ रहते हैं। सबपर वह प्रकाशता रहता है ॥ ४ ॥

नहीं मरूंगा ऐसा जो मानता है वह उसका मन्तव्य सत्य होता है। 'मैं नहीं मरूंगा' ऐसा मनुष्यको अपने मनमें विचार स्थिर रखना चाहिये, इससे मनुष्यका दीर्घ जीवन होता है ॥ ५ ॥

सोमरस निचोडकर इन्द्रादि देवोंको पीनेके लिये दिए जाते हैं। देवोंके पान करनेके पश्चात् ऋत्विज आदि पीते हैं। सोमरस पीनेसे शरीरमें उत्साहकी वृद्धि होती है ॥ ६ ॥

हम इन्द्रादि देवोंका उत्साह बढाते हैं और वीरोंका शौर्यका भाव भी बढाते हैं ॥ ७ ॥

वह इन्द्र दानके लिए प्रसिद्ध है। वह बलवान् आनन्दमें रहता है। वह आनंदी, तेजस्वी और प्रसिद्ध है ॥ ८ ॥

वह वीर वज्रके समान बलवान् और वाणीसे प्रशंसित है। वह बलवान्, युद्धमें अपने स्थानसे न हिलनेवाला, दर्शनीय और अपराजित है ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! हमारे लिये कठिन स्थान भी सुगम कर। कठिन स्थान पर सुगमतासे पहुंचें ऐसा कर ॥ १० ॥

१५५२ यस्य ते नू चिदादिशं न मिनन्ति स्वराज्यम्	न देवो नाध्रिगुर्जनः	॥ ११ ॥
१५५३ अधा ते अप्रतिष्कुतं देवी शुष्मं सपर्यतः	उभे सुशिप्र रोदसी	॥ १२ ॥
१५५४ त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च	परुष्णीषु रुशत् पयः	॥ १३ ॥
१५५५ वि यदहेरध त्विषो विश्वे देवासो अक्रमुः	विदन्मृगस्य ताँ अमः	॥ १४ ॥
१५५६ आदु मे निवरो भुवद् वृत्रहादिष्ट पौंस्यम्	अजातशत्रुरस्तृतः	॥ १५ ॥
१५५७ श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम्	आ शुषे राधसे महे	॥ १६ ॥
१५५८ अया धिया च गव्यया पुरुणामन् पुरुष्टुत	यत् सोमेसोम आभवः	॥ १७ ॥

अर्थ— [१५५२] हे इन्द्र ! (यस्यते) जिस तेरे (आदिशं स्वराज्यं) आदेश और स्वराज्यका (देवः अध्रिगुः जनः चित्) देव और अप्रतिहत गतिवाले मनुष्य भी (न मिनन्ति) उल्लंघन नहीं कर सकते ॥ ११ ॥

[१५५३] (अथ) इसके बाद हे (सुशिप्र) सुन्दर ठोढीवाले इन्द्र ! (उभे देवी रोदसी) दोनों तेजयुक्त द्यावापृथिवी (ते अप्रतिष्कुतं शुष्मं सपर्यतः) तेरे कहीं न रुकनेवाले बलकी पूजा करते हैं ॥ १२ ॥

[१५५४] हे इन्द्र ! (त्वं) तूने ही (कृष्णासु, रोहिणीषु परुष्णीषु) काली, लाल और चितकबरी गायोंमें (एतत् रुशत् पयः) इस तेजस्वी दूधको (अधारयः) स्थापित किया ॥ १३ ॥

[१५५५] (अध) इसके बाद (यत्) जब (अहेः त्विषः) अहिनामक असुरके तेजसे डर कर (विश्वे देवासः अक्रमुः) सब देव भाग गए, तब इन्द्रने (मृगस्य तां अमः विदत्) खोजने योग्य इस शत्रुके उस बलको जान लिया ॥ १४ ॥

[१५५६] (आत्) उसके बादही (वृत्रहा) वृत्रको मारनेवाले इन्द्रने (मे निवरो भुवत्) मेरे शत्रुका निवारण किया, तबसे इन्द्र भी (आजातशत्रुः अस्तृतः) शत्रुरहित और अपराजित हो गया ॥ १५ ॥

[१५५७] हे मनुष्यों ! (वृत्रहन्तमं) वृत्रको मारनेवाले (शर्धं) बलवान् (चर्षणीनां) मनुष्योंके लिए हितकारी (श्रुतं) तथा प्रसिद्ध इन्द्रको (वः) तुम्हारे लिए मैं (महे राधसे) बहुत सारा धन देनेके लिए (आ शुषे) देता हूँ ॥ १६ ॥

[१५५८] हे (पुरुणामन् पुरुष्टुत) बहुतसे नामोंवाले तथा बहुतोंद्वारा प्रशंसित इन्द्र ! तू (यत् सोमे सोमे आभवः) जब हमारे प्रत्येक सोमयज्ञमें आता है, तब हम (गव्यया अया धिया) गायोंको दिलानेवाली इस बुद्धिसे युक्त होते हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जिस तेरे आदेशके अनुसार चलनेवाला स्वराज्य दिव्य और आगे प्रगति करनेवाला मनुष्य भी तोड नहीं सकता, अर्थात् तेरे आदेशानुसार चलनेवाला स्वराज्य शासनका कोई उल्लंघन कर नहीं सकता । तेरा आदेश ही अखंड रहकर स्वराज्यशासन चला सकता है ॥ ११ ॥

जब इन्द्र सोम पीकर उत्साही होता है, तब कहीं भी न रुकनेवाले इन्द्रकी द्युलोक और पृथिवीलोक प्रशंसा करते हैं ॥ १२ ॥

अनेक रंगकी गायोंसे जो तेजस्वी दूध निकलता है, वह इन्द्रकी ही महिमा है । गौ-दुग्ध तेजस्वी है और तेजको देनेवाला है ॥ १३ ॥

जब अहि नामक असुरके तेजसे डरकर सब देव भाग गए, तब इन्द्रने उस असुरको खोज निकाला तथा उसे मारकर देवोंको निर्भय किया ॥ १४ ॥

सामर्थ्यशाली इन्द्र शत्रुओंको हराकर अपराजित हो गया । तबसे यह बलवान्, मनुष्योंके लिए हितकारी इन्द्र सर्वत्र प्रसिद्ध हुआ ॥ १५-१६ ॥

१५५९ बोधिन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः । शृणोतु शक्र आशिषम् ॥ १८ ॥
१५६० कया त्वं न ऊत्या ऽभि प्र मन्दसे वृषन् । कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ १९ ॥
१५६१ कस्य वृषा सुते सचा नियुत्वान् वृषभो रणत् । वृत्रहा सोमपीतये ॥ २० ॥
१५६२ अभी षु णस्त्वं रयिं मन्दसानः सहस्रिणम् । प्रयन्ता बोधि दाशुषे ॥ २१ ॥
१५६३ पत्नीवन्तः सुता इम उशन्तो यन्ति वीतये । अपां जग्मिर्निचुम्पुणः ॥ २२ ॥
१५६४ इष्टा होत्रा असृक्षते न्द्रं वृधासो अध्वरे । अच्छावभृथमोजसा ॥ २३ ॥
१५६५ इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या । वोळ्हामभि प्रयो हितम् ॥ २४ ॥

अर्थ— [१५५९] (भूर्यासुतिः वृत्रहा शक्रः) जिसके लिये बहुत सोम निचोडा जाता है, ऐसा वृत्रको मारनेवाला सामर्थ्यवान् इन्द्र (नः मना बोधित् अस्तु) हमारे मनोंको जाननेवाला हो और हमारे (आशिषं शृणोतु) स्तोत्रोंको सुने ॥ १८ ॥

[१५६०] हे (वृषन्) बलवान् इन्द्र ! (त्वं) तू (कया ऊत्या नः अभि प्रमन्दसे) किस संरक्षणशक्तिसे हमें आनन्दित करेगा और (कया स्तोतृभ्यः आभर) किस शक्तिसे तू स्तोताओंको धन भरपूर देगा ? ॥ १९ ॥

[१५६१] (वृषा नियुत्वान् वृषभः वृत्रहा) बलवान्, घोडोंवाला, कामनाओंको पूर्ण करनेवाला तथा वृत्रको मारनेवाला इन्द्र (सोमपीतये) सोम पीनेके लिए (कस्य सुते) किसके सोम यज्ञमें (सचा रणत्) सहायक होकर आनन्दित होगा ॥ २० ॥

[१५६२] हे इन्द्र ! (मन्दसानः त्वं) सोमसे आनन्दित हुआ हुआ तू (नः सहस्रिणं रयिं) हमें हजारों तरहके धन (सु) अच्छी तरह दे और (दाशुषे प्रयन्ता) दाताको प्रेरणा देनेवाला तू हमारी प्रार्थनाओंको (बोधि) जान ॥ २१ ॥

[१५६३] (पत्नीवन्तः इमे सुताः) पालन करनेवाले जलोंसे युक्त ये निचोडे गए सोमरस (वीतये उशन्तः) देव हमें पीयें ऐसी इच्छा करते हुए (यन्ति) बहते हैं । (निचुम्पुणः अपां जग्मिः) पीनेवालेको तृप्त करनेवाले ये सोमरस जलोंमें प्रविष्ट होते हैं ॥ २२ ॥

सोमरसमें पानी मिलाया जाता है और पश्चात् उसे पीते हैं ।

[१५६४] (अध्वरे वृधासः इष्टाः होत्राः) यज्ञसे बढानेवाली अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले यज्ञ (इन्द्रं) इन्द्रको (ओजसा) अपने बलसे (अवभृथं अच्छ असृक्षत) यज्ञके अन्तिम दिन तक ले जाते हैं ॥ २३ ॥

[१५६५] (सधमाद्या हिरण्यकेश्या) संग्राममें एक साथ आनन्दित होनेवाले और सुनहरे बालोंवाले (त्या हरी) इन्द्रके वे दोनों घोडे इन्द्रको (इह हितं) इस यज्ञमें रखे हुए (प्रयः अभि वोळ्हां) सोमरूपी अन्नकी ओर ले आएं ॥ २४ ॥

भावार्थ— सोमयज्ञमें सोममें गोदुग्ध मिलाया जाता है, और फिर उसे पिया जाता है । उसे पीनेसे बुद्धि बढती है । उत्तम बुद्धिसे इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए स्तोत्र प्रकट होते हैं ॥ १७-१८ ॥

उत्तम, सामर्थ्यशाली, कामनाओंको पूर्ण करनेवाला तथा शत्रुहन्ता इन्द्र सोम पीनेके लिए किसके यज्ञमें जाकर आनन्दित होगा, यह उपासकको जानना चाहिए ॥ १९-२० ॥

हे सोमसे आनन्दित होनेवाले इन्द्र ! तू हमें अनेक तरहका धन दे । हमारी अभिलाषाओंको तू जान । ये सोमरस तुझे प्रदान किए जाते हैं, तू उन्हें पीकर आनन्दित हो ॥ २१-२२ ॥

जब भक्तोंके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला इन्द्र यज्ञमें जाता है, तब यज्ञ पूर्ण होता है । यह उत्तम घोडों पर बैठकर हमारे यज्ञमें आए और अन्नरूपी सोमरसका पान करे ॥ २३-२४ ॥

१५६६ तुभ्यं सोमाः सुता इमे स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो । स्तोतृभ्य इन्द्रमा वह ॥ २५ ॥
१५६७ आ ते दक्षं वि रोचना दधद्रत्ना वि दाशुषे । स्तोतृभ्य इन्द्रमर्चत ॥ २६ ॥
१५६८ आ ते दधामीन्द्रियमुक्था विश्वा शतक्रतो । स्तोतृभ्य इन्द्र मृळय ॥ २७ ॥
१५६९ भद्रंभद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ २८ ॥
१५७० स नो विश्वान्या भर सुवितानि शतक्रतो । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ २९ ॥
१५७१ त्वामिद्वृत्रहन्तम सुतावन्तो हवामहे । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ ३० ॥
१५७२ उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३१ ॥
१५७३ द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः । उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३२ ॥

अर्थ— [१५६६] हे (विभावसो) अग्ने ! (इमे सोमाः) ये सोमरस (तुभ्यं सुताः) तेरे लिए निचोडे गए हैं, तथा (बर्हिः स्तीर्णं) आसन बिछाये गए हैं, तू (स्तोतृभ्यः इन्द्रं आ वह) स्तोताओंके लिए इन्द्रको बुला ला ॥२५॥

[१५६७] हे मनुष्य ! (ते दाशुषे) तुझ दाताके लिए इन्द्र (विरोचना दक्षं) तेज, बल और (रत्ना दधत्) रत्नोंको देवे, तथा मनुष्यो ! (स्तोतृभ्यः इन्द्रं अर्चत) स्तोताओंके लिए इन्द्रकी पूजा करो ॥ २६ ॥

[१५६८] हे (शतक्रतो) सैंकडों काम करनेहारे इन्द्र ! मैं (ते) तेरे लिए (इन्द्रियं विश्वा उक्था) शक्ति बढानेवाले सम्पूर्ण स्तोत्रोंको (दधामि) तैय्यार करता हूँ । हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (स्तोतृभ्यः मृळय) स्तोताओंको सुखी कर ॥ २७ ॥

[१५६९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् नः मृळयासि) जब तू हमें सुखी करना चाहता है, तब हे (शतक्रतो) सैंकडों शुभ कर्म करनेवाले इन्द्र ! (नः भद्रं भद्रं इषं ऊर्जं) हमें कल्याणकारी अन्न और बल (भर) भरपूर दे ॥२८॥

[१५७०] हे (शतक्रतो इन्द्र) सैंकडो शुभ कर्म करनेवाले इन्द्र ! (यत् नः मृळयासि) जब हमें सुखी करना चाहता है, तब (सः) वह तू (नः) हमें (विश्वा नि सुवितानि आ भर) सम्पूर्ण कल्याणकारी धन भरपूर दे ॥ २९ ॥

[१५७१] हे (वृत्रहन्तम इन्द्र) शत्रुओंको मारनेमें सर्वश्रेष्ठ इन्द्र ! (यत्) जब (सुतावन्तः) सोम यज्ञ करनेवाले हम (त्वां इत् हवामहे) तुझे ही बुलाते हैं, तब (नः मृळयासि) तू हमें सुखी करता है ॥ ३० ॥

[१५७२] हे (मदानां पते) आनन्द देनेवाले सोमोंके स्वामिन् इन्द्र ! (हरिभिः नः सुतं उप याहि) घोडोंके द्वारा हमारे सोम यज्ञके पास आ । (हरिभिः नः सुतं उप याहि) घोडोंके द्वारा हमारे सोम यज्ञके पास आ ॥३१॥

[१५७३] (यः वृत्रहन्तमः शतक्रतुः इन्द्रः) जो वृत्रको मारनेवाला, सैकडों शुभ कार्य करनेवाला इन्द्र (द्विता विदे) दो तरहके मार्ग जानता है, वह इन्द्र (हरिभिः नः सुतं उप) घोडोंके द्वारा हमारे द्वारा निचोडे गए सोमरसके पास आवे ॥ ३२ ॥

भावार्थ— यज्ञ करनेवालेको इन्द्र तेज, बल और रत्नोंको प्रदान करे तथा स्तोतागण इन्द्रको सोमरस देकर आनन्दित करे ॥ २५-२६ ॥

हे इन्द्र ! मैं तेरे लिए शक्ति बढानेवाले इन स्तोत्रोंको कहता हूँ, तो उन स्तोत्रोंको गानेवालोंको सुखी कर ॥ २७-२८ ॥

जब इन्द्र किसीको सुखी करना चाहता है, तब वह उस मनुष्यको कल्याणकारी धन प्रदान करता है । कल्याणमार्गसे प्राप्त हुआ धन ही मनुष्यको सुखी बना सकता है । अथवा तो मनुष्य सोमयज्ञके द्वारा सुखी हो सकता है ॥२९-३०॥

वह इन्द्र उपासकोंको धन देने और उनका संरक्षण करनेका मार्ग जानता है ॥ ३१-३२ ॥

१५७४ त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि । उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३३ ॥
१५७५ इन्द्रं इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम् । वाजी ददातु वाजिनम् ॥ ३४ ॥

[९४]

(ऋषिः- बिन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः । देवताः- मरुतः । छन्दः- गायत्री ।)

१५७६ गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम् । युक्ता वह्नी रथानाम् ॥ १ ॥
१५७७ यस्या देवा उपस्थे व्रता विश्वे धारयन्ते । सूर्यामासा दृशे कम् ॥ २ ॥
१५७८ तत् सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः । मरुतः सोमपीतये ॥ ३ ॥
१५७९ अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः । उत स्वराजो अश्विना ॥ ४ ॥

अर्थ— [१५७४] हे (वृत्रहन्) शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्र ! (त्वं हि) तू ही (एषां सोमानां पाता असि) इन सोमरसोंको पीनेवाला है, वह तू (हरिभिः नः सुतं उप) घोडोंके द्वारा हमारे द्वारा निचोडे गए सोमरसके पास आ ॥ ३३ ॥

[१५७५] (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमें (इषे) अन्न प्राप्तिके लिए (ऋभुक्षणं ऋभुं रयिं) कौशल्य पूर्ण ऋभुओंके ऐश्वर्यको (ददातु) प्रदान करे, तथा (वाजी) वह बलवान् इन्द्र (वाजिनं ददातु) हमें बल प्रदान करे ॥ ३४ ॥

[९४]

[१५७६] (रथानां वह्निः) रथोंको खींचनेवाली, (युक्ता) योग्य, (श्रवस्युः) यशकी इच्छा करनेहारी (मघोनां मरुतां माता) धनाढ्य वीर मरुतोंकी माता (गौः) गाय या पृथ्वी उन्हें (धयति) दूध पिलाती है ॥ १ ॥

[१५७७] (यस्याः उप-स्थे) जिसके समीप रहकर (विश्वे देवाः) सभी देवता अपने अपने (व्रता धारयन्ते) कर्तव्य उचित ढंगसे निभाते हैं । (सूर्या-मासा) सूर्य तथा चंद्र भी जनताको (दृशे कं) प्रकाश देनेके लिए जिसके समीप रहते हैं ॥ २ ॥

[१५७८] (नः) हमारे (अर्यः) अत्यन्त पूज्य (विश्वे कारवः) सभी कवि, काव्यरचनामें कुशल, (सदा) हमेशा तुम्हारे (तत्) उस बलकी (सु आ गृणन्ति) भली भाँति स्तुति करते हैं । हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (सोम-पीतये) सोमपान करनेके लिए तुम इधर आओ ॥ ३ ॥

[१५७९] (अयं सोमः) यह सोमरस (सुतः अस्ति) पूर्णतया निचोडा जा चुका है । (अस्य) इसका (स्व-राजः मरुतः) स्वयं तेजस्वी मरुत्-वीर (उत) उसी प्रकार (अश्विना) अश्विनी-देव भी (पिबन्ति) पान करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— अपने उपासकोंको धन देना तथा उस धनकी सुरक्षाके लिए उन्हें सामर्थ्य देना ये दोनों बातें इन्द्र जानता है । ऐसे ज्ञानी इन्द्रके लिए सोमरस दिए जाएं और वह हमारे पास आकर सोमरस पीए ॥ ३३ ॥

इन्द्र हमें कुशलता और कारीगरी प्रदान करे, ताकि हम उससे अन्न और बल प्राप्त कर सकें ॥ ३४ ॥

रथोंको जोती हुई मरुतोंकी माता गौ उन्हें दूध पिलाती है और वह चाहती है कि मरुतोंका यश प्रतिपल बढे ॥ १ ॥

समूचे देवता तथा सूर्यचन्द्र भी गौ (पृथ्वी) के निकट रहकर अपने अपने कर्तव्य करते हैं । (गौकी रक्षा करते हैं । अर्थात् यहाँपर गौमाताका बडप्पन बतलाया है) ॥ २ ॥

सभी कवि काव्यका सृजन करके वीरोंके इस बलको सराहना करते हैं । इसीलिए सोम पीनेके लिए वे इधर अवश्य आ जायँ ॥ ३ ॥

यह सोमरस पूर्णरूपेण सिद्ध है । तेजस्वी वीर एवं अश्विनी-देव इसका ग्रहण करें ॥ ४ ॥

१५८० पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः । त्रिषधस्थस्य जावतः ॥ ५ ॥
१५८१ उतो न्वस्य जोषमाँ इन्द्रः सुतस्य गोमतः । प्रातर्होतेव मत्सति ॥ ६ ॥
१५८२ कदत्विषन्त सूरयस्तिर आप इव स्रिधः । अर्षन्ति पूतदक्षसः ॥ ७ ॥
१५८३ कद्वो अद्य महानां देवानामवो वृणे । त्मना च दस्मवर्चसाम् ॥ ८ ॥
१५८४ आ ये विश्वा पार्थिवानि पप्रथन् रोचना दिवः । मरुतः सोमपीतये ॥ ९ ॥
१५८५ त्यान् नु पूतदक्षसो दिवो वो मरुतो हुवे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ १० ॥
१५८६ त्यान् नु ये वि रोदसी तस्तभुर्मरुतो हुवे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ ११ ॥

अर्थ—[१५८०] (मित्रः अर्यमा वरुणः) मित्र, अर्यमा एवं वरुण (त्रि-सध-स्थस्य) तीन स्थानोंमें रखे हुए (तना पूतस्य) छलनीसे पवित्र किए हुए एवं (जा-वतः) सभी जनोंके सेवनके योग्य सोमरसको (पिबन्ति) पी लेते हैं ॥ ५ ॥

[१५८१] (उतो) और (इन्द्रः नु) इन्द्र भी (प्रातः होता-इव) प्रातःकालके समय होताकी नाईं (गो-मतः) गोदुग्धके मिलावटसे तैयार किये हुए (अस्य) इस (सुतस्य) निचोडे हुए सोमका (जोषं) सेवन करके (मत्सति) हर्षित हो उठता है ॥ ६ ॥

[१५८२] वे (सूरयः) ज्ञानी तथा (स्रिधः) शत्रुविनाशक वीर (तिरः) टेढी राहसे जानेवाले (आपः इव) जलप्रवाहोंकी नाईं (अत्विषन्त) प्रकाशमान होते हैं और वे (पूत-दक्षसः) पवित्र बल धारण करनेहारे वीर (कत्) भला कब हमारी ओर (अर्षन्ति) पधारेंगे ? ॥ ७ ॥

[१५८३] (त्मना च) स्वाभाविक ढंगसे (दस्म-वर्चसां) सुन्दर आकारवाले (देवानां) तेजस्वी एवं (महानां) बडे महनीय (वः) तुम जैसे सैनिकोंसे (अवः) संरक्षणकी (अद्य कत्) आज भला कब मैं (वृणे) याचना करूँ ? ॥ ८ ॥

[१५८४] (ये) जो (विश्वा पार्थिवानि) सभी भूमंडलस्थ वस्तुओंको और (दिवः रोचना) द्युलोकके तेजस्वी पदार्थोंको (आ पप्रथन्) विस्तृत कर चुके, उन (मरुतः) वीर मरुतोंको (सोम-पीतये) सोमपान करनेके लिए मैं बुलाता हूँ ॥ ९ ॥

[१५८५] हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (पूत-दक्षसः) पवित्र बलसे युक्त और (दिवः) तेजस्वी (त्यान् वः) ऐसे तुम्हें (नु) अभी (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमरसके पानके लिए (हुवे) बुलाता हूँ ॥ १० ॥

[१५८६] (ये मरुतः) जो वीर मरुत् (रोदसी) आकाश एवं भूलोकको (वि तस्तभुः) विशेष ढंगसे आधार दे चुके, (त्यान् नु) उन्हें अभी (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमका सेवन करनेके लिए (हुवे) मैं बुलाता हूँ ॥ ११ ॥

भावार्थ— तीन स्थानोंमें विद्यमान तीन छलनियोंमेंसे शुद्ध किए हुए सोमरसका सेवन ये सभी वीर करते हैं। कारण यही है कि सोमरस सबके पीनेके लिए योग्य है ॥ ५ ॥

इन्द्र भी सोमरसमें दूध मिलाकर उस पेयका सेवन करता है और प्रसन्नचेता बनता है ॥ ६ ॥

जैसे ढलती जगहसे गिरनेवाला जलप्रवाह चमकने लगता है, वैसेही ये ज्ञानी वीर अपने पराक्रमसे जगमगाने लगते हैं। पवित्र कार्यके लिए अपने बलका उपयोग करनेवाले वे वीर सैनिक हमारे यज्ञमें आ जायँ ॥ ७ ॥

ये तेजस्वी एवं शक्तिशाली वीर हमारी रक्षा करनेका बीडा उठावें ॥ ८ ॥

आकाशस्थ एवं भूमंडलस्थ सभी वस्तुओंको मरुतोंने विस्तृत किया है, इसीलिए मैं उन्हें सोमपान करनेके लिए बुलाता हूँ ॥ ९ ॥

बलवान् एवं तेजस्वी वीरोंको आदरपूर्वक बुलाकर अन्नपानके प्रदानसे उनका सत्कार करना चाहिए ॥ १० ॥

सबको आधार देनेका कार्य वीर करते हैं, इसलिए उन्हें सोमपानमें सम्मिलित होनेके लिए बुलाना चाहिए ॥ ११ ॥

१५८७ त्यं नु मारुतं गणं गिरिष्ठां वृषणं हुवे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ १२ ॥

[९५]

(ऋषिः- तिरश्चीराङ्गिरसः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- अनुष्टुप् ।)

१५८८ आ त्वा गिरो रथीरिवा ऽस्थुः सुतेषु गिर्वणः ।
अभि त्वा समनूषते न्द्र वत्सं न मातरः ॥ १ ॥
१५८९ आ त्वा शुक्रा अचुच्यवुः सुतास इन्द्र गिर्वणः ।
पिबा त्वऽस्यान्धस इन्द्र विश्वासु ते हितम् ॥ २ ॥
१५९० पिबा सोमं मदाय क मिन्द्र श्येनाभृतं सुतम् ।
त्वं हि शश्वतीनां पती राजा विशामसि ॥ ३ ॥
१५९१ श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥ ४ ॥

अर्थ— [१५८७] (त्यं) उस (गिरि-स्थां) पर्वतपर रहनेवाले (वृषणं) बलवान् (मारुतं गणं) वीर मरुतोंके समुदायको (नु) अभी (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमरसको पीनेके लिए (हुवे) बुलाता हूँ ॥ १२ ॥

[९५]

[१५८८] हे (गिर्वणः) वाणियोंसे स्तुत्य इन्द्र ! (रथीः इव) रथपर बैठनेवाला जैसे अपने स्थानको शीघ्र पहुंच जाता है, उसी प्रकार (सुतेषु) सोमरसोंके निचोडे जानेपर (गिरः) हमारी स्तुतियां (त्वा अस्थुः) तुझे प्राप्त होती हैं। तथा (मातरः वत्सं न) जिस प्रकार गायें अपने बछडेको देखकर शब्द करती हैं, उसी प्रकार हे इन्द्र ! (त्वा अभि) तुझे सामने देखकर हमारी स्तुतियां (सं अनूषत) मिलकर तेरे पास जाती हैं ॥ १ ॥

[१५८९] हे (गिर्वणः) स्तुत्य इन्द्र ! (सुतासः शुक्राः) निचोडे गए तेजस्वी सोमरस (त्वा अचुच्यवुः) तेरे पास शीघ्र पहुंचें, हे इन्द्र ! तू (अस्य अन्धसः तु पिब) इस अन्नको शीघ्र पी, (विश्वासु ते हितम्) सभी दिशाओंमें तेरे लिए सोम रखा हुआ है ॥ २ ॥

[१५९०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (श्येनाभृतं सुतं) श्येन पक्षीके द्वारा लाये तथा निचोडकर रखे गए (कं सोमं) सुखदायक सोमको (मदाय पिब) आनन्दके लिए पी । (हि) क्योंकि (त्वं) तू (शश्वतीनां विशां पतिः राजा असि) बहुत सी प्रजाओंका स्वामी तथा राजा है ॥ ३ ॥

[१५९१] हे इन्द्र ! (यः त्वा सपर्यति) जो तेरा सत्कार करता है, उस (तिरश्च्याः) तिरश्चि ऋषिकी (हवं श्रुधी) प्रार्थना सुन । तथा (सुवीर्यस्य गोमतो रायः पूर्धि) उत्तम पुत्र तथा गाय आदि पशु युक्त ऐश्वर्यसे उसे पूर्ण कर, (महान् असि) तू महान् है ॥ ४ ॥

भावार्थ— पर्वतपर रहकर सबका संरक्षण करनेहारे वीरोंको सोमरसका ग्रहण करनेके लिए बुलाना चाहिए ॥ १२ ॥

हे इन्द्र ! जिस तरह रथपर बैठनेवाला वीर अपने गन्तव्य स्थान पर शीघ्र पहुंच जाता है, उसी तरह ये सोमरस तेरी तरफ बह रहे हैं। इस अन्नरूप सोमरसको पी ॥ १-२ ॥

तिरश्चि अर्थात् टेढे मार्गसे चलनेवालोंको मारनेवाले सज्जन पुरुषके द्वारा किए गए सत्कारको यह इन्द्र स्वीकार करता है, उसे उत्तम सन्तान और गाय आदि पशुओंसे सम्पन्न करता है । वही इन्द्र सब प्राणियोंका स्वामी है ॥ ३-४ ॥

×

१५९२ इन्द्र॒ यस्ते॒ नवी॑यसीं॒ गिरं॑ म॒न्द्राम॑जीजनत् ।
चि॒कि॒त्विन्म॑नसं॒ धियं॑ प्र॒त्नामृ॒तस्य॑ पि॒प्युषी॑म् ॥ ५ ॥
१५९३ तमु॑ ष्टवाम॒ यं गिर॒ इन्द्र॑मु॒क्थानि॑ वावृ॒धुः ।
पु॒रूण्य॑स्य॒ पौंस्या॒ सिषा॑सन्तो वनामहे ॥ ६ ॥
१५९४ एतो॒ न्विन्द्रं॒ स्तवा॑म शु॒द्धं शु॒द्धेन॒ साम्ना॑ ।
शु॒द्धैरु॒क्थैर्वा॑वृ॒ध्वांसं॑ शु॒द्ध आ॒शीर्वा॑न् ममत्तु ॥ ७ ॥
१५९५ इन्द्र॑ शु॒द्धो न॒ आ ग॑हि शु॒द्धः शु॒द्धाभि॑रू॒तिभि॑ः ।
शु॒द्धो र॒यिं नि धा॑रय शु॒द्धो म॑मद्धि सो॒म्यः ॥ ८ ॥
१५९६ इन्द्र॑ शु॒द्धो हि नो॑ र॒यिं शु॒द्धो रत्ना॑नि दा॒शुषे॑ ।
शु॒द्धो वृ॒त्राणि॑ जिघ्नसे शु॒द्धो वाजं॑ सिषाससि ॥ ९ ॥

अर्थ— [१५९२] हे इन्द्र ! (यः) जो मनुष्य (ते) तेरे लिए (नवीयसीं मन्द्रां गिरं अजीजनत्) नवीन और आनन्ददायक स्तुतिको उत्पन्न करता है, उसके लिए तू (प्रत्नां ऋतस्य पिप्युषीं) प्राचीन तथा ऋत अर्थात् सत्यका पोषण करनेवाली, (चिकित्विन्) ज्ञान प्रदान करनेवाली (मनसं धियं) मननीय बुद्धि प्रदान कर ॥ ५ ॥

[१५९३] (यं इन्द्रं गिरः उक्थानि वावृधुः) जिस इन्द्रको स्तुतियां और स्तोत्र बढाते हैं, (तं उ स्तवाम) उसीकी स्तुति हम करते हैं । (अस्य पुरूणि पौंस्या) इसके बहुतसे बलोंको (सिषासन्तः) प्राप्त करते हुए इसकी (वनामहे) हम स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

[१५९४] (आ इत) हे मनुष्यो आओ, (शुद्धेन साम्ना) शुद्ध सामसे हम (शुद्धं इन्द्रं स्तवाम) शुद्ध इन्द्रकी स्तुति करें, तथा (शुद्धैः उक्थैः वावृध्वांसं) शुद्ध स्तोत्रोंके द्वारा बढाये जानेवाले इस इन्द्रको (शुद्धः आशीर्वान् ममत्तु) शुद्ध और गायके दूधसे मिश्रित सोम आनन्दित करे ॥ ७ ॥

[१५९५] हे । शुद्धः इन्द्रः नः आगहि) पवित्र इन्द्र हमारे पास आ, (शुद्धः) पवित्र होकर तू (शुद्धाभिः ऊतिभिः) शुद्ध संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास आ, (शुद्धः) पवित्र हुआ तू (रयिं निधारय) धन दे तथा (शुद्धः सोम्यः ममद्धि) पवित्र होकर तथा सोमके योग्य होकर आनन्दित हो ॥ ८ ॥

[१५९६] हे इन्द्र ! (शुद्धः) पवित्र होकर (नः रयिं) हमें धन दे, तथा (दाशुषे) दानशीलके लिए (शुद्धः रत्नानि) पवित्र होकर तू रत्नोंको दे, (शुद्धः वृत्राणि जिघ्नसे) शुद्ध होकर तू वृत्रोंको मारता है, (शुद्धः वाजं सिषाससि) शुद्ध होकर तू अन्न प्राप्त करना चाहता है ॥ ९ ॥

भावार्थ— जो इन्द्रको आनन्द देनेवाली स्तुति करता है, उसे इन्द्र सत्यका पोषण करनेवाली, ज्ञान प्रदान करनेवाली तथा मननीय बुद्धि प्रदान करता है । बुद्धि ऐसी हो कि जो मनुष्यको उत्तम ज्ञान देकर उसे सत्यके मार्गमें प्रेरित करनेवाली हो ॥ ५ ॥

सभी मनुष्योंकी वाणी इसी इन्द्रकी महिमाका गान करती है, इससे इस इन्द्रका यश सर्वत्र फैलता है । हम भी अपनी वाणीसे इन्द्रके स्तोत्रको गाएं तथा उसका यश बढाकर उसके आशीर्वादको प्राप्त करें ॥ ६-७ ॥

हे पवित्र इन्द्र ! तू पवित्र होकर हमारे पास आ, तथा अपने संरक्षणके पवित्र साधनोंसे हमारी रक्षा कर । साथही हमें रत्न आदि कल्याणकारी ऐश्वर्य भी प्रदान कर । हम तुझे सदा पवित्र सोमरूपी अन्न प्रदान करें ॥ ८-९ ॥

[९६]

(ऋषि- तिरश्चीराङ्गिरसो, द्युतानो वा मारुतः । देवताः- इन्द्रः १४ इन्द्रामरुतः १५ इन्द्राबृहस्पती । छन्दः- त्रिष्टुप्, ४ विराट्, २१ पुरस्ताज्ज्योतिः ।)

१५९७ अस्मा उषास आतिरन्त याम- मिन्द्राय नक्तमूर्म्याः सुवाचः ।
अस्मा आपो मातरः सप्त तस्थु- र्नृभ्यस्तराय सिन्धवः सुपाराः ॥ १ ॥

१५९८ अतिविद्धा विथुरेणा चिदस्त्रा त्रिः सप्त सानु संहिता गिरीणाम् ।
न तद्देवो न मर्त्यस्तुतुर्या- द्यानि प्रवृद्धो वृषभश्चकार ॥ २ ॥

१५९९ इन्द्रस्य वज्र आयसो निमिश्ल इन्द्रस्य बाह्वोर्भूयिष्ठमोजः ।
शीर्षन्निन्द्रस्य क्रतवो निरेक आसन्नेषन्त श्रुत्या उपाके ॥ ३ ॥

१६०० मन्ये त्वा यज्ञियं यज्ञियानां मन्ये त्वा च्यवनमच्युतानाम् ।
मन्ये त्वा सत्वनामिन्द्र केतुं मन्ये त्वा वृषभं चर्षणीनाम् ॥ ४ ॥

---

[९६]

अर्थ—[१५९७] (उषासः) उषाओंने (अस्मै यां आ तिरन्त) इस इन्द्रके कारण ही अपनी यात्रा बढाई, तथा (ऊर्म्याः नक्तं) रात्रिके अपर कालमें अर्थात् चौथे पहर (इन्द्राय सुवाचः) इन्द्रके लिए उत्तम स्तुतियां बोली जाती हैं, (आपः) जलसे भरी हुई (सप्त मातरः) सात नदियें (अस्मै तस्थुः) इसी इन्द्रके कारण चलती हैं, तथा (नृभ्यस्तराय) मनुष्योंके तरनेके लिए (सिन्धवः सुपाराः) समुद्र सरलतासे पार करने योग्य हो गए ॥ १ ॥

[१५९८] (विथुरेण) किसी सहायकके बिना अकेले ही इस इन्द्रने (अस्त्रा) वज्रसे (संहिता) इकट्ठे हुए हुए (त्रिः सप्त) इक्कीस (गिरीणां) पर्वतोंके (सानु) शिखरोंको (अति विद्धा) तोड डाले । (प्रवृद्धः वृषभः) वृद्धिको प्राप्त हुए तथा बलवान् उस इन्द्रने (यानि चकार) जिन पराक्रमोंको किया, (तत्) उन पराक्रमोंको (न देवः मर्त्यः तुतुर्यात्) देव और मनुष्य नहीं कर सकते ॥ २ ॥

[१५९९] (इन्द्रस्य आयसः वज्रः निमिश्लः) इन्द्रका लोहेका वज्र अत्यन्त तीक्ष्ण है, इसीलिए (इन्द्रस्य बाह्वोः भूयिष्ठं ओजः) इन्द्रकी भुजाओंमें बहुत बल है, (निरेके) युद्धके लिए निकलने पर (इन्द्रस्य शीर्षन् क्रतवः) इन्द्रके मस्तिष्कमें पराक्रमके बहुतसे विचार रहते हैं, उन विचारोंको उसके (आसन्) मुंहसे (श्रुत्या) सुननेके लिए (उपाके) पास रहनेवाली प्रजायें (एषन्त) बहुत चाहती हैं ॥ ३ ॥

[१६००] हे इन्द्र ! मैं (त्वा) तुझे (यज्ञियानां यज्ञियं) पूज्योंमें सबसे ज्यादा पूज्य (मन्ये) मानता हूँ, तुझे (अच्युतानां च्यवनं मन्ये) अपने स्थानसे न डिगनेवाले शत्रुओंको भी डिगानेवाला मानता हूँ । (त्वा) तुझे (सत्वनां केतुं मन्ये) प्राणियोंमें सबसे अधिक बुद्धिमान् मानता हूँ, तथा (त्वा) तुझे (चर्षणीनां वृषभं मन्ये) मनुष्योंमें सबसे अधिक बलवान् मानता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ— ऐश्वर्यशाली प्रभुके कारण ही उषायें प्रकट होती हैं, उसी उषःकालमें प्रभुकी स्तुति और उपासना की जाती है। यज्ञ किए जाते हैं । उसी प्रभुकी शक्तिसे प्रेरित होकर नदियां बहती हैं ॥ १ ॥

शूरवीर इन्द्रने अकेले ही अपने शस्त्रास्त्रोंकी सहायतासे शत्रुओंका नाश किया । तब वृद्धिको प्राप्त हुए तथा बलवान् इन्द्रने जिन पराक्रमोंको किया, उन पराक्रमोंको न कोई देव ही कर सकता है, और न मनुष्य ही कर सकता है ॥ २ ॥

इन्द्रके द्वारा धारण किया जानेवाला वज्र लोहेका बना हुआ है, उसे वह हाथोंमें धारण करता है, इसीलिए उसकी भुजाओंमें बल है, उसकी वाणीसे भी सदा पराक्रमपूर्ण तथा ओजस्वी विचार निकलते हैं, जिसे सुननेके लिए प्रजायें सदा लालायित रहती हैं । वीरोंकी भुजाओंमें शक्ति हो, तथा उनकी वाणीमें ओज हो, तेज हो, ताकि उसकी वाणीको सुननेके लिए प्रजाएं सदा उत्सुक रहें ॥ ३ ॥

इन्द्र वीर और ओजस्वी वक्ता होनेके कारण पूज्योंमें भी सबसे अधिक पूज्य है । वह अपने स्थानसे न डिगनेवाले शत्रुवीरोंको भी डिगानेवाला होनेके कारण वह सबसे अधिक बलवान् है और सबसे अधिक बुद्धिमान् है ॥ ४ ॥

१६०१ आ यद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र धत्से मदच्युतमहये हन्तवा उ ।
प्र पर्वता अनवन्त प्र गावः प्र ब्रह्माणो अभिनक्षन्त इन्द्रम् ॥ ५ ॥

१६०२ तमु ष्टवाम य इमा जजान विश्वा जातान्यवराण्यस्मात् ।
इन्द्रेण मित्रं दिधिषेम गीर्भिरुपो नमोभिर्वृषभं विशेम ॥ ६ ॥

१६०३ वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः ।
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥ ७ ॥

१६०४ त्रिः षष्टिस्त्वा मरुतो वावृधाना उस्रा इव राशयो यज्ञियासः ।
उप त्वेमः कृधि नो भागधेयं शुष्मं त एना हविषा विधेम ॥ ८ ॥

अर्थ— [१६०१] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (यद्) जब तू (मदच्युतं अहये हन्तवै उ) मदमस्त अहिको मारनेके लिए (वज्रं बाह्वोः धत्से) वज्रको हाथोंमें धारण करता है, तब (पर्वताः अनवन्तः) उस इन्द्रके सामने पर्वत झुकते हैं, (गावः प्र) गायें झुकती हैं, तथा (ब्रह्माणः इन्द्रं अभि नक्षन्त) ज्ञानी इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

[१६०२] (यः इमा जजान) जो इनको पैदा करता है, (तं उ स्तवाम) उसीकी हम स्तुति करते हैं, (विश्वा जातानि) सभी उत्पन्न हुए हुए पदार्थ (अस्मात् अवराणि) इस इन्द्रके बाद उत्पन्न हुए हैं, हम (गीर्भिः) स्तुतियोंके द्वारा (इन्द्रेण मित्रं दिधिषेम) इन्द्रके साथ मैत्री स्थापित करें, तथा (नमोभिः) नमस्कारोंके द्वारा (वृषभं उप विशेम) बलवान् इन्द्रके पास बैठें ॥ ६ ॥

[१६०३] हे इन्द्र ! (ये सखायः) जो तेरे मित्र थे, वे (विश्वे देवाः) सब देव (वृत्रस्य श्वसथात् ईषमाणाः) वृत्रकी गर्जनासे डरकर भाग गए और (त्वा अजहुः) तुझे छोड गए । हे इन्द्र ! (मरुद्भिः) मरुतोंके साथ, (ते सख्यं अस्तु) तेरी मित्रता हो, (अथः) इसके बाद (विश्वाः पृतनाः जयासि) सब शत्रु सेनाओंको तू जीत ॥ ७ ॥

[१६०४] (उस्राः राशयः इव) बैलोंके झुण्डके समान संगठित हुए (त्रिषष्टिः) तिरेसठ (मरुतः त्वा वावृधानाः) मरुत तुझे बढाते हुए (यज्ञियासः) पूज्य हो गए । हम (त्वा उप इमः) तेरे पास आते हैं, (नः भागधेयं कृधि) हमें ऐश्वर्य प्रदान कर, हम भी (एना हविषा) इस सोमकी हविसे (ते शुष्मं विधेम) तेरा बल बढाते हैं ॥८॥

भावार्थ— जब इन्द्रने मदमस्त अहि असुरको मारनेके लिए वज्रको हाथोंमें धारण किया तब उसके क्रोधको देखकर सब भयभीत हो गए और उस इन्द्रको शान्त तथा प्रसन्न करनेके लिए वे सब इन्द्रकी स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥

इस विश्वमें उत्पन्न हुए सभी पदार्थ इसी ऐश्वर्यशाली प्रभुसे उत्पन्न हुए हैं । हम अपनी स्तुतियोंकी सहायतासे उस प्रभुके साथ मैत्री स्थापित करें और नम्रतापूर्वक उस प्रभुकी उपासना करें, अर्थात् उस प्रभुके समीप जाकर बैठें ॥६॥

वृत्रकी गर्जना सुनकर भयभीत होकर सब देव इन्द्रको छोडकर भाग गए, तब इन्द्रने मरुतोंकी सहायतासे वृत्रको मारा । जब मेघरूपी वृत्र आकाशको घेरकर गर्जना करने लगता है, तब सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देव छिप जाते हैं और इन्द्ररूपी विद्युत्का साथ छोड जाते हैं । तब इन्द्र वायु रूपी मरुतोंकी सहायता लेकर वृत्रका मुकाबला करता है और मेघको नष्टभ्रष्ट करके उसे बरसाता है ॥ ७ ॥

मरुतोंने संगठित होकर इन्द्रकी सहायता की । अपने इस कर्मके कारण मरुत् पूज्य हो गए । जो समाज संगठित होकर उन्नति करते हैं, उस समाजके सभी मनुष्य पूज्य होते हैं ॥ ८ ॥

१६०५ तिग्ममायुधं मरुतामनीकं कस्त इन्द्र प्रति वज्रं दधर्ष ।
अनायुधासो असुरा अदेवा- श्चक्रेण ताँ अप वप ऋजीषिन् ॥ ९ ॥
१६०६ मह उग्राय तवसे सुवृक्तिं प्रेरय शिवतमाय पश्वः ।
गिर्वाहसे गिर इन्द्राय पूर्वी- र्धेहि तन्वे कुविदङ्ग वेदत् ॥ १० ॥
१६०७ उक्थवाहसे विभ्वे मनीषां द्रुणा न पारमीरया नदीनाम् ।
नि स्पृश धिया तन्वि श्रुतस्य जुष्टतरस्य कुविदङ्ग वेदत् ॥ ११ ॥
१६०८ तद्विविड्ढि यत् त इन्द्रो जुजोषत् स्तुहि सुष्टुतिं नमसा विवास ।
उप भूष जरितर्मा रुवण्यः श्रावया वाचं कुविदङ्ग वेदत् ॥ १२ ॥

अर्थ— [१६०५] हे इन्द्र ! (ते तिग्मं आयुधं) तेरे तीक्ष्ण आयुधको, (वज्रं) वज्रका तथा (मरुतां अनीकं) मरुतोंकी सेनाका (कः प्रति दधर्ष) कौन विरोध कर सकता है । हे (ऋजीषिन्) सोमवान् इन्द्र ! (अन्-आयु-धासः अ-देवाः असुराः) जो आयुध रहित तथा देवोंको न माननेवाले असुर हैं, (तान् चक्रेण अप वप) उन्हें चक्रसे नष्ट कर दे ॥ ९ ॥

[१६०६] हे मनुष्य ! तू (महे उग्राय) महान्, वीर (तवसे शिवतमाय) बलवान् तथा कल्याणकारी इन्द्रकी तरफ (पश्वः) पशु आदिकी प्राप्तिके लिए (सुवृक्तिं प्रेरय) स्तुतिको प्रेरित कर । (गिर्वाहसे इन्द्राय) स्तुतियोंके योग्य इन्द्रके लिए (पूर्वीः गिरः) बहुतसी स्तुतियां (धेहि) कर, ताकि (अंग) हे प्रिय ! वह इन्द्र (तन्वे) हमारे पुत्रके लिए (कुवित् वेदत्) बहुतसा धन देगा ॥ १० ॥

[१६०७] हे मनुष्य ! (द्रुणा नदीनां पारं न) जिस प्रकार मल्लाह नावके द्वारा लोगोंको नदीके पार पहुंचाता है, उसी तरह (उक्थवाहसे) स्तुतियोंको प्राप्त करनेवाले, (विभ्वे) महान् इन्द्रके पास (मनीषां ईरय) अपनी बुद्धिको प्रेरित कर । तब (श्रुतस्य जुष्टतरस्य) सर्वत्र प्रसिद्ध तथा सेवाके योग्य इन्द्रके धनको (धिया) बुद्धिपूर्वक (तन्वि नि स्पृश) अपने पुत्रके पास पहुंचा, हे (अंग) प्रिय मनुष्य ! इन्द्र भी तुझे (कुवित् वेदत्) बहुत धन प्राप्त कराये ॥ ११ ॥

[१६०८] हे मनुष्य ! (ते इन्द्रः यत् जुजोषत्) तेरा इन्द्र जिसे पसन्द करे, (तत् विविड्ढि) उस स्तुतिको तू कर (सु-स्तुतिं स्तुहि) अच्छी तरह प्रशंसित होनेवाले इन्द्रकी तू स्तुति कर, तथा (नमसा विवास) नमस्कारसे उसका सत्कार कर । हे (जरितः) स्तोता ! (उप भूष) स्वयंको अलंकृत कर, (मा रुवण्यः) मत रो, (वाचं श्रावय) अपनी प्रार्थना तू इन्द्रको सुना, तब हे (अंग) प्रिय ! वह तुझे (कुविद् वेदत्) बहुत धन प्राप्त करायेगा ॥ १२ ॥

भावार्थ— ऐसा कोई भी वीर नहीं है कि जो इस इन्द्रके तीक्ष्ण शस्त्रों और तेरी सेनाका विरोध कर सके । यह इन्द्र नास्तिक असुरोंको अपने शस्त्रोंसे नष्ट कर देता है । वीरोंकी सेना तथा शस्त्र नास्तिकोंका नाश करनेके लिए ही हों ॥ ९ ॥

हे मनुष्य ! तू पशु आदि ऐश्वर्यको प्राप्त करनेके लिए बलवान् और कल्याणकारी इन्द्रकी स्तुति कर । स्तुति प्राप्त करके वह इन्द्र तुझे बहुत सारा धन देगा ॥ १० ॥

हे मनुष्य ! जिस तरह एक मल्लाह लोगोंको नदीके पार पहुंचाता है, उसी तरह तू स्तुतियोंको इन्द्र तक पहुंचा । वह इन्द्र तेरी स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर तुझे बहुत धन देगा ॥ ११ ॥

हे मनुष्य ! जिस स्तुतिको इन्द्र पसन्द करे, उसी स्तुतिको तू कर, नम्रतापूर्वक उस इन्द्रका सत्कार कर, तो तू कभी निर्धन नहीं होगा, और न तू कभी दुःखी होगा ॥ १२ ॥

१६०९ अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठ—दियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्त—मप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥ १३ ॥

१६१० द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्त—मुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांस—मिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥ १४ ॥

१६११ अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थे ऽधारयत् तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्याचरन्ती—र्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥ १५ ॥

१६१२ त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानो ऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥ १६ ॥

अर्थ— [१६०९] (दशभिः सहस्रैः) दसहजार सेनाओंके साथ (कृष्णः) कृष्णासुरने (द्रप्सः इयानः) जल्दी जल्दी चलते हुए, (अंशुमतीं अव अतिष्ठत्) अंशुमति नदीपर पहुंचकर अपना पडाव डाला । तब (शच्या धमन्तं तं) अपनी शक्तिसे धमधमाकर आते हुए उस कृष्णासुरका (इन्द्रः आवत्) इन्द्रने मुकाबला किया, तथा (नृमणाः) अत्यन्त उत्तम नेता इन्द्रने (स्नेहितीः अप अधत्त) शत्रुकी सब हिंसक सेनाओंको नष्ट कर दिया ॥ १३ ॥

[१६१०] मैंने (अंशुमत्याः नद्यः उपह्वरे) अंशुमती नदीके किनारे (विषुणे चरन्तं द्रप्सं) गुफामें विचरते हुए द्रप्सको (अपश्यं) देखा है । (नभः न) जैसे सूर्यको सब देखते हैं, उसी तरह मैंने (अवतस्थिवांसं कृष्णं) सामने खडे हुए कृष्णको देखा है, हे (वृषणः) बलवान् मरुतो ! (वः इष्यामि) तुम्हारी सहायता मैं चाहता हूँ, तथा तुम (आजौ युध्यत) युद्धमें युद्ध करो ॥ १४ ॥

[१६११] (अध) इसके बाद (अंशुमत्याः उपस्थे) अंशुमती नदीके किनारे (द्रप्सः) द्रप्सने (तित्विषाणः) तेजस्वी होते हुए (तन्वं अधारयत्) शरीरको धारण किया । तब (बृहस्पतिना युजा) बृहस्पतिके साथ (इन्द्रः) इन्द्रने (अभि आचरन्ती अदेवीः विशः) चारों ओरसे आक्रमण करती हुई आती हुई नास्तिक शत्रु-सेनाको (ससाहे) पराजित किया ॥ १५ ॥

[१६१२] हे इन्द्र ! (त्वं ह) तू (जायमानः) उत्पन्न होते ही (त्यत् अशत्रुभ्यः सप्तभ्यः) उन शत्रुओंसे रहित सात असुरोंके लिए (शत्रुः अभवः) शत्रु हुआ, तथा तूने (गूळ्हे द्यावापृथिवी अनु अविन्दः) छिपे हुए द्युलोक व पृथिवीलोकको खोज निकाला तथा (विभु मद्भ्यः भुवनेभ्यः रणं धाः) महत्वपूर्ण लोकोंके लिए आनन्द दिया ॥ १६ ॥

भावार्थ— कृष्ण नामक असुर अपने दस हजार सैनिकोंके साथ आक्रमण करने लगा; अंशुमती नदी पर उन्होंने अपना स्थान बनाया; शक्तिसे गर्विष्ट हुए उसको इन्द्रने पकडा; नेता इन्द्रने उस हिंसक शत्रुका नाश किया ॥ १३ ॥

इन्द्रने अंशुमती नदीके किनारे गुफामें बंद सोमको देखा और तब उसने मरुतोंकी सहायतासे कृष्णासुरका पराभव करके सोमको मुक्त किया ॥ १४ ॥

इस द्रप्स अर्थात् सोमरसमें जब दूध, दही, घी, मधु आदि पदार्थ मिलाए गए, तब उस रसका रूप तेजस्वी हो गया । उसे पीकर इन्द्रमें उत्साह उत्पन्न हुआ और उसी उत्साहमें उसने देवोंकी निन्दा करनेवाले असुरोंको मारा ॥ १५ ॥

इन्द्र उत्पन्न होते ही शत्रुओंसे रहित सात असुरोंका शत्रु बन गया । तथा उसने द्युलोकको और पृथ्वीलोकको प्रकाशित करके लोकोंको आनन्द दिया । जब सात पर्तवाला मेघ सूर्यको ढंक देता है, तब पृथ्वीपर अन्धकार सा छा जाता है, तब बिजली उन मेघोंको बरसा कर सूर्यको प्रकाशित करता है और पृथ्वी पर प्रकाश फैलाता है ॥ १६ ॥

१६१३ त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रै-स्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ॥ १७ ॥
१६१४ त्वं ह त्यद्वृषभ चर्षणीनां घनो वृत्राणां तविषो बभूथ ।
त्वं सिन्धूँरसृजस्तस्तभानान् त्वमपो अजयो दासपत्नीः ॥ १८ ॥
१६१५ स सुक्रतू रणिता यः सुतेष्व-नुत्तमन्युर्यो अहेव रेवान् ।
य एक इन्नर्यपांसि कर्ता स वृत्रहा प्रतीदन्यमाहुः ॥ १९ ॥
१६१६ स वृत्रहेन्द्रश्चर्षणीधृत् तं सुष्टुत्या हव्यं हुवेम ।
स प्राविता मघवा नोऽधिवक्ता स वाजस्य श्रवस्यस्य दाता ॥ २० ॥

अर्थ— [१६१३] हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! (धृषितः त्वं) शत्रुओंके घर्षण करनेवाले तूने (वज्रेण) वज्रके द्वारा (ओजः अ प्रतिमानं) बलसें अतुलनीय (त्यत् जघन्थ) उस असुरको मारा, (त्वं) तूने (वधत्रैः) आयुधोंसे (शुष्णस्य अवातिरः) शुष्णासुरको काट डाला, तथा (त्वं) तूने (शच्या इत्) अपने सामर्थ्यसे ही (गाः अविन्दः) गायोंको प्राप्त किया ॥ १७ ॥

[१६१४] हे (चर्षणीनां वृषभः) मनुष्योंसें बलवान् इन्द्र ! (त्वं ह) तू ही (त्यत् वृत्राणां घनः) उन वृत्रोंको मारकर (तविषः बभूथ) बलवान् हुआ, (त्वं) तूने ही (तस्तभानान्) रोकी गई (सिन्धून् असृजः) नदियोंको बहाया, तथा (त्वं) तूने ही (दास पत्नीः) दास नामक असुर द्वारा अधिकारमें रखे (अपः अजयः) जल प्रवाहोंको जीता ॥ १८ ॥

[१६१५] (यः सुतेषु रणिता) जो सोम यज्ञोंमें रमण करनेवाला है, (यः एकः इत्) जो अकेला ही (नरि अपांसि कर्ता) मनुष्योंके संग्राममें पराक्रम करनेवाला है, ऐसा (सः सुक्रतूः) वह उत्तम कर्म करनेवाला, (अनुत्त-मन्युः) अप्रतिहत क्रोधवाला, (अहा इव रेवान्) दिनोंके समान धनवान् तथा (वृत्रहा) वृत्रको मारनेवाला (अन्यं प्रति) दूसरे असुरोंको भी मारता है, (इत् आहुः) ऐसा कहते हैं ॥ १९ ॥

[१६१६] (सः इन्द्रः) वह इन्द्र (वृत्रहा) वृत्रको मारनेवाला तथा (चर्षणीधृत्) मनुष्योंका भरणपोषण करनेवाला है. ऐसे (तं हव्यं) उस बुलाने योग्य इन्द्रको हम (सुस्तुत्या हुवेम) उत्तम स्तुतिसे बुलावे हैं। (सः) वह (प्र अविता) हमारी रक्षा करनेवाला (मघवा) ऐश्वर्यवान् (नः अधिवक्ता) हमारे ऊपर शासन करनेवाला है, (सः वाजस्य श्रवसस्य दाता) वह बल व अन्नका देनेवाला है ॥ २० ॥

भावार्थ— हे वज्रधारी इन्द्र ! तूने वज्रके द्वारा अतुलनीय बलवाले उस असुरको मारा तथा अपने सामर्थ्यसे किरणोंको प्रकट किया ॥ १७ ॥

हे इन्द्र ! शत्रुओंको मारनेके कारण तू सामर्थ्यशालीके रूपमें सर्वत्र विख्यात हुआ और शत्रुके द्वारा बांधकर रखे हुए जल प्रवाहोंको बहाया । विद्युत्से आहत होकर मेघ बरस पडे और वे जलप्रवाहके रूपमें बह निकले ॥ १८ ॥

यह इन्द्र सोमयज्ञोंमें आनन्द करनेवाला है, अकेला ही संग्राममें पराक्रम दिखानेवाला है । इसका क्रोध कभी व्यर्थ नहीं जाता । वीर भी सदा उत्तम कामोंमें आनन्द ले । इसका क्रोध कभी व्यर्थ न जाए । वह जिसपर क्रोध करे, वह नष्ट हो जाए ॥ १९ ॥

वह इन्द्र वृत्रको मारनेवाला और मनुष्योंका भरणपोषण करनेवाला है । हमारी रक्षा करनेवाला ऐश्वर्यवान् इन्द्र ही हमपर शासन करनेवाला है । प्रजाओंपर वही शासन करे कि जो उनकी रक्षा करनेमें समर्थ हो २० ॥

१६१७ स वृत्रहेन्द्र ऋभुक्षाः सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूव ।
कृण्वन्नपांसि नर्या पुरूणि सोमो न पीतो हव्यः सखिभ्यः ॥ २१ ॥

[९७]

(ऋषिः- रेभः काश्यपः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- बृहती, १०, १३ अतिजगती, ११-१२ उपरिष्टाद्बृहती, १४ त्रिष्टुप्, १५ जगती ।)

१६१८ या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥ १ ॥

१६१९ यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥ २ ॥

१६२० य इन्द्र सस्त्यव्रतो ऽनुष्वापमदेवयुः ।
स्वैः ष एवैर्मुमुरत् पोष्यं रयिं सनुतर्धेहि तं ततः ॥ ३ ॥

अर्थ— [१६१७] (सः ऋभुक्षाः वृत्रहा इन्द्रः) वह कारीगरोंके साथ रहनेवाला तथा वृत्रको मारनेवाला इन्द्र (जज्ञानः सद्यः हव्यः बभूव) उत्पन्न होनेके बाद शीघ्रही बुलाने योग्य हो गया। (पुरूणि नर्या अपांसि कृण्वन्) बहुतसे मनुष्योंके लिए हितकारी कार्योंको करता हुआ वह इन्द्र (पीतः सोमः न) पिये गए सोमके समान (सखिभ्यः हव्यः) मित्रों द्वारा बुलाने योग्य हो गया ॥ २१ ॥

[९७]

[१६१८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (स्वः-वान्) स्वसामर्थ्यसे युक्त तूने (असुरेभ्यः) असुरोंसे (याः) जो (भुजः) धन (आ अभरः) छीने हैं, हे (मघ-वन्) ऐश्वर्यके स्वामी ! (अस्य) इस धनसे तू (स्तोतारं इत्) स्तोताकोही (वर्धय) बढा, (ये च) और जिन्होंने (त्वे) तेरे लिये (वृक्त-बर्हिषः) आसन बिछाया है, उन्हें भी बढा ॥ १ ॥

[१६१९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वम्) तू (यम्) जिस (अश्वम्) घोडा, (गाम्) गाय और (अव्ययम्) नाश न होनेवाले (भागम्) धनको (दधिषे) धारण कर रहा है, (तम्) उस धनको (तस्मिन्) उस (सुन्वति) यज्ञ कर्ता (दक्षिणा-वति) दक्षिणा देनेवाले (यजमाने) यजमानमेंही (धेहि) रख (पणौ) धन कमानेवाले दानरहितमें (मा) नहीं ॥ २ ॥

[१६२०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः) जो (अव्रतः) व्रतरहित (अदेव-युः) देवोंको न चाहनेवाला असुर (अनु-स्वापम्) गाढ निद्रामें (सस्ति) सोता है अर्थात् जिसे स्वकर्तव्यका ध्यान नहीं, (सः) वह (स्वैः) अपने (एवैः) व्यवहारसेही (पोष्यम्) पुष्टिकारक (रयिम्) धनको (मुमुरत्) नष्ट करता है । तू (तम्) उस धनको (ततः) उससे (सनुतः) गुप्त दशामें (धेहि) पहुँचा दे ॥ ३ ॥

भावार्थ— ऋभुओंके साथ रह कर शत्रुओंको मारनेवाला वह इन्द्र उत्पन्न होते ही पूजाके योग्य हो गया। वह इन्द्र मनुष्योंके लिए हितकारी कार्य करता है, इसलिए सभी उसे मित्रके रूपमें बुलाते हैं ॥ २१ ॥

इन्द्र असुरोंसे धन छीन कर स्तोताओंको देता है ॥ १ ॥

यजमान इन्द्रको हविष्यान्न देवें, अतः इन्द्रका दान यजमानकोही मिले, पणिको नहीं ॥ २ ॥

इन्द्र कुमार्गी और आलसीका धन उसके पास नहीं रहने देता । जो दान नहीं देता उसका धन दुर्व्यसनमें व्यय होता और अन्तमें सारा नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

१६२१ यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति ॥ ४ ॥
१६२२ यद्वासि रोचने दिवः समुद्रस्याधि विष्टपि ।
यत् पार्थिवे सदने वृत्रहन्तम यदन्तरिक्ष आ गहि ॥ ५ ॥
१६२३ स नः सोमेषु सोमपाः सुतेषु शवसस्पते ।
मादयस्व राधसा सूनृतावतेन्द्र राया परीणसा ॥ ६ ॥
१६२४ मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्यः ।
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ॥ ७ ॥

अर्थ— [१६२१] हे (शक्र) शक्तिशाली (वृत्र-हन्) वृत्र-नाशक (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) चाहे तू (परा-वति) बहुत दूर (असि) है (यत्) चाहे (अर्वा-वति) अति समीप है परंतु (सुत-वान्) यज्ञ करनेवाला है (अतः) अतः वहाँसेही (द्यु-गत्) द्युमें स्थित (केशि-भिः) चमकीली किरणोंसे युक्त (गीः-भिः) वाणियोंसे (त्वा) तुझे हम (आ विवासति) प्रेम-पूर्वक बुलाता है ॥ ४ ॥

[१६२२] हे (वृत्रहन्-तम) वृत्र-नाशकोंमें श्रेष्ठ इन्द्र ! (यत् वा) चाहे तू (दिवः) दिवलोकके (रोचने) प्रकाशमय स्थानमें (असि) हो, चाहे (समुद्रस्य) समुद्रकी (विष्टपि अधि) तलोमें । (यत्) चाहे तू (पार्थिवे) पृथिवीके किसी (सदने) घरमें रहता हो (यत्) चाहे (अन्तरिक्षे) आकाशमें; तू वहांसे ही हमारे पास (आ गहि) आ जा ॥ ५ ॥

[१६२३] हे (शवसः पते) बलके स्वामी (इन्द्र) इन्द्र ! (सः) वह (सोम-पाः) सोम पीनेवाला तू (सुतेषु सोमेषु) सोमरस तैयार होनेपर (सूनृता-वता) मीठी वाणीसे युक्त (राधसा) धनसे और (परीणसा) बहुत (राया) धनसे (नः) हमें (मादयस्व) आनन्दित कर ॥ ६ ॥

[१६२४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः) हमें अपनेसे (मा) मत (परा वृणक्) दूर फेंक । तू (नः) हमारा (सध-माद्यः) साथ आनंद करनेवाला (भव) हो । (त्वम्) तू (नः) हमारा (ऊती) रक्षक है, (त्वम्) तू (इत्) ही (नः) हमारा (आप्यम्) बान्धव है अतः हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः) हमें अपनेसे (परा मा वृणक्) दूर मत कर । हमारा साथ मत छोड ॥ ७ ॥

भावार्थ— यज्ञकर्ता अपनी आकर्षित करनेवाली मनोहर वाणीसे, इन्द्र कहीं भी हो, उसे सहायार्थ बुलाते हैं । जो अपनेको प्रिय हो, वह कहीं भी रहे, उसेही पुकारते हैं, उसीको चाहते हैं । दूसरा पासमें हो, तो भी उसे नहीं चाहते ॥ ४ ॥

इन्द्र कहीं भी हो, वह वहांसे हमारे पास आ पहुंचे । शूर राजाको राज्यमें सर्वत्र घूमकर प्रजा और राज्यका निरीक्षण करते रहना चाहिये ॥ ५ ॥

इन्द्र मीठी वाणी बोलकर भोजनादि देता है और यजमानको धनसे परिपूर्ण कर देता है । राजा और राजपुरुष प्रजासे कर प्राप्त कर उन्हें संरक्षणादिसे सुखी रखें ॥ ६ ॥

इन्द्र यज्ञ कर्ताओंका रक्षक और भाई है । उसका ऐसा ही व्यवहार है, इसीलिये वे यज्ञकर्ता ही उसका साथ छोड देना नहीं चाहते ॥ ७ ॥

×

१६२५ अस्मे इन्द्र सचा सुते नि षदा पीतये मधु ।
कृधी जरित्रे मघवन्नवो मह-दुस्मे इन्द्र सचा सुते ॥ ८ ॥
१६२६ न त्वा देवास आशत न मर्त्यासो अद्रिवः ।
विश्वा जातानि शवसाभिभूरसि न त्वा देवास आशत ॥ ९ ॥
१६२७ विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजू-स्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतो-ग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् ॥ १० ॥
१६२८ समीं रेभासो अस्वर-न्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥ ११ ॥
१६२९ नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो वो अद्रुहो ऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥ १२ ॥

अर्थ— [१६२५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अस्मे) हमारे (सुते) यज्ञमें, (सचा) एक साथ (मधु) मीठा रस (पीतये) पीनेके लिये, (नि सद) बैठ । हे (मघ-वन्) धन-सम्पन्न ! तू (जरित्रे) स्तुति कर्ताके लिये (महत्) बडा (अवः) रक्षा-साधन (कृधि) कर, दे । हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (अस्मे) हमारे (सुते) यज्ञमें, (सचा) साथ मिलकर रह ॥ ८ ॥

[१६२६] हे (अद्रि-वः) वज्रधारी इन्द्र ! (देवासः) देवोंने (त्वा) तुझे (न) नहीं (आशत) पाया, तेरी बराबरी नहीं की (मर्त्यासः) मनुष्योंने भी (न) नहीं । तू अपने (शवसा) बलसे (विश्वा) सारे (जातानि) जन्मधारियोंको (अभि-भूः) पराजित करनेवाला (असि) है, क्योंकि (देवासः) देव (त्वा न आशत) तेरी समता नहीं कर सके ॥ ९ ॥

[१६२७] स्तोता लोगोंने (विश्वाः) सारी (पृतनाः) शत्रुओंकी सेनाको (अभि-भूतरम्) दबानेवाले (नरम्) नेता (इन्द्रम्) इन्द्रको (स-जूः) साथ-साथ (ततक्षुः) बनाया, उत्साहसे भर-पूर किया, (उत) और (राजसे) प्रकाशित होनेके लिये अपने (क्रत्वा) कर्मसे (वरिष्ठम्) श्रेष्ठ, (वरे) श्रेष्ठ पदार्थोंकी प्राप्तिमें शत्रुओंके (आ-मुरिम्) मारक, (उग्रम्) न दबनेवाले, (ओजिष्ठम्) ओजसे भरपूर, (तवसम्) वृद्धि युक्त और (तरस्विनम्) वेगवान् इन्द्रको (जजनुः च) उत्पन्न किया ॥ १० ॥

[१६२८] (रेभासः) याजक लोगोंने (ईम्) इस (इन्द्रम्) इन्द्रको (सोमस्य) सोमके (पीतये) पीनेके लिये (सं अस्वरन्) प्रार्थना की । (यत्) जब उन्होंने (ईम्) इस (स्वः-पतिम्) स्वर्गके स्वामीको (वृधे) बढनेके लिये उत्साहित किया तब (धृत-व्रतः हि) व्रतधारी वह इन्द्र (ओजसा) बल और (ऊति-भिः) रक्षाके साधनोंसे (सम्) युक्त हो गया ॥ ११ ॥

[१६२९] (विप्राः) बुद्धिमान् लोग, (चक्षसा) दर्शनसे और (अभि-स्वरा) स्तुतिसे, (नेमिम्) नम्र और (मेषम्) स्पर्द्धाशील इन्द्रको (नमन्ति) नमस्कार करते हैं । हे (सु-दीतयः) उत्तम तेज वाले (अद्रुहः) द्रोह-रहित (तरस्विनः) कार्यमें शीघ्रता करनेवाले स्तोता लोगो ! (वः) तुम उस इन्द्रके (कर्णे) कानके समीप (ऋक्-भिः) स्तुतियों द्वारा (अपि सम्) खूब प्रशंसा करो ॥ १२ ॥

भावार्थ— इन्द्र स्तोताकी रक्षाके लिये बहुत बडा साधन देता है और स्वयं रक्षाके साधनोंसे युक्त होकर उसकी रक्षा करता है ॥ ८ ॥

देव और मनुष्य इन्द्रकी बराबरी नहीं कर सकते, क्योंकि जन्मधारियोंमें वह सबसे बडा है । जो विद्या, बल और ऐश्वर्यमें सबसे आगे हो, वही दुष्टोंको दबा, सज्जनोंकी रक्षा कर, उत्तम शासक बन सकता है ॥ ९ ॥

स्तोता शत्रुओंका वध करनेके लिये इन्द्रको अपने यहाँ बुलाते हैं । प्रजा ही राजाको रक्षा कर सकने योग्य बनाती है । उसमें रक्षाके गुण पहलेसे वर्तमान होते हैं अतः उसे राज्याधिकार देकर मानों नया जन्म देती है ॥ १० ॥

स्तोता इन्द्रका बल बढानेके निमित्त उसका यश गाते हैं । इस यशसे इन्द्रमें रक्षा करनेकी शक्ति बढती है ॥ ११ ॥

इन्द्रमें नम्रता और शत्रुके प्रति कठोरता ये दोनों गुण विद्यमान हैं । बडोंके समीप जाकर कोई बात शान्तिसे कहनी चाहिये, ऊँचा बोलना असभ्यता है ॥ १२ ॥

१६३० तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद्राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ १३ ॥
१६३१ त्वं पुर इन्द्र चिकिदेना व्योजसा शविष्ठ शक्र नाशयध्यै ।
त्वद्विश्वानि भुवनानि वज्रिन् द्यावा रेजेते पृथिवी च भीषा ॥ १४ ॥
१६३२ तन्म ऋतमिन्द्र शूर चित्र पात्वपो न वज्रिन् दुरिताति पर्षि भूरि ।
कदा न इन्द्र राय आ दशस्येर्विश्वप्स्न्यस्य स्पृहयाय्यस्य राजन् ॥ १५ ॥

[९८]

(ऋषिः- नृमेध आङ्गिरसः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- उष्णिक्; ७, १०-११ ककुप्; ९, १२ पुरउष्णिक् ।)

१६३३ इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ १ ॥
१६३४ त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ २ ॥

अर्थ— [१६३०] मैं (तम्) उस (मघवानम्) ऐश्वर्यवान्, (उग्रम्) निर्भय, (सत्रा) सदा (शवांसि) बलोंके (दधानम्) धारक और (अप्रति-स्कुतम्) पीछे न हटनेवाले (इन्द्रम्) इन्द्रको (जो हवीमि) बार-बार बुलाता हूँ । वह (मंहिष्ठः) अतिशय पूज्य (यज्ञियः) यज्ञके योग्य इन्द्र हमारी (गीः भिः च) वाणियों द्वारा यज्ञमें (आ ववर्तत्) प्रवृत्त हो । वह (वज्री) वज्र धारक (राये) ऐश्वर्यके निमित्त (नः) हमें (विश्वा) सारे (सु-पथा) उत्तम मार्ग (कृणोतु) प्राप्त कराये ॥ १३ ॥

[१६३१] हे (शविष्ठ) बलधारी (शक्र) शक्तिमान् (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वम्) तू (ओजसा) शक्तिसे (नाशयध्यै) नष्ट करनेके लिए शत्रुके (एनाः) इन (पुरः) नगरोंको (वि चिकित्) उत्तम प्रकारसे जानता है । हे वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! (विश्वा) सारे (भुवनानि) भुवन (द्यावा पृथिवी च) और द्यौ-पृथिवी दोनों लोक (त्वत् भीषा) तेरे भयसे (रेजेते) काँपते हैं ॥ १४ ॥

[१६३२] हे (शूर) शूर (चित्र) आश्चर्यके योग्य (इन्द्र) इन्द्र ! (तत्) वह तेरा (ऋतम्) सत्य (मा) मेरी (पातु) रक्षा करे । हे (वज्रिन्) वज्रधारी ! तू, (अपः न) जैसे जलको नाविक, वैसे हमारे (भूरि) बहुत, असंख्य (दुः-इता) दुर्गति, पाप और कठिनाइयोंको (अति पर्षि) पार कर दे । हे (राजन्) तेजस्वी (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः हमें (विश्व-प्स्न्यस्य) अनेक रूपवाला (स्पृहयाय्यस्य) चाहने योग्य (रायः) धन (कदा) कब (आ दशस्येः) देगा ॥ १५ ॥

[९८]

[१६३३] हे मनुष्यो ! (विप्राय बृहते) ज्ञानी, महान्, (धर्मकृते विपश्चिते, पनस्यवे) धर्मके काम करनेवाले, विद्वान् तथा प्रशंसनीय (इन्द्राय) इन्द्रके लिए (बृहत् साम गायत) बृहत् नामक सामका गान करो ॥ १ ॥

[१६३४] हे इन्द्र ! (त्वं अभिभूः असि) तू शत्रुओंका पराभव करनेवाला है, (त्वं सूर्यं अरोचयः) तूने सूर्यको प्रकाशित किया, तू (विश्वकर्मा विश्वदेवः महान् असि) विश्वको बनानेवाला, विश्वको प्रकाशित करनेवाला तथा महान् है ॥ २ ॥

भावार्थ— ऐश्वर्यशाली इन्द्र बलोंको धारण करनेवाला, कभी पीछे न हटनेवाला, अत्यन्त पूज्य और यज्ञके योग्य है । वह हमें धन प्राप्तिके हेतु उत्तम मार्ग दिखाए । धन सदा उत्तम मार्गसे ही प्राप्त करें ॥ १३ ॥

इन्द्र शत्रुके नगरोंको तोडनेकी विधि जानता है । जब वह शत्रु पर क्रोध करता है उस समय दोनों लोक सारा संसार काँप उठता है ॥ १४ ॥

इन्द्रका सत्य-नियम प्रजाकी सदा रक्षा करता है । इन्द्र मनुष्यको दुर्गुण रूप नदीके पार पहुँचा देता है ॥ १५ ॥

सभी शत्रुओंका पराभव करनेवाला इन्द्र सूर्यको प्रकाशित करता है । वही विश्वको बनानेवाला तथा उसे प्रकाशसे युक्त करनेवाला है । उस इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए सामगान करना चाहिए ॥ १-२ ॥

१६३५ विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः । देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ३ ॥
१६३६ एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः । गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥ ४ ॥
१६३७ अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी । इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ ५ ॥
१६३८ त्वं हि शश्वतीना मिन्द्र दर्ता पुरामसि । हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥ ६ ॥
१६३९ अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान् महः ससृज्महे । उदेव यन्त उदभिः ॥ ७ ॥
१६४० वार्ण त्वा यव्याभि र्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि । वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ ८ ॥
१६४१ युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयो रौ रथ उरुयुगे । इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ९ ॥
१६४२ त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनाषहम् ॥ १० ॥

अर्थ— [१६३५] हे इन्द्र ! तू (ज्योतिषा) अपने तेजसे (दिवः विभ्राजन्) सूर्यको प्रकाशित करते हुए (स्वः अगच्छः) स्वर्गलोकको गया । तब (ते देवाः) वे देव (रोचनं इन्द्रं) तेजस्वी इन्द्रके पास (सख्याय येमिरे) मित्रताके लिए आये ॥ ३ ॥

[१६३६] हे (प्रियः) प्रिय (सत्राजित्) सब शत्रुओंको एक साथ जीतनेवाले, (अ-गोह्यः) जिसे कोई छिपा नहीं सकता, ऐसे (गिरिः न विश्वतः पृथुः) पर्वतके समान सब जगह फैले हुए (दिवः पतिः) द्युलोकके स्वामी (इन्द्र) इन्द्र ! (नः आ गधि) हमारे पास आ ॥ ४ ॥

[१६३७] हे (सत्य सोमपा) अविनाशी और सोमको पीनेवाले इन्द्र ! तू (उभे रोदसी अभि बभूथ) दोनों द्यावापृथिवियोंका पराभव करता है, तथा (सुन्वतः वृधः असि) तू सोमयज्ञ करनेवालेको बढानेवाला है, और (दिवः पतिः असि) द्युलोकका स्वामी है ॥ ५ ॥

[१६३८] हे इन्द्र ! (त्वं हि) तू (शश्वतीनां पुरां दर्ता असि) शत्रुके बहुतसे नगरोंको तोडनेवाला है, (दस्योः हन्ता) दस्युओंको मारनेवाला है, (मनोवृधः) मानसिक शक्तिको बढानेवाला है तथा (दिवः पतिः) द्युलोकका स्वामी है ॥ ६ ॥

[१६३९] हे इन्द्र ! (उदा यन्तः उदभिः इव) जिस प्रकार पानी ले जानेवाले मित्र पानीसे खेलते हैं, उसी प्रकार हे (गिर्वण) स्तुतियोंसे पूज्य इन्द्र ! (त्वा) तेरे पास हम (महः कामान्) बडी बडी कामनाओंके साथ (ससृज्महे) आते हैं ॥ ७ ॥

[१६४०] (यव्याभिः वाः न) जैसे नदियोंद्वारा समुद्र बढाया जाता है, उसी प्रकार हे (शूर अद्रिवः) शूरवीर और वज्रधारी इन्द्र ! (वावृध्वांसं त्वा) बढाने योग्य तुझे (दिवे दिवे) प्रतिदिन (ब्रह्माणि वर्धन्ति) स्तोत्र बढाते हैं ॥ ८ ॥

[१६४१] (इषिरस्य) गमनशील इन्द्रके (उरु युगे उरौ रथे) महान् धुराओंवाले महान् रथमें स्तोता गण (इन्द्र वाहा-वचोयुजा) इन्द्रको ले जानेवाले तथा वाणीसे जुड जानेवाले (हरी) दो घोडोंको (गाथया) स्तोत्रसे (युञ्जन्ति) जोडते हैं ॥ ९ ॥

[१६४२] हे (शतक्रतो विचर्षणे इन्द्र) सैकडों पराक्रमके कार्य करनेवाले तथा ज्ञानी इन्द्र ! (त्वं नः) तू हमें (ओजः नृम्णं पृतनाषहं वीरं) ओज, धन और शत्रुओंको हटानेवाले वीर पुत्रको (आ भर) दे ॥ १० ॥

भावार्थ— जब इन्द्रने अपने तेजसे सूर्यको प्रकाशित करके सारे विश्वको प्रकाशसे युक्त किया, तब सभी देवोंने मिलकर इन्द्रकी स्तुति की । यह द्युलोकका स्वामी इन्द्र सर्व व्यापक है ॥ ३-४ ॥

हे इन्द्र ! तू द्युलोक और पृथ्वीलोक दोनों लोकोंपर शासन करता है । इसलिए तू ही इन दोनों लोकोंका स्वामी है । तू मनुष्योंकी मानसिक शक्तिको बढाता है ॥ ५-६ ॥

हे इन्द्र ! हम बडी बडी कामनायें लेकर तेरे पास आते है और जिस तरह नदियोंके द्वारा समुद्रको बढाया जाता है, उसी तरह स्तोत्रोंके द्वारा हम तेरा यश बढाते हैं ॥ ७-८ ॥

गतिशील इन्द्रके महान् धुराओंवाले रथमें उत्तम घोडे जोडे जाते हैं । ऐसा वह इन्द्र हमें ओज, धन और वीर पुत्र प्रदान करे ॥ ९-१० ॥

१६४३ त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ । अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ११ ॥
१६४४ त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ १२ ॥

[९९]

(ऋषिः- नृमेध आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१६४५ त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः ।
स इन्द्र स्तोमवाहसामिह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥ १ ॥
१६४६ मत्स्वा सुशिप्र हरिवस्तदीमहे त्वे आ भूषन्ति वेधसः ।
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्या सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ २ ॥
१६४७ श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ ३ ॥

अर्थ— [१६४३] हे (वसो शतक्रतो) सबको बसानेवाले तथा सैकडों यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! (त्वं हि नः) तू ही हमारा (पिता माता बभूविथ) पिता और माता है। (अध) इसलिए (ते सुम्नं ईमहे) हम तुझसे सुख मांगते हैं ॥ ११ ॥

[१६४४] हे (शुष्मिन् पुरुहूत शतक्रतो) बलवान्, बहुतोंके द्वारा सहायार्थ बुलाने योग्य तथा सैकडों यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! (वाजयन्तं त्वा) बल देनेवाले तेरी (उपब्रुवे) मैं स्तुति करता हूं। (सः) वह तू (नः सुवीर्यं रास्व) हमें उत्तम बल दे ॥ १२ ॥

[९९]

[१६४५] हे (वज्रिन् इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र ! (त्वां) तुझे (भूर्णयः नरः) उपासक जनोंने (इदा ह्यः) आज और कल (अपीप्यन्) सोम पिलाया, (सः) वह तू (स्तोमवाहसां) स्तोत्र बोलनेवालोंके स्तोत्रोंको (इह श्रुधि) यहां सुन और (स्वसरं आ गहि) घर आ ॥ १ ॥

[१६४६] हे (सुशिप्र हरिवः गिर्वणः इन्द्र) सुन्दर ठुड्डीवाले, घोडोंवाले और स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (वेधसः त्वे आ भूषन्ति) स्तोतागण तुझे अलंकृत करते हैं, तू (मत्स्व) आनन्दित हो, हम (सुतेषु) यज्ञोंमें तुझसे (तव तत्) तेरे उन (उपमानि उक्थ्या श्रवांसि) उपमाके योग्य प्रशंसनीय यशोंको (ईमहे) मांगते हैं ॥ २ ॥

[१६४७] हे मनुष्यो ! (सूर्यं श्रायन्तः इव) जिस प्रकार किरणें सूर्यका सेवन करती हैं, उसी प्रकार तुम भी (इन्द्रस्य विश्वा भक्षत) इन्द्रके सब सामर्थ्योंका भोग करो । वह इन्द्र (ओजसा) अपने बलसे (वसूनि) अपने धनोंको (जाते जनमानि) उत्पन्न हुई और उत्पन्न होनेवालोंमें (प्रति) विभक्त कर देता है, हम भी (भागं न) अपने पिताके धनके भागके समान उसे (दीधिमः) धारण करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! तू ही हमारा माता और पिता है । तू ही हमारा पालन करनेवाला है । इसलिए हम तुझसे ही धन और सुख मांगते हैं । तू हमें हमारे द्वारा मांगे गए सुख और धन प्रदान कर ॥ ११-१२ ॥

हे उत्तम घोडोंको पालनेवाले इन्द्र ! हम तुझे सुन्दर और यशस्वी बनाते हैं, तू आनन्दित होकर हमारे यज्ञोंमें आ । हमारे घरोंमें आकर हमें आनन्द दे ॥ १-२ ॥

किरण सूर्यका आश्रय करते हैं । इन्द्रके सब सामर्थ्य प्रशंसनीय हैं । इन्द्र अपने सामर्थ्योंसे अनेक धनोंको धारण करता है, वैसा हम करें । धनोंको, जो उत्पन्न हुई और उत्पन्न होंगी उनको पिताके समान धारण करेंगे । अर्थात् जिस धनको जिस समय धारण करना योग्य है उसको उसी समय ॥ ३ ॥

१६४८ अनशरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ ४ ॥

१६४९ त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्व-भि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ ५ ॥

१६५० अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ ६ ॥

१६५१ इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतम-मतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [१६४८] हे उपासक ! (अनशरातिं वसुदां उप स्तुहि) निष्पाप दान करनेवाले तथा धन देनेवाले इन्द्रकी स्तुति कर, (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके दान कल्याणकारी हैं, क्योंकि (मनः दानाय चोदयन्) अपने मनको दानके लिए प्रेरित करता हुआ (सः) वह (अस्य विधतः कामं न रोषति) इस स्तोताकी अभिलाषाका नाश नहीं करता ॥ ४ ॥

[१६४९] (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (प्रतूर्तिषु) संग्रामोंमें (विश्वाः तरुष्यतः स्पृधः) सभी हिंसा करनेवाले तथा स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंको (अभि असि) पराजित करनेवाला है । हे (तूर्य) शत्रु नाशक इन्द्र ! (त्वं) तू (जनिता) सबको पैदा करनेवाला (अशस्ति हा) उत्तमतासे शासन न करनेवालोंको मारनेवाला और (विश्व-तूः असि) सब शत्रुओंको नष्ट करनेवाला है ॥ ५ ॥

[१६५०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मातरा शिशुं न) जिस प्रकार मातायें बच्चेके पीछे चलती हैं उसी प्रकार (क्षोणी) ये द्यावा पृथिवी दोनों (ते तुरयन्तं शुष्मं अनु ईयतुः) तेरे शत्रुनाशक बलके पीछे चलती हैं । तू (यत् वृत्रं तूर्वसि) जिस मन्युसे वृत्रको मारता है उस (तेरे मन्यवे) तेरे मन्युके आगे (विश्वाः स्पृधः श्नथयन्त) सभी शत्रु ढीले पड जाते हैं ॥ ६ ॥

[१६५१] हे मनुष्यों ! (वः) तुम (अजरं, प्रहेतारं) जरा रहित, वीरोंको प्रेरणा देनेवाले, (अप्रहितं) किसीके द्वारा न भेजे गए अर्थात् स्वयं अपनी मर्जीसे आनेवाले (आशुं जेतारं हेतारं) शीघ्र काम करनेवाले, विजय प्राप्त करनेवाले, प्रेरक (रथीतमं, अतूर्तं) रथियोंमें सर्व श्रेष्ठ, अहिंसित (तुग्र्यावृधं) जलोंको बढानेवाले इन्द्रको (ऊती) अपने संरक्षणके लिए (इतः) यहां बुलाओ ॥ ७ ॥

भावार्थ— निर्दोष दान देनेवालेकी प्रशंसा कर, सदोष दान करनेवाला प्रशंसनीय नहीं है । दान कल्याण करनेवाले हों । मन दान देनेके लिये प्रेरित कर । वह दाताकी इच्छाको रोकता नहीं ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! सब युद्धोंमें तू सब स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंको नष्ट करनेवाला है । शूर ऐसे बने । हे शत्रुके विनाशक वीर ! तू अप्रशस्तोंका नाशक और सब शत्रुओंको दूर करनेवाला है । वीर ऐसे हों ॥ ५ ॥

द्यावा पृथिवी तेरे शत्रुको विनष्ट करनेवाले बलके पीछे चलते हैं । शत्रुको विनष्ट करनेके बलके साथ वीर रहते हैं । तेरे क्रोधके कारण सब स्पर्धा करनेवाले ढीले पडते हैं ॥ ६ ॥

हे मनुष्यों ! तुम प्रेरणा देनेवाले विजयी, रथीश्रेष्ठ, अहिंसित वीरको अपनी सुरक्षाके लिये यहां बुलाओ ॥ ७ ॥

१६५२ इुष्कुर्तारमनिष्कृतं सहस्कृतं शुतमूतिं शुतक्रतुम्
समानमिन्द्रमवसे हवामहे वसवानं वसूजुवम् ॥ ८ ॥

[१००]

(ऋषिः- १-३, ६-१२ नेमो भार्गवः, ४-५ इन्द्रः । देवताः- इन्द्रः, ८ सुपर्णः, ९ वज्रो वा, १०-११ वाक् ।
छन्दः- त्रिष्टुप्, ६ जगती, ७-९ अनुष्टुप् ।)

१६५३ अयं त एमि तन्वा पुरस्ता द्विश्वे देवा अभि मा यन्ति पश्चात् ।
यदा मह्यं दीधरो भागमिन्द्रा ऽऽदिन्मया कृणवो वीर्याणि ॥ १ ॥
१६५४ दधामि ते मधुनो भक्षमग्रे हितस्ते भागः सुतो अस्तु सोमः ।
असश्च त्वं दक्षिणतः सखा मे ऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ॥ २ ॥
१६५५ प्र सु स्तोमं भरत वाजयन्त इन्द्राय सत्यं यदि सत्यमस्ति ।
नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ईं ददर्श कमभि ष्टवाम ॥ ३ ॥

अर्थ— [१६५२] (इष्कर्तारं अनिष्कृतं) शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले पर स्वयं अहिंसित (सहस्कृतं) बलसे कार्य करनेवाले शतमूतिं शतक्रतुं) सैंकडों प्रकारसे रक्षा करनेवाले, सैंकडों तरहके शुभ कर्म करनेवाले (समानं) हमेशा एक सा रहनेवाले, (वसवानं) जगत्को व्याप्त करनेवाले (वसूजुवं) धनको प्रेरित करनेवाले (इन्द्रं अवसे हवामहे) इन्द्रको हम अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं ॥ ८ ॥

[१००]

[१६५३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अयम्) यह मैं अपने (तन्वा) शरीरसे (ते) तेरे (पुरस्तात्) आगे (एमि) प्राप्त होता हूँ और (विश्वे) सारे (देवाः) देव (पश्चात्) पीछे (मा) मेरी (अभि यन्ति) ओर आते हैं, मेरे पीछे चले आ रहे हैं। (यदा) जब तू (मह्यम्) मेरे लिये (भागम्) भोग्य धनादि (दीधरः) धारण करता है (आत् इत्) तब (मया) मेरे साथ (वीर्याणि) पराक्रम भी (कृणवः) करता है । मेरे साथ पराक्रम भी रहते हैं ॥ १ ॥

[१६५४] हे इन्द्र ! मैं (ते) तेरे लिये (मधुनः) सोमका (भक्षम्) भक्ष्य तेरे (अग्रे) आगे (दधामि) रखता हूँ। (ते) तेरा, (सुतः) बनाया हुआ (सोमः) सोम रूप (भागः) भाग, तेरे लिये (हितः) सुरक्षित रखा (अस्तु) हो। (त्वम्) तू (दक्षिणतः) दाहिनी ओर (मे) मेरा (सखा) मित्र (असः च) बनकर रह। (अध) तब हम दोनों (भूरि) बहुत (वृत्राणि) वृत्रोंका (जंघनाव) हनन करें ॥ २ ॥

[१६५५] हे (वाज-यन्तः) बलके अभिलाषी मनुष्यों ! (यदि) यदि इन्द्र (सत्यम्) सचमुच कोई शक्तिवान् (अस्ति) है तो उस (इन्द्राय) इन्द्रके निमित्त (सत्यम्) अवश्य (स्तोमम्) स्तुति (प्र सु भरत) कहो। परन्तु यह (नेमः) नेम (उ) तो (आह) कहता है कि (इन्द्रः) इन्द्र करके (त्वः) कोई (न अस्ति इति) नहीं है। यदि है, तो (कः) किसने (ईम्) उसे (ददर्श) देखा है ? यदि नहीं है तो हम (कम्) किसकी (अभि स्तवाम) स्तुति करें ॥ ३ ॥

भावार्थ— शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले पर स्वयं अहिंसित रहनेवाले, बलसे कार्य करनेवाले, सैंकडों तरहसे कार्य करनेवाले धनको प्रेरित करनेवाले इन्द्रको हम बुलाते हैं ॥ ८ ॥

इन्द्रके स्तोता विजयके लिये इन्द्रसे आगे-आगे रहते हैं और देव उनके पीछे-पीछे । वह इन्द्र स्तोताओंको भी धन और सामर्थ्य देता है ॥ १ ॥

इन्द्र स्तोताओंकी सहायताके लिये दक्षिण हाथके समान दायें-दायें रहता है । तब दोनों मित्रके समान रहकर अनेक वृत्रोंका नाश करते हैं ॥ २ ॥

नेमको शंका हुई कि इन्द्र है या नहीं । यदि है तो वह दिखाई क्यों नहीं देता ? यदि नहीं है तो उसकी स्तुति क्यों करें ? ॥ ३ ॥

१६५६ अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना ।
ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धय-न्त्यादर्दिरो भुवना दर्दरीमि ॥ ४ ॥
१६५७ आ यन्मा वेना अरुहन्नृतस्यँ एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे ।
मनश्चिन्मे हृद आ प्रत्यवोच-दचिक्रदञ्छिशुमन्तः सखायः ॥ ५ ॥
१६५८ विश्वेत् ता ते सवनेषु प्रवाच्या या चकर्थ मघवन्निन्द्र सुन्वते ।
पारावतं यत् पुरुसंभृतं व-स्वपावृणोः शरभाय ऋषिबन्धवे ॥ ६ ॥
१६५९ प्र नूनं धावता पृथङ् नेह यो वो अवावरीत् ।
नि षीं वृत्रस्य मर्मणि वज्रमिन्द्रो अपीपतत् ॥ ७ ॥
१६६० मनोजवा अयमान आयसीमतरत् पुरम् ।
दिवं सुपर्णो गत्वाय सोमं वज्रिण आभरत् ॥ ८ ॥

अर्थ— [१६५६] हे (जरितः) स्तुति करनेवालो ! मैं (अयम्) यह (अस्मि) हूँ, (इह) यहाँ (मा) मुझे (पश्य) देख । मैं अपने (मह्ना) महत्त्वसे (विश्वा) सारे (जातानि) जन्मधारियोंको (अभि अस्मि) हरा देता हूँ । (ऋतस्य) ऋत की (प्र-दिशः) दिशायें (मा) मुझे (वर्धयन्ति) बढाती हैं । शत्रुओंका (आ-दर्दिरः) विदारक मैं सारे (भुवना) भुवनोंको (दर्दरीमि) नष्ट कर सकता हूँ ॥ ४ ॥

[१६५७] (यत्) जब (वेनाः) स्तुतियाँ, (हर्यतस्य) पूज्य (ऋतस्य) यज्ञके (पृष्ठे) अन्दर (एकम्) अकेले (आसीनम्) बैठे (मा) मुझ इन्द्रको (आ अरुहन्) होने लगी तब मेरे (मनःचित्) मनने (मे) मेरे (हृदे) हृदयके लिये (आ प्रति अवोचत्) कहा कि ये (शिशु-मन्तः) बाल-बच्चोंवाले (सखायः) मित्र मुझे (आचक्रदन्) बुला रहे हैं ॥ ५ ॥

[१६५८] हे (मघ-वन्) धनवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जो तूने (ऋषि-बन्धवे) बन्धुरूप ऋषि (शरभाय) शरभके निमित्त (पुरु-संभृतम्) बडी संख्यामें एकत्र (पारावतम्) परावान् का (वसु) धन (अप-अवृणोः) अपने अधीन किया और (सुन्वते) यज्ञ करनेवालेके लिये तूने (या) जो दान (चकर्थ) किये हैं (ते) तेरे (ता) वे (विश्वा इत्) सारेही कर्म (सवनेषु) यज्ञके समय (प्र-वाच्या) कहने योग्य हैं ॥ ६ ॥

[१६५९] हे वीरो ! (नूनम्) निश्चय अब तुम, (पृथक्) एक-एक, शत्रुकी ओर (प्र धावत) दौडो । (इह) यहाँ ऐसा कोई वीर (न) नहीं है (यः) जो (वः) तुम्हें (अवावरीत्) रोके । देखो ! (इन्द्रः) इन्द्रने (वृत्रस्य) वृत्रके (मर्मणि) कोमल स्थान पर (वज्रम्) वज्रका (नि सीं अपीपतत्) प्रहार कर दिया है ॥७॥

[१६६०] (सुपर्णः) उत्तम पंखोंवाला सुपर्ण (मनोजवा अयमानः) मनके वेगसे जाते हुए (आयसीं पुरं अतरत) लोहेके नगरको पार कर गया और (दिवं गत्वाय) द्युलोकको जाकर वह (वज्रिणे सोमं आभरत्) वज्रधारी इन्द्रके लिए सोम ले आया ॥ ८ ॥

भावार्थ— [इन्द्र शंकित स्तोताको अपना परिचय देता है ।] संसारका कोई पदार्थ मुझसे बडा नहीं है । यज्ञमें दिये हुए भाग मुझे बढाते हैं । मैं सारे शत्रुओंका नाश करता हूँ ॥ ४ ॥

स्तोता संकटमें इन्द्रको सहायार्थ बुलाते हैं । इसीसे इन्द्रको उनके संकटका ज्ञान होता है ॥ ५ ॥

यज्ञमें इन्द्रके सारे दान और पराक्रम वर्णन करने चाहियें । विद्वान् लोग राष्ट्रके सारे वीरोंके चरित्र सुरक्षित रखें और उत्सवोंमें वे चरित्र गाये जायें ॥ ६ ॥

इन्द्रने शत्रुओंको ऐसा मिटा दिया है कि कोई मार्ग रोकनेवाला नहीं रह गया ॥ ७ ॥

सोम द्युलोकमें एक लोहेकी नगरीके अन्दर रखा हुआ था, उसे लानेके लिए इन्द्रने सुपर्णको भेजा और सुपर्ण उस लोहेकी नगरीको पार करके उस सोमको ले आया ॥ ८ ॥

१६६१ समुद्रे अन्तः शयत उद्ना वज्रो अभीवृतः ।
भरन्त्यस्मै संयतः पुरःप्रस्रवणा बलिम् ॥ ९ ॥

१६६२ यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा ।
चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जगाम ॥ १० ॥

१६६३ देवीं वाचमजनयन्त देवा स्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ॥ ११ ॥

१६६४ सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व द्यौर्देहि लोकं वज्राय विष्कभे ।
हनाव वृत्रं रिणचाव सिन्धू निन्द्रस्य यन्तु प्रसवे विसृष्टाः ॥ १२ ॥

अर्थ - [१६६१] इन्द्रका (वज्रः) वज्र (उद्ना) जलसे (अभि-वृतः) घिरा हुआ (समुद्रे) आकाशके (अन्तः) बीच (शयते) है। उसके भयसे (सं-यतः) संग्रामके (पुरः-प्रस्रवणाः) सामनेसे भागनेवाले शत्रु (अस्मै) इस इन्द्र या उसके वज्रके लिये (बलिम्) बलि (भरन्ति) अर्पित कर रहे हैं ॥ ९ ॥

[१६६२] (अविचेतना नि वदन्ती) अज्ञानियोंको ज्ञानसे युक्त करती हुई तथा (देवानां मन्द्रा) विद्वानोंको हर्षित करती हुई (यत् राष्ट्री वाक्) जो तेज युक्त वाणी (निषसाद) यज्ञमें बोली जाती है, तब (चतस्रः) चारों दिशायें (ऊर्जं पयांसि दुदुहे) अन्न और दूध आदिको उत्पन्न करती हैं। (अस्याः) इस वेदवाणीका (परमं) मूल स्थान (कु स्वित् जगाम) कहां है, पता नहीं ॥ १० ॥

[१६६३] (देवाः) देवोंने (देवीं वाचं अजनयन्त) इस दिव्य वेदवाणीको प्रकट किया, (तां) उस वाणीको (विश्वरूपाः पशवः वदन्ति) अनेक रूपवाले पशु बोलते हैं। (मन्द्रा सा) आनन्द देनेवाली वह वाणी (नः) हमें (इषं ऊर्जं दुहाना) अन्न और तेजको प्रदान करे (सु स्तुता धेनुः वाक्) अच्छी तरहसे स्तुत हुई वह वाणी रूपी गाय (अस्मान् उप एतु) हमारे पास आवे ॥ ११ ॥

[१६६४] हे (सखे) मित्र (विष्णो) विष्णु देव ! तू (वि-तरम्) अधिक (वि क्रमस्व) विक्रम दिखा। हे (द्यौः) द्युलोक ! तू हमारे (वज्राय) वज्रके (वि-स्कभे) ठहरनेके लिये अधिक (लोकम्) स्थान (देहि) दे। हे विष्णो ! हम दोनों मिलकर (वृत्रम्) वृत्रको (हनाव) मारें और (सिन्धून्) जलोंको (रिणचाव) बहा दें। वे जल (वि-सृष्टाः) मुक्त होते ही (इन्द्रस्य) इन्द्रकी (प्र-सवे) आज्ञामें (यन्तु) बहा करें ॥ १२ ॥

भावार्थ— वज्रके भयसे शत्रु युद्धसे भागते और इन्द्रको अपना बलि देते है। राजाके पास उत्तम अस्त्र-शस्त्र हों तो शत्रु भयभीत होकर स्वयं वशमें आ जाते हैं ॥ ९ ॥

यह वेदवाणी अज्ञानियोंको ज्ञानसे युक्त करती है, तथा देवों और विद्वानोंको प्रसन्न करती है। यह वाणी स्वयं तेजसे युक्त होकर इसे बोलनेवालेको भी तेजसे युक्त करती है। यज्ञमें जब वेदोंका पाठ होता है, तब वह यज्ञ हर तरहसे समृद्ध होता है। वेदवाणीके इतने सारे कार्य प्रत्यक्ष होनेपर भी ये वेद किस स्थानसे प्रकट हुए यह पता नहीं चलता ॥ १० ॥

वाणीका मूल रूप एक ही है। इस वाणीको भगवान्ने प्रकट किया था। पर इस एक ही वाणीको सभी प्राणी अलग-अलग रूपसे बोलते हैं। वह वाणी जब प्रसन्न होती है, तब मनुष्य हर तरहसे समृद्ध होता है ॥ ११ ॥

इन्द्र विष्णुकी सहायतासे वृत्रको मार कर सदा जल बहाया करता है ॥ १२ ॥

×

[१०१]

(ऋषिः- जमदग्निर्भार्गवः । देवताः- मित्रावरुणौ, ५ मित्रावरुणादित्याः, ६ आदित्याः, ७-८ अश्विनौ, ९-१० वायुः, ११-१२ सूर्यः, १३ उषाः सूर्यप्रभा वा, १४ पवमानः, १५-१६ गौः । छन्दः- १-२ प्रगाथः= (बृहती, सतोबृहती), ३ गायत्री, ४ सतोबृहती, ५-१३ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती,) १४-१६ त्रिष्टुप् ।)

१६६५ ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये ।
यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदातये ॥ १ ॥

१६६६ वर्षिष्ठक्षत्रा उरुचक्षसा नरा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता बाहुता न दंसना रथर्यतः साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ २ ॥

१६६७ प्र यो वां मित्रावरुणा ऽजिरो दूतो अद्रवत् । अयःशीर्षा मदेरघुः । ॥ ३ ॥

१६६८ न यः संपृच्छे न पुनर्हवीतवे न संवादाय रमते ।
तस्मान्नो अद्य समृतेरुरुष्यतं बाहुभ्यां न उरुष्यतम् ॥ ४ ॥

---

[१०१]

अर्थ— [१६६५] (यः) जो मनुष्य (अभिष्टये अपनी इच्छाकी प्राप्तिके लिए तथा (हव्य दातये) हवि प्रदान करनेके लिए (मित्रावरुणौ आ चक्रे) मित्र और वरुणको अपनी ओर करता है, (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (ऋधक्) सचमुच (इत्था) इसप्रकार (देवतातये) देवोंको प्रसन्न करनेके लिए (शशमे) आहुति प्रदान करता है ॥ १ ॥

[१६६६] (वर्षिष्ठक्षत्रा) अत्यन्त बलशाली (उरुचक्षसा) विशाल दृष्टिवाले, (नराः) उत्तम नेता, (राजाना) तेजस्वी (दीर्घश्रुत्तमा) अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञानी (ता) वे दोनों मित्र और वरुण (बाहुता न) दोनों हाथोंके समान (सूर्यस्य रश्मिभिः साकं) सूर्यकी किरणोंके साथ (दंसना) यज्ञ कर्ममें (रथर्यतः) आते हैं ॥ २ ॥

[१६६७] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! (यः) जो (वां अजिरः दूतः) तुम्हारी सदा सेवा करनेवाला दूत बनकर (अद्रवत्) तुम्हारे पास आता है, वह (अयः शीर्षा) सोनेसे शोभित सिरवाला होकर (मदेरघुः) आनन्ददायक ऐश्वर्यमें रहता है ॥ ३ ॥

[१६६८] (यः) जो मनुष्य (सं प्रश्ने न रमते) किसी विद्याकी जिज्ञासामें आनन्द प्राप्त नहीं करता, (न पुनः हवीतवे) न यज्ञादि कर्ममें जिसे आनन्द मिलता है, (न संवादाय रमते) न किसी शुभ संवादमें जिसे आनंद मिलता है, हे मित्र वरुण ! (अद्य) आज (तस्मात् समृतेः) उस नास्तिकके संग्रामसे (नः उरुष्यतं) हमारी रक्षा करो, (बाहुभ्यां न उरुष्यतं) अपनी बाहुओंसे हमारी रक्षा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ— मित्र और वरुण दोनों देव अत्यन्त बलशाली, विशाल दृष्टिवाले, उत्तम नेता, तेजस्वी और श्रेष्ठ ज्ञानी हैं, इन दोनों देवोंकी जो स्तुति करता है, वह अपने इच्छित फलको प्राप्त करता है ॥ १-२ ॥

जो इन दोनों देवोंकी सदा सेवा करता है, वह स्वर्ण अलंकार आदिसे सुशोभित होकर आनन्द दायक ऐश्वर्यमें रहता है, पर जो मनुष्य किसी विद्याको प्राप्त करनेके कार्यमें आनन्द नहीं लेता, यज्ञादि उत्तम कर्मोंमें जिसे आनंद नहीं मिलता, जो किसी प्रवचन आदिमें नहीं जाता, वह दुष्ट है । ऐसे दुष्टों पर इन दोनों देवोंकी अवकृपा रहती है ॥ ३-४ ॥

१६६९ प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।
वरूथ्यं१ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥ ५ ॥
१६७० ते हिन्विरे अरुणं जेन्यं वस्वेकं पुत्रं तिसृणाम् ।
ते धामान्यमृता मर्त्यानामदब्धा अभि चक्षते ॥ ६ ॥
१६७१ आ मे वचांस्युद्यता द्युमत्तमानि कर्त्वा ।
उभा यातं नासत्या सजोषसा प्रति हव्यानि वीतये ॥ ७ ॥
१६७२ रातिं यद्वामरक्षसं हवामहे युवाभ्यां वाजिनीवसू ।
प्राचीं होत्रां प्रतिरन्ताविितं नरा गृणाना जमदग्निना ॥ ८ ॥
१६७३ आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः ।
अन्तः पवित्र उपरि श्रीणानोऽयं शुक्रो अयामि ते ॥ ९ ॥

अर्थ— [१६६९] हे (ऋतावसो) यज्ञको स्थापित करनेवाले यज्ञकर्ता ! (मित्राय अर्यम्णे) मित्र और अर्यमा देवके लिए (सचथ्यं वरूथ्यं) सेवाके योग्य और वरणीय स्तोत्रको गाओ । (वरुणे छन्द्यं वचः) वरुणके लिए प्रशंसनीय स्तोत्रका गान करो । (राजसु स्तोत्रं गायत) तेजस्वी देवोंके लिए स्तोत्रका गान करो ॥ ५ ॥

[१६७०] (ते) वे देव (अरुणं) लाल वर्णके (जेन्यं) जयके साधन भूत (वसु) सबको बसानेवाले (तिसृणां एकं पुत्रं) पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यु इन तीनों लोकोंके एक पुत्र सूर्यको (हिन्विरे) प्रकट होनेके लिए प्रेरित करते हैं । तथा उसकी सहायतासे (अदब्धाः ते) आलस्यरहित वे देव (मर्त्यानां अमृता धामानि) मनुष्योंके अमर स्थानोंको (अभि चक्षते) देखते हैं ॥ ॥ ६ ॥

[१६७१] हे (नासत्या) सत्यपालक वीर अश्विदेवो ! (उभा सजोषसा) दोनों मिलकर ही (हव्यानि वीतये) हविर्भागका आस्वाद लेनेके लिए (मे) मेरे (उत् यता द्युमत्तमानि) अत्यन्त प्रकाशमान् (कर्त्वा वचांसि) कार्य कलाप और भाषणके (प्रति आ यातं) समीप आओ ॥ ७ ॥

[१६७२] हे (नरा) नेताओ ! (वाजिनी वसू) सेनारूपी धनवाले अश्विदेवो ! (यत् युवाभ्यां) जब तुम दोनोंसे (अरक्षसं रातिं) राक्षसोंकी पीडाओंसे रहित दानको (हवामहे) हम चाहते हैं, तब (जमदग्निना गृणाना) जमदग्निसे प्रशंसित तुम दोनों (प्राचीं होत्रां प्रतिरन्तौ) पूर्वाभिमुख प्रशंसाको बढाते हुए (इतं) इधर आओ ॥ ८ ॥

[१६७३] हे (वायो) वायो ! (नः दिविस्पृशं यज्ञं) हमारे द्युलोकको स्पर्श करनेवाले यज्ञके पास (सुमन्मभिः) उत्तम मननीय स्तोत्रोंके साथ (आ याहि) आ । क्योंकि (अन्तः पवित्रः) अन्दरसे पवित्र तथा (उपरि श्रीणानः) बाहरसे अच्छी तरह निचोडा हुआ (अयं शुक्रः) यह स्वच्छ सोमरस (ते) तेरे लिए (अयामि) मैं देता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थ— मित्र और वरुण देव लाल सूर्यके समान तेजस्वी, जय प्रदान करनेवाले, सबको निवास देनेवाले होकर सूर्यको प्रकट करते हैं । आलस्यरहित होकर वे देव मनुष्योंके सभी स्थानोंका निरीक्षण करते हैं । इन देवोंकी स्तुति करनी चाहिए ॥ ५–६ ॥

हे देवो ! हमें ऐसा धन दो, कि जिसके कारण हमें कोई पीडा और संकट न उठाना पडे । तुम दोनों हमारे यशको बढाते हुए हमारी तरफ आओ और हमारे अत्यन्त तेजस्वी भाषाको तुम सुनो ॥ ७–८ ॥

१६७४ वेत्यध्वर्युः पथिभी रजिष्ठैः प्रति हव्यानि वीतये ।
अधा नियुत्व उभयस्य नः पिब शुचिं सोमं गवाशिरम् ॥ १० ॥
१६७५ बण्महाँ असि सूर्य बळादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ॥ ११ ॥
१६७६ बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥ १२ ॥
१६७७ इयं या नीच्यर्किणी रूपा रोहिण्या कृता ।
चित्रेव प्रत्यदर्श्यायत्य१न्तर्दशसु बाहुषु ॥ १३ ॥
१६७८ प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयु१र्न्यन्या अर्कमभितो विविश्रे ।
बृहद्ध तस्थौ भुवनेष्वन्तः पवमानो हरित आ विवेश ॥ १४ ॥

अर्थ- [१६७४] (नियुत्वः) हे नियुत नामक अश्ववाले वायो ! (अध्वर्युः) यज्ञका ऋत्विक् (वीतये) तुम्हारे भक्षणके लिए (हव्यानि) हविको (रजिष्ठैः पथिभिः) सरलतम मार्गोंसे (प्रति वेति) ले जाता है। (अधा) पश्चात् (नः) हमारे (शुचिं गवाशिरं) शुद्ध तथा गोदुग्ध मिश्रित (उभयस्य सोमं) दोनों प्रकारके सोमको (पिब) पिओ ॥ १० ॥

[१६७५] हे (सूर्य) सूर्य ! तू (बट् महान् असि) सचमुच महान् है, हे (आदित्य) आदित्य ! (बट् महान् असि) तू वास्तवमें महान् है,। (महः सतः ते) महान् होनेके कारण तेरी (महिमा पनस्यते) महिमा सर्वत्र गाई जाती है। (अद्धा) अतः, हे (देव) तेजस्वी सूर्य ! तू (महां असि) महान् है ॥ ११ ॥

[१६७६] हे (सूर्य) सूर्य ! (बट्) सचमुच तू (श्रवसा महान् असि) बलके कारण महान् है। हे (देव) देव ! (सत्रा) सचमुच (देवानां) देवोंके मध्यमें (मह्ना) अपनी महिमाके कारण तू (महान् असि) महान् है। तू (असुर्यः) असुरोंको मारनेवाला, (पुरोहितः) आगे बढकर प्राणियोंका हित करनेवाला, (विभुः) व्यापक है और तेरा (ज्योतिः) तेज (अदाभ्यं) किसीसे नष्ट होनेवाला नहीं है ॥ १२ ॥

[१६७७] (इयं या) यह जो (नीची) नीचेकी ओर मुख किए हुई (अर्किणी) स्तुतिके योग्य (रूपा) रूपवती (रोहिण्या) प्रकाशवाली सूर्य प्रभा (कृता) उत्पन्न हुई, वह (अन्तः) विश्वमें (दशसु बाहुषु) दस बाहुओंमें (आयती) आती हुई (चित्रा इव) चित्राके समान (प्रति अदर्शि) दिखाई दी ॥ १३ ॥

[१६७८] जो (तिस्रः प्रजाः) तीनों लोकोंमें प्रजायें (अत्यायं ईयुः) निर्माण हुई हैं, (अन्याः) वे सभी प्रजायें (अर्कं अभितः विविश्रे) सूर्यका चारों ओरसे आश्रय लेती हैं। (बृहत्) वह महान् सूर्य (भुवनेषु अन्तः तस्थौ) भुवनोंके अन्दर व्यापक है। (पवमानः) पवित्र करनेवाला वायु (हरितः आ विवेश) सभी दिशाओंमें प्रविष्ट हो रहा है ॥ १४ ॥

भावार्थ- हे वायु ! हमारे द्वारा किए जानेवाले इन यज्ञोंकी ज्वालायें द्युलोकको स्पर्श करती हैं। तू इन यज्ञोंमें आ। यज्ञ करनेवाला तेरे लिए उत्तम मार्गसे हवि प्रदान करता है। तू उसके द्वारा दिए सोमरसको पी ॥ ९-१० ॥

हे सूर्य ! तू महान् है, इसीलिए तेरी महिमा सर्वत्र गाई जाती है। इसी महिमाके कारण तू महान् है ॥ ११ ॥

हे सूर्य ! तू अपने बलके कारण महान् है। इन सभी देवोंके बीचमें अपनी महिमाके कारण तू महान् है। तू आगे बढकर प्राणियोंका हित करनेवाला और व्यापक है, और तेरा तेज किसीसे नष्ट होनेवाला नहीं है ॥ १२ ॥

द्युलोकसे नीचेकी तरफ अपने प्रकाशको बिखेरती हुई सूर्यप्रभा दसों दिशाओंमें अपने प्रकाशको फैलाती है। सभी प्राणी इस सूर्यप्रभाके आश्रयसे रहते हैं और उससे जीवन प्राप्त करते हैं। उस महान् सूर्य और वायुका प्रभाव सभी दिशाओं और विश्वके सभी पदार्थोंमें व्याप्त है ॥ १३-१४ ॥

१६७९ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥ १५ ॥

१६८० वचोविदं वाचमुदीरयन्तीं विश्वाभिर्धीभिरुपतिष्ठमानाम् ।
देवीं देवेभ्यः पर्येयुषीं गामा मावृक्त मर्त्यो दभ्रचेताः ॥ १६ ॥

[१०२]

(ऋषिः- भार्गवः प्रयोगः, अग्निर्बार्हस्पत्यः, पावको वा, सहसः पुत्रौ गृहपति-यविष्ठौ तयोर्वान्यतरः । देवताः- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

१६८१ त्वमग्ने बृहद्वयो दधासि देव दाशुषे । कविर्गृहपतिर्युवा ॥ १ ॥
१६८२ स न ईळानया सह देवाँ अग्ने दुवस्युवा । चिकिद्विभानवा वह ॥ २ ॥
१६८३ त्वया ह स्विद्युजा वयं चोदिष्ठेन यविष्ठ्य । अभि ष्मो वाजसातये ॥ ३ ॥

अर्थ— [१६७९] यह गौ (रुद्राणां माता) रुद्र देवोंकी माता (वसूनां दुहिता) वसुदेवोंकी पुत्री (आदित्यानां स्वसा) आदित्य देवोंकी बहिन और (अमृतस्य नाभिः) अमृतका केन्द्रस्थान है । मैं (चिकितुषे जनाय नु प्रवोचं) ज्ञानी मनुष्यसे यही कहता हूँ कि (अनागां अदितिं गां) निरपराध और न मारने योग्य गायको (मा वधिष्ट) मत मार ॥ १५ ॥

[१६८०] (वचः विदं) वाणीको प्रेरणा देनेवाली (विश्वाभिः धीभिः उपतिष्ठमानां) सब तरहसे वर्णित होनेवाली, (देवेभ्यः) मुझे देवत्व देनेके लिए (मां उप ईयुषीं) मेरी तरफ आनेवाली तथा (वाचं उदीरयन्तीं) स्नेहपूर्ण वाणीको व्यक्त करती हुई (गां) गायको (दभ्रचेताः मर्त्यः) अल्प ज्ञानी मनुष्य (आ अवृक्त) त्याग देता है ॥ १६ ॥

[१०२]

[१६८१] हे (देव अग्ने) तेजस्वी अग्ने ! (त्वं, दाशुषे, बृहद्वयः दधासि) तू दान देनेवालेके लिये महद् अन्न प्रदान करता है । तू (कविः गृहपतिः युवा) दूरदर्शी, गृहका स्वामी और नित्य तरुण है ॥ १ ॥

[१६८२] हे (विभानो अग्ने) विशेष कान्तियुक्त अग्ने ! (सः चिकित्) वह ज्ञानवान् तू (नः दुवस्युवा ईळानया सह देवान् आवह) हमारी श्रद्धा और करुणासे भरी वाणीसे प्रेरित होकर देवताओंको यहाँ ले आ ॥ २ ॥

[१६८३] हे (यविष्ठ्य) अत्यन्त बलवान् अग्ने ! (चोदिष्ठेन त्वया युजा स्वित् ह वयं) मनुष्योंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करनेवाले तुझ सहयोगीके साथ ही हम (वाजसातये अभिष्मः) बल लाभके लिये शत्रुओंको पराजित करनेवाले होवें ॥ ३ ॥

भावार्थ— गाय रुद्रोंकी माता, वसुदेवोंकी पुत्री, आदित्य देवोंकी बहिन है । इस गायमें सभी देवगण निवास करते हैं । इसमें दूधरूपी अमृत है । अतः गाय सब तरहसे पूज्य है । इसीकारण वह वधके योग्य नहीं है । जो प्राणियोंमें सबसे अधिक सरल इस गायका वध करता है, वह पाप करता है । गायकी हर तरहसे रक्षा करनी चाहिए ॥ १५ ॥

गायकी महिमा सर्वत्र गाई गई है । उसका शब्द बहुतही स्नेहपूर्ण होता है । वह सब मनुष्योंकी माता होनेसे सबके प्रति अपना स्नेह व्यक्त करती है । पर उसके स्नेहको ज्ञानी जनही जान पाते हैं । जो अज्ञानी और मूर्ख होते हैं, वे गायके महत्त्वको न जाननेके कारण उसे त्याग देते हैं या उसका वध करते हैं ॥ १६ ॥

हे अग्ने ! ज्ञानसे युक्त तू हमारे घरोंका स्वामी तथा दानियोंकी सहायता करता है । तू दूरदर्शी है, अतः हमारे अन्दरकी सब बातोंको एवं भविष्यमें होनेवाली सभी चीजोंको जानता है । अतः तू हमारी प्रार्थनाओंके अन्दर भरी हुई श्रद्धा और करुणाको जान और सब देवोंको हमारी सहायताके लिए बुला ला ॥ १-२ ॥

१६८४ और्वभृगुवच्छुचि-मप्नवानवदा हुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ४ ॥
१६८५ हुवे वातस्वनं कविं पर्जन्यक्रन्द्यं सहः । अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ५ ॥
१६८६ आ सवं सवितुर्यथा भगस्येव भुजिं हुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ६ ॥
१६८७ अग्निं वो वृधन्त-मध्वराणां पुरूतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ ७ ॥
१६८८ अयं यथा न आभुवत् त्वष्टा रूपेव तक्ष्या । अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥ ८ ॥
१६८९ अयं विश्वा अभि श्रियो ऽग्निर्देवेषु पत्यते । आ वाजैरुप नो गमत् ॥ ९ ॥
१६९० विश्वेषामिह स्तुहि होतॄणां यशस्तमम् । अग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ १० ॥

अर्थ— [१६८४] (समुद्रवाससं शुचिं अग्निं) बडवानलके रूपमें समुद्रमें स्थित पवित्र अग्निको मैं (और्व भृगुवत्) और्व, भृगुके समान और (अप्नवानवत् आ हुवे) अप्नवानके समान पुकारता हूँ ॥ ४ ॥

[१६८५] (वातस्वनं कविं, पर्जन्यक्रन्द्यं) वायुके समान शब्दवान्, मेधावी, मेघके सदृश गर्जनशील, (सहः समुद्रवाससं अग्निं हुवे) सब कुछ सहन करनेवाले बलवान् और सागरमें शयन करनेवाले अग्निकी मैं प्रार्थना करता हूँ ॥ ५ ॥

[१६८६] (आ सवितुः सवं यथा) सब ओरसे देवोंके प्रेरक सूर्यके समान, (भगस्य इव भुजिं, समुद्रवाससं, अग्निं हुवे) भगके समान ऐश्वर्यके भोक्ता तेजस्वी और बडवानलके रूपमें समुद्रमें स्थित ऐसे अग्निकी मैं प्रार्थना करता हूँ ॥ ६ ॥

[१६८७] (अध्वराणां नप्त्रे, सहस्वते वृधन्तं पुरुतमं अग्निं) अहिंसक यज्ञोंका नाती, बलवान्, ज्वालाओंसे वृद्धिको प्राप्त होनेवाला, सबसे बढे पालक अग्निको (वः अच्छ) तुम सब अच्छी प्रकार उपासना करो ॥७॥

[१६८८] (तक्ष्या रूपा इव यथा, अयं त्वष्टा न आभुवत्) जैसे बढई छीलछाल कर बनाने योग्य पदार्थोंको रूप देता है, उसी प्रकार यह सबका बनानेवाला अग्नि हमें भी बनाता है। हम भी (अस्य क्रत्वा यशस्वतः) इस अग्निके प्रज्ञानसे यशस्वी हों ॥ ८ ॥

१ क्रत्वा यशस्वनः— मनुष्य अपने कर्म और परिश्रमसे यशस्वी होता है।

[१६८९] (अयं अग्निः देवेषु विश्वाः श्रियः अभिपत्यते) यह अग्नि ही देवोंके मध्यमें सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ प्राप्त करता है। अतः यह अग्नि (वाजैः नः उप आगमत्) सम्पत्तियोंके साथ हमारे यहाँ आगमन करे ॥ ९ ॥

१ अयं अग्निः देवेषु विश्वाः श्रियः अभिपत्यते— यह अग्नि देवोंमें सबसे ज्यादा सम्पत्तिशाली है।

[१६९०] हे मनुष्य! तुम, (विश्वेषां होतॄणां यशस्तमं) सम्पूर्ण होताओंमें सबसे अधिक यशस्वी, (यज्ञेषु, पूर्व्यं अग्निं इह स्तुहि) यज्ञोंमें मुख्य अग्निकी हमारे इस यज्ञमें स्तुति करो ॥ १० ॥

भावार्थ— (और्व) विशाल ख्यातिवाले (भृगु) भरण पोषण करनेवाले और (अप्नवान) आप्त सज्जनोंके समान मैं भी समुद्र, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें रहनेवाले अग्निकी प्रार्थना करता हूँ, वह हमें शक्ति देवे, ताकि हम शत्रुओंको पराभूत कर सकें ॥ १-४ ॥

सूर्यके उदय होनेके साथ ही सभी जगत् अपने अपने कामोंमें लग जाता है, अतः सूर्यको सबका प्रेरक कहा गया है, उसी प्रकार अग्निके प्रदीप्त होने पर सभी यज्ञ कर्म शुरु हो जाते हैं, अतः सूर्यके समान अग्नि लोगोंको सत्कर्म करनेके लिए प्रेरित करता है। वह घृतादिका जब भोग करता है, तब प्रदीप्त होनेपर उसका शब्द हवाके समान और मेघोंकी गडगडाहटके समान हो जाता है, तब उसकी सब प्रार्थना करते हैं ॥ ५-६ ॥

यह अग्नि यज्ञका नाती है। यज्ञके पुत्र अध्वर्यु और अध्वर्युका पुत्र यह अग्नि है, इसलिए इसे यज्ञका पौत्र कहा गया है। यह अग्नि सब पदार्थोंको उत्तम रूप देता है, इसीलिए इसे त्वष्टा कहा है, अर्थात् जैसे एक बढई लकडीको छील कर उसे उत्तम रूप देता है, उसी प्रकार यह अग्नि मनुष्योंको उत्तम रूप देता है। यह अग्नि अपने परिश्रम एवं प्रयत्नसे यशस्वी होता है, उसी प्रकार मनुष्य भी अपने कर्म या प्रयत्नसे ही यशस्वी होता है ॥ ७-८ ॥

यह अग्नि देवोंमें सबसे अधिक सम्पत्तिशाली है, इसलिए यह सबसे अधिक यशस्वी है। जो मनुष्य अपने प्रयत्नों एवं परिश्रमसे सम्पत्तिमान् बनता है, वही यशस्वी भी हो सकता है। बिना परिश्रमके सम्पत्ति और यश पाना असंभव है ॥ ९-१० ॥

१६९१ शीरं पावकशोचिषं ज्येष्ठो यो दमेष्वा । दीदाय दीर्घश्रुत्तमः ॥ ११ ॥
१६९२ तमर्वन्तं न सानसिं गृणीहि विप्र शुष्मिणम् । मित्रं न यातयज्जनम् ॥ १२ ॥
१६९३ उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ॥ १३ ॥
१६९४ यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसंदिनम् । आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥ १४ ॥
१६९५ पदं देवस्य मीळ्हुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः । भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥ १५ ॥
१६९६ अग्ने घृतस्य धीतिभिस्तेपानो देव शोचिषा । आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥ १६ ॥

अर्थ— [१६९१] (यः ज्येष्ठः दीर्घश्रुत्तमः दमेषु आ दीदाय) जो देवोंमें सबसे बडा, विद्वान् अग्नि घरोंमें सब ओरसे प्रकाशित होता है, उस (शीरं पावकशोचिषं) सर्वव्यापक, पवित्र दीप्तिवाले अग्निकी स्तुति करो ॥ ११ ॥

[१६९२] हे (विप्र) मेधाविन् ! तू (अर्वन्तं न सानसिं) अश्वकी तरह सेवा करने योग्य, (शुष्मिणं, मित्रं न यातयज्जनं) अत्यन्त बलसे युक्त, मित्रकी तरह सुखप्रद, शत्रुहन्ता ((तं गृणीहि) उस अग्निकीही स्तुति कर ॥ १२ ॥

[१६९३] हे अग्ने ! (हविष्कृतः गिरः जामयः देदिशतीः) यज्ञशील पुरुषकी स्तुतियाँ, भगिनियोंके समान तेरे गुणोंका वर्णन करती हुई (त्वा उप) तुझको प्राप्त करती हैं । और (वायोः अनीके अस्थिरन्) वायुके समीपमें तुझको अच्छी प्रकारसे बढाती हुई स्थापित करती हैं ॥ १३ ॥

[१६९४] (यस्य त्रिधातु अवृतं असन्दिनं, बर्हिः तस्थौ) जिस अग्निके लोक खुले हुए और अबद्ध हैं, उनमें पूजनीय अग्नि रहता है, और उसके साथ (आपः चित् पदं नि दध) जल भी स्थिरपद प्राप्त करता है ॥ १४ ॥

[१६९५] (मीळ्हुषः देवस्य पदं अनाधृष्टाभिः ऊतिभिः) सबकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, द्योतमान अग्निका स्थान, शत्रुओंसे पराजित न होनेवाली रक्षाओंसे युक्त है । और (उपदृक् सूर्य इव भद्रा) आँखके समीप होनेपर भी उसका प्रकाश सूर्यके समान कल्याणकारी है ॥ १५ ॥

१ उपदृक् सूर्य इव भद्रा— इस अग्निका प्रकाश भी सूर्यके समान आंखोंके लिए कल्याणकारी है ।

[१६९६] हे (देव अग्ने) तेजस्वी अग्ने ! (घृतस्य धीतिभिः तेपानः शोचिषा) घृतकी दीप्तियों और तपते हुये ज्वालासे (देवान् आ वक्षि च यक्षि) देवोंको बुला और उनका पूजन कर ॥ १६ ॥

भावार्थ— यह अग्नि सबसे बडा, अत्यन्त विद्वान् और सब घरोंमें पूजा जाता है । यह बलसे युक्त तथा मित्रकी तरह सुखदायक और शत्रुहन्ता है । इसी प्रकार जो गुणोंमें सबसे बडा और अत्यन्त विद्वान् होता है, उसीकी सब घरोंमें पूजा होती है ॥ ११–१२ ॥

पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यु ये तीनों लोक इस अग्निके हैं । ये तीनों लोक खुले हुए और स्वतंत्र हैं, इन तीनों लोकोंमें अग्नि रहता है । पर अन्तरिक्षमें इस अग्निके साथ साथ पानी भी रहता है । मेघोंमें पानीके साथ साथ बिजलीके रूपमें अग्नि भी रहती है ॥ १३–१४ ॥

इस अग्निके सब स्थान अच्छी तरह सुरक्षित हैं । इस अग्निका प्रकाश आंखोंके लिए बडा लाभदायक है । जिस प्रकार रोज सूर्य दर्शन करनेसे आंखोंकी रोशनी बढती है, उसी प्रकार अग्निको देखनेसे भी आंखोंकी ज्योति बढती है । इसकी ज्वालाओंसे सभी इन्द्रियें बलवान् होती हैं ॥ १५–१६ ॥

१६९७ तं त्वाजनन्त मातरः कविं देवासो अङ्गिरः । हव्यवाहममर्त्यम् ॥ १७ ॥
१६९८ प्रचेतसं त्वा कवेऽग्ने दूतं वरेण्यम् । हव्यवाहं नि षेदिरे ॥ १८ ॥
१६९९ नहि मे अस्त्यघ्न्या न स्वधितिर्वनन्वति । अथैतादृग्भरामि ते ॥ १९ ॥
१७०० यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि । ता जुषस्व यविष्ठ्य ॥ २० ॥
१७०१ यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति । सर्वं तदस्तु ते घृतम् ॥ २१ ॥
१७०२ अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः । अग्निमीधे विवस्वभिः ॥ २२ ॥

अर्थ—[१६९७] हे (अङ्गिरः) अंगरसके ज्ञाता अग्ने ! (कविं अमर्त्यं, हव्यवाहं तं त्वा) ज्ञानी मरणरहित, हव्यको ढोनेवाले ऐसे उस प्रसिद्ध तुझको (देवासः मातरः अजनन्त) विद्वान् लोगोंने माताकी तरह उत्पन्न किया ॥ १७ ॥

[१६९८] हे (कवे अग्ने) मेधावी अग्ने ! (प्रचेतसं, वरेण्यं, दूतं, हव्यवाहं त्वा) उत्तम ज्ञानवाले, वरण करने योग्य श्रेष्ठ, देवोंके दूत, हविको ढोनेवाले ऐसे तुझको देवगण (नि षेदिरे) आदरपूर्वक बैठाते हैं ॥ १८ ॥

[१६९९] हे अग्ने ! (मे अघ्न्या नहि अस्ति) मेरे पास दूध देनेवाली गो नहीं है, और (न स्वधितिः वनन्वति) न समिधा काटनेवाली कुल्हाडी ही है, (अथ एतादृक् ते भरामि) तो भी मंगलके लिये इस प्रकार ही तेरा भरणपोषण करता हूँ ॥ १९ ॥

[१७००] हे (यविष्ठ्य अग्ने) नित्य तरुण अग्ने ! (यत् ते कानि कानि चित् दारूणि आ दध्मसि) जो हम तेरे लिये कई प्रकारकी नाना समिधायें प्रदान करते हैं, तू (ता जुषस्व) उनको स्वीकार कर ॥ २० ॥

[१७०१] हे अग्ने ! (यत् उपजिह्विका अत्ति) जिन समिधाओंको तेरी ज्वाला जला डालती हैं, अथवा (यत् वम्रः अति सर्पति) जिन समिधाओं पर तेरी ज्वालायें आक्रमण करती हैं (तत् सर्वं ते घृतं अस्तु) वे सभी काष्ट तेरे लिए घृतके समान हों ॥ २१ ॥

[१७०२] (अग्निं इन्धानः मनसा धियं सचेत) अग्निको काष्ठसे प्रज्वलित करनेवाला पुरुष श्रद्धायुक्त मनसे कर्म करे । तब (विवस्वभिः अग्निं ईधे) ऋत्विक् लोगोंके द्वारा अग्निको प्रज्वलित करावे ॥ २२ ॥

१ अग्निं इन्धानः मनसा धियं सचेत— अग्निको समिधाओंसे प्रज्वलित करनेवाला पुरुष श्रद्धायुक्त मनसे कर्म करे ।

भावार्थ— जिस प्रकार माता बालकको उत्पन्न करती है, उसी प्रकार देव अग्निको उत्पन्न करते हैं, और उत्पन्न करनेके बाद उस ज्ञानी और सेवा किए जाने योग्य अग्निको आदरपूर्वक अपने घरमें स्थान देते हैं और उसका सम्मान करते हैं ॥ १७-१८ ॥

एक निर्धन उपासकके ये उद्गार हैं, वह कहता है, कि हे अग्ने ! न मेरे पास गायें हैं, ताकि तुम्हें मैं घृत दूध आदि दे सकूं और न मेरे पास कुल्हाडी ही है ताकि समिधायें काटकर तुझे अर्पण कर सकूं । उस पर भी मैं परिश्रमसे किसी प्रकार समिधायें इकठ्ठा कर तुझे प्रदान करता और तुझे प्रज्वलित करता हूँ, अतः तू उनका तिरस्कार न करके प्रेमपूर्वक स्वीकार कर, यही मेरी प्रार्थना है ॥ १९-२० ॥

मनुष्य अग्निकी जब भी उपासना करे, हमेशा श्रद्धायुक्त मनसे ही उसकी उपासना करे । या प्रथम श्रद्धासे युक्त मन वाला हो और फिर यज्ञका प्रारंभ करे । प्रारंभ करनेके बाद उस अग्निमें श्रद्धा पूर्वक आहुति प्रदान करे ॥ २१-२२ ॥

[१०३]

(ऋषिः- सोभरिः काण्वः । देवताः- अग्निः; १४ अग्नामरुतः । छन्दः- बृहती; ५ विराड्रूपा; ७, ९, ११, १३ सतोबृहती; ८, १२ ककुप; १० हसीयसी; १४ अनुष्टुप् ।)

१७०३ अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः ।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्त नो गिरः ॥ १ ॥

१७०४ प्र दैवोदासो अग्निर्देवाँ अच्छा न मज्मना ।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य सानवि ॥ २ ॥

१७०५ यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः ।
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाऽग्निं धीभिः सपर्यत ॥ ३ ॥

१७०६ प्र यं राये निनीषसि मर्तो यस्ते वसो दाशत् ।
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥ ४ ॥

---

[१०३]

अर्थ— [१७०३] (यस्मिन् व्रतानि आदधुः) जिस अग्निमें लोग अपने कर्मोंको स्थापित करते हैं, वह (गातुवित्तमः अदर्शि) इस उत्तम मार्गोंको उत्तमतासे जाननेवाला अग्नि दीखने लग गया है (आर्यस्य वर्धनं सुजातं) उस श्रेष्ठ जनोंको बढानेवाले और अच्छी प्रकारसे प्रदीप्त हुए (अग्निं नः गिरः उपो नक्षन्तः) अग्निको हमारी वाणियाँ अच्छी प्रकार प्राप्त हों ॥ १ ॥

[१७०४] (दैवोदासः अग्निः देवान्) तेज वा प्रकाश देनेवाला अग्नि अपनी किरणोंको (मातरं पृथिवीं) माता पृथ्वीके प्रति (मज्मना न प्र अच्छ विवावृते) बडे वेगके साथ सीधे भेजता है, और स्वयं (नाकस्य सानवि तस्थौ) द्युलोककी समुन्नत चोटीपर विराजमान हो जाता है ॥ २ ॥

१ आर्यस्य वर्धनः— यह अग्नि श्रेष्ठ आदमियोंको ही बढाता है ।

[१७०५] (यस्मात् चर्कृत्यानि कृण्वतः कृष्टयः रेजन्ते) जिस कारणसे शुभ कर्म करनेवालेसे दूसरे उत्तम कर्म न करनेवाले भयसे काँपते हैं । इसलिये हे मनुष्यो ! तुम सब भी (सहस्रसां अग्निं) सहस्रों प्रकारके धनोंको देनेवाले अग्निकी (मेधसातौ) यज्ञमें (त्मना धीभिः सपर्यत) अपने स्तोत्रोंसे सेवा करो जिससे तुम्हें भी किसीसे भयभीत होकर काँपना न पडे ॥ ३ ॥

[१७०६] हे (वसो अग्ने) सबको निवास देनेवाले अग्ने! तू (यं राये प्र निनीषसि) जिसको ऐश्वर्य प्राप्तिके लिये सन्मार्गपर प्रेरित करनेकी इच्छा करता है, और (यः मर्तः ते दाशत्) जो मनुष्य प्रेरित होकर तुमको हव्यादि पदार्थ प्रदान करता है (सः उक्थशंसिनं सहस्रपोषिणं वीरं धत्ते) वह मनुष्य अपने लिये उत्तम वेदवचनोंके वक्ता, सहस्रोंके पोषक वीर पुत्रको धारण करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— जब अग्निरूपी सूर्य स्वयं द्युलोकके उच्चतम भागपर स्थित होकर अपनी तेजस्वी किरणोंको पृथ्वीपर भेजता है, तब सारे मार्ग प्रकाशित हो जाते हैं । उसी समय ज्ञानी जन अपने यज्ञादिक कर्म करने लगते हैं और उनकी स्तुति रूप वाणियां सूर्यके पास पहुंचने लगती हैं । १-२ ॥

यह अग्नि जिस मनुष्य उत्तम मार्गमें चलनेकी प्रेरणा देता है और जो मनुष्य इससे प्रेरित होकर अग्निको हवि आदि प्रदान करता है, वह वेद पढनेवाले तथा हजारोंके पोषण करनेवाले वीर पुत्रको प्राप्त करता है और तब उस उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यसे दूसरे बुरे कर्म करनेवाले मनुष्य डरते हैं । अतः मनुष्योंको चाहिए कि वे भी उस दानी अग्निकी सेवा किया करें ॥ ३-४ ॥

×

१७०७ स इळ्हे चिदुभि तृणत्ति वाजमर्वता स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
त्वे देवत्रा सदा पुरूवसो विश्वा वामानि धीमहि ॥ ५ ॥
१७०८ यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्यग्नये ॥ ६ ॥
१७०९ अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ७ ॥
१७१० प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।
उपस्तुतासो अग्नये ॥ ८ ॥
१७११ आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः ।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्नवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥ ९ ॥

अर्थ— [१७०७] हे (पुरूवसो) बहुतसे धनोंके स्वामी अग्ने ! जो मनुष्य तेरी स्तुति करता है, (सः इळ्हे चित् वाजं अर्वता अभि तृणत्ति) वह दृढ शत्रुके मजबूत नगरमें भी रखे हुए अन्नको अपने अश्वसे नष्ट कर देता है । और (सः अक्षिति श्रवः धत्ते) वह अक्षय यश धारण करता है । अग्ने ! (त्वे देवत्रा विश्वा वामानि सदा धीमहि) तुझ परम दानीके आश्रयमें रहकर हम भी सम्पूर्ण उत्तम धनोंको सर्वदा प्राप्त करें ॥ ५ ॥

[१७०८] (होता, मन्द्रः यः विश्वा वसु जनानां दयते) होता मंगलमय जो अग्नि सम्पूर्ण धनोंको मनुष्योंके लिये प्रदान करता है । ऐसे (अस्मै अग्नये) उस अग्निके लिये (मधोः न) मधुर पदार्थोंसे पूर्ण पात्रोंके समान (प्रथमानि स्तोमाः प्रयन्ति) सर्व श्रेष्ठ उत्तम स्तुति मन्त्र हमारे हृदयसे बाहर आते हैं ॥ ६ ॥

[१७०९] हे (दस्म विश्पते) दर्शनीय समस्त प्रजाओंके पालक अग्ने ! (सुदानवः देवयवः रथ्यं अश्वं न गीर्भिः मर्मृज्यन्ते) उत्तम दानशील, दिव्यगुणोंकी इच्छा करनेवाले मनुष्य रथ योग्य उत्तम अश्वोंको जिस प्रकार शुद्ध करते हैं उसी प्रकार तुझे स्तुतियोंसे शुद्ध करते है, तू हम सबके (उभे तोके तनये मघोनां राधः पर्षि) दोनों पुत्र पौत्रादिको धनवानोंका धन प्रदान कर ॥ ७ ॥

[१७१०] हे (उपस्तुतासः) स्तोताओ ! तुम लोग (मंहिष्ठाय ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे अग्नये) अत्यधिक पूजनीय, सत्य ज्ञानमय, महान, शुद्धप्रकाश स्वरूप अग्निके लिये (प्र गायत) उत्तम स्तोत्रोंका गान करो ॥ ८ ॥

[१७११] (मघवा द्युम्नी) ऐश्वर्ययुक्त और तेजस्वी अग्नि (आहुतः समिद्धः वीरवद्यशः आ वंसते) आदरपूर्वक बुलाये जानेपर और प्रदीप्त किए जानेपर पुत्रोंसे युक्त अन्न और यश मनुष्यको सब प्रकारसे प्रदान करता है। (अस्य नवीयसी सुमतिः वाजेभिः न कुवित् अच्छ आगमत्) इस अग्निकी बहुत उत्तम और स्तुतिके योग्य बुद्धि अन्नोंके साथ हमें बार बार अच्छी प्रकार प्राप्त हो ॥ ९ ॥

भावार्थ— इस अग्निकी जो स्तुति करता है, वह शत्रुके मजबूत किलेमें भी रखे हुए अन्नको अपने घोडोंके द्वारा आक्रमण करके अपने अधिकारमें कर लेता है और इस प्रकार वह अक्षय यश प्राप्त करता है। उसके साथ ही वह सम्पूर्ण उत्तम धनोंको प्राप्त करता है । अतः जिस प्रकार पात्रके भर जानेपर उसमेंसे मीठा पदार्थ बहने लगता है, उसी प्रकार भक्त जनोंके हृदयसे उस अग्निके लिए मधुर मधुर स्तोत्र निकलने लगते हैं ॥ ५-६ ॥

जिस प्रकार लोग उत्तम अश्वोंको शुद्ध करते हैं उसी प्रकार इस अग्निको शुद्ध करते हैं । तब सत्यज्ञानमय यह अग्नि अत्यन्त पूजित होकर उपासकोंको हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ ७-८ ॥

१७१२ प्रेष्ठमु प्रियाणां स्तुह्यासावातिथिम् । अग्निं रथानां यमम् ॥ १० ॥
१७१३ उदिता यो निदिता वेदिता वस्वा यज्ञियो ववर्तति ।
दुष्टरा यस्य प्रवणे नोर्मयो धिया वाजं सिषासतः ॥ ११ ॥
१७१४ मा नो हृणीतामतिथिर्वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः । यः सुहोता स्वध्वरः ॥ १२ ॥
१७१५ मो ते रिषन्ये अच्छोक्तिभिर्वसो ऽग्ने केभिश्चिदेवैः ।
कीरिश्चिद्धि त्वामीट्टे दूत्याय रातहव्यः स्वध्वरः ॥ १३ ॥
१७१६ आग्ने याहि मरुत्सखा रुद्रेभिः सोमपीतये ।
सोभर्या उप सुष्टुतिं मादयस्व स्वर्णरे ॥ १४ ॥

॥ इत्यष्टमं मण्डलं समाप्तम् ॥

अर्थ— [१७१२] हे (आसाव) स्तोता लोगो ! (प्रियाणां प्रेष्ठं अतिथिं, रथानां यमं अग्निं) प्रियोंमें सबसे प्रिय और सबसे अधिक पूज्य सब चलने फिरनेवाले ग्रहोंके नियामक अग्निकी (उ स्तुहि) निश्चयसे स्तुति करो ॥ १० ॥

[१७१३] (धिया वाजं सिषासतः यस्य) अपने परिश्रमसे अन्नको जीतनेकी इच्छावाले जिस अग्रणीकी ज्वालाओंको (प्रवणे ऊर्मयः न) बहुत ऊंची उठनेवाली समुद्रकी तरंगोंकी तरह (दुस्तराः) पार करना कठिन है, तथा (यः वेदिता यज्ञियः) जो ज्ञानी और पूजनीय अग्नि (उदिता निदिता वसु आ ववर्तति) छिपे हुए और प्रकट धनोंको प्रदान करता है, उसकी स्तुति करो ॥ ११ ॥

[१७१४] (यः अग्निः) जो अग्नि (सुहोता, सु अध्वरः, वसुः, पुरु प्रशस्तः) अच्छी प्रकारसे देवोंको बुलानेवाला, उत्तम हिंसारहित यज्ञका करनेवाला, अभ्यागतके समान प्रिय, सबको बसानेवाला और बहुत ही स्तुति करने योग्य सर्वश्रेष्ठ है । इस प्रकारके सद्‌गुणोंसे युक्त (एषः मा हृणीतां नः) यह अग्नि किसीसे भी न रोके जाते हुये हमारी कामना पूर्ण करे ॥ १२ ॥

[१७१५] हे (वसो अग्ने) सबको बसानेवाले अग्ने ! (ये अच्छोक्तिभिः केभिः चित् एवैः हि ते मो रिषन्) जो मनुष्य उत्तम वचनों और किसी भी प्रकारके उत्तम साधनोंसे तेरी उपासना करता है वह कभी भी पीडित नहीं होता, (रातहव्यः सु अध्वरः कीरिः चित् दूत्याय त्वां ईट्टे) हवि देने और यज्ञ करनेवाला स्तोता दूतका कार्य करनेवाले तेरी उपासना करता है ॥ १३ ॥

[१७१६] हे (अग्ने) अग्ने ! (मरुत्सखा) मरुतोंका मित्र तू (स्वर्णरे) यज्ञमें (रुद्रेभिः) रुद्रोंके साथ (सोमपीतये आ याहि) सोमको पीनेके लिए आ, तथा (सोभर्याः सुस्तुतिं उप मादयस्व) सोभरि ऋषिकी स्तुतिमें आनन्दको प्राप्त कर ॥ १४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि प्रियोंमें भी अत्यन्त प्रिय और पूज्य तथा सम्पूर्ण विश्वका नियामक है । इस अग्निकी यदि सच्चे हृदयसे प्रार्थना की जाए, तो वह उत्तम बुद्धि और अनेक तरहके ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ ९-१० ॥

जो अत्यधिक परिश्रम करके धन जीतता है, उसीकी पूजा होती है । उसके तेजको कोई पार नहीं कर सकता और वही सब तरहके धनोंको प्राप्त करता है ॥ ११ ॥

यह अग्नि उत्तम रीतिसे देवोंको बुलानेवाला, उत्तम रीतिसे यज्ञ करनेवाला, पूज्य और सभीके द्वारा प्रशंसित होता है । जो उसकी उत्तम वचनों और अन्य साधनोंसे स्तुति करता है वह हर तरहके सुख प्राप्त करता है ॥ १२-१३॥

अग्नि मरुतोंका मित्र और हितकारी है । वह शत्रुओंको रुलानेवाले वीरोंके साथ यज्ञमें आए, और सबका भरण-पोषण करनेवाले ऋषिके यज्ञमें उसकी स्तुतियोंको सुनकर आनंदको प्राप्त हो ॥ १४ ॥

" अष्टम मंडल समाप्त "



ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

अष्टम मण्डल

सुभाषित

१ अन्यत् चित् मा शंसत, मा रिषण्यत- (१) मनुष्यो ! परमात्माको छोड़कर और किसी देवकी स्तुति मत करो और दुःखी मत होओ।

२ इमे जना ऊतये नाना हवन्ते- (२) ये सभी प्राणी अपनी रक्षाके लिए इन्द्रको अनेक तरहसे बुलाते हैं।

३ विप्राश्चतः अर्यः जनानां विपः ततरन्त (४) विद्वान्, श्रेष्ठ और प्रजाओंका पालन करनेवाले भक्त प्रभुकी कृपासे संकटोंसे पार हो जाते हैं।

४ शतामघ त्वा महे शुल्काय चन न परा देयां- (५) हे सैंकडों तरहके ऐश्वर्यशाली प्रभो ! मैं तुम्हें बहुत अधिक धनके लिए भी न बेचूं।

५ मे पितुः वस्यान् असि, मे माता च समा- (६) हे प्रभो ! तू मेरे पिताकी अपेक्षा श्रेष्ठ है, पर मेरी माताकी तुलनामें तू उसके समान है।

६ सबर्दुघा सुदुघा अरपा अलंकृता- (१०) मनुष्योंकी वाणी कामनाओंको दुहनेवाली, उत्तम फल देनेवाली, गुणोंसे युक्त और उत्तम अक्षरोंसे युक्त हो।

७ यः अभिश्रिषः ऋतं चित् जत्रुभ्यः आतृदः पुरा संधि संधाता- (१२) जिस इन्द्रने पहिले भी गर्दनसे खूनकी धारा बहनेसे पूर्वही उस घावकी सन्धियोंको जोड दिया।

८ निष्ट्या इव, अरणाः इव, प्रजहितानि वनानि न मा भूम- (१३) प्रभुकी कृपासे हम नीच मनुष्योंकी तरह आनन्दसे रहितकी तरह तथा शाखा आदिसे रहित ठूंठ वृक्षोंकी तरह न हों।

९ अनाशवः अनुग्रासः अमन्महि- (१४) शीघ्रता न करते हुए तथा उग्र न होते हुए हम प्रभुकी उपासना करें।

१० मम जाता पृण- (१८) हे प्रभो ! मुझसे उत्पन्न मेरे पुत्रादिकोंको तू पूर्ण कर, उन्हें स्वस्थ एवं सुखी कर।

११ विश्वया धिया हिन्वानं पीपयत्- (१९) अपनी संपूर्ण बुद्धिसे स्तुति करनेवालेको प्रभु हर तरहसे पूर्ण करता है।

१२ सदा याचन् त्वां मा चुक्रुधं- (२०) तुझसे सदा कुछ न कुछ मांगते हुए तुझे क्रुद्ध न कर दूं।

१३ ईशानं कः न याचिषत्- (२०) अपने प्रभुसे कौन नहीं मांगता।

१४ नः विश्वेषां तरुतारं मदच्युतं ददाति- (२१) वह इन्द्र हमें सभी शत्रुओंका विनाश करनेवाले तथा शत्रुओंके अभिमानको क्षीण करनेवाले पुत्रको दे।

१५ दंसना महान् व्रतैः उग्रः- (२७) वह इन्द्र अपने उत्तम कर्मोंके कारण सबसे महान् तथा अपने व्रतोंके कारण पराक्रमी है।

१६ भाः अनुचरत्, हव्यः भुवत्- (२८) जो प्रकाशमार्गका अनुसरण करता है, वह प्रशंसनीय होता है।

१७ स्तोता रेवान् स्यात्- (४७) स्तुति करनेवाला धनवान् हो।

१८ नः पीयत्नवे शर्धते मा परा दाः- (४९) हे प्रभो ! हमें हिंसकों और अत्याचारियोंके हाथोंमें मत सौंप।

१९ त्वावन्तः सखायः कण्वाः- (५०) हे प्रभो ! तेरे मित्र ज्ञानी ही होते हैं।

२० नविष्ठो अन्यत् न ग्र ई आ पपन- (५१) स्तुति या उपासनाके समय दूसरा कुछ ना कम न बकें।

२१ देवाः सुन्वन्तं इच्छन्ति, स्वप्नाय न स्पृहयन्ति- (५२) देवगण सदा यज्ञ करनेवालेके पास ही जाना चाहते हैं, आलसीके पास नहीं।

२२ अतन्द्राः प्रमादं यन्ति- (५२) आलस्य न करनेवाले देव आलसीका परित्याग कर देते हैं।

२३ इन्द्रः महीभिः शचीभिः महान्- (६६) इन्द्र अपनी बड़ी बड़ी शक्तियोंके कारण महान् है।

२४ विश्वाः चर्षणयः, च्यौत्ना अपांसि च यस्मिन्- (६७) सारी प्रजायें, सारी शक्तियां और विजय इसी इन्द्रमें स्थित हैं।

२५ पदेभ्यः ऋते चित् शचीवान् इन्द्रः नृभ्यः गाः दात्- (७२) पैर आदि अवयवोंके न होने पर भी शक्तिशाली इन्द्रने मनुष्योंके लिए वाणियां प्रदान की।

२६ वृधे बोधि- (७७) मनुष्य अपनी उन्नतिके लिए सदा जागता रहे।

२७ वयं सुमतौ वाजिनः भूयाम- (७८) हम उत्तम बुद्धिमें रहकर बलशाली बनें।

२८ अभिमातये नः मा स्तः- (७८) हे इन्द्र ! तू शत्रुका हित करनेके लिए हमें मत मार।

२९ इन्द्रः शवः महा रोदसी पप्रथत्- (८२) इन्द्रने अपने बलकी महिमासे द्युलोक और पृथिवीलोकको विस्तृत किया।

३० इन्द्रः सूर्यं अरोचयत्- (८२) इन्द्रने सूर्यको प्रकाशित किया।

३१ विश्वा भुवनानि इन्द्रे ह येमिरे- (८२) सारे भुवन इन्द्रमें ही नियंत्रित होते हैं।

३२ ऋषिः विप्रः ओहते- (९०) मंत्र द्रष्टा ज्ञानी प्रभुकी कृपा प्राप्त करता है।

३३ महां अहिं अन्तरिक्षात् नि अधमः, पौंस्ये कृते अग्नयः नि रुरुचुः, सूर्यः निः- (९६) जब इन्द्रने महान् अहि असुरको अन्तरिक्षसे नीचे गिराकर अपना पराक्रम प्रकट किया, तब अग्नियां प्रज्वलित हुईं, तथा सूर्य प्रकट हुआ।

३४ आत्मा पितुः तनूः- (१००) आत्मा अपने पिता परमात्माका सच्चा पुत्र है।

३५ यः नमः उक्तिभिः दाशनोति सहस्रेण यविपुत्रा इव सचते प्रावर्ग पुत्रं कृणुते- (१०६) जो नम्र होकर उत्तम वचनोंके द्वारा तुझे हवि देता है, वह हजारों शस्त्रोंसे मानों युक्त होता है और वह शत्रुनाशी पुत्रको प्राप्त करता है।

३६ उग्रस्य सख्ये मा भेम, मा श्रमिष्म- (१०७) हम इस वीर इन्द्रकी मित्रतामें रहकर किसीसे भी न डरें और न दुःखी हों।

३७ ते सखा चन्द्रः सभां उप याति- (१०९) इस इन्द्रका मित्र चन्द्रके समान तेजस्वी और आनंद देनेवाला होकर सभामें जाता है।

३८ यत्र सोमस्य तृम्पसि, सः दाशुरिः जनः स्वयं चित् मन्यते- (११२) जहां यह इन्द्र सोम पीकर तृप्त होता है, वह दानशील व्यक्ति स्वयंको अत्यन्त श्रेष्ठ मानता है।

३९ जनानां ब्रह्म सु नि विष्टं- (१३४) हे अश्विनौ ! तुम दोनोंने जनताके ज्ञानको सुरक्षित रखा।

४० नः पश्वे तोकाय शं गवे इषः पीवरीः- (१४१) हमारे पशु, पुत्रादि तथा गायोंके लिए अन्न सामग्रियां पुष्टि कारक हों।

४१ अपिरिप्ताय कण्वाय हर्म्ये ऊती- (१४४) ज्ञानी होने पर भी दुःखी रहनेवाले मनुष्यको ये अश्विदेव ऊंचे महलमें संरक्षण देते हैं।

४२ येन इमे वेधसः यन्ति पना पथा माकिः गात्- (१६०) जिस मार्गसे ये ज्ञानी जाते हैं, उस मार्गसे दूसरे मूर्खजन नहीं जा सकते।

४३ भूरिदावतरः सूरिः अन्यः जनः न- (१६०) इन ज्ञानियोंकी अपेक्षा और अधिक दान देनेवाला तथा विद्वान् और कोई मनुष्य नहीं है।

४४ यः इन्द्रः ओजसा वृष्टिमान् पर्जन्यः इव महान्- (१६१) जो इन्द्र अपने बलके कारण वर्षा

करनेवाले बादलके समान महान् है ।

४५ ऋतस्य साधनं इन्द्रः- (१६३) इन्द्र यज्ञको सिद्ध करनेवाला है ।

४६ अस्य मन्यवे विश्वाः कृष्टयः सं नमन्ते- (१६४) इस इन्द्रके क्रोधित हो जाने पर सभी मनुष्य उसे प्रणाम करते हैं ।

४७ इन्द्रः रोदसी चर्म इव सं अवर्तयत्- (१६५) इन्द्र अपने बलसे द्यु और पृथ्वीको चमडेके समान लपेटता और फैलाता है ।

४८ ऋतस्य पितुः मेधां अहं जग्रभ, सूर्यः इव अजनि- (१७०) यज्ञ तथा सत्यके पालक इन्द्रकी बुद्धि प्राप्त करनेसे मनुष्य सूर्यके समान तेजस्वी हो जाता है ।

४९ मन्मना गिरः शुंभामि- (१७१) परमात्माकी स्तुतिसे मैं अपनी वाणीको उत्तम और सुशोभित करता हूँ ।

५० द्यावः अन्तरिक्षाणि भूमयः इन्द्रं न विव्यचन्न- (१७५) द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वीलोक इस इन्द्रको घेर नहीं सकते, इतना शक्तिशाली वह इन्द्र है ।

५१ इमाः पृश्नयः आशिरं घृतं दुहत- (१७९) इन्द्रके पास अनेक गायें हैं, जो घी दूध देती हैं ।

५२ ऋतस्य पिप्युषीः- (१७९) गायें यज्ञको बढाती हैं ।

५३ उपाके चक्षसं गोष्ठं अभितत्निषे- (१८५) वह इन्द्र समीपके गोष्ठको गायोंसे भरकर विस्तृत करता है ।

५४ महां अपारः ओजसा क्षितीः प्र राजसि- (१८६) यह महान् इन्द्र अपने अनन्त बलसे सब मनुष्यों पर शासन करता है ।

५५ उरुज्रयसं विशः ऊतये उपब्रुवत- (१८७) अधिक बलवान् वीरको प्रजायें अपने संरक्षणके लिए बुलाती हैं ।

५६ गिरीणां उपह्वरे नदीनां संगमे धिया विप्रः अजायत- (१८८) पहाडोंकी गुफामें तथा नदियोंके संगम पर मनुष्य बुद्धिको बढाकर ज्ञानी बनता है ।

५७ विश्वे कण्वासः ते मतिं पौंस्यं वृष्ण्यं वर्धन्ति- (१९१) सभी ज्ञानी जन तेरी बुद्धि, बल और वीर्यको बढाते हैं ।

५८ मतिः इन्द्रं वनन्वती- (१९४) सारी स्तुतियां उसी एक परमात्माको ही प्राप्त होती हैं ।

५९ उक्थानि अनुत्त मन्युं अजरं वावृधुः- (१९५) स्तोत्र उत्साहसे युक्त और जरा रहित वीरका सामर्थ्य बढाते हैं ।

६० वाज सातये त्वां हवन्ते- (१९७) सभी मनुष्य अन्न प्राप्तिके लिए तेरी प्रार्थना करते हैं । परमात्माकी प्रार्थनासे धन तथा अन्नकी प्राप्ति होती है ।

६१ उभे रोदसी अनु- (१९७) दोनों द्यावापृथिवी इन्द्रके अनुकूल होकर ही चलते हैं ।

६२ एकः ओजसा ईशानः- (२०१) वह अकेले ही अपने बलसे सब जगत् पर शासन करता है ।

६३ वः यामाय गिरिः सिन्धवः नि येमिरे- (२११) इन मरुतोंकी प्रगतिसे डरकर पर्वत और नदियां उनके शासनमें रहती हैं ।

६४ सूर्याय यातवे रश्मिं पंथां ओजसा सृजन्ति- (२१६) सूर्यके जानेके लिए किरणरूपी मार्गको ये मरुत अपनी शक्तिसे बना देते हैं ।

६५ ते भानुभिः वितस्थिरे- (२१६) वे तेजसे संसारको व्याप्त कर देते हैं ।

६६ मर्त्यः अदाभ्यस्य सुम्नं भिक्षेत- (२२१) मनुष्य किसीसे भी न दबाये जानेवाले प्रभुसे ही उत्तम सुखकी याचना करे ।

६७ पृश्निमातरः स्वानेभिः उत् ईरते- (२२५) भूमिको माता माननेवाले ये मरुत् अपने ओजस्वी भाषणोंके कारण ही उन्नति करते हैं ।

६८ त्ये महतीः अपः, क्षोणीः सूर्यं सं उ दधुः- (२३०) उन वीर मरुतोंने बहुत सा जल, पृथ्वी और सूर्यको धारण किया ।

६९ मयोभुवा शंभुवा- (२६३) दोनों अश्विदेव सुखदायक तथा शान्तिदायक हैं ।

७० गुहा त्रीणि पदानि परः आविः सन्ति- (२६७) अश्विदेवोंके गुहामें रखे हुए तीन पद परले स्थानमें प्रकट हुए हैं ।

७१ पृथु अवृकं छर्दिः प्र यच्छतं- (२६८) हे अश्विदेवो ! तुम हमें विस्तीर्ण और भेडिये जैसे क्रोधी लोगोंसे रहित घर दो ।

७२ अयं वत्सः मतिभिः न विन्धते- (२७१) यह ज्ञानी भी अपनी बुद्धियोंसे इन अश्विनी देवोंके सामर्थ्यका पार नहीं पा सकता ।

७३ अश्विनोः तत् अवः श्रेष्ठं यत् पृत्सु तुर्वणे सहः- (२८०) अश्विदेवोंका यह संरक्षण श्रेष्ठ है, जो युद्धोंमें शत्रुवध करनेमें पूर्ण क्षमता रखता है ।

७४ मर्त्येभ्यः मतिं वि आवः- (२८१) हे उषे ! मानवोंकी बुद्धिको अन्धकारसे हटाकर प्रकाशयुक्त कर ।

७५ असुरे सूरयः अध्वरस्य यज्ञस्य प्रचेतसा-(२९२) अविद्वानोंमें विद्वान् बनकर कार्य करनेवाले अश्विदेव हिंसारहित यज्ञके अच्छे ज्ञाता हैं।

७६ येन अत्रिणः नि हंसि तं ईमहे- (३०५) हे इन्द्र ! जिस बलसे तूने शत्रुओंको मारा, उस बलको हम मांगते हैं।

७७ ऋतस्य पंथां यातवे तं ईमहे- (३०७) यज्ञ सत्यके मार्ग पर जानेके लिए सामर्थ्यको हम प्राप्त करते हैं।

७८ पूतं स्तोमं अभिष्टये- (३०८) पवित्र अर्थात् शुद्ध मनसे की गई स्तुतिसेही इच्छित पदार्थकी प्राप्ति हो सकती है।

७९ विश्वाभिः ऊतिभिः ववक्षिथ- (३०९) इन्द्र अपने भक्तका हर तरहसे संरक्षण करता है।

८० देवः सखित्वनाय मामहे- (३१०) देव मित्रताके लिए धन देता है।

८१ इन्द्रस्य स्तोमैः वावृधे- (३१५) मनुष्य इन्द्रकी स्तुति करके बढता है। परमात्माकी स्तुतिसे मनुष्यकी उन्नति होती है।

८२ मित्रस्य सनिः- (३१६) मित्रकी सहायता करनी चाहिए।

८३ अदितिः स्वराजे ऊतये ऋतस्य पुरु प्रशस्तं स्तोमं जीजनत्- (३१८) अखण्डनीय स्तोताने स्वराज्यके उद्देश्यसे अपने संरक्षणके लिए प्रशंसनीय स्तोत्र बनाये।

८४ विश्वा वसूनि दाशुषे वि आनशुः- (३२५) इन्द्रके संपूर्ण धन दान देनेवालेको प्राप्त होते हैं।

८५ महिना महान्तं अर्कैः प्रणोनुमः- (३२७) अपने बलसे बलशाली वीरका हम सत्कार करते हैं। बलके कारण सत्कार होता है।

८६ वज्रिणं द्यावापृथिवी अन्तरिक्षाणि न विविक्तः- (३२८) इन्द्रके सब जगह व्याप्त होनेसे पृथिवी, द्यु और अन्तरिक्ष अपनेसे उसको पृथक् नहीं कर सकते।

८७ अस्य अमात् ओजसः इत् तितिषे- (३२८) इसके बल तथा ओजसे ही सारा संसार प्रकाशित हो रहा है।

८८ ते विश्वा भुवनानि येमिरे- (३३२) देवोंने सब भुवनोंको नियममें रखा हुआ है।

८९ शुक्रं ज्योतिः सूर्यं दिवि अधारयः- (३३४) शुद्ध प्रकाशमान् सूर्यको प्रभुने द्युलोकमें स्थापित किया।

९० इन्द्रः वृधस्य दक्षस्य विदे क्रतुं पुनीते- (३३८) इन्द्र अपना बल बढानेके लिए यज्ञ या पवित्र कर्म करता है।

९१ सुपारः अप्सुजित् वृधः- (३३९) दुःखोंसे पार करनेवाला और शत्रुओंको जीतनेवाला बढा होता है।

९२ सुम्ने नः अन्तमः भव- (३४०) सुखके लिए हमारे पास आओ। परमात्माके समीप होनेसे आनन्द मिलता है।

९३ सुकृत्यने ववक्षिथ- (३४४) जो अच्छे कर्म करता है, उसे धन दो।

९४ वशी कृष्टीनां एकः इत् पतिः- (३४६) वह इन्द्र सबको वशमें करनेवाला तथा मनुष्योंका एक ही राजा है।

९५ सत्पतिः शविष्ठः- (३४९) उत्तम पालन करनेवाला ही बलवान् होता है।

९६ विचेतसः यत्र मनः विदधुः रुद्रस्य तत् इत् यद्धं धामसु चेतति- (३५७) ज्ञानी जिसबलका ध्यान करते हैं, रुद्रका वही बल लोकोंमें प्रसिद्ध हो रहा है।

९७ इमाः प्रतूर्तयः दिवि पदं जुरन्त- (३६६) शत्रुका पराभव करनेवाली प्रजायें द्युलोक अर्थात् तेजयुक्त स्थानको प्राप्त करती हैं।

९८ मे स्तोता गोसखा स्यात्- (३७१) मेरा अर्थात् इन्द्रका स्तोता गायोंका मित्र और उनका हित करनेवाला होता है।

९९ यत् अहं गोपतिः स्यां, अस्मै मनीषिणे दित्सेयम्- (३७२) यदि मैं गायोंका स्वामी बनूं तो इस विद्वान्को धन दूं।

१०० यत् स्तुतः मघं दित्ससि, ते राधसः न देवः वर्ता अस्ति, न मर्त्यः- (३७४) जब प्रशंसित होकर यह इन्द्र किसीको धन देना चाहता है, तब उसके उस दानको न कोई देव रोक सकता है, न कोई मनुष्य।

१०१ यज्ञः इन्द्रं अवर्धयत्- (३७५) यज्ञने इन्द्रको बढाया।

१०२ इन्द्रेण दिवः रोचना दृळ्हानि दृंहितानि च- (३७९) इन्द्रने द्युलोकके प्रकाशमान नक्षत्रोंको दृढ किया।

१०३ ते तत् पूर्वथा अद्य चित् उक्थिनः अनु स्तुवन्ति- (३९१) हे इन्द्र ! तेरे उस बलकी पहलेके समान आज भी स्तोतागण प्रशंसा करते हैं।

१०४ विश्वा रूपाणि आ विशन् अरं इन्द्रं हर्षय- (३९८) सब रूपोंमें प्रविष्ट होकर सामर्थ्यवान् इन्द्रको प्रसन्न करो। सब रूपोंमें प्रवत्न करके सर्वव्यापक इन्द्रको वहां देखकर उसे प्रसन्न करो।

१०५ धनेषु हितेषु तं इत् हवन्ते- (४०२) संग्राम के प्रारंभ हो जानेपर उसी इन्द्रको लोग बुलाते हैं।

१०६ येषां इन्द्रः ते जयन्ति- (४०३) जिनके पक्षमें इन्द्र होता है, वे जीतते हैं।

१०७ तं चर्षणयः कृतेभिः इत् आयन्ति- (४०४) उस प्रभुको मनुष्य कर्मोंसे ही प्राप्त कर सकते हैं।

१०८ ते अंकुशः दीर्घः- (४२०) हे इन्द्र ! शासन करनेकी तेरी शक्ति बहुत बडी है।

१०९ एषां आदित्यानां सवीमनि मर्त्यं अपूर्व सुम्नं भिक्षेत- (४२६) इन आदित्य देवोंके नियममें रहनेवाला मनुष्य अपूर्व सुखको प्राप्त करता है।

११० एषां आदित्यानां पंथाः अनर्वाणः, अदब्धाः पायवः सुगेवृधः- (४२७) इन आदित्यदेवोंका मार्ग कुटिलता रहित और हिंसारहित होनेके कारण मनुष्योंका पालन करनेवाला तथा सुखको बढानेवाला है।

१११ यः मर्त्यः रक्षस्विना नः रिरिक्षति, सः जनः स्वैः एवैः रिरिषीष्ट- (४३८) जो कोई मनुष्य राक्षस-भाव धारण करके हमें मारना चाहता है, वह मनुष्य अपने ही कर्मोंसे मारा जाए।

११२ यः अस्मत्रा उपद्रयुः, दुईलावान्, तं दुःशंसं रिपुं मर्त्यं अघं इत् सं अश्नवत्- (४३९) जो मनुष्य हमसे कपटका व्यवहार करता है, हमारी हिंसा करना चाहता है, उस दुष्ट और शत्रु मनुष्यको उसका पाप ही खा जाए।

११३ द्वयुं अद्वयुं च मर्त्यं हृत्सु जानीथ, पाकत्रा स्थन- (४४०) हे देवो ! कपटी और कपटरहित मनुष्यको तुम अपने हृदयोंमें जान लो, तथा जो पवित्र मनुष्य हो, उन्हींके पास तुम रहो।

११४ मरुतः नः अनेहः शर्म त्रिवरूथं छर्दिः यन्त- (४४६) हे मरुतो ! तुम हमें हिंसासे रहित प्रशंसनीय तीन मंजिलोंवाला घर दो।

११५ मनवः मृत्युबंधवः स्मसि, नः जीवसे आयुः सु तिरेतन- (४४७) जो कि सभी मनुष्य मृत्युके भाईबंद हैं, तो भी हमारे दीर्घजीवनके लिए हमारी आयुको अच्छी तरह दीर्घ करो।

११६ त्वं यस्य सख्यं आवरः, प्रतिरते- (४७७) हे अग्ने ! तू जिसके साथ मित्रता करता है, वह बढता है।

११७ आय दस्युः- (४७९) यह अग्नि दुष्कर्मियोंको दण्ड देकर उन्हें भय पहुंचानेवाला है।

११८ अबन्धवः वयं इन्द्र त्वा हि येमिम- (५१४) भाइयोंसे रहित हम, हे इन्द्र ! तुम्हें ही भाईके रूपमें स्वीकार करते हैं।

११९ इन्द्र, ते ऊती वयं नूत्ना इत् अभूम- (५१७) हे इन्द्र ! तेरे संरक्षणमें हम सदा नये ही रहते हैं।

१२० शूर ! ते सखित्वं उतभोज्यं ईमहे- (५१८) हे शूरवीर इन्द्र ! हम तुमसे मित्रता और भोग्य पदार्थोंको मांगते हैं।

१२१ सनात् अनापिः असि- (५२३) हे इन्द्र ! तुम सदासे शत्रु रहित हो।

१२२ रेवन्तं सख्याय नहि विन्दसे- (५२४) यज्ञ न करनेवाले धनवानको तुम मित्र नहीं बनाते।

१२३ सुराश्वः ते पीयन्ति- (५२४) क्योंकि वे शराबसे मस्त होकर तुम्हारी हिंसा करना चाहते हैं।

१२४ त्वावतः सख्ये अमा जुरः मा- (५२५) हे इन्द्र ! तुम्हारी मित्रतामें रहकर हम घरमें ही निष्क्रिय बैठकर वृद्ध न हों।

१२५ ते दामान न आ दभे- (५२६) तेरे धनको कोई दबा नहीं सकता।

१२६ दीदियुषः गणश्रियः तपुः जम्भस्य शोचिः उत् अस्थात्- (५५०) जो मनुष्य तेजस्वी दलके अन्दर रहकर शत्रुओंको पीडित करता है, उसका तेज सबसे श्रेष्ठ होता है।

१२७ देव्या कृपा अभिख्या, भासा बृहता उत्तिष्ठ- (५५१) मनुष्य अग्निदेवकी कृपासे कीर्ति, तेज और महानतासे युक्त होकर उन्नत होता है।

१२८ ऋतावनि जने कृपा- (५५४) यज्ञ करनेवाले मनुष्य पर अग्निकी कृपा रहती है।

१२९ ऋतावानः नमसः पदे- (५५०) सत्यके मार्ग पर चलनेवाला मनुष्य प्रतिष्ठाके पद पर अधिष्ठित होता है।

१३० यः अग्नये ददाश तस्य रिपुः मायया चन न ईशीत- (५६१) जो अग्निको प्रेमपूर्वक हवि देता है, उसपर शत्रु मनुष्य मायासे भी अधिकार नहीं जमा सकता।

१३१ यः मर्तः अस्मै आहुतिं अविधत्, स भूरि पोषं यशः धत्ते- (५६७) जो मनुष्य इस अग्निको

आहुति देता है, वह अनेकोंकी पुष्टि करनेवाला अन्न प्राप्त करता है।

१३२ जातवेदसं यज्ञेषु पूर्व्यं- (५६८) सब प्रकारके ज्ञानसे युक्त मनुष्य पूजनीय मनुष्योंमें सर्व प्रथम या सर्व श्रेष्ठ होता है।

१३३ मघवन् मघत्तये दळ्हश्चित् दृह्य- (५८६) हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तू हमें ऐश्वर्य प्रदान करनेके लिए दृढसे दृढ शत्रुको भी नष्ट कर।

१३४ राधसे राये द्युम्नाय शवसेच त्वत् अन्यं नहि विन्दामि- (५८८) सिद्धि, ऐश्वर्य, तेज और बलकी प्राप्तिके लिए तुझसे भिन्न और किसीको मैं नहीं पाता।

१३५ एकः इत् विश्वाः कृष्टीः अभि अस्ति-(५९५) अकेला होते हुए भी यह इन्द्र संपूर्ण प्राणियोंपर शासन करता है।

१३६ निर्ऋतीनां परिवृजं वेत्थ- (६००) इन्द्र दरिद्रताके दूर करनेके उपायको जानता है।

१३७ या बृहतः दिवः अधि अभि पश्यतः- (६११) मित्र और वरुण महान् द्युलोकसे चारों ओर निरीक्षण करते हैं।

१३८ सुक्रतू साम्राज्याय नि सेदतुः- (६१४) उत्तम कर्म करनेवाले मित्र और वरुण उत्तम रीतिसे शासन करनेके लिए ही अपने स्थान पर बैठते हैं।

१३९ अक्ष्णः चित् गातु वित्तरा- (६१५) मित्र और वरुण आंखोंवालोंकी अपेक्षा भी अधिक उत्तमतासे सन्मार्गको जाननेवाले हैं।

१४० नरः कयस्य चित् अभिमातिं प्रतिघ्नन्ति- (६२१) उत्तम नेता देव किसी भी शत्रुके अभिमानको तोड डालते हैं।

१४१ एकः विश्पतिः पुरु उरु विचष्टे- (६२२) मित्र-वरुणमेंसे एक प्रजाओंका पालक देव विस्तृत विश्वका निरीक्षण करता है।

१४२ विश्वे हि मनवे वृधे भुवन्- (६५९) सभी देवगण मनुष्यको बढानेवाले हों।

१४३ यत् वरूथं दूरात् नु चित् अन्तितः न आ दधर्षति, अच्छिद्रं शर्म नः वि यच्छत- (६६४) जिस घरको कोई शत्रु दूरसे और पाससे भी नष्ट नहीं कर सकता, ऐसे छिद्र अर्थात् दोषरहित घरको हमें प्रदान करो।

१४४ हे सम्राजः, वयं आ वृणीमहे, बहुपाय्यं सत् अश्याम- (६७७) हे अत्यन्त तेजस्वी देवो ! हम तुमसे यही वर मांगते हैं, कि हम बहुतोंका पालन करनेवाले उस धनको प्राप्त करें।

×

१४५ देवासः, वः अर्भकः नहि अस्ति, न कुमारकः, विश्वे सतः महान्तः इत्- (६९३) हे देवो, तुम्हारे मध्यमें न कोई छोटा बच्चा है, न कोई किशोर ही है, अपितु सभी देव ज्ञानी और महान् हैं।

१४६ पित्र्या मानवात् पथः पराव्रतः दूरं मा नैष्ट- (६९५) हे देवो, हमारा पालन करनेवाले ज्ञानयुक्त मार्गसे दूसरी तरफ दूर मत ले जाओ।

१४७ यः यजाति यजात इन्द्रस्य ब्रह्म इत् चाकनत्- (६९७) जो स्वयं यज्ञ करता है तथा दूसरोंसे करवाता है, वह प्रभुके ज्ञानसे युक्त होता है।

१४८ यः अस्मै पुरोळाशं ररत, तं इन्द्रः अंहसः पात्- (६९८) जो यज्ञकर्ता इस इन्द्रको पुरोडाश देता है, उसे यह इन्द्र पापसे बचाता है।

१४९ सः विश्वा अमित्रिया वन्वन् शूशुवत्- (६९९) वह अपने सभी शत्रुओंको नष्ट करता हुआ हर तरहसे बढता है।

१५० अस्य गृहे प्रजावती अस्वश्चन्ती धेनुमती दिवे दिवे इळा दुहे- (७००) इस यज्ञकर्ताके घरमें बछडोंसे युक्त, स्वैर संचार करनेवाली कामदुघा गाय प्रतिदिन अन्न दुहती है।

१५१ या समनसा दंपती धावतः नित्यया आशिरा- (७०१) जो परस्पर अनुकूल मनवाले दंपती घरमें सर्वत्र पवित्रता रखते हैं, वे प्रतिदिन गोदुग्धसे युक्त होते हैं।

१५२ ता सस्यंचा बर्हिः आशाते, वाजेषु न दायतः (७०२) वे दोनों पति-पत्नी समान मनवाले होकर यज्ञमें बैठते हैं, और वे दोनों कभी भी पोषक अन्नसे वियुक्त नहीं होते।

१५३ देवानां न अपि ह्नुतः, सुमतिं न जुगुक्षतः, बृहत् श्रवः विवासतः- (७०३) ऐसे उत्तम पति पत्नी देवोंका अपमान नहीं करते, अपनी उत्तम बुद्धिको नष्ट नहीं होने देते और महान् यशको प्राप्त करते हैं।

१५४ ता उभा हिरण्यपेशसा पुत्रिणा कुमारिणा विश्वं आयुः व्यश्नुतः- (७०४) वे दोनों दंपती सोनेके अलंकारोंसे युक्त होकर पुत्र और पुत्रियोंके साथ आनन्द करते हुए संपूर्ण दीर्घ आयुका भोग करते हैं।

१५५ यजमानः सुन्वानः, देवयो ! न रिष्यसि- (७१२) हे यज्ञ करनेवाले, सोम निचोडनेवाले, तथा देवोंकी स्तुति करनेवाले मनुष्य ! तू कभी भी दुःखी नहीं होगा ।

१५६ यः यजमानः मनः देवानां इयक्षति अयज्वनः अभिभुवत्- (७१२) जो यज्ञ करनेवाला मनुष्य मनःपूर्वक देवोंकी स्तुति करता है, वह यज्ञ न करनेवालोंको पराजित करता है ।

१५७ यः यजमानः मनः इत् देवानां इयक्षति तं कर्मणा नकिः नशत्, न प्र योषत् (७१३) जो यज्ञ कर्ता मनसे देवोंकी स्तुति करता है, उसे अपने कर्मसे कोई नष्ट नहीं कर सकता, उसे ऐश्वर्यसे कोई भ्रष्ट नहीं कर सकता ।

१५८ सुन्वतः सखा- (७२७) यह इन्द्र यज्ञ करनेवालोंका मित्र है ।

१५९ इन्द्रः चित् तत् अब्रवीत् स्त्रियः मनः अशास्यं- (७६१) इन्द्रने भी यही बात कही थी कि स्त्रीके मन पर शासन करना असंभव है ।

१६० अधः पश्यस्व, मा उपरि, पादकौ संतरां हर, ते कशप्लकौ मा दृशन्- (७६३) हे स्त्री ! तू सदा नम्र बनकर रह, ऊपर मत देख, उद्धत मत बन, कदमोंको पास पास रखते हुए चल, तेरे शरीरकी पिंडलियां-घुटनेके नीचेके भाग न दिखाई दें ।

१६१ त्वं क्षत्राय अवसि, त्वं न आविथ- (८१८) हे शक्तियोंके स्वामिन् इन्द्र ! तू संकटसे बचानेके लिए जगत्की रक्षा करता है, पर तू स्वयं किसीसे रक्षित नहीं होता ।

१६२ तनूषु पर्षां नि- (८३१) शरीरमें रहनेवाले इन रोगजन्तुरूप शत्रुओंका नाश हो जाए ।

१६३ रराव्णां अरातीः नि- (८३१) दानशीलोंके बीचमें रहनेवाले अदानी नष्ट हो जाएं ।

१६४ अग्निः सहीयसा कर्मणा चिकेत- (८३४) यह अग्रणी अपने पराक्रम युक्त कर्मोंके द्वाराही पहचाना जाता है ।

१६५ मुदा पुरुकाव्या पुष्यति, देवेषु यज्ञियः- (८३६) जो प्रसन्नतासे उत्तम कार्योंको करता है, वह देवोंमें पूज्य होता है ।

१६६ विप्रः परिष्कृतः दूतः यक्षत्- (८४८) ज्ञानी शुद्ध और पवित्र दूत पूज्य होता है ।

१६७ इन्द्रः ओजसा ईशानः- (८४४) इन्द्र अपने तेज और ओजकी सहायतासे सब पर शासन करता है ।

१६८ अर्यः सः गोपाः इव- (८५५) सबका स्वामी वह वरुण गोपालके समान सबका रक्षक है ।

१६९ कविः सः काव्या पुरुरूपं द्यौः इव पुष्यति- (८५६) ज्ञानीवह वरुण अपने ज्ञानसे अपने अनेक रूपोंको द्युलोकके समान पुष्ट करता है ।

१७० यस्मिन् विश्वानि काव्या श्रिता- (८५७) इस वरुणमें सभी ज्ञान आश्रित हैं ।

१७१ पुरः गये विश्वे देवाः वरुणस्य व्रतं अनु- (८५८) युद्धमें सभी देव वरुणके कर्मका अनुसरण करते हैं ।

१७२ वरुणस्य सदः ध्रुवं- (८६०) वरुणका स्थान अचल है ।

१७३ सः सप्तानां इरज्यति- (८६०) वह वरुण नदियोंपर शासन करता है ।

१७४ विप्रः विप्रेण, सन् सता, सखा सख्या- (८८०) ज्ञानी ज्ञानीसे, सज्जन सज्जनसे और स्नेही अपने स्नेहीसे मिलकर प्रसन्न होता है ।

१७५ पुरुत्राः विश्वाः विशः अनु सदृङ् प्रभुः- (८८९) जो विभिन्न प्रदेशोंमें रहनेवाली प्रजाओंको समान दृष्टिसे देखता है, वही प्रभु होता है ।

१७६ धर्मणां अध्यक्षः विशां राजा- (८९२) धर्मका अध्यक्ष ही प्रजाओंका राजा होने योग्य है ।

१७७ सु- आध्यः नृचक्षसः दुर्गहा तरन्तः- (८९७) उत्तम कर्म करनेवाले तथा मनुष्योंका हित करनेवाले मनुष्य दुःखसे पार करने योग्य संकटोंको भी पार कर जाते हैं ।

१७८ यः मर्तः दमे अग्निं सपर्यति, तस्मा इत् वसु दीदयत्- (९१५) जो मनुष्य घरमें इस अग्निकी सेवा करता है, उसीको यह धन प्रदान करता है ।

१७९ कं ते सुमतौ स्याम- (९२४) सुखकी कामना करनेवाले इस अग्निके उत्तम बुद्धिके अनुकूल चलें ।

१८० धूर्तयः न धूर्वन्ति- (९३९) उस इन्द्रकी शत्रुके लोग हिंसा नहीं कर सकते ।

१८१ युधि नकिः वृण्वते- (९५१) उस इन्द्रको युद्धमें कोई हरा नहीं सकता ।

१८२ जनानां तरणिं श्रदं प्रशंसिषम्- (९५८)

जनोंको दुःखोंसे तारनेवाले, शत्रुको मारनेवाले वीरकी प्रशंसा करता हूँ।

१८३ सख्युः पुत्रस्य, शूनं मा आ विदे- (९६६) अपने मित्र और पुत्रके धनको मैं नहीं मागता हूँ।

१८४ वयः यथा पक्षा उपरि शर्म अस्मे यच्छत (१००७) पक्षी जिस तरह अपने बच्चोंपर पंखोंकी छाया करते हैं, वैसी सुरक्षा हमें दो।

१८५ नः अधिवोचत, नः निद्रा मा ईशत, उत मा जल्पिः- (१०१७) हे देवो! हमें उत्तम उपदेश दो। हम पर आलस्य अधिकार न करे, और व्यर्थ का बडबडाना भी हमपर अधिकार न करे।

१८६ दाशुषे कदाचन न स्तरीः असि- (१०६५) हे इन्द्र! तू दानदाताका कभी नाश नहीं करता।

१८७ कदाचन प्रयुच्छसि- (१०७५) हे इन्द्र! तू कभी भी प्रमाद नहीं करता।

१८८ इन्द्रस्य भूरि इत् वीर्यं अभि व्यख्यं आयति- (१०९५) इन्द्रका महान् पराक्रमही चारों ओर प्रकाशित हो रहा है।

१८९ अ-नूनस्य श्रवः महि- (१०९९) उस पूर्ण पुरुषका यश महान् है।

१९० श्यावीः पथः अति ध्वसन् चक्षुषा चन संनशे- (१०९९) बुरे मार्गोंको पार करके उत्तम मार्ग पर चलनेवाला मनुष्य इन्द्रको आंखसे भी देख सकता है।

१९१ एकः एव अग्निः बहुधा समिद्धः- (१११०) एकही अग्नि अनेक तरहसे प्रदीप्त होता है।

१९२ एकं वा इदं सर्वं वि बभूव- (१११०) एकही परब्रह्म इस सब विश्वके रूपमें प्रकट होता है।

१९३ मम शर्मन् सूरयः शत्रुषाहः सु अग्नयः सन्तु- (११२३) मेरे घरमें सदा विद्वान् और शत्रुओंको परास्त करनेवाली उत्तम अग्निया निवास करती रहें। मेरे घरमें सदा विद्वान् निवास करें और नित्य प्रति यज्ञ होता रहे।

१९४ यः दुर्मन्मा अस्मध्रुक् वेनति, दह-(११२५) जो दुष्ट बुद्धिवाला पुरुष हमसे द्रोह एवं हमारे पराभवकी कामना करता है, हे अग्ने! उसे तू जला डाल।

१९५ रिपवे मर्ताय, रक्षस्विने, अघशंसाय नः मा रीरिधाः- (११२६) हे अग्ने! शत्रुओं, राक्षसों और पापियोंको प्रसन्न करनेके लिए हमें पीडित मत कर।

१९६ रक्षः यातु मावतां यातुः नः मा आवेशीत्- (११३८) राक्षसों और पीडा देनेवालोंकी पीडायें हममें प्रवेश न करें।

१९७ इन्द्र! यथा वशः कामा तथा इत् असन्- (११४२) हे इन्द्र! तू जैसी कामना करता है, वैसी कामनाको अपने पुरुषार्थसे सिद्ध कर लेता है।

१९८ अविप्रः विप्रः वा ते वचः अविधत् सः प्र ममन्दत्- (११४७) अज्ञानी या ज्ञानी जो कोई भी इन्द्रकी स्तुति करता है, वह आनन्दित होता है।

१९९ यतः भयामहे, ततः नः अभयं कृधि- (११५१) हे इन्द्र! जहां जहांसे हमें भय हो, वहां वहां से हमें अभय कर।

२०० अ-सुन्वतः महान् वधः- (११६८) सोम-यज्ञ न करनेवालेका महान् नाश होता है।

२०१ सुशिप्रं दुध्राः स्थिराः सुरः न वरन्ते- (१२०६) शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्रको असुर, देव और मनुष्य कोई भी युद्धमें नहीं हटा सकता।

२०२ वारणः उरामथिः वृकः चित् अस्य वयुनेषु आ भूषति- (१२१२) सबका निवारक और पथिकोंका विनाशक चोर भी इसके मार्गोंके अनुकूल होकर चलता है।

२०३ कत् नु पौंस्यं अस्ति, (यत्) अस्य इन्द्रस्य अकृतम्, केन श्रोमतेन कं न शुश्रुवे, वृत्रहा जनुषा परि- (१२१६) ऐसा कौनसा पराक्रम है, जो इस इन्द्रके द्वारा नहीं किया गया; किस कानवालेने इसके पराक्रमको नहीं सुना? क्योंकि वृत्रका हन्ता इन्द्र तो जन्मसे ही अपने पराक्रमके लिए प्रसिद्ध है।

२०४ वयं विप्राः त्वे इत् स्मसि, त्वत् अन्यः कश्चन मर्डिता नहि- (१२१७) हे इन्द्र! हम ज्ञानी पुरुष तेरे अधीन ही रहें, क्योंकि तुझसे भिन्न और कोई सुखी करनेवाला नहीं है।

२०५ आदित्याः! विवस्वतः कृत्रिमा शरुः हेतिः नः जरसः पुरा मा वधीत्- (१२२९) हे आदित्यो! यमके कृत्रिम और हिंसक शस्त्र हमें बुढापेसे पहले न मारें।

२०६ अंहतिं संहितं वि- (१२४०) हे आदित्यो! पापियोंके संगठनको नष्ट करो।

२०७ वः पौरुषेयः मन्युः न ईशे- (१२९४) इस अग्निके भक्तोंपर किसी दुष्ट मनुष्यका क्रोध शासन नहीं कर सकता।

२०८ यं दाश्वांस न्नायसे, तं मर्तं अरातयः रायः

न युवन्त- (१२९६) जिस दानीकी यह अग्नि रक्षा करता है, उसे कोई भी अदानशील व्यक्ति ऐश्वर्यसे पृथक् नहीं कर सकता ।

२०९ मर्त्येषु अमृतः- (१३०३) यह अग्नि मरणशील मनुष्योंके बीचमें रहता हुआ भी अमर है ।

२१० धीषु अर्वति अग्निः प्रथमं- (१३०४) सभी तरहके बुद्धियुक्त कार्योंमें इस अग्निकी पूजा प्रथम करनी चाहिए ।

२११ होता अस्य सख्यं जुषाणः- (१३०९) होम करनेवाला ही उस अग्निकी मित्रता प्राप्त कर सकता है ।

२१२ यज्ञस्य मही रप्सुदा- (१३१८) जहां गायें पुष्ट होती हैं, उस यज्ञमय देशकी भूमि बडी उपजाऊ होती है ।

२१३ ऋक्षमाणं इन्द्रं उभे रोदसी अकृपेताम्- (१३८५) शत्रुको मारनेवाले इन्द्रको दोनों द्युलोक और पृथिवीलोक सामर्थ्यवान् करते हैं ।

२१४ ते धनुः तु विक्षं सुकृतं सूमयं- (१३९७) हे इन्द्र ! तेरा धनुष बहुत बाण फेंकनेवाला अच्छी तरह बनाया हुआ और अत्यन्त सुखकारी है ।

२१५ ते उभा बाहू रण्या सुसंस्कृत ऋतू रूपे ऋधूवृधा- (१३९७) हे इन्द्र ! तेरी दोनों भुजायें सुखकारी, उत्तम, शत्रुके नाशक तथा यज्ञको बढानेवाली हैं।

२१६ यत् नग्नं अभि ऊर्णोति, यत् तुरं विश्वं भिषक्ति, अन्धः प्र अख्यत्, श्रोणः नि भूत्- (१४०९) सोम देवता जो वस्त्ररहित है, उसे वस्त्रसे चारों ओरसे आच्छादित कर देता है, जो रोगी है उसके सब रोगोंकी चिकित्सा करता है, जो अन्धा है उसे दृष्टि देकर देखने योग्य बनाता है और जो पंगु है वह सोमदेवकी कृपासे चलने योग्य हो जाता है ।

२१७ स्वे सधस्थे देवानां दुर्मती अव- (१४१६) हे सोम ! हमारे घरों पर देवोंकी अवकृपा न हो ।

२१८ यः क्षेमेभिः साधुभिः क्षेति, सुवीरः पधते- (१४६२) जो मनुष्य कल्याणकारी तथा सज्जन पुरुषोंके सहित अपने घरमें निवास करता है, वह उत्तम पुत्रपौत्रादिकोंसे वृद्धिको प्राप्त होता है ।

२१९ क्रत्वा शवसा योद्धा असि, देसना मज्मना विश्वा जाता अभि- (१४८६) हे इन्द्र ! तू अपने कर्म और बलके कारण योद्धा कहाता है और अपने कर्मसे और बलसे संपूर्ण प्राणियों पर शासन करता है ।

२२० यत् जातं यत् च जन्त्वं तत् विश्वं अभिभूः असि- (१४९४) जो बना और जो बननेवाला है, उस सब पर तेरा अधिकार चलता है ।

२२१ ब्रह्म तन्द्रयुः मा सु भव- (१५१८) ज्ञानी होकर आलसी न बन ।

२२२ विश्वा भुवनानि द्यावापृथिवी च त्वत् भीषा रेजेते- (१६३१) हे इन्द्र ! सारे भुवन और द्यौपृथिवी दोनों लोक तेरे भयसे कांपते हैं ।

२२३ हे शतक्रतो ! त्वं हि नः पिता माता बभूविथ, अध ते सुम्नं ईमहे- (१६०१) हे सैंकडों उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! तू ही हमारा माता पिता है, इसलिए हम तुझसे सुख मांगते हैं ।

२२४ रुद्राणां माता, वसूनां दुहिता, (आदित्यानां स्वसा) अमृतस्य नाभिः- (१६७९) यह गाय रुद्रदेवोंकी माता, वसुदेवोंकी पुत्री, आदित्य देवोंकी बहिन और अमृतका केन्द्र स्थान है ।

२२५ चिकितुषे जनाय प्रवोचं, अनागां अदितिं गां मा वधिष्ट- (१६७९) मैं ज्ञानी मनुष्यसे यही कहता हूँ कि निरपराध और न मारने योग्य गायको मत मार ।

२२६ वाचं उदीरयन्तीं गां दभ्रचेताः मर्त्यः आ अवृक्त- (१६८०) स्नेह पूर्ण वाणीको व्यक्त करती हुई गायको अल्पज्ञानी मनुष्य त्याग देता है ।

२२७ क्रत्वा यशश्वतः- (१६८८) मनुष्य अपने कर्म और परिश्रमसे यशस्वी होता है ।

२२८ अयं अग्निः देवेषु विश्वाः श्रियः अभिपत्यते- (१६८९) यह अग्नि देवोंमें सबसे ज्यादा सम्पत्तिशाली है ।

२२९ उपदृक् सूर्य इव भद्रा- (१६९५) इस अग्निका प्रकाश भी सूर्यके समान आंखोंके लिए कल्याणकारी है ।

२३० अग्निं इन्धानः मनसा धियं सचेत- (१७०२) अग्निको समिधाओंसे प्रज्वलित करनेवाला पुरुष श्रद्धायुक्त मनसे कर्म करे ।

॥ इति अष्टमं मंडलम् ॥



ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

अष्टम मण्डल

इस अष्टम मंडलमें कुल १०३ सूक्त हैं। इन सूक्तों १७१६ मंत्र हैं। इस मंडलके ऋषि सूक्त, मंत्र और देवताओंकी संख्या इस प्रकार है-

ऋषिवार सूक्त संख्या

मनुर्वैवस्वतः	५
सोभरिः काण्वः	५
विश्वमना वैयश्वः	४
श्यावाश्वः आत्रेयः	४
नाभाकः काण्वः	४
प्रगाथो (घौरः) काण्वः	३
इरिम्बिठिः काण्वः	३
विरूप आंगिरसः	३
मेध्यः काण्वः	३
प्रगाथः काण्वः	३
कुरुसुतिः काण्वः	३
कुसीदी काण्वः	३
कृष्ण आंगिरसः	३
मेधातिथिः काण्वः	२
मेध्यातिथिः काण्वः	२
वत्सः काण्वः	२
गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ	२
भर्गः प्रागाथः	२
प्रियमेध आंगिरसः	२
नृमेध पुरुमेधावांगिरसौ	२
नृमेध आंगिरसः	२
प्रगाथो घौरः काण्वः, मेधातिथि मेध्यातिथी काण्वौ, प्लायोगिरासंगः, आंगिरसीशश्वती ऋषिका	१
देवातिथिः काण्वः	१
ब्रह्मातिथिः काण्वः	१
पुनर्वत्सः काण्वः	१
सध्वंसः काण्वः	१
शशकर्णः काण्वः	१
पर्वतः काण्वः	१
नारदः काण्वः	१
नीपातिथिः काण्वः	१
त्रिशोकः काण्वः	१
यशोऽश्व्यः	१
त्रित आप्त्यः	१
प्रस्कण्वः काण्वः	१
पुष्टिगुः काण्वः	१
श्रुष्टिगुः काण्वः	१
आयुः काण्वः	१
मातरिश्वा काण्वः	१
कृशः काण्वः	१
पृषध्रः काण्वः	१
सुपर्णः काण्वः	१
कलिः प्रागाथः	१
मत्स्यः साम्मदः, मैत्रावरुणिर्मान्यः, बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः	१

पुरुहन्मा आंगिरसः	१
सुदीतिपुरुमीळ्हावांगिरसौ	१
हर्यतः प्रागाथः	१
गोपवनः आत्रेय, सप्तवध्रिर्वा	१
गोपवन आत्रेयः	१
कृत्नुर्भार्गवः	१
एक द्यूर्नौधसः	१
उशना काव्यः	१
नोधा गौतमः	१
आत्रेयी अपाला	१
श्रुत कक्षः सुकक्षो वा आंगिरस.	१
सुकक्षः आंगिरसः	१
बिन्दुः पूतदक्षो वा अंगिरसः	१
तिरश्चीरांगिसः	१
तिरश्चीरांगिरसो, द्युतानो वा मारुतः	१
रेभः काश्यपः	१
नेमो भार्गवः इन्द्रः च	१
जयदग्निर्भार्गवः	१
भार्गवः प्रयोगः, अग्निर्बार्हस्पत्यः पावको वा, सहसः पुत्रौ, गृहपति यविष्ठौ तयोर्वान्यतरः	१
	१०३

ऋषिवार मंत्र संख्या

सोभरिः काण्वः	११३
विश्वमना वैयश्वः	१०९
विरूप आंगिरसः	७९
मेधातिथिः काण्वः	७२
मनुर्वैवस्वतः	५९
वत्सः काण्वः	५८
इरिम्बिठिः काण्वः	४९
श्यावाश्वः आत्रेयः	४८
मेध्यातिथिः काण्वः	४३
त्रिशोकः काण्वः	४२
ब्रह्मातिथिः काण्वः	३९
भर्गः प्रागाथः	३८
नाभाकः काण्वः	३८
प्रियमेध आंगिरस.	३७
प्रगाथः काण्वः	३६
पुनर्वत्सः काण्व.	३६
प्रगाथो (घौरः) काण्वः	३५
सुकक्षः आंगिरसः	३४
पर्वतः काण्वः	३३
नारदः काण्वः	३३
वशोऽश्व्यः	३३
गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा	३३
कुरुसुतिः काण्वः	३३
श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः	३३
गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ	२८
मेधातिथि–मेध्यातिथी काण्वौ	२७
कुसीदी काण्वः	२७
सध्वंसः काण्वः	२३
भार्गवः प्रयोगः, अग्निर्बार्हस्पत्यः, पावको वा सहसः पुत्रौ गृहपति-यविष्ठौ, तयोर्वान्यतरः	२२
शशकर्णः काण्वः	२१
मत्स्यः साम्मदः, मैत्रावरुणिर्मान्यः बहवो वा मत्स्याः जालनद्धाः	२१
तिरश्चीरांगिरसः द्युतानो वा मारुतः	२१
देवातिथिः काण्वः	२१
कृष्ण आंगिरसः	२०
नृमेध आंगिरसः	२०
हर्यतः प्रागाथः	१८
त्रित आप्त्यः	१८
जमदग्निर्भार्गवः	१६
नीपातिथिः काण्वः	१५
मेध्यः काण्वः	१५
कलि प्रागाथः	१५
पुरुहन्मा आंगिरसः	१५
सुदीतिपुरुमीळ्हापांगिरसौ तयोर्वान्यतरः	१५
रेभः काश्यपः	१५
नृमेधपुरुमेधावांगिसौ	१३
बिन्दुः पूतदक्षो वा आंगिरसः	१२
प्रस्कण्वः काण्वः	१०
पुष्टि गुः काण्वः	१०
श्रुष्टिगुः काण्वः	१०
आयुः काण्वः	१०
एकद्यूर्नौधस	१०
नेमो भार्गवः	१०

कृत्नुर्भार्गवः	९
उशना काव्यः	९
तिरश्चीरांगिरसः	९
मातरिश्वा काण्वः	८
सुपर्णः काण्वः	७
आत्रेयी अपाला	७
नोधा गौतमः	६
कृशः काण्वः	५
पृषध्रः काण्वः	५
प्रयोगिरांगिरसः	४
प्रहस्तं वसुरोचिर्षोऽङ्गिरसः	३
इन्द्रः	२
आंगिरसी शाश्वती ऋषिका	१
	१७१६

देवतावार मंत्र संख्या

इन्द्रः	८६७
अग्निः	२७१
अश्विनौ	१९८
मरुत	७४
विश्वेदेवा	५८
आदित्याः	५१
सोमः	२४
इन्द्राग्नी	२२
मित्रावरुणौ	२१
वरुण	१४
वायुः	१६
दम्पत्याशिषः	९
इन्द्रावरुणौ	७
अदितिः	६
ऋक्षाश्वमेधौ	६
आदित्योषसः	५
आसंगः	५
दम्पती	५
कौरयाणः पाकस्थामा	४
पूषा	४
मित्रावरुणौ	४
यज्ञः यजमानश्च	४
कानीतः पृथुश्रवाः	४
कुरुंगः	३
तिरिन्दरः पार्शव्यः	३
वसुः सौषाम्णिः	३
आर्क्षः श्रुतर्वा	३
विभिन्दुः	२
त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः	२
चित्रः	२
सूर्यः	२
गौः	२
देवाः	२
इन्द्रामरुतः	२
वाक्	२
वास्तोष्पतिः	१
अग्निसूर्यानिलाः	१
अग्नीन्द्रौ	१
मित्रावरुणादित्याः	१
सुपर्णः	१
वज्रः	१
अग्निसूर्यौ	१
उषाः	१
ऋत्विजः	१
इन्द्रऋभवः	१
पवमानः	१
अग्नामरुतः	१

इस अष्टम मंडलमें भी अनेकों अनुकरणीय बातोंका उपदेश है। इस मंडलमें कण्व गोत्रीय ऋषियोंके मंत्रोंकी संख्या अधिक है। इनके अलावा इतर भी ऋषि है, कण्व-गोत्रोत्पन्न ऋषि २१ हैं और उनके मंत्रोंकी संख्या ६८७ है। अष्टममण्डलके मंत्रोंमें इन्द्र देवताका जो गुणवर्णन आया है, उसकी समालोचना हम यहां करते हैं।

इन्द्रका सामर्थ्य

इन्द्र विशेष सामर्थ्यवान् है, ऐसा वर्णन इन्द्रके सूक्तोंमें सर्वत्र दिखाई देता है, देखिये–

१ वृषणः– (७८) बलवान्, सामर्थ्यवान्.

२ मंहिष्ठः– (८८) महान्, श्रेष्ठ.

३ शक्रः– (१०५) शक्तिमान्

४ एक इत्सना महान् अस्ति– (११६) इन्द्र एक ही है कि जो अपने कर्मोंसे महान है।

५ व्रतैः उग्रः- (११) अपने व्रतोंसे जो शूरवीर तथा भयंकर है।

६ शचीवः- (१४६) शक्तिमान.

७ महाभिः शचीभिः महान्- (१४७) महती शक्तियोंसे महान है।

८ शचीवान् सखा- (१५४) शक्तिमान मित्र।

९ पूर्वथा अद्य आयवः अस्य महिमानं अनुष्टुवन्ति- (१६६) पूर्वके समान आज भी सब मनुष्य इसीकी महिमा गाते हैं।

१० उभयावी- (८८) दोनों प्रकारके आत्मिक और भौतिक सामर्थ्य इस इन्द्रके पास रहते हैं

११ अजुर- (८८) जरा रहित, वृद्धावस्था रहित।

१२ जनानां विपः अर्यः- (९०) शत्रुके लोगोंको कंपानेवाला श्रेष्ठ वीर।

१३ वीरः शक्रः नर्यः इन्द्रः- (१३८) वीर, सामर्थ्यवान्, सब लोगोंका हित करनेवाला इन्द्र है।

१४ वीरः शूरः मद्यः- (१४०) वह इन्द्र शूरवीर व आनंदित है।

१५ शतं ऊतीः नियमते- (१४१) सैंकडों संरक्षणके साधनोंका वह नियमन करता है अर्थात् वह संरक्षणके सैंकडों साधन योग्य रीतिसे उपयोगमें लाता है।

१६ ते सुमतौ वयं वाजिनः भूयाम- (१५७) तेरी उत्तम मतिमें रहकर हम बडे बलवान् बनेंगे।

१७ वृष्ण्यं शवः वावृधे- (१६३) इन्द्रका सामर्थ्य युक्त बल बढता है।

१८ अस्य महिमा शवः विप्रराज्ये यज्ञेषु गृणे- (१५९) इस इन्द्रकी महिमा और सामर्थ्य ब्राह्मणोंके यज्ञके राज्यमें प्रशंसित होता है।

१९ शवसानात् शतं ऊतेः यशस्तरं न विद्म- (१३७) इस बलवान और सैंकडों संरक्षणके साधनोंको अपने पास रखनेवाले इन्द्रसे अधिक दूसरा कोई यशस्वी है, ऐसा हम नहीं जानते।

२० विश्वाः चर्षणयः यस्मिन्, उत ज्रयांसि ज्योत्न्या- (१४८) सब प्रजाजन जिस इन्द्रमें शत्रुको पराजित करनेके बल हैं ऐसा जानते हैं।

२१ मघोनां वाजदावा इन्द्रः एतानि विश्वा चकार- (१५९) धनिकोंको बल देनेवाला इन्द्र इन सब विश्वके पदार्थोंको बनाता है।

२२ इन्द्रः मह्ना रोदसी पप्रथयत्- (१६१) इन्द्रने अपनी महिमासे द्यावा पृथिवीको ऐसा विस्तीर्ण बनाया है।

२३ इन्द्रे विश्वा भूतानि येमिरे- (१६१) इन्द्रके सामर्थ्यनेही सब भूतोंका नियमन किया है।

२४ इन्द्रः सूर्यं अरोचयत- (१६१) इन्द्रने सूर्यको प्रकाशित किया है।

२५ अस्य सूनृतानां शचीनां न किः नियन्ता- (१९४) इस इन्द्रके सच्चे सामर्थोंका नियमन करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। वही अपने सामर्थोंका योग्य रीतिसे उपयोग करता है।

२६ शविष्ठः इन्द्रः- (२२२) इन्द्र बलवान् है।

२७ महामहः- (२२४) वह इन्द्र महा सामर्थ्यवान् है।

२८ इन्द्रः ओजसा महान्- (२४३) इन्द्र अपने सामर्थ्यसे महान् है।

२९ अस्य मन्यवे विश्वाः कृष्टयः विशः सं नमन्ते- (२४६) इस इन्द्रके क्रोधके सामने सब प्रजाजन नम्र होते हैं।

३० अस्य ओजः तित्विषे- (२४७) इन्द्रके सामर्थ्यका तेज चारों ओर फैला है।

३१ महान् अपारः ओजसा क्षितीः प्रराजसि- (२६८) इन्द्र अपने अपार सामर्थ्यसे सब मानवोंपर राज्यशासन करता है।

३२ हे इन्द्र! उरु ज्रयसं त्वां ऊतये विशः उपब्रुवत- (२६९) हे इन्द्र! विशेष सामर्थ्यके कारण तुम्हें अपने संरक्षणके लिये सब प्रजाजन सहाय्यार्थ बुलाते हैं।

३३ महिना महान्- (३१०) तू अपनी महिमाके कारण महान् हुआ है।

३४ वज्रिणं द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षाणि न विविक्त- (३११) वज्रधारी इन्द्रको पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक अपनेमेंसे पृथक् कर नहीं सकते।

३५ अस्य अमात् ओजसः इत् तित्विषे- (३११) इस इन्द्रके सामर्थ्यसे और प्रभावसे सब प्रकाशित हो रहा है।

३६ यः नमोवृधैः अवस्युभिः वशी कृष्टीनां एक इत् पतिः उच्यते- (३२९) स्तुति करनेवाले और अपना संरक्षण हो ऐसी इच्छा करनेवाले उपासक, सबको अपने वशमें रखनेवाले इन्द्रको सब प्रजाजनोंका एकही स्वामी है ऐसा वर्णन करते हैं।

३७ ते रथः वृषा, ते हरी वृषणा, त्वं वृषा, हवः

वृषा- (३५१) हे इन्द्र ! तेरा रथ बलवान है, तेरे घोडे बलवान हैं, तू बलवान हो और तेरी प्रार्थना भी बल देनेवाली है।

३८ नः महे क्षयाय जैत्राय, विश्वारूपाणि आविशन्, अरं शचीपतिं इन्द्रं हर्षय- (३८१) हमारे महान घरके लिये, विजयके लिये, अनेक रूपोंमें प्रवेश करनेवाले महा शक्तिमान इन्द्रको प्रसन्न करो।

३९ चर्षणीनां सम्राजं गीर्भिः नव्यं नरं नृषाहं मंहिष्ठं इन्द्रं प्रस्तोत- (३८२) प्रजाजनोंका सम्राट, वाणीसे स्तुति करने योग्य, नेता, शत्रुओंका पराभव करनेवाले महान इन्द्रकी स्तुति करो :

४० ज्येष्ठराजं भरे मह्नः कृत्नुं, वाजिनं, तं सनिभ्यः सुष्टुत्या आविवासे- (३८४) सबका श्रेष्ठ राजा युद्धोंमें बडा पराक्रम करनेवाला, बलवान, दान देनेके लिये प्रसिद्ध उस इन्द्रकी उत्तम स्तुतिसे सेवा करते हैं।

४१ यस्य मदाः अनूनाः गभीराः उरवः तरुत्राः शूरसातौ हर्षमन्तः- (३८५) जिस इन्द्रके आनन्द कम न होनेवाले, गंभीर, विशाल, सत्वर संरक्षण करनेवाले और युद्धोंमें प्रसन्न करनेवाले होते हैं।

४२ धनेषु हितेषु तं इत् अधिवाकाय हवन्ते, येषां इन्द्रः ते जयन्ति- (३८६) युद्धोंके प्रारंभ होने पर उसी इन्द्रको अपने पक्षमें आनेके लिये- सहायता करनेके लिये बुलाते हैं। जिनके पक्षमें इन्द्र होता है वे ही जीतते हैं।

४३ इन्द्रः ब्रह्मा, ऋषिः पुरुहूतः महीभिः शचीभिः महान्- (३८८) इन्द्र ब्रह्मा है, ज्ञानी है, उसको बहुत लोक अपनी सहायताके लिये बुलाते हैं, वह महती शक्तियोंसे महान् है।

४४ तुविकूर्मिः एकः सत्वा चित् सन् अभिभूतिः- (३८९) सत्वर कार्य करनेवाला अद्वितीय बलवान् होनेके कारण शत्रुका पराभव करनेवाला इन्द्र है।

४५ समत्सु ज्योतिः कर्तारं, युधा अमित्रान् सासह्वांसं- (३९१) युद्धोंमें अपना तेज प्रकट करनेवाला, तथा युद्धसे शत्रुओंको पराजित करनेवाला इन्द्र है।

४६ स पुरुहूत इन्द्र विश्वाः द्विषः अतिपारयाति- (३९२) वह बहुतों द्वारा सहाय्यार्थ बुलाया गया इन्द्र अपने सब शत्रुओंको परास्त करता है।

४७ तुविग्रीवः वपोदरः सुबाहुः इन्द्रः वृत्राणि जिघ्नते- (४०१) वह पुष्ट गर्दनवाला, बलवान् बडे पेटवाला, उत्तम मजबूत बाहुवाला इन्द्र शत्रुओंको मारता है।

४८ हे इन्द्र ! त्वं ओजसा पुरः प्रेहि, वृत्राणि जहि- (४०२) हे इन्द्र ! तू अपने सामर्थ्यसे आगे बढ और शत्रुओंका नाश कर।

४९ शाचिगो शाचिपूजन आखण्डल रणाय हूयसे- (४०५) हे शक्तिशाली इन्द्रियवाले, सामर्थ्यके कारण पूजनीय इन्द्र ! युद्धके लिये ही तुम्हे बुलाया जाता है।

५० शश्वतीनां पुरां भेत्ता, मुनीनां सखा- (४०७) शत्रुके नगरीयोंको तोडनेवाला, मुनिजनोंका मित्र इन्द्र है।

५१ हे महेमते सहस्र ऊते शतामघ नः आयाहि- (४३१) हे महाबुद्धिमान्, सहस्रों प्रकारके रक्षण करनेके साधनोंको साथ रखनेवाले, सैंकडों प्रकारके धनवाले इन्द्र ! तू हमारे पास आओ।

५२ संभृताश्वः- (४३६) उत्तम प्रकारसे घोडोंको हृष्टपुष्ट करनेवाले इन्द्र !

५३ सहस्रबाहे अत्र पौंस्यं अदेदिष्ट- (४६८) सहस्रों बाहुवाले शत्रुको इन्द्रने मारा, उसमें उसका पौरुष चमका।

५४ जनानां तरुत्रं, त्रदं, गोमतः वाजस्य स्मानं, प्रशंसिषम्- (४७०) सब जनोंका तारण करनेवाला, शत्रुको त्रास देनेवाला और गौओंसे उत्पन्न अन्नका दाता इन्द्र है उसकी स्तुति करता हूं।

५५ त्वावतः उग्रात् दस्मात् ऋतीषहः अहं बिभाय- (४७७) तुम्हारे जैसे वीरसे, पापियोंके विनाशक शत्रुओंको परास्त करनेवालेसे हम डरते हैं।

५६ यत इन्द्र भयामहे ततः नः अभयं कृधि- (५६०) हे इन्द्र ! जहांसे हमें भय होता है वहांसे हमें निर्भय कर।

५७ तव ऊतिभिः न शग्धि- (४६०) तेरे संरक्षणके साधनोंसे हमें सामर्थ्यवान कर।

५८ द्विषः मृधः जहि- (४६०) द्वेष करनेवाले हिंसकोंको परास्त कर।

५९ वृषभः युवा तुविग्रीवा अनानतः- (५९५) बलवान तरुण, बलवान गर्दनवाला, किसीके सामने न नमनेवाला इन्द्र है।

६० यं सुशिप्रं न दुधाः, न स्थिराः, न मुरः वरन्ते- (६१४) जिस उत्तम शिरस्राण धारण करनेवालेको असुर हटा नहीं सकते, देव नहीं हटा सकते, नहीं मनुष्य हटा सकते हैं।

६१ इन्द्रः यथा वशत्, क्रत्वा इत् करत्- (६१६) इन्द्र जैसा चाहता है वैसा अपने सामर्थ्यसे कर देता है।

६२ कत् नु पौंस्यं अस्ति अस्य इन्द्रस्य अकृतं, केन श्रोतमेन न श्रुतम्। वृत्रहा जनुषः परि-(६२१) ऐसा कौनसा पौरुष है जो इस इन्द्रने नहीं किया। किस मनुष्यने किस पराक्रमको नहीं सुना जो इन्द्रने नहीं किया। वह वृत्रको मारनेवाला जन्मसेही पुरुषार्थ करनेमें प्रसिद्ध है।

इन मंत्रभागोंसे इन्द्रका सामर्थ्य प्रकट होता है। इन्द्रका शरीर मजबूत है, प्रत्येक अवयव सुदृढ है, गला मोटा है, बाहु पुष्ट है। पेट हृष्ट पुष्ट है। हाथ बलवान हैं। इन हाथोंसे वह अपना वज्र पकडता है और शत्रुपर फेंकता है, जिससे शत्रुके टुकडे टुकडे होते हैं। यह वज्र फौलादका बना होता है। मुष्टि युद्ध भी इन्द्र करता है। कपटी शत्रुसे इन्द्र कपट युद्ध करनेमें भी प्रवीण है। स्वयं इन्द्र किसीसे द्वेष नहीं करता, पर शत्रु द्वेष करके घातपात करने लगा, तो उस द्वेष करनेवाले शत्रुका नाश जिस योजनासे हो सके, वह निश्चयसे करता है। इन्द्रकी सेना मरुतोंकी है। वह हरएक युद्धमें उसका सहाय्य करता है। शत्रुकी कितनी भी फौज हो, और वह घेर कर भी आक्रमण करे, तो भी उस शत्रुसेना का इन्द्र समूल नाश करता है। इन्द्रका ऐसा अद्वितीय सामर्थ्य है। इसका विचार पाठक करें।

शस्त्रधारी इन्द्र

इन्द्र धनुष्य बाण, वज्र आदि शस्त्रोंको धारण करता है; इसके वर्णन ये हैं—

१ वज्री (९१) - वज्रधारी, वज्रसे लडनेवाला,

२ अद्रिवान् - (९१) वज्र धारण करनेवाला, पर्वत-परके किलेमें रह कर लडनेवाला,

३ ओजसा वज्रं शिशानः - (६३६) अपने सामर्थ्यसे वज्रको धार लगाता और तीक्ष्ण करता है।

४ तव इषुः शतब्रध्नः सहस्रपर्णः एकः इत् - (६४६) तेरा बाण सैंकडों धारोंवाला और सहस्रों कार्य अकेला ही करनेवाला है।

५ ते धनुः तुविक्षं सुकृतं सुमयं। बुन्दः साधुः हिरण्ययः। - (६५०) तेरा धनुष्य बहुत सामर्थ्यवान्, उत्तम कार्यक्षम और सुखदायी है। तेरा बाण उत्तम है और सुवर्णके समान तेजस्वी है। तीक्ष्ण है।

६ एता वर्षिष्ठानि च्यौत्नानि ते क्रत्वा, अतः वीडु परीणसा हृदा अधारयः - (६९८) तेरे शस्त्रोंने बडे बलवान पराक्रमके कार्य किये हैं, इसलिये आपके शस्त्रोंकी बलवत्ताके विषयमें हृदयका निश्चय हो गया है।

७ दुर्हणावान् - (१३५) भयानक शस्त्रोंका उपयोग करनेवाला इन्द्र है।

इस तरह इन्द्रके भयानक शस्त्रोंका वर्णन इन मंत्रोंमें है। ऐसे शस्त्र इन्द्र बर्तता था, उनको तीक्ष्ण रखता था और विजय प्राप्त करता था।

शत्रुका पराजय करनेवाला इन्द्र

१ वृत्रघ्ना इन्द्रः - (८५) वृत्र असुरोंका नाश करनेवाला इन्द्र है।

२ धृष्णुः - (२१२) शत्रुओंका नाश करनेवाला,

३ अवक्रक्षी - (८८) शत्रुओंको समूल उखाडनेवाला,

४ चर्षणीसहः - (८८) शत्रुसैनिकोंका पराभव करनेवाला,

५ विद्वेषणः - (८८) शत्रुओंका विशेष द्वेष करनेवाला,

६ युध्मः - (९३) युद्ध करनेमें प्रवीण,

७ खजकृत् - (९३) महायुद्ध करनेमें कुशल,

८ पुरंदरः - (९३) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाला,

९ पुरुत्रा ते मनः - (९३) सब शत्रुओंको पराजित करनेमें तेरा मन लगा रहता है।

१० पुरः भिनत् - (९४) शत्रुके नगरोंको इन्द्र तोडता है।

११ त्वं वधैः शुष्णस्य चरिष्णवं पुरं संपिणक् - (११४) तू शस्त्रोंसे शुष्णके गतिमान नगरका नाश किया।

१२ अनाभयी - (११६) इन्द्र निर्भय है।

१३ दक्षिणेन वृत्रं हन्ता इन्द्रः - (१४७) दक्षिण हाथसे वृत्रको इन्द्र मारता है।

१४ नृभिः वृत्रं हन्ता - (१५१) सेनासे वृत्रके सैन्यका हनन करता है।

१५ हे इन्द्र! बृहतीभ्यः धनुभ्यः वृत्रं, मायिनः अर्बुदस्य मृगयस्य निः अस्फुरः - (१७४) हे इन्द्र! तूने अपने बडे धनुष्योंसे वृत्रको मारा, और कपटी अर्बुद और मृगयका नाश किया।

१६ पर्वतस्य गाः नि आजः - (१७४) पर्वतकी गुहामें जो गौवें रखी थी उनको तूने बाहर निकाला।

१७ इन्द्रः महां अहिं अन्तरिक्षं नि अधमः, तव् पौंस्यं कृपे - (१७५) इन्द्रने बडे अहिको तथा अन्तरिक्षको कंपायमान कर दिया, वह उसका पौरुष प्रयत्न था।

१८ उग्रः अपः रिणन् सृबिन्दं अवधीत्- (१८१) उग्रने जलके प्रवाह चलाये और सृबिंदका वध किया।

१९ पृतनासु स्थिरः, ओजसा भूरेः ईशानः- (१९१) युद्धोंमें वह इन्द्र स्थिर रहता है, उसके सामर्थ्यसे वह बडे ऐश्वर्यका स्वामी हुआ है।

२० यः वाजी शता सहस्रा आ दर्दिरत्- (१९७) वह बलवान इन्द्र सेंकडों या सहस्रों शत्रुओंका विदारण करता है।

२१ अवृतः इन्द्रः पन्यः- (१९७) शत्रुके द्वारा घिरा न जानेवाला इन्द्र स्तुतिके योग्य है

२२ शचीपतिः वृत्रं और्णवाभं अहीशुवं अहन्- (२०५) शत्रुको नष्ट करनेवाले इन्द्रने वृत्र, और्णवाभ और अहीशुवको मारा।

२३ अर्बुदं आवध्यत्- (२०५) इन्द्रने अर्बुदका वध किया।

२४ उग्रः निष्टुरः अषाळ्हः- (२०६) इन्द्र उग्रवीर है, शत्रुके विषयमें वह निष्ठुर है, और शत्रुका पराभव करनेवाला है।

२५ धृषितः, अवृतः, श्मश्रुषु श्रितः, विभूतद्युम्नः, च्यवनः, कृत्वा शाकिनः- (२१५) शत्रुका घर्षण करनेवाला, शत्रुसे घेरा न जानेवाला, युद्धोंमें रहनेवाला, बहुत तेजस्वी, शत्रुको हिलानेवाला, अपने पौरुषसे शक्तिशाली इन्द्र है।

२६ पूर्भित् (२१६); ओजसा पुरः विभिनत्ति- (२१६) शत्रुके नगरोंको अपने सामर्थ्यसे तोडनेवाला इन्द्र है।

२७ उग्रः अभिस्तृतः स्थिरः, रणाय संस्कृतः मघवा इन्द्रः- (२१८) उग्रवीर, अपराजित, रणभूमिपर स्थिर रहनेवाला, युद्धके संस्कारोंसे संपन्न और धनवान इन्द्र है।

२८ हे उग्र ! सत्यं इत्था वृषा असि, वृषजूतिः नः अवृतः, परावति वृषा शृण्विषे, अर्वावति वृषः श्रुतः- (२१९) हे उग्रवीर इन्द्र ! यह सच है कि तू ऐसा बलवान है, तुम्हारे अन्दर बलवान् उत्साह है, तू शत्रुसे घेरा नहीं जाता, दूर भी तुम बलवान् हैं ऐसा मानते हैं, वैसा पास भी बलवान् करके तू प्रसिद्ध है।

२९ प्र शर्धः-(२२९) इन्द्र शत्रुओंको मारनेवाला है।

३० हे इन्द्र ! सहसा सहः चक्र्, ओजसा मन्युं बभंत, ते विश्वे पृतना युधः नियेमिरे- (२३१) हे इन्द्र ! शत्रुको पराभूत करनेके सामर्थ्यसे तूने अपना सामर्थ्य प्रकट किया है, तूने अपने सामर्थ्यसे शत्रुके क्रोधको छिन्नभिन्न किया है, वे सब सैन्य लेकर हमला करनेवाले चुप हो गये हैं।

३१ उग्रस्य तव सख्ये मा भेम, मा श्रमिष्म- (२३५) तुझ जैसे उग्र वीरकी मित्रतामें हम डरेंगे नहीं और श्रान्त भी नहीं होंगे।

३२ वृषण्यः ते महत्कृतं अभिचक्ष्यं- (२३५) बलवान् ऐसे तूने बडा भारी देखने योग्य कार्य किया है।

३३ ते सखा अश्वी रथी गोमान् सुरूप श्वात्रभाजा वयसा सचते. सदा चन्द्रः सभां उपयाति- (२३७) जो तेरा मित्र होगा वह घोडोंवाला, रथवाला, गौओंवाला, सुरूप, सामर्थ्ययुक्त आयुसे युक्त होता है, वह आनंदित होकर सभामें जाकर बैठता है।

३४ वृष्णिना शतपर्वणा वज्रेण दोधतः वृत्रस्य शिरः विबिभेद- (३४८) बलशाली सेंकडों धारवाले वज्रसे हिंसक वृत्रका सिर इन्द्रने काटा।

३५ अस्य मन्युः वृत्रं पर्वशः विरुजन्- (२५५) इस इन्द्रके क्रोधने वृत्रके शरीरके जोडोंपर टुकडे किये।

३६ शुष्णे दस्यावि घर्णसि वज्रं निजघन्थ- (२५६) शुष्ण रूपी दस्युपर भयानक वज्रका आघात इन्द्रने किया।

३७ द्यावः अन्तरिक्षाणि भूमयः इन्द्रं न विष्वचन्त- (२५७) द्युलोक अन्तरिक्ष और भूमि इस इन्द्रको पृथक् नहीं कर सकते।

३८ येन अत्रिणः निहंसि तं ईमहे- (२८८) जिससे सर्व भक्षक दुष्टोंका वध करता है, उस तुझको हम प्राप्त करते हैं।

३९ विश्वाभिः ऊतिभिः वक्षिथ- (२९१) सर्व संरक्षणोंके साधनोंसे युक्त होकर वह जाता है।

४० प्रवृद्ध सत्पते ! यदि सहस्रं महिषान् अघः आत् इत् ते इन्द्रियं महि प्रवावृधे- (२९५) हे महान् शासक ! यदि तूने सहस्रावधि बलाढ्य शत्रुओंको आजहि नष्ट किया तो उससे तेरा ही बल बढता है।

४१ देवासः वृत्राय हन्तवे इन्द्रं पुरः दधिरे- (३०९) देवोंने वृत्रको मारनेके लिये इन्द्रको आगे खडा किया है।

४२ हे वज्रिन् ! वृत्रं शवसा अवधीः- (३१३) हे वज्रधारी इन्द्र ! तूने वृत्रको अपने सामर्थ्यसे मारा।

४३ हे इन्द्र ! यातुधानस्य विश्वा धनानि जिग्युषः ते ऊतिं वयं वृणीमहे- (३५९) हे इन्द्र ! अपनी शक्तिसे बढनेवाले और शत्रुके सब धनोंको विजयसे प्राप्त करनेवाले

तेरे संरक्षणको हम प्राप्त करते हैं।

४४ यत् वलं अभिनत्, रोचना अन्तरिक्षं वि असितत्- (३६०) जब वल राक्षसको इन्द्रने मारा, तब अन्तरिक्षमें प्रकाश फैल गया। नक्षत्र चमकने लगे।

४५ हे इन्द्र ! यत् विश्वाः स्पृधः अजयः, अपां फेनेन नमुचेः शिरः उदवर्तयः- (३६६) हे इन्द्र ! जब संपूर्ण स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंपर तूने विजय प्राप्त किया, तब जलोंके फेनसे नमुचीका सिर काट कर फेंक दिया। जलोंका फेन (अपां फेनः) साधारण सा हथियार।

४६ हे इन्द्र ! मायाभिः उत्सिसृप्सत्, द्यां आरुरुक्षतः दस्यून् अवधूनुथाः- (३६७) हे इन्द्र ! जब कपट करनेवाले द्युलोक पर चढनेवाले सब शत्रुओंको तूने कंपायमान किया था।

४७ एकः वृत्राणि जिघ्नसे- (३७१) तू अकेला हि सब शत्रुओंको मारता है।

४८ तव त्यत् महते इन्द्रियं शुष्मं क्रतुं वरेण्यं वज्रं धिषणा शिशाति- (३७५) तेरा वह बडा सामर्थ्य जो बलशाली पौरुषका कार्य करनेवाले श्रेष्ठ वज्रको बुद्धिपूर्वक तीक्ष्ण करता है।

४९ त्वं एकः वृत्राणि सत्रा तोशसे। इन्द्रात् अन्यः करणं भूयः न इन्वति- (३७९) हे इन्द्र ! तू अकेला हि अनेक शत्रुओंको एक साथ मारता है। इन्द्रसे भिन्न दूसरा कोई विशेष साधनको अपने पास नहीं रख सकता।

५० त्वं जनुषा अभ्रातृव्यः, सनात् अना अनापि- (४२१) तू जन्मसे शत्रुरहित हो। सदा तुम्हारे लिये दुसरा कोई नेता नहीं है। तू ही स्वयं योग्य नेतृत्व करता है।

५१ येषां इन्द्रः सखा, स अयुद्धः सन्, युद्धावृतं सत्वभिः आतति- (४४५) जिनका मित्र इन्द्र है, वह युद्ध न करनेपर भी युद्धसे घेरनेवाले शत्रुको अपने सामर्थ्योंसे बडा प्रतीत होता है।

५२ जातः वृत्रहा तुन्दं आददे मातरं वि पृच्छत्, के के उग्राः शृण्विरे- (४४६) जन्मसे ही इन्द्रने बाण लिया और मातासे पूछा कि यहां कौन कौन शूरवीर हैं ? हमारे कौन शत्रु हैं ?

५३ त्वा शवसी प्रतिवदत्, यः ते शत्रुत्वं आचके, योधिषत्- (४४७) उस इन्द्रसे उसकी बलवती माताने उत्तर दिया, जो तेरा शत्रुत्व करेगा वह युद्ध ही करेगा।

५४ यत् आजिकृत इन्द्रः सु-अश्व-युः आजिं उपयाति, रथानां रथीतमः- (४४८) जब युद्ध करनेकी इच्छा करके इन्द्र उत्तम घोडोंको रथसे जोतकर युद्धमें जाता है, तब वह रथियोंमें श्रेष्ठ रथि होता है।

५५ हे वज्रिन् ! विश्वाः अभियुजः यथा विष्वक् विवृहे, नः सुश्रवस्तमः भव- (४५०) हे वज्रधारी इन्द्र ! जब सब शत्रुओंसे तूने पृथक् पृथक् युद्ध किया, तब तूं बडा प्रशंसनीय हुआ।

५६ यं धूर्तयः न धूर्वन्ति- (४५१) जिस इन्द्रको दुष्ट लोग कष्ट नहीं दे सकते।

५७ हे इन्द्र ! धनंजयं, दृळ्हा चित् आरुजं, आदारिणं त्वा विद्म- (४५५) हे इन्द्र, तू युद्धमें जीतनेवाला, सुदृढ शत्रुको स्थानभ्रष्ट करनेवाला, उसका विदारण करनेवाला करके तुझे हम जानते हैं।

५८ यं युधि न किः वृण्वते, सत्वने पुरुनृम्णाय इन्द्राय सोमं गाय- (४६३) जिसका युद्धमें कोई पराभव नहीं कर सकते, उस सामर्थ्यवान् विशेष पौरुषवान इन्द्रके लिये स्तोत्रका गायन करो।

५९ विश्वाः द्विषः अपभिन्धि, बाधामृधः परि जहि- (४८२) सब द्वेष करनेवाले शत्रुओंका नाश कर, बाधा करनेवाले दुष्टोंको पराजित कर।

६० धृष्णुया प्रजिगाति, दाशुषे वृत्राणि हन्ति- (४८६) अपनी शत्रुनाशक शक्तिसे वह इन्द्र आगे बढता है और दाताका हित करनेके लिये उनके सब शत्रुओंको मारता है।

६१ वीरं उग्रं विविचं धनस्पृतं विभूतिं महः राधसः प्र- (५००) उग्रवीर ज्ञानी धनदाता विशेष ऐश्वर्यवान् इन्द्रके बडे धन दानकी प्रशंसा होती है।

६२ यः वधैः क्रिविं शुष्णं निघोषयन् ओजसा अभि प्रनक्षे- (५१२) जो शस्त्रोंसे दुष्ट शुष्णको बुरा है ऐसा घोषित करके अपने सामर्थ्यसे विनष्ट करता है।

६३ हे हरिवः ! पृत्सु सासहिं अधृष्टं त्वा विद्म- (५५१) हे घोडोंको रखनेवाले इन्द्र ! हम तुम्हें युद्धोंमें शत्रुको हरानेवाले परंतु शत्रुसे कभी पराजित न होनेवाले ऐसा जानते हैं।

६४ तव अवसा मधु चित् यन्तः वाजं सनेम- (५५१) तेरे संरक्षणसे सुरक्षित होकर आगे प्रगति करनेवाले हम बल तथा अन्न प्राप्त करेंगे।

इस रीतिसे इन्द्रके वर्णनमें उनके शत्रुनाशक सामर्थ्यका वर्णन आता है। इन्द्रके ऐसे सैंकडों प्रशंसनीय गुण हैं पर

उन सबमें शत्रुका नाश करना, इस कार्यके लिये आवश्यक हुआ तो छोटा या बडा युद्ध भी करना और विजय प्राप्त करके जनताका संरक्षण करके उनका प्रतिपालन करना यह सबसे मुख्य गुण है। इसी कारण इन्द्रकी सब प्रशंसा करते हैं, यज्ञमें बुलाकर उसको प्रथम स्थान देकर उसका संमान करते हैं, क्योंकि वह याजकोंकी सुरक्षा करता है। यज्ञ होते रहें ऐसी शान्ति प्रस्थापित करता है। जनताका संरक्षण करता है।

शत्रुका नाश करनेके लिये इन्द्र तत्पर रहता है। एक साथ संघटित होकर शत्रुसैनिक हमला करने लगे, तो उन सबका नाश इन्द्र करता है और फिर वैसे उपद्रव कोई न करे ऐसा प्रबंध करता है। सब जनताका यह विश्वास होता है कि इन्द्रके संरक्षणमें हम निर्भय हैं। इन्द्रको सब लोकोंका एकही अधिराजा सब मानते हैं। शत्रु अपने सैनिकोंसे घेरने लगे तो उस शत्रुसेनाका नाश करके जनताको सुरक्षित करना इन्द्रका महत्वका कार्य है।

कपटी शत्रु कपटसे युद्ध करने लगे, तो यह इन्द्र उनके साथ कपट युद्ध करके उनको स्थानसे हटा देता है और अपनी प्रजाको सुरक्षित स्थितिमें रखकर उन्नति करनेके लिये जो करना आवश्यक होगा वह सब करता है। ये इन्द्रके सुप्रसिद्ध कर्म हैं।

सैंकडों कर्म करनेवाला इन्द्र

इन्द्र प्रजाका संरक्षण करनेके लिये सैंकडों प्रकारके कार्य जलदीसे तथा उत्तम रीतिसे करता है, इस लिये उसका वर्णन ऐसा किया जाता है—

१ शतक्रतुः– (८६) सैंकडों कार्य उत्तमरीतिसे करनेवाला.

२ विश्वगूर्तः– (१०८) सब कार्य मन लगाकर उत्तम-रीतिसे करनेवाला।

३ अरि-स्तुतः– (१०८) (अरि) प्रगति करने-वालोंके द्वारा इन्द्र प्रशंसित होता है।

४ तुविकूर्मिः वज्रहस्तः सनात् अमृक्तः एकः वाजान् दयते– (१४६) बहुत कार्य उत्तम रीतिसे करनेवाला, वज्रको हाथमें धरनेवाला, अनादि कालसे परि-शुद्ध सामर्थ्यवाला अकेलाही अन्नोंको देनेवाला इन्द्र है।

५ ऊतये सुप्रकरस्नं साधु कृण्वन्तं वृषदुक्थं हवामहे–(१८९) हमारे संरक्षणके लिये अपने बाहुओंको फैलानेवाले, उत्तम कार्योंको करनेवाले, महान यश प्राप्त करनेवाले इन्द्रको हम सहायके लिये बुलाते हैं।

६ यस्य संस्थे शतक्रतुः आत् ईं कृणोति, वृत्रहा अरितृभ्यः पुरुवसुः– (१९०) जिसकी संस्थामें सैंकडों कर्म करनेवाला इन्द्र शत्रुओंका नाश करता है, वह वृत्रको मारनेवाला स्तोताओंको बहुत धन देता है।

७ सः शग्मः नः आशकत्, दानवान् इन्द्रः विश्वाभिः ऊतिभिः अन्तः आभरत्– (१९१) वह सामर्थ्यवान् इन्द्र हमें सामर्थ्ययुक्त करता है, वह दान देनेवाला इन्द्र सब प्रकारके संरक्षणके साधनोंसे हमें भरपूर धन देता है।

८ सुरूष्यः सुदक्षिणः इनः सः सहस्रा आकरः शतामघः– (२१४) वह इन्द्र दोनों हाथोंसे उत्तम सहस्रों प्रकारके या सैंकडों प्रकारके धन भरपूर देता है।

इस तरह अनेक प्रकारके कर्म इन्द्र करता है। ये सब कर्म लोगोंको सुख देने लिये होते हैं। जनताके संरक्षणके लिये वह अपने दोनों हाथ ऊपर उठाता है। आवश्यक हुआ तो हाथोंसे धनका दान करता है अथवा दूसरी रीतिसे आवश्यक होनेपर वज्र हाथमें धारण करके सब शत्रुओंको मार कर हटा देता है।

स्तुति करनेवालोंके घरके संसार, सार्वजनिक हितके लिये करनेके अनेक कार्य, शत्रुनिर्दलनके विविध कार्य तथा याजकोंके करनेके यज्ञ उत्तम रीतिसे समाप्त करनेमें वह हरएक प्रकारकी सहायता करता है।

धनवान् इन्द्र

इन्द्रका नामही ' मघवा ' है। इसका अर्थ ' धनवान ' है। इसका धनवान् होनेका भाव वर्णन करनेवाले मंत्रभाग ये हैं, देखिये—

१ शतामघ– (९१) सैंकडों प्रकारके धन अपने पास रखनेवाला इन्द्र है।

२ मे पितुः वस्यान्– (९२) मेरे पितासे तू अधिक धनवान् है।

३ रेवन्तं त्वा शृणोमि– (१२६) तू धनवान् है ऐसा मैं सुनता हूं।

४ रेवतः स्तोता रेवान् स्यात्– (१२८) धनवान् इन्द्रकी स्तुति करनेवाला भी धनवान् होता है।

५ देवः दाशुषे पुरुवार्या रासते– (१०८) इन्द्र देव दाताको बहुत धन देता है।

६ हे वसो ! वसुत्वनाय राधसे मे माता च समा छदयतः– (९२) हे निवासक इन्द्र ! निवास करने और

×

धन प्राप्त करनेके लिये तू और मेरी माता समान रीतिसे मेरे सहायक हैं।

७ अस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिं आ विद्म- (१६६) इस वीर इन्द्रकी उत्तम दान देनेवाली उत्तम बुद्धिको हम जानते हैं।

८ अवाकात् अवति स इनः वसु वीळहा- (१५०) अपवित्रतासे रक्षण करता है वह स्वामी इन्द्र धन देनेवाला है।

९ धने हिते येन प्रतिभ्यः भृगवे- (१६४) युद्ध छिड जाने पर इन्द्रने यतियोंसे धन छीन कर गृहस्थी भृगुको दिया।

१० यः रायः अवनिः, महान् सुपार सखा, तं इन्द्रं अभिप्रगायत- (१९२) जो धनका रक्षक और दु खोंसे उत्तम रीतिसे पार करनेवाला मित्र है, उस इन्द्रकी स्तुतिका गान करो।

११ हे मघवन् ! पिशंगरूपं धृषत् गो मन्तं मक्षु ईमहे- (२१२) हे धनवान् इन्द्र ! सुवर्णके समान चमकनेवाला, शत्रुका धर्षण करनेवाला गाइयोंसे युक्त धन हमें तत्काल मिले ऐसी हम इच्छा करते हैं।

१२ स्वर्विदं चित्रं रयिं नः आभर- (३२५) आत्मज्ञानी विलक्षण सामर्थ्यवान् धन हमें भरपूर दो।

१३ गृणत्सु रयिं सूरिभ्यः अमृतं वसुत्वं श्रवः धारय- (३३२ स्तुति करनेवालोंको धन, ज्ञानियोंको अमरत्व देनेवाला धन युक्त यश दे दो।

१४ तत् स्पार्हं वसु आभर- (४८२) वह स्पृहणीय धन हमें भरपूर दो।

१५ यत् वीळौ, यत् स्थिरे, यत् पर्शाने आभृतं, तत् स्पार्हं वसु आभर- (४८३) जो सुरक्षित स्थानमें रखा है, जो स्थिर स्थानमें रखा है, जो खजानेमें रखा है वह स्पृहणीय धन हमें दो।

१६ ते दत्तस्य भूरेः विश्वमानुषः वेदति तत् स्पार्हं वसु आभर- (४८४) तुम्हारे दिये हुए धनको सर्व मनुष्योंका हित करनेवाला धन है ऐसा जानते हैं, वह स्पृहणीय धन हमें भरपूर दो।

१७ गर्दभानां शतं, ऊर्णावतीनां शतं, शतं दासान् अतिस्रजः- (५४६) सौ गधे, सौ ऊनवाली मेढियां और सौ दास तुमने दिये।

१८ पुरु सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे (५५५) सहस्रों और सैंकडों झुंड दानके लिये दिये गये हैं।

१९ अराधसः पणीन् पद्मा वि बाधस्व, त्वा कश्चन प्रति नहि- (५९०) दान न देनेवाले पणीयोंको पांवसे कुचल, तुझे कोई रोकेगा नहीं।

२० दाशुषे पुरुसंभृतं वसु उद्वृतति- (६१६) दाताको बहुत इकठ्ठा किया धन इन्द्र देता है।

इन्द्र धनवान् है और वह दूसरे सज्जनोंको धन दानरूपसे देता भी है। सब मानवोंका कल्याण करनेका इन्द्रका उद्देश्य है। जो सार्वजनिक हित करनेके लिये यज्ञ करते हैं, उनको इन्द्र धन देता है। वे यज्ञ करें और उससे मानवोंका कल्याण हो यह इन्द्रका उद्देश्य होता है।

इन्द्रके घोडे

इन्द्रके घोडे कैसे थे उसका वर्णन अब देखिये। इन्द्रका नाम 'हरिवः' (१२८) है इसका अर्थ घोडे पालनेवाला, घोडोंको सुशिक्षित करनेवाला, घोडोंके कुलका सुधार करनेवाला। इन्द्र यह सब करता था और जिसको घोडे देने चाहिये उसको घोडे देता भी था। इन्द्रके वर्णनमें आया है—

१ सूरचक्षसः हरयः- (७८) सूर्यके समान तेजस्वी घोडे इन्द्रके थे।

२ हरयः- (७८) लाल रंगके इन्द्रके घोडे थे। पीले रंगके घोडे थे। 'किरण' ऐसा भी इनका अर्थ है।

३ केशिभिः हरिभिः नः सुतं उपयाहि- (८१) लंबे बालवाले, लंबी अयालवाले घोडोंसे हमारे सोमयागमें आओ।

४ शतिनः सहस्रिणः वृषणः रघुद्रुवः अश्वासः- (९५) सैंकडों और हजारों बलवान् और शीघ्र दौडनेवाले इन्द्रके घोडे हैं।

५ शतं सहस्र केशिनः हरयः ब्रह्मयुजः- (११०) सैंकडों और हजारों अयालवाले इशारेसे जुडजानेवाले इन्द्रके घोडे हैं।

६ मयूर रोमाणा शितिपृष्ठा हरी- (१११) मोरके समान रंगवाले जिनके केश हैं ऐसे सफेद पीठके घोडे इन्द्रके हैं।

७ ब्रह्मयुजा शग्मा हरी- (१४२) इशारेसे रथके साथ जुड जानेवाले सुन्दर घोडे।

८ सधमाद्या हिरण्ययकेशा हरी- (२०८) साथ रहनेवाले सोनेरी बालोंवाले घोडे।

९ मदच्युता मिथुना सप्ती रथं वहतः- (२२७) मद चूनेवाले दो घोडे इन्द्रके रथको ढोते हैं।

१० त्वा वीतपृष्ठा शतं हरयः अस्मांकं प्रयः उप वहन्तु- (१८४) तुझे श्वेत पीठवाले सैंकडों घोडे यज्ञमें ले आवें।

११ महेमते ! तूतुजानः पृथिविष्णुभिः आशुभिः अश्वेभिः यज्ञे आयाहि- (३३१) हे महाबुद्धिवान् इन्द्र ! त्वरा करके पुष्ट शरीरोंके जलदी दौडनेवाले घोडोंसे हमारे यज्ञमें आओ।

ऐसे घोडे इन्द्र पालता है, उनको सुशिक्षित करता है और वह उनको जिनको आवश्यकता होती है उनको देता भी है। देखिये-

१२ सः नः इमं कामं गोभिः अश्वैः आपृण-(८६) वह तू इन्द्र हमारा इस कामनाको, गौओं और घोडोंको हमें देकर, पूर्ण करो।

१३ नः गोमतः हिरण्यवतः अश्विनः कृधि-(१८८) हमें गौओंवाले, सुवर्णवाले और घोडोंवाले कर अर्थात् हमें गौवें, सुवर्ण और घोडे प्रदान कर।

१४ हे इन्द्र ! नः सुवीर्यं, सु अश्व्यं, सुगव्यं कृधि- (३२०) हे इन्द्र ! हमें उत्तम वीर्यवान्, उत्तम घोडों और गौओंसे युक्त कर।

१५ हे अश्वपते गोपते उर्वरापते- (४११) हे घोडों और गौओंके स्वामी ! हे भूमिके स्वामी इन्द्र !

१६ उपाकचक्षसं व्रजं अभितित्विषे, नः मृळयासि (२६७) देखभाल करके गोशालाको तेजस्वी तू बनाता है और हमें सुखी करता है।

१७ गुहा सतीः गाः अंगिरोभ्यः उत् आजत, वलं अर्वाञ्चं नुनुदे- (३६१) वल राक्षसने गौवें चोरीं और पर्वतकी गुहाओंमें रखीं, इन्द्रने उन गौओंको गुहाओंमेंसे बाहर निकाला और बलको नीचे मुख करके भगाया।

इन्द्रने घोडे और गौवें पालीं, हृष्टपुष्ट बनाईं, शत्रुके पाससे उनको छुडाकर ऋषियोंके आश्रममें भेज दीं। ऐसे कार्य इन्द्रने किये इसलिये सब सज्जन इन्द्रकी प्रशंसा करने लगे।

इन्द्रका सुखदायक रथ

इन्द्रका रथ सुवर्णका अर्थात् सुवर्ण जैसा चमकनेवाला था, देखिये—

१ हिरण्ययः रथः- (११०) सुवर्ण जैसा चमकनेवाला इन्द्रका रथ था। इस रथपर सुवर्णका नकशीकाम किया था। इसलिये वह सुवर्णका बनाया है ऐसा दीखता था।

२ इन्द्रं सुखतमे रथे हरी उपवक्षतः- (७९) उत्तम सुखदायक रथमें बिठलाकर इन्द्रको दो घोडे ले चलते हैं।

३ हिरण्ययः रथः हर्योः संमिश्लः- (२१३) इन्द्रका रथ सुवर्णका बनाया दीखता है और उस रथके साथ दो घोडे जोते रहते हैं।

ऐसा उत्तम रथ इन्द्रका है और उस रथको दो घोडे जोते जाते हैं। इस रथसे इन्द्र जहां जाना होता है वहां जाता है।

ज्ञानी इन्द्र

इन्द्र ज्ञानी है ऐसा वर्णन वेदमंत्रोंमें है वह अब देखिये-

१ विप्रः- (१५१) ज्ञानी, विद्वान्।

२ सूरः- (२६७) विद्वान्, महाज्ञानी।

३ विचर्षणिः- (२१२) द्रष्टा, दूरदर्शी।

४ पूर्वजाः ऋषिः असि- (२८३) इन्द्र ऋषि है अर्थात् महाज्ञानी है, द्रष्टा है।

५ सत्यः- (१५१) इन्द्र सत्य भक्त है।

६ एकः ओजसा ईशानः वसु चोष्कूयसे- (२८३) इन्द्र अकेला अपने ज्ञान सामर्थ्यसे ईश्वर बनकर धन देता है।

७ गोमन्तं अश्विनं तं रयिं प्र न क्षीमहि, पूर्वचित्तये ब्रह्म प्र नक्षीमहि- (२५१) गौओं और घोडोंसे युक्त धन हम इन्द्रसे प्राप्त करते हैं, और अपूर्व चित्तके बननेके लिये ज्ञान भी चाहते हैं। अर्थात् यह ज्ञान मिलने पर हमारा चित्त प्रगल्भ होगा। यह ब्रह्मज्ञान इन्द्रके पास है।

८ गिरीणां उपह्वरे, नदीनां संगमे च धिया विप्रो अजायत- (२७०) पहाडोंकी उतराईपर तथा नदीयोंके संगमपर रहकर बुद्धिपूर्वक साधना करनेसे विप्र अर्थात् महाज्ञानी होता है। इन्द्रने इस तरह ज्ञान प्राप्त किया था क्योंकि इन्द्रका ही यह वर्णन है।

९ हे इन्द्र ! मां सु अव, उत मतिं प्रवर्धय- (२७४) हे इन्द्र ! मेरा उत्तम प्रकारसे रक्षण कर और मेरी बुद्धिको बढा दो। इन्द्र महाबुद्धिवान् होनेसे वह बुद्धिको बढा सकता है।

१० हे प्रवृद्ध वज्रिवः ! ब्रह्मण्या विप्रावयं जीवसे तुभ्यं अतक्ष्म- (२७५) हे महान् वज्रधारी इन्द्र ! ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण हम सब जीवनके लिये तेरे पास आते हैं, तू हमारा जीवन बनाओ। ज्ञानी ब्राह्मणोंका जीवन इन्द्र बनाता है।

इन्द्र रक्षक है

१ आविता- (१५१) संरक्षण करनेवाला इन्द्र है।

२ अनुत्तमन्युः अजरः इन्द्रः- (३७७) जिसका उत्साह कम नहीं हुआ है ऐसा तरुण इन्द्र है। इन्द्र सदा तरुण रहता है। कितनी भी आयु हुई तो भी वह वृद्ध नहीं होता।

३ उभे रोदसी त्वा अनुवर्तेते- (२८०) दोनों द्युलोक और भूलोक तेरे अनुकूल होकर सुरक्षित रहते हैं।

सब विश्वका संरक्षक इन्द्र है। सब विश्व उसके अनुकूल रहा तो उस विश्वका संरक्षण होता है, अथवा विश्वका संरक्षण वह इन्द्र करता है। इस कारण इन्द्र संसेव्य है-

संसेव्य इन्द्र

सबका उत्तम रीतिसे संरक्षण करनेके कारण इन्द्र सबके लिये संसेव्य है देखिये-

१ संजनन.- (८८) इन्द्र सबको उपासना करनेके लिये योग्य है। सेवा करनेके लिये सेव्य है।

२ उभयंकरः- (८८) इन्द्र शत्रुका निग्रह और मित्रोंपर अनुग्रह ये दोनों कार्य करनेमें समर्थ है।

इस कारण इन्द्र संसेव्य है।

इन्द्र अन्न देता है

१ वाजेभिः अस्मान् अभि सु प्र आहि- (१३४) अन्नोंके साथ हमारे समीप आ जाओ। अर्थात् हमें अनेक प्रकारके अन्न दो।

२ जरितृभ्यः अश्ववन्तं गोमन्तं वाजं- (१४९) स्तुति करनेवालोंको घोडे जहां होते हैं और गौवें जहां होती हैं, ऐसा अन्न भरपूर दे दो। अर्थात् घोडोंपरसे लाया अन्न और गौओंसे उत्पन्न हुआ दूध दही घी आदि अन्न हमें दे दो।

स्त्रियोंके विषयमें इन्द्रकी संमति

१ इन्द्रः अब्रवीत्, स्त्रियाः मनः अशास्यम्, क्रतुं रघु- (२१६) इन्द्रने कहा कि स्त्रियोंका मन शासनमें रहता नहीं, तथा उनके कार्य छोटे होते हैं।

२ अधः पश्यस्व मा उपरि, संतरां पादकौ हर, मा ते कशप्लकौ दृशन्, हि ब्रह्मा स्त्री बभूविथ- (२२८) हे स्त्रि, ! तूं नीचे देख, ऊपर नहीं, अपने पांवोंसे शनैः शनैः चल, तेरे पांवके टखने न दीखे क्योंकि ज्ञानी स्त्री बनी है। स्त्री ज्ञानी होवे और वह अपनी मर्यादासे सब व्यवहार करे।

व्रण ठीक करनेवाला इन्द्र

इन्द्र युद्ध करता है, उसके सैनिक युद्धमें जखमी होते है। उनकी जखमें वह ठीक करता है। देखिये-

१ यः पुरा अभिश्रियः ऋते जत्रुभ्यः आतृदः, संधिं संधाता, विह्रुतं पुनः इष्कर्ता- (९८) इन्द्र संधिके पास प्रथम काटता हैं, संधिको जोडता है, कटे हुएको ठीक करता है; यह सब आवश्यकता जैसी होती है वैसा करता है।

इन्द्र शस्त्रक्रिया करता है और उस व्रणको जलदी ठीक करता है। व्रण ठीक करनेके कार्यमें इन्द्र अत्यंत कुशल है।

सूर्यके समान इन्द्र

१ सूर्यः नः रोदसी अवर्धयत, अस्य केतवः ववक्षुः- (२९४) सूर्यने हमारे लिये द्युलोक और भूलोकको विस्तृत किया है, इस इन्द्रके किरण सूर्यके समान चारों ओर फैले हैं।

सूर्य प्रकाशता है वैसा इन्द्र विद्युद्देव भी प्रकाशता है। दोनों अपने किरण फैलाते हैं। इस तरह दोनोंकी समानता है।

देवोंकी इच्छा

देवोंकी इच्छा सब लोग पुरुषार्थ करें ऐसी है देखिये-

१ देवाः सुन्वन्तं इच्छन्ति, स्वप्नाय न स्पृहयन्ति- (१३३) देव यज्ञ करनेवालेको चाहते हैं, सुस्तको चाहते नहीं। लोग कर्म करें ऐसा देव चाहते हैं। आलस्यमें बैठे रहें ऐसा वे इच्छते नहीं।

२ अतन्द्राः प्र-मादं यन्ति- (१३३) आलस्य रहित होकर जो सतत शुभकर्म करते हैं वे विशेष आनन्दको प्राप्त करते हैं। प्र-मादः- विशेष बडा आनन्द।

३ देवाः पृतनाज्ये त्वा पुरः दधिरे- (३१२) देवोंने युद्धमें तुझ इन्द्रको आगे रखा है क्योंकि इन्द्र बडा पौरुष करनेवाला है। इसीलिये इन्द्र देवोंका मुखिया हुआ है।

४ त्वावतः सखो अमाजुरः मा- (४२१) तुम जैसेकी मित्रतामें रहनेवाले घरमें बैठकर ही वृद्ध न हों। पुरुषार्थ प्रयत्न करके वृद्ध हो।

स्तुति न करनेवाला शत्रु

१ अ-गोः अरिः- (१२९) स्तुति न करनेवाला शत्रु होता है।

देवोंकी स्तुति करनेसे शुभ गुण ये हैं ऐसा पता लगता है। उन शुभ गुणोंका अपने अन्दर धारण करनेसे तथा बढानेसे उपासकमें देवत्व प्राप्त होता है। स्तुति न करनेवालेको ये लाभ नहीं होते। इसलिये स्तुति न करनेवाला शत्रु कहलाता है।

प्रकाशके मार्गसे चल

त्वं भा अनुचर- (११४) तू प्रकाशके मार्गसे चल अंधकारके मार्गसे न चल। इससे तेरी उन्नति होती रहेगी।

कोई हीन न बने

१ निष्ट्या इव मा भूम- (९९) हम हीन जैसे न बनें।

२ त्वत् अरणा इव मा भूम- (९९) तेरेसे दूर हम न जांय।

३ प्रजहितानि वनानि न भूम- (९९) परित्यक्त वनोंके समान हम न बनें। जहां कोई जाता नहीं ऐसे वनोंके समान हम न बनें, अर्थात् हम हीन न बनें, हमसे लोकोपयोगी कार्य होते रहें। हम सर्व रीतिसे लोगोंके लिये आदरणीय बनकर रहें।

पुत्र कैसा हो ?

१ विश्वेषां तरुतारं (वीरं) नः ददाति- (१०१) सबका त्वरासे तारण करनेवाला पुत्र उत्पन्न हो।

वेदमंत्रोंमें पुत्रका नाम 'वीर' है और पुत्रीका नाम 'सुवीरा' है। दोनोंका अर्थ 'दुष्टोंको दूर करनेवाला' ही है।

इस प्रकार कण्वोंके मंत्रोंका विचार है। पाठक इसको पढें और योग्य बोध प्राप्त करें। योग्य बोध यही है कि इन गुणोंको अपने अन्दर धारण करना, इन गुणोंको अपने अन्दर बढाना और श्रेष्ठ बनना। वेदके अध्ययनका यही मुख्य उद्देश्य है।





ऋग्वेदका सुबोध - भाष्य

अष्टम मण्डल

मंत्रवर्णानुक्रम-सूची

×

